पुस्तक संख्या 3 खण्ड VII (क) -04 नवम्बर,1948 से 30 नवम्बर,1949

खण्ड VII (क) पुस्तक संख्या-3 दिनांक 04.11.1948 से 30.11.1948

भारतीय संविधान सभा

(भारतीय विधान परिषद)

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्‌वारा पुनर्मुद्रित

Con. 3. VII.1.48
350

अंक 7
संख्या 1–20

बृहस्पतिवार
4 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

परिचय-पत्रों की पेशी तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 1
प्रतिज्ञा-ग्रहण 1
राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि 1
कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना, श्री डी.पी. खेतान और
श्री डी.एस. गुरंग की मृत्यु पर शोक-प्रकाश 2
नियमों में संशोधन 2
कार्यक्रम 33
विधान के मसौदे पर प्रस्ताव 59

भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 4 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रात: ग्यारह बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई। माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

परिचय-पत्रों की पेशी तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने परिचय-पत्र पेश किये और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

(1) श्री एच. सिद्ववीराप्पा (मैसूर)

(2) श्री के.ए. मोहम्मद (त्रावणकोर)

(3) श्री आर. शंकर (त्रावणकोर)

(4) श्री अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर (सौराष्ट्र)

(5) श्री कालूराम विरूलकर (मध्य भारत)

(6) श्री राधावल्लभ विजयवर्गीय (मध्य भारत)

(7) श्री रामचन्द्र उपाध्याय (मत्स्य संघ)

(8) श्री राज बहादुर (मत्स्य संघ)

(9) ठाकुर कृष्णसिंह (अवशिष्ट राज्य)

(10) श्री वी. रमय्या (मद्रास राज्य)

(11) डा वाई.एस. परमार (हिमाचल प्रदेश)

प्रतिज्ञा ग्रहण

निम्नलिखित सदस्य ने केवल प्रतिज्ञा ग्रहण की

राय बहादुर श्यामानन्दन सहाय

राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्यों, अपने कार्यक्रम को आरम्भ करने के पहले मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप राष्ट्रपिता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिये अपनी जगहों में उठ खड़े हों। उन्होंने हमारे मृतप्राय अस्थि-चर्ममय देह को अनुप्राणित

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[अध्यक्ष]

किया, हमें निराशा के अंधकार से निकाल कर आशा और सफलता का प्रकाश दिखाया और हमारे दासत्व का अन्त करके हमें स्वतन्त्र कर दिया। (*हर्षध्वनि*) उनकी आत्मा निरन्तर हमारा पथप्रदर्शन करती रहे। उनका जीवन तथा उनके उपदेश हमारे लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में ज्योतिस्वरूप हों।

(*सब सदस्य शांतिपूर्वक खड़े हो गये।*)

कायदे आज़म मोहम्मद अली जिन्ना, श्री डी.पी. खेतान और श्री डी.एस. गुरंग की मृत्यु पर शोक-प्रकाश

***अध्यक्षः** सदस्यों, मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप कायदे-आज़म मोहम्मद अली जिन्ना के प्रति आदर प्रकट करने के लिये अपनी जगहों में उठ खड़े हों। उन्होंने दृढ़ निश्चय और अटल निष्ठा से पाकिस्तान की बुनियाद डाली तथा उसकी स्थापना की और उनकी मृत्यु से इस समय सभी को ऐसी क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। हम सरहद के उस पार अपने भाइयों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

(*सब सदस्य शांतिपूर्वक खड़े हो गये।*)

***अध्यक्षः** जब से विधान-परिषद् विधान-निर्माण के कार्य को सम्पन्न करने के लिये सम्मिलित हुई, दो सदस्यों की मृत्यु हो गई है। वे श्री देवीप्रसाद खेतान और दार्जिलिंग के श्री डाग्वरसिंह गुरंग हैं। उन्होंने अपने निर्वाचन-क्षेत्रों का बड़ी निष्ठा के साथ प्रतिनिधित्व किया और हमारे विचार-विमर्श में भी बहुत सहायता दी। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उनके प्रति आदर प्रकट करने के लिये अपनी जगहों में उठ खड़े हों।

(*सब सदस्य शांतिपूर्वक खड़े हो गये।*)

विधान-परिषद् के नियम 5ए और 5बी में संशोधन

***अध्यक्षः** अब हम कार्यावलि में दिये हुए विषयों पर विचार शुरू करेंगे। पहला विषय श्री गोविन्द मेनन और श्रीमती दुर्गाबाई का प्रस्ताव है, जिसकी सूचना मिल चुकी है। मैं श्रीमती दुर्गाबाई से उसे उपस्थित करने के लिये कहता हूं।

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई:__ श्रीमान् मैं इसे उपस्थित करती हूं:

यह कि विधान-परिषद् की अधिसूचना संख्या सी.ए/43/एसईआर/48-1, ता. 2-8-1948 ई. में उल्लिखित प्रावधान ता. 2-8-1948 ई. से विधान-परिषद् के नियमों के अंग बना लिये जायें जैसा कि निम्नलिखित संशोधनों का आशय है:

(1) **नियम 5-ए और 5-बी:** नियम 5-ए और 5-बी के स्थान में निम्नलिखित नियम रखा जाय:

"5-ए When a vacancy occurs by reason of death, resignation or otherwise in the office of a member of the Assembly representing an Indian State or more than one Indian State specified in column 1 of the Annexure to the Schedule to these rules, the President shall notify the vacancy and make a request in writing to the authority specified in the corresponding entry in column 3 of that Annexure to proceed to fill the vacancy as soon as may reasonably be practicable by election or by nomination, as the case may be, in the case of the States specified in Part I of the said Annexure, and by election in the case of the States specified in Part II of that Annexure:

Provided that in the case of the States specified in Part I of the said Annexure, where the seat was filled previously by nomination, the vacancy may be filled by election:

Provided further that in making a request to fill a vacancy by election under this rule, the President may also request that the election be completed within such time as may be specified by him."

(2) नियम 51 में: नियम 51 के खण्ड (बी) की जगह निम्नलिखित खण्ड रखा जाय:

"(बी) 'Returned candidate' means a candidate whose name has been published in the appropriate Official Gazette as a duly elected member of the Assembly and includes a candidate

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

whose name has been reported to the President in the manner provided in paragraph 5 of the Schedule to these rules as a duly chosen representative of any Indian State or States specified in column 1 of the Annexure to that Schedule."

(3) अनुसूची में: 3, 4, 5 और 6 पैरों की जगह निम्नलिखित पैरे रखे जायें:

"3. (1) When the representation allotted to the States, individual or grouped in the Assembly, or the grouping of the States for the purpose of such representation is altered by an order made under paragraph 2, or by an amendment of the Annexure to this Schedule, the President may, by order–

(ए) reassign members representing a State or States to such State or States as may be specified in the order;

(बी) declare the seat or seats of any member or members of the Assembly representing any State or States affected by an order under paragraph 2 or an amendment of the Annexure to this Schedule, as the case may be, to be vacant.

(2) Any member who has been reassigned to a State or States by an order made under clause (a) of sub paragraph (1) and whose seat has not been declared vacant under clause (b) of that sub-paragraph shall as from the date of the order be deemed to be a duly chosen representative of such State or States.

(3) A member whose seat is declared vacant by an order made under clause (b) of sub-paragraph (1) shall, if it is so specified in the order, continue to hold office as member of the Assembly until his successor has been duly elected and has taken his seat in the Assembly.

4. (1) Not less than fifty per cent of the total representatives of the States specified in column 1 of Part I of the Annexure to this Schedule in the Assembly shall be elected by the elected members of the legislatures of the States concerned, or where such legislature do not exist, by the members of electoral colleges constituted in accordance with the provisions made in this behalf by the authorities specified in the corresponding entries in column 3 of the Part.

(2) All vacancies in the seats in the Assembly allotted to the States specified in column 1 of Part II of the Annexure to this Schedule shall be filled by election and the representatives of such States to be chosen to fill such seats shall be elected by the elected members of the legislatures of the States concerned, or where such legislatures do not exist, by the members of electoral colleges constituted in accordance with the provisions made in this behalf by the authorities specified in the corresponding entries in column 3 of that Part.

5. On the completion of the election or nomination, as the case may be, of the representative or representatives of any State or States specified in column 1 of the Annexure to this Schedule in the Constituent Assembly, the authority mentioned in the corresponding entry in column 3 of that Annexure shall make a notificaton under his signature and the seal of his offices stating the name or names of the person or persons so elected or nominated and cause it to be communicated to the President of the Assembly."

श्रीमान्, सभा से अपना प्रस्ताव स्वीकार करने की सिफारिश करने के पहले मैं कुछ शब्द इस बात का स्पष्टीकरण करने के लिये कहना चाहती हूं कि नियमों में ये संशोधन क्यों और कैसे आवश्यक हो गये हैं।

श्रीमान्, विधान-परिषद् के नियम 5ए और 5बी में किसी एक या एक से अधिक भारतीय राज्यों के सदस्य का स्थान आकस्मिक रूप से रिक्त हो जाने पर उसकी पूर्ति के लिये प्रणाली निर्धारित की गई हैं और नियमों के परिशिष्ट में विभिन्न राज्य या राज्यों के समूहों के बीच जगहों के बंटवारे तथा राज्यों के

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

प्रतिनिधियों को चुनने की प्रणाली और निर्वाचन के संचालनार्थ संचालकों को नियुक्ति की प्रणाली निश्चित की गई है। नरेन्द्र-मंडल और विधान-परिषद् ने जो दो निगोशियेटिंग कमेटियां नियुक्त की थीं, उनके निर्णय ही नियम 5ए और 5बी के आधार हैं।

श्रीमान्, जैसा कि सब को विदित है, तब से इन राज्यों के वैधानिक तथा शासन प्रबंध के स्वरूप में बहुत से प्रभावपूर्ण परिवर्तन हो गये हैं। उदाहरणार्थ कुछ राज्य संघों के रूप में संगठित हो गये हैं, कुछ निकटवर्ती प्रांतों में समाविष्ट हो गये हैं और कुछ ने केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रों का रूप ग्रहण कर लिया है।

श्रीमान्, इन परिवर्तनों का विधान-परिषद् में प्रतिनिधित्व की वर्तमान प्रणाली पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप यह आवश्यक हो गया कि इन बहुत से राज्यों को नये समूहों के रूप में संगठित किया जाये और उनके बीच फिर से जगहें बांटी जायें तथा निर्वाचनों के संचालनार्थ संचालकों को भी बदला जाय और विधान-परिषद् के नियमों में भी आवश्यक परिवर्तन किये जायें। इन सब बातों पर माननीय अध्यक्ष महोदय, राज्यों के माननीय मंत्री तथा सम्बन्धित संघों और राज्यों के प्रधान मंत्रियों और जिन प्रांतों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ेगा, उनके प्रधान मंत्रियों तथा विधान-परिषद् के सचिवालय और स्टेट्स मिनिस्ट्री के कर्मचारियों की बैठक में विचार किया गया और उसके निर्णय, उन प्रावधानों में निहित हैं, जिनको विधान-परिषद् के नियमों में सम्मिलित करने के लिये यह प्रस्ताव है।

श्रीमान्, इन प्रावधानों में किये जाने वाले इन परिवर्तनों में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्यों के नवनिर्मित समूहों या संघों के सम्बन्ध में—कच्छ और जूनागढ़ का भी इस सभा में पृथक-पृथक प्रतिनिधित्व हो गया है—सब रिक्त स्थानों की पूर्ति निर्वाचन द्वारा होगी, जिसमें रियासतों की विधायित्री सभाओं के निर्वाचित सदस्य, या जहां विधायित्री सभाएं न हों, वहां किसी ऐसे निर्वाचक निकाय के सदस्य, जो इस काम के लिये बनाया गया हो, भाग लेंगे।

पुराने निमयों के अनुसार कुछ रिक्त स्थानों की पूर्ति मनोनीतकरण द्वारा हो सकती थी। श्रीमान्, चूंकि आप इन विभिन्न परिवर्तनों की ओर ध्यान दे चुके है। मेरे विचार से, मुझे इन पर विस्तार से बोलने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस सभा से सिफारिश करती हूं कि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर ले।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव उपस्थित करती हूं।

अध्यक्ष: मेरे पास इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ संशोधनों की सूचना भेजी गई है। श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामत:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल) अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

> ''That in sub-para (1) of the proposed paragraph 3 of the Schedule, for the words 'to the states, individual or grouped in the Assembly' the words, 'in the Assembly to the states, individual or grouped' be substituted.''

अर्थात् यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये, तो प्रस्ताव इस प्रकार हो जायेगा। इस समय तो वह इस प्रकार है: ''When the representation allotted to the States, individual or grouped in the Assembly.'' इसकी जगह वह इस प्रकार हो जायेगा ''When the representation allotted in the Asembly to the States, individual or grouped.........'' मेरे विचार से मुझे इस संशोधन पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। यह स्वत: स्पष्ट है और इस पैरा से जिस आशय को प्रकट करने की चेष्टा की गई है, वह मेरे संशोधन से प्रकट हो जाता है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि राज्यों का वर्तमान एकाकी या सामूहिक स्वरूप परिषद् के प्रयोजनार्थ नहीं है। इसलिये वह इस प्रकार होना चाहिये: ''Representation allotted in the Assembly to the States, individual or grouped.'' यह पहला संशोधन है।

श्रीमान्, दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

> ''That in sub para (3) of the proposed paragraph 3 of the Schedule, for the words 'is declared vacant' the words 'has been declared vacant' be substituted.''

[श्री एच.वी. कामत]

यह संशोधन, मैं कहूंगा, केवल भाषा सम्बन्धी है। मेरे विचार से इसका सम्बन्ध उन दशाओं से है जो स्थान रिक्त होने पर उत्पन्न होंगी। यह शब्दावली: ''When a seat has been declared vacant'', अधिक उपयुक्त होगी।

इसलिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरे ये संशोधन स्वीकार कर लिये जायें।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पर बोलना चाहता हूं। क्या मैं बोल सकता हूं?

***अध्यक्ष:** जी, हां।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मेरी बहिन माननीय श्रीमती दुर्गाबाई के प्रस्ताव से जो बातें उत्पन्न हुई हैं, उनमें से कुछ के सम्बन्ध में मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं। श्रीमान्, इस सभा की पूर्ण सदस्य-संख्या 324 है, परन्तु मुझे बताया गया है कि आजकल इसकी वास्तविक सदस्य-संख्या 303 है। वे 21 सदस्य, जो हैदराबाद, काश्मीर और भोपाल का प्रतिनिधित्व करेंगे, यहां उपस्थित नहीं हैं। अवशिष्ट 303 के सम्बन्ध में भी कल समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ ने इस सभा के लिये अपने प्रतिनिधि निर्वाचित नहीं किये हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि कम से कम विधान-परिषद् के इस अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण अधिवेशन में इन राज्यों या राज्य-संघों या राज्य-समूहों का प्रतिनिधित्व क्यों न हो। मैं यह मानता हूं कि काश्मीर के सम्बन्ध में कठिनाइयां हैं। हैदराबाद तो अब उन राज्यों में से एक है, जो परिशिष्ट के भाग 1 में वर्णित है और इन राज्यों में उसका स्थान सर्वप्रथम है। मेरी समझ में नहीं आता कि हम हैदराबाद के नरेश से क्यों न कहें कि वे इस प्रस्ताव के प्रावधानों के अनुसार प्रतिनिधियों को चुनें या मनोनीत करें, जैसी भी दशा हो, और उन्हें शीघ्र से शीघ्र इस अधिवेशन में भाग लेने के लिये भेजें। हाल की सुखद घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए—मैं आशा करता हूं कि इस सभा के सदस्य मेरे साथ सहमत होंगे कि हैदराबाद की समस्या सुखद रूप से हल हो गई—हम इस सभा में हैदराबाद के अपने मित्रों का, अपने सहकारियों का, शीघ्र से शीघ्र स्वागत करना चाहते हैं।

जहां तक भोपाल का सम्बन्ध है, मेरी समझ में नहीं आता कि इस सभा में भाग लेने के लिये उसके रास्ते में ऐसे कौन से अड़ंगे हैं, जो दूर नहीं किये जा सकते। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि भोपाल के अधिकारियों से भी कहा जाये कि वे तुरन्त ही अपने सदस्यों को इस सभा में भेजें।

अब श्रीमान्, कल समाचार-पत्रों में पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ के सम्बन्ध में जो समाचार प्रकाशित हुआ है, यह स्पष्ट नहीं है। इसमें वहां के नरेश और वहां के शासन के विरुद्ध कई प्रकार की बातें कही गई हैं। परन्तु सच्चाई कुछ भी क्यों न हो, अब समय आ गया है कि इस पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ को यह आदेश दिया जाये कि वे विधान-परिषद् के इस अन्तिम अधिवेशन में अपने प्रतिनिधियों को भेजें।

मैं आपका ध्यान एक और बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। अपने पिछले अधिवेशनों में जो नियम हमने बनाये हैं, उनमें नियम 5 के उपनियम (2) में हमने कहा है:

> ''Upon the occurrence of a vacancy the President shall ordinarily make a request in writing to the Speaker of the Provincial Legislative Assembly concerned or as the case may be, to the President of the Coorg Legislative Council, for the election of a person, for the purpose of filling the vacancy as soon as may reasonably be practicable.''

अब इस सम्बन्ध में परिशिष्ट के भाग 1 में दिये हुए राज्यों में से कुछ के बारे में मुझे खेद है कि मैं अनायास ही यह नहीं बता सकता कि किन राज्यों में निर्वाचित विधान-मण्डल हैं—जैसे उदाहरणार्थ, मैसूर राज्य के सम्बन्ध में, जो कि एक बड़ा राज्य है और इस सभा में अपने प्रतिनिधि भेज चुका है, तथा इसी प्रकार के राज्यों के सम्बन्ध में मेरे विचार से कोई कारण नहीं है कि भविष्य में नरेश के बजाय असेम्बली के अध्यक्ष से खाली जगहों को भरने के लिये प्रार्थना न की जाये, इसके विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि जिस रूप में नियम 5ए रखा गया है, उसमें यही प्रावधान है कि नरेश ही को इसका अधिकार है। परन्तु चूंकि हम नियमों में संशोधन कर रहे हैं, इन नियमों के कुछ प्रावधान को भी इस प्रकार संशोधित क्यों न किया जाये कि वे जनतंत्रीय व्यवहार और

[श्री एच.वी. कामत]

जनतंत्रीय परम्पराओं के अनुरूप हो जायें? इसलिये मैं अपनी बहिन श्रीमती दुर्गाबाई से प्रार्थना करूंगा कि वे इस बात को स्पष्ट करें कि उन राज्यों के सम्बन्ध में जहां असेम्बलियां काम कर रही है, नरेश के स्थान में वहां की असेम्बलियों के अध्यक्ष अथवा प्रधान को ऐसा करने का अधिकारी क्यों न समझा जाये! इस सम्बन्ध में मैं प्रस्ताविका महोदया से कुछ अधिक प्रकाश चाहता हूं।

श्रीमान्, अपनी जगह पर जाने से पहले मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि इस प्रस्ताव पर मेरे दोनों संशोधन स्वीकार कर लिये जायें। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

अध्यक्ष: श्री सिधवा!

श्री आर.के. सिधवा (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा संशोधन इस प्रकार है:

> ''That in sub-para (1) of the proposed paragraph 4 of the Schedule, delete the words 'Not less than fifty per cent of' and for the words 'the total representatives' be substituted.''

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि चूंकि अपने विधान में हमने मनोनीतकरण की प्रथा का अंत कर दिया है, इसलिये यह उचित नहीं है कि राज्यों को और विशेषतया नरेशों को यह अधिकार हो कि वे 50 प्रतिशत लोगों का मनोनीतकरण करें। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए और मनोनीतकरण का अन्त करने के अपने निर्णय के अनुसार ही मैंने इस प्रथा का अन्त करने का सुझाव किया है। परन्तु मुझे ज्ञात हुआ है कि नरेशों और उनके राज्यों के लोगों के बीच यह समझौता हो गया है कि यही व्यवस्था रखी जाये और यह कि इसके होते हुए भी सभी प्रतिनिधि प्रजा द्वारा ही चुने जाते हैं। यदि यह सच है, जैसा कि मुझे ज्ञात हुआ है, तो मैं अपने संशोधन को उपस्थित नहीं करता हूं।

अध्यक्ष: आप संशोधन उपस्थित कर रहे हैं या नहीं?

श्री आर.के. सिधवा: श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मुझे जितने भी संशोधनों की सूचना मिली थी, वे सब उपस्थित किये जा चुके हैं। मेरे पास एक सदस्य से शिकायत आई है कि कार्यावलि और संशोधनों की प्रतियां यही वितरित हुई हैं और उन्हें वे पहले नहीं मिली। इस कारण वे अपने संशोधनों की सूचना नहीं दे सके और इसलिये चाहते हैं कि बहस स्थगित की जाये। मुझे सचिवालय से ज्ञात हुआ है कि कार्यावलि और अन्य पत्र कुछ दिन पहले भेजे गये थे, परन्तु वे उन्हीं पतों में भेजे गये थे जो दफ्तर को मालूम थे। यह संभव है कि कुछ सदस्यों के पास न पहुंच पाये हों और सावधानी के लिए एक दूसरी प्रति यहां दी गई है। ऐसी बात नहीं है कि कार्यावलि और पत्र भेजे नहीं गये हैं। यहां आज दूसरी प्रति दी गई है। मेरे विचार से इस प्रस्ताव पर बहस स्थगित करने के लिये कोई कारण नहीं है; विशेषतया इसलिये कि यह प्रस्ताव बहुत कुछ रस्मी प्रस्ताव है, चूंकि हमने इस समय तक इन नियमों के अनुसार कार्य संचालन किया है और जब सभा का यह अधिवेशन समाप्त हो जायेगा, तो इस प्रकार की संभावना नहीं कि इन नियमों को कार्य में लाया जाये।

श्री मोहनलाल गौतम (संयुक्त प्रान्त : जनरल): जो आपने हुक्म दिया है, उसके मानने में मुझे कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन मैं यह अर्ज करना चाहता हूं कि आपकी जो इत्तिला दफ्तर से दी गई है, वह गलत है। एजेंडा अभी तक बहुत से मेम्बरों को नहीं मिला। मुझको ही नहीं, दो-तीन जो मेरे साथी बैठे हुए हैं, उनको भी एजेंडा नहीं मिला और मेरा तो टेलीफोन भी कट गया, लेकिन साल भर का रुपया यहां से वह ले चुके हैं। डिप्टी मिनिस्टर से दो बार मैं कह चुका हूं कि टेलीफोन अभी तक नहीं लगा। यहां मैं जब आया, तो मैंने दूसरी जगह से जाकर टेलीफोन किया और डिप्टी सेक्रेटरी कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली को इत्तिला दी कि वह एजेंडा मुझे अभी तक नहीं मिला और टेलीफोन भी अभी तक नहीं मिला। यह हालत इस वक्त आपके मेम्बरों की है, जो मैं प्रोटेस्ट करना चाहता हूं। और मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं अगर अकेला हूं, तब आप इसको ऐसा कर सकते हैं। लेकिन मेरे साथी कई मेम्बर्स ऐसे बैठे हुए है, जिनको एजेंडा नहीं मिला और जिसमें कि आपके डिप्टी मिनिस्टर श्री खुर्शीदलाल भी हैं और

[श्री मोहनलाल गौतम]

वह भी कहते हैं कि उनको एजेंडा नहीं मिला। मैं नहीं जानता हूं कि किस तरह से बांटा गया। उनको भी न मिलने की शिकायत है। मैंने दो मर्तबा उनसे कहा है कि अभी तक टेलीफोन नहीं लगा, हालांकि सालभर का रुपया ले चुके हैं। यह हालत आपने मेम्बरों की कर रखी है। सिर्फ मुझे ही यह शिकायत नहीं है, एजेंडा कइयों को नहीं मिला है और चूंकि काफी इम्पोरटेंट रूल्स हैं, इसलिए मैं प्रोटेस्ट करता हूं कि इनको पोस्टपोन कर दिया जाये।

अध्यक्ष: एजेंडा दफ्तर से मेम्बरों के पास भेजा गया है, मेम्बरों को पहुंचे या न पहुंचे, इसकी जवाबदेही खुर्शीदलाल जी देंगे। टेलीफोन की जवाबदेही भी सारी उन्हीं पर है। मैं समझता हूं कि इसका ऐडजोर्न करने की कोई खास वजह नहीं है। अगर कोई मेम्बर इसके बारे में कहना चाहे, तो कह सकते हैं।

श्री हुसैन इमाम (बिहार : मुस्लिम): मैं यह सजैस्ट करना चाहता हूं कि आपको अख्तियार है कि जो अभी भी अमेंडमेंट भेंजे, उनको आप कबूल करें। इससे कोई शिकायत नहीं रह जायेगी।

अध्यक्ष: अभी तक मेरे पास कोई अमेंडमेंट नहीं आया है। इसलिए यह सवाल नहीं उठता।

श्री श्यामानन्दन सहाय (बिहार : जनरल): सभापतिजी, एक अर्ज यह करनी थी कि जो अमेन्डमेंट पेश किए गए हैं, अगर उन पर गौर करने की जरूरत हो तो किया जाए। मगर पहले मूल प्रस्तावक को एक अवसर देना चाहिए कि संशोधन को मंजूर करे या उस पर कुछ रोशनी डाले। बाद इसके दूसरों को मौका देना चाहिये कि तरमीम पर अपनी राय जाहिर करें।

अध्यक्ष: मेरे पास कोई अमेंडमेंट रहते, तो उनको यहां पेश करने की इजाजत देता। मगर कोई अमेंडमेंट आया नहीं है। अब आप चाहते हैं कि इस बहस को मुल्तवी कर दिया जाये, इसलिए ताकि अमेंडमेंड को आने का मौका दिया जाये। अभी तक कोई अमेंडमेंट मेरे सामने नहीं है।

श्री श्यामानन्दन सहाय: सभापति जी, इसके मुतल्लिक यह अर्ज करना है कि आप जो हुक्म देते हैं, वह सब पर लागू है। अगर रास्ते में एजेंडा रह गया है, तो गरज़ तो एजेंडा भेजने से यह है कि मेम्बर उसको पढ़ सकें और उस पर अपनी राय दे सकें। अगर किसी भी गलती से वह मेम्बर तक न पहुंच सके, या असेम्बली के दफ्तर से भेजने में देरी या गलती हो जाये और अगर किसी को एजेंडा नहीं मिला हो, तो मेरे ख्याल में यह मामला गौर तलब है कि प्रस्ताव आज लिया जाये या नहीं और मैं इसकी तरफ आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं।

अध्यक्ष: मैं इस वक्त इसे जरूरी नहीं समझता, क्योंकि ऐसे सवाल हमारे सामने दरपेश नहीं हैं, जिसके लिए बहुत बहस की गुंजाइश हो और जिसके लिए हम बहस को मुल्तवी करके दूसरे दिन के लिए काम को रोक दें।

***डा. पंजाबराव शामराव देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे वह शिकायत तो नहीं करनी है, जो इस सभा के कुछ माननीय सदस्यों ने की है, परन्तु मैं यह कहूंगा कि मुझे कार्यावलि कल ही मिली और यही कारण था कि अपने स्टेनोग्राफर के न पहुंचने के कारण मैं कई नियमों के सम्बन्ध में अपने संशोधन न भेज सका। यह स्पष्ट है कि नियम काफी लम्बे हैं और इसलिए संशोधन भी इसी प्रकार के होंगे। इसलिए मुझे आशा है कि आप मुझे अपने संशोधन न भेज सकने के लिये क्षमा करेंगे और जिन थोड़े से संशोधनों को मैं उपस्थित करूंगा, उन पर माननीय प्रस्ताविका विचार करेंगी। मेरा पहला संशोधन इस प्रकार है:

> "In the first part of Rule 5-A instead of 'an Indian State or more than one Indian State' substitute the words, 'one or more Indian State'."

मेरा अपना विचार यह है कि अंग्रेजी में यह इस प्रकार अच्छा रहेगा। मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

> "Instead of the words 'make a request' the word 'direct' be substituted."

[डॉ. पंजाबराव शामराव देशमुख]

श्रीमान्, उस परिशिष्ट के तीसरे स्तम्भ में तत्सम्बन्धी प्रविष्टि में वर्णित अधिकारियों को निर्देश करना आपके लिये संभव होना चाहिये। मेरे विचार से यह बात आपके पद और विधान-परिषद् की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुये मैं यह उचित नहीं समझता कि किसी छोटे राज्य से या वहां के प्राधिकारियों से वहां चुनाव कराने के लिये प्रार्थना करने की आवश्यकता हो। विधान-परिषद् के सदस्यों की हैसियत से उपस्थित होने के लिये आप हमें आदेश भेजते हैं। इसलिये मेरा सुझाव है कि उपरोक्त संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

दूसरे परादिक में भी इस प्रकार के शब्द आये हैं। उसमें भी 'request' शब्द आया है। उसकी जगह भी 'direct' शब्द रख देना चाहिये।

दूसरे परादिक के सम्बन्ध में मेरा एक और संशोधन है। मेरा सुझाव है कि इस परादिक के सम्बन्ध में यह रखा जाये:

> 'Provided further that in directing to proceed to fill a vacancy by election under this Rule, the President may also direct that the election be completed by a certain date.''

"making a request to fill'' शब्दों की जगह ''directing to proceed to fill'' शब्दों के रखे जाने का सुझाव है। शब्द ''request'' की जगह शब्द ''direct'' रख दिया गया है और अन्त के शब्द ''within such time as may be specified by him'' की जगह ''by a certain date'' शब्द रखने का प्रस्ताव है।

पृष्ठ दो के पैरा 3 (1) की शब्दावली यदि निम्न रूप में रखी जाये, तो उसका पाठ अच्छा हो जायेगा:

> ''When the representation allotted to any States, jointly or individually in the Assembly or the grouping of the States for the purpose of such representation is altered by an order made under paragraph 2, or by an amendment of the Annexure to this Schedule, the President may by order...''

परिवर्तन यह होगा कि ''the'' शब्द की जगह ''any'' शब्द आ जायेगा और ''individual or grouped in the Assembly'' शब्द निकल जायेंगे, और उनकी जगह केवल ''jointly or individually'' शब्द आ जायेंगे।

मेरा यह संशोधन श्री कामत के संशोधन के समान ही है। मेरे विचार से वे खण्ड में पूर्णतया परिवर्तन करने में हिचक रहे थे। इसीलिये उनके सुझाव से उद्देश्य उतना स्पष्ट नहीं होगा, जितना कि मेरे सुझाव से। श्रीमान्, मुझे आशा है कि प्रस्ताविका महोदया मेरे संशोधनों पर विचार करेंगी और यदि सम्भव होगा, तो उन्हें स्वीकार करेंगी।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान्, मैंने अभी एक संशोधन की सूचना दी है। उसको उपस्थित करने के पूर्व मैं आज जैसी स्थिति है, उसे स्पष्ट करना चाहता हूं।

परिशिष्ट के भाग 1 में मयूरभंज के उल्लेख के साथ यह भी उल्लेख है कि उसका एक प्रतिनिधि होगा और निर्वाचन-फल-प्रेषक वहां का नरेश होगा, परन्तु स्टेट्स मिनिस्ट्री ने यह निश्चय किया है कि मयूरभंज राज्य अकेला नहीं रह सकता और यह समझौता हो गया है कि वह तेईस अन्य राज्यों के समान, जो इससे पूर्व ही विलय हो चुके हैं, उड़ीसा प्रांत में विलय हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** क्या मयूरभंज राज्य विलय हो गया है, या अभी इस बात का केवल प्रस्ताव है?

***श्री विश्वनाथ दास:** मेरा विश्वास है कि उन्होंने एक समझौते के पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं और वे राज्य को भारत सरकार को सौंप देने वाले हैं, तथा वहां के लिये एक प्रशासक नियुक्त हो चुका है और वह राज्य का कार्य-भार संभालने वाला है। इस स्थिति में मेरा विश्वास है कि मयूरभंज राज्य को अलग समझने और वहां के नरेश को निर्वाचन-फल-प्रेषक समझने के लिये कोई न्यायसंगत कारण नहीं हैं। मुझे यह मालूम नहीं है और मैं यह कह भी नहीं सकता कि भारत सरकार ने उड़ीसा सरकार को वास्तव में यह सूचना दी भी है, या नहीं कि उड़ीसा में मयूरभंज राज्य का विलयन होना है। परन्तु मैं आपको और आपके द्वारा विधान-परिषद् के माननीय सदस्यों को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि भारत सरकार यह विचार प्रगट कर चुकी है कि मयूरभंज को उड़ीसा में विलय कर दिया जायेगा। इसलिये इसमें कोई अर्थ नहीं है कि इस सभा में कोई ऐसी बात की जाये, जिससे स्टेट मिनिस्ट्री ने जो काम या निश्चय मयूरभंज राज्य, वहां के लोगों और उड़ीसा प्रांत की पूरी रजामंदी से किया है, वह निष्फल हो जाये।

[श्री विश्वनाथ दास]

इसलिये श्रीमान्, मैंने अभी जिस संशोधन की सूचना दी, उसे मैं उपस्थित करता हूं, वह इस प्रकार है:

"Omit Mayurbhanj with its representation of one and the Ruler of Mayurbhanj as the Returning Officer from Part 1 of the Annexure."

मैं यह भी उपस्थित करता हूं:

"That the State of Mayurbhanj be added to the Orissa States in Part II of the said Annexure, substituting 24 for 23 and also under the column of representation substituting 5 for 4, including 1 from the State of Mayurbhanj, and the Governor of Orissa to continue as the Returning Officer."

यही मेरा पूर्ण संशोधन है, जिसे मैं विधान-परिषद् के सदस्यों के सम्मुख रख रहा हूं और मेरा विचार है कि ऐसा करना आवश्यक है।

यदि आप मयूरभंज का पृथक आस्तित्व तथा पृथक प्रतिनिधित्व स्वीकार करते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि आप छोटे-छोटे राज्यों को बनाये रखना चाहते हैं। इस नीति का स्टेट्स मिनिस्ट्री और भारत सरकार ने खंडन किया है और इसे स्वीकार नहीं किया है। इसलिये मेरा संशोधन उसी विचार को व्यवहार में लाने के लिये है, जिसे स्टेट्स मिनिस्ट्री तथा भारत-शासन, सिद्धांत तथा कार्य रूप में स्वीकार-व्यक्त कर चुके हैं और जिस पर वे अग्रसर हो चुके हैं।

***अध्यक्ष:** मैं सदस्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि राज्यों की समस्या अब तक परिवर्तनशील रही है। प्रतिदिन इतने परिवर्तन होते रहे हैं कि यह बात संभव नहीं कि प्रत्येक परिवर्तन के होते ही उसको जान लिया जाये। यह प्रस्ताव स्टेट्स मिनिस्ट्री की सिफारिशों पर आधारित है और उस सम्मेलन में निश्चित हुआ, जिसमें सभी सम्बन्धित प्रान्तों के प्रधान मंत्री तथा सभी राज्यों के प्रधान मंत्री ही नहीं, बल्कि राज-प्रमुख भी वर्तमान थे और स्टेट्स मिनिस्ट्री और विधान-परिषद् के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे और यह प्रस्ताव उस सम्मेलन की

सिफारिशों के अनुरूप ही है। यदि तब से कोई परिवर्तन हुए हैं, तो हमें उनकी सूचना नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि कोई परिवर्तन हो भी गया हो, तो बाद में इन नियमों में परिवर्तन करने में कोई कठिनाई न होगी। इसलिये मैं श्री विश्वनाथ दास को यह बताना चाहता हूं कि वे यह आशंका न करें कि छोटे राज्यों को बनाये रखने का कोई विचार है। इस समय हम उन बातों के आधार पर कार्य कर रहे हैं, जिन्हें हम जानते हैं। हम उन बातों को स्वीकार कर रहे हैं और तदनुसार नियम बना रहे हैं। जैसे ही कि उन बातों में कोई परिवर्तन होगा और हमें उसकी सूचना मिलेगी, हम अपने नियमों में भी तदनुसार परिवर्तन कर लेंगे। इसलिये उनको मैं अपनी यह राय देता हूं कि वे इस समय अपने संशोधन पर जोर न दें। हम इस प्रश्न को उस समय उठा सकते हैं, जब स्टेट्स मिनिस्ट्री हम से यह कहेगी कि इसमें परिवर्तन करना आवश्यक है।

*__श्री विश्वनाथ दासः__ स्टेट्स मिनिस्ट्री के एक अधिकारी यहां उपस्थित हैं। यही मुख्य बातें हैं। संसार में तो प्रतिदिन परिवर्तन होते रहते हैं; मुझे उन बातों के सम्बन्ध में तिथियां स्मरण नहीं हैं, जिनकी ओर माननीय अध्यक्ष महोदय ने संकेत किया है। मुझे उनके सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैं उनसे निवेदन करूंगा कि मैंने जो बातें उनके सम्मुख रखी है, उनके सम्बन्ध में वे भी आपत्ति न करें।

*__अध्यक्षः__ मुझे उनकी बातों के बारे में कोई आपत्ति नहीं है। मैं केवल यह कहता हूं कि मुझे स्टेट्स मिनिस्ट्री से इस सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिली है। इसलिये जो कुछ भी वह हमें अब तक बता चुकी हैं, उसके आधार पर हम अपना काम आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमें सूचना मिलेगी, उस समय नियमों में परिवर्तन करने में कोई कठिनाई न होगी। यह किसी भी बैठक में किया जा सकता है।

*__श्री विश्वनाथ दासः__ आप इस राज्य को अपने हाथ में ले रहे हैं। जैसे ही समाचार पत्र यह समाचार प्रकाशित करेंगे कि विधान-परिषद् ने इस राज्य का पृथक प्रतिनिधित्व स्वीकार कर लिया है, मैं आप से विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि बहुत बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी और उसका सामना मुझे या उड़ीसा के लोगों को नहीं, बल्कि उस प्रशासक को करना होगा, जिसे भारत सरकार नियुक्त

[श्री विश्वनाथ दास]

करने जा रही है। इन परिस्थितियों में आपसे, और आपको तो परिस्थिति की विषमता का पूर्ण ज्ञान है तथा उन प्रदेशों की तथा वहां के निवासियों की पूरी जानकारी है, मैं साग्रह प्रार्थना करूंगा कि आप कोई खतरनाक कदम न उठायें। मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता। मैंने केवल इस विषय की ओर आपका तथा विधान-परिषद् का ध्यान आकर्षित किया है।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से समाचार पत्र केवल यही प्रकाशित न करेंगे कि मयूरभंज को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया है, परन्तु उसके साथ आपका और मेरा वक्तव्य भी प्रकाशित करेंगे। इन वक्तव्यों के साथ इस सूचना का कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ेगा, जिसका कि आपको भय है और इसलिये मेरी यह राय है कि माननीय सदस्य महोदय अपने संशोधन पर जोर न दें।

श्री राम सहाय (ग्वालियर-इन्दौर : राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं यह मालूम करना चाहता था कि यह अमेडमेंट जो इस वक्त हमारे सामने है, क्या इनमें कोई अमेंडमेंट उन प्रिंसिपल्स के खिलाफ लाया जा सकता है, जो कि निगोशियेटिंग कमेटी में तय हुए थे। मसलन इसमें 50 फीसदी स्वीकार किया गया है। तो क्या 50 फीसदी के अलावा कोई इस किस्म का अमेंडमेंट लाया जा सकता है कि सारे के सारे मेम्बरान इलेक्शन के जरिये से ही आयें, या यह कि जिन्हें राजप्रमुख चुना करे, वह आवें या यह कि पहले स्टेट्स में जो इलेक्टोरल रूल्स तैयार हुए थे, उनके ही मुताबिक चुनकर लाया जा सकता है। मैं इसलिए यह जानना चाहता था कि क्या कोई एक अमेंडमेंट भी लाया जा सकता है कि जो निगोशियेटिंग कमेटी में तय किए हुए मसले से आगे बढ़ कर हो।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से राज्यों के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी से काम लेना है। राज्यों से जो समझौते हुए हैं, उनके आधार पर हम आगे बढ़ रहे हैं और हमें इस सभा में कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये या कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, जिससे यह प्रतीत हो कि इन समझौतों से पीछे हटा जा रहा है। ये सब संशोधन उन समझौतों पर आधारित हैं, जो सम्बन्धित राज्यों और स्टेट्स मिनिस्टी के बीच हुए है। सभा को स्मरण होगा कि आरम्भ में एक प्रकार के समझौते

थे, परन्तु चूंकि वे असामयिक हो गये, इसलिए दूसरे प्रकार के समझौते करने पड़े। ये सब संशोधन इन समझौतों पर आधारित हैं, इसलिये मेरी यह राय है कि कोई ऐसा काम न किया जाये, जिससे यह प्रतीत हो कि समझौतों से पीछे हटा जा रहा है।

मैं श्री सिधवा से कहूंगा कि वे अपने संशोधन पर ज़ोर न दें।

***कई माननीय सदस्यः** उन्होंने उसे उपस्थित नहीं किया है।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैंने अभी जिस संशोधन की सूचना दी है, उसे मैं सभा की अनुमति से उपस्थित करना चाहता हूं। मैं मौलिक प्रस्ताव से सहमत हूं, परन्तु परिशिष्ट भाग 1 के तीसरे स्तम्भ के सम्बन्ध में (अर्थात् विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने के अधिकार के सम्बन्ध में) मैं हैदराबाद, मैसूर, काश्मीर इत्यादि के 'नरेश' शब्द के बारे में एक संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। मैं यह कहना चाहता हूं कि नरेशों को इस समय वास्तविक शासनाधिकार प्राप्त नहीं हैं, क्योंकि अब वह, विशेषतः 15 अगस्त सन् 1947 ई. के बाद, राज्य की जनता के हाथ में दे दिया गया है। इसलिये, श्रीमान्, मेरे विचार से किसी राज्य के नरेश को विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि उसे चुनने का अधिकार नहीं है। किसी ऐसे व्यक्ति को अधिकारी कहने से क्या लाभ, जब वह वास्तव में अधिकारी है ही नहीं? मेरे विचार से यह संगत नहीं है। यदि माननीय प्रस्तावक महोदय मेरे संशोधन को स्वीकार कर लें, तो मैं उनको धन्यवाद दूंगा। वह इस प्रकार है:

> ''That for the word 'Ruler' in column 3 of Annexure Part I the word 'people' be substituted.''

यदि आप इसे नियमानुकूल न समझें, परन्तु किसी ऐसी धारा-सभा के अध्यक्ष का स्थान, जिसे कि राज्य के लोगों ने निर्वाचित किया हो, नरेश से अधिक महत्वपूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं कि नरेश नाममात्र के लिये छत्रधारी है, वास्तविक शासक या तो राज्य के लोगों द्वारा निर्वाचित प्रधानमंत्री होता है, या जहां कहीं धारा-सभा हो, वहां धारा-सभा का अध्यक्ष होता है। इसलिये, श्रीमान्, मैं माननीय प्रस्ताविका से प्रार्थना करता हूं कि वे इस साधारण संशोधन को स्वीकार कर लें। मैंने एक

[श्री एस. नागप्पा]

सरल संशोधन उपस्थित किया है और मेरे विचार से उसकी अधिक व्याख्या आवश्यक नहीं है मुझे आशा है कि यह सभा कृपा करके इसे स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्षः** मैं यह बताना चाहता हूं कि माननीय सदस्य महोदय का संशोधन मिथ्या धारणा पर आधारित है। यह बात ठीक नहीं है कि नरेश प्रतिनिधियों का मनोनयन करेगा। सच्चाई केवल यह है कि नरेशों को केवल इस हेतु संबोधित किया जाना है कि वे उन संस्थाओं द्वारा प्रतिनिधियों का चुनाव करायें, जिनको कि इनके चुनने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त चुनाव में और किसी प्रकार से नरेश का हाथ न होगा।

***श्री एस. नागप्पाः** मैं भी यही बात कहना चाहता हूं। आप नरेश को सम्बोधन करते हैं, परन्तु उसे चुनाव का कोई अधिकार नहीं है। ऐसे व्यक्ति से पूछने से क्या लाभ, जिसको अधिकार ही नहीं है? वास्तविक अधिकार राज्य के लोगों को प्राप्त है, न कि नरेश को। इसलिये राज्य के लोगों द्वारा प्रतिनिधि चुने जाने चाहिये। जहां कहीं विधान-मण्डल हो, वहां विधान-मण्डल का अध्यक्ष चुने, या यथाविधि निर्वाचित प्रधान-मंत्री या राजप्रमुख चुने। इस बात के लिये वे ही उचित अधिकारी होंगे। रस्म की दृष्टि से भी इस व्यवस्था का रहना उचित नहीं है।

***अध्यक्षः** मैंने माननीय सदस्य को स्थिति स्पष्ट कर दी है, परन्तु यदि वे अपने संशोधन पर जोर देना चाहें तो—

***श्री एस. नागप्पाः** संशोधन पर जोर देने का कोई प्रश्न नहीं है। श्रीमान्, आपकी बात मेरी समझ में आ गई है। आपने कृपा करके मुझे इस सम्बन्ध में प्रकाश दिया कि नरेश नाममात्र का छत्रधारी है और केवल इसलिये यहां रखा गया है, जिससे कि किसी के नाम संबोधन भेजा जा सके। परन्तु मैं भी तो यही कहता हूं कि ऐसे नरेश को सम्बोधन करने से क्या लाभ, जिसे अधिकार प्राप्त नहीं है और जिसने अपना अधिकार राज्य के लोगों को दे दिया है?

***अध्यक्षः** भारत सरकार की प्रत्येक आज्ञा भी गवर्नर जनरल के नाम से निकाली जाती है, यद्यपि मंत्री ही इन आज्ञाओं को देते हैं। वस्तुस्थिति यहां भी इसी प्रकार है।

श्री एस. नागप्पाः श्रीमान्, मैं आपके मत को स्वीकार करता हूं और इस प्रश्न को आप पर छोड़ता हूं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** अध्यक्ष महोदय, इस सभा के सदस्यों ने जो प्रश्न उठाये हैं, उनका उत्तर देने के लिये मेरे विचार से मुझे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, मैं आपको इसके लिये धन्यवाद देती हूं कि आपने स्वयं माननीय सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट किया। मैं श्री विश्वनाथ दास और श्री नागप्पा के प्रश्नों के बारे में कुछ न कहूंगी, क्योंकि माननीय अध्यक्ष महोदय ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त व्याख्या कर दी है।

जहां तक डा. पी.एस. देशमुख के संशोधन का सम्बन्ध है, मेरे विचार से जिस पद का सुझाव उन्होंने रखा है, उस की अपेक्षा वर्तमान पद (make a request in writing) की शब्दावली अधिक उपयुक्त और अधिक शिष्ट है और मेरे विचार से परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके दूसरे संशोधन को भी मैं इसी कारण से स्वीकार नहीं कर सकती।

श्री कामत ने अपने संशोधनों में जो बात कही है, उनके सम्बन्ध में मैं कहूंगी कि वह ठीक हैं और मैं सहर्ष उनके संशोधन को स्वीकार करती हूं। वे वास्तव में शाब्दिक संशोधन है और मैं उन्हें स्वीकार करती हूं।

इस सम्बन्ध में उन्होंने हैदराबाद और काश्मीर के प्रश्न का भी उल्लेख किया है। इन राज्यों के सम्बन्ध में उन्होंने जो बातें कही हैं, मेरे विचार से, मुझे उनके बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है; किन्तु फिर भी मैं यह कह सकती हूं कि जो प्रस्ताव मैंने उपस्थित किया है, उससे वे असंगत है। मैं सभा से सिफारिश करती हूं कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैंने कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया है और इसलिये असंगति का प्रश्न नहीं उठता है। मैं केवल यह जानना चाहता था कि हैदराबाद और काश्मीर इस सभा में अपने प्रतिनिधि भेजेंगे या नहीं। मैं इस सम्बन्ध में केवल स्पष्टीकरण और कुछ प्रकाश चाहता था।

***अध्यक्ष:** मैं संशोधनों को अब मतदान के लिये उपस्थित करूंगा। श्री कामत का संशोधन इस प्रकार है:

"That in sub-para. (1) of the proposed paragraph 3 of the Schedule, for the words 'to the States, individual or grouped in the Assembly', the words 'in the Assembly to the States, individual or grouped' be substituted."

इसे प्रस्ताविका ने स्वीकार कर लिया है।

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** श्री कामत का दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"That in sub-para. (3) of the proposed paragraph 3 of the Schedule for the words 'is declared vacant' the words 'has been declared vacant' be substituted."

इस सभा के मतदान के लिये उपस्थित किया जाता है। इसे भी प्रस्ताविका ने स्वीकार कर लिया है।

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब डा. देशमुख के संशोधन हैं। जहां तक उनमें से कम से कम एक की शब्दावली का सम्बन्ध है, श्री कामत के संशोधन के स्वीकार होने से वह भी स्वीकार हो जाता है। दूसरा संशोधन केवल रुचि से सम्बन्ध रखता है और वह यह कि हमें 'direction' शब्द रुचिकर है या 'request'। संशोधन इस प्रकार है:

"In the place of word 'request' the word 'direct' should be used."

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुसूची के खण्ड 3 (1) पर डा. देशमुख के संशोधन को मतदान के लिये उपस्थित करता हूं।

संशोधन गिर गया।

श्री विश्वनाथ दास का संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

श्री एस. नागप्पा का संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** मैं अब प्रस्ताव को संशोधित रूप में सभा के मतदान के लिये उपस्थित करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या आप कृपा करके बतायेंगे कि हैदराबाद और काश्मीर इस सभा में अपने प्रतिनिधि भेजेंगे या नहीं?

***अध्यक्षः** मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि इस सम्बन्ध में कुछ सूचना दे सकूं। यदि सरकार चाहती तो अभी तक आपको सूचना दे देती।

प्रस्ताव संशोधित रूप में मतदान के लिये सभा के सामने उपस्थित है।

प्रस्ताव संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** श्रीमती दुर्गाबाई अब अपना दूसरा प्रस्ताव उपस्थित करें।

अनुसूची के परिशिष्ट पर संशोधन

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं किः

''विधान-परिषद् की अधिसूचना नं. सी.ए. 43 एसईआर 48-2, तारीख 3-8-1948 ई. में उल्लिखित प्रावधान तारीख 3-8-1948 ई. से विधान-परिषद् के नियमों के अंग बना लिये जायें जैसा कि निम्नलिखित संशोधनों का आशय है:

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

अनुसूची का परिशिष्ट—

अनुसूची के परिशिष्ट के स्थान पर निम्नलिखित परिशिष्ट रखा जाये:—

परिशिष्ट

भाग 1

राज्य या राज्यों के नाम	विधान-परिषद् में नियत जगहों की संख्या	विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी
हैदराबाद	16	हैदराबाद का नरेश
मैसूर	7	मैसूर का नरेश
काश्मीर	4	काश्मीर का नेरश
बड़ौदा	3	बड़ौदा का नरेश
त्रावणकोर	6	त्रावणकोर का नरेश
कोचीन	1	कोचीन का नरेश
जोधपुर	2	जोधपुर का नरेश
जयपुर	3	जयपुर का नरेश
बीकानेर	1	बीकानेर का नरेश
भोपाल	1	भोपाल का नरेश
कोल्हापुर	1	कोल्हापुर का नरेश
मयूरभंज	1	मयूरभंज का नरेश
सिक्किम और कूच बिहार	1	कूच बिहार का नरेश
त्रिपुरा मनीपुर खासी राज्य	1	त्रिपुरा का नरेश
रामपुर बनारस	1	रामपुर का नरेश
	49	

राज्य या राज्यों के नाम	विधान-परिषद् में नियत जगहों की संख्या	विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी
	उड़ीसा राज्य	
(23) आठगढ़ आठमालिक बमरा बारांबा बौध बोनाई दासपल्ला धेंकानल गंगपुर हिंडोल कालाहांडी क्योंझार खांडपाड़ा नरसिंहपुर नयागढ़ नीलगिरी पाल-लहाड़ा पटना रैटाखोल रनपुर सोनपुर तालचेर तिगिरिया	4	उड़ीसा का गवर्नर

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

राज्य या राज्यों के नाम	विधान-परिषद् में नियत जगहों की संख्या	विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी
मध्यप्रान्त और बरार के राज्य		
(15) बस्तर चंघभाकर छुईकादन जशपुर कांकेर कावर्धा खैरागढ़ कोरिया नंदगांव रायगढ़ सकि सारनगढ़ सुरगूजा उदयपुर मकराई	3	मध्यप्रान्त और बरार का गवर्नर
मद्रास के राज्य		
बंगाना पल्ली पुद्दूकोटाई	1	मद्रास का गवर्नर

राज्य या राज्यों के नाम	विधान-परिषद् में नियत जगहों की संख्या	विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी
	बंबई के राज्य	
राजपीपला पालनपुर कैंबे धरमपुर बालासिनोर बारिया छोटा उदयपुर संत लुनावाडा बांसडा साचिन जौहर दांता जंजीरा सांगली सावंतवाड़ी मुधोल (35) भोर जामखंडी मिराज (बड़ा मिराज (छोटा) कुरंदाबाद (बड़ा) कुरंदबा (छोटा) अकालकोट फल्टन जाथ औंध रामदुर्ग इडर राधनपुर सिरोही सावनुर वाडी विजयनगर जम्बूघोडा (271) छोटे राज्य, थाने इत्यादि	4	बंबई का गवर्नर

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

राज्य या राज्यों के नाम	विधान-परिषद् में नियत जगहों की संख्या	विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी
	हिमाचल प्रदेश	
बासार		
सिरमूर		
चांबा		
मंडी		
सुकेत		
बाघल		
बघात		
बालसन		
भज्जी		
(21) बीजा		
धारकोटी	1	हिमाचल प्रदेश का चीफ कमिश्नर
धामी		
जुब्बल		
क्योंथल		
कुम्हारसांई		
कुमिहार		
कुठार		
महेलान		
मंगल		
साँगड़ी		
थरौआच		
संयुक्त राज्य काठियावाड़ (सौराष्ट्र)	4	राज्य का राजप्रमुख
संयुक्त राज्य मत्स्य	2	राज्य का राजप्रमुख
संयुक्त राज्य राजस्थान	4	राज्य का राजप्रमुख
संयुक्त राज्य विंध्यप्रदेश	4	राज्य का राजप्रमुख
संयुक्त राज्य ग्वालियर-इंदौर-मालवा (मध्य-भारत)	7	राज्य का राजप्रमुख
पटियाला और पूर्वी-पंजाब-राज्य-संघ	3	संघ का राजप्रमुख
कच्छ	1	कच्छ का चीफ कमिश्नर
जूनागढ़		जूनागढ़ का एडमिनिस्ट्रेटर

राज्य या राज्यों के नाम	विधान-परिषद् में नियत जगहों की संख्या	विधान-परिषद् के लिये प्रतिनिधि चुनने का अधिकारी
अवशिष्ट राज्य जैसलमेर सांदुर टेहरी गढ़वाल बिलासपुर **बिहार के राज्य** सरायकेला खर्सवा **पूर्वी पंजाब के राज्य** लोहारू पटौदी दुजाना	1	वह अधिकारी जिसे भारत सरकार नियुक्त करे
	40	
भाग 1 और 2 का कुल जोड़	89	

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैंने जिस संशोधन की सूचना दी है वह अत्यंत सरल है और केवल 'the' शब्द जोड़ने के सम्बन्ध में है, वह इस प्रकार हैं:

> ''That in Part II of the proposed Annexure to the Schedule, for the words 'Governor of Central Provinces and Berar' in the 3rd Column under the heading 'Central Provinces and Berar States' the words 'Governor of the Central Provinces and Berar' be substituted.''

अध्यक्ष महोदय, मैं आपका ध्यान तथा इस सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि सरकारी कागजात में मेरा प्रांत किस नाम से दर्ज है। हमारे विधान के मसौदे में जिसकी प्रतियां हम सबके पास है शिडूल 1, पार्ट-1, पृष्ठ 154 में जिसमें विभिन्न प्रान्तों की सूची दी हुई है आप देखेंगे कि मेरा प्रान्त 'the Central Provinces and Berar' के नाम से उल्लिखित है।

अध्यक्षः मैं नहीं चाहता कि इस संशोधन के समर्थन में आप तर्क उपस्थित करें।

श्री एच.वी. कामतः मैं संशोधन उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि यह स्वीकार कर लिया जाये।

अध्यक्षः क्या आप इस संशोधन को स्वीकार करती हैं?

श्रीमती जी. दुर्गाबाईः मैं उसे स्वीकार करती हूं।

अध्यक्षः संशोधन यह है कि 'सेंट्रल प्रोविन्सेज़ एण्ड बरार' शब्दों के पूर्व 'दी' शब्द रखा जाये।

संशोधन स्वीकार किया गया।

अध्यक्षः संशोधित रूप में प्रस्ताव पर अब मत लिया जाता है।

संशोधित रूप में प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

नये नियम 38 (वी) का बढ़ाना

श्रीमती जी. दुर्गाबाईः श्रीमान् जी, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं कि विधान-परिषद् के नियमों से सम्बन्धित निम्न संशोधन पर विचार किया जाये:

''नियम 38 (यू) के पश्चात् निम्न नियम बढ़ा दिया जाये:

''38-V. When a bill referred to in Rule 38-A is passed by the Assembly, the President shall authenticate the same by affixing his signature thereto. When the Bill is so authenticated it shall become an Act and shall be published in the Gazette of India.''

श्रीमान् जी, यह बताने के पूर्व कि मेरा प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य है, मैं कुछ शब्दों में यह बताना अपना कर्त्तव्य समझती हूं कि यह संशोधन क्यों कर आवश्यक हुआ। मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्य इस बात से परिचित होंगे कि विधान-परिषद् के गत अधिवेशन में, जब कि उसकी बैठक ता. 27 जनवरी को हुई थी, विधान-परिषद् के नियमों से सम्बन्धित कुछ संशोधन उपस्थित किये गये थे और उनको सभा ने स्वीकार भी किया था। उन संशोधनों में से एक यह भी था कि नियम 38 (ए) में उल्लिखित विधेयकों को पास करने की पद्धति निर्धारण करने के लिये एक नया नियम 38 (वी) बनाया जाये। श्रीमान्जी, इस प्रस्तावित नियम 38 (वी) पर यथेष्ठ वाद-विवाद हुआ और कुछ माननीय सदस्यों ने इस बात पर आपत्तियां उठाईं कि विधान-परिषद् द्वारा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के सम्बन्ध में अथवा इस अधिनियम द्वारा उपयोजित (अनुकूल रूप

में लाये हुये) भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम के सम्बन्ध में पारित कोई विधेयक गवर्नर-जनरल की अनुमति के अधीन नहीं होना चाहिये क्योंकि इस प्रकार की पद्धति से परिषद् की सर्वोच्च सत्ता को क्षति पहुंचती है। दूसरी आपत्ति यह उठाई गई थी कि यदि इस नियम को स्वीकार कर लिया जायेगा तो उसका यह भी फल होगा कि वर्तमान विधान में संशोधन करने वाले विधेयक पर भी गवर्नर-जनरल चाहे तो अपनी अनुमति प्रदान करे अथवा उसे रोके रखे। एक और आपत्ति उठाई गई थी कि विधान के प्रारूप को स्वीकार करने की प्रणाली तथा वर्तमान अधिनियम में संशोधन करने की प्रणाली में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। इन सब आपत्तियों पर वाद-विवाद हुआ। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् श्री कामत ने यह सुझाव रखा कि प्रस्तावित नियम को मसौदा-समिति के पास वापस भेज दिया जाये और वह इन आपत्तियों को ध्यान में रखते हुये पुन: विचार करे। इस सुझाव को सभा ने स्वीकार किया और वह नियम मसौदा-समिति को भेज दिया गया। मसौदा-समिति ने इस नियम पर विचार कर लिया है और उसका नया प्रस्ताव सभा के समक्ष है। श्रीमान् जी इस नये नियम में विधान-परिषद् द्वारा नियम 38 (ए) के अन्तर्गत किसी विधेयक को पास करने पर गवर्नर-जनरल की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। मूलरूप में यह नियम इस प्रकार था:

> ''नियम 38(ए) में उल्लिखित विधेयक जब परिषद् द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा तो अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर की गई उसकी एक प्रति गवर्नर-जनरल को अनुमति के लिये भेजी जायेगी। जब गवर्नर-जनरल उस बिल पर अपनी अनुमति प्रदान कर देगा तब वह अधिनियम बन जायेगा और भारतीय राजकीय-पत्र में प्रकाशित किया जायेगा।''

मेरे विचार से जो परिवर्तन किया गया है उसके महत्त्व को सदस्यगण समझ गये होंगे और मुझे इस विषय की और अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। मैं सिफारिश करती हूं कि सभा मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर ले।

***अध्यक्ष:** श्री कामत ने इसके सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना की है और वह यह है कि ''इज़'' शब्द के स्थान में ''हैज बीन'' शब्द रखे जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि प्रस्तावित नियम 38 (वी) में ''व्हेन दी बिल इज सो ओथेन्टिकेटेड'' शब्दों के स्थान में ''व्हेन दी बिल हैज बीन सो ओथेन्टिकेटेड'' शब्द रखे जायें। श्रीमान् जी, यह संशोधन पूर्णतया उसी प्रकार का है जैसा कि इस सभा ने माननीया श्रीमती दुर्गाबाई के एक अन्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में स्वीकार किया था। मेरे विचार से 'इज' शब्द के स्थान में ''हैज बीन'' शब्दों को रखना उपयुक्त और मुहावरे तथा प्रयोग के नियमों के अनुकूल होगा। अतः यदि संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो प्रस्तावित नियम इस प्रकार होगा:

> ''When a Bill referred to in Rule 38-A is passed by the Assembly, the President shall authenticate the same by affixing his signature thereto. When the Bill has been so authenticated it shall become an Act and shall be published in the Gazette of India.''

सभा की स्वीकृति के लिये मैं अपने इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव पेश हो चुका है और उस पर संशोधन भी पेश किया जा चुका है। यदि प्रस्ताव पर कोई सदस्य बोलना चाहता है तो वह बोल सकता है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** मैं संशोधन को स्वीकार करती हूं।

***अध्यक्षः** ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रस्ताव पर कोई नहीं बोलना चाहता। प्रस्ताविका ने संशोधन स्वीकार कर लिया है। मैं पहले संशोधन पर मत लेता हूं।

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब संशोधित रूप में प्रस्ताव पर मत लिया जाता है।

संशोधित रूप में प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

कार्यक्रम

***अध्यक्षः** अब हम कार्यावली में दिये हुये दूसरे विषय को लेंगे। इसे लेने के पूर्व मैं सभा को वह प्रणाली बता देना चाहता हूं जिसका इस विधान के मसौदे पर विचार करते समय अनुसरण करने का मेरा विचार है। सदस्यों को ज्ञात है कि विधान का मसौदा उस मसौदा-समिति ने बनाया है जिसको इस सभा ने नियुक्त किया था और आठ मास या इससे भी अधिक काल पूर्व सदस्यों को मसौदा भेज दिया गया था। सदस्यों से निवेदन किया गया था कि वे जो सुझाव अथवा संशोधन रखना चाहते हैं उनको भेजें। केवल सदस्यों से ही नहीं वरन् जनता, सार्वजनिक संस्थाओं, प्रान्तीय सरकार इत्यादिकों से सुझाव तथा संशोधन बहुत बड़ी संख्या में आ चुके हैं। मसौदा-समिति ने उन समस्त सुझावों तथा संशोधनों पर विचार किया है और सदस्यों अथवा जनता के सुझावों को ध्यान में रखते हुये अनेकों अनुच्छेदों का फिर से मसौदा बनाया है। अतः इस समय हमारे समक्ष केवल मूल मसौदा ही नहीं है, बल्कि प्राप्त हुये सुझावों का ध्यान में रखते हुये अनेकों अनुच्छेदों का समिति द्वारा फिर से तैयार किया गया मसौदा भी है। ये सदस्यों को भेजे जा चुके हैं। अब जो मैं करना चाहता हूं वह यह है कि मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के बाद हम प्रत्येक अनुच्छेद पर विचार करें और मैं उन सब संशोधनों को, जिनकी सूचना दी जा चुकी है, विचार के लिये रखूं, ये सब सूचनायें निर्धारित समय के अन्तर्गत दी गई समझी जायेंगी जिससे कि जिन सदस्यों ने संशोधन की सूचना दे दी है उनको मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव को स्वीकार किये जाने के बाद, फिर सूचना देने की आवश्यकता न हो। मैं सदस्यों को दो दिन और दूंगा जिसमें कि वे अनुच्छेदों पर ऐसे और संशोधनों की सूचना दे दें जिन्हें वह पेश करना चाहते हों। इसके पश्चात्, मेरा विचार है कि कोई दूसरे संशोधन स्वीकार न किये जायें जब तक कि वे इस प्रकार के न हों जिनका स्वीकार किया जाना आवश्यक हो। यह सत्य है कि कुछ संशोधन समनुवर्ती संशोधन होंगे और उनको स्वीकार करना पड़ेगा। यह भी सम्भव है कि कुछ दूसरे संशोधन ऐसे हों कि सभा को किन्हीं अन्य कारणों से उन पर विचार करना आवश्यक प्रतीत हो। मैं उन संशोधनों पर वाद-विवाद

[अध्यक्ष]

को टाल नहीं दूंगा, मैं उन सब को लूंगा। पर मेरा सदस्यों से निवेदन है कि सामान्यतया उन्हीं संशोधनों को पर्याप्त समझें जिनकी सूचना हमें प्राप्त हो चुकी है और मेरे विचार में जिनकी संख्या लगभग एक हजार है। इस प्रकार हम समय की भी बचत कर सकेंगे और कार्य-कौशल में भी कोई त्रुटि न होगी और न प्रस्तावित मसौदे के समस्त अनुच्छेदों पर स्वतंत्र पर्यालोचन में किसी प्रकार की रुकावट होगी। मेरा ऐसा करने का विचार है किन्तु यह भी सत्य है कि यह सब तभी होगा जब कि इस बारे में सभा कोई अन्य निर्देश न दे। सदस्यों को मसौदे पर विचार करने के लिये बहुत समय मिल चुका है और यह कि उन्होंने मसौदे पर बारीकी से विचार किया है इसी बात से प्रकट है कि हमें 1000 संशोधनों की सूचना मिल चुकी है। यदि दैवयोग से किसी संशोधन की उपेक्षा हो गई हो और यदि कोई सदस्य यह आवश्यक समझता हो कि उस संशोधन पर विचार किया जाये तो उस संशोधन को ले लेंगे। परन्तु सामान्यतया मैं उक्त अवधि के पश्चात् और संशोधनों को नहीं लूंगा। मेरा विचार यह है कि हम डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर जिसे वे उपस्थित करेंगे दो दिन तक यानी आज और कल वाद-विवाद करें। और दोनों वक्त अर्थात् प्रातःकाल तथा तीसरे पहर बैठें। शनिवार और रविवार का समय सदस्यों को संशोधनों की सूचना देने के लिये दे दें। जिन संशोधनों की सूचना आ चुकी है तथा जिनकी रविवार को सायंकाल के पांच बजे तक आ गई होगी उन सब को क्रमबद्ध किया जायेगा, छपवाया जायेगा और सोमवार को सदस्यों को दे दिया जायेगा। मंगलवार से हम संशोधनों पर वाद-विवाद प्रारंभ करेंगे। यह है वह कार्यक्रम जिसकी रूप रेखा मैंने अपने मन में बनाई है।

एक और बात है जिसे मैं सदस्यों को बता देना ठीक समझता हूं। एक प्रस्ताव तथा उसी प्रकार के एक संशोधन की सूचना हमारे पास आ चुकी है। इन दोनों का आशय है कि यह सभा विधान पर वाद-विवाद पूर्णतया स्थगित कर दे और वयस्क मताधिकार के आधार पर तथा असाम्प्रदायिक रीति से नई सभा का चुनाव होना चाहिये और उसी सभा को विधान निर्माण के कार्य को पूरा करना चाहिये। मैं यह नहीं कह सकता कि विगत दो वर्षों से जो कुछ हम करते चले आ रहे

हैं उस सब को मेटने के लिये क्या यह सभा तैयार होगी, विशेषकर जब कि मसौदे में एक ऐसा अनुच्छेद है जिसके अनुसार इस विधान के प्रवर्तन के पश्चात् कुछ वर्षों तक इस विधान का संशोधन बहुत कुछ सरल रीति से किया जा सकेगा।

यदि कोई कमी है अथवा कहीं संशोधन की आवश्यकता है तो इस प्रावधान के अनुसार जिसका कि मैंने अभी उल्लेख किया है, उसकी पूर्ति सरलता से की जा सकती है। अत: यह आवश्यक नहीं है कि जब तक हम वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव न कर लें तब तक समूचे विधान पर विचार करना स्थगित रखें। इस बात में पहली कठिनाई तो यही होगी कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचक कैसे बनाये जायें जब कि ऐसा करने के लिये हमें कोई विधि प्राधिकृत नहीं करती। यह ठीक है कि विधान के इस मसौदे में हमने वयस्क मताधिकार को कार्य रूप में लाने की बात का समावेश किया है। किन्तु यह कार्य रूप में तो तभी आवेगी जब कि यह विधान स्वीकार कर लिया गया हो। अत: यदि आप वयस्क मताधिकार रखना चाहते हैं और संशोधनों के मसौदे तैयार करने के लिये दूसरी विधान-परिषद् चाहते हैं तो हम को एक नई विधि बनानी होगी। मैं नहीं जानता कि जिस विधि के अनुसार विधान-परिषद् का निर्माण होगा उस विधि को बनाने का अधिकार किस सभा का होगा। अत: मेरे विचार से यही उत्तम है कि जिस मसौदे को इतना परिश्रम कर के हमने तैयार किया है और जिस पर मसौदा समिति तथा इस सभा के सदस्यों ने बड़ी सावधानी से तथा ध्यानपूर्वक विचार किया है उसी पर हम विचार करें।

यह कार्यक्रम है जिसका मैं अनुसरण करना चाहता हूं और यदि कोई सदस्य अन्य सुझाव रखना चाहता हो तो सहर्ष मैं उस पर विचार करूंगा।

केवल एक बात और है जिसे मैं आपको बता दूं। वह यह है कि मैं वाद-विवाद में कमी नहीं करना चाहता। प्रत्येक अनुच्छेद तथा वैधानिक प्रश्न के प्रत्येक पहलू पर विचार करने के लिये मैं सदस्यों को पूरा-पूरा अवसर देना चाहता हूं, क्योंकि यही तो हमारा अपना विधान होगा। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किये गये तर्कों को दुहरा कर अथवा पुरानी बातों को सभा के सामने पुन: विचार के लिये रख कर हम लोग इस विधान के पर्यालोचन में इतना समय लगा दें जितना कि नितान्त आवश्यक नहीं है। अत: यह ठीक न होगा कि जो निश्चय हम कर चुके हैं उन पर पुन: विचार करें। सदस्यों को यह विदित है कि पर्याप्त पर्यालोचन के पश्चात् हमने विधान के आधारभूत सिद्धान्तों

[अध्यक्ष]

को स्वीकार किया था और उन्हीं निश्चयों पर यह मसौदा, कम से कम इसका अधिक भाग, आधृत है जिनको कि हमने इतने लम्बे पर्यालोचन के पश्चात् किया था। मैं यह विश्वास नहीं करता कि सदस्यगण उन निश्चयों को इतनी आसानी से ठुकरा देंगे और उन निश्चयों पर पुन: विचार करने का आग्रह करेंगे। हो सकता है कि कुछ ऐसे विषय हों जिन पर पुन: विचार करना आवश्यक हो परन्तु सामान्यतया हम अपने उन निर्णयों के आधार पर ही आगे बढ़ेंगे जो कि पहले कर लिये गये हैं और ऐसी ही बातों में सभा प्रथम बार निश्चय करेगी जिस पर कि पहले कोई निश्चय नहीं किया गया है।

ऐसे कुछ विषय है जिन के बारे में सभा ने कोई निर्णय नहीं किया है। सभा ने कुछ समितियां नियुक्त की थीं। उन समितियों की रिपोर्टों पर इस सभा में विचार नहीं किया गया है। किन्तु मसौदा समिति ने इस मसौदे में वैकल्पिक प्रावधान रख दिये हैं एक प्रकार के तो वे सुझाव हैं जो समिति के उन विचारों के द्योतक हैं जिन पर कि उसका अन्य समितियों से मतभेद था और दूसरे जो कि समिति के विचारों से भिन्न हैं और दूसरे प्रकार के वे हैं जो उन समितियों की सिफारिशों को तथा उनके निर्णयों को कलेवर प्रदान करते हैं। जब हम उन विशेष प्रावधानों को विचार के लिये अपने सामने रखेंगे तो हम उनके औचित्य पर विचार करके यह निश्चय करेंगे कि हम मसौदा समिति की राय को स्वीकार करें अथवा किसी समिति की राय को। सभा के समक्ष इन प्रावधानों का तैयार हुआ मसौदा होगा जिससे कि इन विषयों के बारे में मसौदे को तैयार करने के लिये इस सभा को अपने काम में ठहरना न पड़े। यदि हम सम्पूर्ण विषय पर इस दृष्टिकोण से विचार करें तो मेरी समझ से वाद-विवाद का क्षेत्र बहुत ही सीमित रह जाता है क्योंकि बहुत से संशोधन तो मसौदा सम्बन्धी है और बहुत से निर्णय हम कर ही चुके हैं और जहां तक मसौदा तैयार करने का सम्बन्ध है मसौदा-समिति ने अनेकों सुझावों तथा संशोधनों पर विचार कर ही लिया है और उनको मान भी लिया है। उन प्रश्नों के आधारभूत सिद्धांतों के सम्बन्ध में जिन पर अभी निर्णय नहीं किया गया है वाद-विवाद होगा। फिर भी जहां तक अन्य सिद्धांतों का प्रश्न है उन पर अधिक वाद-विवाद तो होगा नहीं क्योंकि उन पर हमने वाद-विवाद कर ही लिया है और निश्चय कर ही चुके हैं। अत: मेरा ऐसा विचार है कि यदि व्यवसायोचित रीति से हम कार्य करें तो सम्पूर्ण विधान का पर्यालोचन हम इस विधान-परिषद् के कार्यारंभ की दूसरी वार्षिक तिथि तक अर्थात् 9 दिसम्बर, 1948 तक समाप्त करने

में समर्थ हो जायेंगे; यदि ऐसा कर सके तो उक्त तिथि के पश्चात् सभा की बैठक कुछ दिनों के लिये स्थगित रहेगी और जितने संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिये गये होंगे उन पर मसौदा-समिति उतने समय में विचार करेगी और उनको उपयुक्त स्थानों में शामिल करेगी तथा समस्त संख्या-क्रम फिर से ठीक कर दिया जायेगा और अनुच्छेदों को उपयुक्त परिच्छेदों में फिर से रख दिया जायेगा। अर्थात् जो कुछ भी आवश्यक होगा तथा 10 या 15 दिनों में जो कुछ भी हो सकेगा वह कर दिया जायेगा तब हम फिर दुबारा बैठेंगे और उस समय हम अन्तिम बार विधान को उस रूप में स्वीकार करेंगे जो कि उसका उस समय हो गया होगा। दूसरी बार के पर्यालोचन में हम जैसा कि नियम है किसी भी प्रश्न के औचित्य पर विचार नहीं करेंगे, हम केवल यही देखेंगे कि सभा के समक्ष जो मसौदा रखा गया है उसमें सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों को उसी रूप में रखा गया है अथवा नहीं।

मैं सभा के समक्ष यह सुझाव रखता हूं और मैं आशा करता हूं कि सदस्यों को यह स्वीकार होगा।

श्री सेठ गोविन्द दासः (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): सभापति जी, मैं यह जानना चाहता हूं कि जब तक हमारी भाषा कौन होगी, यह निर्णय नहीं हो जाता है तब तक जो धारायें हम अंग्रेजी में पास करेंगे, वे क्या उस निर्णय होने के बाद फिर से हिन्दी में आयेंगी।

अध्यक्षः हां, जरूर उन सब धाराओं को फिर से जिस भाषा में निश्चय करेंगे, बहस होगी। और उस वक्त बहस किसी धारा के सम्बन्ध में नहीं होगी। सिर्फ यह देखा जायेगा कि ठीक तर्जुमा हुआ है या नहीं। इसलिए मैं यह समझता हूं कि हम इस वक्त जो बहस करें, वह अंग्रेजी ड्राफ्ट पर करें; क्योंकि सब लोगों ने उस पर विचार किया है और जिन्होंने तैयार किया है, उन्होंने उसी भाषा में तैयार किया है। उसके बाद आखिरी रूप जब मालूम हो जायेगा तो हम आपके सामने उसका अनुवाद रखेंगे और आप उसको मंजूर करेंगे।

***श्री बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान्, जी, इस बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर, जिसको कि मेरे माननीय मित्र सेठ गोविन्ददास जी ने रखा है, मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

श्री महावीर त्यागी (संयुक्त प्रान्त : जनरल): सभापति जी, मैं यह अर्ज करना चाहता हूं कि बुनियादी सवालों पर बातचीत करने से पहले यदि आप इस बात पर गौर कर लें कि अब अमेंडमेंट लाने का तरीका क्या है, पुराना तरीका रहेगा या जैसा आपने अब फरमाया है, ताकि उस प्रोग्राम के मुताल्लिक राय कायम हो जाये कि किस ढंग से बहस होगी और अमेंडमेंट भेजने के लिये कितने दिन मिलेंगे।

अध्यक्ष: दोनों बातें साफ हो जायेंगी।

*__श्री बालकृष्ण शर्मा:__ श्रीमान् जी, मैं नहीं समझ सका कि औचित्य प्रश्न कैसे पैदा हो गया। वास्तव में मैं तो आपके सामने केवल एक बात रखना चाहता था। वह यह है कि इसके पूर्व कि आप डा. अम्बेडकर से यह कहें कि वे प्रस्ताव करें कि प्रारूपित संविधान पर विचार आरंभ किया जाये, आप उस प्रश्न पर विचार करें जो मेरे मित्र सेठ गोविन्ददास जी ने आपके सामने रखा है। यह तो निश्चय है कि जो प्रस्ताव डा. अम्बेडकर पेश करने वाले हैं उसको स्वीकार कर लेने के पश्चात् हम विधान के एक-एक खंड पर विचार करेंगे। जैसा कि श्रीमान् को ज्ञात है मैं उन लोगों में से हूं जिन्होंने कि इस प्रस्ताव की सूचना दी थी कि भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी हो और उसकी लिपि देवनागरी हो। अत: इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि जब हम अपने विधान के एक-एक खंड पर विचार करेंगे तो वह कौन सी भाषा होगी जिसमें कि हमारा विधान स्वीकृत हुआ समझा जायेगा। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि जब हम विधान के खंडों पर विचार करें तो उसके एक अध्याय को समाप्त करने के पश्चात् हम उसको पुन: हिन्दी में लें और प्रत्येक खंड को जिस रूप में उसे सभा ने संशोधित किया है, और जैसा कि इस सभा की अनुवाद-समिति ने उसका अनुवाद किया है वैसा ही पास करे। अत:, मैं आपसे यह निवेदन करता हूं कि विधान के एक-एक खंड पर विचार करने के पूर्व आप इस सभा में एक उप-समिति नियुक्त करें जो कि खंडों और उनमें जैसा संशोधन सभा चाहती है उनसे परिचित रहें और जैसे ही वे स्वीकार कर लिये जायें यह समिति उन खंडों का अनुवाद करें और एक अध्याय के समाप्त हो जाने के पश्चात् इन खंडों को पुन: हिन्दी में सभा के समक्ष लाया जाये और वे हिन्दी में भी स्वीकृत समझे जायें, जिससे कि कुछ काल पश्चात् जब हम पूर्णतया अंग्रेजी भाषा को हटा दें तो मूलरूप में विधान हिन्दी भाषा में

स्वीकृत समझा जाये और वही प्रमाणिक विधान माना जाये। यदि हम किसी ऐसी विधि को अंगीकार नहीं करेंगे तो मेरे विचार से जिस समय विधान का खंड 99 हमारे समक्ष आयेगा और हम अपनी भाषा हिन्दी तथा लिपि देवनागरी घोषित करेंगे उस समय हमें बड़ी कठिनाई होगी। मैं समझता हूं कि मेरे दक्षिणी मित्रों को कुछ कठिनाई होगी। वे कह सकते हैं कि वर्तमान विधान अंग्रेजी में है जिसे हम सब समझते हैं, आप हमें हिन्दी में प्रत्येक खंड को 'पास' करने के लिये कहते हैं, उस भाषा को हम नहीं जानते। मेरे ख्याल से मेरे उन दक्षिणी मित्रों को जो इतनी हिन्दी नहीं जानते हैं अपने साथियों की सद्बुद्धि पर निर्भर रहना चाहिये। यहां इस सभा में ऐसे मित्र भी हैं जो अंग्रेजी नहीं जानते पर फिर भी वे आपकी सद्बुद्धि पर निर्भर है और वे ऐसी आपत्ति कभी नहीं करते कि वे अंग्रेजी नहीं जानते और इसलिये यह विधान अच्छा नहीं है। इसी प्रकार वे भी इस विषय में हमारे साथ सहयोग करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** इस विषय में जो कुछ करने का मेरा विचार है यदि मैं उसे बता दूं तो मेरे विचार से इस प्रश्न पर वाद-विवाद बहुत कम रह जायेगा। ऐसा प्रस्ताव आया है कि अनुवाद तैयार करने के लिये एक समिति नियुक्त की जाये और एक-एक अनुच्छेद पर विचार करके यह सभा उस अनुवाद को स्वीकार करे और उसी को मूल समझा जाये। कुछ इसी प्रकार के प्रस्ताव की सूचना दी गई है। इस बारे में मैं जो करना चाहता हूं वह यह है। सदस्यों को ज्ञात है कि हमारे पास कई अनुवाद तैयार है। हिन्दी का अनुवाद है, उर्दू का अनुवाद है और हिन्दुस्तानी का अनुवाद है। विधान के मसौदे के ये तीनों अनुवाद तैयार हैं और मुझे विश्वास है कि सदस्यों को इनकी प्रतियां भी मिल चुकी होंगी। जैसे ही यह प्रश्न तय कर लिया जायेगा कि हमारी राष्ट्र भाषा क्या हो हम एक समिति बना देंगे जो उसी भाषा में तैयार किये हुये अनुवाद को ले लेगी और यह देखेगी कि अनुवाद अक्षरशः अंग्रेजी भाषा के अनुरूप है अथवा नहीं। हमारी भावनायें चाहे जो कुछ प्रेरणा करें हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन व्यक्तियों का विधान का मसौदा बनाने से सम्बन्ध है उनमें से बहुत से अपने विचारों की अभिव्यक्ति हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी में अच्छे प्रकार से कर सकते हैं। केवल अंग्रेजी या हिन्दी में अभिव्यंजना का ही प्रश्न नहीं है बल्कि पाश्चात्य विधानों से विचार भी

[अध्यक्ष]

लिये गये हैं, यहां तक कि जिन पदों का प्रयोग किया गया है उनमें से अनेको का तो अपना इतिहास है और अनेकों स्थलों में हमने पाश्चात्य विधानों में से वैसी की वैसी ही शब्दावली ले ली है। जिन लोगों के हाथ में विधान के प्रारूप बनाने का कार्य सौंपा गया था उनकी सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए यह बात प्रगट है कि विधान का प्रारूप अंग्रेजी में बनाने के अतिरिक्त हमारे लिये कोई और गति न थी। मेरे विचार से तो इससे हमें कोई क्षति नहीं हुई है, किन्तु जब किसी अनुच्छेद को यह सभा अंग्रेजी में अन्तिम रूप से स्वीकार कर लेगी तब यथा सम्भव पूर्ण और ठीक अनुवाद हम करायेंगे और उन भाषा में करायेंगे जिसे विधान-परिषद् राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिये मान्यता देगी। अत: मैं सदस्यों से यह निवेदन करूंगा कि भाषा के प्रश्न पर जो वाद-विवाद होगा उसको वे अभी से आरम्भ न करें। कुछ समय बाद यह वाद-विवाद होगा किन्तु मैं यह वचन देता हूं कि ज्योंही उस प्रश्न का निपटारा हो जायेगा तब ही जिस भाषा को हम स्वीकार करेंगे उसी भाषा में किये गये अनुवाद को हम फिर से जंचवायेंगे या दूसरा अनुवाद करायेंगे। और सभा की स्वीकृति के लिये हम उस अनूदित विधान को सभा के सामने रखेंगे।

***श्री सेठ गोविन्द दास:** सभापति जी, आपने स्पष्ट कह दिया था कि जिस समय हमारे सामने विधान लाया जायेगा उस समय उसका मूल हमारी भाषा में होगा। मैंने उस समय आपसे इस बारे में प्रश्न भी किया था और आपने उसके उत्तर में भी यही कहा था कि जो विधान हमारे सामने आयेगा, वह मूल में हमारी भाषा में होगा। अब, आज डा. अम्बेडकर साहब जो विधान हमारे सामने ला रहे हैं वह अंग्रेजी में है। मैं आपसे यह जानना चाहता हूं कि आपने जो आश्वासन दिया था कि मूल विधान हमारी भाषा में लाया जायेगा और जब वह अंग्रेजी में आ रहा है तो फिर वह ''मूल'' जिसके लिए आपने आश्वासन दिया था, हमारी भाषा में किस समय लाया जायेगा।

***श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): सभापति जी, मैं यह पूछना चाहता हूं कि जिस तरह अंग्रेजी में एक-एक आर्टिकिल को अमेंडमेंट

करके अन्तिम रूप में लिया जायेगा तो जब यह विधान-सभा अपने किसी आर्टिकिल के मुताबिक राष्ट्र-भाषा निश्चय कर लेगी तो क्या उस भाषा में भी साथ-साथ ही एक आर्टिकिल लिया जायेगा या नहीं।

अध्यक्ष: हर एक आर्टिकिल लिया जायेगा।

***श्री बालकृष्ण शर्मा:** श्रीमान् जी, मैं केवल यह सुझाव रखना चाहता हूं कि विधान के एक-एक खंड पर विचार करने के पूर्व क्या यह उपयुक्त नहीं होगा कि आप कृपा कर राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न को लेने की हमें आज्ञा दे दें और उस पर निर्णय कर लें। क्योंकि यदि हम सब से पहले राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न को ले लें और उसका निर्णय कर लें तो सदैव के लिये झगड़े का अन्त हो जायेगा। (*करतल ध्वनि*) आप अंग्रेजी में 12 या 15 खंडो पर वाद-विवाद कर सकते हैं। समिति दूसरे दिवस ही अनुवाद प्रस्तुत कर देगी और उस भाग का पूरा अनुवाद सभा के समक्ष होगा जिस पर वह विचार करेगी और तत्पश्चात् वह भी सभा द्वारा स्वीकृत समझा जायेगा। इसलिये मेरा सुझाव है कि विधान के खंडों को लेने के पूर्व आप इस सभा को सर्वप्रथम राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न को ले लेने की आज्ञा दे दीजिये। राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न तो कहीं 99 खंड में आयेगा जिसके लिये बहुत समय लगेगा। इस प्रश्न में अनेकों उलझनें हैं और हममें से अनेकों तो यह अनुभव करते हैं कि यह प्रश्न हमारे भविष्य से मूल रूप में सटा हुआ है। ऐसे सदस्य भी हैं जो इसको कोई महत्व नहीं देते हैं। अत:, मैं आपसे निवेदन करूंगा कि इस प्रश्न को पहले ले लीजिये और उसे तय करने का हमें अवसर दीजिये और उसके पश्चात् एक-एक खंड करके अंग्रेजी में विधान को लीजिये और फिर उनको हिन्दी में भी लेने का हमें अवसर दीजिये।

***अध्यक्ष:** क्या मैं यह कह सकता हूं कि जिन कारणों के आधार पर आप भाषा के प्रश्न को पहले लेना चाहते हैं उन्हीं आधारों पर मैं इसे बाद में विचार करने के लिये हटाना चाहता हूं। आपने यही तर्क उपस्थित किया है कि आपस में मतभेद है। कुछ लोग एक विचार पर दृढ़ हैं तो अन्य उतनी ही दृढ़ता से दूसरे विचार को अपनाये हुये हैं। मेरा यह विचार है कि उत्तेजनापूर्ण वातावरण होने के पूर्व शान्त वातावरण में मौलिक अधिकारों पर वाद-विवाद करना अधिक

[अध्यक्ष]

उपयुक्त होगा। अतः मैं यह सुझाव रखता हूं कि हम विधान पर विचार आरम्भ कर दें और उसके प्रत्येक खंड पर विचार करें और जब हम इतना कर लेंगे—ऐसा करने से भाषा सम्बन्धी प्रश्न के निर्णय होने में कोई कठिनाई पैदा न होगी—तब यह सभा भाषा के विषय में हित अहित का ध्यान करके निर्णय करेगी और जब वह निर्णय कर लिया जायेगा तब उस भाषा में भी प्रत्येक अनुच्छेद स्वीकार किया जायेगा। अतः इसमें कोई हानि नहीं है। आरम्भ में ही यह बात ठीक नहीं कि यहां कटुता का वातावरण कायम हो जाये।

श्री आर.वी. धुलेकर (संयुक्त प्रान्त : जनरल): सभापति जी, जो प्रश्न मैं आपके सामने उपस्थित करना चाहता हूं वह यह है कि पहले दिन इस भवन में जब मैंने हिन्दी में व्याख्यान दिया था तो उस समय जो मैंने अपना संशोधन पेश किया था उसमें मैंने लिखा था कि हमारी राष्ट्र-भाषा में ही यह विधान बनना चाहिए और अंग्रेजी भाषा का जो विधान बनेगा वह उसका तर्जुमा समझा जाना चाहिए। इसलिए मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूं कि जिस समय अंग्रेजी भाषा के विधान पर बहस पूरी हो जाये और वह पूरा पास कर लिया जाये उसके बाद आपकी आज्ञा के अनुसार जो राष्ट्र-भाषा निश्चित होगी तो उस समय मैं आपके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित करूंगा कि जो विधान राष्ट्र-भाषा में लिखा जायेगा वही विधान मौलिक समझा जायेगा। अंग्रेजी भाषा से तर्जुमा किया हुआ विधान अपनाना यह हमारे लिए अपमानजनक बात होगी। किसी राष्ट्र ने ऐसा अभी तक नहीं किया है।

मैं यह अवश्य मानता हूं कि यहां सदस्य अंग्रेजी में ही बहस करेंगे। और मैं भी अंग्रेजी में बहस करूंगा और करना चाहता हूं और उसके बाद हिन्दी में करूंगा। मैं इस बात को आपसे कह देना चाहता हूं कि मैं एक प्रस्ताव आपके सामने पेश करना चाहता हूं कि जब यह बहस खत्म हो जाये और अंग्रेजी में जो विधान पास हो जाये वह राष्ट्र-भाषा का तर्जुमा माना जाये और राष्ट्र-भाषा का विधान हमारा मौलिक विधान माना जाये। और अंग्रेजी भाषा जिसमें होगी वह तर्जुमा कहलायेगा। मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूं कि मैं उस प्रस्ताव को किस समय आपके सामने उपस्थित करूं।

***अध्यक्ष:** यह तो इस असेम्बली को अधिकार है कि वह कह दे कि हिन्दी या उर्दू जिस भाषा में चाहें, विधान पास होगा और उसको मूल समझा जायेगा। दूसरे सब उसके तर्जुमें समझे जायेंगे। यह आपके अधिकार में हैं।

***श्री सुरेश चन्द्र मजुमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान् जी, अनुवाद के सम्बन्ध में आपकी आज्ञा हुई और कुछ भाषाओं में पूरा अनुवाद हो गया। और न इस बारे में कोई आपत्ति ही करता है किन्तु विधान निर्माण के कार्य में यह आवश्यक है कि हमारे देश की जनता उसे समझ सकें—चाहे उनकी बोलचाल की भाषा कोई भी हो। इसलिये यदि आप अपनी अनुवाद की योजना में हिन्दी और उर्दू के साथ-साथ भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं को भी सम्मिलित कर लें तो प्रत्येक व्यक्ति के लिये विधान को समझना सुगम हो जायेगा। चाहे फिर राष्ट्र भाषा कोई सी भी क्यों न हो। ऐसा करने से कोई यह नहीं कह सकेगा कि कार्यवाही ऐसी भाषा अथवा भाषाओं में हुई जो कि देश के समस्त भागों को बोधगम्य न थी। मेरा यह सुझाव है। हिन्दी भाषा के प्रति मेरा अनादर का भाव नहीं है और अंग्रेजी भाषा से मुझे विशेष प्रेम नहीं है, पर चूंकि विधान बड़े महत्त्व का विषय है, अत: मेरे विचार से इसे देश के समस्त लोगों के लिये बोधगम्य बनाना चाहिये। इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि आप अपनी अनुवाद योजना में कम से कम भारत की प्रमुख भाषाओं को तो कृपा पूर्वक सम्मिलित कर लें और मेरे विचार से आपके लिये यह प्रबन्ध करना कठिन नहीं होगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, हमारे समक्ष जो बिल है उस पर विचार करने के सम्बन्ध में जिस पद्धति का अनुसरण करने के लिये आपने घोषणा की है। उसका उस पर्यालोचन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा जो अभी उस पर कुछ समय पश्चात् होगा। आपने दो बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

पहली बात यह है कि चूंकि इस विधेयक में निहित सिद्धांतों को इस परिषद् ने कुछ मास पूर्व स्वीकार कर लिया है इसलिये ऐसा कोई संशोधन नहीं रखा जाना चाहिये जो कि इनमें से किसी भी सिद्धांत के विरुद्ध हो या उनमें कोई परिवर्तन करना चाहता हो। श्रीमान् जी, यह विषय.....

***अध्यक्ष:** मैंने 'सामान्यतया' शब्द से उसे परिमित किया है।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ यह सब अध्यक्ष पर निर्भर है कि वह इस शब्द की कैसी व्याख्या करें। पर मुझे याद है कि इस विधेयक में निहित सिद्धांतों पर जब वाद-विवाद हो रहा था उस समय यह अनेकों बार कहा गया था कि बाद में जब कि हमारे समक्ष विधान का पूर्ण चित्र होगा हमें अपनी सम्मति प्रगट करने का अच्छा अवसर मिलेगा। श्रीमान्, मेरी सम्मति में इस पहलू से भी आपको विचार करना है। जिन निष्कर्षों को कुछ मास पूर्व हमने स्वीकार कर लिया था यदि उनमें से किसी के बारे में हममें से कोई सदस्य समस्त अधिनियम को पढ़ने के बाद अथवा अधिक मनन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा हो कि उसमें संशोधन अथवा पूर्णतया परिवर्तन किया जाये तो यह न होना चाहिये कि ऐसे सदस्य की इस बारे में अपनी सम्मति प्रगट करने के अधिकार पर कोई प्रतिबंध लगाया जाये।

*__अध्यक्ष:__ यह विश्वास मैं अभी दिला देता हूं कि मैं पर्यालोचन को अनियमित नहीं ठहराऊंगा। इस बात का निर्णय सभा करेगी कि वह अपने पूर्व निर्णयों से पीछे हटना चाहती है या नहीं। अध्यक्ष के नाते किसी वाद-विवाद या पुनर्विचार को नियम विरुद्ध ठहराने का मेरा विचार नहीं है।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ सभा को तो यह अधिकार है कि वह यह निश्चय करे कि उसे अपने पूर्व निर्णयों से हटना है या नहीं। यदि कुछ समय पूर्व अपने स्वीकृत किये हुये सिद्धांतों में सभा कोई परिवर्तन करना नहीं चाहती है तो उसे यह अधिकार होगा कि किसी सदस्य द्वारा सुझायें गये परिवर्तन को वह न माने। मैंने तो यह सब इसलिये कहा था कि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि आपकी इच्छा कुछ संशोधनों को नियम विरुद्ध ठहरा देने की है।

*__अध्यक्ष:__ मुझे खेद है कि मेरी बात से आपके मन में यह भ्रम पैदा हुआ।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ श्रीमान् जी, मुझे आपसे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि आपका यह विचार नहीं है। इसलिये आपके भाषण के इस पहलू पर मुझे कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं है।

अब मैं दूसरी बात को लेता हूं जिसकी भविष्य में संशोधनों की सूचना देने के लिये सदस्यों को याद रखने के लिये आपने कहा था। आपने कहा था कि अगले रविवार को सायंकाल के पांच बजे तक संशोधनों को रखने की इजाजत है और उसके पश्चात् संशोधनों को वाद-विवाद के लिये स्वीकार नहीं करेंगे जब तक कि आप उन्हें महत्त्वपूर्ण न समझें। श्रीमान् जी, मेरे विचार से आपने जो कुछ कहा उसके सार का हम सब लोग आदर करते हैं। हमारे वाद-विवाद यथा सम्भव उचित धारा में प्रवाहित होने चाहिये और उनका सम्बन्ध केवल उन विषयों से ही रहना चाहिये जिन पर सभा को पुन: विचार करने की आवश्यकता हो। अत: संशोधनों की रूपरेखा के सम्बन्ध में आपकी शिक्षा का स्वभावत: सभा के प्रत्येक सदस्यों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। पर मेरा निवेदन है कि कोई भी संशोधन चाहे कभी आये केवल इसी आधार पर कि वह रविवार को सायंकाल के 5 बजे तक नहीं आया, नियम विरुद्ध नहीं ठहराया जाना चाहिये। अध्यक्ष का यह कर्त्तव्य है कि वह वाद-विवाद का नियमन करे और नि:संदेह इस सभा का प्रत्येक सदस्य अध्यक्ष के दु:सह कार्य में सहायता करने के लिये इच्छुक है विशेषकर जबकि अध्यक्ष-पद को इस समय आप जैसा प्रतिष्ठित पुरुष सुशोभित किये हुये है। परन्तु नियमों के अन्तर्गत हमारे कुछ निश्चित अधिकार है जिनमें से प्रत्येक की सर्वदा रक्षा के लिये प्रत्येक सदस्य को प्रस्तुत रहना चाहिये। नियमों के अन्तर्गत हमें किसी समय भी संशोधन रखने का अधिकार है और यदि नियम द्वारा निश्चित समय के अंतर्गत संशोधन रख दिये जाते हैं तो नये संशोधनों को पेश करने के हमारे इस अधिकार पर कोई पाबन्दी नही हो सकती। श्रीमान् जी, आप भी इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगा सकते।

श्रीमान् जी, इस कारण मैं यह सुझाव रखता हूं कि यदि आप किसी प्रस्तावित संशोधन को व्यर्थ समझते हैं अथवा उसका सम्बन्ध किसी बहुत ही महत्त्वहीन विषय से समझते हैं तो आप तत्सम्बन्धी सदस्य को यह सम्मति दे सकते हैं कि वह अपना संशोधन वापस लेकर सभा के समय की बचत करे। परन्तु यदि वह सदस्य किसी महत्त्वहीन विषय पर भी अपने विचार प्रकट करने की हठ पकड़ता है तो

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

मुझे आशा है कि तो आप, जिनका कि कर्त्तव्य हमारे अधिकारों तथा विशेषाधिकारों को बनाये रखना है, अधिशासी स्वविवेक द्वारा उसके संशोधन रखने के अधिकार को नहीं छीनेंगे। श्रीमान् जी, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है। यह प्रश्न सिद्धांत का है। मैं नहीं समझता कि अध्यक्ष तथा सभा के किसी सदस्य में प्रकट रूप में कोई विरोध होगा, परन्तु मैं इस बात का इच्छुक हूं कि कोई भी अधिकार चाहे फिर वह छोटे से छोटा ही क्यों न हो पर जिसके उपभोग करने का नियमों द्वारा हमें अधिकार है, प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से हम से न तो छीना जाये और न कम किया जाये। मैं आशा करता हूं कि मेरे विचारों पर अध्यक्ष ध्यान देंगे और जिस भावना से मैंने यह बातें कही हैं उसको भी ठीक-ठीक समझा जायेगा। हम सब आपका आदर करते हैं। जो कुछ आप कहते हैं उसे हम बड़े ध्यान से सुनते हैं और इस इच्छा से सुनते हैं कि आपके शब्दों का पालन करें। परन्तु हम आपसे यह साग्रह निवेदन करते हैं कि आप हमारे छोटे से छोटे विशेषाधिकार को भी कम न करें। हमारा यह भी निवेदन है कि यदि उन पर (विशेषाधिकारों) कोई आक्रमण करे तो आप उनकी रक्षा करें। और मेरा विश्वास है कि वाद-विवाद इस प्रकार से होगा कि हमें यह प्रतीत हो कि आप हमारे गौरव तथा विशेषाधिकारों के संरक्षक है और नियमों के अन्तर्गत सभा के सदस्यों के प्रत्येक अधिकार को आप बनाये रखेंगे।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि इस सभा में मैंने ऐसी कोई बात नहीं की है जिसके कारण कोई सदस्य यह शिकायत कर सके कि मैंने इस प्रकार कार्य किया है जिससे कि उसके किसी अधिकार का अपहरण हुआ है।

*__मौलाना हसरत मोहानी__ (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान् जी, मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि मैं इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना पहले ही दे चुका हूं:

> ''कि विधान के मसौदे पर तब तक विचार स्थगित रखा जाये जब तक कि संयुक्त निर्वाचन के आधार पर नई तथा अधिकार सम्पन्न विधान-परिषद् का चुनाव न हो जाये और भारत में साम्प्रदायिक दलों के स्थान पर राजनैतिक दलों का निर्माण न हो जाये।''

मेरी यह भी प्रार्थना है कि आप उस व्यवस्था को भी याद कर लें जोकि आपने मेरे उस संशोधन के उपस्थित किये जाने पर की थी जिसे कि मैंने अनुकरणीय-प्रान्तीय-संविधान सम्बन्धी रिपोर्ट के उपस्थित किये जाने के समय प्रस्तुत किया था और जो इस प्रकार था कि जब तक कि हम संघ के विधान पर विचार न कर लें तब तक प्रान्तीय विधान पर विचार करना स्थगित कर दिया जाये......

***अध्यक्षः** उपयुक्त समय पर हम आपके संशोधन पर विचार करेंगे।

***मौलाना हसरत मोहानीः** मैं अपने प्रस्ताव को पहले रखना चाहता हूं।

***श्री हुसैन इमामः** बिल पर विचार करने का प्रस्ताव पेश नहीं हुआ है इस कारण अभी संशोधन नहीं रखा जा सकता।

***अध्यक्षः** यही तो मैं कह रहा हूं। उपयुक्त समय पर हम उसको लेंगे।

परिषद् दिन के तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिये स्थगित हुई।

*दोपहर के भोजन के पश्चात् दिन के तीन बजे परिषद् की बैठक फिर हुई, (**माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद**) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।*

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जब हम दोपहर के खाने के लिये उठे थे उस समय आपके समक्ष यह प्रश्न था कि पर्यालोचन के सम्बन्ध में जिस पद्धति की घोषणा आपने की थी उसका अनुसरण किया जायेगा अथवा आप मेरे मित्र पं. हृदयनाथ कुंजरू के निवेदन को कृपया स्वीकार करेंगे। नियमों के अनुसार हमें यह अधिकार है कि हम संशोधनों की सूचना दो दिन पूर्व भेजें यदि हम चाहते हों कि यह संशोधन नियमानुकूल दिये गये समझे जायें। मुझे इसके सम्बन्ध में नियम उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। जब हमारे पास विधान का मसौदा भेजा गया था उस समय मैंने और अन्य अनेकों व्यक्तियों ने जो यहां उपस्थित हैं स्वभावत: यह विचार किया कि वाद-विवाद के सम्बन्ध में उसी प्राचीन पद्धति का अनुसरण किया जायेगा। अत: मेरे अनेकों मित्रों ने इस आशय से अपने सम्पूर्ण संशोधनों को नहीं भेजा कि हम उन विषयों पर यहां आकर वाद-विवाद करेंगे और तत्पश्चात् अपने संशोधनों की सूचना देंगे। दो दिन पहले सूचना भेजने का जो नियम अब तक था उससे हमें यह सुविधा थी कि हम आपस में छोटे या बड़े समूहों में एकत्रित होकर विचार विनिमय कर सकते थे और तत्पश्चात् संशोधनों को भेज सकते थे यदि इस पद्धति को ठुकराया जाता है और एक-एक वाक्यखण्ड पर विचार करते समय संशोधनों की सूचना देने की अनुमति नहीं दी जाती है तो उन लोगों के प्रति न्याय नहीं होगा जो अभी तत्काल ही परिषद् में सम्मिलित हुये हैं। अनेकों ऐसे सदस्य हैं जिन्होंने आज रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये हैं और कुछ घंटे पूर्व ही उनको परिषद् के पत्र मिले हैं। विधान का मसौदा एक मोटो पुस्तक है जिसको हम पढ़ना चाहते हैं और उस पर विचार करना चाहते हैं यदि आप मेरे मित्र श्री कुंजरू महोदय की प्रार्थना स्वीकार कर लें और वाद-विवाद को जारी रखते हुये नवागन्तुकों को विधान के मसौदे को अध्ययन करने का समय दे दें तो यथासमय संशोधनों को भेजने की उन्हें सुविधा मिल जायेगी और इस पर वे अपने विचार भी व्यक्त कर सकेंगे, अन्यथा नवागन्तुकों को कोई भी सुविधा नहीं मिलेगी।

श्रीमान् जी, हम विधान-परिषद् के सदस्य हैं और विधान निर्माण कर रहे हैं। धारा-सभा द्वारा विचार किया हुआ और स्वीकृत किसी साधारण कानून का प्रतिमास अथवा इसमें लगभग एक बार संशोधन किया जा सकता है, पर विधान का संशोधन

बारंबार नहीं होता। आने वाली शताब्दियों के लिये हम विधान निर्माण कर रहे हैं और उसमें इस सरलता से संशोधन नहीं किया जा सकता है। जिस सरलता से हम धारा-सभा के कानूनों में संशोधन कर सकते हैं। इस कारण सभा के सदस्यों को अपने विचार व्यक्त करने के लिये पूर्ण सुविधा प्रदान की जानी चाहिये।

अत: मैं पुन: प्रार्थना करता हूं कि आप इस बात पर कृपया विचार करें कि नियमोल्लिखित दो दिन पूर्व संशोधन सूचना भेजने का हमारा अधिकार न छीना जाये और आप विचाराधीन प्रस्ताव से संगत संशोधनों को रखने की स्वीकृति दें। अध्यक्ष की अनुमति के बिना ऐसा कोई संशोधन न पेश किया जाये जिससे कि मुख्य प्रस्ताव निष्क्रम होने की संभावना हो। किसी प्रस्ताव में संशोधन करने की सूचना उस प्रस्ताव के सभा में पेश होने से एक दिन पूर्व दे दी जानी चाहिये। मेरा निवेदन है कि इस नियम के रहते हुये जब तक नियमों में परिवर्तन न किया जाय...

***अध्यक्ष:** तत्सम्बन्धित नियम 38 (ओ) है।

***श्री महावीर त्यागी:** वह इस प्रकार है:

''जिस दिवस विधान या बिल पर जैसी भी सूरत हो, विचार किया जायेगा उस दिन से पूरे दो दिन पूर्व यदि किसी संशोधन की सूचना नहीं दी गई हो तो कोई भी सदस्य उस संशोधन के पेश होने में आपत्ति कर सकता है और यदि अध्यक्ष ने स्वविवेक से ऐसे संशोधन को पेश करने की आज्ञा नहीं दी है तो ऐसी आपत्ति मानी जायेगी।''

क्या आप इस नियम 38 (ओ) की व्याख्या इस प्रकार से करना चाहते हैं कि सम्पूर्ण विधान...

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य इस विषय पर आज निर्णय देने के लिये मुझे विवश नहीं करेंगे। यह अच्छा हो कि इस बात को आप यही तक रहने दें। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं आज प्रात:काल के आपके भाषण द्वारा उत्पन्न हुये दो प्रश्नों के स्पष्टीकरण के लिये निवेदन कर सकता हूं?

श्री अलगू राय शास्त्री: अध्यक्ष महोदय, मैं देखता हूं कि हमारे माननीय सदस्य बीच में बोलने के लिये खड़े हो जाते हैं। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि मुझे भी बोलने का अवसर मिलना चाहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** आपके प्रातःकाल के भाषण के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण चाहता हूं। आपने यह कहा था कि 9 दिसम्बर को सभा कुछ दिनों के लिये स्थगित कर दी जायेगी। क्या हमारी सभा उस तारीख में स्थगित कर दी जायेगी चाहे हम जब तक विधान के मसौदे पर विचार समाप्त कर सकें या नहीं?

***अध्यक्षः** ऐसा नहीं। मैंने तो केवल एक कार्यक्रम आपके समक्ष रखा था जिसे मैं ठीक समझता हूं। यह तो सभा के निर्णय करने की बात है, यदि वह चाहे तो वह आगामी वर्ष के 9 दिसम्बर तक कार्य करती रहे। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामतः** क्या हमें 9 दिसम्बर से बाद में बताई जाने वाली किसी तारीख तक अवकाश मिलेगा?

***अध्यक्षः** यह सब इस कार्य पर निर्भर है। मैंने अनेकों बार यह कहा है कि मैं वाद-विवाद का संक्षेपण नहीं करना चाहता। चूंकि हम देश के विधान पर विचार कर रहे हैं; हम कोई कार्य शीघ्रता में नहीं करेंगे। परन्तु साथ ही साथ मैं समय व्यर्थ नहीं खोना चाहता।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या हमारी सभा 9 दिसम्बर को स्थगित कर दी जायेगी चाहे उस समय तक हम विधान के मसौदे पर विचार समाप्त कर चुके हों या नहीं?

***अध्यक्षः** देखा जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** आपने प्रातःकाल हैदराबाद तथा भोपाल के भाग न लेने के सम्बन्ध में कहा था कि यह विषय ऐसा है कि जिस पर सरकार ही विचार कर सकती है।

श्रीमान् जी, हमारे नियमों के अनुसार आप हैदराबाद तथा अन्य रियासतों के शासकों को विधान-परिषद् में प्रतिनिधि भेजने का आदेश दे सकते हैं। पर आपने यह कहा था कि यह विषय सरकार के आधीन है। मेरी समझ में नहीं आता है कि इस मामले में सरकार का क्या वास्ता है? शासकों को परिषद् में प्रतिनिधि भेजने का आदेश देने के लिये आपको पूर्ण अधिकार है।

***अध्यक्षः** परिषद् में बैठे हुये मुझे किसी व्यक्ति को कोई कार्य करने के लिये विवश करने का कोई अधिकार नहीं है। जो यहां आ गये हैं, उनको परिषद्

के विचार विमर्श में भाग लेने का अधिकार है और जो नहीं आये हैं उन्हें हम आने के लिये विवश नहीं कर सकते हैं। सरकार ही उसके प्रति कार्यवाही कर सकती है।

श्री अलगू राय शास्त्री: अध्यक्ष महोदय, जहां तक मुझे स्मरण है पिछले अधिवेशन में आपने यह घोषणा की थी कि जो विधान यहां पर आवेगा वह हिन्दी भाषा में होगा और उसका अनुवाद अंग्रेजी में हो सकता है। आज आपके वक्तव्य से यह निराशा हुई कि जो बहस और वाद-विवाद हम इस विधान के सम्बन्ध में करने जा रहे हैं, उसका वही ड्राफ्ट हमारे सामने आवेगा जो अंग्रेजी में ड्राफ्टिंग कमेटी ने तैयार किया है। अनुवाद के रूप में हमारे सामने उसका हिन्दी स्वरूप भी है। हिन्दी स्वरूप हमारे सामने होते हुए मैं नहीं समझता कि हम हिन्दी वाले ही ड्राफ्ट पर क्यों न यहां विचार करें। ऐसा हो सकता है कि हिन्दी का जो ड्राफ्ट हमारे सामने आया है, हम उसकी ही धाराओं को लेकर आगे चलें और उसमें जहां कोई क्लिष्ट ट्रांसलेशन आ जाये तो वह जो अंग्रेजी का ड्राफ्ट डा. अम्बेडकर के हाथ में है और जो स्वयं संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित हैं वह उसका अर्थ यहां के उन भाइयों को उस अंग्रेजी के ड्राफ्ट से समझा दें जिनको हिन्दी समझने में कठिनाई हो। प्रत्येक देश के लिए आवश्यक है कि वह अपना विधान अपनी भाषा में तैयार करे। हम एक ऐसे देश के निवासी हैं कि जिसकी एक स्वतंत्र भाषा है, तो हमारा विधान धारा-धारा करके उसी भाषा में यहां आना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि हम एक विदेशी भाषा में विधान पेश करें।

जब यहां विधान-सभा का पहला अधिवेशन हुआ था, आपको स्मरण होगा कि मैंने यह प्रार्थना की थी कि जो वाद-विवाद इस भवन में हो वह ऐसी भाषा में होना चाहिये जिसको कि इस देश के निवासी समझ सकते हों। इस सभा को इंगलिस्तान की पार्लियामेंट नहीं बनाना है। यह उपनिवेशिका शब्द, डोमिनियन का शब्द भी बिलकुल विदेशी है। मुझे मौलाना मुहम्मदअली साहब की एक उक्ति याद आती है। वह कहा करते थे कि डोमिनियन का शब्द अफ्रीका के लिए, साउथ अफ्रीका के लिए, लागू हो सकता है, न्यूजीलैंड के लिए लागू हो सकता है, कनाडा के लिए लागू हो सकता है, आस्ट्रेलिया के लिए लागू हो सकता है और यह शब्द टसमानियां के लिए लागू हो सकता है। ये वे उपनिवेश हैं जहां

[श्री अलगू राय शास्त्री]

पर हमारे विदेशी शासकों ने जाकर अपने उपनिवेश बनाये थे और अपनी छावनियां डाली थी। हिन्दुस्तान में वह छावनियां नहीं हो सकती हैं। उन लोगों ने उन देशों में जाकर अपनी छावनियां बनाई, अपने उपनिवेश बनाये और अपनी भाषा को ले गये और वहां के लोग वह भाषा बोलते हैं। लेकिन वह बात हमारे ऊपर लागू नहीं हो सकती। यहां सहस्त्रों वर्षों की हमारी भाषा है, सहस्त्रों वर्षों की हमारी संस्कृति है। यहां हमारा अपना साहित्य है। जिस तरह इंगलिस्तान के रहने वाले अपने अंग्रेजी साहित्य, शेक्सपियर और मिल्टन पर गर्व कर सकते हैं वैसे ही हम कालीदास, तुलसीदास, जायसी और सूरदास की कृतियों पर गर्व कर सकते हैं। तो एक ऐसा देश जिसकी अपनी भाषा है, वह एक विदेशी भाषा में अपना पहला स्वतंत्रता का विधान बनावे, यह एक बहुत ही लज्जाजनक बात होगी। इसलिये मैं फिर आपसे निवेदन करना चाहता हूं, प्रार्थना करना चाहता हूं कि आप जो हिन्दी का विधान है, उसको ही मूल रूप देकर यहां पर चलावें। यहां पर उसकी ही धाराओं पर बहस की जाये और जो अंग्रेजी का ड्राफ्ट है, वह यहां नहीं आना चाहिए; वह केवल अनुवाद के रूप में रहे।

अंग्रेज यहां से चले गए हैं उनकी छावनियां यहां पर नहीं है। हमारे यहां के आप तथा आपके दूसरे साथी प्रतिष्ठित नेता जिन्होंने हमारे इतिहास में अंग्रेजों के राज्य को यहां से हटाकर अपने नाम को सदा के लिए अमर कर दिया है और जिनके नाम चिरस्मरणीय हैं, उनका अनुकरण कर हमको चाहिये कि उपनिवेश का जो शब्द है उसे भी हम यहां से मिटा दें। और यह मिटेगा। उसके ऊपर यहां पर वाद-विवाद होगा और उस पर इस सभा के बहुत से सदस्य राय प्रकट करेंगे। यह प्रश्न आगे चलकर आवेगा। इस समय जो प्रश्न हमारे सामने है वह तो यह है कि आया हमारी कोई अपनी संस्कृति है, हम किस भाषा में गाते हैं, किस भाषा में रोते हैं, किस भाषा में कविता करते हैं और किस भाषा में अपनी भावनाओं को प्रकट करते हैं। हम जिस भाषा में अपने भावों को प्रकट करते हैं, उसी में हमें अपना विधान बनाना चाहिए। इस विधान का प्राथमिक अंश ही यह है कि ''हम भारत के लोग'' अपने को विधान दे रहे हैं।

'हम भारत के लोग' से तात्पर्य केवल इन चन्द आदमियों से ही नहीं है, जोकि यहां पर बैठे हैं, बल्कि भारत की जो मूक जनता है, उससे है और जिसके कि

प्रतिनिधि होकर हम यहां पर काम कर रहे हैं। तो हम जो विधान यहां दे रहे हैं वह उसी भाषा में होना चाहिए जिसको कि हम समझते हैं खेद की बात है कि हमारे बहुत से पुराने नेता लोग कहने लगे हैं कि भाषा का प्रश्न सुलझा नहीं है। अभी हमारी भाषा में सुधार नहीं हुआ है और अभी अंग्रेजी को रहना ही पड़ेगा। इस प्रकार की बातें कभी-कभी कही जाती हैं। मैं उन नेताओं का नाम यहां पर नहीं लेना चाहता। लेकिन जब वह यह कहते हैं कि हमारी कोई भाषा नहीं है तो मैं उनसे यही कहना चाहता हूं कि हमारी भाषा एक समुन्नत भाषा है, हमारी भाषा एक सम्पन्न भाषा है जिसके अन्दर अच्छी से अच्छी भावनायें व्यक्त हो सकती हैं। इस भाषा की सुन्दर शब्दराशि है। हमने अपनी भाषा को अपने प्राचीन ऋषियों से पाया है, हमने इन सब से अपना शब्दकोष पाया है, हमने अपनी भाषा को अपने प्राचीन साहित्य से पाया है जिसके अन्दर कि महाभारत लिखा गया है, रामायण लिखी गई है। हमने उसमें से सुन्दर शब्द लेकर अपनी भाषा को बनाया है। इसलिए यह नहीं कह सकते कि...

अध्यक्ष: माफ कीजिये, मेरी समझ में नहीं आया कि आप किस बात पर बहस कर रहे है, वह सब बातें मानी हुई हैं।

श्री अलगू राय शास्त्री: मैं सिर्फ यह निवेदन कर रहा हूं कि विधान का मूल रूप जिसके ऊपर हम यहां बहस करेंगे वह हिन्दी वाला रूप होना चाहिए, अंग्रेजी का नहीं। और इसलिए हम लोगों को हिन्दी की धाराओं को मानकर अपने संशोधन पेश करने की छूट होनी चाहिए। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं और वह इस विचार से करना चाहता हूं कि इससे यह मालूम हो कि हमारी कोई भाषा है। हम यह नहीं समझते कि हम अंग्रेजी साम्राज्य के अंतर्गत एक ऐसा उपनिवेश हैं कि जो अंग्रेजी ही बोल सकते हैं।

मैं दो शब्द और कहना चाहता हूं। यह दुर्भाग्य की बात है या सौभाग्य की बात है कि समुद्रों के तटपर रहने वाले हमारे भाई जहां अंग्रेज आकर पहले उतरे, उन लोगों ने अंग्रेजी भाषा में तरक्की की है, उन्होंने अंग्रेजी भाषा में प्रगति की है और वही सबसे अधिक कठिनाई अनुभव करते हैं जब हिन्दी भाषा का जिक्र आता है। यह मद्रास के भाइयों के सौभाग्य में था कि उन्होंने वैदिक साहित्य और संस्कृति को लेकर भारत को अपने यहां के आचार्यों द्वारा सुन्दर संदेश दिया, उन्हीं के भाग्य में यह भी था कि वह अंग्रेजी...

अध्यक्ष: मैं आपसे अर्ज करूं कि आप फिर वही बहस करते जा रहे हैं जिसकी कि कोई जरूरत नहीं है क्योंकि यह बात मानी हुई है। सब लोग मानते हैं कि हम अपनी भाषा में कान्स्टीट्यूशन बना सकते हैं और बनावेंगे। इस पर अब कोई बहस की गुंजायश नहीं है। पहले कई मर्तबा इसका जिक्र आ चुका है और जब यह बात आवेगी तब आप उसको मंजूर करेंगे।

श्री अलगू राय शास्त्री: इस समय मैं संशोधन हिन्दी में देने की बात कर रहा हूं।

अध्यक्ष: आप हिन्दी में संशोधन देना चाहें तो दे सकते हैं। मगर जो चीज अंग्रेजी में आवेगी, उस पर हिन्दी में संशोधन कैसे बैठेगा यह मेरे लिए दिक्कत तलब बात होगी। मगर आप देना चाहें तो दे सकते हैं।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मान (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब सदर, मैं आपकी तवज्जह इस बात की तरफ दिलाना चाहता हूं कि पिछली मजलिस में इस अयवान ने फैसला किया था, माइनोरटी बोर्ड की रिपोर्ट पर बहस करते हुए कि चूंकि ईस्ट पंजाब के हालात नारमल नहीं हैं, इसलिए सिखों के मसले के मुतालिक इस वक्त गौर किया जायेगा। आज हमारे सामने तमाम माइनोरटियों की सिफारिशें आई हैं लेकिन जहां तक कि सिखों का मसला है, अभी तक उसके बारे में कोई फैसला नहीं किया गया है।

अध्यक्ष: माफ कीजिये। यह सवाल जिस वक्त आवेगा, उस वक्त आप इस पर जो कुछ फरमाना चाहें, वह फरमा सकते हैं।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मान: जनाब ने फरमाया है कि अमेंडमेंट दो दिन में भेजना चाहिये लेकिन इस मामले में अभी कोई फैसला नहीं हुआ है।

अध्यक्ष: जिस मामले का फैसला नहीं हुआ है, उसके बारे में आप फिर अमेंडमेंट भेज सकते हैं।

***श्री हुसैन इमाम:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस विषय पर वाद-विवाद बढ़ाना नहीं चाहता हूं। केवल दो महत्त्वपूर्ण विषयों पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। नियम का जिस रूप में निर्माण किया गया है वह पूर्णतया व्यापक है। इससे पूर्व कि संविधान पर विचारारम्भ हो संशोधन भेजने के लिये दो दिन का समय दिया गया है।

श्रीमान् जी, आपके स्वविवेक के लिये तो अब भी बृहद् क्षेत्र है और मैं आशा करता हूं कि आप उसका उदारतापूर्वक प्रयोग करेंगे। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि मैं यह विश्वास नहीं करता कि आप अपने स्वविवेक का उदारतापूर्वक प्रयोग करेंगे, वरन् मेरा आशय तो यही है कि अपने मित्रों को यह विश्वास दिलाऊं कि वे भरोसा रखें कि यदि कोई जरूरी बात उठी तो आप उस पर अवश्य सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे।

एक बात और है जिसके लिये मैं आपके अनुग्रह का प्रार्थी हूं। संशोधनों पर संशोधन तभी आ सकते हैं जब कि संशोधन सभा के समक्ष हों। अतः इस प्रकार के संशोधनों के बारे में आपको अपना निर्णय शिथिल करना होगा और उस काल के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी संशोधनों पर संशोधन रखने का हमें अवसर देना होगा।

***अध्यक्ष:** अवश्य।

***श्री हुसैन इमाम:** तीसरी बात जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं वह भाषा की समस्या है जिसको सुखद रूप में निपटाया जा सकता है यदि हमारे उन समस्त मित्रों की जो हिन्दी अनुवाद में रुचि रखते हैं, आरम्भ से ही एक समिति बना दी जाये और जो अनुवाद कार्य शुरू कर दे अथवा किसी हिन्दी अनुवाद को हमारे सामने उपस्थित करे। संशोधन भी हिन्दी में भेजे जा सकते हैं यदि कार्यालय उनके अंग्रेजी अनुवाद का भी हमारे लिये प्रबंध कर सके। इस प्रकार हम दोनों लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगे। विधान-परिषद् द्वारा स्वीकृत किसी भी भाषा में संशोधन भेजा जा सकता है, यदि साथ ही उसका अनुवाद भी कार्यावलि में दिया जाये।

श्रीमान् जी, चौथी बात जिस पर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं यह है कि विधान तब तक के लिये बनाया जा रहा है जब तक कि वह हमारे आशय की पूर्ति करे—मैं तो यह नहीं कहूंगा कि पीढ़ियों तक के लिये बनाया जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने विधान में संशोधन किये हैं। लगभग 20 संशोधन तो हो भी चुके हैं। वहां बड़ी कठिन विधि है। आपको स्मरण होगा कि वहां केवल यही आवश्यक नहीं कि दोनों आगारों द्वारा संशोधन को स्वीकार किया जाये, बल्कि यह भी आवश्यक है कि उसे संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रत्येक इकाई भी स्वीकार करे। हमारी स्थिति इतनी बुरी नहीं है। परन्तु श्रीमान् जी, एक

[श्री हुसैन इमाम]

बात है जिसके लिये मैं आपका अनुग्रह चाहता हूं और वह है वर्तमान अथवा नये प्रान्तों की सीमा का प्रश्न।

श्रीमान् जी, विधान निर्माण के पश्चात् यह विषय इतना जटिल हो जायेगा कि इस विषय में कुछ भी करना असम्भव सा हो जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। यदि सभा की यह इच्छा है कि वर्तमान सीमाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन होना चाहिये तो यह ठीक और उचित होगा कि अवकाश के पश्चात् आगामी अधिवेशन में विधान को अन्तिम रूप देने के पूर्व हम प्रान्तों के उस चित्र का कुछ अनुमान कर लें जो निकट भविष्य में होगा।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से इस सुझाव को रखने का समय अभी नहीं आया है। हमने जो कमीशन नियुक्त किया था उसकी रिपोर्ट की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं और उसी समय हम इस पर विचार करेंगे।

***श्री हुसैन इमामः** अन्तिम रूप देने के पूर्व जब वह रिपोर्ट सामने होगी तो उसकी सिफारिशों में हम संशोधन कर सकेंगे। मैं तो सभा का ध्यान इस विषय की आवश्यकता की ओर आकर्षित करना चाहता हूं और इस ओर कि इस विषय पर पूर्ण विचार हो और इसको अन्तिम रूप दिया जाये।

श्री आर.वी. धुलेकरः श्रीमान् जी, जो केवल दो घंटे का समय कल दिन भर साधारण चर्चा के लिये हम लोगों को दिया जायेगा, उसके लिए मेरा निवेदन है कि यह समय बहुत कम है। अमेंडमेंट तो सैकड़ों आयेंगे, वह तो दूसरी बात है। लेकिन यदि प्रत्येक मेम्बर को कोई अवसर मिल जाता है अपने विचारों को प्रकट करने का तो फिर थोड़े दिनों की चर्चा के बाद जो संशोधन आते हैं, उन में परिवर्तन हो जाता है। संशोधन बहस में नहीं आते हैं। इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि यदि तीन-चार रोज का समय हमको दे दिया जाये और प्रत्येक सदस्य के लिये यह नियम करार दिया जाये कि वह पंद्रह मिनट से अधिक न बोले, तो प्रत्येक सदस्य को यह संतोष होगा कि उसने इस विधान के बनाने में जो उसका परिश्रम था, वह आपके सामने भवन में पेश कर दिया। इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि जो एक दिन का समय जो केवल पांच घंटे का है और यदि हमारे डा. अम्बेडकर साहब ने आज कहीं चार बजे इसको आरम्भ किया और कल

आधा समय उन्होंने ले लिया, तो फिर हमको कुछ समय नहीं मिलेगा। इसलिए मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि हमको इस बड़े भारी महत्त्वपूर्ण विधान पर कहने का अवसर दिया जाये, यह विधान का अवसर बार-बार नहीं आता है और प्रत्येक मनुष्य की यह आकांक्षा होती है कि वह अपने देश और राष्ट्र के लिए जो कुछ उसको कहना है, वह कहे। मैं आपसे यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि जो बातें हम यहां पर कहते हैं, वह बातें केवल यहां ही के लिए नहीं हैं और न वह बातें वर्तमान समय के लिए ही हैं। जो मनुष्य यहां कुछ कहते हैं, वह सौ, दो सौ, चार सौ वर्ष के बाद भी पढ़ा जाता है और लोग यह जानते हैं कि अमुक बात को हमारे पूर्वजों ने एक समय पर एक बात कही थी। उसका अर्थ हमारे सामने क्या आता है। इसलिए मैं समझता हूं कि आप, श्रीमान जी, हम सदस्यों को बड़ा ही अनुगृहीत करेंगे और कम से कम चार दिन अवश्य ही देंगे। हम प्रत्येक सदस्य केवल पंद्रह मिनट चाहते हैं और मैं आपको और सज्जनों की तरफ से भी कहना चाहता हूं कि यदि आपने हमको वह अवसर दिया तो हम एक जगह बैठ कर जो सैकड़ों संशोधन आयेंगे, उनको हम तय कर लेंगे और इस भवन के सदस्य इस बात में आपकी सहायता करेंगे कि जल्द से जल्द यह विधान बन जाये।

अध्यक्षः हम इस पर विचार कर लेंगे। जितना समय इस वक्त प्रीलिमिनरी बहस में लग रहा है, वह उस असली बहस के वक्त में से कटता जा रहा है। इसलिये मैं दरख्वास्त करूंगा कि आप मेहरबानी करके असली काम को शुरू होने देंगे।

श्री ठाकुरदास भार्गवः जनाब-माननीय प्रेजीडेंट साहब, सबसे अव्वल मैं जनाब की खिदमत में यह दर्यापत करना चाहता हूं कि आया डा. अम्बेडकर साहब ने कोई नोटिस दफा 38-एल दिया है। या कोई नोटिस उन्होंने पेश नहीं किया। अपने इस इरादे का कि वह इस कान्स्टीट्यूशन को इन्ट्रोड्यूस करना चाहते हैं। यह मैं बतौर इन्फार्मेशन पूछना चाहता हूं क्योंकि ऐसा नोटिस देना लाजिमी है। अगर नोटिस नहीं दिया गया है तो मुझे डर है कि वह मोशन ऑफ कन्सीड्रेशन नहीं कर सकते। नोटिस बरूये कायदा पांच दिन का होना चाहिये।

अध्यक्षः जी हां, उसमें आ गया है, पच्चीस तारीख के एजेंडे में आ गया है। जो रीड्राफ्ट है वह सब अमेंडमेंट फिर से लिये जायेंगे।

श्री ठाकुरदास भार्गवः दूसरी बात जो मैं आपकी खिदमत में अर्ज़ करना चाहता हूं दफा 38-एम के तहत में है। हमको ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन की कापी जो रीड्राफ्ट दी गई है, वह आज उस वक्त दी गई है जब आप लंच के लिये एडजौर्न कर रहे थे, हालांकि हमको इससे बहुत पहले मिलनी चाहिये थी। मेरा जहां तक ख्याल है, सब मेम्बरान साहब को यह कापी अभी तक नहीं मिली हैं। बजरिए कायदा 38-एम अजकम तीन दिन पहले मिलना चाहिये थी; खसूसन जब कि इस कापी में बहुत से नये अमूर, मुतल्लिक नये रिपोर्ट दर्ज हैं। जब तक कि यह काफी अच्छी तरह से पढ़ी न जाये और मुताल्ला न किया जाये, तरमीम कैसे भेजी जा सकती है।

अध्यक्षः किस कापी का जिक्र आप कर रहे हैं? जो ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन 26 फरवरी को आप लोगों के सामने डा. अम्बेडकर ने पेश किया था और जो बांटा गया था, उस ड्राफ्ट को वह पेश करेंगे और उसमें जो अमेंडमेंट होंगे वह बतौर अमेंडमेंट के आयेंगे और वह ड्राफ्टिंग कमेटी की तरफ से अमेंडमेंट होंगे।

श्री ठाकुरदास भार्गवः तीसरी चीज जो मैं अर्ज करना चाहता हूं वह बहुत अदब व जोर से कहना चाहता हूं। और वह 38-ओ के interpretation के मुताल्लिक है। मेरी राय में अलफाज मुदर्ज़ा 38-ओ two clear days before the day on which Constitution is to be considered का ये interpretation दुरुस्त नहीं है कि तमाम तरामीम इतवार की शाम को पांच बजे तक पहुंच जानी चाहिये। क्योंकि कान्स्टीट्यूशन सिर्फ नौ नवम्बर को ही consider न होगा। बल्कि आयन्दा भी हर तारीख पर जब तक उसके clauses पर बहस होंगी, consider किया जाता रहेगा। और आयन्दा तारीख-हाय भी ऐसे होंगे जिनकी निस्बत कहा जा सके कि फलां तारीख को Constitution consider किया जायेगा। ऐसी सूरत में मेम्बरान को पूरा हक होना चाहिये कि वे तरमीम पर बहस होने की तारीख से दो रोज पहले तक अपने तरामीम भेज सकें।

अध्यक्षः हम लोग इस मामले में अभी कोई फैसला नहीं करते।

श्री ठाकुरदास भार्गवः मैं जानता हूं कि आपकी ख्वाहिश है कि मेम्बरान को पूरा मौका बहस का दिया जाये और उनका तरामीम भेजने का हक कायम रखा जाये, और जहां तक आपके discretion के इस्तेमाल का सवाल है, सब

मुतमईन हैं, लेकिन मेरी राय नाकिस में सवाल discretion का पैदा नहीं होता, क्योंकि interpretation के रूप से जो मैं कर रहा हूं, बतौर हक के हर एक मेम्बर तरमीम भेज सकता है। यही मंशा रूल 38-पी, 38-क्यू से पाया जाता है। आपके इतवार के पांच बजे तक तरामीमें भेजने के हुक्म से एक तरह से *prima facie* फैसला मेम्बरान के खिलाफ होता है, जो मुनासिब नहीं है। यह हुक्म review होना चाहिये। अगर आप इस वक्त इस अमर का फैसला नहीं करना चाहते तो बेशक न करें। गो यह हुक्म एक तरह से incidentally इस अमर का फैसला करता है। मेरी राय नाकिस में बिला इस हुक्म को review करने के ही अगर आप बजाय सात के दस तारीख तक तौसीह फरमा दें और फिर जब मौका मरहला हो, इस सवाल का फैसला कर दें तो किसी मेम्बर को शिकायत का मौका न रहेगा।

***श्री टी. चन्निया** (मैसूर): मैं आपके सामने औचित्य प्रश्न रखना चाहता हूं। श्रीमान् जी, बहुत से माननीय सदस्य बोल चुके हैं; वे अंग्रेजी भाषा भली प्रकार जानते हैं। आपको यह सूचना देते हुये हमें बड़ा खेद है कि विशेषकर मद्रास, बंगाल, बम्बई, आसाम तथा अन्य अनेकों स्थानों से आये हुये सदस्यों में से अनेकों हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा को नहीं समझ सकते हैं। हमें गूंगे मनुष्यों की भांति बैठना पड़ता है। श्रीमान् जी, आप यहां समस्त सदस्यों के हितों की रक्षा करने के लिये हैं। इसलिये मैं आप से निवेदन करूंगा कि आप उन सदस्यों से जो अंग्रेजी भाषा जानते हैं और बोल सकते हैं अंग्रेजी में ही बोलने को कहें।

विधान के मसौदे पर प्रस्ताव

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अब हमें वाद-विवाद प्रारंभ कर देना चाहिये। मैं डा. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं कि वे अपने प्रस्ताव को उपस्थित करें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसविदा समिति द्वारा तय किये हुए विधान के मसविदे को मैं सभा के समक्ष उपस्थित करता हूं और प्रस्ताव करता हूं कि इस पर विचार किया जाये।

ता. 29 अगस्त, 1947 ई. को विधान-परिषद् ने एक प्रस्ताव पास करके मसविदा समिति को नियुक्त किया था।

विधान-परिषद के निर्णयानुसार मसविदा समिति को यह भार दिया गया था कि वह परिषद् द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों—जैसे कि संघ-शासन-समिति,

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

संघ-विधान-समिति, प्रांतीय विधान-समिति तथा मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों, एवं कबायली क्षेत्रों के लिये नियुक्त परामर्शदातृ-समिति इत्यादि—द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर एक विधान तैयार करें।

विधान-परिषद् ने उक्त समिति को यह भी आदेश दिया था कि कतिपय विषयों में वह भारत सरकार के 1935 के एक्ट में दी हुई प्रावधानों का ही अनुगमन करे। मुझे आशा है कि सिवाय उन बातों के जिनका हवाला मैंने 21 फरवरी सन् 1948 ई. के अपने पत्र में दिया था जिसमें मैंने बताया था कि मसविदा समिति ने वहां मार्गान्तर ग्रहण किया है और क्या उसने विकल्प सुझाये हैं, आप यही पायेंगे कि मसविदा समिति ने आपके सभी आदेशों का पालन सच्चाई से किया है।

विधान का यह मसविदा जो कि मसविदा समिति के विचार-विमर्श के बाद तय हुआ है, एक महान् प्रलेख है। इसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं यह मानना होगा कि किसी भी देश का विधान इतना बृहत् नहीं है जितना कि इस विधान का मसविदा है। जिन्होंने इसको पूरी तरह से नहीं पढ़ा है उनके लिए इसकी प्रमुख विशेषताओं को समझना कठिन है।

आज आठ महीनों से विधान का प्रस्तुत मसविदा देश के सामने है। इस दीर्घ काल में, मित्र आलोचक एवं विरोधी, सभी को इसमें दिये हुए प्रावधानों के प्रति अपने विचार व्यक्त करने के लिए काफी, बल्कि काफी से भी ज्यादा समय मिला है। मैं साहसपूर्वक कहता हूं कि बहुतों की आलोचना का कारण यह है कि वे अनुच्छेदों को पर्याप्त रूप से नहीं समझ पाये हैं और उनके अर्थ के सम्बंध में उनको गलत-फ़हमी हुई है। जो भी हो, इसकी आलोचनायें हुई हैं और उनका उत्तर देना ही होगा।

उक्त दोनों कारणों से यह आवश्यक है कि इस पर विचार करने का प्रस्ताव रखते हुए मैं विधान की मुख्य विशेषताओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूं और इनके विरुद्ध की हुई आलोचनाओं का उत्तर दूं।

ऐसा करने से पहले मैं चाहता हूं कि विधान-परिषद् द्वारा नियुक्त तीन समितियों की—चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों की समिति, संघ तथा उसके विभिन्न इकाइयों के पारस्परिक आर्थिक सम्बंध निर्धारित करने के लिए नियुक्त विशेषज्ञ समिति एवं कबायली क्षेत्रों के लिए नियुक्त परामर्श-दातृ समिति—रिपोर्टें में सभा के समक्ष

उपस्थित करूं। ये रिपोर्टें इतने विलम्ब से निकली कि परिषद् उन पर विचार नहीं कर सकी यद्यपि इनकी प्रतियां परिषद् के सदस्यों के पास भेजी जा चुकी हैं। इन रिपोर्टों पर तथा इनमें दी हुई सिफारिशों पर मसविदा समिति विचार कर चुकी है, इसलिए यह उचित है कि यह रिपोर्टें सभा के सामने रस्मी तौर से उपस्थित कर दी जायें।

अब मैं मुख्य प्रश्न की ओर आता हूं। अगर आप इस विधान की एक प्रति विधान सम्बन्धी कानून के किसी विद्यार्थी को दें तो अवश्य ही वह दो बातें पूछेगा। पहली बात यह कि इस विधान में किस प्रकार की सरकार (Government) की कल्पना की गई है और दूसरी बात वह यह पूछेगा कि विधान का स्वरूप क्या है? क्योंकि यही दो गंभीर विषय हैं जिनके सम्बन्ध में प्रत्येक विधान को सोचना और निर्णय देना पड़ता है। अब मैं पहले प्रश्न को लेता हूं।

इस मसविदे में भारतीय संघ के प्रमुख के रूप में एक अधिकारी रखा गया है जो भारतीय संघ का प्रधान (President) कहलायेगा। इस अधिकारी की इस उपाधि से अमेरिका के प्रेसीडेंट का स्मरण हो आता है। किन्तु इस नाम-सादृश्य के अतिरिक्त, अमेरिका की सरकार के स्वरूप में तथा इस मसविदे में प्रस्तावित सरकार के स्वरूप में और कोई समानता नहीं है।

अमेरिका की सरकार का जो स्वरूप है वह प्रेसीडेंट-प्रधान है और वह प्रेसीडेंशियल सिस्टम की शासन पद्धति कही जाती है। इस मसविदे में जो शासन पद्धति प्रस्तावित की गई है, वह है पार्लियामेंटरी शासन पद्धति। शासन सम्बन्धी इन दोनों प्रणालियों में मौलिक अन्तर है। अमेरिका की प्रेसीडेंशियल पद्धति में प्रेसीडेंट अधिशासी वर्ग का प्रधान है। शासन का समस्त अधिकार उसको प्राप्त है। इस मसविदे के अनुसार हमारे प्रेसीडेंट का वही स्थान है जो अंग्रेजी विधान के अंतर्गत सम्राट का है। वह राज्य का प्रधान है, किन्तु अधिशासी वर्ग का प्रधान नहीं है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, पर राष्ट्र पर शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है, शासन के मामले में उसका स्थान यही है कि वह अपनी मुहर की छाप से राष्ट्र के निर्णयों को ज्ञापित करता है। अमेरिकन विधान के अंतर्गत प्रेसीडेंट के अधीन कई सेक्रेटरी होते हैं जो भिन्न-भिन्न विभागों के अधिकारी होते हैं।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इसी प्रकार भारतीय संघ के प्रेसीडेंट के अधीन शासन के विभिन्न विभागों के अधिकारी मंत्री होंगे। यहां भी इन दोनों प्रणालियों में एक मौलिक अन्तर है। अमेरिका के प्रधान के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी मंत्री की राय को माने ही। किन्तु भारतीय संघ के प्रेसीडेंट के लिए अपने मंत्रियों की राय मानना साधारणतः आवश्यक होगा। वह उनकी राय के प्रतिकूल कुछ नहीं कर सकता और न बिना उनकी राय लिये ही कुछ कर सकता है। अमेरिका का प्रेसीडेंट किसी भी क्षण किसी भी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है। किन्तु भारतीय संघ के प्रेसीडेंट को ऐसा करने का अधिकार तब तक नहीं है जब तक कि पार्लियामेंट में मंत्रियों को बहुमत प्राप्त है।

अमेरिका की प्रेसीडेंशियल प्रणाली इस आधार पर निर्मित है कि वहां अधिशासी वर्ग तथा विधान मंडल में पार्थक्य रखा गया है, जिससे कि प्रेसीडेंट और उसके मंत्री कांग्रेस के सदस्य नहीं हो सकते। अपना मसविदा इस पार्थक्य के सिद्धांत को नहीं स्वीकार करता है। भारतीय संघ के मिनिस्टर पार्लियामेंट अर्थात् विधान मंडल के सदस्य हैं। यहां तो केवल विधान मंडल के सदस्य ही मंत्री हो सकते हैं। यहां मंत्रियों को वही अधिकार प्राप्त है जो कि विधान मंडल के अन्य सदस्यों को प्राप्त है, अर्थात् वे विधान मंडल की सभा में बैठ सकते हैं, वहां के वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं और कार्यवाही के सम्बन्ध में अपना मत दे सकते हैं। अवश्य ही ये दोनों शासन पद्धतियां गणतंत्रीय हैं और इन दोनों में किसको चुना जाये यह तय करना आसान नहीं है। गणतंत्रीय अधिशासी वर्ग (executive) के लिये यह आवश्यक है कि उसमें ये दो बातें अवश्य हों:

(1) उसमें स्थैर्य होना चाहिए और (2) उसका दायित्व पूर्ण होना नितांत आवश्यक है।

दुर्भाग्य ये अब तक ऐसी कोई प्रणाली नहीं निकाली जा सकी है जिसमें स्थिरता तथा दायित्वपूर्णता, ये दोनों ही गुण समान रूप में पाये जा सकते हों। ऐसी प्रणाली तो आप पा सकते हैं जिसमें स्थैर्य अधिक हो पर दायित्व कुछ कम हो या ऐसी प्रणाली जिसमें दायित्व कुछ अधिक मात्रा में हों पर स्थैर्य कम हो। अमेरिका की

तथा स्विट्जरलैंड की प्रणालियों में स्थैर्य अधिक है, पर दायित्व कम। इसके प्रतिकूल ब्रिटिश प्रणाली में आप दायित्व अधिक पायेंगे, पर स्थिरता कम। इसका कारण स्पष्ट है। अमेरिका का अधिशासी वर्ग पार्लियामेंटरी पद्धति का नहीं है, इसलिए उसके अस्तित्व के लिए वहां की कांग्रेस (विधान मंडल) का बहुमत अपेक्षित नहीं है। इसके प्रतिकूल ब्रिटेन का अधिशासी वर्ग पार्लियामेंटरी पद्धति का है और इसलिए अपने अस्तित्व के लिए, वह पार्लियामेंट के बहुमत पर निर्भर करता है। अमेरिकन कांग्रेस वाले अधिशासी वर्ग (executive) को बरख्वास्त नहीं कर सकती, क्योंकि वह पार्लियामेंटरी पद्धति का नहीं है।

पार्लियामेंटरी सरकार को तो उसी वक्त इस्तीफा दे देना होगा जब पार्लियामेंट के बहुमत का उस पर विश्वास न रह जाये। दायित्व के दृष्टिकोण से विधान मंडल के प्रति अ-पार्लियामेंटरी अधिशासी कम दायित्वपूर्ण होता है, क्योंकि अपने अस्तित्व के लिए वह विधान मंडल पर निर्भर नहीं रहता। इसके प्रतिकूल पार्लियामेंटरी अधिशासी विधान मंडल के प्रति अधिक दायित्वपूर्ण होता है क्योंकि उसके अस्तित्व के लिए पार्लियामेंट का बहुमत अपेक्षित है। पार्लियामेंटरी और अ-पार्लियामेंटरी पद्धतियों में यह अन्तर है कि पहली दूसरी से अधिक दायित्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त उनके दायित्व का माप-जोख कब-कब किया जाये और उसे कौन करे; इस सम्बन्ध में भी दोनों में अन्तर है। अ-पार्लियामेंटरी पद्धति में जैसी कि अमेरिका में है, अधिशासी वर्ग के दायित्व का माप-जोख एक नियमित काल के बाद हुआ करता है। वहां दो साल में एक बार निर्वाचक समुदाय अधिशासी वर्ग के दायित्व के सम्बन्ध में निर्णय करता है। उसके प्रतिकूल इंग्लैंड में जहां पार्लियामेंटरी पद्धति चलती है, नियमित काल पर और प्रत्येक दिन—दोनों तरह—अधिशासी वर्ग के दायित्व के सम्बन्ध में निर्णय किया जाता है। दैनिक निर्णय तो पार्लियामेंट के सदस्य, प्रश्न, प्रस्ताव, अविश्वास-प्रस्ताव, स्थगन-प्रस्ताव तथा अभिभाषणों (Addresses) पर वाद-विवाद द्वारा करते हैं, और नियमित काल पर जो निर्णय होता है वह निर्वाचक चुनाव के समय करते हैं जो कि हर पांचवें साल या उससे पूर्व भी हो सकता है। अमेरिकन शासन पद्धति में अधिशासी वर्ग के दायित्व की दैनिक छानबीन नहीं होती। लोगों का अनुभव है कि भारत जैसे देश में अधिशासी वर्ग के दायित्व की दैनिक छानबीन बहुत ही आवश्यक है और एक नियत कालिक छानबीन से वह कहीं अधिक प्रभावी है। प्रस्तुत विधान में स्थैर्य से दायित्व को अधिक आवश्यक समझा गया है और इसीलिए इसमें पार्लियामेंटरी पद्धति की सिफारिश की गयी है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

यहां तक तो मैंने यह बतलाया कि प्रस्तुत विधान में कौन सी शासन पद्धति रखी गई हैं अब मैं दूसरे प्रश्न की ओर आता हूं, अर्थात् विधान के स्वरूप की ओर।

अब तक इतिहास में विधान के दो ही मुख्य स्वरूप आये हैं। एक है एकात्मक (Unitary) और दूसरा संघात्मक (Federal)। एकात्मक विधान में दो मुख्य विशेषतायें होती हैं एक तो यह कि केंद्रीय शासन नीति की उसमें प्रधानता रहती है और दूसरी विशेषता उसकी यह होती है कि उसमें उपसत्तात्मक राज्यों का कोई अस्तित्व नहीं होता, अर्थात् उसमें सत्तात्मक उपराज्य नहीं होते। इसके प्रतिकूल संघात्मक विधान की विशेषता यह है कि केन्द्र के साथ-साथ उसमें सत्तात्मक उपराज्य भी होते हैं और दोनों को ही अपने-अपने क्षेत्रों में जो उनको सौंपे गये हैं, पूर्ण सत्ता प्राप्त रहती है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि संघात्मक विधान का अर्थ है द्वै-राज्य की स्थापना। अपना प्रस्तुत विधान इस अर्थ में संघात्मक विधान है कि यह ऐसी राज्य व्यवस्था स्थापित करता है जिसे हम द्विमुखी राज्य-व्यवस्था कह सकते हैं प्रस्तुत विधान की द्विमुखी राज्य-व्यवस्था के अन्दर संघ राज्य है तथा अन्य प्रादेशिक राज्य हैं और इन दोनों को ही प्रभुता प्राप्त है जिसका प्रयोग ये विधान द्वारा सौंपे गये अपने-अपने विषयों में कर सकते हैं। अमेरिका की राज्य व्यवस्था भी एक द्विमुखी राज्य-व्यवस्था है जिसमें एक तरफ तो संघ सरकार है और दूसरी तरफ कई राज्य हैं, इसी तरह हमारे विधान में भी एक केन्द्रीय संघ सरकार तथा अन्य प्रादेशिक राज्यों की व्यवस्था है। अमेरिकन विधान के अनुसार, वहां की संघ सरकार, वहां के राज्यों का केवल संघ मात्र नहीं है और न-वहां के प्रादेशिक राज्य ही संघ सरकार की महज शासन सम्बन्धी इकाइयां हैं। इसी प्रकार इस विधान में प्रस्तावित संघ सरकार न केवल राज्यों का संघ मात्र है और न विभिन्न प्रादेशिक राज्य ही संघ सरकार की केवल शासनात्मक इकाइयां हैं। भारतीय और अमेरिकन विधान की समरूपता इन्हीं बातों तक सीमित है। पर इन दोनों विधानों में जो अन्तर है वह इनकी समानताओं से कहीं अधिक मौलिक और सुस्पष्ट है।

अमेरिकन संघ तथा भारतीय संघ में जो विभिन्नता है वह मुख्यत: दो बातों में है। अमेरिका में द्विमुखी राज्य-व्यवस्था के साथ-साथ दो प्रकार की नागरिकता भी है और दूसरी राज्यों को भी अपनी-अपनी नागरिकता है। अवश्य ही उस दो प्रकार की नागरिकता में जो कठिनतायें हैं उनको अमेरिकन विधान के 14वें संशोधन द्वारा बहुत कुछ दूर कर दिया गया है। इस संशोधन द्वारा राज्यों पर यह प्रतिबंध लगा दिया गया है कि वे अमेरिकन संघ के नागरिकों के अधिकार, विशेषाधिकार या विमुक्तियों का अपहरण नहीं कर सकते। पर साथ ही यह भी है, जैसा कि मि. विलियम एन्डरसन ने बताया है, कि कतिपय राजनीतिक विषयों में, जिसमें मतदान का तथा सरकारी ओहदों के धारण करने का अधिकार भी शामिल है, रियासतें अपने नागरिकों के पक्ष में भेदभाव की नीति जरूर बरतती है। बहुत से मामलों में तो यह पक्षपात बहुत दूर तक बरता जाता है। उदाहरणार्थ, किसी रियासत में या स्थानीय सरकार में नियुक्ति पाने के लिए, बहुत से स्थानों में, यह जरूरी कर दिया गया है कि उम्मीदवार वहां का ही नागरिक या निवासी हो। इसी तरह कानून और चिकित्सा सम्बन्धी सार्वजनिक पेशों का लाइसेंस पाने के लिए भी रियासत की नागरिकता या निवास प्राय: आवश्यक है। इसी प्रकार व्यवसाय में भी—जैसे कि मदिरा बिक्री का काम या बांड या स्टाक के बिक्री का काम, जहां सरकारी नियमों की कठोरता जरूरी होती है, यही प्रतिबंध लागू हैं।

प्रत्येक रियासत को उन मामलों में जो उसको सौंपे गये हैं, अपने नागरिकों को विशेष सुविधा प्रदान करने के लिये भी कतिपय अधिकार प्राप्त हैं। इस प्रकार शिकार करना और मछली मारना ये दोनों ही बातें एक तरह रियासतों के अधिकार में हैं।

वहां रियासतों में यह प्रचलित है कि वे शिकार खेलने और मछली मारने के लाइसेंस के लिये जो फीस अपने नागरिकों से लेते हैं। उससे कहीं ज्यादा बाहर वालों से लेते हैं। इसी प्रकार रियासतें अपने कॉलेज और विश्वविद्यालयों का शुल्क भी बाहर वालों से ज्यादा लेती हैं और अपने अस्पतालों या आश्रम स्थानों में भी केवल अपने नागरिकों को ही भरती करती हैं। हां, आकस्मिक या संकटकालीन स्थिति में वह बाहर वालों को भी वहां भरती कर लेती है। सारांश यह है कि

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कई ऐसे अधिकार है जो वहां की रियासतें केवल अपने नागरिकों या निवासियों को ही देती हैं और जिन्हें वह बाहर वालों को देने से कानूनन इन्कार कर सकती है, और करती हैं, अथवा उनके अधिकारों को वे बाहर वालों को ज्यादा सख्त शर्तों पर ही देती हैं। ये सुविधाएं जो रियासत के नागरिकों को प्राप्त होती हैं, रियासत की नागरिकता के विशेषाधिकार हैं। इन सब बातों को देखते हुए, कहना होगा कि वहां रियासत के नागरिकों के एवं बाहर वालों के अधिकारों में बड़ा अन्तर है। यात्री और अस्थायी प्रवासियों को वहां सर्वत्र कुछ न कुछ विशेष असुविधाओं का शिकार होना ही पड़ता है।

इसके प्रतिकूल प्रस्तुत विधान में द्विमुखी राज्य-व्यवस्था तो रखी गई है पर नागरिकता एक ही है। इसमें समस्त भारत के लिये एक ही नागरिकता की व्यवस्था है, और वह है भारतीय नागरिकता। प्रादेशिक राज्यों की पृथक नागरिकता नहीं है। प्रत्येक भारतीय को चाहे वह किसी भी प्रादेशिक राज्य का ही, नागरिकता का समान अधिकार प्राप्त है।

प्रस्तुत भारतीय विधान में जो द्विमुखी राज्य-व्यवस्था रखी गई है वह अमेरिका की द्विमुखी व्यवस्था से एक और तरह से भी भिन्न है। अमेरिका की संघ सरकार तथा रियासतों के विधान आपस में एक ढीली गांठ से बंधे हुए हैं। इन दोनों के परस्पर सम्बंध को बताते हुए ब्राइस ने कहा है:

> ''अमेरिका की केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकार तथा वहां की रियासती सरकारों की तुलना हम एक विशाल इमारत तथा अन्य छोटी-छोटी अनेक इमारतों से कर सकते हैं, जो बनी तो है विशाल इमारत की आधार भूमि पर ही, लेकिन उससे भिन्न है।''

केन्द्रीय सरकार और रियासती सरकारों में क्या विभिन्नता है, इसका आभास निम्नलिखित बातों से मिलेगा।

(1) इस शर्त्त के अधीन रहते हुए कि वे गणतंत्रीय सरकार की स्थापना करेंगी, अमेरिका की प्रत्येक रियासत को अपना विधान बनाने की स्वतंत्रता है।

(2) अपना विधान बदलने का अधिकार वहां की रियासतों की जनता के हाथ में है और इस मामले में राष्ट्रीय सरकार का उन पर कोई अंकुश नहीं है।

यहां मैं पुन: मिस्टर ब्राइस के शब्दों को उद्धृत करूंगा।

''अमेरिका की प्रत्येक रियासत का अस्तित्व, उसके विधान के अनुसार एक कामनवेल्थ के रूप में है और रियासत के कानून, प्रबंध तथा न्याय सम्बन्धी सभी प्राधिकारी, रियासती विधान की प्रजा है और उसी विधान के अधीन है।''

अपने भारतीय विधान में यह बात नहीं है। यहां तो किसी भी प्रादेशिक राज्य को (भाग 1 में उल्लिखित राज्यों को तो बिलकुल ही) अपना विधान बनाने का अधिकार नहीं है। संघ एवं प्रादेशिक राज्यों के विधान का एक ही ढांचा है जिसके अन्दर ही दोनों को काम करना है और वे उसके बाहर नहीं जा सकते।

यहां तक तो मैंने आपका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि अमेरिकन संघ और भारतीय संघ में अन्तर क्या है। किन्तु इसके अतिरिक्त प्रस्तावित भारतीय संघ में कुछ ऐसी भी विशेषताएं हैं जो अमेरिकन संघ में ही नहीं बल्कि दुनिया के अन्य किसी भी संघ राज्य में नहीं है। अमेरिकन संघ का तथा अन्य सभी संघ राज्यों का विधान एक ऐसे कठोर संघात्मक ढांचे में रखा गया है कि वे अपने स्वरूप को कभी बदल नहीं सकते चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो। किसी भी हालत में इनकी राज्य-व्यवस्था एकात्मक या केन्द्र प्रधान नहीं हो सकती। इसके प्रतिकूल हमारा विधान समय, परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार एकात्मक या संघात्मक दोनों ही प्रकार का हो जा सकता है। यह इस प्रकार का है कि साधारण समय में राज्य व्यवस्था संघात्मक पद्धति पर चलाई जा सकती हैं किन्तु युद्ध काल में, प्रस्तुत विधान इस प्रकार का बना है कि, राज्य-व्यवस्था केन्द्रात्मक पद्धति पर चलाई जा सकती है। ज्योंही प्रधान उक्त आशय की घोषणा करेगा, जिसका कि उसे प्रस्तुत विधान के अनुच्छेद 275 के अनुसार अधिकार है, हमारी समस्त राज्य-व्यवस्था संघात्मक से बदलकर तत्क्षण केन्द्रात्मक बन जायेगी। घोषणा द्वारा भारतीय संघ, अगर वह चाहे तो ये अधिकार स्वयं अपने हाथ में ले सकता है। (1) किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार चाहे वह विषय रियासती सूची में ही हो। (2) प्रादेशिक राज्यों को, इस बात के सम्बन्ध में आदेश जारी

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

करने का अधिकार, कि वे उन मामलों में जो उनके सुपुर्द हैं, अपनी अधिशासी शक्ति (executive power) का प्रयोग किस प्रकार करें। (3) किसी प्राधिकारी को किसी भी प्रयोजन के लिये शक्ति प्रदान करने का अधिकार, तथा (4) विधान में रखी हुई अर्थ सम्बन्धी व्यवस्थाओं के स्थगन का अधिकार।

संघात्मक राज्य-व्यवस्था को बदलकर केन्द्रात्मक बनाने का अधिकार किसी भी संघ राज्य को नहीं है। हमारे विधान के अन्दर प्रस्तावित संघ राज्य में तथा अन्य संघ राज्यों में जो विभिन्नता है उसके सम्बन्ध में एक बात तो यह हुई।

किन्तु भारतीय संघ में तथा अन्य संघ राज्यों में विभिन्नता केवल इसी एक बात की नहीं है। संघ मूलक राज्य पद्धति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह अगर बिलकुल जर्जरी भूत नहीं तो एक दुर्बल व्यवस्था अवश्य है। कहा जाता है कि उसमें दो कमजोरियां हैं। एक कमजोरी तो यह है कि उसमें बड़ी अपरिवर्तनशीलता तथा वैधावैध विचार बाहुल्यता है। यह निर्विवाद कि संघ मूलक राज्य-व्यवस्था में ये दोनों त्रुटियां स्वाभाविक हैं। संघात्मक विधान स्वाभाविक है कि, लिपिबद्ध विधान होगा और लिपिबद्ध विधान की अपरिवर्तनशीलता निश्चित है। संघात्मक विधान में सत्ता संघ सरकार और रियासतों के बीच बंट जाती है और इस बंटवारे का सम्पादन स्वयं विधान के कानून द्वारा होता है। इस सत्ता विभाजन के फलस्वरूप दो बातें निश्चित हैं। एक तो यह कि अगर संघ सरकार उन मामलों में हस्तक्षेप करे जिनके सम्बन्ध में सत्ता रियासतों को प्राप्त है अथवा कोई रियासत उन मामलों में हस्तक्षेप करे जिनके सम्बन्ध में सत्ता संघ सरकार को प्राप्त है तो यह विधान का उल्लंघन करना है और दूसरी बात यह कि ऐसे विधानोल्लंघन के सम्बन्ध में न्याय सम्बन्धी कार्रवाई की जा सकती है और इसके सम्बन्ध में निर्णय केवल न्याय विभाग ही दे सकता है। संघ व्यवस्था का जब यह स्वरूप है तो संघात्मक विधान वैधावैध विचार बाहुल्यता के दोषारोप से नहीं बच सकता। संघात्मक विधान की ये त्रुटियां अमेरिकन विधान में सुस्पष्ट हैं।

जिन देशों ने बाद में चल कर संघात्मक पद्धति अपनाई है, उन्होंने संघात्मक प्रणाली की अन्तर्वर्ती अपरिवर्तनशीलता एवं वैधावैध विचार बाहुल्यता के फलस्वरूप पैदा होने वाले दोषों को लघु करने का प्रयास किया है। उदाहरण के रूप में आस्ट्रेलियन विधान का यहां उल्लेख किया जा सकता है। अपनी संघ व्यवस्था की अपरिवर्तनशीलता को कम करने के लिए आस्ट्रेलियन विधान ने इन उपायों का प्रयोग किया है:

(1) विधान ने कामनवेल्थ की पार्लियामेंट को समवर्ती विधि निर्माण की व्यापक शक्ति प्रदान की है और पृथक विधि निर्माण की अल्पशक्ति प्रदान की है, और

(2) विधान के कतिपय अनुच्छेदों को अल्पकालिक अवधि का बना दिया है और वे तभी तक प्रभावी रहेंगे जब तक कि पार्लियामेंट अन्यथा व्यवस्था न करे।

यह स्पष्ट है कि आस्ट्रेलिया विधान के अनुसार वहां की पार्लियामेंट बहुत से काम कर सकती है जो अमेरिकन कांग्रेस की क्षमता से बाहर की बात है और जिन्हें करने के लिये अमेरिकन सरकार को सुप्रीम कोर्ट का ही सहारा लेना होगा और वहां भी उसे सफलता तभी मिल सकती है जब कि वह अपनी योग्यता, बुद्धि-कौशल से ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन कर सके जो उस मामले में उसके अधिकार प्रयोग का औचित्य प्रमाणित करता हो।

संघात्मक व्यवस्था की अपरिवर्तनशीलता एवं वैधावैध विचार बाहुल्यता की कठिनाई को कम करने के लिये प्रस्तुत विधान ने आस्ट्रेलियन प्रणाली को अपनाया है और इतनी दूर तक जहां तक कि स्वयं आस्ट्रेलिया भी नहीं गया है। आस्ट्रेलियन विधान की तरह अपने विधान में भी उन विषयों की सूची बड़ी लम्बी है जिनके सम्बन्ध में विधि निर्माण का समवर्ती अधिकार है। आस्ट्रेलियन विधान में ऐसे 39 विषय हैं और अपने विधान में इनकी संख्या 37 है। आस्ट्रेलियन विधान का अनुगमन करते हुए हमने अपने विधान में भी 6 ऐसे अनुच्छेद रखे हैं जिनमें दी हुई व्यवस्थाएं अल्पकालिक अवधि की हैं जिनके स्थान पर किसी भी समय विधान मंडल अवसरानुकूल अन्य व्यवस्थाएं रख सकता है। प्रस्तुत विधान आस्ट्रेलियन विधान से भी जिस बात में आगे बढ़ गया है, वह यह है कि अपने विधान मंडल को कई विषयों में विधि निर्माण का एकमात्र अधिकार प्राप्त है। जब कि आस्ट्रेलियन पार्लियामेंट का विधि निर्माण का एकमात्र अधिकार केवल तीन विषयों तक ही सीमित है, भारतीय विधान-मंडल को, प्रस्तुत विधान के अनुसार, ऐसा अधिकार 91 विषयों के सम्बन्ध में प्राप्त है। इस प्रकार प्रस्तुत विधान ने अपनी संघात्मक राज्य व्यवस्था को, जो स्वभावतः बेलोच मानी जाती है, अधिक से अधिक लचीली बना दिया है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

यही कहना काफी नहीं है कि प्रस्तुत विधान ने आस्ट्रेलियन विधान का अनुगमन किया है या यह कि बड़े व्यापक पैमाने पर उसका अनुगमन किया है। इसमें जो विशेष बात है वह यह है कि, संघात्मक व्यवस्था की अन्तर्वर्ती त्रुटि—अपरिवर्तनशीलता और वैधावैध विचार बाहुल्यता को दूर करने के लिए इसने नवीन उपाय निकाले हैं और यह विशेषता उसकी अपनी है और अन्यत्र कहीं नहीं पाए जा सकते।

पहला उपाय यह है कि विधान ने विधान मंडल को यह अधिकार प्रदान किया है कि वह साधारण समय में एकमात्र प्रान्तीय विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण कर सकता है। मेरा संकेत है अपने विधान के अनुच्छेद 226, 227 तथा 229 की ओर। अनुच्छेद 226 के अनुसार किसी विषय के सम्बन्ध में यद्यपि वह ''राज्य सूची'' में है, संघीय विधान मंडल विधि निर्माण कर सकता है जब कि वह विषय केवल प्रान्तीय महत्त्व का न रह कर राष्ट्रीय महत्त्व का हो जाये। पर इस सम्बन्ध में शर्त यह है संघीय विधान मंडल ऐसे विषय के सम्बन्ध में विधि निर्माण तभी कर सकता है जब कि ऊपर की सभा दो तिहाई बहुमत से इसके पक्ष में प्रस्ताव पास कर दे। अनुच्छेद 227 में राष्ट्रीय संकट की स्थिति के लिए संघीय विधान मंडल को इसी प्रकार का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 229 के अनुसार यदि प्रांत इस बात से सहमत हों तो यही अधिकार संघीय विधान मंडल को प्राप्त है। यह अंतिम प्रावधान आस्ट्रेलियन विधान में भी अवश्य है पर ऊपर वाले दोनों प्रावधान भारतीय विधान के मसविदे की अपनी मुख्य विशेषता हैं।

संघात्मक विधान की परिवर्तनशीलता और उसके वैधावैध विचार बाहुल्यता को दूर करने का दूसरा उपाय जो इस विधान में अपनाया गया है, वह यह है कि विधान में सुविधापूर्वक संशोधन करने के प्रावधान इसमें रखे गये हैं संशोधन सम्बन्धी प्रावधान विधान के अनुच्छेदों को दो विभिन्न भागों में बांट देते हैं। एक भाग में वे अनुच्छेद आते हैं जिनका सम्बन्ध, विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच बंटवारा, संघीय विधान मण्डल में राज्यों के प्रतिनिधान तथा न्यायालयों के अधिकारों से है। दूसरे सभी अनुच्छेद दूसरे भाग में आते हैं। विधान का एक वृहत् अंश, दूसरे भाग में आने वाले अनुच्छेदों के अन्तर्गत आ जाता

है और संघीय विधान मंडल द्वारा दोहरे बहुमत से उसमें संशोधन किया जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक सभा के उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से तथा प्रत्येक सभा की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से उसमें संशोधन किया जा सकता है। इन अनुच्छेदों में किये गये संशोधनों के लिए राज्यों का अनुमोदन अपेक्षित नहीं है। जो अनुच्छेद पहले भाग में आते हैं, केवल उन्हीं से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों के लिए ही संरक्षण के रूप में राज्यों का अनुमोदन आवश्यक रखा गया है।

इसलिए निश्शंक होकर यह कहा जा सकता है कि भारतीय संघ को अपरिवर्तनशीलता और वैधावैध विचार बाहुल्यता की त्रुटियों से कोई कठिनाई न होगी। इसकी मुख्य विशेषता यही है कि यहां की संघात्मक व्यवस्था लचीली होगी।

प्रस्तावित भारतीय संघ की एक और विशेषता है जिसके कारण यह और संघ राज्यों से भिन्न है। संघात्मक राज्य का आधार है द्विमुखी राज्य-व्यवस्था, जिनके बीच विधि-निर्माण, शासन प्रबंध एवं न्याय संबंधी समस्त अधिकार बंटे रहते हैं। इस अधिकार-विभाजन का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि कानून, शासन एवं न्याय के संबंध में राज्य में एकरूपता नहीं रहती, विभिन्नता पैदा हो जाती है। यह विभिन्नता किसी हद तक तो उपेक्षणीय होती हैं बल्कि किसी हद तक वह अभिनन्दनीय हो सकती है, क्योंकि उसमें स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार शासन-शक्तियों को उपयोगी बनाने का प्रयास किया जाता है। किन्तु जब यह विभिन्नता एक निश्चित सीमा से आगे चली जाती है तो उसमें अव्यवस्था पैदा हो जा सकती है और कई संघ राज्यों में इससे अव्यवस्था उत्पन्न हुई भी है। मान लीजिए हमारे संघ में 20 प्रादेशिक राज्य हैं। अब आप जरा कल्पना करें कि हमारे यहां विवाह, तलाक, उत्तराधिकार के परिवार संबंध, संविदा, शारीरिक या साम्पत्तिक क्षति, अपराध, माप, बिल और चेक, बैंकिंग और व्यवसाय न्यायप्राप्ति की पद्धति तथा शासन संबंधी पद्धति एवं व्यवस्था के संबंध में 20 भिन्न-भिन्न कानून हैं तो यह विभिन्नता कितनी असुविधाजनक है। यह स्थिति न केवल राज्य को ही कमजोर बनाती है बल्कि यह नागरिकों के लिए असह्य हो जाती है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते हैं तो यह पाते हैं कि पहले

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

स्थान पर जो वैध था, वह यहां अवैध है। इस मसविदे ने ऐसे उपाय और प्रणालियों का अवलम्बन किया है जिन से भारतीय राज्य संघात्मक राज्य होने के साथ-साथ, उन सभी मामलों में, एकरूपता रखेगा, जो राज्य की एकता को स्थिर रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए मसविदे में निम्नलिखित तीन उपाय अपनाये गये हैं:

(1) राज्य भर में एक न्यायव्यवस्था।

(2) मौलिक विधियो तथा व्यवहार एवं दण्ड सम्बन्धी विधियों में एकरूपता। और

(3) आवश्यक पदों पर नियुक्ति के लिए समस्त देश में एक लोक सेवा।

संघात्मक राज्य में द्विमुखी राज्य-व्यवस्था का होना निश्चित है और ऐसी द्विमुखी राज्य-व्यवस्था के अन्दर न्याय, विधि-संहिता तथा लोक सेवा इन तीनों में द्वित्व का आना, जैसा मैं पहले बता चुका हूं, स्वाभाविक है। अमेरिका में संघीय न्यायालय तथा राज्यों के न्यायालय दोनों एक दूसरे से पृथक और स्वतंत्र हैं। भारतीय संघ में द्विमुखी राज्य-व्यवस्था तो है, पर उसमें न्याय व्यवस्था दो प्रकार की नहीं होगी, इसमें एकरूपता ही रहेगी। विभिन्न उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय दोनों संयुक्त रूप में एक अखण्ड अविभाज्य न्यायालय हैं जिन्हें सांवेधानिक विधि, व्यवहार विधि एवं दण्ड विधि से सम्बन्ध रखने वाले सभी मामलों में सुनवाई का तथा व्यवस्था देने का अधिकार रहेगा। ऐसा इसलिए किया गया है कि न्यायालयों के फैसलों में उनकी व्यवस्थाओं में विभिन्नता न रहे।

एकमात्र कैनाडा ही एक ऐसा देश है जहां ऐसी समानान्तर व्यवस्था है। आस्ट्रेलिया की व्यवस्था केवल इसके निकट तक पहुंच पाती है।

इस बात का प्रयास किया गया है कि कानूनों में जो कि नागरिक और सामाजिक जीवन के आधार हैं, कोई विषमता न रहने पाये। व्यवहार एवं दण्ड विधि संहिता को—जैसे कि व्यवहार एवं दण्ड सम्बन्धी विधियों को—जैसे कि दीवानी और फौजदारी के कानून एवं साक्ष्य, सम्पत्ति हस्तान्तरण, विवाह, तलाक तथा उत्तराधिकार

सम्बन्धी कानूनों को समवर्ती सूची में रखा है, जिससे कि संघीय प्रणाली को बिना कोई क्षति पहुंचाए, इन सभी बातों में एकरूपता रखी जा सके।

द्विमुखी राज्य-व्यवस्था में, जो संघात्मक शासन पद्धति का अन्तर्वर्ती अंग है, जैसे मैं कह चुका हूं, राजकीय सेवाओं (services) में विषमता का होना स्वाभाविक है। सभी संघ राज्यों में संघीय लोक सेवा तथा राज्यों की लोक सेवा, ये दो सेवाएं होती हैं। भारतीय संघ में भी यद्यपि यहां भी द्विमुखी राज्य-व्यवस्था है, दो ही सेवाएं होंगी, पर उसमें एक अपवाद है। यह मानी हुई बात है कि सभी देशों में शासन सम्बन्धी कितने ही ऐसे पद होते हैं, जो शासन-स्तर को समुन्नत रखने के विचार से बहुत महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इतने विशाल और जटिल शासन-व्यवस्था में ऐसे कौन-कौन से ओहदे हैं यह बताना तो आसान नहीं है, पर इसमें कोई शक नहीं कि शासन-स्तर उन राजकीय कर्मचारियों की योग्यता पर ही निर्भर करता है जो इन महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किये जाते हैं। सौभाग्य से हमने अपने पूर्ववर्ती सरकार से ऐसी शासन पद्धति प्राप्त की है जो समस्त देश में एक सी है और हमें यह मालूम है कि वह महत्त्वपूर्ण पद कौन-कौन से हैं। प्रस्तुत विधान में इस बात की व्यवस्था है कि प्रादेशिक राज्यों को अपनी लोक सेवा की रचना के अधिकार से वंचित न करते हुए एक अखिल भारतीय लोक सेवा रखी जायेगी, जिसमें समस्त देश से समान योग्यता के व्यक्तियों को समान वेतन तालिका पर भरती किया जायेगा और इस लोक सेवा के सदस्य ही समूचे संघ में सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किये जायेंगे।

अपने प्रस्तावित संघ की मुख्य विशेषताएं यही हैं, जिनका मैंने पहले उल्लेख किया है। अब मैं उन आलोचनाओं की ओर आता हूं, जो इसके सम्बन्ध में की गई हैं।

यह कहा गया है कि विधान के इस मसविदे में कोई भी नई बात नहीं है। इसमें से करीब आधा तो भारत सरकार के सन् 1935 के एक्ट से ही लेकर ज्यों का त्यों रख दिया गया है और शेष विभिन्न देशों के विधान से लिया गया है। इसमें अपनी मौलिकता बहुत कम है।

मैं पूछना चाहता हूं विश्व के इतिहास के वर्तमान काल में जो विधान बनाया जायेगा उसमें आखिर कोई क्या नई बात हो सकती है? आज करीब एक शताब्दि से कुछ अधिक समय बीत गया जबकि विश्व का पहला लिपिबद्ध विधान बना था। तब से इसी प्रथम विधान के आधार पर बहुत से देश अपने-अपने विधान

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

का निर्माण करते आ रहे हैं। विधान के दायरे में क्या-क्या बातें आनी चाहिएं, यह बात बहुत पहले ही तय हो चुकी है। इसी प्रकार सारी दुनियां में यह बात भी मान ली जा चुकी है, स्वीकार कर ली गयी है कि विधान की बुनियादी बातें क्या हैं। इन सर्वसम्मत सिद्धांतों के आधार पर जो भी विधान बनेंगे उनमें मुख्य-मुख्य प्रावधानों के सम्बन्ध में निश्चय ही सादृश्य होगा। इस युग में, इतने विलम्ब से जो विधान बनेगा उसमें अगर किसी नई बात का समावेश किया जा सकता है तो वह केवल इसी अभिप्राय से किया जा सकता है कि प्राचीन विधानों की त्रुटियों को दूर कर उसे देश की वर्तमान आवश्यकता के अनुरूप बनाया जाये। प्रस्तुत विधान अन्य देशों के विधानों की केवल नकल मात्र है, इस आरोप का निश्चय ही यही कारण है कि आलोचकों का विधान विषयक अध्ययन अपर्याप्त है। मैं यह बतला चुका हूं कि अपने विधान के मसविदे में नई बात क्या है और मुझे विश्वास है कि जिन लोगों ने अन्य देशों के विधानों का अध्ययन किया है, और इस विषय पर तटस्थ हो, शांत चित्त हो, विचार करने के लिए तैयार हैं, वे यह मानेंगे कि मसविदा-समिति पर कदापि यह दोषारोप नहीं किया जा सकता है कि विधान निर्माण में उसने आंख बंद कर गुलामों की भांति और विधानों की नकल की है जैसा कि उसके विरुद्ध कहा जाता है।

इस अभियोग के सम्बन्ध में कि इस मसविदे में भारत सरकार के 1935 के एक्ट का ही एक वृहत अंश रख दिया गया है, मुझे क्षमाप्रार्थी होने की कोई आवश्यकता नहीं। कहीं से भी कोई चीज ली जाये, इसमें लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। यह कोई साहित्यिक चोरी नहीं है। विधान की बुनियादी बातों के लिए किसी व्यक्ति को भी एकाधिपत्य नहीं प्राप्त है। मुझे दुख इस बात का है कि भारत सरकार के 1935 के एक्ट से जो प्रावधान लिये गये हैं, अधिकांशत: उनका सम्बन्ध शासन के विस्तार की बातों से है। मैं मानता हूं कि विधान में शासन सम्बन्धी ब्यौरों का कोई उल्लेख नहीं होना चाहिए। स्वयं मुझे बड़ी प्रसन्नता होती अगर मसविदा-समिति ऐसा मार्ग निकाल पाती जिससे विधान में ये बातें न शामिल की जाती। पर आवश्यकतावश इन्हें शामिल करना ही पड़ा और उनको विधान में रखने का यही औचित्य है। ग्रीस के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता श्री ग्रोट ने कहा है: किसी भी स्वतंत्र और शांतिपूर्ण सरकार के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक

है कि वैधानिक नैतिकता का प्रसार न केवल वहां के बहुसंख्यक लोगों में ही बल्कि देश के समस्त नागरिकों में किया जाये, क्योंकि कोई भी शक्तिशाली और दु:साध्य, हठी अल्पमत वाला वर्ग, चाहे वह स्वयं इतना शक्ति सम्पन्न न हो कि शासन की बागडोर अपने हाथ में ले सके, पर स्वतंत्र-शासन का कार्य संचालन दुरूह या कठिन तो बना ही सकता है।

वैधानिक नैतिकता से ग्रोट का अभिप्राय यह है:

> ''विधान के स्वरूपों के प्रति ऐसी परम श्रद्धा हो जो उन स्वरूपों के अधीन रखकर और उनके अंतर्गत कार्य करने वाले प्राधिकारियों की आज्ञाओं को मनवाती हो, किन्तु साथ ही निश्चित विधि-प्रतिबंधों के अधीन भाषण तथा कार्य स्वातंत्र्य की वृत्ति पैदा करती हो और साथ-साथ उन्हीं प्राधिकारियों के लोक-कार्यों के बारे में अवाधित आलोचना की सुविधा देती हो और इसके साथ ही प्रत्येक नागरिक के मन में यह विश्वास भी पैदा करती हो कि दल-संघर्ष-जनित-कटुता के होते हुए भी संविधान के स्वरूपों के प्रति उसके विरोधियों के हृदय में वही आदर होगा जो उसके हृदय में है।''

इस बात को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता है कि प्रजातंत्रात्मक विधान को शक्ति पूर्वक चलाने के लिए नैतिकता का प्रसार आवश्यक है, किन्तु इससे परस्पर सन्नद्ध दो बातें हैं जिन्हें दुर्भाग्य से लोग नहीं जानते। उनमें एक तो यह है कि शासन पद्धति का विधान पद्धति से बड़ा सन्निकट सम्बंध है। शासन पद्धति भाव और स्वरूप दोनों की ही दृष्टि से विधान पद्धति के अनुरूप होनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि विधान के स्वरूप को बदले बिना ही, केवल शासन प्रणाली में परिवर्तन करके विधान को पूर्णत: उलट देना, तथा शासन को विधान की भावना के अनुरूप और प्रतिकूल बना देना बिलकुल सम्भव है इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल वहीं पर जहां लोगों में वैधानिक नैतिकता का प्रसार है जैसा कि उपरोक्त इतिहासवेत्ता ने बताया है, इस बात की जोखिम उठाई जा सकती है कि शासन के विस्तार की बातों को विधान में न रख कर उन्हें विधान मण्डल पर छोड़ दिया जाये। अब प्रश्न यह है कि क्या वैधानिक नैतिकता का प्रसार हम सम्भव मानते हैं? वैधानिक नैतिकता की भावना स्वाभाविक, प्रकृति जन्य नहीं होती। इसे तो अभ्यास द्वारा अपनाना होगा। हमें यह जानना चाहिए कि हमारे देशवासियों को अभी भी इसे सीखना है। भारतीय भूमि स्वभावत: ही अप्रजातंत्रात्मक है, और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

ऐसी परिस्थिति में शासन सम्बन्धी नियमों को निश्चित करने का काम विधान मंडल पर न छोड़ना ही श्रेयस्कर है। यही कारण है कि प्रस्तुत विधान में इन नियमों को स्थान दे दिया गया है।

इस मसविदे के विरुद्ध दूसरी आलोचना यह की गई है कि इसमें कहीं भी भारत की प्राचीन राजनीति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह कहा जाता है कि इस नवीन विधान का निर्माण प्राचीन हिन्दू राज्य परम्परा के आधार पर होना चाहिए था और इसमें पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धांतों का समावेश न कर, ग्राम और जिला पंचायतों की भित्ति पर इसे खड़ा करना चाहिए था। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी विचारधारा बहुत आगे—अति की ओर—चली गई है। वे कोई भी केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि भारत में केवल ग्राम सरकारें हों। बुद्धि सम्पन्न भारतीयों का ग्राम समाज के प्रति जो प्रेम है वह यदि कारुणिक नहीं तो असीम तो अवश्य ही है। (*हंसी*) इस मनोवृत्ति का बहुत कुछ कारण तो यह है कि श्री मेटकाफ ने जो ग्राम समाज का स्तुतिगान किया है इसमें वे प्रभावित हैं। मेटकाफ ने ग्रामों का वर्णन करते हुए कहा है कि वे छोटे-छोटे प्रजातंत्र थे जिनमें अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं और जो वैदशिक सम्बंध स्थापित करने से प्राय: मुक्त थे। मेटकाफ की राय यह है कि सभी क्रांतियों एवं परिवर्तनों में, जिनसे कि यहां की जनता को कष्ट भोगना पड़ा, भारतीय जनसमुदाय की रक्षा में और कोई भी बात उतनी सहायक नहीं हुई है जितना कि इन ग्राम पंचायतों का अस्तित्व जो छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों के रूप में वर्तमान थे, और उनके मतानुसार ये ग्राम पंचायतें बहुत हद तक भारतीयों के सुख में एवं उनके स्वातंत्र्य उपभाग में सहायक हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जहां और सभी कुछ विनष्ट हो गए हमारा ग्राम समुदाय आज भी वर्तमान है। किन्तु जो लोग इन ग्रामों पर गर्व करते हैं, वे इस बात का विचार ही नहीं करते कि आखिर देश के भाग्य निर्माण में तथा उसके कार्यकलाप में इन ग्रामों ने कितना कम हाथ बटाया है और क्यों? देश के भाग्य निर्माण में इन्होंने क्या भाग लिया है इसका अच्छा वर्णन भी मेटकाफ ने स्वयं किया है। वह कहता है:

''कितने ही राजवंश आए और गये, कितनी ही क्रांतियां हुईं, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, अंग्रेज—सभी बारी-बारी से देश के मालिक बने, किन्तु यहां की ग्राम पंचायतें सदा ज्यों की त्यों बनी रहीं। जब-जब युद्ध हुए, संकट आए, इन्होंने अपने को हथियार बन्द किया, अपनी किले बन्दी की। विरोधी सेना

जब इनके प्रदेश में पहुंची तो इन्होंने अपने मवेशियों को चहार-दीवारी में इकट्ठा कर दिया और शत्रु को बिना रोके बढ़ जाने दिया।''

हमारी ग्राम पंचायतों ने देश के इतिहास में यही ज्वलंत काम किया है। इसे जानते हुए हमें उनके लिए आखिर क्या गर्व हो सकता है। यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल-पुथल के होते हुए भी ये जीवित रह गयीं किन्तु केवल जीवित रहने का क्या मूल्य है? प्रश्न तो यह है कि किस स्तर पर ये जीवित रही? निश्चय ही बड़े निम्न और स्वार्थपूर्ण स्तर पर ये जीवित रही? मेरा मत है कि ये ग्राम पंचायतें ही भारत की बर्बादी का कारण रही हैं। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रांतीयता की, साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हैं, वही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। हमारे ग्राम हैं क्या? ये कूप मण्डूकता के परनाले हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काली कोठरियां हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि विधान के मसविदे में ग्राम को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति को राष्ट्र का अंग माना गया है।

विधान के मसविदे की इसलिए भी आलोचना की गयी है कि इसमें अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्थायें रखी गयी हैं। इसके लिए मसविदा-समिति जिम्मेदार नहीं है। इसे तो विधान-परिषद् के निर्णयों के अनुसार चलना था। जहां तक मेरे निजी मत की बात है, मैं कह सकता हूं कि विधान-परिषद् ने अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्था करके अवश्य ही बुद्धिमानी का काम किया है। इस देश के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, दोनों ही वर्ग एक गलत रास्ते पर चले हैं। बहुसंख्यक वर्ग की यह गलती है कि उसने अल्पसंख्यक वर्ग का अस्तित्व नहीं स्वीकार किया और इसी प्रकार अल्पसंख्यक वर्ग की यह गलती है कि उसने अपने को सदा के लिए अल्पसंख्यक बनाये रखा। अब एक ऐसा मार्ग निकालना ही होगा जिससे ये दोनों गलतियां दूर हों। मार्ग ऐसा होना चाहिए जो अल्पसंख्यकों का अस्तित्व मान कर इस सम्बन्ध में आगे बढ़े। और साथ ही मार्ग ऐसा भी हो जिससे कि एक दिन अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों ही वर्ग—आपस में मिलजुल कर—एक हो जाये। इस सम्बन्ध में विधान-परिषद् ने जो उपाय रखा है वह निःसंदेह अभिनन्दनीय है, क्योंकि इससे हमारे उपरोक्त दोनों ही उद्देश्य सिद्ध हो जाते हैं।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

दो बातें मैं उन कट्टर प्राचीन पंथियों को कहना चाहता हूं जिन्होंने अल्पसंख्यकों के संरक्षण के विरुद्ध एक हठधर्मिता का भाव अपना लिया है। एक बात उनसे यह कहना चाहता हूं कि अल्पसंख्यक एक भयंकर विस्फोट पदार्थ के समान होते हैं, जो अगर फटा तो सारे राजकीय ढांचे को तहस-नहस कर सकता है। यूरोप का इतिहास इस बात का एक ज्वलंत प्रमाण है। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत का अल्पसंख्यक समुदाय इस बात पर सहमत हो गया है कि वह अपने अस्तित्व को बहुसंख्यक समुदाय को सौंप दे। आयरलैंड का विभाजन रोकने के लिए जो बातचीत चली थी उसके सिलसिले में श्री रेडमांड ने मि. कारसन से यह कहा था: ''प्रोटेस्टेंट अल्पसंख्यकों के लिए आप जो भी संरक्षण चाहते हों मांग लें, किन्तु आयरलैंड को हमें अखंड रखना चाहिए।'' इसके जवाब में कारसन ने कहा था: ''चूल्हे में जायें आप के संरक्षण; हम आप से शासित होना नहीं चाहते।'' भारत के किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय ने यह रुख नहीं अपनाया है—उन्होंने बहुसंख्यक समुदाय के शासन को निष्ठापूर्वक स्वीकार कर लिया है, यहां का बहुसंख्यक वर्ग सम्प्रदाय के आधार पर बहुसंख्यक है, न कि किसी राजनैतिक सिद्धांत के आधार पर। बहुसंख्यक वर्ग का यह फर्ज है कि अल्पसंख्यकों के प्रतिकूल वह कोई भेदभाव न बरते। बहुसंख्यक वर्ग को अपने इस फर्ज का ख्याल रखना चाहिए। अल्पसंख्यक वर्ग इसी प्रकार अपना पृथक अस्तित्व बनाये रहेगा या अपने को राष्ट्र में विनिमर्ज्जित कर देगा। यह बात निर्भर करती है बहुसंख्यक वर्ग के व्यवहार पर। जिस क्षण बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव बरतने की आदत छोड़ देगा, उसी क्षण अल्पसंख्यकों के अस्तित्व का आधार जाता रहेगा और वे लुप्त हो जायेंगे।

सर्वाधिक आलोचना हुई है विधान के मसविदे के उस भाग की जिसमें मौलिक अधिकारों का उल्लेख है। कहा जाता है कि अनुच्छेद 13 में, जिसमें मौलिक अधिकारों की व्याख्या की गई है; इतने अधिक प्रतिबंध रख दिये गये हैं कि इनके कारण मौलिक अधिकारों का कोई मूल्य नहीं रह जाता। इसकी इतनी निन्दा की गई है कि इसे एक प्रकार का छल कहा गया है। आलोचकों की राय में मौलिक अधिकार तब तक मौलिक अधिकार नहीं हैं जब तक कि वे सर्वथा

सम्पूर्ण प्रतिबंध शून्य न हों। अपने मत के समर्थन में आलोचकवृन्द अमेरिका के विधान का तथा उस विधान के प्रथम दस संशोधनों में दिये हुये अधिकार-पत्र (Bill of Rights) का सहारा लेते हैं। यह कहा गया है कि अमेरिका के मौलिक अधिकार, जो कि अधिकार-पत्र में दिये गये हैं, वास्तविक है; क्योंकि उन्हें किसी प्रतिबंध के अधीन नहीं रखा गया है।

मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में की गई यह सारी आलोचना एक मिथ्या धारणा के आधार पर की गई है। पहली बात तो यह है कि मौलिक एवं अमौलिक अधिकारों में क्या अन्तर होना चाहिये, इस प्रसंग में जो आलोचना की गई है, वह तथ्यपूर्ण नहीं है। यह कहना गलत है कि मौलिक अधिकार सर्वथा संपूर्ण प्रतिबन्ध शून्य होते हैं और अन्य अधिकार अवाध नहीं होते। इन दोनों में वास्तविक अन्तर यह है कि मौलिक अधिकार कानून की देन है, जब कि अन्य अधिकार विभिन्न दलों के पारस्परिक समझौते के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं चूंकि मौलिक अधिकार राज्य की देन हैं, इसलिये राज्य उनके सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध नहीं रख सकता, ऐसा अर्थ लगाना भूल है।

दूसरी बात यह है कि अमेरिका के मौलिक अधिकार अवाध हैं, यह कहना गलत है। अमेरिकन विधान में तथा प्रस्तुत विधान में केवल रूप का अन्तर है, आशय का नहीं। यह बात निर्विवाद है कि अमेरिका के जो मौलिक अधिकार हैं, वह अवाध नहीं हैं अपने विधान के मसविदे में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध रखे गये हैं, उनमें से प्रत्येक के समर्थन में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम एक निर्णय का हवाला तो दिया ही जा सकता है। इस मसविदे के अनुच्छेद 13 में दिये हुये भाषण-स्वतंत्रता संबंधी अधिकार पर जो प्रतिबंध रखा गया है, उसके औचित्य के संबंध में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय उद्धृत कर देना यहां काफी है। *गिटलो बनाम न्यूयार्क* के मुकदमे में राज-विप्लव के लिये दण्ड से संबंध रखने वाली न्यूयार्क की एक विधि की वैधानिकता का प्रश्न उपस्थित था। उक्त विधि के अनुसार ऐसे भाषण जो भयंकर

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

उथल-पुथल और परिवर्तन उपस्थित करते हों, दण्डनीय थे। इस मुकदमे में फैसला देते हुये सर्वोच्च न्यायलय ने कहा था:

"यह एक चिरप्रतिष्ठित मौलिक सिद्धांत है कि विधान द्वारा भाषण एवं प्रकाशन सम्बन्धी जो स्वतंत्रता प्राप्त है, उससे किसी को यह अधिकार नहीं मिलता है कि वह बिना दायित्व के जो चाहे कहे या प्रकाशित कर और न उससे उस बात का अवाध अनियंत्रित अधिकार मिलता है कि लोग स्वतंत्र होकर चाहे जैसी भाषा का व्यवहार करें और इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने के कारण वे दण्ड के भागी नहीं होंगे।"

इसलिए यह कहना गलत है कि अमेरिका में जो मौलिक अधिकार प्राप्त हैं, वे तो सर्वथा सम्पूर्ण हैं; पर इस मसविदे में जो मौलिक अधिकार दिये गये हैं, वे सर्वथा सम्पूर्ण नहीं हैं।

यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि अगर मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध अपेक्षित है, तो विधान में ही उस प्रतिबंध का उल्लेख होना चाहिए; जैसा कि अमेरिका के विधान में किया गया है और अगर विधान में इन प्रतिबंधों का उल्लेख नहीं किया जाता है, तो फिर इस बात को न्याय-विभाग पर छोड़ देना चाहिये कि सभी आवश्यक बातों पर विचार कर वही प्रतिबंधों को निश्चित करे। मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि इस प्रकार के तर्कों से लोग अमेरिकन विधान के सम्बन्ध में यदि अपनी अज्ञानता नहीं प्रकट करते हैं, तो उसका गलत स्वरूप अपने सामने रखते हैं। अमेरिकन विधान में ऐसी कोई भी बात नहीं है; केवल एक बात को छोड़कर, यानी असेम्बली के अधिकार के सिवाय मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में, जिनकी कि अमेरिकन नागरिकों को प्रत्याभूति (गारंटी) प्राप्त है, अमेरिकन विधान ने कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगा रखा है। और न यही कहना सही है कि मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रतिबंध रखने का काम अमेरिकन विधान ने न्याय-विभाग पर छोड़ दिया है। प्रतिबंध लागू करने का अधिकार वहां काग्रेस को प्राप्त है। वहां वास्तविक स्थिति उससे भिन्न है जो कि हमारे आलोचकों ने मान रखी है। अमेरिका में विधान ने जो मौलिक अधिकार दिये थे, वे अवश्य ही पहले तो अवाध थे, पर शीघ्र ही कांग्रेस को इस बात का आभास मिल गया कि इन मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रतिबंध रखना नितांत आवश्यक

है। जब वहां सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इन प्रतिबंधों की वैधानिकता का प्रश्न खड़ा हुआ, तो यह तय पाया गया कि विधान द्वारा अमेरिका की कांग्रेस को इन प्रतिबंधों को लगाने का कोई अधिकार नहीं प्राप्त है; पर सर्वोच्च न्यायालय ने ''पुलिस-अधिकार' के सिद्धांत का आविष्कार किया और मौलिक अधिकार को अवाध मानने वाली विचारधारा का खण्डन इस तर्क द्वारा किया कि प्रत्येक राज्य को पुलिस-अधिकार स्वत: प्राप्त: रहता है और यह आवश्यक नहीं है कि स्पष्ट उल्लेख द्वारा विधान यह अधिकार उसे प्रदान करे। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था:

> ''इस बात के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता है कि राज्य अपने पुलिस-अधिकार के प्रयोग में उन व्यक्तियों को दण्ड दे सकता है, जो इस स्वतंत्र्य का दुरुपयोग ऐसे भाषणों द्वारा करते हैं, जो जनहित के प्रतिकूल हैं, जनता के नैतिक स्तर को गिराते हैं, अपरोध को उत्तेजना देते हैं और लोकशांति को बाधा पहुंचाते हैं।''

इस सम्बन्ध में अपने विधान ने जो किया है, वह यह है कि बजाय इसके कि वह मौलिक अधिकारों को प्रतिबंध शून्य रखे और पार्लियामेंट की बचाव के लिये अपने सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर करे कि वह ''पुलिस-अधिकार'' जैसे किसी सिद्धांत का आविष्कार कर उसका बचाव करेगा, उसने मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रतिबंध लागू करने का अधिकार सीधे राज्य को दे दिया है। इन दोनों ही तरीकों से परिणाम में कोई अन्तर नहीं आता। एक प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबंध लागू करता है और दूसरा परोक्ष रूप से; किन्तु इन दोनो में से किसी में भी मौलिक अधिकार सर्वथा अवाध नहीं है।

विधान के इस मसविदे में मौलिक सिद्धांतों के बाद ही ''निर्देशात्मक सिद्धांत'' रखे गये हैं ये सिद्धांत परिषदात्मक प्रजातंत्र के लिये निर्मित विधान की एक उल्लेखनीय विशेषता हैं। परिषदात्मक प्रजातंत्र के लिए निर्मित अन्य विधानों में केवल आयरिश स्वतंत्र राज्य के विधान में ही ये सिद्धांत रखे गये हैं। इन निर्देशात्मक सिद्धांतों की भी आलोचना हुई है। यह कहा गया है कि ये सिद्धांत केवल पवित्र घोषणा के ही रूप में हैं। इनमें दायित्व आरोपित करने की शक्ति नहीं है। निश्चय ही यह आलोचना व्यर्थ और अनावश्यक है। स्वयं विधान में यह बात कई शब्दों में कही गई है।

अगर यह कहा जाये कि इन निर्देशात्मक सिद्धांतों के पीछे कानून का कोई बल नहीं है, तो मैं इसे मानने को तैयार हूं। किन्तु यह मानने को मैं कदापि तैयार नहीं हूं कि दायित्व आरोपित करने की इनमें कोई शक्ति है ही नहीं। और

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

न मैं यही मानने को तैयार हूं कि चूंकि इनके पीछे कोई कानूनी बल नहीं है, इसलिए ये व्यर्थ हैं।

ये निर्देशात्मक सिद्धांत उस आदेश-पत्र के समान हैं जो कि 1935 के ऐक्ट के अन्तर्गत, ब्रिटिश सरकार भारत के गवर्नर-जनरल को और उपनिवेशों के तथा भारत के गवर्नरों को जारी करती थी। इस मसविदे में प्रधान को तथा गवर्नरों को ऐसा आदेश-पत्र जारी करने की बात रखी गयी है। इन आदेश-पत्रों की इबारत आप को विधान की चौथी अनुसूची में मिलेगी। जिसे हम निर्देशात्मक सिद्धान्त कहते हैं, वह वस्तुतः आदेश-पत्र का ही एक दूसरा नाम है। अन्तर केवल इतना है कि ये सिद्धांत विधान-मण्डल एवं अधिशासी-वर्ग के नाम जारी किये गये आदेश हैं। मैं तो समझता हूं कि ऐसी व्यवस्था अभिनन्दनीय होनी चाहिए। जहां भी शांति-व्यवस्था एवं उत्कृष्ट शासन के लिए बिना किसी विशेष उल्लेख के अधिकार दिये जाते हैं, यह आवश्यक होता है कि इन अधिकारों के प्रयोग के आनियमन के लिए साथ में आदेश अवश्य हों। विधान में ऐसे आदेशों को शामिल करना जैसे कि प्रस्तुत विधान में प्रस्तावित हैं, एक और कारण से उचित हो जाता है। विधान का मसविदा, जिस रूप में यह है, देश के शासन के लिए केवल एक व्यवस्था मात्र बना देता है। यह किसी दल विशेष को अधिकारारूढ़ करा देने की एक योजना नहीं है, जैसा कि कुछ देशों में किया गया है। अधिकारारूढ़ कौन हो, इस बात का निर्णय जनता पर छोड़ दिया गया है और ऐसा ही होना चाहिए, अगर प्रजातंत्र की कसौटी पर इस व्यवस्था को सही उतारना है। इस व्यवस्था से यह होगा कि चाहे जो भी अधिकारारूढ़ हो जाये, किन्तु विधान को लेकर वह मनमानी नहीं कर सकता। इसके प्रयोग में उसे इन आदेश-पत्रों का जिन्हें हमने निर्देशात्मक सिद्धांत कहा है, आदर करना ही होगा। वह उनकी उपेक्षा कर नहीं सकता। हो सकता है कि इनको भंग करने के लिए उसे किसी अदालत के सामने जवाब न देना पड़े, किन्तु चुनाव के समय निर्वाचकों के समक्ष उसे निश्चय इसका जवाब देना होगा। इन निर्देशात्मक सिद्धान्तों का कितना बड़ा महत्त्व है इस बात का और सही आभास तब मिलेगा जब सच्चाई की शक्तियां अधिकारारूढ़ होने का प्रयास करेंगी।

यह कहना कि इनमें दायित्व आरोपित करने की शक्ति नहीं है, विधान में इनको रखने के विरुद्ध कोई तर्क नहीं है। विधान में ये किस स्थल पर रखे जायें,

इस सम्बन्ध में तो मतभेद हो सकता है। मैं यह मानता हूं कि यह बात कुछ असंगत मालूम पड़ती है कि ऐसी व्यवस्थाएं या धारायें जो प्रतिबंधमूलक नहीं है, वे उन धाराओं के साथ रख दी जाये, जो प्रतिबंध आरोपित करती हों। मेरे विचार से उनका सही स्थान है अनसूची 3ए और 4 में, जिनमें प्रधान तथा गवर्नरों के लिए आदेश-पत्र दिये गये हैं यह इसलिए कि, जैसा मैंने कहा है, ये वस्तुतः अधिशासी वर्ग एवं विधान-मण्डलों के लिए उस हेतु आदेश-पत्र हैं कि वे अपने अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करें। किन्तु इसे कहां रखा जाये, यह तो उपक्रम से सम्बन्ध रखने वाली बात है।

कुछ आलोचकों ने यह कहा है कि केन्द्र बहुत प्रबल हो गया है। औरों ने यह कहा है कि इसे और भी मजबूत बनाना चाहिए। विधान के मसविदे में संतुलन का, बीच का, मार्ग अपनाया गया है। चाहे आप जितना चाहें, केन्द्र को अधिक अधिकार न दिये जाये, पर केन्द्र को प्रबल होने से रोकना कठिन है। आधुनिक जगत में परिस्थितियां ऐसी हैं कि शक्तियों का केन्द्रीकरण आवश्यक हो गया है। इस सम्बन्ध में अमेरिका की संघ-सरकार के विकास पर विचार करना होगा। यह संघ-सरकार, बावजूद इस बात के कि विधान ने इसे बड़ी सीमित शक्तियां प्रदान की थीं, आज अपने मूल स्वरूप से कहीं अधिक बड़ी हो गई है और वहां की प्रादेशिक सरकारों पर बिलकुल छा गई है। आधुनिक स्थितियों के कारण ऐसा हुआ है। यही स्थितियां भारत सरकार पर भी निश्चय ही अपना असर डालेंगी और हमारा कोई भी प्रयास केन्द्र को प्रबल होने से नहीं रोक सकता। दूसरी तरफ केन्द्र को और प्रबल बनाने की जो प्रवृत्ति है, उसे हमें दबाना ही होगा। उतने से अधिक यह ग्रहण नहीं कर सकता, जितने को कि वह सम्भाल सकता है। इसकी शक्ति इसके भार और गुरुत्व के अनुरूप ही होनी चाहिए। अगर हम इसे इतना प्रबल बना दें कि वह अपने ही भार से गिर जाये, तो यह मूर्खता होगी।

इस मसविदे की आलोचना इस बात के लिये भी की गई है कि इसमें केन्द्र और प्रांतों के बीच एक प्रकार के वैधानिक सम्बन्ध की व्यवस्था है। परन्तु केन्द्र और रियासतों के बीच एक भिन्न प्रकार के वैधानिक सम्बन्ध की। रियासतें संघ-सूची में दिये हुए विषयों की सम्पूर्ण तालिका को मानने के लिये बाध्य नहीं है। रक्षा,

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

वैदेशिक मामले, एवं यातायात के अन्तर्गत आने वाले विषयों को ही मानने के लिए ही वे बाध्य हैं। समवर्ती सूची में दिये हुए विषयों को मानने के लिये वे बाध्य नहीं हैं, इस मसविदे में दी हुई राज्य सूची को भी मानने को वे बाध्य नहीं है। उन्हें इस बात की स्वतंत्रता है कि वे अपनी विधान-परिषद् का निर्माण करके अपना विधान खुद बनायें। अवश्य ही यह सभी बातें दुखद हैं और मैं मानता हूं कि इनके पक्ष में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह विभेद राज्य की कार्यक्षमता के लिये संकटप्रद सिद्ध हो सका है। जब तक यह विभेद वर्तमान है, अखिल भारतीय मामलों पर केन्द्र का अधिकार सम्भव है, कार्यकर न हो; क्योंकि अगर अधिकार का प्रयोग सभी मामलों में और सर्वत्र न किया जा सके, तो वह अधिकार अधिकार नहीं है। युद्धजनित स्थिति में कुछ इलाकों में अत्यावश्यक अधिकारों के प्रयोग पर ऐसे प्रतिबंधों के कारण राज्य का जीवन ही सर्वथा संकटापन्न हो जा सकता है। इससे भी बुरी बात यह है कि इस मसविदे में रियासतों को अपनी सेना रखने की अनुमति दी गई है।

मैं इस प्रबंध को बड़ा ही हानिकर और विपरीतगामी समझता हूं, जो भारत के ऐक्य को छिन्न-भिन्न कर सकता है और केन्द्रीय सरकार को उलट सकता है। अगर मैं मसविदा-समिति के विचार को रखने में गलती नहीं कर रहा हूं, तो इस व्यवस्था से वह बिलकुल ही सन्तुष्ट न थी उसके सदस्य बहुत चाहते थे कि प्रांतों और रियासतों का केन्द्र से जो वैधानिक सम्बन्ध हो, उसमें एकरूपता हो। किन्तु दुर्भाग्य से इस मामले में सुधार के लिये वे कुछ भी नहीं कर सके। वे विधान-परिषद् के निर्णयों से बंधे थे और विधान-परिषद् उस समझौते से बंधी थी, जो दोनों निगोशियेटिंग कमेटियों के बीच तय पाया था।

परन्तु इस सम्बन्ध में जर्मनी में जो हुआ, उससे हम साहस प्राप्त कर सकते हैं। जर्मन साम्राज्य, जैसा कि बिस्मार्क ने 1870 ई. में उसे स्थापित किया था, एक विमिश्र राज्य था, जिसमें 25 इकाइयां थीं। इन 25 राज्यों में 22 तो राजतंत्रीय थे और शेष 3 गणतंत्रीय नगर-राज्य थे। यह विभेद, जैसा कि हम सबों को ही मालूम है, कालान्तर में चलकर विलुप्त हो गया और समूचा राज्य एक हो गया और सभी निवासी एक हो गये और समस्त राज्य का शासन एक विधान के अधीन

होने लगा। भारतीय रिसायतों के एकीकरण का काम उससे भी शीघ्र समाप्त होने जा रहा है, जितने समय में कि जर्मनी में, यह काम हुआ था। 1947 ई. की 15वीं अगस्त को यहां 600 रियासतें थीं। और आज इन रियासतों के प्रांतों में मिल जाने से अथवा इनके अपने-अपने संघ बना लेने से या केन्द्र द्वारा उन्हें केन्द्र शासित क्षेत्र बना देने से इनकी संख्या केवल 20/30 तक रह गई हैं, जो अपने पांव पर खड़ी हो सकती हैं। यह प्रगति बड़ी तेज हैं। जो रियासतें रह गई हैं, उनसे मैं अपील करता हूं कि वे भारतीय प्रांतों के स्तर पर आ जायें और उन्हीं की तरह भारतीय संघ का पूर्णत: अंग बन जाये। ऐसा करके वे भारतीय संघ को वह बल देंगी, जिसकी इसे आवश्यकता है। ऐसा करने से वे अपनी-अपनी विधान-परिषद् का निर्माण करने तथा अपना-अपना अलग विधान बनाने के झंझट से बच जायेगी और उनके लाभ की किसी भी बात में उन्हें कोई हानि नहीं उठानी होगी। मुझे आशा है कि मेरी अपील व्यर्थ न जायेगी और अपने विधान के पास होने से पहले ही हम प्रांतों और रियासतों में जो अन्तर है, उसे दूर कर देंगे।

कई आलोचकों ने, मसविदे के अनुच्छेद 1 में भारत को, जो राज्यों का संघ बताया गया है, उस पर आपत्ति की है। यह कहा जाता है कि इस सम्बन्ध में सही शब्दावली होनी चाहिये, 'राज्यों का संधान' (Federation of States) यह सच है कि दक्षिणी अफ्रीका जो एकात्मक राज्य है, उसे संघ कहा जाता है। किन्तु कनाडा को भी संघ ही कहा जाता है, पर है वह एक संधान। इस तरह भारत को संघ कहने से यद्यपि उसका विधान संधात्मक है, प्रचलित परिपाटी पर कोई आघात नहीं पड़ता है। परन्तु इस सम्बन्ध में महत्त्व की बात तो यह है कि संघ शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया गया है। कनाडा के विधान में उसे 'संघ' क्यों कहा गया है, यह तो मैं नहीं जानता; पर मसविदा समिति ने इस शब्द का प्रयोग क्यों किया है, यह मैं जरूर बता सकता हूं। मसविदा समिति इस बात को स्पष्ट करना चाहती थी कि यद्यपि भारत एक संधान बनने जा रहा है, पर यह किसी ऐसे समझौते के फलस्वरूप नहीं बन रहा है, जिससे प्रादेशिक राज्यों ने संधान में सम्मिलित हो जाना स्वीकार किया हो। उक्त समिति यह भी स्पष्ट कर देना चाहती थी कि चूंकि संधान किसी ऐसे समझौते के आधार पर नहीं बन रहा है, इसलिये किसी भी राज्य को संधान से अलग होने का अधिकार नहीं है। यह संधान एक संघ है, इसलिये कि वह विनष्ट नहीं हो सकता। यद्यपि शासन की सुविधा के लिये इस देश को और यहां के निवासियों को अलग-अलग राज्यों में बांटा जा

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

सकता है, किन्तु सब मिलाकर देश एक है, इसके निवासी एक हैं और एक शासन के अधीन हैं, जिसको समस्त अधिकार एक ही सूत्र से प्राप्त हुए हैं। अमेरिका वासियों को इस सिद्धांत को स्थापित करने के लिये कि राज्यों को संघ से अलग होने का कोई अधिकार नहीं है और संघ अविनाश्य है, गृह-युद्ध करना पड़ा था। मसविदा समिति ने यही श्रेयस्कर समझा कि प्रारंभ में ही इसे स्पष्ट कर दिया जाये, ताकि भविष्य में इसके सम्बन्ध में कोई विवाद या भाष्य का प्रश्न न उठे।

विधान के मसविदे के आलोचकों ने इसके उन प्रावधानों को जिनका सम्बन्ध विधान के संशोधन से है, बड़ी ही तीव्र आलोचना की है। यह कहा गया है कि मसविदे के इन प्रावधानों से विधान में संशोधन करना बड़ा कठिन हो गया है। यह सुझाया गया है कि ऐसा प्रावधान रखना चाहिये कि कम से कम कुछ वर्षों तक साधारण बहुमत द्वारा विधान में संशोधन किया जा सके। यह तर्क विलक्षण और चातुर्यपूर्ण है। कहा जाता है कि विधान-परिषद् प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है, जब कि भविष्य का विधानमंडल प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुना जायेगा; किन्तु फिर भी विधान-परिषद् को साधारण बहुमत द्वारा विधान स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। विधान-मंडल को यही अधिकार नहीं दिया गया है। इस बात का चारों ओर शोर मचाया जाता है कि मसविदे की असंगत बातों में यह एक है। मैं इस दोषारोप का खण्डन करता हूं, क्योंकि यह बिलकुल निराधार है। विधान में संशोधन से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्तुत मसविदे के प्रावधान कितने सहज हैं, यह जानने के लिये हमें आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका के विधानों के संशोधन सम्बन्धी प्रावधानों को देखना काफी है। इनकी तुलना में वे प्रावधान जो हमारे विधान में रखे गये हैं, बहुत ही सरल हैं रूढ़ि या लोकमत-संग्रह द्वारा इस सम्बन्ध में निर्णय किया जाये, इस विस्तृत और कठिन पद्धति को अपने विधान के मसविदे से हटा दिया गया है। विधान में संशोधन करने का अधिकार केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान-मण्डलों को दिया गया है। विशेष विषयों के सम्बन्ध में ही—और इसकी संख्या बहुत ही कम है—रियासती विधान-मण्डलों का अनुमोदन अपेक्षित रखा गया है। विधान के अन्य सभी अनुच्छेदों के सम्बन्ध में संशोधन का अधिकार पार्लियामेंट केन्द्रीय विधान-मण्डल को दिया गया है। इस सम्बन्ध में एक मात्र प्रतिबन्ध यह रखा गया है कि प्रत्येक आगार (सभा) के वर्तमान एवं मतदान करने वाले

सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से तथा प्रत्येक आगार की सम्पूर्ण सदस्य-संख्या के बहुमत से स्वीकृत होने पर ही संशोधन ग्राह्य होगा। विधान में संशोधन करने का इससे भी कोई सरल प्रावधान हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन है।

संशोधन सम्बन्धी प्रावधानों की कई बातों को जो असंगत कहा गया है, इसका कारण यह है कि विधान-परिषद् की स्थिति को तथा प्रस्तुत विधान के अधीन चुनी जाने वाली भावी पार्लियामेंट की स्थिति को ठीक-ठीक नहीं समझा गया है। प्रस्तुत विधान के निर्माण के पीछे विधान-परिषद् की कोई संकुचित दलबन्दी की भावना नहीं है। एक सुन्दर और सुचारू रूप से व्यवहृत होने योग्य विधान बनाना ही इस परिषद् का उद्देश्य है और इसके अतिरिक्त इसे कोई अपना विशेष अभिप्राय नहीं सिद्ध करना है। विधान के अनुच्छेदों पर विचार करते समय इनकी दृष्टि इस बात पर नहीं थी कि किसी विशेष प्रावधान को पास कराया जाये। भावी पार्लियामेंट अगर विधान-परिषद् के रूप में समवेत हुई, तो इसके सदस्य वहां दलबन्दी की भावना से ही कार्य करेंगे और विधान में ऐसे संशोधन पास करना चाहेंगे, जिनसे वे अपने दल के उन प्रावधानों को स्वीकार करा सकें, जिन्हें पार्लियामेंट से मंजूर कराने में वे इस कारण असमर्थ रहे कि विधान का कोई अनुच्छेद उनकी राह में बाधक होता था। पार्लियामेंट का तो अपना विशेष उद्देश्य होगा, जिसे वह सिद्ध करना चाहेंगी, पर विधान-परिषद्, यद्यपि वह सीमित मताधिकार के आधार पर चुनी गई है, साधारण बहुमत द्वारा विधान पास करे, इस पर तो हम भरोसा कर सकते हैं, पर पार्लियामेंट को साधारण बहुमत द्वारा विधान में संशोधन करने का अधिकार दिया जाये, इस पर हमें चिन्ता हो जाती है; यद्यपि वह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होगी।

मसविदा समिति द्वारा तय किये हुए विधान के मसविदे के विरुद्ध जो भी आलोचनायें हुई हैं, उन सबका, मैं समझता हूं, मैंने जवाब दे दिया है। मैं नहीं समझता कि ऐसी किसी भी आवश्यक आलोचना का उत्तर देना अभी बाकी रह गया है, जो कि गत आठ महीनों के अन्दर हुई हो, जब से कि विधान जनता के सम्मुख आया है। यह निर्णय करना अब विधान-परिषद् का काम है कि वह मसविदा समिति द्वारा तय किये विधान को ही स्वीकार करेगी या इसमें परिवर्तन करके इसे स्वीकार करेगी।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इस सम्बन्ध में मैं एक बात अवश्य कहना चाहता हूं कि भारत के कई प्रांतीय विधान मण्डलों में विधान पर बहस हुई है और सोच-विचार किया गया है। बम्बई, मध्यप्रान्त, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मद्रास एवं पूर्वी पंजाब के विधान मण्डलों ने इस पर बहस और विचार किया है। यह सच है कि कई प्रांतीय विधान मण्डलों ने विधान की अर्थ सम्बन्धी व्यवस्थाओं पर गंभीर आपत्ति की है, तथा मद्रास ने इसके अनुच्छेद 226 पर आपत्ति की है। किन्तु इसके सिवाय विधान के अन्य किसी अनुच्छेद के सम्बन्ध में किसी भी प्रान्तीय विधान मण्डल ने कोई विशेष आपत्ति नहीं की है। कोई भी विधान सर्वथा पूर्ण नहीं हो सकता और इसके अलावा स्वयं मसविदा समिति ने उसे और अच्छा बनाने के लिए कई संशोधनों का सुझाव रखा है। पर प्रान्तीय विधान मण्डलों में इसके सम्बन्ध में जो बहस हुई है, उसके आधार पर मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि प्रस्तुत विधान, जैसा कि मसविदा समिति ने इसे स्थिर किया है, इस देश के कार्यारम्भ के लिए काफी अच्छा है: मैं ऐसा समझता हूं कि प्रस्तुत विधान व्यवहार योग्य है। यह लचीला है और इतना सबल है कि युद्ध एवं शांति दोनों ही समय में देश को एक सूत्र में बांधे रख सकता है। मैं यह कहूंगा कि यदि नवीन विधान के अंतर्गत कोई गड़बड़ी पैदा होती है, तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा विधान खराब था, बल्कि यह कहना चाहिए कि अधिकारारूढ़ व्यक्ति ही अधम था, नीच था। अध्यक्ष महोदय, इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस पर विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** मौलाना हसरत मोहानी ने एक संशोधन की सूचना दी है, वह आज प्रात:काल साढ़े ग्यारह बजे प्राप्त हुई है। मैं उसे पेश करने की आज्ञा विशेष कर इस कारण से दूंगा कि यदि वह स्वीकार नहीं किया गया, तो फल यह होगा कि वह दूसरा प्रस्ताव भी रुक जायेगा, जिसकी मुझे सूचना मिली है। मौलाना साहब, क्या आप कृपा कर अपना संशोधन पेश करेंगे।

मौलाना हसरत मोहानी: जनाब वाला, मैंने जिस तरमीम का नोटिस दिया है, वह यह है कि यह कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली, जो इस वक्त मौजूद है, यह काम्पीटेंट नहीं है और इसकी तीन वजह हैं, जिनकी बिना पर मैं इसको काम्पीटेंट नहीं समझता हूं। पहली सबसे बड़ी वजह तो यह है...

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मौलाना साहब सर्वप्रथम संशोधन पढ़ने की कृपा करेंगे?

***अध्यक्षः** मैं उस संशोधन को पढ़ दूंगा। संशोधन यह है:

कि

''विधान वे मसौदे पर तब तक विचार स्थगित किया जाये, जब तक कि संयुक्त निर्वाचन के आधार पर नई तथा अधिकार सम्पन्न विधान-परिषद् का चुनाव न हो जाये और भारत में साम्प्रदायिक दलों की जगह राजनैतिक दलों का निर्माण न हो जाये।''

यही संशोधन है।

***श्री बी. दासः** श्रीमान् जी, क्या मैं एक औचित्य प्रश्न उपस्थित कर सकता हूं? मेरा औचित्य प्रश्न यह है कि मौलाना साहब कोई निषेधात्मक संशोधन पेश नहीं कर सकते हैं...

***अध्यक्षः** क्या आप उनको संशोधन पेश नहीं करने देंगे?

***श्री बी. दासः** उन्होंने अभी हिंदुस्तानी में जो कुछ कहा, उसका आशय यह था कि उन्होंने संशोधन पेश कर दिया है। यह सभा की प्रणाली के विरुद्ध है। मेरे विचार से यह नियम-विरुद्ध है और इसको पेश नहीं करने देना चाहिये।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से यह अच्छा होगा कि मौलाना साहब को संशोधन पेश करने दिया जाये। उसके पश्चात् आप औचित्य प्रश्न उठा सकते हैं।

मौलाना हसरत मोहानीः मैंने यह अर्ज किया था कि मैं किस वजह से इस मौजूदा कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली को काम्पीटेंट नहीं समझता हूं। सबसे पहली वजह यह है कि कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली तमाम दुनियां में जहां कहीं कायम हुई है, वहां पर वह रैवुलूशन के बाद हुई है।

रैवुलूशन के मानी कोई आर्म रैवुलूशन के नहीं है; बल्कि यह कि एक सिस्टम आफ गवर्नमैंट जो जारी था, वह सब सिस्टम वहां से हट गया, तो वहां एक दूसरा सिस्टम कायम करने के लिए और उसको पास करने के लिए एक कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली बुलाई गई है; ताकि वह नये सूरत हाल के मुताबिक अपना कान्स्टीट्यूशन बनावे। अगर पहले से जो हुकूमत जारी थी, वही बाकी रहे, तो कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली की जरूरत भी नहीं रहती। हमारा जो ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन

[मौलाना हसरत मोहानी]

डॉ. अम्बेडकर साहब ने पेश किया है, इसमें आप देख लीजिये कि यह चीज मौजूद नहीं है। उन्होंने ज्यादातर यही किया है कि गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट 1935 की नकल कर रखी है, या जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, मुख्तलिफ मुल्कों के कान्स्टीट्यूशनों से, कुछ यहां से और कुछ वहां से लेकर। 'कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा, भानवती का कुनबा जोड़ा' यह क्या है। यह सूरत हमारे अम्बेडकर साहब ने कायम की है। मुझको सबसे बड़ी शिकायत इस सिलसिला में यह है कि अगर इनको यही करना था कि दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशन की नकल करके अपना कान्स्टीट्यूशन मुरत्तब करना था, तो मैं यह कहता हूं कि when you had to embody why should you not embody the latest and best constitution? आपने तमाम दुनियां को तो देखा। आस्ट्रेलिया का कान्स्टीट्यूशन देखा, कनाडा का कान्स्टीट्यूशन देखा और इंग्लैंड का कान्स्टीट्यूशन देखा, लेकिन आपको सोवियत यूनियन का कान्स्टीट्यूशन नजर नहीं आया। मैं यह कहता हूं कि आपने जितनी बातें अभी अपनी तकरीर में बयान की हैं, मैंने इन सबको नोट कर लिया है। इस वक्त इनका तफसील के साथ जवाब देने का मौका नहीं है। लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि आपने जितनी-जितनी खराबियां पाई हैं वह आपने रख ली हैं। आपने कहा है कि rigidity और legality नहीं होना चाहिए, लेकिन क्या कहीं आपने कहा है कि Unitary System of Govt. होना चाहिए। कहीं यह कहा है कि हम village को नहीं कर सकते हैं। अगर सोवियत कान्स्टीट्यूशन को अपने सामने रखकर काम करते तो इसमें कोई दिक्कत पैदा नहीं होती। यह मेरा दावा है और मैं इस बात पर आपको चैलेंज देता हूं। आपने जो मिसाल के तौर पर यह कहा है कि जब तक कि Unitary System of Govt. न हों, और Centre को कोई पावर न हो, उस वक्त तक हम कोई काम नहीं कर सकते हैं। यह एक फिजूल बात है। आपको मालूम नहीं है कि सोवियत कान्स्टीट्यूशन जो है, इसमें यह किया गया है। आपने तो यह किया है कि कुछ चीजें प्रोविन्सेज में रख दी है, कुछ चीजें सैन्टर में और कुछ शामिल रख दी हैं। सोवियत में यह किया है कि अपने हर constituent को मुस्तकिल रिपब्लिक बना दिया है और सबसे बड़ी चीज यानी डिफेन्स को भी उन्होंने to win the confidence of their constituent units इनको दे दिया है। Foreign relations, Defence, Communications का भी इनको हक दे दिया है। नतीजा इसका क्या हुआ? आप तो कहते हैं कि इससे खराबी पड़ेगी, लेकिन उन्होंने इससे अपनी States की

confidence हासिल करनी है। तो इसका नतीजा यह हुआ कि सोवियत यूनियन के तमाम हिस्सा में अगर आप वहां के वाशिन्दों का लिहाज करें, तो वह मुसलिम republics है। इनमें से हर एक ने लड़ाई में अपनी पूरी कुब्बत के साथ मदद दी। काकेशिया और जहां कहीं भी लड़ाई हुई है, वहां हर सख्श ने सोवियत यूनियन का साथ दिया है। कोसैक्स वगैरह सब लोग इस यूनियन ही के वाशिन्दे थे, जिन्होंने मदद दी। तो आपका यह कहना बिलकुल बेजार है और आप लोगों को confidence में नहीं लेते हैं और कहते हैं कि साहब सब को merge होना चाहिए।

***श्री बालकृष्ण शर्मा:** क्या मैं एक औचित्य प्रश्न उपस्थित कर सकता हूं? आदरणीय मौलाना साहब विधान के गुणों का वर्णन कर रहे हैं, परन्तु हमारे सामने जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, वह यह है कि हम इस विधान पर विचार न करे। सभा के समक्ष विधान के गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता, जब कि हमें केवल वाद-विवाद के स्थगित करने के प्रश्न पर ही विचार करना है।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से यदि आप उनको (मौलाना साहब को) स्वतंत्र बोलने दें, तो समय की बचत होगी।

मौलाना हसरत मोहानी: मैं इसको अर्ज कर रहा हूं। मैंने जो कहा है कि यह काम्पीटैंट नहीं है, तो इसकी वजह यह है कि आपने तमाम दुनियां के कान्स्टीट्यूशन तो देखे, लेकिन जो दुनियां का लेटेस्ट एण्ड बैस्ट कान्स्टीट्यूशन है, उस पर नजर नहीं की। दूसरी बात यह है कि हमारी कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली का इलेक्शन किसी तरीके पर हुआ था। यह कोमिनल वैसेज पर हुआ था। मुसलमानों को मुसलमानों ने चुना और हिन्दुओं को हिन्दुओं ने। और स्टेट्स इसमें दाखिल ही नही थी। आप की जो पहली कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली की मीटिंग हुई थी, उसमें क्या हुआ? उसमें तीन पार्टीज थीं, इसको आप खुद मानते हैं। कांग्रेस, मुसलिम लीग और स्टेट्स। इसमें स्टेट्स तो उस वक्त तक नहीं आई थीं। मुसलिम लीग का भी कोई सदस्य शरीक नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ है कि आपने जो कान्स्टीट्यूशन बनाया है, वह एक पार्टी ने बनाकर रख लिया। आप इसको कैसे दूसरों के ऊपर लागू कर सकते हैं? मेरे कहने का मतलब यह है कि आपके इस कान्स्टीट्यूशन से हम क्या उम्मीद करें; क्योंकि यह तो महज एक पार्टी का बनाया हुआ है। अब जो सूरत पैदा हो गई है, उसमें भी यह ही है। सिर्फ एक

[मौलाना हसरत मोहानी]

पार्टी है। वह इस तरह है कि मुसलिम लीग तो खत्म हो गई। उसने अपने आपको डिजोल्व कर लिया और जितनी स्टेट्स थीं, वह सब मर्जर होकर इन्डियन गवर्नमेंट में शरीक हो गई और सिर्फ अब यह इन्डियन गवर्नमेंट यानी एक पार्टी रह गई है, जिसके लिए हमको पोलिटिकल पार्टियां बनानी पड़ीं। इस तरह से आपकी दशवारियां खत्म हो जायेंगी...

श्री सत्यनारायण सिन्हा: कोई बेहतर पहलू निकला या नहीं?

मौलाना हसरत मोहानी: वही मैं कहने जा रहा हूं। अभी डाक्टर अम्बेडकर साहब ने कहा कि मैजोरिटी पार्टी को मैनोरिटी पार्टी का लिहाज रखना चाहिए। मैं कहता हूं: We do not want them आपने कान्स्टीट्यूशन में रखा है कि मुसलमानों के लिए 14 फीसदी सीट्स रिजर्व रखी जाये। आप जब तक यह समझते हैं कि आप 86 फीसदी है और मुसलमान 14 फीसदी है। यह जब तक आप में कम्युनिज्म है, उस वक्त तक कुछ नहीं हो सकता। आप मुसलमानों को मैनोरिटी में क्यों कहते हैं? मुसलमान मैनोरिटी में उस वक्त तक हैं, जब तक आप इनको कम्युनियल शक्ल में पेश करें। जब तक पोलिटिकल पार्टी के तौर पर या फर्ज कीजिये कि हम इन्डिपैन्डेंट कम्युनिस्ट के तौर पर या सोशलिस्ट के तौर पर आयेंगे और जब कि कोलिसन पार्टी बनायेंगे, तो वह 'ऐज ए होल' सबके मुकाबले में होंगे।

आप कहते हैं कि इतना जमाना गुजर चुका, इतनी बातें गुजर चुकीं, हमने इतनी मेहनत कर ली है। मैं जनाब सदर, आपको याद दिलाऊंगा कि जब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कान्स्टीट्यूशन का मसौदा पेश किया था, उस वक्त मैंने ऐतराज किया था। उन्होंने कहा था कि कोई हर्ज नहीं है। आप प्राइमरी चीज को छोड़ दीजिये। मैंने कहा था कि यह कौन लग़ो बात है कि जो चीज पहले तय करना चाहिये, उसको आप छोड़ देते हैं। कि आप एक ताकतदार और मजबूत बात नहीं कर सकेंगे। बल्कि इधर-उधर की लग़ो बात हर एक काम में भर देंगे। आया जब यह सवाल होगा इन चीजों के मुतल्लिक, तो फिर आप क्या कर सकेंगे? यानी

आपने कोई फैसला नहीं किया और कान्स्टीट्यूशन बनाने बैठ गये। इट इज फ्यूटीलिटी (it is futility)।

आपको यह देखना चाहिए कि हमको क्या बनाना चाहिये। हम एक तस्वीर बनाना चाहते हैं। अगर यह तस्वीर ठीक तौर से न हो, तो वह तस्वीर नहीं कही जा सकती। आप कहेंगे कि हमने इतनी मेहनत कर ली है और इतने दिन गुजर गये हैं, तो मैं कहूंगा कि इसमें दुशवारी की कौन सी बात है। और कोई खतरा नहीं है। मैंने उस वक्त भी प्रौटेस्ट किया था और मुझको खुशी है कि उस वक्त मेरे साहब सदर ने कहा था कि इस पर गौर किया जायेगा। और उस बिना पर हमने इस रैज्यूलशन पर बहस की थी। आप देखते हैं कि पाकिस्तान में भी यही हुआ है और जिन्ना साहब ने कहा था कि जब तक कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली इलैक्ट नहीं होगी, उस वक्त तक कान्स्टीट्यूशन पास नहीं हो सकता। इस लिहाज से मैं कहूंगा कि जब तक आप नान-कम्युनिल वैसेज पर कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का इन्तखाब न करें, आपको कोई हक नहीं है कि आप कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली से कान्स्टीट्यूशन पास करा लें। आप इस ज़ोम में किसी बात को कुछ नहीं समझते कि आपकी मैजोरिटी है। आप जो चाहेंगे, पास कर लेंगे। आप यह न समझिये कि आप पर कुछ इल्जाम न आयेगा। मैं अकेला जो कुछ कह सकता हूं, कहता हूं। आप न मानिये। आप तो दरअसल वही कर रहे हैं कि जो ब्रिटिश गवर्नमेंट करती थी। उसने कुछ दिनों के बाद पेंशन दे दी और कहा कि घर बैठो। क्यों साहब, क्यों घर बैठें?

मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आप हैदराबाद में क्या कर रहे हैं? वहां के लिए आप कहते हैं कि वहां एक कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बिठाई जायेगी और वहां का आईन बनायेगी। वहां तो यह चीज आपने मंजूर कर ली है। आखिर यहां ऐसा क्यों नहीं करते? इसके मानी साफ यह हैं कि यह सब कम्युनियल लाइन पर हो रहा है और जिसमें हक व इन्साफ को कोई दखल नहीं है।

अगर आप कहते हैं कि हम नहीं कर सकते। हमको अख्तियार नहीं है कि हम कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का ज्वाइंट अलैक्टिरेट पर इलैक्शन करें। जब कान्स्टीट्यूशन बन जायेगा, तो होगा। मैं वही बात कहता हूं, जो आपने कही है

[मौलाना हसरत मोहानी]

कि रिजिडिटी और लिगेलेजम को छोड़ दीजिये। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आप बगैर निजाम के फरमान के हैदराबाद में कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली कायम कर सकते हैं? लेकिन चूंकि आप को जरूरत महसूस हुई, इसलिये आपने अपने यहां कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का इलैक्टोरेट बनाना शुरू कर दिया। यह कहना कि हम कर नहीं सकते, ठीक नहीं। ''Where there is a will there is a way'' अगर आप चाहते हैं कि मुल्क के साथ इन्साफ करें और सब के साथ एक सा बर्त्ताव करें, तो मैं आपको वार्निंग देता हूं कि यह कोशिश कि हम सबको मिलाकर एक कर लें और एक परमानैंट इन्डियन पावर बना लें, यह आपको तबाही की तरफ ले जायेगी। लेटेस्ट मिसला मौजूद है। हमारे एम्परर औरंगजेब की। उसने यह किया कि सारा हिन्दुस्तान फतह करने के बाद आखिर में हिन्दुस्तान के जनूब में वह दो रियासतें बीजापुर और गोलकुंडा की थीं, उनको भी फतह किया; ताकि एक Unitary Moghal Empire कायम हो जाये। नतीजा क्या हुआ? लोग कहते हैं कि औरंगजेब की सल्तनत तहस्सब की वजह से गई। मगर मैं कहता हूं कि उसकी सल्तनत इम्पीरियलिज़्म (Imperialism) के तखैयुल की वजह से गई। अगर वह यह न करता तो सल्तनत न जाती। आप यह आसान न समझिये कि सबको मिलाकर और मजबूर करके अपने तखत में एक युनेटरी गवर्नमेंट कायम कर लेंगे। यह नहीं चलेगी। आप फ्रेश इलेक्शन कीजिये। नौन-कम्युनिल बेसेज पर कीजिये, ज्वाइंट इलेक्टारेट पर कीजिये और उसके बाद जो कान्स्टीट्यूशन आप बनायेंगे, उसको हम मंजूर करेंगे और जो कान्स्टीट्यूशन आपने बनाया है हम तो उसको इस काबिल समझते हैं कि उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दें।

***श्री बी. दासः** मैं यह बताना चाहता हूं कि नियम (31) उप-खंड (2) के अंतर्गत भारतीय विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये माननीय डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को स्थगित करने के प्रस्ताव को पेश करने की आज्ञा अध्यक्ष को नहीं देनी चाहिये।

***अध्यक्षः** मैंने इसे नियम 25, खंड 5, उप-खंड (बी) के अंतर्गत मसौदे पर विचार करने के प्रस्ताव को, जिस पर वाद-विवाद हो रहा है, स्थगित करने वाले प्रस्ताव के रूप में लिया है।

***श्री बी. दासः** परन्तु वे (मौलाना साहब) तो देश में सर्वप्रथम नये चुनाव कराना चाहते हैं। यह तो उक्त विचार के सर्वथा विरोध में है।

***अध्यक्षः** मैंने उदारतापूर्वक नियम की व्याख्या की है, क्योंकि जैसा मैंने कहा है, मैंने नियम 25, खंड 5, उप-खंड (बी) के अंतर्गत उसे लिया है।

***बेगम ऐज़ाज रसूल** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान् जी, आज की बैठक के स्थगित होने से पूर्व क्या मैं यह जान सकती हूं कि डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर सामान्य वाद-विवाद के लिये कितने दिन देने का आपका विचार है?

***अध्यक्षः** जैसा कि अभी मुझे बताया गया है, यह आशा की जाती है कि कल वाद-विवाद समाप्त हो जायेगा। मैं प्रत्येक वक्ता के लिये समय नियत कर दूंगा और यदि वाद-विवाद को और बढ़ाने के लिये मुझे यथेष्ट मत प्रतीत होगा, तो और समय दे दिया जायेगा।

इसके बाद सभा शुक्रवार 5 नवम्बर सन् 1948 ई. प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. VII 2.48
350

अंक 7
संख्या 2

शुक्रवार
5 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर	97
2. विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव-(*जारी*)	97

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, ता. 5 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक दिन के दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्न सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

श्री मुहम्मद इस्माइल (मद्रास : मुस्लिम)

श्री पी.एस. राव (जोधपुर)

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** माननीय डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर सेठ दामोदरस्वरूप का एक संशोधन मुझे प्राप्त हुआ है। यह संशोधन लगभग उसी प्रकार का है जैसा कि कल मौलाना हसरत मोहानी ने पेश किया था। लेकिन चूंकि इसमें थोड़ा-सा अन्तर है, मैं इस संशोधन को पेश करने की आज्ञा देता हूं। मेरा विचार है कि इस प्रस्ताव पर बोलने के लिये सदस्यों को सीमित समय ही दिया जाये। मेरे विचार से ऐसे अनेकों सदस्य हैं, जो इस वाद-विवाद में भाग लेना चाहते हैं। अत: मेरा विचार है कि सामान्य वाद-विवाद के लिये केवल आज ही नहीं, बल्कि आज और कल हम बैठें और कल हम पूर्णतया डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर विचार समाप्त कर लेंगे। तत्पश्चात् दो दिन अर्थात् रविवार और सोमवार संशोधनों के लिये रखूंगा और बुधवार से हम बैठेंगे और अनुच्छेदों पर क्रम से विचार करना आरम्भ करेंगे, इस दृष्टि से कि आज के वाद-विवाद में अधिक से अधिक सदस्य भाग ले सकें। मेरी समझ में प्रत्येक सदस्य को बोलने के लिये दस मिनट का समय पर्याप्त होगा। यदि सभा मेरे विचार से सहमत हो, तो मैं समय के बारे में इस प्रतिबन्ध का पालन करूंगा।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस आशा में कि शनिवार को अवकाश रहेगा, कुछ सदस्यों ने विधेयक सम्बन्धी प्रवर समितियों (सिलेक्ट कमेटियों) की बैठकों में भाग लेना तथा ऐसे अन्य कार्यों में भाग लेना स्वीकार कर लिया है।

***अध्यक्ष:** समितियों की बैठक इत्यादि के सम्बन्ध में मुझे कोई सूचना नहीं मिली है और जब कि परिषद् की बैठकें हो रही है, समितियों की बैठकों का समय नियत करने में मुझसे परामर्श लेना चाहिये था। इस कारण मैं इस सभा की बैठकों को पौर्विकता दूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, नि:संदेह समय का प्रतिबंध तो वांछनीय है, परन्तु मेरा निवेदन है कि यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि कोई व्यक्ति इसके केवल एक अंग को ही ले, तो दस मिनट में उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकेगा; इसलिये मेरा विनम्र निवेदन है कि समय के इस प्रतिबंध का पालन न किया जाये, अन्यथा वाद-विवाद निस्सार हो जायेगा और कोई व्यक्ति किसी विचार को पूरा प्रकट नहीं कर सकेगा। अर्थ सम्बन्धी प्रावधानों पर मुझे स्वयं कुछ कहना है।

***अध्यक्ष:** यदि मुझे यह प्रतीत होगा कि कोई विशेष सदस्य वाद-विवाद में लाभदायक विचार व्यक्त कर रहा है, तो उसके पक्ष में मैं समय के प्रतिबंध को शिथिल कर दूंगा।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि सामान्य वाद-विवाद के लिये दो या तीन दिन और दे दिये जायें, क्योंकि विधान के मसौदे पर विचार करते समय सामान्य वाद-विवाद बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध होगा और विधान के विभिन्न अंगों पर देश के भिन्न-भिन्न भागों की जनता के विचारों से सदस्य परिचय पा सकेंगे। संशोधनों का मसौदा बनाने में तथा यह निश्चय करने में कि किसी विशेष संशोधन को पेश करना है, अथवा नहीं, यह बड़ा सहायक होगा। वास्तव में किसी साधारण कानून के लिये भी सदैव दो या तीन दिन दिये जाते हैं। अर्थ सम्बन्धी बिल पर, जिसका प्रवर्तन-काल केवल एक वर्ष है, सामान्य वाद-विवाद के लिये पांच या छ: दिन दिये जाते हैं। विधान के मसौदे पर सामान्य वाद-विवाद के लिये यदि आप दो या तीन दिन और दे देंगे,

तो वह समय व्यर्थ नहीं जायेगा, बल्कि इससे हमें यह विदित हो जायेगा कि हम विषय के विभिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न सदस्यों की क्या विचारधारा है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि आप सामान्य वाद-विवाद के लिये हमें कृपया दो या तीन दिन और दे दें।

*__श्री के. हनुमन्थय्या__ (मैसूर): श्रीमान्, तीन सौ सदस्यों की सभा के लिये दो दिन बहुत कम होंगे। केवल दस सदस्य बोल सकेंगे और सब वर्ग वाद-विवाद में भाग नहीं ले सकेंगे। पांच दिन भी कम रहेंगे।

*__श्री के. सन्तानम्__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि समस्त विधान पर सामान्य वाद-विवाद अधिक लाभदायक नहीं होगा। कोई भी व्यक्ति 45 मिनट या एक घंटे से कम समय में लाभप्रद विचार प्रकट नहीं कर सकेगा। अतः मैं सुझाव रखता हूं कि प्रत्येक अनुच्छेद पर विचार करने के पूर्व हम उस अनुच्छेद पर संक्षिप्त सामान्य वाद-विवाद कर लें और फिर उसे पास करें। अतः समस्त विधान पर वाद-विवाद की अपेक्षा इस प्रकार से हमारा सामान्य वाद-विवाद अधिक लाभदायक हो सकेगा।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से इस बात पर वाद-विवाद करने में कि हम किस प्रकार विचार करें, अधिक समय व्यतीत करना उपयुक्त न होगा। हम विचार करना आरम्भ करें और फिर देखेंगे कि क्या करना ठीक है।

*__श्री बी. दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री सन्तानम् के सुझाव का समर्थन करता हूं। मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि अभी तक बहुत से प्रलेख सदस्यों के पास नहीं पहुंचाये गये हैं। उदाहरणस्वरूप सीमा-समिति की रिपोर्ट हमें अभी तक नहीं मिली है। कुछ प्रलेख मसौदा-समिति को मिल गये थे, उनको भी देखने का सभा को अधिकार है; उदाहरणस्वरूप विधान के मसौदे पर प्रांतीय सरकारों की सम्मतियां और न्यायधीश-वर्ग से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों पर फेडरल कोर्ट और हाई कोर्टों के विचार। अनेकों बातों के ऐसे कानूनी पहलू

[श्री बी. दास]

हैं जिनको हमें जानना चाहिये इसलिये फेडरल कोर्ट और हाई कोर्टों के विचार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। ये प्रलेख हमें मिल जाने चाहियें, तभी हम आगे वाद-विवाद कर सकेंगे।

*__अध्यक्षः__ आगामी सोमवार या मंगलवार तक सदस्यों को प्रांतीय सरकारों, हाई कोर्टों और अन्य ऐसी प्रमुख संस्थाओं की सम्मतियां देने का हम प्रयत्न करेंगे।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। आपने कहा कि जिस प्रस्ताव की सूचना सेठ दामोदरस्वरूप ने दी है, आप उसे पेश करने की उन्हें आज्ञा देंगे। कल मौलाना हसरत मोहानी ने ऐसा ही प्रस्ताव पेश किया था। क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह प्रस्ताव सामान्य उस वाद-विवाद से पृथक लिया जायेगा, जिसके लिये आपने दो दिन दे दिये हैं?

*__अध्यक्षः__ इन दो प्रस्तावों पर वाद-विवाद समाप्त होने के सद्यः पश्चात् मैं स्थगन प्रस्ताव पर मत लूंगा और उसके पश्चात् हम सामान्य वाद-विवाद आरम्भ करेंगे।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): मैंने मूल प्रस्ताव पर संशोधन की सूचना दी है।

*__अध्यक्षः__ स्थगन प्रस्ताव को समाप्त करने के पश्चात् हम उसे लेंगे।

*__मौलाना हसरत मोहानी__ (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): 4 नवम्बर के स्टेट्समैन में यह प्रकाशित हुआ है कि प्रस्तावना पर अन्त में वाद-विवाद होगा और मत-दान लिया जायेगा। आपने जो कुछ कहा, उससे मैं यही समझा कि आप उसी मार्ग का अनुसरण करेंगे। यदि ऐसा है...

*__अध्यक्षः__ समाचार पत्र जो कुछ प्रकाशित करते हैं, उससे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है।

*__मौलाना हसरत मोहानीः__ आपने कल यह कहा था कि इस विषय पर अभी निश्चय किया जायेगा और यह भी कहा था कि इसको फिर नहीं लिया जायेगा। आपका आशय क्या यही है कि प्रस्तावना पर अभी विचार होगा।

***अध्यक्ष:** मैंने प्रस्तावना या विधान के किसी भाग के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा।

***मौलाना हसरत मोहानी:** प्रस्तावना पर संशोधन मैं अभी पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अभी प्रस्तावना या विधान के किसी भाग पर संशोधन नहीं रखा जा सकता है। यथासमय हम सब संशोधनों पर विचार करेंगे।

श्री दामोदर स्वरूप सेठ: सदर साहब, आपकी इजाजत से जो अमेंडमेंट हाउस के सामने पेश करने जा रहा हूं, वह यह है:

> ''Whereas the present Constituent Assembly was not elected on the basis of adult franchise and whereas the final Constitution of free India should be based on the will of the entire people of India, this Constituent Assembly resolves that while it should continue to function as Parliament of the Indian Union, necessary arrangements should be made for convening a new Constituent Assembly to be elected on the basis of adult franchise and that the Draft Constitution prepared by the Drafting committee be placed before it for its consideration and adoption with such amendments as it may deem necessary.''

सदर साहब, इस अमेंडमेंट पर कुछ कहने से पहले मैं यह कह देना जरूरी समझता हूं कि मैंने एक अलग प्रस्ताव इस आशय का भेजा था कि ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन पर फिलहाल विचार स्थगित कर दिया जाये। लेकिन मेरी बदकिस्मती से किसी वजह से मेरा वह रिजोल्यूशन एडमिट नहीं हुआ। इसलिए मेरे पास सिवाय इसके कोई दूसरा चारा नहीं था कि उस रिजोल्यूशन के आशय का मैं अमेंडमेंट पेश करूं।

सदर साहब, कल जब मौलाना हसरत मोहानी साहब ने अपना अमेंडमेंट पेश किया था, तो मैंने अफसोस के साथ यह बात देखी थी कि इस हाउस के कुछ आनरेबल मेम्बर उसका मज़ाक उड़ा रहे थे और उसके साथ एक तरह की खिलवाड़ भी कर रहे थे...

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): (*श्री दामोदरस्वरूप के भाषण के बीच में बोलते हुये*) अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय सदस्य से जो कि इस प्रस्ताव को

[श्री एस. नागप्पा]

पेश कर रहे हैं, यह जानना चाहता हूं कि जब उनका इस महान सभा के लिये निर्वाचन हुआ था, क्या उस समय उन्होंने इस सभा को ऐसी सर्वोच्च संस्था माना था, या नहीं, जो विधान-परिषद् के रूप में कार्य करने की क्षमता रखती है। यदि नहीं माना, तो वे सदस्य क्यों हुये? (*हंसी*)

***अध्यक्षः** यह औचित्य प्रश्न नहीं है।

***श्री एस. नागप्पाः** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या उनका यह कहना नियमानुसार है कि यह सभा विधान-परिषद् नहीं है और वयस्क मताधिकार के आधार पर एक नई परिषद् का निर्माण होना चाहिये?

***अध्यक्षः** अपने प्रस्ताव को पेश करने में वे कोई नियम विरुद्ध कार्य नहीं कर रहे हैं।

श्री दामोदर स्वरूप सेठः सदर साहब, मैं यह अर्ज कर रहा था कि किसी रिजोल्यूशन या अमेंडमेंट के आशय की हंसी उड़ाना उसके समर्थकों के विचारों की हंसी उड़ाना, यह तो एक आसान बात है, लेकिन वास्तविकता को समझना और उसको एप्रीशिएट करना, इसके लिए कुछ साहस की जरूरत होती है। हो सकता है और मुझे इस बात का डर है कि मेरे इस अमेंडमेंट से भी शायद मेरे कुछ साथियों को नाराजगी होगी, लेकिन हर आदमी के सामने उसका कुछ फर्ज होता है। और बगैर उसके नतीजे का ख्याल करते हुए, बगैर इस बात का ख्याल करते हुए कि लोग उसके मुताल्लिक अपनी क्या राय रखेंगे, हर इंसान का फर्ज होता है कि जो उसकी आत्मा की आवाज़ हो, जो उसके जमीर की आवाज़ हो, उसको वह दूसरे लोगों के सामने बेधड़क रखे, क्योंकि सदर साहब, मैं जानता हूं कि कौमों की ज़िन्दगी में और इन्सानों की जिन्दगी में भी एक वक्त ऐसा आता है कि जब उन्हें कड़वी से कड़वी दवा को अपने गले से नीचे उतारना पड़ता है। मैं समझता हूं कि ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन के विचार करने के सम्बन्ध में भी हमारे देश में आज यही स्थिति है और इसलिए हमें इस बात के ख्याल करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि हमारे ख्यालात किसी को पसन्द आते हैं, या नहीं पसन्द आते हैं। हमें तो अपना फर्ज अदा करना है। तो सबसे पहले मैं इस बात पर रोशनी डालने की कोशिश करूंगा कि यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली जो

आज यहां बैठी हुई है और जो इस ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन पर विचार करके उसको पास करने जा रही है, इसका रिप्रेजेंटेटिव करैक्टर कितना है? सदर साहब, किसी आज़ाद मुल्क की कांस्टीट्यूशन मैकिंग बाडी के लिये इस बात की सबसे पहले जरूरत है, वह यह है कि वह बाडी इस बात का दावा कर सके कि वह उस मुल्क के तमाम अवाम की राय का इजहार कर रही है। सदर साहब, मैं आपकी इजाजत से यह बात पूछना चाहूंगा कि इस हाउस के अन्दर बैठे हुए हमारे आनरेबल मेम्बर क्या अपनी छाती के ऊपर हाथ रखकर दावे के साथ यह बात कह सकते हैं कि वह तमाम हिन्दुस्तान के लोगों की नुमायन्दगी इस हाउस में कर रहे हैं? मैं पूरे जोर के साथ यह बात कह सकता हूं कि यह हाउस सारे मुल्क की नुमायन्दगी का दावा नहीं कर सकता। ज्यादा से ज्यादा यह दावा कर सकता है कि हिन्दुस्तान की आबादी के कुल 15 फीसदी उन लोगों की नुमायन्दगी का कि जिनके आधार पर हमारे मुल्क के सूबों के लेजिस्लेचरों का चुनाव हुआ था। और यह चुनाव भी जिसके जरिये से इस हाउस के मेम्बर यहां पर बैठे हैं, एक सीधा चुनाव नहीं था, वह भी इन्डाइरेक्ट चुनाव के जरिए से यहां पर आए हैं। ऐसी हालत में जब कि मुल्क के 85 फीसदी आदमियों की नुमायन्दगी इस हाउस में नहीं है, यह कहना कि यह हाउस सारे मुल्क की विल को रिप्रेजेंट करता है—जब कि 85 फीसदी लोगों की यहां पर कोई आवाज ही नहीं है, उनकी कोई नुमायन्दगी नहीं है—यह कहना इस हाउस के लिए कि यह सारे मुल्क के लिए कांस्टीट्यूशन बनाने के लिये कांपीटेन्ट है, यह मेरी राय में बहुत हद तक एक गलत बात होगी। उसके अलावा हमें यह भी देखना है कि यह जो ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन इस हाउस के सामने आ रहा है, इसके रिप्रेजेंटेटिव के अलावा इसका नेचर क्या है। हमने यह देखा है कि इस कांस्टीट्यूशन में यूनाइटेड स्टेट आफ अमेरिका और ब्रिटेन के कांस्टीट्यूशन की नकल की गयी है। इसमें कुछ दफ़ायें आयरलैंड, आस्ट्रेलिया और कनाडा के कांस्टीट्यूशन से भी ली गई है। एक अखबार ने शायद यह ठीक ही लिखा था कि यह इन मुल्कों के कांस्टीट्यूशन का एक 'स्लैविश इमिटेशन' है।

सदर साहब, जो हालात अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा या आस्ट्रेलिया में थे, वह हमारे मुल्क के अन्दर नहीं है। हमारे मुल्क के अन्दर की हालत का मुकाबला अगर किसी से किया जा सकता है, तो वह रूस से किया जा सकता है, उस

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

रूस से जो सोवियत रिपब्लिक के बनने से पहले का रूस था। इसके अलावा हमारे मुल्क में 7 लाख गांव हैं और गांव हमारे मुल्क का सबसे बड़ा यूनिट है। महात्मा गांधीजी की कृपा से हमारी आज़ादी की लड़ाई गांव तक पहुंच गयी थी और गांवों के आधार और बल पर ही आज हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ है।

मैं यह पूछना चाहता हूं कि इस बड़े कांस्टीट्यूशन के स्ट्रक्चर में आज जो हमारे सामने हैं, उसमें कहीं भी गांव का कोई जिक्र है और कहीं उसकी कोई तस्वीर है? नहीं, कहीं नहीं। किसी आज़ाद मुल्क का कांस्टीट्यूशन का आधार होना चाहिए—''लोकल सैल्फ गवर्नमेंट''। हमें इस कांस्टीट्यूशन में लोकल सैल्फ गवर्नमेंट के बारे में कहीं भी कोई बात नहीं दिखाई देती। यह सारा कांस्टीट्यूशन बजाय अन्दर और नीचे से खड़ा करने के ऊपर से और बाहर से खड़ा किया जा रहा है और ऐसा कोई स्ट्रक्चर जो बाहर से और ऊपर से खड़ा किया जाये और जिसमें यूनिटों का कोई आधार और उनकी आवाज न हो, जिसमें हिन्दुस्तान के हजारों और लाखों गांव का कोई भी जिक्र नहीं है, आप इस कांस्टीट्यूशन को इस मुल्क को दे सकते है; मगर इसको ज्यादा दिनों तक आप अच्छी तरह से चला सकेंगे, इसमें मुझे शक है।

सदर साहब, होना यह चाहिए था कि हमारे हिन्दुस्तान की रिपब्लिक की वह सारे ओटोनोमस रिपब्लिक आपस में मिलकर एक यूनियन के रूप में हिन्दुस्तान की, एक बड़ा रिपब्लिक बनाते। इस तरह के ओटोनोमस रिपब्लिक होने से न लिंगविस्टिक प्राविंसेज का सवाल उठता है और न कम्यूनल मैजोरिटी और न माइनोरिटी का सवाल उठता है और न बैकवर्ड क्लासेज का सवाल उठता है। इस यूनियन में जो-जो ओटोनोमस यूनिट होते, वह अपने-अपने कलचर के मुताबिक जिस यूनियन के साथ चाहते, उसके साथ अपना नाता जोड़ सकते थे। इस तरह से जो यूनियन हमारे मुल्क में बनती, वह वाकई ऐसी यूनियन बनती, जिसमें हमें सेन्ट्रलाइजेशन पर इतना जोर देने की जरूरत नहीं होती, जितना हमारे काबिल डॉ. अम्बेडकर साहब ने दिया है। सेन्ट्रलाइजेशन एक अच्छी चीज है और वक्त पर यह भी काम आती है। लेकिन हम भूल जाते हैं कि जिन्दगी भर महात्मा गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि ''पावर का ज्यादा सेन्ट्रलाइजेशन करना'' उस पावर को टोटलिटेरियन बना देता है और उस पावर के फासिज़्म के आदर्श

पर जाता है। उस फासिज़्म और टोटलिटेरियनिज़्म को रोकने का एक ही तरीका है और वह यह है कि ज्यादा से ज्याादा हम पावर को सेन्ट्रलाइज करें। इस तरह से हम हृदय से ऐसा सेन्ट्रलाइजेशन आफ पावर करेंगे कि जिसका मुकाबला दुनियां में कोई नहीं कर सकता। लेकिन कानून के जरिये से पावर को सेन्ट्रलाइजेशन करने का कुदरती नतीजा यह होगा कि हमारे मुल्क में, जो अब तक फासिज़्म का बराबर विरोध करता रहा है, और आज भी जिस फासिज़्म के विरोध की हम जोर से दुहाई देते हैं, वह धीरे-धीरे फासिज़्म की तरफ चला जायेगा। इसलिए साहबे सदर, मैं चाहता हूं कि इन बातों पर यह हाउस काफी सन्जीदगी के साथ गौर करे। यह मामला कोई मामूली मामला नहीं है। इस कांस्टीट्यूशन के बनाने में हम कोई खिलवाड़ नहीं कर रहे हैं, बल्कि एक बड़ा अहम कदम उठा रहे हैं। सैकड़ों नहीं शायद हजारों वर्ष के बाद, बल्कि मैं यह कहूंगा और उसमें कोई मुतालबा नहीं होगा कि हिन्दुस्तान की तारीख में पहली मर्तबा हमको यह मौका मिला है कि हम सारे हिन्दुस्तान का कांस्टीट्यूशन बनाने जा रहे हैं इसलिए हम इस पर जितना गौर-खोज करें, उतना कम है। यह कहा जा सकता है और कहा गया है कि इस कान्स्टीट्यूशन को आप पास हो जाने दीजिये, फिर एडल्ट फ्रेन्चाइज़ के जरिये से जो नई असेम्बली बने, उसे पूरा अधिकार होगा कि वह अमेंडमेंट पेश करके उसमें जरूरी संशोधन कर दे। लेकिन साहिबे सदर, इस कान्स्टीट्यूशन के एक बार बन जाने के बाद उसमें फिर अमेंडमेंट पेश करने में कानूनी पेचीदगियां पैदा होंगी और हमारे लिए यह कोई फक्र नहीं होगा कि हिन्दुस्तान की तारीख से एक बड़ा अहम काम जो हमारे सुपुर्द हुआ, उसको हम अधूरा करके दूसरों के ऊपर छोड़ दें। आयन्दा आने वाली नस्ल हमारे इस रवैये पर अफसोस ही करेगी। इसलिए जो ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन हमारे सामने है, उसके रिप्रेजैन्टेटिव करैक्टर और उसके नेचर और बनावट दोनों तरफ देखने से हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि मौजूदा कांस्टीट्यूशन हमारे लिए, आज की हालत के लिए, हमारी संस्कृति के लिए, हमारे देश के रस्म-रिवाज के अनुकूल नहीं है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि फिलहाल इसके ऊपर विचार करना हम स्थगित कर दें और एक नई कांस्टीट्यूशन असेम्बली एडल्ट फ्रेचाइज के आधार पर बनायें, ताकि वह इस कान्स्टीट्यूशन पर निगाह डाले, उस पर विचार करे और जरूरत के मुताबिक उसमें अमेंडमेंट करे। जब तक इस तरह की नई कान्स्टीट्यूशन असेम्बली बने, उस वक्त तक मौजूदा कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली पार्लियामेंट का काम कर सकती

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

हैं और उसमें हम नहीं चाहते हैं कि किसी तरह की रुकावट हो। इसमें शक नहीं कि हमको इस काम को करने में दो वर्ष लग गये और सालभर और करीब-करीब इतना ही वक्त और लग जाये। लेकिन मुल्क की जिन्दगी में साल दो साल कोई चीज नहीं होती है। जब तक यह कान्स्टीट्यूशन मुकम्मिल न हो, हम अपना काम जिस तरह से आज तक चल रहे थे, उसी तरह से चला सकते हैं। लेकिन जैसा मैंने कहा है कि आज हम मुत्तहदा हिन्दुस्तान का कान्स्टीट्यूशन बनाने जा रहे हैं, तो वह कान्स्टीट्यूशन एक नया और आदर्श कान्स्टीट्यूशन होना चाहिये।

आज हिन्दुस्तान के आज़ाद होने के बाद मुझे आपको यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि दुनियां की आंखें हिन्दुस्तान की तरफ लगी हुई हैं। वह तो हिन्दुस्तान से कोई नई चीज चाहती है। ऐसे वक्त में जरूरत इस बात की थी कि जो हमारा ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन होता, वह इस तरह का कान्स्टीट्यूशन होता, जिसको कि हम दुनियां के सामने एक आदर्श की शक्ल में रख सकते। बजाय इसके कि हमने दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशनों की नकल करके दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशनों का कुछ हिस्सा लेकर अपने मुल्क का एक कान्स्टीट्यूशन खड़ा कर दिया, और जैसा कि मैंने पहले कहा था, वह कान्स्टीट्यूशन का ढांचा भी हमने इस तरह का खड़ा किया है, जो मालूम होता है कि ऊपर से खड़ा किया गया है, नीचे से नहीं खड़ा किया गया है। हिन्दुस्तान के हजारों, लाखों गांवों का इसमें कोई हिस्सा नहीं है और इसमें उनकी कोई आवाज़ नहीं है। और मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि अगर हिन्दुस्तान में लाखों गांवों के एडल्ट फ्रेन्चाइज के आधार पर हिस्सा मिला होता, इस कान्स्टीट्यूशन के ड्राफ्ट करने में, तो इसकी शक्ल शायद आज की शक्ल से बिल्कुल मुख्तलिफ हुई होती। आज हमारे मुल्क में गरीबी क्या गजब ढा रही है। लोग किस तरह से भूखे-नंगे हैं। जरूरत थी, इस कान्स्टीट्यूशन में इस बात की कि फन्डामैंटल राइट्स में यह बात शामिल की जाती कि हर आदमी को काम मिलने का, काम पाने का अधिकार होगा। हर आदमी को खाने और पहनने की फिकरों से छुट्टी मिल जायेगी। हर आदमी के लिए तालीम हासिल करना, उसका हक होगा। यह सारी बातें फन्डामैंटल राइट्स में शामिल होनी चाहिए थीं। लेकिन सदर साहब, मैं आपसे क्या अर्ज करूं। हमारे आनरेबिल डॉ. अम्बेडकर साहब ने अपनी स्पीच में खुद इस बात को महसूस

किया है और कहा है कि फन्डामैंटल राइट्स के बारे में बहुत से ऐतराज किये गए हैं। डाक्टर साहब की दलील के बावजूद मैं यह समझने से मजबूर हूं कि फन्डामैंटल राइट्स और दूसरे राइट्स बिल्कुल एक ही चीज हैं। मैं तो समझता हूं कि फन्डामैंटल राइट्स ऐसी चीज हैं, जो किसी से छीनी नहीं जा सकती, जिसको छीनना गवर्नमेंट की ताकत से बाहर है। वह तभी छीने जा सकते हैं, जब कोई अदालत किसी जुर्म के बदौलत किसी आदमी को कोई सज़ा दे। वरना, अगर फन्डामैंटल राइट्स हुकूमत की मर्जी पर छीने जा सकते हैं, तो फन्डामैंटल नहीं रह जाते हैं। इन बातों के मेरे कहने का सदर साहब, मतलब यह है कि अगर इस कान्स्टीट्यूशन के बनाने में देश के हजारों गांवों का हिस्सा होता, देश के गरीब तबके का, लोगों का, हिन्दुस्तान के मजदूरों का हिस्सा होता, तो इस कान्स्टीट्यूशन की शक्ल आज की शक्ल से बिल्कुल मुख्तलिफ हुई होती। इसलिए सदर साहब, मैं आपकी इजाजत से इस हाउस से यह दरख्वास्त करना चाहूंगा कि वह इस कान्स्टीट्यूशन को मामूली मामला न समझ कर, इसे एक तारीखी चीज समझ कर इसके ऊपर जरूरी ध्यान दें। और आपसे यह दरख्वास्त करूंगा कि फिलहाल इस कान्स्टीट्यूशन के ऊपर विचार करना मुल्तवी किया जाये और मुल्क को एक मौका और दिया जाये, ताकि जो कान्स्टीट्यूशन बने वह हिन्दुस्तान के अवाम का कान्स्टीट्यूशन बने। इन शब्दों के साथ मैं इस अमेंडमेंट सम्बन्धी अपनी बात को खत्म करता हूं।

अध्यक्षः यह आपके सामने आयेगा। अब इस पर जो साहब बोलना चाहें, बोल सकते हैं।

श्री बालकृष्ण शर्माः सभापति महोदय, मेरे मित्र सेठ दामोदरस्वरूप जी ने आज इस सभा के सन्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि हमें इस समय जो भी विधान की रूपरेखा उपस्थित हुई है, उस पर विचार करना स्थगित कर देना चाहिए। और उन्होंने अपने प्रस्ताव के पक्ष में एक तर्क उपस्थित किया है। इन तर्कों के ऊपर विचार करने के पूर्व में एक-दो मुख्य बातों के ऊपर इस सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। पहली बात जो मेरे सन्मुख उपस्थित होती है, वह यह है कि मेरे मित्र जिन्होंने कि यह प्रस्ताव उपस्थित किया है, यह विशुद्ध अवांछनीय है, क्योंकि आखिर हम यहां किसलिए बैठे हैं। विधान बनाने के लिए चुनकर हम लोग इस सभा में पधारे हैं। एक बार जिस राजनैतिक दल के वह सदस्य हैं, उस दल ने यह निर्णय किया कि यह विधान-परिषद् एक स्वतंत्र सत्ता धारण करने वाली संस्था नहीं है इसलिए हमें इसका बहिष्कार करना चाहिए। फिर उनके दल ने

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

न जाने क्या सोचकर कहा कि आज इसमें हमें जाना चाहिये, जिसमें कि वह स्वयं चुनकर यहां आये। उस समय उनके दल के कुछ आदमी नहीं आये और उसके बाद फिर न जाने क्या समझकर उनके दल के आदमियों ने कुछ भाग लेना प्रारंभ किया। अब आप देखिये कि जिस समय जिस दल की या जिस व्यक्ति की नीति इस प्रकार से क्षण-क्षण में परिवर्तित होती जाती है—"क्षणे रुष्टा:, क्षणे तुष्टा:, रुष्टा:तुष्टा:क्षणे क्षणे"। तो इसके लिए क्या कहा जाये? मैं समझता हूं कि यह बुद्धि हमारे सेठ दामोदरस्वरूप जी को बहुत देर के बाद जागृत हुई कि हमको यहां पर बैठकर विधान न बनाना चाहिये और उन्होंने जो अपना तर्क दिया है, वह मेरी क्षुद्र बुद्धि में इतना लंगडा, इतना लूला, इतना बहरा और इतना अन्धा है, जिसकी कि कोई सीमा नहीं है। पहला तर्क तो उनका यह है कि हमारा, अर्थात् इस विधान-परिषद् का स्वरूप प्रतिनिधात्मक स्वरूप नहीं है। मैं निवेदन करना चाहूंगा कि जनतंत्र का एक हास्यास्पद स्वरूप भी होता है और वह हास्यास्पद स्वरूप जनतंत्र का प्रकट होता है। इस समय जब हम जनतंत्र को बिल्कुल प्रतिनिधात्मक बनाने के लिए प्रोपोर्श्नल रिप्रेजैंटेशन के ऐसी वस्तु का निर्माण करते हैं और इसके परिणामस्वरूप फासिज़्म को लाकर अपने बीच में उपस्थित कर लेते हैं। जर्मनी में, इटली में, फ्रांस में जिन स्थानों पर जनतंत्र को इस रूप में चलाने का प्रयास किया गया, तो उसका एकमात्र परिणाम यह हुआ कि वह फासिज़्म में परणित हो गया, और आज यह पन्द्रह प्रतिशत और पच्चीस प्रतिशत कह कह करके कि हम केवल पन्द्रह प्रतिशत आदमियों के प्रतिनिधि हैं, 85 प्रतिशत आदमी इसमें प्रतिनिधि के रूप में हमारे साथ नहीं है। इसलिए हमें इस पर विचार करना स्थगित कर देना चाहिये। यह कहना एक कुतर्क है; कुतर्क इसलिये है कि संसार में कहीं भी कोई आदर्शात्मक परिषद् स्थापित नहीं हो सकती। एक व्यावहारिक परिषद् में जिसमें हमने सारे के सारे देश का प्रतिनिधित्व किया, तो क्या हम यह कह सकते थे कि जिस कांग्रेस के सदस्य कुछ दिनों के पहले तक हमारे सेठ जी रहे हैं, क्या वह इस प्रकार के संघ-निर्माण के आधार पर यह कह सकते थे कि वह कांग्रेस समूचे के समूचे भारतवर्ष की प्रतिनिधि संस्था है और फिर भी संस्था के रूप में न कह सकने पर भी मेरे मित्र सेठ जी बराबर अपने आपको भारतवर्ष का खुदाई फ़ौजदार समझते रहे हैं। और आज भी किसी गरीब ने, किसी किसान ने, मजदूर ने एक-दो भारतवर्ष का वोट देकर उन्हें भारतवर्ष के प्रतिनिधित्व

में नहीं भेजा है, लेकिन फिर भी वह अपने आपको प्रतिनिधि कहते हैं। इसका कारण क्या है? वह जो रूसी भाषा में एक शब्द कहा गया है कि ''वी आर दी विल आफ दी पीपुल'' हम सर्वसाधारण की इच्छा हैं, हम सर्वसाधारण की भावनाओं के और आकांक्षाओं के प्रतिनिधि हैं, इस रूप में हम सारे भारत के प्रतिनिधि के रूप में एकत्रित होकर अपना विधान निर्माण कर रहे हैं। इसलिए 15 प्रतिशत और 85 प्रतिशत के कुतर्क को उठाना, मैं समझता हूं, अनुचित बात है।

दूसरी बात जो उन्होंने उठाई है, वह यह है कि हमारे इस विधान में हमने बहुत-सी बातें दूसरे-दूसरे देशों से उधार ली है। मेरा अनुमान है कि इसका बहुत सुन्दर उत्तर मान्यवर डॉ. अम्बेडकर अपने कल के भाषण में दे चुके हैं। मैं केवल इतना कह देना चाहता हूं कि यदि हमारे मित्र अत्यधिक मौलिकता के पीछे, मोरिजैनिलिटी के पीछे जाने का प्रयास करेंगे, जैसा कि मेरा अनुमान है, कदाचित श्री दामोदरस्वरूप जी का प्रयास है कि वह अत्याधिक मौलिक होने का प्रयास करेंगे, तो वह अपने आपको हास्यास्पद बना लेंगे। इसलिए जिस समय वह मौलिकता की बातें करते हैं, उस समय भी विशुद्ध रूप से वह मौलिक नहीं है। वह रूस की तरफ देखते हैं कि आपने रूस का अनुगमन नहीं किया। अर्थ यह हुआ कि यदि हम रूस का अनुगमन करते, तो हम मौलिक होते और चूंकि हमने आस्ट्रेलिया, कनाडा, यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के विधान का अनुगमन किया है, किंवा हमने उससे वस्तुयें ली हैं, किंवा हमने उससे किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त की है, इसलिए हम मौलिक नहीं है। तो अब यह दो प्रकार के अनुगमनों में से आपको और हमको चयन करने की बात है। सेठजी और मौलाना हसरत मौहानी रूस की तरफ झुकना चाहते हैं। हम में से कोई भी आदमी रूस के विरुद्ध नहीं है। हम लोग रूस की मित्रता के पक्षपाती हैं। रूस जो एक महान प्रयत्न कर मानव को संगठित कर रहा है, उसको हम बहुत रुचि और सहानुभूति के साथ देख रहे हैं; किन्तु यह बात निश्चित है कि बड़े विषयों में जिस नीति का अनुसरण करके वह व्यक्ति को स्टेट के लिए, राज्य के लिए समाप्त या विनष्ट कर देना चाहता है, उसको हम स्वप्न में भी स्वीकार नहीं कर सकते। सेठजी ने उदाहरण दिया, महात्मा गांधीजी का। महात्मा गांधी अतिकेन्द्रीकरण, ओवर सैन्ट्रलाइजेशन के विरुद्ध थे। मेरे मित्र को यह पता होना चाहिए कि इसेन्शियली

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

महात्मा गांधी वाज़ ए एनार्किस्ट। महात्मा गांधी एक फिलासाफिकल अनार्किस्ट, एक अराजकतावादी थे। तत्व रूप से वह अराजकता को हितकर समझते थे, क्योंकि वह व्यक्ति को इतना ऊंचा बना देना चाहते थे, जहां उसे किसी प्रकार के बाह्य नियंत्रणों की आवश्यकता न हो। हम और आप इतने ऊंचे प्राणी नहीं हैं। हमारे लिए अराजकतावाद और महात्मा गांधी के शब्दों को दुहरा कर उनके अनुसार कार्य करने का प्रयास हास्यास्पद होगा, और इसलिए महात्मा गांधी के शब्द यहां पर दुहराना व्यर्थ है, और अपने पक्ष-समर्थन के लिए महात्मा गांधी का नाम लेकर सेठजी ने कोई विशेष तार्किकता का परिचय नहीं दिया। वह पूछते हैं कि हमारे इस विधान में गांवों का स्थान कहां है, मजदूरों का स्थान कहां है, हमारे इस विधान में किसानों का स्थान कहां है, हमारे इस विधान में स्थानीय स्वायत्त शासन, लोकल सेल्फ गवर्नमेंट का स्थान कहां है। मैं बहुत विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि यदि वह ध्यानपूर्वक समूचे विधान का अध्ययन करने का प्रयास करेंगे, तो उनको यह व्यक्त होगा कि आज भी हम अपने इस विधान के निर्माण करते समय महात्मा गांधी की उस पुण्य प्रेरणा को विस्मृत नहीं कर रहे हैं कि जिससे प्रेरित होकर उन्होंने हमें यह सन्देश दिया था कि भारतवर्ष का निवास शहरों में नहीं है, बल्कि इस देश के सात लाख गांवों में है और इसलिए सभापति महाशय, मैं सेठजी के इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं और मुझे विश्वास है कि यह गृह उनके इस प्रस्ताव को ठुकराने के लिए किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव न करेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन-प्रस्ताव को इतनी सरलता से नहीं टालना चाहिये, जैसे कि मेरे माननीय मित्र श्री बालकृष्ण ने टाला है। जब केबिनेट मिशन भारत में था, उस समय हमने स्वयं यह चाहा था कि इस परिषद् का निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होने चाहिये; किन्तु अंग्रेज वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन कभी नहीं चाहते थे। उन्होंने निर्वाचन के इस तरीके को हम पर लादा। यदि वे हमारी मांग स्वीकार कर लेते, तो हमारा निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होता। सेठ दामोदर स्वरूप भली प्रकार जानते हैं कि कांग्रेस पार्टी, जिसका इस सभा में बहुमत है, इस बात का स्वागत करती। जो विषय उन्होंने लिया है, वह मौलिक है और हम सबको यह मान लेना चाहिये कि वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित परिषद् ही

वास्तविक विधान-परिषद् होगी। यद्यपि मुझे पूरा विश्वास है कि ये ही सदस्य बहुमत में फिर आयेंगे; परन्तु इस समय प्रश्न व्यावहारिकता का है। प्रश्न यह है कि क्या हम यह कर सकते हैं कि सभा को अब स्थगित कर दें और विधान-परिषद् के नये चुनावों के लिये एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें और तत्पश्चात् अपना विधान बनायें? मेरे विचार में वर्तमान विधान जिसको एक विदेशी परिषद् ने बनाया है, ऐसा है कि यदि मेरा बस चले तो मैं उसके अंतर्गत एक मिनट भी न रहूं; अत: मेरा विचार है कि इस समय तो हम संविधान के इस प्रारूप पर अपना विचार जारी रखें, किन्तु जब संविधान में संशोधन सम्बन्धी अध्याय पर पहुंचें, तो प्रथम दस वर्षों के अन्दर संविधान में संशोधन करने की रीति को उससे कहीं अधिक आसान बना दें, जितनी कि वह उस प्रारूप के अनुसार हैं मेरी समझ में तो यह ठीक होगा कि हम यह संभव कर दें कि संविधान में दो तिहाई बहुमत के स्थान पर केवल साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सके।

सेठ जी ने और बातें भी कही हैं। उन्होंने कहा है कि यह विधान ग्रामों को कोई महत्व नहीं देता है। उनके मन में सोवियत विधान की बात भी है। महात्मा गांधी जी का विधान जिसकी रूपरेखा श्री एस.एन. अग्रवाल ने दी थी, ग्राम-गणराज्य अथवा ग्राम-पंचायत पर आश्रित था; और मेरे विचार से विधान के उस अंग पर हमें सावधानी से विचार करना होगा। डा. अम्बेडकर से यह सुनकर मुझे दु:ख हुआ कि वे उस प्रणाली से घृणा करते हैं, जिसमें ग्रामों की इच्छा सर्वोपरि मानी जाती है। मेरे विचार से हमें उस भाग का उचित संशोधन करना पड़ेगा। यह परिषद् अब अपना कार्य आरंभ कर रही है और इसे सम्पूर्ण विधान को बदल देने का अधिकार है। सेठ जी ने आज अपना संशोधन रख दिया है। उस पर हम खुशी से वाद-विवाद करेंगे। मेरे विचार से केवल सेठ जी के ही ऐसे विचार नहीं है। हमें इन बातों को यों ही नहीं टाल देना चाहिये जैसा कि मेरे पूर्व वक्ता ने किया है। इस परिषद् में से विधान के प्रत्येक अंग पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिये और प्रत्येक व्यक्ति के साथ आदरपूर्वक व्यवहार होना चाहिये। और बातें जो उन्होंने कही है, उन पर उपयुक्त समय पर वाद-विवाद किया जा सकता है। उन्होंने कहा है कि इस विधान में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के लिये कोई प्रावधान नहीं है। यह एक महत्त्वपूर्ण चीज है, जिसका विधान में समावेश

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

करना चाहिये और इस विधान में यह नहीं किया गया है। पर मेरे विचार से सेठ जी की यह सम्मति कि हम इस समय सभा स्थगित कर दें और नई विधान-परिषद् द्वारा विधान-निर्माण के लिये एक वर्ष ठहरें, उचित नहीं है; क्योंकि नई परिषद् का नया चुनाव करना पड़ेगा और इस सभा को नई विधान-परिषद् के निर्वाचन के लिये कुछ नियम बनाने पड़ेंगे और इसमें कुछ समय लग जायेगा और फिर तो हमें इस समय नये विधान पर वाद-विवाद करने की अपेक्षा नई विधान-परिषद् के निर्वाचन के नियम बनाने के लिये बैठना होगा। मेरे विचार से वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित नई सभा को विधान में संशोधन करने का पूर्ण अधिकार होगा और यदि वह वाक्य-खण्ड, जिसके कारण विधान में संशोधन करना कठिन हो, निकाल दिया जाये तो इस संशोधन-प्रस्ताव के आशय की पूर्ति हो जाती है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि जब वह भाग आयेगा, हम उस पर वाद-विवाद करेंगे; पर इस समय सभा स्थगित करना उपयुक्त नहीं होगा। इस कारण मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री एस. नागप्पा:** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मुझे अपने माननीय मित्र के इस प्रस्ताव का जो कि सभा के समक्ष है, विरोध करना पड़ा है। मेरे मित्र यह कह रहे थे कि उनको इस परिषद् में विधान बनाने के लिये नहीं भेजा गया है। मैं यह नहीं समझ सका कि किस आशय से उन्होंने यह चुनाव लड़ा। मेरे विचार से जब वे इस परिषद् में आये, तभी यह उनको स्पष्ट कर दिया गया था कि वे यहां केवल विधान-निर्माण के लिये आये हैं। किन्तु वह तो यह कहते हैं कि यह प्रतिनिधायी संस्था नहीं हैं क्या मैं उनसे पूछ सकता हूं कि फिर वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था किस प्रकार की होगी? क्या इन सदस्यों को जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने नहीं चुना? नि:संदेह मैं इस बात से सहमत हूं कि यह वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ। यह किसका दोष है? क्या यह वर्तमान सरकार का दोष है, अथवा पूर्व सरकार का? यह बात तो ठीक होती कि मेरे मित्र इस आपत्ति को पहली सरकार के सामने रखते। उनको यह भी मालूम है कि पहली सरकार के पास यथेष्ट समय नहीं था। उन्हें तो जाने की पड़ी थी। अत: यदि वे वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन-सूचियां

बनाते और चुनाव करते, तो उनको दो वर्ष लग जाते। मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र दो साल तक और विदेशी राज्य चाहते थे। हमारा निर्वाचन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा हुआ है और प्रत्येक सदस्य हजारों व्यक्तियों का प्रतिनिधि है। नि:संदेह वह जनता के प्रत्येक व्यक्ति का प्रतिनिधि नहीं है, पर वह शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधि है और शिक्षित वर्ग ही जनता का प्रमुख अंग है। जब उन्होंने इन सदस्यों को यहां इस निश्चित कार्य के लिये भेजा है कि वे विधान बनायें और इसके साथ-साथ जब कि यही वह सभा है, जिसने विदेशियों से सत्ता ली है, तब तो यह अन्य किसी सभा से और भी अधिक नियमानुसार और प्रतिनिधायी सभा है। यदि वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन हों भी, तो क्या मेरे मित्र इस बात का पूर्ण विश्वास दिला सकते हैं कि इन सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्य चुने जायेंगे? मुझे इसमें संदेह है। आज या कल से ही नहीं, वरन् अनेकों वर्षों से ये छटे-छटाये नेता हैं और जनता के विश्वासपात्र हैं। जब कि देश पर दुख और कष्ट था, उस समय भी जनता ने इनमें विश्वास किया था।

मेरे मित्र कह रहे थे कि गरीब जनता का कोई प्रतिनिधि नहीं है। हम कौन हैं? मैं निर्धन से निर्धन का प्रतिनिधि हूं। वे दलित वर्ग तथा पिछड़ी हुई जातियों का जिक्र करते थे। क्या हम दलित वर्ग के नहीं हैं? डॉ. अम्बेडकर क्या हैं? वे किसके प्रतिनिधि हैं? वे समाज की निम्नतम श्रेणी का प्रतिनिधान करते हैं और क्या उन लोगों में से डॉ. अम्बेडकर के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति प्रतिनिधि हो सकता है? यह हमारा सौभाग्य है कि विधान बनाने का कार्य समाज के निम्नतम श्रेणी के वास्तविक प्रतिनिधि को सौंपा गया है और मैं अपने मित्र का यह कथन नहीं समझ पाता कि गरीबों को और मज़दूरों को अवसर नहीं दिया गया है कि वे अपने प्रतिनिधि यहां भेजे। यदि यह सच है, तो क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि जब इस परिषद् का निर्वाचन हुआ, तो देश में इस बारे में कोई आवाज क्यों न उठी? इतनी संस्थायें और इतने समाचारपत्र थे, जो इसके विरुद्ध शिकायत तथा आंदोलन कर सकते थे; पर समस्त जनता इस बात की इच्छुक थी कि जितना जल्दी हो सके, इस सभा की स्थापना हो जाये और अंग्रेजों को, जिन्हें इस देश से जाने की पड़ी थी, छुटकारा दे दिया जाये। ऐसी दशा थी; अत: मुझे अपने मित्र की बातों पर आश्चर्य होता है। यदि मेरे मित्र इसे प्रतिनिधायी संस्था नहीं

[श्री एस. नागप्पा]

समझते हैं, तो उनको इस परिषद् में आना ही नहीं चाहिये था। पर ऐसा उन्होंने नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने यह बुद्धिमत्ता दिखाई कि वे इस सभा में आ गये, और यहां दो वर्ष रहे आये और इस सभा के सदस्य होने के गौरव का भोग करते रहे। यह सब तो कर लिया और अब जब कि विधान बन गया और स्वीकृति के लिये आया, तो आप उठे और कहने लगे कि यह सभा प्रतिनिधायी सभा नहीं है। मुझे इस बात में कोई युक्ति या तर्क दिखाई नहीं देता। देश के उस वर्ग को, जो कि असंतुष्ट है, या उस वर्ग को जो इस सभा में नहीं आ सका, या उस वर्ग को जिसे वर्तमान सरकार से ईर्ष्या है, छोड़ कर क्या वे यह सिद्ध कर सकते हैं कि इस देश में जनता की कोई ऐसी बड़ी संस्था है, जो कि इस सभा के प्रतिनिधायी रूप से संतुष्ट न हो?

मेरे मित्र मौलाना साहब ने भी यही कहा। मुझे नहीं मालूम है कि मौलाना साहब ने सेठ साहब से प्रेरणा प्राप्त की, या सेठ साहब ने मौलाना साहब से, अथवा दोनों ने साथ-साथ सलाह की। चाहे जो कुछ हो, केवल मुझे ही नहीं, बल्कि बहुत से लोगों को उनके विचार अनोखे लगते हैं। मैं नहीं कह सकता कि वे सभा को क्या बताने का प्रयत्न कर रहे थे, लेकिन ऐसा लगता है कि अपने विधान की अपेक्षा वे सोवियत विधान को अधिक चाहते हैं। यह भूलकर कि सोवियत विधान या और किसी विधान की अपेक्षा वे अच्छा विधान बना सकते हैं, उन्होंने हमारे सामने यह कहा कि वे सोवियत विधान अपनाने के पक्ष में हैं। इसका कारण तो मैं नहीं जानता कि इस विधान को अपनाने के लिये वे लालायित क्यों हैं यदि उनका तर्क यह है कि चूंकि हमने हर एक विधान से कुछ लिया है, इसलिये सोवियत विधान से भी कुछ लेना चाहिये, तो मैं मान सकता हूं कि उनकी बात में कुछ तथ्य है। लेकिन वे तो कहते हैं कि चूंकि हमने अमरीका, इंग्लैंड और न्यूजीलैंड के विधानों में से कुछ लिया है, हमें सोवियत विधान में से भी कुछ लेना चाहिये। वे ऐसा क्यों चाहते हैं। जो कुछ हमारे ग्रहण करने योग्य है, और जो हमारी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार है, उसे हम दूसरे देशों से लेंगे। केवल लेने के विचार से ही हमने ऐसा नहीं किया है और हमारा विधान अन्य सब विधानों का मिश्रण नहीं है। हम अन्य विधानों का अध्ययन करते हैं और अपने रीति-रिवाजों और अपनी संस्कृति पर विचार करते हैं और

जो अधिकतम उपयुक्त होता है, उसे ग्रहण कर लेते हैं। अधिकतम उपयुक्त वस्तुओं को ग्रहण करने में कोई बुराई नहीं है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि संशोधन पर बहस खत्म हो जाये और उस पर मत ले लिया जाये। मेरे माननीय मित्र सेठ दामोदरस्वरूप ने देश के एक राजनैतिक वर्ग की सम्मति प्रकट कर अपना कर्त्तव्य पूरा किया और इस पर हमें और अधिक समय नहीं लेना चाहिये। अब हमें विधान के मसौदे के सामान्य वाद-विवाद को आरंभ कर देना चाहिये।

***अध्यक्षः** यह प्रस्ताव है:

''कि अब मत ले लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया

***अध्यक्षः** यह प्रस्ताव है:

''कि मौलाना हसरत मोहानी का प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** यह प्रस्ताव है:

''कि सेठ दामोदरस्वरूप का प्रस्ताव स्वीकार किया जाये''।

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर अब सभा सामान्य वाद-विवाद आरंभ करेगी। श्री एच.वी. कामत का उस पर एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं कि ''Constituent'' शब्द को निकाल दिया जाये और ''settled by the Drafting Committee'' शब्दों के स्थान में ''Prepared by the Drafting Committee'' शब्द रखें जाये।

यह केवल शब्द सम्बन्धी संशोधन है और इस पर वाद-विवाद की कोई आवश्यकता नहीं है। ''Constituent'' शब्द व्यर्थ है, क्योंकि ''Assembly'' से आशय

[श्री एच.वी. कामत]

''Constituent Assembly'' से ही है। प्रस्ताव के दूसरे भाग के सम्बन्ध में यह कि विधान के मसौदे की प्रति, जो हमारे पास है, उसमें ''Prepared by the Drafting Committee'' दिया है। मैं डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव को इसी भाषा के अनुरूप लाना चाहता हूं; चाहे मुझे हठी अथवा भाषा की शुद्धता का ध्यान रखने वाला, ऐसी उपाधियों से विभूषित किया जाये।

***अध्यक्षः** मैं नियम 38 (ए) की ओर ध्यान आकर्षित करूंगा, जिसमें ''Draft Constitution of India settled by the Drafting Committee'' शब्दों का प्रयोग है। डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव में इसी नियम से शब्द लिये गये हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से अब मैं मूल प्रस्ताव पर बोलूंगा। यद्यपि मैं प्रस्ताव को स्वीकार करता हूं, परन्तु डा. अम्बेडकर ने कल अपने पाण्डित्यपूर्ण भाषण में जो विचार रखे; उन सबको मैं नहीं मानता। मैं उनके उन विचारों से पूर्णतया सहमत हूं। इस प्रश्न के उन अंगों के सम्बन्ध में हैं, जो राज्य की शक्ति से सम्बन्धित हैं, जो सद्यस्कृत्यस्थिति में संघात्मक राज्य से एकात्मक राज्य में परिवर्तन करने वाले प्रावधान से सम्बन्धित हैं, तथा राज्य के विभिन्न अंगभूत इकाइयों को सम्पूर्ण संघ की सुरक्षा के विरोध में सेना रखने की अवांछनीयता के सम्बन्ध में है। मेरे विचार से उन्होंने यह कहने में गौरव समझा कि इस विधान में बहुत कुछ भारत-शासन-अधिनियम में से लिया गया है और यथेष्ट मात्रा में ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया के विधानों और कदाचित् कनाडा के विधान में से भी लिया गया है। मैंने बड़े आनन्द से उनका भाषण सुना, पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। मैं उनसे यह आशा करता था कि वे हमें यह बताते कि हमारे राजनैतिक अतीत से भारतीय जनता की अपूर्व राजनैतिक तथा आध्यात्मिक प्रतिभा से क्या लिया गया है। इस बारे में सम्पूर्ण भाषण में एक भी शब्द नहीं था। हो सकता है कि यह सब आजकल की रीति हो। अभी उस दिन पैरिस में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में बोलते हुये श्रीमती विजय लक्ष्मी ने बड़े गौरव से यह विचार प्रकट किया कि हमने भारतवर्ष में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व

का नारा फ्रांस से लिया, इंग्लैंड से यह लिया और अमरीका से वह लिया; पर उन्होंने यह नहीं कहा कि हमने अपने अतीत से—अपने राजनैतिक तथा ऐतिहासिक अतीत से—अपने दीर्घकालीन रंग-बिरंगे इतिहास से, जिसका हमें गौरव है, क्या लिया।

एक बात में मैं डॉ. अम्बेडकर का विरोध करता हूं। कार्यालय से प्रति न मिलने के कारण मैं समाचार पत्रों से उद्धृत करता हूं। उन्होंने गांवों का उल्लेख ''स्थानीयता की गंदी नालियां तथा अज्ञानता, विचार संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की कन्दराओं'' के रूप में किया है और ग्रामीण जनता के लिए हमारे करुण विश्वास का श्रेय किसी मेटकाफ नाम के व्यक्ति को दिया है। श्रीमान् मैं यह कहूंगा कि यह श्रेय मेटकाफ को नहीं है, वरन् उससे कहीं महान व्यक्ति को है जिसने अभी हमें हाल ही में स्वतंत्र कराया है। गांवों के लिये जो प्रेम हमारे हृदय में लहरा रहा है, वह तो हमारे पथप्रदर्शक तथा राष्ट्रपिता के कारण पैदा हुआ था। उन्हीं के कारण ग्राम जनतंत्र में तथा अपनी देहाती जनता में हमारा विश्वास बढ़ा और हमने अपने सम्पूर्ण हृदय से उसका पोषण किया। यह महात्मा गांधी के कारण है, यह आपके कारण है और यह सरदार पटेल, पंडित नेहरू और नेताजी बोस के कारण है कि हम अपने देहाती भाइयों को प्यार करने लगे हैं। डा. अम्बेडकर के प्रति पूर्ण आदरभाव रखते हुए मैं इस सम्बन्ध में उनसे मतभेद रखता हूं। कल का उनका ढंग एक प्रतिभाशाली नगर निवासी के समान था और यदि ग्राम निवासियों की ओर हमारा यही रुख रहा, तो मैं केवल यही कह सकता हूं कि ''ईश्वर ही हमारी रक्षा करे''। यदि हम अपनी ग्रामीण तथा देहाती जनता के लिए सहानुभूति, प्रेम और अनुराग का भाव नहीं रखते हैं, तो मैं नहीं समझता कि हम किस प्रकार देश की उन्नति कर सकते हैं। महात्मा गांधी ने उस अन्तिम मंत्र द्वारा, जो उन्होंने जीवन के अंतिम दिनों में हमें दिया था, हमें यही सिखाया कि पंचायत राज्य के लिये हम प्रयत्न करें। यदि डा. अम्बेडकर यह बात स्वीकार नहीं करते हैं, तो मैं नहीं समझता कि हमारे ग्रामों को उन्नत बनाने के लिए उनके पास क्या उपचार या रामबाण औषधि है। अपने प्रांत, मध्यप्रांत और बरार में हमने अभी जनपदों की, स्थानीय स्वायत्त शासन तथा विकेन्द्रीयकरण की योजना प्रचलित की है और वह पूर्णत: हमारे पथ-प्रदर्शन की शिक्षाओं के अनुरूप है। मैं आशा करता हूं कि यह योजना फलीभूत होगी और देश के लिये उदाहरणस्वरूप होगी। श्रीमान्, हमारे गांवों के प्रति डा. अम्बेडकर के इस प्रकार के, यदि घृणापूर्ण नहीं तो अनिच्छापूर्ण

[श्री एच.वी. कामत]

भाषण को सुनकर मुझे बहुत दु:ख हुआ। कदाचित् मसौदा-समिति बनाने में ही गलती हुई। उसकी समिति में केवल एक श्री मुंशी के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा सदस्य नहीं था, जिसने अपने देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में प्रमुख भाग लिया हो। उनमें से कोई भी हमारे संघर्ष में प्रेरणा प्रदान करने वाले उत्साह को समझने की क्षमता नहीं रखता। उनका हृदय इस बात को नहीं समझ सकता। वर्षों की यातनाओं और संघर्षों के पश्चात् जिस उथल-पुथल की दशा में हमारे राष्ट्र का जन्म हुआ, उसकी यथावत अनुभूति हृदय से उनमें से किसी को हो ही नहीं सकती। मैं बौद्धिक ज्ञान की बात नहीं कहता, क्योंकि वह तो अपेक्षाकृत कहीं सरल है। तभी तो डा. अम्बेडकर के कल के भाषण में हमारी दरिद्र से दरिद्र, निम्नतम और पिसी हुई जनता के प्रति उस प्रकार के तिरस्कार की भावना थी। मुझे खेद है कि उन्होंने मेटकाफ पर ही विश्वास किया। इस सम्बन्ध में अन्य इतिहास लेखकों तथा अनुसंधान करने वाले विद्वानों ने भी हमें अच्छी सूचनाएं दी हैं। मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने डा. जायसवाल कृत ''इण्डियन पौलिटी'' नामक पुस्तक को पढ़ा है या नहीं। मैं नहीं जानता हूं कि उन्होंने एक और महानतर व्यक्ति श्री अरविंदकृत ''The Spirit and Form of Indian Polity'' नामक पुस्तक को पढ़ा है या नहीं। इन ग्राम्य समुदायों पर हमारी राज्य व्यवस्था सुदृढ़ रूप से ठहरी हुई थी। यही कारण है कि हमारी सभ्यता सब युगों में जीवित रही। यदि हम अपनी 'राज्य व्यवस्था' की शक्ति को भूल जायेंगे, तो हम सब कुछ भूल जायेंगे। हमारी 'राज्य व्यवस्था' क्या थी और उसमें कितनी शक्ति थी, इस विषय पर मैं एक संक्षिप्त उदाहरण सभा को पढ़कर सुनाऊंगा।

अपने परम विकास की हालत में और भारतीय सभ्यता के स्वर्ण युग में ऐसी प्रशंसनीय राज्य व्यवस्था की झलक हमें मिलती है, जिसमें कार्य चलाने की अपरिमित योग्यता थी और जिसमें ग्राम्य तथा नागरिक स्व-शासन के साथ-साथ शासन की स्थिरता तथा सुव्यवस्था भी पूर्ण मात्रा में वर्तमान थी। राज्य अपने प्रशासी, न्यायिक, वैत्तिक तथा रक्षात्मक कर्त्तव्यों की पूर्ति इस कौशल से करता था कि उसके किसी काम से भी उसकी जनता तथा उसी विभाग में कार्य करने वाली उसकी किसी संस्था के अधिकारों का तथा अवाध रूप से काम करने की सुविधाओं का न तो पूर्णतया अपहरण होता था और न आंशिक अपहरण। राजधानी तथा देश के अन्य न्यायालय न्याय के सर्वोच्च प्राधिकारी थे जो समस्त राज्य में न्याय-प्रशासन में सामंजस्य स्थापित करते थे।

इतना तो ग्राम जनतंत्र के सम्बन्ध में है। मेरा विश्वास है कि वह दिन अब दूर नहीं है, जब कि केवल भारत को ही नहीं, वरन् समस्त संसार को, यदि वह शांति, सुरक्षा, सुख तथा सम्पन्नता चाहता है, विकेन्द्रीकरण करना होगा और ग्राम जनतंत्र तथा नगर जनतंत्र स्थापित करने पड़ेंगे और इसी आधार पर उनको अपने राज्य का निर्माण करना पड़ेगा; अन्यथा संसार घोर विपत्ति के शिकंजे में फंस जायेगा।

श्रीमान्, डा. अम्बेडकर के भाषण में मेघों का घोर नाद था और थी उसमें चपला की चमक। किन्तु उसमें न थी, शक्ति प्रदायिनी, स्फूर्ति, संचारिणी, जीवनदायिनी, अमर ज्योति। भारत में अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में जो कुछ उन्होंने कहा वह मैंने सुना। मैं नहीं समझ सका कि किस आधार पर उन्होंने यह कहा कि किसी अल्पसंख्यक जाति ने वह पथ नहीं अपनाया, जो कि आयरलैंड के संघर्षमय स्वातंत्र्य आंदोलन में अल्पसंख्यक वर्ग ने अपनाया था और जिसका भास कार्सन के रेडमौंड को दिये गये उस उत्तर से मिलता है जिसका जिक्र डा. अम्बेडकर ने अपने भाषण में किया है और जिसमें उसने यह कहा था कि ''भाड़ में जाये तुम्हारे आश्वासन, हम तुम लोगों से शासित होना नहीं चाहते''। डा. अम्बेडकर ने इस उत्तर का जिक्र करने के पश्चात् कहा है कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग ने भी भारत में इस प्रकार की हठ नहीं पकड़ी, वरन् इसके विपरीत यहां तो सब अल्पसंख्यक वर्गों ने यह मान लिया कि बहुसंख्यकों का राज्य हो और वह भी ऐसी हालत में, जब कि यहां बहुसंख्यक वर्ग अनिवार्य रूप से साम्प्रदायिक होगा, न कि राजनैतिक।

श्रीमान्, यदि हमारे अल्पसंख्यक वास्तव में इसी सिद्धांत पर दृढ़ रहते, तब तो भारत का और ही इतिहास होता। विगत दो वर्षों में जो कुछ हुआ, उसके पश्चात् भी क्या हम यह कह सकते हैं कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग ने इस हठ को नहीं पकड़ा? गत 18 मास में जो दुखद घटनायें हुई, वे सब इसी कारण से तो हुई कि किसी विशेष अल्पसंख्यक वर्ग ने यह सिद्धांत अपनाया और कहा कि हम बहुसंख्यकों के शासन में नहीं रहना चाहते और जो इस सिद्धांत के विरोधी है, वे जहन्नुम रसीद हों। यदि डा. अम्बेडकर का उल्लेख 15 अगस्त सन् 1947 ई. के बाद के भारत से है तब तो मुझे कुछ कहना ही नहीं है, पर यदि वे

[श्री एच.वी. कामत]

15 अगस्त सन् 1947 ई. से पूर्व के भारत का उल्लेख करते हैं, तब तो मैं उनके कथन में कोई तथ्य नहीं पाता। वे यह कैसे कह सकते हैं कि ऐसा कोई अल्पसंख्यक वर्ग न था, जिसने यह कहा हो कि हम संरक्षण नहीं चाहते, और न चाहते हैं आपसे शासित होना। अन्ततः पाकिस्तान बना और हमें गत अठारह मास की दुखद घटनायें देखनी पड़ी। यह सब तो इसी कारण से हुआ कि एक विशेष संस्था ने यह रट लगाई : ''हमें संरक्षण नहीं चाहिये, हम तो अपना राज्य अलग बनाना चाहते हैं।''

सन् 1927 ई. में जब कि मैं विद्यार्थी था, कांग्रेस के मद्रास-अधिवेशन में गया। मौलाना मुहम्मदअली और पंडित मालवीय दोनों उस अधिवेशन में उपस्थित थे। संरक्षणों का प्रश्न था और पं. मालवीय ने इतना ओजस्वी भाषण दिया कि जिसका मन पर बड़ा भारी प्रभाव हुआ। उन्होंने कहा—''आपने भारत के राजमंत्री अथवा भारत सरकार से क्या संरक्षण मांगे? हम यहां उपस्थित हैं। आप इससे अधिक क्या संरक्षण चाहते हैं?'' इस भाषण के पश्चात् मौलाना मुहम्मदअली मंच पर आये, पंडित मालवीय को गले से लगाया और कहा: ''मैं कोई संरक्षण नहीं चाहता। मैं एक भारतीय के समान भारतीय राज्य के अंग-स्वरूप रहना चाहता हूं। हम अंग्रेजी सरकार से कोई संरक्षण नहीं चाहते हैं। पंडित मालवीय हमारे लिये पर्याप्त संरक्षण हैं।'' यदि यही भावना हममें बनी रहती, तो हम अखंड भारत, एक देश, एक राज्य और एक राष्ट्र के रूप में रहते। इसी कारण मैं नहीं समझ सकता कि डा. अम्बेडकर किस आधार पर यह कहते हैं कि भारत के किसी अल्पसंख्यक वर्ग ने इस हठ को नहीं पकड़ा। बहुसंख्यक सदैव उन्हें संरक्षण, पर्याप्त संरक्षण देने के लिये प्रस्तुत थे। पर अल्पसंख्यक तो संरक्षणों को स्वीकार करना चाहते ही न थे। भारत में अल्पसंख्यकों ने वही हठ पकड़ी जो आयरलैंड में कार्सन ने पकड़ी थी। इसी कारण आयरलैंड के राज्य के लिये हानिकारक आयरलैंड का विभाजन उसी प्रकार हुआ जैसा कि भारत में हुआ है और जिसके फलस्वरूप देश की शांति भंग हुई और उन्नति में बाधा पड़ी।

श्रीमान्, विधान के एक या दो अन्य अंगों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना चाहता हूं। एक बात का सम्बन्ध तो 280 अनुच्छेद से है, अर्थात् उस अनुच्छेद से जो मौलिक अधिकारों के बारे में है।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अपना समय लगभग समाप्त कर चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं एक या दो मिनट और चाहता हूं। सद्यस्कृत्यस्थिति की अवस्था में मौलिक अधिकार स्थगित किये जा सकते हैं जिसका यह आशय है कि हाई कोर्ट के अधिकार छीने जा सकते हैं। विधान में ऐसा प्रावधान रखना संकटास्पद है। यदि मैं भूल नहीं करता तो मैं कह सकता हूं कि गत महायुद्ध में भी अंग्रेजी सरकार ने बन्द्युपस्थापन लेख के लिए समुपयुक्त न्यायालयों में कार्यवाही करने के नागरिक के अधिकार को अस्थायी रूप से छीन नहीं लिया था। मेरी समझ में यह बात उचित नहीं कि अंग्रेजी सरकार की अपेक्षा में हम अच्छी बात करने के स्थान में बुरी बात करें। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 108 में दिया हुआ अध्यादेश बनाने का अधिकार है। इसको हटा देना चाहिये। जब हम अंग्रेजी सरकार से संघर्ष कर रहे थे, उस समय गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय के अध्यादेश बनाने के अधिकार का हम विरोध करते थे। यहां हम इस प्रावधान को सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये नहीं रख रहे हैं। अनुच्छेद 102 में केवल यह दिया हुआ है कि यदि अध्यक्ष को आवश्यक प्रतीत हो तो वह अध्यादेश का प्रवर्तन कर सकता है, यदि हम इस अधिकार को वस्तुतः निकाल न सकें तो हमें इसे बहुत कुछ संकुचित कर देना चाहिये।

अब मैं यह कह कर समाप्त करूंगा कि तमाम अच्छाइयों के और भारत को एक संयुक्त और शक्तिशाली संघात्मक और एक सत्तात्मक राज्य बनाने के समस्त प्रावधानों के होते हुए भी कुछ ऐसे विषय हैं जिनका समावेश इसमें अधिक सुन्दर ढंग से किया जा सकता था।

[श्री एच.वी. कामत]

राज्य किस लिये है? राज्य की उपयोगिता का अनुमान इस बात से किया जाता है कि साधारण मनुष्यों के हितों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता हैं तत्वत: जिस विवाद का निर्णय हमें करना है वह यह है कि व्यक्ति राज्य के लिये है, अथवा राज्य व्यक्ति के लिये। अपने जीवन काल में यह प्रयत्न किया कि इन दोनों के बीच का पथ निकाला जाये और इस द्वंद को सुलझाया जाये और इस प्रयत्न के कारण वे पंचायत राज्य के सिद्धांत पर पहुंचे। मुझे आशा है कि हम भारत में और आगे कदम रखेंगे और यह प्रयत्न करेंगे कि राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिये हो, न कि व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिये। यह ध्येय है जो हमें अपनाना चाहिये और ऐसी व्यवस्था को ही हमें अपने देश में स्थापित करना चाहिये। हमारे पूर्वजों की अपूर्व आध्यात्मिक तथा राजनैतिक देन हमें प्राप्त हुई है। अत: हम भारत के लोग अपने देश में इस आदर्श को फलीभूत करने के सर्वथा समर्थ हैं और आज मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि जब तक महात्मा गांधी द्वारा और उनसे पूर्व हुए अन्य ऋषियों द्वारा बताये हुये ढंग साम्राज्य-धर्म के स्थान पर धर्म-साम्राज्य की स्थापना नहीं होती, जब तक यह आदर्श संसार में पूर्णतया फलीभूत नहीं होता, तब तक इस पृथ्वी पर शांति स्थापित नहीं होगी। कम से कम हमें तो अपनी राजनैतिक संस्थाओं में इस धर्म-साम्राज्य को स्थापित कर देना चाहिये। यदि हमने ऐसा न किया तो इस सभा के प्रयत्नों का जो कुछ भी फल होगा उससे भारतीय जनता की राजनैतिक अलौकिक बुद्धि की लेशमात्र भी गंध न आयेगी। पाश्चात्य चमक-दमक का हमारे मन पर बड़ा प्रभाव है। सच तो यह है कि चमक-दमक का प्रभाव हमारे नस-नस में घुस गया है और हम अपनी कार्यरीतियों के तथा विचार प्रणालियों के सर्वथा बन्दी हो गये हैं ये सब हमारे लिये सिन्दबाद नाविक के उस वृद्ध पुरुष के समान हो गये हैं जिन्हें कि हम उठा कर दूर नहीं फेंक सकते। आज हम अपनी पुरानी आदतों को छोड़ने में असमर्थ हैं। किंतु इन सब विमुह्यताओं के घने कुहरे के बीच में एक नई मधुरिम ज्योति हमें भरोसा दे रही है; वह संध्या की मधुरिम ज्योति नहीं वरन् है प्रभात की मधुरिम ज्योति। यह युग संधि वाला, भारत अभी मरा नहीं है और न इसने अपनी अंतिम रचनात्मक

शब्दों को कह कर ही समाप्त किया है; वह अभी जीवित है और अभी भी उसे अपने लिये तथा मानव परिवार के लिये कुछ करना है। और आज जो भी भारत में चेतन है वह, मेरी आशा ऐसी है, आंग्ल संस्कार अथवा यूरोपीय संस्कार धारण करने वाला वर्ग नहीं है, जो पाश्चात्य सभ्यता का अंध-भक्त है और जिसके भाग्य में पश्चिम की आकस्मिक सफलताओं अथवा विफलताओं के चक्र में फंस कर चक्कर काटना है, वरन् वह अब भी है वही प्राचीन अजेय शक्ति जो ज्योति और शक्ति के उच्चतम स्तम्भ की ओर अपना मुख करके तथा अपने धर्म के पूरे तत्त्व तथा व्यापक स्वरूप को पहचानने में प्रयत्नशील हो कर अपनी आत्मा के मूल स्वरूप को पुनः प्राप्त कर रही है। इस विश्वास में और इस धारणा से सशक्त हम भविष्य में आगे बढ़ें और ईश्वर की कृपा से विजय-श्री हमारे प्रयत्नों को शोभित करेगी।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इस महान् विषय के लिये मेरे पास थोड़ा समय है, इस कारण में एक या दो विषयों को ही लूंगा और अन्य विषयों पर अपने विचारों को बाद में रखूंगा। सर्वप्रथम मैं सभा का ध्यान ''राज्य'' (States) शब्द के प्रयोग की और आकर्षित करूंगा। विधान के मसौदे में ''राज्य'' शब्द से कोई भी वस्तु अभिप्रेत हो सकती है। विचार यह था कि वर्तमान प्रांतों, देशी रियासतों और चीफ-कमिश्नर के प्रांतों तथा अन्य ऐसे ही नामों में भेद-विभेद को मिटा दिया जाये। एक समय इस बात का भय था और ऐसा भय स्वाभाविक ही था कि कहीं राजनैतिक व्यवस्था में भी देशी राज्य स्वयं न अपनायेंगे या अपनाने के लिये विवश न किये जा सकेंगे। किन्तु इस दिशा में प्रगति बहुत तेजी से हुई है और देशी राज्य या तो अपनी इच्छा से अथवा बाध्यता से उस राजनैतिक व्यवस्था को अपना चुके हैं या अपनाते जा रहे हैं जो कि प्रांतों में इस समय वर्तमान हैं। अतः मेरी समझ में ''राज्यों'' की

.

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

ऐसी व्यापक परिभाषा ठीक नहीं है जिससे कि इस शब्द से विभिन्न वस्तुओं का बोध हो। मेरे विचार से हमें प्रांतों, देशी राज्यों, चीफ-कमिशनर के प्रांतों तथा अन्य प्राचीन नामों को ही ग्रहण कर लेना चाहिये। इनके बारे में यह भय नहीं हो सकता कि इनमें से एक दूसरे के अर्थ का द्योतक हो जायेगा और भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिये इन भिन्न नामों का प्रयोग ही श्रेयस्कर होगा। हो सकता है कि सुयोग्य प्रारूपकारों ने यह सोचा है कि यदि उपर्युक्त प्रयोग न किया गया तो ऐसी विकेन्द्रीकरण करने वाली शक्तियां सक्रिय हो जायेंगी जो कि इन राजनैतिक इकाइयों को एक दूसरे में दूर कर देंगी। मसौदा बनाने वाले महान व्यक्तियों ने कदाचित् यह सोचा होगा कि केन्द्र से परे कोई ऐसी शक्ति क्रियान्वित होगी जो उनको पृथक कर देगी। पर चूंकि वह भय अब दूर हो गया, अतः मूल स्थिति को ग्रहण कर लेना अब आवश्यक है। मैं निवेदन करता हूं कि हम भविष्य के लिये विधान नहीं बना रहे हैं; हम तो वर्तमान के लिये विधान बना रहे हैं। यद्यपि हमें भविष्य को दृष्टि में रखना चाहिये, पर साथ ही हमें इस बात को नहीं भूल जाना चाहिये कि हम वर्तमान के लिये विधान बना रहे हैं विधान के मसौदे में तीन स्पष्ट चीजें हैं, उदाहरणार्थ, प्रान्त, देशी रियासतें तथा चीफ-कमिश्नर के प्रान्त। इनके वर्तमान अन्तर को हमें मिटाना नहीं चाहिये। यदि कभी भविष्य में ये विशिष्ट सत्तायें एक रूप हो जायें, और मुझे किंचित संदेह नहीं है कि वह ऐसा रूप धारण करेंगी और उनमें पूर्णतया अथवा लगभग एक से गुण हों, तो उस समय यह उचित होगा कि संविधान का संशोधन किया जाये और उनके लिये एक सी व्यवस्था की जाये।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि छठे तथा बारहवें भाग में ''राज्य'' का अर्थ प्रांतों से है। सातवें भाग में ''राज्य'' का अर्थ चीफ-कमिश्नर के प्रांतों से है। चौथे भाग में ''राज्य'' का अर्थ देशी रियासतों से है। तीसरे भाग में ''राज्य'' का अर्थ वस्तुओं के एक आश्चर्यजनक क्रम से है। सातवें अनुच्छेद के अनुसार सर्वप्रथम ''राज्य'' का अर्थ भारत सरकार है, दूसरा अर्थ राज्यों की सरकार है

जिसका आशय रियासतों, प्रांतों तथा चीफ-कमिश्नर के प्रांतों सबसे है और बड़ी अद्‌भुत बात तो यह है कि उसका अर्थ स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकारियों से भी है। मेरे ख्याल से अन्य प्राधिकारी से बोध म्यूनिसिपल, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा अन्य स्वायत्त प्राधिकारियों से है। मेरा विचार है कि वैधानिक पद के प्रयोग का इतना आग्रह उचित नहीं है। जिला बोर्ड या नगर बोर्ड या इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को राज्य कहना भाषा की हत्या करना है। यदि विधान के कलेवर की भाषा अंग्रेजी ही रखनी है तब तो राज्य शब्द के प्रचलित अर्थ को कुछ न कुछ मान्यता देनी ही होगी। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सर्वदा ही राज्य शब्द से प्रभुता-सम्पन्न संस्था ही अभिप्रेत होती है। यह प्रभुता सीमित हो अथवा असीमित, पर राज्य शब्द में किसी न किसी प्रकार की प्रभुता अवश्य अभिप्रेत होती है। लेकिन जैसा कि मैंने निवेदन किया है डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्यूनिसिपलटी को राज्य कहना भ्रमात्मक है। मेरे विचार से राज्य शब्द के प्रयोग की उत्कण्ठा को संयमित करना चाहिये। यदि नाम का प्रश्न है, यदि हम भारत सरकार और देशी रियासतों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग करना चाहते हैं तो कम से कम हमें म्यूनिसिपलटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड शब्द का स्पष्ट प्रयोग करना चाहिये और राज्य शब्द के व्यापक अर्थ के अंतर्गत इनको नहीं समझना चाहिये। यदि हम राज्य शब्द का प्रयोग अनेक प्रकार के अर्थों में होने देंगे तो इस प्रसिद्ध वैधानिक शब्द के प्रयोग करने का वास्तविक आशय ही लुप्त हो जायेगा।

अत: मेरा ऐसा विचार है कि संशोधनों का मसौदा बनाते समय माननीय सदस्य इस बात का ध्यान रखेंगे। मुझे इस प्रकार का प्रयोग ठीक नहीं लगा है और इस शब्द के लिये अन्य समानार्थी शब्द मिलना कठिन है। इस आशय का किसी उपयुक्त शब्द के खोजने के लिये मैं माननीय सदस्यों का सहयोग चाहता हूं। भिन्न-भिन्न वाक्य खंडों में इस शब्द की व्याख्या भिन्न-भिन्न अर्थों में की गई है। अनुच्छेद 7, 28, 128, 212 और 247 के अनुसार राज्य शब्द का भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थों में प्रयोग करना संकट से खाली नहीं होता। इससे गड़बड़ी हो सकती है। हर एक व्यक्ति के लिये, जिसका इस विधान की व्याख्या से अथवा उसके समझने से सम्बन्ध हो, अपने मस्तिष्क में इस बात को स्पष्ट रखना कठिन होगा कि किसी विशेष स्थान में इस शब्द का किस अर्थ में प्रयोग किया गया

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है। श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रकार के मसौदा बनाने का मुख्य आशय विभिन्न प्रकार की इन समस्त संस्थाओं का अन्ततः एकीकरण करना और उनको समान रूप देना ही रहा होगा। पर अब राज्य शब्द के इस प्रकार के अस्पष्ट प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। अतः मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि संशोधनों की सूचना देते समय इस बात का ध्यान रखें कि प्राचीन प्रसिद्ध शब्द, प्रांत, देशी रियासतें और चीफ-कमिश्नर के प्रांतों का ही प्रयोग करना उपयुक्त होगा।

एक अन्य विषय के सम्बन्ध में मुझे एक-दो बातें और कहनी हैं। अनुच्छेद 28 से लेकर अनुच्छेद 80 तक में दिये हुये राज्य के लिये निर्देशक सिद्धांतों पर जब मैं दृष्टिपात करता हूं तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये केवल पवित्र भावनायें मात्र है और ये अनिवार्य रूप से मान्य न होंगे। इनको किसी न्यायालय में की गई कार्यवाही द्वारा मनवाया न जा सकेगा, और जैसा कि माननीय विधि मंत्री ने कहा है वास्तव में ये केवल पवित्र किन्तु अर्थ-हीन भावनायें हैं। उनके बारे में मेरी यही आलोचना है। उन्होंने केवल यही उत्तर दिया कि विधान का मसौदा इनको इसी रूप में मानता है। मेरा निवेदन है कि यह उत्तर नहीं है, यह तो आलोचना की सत्यता का विवरण है। मेरे विचार से प्रत्येक वैधानिक सिद्धांत को अधिकार का रूप देना चाहिये। यदि कोई अधिकार है तो उसका हनन भयकृत्य माना जाता है और इससे सर्वज्ञात वाद-कारण उत्पन्न होता है। अतः ऐसा कोई अधिकार हो ही नहीं सकता जिसके हनन होने से कोई वाद-कारण पैदा न होता हो। मेरे विचार से इन बातों के लिये लोग न्यायालय की शरण नहीं लेंगे। परन्तु यदि भारतीय विधान जैसे यथेष्ठ महत्त्वपूर्ण आलेख में किसी वैधानिक अधिकार की पर्याप्त दिखावट के साथ व्याख्या की गई हो और यदि उस अधिकार के भंग होने पर किसी कानूनी उपचार की व्यवस्था नहीं की गई हो तो विधान में इस प्रकार के तथाकथित अधिकारों को रखना पूर्णतया अनुचित होगा। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इन सिद्धांतों को लोग इतनी भली भांति जानते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि इनका विवरण विधान में दिया जाये और विशेषतया तब तो होना ही न चाहिये, जब कि साथ ही साथ यह भी कहा जाता हो कि ये न्याय नहीं हैं मेरा निवेदन है कि यदि ये सिद्धांत जो पूर्णतः निर्देशक है और जिनके पीछे कोई शक्ति नहीं है, जो इन्हें लागू कर सके, विधान में रखे जाते हैं, तो मेरे विचार से और भी ऐसे सिद्धांत हैं, जिनको भी संविधान में रखना

चाहिये; उदाहरणार्थ, झूठ मत बोलो, अपने पड़ोसी से बुरा व्यवहार मत करो, इत्यादि, इत्यादि। इसी सिद्धांत के अनुसार बाइबिल के दस उपदेशों के तथा विभिन्न धर्मों और व्यावहारिक जीवन के नियमों का समावेश भी संविधान में होना चाहिये। चूंकि इन समस्त प्रत्यक्ष सत्य बातों का रखना हमने व्यवहार्य नहीं समझा—इस कारण नहीं कि ये सत्य बातें ग्राह्य नहीं है अथवा अनिवार्य नहीं है, पर इस कारण कि वे प्रत्यक्ष हैं—मैं निवेदन करता हूं कि ये निदेशक सिद्धांत भी इतने प्रत्यक्ष हैं कि इनके विवरण की आवश्यकता नहीं है। यदि किसी सिद्धांत का विवरण आवश्यक है तो वह न्याय होना चाहिये, उसका न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तन होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो विधान में उसे स्थान नहीं मिलना चाहिये। माननीय विधि-मंत्री ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि इस प्रकार के सिद्धांत सिवाय आयरलैंड के विधान के अन्य विधानों में नहीं पाये जाते हैं। यदि इस प्रकार का विस्तृत सिद्धांत केवल एक विधान में पाया जाता है और वह विधान सर्वोत्तम विधान नहीं है, तो फिर मेरे विचार से वह ऐसा नहीं है कि जिसका अनुकरण बिना किसी खतरे के किया जा सके। मेरा निवेदन है कि जब इन निदेशक सिद्धांतों पर विचारारम्भ हो, तो इन पर माननीय सदस्य को बड़े विचारपूर्वक इन पर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इन सिद्धांतों पर सावधानीपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है।

क्योंकि समय बहुत कम है, मैं सभा का और समय नहीं लेना चाहता हूं, पर मैं अपने अन्य विचारों को उपयुक्त समय में, जब उनकी आवश्यकता होगी, प्रकट करूंगा।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मानः साहिबे सदर, एक ऐसे मुल्क के लिए कि जो गुलामी के तारीखी दौरे से गुजरा हो, आइन बनाते वक्त कुछ रोशन नजरिया रखना कुदरती बात है। ऊंचे निशानों को सामने न रखा जावे, तो तरक्की रुक सकती है। तरक्की के लिए यह लाजिमी चीज है। लोगों में इख्तलाफ़ात पैदा हुआ करते हैं। उस वक्त यह देखना पड़ता है कि हम किस रफ्तार से चलें, जिससे कि हम अपने मंजिले मकसूद पर पहुंच सकें। राजनैतिक कामों में किसी हकीकत को नजर अन्दाज करना और वक्त के तकाजे से पहले कोई कदम उठाना, वह चाहे कितना ही तरक्की याफ्ता क्यों न हो, वह गलत साबित होता है। मैं ड्राफ्टिंग कमेटी को मुबारकबाद देता हूं कि इसने हालात का तरीका ठीक तरह से इख्त्यार किया और चन्द अहम सवालों का वक्त के मुताबिक हल किया है। नुक्ताचीनी इस पर दो

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

पहलू पर हो रही है। एक मजबूत मरकज़ और उसके बचे-खुचे इख्त्यारात का उसके पास होना बाज़ लोगों के नुक्ताचीनी का बाइस बन गया है। इसमें कोई शक नहीं है कि कांग्रेस की पोजीशन भी ऐसी ही रही है। मगर बदले हुए हालात में और पुराने तकसीम के तजुरबे से बाज़ लोगों का यह तकाजा है कि मरकज मज़बूत हो। रूस की मिसाल हमें इसके खिलाफ दी जाती है लेकिन वह लोग बहुत जानते हैं कि रूस के 30 साल की डिक्टेटरी के बाद अपने सूबों को इखत्यारात दिए हैं। मुल्क ज्यों-ज्यों तरक्की करेगा, इक्तसादी तरक्की करेगा। तो मैं समझता हूं कि यहां के मुख्तलिफ़ सूबों को भी यह आज़ादी बदस्तूर थोड़ी-थोड़ी करके दी जा सकती है। लेकिन जहां से इस उसूल को मानता हूं वहां मरकज़ से सूबों के दिए गए रोज़मर्रा के कामों के इखत्यारात में इसका दखल देना मैं समझता हूं, गैर मुनासिब है। इसकी मिसाल क्लाज 226 है। मुख्तलिफ़ सूबों की असेम्बलियों में इसके ऊपर बहस हुई और वहां पर उन्होंने इसको नापसन्द किया है।

दूसरा सवाल अक्लियतों का मसला है। इस पर गौर करते हुए अक्सीरियत के मेम्बर मुतास्सिर हो जाते हैं। उन पर पिछले वाक़यात का असर पड़ता है। लेकिन आप इनको ज़रा गौर से देखें। पहले यहां हमारे मुल्क में एक तीसरी ताक़त मौजूद थी जो हमेशा अक्लियतों को गैरमाकूल होने की तजबीज़ दिया करती थी। चुनाचे मुझे अफ़सोस है कि हममें से एक अहम अक्लियत ने इस दावत को कबूल किया और गैरमाकूल रवैया इख्त्यार किया और मुल्क को तकसीम करा दिया। लेकिन, साहिबे सदर, दूसरी अक्लियतों के मुताल्लिक तो यह बात नहीं कहीं जा सकती। जिस अक्लियत का मैं मेम्बर हूं उसने मुल्क की हर आवाज़ को अपने कानों से सुना है और मुल्क की हर आज़ादी की लड़ाई में बावजूद इस बात के कि उसकी गिनती बहुत थोड़ी थी, उसने बहुत बढ़ कर हिस्सा लिया है।

चुनाचे जब मैं आपकी तवज्जह अपनी तरफ बतौर अक्लियत के दिलाना चाहता हूं तो मेरा यह हर्गिज मकसद फिकेंवाराना बातों को बढ़ाना या पैदा करना नहीं है और न मुल्क और कौम को ही कमजोर करने का है। बल्कि मैं एक अहले वतन परस्त की हैसियत से यह बात कह रहा हूं, जो यह महसूस करता है कि

अक्लियतों की खुश असलूबी हासिल करने से मुल्क की शान बढ़ती है और कौम की ताकत बढ़ती है। अब तीसरी ताकत मौजूद नहीं हैं अक्लियतों के गैरमाकुल रवैये का दौरदौरा खत्म हो चुका है और अब उसके बाद अक्सीरियत की जिम्मेदारी में इजाफ़ा हो गया है। अक्सीरियत को अक्लियत का ऐतमाद हासिल करना है। मैं उम्मीद करता हूं कि ताकत के साथ-साथ अक्सीरियत अपनी अक्लियतों के शक व शुबा को दूर कर सकेगी और उसको अक्लियत का ऐतमाद हासिल करना ही होगा। साहब, आप इस बात को तो मान चुके हैं; मज़हब और जुबान के तौर पर आप इन चीज़ों को एक-एक दफ़ा में मान चुके हैं।

साहिब सदर, जहां मैं यह कहता हूं कि आइन-मसौदे में बिल्कुल वक्त के मुताबिक हल किया है वहां पर मैं अपने फर्ज़ से कोताही करूंगा अगर मैं आपके ख्याल में न लाऊं कि जहां बुनियादी हकूक और खसूसन शहरी आज़ादी का ताल्लुक है, क्लाज 13 में इतनी कड़ी शर्तें रखी गई है कि तमाम हकूक को नाकारा बना दिया गया है। जहां तक कि साइंस का ताल्लुक है, ईस्ट पंजाब और वैस्ट बंगाल में जिन पर कि तकसीम का बहुत बड़ा असर पड़ा है, इन सूबों का खास ख्याल रखना चाहिये।

इसके साथ ही सिटिज़नशिप की जो क्लाज़ है, मैं समझता हूं कि वह शर्तें शरणार्थियों के लिए और ढीली होनी चाहिए। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के सामने जाकर बयान देना कि मैं हिन्दुस्तान की शहरियत इखत्यार करना चाहता हूं, लाखों शरणार्थियों के लिए मुश्किल होगा कि वह इस बयान के लिये दूरदराज़ जगहों से आवे और बाज़-बाज़ सूरतों में तो यह हो सकता है कि चालीस-चालीस और पचास-पचास मील से लोगों को आना पड़ेगा और कितना ही रुपया उनका सफ़र में खर्च हो जायेगा। इसलिए खासकर पंजाब में जहां पर कि लोगों की रिहाइश का कोई बन्दोबस्त नहीं है, उनको इस तरह पर मजबूर करना मुनासिब नहीं है।

एक आखिरी चीज़ और है। मैं कल से यह देख रहा हूं कि जुबान के मसले को जज़बाती रंग में हल करने की कोशिश की जा रही है। मैं समझता हूं कि जुबान के मसले को हल करते वक्त उसको जजबाती रंग नहीं देना चाहिए। बाज़ वक्त तो यह मज़हबी रंग अखत्यार कर लेता है। मेरी समझ में जुबान के मसले को

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

हल करते वक्त कांग्रेस के रवैये को बरकरार रखना चाहिये और इससे पहले जो मुतद्द रेज्युलुशन कांग्रेस ने हिन्दी जुबान के मुताल्लिक पास किए हैं, उनको बरकरार रखना चाहिए।

***श्री फ्रेंक एन्थॉनी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यद्यपि डा. अम्बेडकर सभा में उपस्थित नहीं हैं फिर भी वकील होने के नाते मुझे उनको हमारे विधान के मसौदे में निहित सिद्धांतों के प्रमाण युक्त तथा स्पष्ट विश्लेषण के लिये बधाई देनी चाहिये। विधान के मसौदे पर चाहे हमारे कितने ही विभिन्न विचार हों, परन्तु यदि अन्य दृष्टि से नहीं तो कम से कम स्थूल दृष्टि से तो यह स्वीकार कर लिया जायेगा कि यह एक वृहद् आलेख है। और मेरे विचार से यह हमारा लड़कपन होगा यदि हम मसौदा-समिति के सदस्यों को विशेष रूप में धन्यवाद का एक शब्द भी न कहें, क्योंकि मुझे यह विश्वास है कि इतने वृहद् आलेख को तैयार करने में उनको बहुत अधिक शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करना पड़ा होगा।

डा. अम्बेडकर ने इस बात का हवाला दिया कि संघात्मक विधान में अपरिवर्तनशीलता तथा अतिविधिता किसी सीमा तक आवश्यक होती है। पर स्थानीय आवश्यकताओं और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप इस विधान में अधिकतम लचीलापन देने का प्रयत्न किया गया है। उन्होंने यह भी बताया कि इस लचीलेपन को इस सीमा तक नहीं ले जाया गया है कि उससे अराजकता फैले। उदाहरण के रूप में समान कानूनों, केवल एक न्यायाधीश वर्ग और एक केन्द्रीय प्रशासन सेवा द्वारा मौलिक विषयों में आवश्यक एकता तथा पूर्णता स्थापित की गई है। डा. अम्बेडकर ने यह भी बताया है कि केन्द्र को अतिशय शक्तिशाली बनाने वाले सिद्धांत तथा केन्द्र को न्यूनतम शक्तिशाली बनाने वाले सिद्धांत, इन दोनों सिद्धांतों के बीच के सिद्धांत पर यह विधान आधृत है। उन्होंने यह महसूस किया कि यह कल्याणकर सिद्धांत है कि केन्द्र को अतिशय शक्ति देकर इतना भारी नहीं बनाना चाहिये कि वह उसी के नीचे दब जाये। श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इस सभा में अनेकों सदस्य मुझसे सहमत नहीं होंगे, पर मैं भी इसे कल्याणकर सिद्धांत समझता हूं कि यह आवश्यक बात है कि केन्द्र को अतिशय शक्ति न दी जाये। वैधानिक

दृष्टि से तो यह अपवाद रहित सिद्धांत है, परन्तु उसके व्यवहार में हमें स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही उसे ग्रहण करना चाहिये। और यदि हम सच्चाई से दूर नहीं भागना चाहते, तो हमें यह मान लेना चाहिये कि इस विस्तृत देश में विभिन्नतायें होने की तथा इसके ऐक्यनाशन की निहित सम्भाव्यताएं हैं। अतः देश के हित के लिये तथा राष्ट्र के ऐक्य तथा उसकी आन्तरिक संश्लेषण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि जितनी अधिक से अधिक शक्ति केन्द्र को दी जा सकती हो, वह उसे दी जाये। मैं महसूस करता हूं कि तीन विशेष विषयों में केन्द्र का नियंत्रण होना चाहिये। मैं नही जानता हूं कि मेरे कुछ मित्र यहां मुझसे किस सीमा तक सहमत होंगे।

मेरी समझ से पहला विषय जिस पर केन्द्र द्वारा नियंत्रण होना चाहिये, पुलिस व्यवस्था है। मेरी समझ से समस्त देश में पुलिस की नौकरियां केन्द्र से नियंत्रित होनी चाहिये। आप पूर्ण नियंत्रण न रखें। आप उसमें कुछ कमी कर दें, पर केन्द्र से कुछ नियंत्रण होना चाहिये। हमें स्मरण है कि भारतीय पुलिस सेवा नाम का एक विभाग था। वह अखिल भारतीय सेवा विभाग था और उसके सदस्य विभिन्न प्रांतों के पुलिस विभागों में मुख्य पदों पर रखे जाते थे। इस एकरूपता के होते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रांतों में पुलिस शासन व्यवस्था का भिन्न-भिन्न आदर्श था। स्पष्टतया हम यह स्वीकार करेंगे कि कुछ प्रांतों में पुलिस शासन व्यवस्था ने योग्यता और ईमानदारी का सामान्य आदर्श स्थापित किया। इसके साथ-साथ हमें यह भी स्वीकार कर लेना चाहिये कि कुछ प्रांतों में पुलिस के कारनामे ऐसे थे जिनसे इस बात के समझने में देर न लगती थी कि वह पूरी तरह से अयोग्य और रिश्वतखोर है। जब कि हमने न्याय विभाग तथा केन्द्रीय शासन सेवा के बारे में इस बात का ध्यान रखा है कि उनमें पूर्ण ऐक्य हो और उनका आंतरिक गठन सुदृढ़ हो (मैं कह नहीं सकता कि केन्द्रीय शासन सेवा के सदस्यों को विभिन्न प्रांतों के पुलिस विभागों के मुख्य पदों पर कहां तक नियुक्त किया जायेगा), तब चाहे जितना ऐक्य और आंतरिक संश्लेषण एक न्याय विभाग द्वारा हम प्राप्त करें, चाहे जितना ऐक्य और आंतरिक संश्लेषण केन्द्रीय शासन सेवा विभाग द्वारा हम प्राप्त करें, मैं समझता हूं कि वह ऐक्य और आन्तरिक संश्लेषण पूर्ण रूप से निष्फल होगा, यदि पुलिस विभाग को सर्वथा प्रान्तीय सरकारों के नियंत्रण में छोड़

[श्री फ्रेंक एन्थॉनी]

दिया गया। इस सम्बन्ध में मैं यह कह देना भी उचित समझता हूं कि मेरी दृष्टि में यह अत्यन्त आवश्यक है कि केन्द्रीय नियंत्रण द्वारा शासन के आन्तरिक संश्लेषण को इस मात्रा तक अवश्य स्थापित किया जाये। इतने बड़े देश में यही स्वस्थ तथा स्थायी समाज के आधार होते हैं।

दूसरा विषय, जिस पर मैं केन्द्र का नियंत्रण देखना चाहूंगा, वह शिक्षा है। मैं जानता हूं कि मैं एक बड़े विवादास्पद प्रश्न को ले रहा हूं। मैं यह भी जानता हूं कि मेरी आलोचना की जायेगी और मेरे विचारों का वे व्यक्ति जोरदार शब्दों में खण्डन करेंगे जो मेरी समझ से अपने दृष्टिकोण के केवल प्रांत तक ही सीमित रखते हैं। साथ ही साथ मैं यह भी समझता हूं कि मेरे इस प्रस्ताव को कि समस्त देश में शिक्षा पर केन्द्र का नियंत्रण होना चाहिये महान शिक्षा आचार्यों का दूरन्देश व्यक्तियों का तथा कुशल राजनीतिज्ञों का समर्थन प्राप्त होगा। आज क्या हो रहा है? स्वतंत्रता के पदार्पण करते ही (यह कहने के लिये मैं विवश हूं) कुछ प्रांत शिक्षा क्षेत्र में बहुत गड़बड़ कर रहे हैं। प्रांत केवल भिन्न-भिन्न प्रकार की नीतियां ही नहीं वरन् बहुधा परस्पर प्रत्यक्ष विरोधी नीतियां बर्त्त रहे हैं। यह तो स्वयंसिद्ध है कि एक समान, संश्लेषणात्मक सुनिश्चित शिक्षा प्रणाली राष्ट्र में सामुहिकता और ऐक्य स्थापित करने के लिये एक महान शक्ति है। जितनी सच्चाई इस कथन में है, उतनी ही सच्चाई इस बात में भी है कि विभिन्न, विच्छेदकारी तथा विरोधी शैक्षिक नीतियां भी देश के टुकड़े-टुकड़े करने और उसके ऐक्य को नाश करने की बहुत अधिक शक्ति रखती हैं यद्यपि यह बात मैं खेद सहित कहता हूं, पर यदि हम इसकी सत्यता से भागने का प्रयत्न न करें तो यह सच है कि प्रान्तीयता तथा संकीर्णता की दृष्टि से निर्धारित शैक्षिक नीतियां हमारे देश में ऐसी वीभत्स किन्तु अनिवार्य दशा ला रखने का डर पैदा कर रही है, जिसमें सांस्कृतिक खाइयों, मानसिक कठघरों और शैक्षिक दीवारों की दूसरी तरफ देखना हमारे लिये दिन-प्रति-दिन असम्भव होता जायेगा। चूंकि शिक्षण से मेरा सम्बन्ध पर्याप्त मात्रा में घनिष्ट है, अत: इस बारे में मेरे मन में काफी व्यग्रता है। यदि समूचे भारत की शिक्षा को दृष्टि में रखा जाये, तो मैं कह सकता हूं कि शिक्षा से मेरा पर्याप्त घनिष्ट

सम्बन्ध है और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि यदि केन्द्र ने इस बारे में ''प्रत्येक को अपनी मनमानी करने दो'' की नीति को मान लिया या उस पर चलने की स्वीकृति दे दी, तो यह बात ठीक मानी जायेगी कि हमने ऐसी शक्ति के साथ खिलवाड़ किया कि जिसकी हानि पहुंचाने की सम्भाव्यता, देश को छिन्न विच्छिन्न कर देने की सम्भाव्यता उस धार्मिक-साम्प्रदायिकता-जन्य-विच्छिन्नता-शक्ति से कहीं अधिक है जिसे कि हमने अब तक झेला है।

अन्त में श्रीमान्, जिस विषय पर मेरी समझ से केन्द्र द्वारा नियंत्रण होना चाहिये, वह स्वास्थ्य है और यह विषय उपेक्षणीय नहीं है। मेरी समझ से जो दो बड़ी समस्यायें इस देश के सामने हैं, वे हैं शिक्षा और स्वास्थ्य। अस्वास्थ्य तथा अपुष्टता से हम तब तक तनिक भी छुटकारा न पायेंगे जब तक कि हम सारे देश में उन्हें दूर करने का प्रयास समान रूप से आरम्भ न कर देंगे। मेरा तो यह विश्वास है कि इस समस्या के छोर को हम छू भी न सकेंगे यदि इसके निराकरण हमने भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों की दशा पर छोड़ दिया; क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि इनमें से कुछ की नीति तो लंगड़ी होगी, कुछ की नीति असमान होगी, और कुछ की नीति विभिन्न-दिशा-गामी होगी।

अन्त में मैं डा. अम्बेडकर की भावना का समर्थन करता हूं जो उन्होंने अल्पसंख्यकों की ओर से इन प्रावधानों के समर्थन में प्रकट की थी। मैं जानता हूं कि यह एक कड़वा विषय है (जो कुछ भारत पर बीती है उसके पश्चात्) कि अल्पसंख्यकों के बारे में अथवा अल्पसंख्यकों की समस्याओं को दृष्टि में रख कर कुछ कहा जाये और मैं ऐसा नहीं करना चाहता। मैं अल्पसंख्यकों सम्बन्धी प्रावधान के पक्ष-समर्थन का विचार नहीं रखता हूं, क्योंकि उनको तो परामर्श दात्री-समिति ने स्वीकार कर ही लिया है, उनको कांग्रेस दल ने भी स्वीकार कर लिया है और उनको विधान-परिषद् ने भी स्वीकार कर लिया है। इस समस्या को सुलझाने में जिस विवेक और राज्यकौशल से कांग्रेस दल ने काम लिया है, उसके लिये उसे धन्यवाद तथा बधाई देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। और सरदार पटेल को तो मैं खास तौर पर धन्यवाद और बधाई देना चाहता हूं, क्योंकि उन्होंने इस बारे में अपूर्व विवेक और राज्यकौशल का उपयोग किया है। इस देश में

[श्री फ्रेंक एन्थॉनी]

अल्पसंख्यक वर्तमान हैं, इस बात को तुच्छ समझने या टालने से कोई लाभ नहीं पर यदि हम इस समस्या के सम्बन्ध में वही दृष्टिकोण अपनायें जिसे कांग्रेस ने इस समस्या को सुलझाने के लिये अपनाया है, तो मैं समझता हूं कि दस वर्ष में इस देश में कोई अल्पसंख्यक सम्बन्धी समस्या नहीं रहेगी। श्रीमान्, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरी समझ में तो सद्विवेकयुक्त एक भी अल्पसंख्यक वर्ग न होगा जिसकी इच्छा यह न हो कि यह देश न्यूनातिन्यून समय में असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रीय राज्य के ध्येय को प्राप्त करने में सफल हो जाये। हमें विश्वास है और हमें विश्वास करना भी चाहिये कि इस ध्येय की प्राप्ति ही इस देश के प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के हितों की रक्षा की सबसे बड़ी प्रत्याभूति होगी। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है कि हमने इस बारे में श्रेष्ठ-मध्यम मार्ग को अपनाया है और इस दिशा में अल्पसंख्यकों का सहयोग भी पर्याप्त मात्रा में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यह निर्विवाद सत्य है कि कांग्रेस से समझौता करने के लिये हम लोग आधी से अधिक दूर तक आगे बढ़े यद्यपि किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिये जो अल्पसंख्यक वर्ग का ही सदस्य नहीं है, यह सुलभ नहीं कि वह अल्पसंख्यकों की कठिनाइयों और चिन्ताओं को ठीक-ठीक समझ सके, तथापि कांग्रेस दल ने इनको यथावत समझा है और इस कारण हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। मेरा यह विश्वास है कि इन प्रावधानों द्वारा हमने ऐसे श्रेष्ठ मध्य मार्ग को अपनाया है जिस पर धीरे-धीरे चल कर और स्वाभाविक तथा सहज परिवर्तन की रीति से, यदि हम सब अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूरा करें, (और मुझे विश्वास है कि हम सब ऐसा करेंगे) तो हम इस देश में उस एकमात्र ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे जिसको हम सब पाना चाहते हैं। अर्थात् वह ध्येय जिसके पाने पर हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह सोचेगा कि वह सर्वप्रथम भारतीय है, सर्व पश्चात् भारतीय है और सर्वदा भारतीय है। कुछ दिन पहले जब मैंने कामनवेल्थ पार्लियामेंटरी कान्फ्रेंस में भाग लिया था तो जो अनुभूतियां मुझे हुईं उनमें से जिस एक अनुभूति की बड़ी गहरी छाप मेरे मन पर पड़ी, वह थी यह कि संसार की आंखें भारत की ओर लगी हुई हैं। लोग यह बात खूब समझते हैं कि जब भारत अपने पूरे उत्कर्ष पर पहुंचेगा तो सारे संसार में औद्योगिक और आर्थिक संतुलन में तथा सैनिक संतुलन में भी पर्याप्त अन्तर हो जायेगा। हम सबको यह विश्वास है, एक दिन

भारत अपने उचित स्थान को अवश्य प्राप्त कर लेगा। मैं उन लोगों में से हूं जिन्हें विश्वास है कि भारत का सर्वाधिक उत्कर्ष असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रीय राज्य के अन्दर ही होगा। हो सकता है कि इस संविधान में कमियां और अपूर्णतायें हों, किन्तु ये तो आवश्यक उपायोजनों के अनिवार्य परिणामस्वरूप होती हैं। किन्तु मेरा विश्वास है कि इस संविधान में हमें इस देश में असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रीय समाज की स्थापना की सुविधा तथा प्रत्याभूति दोनों ही का समावेश दिखाई देता है।

अन्त में, श्रीमान्, मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारा पूरा उत्कर्ष इस मुद्रित विधान में लिखित शब्दों पर उतना निर्भर न होगा जितना कि वह इस बात पर होगा कि कितनी निष्ठा से हमारे देश के नेतागण तथा प्रशासकगण इस संविधान को कार्यान्वित करते हैं और किस निष्ठा से उन महान समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करते हैं, जो आज हमारे सामने उपस्थित हैं तथा जिन आदर्शों में हमारी श्रद्धा है, उनकी पूर्ति मात्रा निर्भर करेगी, उस रीति पर जिससे कि हम इस संविधान के मूलभूत तत्त्वों का पालन करते हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, अपनी सुरचित योजना के लिये, जिसे उन्होंने सभा के समक्ष उपस्थित किया है तथा उस अथक परिश्रम के लिए जो उन्होंने उसके बनाने में लगाया है, तथा उस योग्यतापूर्ण और सुस्पष्ट व्याख्यान के लिए जो उन्होंने कल दिया था, डा. अम्बेडकर जिस बधाई के पात्र हैं उस बधाई को देने के सुखद कर्त्तव्य को पूरा करने में मैं भी सम्मिलित होता हूं।

श्रीमान्, विधान पर विचार करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि विधान स्वयं एक लक्ष्य नहीं है। विधान कुछ उद्देश्यों के लिये बनाया जाता है और वे उद्देश्य जनता का सामान्य कल्याण, राज्य की स्थिरता और व्यक्ति की उन्नति है। भारत में जब हम व्यक्ति के विकास तथा उन्नति की बात करते हैं तो हमारा आशय उसके आत्मज्ञान, आत्मोन्नति तथा आत्मसिद्धि से होता है। जब हम जनता की उन्नति की बात कहते हैं, तो हमारा आशय एक शक्तिशाली संगठित राष्ट्र से होता है।

श्रीमान्, हमारा विधान जनतंत्रात्मक है। जनतंत्र का अर्थ है, जनता का, जनता के लिये और जनता द्वारा राज्य जनतंत्र में जनता की सामूहिक बुद्धि किसी एक राजा को, अथवा किसी तानाशाह की और यहां तक कि कुछ व्यक्तियों के समूह की बुद्धि से भी श्रेष्ठ मानी जाती है। इसके अतिरिक्त जनतंत्र में यह भी माना

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

जाता है कि जनता का कल्याण ही राज्य का सर्वश्रेष्ठ ध्येय है। राजनैतिक संस्थाओं को उसी मात्रा में उपयोगी ठहराया जा सकता है जिसमें कि वे इस ध्येय की पूर्ति में सहायक होती हैं और इसके साथ जुड़ी हुई चमक-दमक से किंचित मात्र भी यह नहीं माना जाता कि वे उपयोगी भी हैं।

जनतंत्र के इन मूल तत्त्वों को ध्यान में रख कर हमें यह निर्णय करना है कि क्या यह संविधान, जो हमारे सामने रखा गया है, ऐसा है जो भारत की शक्तिशाली तथा एकतायुक्त राष्ट्र बना सकेगा और साथ ही व्यक्ति को यह सुविधा भी प्रदान कर सकेगा कि वह आत्मज्ञान, आत्मोन्नति तथा आत्म सिद्धि प्राप्त कर सके। भारत को चाहिये धन और जब हम यह कहते हैं कि भारत को धन चाहिये तो हमारा आशय यही होता है कि भारत निर्धन देश है और इसलिये उसको इतना शक्तिशाली बन जाना चाहिये जितना कि उसे संसार के किसी महान् देश से प्रतियोगिता करने के लिये तथा उसके समकक्ष खड़ा होने देने के लिये आवश्यक हो। एक समय था जब सोना, चांदी या देश के अन्य साधनों को धन समझा जाता था। किन्तु आज की हालतों में किसी राष्ट्र की सम्पत्ति मुख्यतया उसके नवयुवकों की भुजाओं में, उनके चरित्र में, उनकी मानसिक शक्तियों में तथा उनकी कार्य क्षमता में मानी जाती है। यदि इस दृष्टि से हम इस संविधान की परीक्षा करते हैं तो हमें इसमें कहीं भी कोई ऐसी बात या प्रावधान नहीं मिलता जिससे लोगों को काम करने के लिये अथवा उन्नति के लिये प्रेरणा मिले। यह ठीक है कि इसमें निदेशक सिद्धांत दिये हुये हैं। उनके अनुसार राज्य का यह प्रयास होगा कि वह सब को प्राथमिक शिक्षा, काम और सेवा युक्ति प्राप्त कराये। किन्तु राज्य का यह दायित्व न होगा कि वह लोगों को इस सिद्धांत के अनुसार, कि जो कोई भी काम नहीं करता उसको रोटी पाने का भी अधिकार न होगा, काम करने के लिये बाध्य करे। पर यह प्रश्न है महत्त्वपूर्ण कि इसमें ऐसा प्रावधान हो जिसके अधीन कि उन लोगों को काम करने के लिए बाध्य किया जा सके, जिसके सब अंग ठीक हैं और कार्य के लिये उपयुक्त हैं। किन्तु निदेशक सिद्धांत, जिनकी आलोचना मेरे एक विद्वान मित्र ने की है, राज्य पर ऐसा कोई कर्त्तव्य नहीं लादते जो उसे विधि की दृष्टि में उन अधिकारों की पूर्ति के लिये बाध्य करता हो, जो कि इस संविधान द्वारा दिये गये हैं। विधान में दिये हुये अधिकारों को देने के लिये कोई कानूनी बन्धन नहीं है। मेरा सुझाव है कि हम एक ऐसा प्रावधान बनायें कि यदि ऐसा कोई कानून बनाया जाये जो इन सिद्धांतों के प्रतिकूल हो

तो वह रद्द समझा जाये। इससे वर्तमान स्थिति में कोई अन्तर न होगा। इससे तो केवल क्षेत्राधिकार प्राप्त हो जायेगा और वह भी केवल न्यायालय को अवरोधाधिकार ही होगा जिसके द्वारा लोग न्यायालय से यह प्रार्थना कर सकेंगे कि वह जो कोई कानून लोकहित के प्रतिकूल है अथवा जो बालकों को प्राथमिक शिक्षा देने का निषेध करता है अथवा जो लोगों को काम और सेवा वृत्ति देने में बाधक है, उसे वह अमान्य घोषित कर दें। और न्यायालय को यह घोषणा करने का क्षेत्राधिकार होगा कि अमुक-अमुक कानून अमान्य हैं, क्योंकि यह चौथे अध्याय में दिये हुये सामान्य सिद्धांतों के प्रतिकूल हैं। निदेशक सिद्धांतों की जिस दूसरी बात पर मैं जोर देना चाहता हूं, वह यह है कि जनतंत्र के विकास के लिये अपेक्षित हैं स्वतंत्र और स्वस्थ लोक मत। मध्यकालीन युग में यह दशा थी कि कोई भी व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक सोचने का साहस न कर सकता था, किन्तु आज के सभ्य युग में कोई भी स्वतंत्रतापूर्वक सोचने का साहस तो कर सकता है, किन्तु उसको ऐसा करने की सुविधा नहीं मिलती। इसके विपरीत हमें यह देखने को मिलता है कि चोर बाज़ारी से और अन्य ऐसे तरीकों से, जिन्हें कोई भी भला आदमी अपनाना पसन्द न करेगा, जिस आदमी ने बेशुमार दौलत इकट्ठी कर ली है वह बीसियों शिक्षित स्त्रियों को खरीद लेता है, सारी दुनियां में घूमता है, प्रांतों के बीसियों कर्ता-धर्ताओं को अपने वश में कर लेता है और चालाकी से प्रोपेगण्डा कर के लोगों के हृदयों को अपने वश में कर लेता है, और दुनियां में मानव जाति का शुभचिन्तक माना जाता है। क्या आप कह सकते हैं कि इस प्रकार की व्यवस्था को प्रजातंत्र का नाम दिया जा सकता है? क्या आप यह समझते हैं कि जिस देश में इस प्रकार की बातें सम्भव हो सकती हैं, उसमें ईमानदार और स्वतंत्र नागरिकों की उन्नति हो सकती है? श्रीमान्, इस महान् देश में इस प्रकार की कोई बात हो, इसके विरोध में मैं अपनी पूरी शक्ति से आवाज उठाता हूं और कहता हूं कि ऐसी बातों को न होने दिया जाये। धन के दुरुपयोग को तथा धन के एक हाथ में इतनी मात्रा तक एकत्रित होने को रोक कर आप यह कर सकते हैं, और आपको ऐसा करना भी चाहिये, कि ऐसी बातों का घटित होना असम्भव हो जाये। आपको प्रकाशन पर नियंत्रण करना चाहिये और निष्पक्ष तथा स्वतंत्र प्रकाशन की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे कि प्रभावशाली स्वतंत्र मत बन सके। ऐसे दो अनुच्छेद हैं, अर्थात् 14 और, 18 उनमें यह दिया हुआ है कि राज्य प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को कार्य करने के लिये विवश करेगा और एक दूसरे अनुच्छेद में यह दिया हुआ है कि प्रभावी स्वतंत्र मत की उन्नति में बाधक

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

तथा अवरोधक प्रकाशन नहीं करने दिया जायेगा। प्रभावी मत ही जनतंत्र का प्राण है।

निदेशक सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् में अल्पसंख्यकों-सम्बन्धी अध्याय 14 को लेता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस महान् देश को एकता की आवश्यकता है। एकतापूर्ण राष्ट्र को बनाना हमारा उद्देश्य है। अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मेरे विचार से हमारे अल्पसंख्यक वास्तविक अर्थ में अल्पसंख्यक नहीं हैं और न वे उस अर्थ में अल्पसंख्यक वर्ग अथवा समूह माने जा सकते हैं जो कि राष्ट्रसंघ द्वारा स्वीकृत है। हम सब एक जाति के हैं। हम सब इस देश में सैकड़ों, हजारों वर्षों से रह रहे हैं। हम सबकी संस्कृति, रहन-सहन और विचार एक से हैं अत: मैं यह नहीं समझ सका कि अध्याय 14 में इन लोगों को विशेष अधिकार किस प्रयोजन से दिये गये हैं इनका फल यह होगा कि विधि-विरचित अल्पसंख्यक वर्ग पैदा हो जायेंगे और यह कहना कि यह सब तो दस वर्ष तक ही रहेगा, भूतकाल के उपदेशों को अनसुना कर देना है। अतीत काल में क्या हुआ? आपने इसी प्रकार से कुछ विशेष अधिकार मुसलमानों को दिये और यह आशा की कि वे विशेषाधिकार कालान्तर में स्वत: ही मिट जायेंगे, और मुस्लिम सम्प्रदाय इन विशेषाधिकारों की निरर्थकताओं को समझ जायेगा और इन विशेषाधिकारों का परित्याग कर देश की सामान्य जनता में घुलमिल जायेगा। पर उसका फल देश का विभाजन हुआ। यदि एक बार आप किसी जन समूह को विशेषाधिकार दे देते हैं और यह इसलिये नहीं देते कि वह किसी विशेष प्रकार्य की पूर्ति कर रहा है अथवा देश हित के लिये कुछ कर रहा है, वरन् इसलिये देते हैं कि वह किसी समुदाय अथवा श्रेणी विशेष का अंग है, तो आप उस दोष को जो जनतंत्रों में साधारणतया पाया जाता है, अमिट बना देते हैं अर्थात् ऐसी श्रेणियों अथवा समूहों को पैदा कर देते हैं, जो राष्ट्र के हित के प्रतिकूल कार्य करते हैं, जो अपने स्वार्थों की अथवा उन समुदायों अथवा श्रेणियों के हितों की पूर्ति में लगे रहते हैं जिनके वे अंग है। दलबन्दी और कूटनीति से न तो उनके समूह या वर्ग को लाभ होता है और न देश को ही। पर उस दल के नाम से वे अपने स्वार्थों की पूर्ति करते रहते हैं। एकता पूर्ण राष्ट्र के निर्माण में तो यह रुकावट डालेगा ही, पर साथ ही साथ यह उन समूह या वर्गों को भी लाभदायक नहीं होगा और जैसा कि मैंने कहा है यह सामान्यतया जनतंत्र में पाये जाने वाले दोषों को अमिट बना देगा। अत: मैं यह

निवेदन करूंगा कि इस अध्याय को पूर्णतया हटा देना ही श्रेयस्कर होगा। और यदि पिछड़े हुये वर्ग को अथवा अन्य किसी वर्ग को कोई संरक्षण का प्रोत्साहन देना ही हो तो उसके लिये अन्य उपाय अपनाये जा सकते हैं जैसे कि योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां देना, अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता देना, ऐसी संस्थायें खोलना तथा अन्य सुविधायें देना जो उनकी उन्नति के लिये और उन्हें ऊंचा उठाने के लिये आवश्यक हों। लेकिन राज्य संस्था में विभाजन स्थापित करना और राष्ट्र में विभाजन की नींव डालना राष्ट्र की सदोन्नति के लिये घातक होगा और हमारे तथा हमारे वंशजों के लिये अत्यन्त हानिकर होगा।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, सभा के मैं उन लोगों में से हूं जिन्होंने डा. अम्बेडकर को बड़े ध्यान से सुना। मैं उनके उत्साह तथा उस कार्य की मात्रा से परिचित हूं जो उन्हें इस विधान का मसौदा बनाने में करना पड़ा। साथ ही साथ मेरा यह भी विश्वास है कि इस विधान के मसौदे पर जो हमारे लिये आज कल इतना महत्त्व रखता है, जितना ध्यान दिया जाना चाहिये था उतना ध्यान मसौदा-समिति ने इसे नहीं दिया है। सभा को शायद यह विदित है कि उसने जो सात सदस्य नियुक्त किये थे, उनमें से एक ने सभा से त्यागपत्र दे दिया था और उसके स्थान पर अन्य सदस्य रखा गया था। एक का स्वर्गवास हो गया, किन्तु उसकी जगह पर कोई व्यक्ति नहीं रखा गया। एक अमरीका में था और उसकी जगह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं भरी गई तथा एक और सदस्य राजकार्य में लगा हुआ था। इतने रिक्त स्थान थे। एक या दो व्यक्ति दिल्ली से दूर थे और सम्भवत: अस्वस्थ होने के कारण उपस्थित न हो सके। अत: अन्त में यह हुआ कि इस विधान का मसौदा बनाने का काम डा. अम्बेडकर पर आ पड़ा और नि:संदेह हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं कि इतने प्रशंसनीय ढंग से उन्होंने इस कार्य को पूरा किया। परन्तु जिस बात को मैं कहना चाहता हूं वह तो वास्तव में यह है कि ऐसे विषय के लिये जितने ध्यान की आवश्यकता थी उतना ध्यान पूरी समिति इसे नहीं दे सकी। अप्रैल में किसी समय विधान-परिषद् के कार्यालय ने मुझे तथा अन्य सदस्यों को यह सूचित किया कि आपने यह निश्चित किया था कि संघाधिकार समिति, संघ-विधान समिति तथा प्रान्तीय विधान समिति के सदस्यगण और कुछ अन्य निर्वाचित सदस्य सम्मिलित होंगे और सभा के सदस्यों द्वारा तथा सामान्य जनता द्वारा सुझाये गये संशोधनों का पर्यालोचन करेंगे। अप्रैल

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के अन्त में दो दिन तक बैठक हुई और मेरा विश्वास है कि कुछ मात्रा में अच्छा काम हुआ और मैं देखता हूं कि डा. अम्बेडकर ने समिति की कुछ सिफारिशों को स्वीकार किया—इसके पश्चात् इस समिति के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुना गया। मैं समझता हूं कि मसौदा-समिति—कम से कम डा. अम्बेडकर और श्री माधवराव—उसके पश्चात् बैठी और संशोधनों का निरीक्षण किया और उन्होंने कुछ सुझाव रखे हैं परन्तु यह बैठक रस्म के विचार से मसौदा-समिति की बैठक नहीं कहीं जा सकती। यद्यपि इस विषय में, मैं आपकी व्यवस्था का विरोध नहीं करूंगा, किन्तु फिर भी साधारणतया यह बात ठीक मानी जायेगी कि जिस समय समिति रिपोर्ट दे देती है, वह अपने कार्य भार से मुक्त हो जाती है और मुझे यह स्मरण नहीं है कि आपने कभी मसौदा-समिति को भी पुनः संगठित किया। मैं इन बातों का इसलिये जिक्र कर रहा हूं कि हमारे विधान पर उतना दत्तचित्त होकर ध्यान नहीं दिया गया जितने की आवश्यकता थी, और कि यदि श्री गोपालस्वामी आयंगर या श्री मुंशी या उन जैसे कुछ अन्य व्यक्ति समस्त बैठकों में उपस्थित होते तो ध्यान उस पर दिया जा सकता था।

श्रीमान्, मैं आपका ध्यान विधान के एक अंग की ओर आकर्षित करूंगा अर्थात् विधान में अर्थ-सम्बन्धी प्रावधानों की ओर। आपने विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की थी। यद्यपि समिति में प्रमुख व्यक्ति थे तदापि मेरे विचारानुसार जिस प्रकार समिति ने कार्य सम्पादन किया, वह संतोषजनक नहीं था। मुझे उस समिति के समक्ष अपना वक्तव्य देने का अवसर मिला था और मैं उस सभा से यह विचार लेकर बाहर निकला था कि समिति के सदस्यों ने, जो विषय सौंपा गया है, उसकी गहनता को नहीं समझा और न वे उस विषय पर मसौदा-समिति को सलाह देने की क्षमता ही रखते थे। श्रीमान्, पकौड़ी का स्वाद उसके खाने से पता चलता है। मेरे पास विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट है और मैं उससे संतुष्ट नहीं हूं। परिस्थिति ऐसी थी कि विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट का पर्यालोचन यह सभा नहीं कर सकी और मेरा विश्वास है कि मसौदा-समिति को ही न्यूनाधिक रूप से स्वयं यह निश्चय करना पड़ा कि उन सिफारिशों को विधान में समाविष्ट किया जाये या नहीं।

श्रीमान्, विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट के सम्बन्ध में मुझे कुछ बातें कहनी हैं। विशेषज्ञ-समिति को स्वयं अपने ऊपर ही विश्वास न था। श्रीमान्, यद्यपि वे निदेश

जिनके द्वारा आपने समिति के प्रकार्यों का परिसीमन किया था, पर्याप्त व्यापक थे—और वे इस अर्थ में व्यापक थे कि उनके अधीन समिति को यह अधिकार था कि वे भारत शासन और प्रांतीय शासनों के गत दस वर्ष के अनुभवों को ध्यान में रख कर, यदि वे केन्द्रीय तथा प्रांतीय विषयों का परिगणन करने वाली सूचियों में वे विभिन्न आय मदों में परिवर्तन करना आवश्यक समझें तो, उनमें परिवर्तन कर दें, तदापि उन्होंने उस अवसर से लाभ न उठाया जो आपने उन्हें दिया था। इसके विपरीत आपने जो अवसर उनको दिया उसके उपयोग करने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत उन्होंने अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट कहा कि देश की वर्तमान परिस्थिति में उन्होंने यही उचित समझा कि देश की आर्थिक व्यवस्था में किसी क्रांतिकारी कृति की अपेक्षा तो उसको उसी रूप में स्वीकार करना अच्छा है। श्रीमान्, मुझे भय है कि यह बात ठीक नहीं हुई।

दूसरी बात, जो मै कहना चाहता हूं वह रिपोर्ट के 49 पैरा के सम्बन्ध में है, जो प्रांतीय सूची की संख्या 48, 49 और 51 मदों के बारे में है। 51 का सम्बन्ध कृषि पर आय-कर से है। 48 और 49 कृषि भूमि पर भूसम्पत्ति-कर, तथा उत्तराधिकार-कर के सम्बन्ध के हैं। कृषि-सम्पत्ति और जो सम्पत्ति कृषि-सम्पत्ति नहीं है, उन दोनों में जो भेद है आजकल की हालतों में उस क्षेत्र का कुछ अधिक महत्त्व नहीं है। मेरे विचार से उनका यह समझना बिलकुल ठीक था। पर उनको यह सुझाव करने का साहस न हुआ कि विधान के मसौदे में से इस भेद का जो की विशिष्ट कारणों द्वारा भारत सरकार एक्ट से लिया गया था, निकाल दिया जाये। श्रीमान् यदि सभा मुझे आज्ञा दे तो मैं इस अन्तर को दूर करने के लिये संशोधन रखने का प्रस्ताव करूं और वह इस कारण से नहीं कि प्रांतों के अधिकारों का अपहरण किया जाये, पर इस कारण से कि मेरी समझ में यही एकमात्र मार्ग है, जिसके द्वारा आय-कर का और भूसम्पत्ति-कर का एकीकरण करके, चाहे वह कृष्य सम्पति पर हो अथवा अन्य सम्पति पर, प्रांतों की संख्या में वृद्धि की जा सके और ऐसे एकीकरण का लाभ प्रांतों को प्राप्त हो सके।

श्रीमान्, विशेषज्ञ-समिति की एक अन्य सिफारिश हानिकर है। दूसरी सूची के 58वें पद पर उल्लिखित विक्रय-कर के सम्बन्ध में उनका यह सुझाव है कि इसकी परिभाषा इतनी व्यापक कर दी जानी चाहिये कि इसमें उपभोग-कर भी सम्मिलित

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

समझ लिया जाये। अमरीका राज्य के अनुभव के आधार पर ही यह सिफारिश की गयी है जो मेरे विचार से अत्यन्त हानिकर सिफारिश है। इस सिफारिश की झलक 58वें पद पर उल्लिखित विक्रय-कर में भी मिलती है, किन्तु उसमें यह बात होनी न चाहिये थी।

विशेषज्ञ-समिति ने ये भी सिफारिशें की हैं कि प्रांतों का आय-कर में जो 50 प्रतिशत हिस्सा है उसे बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर दिया जाये और निगम करों से पूर्व आय को तथा संघ-परितात्र-करों की आय को भी आय-कर की पूर्ण राशि में मिला दिया जाये। किन्तु विशेषज्ञ-समिति की इन सिफारिशों को मसौदा-समिति ने अस्वीकार कर दिया है अत: मैं तो यह मानता हूं कि या तो मसौदा-समिति इस बात के लिये अयोग्य थी कि वह विशेषज्ञ-समिति की आधे मत से की गई सिफारिशों की यथोचित जांच कर सके अथवा मसौदा-समिति ने यही सोचा कि जाते हुये पथ पर चलना ही अच्छा है और इसलिये वर्तमान-व्यवस्था को ही अपना लेना चाहिये। और जहां तक मैं समझता हूं, विशेषज्ञ-समिति के निश्चयों का आधार भी न्यूनाधिक मात्रा में यही विचार है।

अब मैं एक नये प्रावधान को लेता हूं जो कि विधान के मसौदे की आर्थिक धाराओं में बनाया गया है। यह अनुच्छेद 260 है। श्रीमान्, अनुच्छेद 260 में अर्थ-प्रबन्धन कमीशन का उल्लेख है। श्रीमान्, यह सच है कि आपने विशेषज्ञ-समिति को जो निदेश पद दिये थे उनमें आपने स्वयं यह सुझाव सम्मिलित किया था। किन्तु मैं तो यही सोचता हूं कि क्या हमारे लिये यह कोई आवश्यक बात है कि हम संविधान में ऐसे अनुच्छेद का समावेश करें जैसा कि अनुच्छेद 260 है और जो इसकी केवल एक बात के बारे में ही, अर्थात् आयोग की नियुक्ति के बारे में ही मान्य आदेशमूलक है। उसको जो कर्त्तव्य सौंपे गये हैं, वे हैं प्रांतीय और केन्द्रीय शासनों के बीच में विवेचना करना और एक प्रकार के अनुदान-आयोग के रूप में कार्य करना। किन्तु इन सब कामों को तो कोई भी ऐसा आयोग कर सकेगा जिसे किसी भी ऐसी विधि ने ऐसा करने के लिये उपयुक्त मान लिया हो, जिस विधि को कि पार्लियामेंट ने बनाया है। पार्लियामेंट को किसी भी ऐसे आयोग को नियुक्त करने का तब तक अधिकार है, जब तक कि इस आयोग

की सिफारिशें केन्द्रीय तथा प्रांतीय शासन के लिये आदेश मूलक न हों और अनुच्छेद 260 की वर्तमान शब्दावली के अधीन यही अवस्था आजकल भी है। अत: इस दृष्टि से कि इस विधान की आर्थिक समस्याओं पर विचार करने के लिये हमें समय नहीं मिला है और आय के शीर्षकों का विभाजन हम केन्द्र और प्रांतों में ठीक प्रकार से नहीं कर पाये हैं। मेरे विचार से यह समझदारी होगी कि एक कमीशन नियुक्त करने के लिये इसी विधान में हम एक प्रावधान रखें और यह कमीशन देश के समस्त आर्थिक ढांचे पर विचार करे और प्रांतों तथा केन्द्रों की सूचियों के शीर्षकों में परिवर्तन करने के लिये भी सिफारिश करे। वस्तुत: इस बात की सिफारिश विशेषज्ञ-समिति ने की तो है किन्तु वह इस विषय में और आगे नहीं बढ़ी। मैं यह चाहता हूं कि इस संविधान में यह बात रखी जाये कि एक आर्थिक कमीशन नियुक्त किया जायें और उस कमीशन को दोनों एक और दो सूचियों में परिवर्तन करने के लिये सिफारिशें करने का अधिकार दिया जाये तथा उन सिफारिशों को इस विधान का अंग मानकर अपना लिया जाये और ये सिफारिशें संविधान में संशोधन करने को अनावश्यक झगड़े में पड़े बिना ही भारत सरकार और प्रांतीय सरकारों के लिये मान्य हों।

श्रीमान्, मैं नहीं जानता कि यह बात सम्भव है या नहीं, पर इस प्रस्ताव को पेश करने वाला यहां उपस्थित नहीं हैं—यदि वे यहां होते तो कदाचित् इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकते थे—पर मेरा यह विचार है कि विधान में इस प्रकार का प्रावधान रखने का प्रयत्न किया जाये। श्रीमान्, मैं केवल यही कहूंगा कि जब इस विषय के इस पहलू पर सोच-विचार किया गया उस समय उन दोषों का महत्त्व ठीक-ठीक न समझा गया जो 1935 के अधिनियम में उल्लिखित वैत्तिक शक्तियों के दुरुपयोग से पैदा होते थे। और उन प्रांतों की आय बढ़ाने के लिये योजनाओं पर विचार करने का गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया, जिनको अतिरिक्त साधनों की बड़ी आवश्यकता है तथा इस देश में उचित तथा सभी के लिये न्यायपूर्ण कर प्रणाली को स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया। श्रीमान्, स्थान ग्रहण करने के पूर्व मैं एक या दो विषयों को और लूंगा, वे ये हैं। श्रीमान्, प्रस्तावक महोदय ने एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता का जिक्र किया है। मैं देखता हूं कि श्री एन्थॉनी ने भी उन्हीं विचारों का समर्थन किया है। इस दशा में जब कि हमें यह निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं कि कल हमारे देशों में क्या हालतें पैदा हो

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जायेंगी तथा इस बात को ध्यान में रख कर कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का हमारा मुख्य उद्देश्य निम्नतम श्रेणियों की हालत को अच्छा बनाना था अर्थात् साधारण आदमियों की आर्थिक अवस्था को उन्नत करना था। मैं यह मान लेता हूं कि इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये एकमात्र साधन यही है कि, केन्द्र को इतनी शक्तियां दे दी जायें जिससे कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जो बातें अवश्य की जानी चाहिए, उनके सम्बन्ध में आवश्यक निदेश दे सके। यदि शक्तिशाली केन्द्र के बनाने से प्रांतों के अस्तित्व को यथावत् रखने में कोई कठिनाई पैदा ना हो तो मैं भी शक्तिशाली केन्द्र बनाने के सर्वथा पक्ष में हूं। श्रीमान, हाल में एक प्रसिद्ध वकील और भारत सरकार के एक भूतपूर्व सदस्य ने मेरे पास पत्र भेजा है, जिसमें उन्होंने यह शिकायत की है कि वर्तमान समय में प्रांत पथभ्रष्ट हो रहे हैं और प्रांत की आंतरिक आर्थिक व्यवस्था में संकीर्ण तथा प्रांतीयता की दृष्टि से बनाये गये प्रतिबंधों का आरोप कर रहे हैं और उन्होंने यह बात भी लिखी है कि वर्तमान स्थितियों में संघात्मक शासन-पद्धति के स्थापन के बारे में उन्हें यह शंका है कि यह कदम ठीक न होगा और उन्होंने यह भी प्रश्न उठाया है कि क्या हमारे लिये यह उचित न होगा कि हम एकात्मक शासन-पद्धति को पुन: अपना लें। और श्रीमान्, मैं यह आवश्यक समझता हूं कि उन्होंने जो बातें अपने पत्र में उठाई हैं, उन पर विचार किया जाये। उनकी उठाई हुई बातों में तथ्य है और जब इस विचार से हम इस ओर देखते हैं तो हम यह अनुभव करते हैं कि एक शक्तिशाली केन्द्र आवश्यक है। मैं यह भी कहूंगा कि कुछ विषयों में केन्द्र के निदेश कदाचित् लाभदायक होंगे। मेरे माननीय मित्र श्री जगजीवन राम को केन्द्रीय सरकार के अपूर्ण अधिकारों के कारण अपनी श्रम सम्बन्धी नीति को चलाने में बड़ी कठिनाइयां हुई हैं। यह बात ठीक है कि डा. अम्बेडकर ने कहा है कि 60वें अनुच्छेद का शब्द विन्यास अब ऐसा है कि समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र के अधिकारों का इतना विस्तार हो जायेगा कि प्रशासन सम्बन्धी आदेश भी दिये जा सकें; जो बात कि अब तक नहीं की जा सकती थी, पर मैं यह नहीं मानता कि अनुच्छेद 60 की वर्तमान शब्दावली में यह अधिकार स्पष्टतया उल्लिखित है और यही बात श्री जगजीवन राम कई बार कह चुके हैं।

और सदा ही यह मेरी धारणा रही है कि श्रम-सम्बन्धी विषयों में केन्द्र को इस कारण से अधिक शक्ति दी जानी चाहिये कि वह इस दशा में नीति सामंजस्य

कर सके और ऐसा करने के लिये दूसरा कारण यह भी है कि प्रांतों में निहित-हित प्रगतिमूलक श्रम विधान का बनाया जाना रोक देते हैं; अत: सम्भवत: मैं यह सुझाव रखना पसंद करूंगा कि या तो अनुच्छेद 60 में स्पष्ट रीति से यह उल्लेख कर दिया जाये कि समवर्ती विषयों के बारे में केन्द्र को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह अधिशासी निर्देश दे सके और या श्रम विधान के विषय को प्रथम सूची में रख दिया जाये।

यद्यपि मुझे ऐसा लगता है कि मैं उनके और उन दूसरे विचारों का विरोध करूं, जो उन्होंने केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के सम्बन्ध में प्रकट किये हैं—तथापि एक और विषय है, जिसमें श्री एन्थॉनी के विचारों से मुझे कुछ सहानुभूति है—और वह विषय है लोक-स्वास्थ्य। लोक-स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें हैं, जिनमें केन्द्रीय सरकार बहुत कुछ कर सकती है। यह सच है कि इस देश में रोगों का साम्राज्य है। यह बात नहीं है कि वह केवल मद्रास, बम्बई या संयुक्तप्रान्त ही के भाग्य में हों। अत: लोक-स्वास्थ्य सम्बन्धी कानून बनाने में तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी खोज करने के लिये संस्थाओं का संचालन करने में, मैं समझता हूं कि केन्द्र को कुछ अधिकार दे दिया जाये और इस प्रकार यह विषय सूची 3 में रख दिया जाये। किन्तु श्रीमान्, इस विचार से कि हमारे सामने सबसे बड़ा काम यही है कि हम आर्थिक उद्देश्यों की जल्द से जल्द पूर्ति करें, मैं यह मानता हूं कि केन्द्र शक्तिशाली बनाया जाये; किन्तु साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि इस विचारधारा पर मैं अन्तत: चलने को तैयार नहीं हूं और कल जो बातें यहां हुई हैं, उन्हीं के कारण मैं ऐसा नहीं करना चाहता। श्रीमान्, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरा यह आशय नहीं है कि मैं किसी विचार-संघर्ष को यहां आरम्भ कर दूं। मैं जानता हूं कि उपयुक्त समय पर यह आरम्भ किया जा सकेगा। किन्तु जिन लोगों के बारे में मेरी सदैव ही यह धारणा रही है कि वे अत्यन्त मनीषी, अत्यन्त सभ्य तथा कला प्रेमी है, उन्हीं लोगों को मैंने कल कुछ मात्रा में असहिष्णुता, कुछ मात्रा में विचार कट्टरता, कुछ मात्रा में विचारहीनता प्रदर्शित करते देखा। श्रीमान्, मेरा संकेत एक ऐसी साम्राज्य-प्रवृत्ति से है, जो हम पर छा जाना चाहती है और यदि उस प्रवृति को अवाधरूपेण अन्त तक कार्य करने दिया गया, तो वह उस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप विशेष प्रकार के घोर-निरंकुश-शासन की स्थापना कर देगा, जो प्रतिक्रिया कि इस प्रवृति के भावी भारत कि संघ की इकाइयों में कार्य

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

करने के प्रयास-फलस्वरूप उत्पन्न होगी। श्रीमान, मेरा संकेत भाषा की साम्राज्य-प्रवृति की ओर है! साम्राज्य कई प्रकार के होते हैं और साम्राज्य आदर्श को फैलाने के लिये भाषा साम्राज्य को फैलाना भी एक बड़ा उत्तम मार्ग है। यह निर्विवाद सत्य है कि इस देश का एक बड़ा भाग एक विशेष भाषा बोलने वाला है। यदि मैं हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्ति होता, तो मैं भी अवश्य उस दिन का स्वप्न देखता, जिस दिन कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश शक्तिशाली और सुसंगठित राष्ट्र बन जायेगा और जिसमें होंगे, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रान्त के उत्तरी भाग, बिहार के कुछ भाग, मत्स्य संघ, मध्य भारत, विन्ध्य प्रदेश। और जिसमें पुनः चमक उठेगा, श्रीमान्, वह महान् गौरव जो हमें अशोक के साम्राज्य में, विक्रमादित्य के साम्राज्य में और हर्षवर्धन के साम्राज्य में मिलता है। यह है ऐसा स्वप्न, जो भावना को गुदगुदा देता है। यदि कोई ऐसी प्रवृति का हो और इस प्रदेश का हो, तो स्वभावतः ही उसकी कल्पना उसकी न्यूनाधिक मात्रा में भूतकाल के गौरव जगत में खींच ले जाती है, उस गौरव जगत की ओर जिसे हम आज पुनः स्थापित करना चाहते हैं किन्तु क्या मैं पूछूं कि और प्रदेशों का क्या हाल होगा? उन क्षेत्रों में शिक्षा का जो स्तर हमने प्राप्त कर लिया है और उसके साथ-साथ स्वतंत्रता के जो विचार उत्पन्न हो चुके हैं, उनके बाबत क्या हो? श्रीमान्, सच मानिये दक्षिणी भारत में अंग्रेजी भाषा के लिये जो घृणा थी, वह अब जाती रही हैं अतीत में हम अंग्रेजी भाषा को पसन्द नहीं करते थे। मैं इससे घृणा करता था, क्योंकि मुझे शेक्सपीयर और मिल्टन का अध्ययन करने के लिये विवश किया गया था और इनके अध्ययन के लिये मेरी अभिरुचि नहीं थी। किन्तु आज यह ऐसा विषय नहीं है, जिसके बारे में कोई बाध्यता हो। परन्तु केन्द्रीय परिषद् का सदस्य होने के लिये और अपने लोगों की शिकायतें रखने के लिये यदि हमें हिन्दी सीखने के लिये विवश किया जायेगा, तो कदाचित इस उम्र में ऐसा करना मेरे लिये असम्भव होगा और ऐसा करने के लिये मैं सम्भवतः राजी भी न होऊंगा और वह इसीलिये कि आप ऐसा करने में मुझे विवशता के शिकंजे में जकड़ेंगे। मैं इस विषय पर बाद में और उपयुक्त समय पर अपने विचार प्रकट करूंगा, पर मैं यह अनुभव करता हूं कि संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत तथा बिहार के कुछ भाग के मेरे माननीय मित्र इस बात को याद रखें कि यद्यपि वे अपनी भाषा के लिये उत्कण्ठित हैं और चाहते हैं कि अंग्रेजी भाषा को इस देश से मिटा दिया जाये, पर समस्त भारत में ऐसे मनुष्य भी काफी हैं, जो हिन्दी

भाषा को नहीं समझते। श्रीमान्, मेरे एक माननीय मित्र ने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये कल एक उपमा का आश्रय लिया है। मुझे उपमायें सुनने का अभ्यास है। मेरा एक मित्र जो इस समय यही कहीं निकट में ही हैं, उपमा और दृष्टान्त देने में बहुत ही कुशल हैं। पर मेरे मित्र ने किस उपमा का प्रयोग किया। उसने कहा ''क्या ऐसे व्यक्तियों की संख्या नहीं है, जो अंग्रेजी नहीं समझते; पर वे उन लोगों का विश्वास करते हैं, जो अंग्रेजी जानते हैं?'' हां, इस सभा में तथा अन्यत्र ऐसे व्यक्ति है, जो अंग्रेजी नहीं जानते। यह भी हो सकता है कि मेरा पड़ौसी मद्रासी अंग्रेजी न समझे और वह मुझमें विश्वास करने के लिये उद्यत हो, पर इसका आशय यह नहीं है कि दक्षिण भारत का निवासी किसी संयुक्तप्रांत निवासी व्यक्ति में विश्वास करने में संतुष्ट हो, फिर चाहे पंडित बालकृष्ण शर्मा कितने ही भले हों और दिल्ली से दक्षिण तक चाहे मैं उनके कितने ही आश्वासनों का प्रचार करूं। मैं जानता हूं कि वे एक आदर्श विधान निर्मायक हैं, साधु आत्मा हैं, कवि हैं तथा उनमें अन्य ऐसे बहुत से गुण हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल इसलिये कि किसी विशेष क्षेत्र के ऐसे व्यक्ति, जो एक भाषा को नहीं समझते, उन लोगों का विश्वास करें, जो उस भाषा को समझते हैं और जो कि शासन प्रबन्ध के संचालन करने के लिये हजारों मील दूर हैं। क्या सभा के उन सदस्यों के लिये जो केवल मुँहबाये बैठे रहते हैं और वह इसलिये कि जो कुछ कहा जाता है, उसे वे नहीं समझ सकते, क्या उन लोगों के प्रति सभा के किसी भी व्यक्ति ने एक क्षण के लिये भी कुछ भी ध्यान दिया है? सम्भव है, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सत्यनारायण ने, जो दक्षिण में हिन्दी का निष्फल प्रचार कर रहे हैं, मुझसे कहा कि हिन्दी में जो भाषण दिये जाते हैं, उनमें बहुत अधिक सार नहीं होता। कदाचित् बात ऐसी ही है, परन्तु फिर भी मैं जानना चाहूंगा कि क्या कहा गया और उन बातों का जवाब देना चाहूंगा। ऐसी स्थिति में मैं पूर्णतया असहाय हो जाता हूं, जब कि मुझे अपनी सम्पूर्ण शक्ति मेरे देश के भविष्य-लाभ के लिये तथा मेरे लोगों के भविष्य-लाभ के लिये जो कुछ कहा जाता है, उसे समझने में लगानी पड़ती है। इस प्रकार की असहिष्णुता हमें भयभीत करती है कि जिस शक्तिशाली केन्द्र की हमें आवश्यकता है, उसका आशय सम्भवत: उन लोगों के लिये दासता हो, जो लोग विधान-सभा की भाषा अथवा केन्द्र की भाषा नहीं बोलते हैं। श्रीमान्, मैं इस आधार पर दक्षिण निवासियों की ओर से चेतावनी दूंगा कि दक्षिण में ऐसे विचार के व्यक्ति हैं, जो पृथक होना चाहते हैं और यह हमारा

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

कर्त्तव्य है कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उन विचारों को न पनपने दें, किन्तु अपने हिन्दी-साम्राज्य के प्रिय विचार को बार-बार यहां दुहरा कर हमारे युक्तप्रांत के मित्र इस दिशा में हमारी कोई सहायता नहीं करते। श्रीमान्, मेरे युक्तप्रांत के मित्रों के हाथ में यह बात है कि वे अखण्ड भारत की स्थापना करें या हिन्दी भारत की। उनको इन दोनों उद्देश्यों में से एक चुनना है और अपने निश्चय को इस संविधान में सम्मिलित कर देना है। किन्तु यदि वे हमें छोड़ देंगे, तो ठीक है, हम अपने भाग्य को कोसेंगे; किन्तु साथ ही यह भी भरोसा रखेंगे कि हमारा भविष्य सुन्दर होगा।

***अध्यक्ष:** सभा अब दोपहर के भोजन के लिये स्थगित होती है। कार्यालय द्वारा मुझे यह कहा गया है कि पत्रों के वितरण करने में कुछ कठिनाइयों का अनुभव किया गया है, क्योंकि कुछ सदस्यों ने अपने आगमन को सूचना नहीं दी है या अपना पता नहीं दिया है। सदस्यों से मैं निवेदन करता हूं कि वे सूचना-विभाग में अपने पते दे दें, जिससे कि उनके पास पत्र भेजे जा सकें। जिन्होंने ऐसा नहीं किया है, वे कृपया ऐसा कर दें।

अब हम तीन बजे तक स्थगित रहेंगे।

इसके बाद परिषद् तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिये स्थगित हुई।

दोपहर के भोजन के बाद तीन बजे परिषद् की बैठक उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) की अध्यक्षता में फिर हुई।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. अम्बेडकर को विधान की सुन्दर व्याख्या के लिये, जो उन्होंने विधान-परिषद् के सम्मुख उपस्थित की है, मैं धन्यवाद देता हूं। श्रीमान्, मैं उनके साथियों को भी धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने इस विधान के बनाने में, जिसे कि सभा के सम्मुख उपस्थित किया गया है, छः माह तक घोर परिश्रम किया। उन्हें समुचित मान देने के पश्चात् यदि मैं यहां यह न कहूं कि मसौदा-समिति उन विचारणीय बातों तथा अधिकारों से आगे बढ़ गई, जो इस माननीय सभा द्वारा उसे दिये गये थे, तो मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाऊंगा। श्रीमान्, यदि मुझे ठीक-ठीक याद है, तो मसौदा-समिति को सभा ने अपने निर्णयों को विधेयक के रूप में रखने के लिये निर्देश दिया था और एक माननीय सदस्य द्वारा सभा में रखे गये उत्तरवर्ती प्रस्ताव द्वारा उसको कुछ ऐसे परिवर्तन करने का अधिकार भी दिया था, जो विधेयक का मसौदा बनाते समय आवश्यक हों और उन निर्णयों के परिणामस्वरूप हों। लेकिन श्रीमान, विधेयक का मसौदा बनाते समय उन्होंने केवल मसौदा-समिति के अधिकारों का ही प्रयोग नहीं किया, वरन् सिलेक्ट कमेटी के अधिकारों का भी प्रयोग किया है—केवल यही नहीं, इससे भी कुछ और अधिक, अर्थात् विधान-परिषद् के अधिकारों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। उन्होंने कुछ ऐसे परिवर्तन किये हैं, जिनका उन्हें अधिकार न था। विधान में ऐसे नवीन परिवर्तन करने के बारे में पहले भी संकेत किया गया है। जिन परिवर्तनों का उनको अधिकार न था और जिन प्रश्नों पर विधान-परिषद् ने न तो कुछ विचार किया था और न कोई निर्णय। कुछ परिवर्तन तो उन्होंने स्वयं किये हैं और इस बात को वे रिपोर्ट में स्वीकार करते हैं, तथा इन परिवर्तनों पर उन्होंने चिह्न लगा दिये हैं और उन्होंने नई बातों का भी समावेश किया है। सभा द्वारा अथवा माननीय प्रधान द्वारा तीन समितियां नियुक्त की गयी थी; सरकार-समिति, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र सम्बन्धी समिति तथा अल्पसंख्यक समिति। मैं यहां यह कह दूं कि न तो हमने उनकी रिपोर्टों पर विचार किया और न परिषद् ने उन पर कोई निर्णय किया, पर फिर भी उनकी सिफारिशों में ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये हैं जो कि समिति की सिफारिश तथा निर्देश पदों के अनुसार नहीं है, वरन् कहीं-कहीं तो समिति की सिफारिश से भी आगे बढ़ गये। और मैं इस बारे में सभा का ध्यान उस सरकार-समिति की सिफारिशों

[श्री विश्वनाथ दास]

की ओर आकर्षित कर देना पर्याप्त समझता हूं, जो बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में थी अर्थात् केन्द्र तथा प्रांतों में परस्पर तथा प्रांतों में परस्पर आर्थिक सम्बन्ध। मैं यह स्पष्ट कहूंगा कि मसौदा-समिति का यह अधिकार-क्षेत्र नहीं था और जो कुछ किया गया है, वह इस सभा के अधिकार तथा सत्ता दिये बिना किया गया है।

इसी प्रकार परिषद् के बिना किसी निर्णय के विधान में परिवर्तन कर दिया गया है। श्रीमान्, मसौदा-समिति ने स्वयं जो निर्णय किये, उनके स्म्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं विधान के मसौदे के प्रश्न को लेता हूं।

श्रीमान्, विधान के मसौदे पर वाद-विवाद करने के लिये माननीय अध्यक्ष ने जो कार्य पद्धति अंगीकार की है, वह अनोखी है। न तो वह विधेयक सम्बन्धी कार्य पद्धति है और न वह ऐसी पद्धति है, जिसका अनुसरण अन्य विधान-परिषदों ने किया हो। हमने 10 अगस्त सन् 1947 ई. को मसौदा-समिति बनाई। छः मास के परिश्रम के पश्चात् इस सभा के माननीय सदस्यों के समक्ष उसकी रिपोर्ट रखी गई। रिपोर्ट फरवरी सन् 1948 ई. के मध्य में घुमाई गई और समिति के समक्ष अपने विचार रखने के लिये माननीय सदस्यों को बहुत कम समय दिया गया। मुझे यह स्पष्ट स्वीकार करना पड़ेगा कि हमें केवल कम समय ही नहीं दिया गया, बल्कि सुझाव देने को जो काल रखा था, वह इस कारण बहुत ही अनुपयुक्त था कि दोनों केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान-मण्डलों के सदस्य अपने-अपने आय-व्यय पत्र के विचार में लगे हुए थे। अतः इतने महत्त्वपूर्ण विषय पर जितना ध्यान देना आवश्यक था और जितना ध्यान देना चाहिये था, वह नहीं दिया गया और इसमें सदस्यों का कोई दोष नहीं है। इस प्रकार जितनी सहायता मसौदा-समिति को मिलनी चाहिये थी; अथवा मिली है, वह बहुत कम और अपर्याप्त है। सुझाव देने के लिये हमें जो समय दिया गया था, उसके सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं दूसरे प्रश्न को लेता हूं, जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने उपस्थित किया है।

मसौदा-समिति के विचार-विमर्शों में समिति के समस्त सदस्यों ने भाग नहीं लिया। मैं तो यहां तक विश्वास करता हूं कि सदस्यों के बहुमत ने भी अपना संयुक्त विचार प्रकट नहीं किया है। अतः मसौदा-समिति का निर्णय थोड़े से माननीय सदस्यों का निर्णय रह जाता है। वे अपने कार्य में बड़े निपुण हो सकते हैं, परन्तु हम इस विषय पर अधिक मानसिक शक्तियां, अधिक विचार तथा अधिक

विचार-विमर्श चाहते थे। और मैं दावा करता हूं कि जो कुछ हुआ, वह पर्याप्त न था। एक वर्ष व्यतीत हो गया और कुछ ज्यादा काम नहीं हुआ। इस काल में बहुत काम हो सकता था और यदि हुआ होता तो परामर्श करने की या सदस्यों से सहायता लेने की अथवा विधान-परिषद् के सदस्यों के विचारों को मसौदा-समिति के समक्ष रखने की कोई भी शिकायत आज नहीं हो सकती थी। यह खेदजनक विषय है कि आज भी हमारे सामने अनेकों विधायकों के विचार विमर्श तथा निर्णय उपस्थित नहीं हैं हम यहां इस बात का दावा करते हैं कि हम प्रांतों के प्रतिनिधि हैं और जानते हम यह भी नहीं कि प्रांतों ने क्या निर्णय किया है, तथा प्रांतों के क्या विचार हैं। यदि हम उनको जान लें, तो हमें अपने निर्णय करने में वे सचमुच ही अच्छे पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। मुझे यह आशा करने दीजिये कि विधेयक पर वाद-विवाद करने के पूर्व हमारे समक्ष उन प्रान्तीय विधायकों के विचार-विमर्श तथा निर्णय रखे जायेंगे, जो इस विधान-परिषद् में प्रतिनिधि के रूप में हैं।

अपने इस विरोध को भी यहां रख देना मैं ठीक समझता हूं कि इतने महत्त्वपूर्ण विधेयक का एक प्रकार की सिलेक्ट कमेटी द्वारा सूक्ष्म परीक्षण नहीं हुआ और खास तौर पर यह बात खटकती है जबकि हम इस बात को ध्यान में रखते हैं कि समस्त भारत से प्रतिनिधान हुआ तथा विभिन्न प्रान्तीय व्यवस्थापकों ने भी अपने विचार प्रकट किये। यदि ऐसा अवसर दिया जाता, तो उसका स्वागत होता। यदि सन् 1948 ई. के मई मास में विधान-परिषद् का अधिवेशन होता और यदि एक सप्ताह की बैठक होती और विचार-विमर्श होता, तो इस विषय को एक समिति के सुपुर्द कर दिया जाता जो सिलेक्ट कमेटी का स्थान ग्रहण कर लेती और भिन्न-भिन्न संस्थाओं के विचारों पर सोचकर अब तक वह समिति विभिन्न धाराओं का पूर्ण परीक्षण कर लेती। मैं महसूस करता हूं कि मसौदा-समिति के सदस्यों ने उचित रूप से परीक्षण नहीं किया है, न इस सभा ने सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिये आवश्यक समय दिया है और न सदस्यों को उचित तथा पूर्ण रूप से अपने विचार सिलेक्ट कमेटी या इस सभा के समक्ष रखने का ही अवसर दिया है। मैं फिर यह कहूंगा कि एक ही स्थान में 9 या 10 अप्रैल सन् 1948 ई. को चार समितियों की बैठक हुई—मसौदा-समिति, संघाधिकार-समिति, संघ-समिति तथा प्रांतीय विधान-समिति की संयुक्त बैठक। मैं यह स्पष्ट कहूंगा कि जो निर्णय किये गये, उनको मसौदा-समिति ने स्वीकार नहीं किया। मैं यह पूछ

[श्री विश्वनाथ दास]

सकता हूं कि क्या यह मसौदा-समिति है या सिलेक्ट कमेटी है या सर्वशक्तियुक्त विधान-परिषद्? यह मेरे लिए नहीं, नहीं मेरे लिए नहीं, वरन् सभा के माननीय सदस्यों के निर्णय करने की बात है। इन परिस्थितियों में इस कार्य से मैं किंचित् मात्र भी प्रसन्न नहीं हूं।

अपना स्थान ग्रहण करने के पूर्व मैं एक और विषय पर विचार प्रकट करूंगा। मैं विशेषतया मौलिक अधिकारों का उल्लेख करता हूं। मौलिक अधिकारों में विशेषकर धारा 7 में यह दिया हुआ है कि कोई भी अधिनियम जो मौलिक अधिकारों से प्रतिकूल हो, तो उसको अमान्य कर दिया जायेगा और वही अनुच्छेद शब्द के अर्थ में कानून अध्यादेश नियम, अधिनियम तथा ऐसी ही समान बातों को भी शामिल कर देती है। इसका यह अर्थ होगा कि समस्त वर्तमान कानून, प्रान्तीय, केन्द्रीय अथवा पार्लियामेंट के भी कानून, जो आजकल लागू हैं, अधिनियम तथा अनेकों संहितायें मौलिक अधिकारों के न्याय भाग के परिवर्तन होने पर हटा दिए जायेंगे। मैं अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या उन्होंने इन मौलिक अधिकारों से वर्तमान केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कानूनों में जो उलझनें पैदा होंगी और उन पर जो प्रभाव पड़ेगा, उन पर पूर्णतया विचार कर लिया है? मेरा विश्वास है कि इस काम को या तो विधान-परिषद् के कार्यालय पर छोड़ दिया है या केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों पर कि वे इन कानूनों की उलझनों तथा उन पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करें। ब्रिटिश सरकार किसी विधान के अधिनियम को स्वीकार करने के पूर्व इस बात की परीक्षा करती थी कि इसका वर्तमान कानून पर क्या प्रभाव पड़ेगा और इस बात की संतोषजनक परीक्षा करने के बाद तीन भिन्न स्थितियों की व्यवस्था करती थी। पहली स्थिति की व्यवस्था स्वयं एक्ट में की जाती थी और वह होती थी यह कि वर्तमान कानून लागू रहेगा। दूसरी स्थिति की व्यवस्था होती थी यह कि वर्तमान एक्टों में परिवर्तन करने की आज्ञा अधिकारियों को दे दी जाती थी और तीसरी स्थिति वह होती थी, जब परिषत्स्थ आदेश निकाले जा सकते थे। इस विधान-निर्माण में इस प्रकार का कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है और न वर्तमान कानूनों पर जो प्रभाव पड़ेगा, उसकी जांच ही की गई है। अप्रैल सन् 1947 ई. में इसके विरोध में विचार प्रकट करने का कार्य मैंने

किया था। मैंने कहा था कि देश के लिये यह अनुचित होगा और इससे गड़बड़ तथा जनता को कष्ट होने की सम्भावना है। जांच करने का वायदा किया गया था और मैं यह कहूंगा कि वह जांच अभी तक नहीं की गई है। कम से कम मुझे तो यही मालूम हुआ है। इसकी जांच सच्चाई से करनी चाहिए। मैं आशा करता हूं कि मेरे भाषण से यह सिद्ध हो गया होगा कि आवश्यक विचार-विमर्श अभी तक नहीं हो सका है।

*__श्री बी. दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मुझे मसौदा-समिति को बधाई देनी चाहिये, जिसने एक बड़े परिश्रम का कार्य पूरा किया तथा विधान के बिल को यह रूप और आकार दिया, जिस पर आज हम विचार कर रहे हैं और जिसमें हमें अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करना है, जिससे कि ठीक-ठीक सर्वमान्य विधान भारत के लिए बन जाये। डा. अम्बेडकर और उनके साथियों को बधाई देने के साथ-साथ मुझे आपके सलाहकारों को भी बधाई देनी है, वे भी बधाई के योग्य हैं हमारे महान वैधानिक सलाहकार श्रीयुत नरसिंगा राउ ने मसौदा-समिति तथा अन्य समितियों को विधान के कार्य को पूरा करने में बड़ी सहायता दी है। हम अपने मित्र श्री नरसिंगा राउ के प्रति इस बात के लिए भी ऋणी हैं कि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को ऊंचा उठाया। जबकि हम अभी उपनिवेश के रूप में हैं और जब कि मैं सदैव यही सोचता हूं कि हम अभी इंग्लैंड के दास हैं, मेरे मित्र वहां गये, हमारी स्थिति तथा हमारे गौरव को ऊंचा उठाया और पश्चिम को यह बता दिया कि भारत संसार को सुखमय तथा शांतिमय बनाने में सहायता कर सकता है।

श्रीमान्, इस विधान-विधेयक के कुछ प्रारूपित अनुच्छेदों से मैं सहमत हूं। इस थोड़े से समय में मैं उन सब बातों को नहीं ले सकूंगा, जिनसे मैं सहमत हूं। मैं उन्हीं बातों को यहां रखूंगा, जिनके सम्बन्ध में विधान के मसौदे से मेरा मतभेद हैं और जिनके बारे में इस सभा को विचार-विमर्श करना चाहिए और जिनके बारे में सभा को इस मसौदे को इतना बदल देना चाहिये कि यह संविधान सचमुच भारतीयों का ही लगे और अंग्रेजों की पुरानी परम्पराओं और भूतकालीन सम्बन्धों पर आधृत प्रतीत न हो।

[श्री बी. दास]

श्रीमान्, अब मैं प्रस्तावना के नये मसौदे को लूंगा, जिस पर मुझे भारी आपत्ति है। लक्ष्य-संबंधी प्रस्ताव जिसको हमने जनवरी सन् 1947 ई. में स्वीकार किया था, उसमें उल्लिखित था कि विधान, ''स्वतंत्र-सर्वसत्ताधारी-गणराज्य'' के लिये है। 21 फरवरी सन् 1948 ई. में मेरे मित्र डा. अम्बेडकर ने उस पद को ''सर्वसत्ताधारी प्रजातंत्रात्मक गणराज्य'' किया, पर ता. 26 अक्टूबर सन् 1948 ई. के एक दूसरे नोट से उसे ''सर्वसत्ताधारी प्रजातंत्रात्मक राज्य'' में परिवर्तन कर दिया। मैं नहीं समझ पाता कि मसौदा-समिति लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में, जिसको सभा ने जनवरी सन् 1947 ई. में स्वीकार कर लिया था, किस प्रकार परिवर्तन कर सकती है? हमने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया था कि प्रस्तावना में ''स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य'' पद होना चाहिये और मैं उनमें से हूं जो कि प्रस्तावना के संशोधित मसौदे का घोर विरोध करेंगे।

कुछ ऐसे भी विषय हैं, जिन पर सभा ने अपना मत कभी भी प्रकट नहीं किया। वे विवादास्पद थे। उनको अनिश्चित छोड़ दिया गया था, फिर भी मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 5 में जिस संशोधन का सुझाव दिया है, मैं उसका स्वागत करता हूं। उसमें और अधिक सुधार होना चाहिये। मैं ''नागरिकता'' की व्याख्या का उल्लेख कर रहा हूं। मसौदा-समिति को अपने पहले मसौदे में हिचकिचाहट थी, परन्तु दूसरे संशोधन में उन्होंने उससे अच्छा मसौदा दिया है। उसमें और भी सुधार की आवश्यकता है।

मौलिक अधिकारों में ऐसे दो या तीन प्रश्न थे, जिन पर सभा किसी निर्णय तक नहीं पहुंच सकी थी। मुझे पूर्ण आशा है कि मसौदा-समिति की सिफारिशों को स्वीकार न करते हुए हमको इन प्रश्नों पर वाद-विवाद करने के लिये यथेष्ट समय दिया जायेगा। एक बात जिस पर मैं बहुत खुश हूं, वह यह है कि भारत की नारियों ने वह पद प्राप्त किया है, जिसका किसी अन्य स्वतंत्र राष्ट्र की नारियों ने उपभोग नहीं किया। उनको पुरुषों के समान अधिकार, समान विशेषाधिकार और समान अवसर प्राप्त हो गये हैं और हमारे नागरिकों के मौलिक अधिकारों में यह एक महान बात है।

श्रीमान्, मैं मनोनीत गवर्नरों के विचार का घोर विरोध करता हूं। मैं नहीं समझ पाता कि उन लोगों के विचार को, जिनके सहयोगी मेरे मित्र डा. अम्बेडकर भी

हैं, (अर्थात् सरकार का) इस विधान के विधेयक के मसौदा बनाने में क्यों महत्त्व दिया जाता है। कभी भी हमें यह अनुभव नहीं हुआ कि हमारे मंत्रिमंडल के किसी भी प्रतिनिधि ने ऐसा विचार प्रकट किया हो। गवर्नर का चुनाव प्रांतीय परिषदों द्वारा होना चाहिये और प्रान्तीय परिषदों की प्रान्त के निवासियों पर गवर्नर पद के चुनाव लड़ने में कोई प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता नहीं है। हम सरकार को अपना अधिकार देना नहीं चाहते हैं, चाहे वह प्रधान हो चाहे कोई और कुशल प्रशासक और इनमें मैं डा. अम्बेडकर को भी गिना सकता हूं। हम गवर्नर पद या मंत्री पद को कुछ व्यक्तियों तथा उनके परिचितों में सीमित करना नहीं चाहते हैं।

मेरी सबसे बड़ी आपत्ति और ऐसी आपत्ति कि जिससे टकराकर समस्त विधान टूट जायेगा वह प्रान्तों तथा केन्द्रों के मध्य आर्थिक विभाजन के सम्बन्ध में है। मुझे आश्चर्य होता है कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर जैसे वीर पुरुष प्रान्तों की आर्थिक व्यवस्था पर विचार-विमर्श करना टाल रहे हैं और पवित्र भाव से सिफारिश करते हैं कि इस विधान के लागू होने से पांच वर्ष तक हमें आर्थिक विभाजन में उलट-फेर नहीं करना चाहिये। मेरे लिये तो यह बात वास्तव में आश्चर्यजनक, बड़ी ही आश्चर्यजनक है। यह तो वैसा ही दृष्टिकोण है जैसाकि औपनिवेशिक सरकार हमारी पूर्ववर्ती सरकार ने तथा उस सरकार के समर्थकों ने सन् 1935 में अपनाया था। विदेशी शासक बहुत कठोर केन्द्रीय शासन व्यवस्था चाहते थे और उन्होंने प्रान्तों को भूखा मार डाला। आज मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मसौदा-समिति के दिमाग में भी वही चीज है। मैं वास्तव में अपने मित्र श्री कामत से सहमत हूं कि मसौदा-समिति में कांग्रेसी विचारधारा के और अधिक सदस्य होने चाहिये थे, जिससे कि वे उन लोगों के सिद्धान्त तथा विचारों का प्रतिनिधान करते, जिनके फलस्वरूप यह विधान-परिषद् बनी और जिनकी आकांक्षायें इस मसौदे में प्रतिबिम्बित होनी चाहिये।

मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के जोरदार भाषण के लिये उनका कृतज्ञ हूं। मैंने देखा कि जनता के स्वास्थ्य पर समस्त प्रान्तों में समस्त व्यय का 31 से लेकर 58 प्रतिशत तक ही व्यय किया गया है। यह बात युद्ध से पूर्व 1935 ई. से 1938 ई. तक की है। यही युद्ध के पश्चात् सन् 1947-48 ई. में हुआ। मुद्रास्फीति के कारण समस्त प्रान्तों तथा केन्द्र में व्यय तिगुना बढ़ गया है। यह प्रश्न है, जिसकी प्रत्येक प्रान्त को परीक्षा करनी चाहिये और इस पर ध्यान देना चाहिये।

[श्री बी. दास]

उड़ीसा और आसाम जैसे प्रान्त डा. अम्बेडकर के ऐसे भाषण के परिणाम की जांच करेंगे। हम आर्थिक विभाजन को फिर से चाहते हैं, जिससे कि प्रान्तों को प्रस्तावना के दूसरे वाक्य ''न्याय सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक'' को पूर्ण करने के साधन प्राप्त हो सकें।

श्रीमान्, मैं राजनैतिक न्याय की चिंता नहीं करता हूं। मैं जनता के लिये इस सभा से सामाजिक और आर्थिक न्याय चाहता हूं। और यदि माननीय मंत्री इसका विरोध करेंगे, तो हमें इस सभा के बहुमत को स्वीकार करने के लिये उन्हें विवश करेंगे और प्रान्तीय शासन-व्यवस्था के अंतर्गत करोड़ों मनुष्यों का सामाजिक तथा आर्थिक न्याय करेंगे।

***श्री लोकनाथ मिश्रा** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस महान् सभा में नया सदस्य हूं और यहां की कार्यवाही में मैंने कभी पहले भाग नहीं लिया है। अत: यदि मैं सुसम्बद्ध भाषण न दे सकूं, तो मैं माननीय सदस्यों से क्षमा चाहूंगा। साथ ही साथ मेरे ऊपर उन लोगों का भार है, जिन्होंने मुझे यहां भेजा है कि मैं उनकी ओर से इस विषय पर उनके विचारों को, जैसा मैं समझता हूं, प्रकट करूं।

श्रीमान, यह विधान-परिषद्, जो भारत की प्रभुता की प्रतीक है और जो कि हमारी स्वतंत्रता को रूप, आकार और प्रतिष्ठा देने के लिये है, यहां पर उस विधान पर विचार-विमर्श कर रही है, जो कि हमारे भविष्य का संरक्षक है। इस लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए हमारे नेताओं ने घोर परिश्रम किया है और विधान का मसौदा बनाया है, जिस पर हम अब वाद-विवाद करने जा रहे हैं। परन्तु इस मसौदे पर जितनी मसौदा-समिति को बधाइयां मिल चुकी हैं, उतनी बधाई मैं नहीं दे सकता हूं।

श्रीमान, मेरा प्रथम प्रश्न यह है कि यद्यपि डा. अम्बेडकर ने विधान के मसौदे का विश्लेषण करते हुये बड़ा सुन्दर, प्रकाशमय, ओज़पूर्ण तथा स्पष्ट भाषण दिया—यहां मैं यह कह दूं कि यदि यह भाषण न होता, तो मैं मसौदे में इतने दोष नहीं निकाल सकता था—पर मैं यह कहूंगा कि मसौदे में वह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव नहीं है, जिसे इस सर्वसत्ताधारी सभा ने विगत वर्ष स्वीकार किया था। जहां तक मुझे उसे अध्ययन करने का अवसर मिला और जहां तक मुझे इस समय याद है, उसके आधार पर मैं यह बात कह सकता हूं कि लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव हमारे परिश्रम का इतना सुन्दर फल था कि वह भारत के हृदय और आत्मा

का प्रतिनिधान क्षण भर के लिये नहीं, वरन् युगयुगान्तर के लिये कर सकता था। वह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव क्या था? वह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव एक ऐसे संघीय विधान का विचार निहित था, जिसमें प्रान्तों को अवशिष्ट अधिकार प्राप्त होंगे और केन्द्र को केवल उतने ही अधिकार होंगे, जितने अधिकारों की उसे प्रान्तों में समान व्यवस्था करने के लिये आवश्यकता हो। परन्तु यह विधान का मसौदा, चाहे संघात्मक नाम से पुकारें या एकतंत्रात्मक नाम से, परिषदात्मक नाम से या अध्यक्षात्मक नाम से, संघात्मक राज्य की अपेक्षा एक शक्तिशाली एकात्मक राज्य की अधिक जड़ जमा रहा है। जब मैं यह कहता हूं कि यह एकात्मक है तो मेरा आशय यही है कि प्रान्तों को अधिकार देने की अपेक्षा केन्द्र को कपट से बहुत अधिकार दे दिये गये हैं। डा. अम्बेडकर ने चाहे जो कुछ कहा हो और हमारे गांवों से घृणा करने वाले अपने जैसे व्यक्ति को अधिकार देने के लिये उन्होंने चाहे जो कुछ सोचा हो, मैं यह कहूंगा कि यह विधान व्यक्ति को, कुटुम्ब को, ग्राम को, जिले को और प्रान्त को कुछ भी अधिकार नहीं देता है। डा. अम्बेडकर ने तो प्रत्येक अधिकार केन्द्र को दिया है।

केन्द्र क्या है? शक्ति के इस केन्द्रीकरण से न मालूम भविष्य में क्या होगा? परन्तु अपने वर्तमान अनुभव के आधार पर मैं यह कहूंगा कि हमारी वर्तमान सरकार का इतना केन्द्रीकरण हो गया है और हमारे अधिकारीवर्ग अधिकारों के इतने भूखे हैं कि यदि देश सजग न रहे और जनता अधिक जागरूक न हो, तो यह पूरी आशंका है कि न्याय, व्यवस्था, शांति और एकता के नाम पर वे आसानी से पथ भ्रष्ट हो सकते हैं। इसलिये मैं कहूंगा कि भारत का चाहे जो कुछ भविष्य हो, हमें सदैव के लिये यह समझ लेना चाहिये और मनुष्यों को सदैव के लिये यह समझ लेना और अनुभव कर लेना चाहिये कि हम किस आदर्श के लिये इस विधान को रख रहे हैं और इसके अधीन हम कितनी स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्, मैं एक प्रश्न करना चाहता हूं। हम एक शक्तिशाली केन्द्र चाहते हैं, परन्तु किसलिये? कुछ लोग कहते हैं कि दिन-प्रति-दिन प्रान्तीयता बढ़ती चली जा रही है और संघर्ष होने की सम्भावना है। अतः प्रारम्भ में हमें केन्द्र को इतना शक्तिशाली बना देना चाहिये कि वह अजेय हो। परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि हम युद्धवादी बन जाये। हम एक शक्तिशाली केन्द्र चाहते हैं। किसके विरुद्ध? पाकिस्तान के विरुद्ध, रूस के विरुद्ध या स्वयं भारतवासियों के विरुद्ध? मुझे पूरा

[श्री लोकनाथ मिश्रा]

विश्वास है कि यदि हम भावी भारत का निर्माण भारत के भूतकाल के सुदृढ़ आधार पर करें—और यह आधार तो भारत की आत्मा अथवा आंतरिक दृष्टि अथवा आत्म-दर्शन के दृष्टिकोण के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं; और यदि हम भौतिक उद्देश्यों को दृष्टि में न रखकर भारत की अमर आत्मा की बात को ही सोचे और उसी की बातों को शब्द दें, तो मुझे पूरा विश्वास है कि हम पूर्णरूपेण अखण्ड, पूर्णतया शक्तिशाली और जगत के लिये आदर्श, सम, भारत का निर्माण करने में सफल होंगे। परन्तु यदि अध्यक्ष को, मंत्रियों को या अल्पजनसत्तात्मक केन्द्रीय मंत्रिमंडल को इतने अधिकार देकर हम भारत को संगठित करना चाहते हैं, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि या तो भारत छिन्न-भिन्न हो जायेगा या वह हमारे और सब के लिये एक अन्य संकट का कारण हो जायेगा।

यह कहा गया है कि अमरीका के संयुक्त राष्ट्र का संघात्मक विधान है, परन्तु वह धीरे-धीरे एकात्मक विधान बनता चला जा रहा है; अत: वह अच्छा होता चला जा रहा है। यह भी कहा गया है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होता चला जायेगा, केन्द्र अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करता चला जायेगा और प्रान्त तथा इकाइयां अधिकार छोड़ती चली जायेंगी। यह युद्धवाद की प्रवृति है, अथवा घबराहट में की हुई शांति की। हम यह देंखे कि संयुक्त राष्ट्र सरकार (अमरीका) ने किस प्रयोजन के लिये अधिक अधिकार ग्रहण किये? प्रयोजन यही हो सकता है कि वे रूस अथवा किसी अन्य देश के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली हो जाये। जिसका आशय है, बाह्य शक्तियों के विरुद्ध शक्ति-संचय। मैं यह कहूंगा कि राष्ट्र की शक्ति और जनता का संगठन राज्य की शक्ति पर निर्भर नहीं हैं वह आन्तरिक संगठन और उस मानवी प्रवृति पर निर्भर है, जो समस्त मानवों को भ्रातृरूप देती है। इस कारण यदि प्रस्तावना के शब्दों "समानता, न्याय और शांति" का अर्थ केवल हमारे शक्तिशाली केन्द्र रखने में ही है; तब तो जितने शीघ्र हम इस भ्रम से मुक्त हो जाये उतना ही अच्छा है। मैं अधिक शक्तिशाली केन्द्र के पूर्णतया विरुद्ध हूं और वह इस कारण से कि यद्यपि उस हालत में सरकार तानाशाही या अल्पजनसत्तात्मक तो नहीं होगी, तदपि वह इतनी शक्तिशाली हो जायेगी कि प्रान्त

समस्त महत्त्व, समस्त प्रेरणा और समस्त उत्साह खो बैठेंगे। अन्ततः इस कारण व्यक्ति का भी पतन हो जायेगा।

एक माननीय सदस्य ने अभी यह कहा कि हमें शक्तिशाली केन्द्र बनाना चाहिये, परन्तु एक भाषा नहीं रखनी चाहिये। मैं यह कहूंगा कि जब हमारी भाषा एक होगी, तभी केन्द्र शक्तिशाली हो सकेगा। यदि वास्तव में हम भारत में एकता स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें एक भाषा रखनी चाहिये। यदि हम प्रान्तीय भाषा का परित्याग करने के लिये उद्यत नहीं हैं, तो हम एकता किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं और मैं समझ नहीं पाता कि किसी सदस्य के मुंह से यह शब्द किस प्रकार निकले कि बिना किसी एक भाषा अपनाये ही हमें एकता स्थापित करनी चाहिये। उनका तात्पर्य सम्भवतः यही है कि बिना ऐसी एक भाषा अपनाये ही, जो एक संस्कृति की द्योतक हो, हमें केन्द्र को शक्तिशाली बनाना चाहिये; किन्तु अखण्ड भारत और शक्तिशाली केन्द्र का यह घोष तो अत्यन्त भयावह है। मैं तो यह नहीं समझता कि शक्तिशाली केन्द्र की खातिर हम ऐसा संघर्ष अपने सिर पर ले लें, जो भविष्य में इसके कारण से पैदा होना बहुत सम्भव है। अब मेरा समय समाप्त हो चुका है। डा. अम्बेडकर के भाषण का सूक्ष्म परीक्षण करने के लिये मैं और अधिक समय लेता। मैं उनके ज्ञान के सामने तो सिर झुकाता हूं। मैं उनकी भाषण-स्पष्टता की तारीफ करता हूं। मैं उनके साहस का आदर करता हूं। परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा विद्वान, भारत का इतना यशस्त्री पुत्र भारत के बारे में इतना अल्प ज्ञान रखता है। विधान के मसौदे की वह आत्मा है और उसने ही मसौदे में कुछ ऐसी बातें दी हैं, जो अभारतीय हैं। अभारतीय से मेरा आशय यह है कि चाहे वे इस बात का कितना ही खंडन करें, पर हैं वह वास्तव में पश्चिम का दासवत्पूर्ण अनुकरण—नहीं, इतना ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक—पश्चिम के समक्ष दासवत् अर्पण।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): श्रीमान्, अध्यक्ष महोदय, भारतीय विधान के मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव को रखने के लिये मैं डा. अम्बेडकर को बधाई देता हूं। जो उन्होंने भाषण दिया वह स्मरणीय है और मुझे विश्वास है कि उनका नाम एक महान विधान-निर्माता के रूप में अनेकों पीढ़ियों तक अमर रहेगा।

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

कल उन्होंने यह कहा था यह विधान संसार भर के विधानों से विशाल है। मेरी सम्मति में यह उसका कोई गुण नहीं है, जब तक कि उसमें सार न हो। इसमें सन्देह नहीं कि हमने अनेकों प्रावधान विदेशी विधानों से लिये हैं। यह विधान न तो परिषदात्मक है और न अपरिषदात्मक और जिस समय इसे प्रयोग में लाया जायेगा, उस समय यह पता चलेगा कि यह ठीक-ठीक काम भी करता है, या नहीं।

श्रीमान्, विधान के कुछ भागों पर मुझे घोर आपत्ति है। डा. अम्बेडकर ने स्वयं यह मान लिया है कि भारत के रियासतों को बने रहने देना ठीक नहीं है और वे इनमें शामिल करते हैं, उन रियासतों या रियासतों के समूह को, जिन्हें कानून बनाने या पृथक विधान-परिषद् बनाने का अधिकार है। मेरी सम्मति में भारतीय कानून में यह एक कलंक है कि इस बीसवीं शताब्दी में भी राजा, राजप्रमुख तथा निज़ामों को तथा उनके वंशों को कायम रहने दिया जाये। इन सब व्यवस्थाओं को मिटा देना चाहिये और प्रत्येक रियासत के लिये एक सा विधान होना चाहिये। इन सब रियासतों अथवा रियासतों के समूहों को या तो प्रान्तों के साथ मिला देना चाहिये, या उनको स्वतंत्र प्रान्त बना देना चाहिये।

श्रीमान्, अल्पसंख्यकों के दृष्टिकोण से सबसे महत्त्वपूर्ण प्रावधान संयुक्त निर्वाचन में स्थानों को सुरक्षित रखने वाला प्रावधान है। पिछली बार विधान-परिषद् ने पृथक निर्वाचन और स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन पर विचार किया था। अल्पसंख्यकों के लिये अब केवल स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन ही है। स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन से अल्पसंख्यकों का कोई लाभ नहीं है। यह उनको अवश्य हानि पहुंचायेगा। स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचन में जिस प्रतिनिधि का चुनाव होगा, वह उन अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधि नहीं होगा, जिनको रक्षण दिया गया है। कोई नामधारी धर्मपरिवर्तक या बहुमत प्राप्त दल का किराये का टट्टू भी बहुसंख्यक वर्ग की वोटों द्वारा आ सकता है। अत: मेरा निवेदन यह है कि यह प्रावधान अल्पसंख्यकों के हितों के लिये घातक है। पृथक निर्वाचन या स्थानों के रक्षण सहित ऐसा संयुक्त निर्वाचन, जिसमें उस सम्प्रदाय के वोटों का कुछ प्रतिशत नियत कर दिया गया हो, जिस सम्प्रदाय का वह सदस्य हो,

यदि ये दो प्रस्ताव जो कि पिछली बार अस्वीकार कर दिये गये थे, सभा को मान्य नहीं हैं, तो अल्पसंख्यकों को संयुक्त निर्वाचन के अंतर्गत स्थानों के संरक्षण का परित्याग कर देना चाहिये। श्रीमान्, इससे तो देश में कानून द्वारा स्थानीय अल्पसंख्यक पैदा हो जायेंगे। मुस्लिम सम्प्रदाय तथा अन्य अल्पसंख्यक सम्प्रदाय, जो रक्षण चाहते हैं, उनके लिये यह बहुत हानिकारक और घातक होगा; क्योंकि इस प्रणाली में अल्पसंख्यकों के वास्तविक प्रतिनिधि के चुने जाने के लिये कोई अवसर नहीं है। पृथक चुनावों को रखते हुये भी हम अपने सम्प्रदाय की कोई सेवा नहीं कर सकते हैं। हमने अपने आपको बहुमत की दया पर छोड़ दिया है और यह बहुसंख्यकों का काम है कि वह इस अवसर से लाभ उठाये और इस प्रकार दोनों के लाभ के लिये देश में बहुसंख्यकों तथा अल्पसंख्यकों का परस्पर संगठन हो जाये। 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पश्चात् जिस प्रकार जो कुछ हुआ, वह हमने देखा और हम असहाय अलग बैठे रहे। हम संयुक्त निर्वाचन मानने के लिये उद्यत हैं और एक ही टिकट पर अपना चुनाव लड़ेंगे। यह बहुसंख्यकों का काम है कि वह अल्पसंख्यकों में विश्वास पैदा करें और अल्पसंख्यकों का यह काम है कि वे आगे बढ़ें और बहुसंख्यकों के साथ सहयोग करें। अत: मेरा निवेदन यह है कि स्थानों के रक्षण से और भी अधिक द्वेष, ईर्ष्या, साम्प्रदायिक घृणा तथा मुसलमानों में दलबन्दी उत्पन्न होगी। यह प्रावधान मुसलमान सम्प्रदाय के लिये हितकर नहीं है। ऐसे रक्षणों को जो नाममात्र के हैं और प्रभाव शून्य हैं, स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं है। यह मेरी सम्मति है। हमें अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाना चाहिये और भविष्य का सामना करने के लिये हम पूर्णतया तैयार हैं। यदि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करना चाहता है, तो वह आनुपातिक प्रतिनिधान की प्रणाली को चलाये। राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये यूरोप में केवल बहुसदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रयुक्त तथा बहुमत अधिकारयुक्त आनुपातिक प्रतिनिधान ही ऐसी प्रजातंत्रात्मक पद्धति है, जिससे उनके हितों की रक्षा की जाती है, प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों का बलिदान किये बिना अल्पसंख्यकों की रक्षा की जा सकती है। एक अन्य प्रकार से अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है और वह है, इस देश में अपरिषदात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करना। विधान के मसौदे का परिचय कराते समय डा. अम्बेडकर द्वारा परिषदात्मक शासन व्यवस्था की प्रशंसा सुनकर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ। अपनी पुस्तक ''स्टेट्स एण्ड माइनोरिटीज' में उन्होंने इस पक्ष का समर्थन किया है कि अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये अपरिषदात्मक शासन व्यवस्था

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

सबसे अधिक उपयुक्त है और सन् 1947 में जो कुछ उन्होंने लिखा, उसको मैं उन्हें पढ़कर सुनाऊंगा।

''अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये प्रावधान—

वाक्य खंड 1

(1) कि संघ अथवा राज्य का अधिशासी मण्डल इस अर्थ में अपरिषदात्मक होगा कि वह विधान-मण्डल के निर्धारित काल के पूर्व नहीं हटाया जा सकेगा।

(2) अधिशासी मण्डल के सदस्यों को, यदि वे विधान-मण्डल के सदस्य नहीं हैं, विधान-मण्डल में बोलने, मत देने तथा प्रश्नों के उत्तर देने का अधिकार होगा।

*   *   *

(3) मंत्रिमंडल में विभिन्न अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन विधान-मण्डल में प्रत्येक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा एकल संक्राम्य मत से किया जायेगा।

(5) अधिशासी मण्डल में बहुसंख्यक सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों का निर्वाचन समस्त सभा द्वारा एकल संक्राम्य मत से किया जायेगा।

*   *   *

मेरी सम्मति में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने के लिये यह सबसे सुगम विधि है। भारत में क्या हुआ? सब प्रान्तों में उपद्रव, अग्निकांड और हत्याकर्म हुये और अपने निर्वाचकों से डर कर मंत्रियों को इतना साहस नहीं हुआ कि वे आगे बढ़ते और तुरन्त उन कांडों को रोकते। यदि आप अपरिषदात्मक अधिशासी मण्डल रखें, तो शासन-समिति के सदस्यों को कोई भय नहीं होगा, क्योंकि उनके समर्थकों द्वारा वे हटाये नहीं जा सकेंगे। इसलिये परिषदात्मक शासन-व्यवस्था में सरकार स्वभावतः अशक्त और निर्बल रहेगी, क्योंकि मंत्रियों को अपने पद पर स्थित रहने के लिये सम्प्रदायवादी समर्थकों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

श्रीमान्, विधान का चौथा भाग आदेशात्मक मौलिक अधिकारों का है, जो दिये गये हैं मैं डाक्टर साहब से कहना चाहता हूं कि अपनी पुस्तक में उन्होंने यह लिखा है कि ये सब सिद्धान्त और मौलिक अधिकार आज्ञामूलक होने चाहिये। उन्होंने

यह कहा है कि इन प्रावधानों को दस वर्ष में लागू कर देना चाहिये। भाग 4 में जो कुछ कहा गया है, वह अस्पष्ट है। हम देश का वह आर्थिक स्वरूप चाहते हैं, जिसमें गरीब जनता उन्नत हो सके। इस विधान में जो कि बनाया जा रहा है, उसमें उद्योग के राष्ट्रीयकरण की न तो प्रतिज्ञा की गई है और न घोषणा। जमींदारी प्रथा को मिटाने की प्रतिज्ञा नहीं है। यह एक मसौदे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्वतंत्र भारत के विधान के सम्पूर्ण सवाल को टालने के अतिरिक्त इसमें और कुछ नहीं है। स्वतंत्र भारत के विधान में निश्चित आर्थिक स्वरूप का न रखना अत्यन्त दु:खजनक है।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करता हूं। प्रस्तावना के नीचे सूचना में यह दिया हुआ है कि हमारे कामनवेल्थ में बने रहने या न बने रहने के प्रश्न पर अभी कुछ भी निश्चित नहीं किया गया है। मुझे बड़े खेद के साथ यह बताना पड़ता है कि जब लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया गया था, संसार में तथा भारत में यह घोषित कर दिया गया था कि भारत एक स्वतंत्र स्वाधीन राज्य होगा। यह अनिश्चितता क्यों है? किसकी प्रेरणा से यह किया गया है, जब कि भारत की सर्वसत्ताधारी संविधान-परिषद् के प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की जा चुकी है कि भारत स्वाधीन रहेगा। मैं नहीं समझ पाता कि इस स्थिति को किस प्रकार ग्रहण किया गया, किसके अधिकार तथा किसी सम्मति से यह किया गया। मेरा निवेदन यह है कि डा. अम्बेडकर इस गलत कदम उठाने में अपने अधिकारों से परे चले गये। हम उन दु:खजनक घटनाओं को नहीं भूले हैं, जो भारत में हुई। हम जलियांवाला की दु:खद घटना को नहीं भूले हैं। भारतवासियों के विरुद्ध दक्षिणी अफ्रीका की संघ-सरकार के पक्ष को, ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा समर्थन को हम नहीं भूले हैं; आस्ट्रेलिया में जातीय नीति को हम नहीं भूले हैं। इस प्रकार का संसर्ग हमें दक्षिणी अफ्रीका के फासिज़्म और आस्ट्रेलिया के जातीयगत भेद-विभेद का साथी बना देता है और इसके मानने से हमारी तटस्थता की विदेशी नीति पूर्णतया असफल हो जायेगी। इन सब बातों पर विचार करते हुये मेरा यह निश्चित मत है कि कामनवेल्थ के बाहर रहने के अतिरिक्त हमारे लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है। सन् 1929 ई. में लाहौर में पं. जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषणा की थी कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही और उससे सम्बन्धित समस्त बातों का जब तक परित्याग नहीं किया जाता, तब तक भारत कामनवेल्थ का सदस्य नहीं हो सकता। मुझे खेद है, मेरा समय समाप्त हो गया।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मसौदा-समिति और उसके सभापति को विस्तृत विधान के मसौदे के लिये, जो उन्होंने इस सभा के समक्ष रखा है, बधाई देने में मैं सभी के साथ सम्मिलित हूं। मुझे कानून मंत्री को विशेषकर बधाई देनी है कि उन्होंने इतने स्पष्ट रूप से विधान की मुख्य बातों को हमारे सामने रखा है और हमें कारणों सहित विचारोत्पादक बातें बताई हैं कि कुछ विषयों का क्यों समावेश किया गया है और कुछ को इस रूप में क्यों रखा गया है।

मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि मेरी बधाइयां और भी अधिक वास्तविक हैं, क्योंकि मैं बहुत सी प्रमुख बातों के बारे में, जो इस विधान के मसौदे में दी हुई हैं, मेरे विचार इनसे भिन्न हैं। श्रीमान्, मैं सभा का ध्यान इस बात पर विचार करने के लिये आकर्षित करूंगा कि सर्वप्रथम वे सिद्धांत, जिन पर यह विधान आश्रित है, इस मसौदे के बनाने के निर्देश उस समय तैयार किये गये थे और दिये गये थे, जब यह देश घोर संकटावस्था में ग्रस्त था और जिस दशा के बारे में हममें से बहुतों को दु:ख है। हमारे मन खिचे हुये थे, हमारे विचार कुछ घटनाओं में ग्रस्त थे और मैं यह कह सकता हूं कि इन कारणों से, जैसा कि होना चाहिये, भावी भारत की हमारी कल्पना कुरूप हो गई थी। उन घटनाओं के प्रभाव के अंतर्गत ऐसे निर्देश दिये गये और ऐसे सिद्धांत स्थिर किये गये, जिन पर गम्भीर विचार के पश्चात् मैं यह समझता हूं कि उनके परिवर्तन करने के लिये हमारे पास यथेष्ट कारण हैं। ठीक समय आने पर मैं विधान के कुछ प्रावधानों में संशोधन करने के सुझावों को उपस्थित करूंगा और उनके लिये इस समय में सभा का समय नहीं लूंगा। इस समय मैं कुछ सामान्य विचार सभा के समक्ष रखूंगा, जिन पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम स्वयं डा. अम्बेडकर के शब्दों में मैं यह पूछता हूं कि इस विधान के उद्देश्य क्या हैं? यह विधान क्या करेगा? जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है, अथवा जैसा कि विधान के शब्दों द्वारा विदित किया जा सकता है, इस विधान का उद्देश्य लगभग पूर्णतया राजनैतिक है। सामाजिक तथा आर्थिक तो है ही नहीं। मुझे आशा है कि कोई यह न सोचेगा कि मैं सनक के कारण यह कहता हूं कि सामाजिक न्याय प्राप्त कराने के लिये, जो मनुष्यों के लिये सच्ची समानता है—केवल पत्र लिखित समानता नहीं, वरन् दैनिक जीवन तथा अनुभव में आने वाली वास्तविक अर्थयुक्त समानता, जिसका हमें वचन दिया गया था और जिसकी हम सबको साम्राज्यवादी शोषक के

निकल जाने के परिणामस्वरूप मिलने की आशा थी, वह इस विधान में लेशमात्र भी नहीं पाई जाती है। जैसे ही मैंने दो या तीन मुख्य-मुख्य परिच्छेदों या अनुच्छेदों को पढ़ा, मैंने यह पाया कि मानवता के पैतृक-अधिकारों और स्वत्त्वों से वंचित व्यक्तियों के लिये, तथा उन व्यक्तियों के लिये, जिनको इस देश में सभ्यतापूर्वक जीवित रहने के न्यूनतम साधन भी उपलब्ध नहीं हैं, इस विधान में किसी प्रकार की भी सहानुभूति नहीं दिखाई देती। उदाहरणार्थ मौलिक अधिकारों के परिच्छेद को लीजिए। हमसे कहा गया था कि मौलिक अधिकारों का अनेकों अपवादों द्वारा परिवर्द्धन तथा उनमें संशोधन कर दिया गया है और ये अपवाद अधिकारों का हरण नहीं करते हैं। मैं उन लोगों में से हूं, जो यह अनुभव करते हैं कि अपवादों की संख्या बहुत अधिक है। जैसा कि मैंने पहले कहा था कि हमने विधान का मसौदा बनाने के लिये उस समय निर्देश दिये, तथा उसके सिद्धांत उस समय स्थिर किये थे, जिस समय तनाव था और हमारी बुद्धि अत्यन्त विचलित थी। और इसलिये साधारणतया मामूली, शान्तिमय तथा नियमानुसार चलने वाले सामाजिक जीवन की अपेक्षा हमने संकटकाल की हालतों को ही अधिकतर अपनी दृष्टि में उस समय रखा था।

मौलिक अधिकारों की बहुत-सी बातों में, जिन पर बाद में विवरण-सहित विचार किया जायेगा, मैं आशा करता हूं कि उस समय मुझे संशोधन पेश करने और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर मसौदे में भूल अथवा बक्रार्थ को सुधारने के लिये अवसर दिया जायेगा।

लेकिन उसका एक अंग ऐसा है, जिसको मैं इसी समय सभा के समक्ष रखना चाहता हूं। अधिकारों को सर्वत्र केवल अधिकारों के रूप में ही कहा गया है और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। मैं सभा के समक्ष यह प्रश्न रखूंगा कि हम व्यक्तिगत अथवा साम्प्रदायिक रूप में जीवनयापन करते हुए अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत अधिक सोच रहे हैं और नागरिक अथवा सम्प्रदाय अथवा राज्य के प्रति हम अपने कर्त्तव्यों को भूल गये हैं। मैं इस बात पर जोर दूंगा कि एक और परिच्छेद राज्य और व्यक्ति के बारे में रखा जाये और परस्पर कर्त्तव्य यदि अधिकारों के परिच्छेद से बड़ा न हो, तो कम से कम समान तो होना ही चाहिये। यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो अधिकार असीम व्यक्तिवाद-पृथकत्व या पृथकवाद की प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है, जिसमें कोई व्यक्ति किसी दल,

[प्रो. के.टी. शाह]

समाज अथवा सम्प्रदाय की सदस्यता के अधिकारों की अपेक्षा अपनी अधिक पृथक मांगों अथवा अपने विशेषाधिकारों के स्वामित्व या इनकी सम्भावनाओं पर जोर देता है; जबकि कर्त्तव्य पर जोर देने से उसे यह शिक्षा मिलेगी कि वह अकेला ही किसी निर्जन अथवा अज्ञात स्थल में नहीं रह रहा है, बल्कि वह एक सहकारी समिति का, एक परस्पर आश्रित समाज का—एक राज्य का सदस्य है, जिसमें जीवित रहने की एकमात्र प्रत्याभूति, प्रगतिशील उन्नति का एकमात्र अवसर वह सामूहिक प्रयत्न है, जिसमें किसी निश्चित सर्वस्वीकृत उद्देश्य के लिये व्यक्तिगत अधिकारों और व्यक्तिगत मांगों के सामुहिक प्रयास की सबकी आवश्यकता की अपेक्षा गौण माना जाता है। श्रीमान्, हम एक ऐसे युग में हैं जिसमें हम स्वतंत्रता के सम्बन्ध में इतना सोचते हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्बन्ध में इतनी बातें करते हैं कि हम यह भूल जाते हैं कि स्वतंत्रता के लाभों के साथ-साथ यदि हम आत्म अनुशासन की आवश्यकता को याद रखने की चिन्ता न करें, तो स्वतंत्रता के दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना है। यह ऐसा प्रतिबन्ध है, जिसे उसी प्रकार लोगों को अपने ऊपर लगा लेना चाहिये, जैसे कि और किसी प्रकार के अनुशासन को लोग अपने ऊपर लगाते हैं। यह फिर वही सूरत है, जिसमें केवल व्यक्तियों के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् सम्प्रदायों, प्रान्तों तथा समस्त संघ के सम्बन्ध में भी, यदि अधिक नहीं तो अधिकारों के परिच्छेद के समान, मैं कर्त्तव्यता के परिच्छेद पर जोर दूंगा। व्यक्ति को उसके अधिकार हैं और मैं उन अधिकारों में किसी प्रकार की कमी करने के सुझाव से सहमत नहीं हूं। परन्तु इसके साथ-साथ व्यक्ति तथा समाज के भी कुछ परस्पर कर्त्तव्य हैं और जब तक इन कर्त्तव्यों पर ठीक जोर नहीं दिया जाता, तो मुझे भय है कि हममें से बहुतों की हमारे समय में वर्तमान बैचेनी के फलस्वरूप जिन शंकाओं की सम्भावना है, उनका समाधान और निराकरण नहीं किया जायेगा।

इस सम्बन्ध में मैं एक और विचार उपस्थित करूंगा और सभा से निवेदन करूंगा कि बाद में अच्छे प्रकार से इस पर विचार करें। हम प्रजातंत्रवाद का जादूगरी वस्तु के रूप में जिक्र कर रहे हैं। मैं जानता हूं कि इस प्रकार की बात कहने में मैं लोक-अप्रिय भाषा का प्रयोग कर रहा हूं। परन्तु कृपा कर याद रखिये कि सफल प्रजातंत्रवाद को उतना ही गुणात्मक होना पड़ेगा, जितना परिमाणात्मक। आपको

यह स्मरण रखना चाहिये कि केवल उठाये हुये हाथों का संख्या की अथवा उपस्थित जनों की संख्या का ही हमें वजन नहीं होना चाहिये, बल्कि हाथ उठाने वालों के चरित्रों और उपस्थित जनों की योग्यता को भी वजन देना चाहिये।

जो विधान हमारे समक्ष है, उसमें प्रजातंत्रवाद का गुणात्मक अंश यदि कहीं है भी तो उसकी बहुत न्यून मात्रा में है और परिमाणात्मक अंश प्रत्येक परिच्छेद में और यदि कहूं, तो विधान के प्रत्येक शब्द में प्रमुख रूप से व्याप्त है। मैं इस बात के ठीक होने के बारे में अनेकों उदाहरण दे सकता हूं। ऐसे अनेक स्थल है, जहां शब्द व्यंजना इस प्रकार की है कि जिससे प्रजातंत्रवाद को परिमाणात्मक पक्ष, संख्या, संख्याश्रित शक्ति अधिक व्यक्त होती है और जिसमें वह चरित्र बल, आध्यात्मिक पृष्ठपोषण तथा यथार्थ माहात्म्य, जो एक पुष्ट प्रजातंत्र में होने चाहिये, बिल्कुल दृष्टिगोचर नहीं होते।

मुझे भय है कि यह वह विचार है, जो इस समय अधिक लोकप्रिय तथा प्रचलित नहीं है, परन्तु यह वह विचार है, जिसे मैं चाहता हूं कि विधान के अनेकों वाक्य-खंडों को स्वीकार करने के पूर्व कम से कम सभा को ध्यान में तो रखना ही चाहिये। उन वाक्य-खंडों में ऐसे विचार हैं, जो आज के जगत में अप्रचलित हो गये हैं। उस दिन हमसे यह कहा गया था कि इस विधान में कोई नई बात नहीं है। कानून मंत्री ने कृपापूर्वक यह कहा कि ऐसे विषयों में कोई नई बात हो ही नहीं सकती। लीजिये यह एक सुझाव है। हम नवीन भारत के प्रजातंत्र में इस अंग पर, जिसे कि मैंने गुणात्मक पक्ष कहा है, उतना जोर क्यों न दें, जितना कि हम प्रदेशीय अथवा परिमाणात्मक प्रजातंत्र पर अब तक देते रहे हैं। आर्थिक साधनों और कर्त्तव्यों के विभाजन-सम्बन्धी परिच्छेद में, जिसका इसी प्रातःकाल उल्लेख किया गया था, प्रान्तों, इकाइयों और संघों में परस्पर अधिकार-विभाजन सम्बन्धी परिच्छेद में, सद्यस्कृत्यस्थिति के अधिकारों के सम्बन्ध में तथा ऐसे अनेक विषयों में परदे की आड़ से ऐसे संकेत मिलते हैं, कि नये राज्य की अखण्डता, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा हेतु आवश्यक बातों में और उन व्यक्तियों के, जिनसे कि राष्ट्र बनता है, स्वतंत्र गौरवपूर्ण तथा समान अवसरपूर्ण जीवन के लिये आवश्यक बातों में पारस्परिक घोर संघर्ष है और इसी संघर्ष की कुछ झलक हमें मसौदा बनाने वालों के मत से भी मिलती है।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, मेरी यह इच्छा नहीं है कि आप दुबारा घंटी बजायें, यद्यपि मुझे बहुत कुछ कहना है। यदि आप कृपा करके मुझे और भी अधिक समय दें, तो उसमें भी मैं समाप्त न कर सकूंगा। अतः जो कुछ मुझे कहना है, वह मैं संशोधनों पर वाद-विवाद करते समय कहूंगा। धन्यवाद।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** श्रीमान्, यदि मैंने अपने पुराने साथी तथा मित्र डा. अम्बेडकर को उनके कल के भाषण के लिये बधाई न दी, तो मैं यह न समझूंगा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। वैधानिक सुझावों को कानूनी रूप देने में उन्होंने जो अपरिमित शक्ति और समय लगाया है, सभा इस बात के लिये उनकी प्रशंसा करती है। जो थोड़ा समय मुझे मिला है, उसमें मैं इस विधान की खास-खास बातों पर अपने विचार प्रकट करूंगा और इससे पूर्व कि मैं प्रावधानों के विश्लेषण में अपने को लगा दूं, मैं डा. अम्बेडकर व श्री गोपालस्वामी आयंगर से प्रार्थना करता हूं कि मेरी बात को वे कुछ मिनटों तक ध्यानपूर्वक सुनें।

जिस पहली बात की ओर मैं डा. अम्बेडकर का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह है उनका यह बयान, जिसमें उन्होंने भारत को राज्यों का संघ कहा है। इस बारे में मेरी विशेष आपत्ति 'राज्यों' शब्द के प्रयोग के बारे में है। और वह इसलिये कि वैधानिक साहित्य में 'राज्य' का एक विशेष अर्थ है। दुर्भाग्यवश 'राज्य' शब्द का प्रयोग विधान के मसौदे में अनेकों स्थलों पर ऐसे अनेकों आशयों से तथा विभिन्न अर्थों में किया गया है कि उस प्रयोग के कारण गड़बड़ी होने की सम्भावना है। भारत की व्याख्या में यदि राज्य शब्द को इसी रूप में रखा जाता है, जिस रूप में वह है, तो सम्भव है कि भविष्य में यह विचार पैदा हो कि ये राज्य स्वाधीन सर्वोच्च राज्य थे और अपनी इच्छा से केन्द्र में सम्मिलित हुए थे। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जो कुछ हुआ, वे वैधानिक इतिहास के विद्यार्थियों को ज्ञात है। वहां के कुछ राज्यों में उस काल के प्रमुख विधि-शास्त्रियों की सम्मति के प्रभाव से लोगों का ऐसा दल बन गया था, जो राज्यों के अधिकारों का पक्षपाती था और जिसका यह कहना था कि राज्यों में से प्रत्येक राज्य स्वयं स्वतंत्र तथा प्रभुता सम्पन्न है और राज्यों ने आपस में स्वेच्छा से मिलकर ही संघ का निर्माण किया है और वे साथ मिलकर कार्य करते हैं। मैं चाहता हूं कि ऐसी

बात यहां न होने दी जाये। हमारे हाथ में प्रभुता आने से पूर्व हमारे यहां ऐसे प्रदेश अनेकों थे, जो देशी रियासतों के नाम से प्रसिद्ध थे। उनमें से बहुत से भारतीय संघ में सम्मिलित हो गये हैं। यदि भारत की यही व्याख्या, जैसी कि अनुच्छेद 1 और 2 में दी हुई है, रखी जाती है, तो भविष्य में किसी समय ये 'राज्य' यह कह सकते हैं कि वे सर्वोच्च राज्य हैं और केवल अपनी इच्छा से भारतीय संघ में सम्मिलित हुए हैं हम इस विधान में इस बात को पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह संघ अविनाशी राज्यों का अटूट संघ है और राज्य शब्द से केवल वैधानिक इकाइयां अभिप्रेत है। यदि इस विषय को मैं और आगे बढ़ाऊं, तो सभा का अधिक समय ले लूंगा। हमें किसी उपयुक्त शब्द को ढूंढ निकालना है। गवर्नर के प्रान्तों के लिये हम प्रान्त शब्द का प्रयोग कर सकते हैं और देशी रियासतों के लिये प्रदेश अथवा ऐसे ही किसी अन्य शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। यदि अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग या देहली को भी राज्य नाम से गौरवान्वित किया गया, तब तो वास्तव में यह बात बड़ी हास्यास्पद होगी।

दूसरा विषय जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह विवेकात्मक अधिकार है, जो विधान में गवर्नरों को दिये गये हैं। सभा को यह भली प्रकार विदित है कि भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में गवर्नर को कुछ विशेषाधिकार दिये गये थे, जिनका उपयोग वह अपने विवेक अथवा अपने व्यक्तिगत मत के आधार पर कर सकता था। इसके कारण प्रान्तीय मंत्रियों तथा गवर्नरों में बहुत झगड़ा रहा। कुछ प्रधान मंत्री यहीं मेरे सम्मुख बैठे हुये हैं और जो कुछ मैं कह रहा हूं, उसका समर्थन वे सिर हिलाकर कर रहे हैं और इसके कारण देश में प्रजा द्वारा चुने हुये मंत्रियों में असंतोष रहा। 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पश्चात् हमने इस प्रावधान को हटा दिया। अब आजकल इस प्रकार का प्रावधान है कि ''गवर्नर को अपने कार्य सम्पादन में राय देने तथा सहायता देने के लिये मंत्रियों की एक परिषद् होगी'' और भारत सरकार के 1935 ई. के अधिनियम के अंतर्गत उन समस्त विवेकात्मक अधिकार को निकाल दिया गया है, जिनका कि गवर्नर 15 अगस्त सन् 1947 ई. तक उपभोग करता रहा था। किन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि इन हानिकारक प्रावधानों को इस विधान में अनुच्छेद 143(1) और (2) के रूप में ज्यों का त्यों रख दिया गया है। इस विधान में भी हमने गवर्नर के विवेकात्मक अधिकारों के लिये प्रावधान किया है। किन्तु सभा से मेरी यह प्रार्थना है कि वह यह निश्चय कर ले कि वह आगे बढ़ना चाहती

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

है, या पीछे हटना, प्रगति चाहती है या प्रतिक्रिया। आज इस देश का विधान इस बात की व्यवस्था करता है कि इस देश का गनर्वर अथवा गवर्नर-जनरल केवल सर्वोच्च वैधानिक अधिकारी के रूप में कार्य करेगा, इससे अधिक नहीं, यदि भविष्य में अनुच्छेद 143(1) और (2) के सहित यह संविधान अपने वर्तमान स्वरूप में प्रवर्तित होता है, तो शासक वैधानिक मुखियाओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो जायेगा और वह इस कारण से कि, उसमें कुछ विवेकात्मक शक्तियां भी निहित होंगी। एक और भी प्रश्न है, जिस पर मैं सभी का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। सन् 1935 के भारत-शासन-अधिनियम की धारा 54 में एक कल्याणकारी अवरोध था। वह यह प्रावधान करता था कि जब कभी गवर्नर अपने विवेक अथवा अपने व्यक्तिगत मत के अनुसार अधिकारों का प्रयोग करे, तो वह ऐसा करने में गवर्नर-जनरल के निरीक्षण, पथ प्रदर्शन और नियंत्रण के अधीन होगा। किन्तु इस विधान में तो ऐसे प्रावधान का सर्वथा अभाव है। अतः इस बात पर गम्भीर विचार करने की आवश्यकता है।

जो तीसरी बात मैं कहना चाहता हूं, उसका सम्बन्ध अतिशक्तिशाली केन्द्र के प्रावधान से है। एक माननीय सदस्य, जो मुझसे पूर्व भाषण दे रहे थे, वह शिकायत कर रहे थे कि केन्द्र अतिशय शक्तिशाली बनाया जा रहा है। हां, यदि हम नवजात स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहते हैं, यदि हम देश को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, तो हर प्रकार से हमें एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। (*हर्षध्वनि*) प्रान्तीय स्वायत्त शासन का, जिसके लिये हम पहले लालायित थे, हमें यथेष्ट अनुभव हो गया और हमने उसके परिणाम देख लिये। इसने जिन केन्द्र विरोधी और घातक प्रवृत्तियों को उत्पन्न किया है, उनका हमने अनुभव कर लिया है और हम जानते हैं कि इससे हमें क्या हानियां हुईं हैं। यदि हम समस्त अंगभूत इकाइयों को एक दूसरे से मिली हुई रखना चाहते हैं, तो उनको संगठित करने के लिये एक केन्द्र की आवश्यकता है और इस आशय की पूर्ति के लिये संघ के पास खूब अधिकार होने चाहिये। इसका आशय यह नहीं है कि प्रान्तीय स्वायत्त-शासन में बेदर्दी से अतिशय कमी कर दी जाये।

मेरी अगली बात अल्पसंख्यकों के लिये स्थान रक्षण के बारे में है। इस सम्बन्ध में मेरे प्रबल विचार हैं। आजकल की स्थिति में स्थानों के रक्षण का कोई अर्थ

नहीं है। (*करतल ध्वनि*) मुसलमानों के लिये स्थान रक्षण में कोई न्याय नहीं है। दो राष्ट्रों के सिद्धान्त के आधार पर और उस सिद्धान्त में निहित सब परिणामों के सहित देश का विभाजन करवाने के पश्चात्, संविधान में मौलिक अधिकारों के प्रावधान के पश्चात् और इनमें से कुछ अधिकार न्याय है, संविधान में शासन सम्बन्धी निदेशक सिद्धान्तों के रखे जाने के पश्चात्, संविधान में वयस्क मताधिकार के प्रवाहित होने के पश्चात्, तथा यह सब करने के पश्चात् भी क्या कोई व्यक्ति यह आवश्यक समझता है कि संरक्षित स्थानों के लिये भी प्रावधान किया जाये। सैद्धान्तिक दृष्टि से मैं ऐसे प्रावधान रखने का विरोधी हूं। मेरे मुसलमान मित्र मुझे गलत न समझें। उन्होंने देश का विभाजन करा लिया है और उस विभाजन से हमें क्या हानियां हुई, यह हम जानते हैं। पंजाब ने इसे समझ लिया है और बंगाल ने इसका अनुभव किया है। अतः आप में से जो व्यक्ति अतिशय असाम्प्रदायिक विचार के लोग हैं, वे जिसको चाहे हर प्रकार के विशेष प्रतिनिधान दें, परन्तु जहां तक पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब का प्रश्न है, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि उनके सम्बन्ध में आप इस प्रकार की कार्यवाही न करें। विधान-परिषद् के गत अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव मैंने पास कराया था कि अल्पसंख्यकों तथा औरों के लिये स्थान रक्षण के जो प्रावधान बनाये जायें, उनसे पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी पंजाब को मुक्त रखा जाये और सभा ने इस बात को पूरी तरह स्वीकार किया था।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): हम सुरिक्षत स्थानों के पक्ष में हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** इस महान् परिषद के उपाध्यक्ष महोदय भारत में भारतीय ईसाई सम्प्रदाय के प्रतिनिधि है। वे प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली व्यक्ति हैं और भारतीय ईसाई संघ के वे लगातार तीन बार अध्यक्ष रहे हैं। उनके सुन्दर पथ-प्रदर्शन तथा कुशल नेतृत्व के कारण ईसाई सम्प्रदाय ने कभी विशेष प्रतिनिधान की मांग नहीं की। और भारत में उचित रूप से विशेष प्रतिनिधान की मांग यदि कोई सम्प्रदाय कर सकता है, तो वह भारतीय ईसाई सम्प्रदाय है। उन्होंने एक आदर्श उपस्थित किया है और मैं आशा करता हूं कि शेष सम्प्रदायों के नेता उनके आदर्श का अनुसरण करेंगे। समस्त भारतवासियों को हम एक राष्ट्रीयता के सांचे में ढालने का प्रयत्न कर रहे हैं। विभाजन के पश्चात् भारत एक राष्ट्र रह गया है और विधान निर्माताओं, नेताओं तथा सरकार का यह प्रयत्न होना चाहिये जिससे कि यह आदर्श कि 'हम सब एक राष्ट्र हैं', पूरा हो।

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

इसके पश्चात् मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि प्रत्येक प्रान्त में हमें द्विसभात्मक विधान-मंडल रखने चाहिये। आप वयस्क मताधिकार दे रहे हैं और आप नहीं जानते कि आपके विधान-मंडल कितने बड़े होंगे और आपको पता नहीं कि आपके यहां किस प्रकार के मनुष्य आयेंगे। जल्दी में बनाए गए कानून पर अवरोध या रोक लगाने के लिये हम पुनर्विचार करने वाली एक सभा चाहते हैं। यह बहुत लाभप्रद प्रणाली है और यह इंग्लैंड में भी प्रचलित है। और मेरे विचार से तो बिना किसी हिचकिचाहट के आपको कम से कम दस वर्ष के लिए प्रत्येक प्रान्त में द्विसभात्मक विधान-मंडल रखने चाहियें। मैं यहां यह घोषणा करता हूं कि बंगाल में हम लोग हर हालत में द्विसभात्मक विधान-मंडल और एक उत्तरागार चाहते हैं।

संविधान सफलतापूर्वक काम में आ सके, यह बात एक बड़े महत्त्वपूर्ण विषय पर आश्रित है और यह विषय प्रान्तों तथा केन्द्र के मध्य आर्थिक समायोजन है। यदि आप यहां और इसी समय इसी विधान में केन्द्र और प्रान्तों में आर्थिक बंटन के आधार का उल्लेख नहीं करेंगे, तो मुझे भय है कि नया वैधानिकतंत्र बहुत असुविधापूर्ण वातावरण में कार्य करना आरम्भ करेगा। जब तक प्रान्तों अथवा अंगभूत इकाइयों को विधान में ही यह नहीं बताया जायेगा कि केन्द्र की आय में उनका क्रमश: कितना भाग है, तब तक वे यह नहीं जान सकेंगे कि अपनी विकास-योजनाओं अथवा राष्ट्र-निर्माणक योजनाओं पर वे किस प्रकार अग्रसर हों। अत: मैं यह सुझाव रखता हूं कि निष्पक्ष अर्थशास्त्रियों की समिति इस प्रयोजन से बनायी जाये कि वह यह जांच करने के बाद कि कौन-कौन से कर लगाये जा सकते हैं, केन्द्र को सलाह दे कि प्रान्तों से होने वाली तथा अन्य करों से होने वाली केन्द्र की आय का कौन सा भाग केन्द्र प्रान्त के हवाले करे और कौन सा भाग अपने पास रखे।

अन्त में साधारण रूप में मैं उस विवाद का भी उल्लेख कर दूं, जो राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में दुर्भाग्यवश सभा में उपस्थित कर दिया गया है। हिन्दी के प्रवर्त्तक अपने उत्साह में बहुत आगे बढ़ गये हैं। प्रतिक्रिया के रूप में मेरे दो-तीन मित्र

उसके विरुद्ध उग्र भाषण दे ही चुके हैं। मैं अपने उत्तरी भारत के मित्रों को विश्वास दिलाता हूं कि यदि हम आज हिन्दी नहीं बोल सकते, तो यह केवल इसी कारण से कि दैवयोग से हमारा जन्म पूर्वी या दक्षिणी भागों में हुआ था। यह केवल जन्म धारण करने के कारण ही है, इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत गुणों तथा अवगुणों से किंचितमात्र भी नहीं है।

हम यह जानने का प्रयत्न अवश्य करेंगे कि हम आपके साथ कहां तक चल सकते हैं। हम सब चाहते हैं कि भारत की एक राष्ट्रभाषा हो, किन्तु इस नई बात को कि यदि हमने हिन्दी में बोलना आरंभ न किया, अथवा तुरन्त ही अपने सरकारी काम-काजों को हिन्दी में करना शुरू न कर दिया, तो हमारी स्वतंत्रता अर्थहीन हो जायेगी, बार-बार दुहराने से कोई लाभ तो न होगा। हां, सचमुच में इस बात को बार-बार सुनने से लोगों की नाक में दम अवश्य हो जायेगा।

खैर, आगे कभी हम इस समस्या को सुलझायेंगे। मैं अपने उत्तर के माननीय मित्रों को यह आश्वासन दे सकता हूं कि हिन्दी से हमें हर प्रकार की सहानुभूति है, परन्तु अति उत्साह प्रदर्शित करके वे स्वयं अपने पक्ष को निर्बल न बनायें। यह एक प्रकार का उन्माद है—यह भाषा सम्बन्धी उन्माद है, जिसको यदि बढ़ने और फैलने दिया जायेगा, तो अन्त में यह उसी उद्देश्य को असफल करेगा, जो उनके विचार में है। अत: मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि वे उन लोगों के साथ जरा सब्र और सहनशीलता से काम लें, जो अभी उत्तर की भाषा नहीं बोल सकते हैं। आखिर वे भी तो यही दावा करते हैं कि उनकी भाषा में साहित्यिक रत्न हैं और वे अपनी इस साहित्यिक निधि को केवल उत्तर के लोगों के आदेश पर फेंक देने के लिए तैयार नहीं हैं।

***श्री रामनारायण सिंह** (बिहार : जनरल): मैं डा. अम्बेडकर को बधाई देता हूं कि उनको इस विधान के उपस्थित करने का अवसर मिला। मैं उनके प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के रूप में हम स्वराज शब्द का सदैव प्रयोग करते थे और हम समझते थे कि अंग्रेजों के हाथ से सत्ता सीधी गांव वालों के हाथ में चली जायेगी। परन्तु मेरे विचार से प्रस्तावित विधान उन लोगों को ये अधिकार नहीं देगा। पूर्वानुसार पांच या सात वर्ष में एक बार वे

[श्री रामनारायण सिंह]

अपनी वोट देंगे और वहीं उनके अधिकार समाप्त हो जायेंगे। इसके पश्चात् ब्रिटिश समयानुसार ही उन पर शासन किया जायेगा। हम सब यह चाहते हैं कि देश की राजनैतिक संस्थायें जनता की सेवा करें। हम पूर्वानुसार शासित होना नहीं चाहते हैं। हम गवर्नर और यहां तक कि मंत्रियों को भी नहीं चाहते हैं। राजनैतिक तथा अन्य संस्थाओं को यह विचार करना चाहिये कि देश की जनता की किस प्रकार उत्तम सेवा की जाये। अध्यक्ष तथा मंत्रियों के सम्बन्ध में तो मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने इस परिषदात्मक प्रणाली की खूब प्रशंसा की है। उनको यह स्वीकार करते हुए लज्जा नहीं आई कि बहुत-सी बातें अन्य विधानों से ली गई हैं। वास्तव में यह सत्य है कि भिखारी और ऋणकर्त्ताओं को जो कुछ वे करते हैं, उसके करने में लज्जा का आभास नहीं होता, परन्तु जो ऐसा नहीं चाहते हैं, उन्हें इसका दु:ख होता है। यह विधान संसार के अन्य देशों में यह प्रकट करेगा कि हममें मौलिकता नहीं है और हम दूसरे देशों के विधानों से ऋण ही ले सकते हैं। मैं जोरदार शब्दों में कह सकता हूं कि यह वह विधान नहीं है जिसे देश चाहता था।

डा. अम्बेडकर ने इस बात को प्रशंसनीय समझ कर कहा है कि इसमें परिषदात्मक-शासन-व्यवस्था का प्रावधान है। यदि बात ऐसी ही है तो मुझे विश्वास है कि यह दल-शासन को जन्म देगी और इस प्रकार का शासन पश्चिम में असफल सिद्ध हो चुका है।

मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह इस विषय पर बड़ी गम्भीरता से विचार करे। ऐसे भी लोग हैं जो यह विश्वास करते हैं कि दल-शासन प्रजातंत्र का आवश्यक अंग है। इसके विपरीत अनेकों विधिशास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों का यह विचार है—और मेरा भी यही विचार है—कि इसका प्रजातंत्र से सम्बन्ध नहीं है, बल्कि यह तो प्रजातंत्रवाद की जड़ को ही काट डालता है। प्रजातंत्र का अर्थ बहुसंख्यकों का राज है और बहुमत स्वतन्त्र और स्वाधीन मतों द्वारा होना चाहिए। परन्तु हम देखते यह हैं कि हमारे मत कुछ व्यक्तियों के प्रभाव में रहते हैं और यदि मतों पर एक बार भी दूसरों का प्रभाव हो जाता है तो प्रजातन्त्र का खात्मा हो जाता है। इसलिये मैं कहता हूं कि इस परिषदात्मक-शासन-व्यवस्था को इस विधान में से निकाल देना चाहिये। यह पश्चिम में असफल हो चुकी है और इस

देश में भी नारकीय दृश्य उपस्थित करेगी। प्रान्तों में इसके प्रयोग का मुझे कटु अनुभव है। अध्यक्षात्मक-शासन-व्यवस्था में एक सच्चे और ईमानदार अध्यक्ष का मिल जाना सरल है, परन्तु ईमानदार और सच्चे मंत्रियों, उपमंत्रियों तथा परिषदीय मंत्रियों (पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी) तथा औरों की सेना मिलना इतना आसान नहीं है। जब तक यह वातावरण रहेगा, कोई न्याय नहीं हो सकता है। यदि अध्यक्ष कोई गलती करता है तो हम उसे हटाने के लिए प्रावधान कर सकते हैं; परन्तु मेरे विचार से केन्द्रों तथा प्रान्तों दोनों में हमें सर्वाधिकार सम्पन्न अध्यक्ष रखने चाहियें और जो कार्य किया जाये उसकी जिम्मेदारी उन पर होनी चाहिए। और वे ही मंत्री तथा सचिव चुनेंगे। इन लोगों के सम्बन्ध में तो मुझे यह कहने की इच्छा होती है कि मिनिस्टर, सेक्रेटरी, इत्यादि, की सेना से शासित होने की अपेक्षा तो राक्षसों द्वारा शासित होना अच्छा है। मैं चाहता हूं कि अधिकार सीधे ग्रामों को दिये जायें। केवल उनका वोट देना ही पर्याप्त नहीं है। उनको दिन-प्रति-दिन की शासन-व्यवस्था में रुचि रखने के लिये बाध्य किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि एक अच्छे राज्य में न्याय, विधान और शासन तीनों स्वाधीन प्रकार्य हैं। परन्तु इन दिनों परिषदात्मक-शासन-व्यवस्था के अंतर्गत लोग दल बनाते हैं, वोट प्राप्त करने का षड्यंत्र रचते हैं, विधान-मण्डलों में बहुमत प्राप्त करते हैं और शासन हथिया लेते हैं। यह संकटास्पद है। हमें यह मालूम करके दु:ख हुआ कि ये लोग अपने सम्बन्धियों और दल के व्यक्तियों को प्रसन्न करना चाहते हैं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस परिषदात्मक पद्धति को निकाल देना चाहिये और शासन, न्याय तथा विधान इन तीनों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये।

जहां तक भाषा और गौ-रक्षा का प्रश्न है जो कुछ मेरे मित्र सेठ गोविंददास ने कहा है, मैं उससे सहमत हूं। देश की आर्थिक दशा में यह आवश्यक है कि गौ-रक्षा के विषय को मौलिक अधिकारों में समाविष्ट कर दिया जाये तथा मौलिक अधिकारों में हथियार रखने का अधिकार भी होना चाहिये।

स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में मेरे विचार हैं कि यह न होना चाहिए। मेरे समस्त मित्र जानते हैं कि मैं कभी भी साम्प्रदायवादी न रहा। परन्तु जैसा कि पं. मैत्र ने कहा है कि जब साम्प्रदायिक आधार पर देश का विभाजन हो गया तो

[श्री रामनारायण सिंह]

मुसलमानों के लिए स्थान रक्षण नहीं होना चाहिये। इसके साथ-साथ मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो यह कहते हैं कि सब मुसलमानों को पाकिस्तान भेज देना चाहिए या हर प्रकार से भारतीय संघ में उनको तंग करना चाहिये या यह कि उनके अधिकार मेरे अधिकारों से कम होने चाहिये। उनको यहां वे ही अधिकार तथा सुविधायें होनी चाहिये जो औरों को हैं पर उनके लिये स्थान रक्षण की बात नहीं होनी चाहिये। किसी सम्प्रदाय के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था करना देश के लिये बड़ा हानिकर होगा। अन्त में, मैं सभा तथा देश से यह निवेदन करूंगा कि वे इस प्रकार के विधान की रचना करें कि हमारे पवित्र से पवित्र तथा उत्तम से उत्तम देशवासियों को अधिकार मिलें और जो अधिकार का प्रयोग करे वे जनता की सेवा करें और उसे सुखी तथा ऐश्वर्यवान बनायें।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त तथा बरार: जनरल): श्रीमान्, प्रस्तावित विधान पर मुझे अपना मत व्यक्त करने का आपने जो अवसर दिया है उसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूं। समय बड़ा सीमित मिला है, इसलिये इसकी आम बातों के बारे में ही मैं अपने विचार रखूंगा। जब विधान के विभिन्न खण्डों पर विचार किया जायेगा, उस समय दुर्भाग्य से मैं यहां उपस्थित नहीं रहूंगा। इस दृष्टि से यह जो चन्द मिनटों का अवसर मुझे मिला है उसके लिए मैं और भी आभारी हूं।

मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर की वक्तृता एक सुन्दर कृतित्व थी और प्रस्तुत विधान पर यह एक बहुत ही प्रभावपूर्ण आलोचना थी। जैसा कि प्रसिद्ध है वह एक ख्यातनामा वकील हैं और मैं समझता हूं कि उन्होंने बड़ी ही योग्यता के साथ अपने पक्ष का प्रतिपादन किया है। शायद विधान को उन्होंने दूसरा ही रूप दिया होता, यदि ऐसा करने की उन्हें सुविधा होती। जो भी हो, मेरी समझ से उन्होंने अपनी कठिनाइयों को पूर्णत: यह कह कर स्वीकार किया है कि शासन व्यवस्था एक दिन में तो नहीं बदली जा सकती। यदि संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत विधान का वर्णन किया जाये तो यही कहना होगा कि यह इसी अभिप्राय से बनाया गया है कि वर्तमान शासन व्यवस्था में यह ठीक-ठीक बैठ सके। यही कारण है कि इसमें कोई नई बात नहीं है, कोई असर डालने वाली और उत्साहजनक बात नहीं है। अंग्रेज जो शासन व्यवस्था इस देश में छोड़ गये हैं उसमें यह ठीक-ठीक बैठ

जाये, इसी अभिप्राय से इसकी रचना हुई है। इसके अनुसार प्रांतीय गवर्नर रहेंगे ही और प्रांतीय शासन में कोई बड़ा उलटफेर होगा नहीं। उलटफेर केवल इतना ही किया गया है कि यत्रतत्र नामों में परिवर्तन कर दिया गया है। हम लोगों को बताया गया है कि भारतीय गणतंत्र का एक प्रधान होगा। जैसा कि विद्वान डा. अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया है।

उसका नामान्तर करके इंग्लैंड के वर्तमान राजा के समान उसे एक दयनीय मूर्तिमात्र के रूप में रखा गया है। इस प्रकार प्रधान का नाम यहां केवल एक मिथ्या संज्ञा है। इस संज्ञा को हमें ग्रहण करना है, क्योंकि हमारे सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं है और इसलिये भी कि हम अपने अधिशासी प्रमुख को राजा के नाम से पुकारने के लिये तैयार नहीं है। इस प्रधान के अतिरिक्त तथा विधान में मौलिक अधिकारों की जो तालिका रखी गई हैं उसके अतिरिक्त, प्रस्तुत विधान में तथा 1935 के भारत-शासन-अधिनियम में और कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। मेरे विद्वान मित्र ने जिस प्रकार इसकी विस्तृत व्याख्या की है, उससे सम्भवतः यह और भी आकर्षक प्रतीत होता है, पर विवेचन करने पर यही निष्कर्ष निकलेगा कि यत्रतत्र के कतिपय परिवर्तनों को छोड़कर यह और 1935 का एक्ट दोनों एक समान हैं।

मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में मेरे माननीय मित्र को स्वीकार करना पड़ा है कि स्वभावतः ये मौलिक नहीं रह गये हैं, जैसा कि इनसे आशा की जानी चाहिये। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय जो काम करता है उसी को विधान के मसौदे के प्रावधानों द्वारा सम्पादित कराने की चेष्टा की जा रही है। अमेरिकन विधान में जो मौलिक अधिकार रखे गये हैं उनका भाष्य समय-समय पर वहां के सर्वोच्च न्यायालय ने किया है और अपने भाष्य में उन्होंने उन अधिकारों के मौलिक स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबंध रख दिये हैं यही काम हम इन प्रावधानों द्वारा यहां सम्पादित कर रहे हैं जहां तक मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध है, मैं इन मौलिक अधिकारों को कतई पसन्द नहीं करता हूं, क्योंकि जो अधिकार आवश्यक हैं वह तो 1935 के अधिनियम में वर्तमान ही हैं। हां यह बात दूसरी है कि वहां ये इन आकर्षक, भड़कीले नाम से यानी 'मौलिक अधिकार' के नाम से नहीं रखे गये हैं उदाहरण के लिये, भाषण की स्वतंत्रता एवं मिलने-जुलने और संघ बनाने की स्वतंत्रता वहां है, यद्यपि कांग्रेस आंदोलन के काल में विभिन्न अवसरों पर इन अधिकारों को

[डा. पी.एस. देशमुख]

कुचल दिया गया था। वर्तमान में जो मौलिक अधिकार रखे गये हैं उन्हें या तो इतना सीमाबद्ध नहीं करना था जैसा कि वह किये गये हैं या फिर उनकी संख्या ही बहुत कम रखनी चाहिये थी। यह इसलिये कह रहा हूं क्योंकि उनमें से कम से कम कुछ तो ऐसे हैं जो हमारी भविष्य की समुन्नति में बाधक सिद्ध होंगे। उदाहरण के रूप में सम्पत्ति अवाप्त करने या बेचने की कथा जहां चाहे वहां बसने की स्वतंत्रता को ही लीजिये। मैं समझता हूं कि इससे विधान-मण्डल की सत्ता का अपहरण होता है। परिषदात्मक शासन पद्धति के आधार पर निर्मित विधान के इस मसौदे में रखे गये मौलिक अधिकारों का अगर यही स्वरूप होने जा रहा है, तो फिर यही अच्छा होता है कि हम विधान-मण्डल पर ही इसे छोड़ देते कि वह इन अधिकारों के सम्बन्ध में निश्चय कर लिया करे। जब हम इन अधिकारों को व्यापक रूप में देने को प्रस्तुत नहीं हैं, तो फिर इनकी व्याख्या करके विधान-मण्डल की सत्ता का अपहरण या उस पर आघात ही क्यों करें? मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधों से इतना जकड़ दिया गया है कि न वह मौलिक रह गये हैं और न अधिकार ही रह गये हैं। कम से कम कुछ बातों के सम्बन्ध में तो इनमें न अधिकार की ही कोई बात है और न आधारभूत ही कोई बात है, ये केवल गणनामात्र के लिये है और कोई महत्त्व की बात इनमें नहीं है।

शासन सम्बन्धी निर्देशात्मक सिद्धान्तों को जो विधान में स्थान दिया गया है, उसके औचित्य को समझाने में डा. अम्बेडकर को काफी कष्ट उठाना पड़ा है। बाध्य होकर उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा है कि यदि उनके बस की बात होती तो वे इन सिद्धान्तों को विधान की अनुसूची में रखते। मेरी समझ से तो यह उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है। वस्तुतः विधान में इनका कोई स्थान नहीं है। यह तो एक प्रकार से निर्वाचन के समय प्रचारित किया जाने वाले कार्यक्रम सम्बन्धी घोषणा-पत्र है। और फिर स्वयं ये निर्देशात्मक सिद्धान्त ही बुनियादी किस्म के नहीं है। यदि विधान में इस बातों का प्रावधान रहता कि देश के खनिज साधनों पर राज्य का सत्वाधिकार स्थापित करना राज्य का कर्त्तव्य होगा, देश के सारे उद्योग जनता की सम्पत्ति होंगे, सरकार अपनी सम्पूर्ण शक्ति जनता से प्राप्त करती है और किसी भी व्यक्ति को किसी के द्वारा शोषित न होने दिया जायेगा, तो मैं इस अध्याय का रखा जाना स्वीकार कर लेता हूं। अगर इस प्रकार की कोई बुनियादी बात होती तो उसकी अधिक उपयोगिता थी। इन्हें आदेश-पत्र के रूप में रखना

जैसा कि डा. अम्बेडकर ने सुझाया है, बिलकुल व्यर्थ है। चाहे जो हो विधान में तो इनको स्थान मिलना ही नहीं चाहिये था।

मेरे मित्र ने यह समझाने का प्रयास किया है कि प्रस्तुत विधान संघात्मक से अधिक एकात्मक है। मेरा अपना स्पष्ट मत तो यह है कि यह विधान न तो संघात्मक ही है और न एकात्मक ही। ऐसी स्थिति में, यह विधान 1935 के एक्ट से कुछ भी अच्छा नहीं है। एकात्मक तो यह इसलिये नहीं है, क्योंकि इसके अनुसार एक प्रकार का प्रान्तीय स्वराज जारी रहेगा। संघात्मक यह यों नहीं है कि प्रादेशिक राज्यों को समुचित मात्रा में कोई स्वतंत्रता नहीं प्राप्त है। इसलिये मेरी समझ से तो यह विधान अनेक विभिन्न विधानों के प्रावधानों की खिचड़ी है और मेरे मित्र इस मुसीबत में पड़ गये हैं कि इसे एक समुचित विधान के रूप में किस प्रकार रखें। निश्चय ही एक योग्य वकील की तरह उन्होंने विधान की प्रत्येक प्रावधान का औचित्य सिद्ध कर दिया है और बहुत सम्भव है कि बिना किसी विशेष परिवर्तन के यह विधान सभा द्वारा स्वीकृत हो जाये। मैं तो समझता हूं कि यही विधान हमारे भाग्य में है, दूसरा नहीं। किन्तु फिर भी मैं कहूंगा कि हमारा विधान ऐसा होना चाहिये जिसे पाकर प्रत्येक देशवासी हर्ष और उत्साह का अनुभव करे।

श्रीमान्, जो भी हो भारतवर्ष एक कृषकों का देश है। किसान और मजदूरों को शासन व्यवस्था में और अधिक हिस्सा मिलना चाहिए ताकि उनकी आवाज सुनी जा सके। विधान द्वारा उनको यह अनुभूति मिलनी चाहिए थी कि पृथ्वी के इस विशालतम देश के वही असली मालिक हैं। मैं इस विचारधारा से सहमत नहीं हूं कि हमारा अतीत या हमारी प्राचीन सभ्यता इस योग्य नहीं है कि हम भारतीय राष्ट्र के भावी निर्माण के लिए उसका उपयोग करें। इस विचारधारा से मैं असहमत हूं। जो थोड़ा समय मुझे मिला था उसके अन्दर मैं यही चन्द बातें आपके सामने रख सका हूं। मैं नहीं समझता कि सभा इस स्थिति में होगी कि विधान में वह बहुत कुछ परिवर्तन कर सके।

मैं यहां इस बात का उल्लेख कर सकता हूं कि कुछ लोगों का यह ख्याल है कि हम लोग विधान-परिषद् में किसी तरह आ गये हैं और यही चाहते हैं कि येन केन प्रकारेण यहां आफिस में अभी बने रहे। यद्यपि इस प्रकार की भावना

[डा. पी.एस. देशमुख]

लोगों में वर्तमान है फिर भी हमें परिस्थिति के अनुसार, जो भी कर सकें करना चाहिए। इस भावना को दूर करने का तथा यथासम्भव उसे सुधारने का हमें प्रयत्न करना ही होगा। वर्तमान परिस्थिति में उतना ही हमारे लिये सम्भव है।

माननीय डा. अम्बेडकर ऐसा विधान तो नहीं बना पाये जो भारतीय जनता की संस्कृति के अधिक निकट हो किन्तु आशा है कि ऐसे संशोधनों के सम्बंध में वे अनुकूल रुख रखेंगे जो इस उद्देश्य से उपस्थित किये गये हों कि साधारण नागरिक को और उत्साह मिले तथा किसान और मजदूरों के मन में यह भावना पैदा हो कि उसका राज अब आने वाला है। यही आशीर्वाद महात्मा गांधी ने उन्हें दिया था।

***श्री एस. नागप्पा:** उपाध्यक्ष महोदय, मसौदा-समिति के माननीय सभापति एवं उसके सदस्यों को बधाई देने में मैं भी पूर्व वक्ता का साथ देता हूं। उन्होंने सावधानी से इस बात का प्रयास किया है कि सभी समस्याओं के सारे पहलूओं पर विचार करके तथा विभिन्न समितियों की रिपोर्टों का समुचित मनन करके उनके अनुसार विधान बनाया जाये।

जहां तक श्रमिकों की समस्या का प्रश्न है, जिसकी ओर मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कृपया हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, हम यही देख रहे हैं कि श्रमिक-समस्या के समाधान के लिये भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न उपायों की रचना की जा रही है। इसलिये यह अच्छा होता कि यह विषय केन्द्रीय सूची में रखा जाता। श्रमिक वर्ग को उत्तेजना प्रदान करने वाली समस्याओं के समाधान में इससे सहायता मिलेगी।

श्रीमान्, मैं उन लोगों से पूर्णत: सहमत हूं जो केन्द्र को मजबूत बनाने की वकालत करते हैं, विशेषत: इसलिये कि हमने अभी-अभी स्वतंत्रता प्राप्त की है, जैसा कि सभी जानते हैं। इसे पुष्ट तथा सदा के लिये स्थायी बनाने के लिये हमें काफी समय चाहिये। एक दूसरे कारण से भी केन्द्र का मजबूत होना जरूरी है। सम्प्रदाय एवं धर्म के कारण हम आपस में कई बातों में एक नहीं थे। अब प्रान्तीयता के आधार पर हमें अनेक न होना चाहिये। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों

को एक करने के लिये तथा और अधिक एका लाने के लिए एक मजबूत केन्द्र का होना देश-हित के लिए वांछनीय है।

हमें मजबूत केन्द्र को क्यों रखना चाहिये, इसका एक दूसरा कारण भी है जिसका मैं अभी उल्लेख करूंगा। कुछ लोग यह कहते हैं कि युद्ध का मनोभाव रखते हुए हमें एक मजबूत केन्द्र रखना चाहिये। मेरी समझ से युद्ध का मनोभाव हमें रखना ही नहीं चाहिए। अहिंसात्मक एवं सत्यपरायण बने रहने की हमने शिक्षा पाई है। यही हमारे सिद्धान्त हैं। ऐसी स्थिति में यह सम्भावना नहीं है कि केन्द्र युद्ध का मनोभाव रखे।

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने विधान का मसौदा तथा अपनी रिपोर्ट उपस्थित करते हुए कहा है कि प्रस्तुत विधान बनावट में तो संघात्मक है, पर इसका आन्तरिक स्वरूप एकात्मक है। मैं समझता हूं कि विशेषत: वर्तमान समय में हमें ऐसे ही विधान की आवश्यकता है। विधान के सम्बन्ध में हम लोगों से यह कहा गया है कि इसमें 1935 के भारत-शासन-अधिनियम से ही बहुत कुछ लेकर इसमें कर दिया गया है। बात यह है कि अगर हम कोई अच्छी बात देखते हैं तो हम उसको अपनाते हैं, उसकी नकल करते हैं। अगर किसी अन्य विधान में कोई ऐसी चीज हम पाते हैं जो हमारे लिये, हमारे आचार-व्यवहार के लिये एवं हमारी संस्कृति के लिये उपयोगी और लाभप्रद है, तो उसको अपना लेने में कोई हानि नहीं है।

विधान में अल्पसंख्यकों के लिये अच्छी व्यवस्था की गई है। इस बात से मुझे प्रसन्नता है और उन प्रतिनिधियों को भी प्रसन्नता है जो अल्पसंख्यकों के हितरक्षार्थ यहां सदस्य के रूप में आये हैं इसके लिये बहुसंख्यक वर्ग को हमें बधाई देनी चाहिये। हमें बहुसंख्यक वर्ग का अभिनन्दन करना चाहिये कि उन्होंने अल्पसंख्यकों को कतिपय विशेषाधिकार, विशेष सुविधायें दी हैं।

यहां यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या अल्पसंख्यकों को संरक्षित स्थान देना आवश्यक है? मैं समझता हूं कि हमेशा के लिये और सभी अल्पसंख्यकों को संरक्षित स्थान देना, हो सकता है आवश्यक न हो, पर कुछ ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग हैं जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। मैं यह नहीं चाहता कि सदा के लिये ये संरक्षण जारी रखे जायें। यह तो अधिकतर बहुसंख्यक वर्ग पर निर्भर करता है कि वह अपने व्यवहार द्वारा अल्पसंख्यकों को अपने में घुलमिल जाने दें। अल्पसंख्यक यह नहीं चाहते कि वह संरक्षण की मांग करें और सदा के लिये

[श्री एस. नागप्पा]

बहुसंख्यक वर्ग से पृथक बने रहे। वे तो इस बात के लिये बहुसंख्यक वर्ग से भी अधिक उत्सुक हैं कि जल्द से जल्द वह बहुसंख्यक वर्ग के साथ घुलमिल जाये। पर इस काम को पूरा करने का भार बहुसंख्यक वर्ग पर है, न कि अल्पसंख्यकों पर। बहुसंख्यक वर्ग का व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि अल्पसंख्यकों में यह भावना उत्पन्न हो कि वे बहुसंख्यक वर्ग से भिन्न नहीं है। ऐसा होने पर ही, श्रीमान, हम अल्पसंख्यक-समस्या का समाधान करने में समर्थ होंगे। जो भी हो, बहुसंख्यक वर्ग का मैं कृतज्ञ हूं कि इस समस्या के समाधान में वह इतनी दूर आगे बढ़ा है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री फ्रैंक एन्थॉनी ने आज सवेरे कहा है, बहुसंख्यक वर्ग की इच्छापूर्ति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक वर्ग आधे से अधिक रास्ता तय कर चुका है। कुछ बातें ऐसी हैं जिनके लिए कम से कम कुछ वर्षों के लिए संरक्षण रखना आवश्यक है। मैं केवल इस बात पर जोर देता हूं कि यह देखना बहुसंख्यक वर्ग का कर्त्तव्य है कि अल्पसंख्यक यह न अनुभव करने पाये कि वे अल्पसंख्यक हैं।

श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है कि विधान में सामाजिक समस्याओं के समाधान का भी प्रयास किया गया है किसी भी रूप में स्पृश्यापृश्य का भेदभाव बरतना अपराध घोषित किया गया है। मुझे इस बात की खुशी है कि मसौदा-समिति ने इस बात का ध्यान रखा कि यह बात विधान में आ जाये।

नौकरियों के सम्बंध में विधान में ऐसी व्यवस्थाएं रखी गयी हैं जिसमें कि अल्पसंख्यकों को यथेष्ट प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। किन्तु एक बात विधान में नहीं आ पाई है, जिसकी और मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। विधान में इस बात के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है कि किसी पार्टी का नेता अपनी जो गवर्नमेंट या मंत्रिमंडल बनायेगा वह ऐसा होगा जिसमें सभी विचारधाराओं को तथा जनता के सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा। यदि ऐसी व्यवस्था विधान में हो जाती तो इससे अल्पसंख्यक समस्या का बहुत कुछ समाधान हो जाता। मैं मसौदा-समिति के प्रति कृतज्ञ हूं कि उसने अल्पसंख्यकों की बहुत सी बातों को मान लिया है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मंत्रिमण्डल की रचना के सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव अभी दिया है उसके अनुसार यदि कोई प्रावधान मसौदा-समिति विधान में रख देती तो उससे अल्पसंख्यक समस्या का पूर्णत: समाधान हो जाता। अल्पसंख्यकों का कोई प्रतिनिधि मंत्रिमण्डल में रखा जाये या नहीं, इस बात को अगर प्रधानमंत्री

की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है तो इसका क्या फल होगा, इसकी कल्पना सभा स्वयं कर सकती है। प्रधान मंत्री यह कह सकता है कि उसकी पार्टी में अल्पसंख्यक वर्ग का कोई सदस्य नहीं है और इसलिए दल के बाहर के व्यक्ति को मंत्रिमण्डल में लेना जरूरी नहीं है, ताकि देश की शासन व्यवस्था में अल्पसंख्यकों का भी हाथ रहे। इसलिए यह अच्छा होता अगर मसौदा-समिति विधान में ऐसा प्रावधान रखती कि मंत्रिमण्डल में—प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनों में—ही अल्पसंख्यकों को समुचित प्रतिनिधित्व देना ही होगा।

जहां तक भाषा का प्रश्न है, दक्षिण भारत से आने वाले मेरे माननीय मित्र ने विचार व्यक्त किया है। मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि उत्तर भारत से आने वाले मेरे मित्रगण इस बात का अनुचित लाभ उठा रहे हैं कि उन्होंने जन्म से ही हिन्दी सीख रखी है। चूंकि उन्होंने जन्म से ही हिन्दी सीख रखी है इसलिए यह तो न होना चाहिए कि वे लोग दक्षिण भारत के लोगों पर जबरदस्ती हिन्दी लाद दें। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम लोग हिन्दी के पक्ष में नहीं है हम अंग्रेजी या अन्य किसी भी भाषा के लिए उत्सुक नहीं है। हम तो अपनी भाषा हिन्दी के लिए ही उत्सुक हैं। किन्तु इसको लाने में कुछ समय लगेगा। एक बच्चा भी जब स्कूल भेजा जाता है तो उसकी पढ़ाई मैं कुछ समय लगता है। आखिर आपको जल्दी क्या है? ऐसा तो है नहीं कि आप को कोई ट्रेन पकड़नी है जो इस सम्बंध में इतनी जल्दबाजी से आप काम लें। उत्तर भारतीय मित्रों को मैं विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम लोग एक भाषा के ही पक्ष में हैं, चाहे वह हिन्दी हो या अन्य कोई भाषा हो, जिसे कि यह सभा निश्चित करे। किन्तु आपको यह कोशिश तो न करनी चाहिए कि वह भाषा हम पर एकाएक लाद दी जाये और इस तरह हम अंधकार में पड़ जायें। इस देश के निवासी जब तक कि उस भाषा के अभ्यस्त न हो जायें तब तक तो हमें रुकना ही पड़ेगा।

श्रीमान्, इस विधान का मसौदा तैयार करने में माननीय डा. अम्बेडकर ने जो कष्ट उठाया है उसके लिए मैं उन्हें पुन: धन्यवाद देता हूं। नि:संदेह यह विधान बहुत विस्तृत है, पर बड़े कम समय में और सफलतापूर्वक डा. अम्बेडकर ने इसे तैयार किया है।

उपाध्यक्ष: कल प्रात: 10 बजे तक के लिए सभा स्थगित की जाती है।

इसके बाद सभा शनिवार को प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।

Con. 3. VII.3.48
350

अंक 7
संख्या 3

शनिवार
6 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव–(*जारी*)................................. 185–256

भारतीय विधान-परिषद्

शनिवार, 6 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई।

उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव

***श्री अरुणचन्द्र गुहा** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम स्वतंत्र भारत के प्रथम विधान को अन्तिम रूप देने के लिये यहां एकत्रित हुये हैं। यह हमारे जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण काल है और इस समय मुझे बरबस अतीत काल का स्मरण हो आता है जब कि हमने अनेक कष्ट झेले और एक संग्राम में संलग्न रहे। हमारे कई साथी हमसे बिछुड़ गये और सारे राष्ट्र ने अनेक कष्ट सहन किये तथा अनेक बलिदान किये। इस समय जब कि हम अपने भावी भाग्य तथा अपने भावी-विधान की रूप-रेखा निश्चित करने के लिये एकत्रित हुये हैं, मैं नतमस्तक होकर उन सब साथियों का स्मरण करता हूं जो इन कई वर्षों के संग्राम में हमसे बिछुड़ गये हैं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरंजन तथा अन्य कई महानुभावों ने और अन्त में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमारे संग्राम का नेतृत्व किया। हमारे निकटस्थ लोगों में से, विशेषतया बंगाल में, हमारे कुछ ऐसे मित्रों ने भी संग्राम का नेतृत्व किया, जो अन्य लोगों की तुलना में ख्यातनामा तो न थे, परन्तु हमारे लक्ष्य-साधन में वे किसी से पीछे न रहे थे और न अपने देश को बन्धनमुक्त करने की उनकी इच्छा किसी से कम उत्कट तथा प्रबल ही रही थी। मैं उस श्रमिकवर्ग का हूं, जो पिछले चालीस वर्षों से स्वतंत्रता-संग्राम में कटिबद्ध रहा है और इसलिये मुझे कम से कम यतीन्द्रनाथ मुकर्जी, स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती, सूर्यसेन, भगतसिंह इत्यादि के नाम तो स्मरण हो ही आते हैं। यद्यपि वे अन्य लोगों की अपेक्षा प्रख्यात न रहे, परन्तु हमारे लक्ष्य-साधन में उनका भी योग रहा।

अब जहां तक विधान के मसौदे का सम्बन्ध हैं, मेरी यह धारणा है कि मसौदा-समिति अपने निदेश-पदों से परे चली गई है। मेरे विचार से सारे विधान

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अरुणचन्द्र गुहा]

में ऐसी बातें हैं, जो उन मुख्य सिद्धान्तों के परे हैं, जिन्हें कि विधान-परिषद् ने निश्चित किया था। विधान के सारे मसौदे में कहीं भी कांग्रेस के दृष्टिकोण का, गांधीवादी सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिकोण का पता नहीं है। विद्वान डा. अम्बेडकर ने अपने लम्बे और विद्वतापूर्ण भाषण में कहीं भी गांधीजी या कांग्रेस का उल्लेख नहीं किया है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि मेरे विचार से सारे विधान में कांग्रेस के आदर्श की तथा कांग्रेस की विचारधारा की उपेक्षा है। विधान हम केवल इस उद्देश्य से नहीं बना रहे हैं कि एक राजनैतिक ढांचा तैयार किया जाये, या केवल शासन-प्रबंध की व्यवस्था की जाये, बल्कि इसलिये कि वह राष्ट्र के भविष्य के लिये सामाजिक तथा आर्थिक आधार प्रमाणित हो।

मेरे विचार से जहां तक आर्थिक अंग का सम्बन्ध है, हमारे विधान का मसौदा बहुत कुछ मौन ही है। इसमें सम्पत्ति की पवित्रता की रक्षा और उन लोगों के अधिकारों की रक्षा की चिन्ता प्रदर्शित है, जिनको कुछ अधिकार प्राप्त है; परन्तु इसमें उनके सम्बन्ध में मौन ही धारण किया गया है, जो शोषित है और जिनके पास कुछ भी नहीं है। यद्यपि सम्पत्ति की पवित्रता और उसको अक्षुण्णता के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है, परन्तु काम पाने के अधिकार, आजीविका के साधनों को प्राप्त करने के अधिकार और आराम प्राप्त करने के अधिकार इत्यादि के सम्बन्ध में इसमें कुछ भी उल्लेख नहीं है, हालांकि इनको विधान में प्रभावी रूप में सम्मिलित किया जा सकता था।

जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, मैं डा. अम्बेडकर जैसे विद्वान प्रोफेसर की विद्वत्ता और योग्यता को स्वीकार करता हूं और मेरी यह धारणा है कि विधान का मसौदा उन्हीं के कार्यकौशल का परिचायक है परन्तु अपने प्रारम्भिक भाषण में उन्होंने एक प्रकार से आध्यात्मिक विषयों को ही उठाया है। उन्होंने एक नये शब्द का प्रयोग किया है। श्रीमान्, मेरे विचार से संसार में कोई भी ऐसा अधिकार नहीं है, जिसे निरपेक्ष कहा जाये। प्रत्येक अधिकार के लिये कुछ सीमा तक कर्त्तव्यपालन आवश्यक है और कोई भी अधिकार बिना कर्त्तव्यपालन के सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये इसी तर्क को आधारभूत बनाना ठीक नहीं कि मूलाधिकार निरपेक्ष नहीं हो सकते। मैं यह जानता हूं कि उन्हें सापेक्ष होना चाहिये, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी परादिक को रखकर मूलाधिकारों का शून्यन कर दिया जाये। मूलाधिकारों के भाग में जिन अधिकारों का भी उल्लेख है उनका किन्हीं प्रावधानों या सहायक खण्डों को स्थान देकर तुरन्त ही शून्यन कर दिया गया है।

अच्छा तो यह होता कि मसौदा समिति इन प्रावधानों को विधान में स्थान ही न देती, इससे कम से कम भविष्य की सरकार को मूलाधिकार निश्चित करने में स्वतंत्रता तो होती। अब चूंकि विधान में इनको स्थान दे दिया गया है, इसलिये केवल यह किया जा सकता है कि विधान का आधार विस्तृत बनाने के लिये उसमें संशोधन किये जाये। इसलिये मैं इस सभा से कहूंगा कि या तो मूलाधिकारों को स्पष्ट रूप में रखा जाये, या इस अध्याय को विधान से निकाल दिया जाये, ताकि भविष्य की सरकार समय की आवश्यकताओं के अनुसार मूलाधिकारों को निश्चित करे और उसे विधान द्वारा अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिये संशोधन करने को आवश्यकता न रहे।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने गांवों के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं हैं। हम वर्षों से कांग्रेस में रहे हैं। हमने ग्राम-पंचायतों को भविष्य के शासन-प्रबन्ध का आधार मानने की सीख पाई है। गांधीजी तथा कांग्रेस का दृष्टिकोण यह रहा है कि भावी भारत का विधान पिरेमिड के आकार का हो और यह आधृत हो, ग्राम-पंचायतों पर। डा. अम्बेडकर के कथनानुसार भारत के विनाश के कारण गांव ही रहे हैं और वे अज्ञान के अंधकार में पड़े रहे हैं। यदि यह सत्य है तो इसके उत्तरदायी हम नगर निवासी ही हैं, जो विदेशी नौकरशाही और विदेशी शासन के प्रकाश में चमकते रहे हैं। हमारे गांवों को भूखा मारा गया, विदेशी सरकार ने जान-बूझकर हमारे गांवों का गला घोटा और इस अपावन कार्य में नगर निवासी उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। मेरे विचार से स्वतंत्र भावी भारत का प्रथम कार्य गांवों का पुनरुत्थान ही होना चाहिये। श्रीमान्, मैं आपसे कह चुका हूं कि गांधीवादी तथा कांग्रेसी विचारधारा से हमने यह शिक्षा ग्रहण की है कि भारत का भावी विधान एक पिरैडिम के आकार का हो, जिसकी आधारशिला हो, ग्राम-पंचायतें।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि हमें एक सशक्त केन्द्र की आवश्यकता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके अंग अशक्त हों। बिना सशक्त अंगों के हमारा केन्द्र भी सशक्त नहीं हो सकता। यदि हम सारे ढांचे को ग्राम-पंचायतों, लोगों के सहर्ष सहयोग की आधार-शिला पर खड़ा करेंगे, तो मेरे विचार से केन्द्र स्वतः सशक्त हो जायेगा। मैं इस सभा से अब भी प्रार्थना करता हूं कि कुछ ऐसे खण्ड सम्मिलित कर लिये जायें, जिनसे ग्राम-पंचायतें देश के भावी शासन में प्रभावपूर्ण भाग ले सकें।

[श्री अरुणचन्द्र गुहा]

डा. अम्बेडकर ने हमारे सम्मुख यह कल्पना उपस्थित की है कि उन्होंने प्रान्तों के आधार पर, राजनैतिक इकाइयों के आधार पर और व्यक्ति के आधार पर विधान-निर्माण किया है। शासन-तंत्र का वास्तविक आधार ग्राम ही होना चाहिये। व्यक्ति सारे विधान का प्राण है, परन्तु ग्राम उसके ढांचे का आधार होना चाहिये।

अब श्रीमान्, मैं भाषा के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। विधान के मसौदे में यह कहा गया है कि इस सभा में हिन्दी और अंग्रेजी का स्वतंत्रता से उपयोग किया जाये और अन्य भाषाओं का उपयोग उसी दशा में किया जाये, जब कि वक्ता इन भाषाओं में से किसी में अपने विचार उचित रूप से व्यक्त करने में असमर्थ हो। मेरे विचार से श्रीमान्, रूस के विधान की तरह हमारे विधान में भी यह व्यवस्था होनी चाहिये कि इस सभा में भारत की आठ या नौ भाषाओं का स्वतंत्रता से उपयोग किया जाये। रूसी विधान में संख्या के बाहुल्य के कारण रूसी भाषा का ही प्राधान्य है और इसी प्रकार यहां भी हिन्दी का ही प्राधान्य होगा। हम में से किसी को भी किंचितमात्र भी संदेह नहीं है कि भारत की राष्ट्रभाषा, सरकारी भाषा का स्थान हिन्दी ही ग्रहण करेगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस सभा में उन भाषाओं को बोलने की आज्ञा, जिनका कि ऊंचा साहित्य है और ऊंची परम्परा है, तब तक न दी जायेगी, जब तक कि वक्ता यह घोषित न करे कि वह अंग्रेजी या हिन्दी में बोलने में असमर्थ है। मैं यह प्रार्थना करता हूं कि इस सभा में अन्य भाषाओं को भी स्वतंत्रता से बोलने दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** इसके पूर्व मैं दूसरे सदस्य महोदय से सभा के सम्मुख बोलने के लिये कहूं, मेरे पास चालीस पर्चियां ऐसे सदस्यों से आई हैं, जो बोलना चाहते हैं। यह विषय इतना तात्कालिक और महत्त्वपूर्ण है कि मेरी तो यह इच्छा है कि विधान के मसौदे पर मत प्रकट करने का अवसर प्रत्येक सदस्य को दिया जाये। इसलिये क्या मैं वक्ताओं से यह अनुरोध कर सकता हूं कि मैंने दस मिनट की जो काल-सीमा निश्चित की है, उसके बाहर वे न जायें?

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यह विधान का मसौदा जिसे कार्यवाहक माननीय डा. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, एक वृहत् प्रलेख है। उन्होंने तथा उनके साथियों ने इसे तैयार करने में वास्तव में बहुत कष्ट उठाया होगा। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अपने भाषण में बताया कि समिति से 5 या 6 सदस्यों के निकल जाने से और रिक्त स्थानों की पूर्ति न होने से

माननीय डा. अम्बेडकर को किस कठिनाई का सामना करना पड़ा। मैं इस अधिवेशन में इसी आशा से बराबर उपस्थित रहा हूं कि यह विधान ऐसा होगा, जिसमें उन लोगों की आकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति होगी, जिन्होंने तीस वर्ष तक स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और जो स्वर्गीय महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हुये। श्रीमान्, प्रस्तावना देखकर मुझे यही आशा थी कि सब कुछ यथाक्रम ठीक चलेगा और ऐसा विधान बनेगा, जिससे हमारे करोड़ों लोगों को खाना और कपड़ा मिलेगा और इस देश के सभी लोगों को शिक्षा तथा सुरक्षा उपलब्ध होगी। परन्तु श्रीमान्, मुझे तथा मेरी विचारधारा के कुछ अन्य लोगों को यह देख कर अत्यन्त निराशा हुई कि इस मसौदे में एक विषय के उपरान्त दूसरा विषय इस प्रकार उठाया गया है कि हमारे लिये यह समझना बहुत ही कठिन हो गया है कि इसमें हमारी स्थिति क्या है, हमारे देश की स्थिति क्या है और लोगों की स्थिति क्या है। जब यह विधान कानून का रूप धारण करेगा, तो इससे उनको क्या फायदा होगा? जब श्रीमान्, जब विधान का मसौदा तैयार किया जाता है, तो उन लोगों से, जो इसे तैयार करते हैं, क्या आशा की जाती है? विधान-परिषद् के सदस्यों से, जो उसे स्वीकार करते हैं, क्या आशा की जाती है? देश में कैसी दशा है? देश में कैसी परिस्थिति है? क्या हम देश की कठिनाइयों को दूर करने के लिये जो कुछ भी आवश्यक है, उसे कर रहे हैं? इसी उद्देश्य से मैं उन सभी सदस्यों के भाषण सुनता रहा हूं, जो इस विधान के सम्बन्ध में स्थिति का स्पष्टीकरण करने में अपना समय लगाते रहे हैं। मैं उन सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूं, जो यह नहीं भूले हैं कि इस देश में स्वतंत्रता की लड़ाई किस प्रकार लड़ी गई और किस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त की गई। जहां तक इस विधान का मसौदा तैयार करने का सम्बन्ध है, माननीय डा. अम्बेडकर के प्रति सब प्रकार से आदर भाव रखते हुये भी मुझे यह कहना ही चाहिये कि वे अपने को उन लोगों की स्थिति में नहीं रख सके हैं, जो तीस वर्ष तक इस देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते रहे हैं। उन्होंने एक ही वाक्य लिखकर ग्राम-पंचायत-प्रणाली को निन्दित घोषित कर दिया है। उन्होंने अंग्रेजों के पुराने समय के एक बड़े आदमी श्री मेटकाफ की और ग्राम-पंचायतों के उनके इस वर्णन की ओर संकेत किया है कि चाहे चोटी पर सरकार का जो कुछ भी हाल रहा हो और चाहे जो कोई आया और गया, उनको इससे कुछ मतलब नहीं रहा और वे स्थित रही और चलती रही। डा. अम्बेडकर को इस विषय पर इस प्रकार विचार न करना चाहिये था। निस्सन्देह जब इस देश में बाहर से आये हुये कई शासकों के अत्याचार से ग्राम-पंचायतें निष्प्राण हो गयी थी, तो हम इस गति को प्राप्त हो गये थे। किन्तु उनका अनेक

[श्री टी. प्रकाशम्]

प्रकार से दमन होते हुये भी वे जीवित रहीं। मेटकाफ दुनिया को और हमें, जो इसकी उपेक्षा कर रहे हैं, यही बताना चाहते थे। इसलिये इस आधार पर ग्राम-पंचायतों की निन्दा नहीं की जा सकती। आज मैं एक क्षण के लिये भी इसका समर्थन नहीं कर सकता कि ग्राम-पंचायतों का वह रूप हो, जिसका वर्णन मेटकाफ ने अपने समय की स्थिति के अनुसार किया है। ग्राम-पंचायतें समयोचित होनी चाहिये और उनमें ग्रामवासियों को वास्तविक शक्ति प्रदान करने, उन पर शासन करने, धन प्राप्त करने और उसे व्यय करने की क्षमता होनी चाहिये। मैं यह जानना चाहता हूं कि विधान के इस मसौदे के अंतर्गत यह कैसी सरकार बनाई जा रही है! यह किसके लाभ के लिये है? क्या यह थोड़े से लोगों के लाभ के लिये है, या उन करोड़ों लोगों के लाभ के लिये, जो कर देते हैं? चाहे उनके पास शक्ति हो या न हो वे इस देश में प्रयुक्त उस दूषित प्रणाली के अधीन कर तो देते ही हैं जिसके भार से हम पिछले डेढ़ सौ वर्षों से कराहते रहे हैं और जिससे मुक्ति पाने के लिये हम यथाशक्ति सचेष्ट रहे हैं। अंग्रेजों ने केन्द्र में और प्रान्तों में इस प्रकार की प्रणाली प्रयुक्त की कि कृषकों और श्रमिकों तथा अन्य लोगों को इसलिये कोई न कोई कर देना ही होता है कि सरकार सेंट जार्ज के किले से या दूसरे किले से या दिल्ली के इस केन्द्र से या अन्य जगहों से अपना शासन-कार्य चलाती रहे। उन करोड़ों लोगों की क्या दशा होती है, जो कर देते हैं? ब्रिटिश-प्रणाली के अधीन रुपया उन लोगों के पास चला जाता है, जिनको यहां धीरे-धीरे स्थापित किया गया है और रुपया वहां पहुंचने पर उन लोगों द्वारा खर्च कर दिया जाता है। करदाता नहीं जानता कि रुपया कैसे खर्च होता है और वह सदा इस बारे में धोखे में रखा जाता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी वह नहीं जानता कि कोई शासक भी है या नहीं, क्योंकि हम पुरानी प्रणाली को ही चिरस्थायी कर रहे हैं और हमारे सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि हम सम्राट जार्ज के नाम पर शासन कर रहे हैं। गवर्नर-जनरल को ब्रिटिश-मंत्रिमंडल नियुक्त करता है और हमारे नोटों पर सम्राट जार्ज की मुहर लगी रहती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के दो वर्ष बाद भी हमारी यह दशा है। इसलिये यह न्यायोचित ही होगा कि इस देश के लोगों द्वारा निर्वाचित यह विधान-परिषद् डा. अम्बेडकर के इस विधान के मसौदे को इस प्रकार संशोधित करने की चिन्ता करे, जिससे इस विधान से जनसाधारण को वास्तविक लाभ हो, क्योंकि उन्हीं के लिये हमारे उस परम मित्र ने लड़ाइयां लड़ीं, जो हमारे बीच से विदा हो गया है और हमें इस कार्यभार को सम्भालने के लिये यहां छोड़ गया है। जब वह जीवित था, तो उसकी प्रणाली को तथा

उसकी योजनाओं को हमारा या देश के करोड़ों लोगों का पूर्ण हार्दिक समर्थन प्राप्त न हुआ। यदि यह होता तो, जैसा कि उसने कहा था, हमें बारह महीने में ही स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती। प्रबल कल्पना से विभूषित वह पुरुष हमारे साथ रहा और चाहे हमने उसे कितना ही धोखा दिया हो, उसने हमें शिक्षा दी, हमें शांत रखा, सभी संग्राम लड़े, सफलता प्राप्त की और भावी शासन के लिये हमें एक योजना दी। करोड़ों लोगों के हृदयों को प्रेरित करने वाले इस पुरुष ने अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुये लोगों को ऊंचा उठाया और उन्हें यह समझाया कि ''आप सब मनुष्य हैं और आप सब में वैसा ही आत्मबल है जैसा मुझमें है। यदि आप अपने को शिक्षित बनायें और मेरे कार्यक्रम को व्यवहार में लाये, तो आप सारा कार्य सम्पन्न कर लेंगे और स्वतंत्रता का प्रादुर्भाव करने में समर्थ होंगे।'' श्रीमान्, पचास वर्ष से कुछ अधिक वर्ष पूर्व इंग्लैंड में महामना लाला लाजपतराय से मेरी भी बातचीत हुई थी। वे स्वतंत्रता-संग्राम के सर्वप्रथम त्यागियों में से थे और उन्होंने मुझसे कहा था, ''देखिये तो इन लोगों का कैसा संगठन और अनुशासन है और ये कैसे अपना कार्य करते हैं। क्या हम इन अंग्रेजों को अपने देश से निकाल कर स्वतंत्रता प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं?'' जब मैंने उस देश में कदम रखा, तो मेरी भी यही धारणा थी। इस परिस्थिति में गांधी जी एक द्रष्टा के रूप में आये और उन्होंने हमें ऊंचा उठाया। मैंने और यहां उपस्थित मेरे कई मित्रों ने उनके आन्दोलन में भाग लिया और पिछले तीस वर्षों तक हम संग्राम करते रहे। जिस व्यवस्था की स्थापना हम चाहते थे वह तो अभी तक स्थापित नहीं हुई है। ब्रिटिश-प्रणाली ने हमको डूबा दिया था, देश को कुचल दिया था और लोगों को असहाय बना दिया था। पूंजीवादी प्रणाली से मुक्ति पाने के लिये उन्होंने 'रचनात्मक कार्यक्रम को प्रयुक्त किया, ताकि प्रत्येक नर और नारी अपने कर्त्तव्य का पालन कर सके और अपने को त्याग करने के तथा अन्त में अंग्रेजों को निकाल देने के योग्य बना सके। वे सफल हुये और लोग भी सफल हुये। जन-साधारण इसलिये धन्यवाद के पात्र हैं कि वे चाहे अग्नि-परीक्षा रही हो, या जल-परीक्षा, उसमें प्रविष्ट हुये। हमने गांधी जी के समाजवादी आधार पर विधान-निर्माण नहीं किया है। उन्होंने भाषाओं के आधार पर सारे देश को बांटा और कांग्रेस के लिये विधान बनाकर उसे 30 वर्ष तक चलाया, यही कारण था कि हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। उस समाजवादी आधार को हटाकर एक पूंजीवादी आधार को प्रस्तुत किया जा रहा है। इस विधान का अन्तिम फल यही होगा। आज हमारे सामने खाने और कपड़े की विकट समस्यायें उपस्थित हैं। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या इस विधान से इनमें से कोई समस्या हल हो सकती है? मेरे विचार से जब तक संसार में पूंजीवादी प्रणाली स्थित है, तब तक यह सम्भव नहीं है। आप चाहे जितने

[श्री टी. प्रकाशम्]

प्रस्ताव पास करें और चाहे जितनी समितियां बनायें, परन्तु वे मुद्रास्फीति की समस्या को हल नहीं कर सकती। इसलिये यह आवश्यक है कि इस विधान का इस प्रकार संशोधन हो कि पूंजीवादी धन-प्रणाली को स्थान न मिले, किन्तु हमारी अपनी समाजवादी प्रणाली प्रयुक्त हो। मेरा तात्पर्य रूसी प्रणाली से नहीं है। हमारी अपनी प्रणाली थी और हमारी वह प्रणाली भी है, जिसे महात्मा गांधी ने प्रयुक्त किया और तीस वर्ष तक सफलता से चलाया। इस प्रकार का विधान का मसौदा मेरी समझ के बाहर है। मैं डा. अम्बेडकर से अपील करता हूं... मैं केवल उन्हीं को दोष नहीं देता हूं। डा. अम्बेडकर तीस वर्ष तक रणक्षेत्र में नहीं रहे, उन्होंने किसी प्रकार भी इसका महत्त्व नहीं समझा। वे अपने जीवनभर गांधी तथा कांग्रेस की सारी प्रणाली और कार्यक्रम पर आघात करते रहे...

***उपाध्यक्षः** सावधान, सावधान!

***श्री टी. प्रकाशम्:** यदि मुझे इतना न कहना चाहिये, तो मेरी समझ में नहीं आता कि... मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। विधान का मसौदा एक गलत दिशा की ओर चला गया है और उसमें संशोधन करने की बहुत आवश्यकता है। श्रीमान्, मैं इस सभा के सदस्यों से व आपसे यह कहूंगा कि यदि यह इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया और यदि वही पूंजीवादी धन-प्रणाली स्वीकार की गई, तो हमें याद रखना चाहिये कि अन्य देश किस दशा को प्राप्त हुये। संसार के पूंजीवादी देशों ने जिस धन-प्रणाली को स्वीकार किया, वह एक बार नहीं बल्कि दो बार विफल हो चुकी है। आपने देखा कि पहले युद्ध के उपरान्त एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई, जिसे संसार का प्रथम आर्थिक संकट कहा जाता है। जर्मनी का दिवाला निकल चुका था। इंग्लैंड का भी बहुत कुछ दिवाला निकल चुका था। उसके पौंड की कीमतें विदेशी बाजार में केवल सात शिलिंग रह गई थी। यदि हमारे यहां के अग्रगण्य वणिकों ने, पूंजीपतियों ने यहां से सोने का निर्यात न किया होता, तो इंग्लैंड का भी पूरी तौर से दिवाला निकल गया होता। यह पहली बात है। इसके बाद संसार को एक दूसरे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। आपको स्मरण होगा कि उस समय इंग्लैंड के चांसलर आफ एक्सचेकर डाल्टन ने क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि परिवर्तित परिस्थिति में डालर एक्सचेंज व्यवसाय से इंग्लैंड को प्रतिदिन एक करोड़ तीस लाख डालर की क्षति उठानी पड़ रही थी और सारी व्यवस्था नष्ट होने को थी। यदि मार्शल-सहायता-प्रणाली से स्थिति सम्भाल न ली गई होती, तो आज उस देश की बड़ी दुर्दशा हो गई होती। आज इंग्लैंड इस प्रकार की कठिन परिस्थिति में है। इसलिये मैं इस सभा के माननीय

सदस्यों को चेतावनी देता हूं कि संशोधनों के लिये जो समय निश्चित किया जाये उस समय बिना इस विधान के मसौदे को संशोधन किये हुये इसे स्वीकार कर लेने से देश इसी प्रकार के आर्थिक संकट में पड़ जायेगा। मैं यहां इसकी प्रतीक्षा करता रहा कि इन बातों के सम्बन्ध में प्रकाश मिलता है या नहीं। कभी मैं, उस धन-प्रणाली के संबंध में जो स्वीकार की जानी चाहिये, अर्थ-मंत्री महोदय से सम्पर्क स्थापित करना चाहता हूं; परन्तु वे यहां उपस्थित नहीं रहते। (*इस अवसर पर उपाध्यक्ष महोदय ने फिर घण्टी बजाई।*) श्रीमान्, अच्छा मैं समाप्त करता हूं।

, ***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। हम एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहे हैं और हम में से किसी के लिये भी यह बहुत कठिन होगा कि वह दस मिनट के अन्दर अपने विचार व्यक्त कर ले। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप अपने नियम को सख्ती से न बरतें और हमें अपने विचारों को पूर्ण रूप से और स्वतंत्रता से प्रकट करने दें। पहले हमने जब माननीय अध्यक्ष महोदय से इस प्रकार की प्रार्थना की थी, तो उन्होंने हमको आश्वासन दिया था कि हमें बहस के लिये काफी और पूरा समय मिलेगा। मुझे आशा है कि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्षः** वास्तव में कल प्रत्येक सदस्य दस मिनट से अधिक बोला। मैं सभा के हाथों में हूं। जितना भी समय आप चाहे, मैं दे सकता हूं परन्तु आखिर कोई निश्चित नियम तो होना ही चाहिये।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अभी आपने कहा कि कल प्रत्येक सदस्य दस मिनट से अधिक बोला। एक अनुभवी वक्ता होने के नाते मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी भी वक्ता के लिये यह कितना कष्टकर होता है कि उसे घंटी बजाकर यह स्मरण कराया जाये कि उसका समय समाप्त हो गया है। मेरे मित्र ने जो यह कहा है कि दस मिनट के अन्दर किसी के लिये भी किसी बात की संतोषजनक व्याख्या करना असम्भव है, इसमें काफी वजन है। यह आवश्यक है कि समय कम से कम बीस मिनट रखा जाये और यदि आवश्यक हो तो सामान्य बहस के लिये एक दिन और रखा जाये।

***उपाध्यक्षः** क्या आप सामान्य बहस के लिये एक दिन और रखने को तैयार हैं?

***कई माननीय सदस्यः** जी हां।

***एक माननीय सदस्य:** उनके सम्बन्ध में क्या होगा, जो बोल चुके हैं और जिन्होंने केवल दस मिनट लिये?

***डा. जोसेफ आलबन डी'सूजा** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस महान् राष्ट्र के सहस्त्रों वर्ष प्राचीन इतिहास में कभी भी इसकी इतनी आवश्यकता न थी और न शायद कभी होगी, जितनी कि इस महत्त्वपूर्ण काल में है जबकि यह आदरणीय सभा स्वतंत्र सम्पूर्ण सत्ताधारी प्रजातंत्रात्मक भारतीय गणराज्य के विधान के मसौदे के प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक खण्ड पर विचार करेगी, कि हर किसी को उसका यथोचित भाग देने के लिये हम सच्चाई व शांति से अपने हृदयों की ओर अन्तर्दृष्ट हों, हम भ्रातृभाव से परिपूर्ण सहयोग और सहकारिता की प्रबल भावना दिखायें, जिससे हमारे अनेक प्रकार के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में शांति, सामंजस्य तथा सद्भाव का प्रादुर्भाव हो, हमारी कल्पना पर्याप्त रूप से विस्तृत हो, ताकि इस विधान के सम्बन्ध में जो पेचीदे और कठिन प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हैं, उन पर हम मुख्यत: समस्त देश की सम्पन्नता और समुन्नति के व्यापक दृष्टिकोण से विचार कर सकें और साथ ही अपने पड़ौसी को अपने समान प्यार करने के सर्वविदित सिद्धान्त का पर्याप्त रूप से तथा उदारता से लोकहितार्थ प्रदर्शन करें, ताकि राष्ट्र के उच्च हितों के साधन में संकुचित भावना प्रधान विचार बाधक न हों और न उनका राष्ट्र की आधारभूत नीति सम्बन्धी निर्णयों पर ही कोई प्रभाव पड़े।

कई सदस्यों ने, लगभग प्रत्येक सदस्य ने जो मुझसे पूर्व बोल चुका है, यह स्वीकार किया है कि विधान का मसौदा एक सर्वोत्कृष्ट रचना है। मैं तो कहूंगा कि डा. अम्बेडकर और मसौदा-समिति ने कई वर्षों के अथक परिश्रम के बाद जो विधान उपस्थित किया है, वह चिरस्मरणीय है और यह कार्य निश्चित रूप से विशेषज्ञों का कार्य कहा जा सकता है और आरम्भ से अन्त तक इससे तुलनात्मक तथा विशिष्ट कार्यकौशल का परिचय मिलता है।

इस आदरणीय सभा में जिस विधान को माननीय प्रस्तावक महोदय ने एक वृहत् ग्रंथ कहकर लक्षित किया है और यह भी कहा है कि संसार के सभी विधानों से इसका आकार-प्रकार वृहत् है, क्योंकि इसमें 315 अनुच्छेद हैं और आठ परिशिष्ट हैं। उसकी परीक्षा किस दृष्टिकोण से होनी चाहिये, इसके सम्बन्ध में इन सामान्य बातों को कहकर और इस सभा के माननीय सदस्यों को यह बताकर कि इस आधारभूत ग्रंथ पर किस दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिये, मैं इस विधान

में उल्लिखित कुछ विषयों की ओर संकेत करने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूं। अल्पसंख्यकों के अधिकार सम्बन्धी परामर्श-समिति का सदस्य होने के नाते न्याय मूलाधिकारों के सम्बन्ध में मेरी विशेषरूप से दिलचस्पी है और रही है। इस समय मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि मैं परामर्श-समिति के सभापति माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रति बहुसंख्यक दल ने जिस संतोषजनक और न्यायोचित ढंग से अल्पसंख्यकों को ये अधिकार प्रदान किये हैं, उसके लिये सर्वोत्कृष्ट रूप में अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं। श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि इस संतोषजनक तथा न्यायोचित व्यवस्था का यह प्रतिफल होगा कि सुख हो चाहे दुख, अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों का अन्त तक साथ नहीं छोड़ेंगे। श्रीमान्, मेरी यह प्रबल आशा है कि विधान के मसौदे में जिस रूप में इन अधिकारों को रखा गया है, उसमें इस आदरणीय सभा के विचार-विमर्श के फलस्वरूप कोई परिवर्तन न होने दिया जायेगा।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में बोलते हुये मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से एक नम्र निवेदन करना चाहता हूं। वह विधान के मसौदे के 299वें अनुच्छेद के सम्बन्ध में है, जिसमें कहा गया है:

> ''संघ में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष पदधारी होगा... प्रत्येक राज्य में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष पदधारी होगा, जिसको उस राज्य का शासक नियुक्त करेगा।''

श्रीमान्, संघ का यह विशेष पदधारी स्वभावत: केन्द्रीय विधान-मण्डल के अधीन रखा गया है, परन्तु इस आदरणीय सभा से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रावधान को कुछ इस प्रकार संशोधित किया जाये कि जैसे केन्द्र में इस विशेष पदधारी की नियुक्ति प्रधान करेंगे, उसी प्रकार नौ राज्यों में भी उनकी नियुक्ति प्रधान ही करें। राज्यों के इन पदधारियों को किसी न किसी प्रकार केन्द्र के प्रति उत्तरदायी बनाना चाहिये। यदि ऐसा किया गया, तो ये पदधारी राज्यों में बिना भय या पक्षपात के कार्य करेंगे। मेरा यही निवेदन है और मैं आशा करता हूं कि राज्यों के विशेष पदधारियों को केन्द्र के प्रति उत्तरदायी बनाने के निमित्त यदि सम्भव होगा, तो संशोधन किया जायेगा।

मैं एक और निवेदन करना चाहता हूं और वह भी अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 25 में दिये हुये वैधानिक उपचारों के बारे में है। साधारणतया, जैसी कि विधान के मसौदे में प्रावधान है, ऐसे मामलों पर केवल

[डा. जोसेफ आलबन डी'सौजा]

सर्वोच्च न्यायालय विचार करेगी। परन्तु श्रीमान्, मैं इस आदरणीय सभा को यह बताना चाहता हूं कि अधिकतर मामलों का सम्बन्ध हमारे नागरिकों के, हमारे जनसाधारण के गरीब वर्गों ही से होगा। उपखण्ड (3) में यह प्रावधान है कि पार्लियामेंट कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों को भी ऐसे मामलों पर विचार करने का अधिकार दे सकती है। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि अन्य न्यायालयों को कानून द्वारा अधिकार देने की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा अच्छा तो यह होगा कि यह व्यवस्था यहीं कर दी जाये। यदि इस प्रकार का कोई संशोधन किया जाये और पार्लियामेंट के उपायों या कानूनों की प्रतीक्षा न की जाये, तो इससे गरीब वर्गों के लोगों की और विशेषतया जनसाधारण की स्थिति में सुधार हो सकता है।

श्रीमान्, जो अन्तिम बात मैं कहना चाहता हूं, वह उन सुझावों के सम्बन्ध में है, जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों से सम्बन्धित विशेष पदधारियों के केन्द्र के प्रति उत्तरदायी होने के सम्बन्ध में मैंने अभी किये हैं। मुझे विश्वास है कि यह आदरणीय सभा यह समझ गई है कि मैं अत्यन्त शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में हूं। जितना ही अधिक केन्द्र शक्तिशाली होगा, उतने ही सुचारू रूप से राज्य की सेवाओं और राज्य के कार्य का एकीकरण हो सकेगा। भारत का इतिहास इसका प्रमाण है कि केन्द्र के अशक्त होने के कारण ही साम्राज्य तथा राजवंश विनष्ट हो गये। केन्द्र को सशक्त बनाने के प्रश्न को सबसे महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिये और यदि हम शताब्दियों के विदेशी प्रभुत्व के उपरान्त प्राप्त स्वतंत्रता का संरक्षण चाहते हैं, तो हमें यही करना होगा। सम्पूर्ण संघ के एकीकरण के लिये शक्तिशाली केन्द्र परमावश्यक है और मुझे आशा है कि जैसा कि उपस्थित विधान में सन्निहित है, वह तीन विषयों के साथ—अर्थात् संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती विषयों के साथ और केन्द्र को प्रदत्त अवशिष्ट अधिकारों के साथ स्वीकार किया जायेगा।

श्रीमान्, इस विधान के मसौदे पर मुझे अपने विचार व्यक्त करने का अवसर देने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम अपने कार्य के सबसे अन्तिम तथा दुर्गम सोपान पर पहुंच गये हैं। यद्यपि मुझे इसकी चिन्ता है कि हमें इस कार्य को यथासम्भव शीघ्रता से समाप्त कर देना चाहिये, परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि हम भारत का विधान बना रहे हैं और यह

न होना चाहिये कि केवल शीघ्रता के निमित्त हम इन प्रावधानों पर यथोचित गम्भीरतापूर्ण विचार-विमर्श न कर सके; क्योंकि इसका देश के भविष्य तथा उसके हितसाधन पर प्रभाव पड़ सकता है।

मसौदा-समिति के सदस्यों ने एक सुन्दर कार्य किया है, परन्तु वह दो प्रकार की आलोचना से मुक्त नहीं है। मेरे विचार से समिति ने अवैध रूप से विधान-समिति का रूप धारण कर लिया। इस परिषद् की खुली सभा में जो महत्त्वपूर्ण प्रावधान स्वीकार किये गये थे, उनको बदल डालने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली। इस सभा द्वारा नियुक्त समितियों की रिपोर्टों को अस्वीकार करने की अधिकारिणी भी उसने अपने को समझ लिया। (वाह, वाह) मैं उस समिति का सदस्य था, जिसने दिल्ली और केन्द्र शासित प्रान्तों के सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार की थी। यह सच है कि उस समिति की रिपोर्ट पर इस सभा में विचार नहीं किया गया और कोई निर्णय नहीं किये गये। परन्तु मेरी समझ से मसौदा-समिति के सदस्यों के विचारों के स्थान में उसकी सिफारिशों को विधान में समाविष्ट करना अधिक अच्छा होता। (वाह, वाह) श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में अधिक नहीं कहूंगा और मैं इसे सभा पर छोड़ता हूं कि जब इस विषय सम्बन्धी खण्ड उठाये जायें, तो वह विचार करे कि कौन सुझाव स्वीकार्य है। परन्तु आज मैं केवल उन आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बोलूंगा, जिनकी ओर प्रस्तावक महोदय ने संकेत किया है।

डा. अम्बेडकर ने विधान के उन अंगों पर यथोचित रूप से जोर दिया है, जो उसके अपरिवर्तनशीलता या लचीलेपन से सम्बन्ध रखते हैं और उनका यह दावा है कि भारतीय विधान का मसौदा अमेरिका के विधान से या अन्य संघीय विधानों से अधिक लचीला है। परन्तु क्या मैं यह कहने की धृष्टता करूं कि लचीलापन हमेशा लाभप्रद नहीं होता है? किसी भी देश का विधान मनुष्य के ढांचे के समान होता है। विधान को बनाये रखने के लिये कुछ हिस्सों का कड़ा और कुछ हिस्सों का लचीला होना आवश्यक है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप उन हिस्सों पर ध्यान दें, जिनका कड़ा होना आवश्यक है। मेरे विचार से आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ढिलाव दिखाना खतरे से खाली नहीं है। हमारे हृदय में यह विचार उठ सकता है कि समय की आवश्यकताओं को देखकर उनमें ढील देना बुद्धिमानी ही होगी, परन्तु यदि एक बार भी आप आधारभूत सिद्धान्तों में ढील देंगे, तो वह विधान में एक रोग का रूप धारण कर लेगी जो अन्ततोगत्वा उसको विनष्ट कर देगी।

[श्री के. सन्तानम्]

श्रीमान्, वे आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं, जिनको कि विधान में समाविष्ट करने की चेष्टा की जा रही है? पहले एकात्मक, समतायुक्त और असाम्प्रदायिक नागरिकता की व्यवस्था है। दूसरे प्रौढ़ मताधिकार की व्यवस्था है। तीसरे एक संघ की और चौथे उत्तरदायी अधिशासन की व्यवस्था है। मेरा यह सुझाव है, हम इस विधान के प्रावधानों पर इस दृष्टि से विचार करें कि इन सिद्धान्तों में से प्रत्येक सिद्धान्त उसमें पूर्ण रूप से सन्निहित हैं, या नहीं।

उदाहरण के लिये एकात्मक, समतायुक्त और असाम्प्रदायिक नागरिकता के सिद्धान्त को ही लीजिये। यह कहा जाता है कि मूलाधिकारों से इनकी रक्षा होती है। परन्तु डा. अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रत्येक मूलाधिकार के सम्बन्ध में बड़े-बड़े अपवाद है। उन्होंने कहा कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी सर्वोच्च न्यायालय को इन मूलाधिकारों को संशोधित करना पड़ा। यह सच है। परन्तु हमारे सर्वोच्च न्यायालय को भी इन मूलाधिकारों के सम्बन्ध में विचार करना होगा। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने तो यह किया कि राज्यविशेष की आवश्यकताओं को देखकर मूलाधिकारों के विस्तार को सीमित कर दिया, परन्तु भारत के संघीय न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्त्तव्य हो जायेगा कि वह प्रतिबंधों के विस्तार को सीमित करें, क्योंकि प्रतिबंधों की विस्तृत व्याख्या करने से तो हमें मूलाधिकारों के अध्याय को ही निकाल देना चाहिये।

श्रीमान्, मेरे विचार से हमें इन प्रावधानों की परीक्षा करनी चाहिये और प्रतिबंधों की यथासम्भव संक्षिप्त परिभाषा करनी चाहिये, क्योंकि वर्तमान काल में जब आये दिन आकस्मिक परिस्थितियां उत्पन्न होती रहती है और आकस्मिक शक्ति ग्रहण करनी होती है, यह आवश्यक है कि विधान कम से कम लोगों के कुछ नागरिक अधिकारों की रक्षा करे। स्थानीय विधान-मण्डलों या केन्द्रीय विधान मण्डलों के लिये यह आसान न होना चाहिये कि उनका पूर्णतया हरण करें।

श्रीमान्, दूसरा प्रश्न प्रौढ़ मताधिकार का है। मैं यह चाहता हूं कि हम इसे सिद्धान्त के रूप में मान लें कि केन्द्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह सारे देश के प्रौढ़ मताधिकार सम्बन्धी रजिस्टरों और तालिकाओं को तैयार करे, क्योंकि हम जानते हैं कि प्रान्तीय और स्थानीय सरकारें, जो इन तालिकाओं को भाषा सम्बन्धी या असाम्प्रदायिक विचारों के आधार पर संशोधित करती हैं, सम्भवत: इनको सावधानी से तैयार करने में कुछ ढील-ढिलाव दिखायें। (वाह, वाह) कुछ

दोष हो सकते हैं। उदाहरणार्थ मद्रास में एक बार मतदाताओं का रजिस्टर तैयार करने का प्रयत्न किया गया। यह सारा काम एक या दो ही दिन में पूरा हो गया और ऐसी शिकायतें हैं कि उस नगर के 50 प्रतिशत मतदाता छोड़ दिये गये हैं। कम से कम यहां उसके पीछे कोई उद्देश्य नहीं था। परन्तु इन रजिस्टरों को तैयार करने में शासन प्रबंध योग्यता और पूर्णता से नहीं किया गया। श्रीमान्, हम समझते हैं कि हम इस सम्बन्ध में सचेत होकर या सावधानी से काम नहीं ले सके। हम यह चाहते हैं कि भारत का प्रत्येक नागरिक इस रजिस्टर में स्वत: सम्मिलित हो जाये और तालिका में सम्मिलित होने के उसके अधिकार का विधान में हर प्रकार संरक्षण हो। इसलिये मैं सभा के सम्मुख यह सुझाव उपस्थित करता हूं कि वह केन्द्रीय सरकार को ही इस रजिस्टर को तैयार करने व उसकी रक्षा करने का जिम्मेदार ठहराने के औचित्य पर विचार करे। इस समय केन्द्रीय सरकार भारत में दस वर्ष के उपरान्त जनगणना करने के लिये जिम्मेदार है। मेरे विचार से हम एक ऐसी स्थायी व्यवस्था कर सकते हैं, जिससे दस वर्षीय जनगणना ही न हो, बल्कि सारे देश के प्रौढ़ मताधिकारियों के रजिस्टर भी तैयार हो जाये, ताकि इन रजिस्टरों में गड़बड़ होने की कोई शिकायत न हो।

श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर दुहरी नीति के सम्बन्ध में बोले हैं। अब हमारे पास तीन प्रकार की सूचियां हैं—संघीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची। मसौदा-समिति ने समवर्त्ती सूची को अधिक विस्तृत बना दिया है। हमें समवर्त्ती सूची का अनुभव है। उससे केन्द्र और प्रान्तों का अन्तर आवृत्त हो जाता है। संघीय विधानों में यही राजनैतिक प्रवृत्ति दिखाई देती है कि समय पाकर संघीय सूची तो बढ़ जाती है और समवर्त्ती सूची छोटी होते-होते अदृश्य हो जाती है, क्योंकि जब एक बार केन्द्रीय विधान-मण्डल कानून-सम्बन्धी किसी अधिकार-क्षेत्र को अपने हाथ में ले लेता है, तो प्रान्तीय विधान-मण्डल का अधिकार-क्षेत्र समाप्त हो जाता है। इसलिये हमें यह समझना चाहिये कि दस या पन्द्रह वर्ष के समय में सारी समवर्त्ती सूची संघीय सूची का रूप धारण कर लेगी। हमें विचार करना चाहिये कि क्या हम यही चाहते हैं और क्या यही उचित है? यदि हम यह नहीं चाहते हैं, तो समवर्त्ती सूची को छोटे से छोटा बना देना चाहिये, या इस सूची में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय और प्रान्तीय अधिकार-क्षेत्र के विस्तार को निश्चित कर देना चाहिये।

अब मैं उत्तरदायी अथवा मंत्रिमण्डलमूलक अधिशासन के प्रश्न पर आता हूं। प्रत्येक उत्तरदायी शासन में यह परमावश्यक है कि उत्तरदायित्व की सीमाओं को स्पष्ट तथा निश्चित रूप से निर्धारित किया जाये। इस सम्बन्ध में मेरे विचार से

[श्री के. सन्तानम्]

कोई अर्थ-भ्रम न रहना चाहिये। यदि एक बार भी उत्तरदायित्व पर आवरण डाला जाता है, तो मंत्रिमंडलमूलक शासन का स्वत: निराकरण हो जाता हैं और प्रधानमूलक शासन सन्निकट आ जाता है। मुझे तो प्रधानमूलक शासन के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है और वह देश के लिये उपयुक्त भी हो सकता है। यदि आवश्यक हो, तो केन्द्र और प्रान्त सभी बातों और प्रतिफलों को समझ कर प्रधान-सम्बन्धी एक अध्याय सम्मिलित कर सकते हैं। कई अर्थों में प्रधानमूलक शासन प्रणाली भारत के लिये उपयुक्त और अन्य प्रणालियों से श्रेष्ठ सिद्ध होगी। इससे स्थिरता उत्पन्न होती है और मेरे विचार से इस समय भारत को लचीलेपन से स्थिरता की अधिक आवश्यकता है। परन्तु हमको ऐसा न करना चाहिये कि हम मंत्रिमंडलमूलक प्रणाली को स्वीकार तो करें और फिर अनेक प्रकार से उसकी जड़ खोदने का प्रयत्न करें।

उदाहरणार्थ प्रधान तथा शासकों के लिये निर्देश सम्बन्धी विलेख को ही लीजिये। मसौदा समिति ने प्रधान के लिये निर्देश सम्बन्धी विलेख के लिये एक अध्याय ही अलग रखा है। यदि भारत का प्रधान-मंत्री इन निर्देशों की उपेक्षा करे, तो क्या होगा? क्या गवर्नर-जनरल उससे यह कहेगा कि विधान के अनुसार मुझे इसका अधिकार है कि मैं आपसे कहूं कि आप निर्देशों का पालन करें? इसकी सम्भावना है कि भारत के प्रधान और प्रधान-मंत्री के बीच कलह उत्पन्न हो जायेगा। इन निर्देशों के विलेखों से यह भी सम्भव है कि प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों और गवर्नरों के बीच कलह उत्पन्न हो जाये। मेरे विचार से यदि हम उत्तरदायी शासन स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें उसे पूर्ण रूप से स्थापित करना चाहिये। हमें आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता न करना चाहिये, क्योंकि इससे हम कई प्रकार की नियम विरुद्ध स्थितियों तथा द्विविधाओं में पड़ जायेंगे और हर प्रकार की द्विविधा से छुटकारा पाने के लिये विधान में विभिन्न प्रकार के उपायों को स्थान देना सरल न होगा।

मेरे पास जितना समय है, उसमें मैंने कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों की ओर संकेत मात्र किया है, क्योंकि जब हम विधान के एक-एक अनुच्छेद को उठायेंगे, तो उन पर विचार-विमर्श करना आवश्यक होगा।

परन्तु, श्रीमान्, दो एक ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय है कि उन पर विशेष रूप से विचार करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ विधान में परिवर्तन करने के प्रावधानों को ही लीजिये। यह प्रावधान है कि दोनों सभाओं के सदस्यों की एक निश्चित बहुसंख्या

द्वारा एक ही बैठक में विधान में परिवर्तन किया जा सकेगा। मेरे विचार में कोई ऐसी व्यवस्था न होनी चाहिये कि विधान में आसानी से परिवर्तन किया जा सके, क्योंकि राष्ट्रीय भावना में एकाएक परिवर्तन होने से कई प्रकार के राजनैतिक दल सशक्त हो सकते हैं। विधान को तो राष्ट्र की रीढ़ समझा जाना चाहिये। यदि वह आवश्यकता से अधिक लचीला हुआ और विधान मण्डल में किसी दल के बहुमत से बार-बार परिवर्तित हुआ, तो प्रजातंत्र की सारी बुनियाद विनष्ट हो जायेगी। इसलिये मेरे मत से विधान में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में जो प्रावधान हैं, उन पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। विधान में परिवर्तन करना आसान न होना चाहिये। यदि महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में परिवर्तन करने का अधिकार पार्लियामेंट को दिया गया, तो मेरी यह राय है कि सदस्यों की निश्चित बहुसंख्या से अधिक बहुसंख्या को इसका अधिकार होना चाहिये और कम से कम छ: महीने में या एक वर्ष में दो बार इस सम्बन्ध में विचार होना चाहिये। इस प्रकार हम यह व्यवस्था कर सकेंगे कि विधान में परिवर्तन तभी किये जा सकेंगे, जब कि इसके प्रतिफलों को पूर्णरूप से अनुभव कर लिया जाये। हमें जल्दी में अपने विधान में परिवर्तन न करने चाहिये। कनाडा में जब से विधान बना है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। क्या इससे उसको कोई नुकसान हुआ है? संयुक्त राष्ट्र अमरीका में बहुत कम अवसरों में विधान में परिवर्तन होता है।

मेरे विचार से विधान को लचीला बनाने और उसमें आसानी से परिवर्तन करने की व्यवस्था करने की अपेक्षा उसे बेलोच बनाना ही स्थिरता के हित में श्रेयस्कर होगा। विधान ही हमारी स्वतंत्रता का अस्थिपिंजर है और अस्थियों को लचीला बनाने की अपेक्षा बेलोच बनाना ही श्रेयस्कर होगा।

श्रीमान्, मुझे खेद है कि डा. अम्बेडकर, ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में बोलते समय बहक गये और उनका यह कथन उचित नहीं है कि वे आधुनिक विधान के लिये उचित पृष्ठभूमि नहीं प्रदान करते। कुछ हद तक तो मैं उनसे सहमत हूं, परन्तु ग्राम-पंचायतों की उनकी निन्दा से तथा उनके इस कथन से मैं सहमत नहीं हूं कि राष्ट्र पर जितनी आपदायें पड़ी हैं, उनका कारण वही रही हैं। मेरे विचार से क्रांतियों और उथल-पुथलों के होते हुये भी उन्होंने भारतीय जीवन को बनाये रखा और यदि वे न होती, तो भारत में अराजकता फेल जाती। मेरी तो इच्छा यह थी कि ग्रामीण स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में उचित सीमाओं के अन्दर वैधानिक व्यवस्था की जाती। निस्सन्देह इस सम्बन्ध में कठिनाइयां हैं, क्योंकि कई गांव ऐसे हैं, जो बहुत छोटे हैं और कई बहुत बड़े हैं और पंचायतों को स्थापित करने के लिये उनके समूह बनाना आवश्यक होगा, परन्तु मेरे विचार से किसी

[श्री के. सन्तानम्]

न किसी अवसर पर, जब सभी प्रान्त पंचायतें स्थापित कर चुकेंगे, उनके अस्तित्व को विधान में स्वीकार करना आवश्यक हो जायेगा, क्योंकि भविष्य में प्रत्येक ग्राम का स्थानीय स्वायत्त शासन ही इस देश की स्वतंत्रता की बुनियाद प्रमाणित होगा।

श्रीमान्, मैं एक मिनट में समाप्त कर रहा हूं। मुझे एक ही बात और कहनी है। मैं उसकी और केवल संकेत करूंगा। मैं प्रस्तावक महोदय के इस मत से सहमत हूं कि राज्यों और प्रान्तों के बीच कृत्रिम विभेद को यथासम्भव शीघ्रता से समाप्त कर दिया जाये। इस मार्ग में केवल यही रोड़ा है कि राज्यों के पास केन्द्रीय विषय होने से कुछ आर्थिक हित उत्पन्न हो गये हैं। यदि हम राज्यों द्वारा प्रान्तों के समान ही विधान स्वीकार करने पर जिन आर्थिक परिणामों का सामना करना पड़ेगा, उनके सम्बन्ध में उन्हें संरक्षण प्रदान करने की कोई व्यवस्था कर सकें, तो राज्यों को प्रांतों के स्तर पर आने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि हमें यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिये कि प्रान्तों के स्तर पर आने से किसी भी राज्य को नुकसान नहीं होगा और साथ ही हमें उन्हें यह आश्वासन देना चाहिये कि यदि प्रान्तों के स्तर पर आने से उनको कोई क्षति हुई, तो उसकी पूर्ति केन्द्रीय धनराशि से की जायेगी। मेरा यह सुझाव है कि प्रान्तों से एकात्मकता स्थापित करने से उन्हें जो कोई भी आर्थिक हानि उठानी पड़े; उसके सम्बन्ध में किसी संरक्षण-व्यवस्था पर हम विचार करें। मैं इससे सहमत हूं कि हमें 'ए' वर्ग के राज्य और 'बी' वर्ग के राज्य नहीं रखने चाहिये। क्योंकि इससे केवल गड़बड़ ही पैदा होगी। मैं तो यह चाहता हूं कि इस प्रकार के विभिन्न वर्गों के प्रदेशों का अन्त कर दिया जाये। प्रादेशिक विधान केवल एक ही प्रकार का होना चाहिये, किन्तु उसमें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

श्रीमान्, समय सम्बन्धी कठोर नियम के कारण, जिससे मेरे विचार से विधान पर यथोचित विचार नहीं हो सकता, मैंने अपना कथन कुछ ही बातों तक सीमित रखा है और मुझे आशा है कि यह सभा उन पर विचार करेगी।

*श्री आर.के. सिधवा (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, एक योग्य वकील के नाते डा. अम्बेडकर ने विधान के मसौदे को बहुत मधुर शब्द कहकर इस सभा में उपस्थित किया है और उन्होंने बाहर के लोगों तथा इस सभा के भी कुछ माननीय सदस्यों को प्रभावित किया है परन्तु इस मापदण्ड से विधान को नहीं मापा जा सकता है। यह विधान इस देश में जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित

करने के लिये बनाया गया है, और डा. अम्बेडकर ने स्थानीय अधिकारियों और ग्रामों की उपेक्षा करके जनतंत्रात्मक विचारधारा का ही शून्यन कर दिया है। श्रीमान्, स्थानीय अधिकारी ही देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के आधारस्तम्भ है और यदि विधान में उनके लिये कोई स्थान नहीं है, तो वह विधान विचार करने के योग्य ही नहीं है। स्थानीय अधिकारियों की इस समय बड़ी दयनीय अवस्था हैं जो प्रान्त यह शिकायत करते हैं कि केन्द्र अत्यन्त सशक्त बना दिया गया है और उनके कुछ अधिकार उनसे छीन लिये गये हैं, उन्होंने भी अपनी शक्ति के मद में अन्धे होकर स्थानीय निकायों के अधिकार छीन लिये हैं। प्रान्तीय सरकारों ने कुप्रबन्ध के नाम पर आज दिन 50 प्रतिशत से अधिक स्थानीय निकायों का शासन-प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है। श्रीमान्, पहले ब्रिटिश शासन की भी यही नीति रही है और हमारी प्रान्तीय सरकारें स्थानीय निकायों की सारी प्रणाली में विस्तृत परिवर्तन करने की अपेक्षा उसी नीति का अनुसरण कर रही है। जब तक हमारे विधान में इन प्रान्तीय सरकारों को यह निर्देश न किया जाये कि वे इन संगठनों को ग्रामोन्नति के लिये उपयोगी साधन बनाये; श्रीमान्, मैं तो यह कहूंगा कि जनतंत्र के नाम पर इस विधान पर विचार करना ही निरर्थक है। स्थानीय निकायों की आर्थिक दशा अत्यंत दयनीय है। पश्चिमी देशों में स्थानीय निकायों के आय के साधन बिजली तथा आमोद-प्रमोद के साधन पर लगाये हुये कर ही हैं, परन्तु प्रान्तीय सरकारें इन करों को उन्हें देने के लिये राजी न होंगी। इस देश में ये कर प्रान्तीय सरकारें ही ले लेती हैं। इससे स्थानीय निकायों का केवल ढांचा ही ढांचा रह गया है। यदि यही मनोवृत्ति रही तो आप स्थानीय निकायों और ग्रामों से उन्नति की आशा कैसे कर सकते हैं? श्रीमान्, गवर्नर-जनरल महोदय ने अपने हाल के भाषणों में तथा हमारे उपप्रधान-मंत्री ने भी अपने बम्बई के भाषण में कहा कि प्रत्येक ग्रामीण को यह समझाना चाहिये कि वह एक जिम्मेदार आदमी है, वह एक जिम्मेदार औरत है और उसे यह अनुभव कराना चाहिये कि देश के शासन में उसका भी हाथ है। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि आप हमारे समाज में सबसे बहुसंख्यक इन ग्रामीणों की उपेक्षा करते रहेंगे, तो यह कैसे सम्भव हो सकेगा?

आप केवल अपने हाथ में शक्ति ले लेंगे और चोटी पर कुछ सुधार कर लेंगे, परन्तु आप उस जनसमुदाय की कुछ भी सहायता न कर सकेंगे, जो आज सुखी होने के लिये सचेष्ट है। इसके विपरीत यदि हम इस विधान में उन बातों की ओर संकेत न करें, जिन्हें मैंने बताया है, तो यह भावना और भी प्रबल हो जायेगी कि जनसाधारण की उपेक्षा की जा रही है। श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने

[श्री आर.के. सिधवा]

यह ठीक ही स्वीकार किया है कि कई अन्य देशों के विधानों के विभिन्न प्रावधानों को लिया गया है और उन्हें इस विधान में स्थान दिया गया है। मेरा अपना विचार यह है कि अन्य देशों के विधानों के कुछ सुन्दर प्रावधानों को लेने में कोई हानि नहीं है। केवल यही देखना चाहिये कि ये प्रावधान हमारे देश में भी उसी प्रकार लाभप्रद होंगे, जैसे कि वे अन्य देशों में हैं। परन्तु मैं अनुसूची 7 की सूचियों में देखता हूं, जो महत्त्वपूर्ण सूचियां हैं, कि संघीय अधिकारों की सूची, राज्यों की सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्त्ती सूची को सन् 1935 ई. के एक्ट से लेकर थोड़े से परिवर्तनों के साथ ज्यों का त्यों रख दिया गया है। परन्तु मैं नहीं जानता कि प्रान्तीय सरकारों से भी यह पूछने की फिक्र की गई है कि उनमें कुछ त्रुटियां तो नहीं रह गई हैं। मैं एक-दो बातों के बारे में कहूंगा। चुंगी, व्यवसाय-कर और भारत सरकार की इमारतों पर लगने वाले कर के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों और भारत सरकार के बीच विवाद रहा है और कई मामले संघीय न्यायालय के सम्मुख भी उपस्थित किये गये हैं। मुझे तो यह दिखाई देता है कि उपसमिति ने इन मदों को बिना उन कठिनाइयों पर विचार किये हुये ही सम्मिलित कर लिया है, जिन्हें कि प्रान्तीय सरकारों ने पैदा कर दिया है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि जब ये तीन सूचियां यहां उपस्थित की जायें, तो सभा इन पर ध्यानपूर्वक विचार करे। पिछली बैठक में ये सूचियां उपस्थित की गई थी, परन्तु समय कम था, इसलिये ये जैसी की तैसी छोड़ दी गई। मैं आशा करता हूं कि इन सूचियों पर बहुत सावधानी से विचार किया जायेगा क्योंकि ये विधान के अन्य प्रावधानों के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं।

जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता कि इस समिति को इस सभा के सर्वसम्मत निर्णय को उलट देने का अधिकार था या नहीं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इस उपसमिति को सिफारिशें करने का अधिकार है और मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि ये भी सिफारिशें ही हैं। परन्तु जब एक आधारभूत विषय के सम्बन्ध में मौलिक अधिकारों के एक आधारभूत सिद्धान्त के बारे में सभा ने पूर्ण रूप से विचार करके एक निर्णय किया था, तो मेरे विचार से इन सिफारिशों को करने में भी उसने अपनी अधिकार-सीमा का उल्लंघन किया है।

मैं केवल एक उदाहरण दूंगा। विधान-परिषद ने अपने पिछले अधिवेशन में यह मूलाधिकार निश्चित किया था:

''संघ के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा स्वातंत्र्य से यथोचित कानूनी कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा और न

किसी व्यक्ति को कानून के सामने समता से अथवा कानूनों के समरक्षण से वंचित किया जायेगा।''

मसौदा-समिति ने इसमें परिवर्तन किया है। मैं तो कहूंगा कि उसमें क्रांतिपूर्ण परिवर्तन करके उसने सभा के सम्मुख उपस्थित किया है। मैं उनकी सिफारिश पढ़ता हूं:

''भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से कानून द्वारा नियम कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा...''

अन्य शब्दों को निकाल दिया गया है। हम इस विषय पर यथासमय विचार करेंगे। परन्तु श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि जब पिछली बार हमने मूलाधिकारों को स्वीकार किया था तो उनके सम्बन्ध में यह शिकायत थी कि जिस सीमा तक हमें जाना चाहिये था, वहां तक हम नहीं गये हैं; परन्तु यदि अब नागरिकों के उन अधिकारों को भी आप संकुचित कर देते हैं, तो श्रीमान्, मूलाधिकारों का नाम ही निरर्थक हो जायेगा।

एक बात के सम्बन्ध में जो राज्यों के विधान के सम्बन्ध में कहीं गई है, मैं वास्तव में प्रभावित हुआ हूं। प्रस्तावक महोदय ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसका मैं समर्थन करता हूं। पिछली बार जब हमने यह विधान बनाया था, तो राज्यों की स्थिति आज से भिन्न थी और मैं नहीं समझता कि प्रत्येक नये राज्य के लिये एक पृथक विधान आवश्यक है। एक प्रावधान इस प्रकार होना चाहिये कि सभी राज्यों को इस विधान का प्रान्तीय भाग स्वीकार करना चाहिये। गवर्नर के स्थान में नरेश को गवर्नर समझा जाना चाहिये और इसी प्रकार कुछ अन्य परिवर्तन किये जाने चाहिये; परन्तु प्रत्येक राज्य के लिये पृथक विधान न होना चाहिये। आखिर वे सब भारतीय संघ में समाविष्ट हो गये हैं। उनके कानून हमारे यहां के कानूनों के समान ही होने चाहिये। अब किसी एक आदमी का राज नहीं है और मेरी समझ में नहीं आता कि एक ही देश में दो प्रकार के कानून किस प्रकार होंगे, विशेषतया जब कि सभी राज्य संघ के ही अंग हो गये हैं। इसलिये श्रीमान्, इस प्रश्न पर कि क्या राज्यों के लोगों को अपने ऐसे विधान बनाने देने चाहियें, जो इस समय हम जिस मुख्य विधान को बना रहे हैं, उसके आधारभूत सिद्धान्तों का ही हनन करें। मूलाधिकारों के सम्बन्ध में उनके निर्णय हमारे निर्णयों से संकुचित हो सकते हैं। कई बातों के सम्बन्ध में हमने इस देश के प्रत्येक नागरिक के लिये अन्तिम रूप से जो व्यवस्था की है, उसके विरुद्ध उनके निर्णय हो सकते हैं।

[श्री आर.के. सिधवा]

श्रीमान्, उदाहरणार्थ उच्च न्यायालयों ही को लीजिये। आजकल भारत के उच्च न्यायालयों में सबसे अच्छे लोग न्यायाधीशों के पदों पर आसीन हैं वे उच्चतम कोटि के लोग हैं और उनके निर्णयों को लेकर संघीय न्यायालय और प्रिवी कौंसिल में अपील हो सकती है। परन्तु राज्यों के इन द्वितीय श्रेणी के न्यायालयों के सम्बन्ध में—द्वितीय श्रेणी के कह कर मैं उनका निरादर नहीं कर रहा हूं, परन्तु यह सच्ची बात है कि वहां के लोग प्रथम श्रेणी के नहीं हैं—वहां के लोगों के निर्णयों के विरुद्ध संघीय न्यायालय में अपील नहीं हो सकती। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या यह ठीक है कि आप राज्य के नागरिक को इस अधिकार से वंचित करें? इसलिये श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि इस विषय पर भी गम्भीरता से विचार करना होगा और राज्य के लोगों के काम में आसानी पैदा करने के लिये विधान का प्रान्तीय अंग कुछ परिवर्तनों के साथ उनके लिये भी अक्षरश: लागू किया जाना चाहिये।

अन्त में मैं यह कहूंगा कि अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने और उनकी रक्षा की ओर संकेत किया गया है। मैं अल्पसंख्यक-समिति और अल्पसंख्यक-उपसमिति में था और जिस प्रकार बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने अल्पसंख्यकों के प्रश्न को हल किया है, उसके लिये वह धन्यवाद का पात्र है और मैं यह कहूंगा कि इस सम्बन्ध में किसी के लिये भी शिकायत करना उचित नहीं है। जहां तक मेरे सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, यद्यपि जगहें सुरक्षित रखने के लिये हमसे प्रस्ताव किया गया था, परन्तु हमने धन्यवाद देकर इसे अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार कल काजी सय्यद करीमुद्दीन ने जगहों के संरक्षण को हटा देने पर जोर दिया। यह वक्तव्य, यद्यपि यह बहुत देर में दिया गया, स्वागत के योग्य है। जब बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने जगहें सुरक्षित रखने का प्रस्ताव पारसी सम्प्रदाय के सम्मुख रखा, तो हमने कहा—'जी नहीं, आपको धन्यवाद। हमें वह नहीं चाहिये।' इसी प्रकार श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि अन्य समुदाय भी बहुसंख्यकों की भेंट को धन्यवाद देकर अस्वीकार कर देंगे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): मि. खलीकुज़्ज़मा संरक्षण चाहते थे, न कि सय्यद करीमुद्दीन।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं नहीं समझ पाया कि वे क्या कह रहे हैं। इसलिये मैं अनुरोध करता हूं कि साम्प्रदायिकता के इस विषय को इस देश से निकाल बाहर किया जाये और इस विधान का ऐसा स्वरूप निश्चित किया जाये, जिस पर हम

गर्व कर सकें और संसार के लोगों से यह कह सकें कि भारतीयों ने ऐसा विधान बनाया है, जो अन्य देशों द्वारा अनुकरणीय है। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं समाप्त करता हूं। मैं आशा करता हूं कि मैंने जो बातें कही हैं, उन पर यथोचित समय पर ध्यान दिया जायेगा। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

श्री रामसहाय [संयुक्त राज्य ग्वालियर-इंदौर-मालवा: (मध्य भारत)]: वाइस प्रेसीडेण्ट साहब, विधान के सम्बन्ध में बहुत सी बातें अभी तक बहुत से साहबान ने यहां पर कही हैं। उनको मैं इस वक्त यहां पर नहीं दोहराऊंगा। मैं सिर्फ स्टेट्स के सम्बन्ध में कुछ अर्ज करना चाहता हूं।

मैं यह बात हाउस के सामने रख देना चाहता हूं कि स्टेट की जनता बिल्कुल इस बात को इत्तफाक करती है कि सेंटर को मजबूत होना चाहिये और वह इस तरह से हर प्रकार से सेन्टर के मजबूत बनाने के साथ है। लेकिन मुझे यह निवेदन करना है कि अभी तो विधान हमारे सामने आया है, उसमें स्टेट को बहुत कुछ ज्यादा नैगलैक्ट किया गया है। मिसाल के तौर पर एक बात मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। वह यह है कि अभी तक जो शिड्यूल फर्स्ट का 3 पार्ट है, उसमें स्टेट को ज्यों का त्यों रखा गया है। हालांकि बहुत सी स्टेट यूनियन में आ चुकी हैं और वह एक तरह से अपने आपको प्रान्त की शक्ल में बना चुकी हैं। मिसाल के तौर पर मैं मध्य भारत यूनियन की बात आपके सामने रखना चाहता हूं। मध्य भारत-राज्यप्रमुख ने एक नया इंस्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन 15 जून को तहरीर किया है और इसके मुताबिक उन्होंने वह सारे सबजैक्ट्स जो सातवें शिड्यूल की पहली लिस्ट में व तीसरी लिस्ट में हैं, टैक्स या ड्यूटी को छोड़ कर सब को सेंटर के हवाले कर देना मंजूर कर लिया है। जिसके मानी हैं कि जुडिशियरी में भी उन्होंने सेंटर की मातहती मान ली है, लेकिन फिर भी ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन के सेक्शन 111, 113 में सुप्रीम कोर्ट में वहां के हाईकोर्ट की अपील नहीं हो सकेगी। मैं नहीं समझता कि जब नये इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन के मातहत मध्यभारत यूनियन ने अपने सारे राइट्स सरण्डर कर दिये हैं, अपना सारा हक उनको दे दिया है, उनकी सब बातें मान ली हैं, तो क्या वजह है जिसकी वजह से वहां के हाईकोर्ट की अपील सुप्रीम कोर्ट में करने को मना कर दिया गया है। दफा 113 में यह बताया गया है कि रिफ्रेंस सुप्रीम कोर्ट में कर सकते हैं। लेकिन मैं यह समझ नहीं पाया कि सुप्रीम कोर्ट में वहां के हाईकोर्ट की अपील मान्य क्यों नहीं हो सकती। यह एक ऐसी चीज है, जो जनता के हकूक पर खास तौर से असर करती है।

मैं यह कहूंगा कि यही असर एक वजह काफी हो सकती है कि जनता के हक़ूकों को महफ़ूज रखने के लिये। यूनियन्स की हाईकोर्ट को प्रान्तों की हाईकोर्ट

[श्री रामसहाय]

की लाइन में लाने के लिये सुप्रीम कोर्ट के मातहत बना दिये जाये, तो इससे हमको अपने काम में बहुत कामयाबी व सहूलियत होगी और यूनियन को प्रान्तीय लाइन में लाने में भी काफी सहायता मिलेगी। कहा जा सकता है कि वहां के हाईकोर्ट काफी उन्नत नहीं हैं, लेकिन मैं यह बिल्कुल गर्व के साथ कह सकता हूं कि इन्दौर और ग्वालियर के जो हाईकोर्ट है, उनका भी स्टेटस दूसरे प्रान्तों के हाईकोर्ट से कम नहीं है, न उनका स्टेंडिंग ही कम है और उनमें भी उसी तरह से काबिल जजेज हैं, जिस तरह से प्रान्तों के हाईकोर्टों में होते हैं।

आनरेबिल अम्बेडकर साहब यह चाहते हैं कि स्टेट्स में जो कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बन रही हैं, वह न बने। लेकिन मैं समझता हूं कि अगर डा. अम्बेडकर साहब इस बारे में मिनिस्ट्री आफ स्टेट्स से थोड़ा सम्बन्ध रखते, वहां इस बात को रखते तो इस किस्म की पेचीदगियां, जो पैदा कर दी गई हैं, वह न होती। मिसाल के तौर पर मध्यभारत यूनियन की कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का मामला उनके सामने रखता हूं। वहां एक अन्तरिम लेजिस्लेचर बन रही है और दूसरी कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बनेगी। एक ही वक्त में यह दोनों चीजें रखने की क्या वजह हो सकती है। वहां अन्तरिम लेजिस्लेचर रहेगा और उसके बाद फिर कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बनेगी। अभी अन्तरिम लेजिस्लेचर का सेशन होने की नौबत नहीं आई है। कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का काम कब शुरू होगा, यह देखना है। अन्तरिम लेजिस्लेचर के सदस्य यहां की कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली में विधान बनाने के लिये बैठे हैं। मेरी समझ में यह बात नहीं आती है कि वही लोग जब वहां धारासभा में बैठकर कानून बना सकेंगे और वहां विधान बना रहे हैं, तो वहां का विधान क्यों नहीं बना सकेंगे। इस तरह की पेचीदगियां पैदा कर दी गई हैं। मैं समझता हूं कि अगर डॉ. अम्बेडकर साहब इस बारे में स्टेट मिनिस्टर सरदार पटेल से बातचीत करते, तो मुझे यकीन था कि बहुत से मसलों को आसानी के साथ हल किया जा सकता था।

स्टेट्स में जो कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बनी है, या बन रही है, अब उनकी जरूरत बाकी नहीं रहती। खास तौर से ऐसी सूरत में जब कि करीब-करीब सारी रियासतें प्रान्त की शक्ल अख्तियार कर चुकी हैं। मैं हाउस से यह निवेदन करना चाहता हूं कि पहले शिड्यूल के पार्ट 3 को रिवाइज़ कर देना चाहिये और जहां यूनियन बन गई हैं, उनको पहले पार्ट में शामिल कर देना चाहिये। इस तरह से शामिल करने का नतीजा यह होगा कि वह प्रान्त की शक्ल अख्तियार कर लेंगी।

इनमें और प्रान्तों में फर्क यह होगा कि प्रान्तों में जो गवर्नर होंगे, वह चुने हुये होंगे और यूनियनों में स्टेट के राजप्रमुख होंगे, जो प्रिंसेज के चुने हुये होंगे। जैसा कि अभी मिस्टर सन्तानम् और मिस्टर सिधवा ने कहा कि इस तरह प्रान्त और यूनियन के एक होने से हमको सुविधा हो जायेगी और मैं समझता हूं कि यह चीज बहुत जरूरी और लाजमी है। हमको इन दो शिड्यूल्स के पार्टस को रिवाइज़ कर देना चाहिये और उनको इस तरह से बनाना चहिये कि जो स्टेट्स यूनियन में आ चुकी हैं, उनको प्रान्तीय लेबल में लाया जाये।

एक्सपर्ट कमेटी, जो फाइनेंशियल प्रावीजन्स के बारे में मुकर्रर की गई थी, उसने यह बात तय की है कि 10 साल के अन्दर सारे स्टेट्स को कम से कम प्रान्तों के लेबल में होना चाहिये। मैं देखता हूं कि इस सम्बन्ध में इस विधान में ऐसी कोई चीज नहीं रखी गई है, जिससे कि एक्सपर्ट कमेटी की रिपोर्ट को प्रेक्टिकेबिल शेप दिया जाये। तो मैं ड्राफ्टिंग कमेटी से यह निवेदन करूंगा कि वह कम से कम इस तरह की शक्ल जरूर अख्तियार करे जिससे जिन स्टेट्स के यूनियन बन चुके हैं, उनको प्रान्तीय लेबल में खड़ा किया जाये और इस तरह के कार्य में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये।

मैं हाउस के सामने एक बात और अर्ज करना चाहता हूं कि मैसूर और ट्रावनकोर की जो बड़ी-बड़ी स्टेट्स हैं और जो अपने को बहुत प्रान्तों से अच्छा कहने का दावा करती हैं, वहां रूलर्स व नुमाइन्दों से यह अर्ज करूंगा कि उनको भी अपना इन्ट्रस्ट छोड़कर प्रान्त की शक्ल में आ जाना चाहिये, जिस तरह से दूसरे प्रान्त हैं उन सब साधनों को छोड़कर, जो प्रान्त के लिये जरूरी नहीं हैं, सबको सेंटर को दे देना चाहिये। इस तरह से हम सब लोग एक मजबूत सेंटर के बनाने में सहयोग दे सकते हैं। मैं नहीं समझ सकता हूं कि ग्वालियर स्टेट यूनियन से क्यों बाहर और स्टेटों की तरह नहीं रह सकती थी। मगर वहां के राजा ने खुद इस बात की जरूरत समझी और उसने अपने सारे अधिकार सेंटर को दे दिये। जिस तरह से इस विधान में प्रान्तों की जनता के लिये रखा गया है, उसी तरह से स्टेट की जनता के लिये यह विधान होना चाहिये। इसलिये मैं यह बात हाउस के सामने रखना चाहता हूं और ड्राफ्टिंग कमेटी से खास तौर से इस बात के लिये अर्ज करना चाहता हूं कि उनको कोई तरीका ऐसा अख्तियार करना चाहिये कि जो यूनियन प्रान्तों की शक्ल में बन चुके हैं और जो बड़ी स्टेट अभी यूनियन में नहीं आई हैं, उनके लिये कोई ऐसा रास्ता बना दिया जाये, जिससे वह इस बात में एक तरह की शक्ल अख्तियार कर सकें।

श्री जयनारायण व्यास: वाइस प्रेसीडेंट साहब, डॉ. अम्बेडकर और उनके साथियों ने जो मसविदा कांस्टीट्यूशन का हमारे सामने रखा है उसमें जो परिश्रम किया गया है, उसके लिये उनको और उनके दूसरे साथियों को और टाइपिस्टों और कापिइस्टों, सबको धन्यवाद देना पड़ेगा। यह बड़ा भारी मसविदा है और इसमें सारी बातें आई हैं। लेकिन जैसा कि आम तौर पर इन्सानी मसविदों में हुआ करता है, इस मसविदे में भी बहुत सारी कमियां रह गई हैं। खास तौर से स्टेट नाम डालकर और स्टेट की परिभाषा, डेफिनिशन न देकर तो एक तरह से हम लोगों को उलझन में डाल दिया है। टेरीटोरियल दृष्टि से, प्रादेशिक दृष्टि से स्टेट क्या हैं, यह बिलकुल वेग (Vague) सा रख दिया गया है। उसकी परिभाषा ही नहीं मिलती। साथ ही साथ नागरिक अधिकारों की दृष्टि से भी अगर देखा जाये, तो पता नहीं चलता कि स्टेट किसे कहते हैं। फंडामेंटल राइट्स की दृष्टि से आगे चलकर स्टेट्स में लेजिस्लेचर आफ दी स्टेट्स, और लोकल गनर्वमेंट और गवर्नमेंट आफ दी स्टेट्स, इन सबको स्टेट्स बता दिया गया है। और साथ ही चूंकि स्टेट्स आम तौर पर इंडियन स्टेट्स, रियासतों के लिए लागू होता था, इसलिए स्टेट्स शब्द के बदले में शायद कोई दूसरा शब्द होता, तो ज्यादा अच्छा होता।

अब स्टेट्स को भी कई-कई हिस्सों मं बांट दिया गया है। गवर्नर्स प्राविंसेज़, चीफ कमिश्नर्स प्राविंसेज़ हैं और जो तीसरी चीज है, उसको रियासतें कह सकते हैं। यानी इंडियन स्टेट्स रहेंगी। शिड्यूल पार्ट 1 के पार्ट 3 में उनको बताया गया है। डॉ. अम्बेडकर साहब ने अपनी स्पीच में जो बातें कहीं कि स्टेट्स को इतना बड़ा हो जाना चाहिये, जितने कि करीब-करीब प्राविंसेज़ होते हैं और उनको उसी तरह से रहना चाहिये, जैसे कि किसी प्राविंस को रहना है, मैं उन भावनाओं का समर्थन करता हूं। दरअसल हम जो स्टेट्स में रहने वाले हैं, वे छोटे-छोटे रहकर, छोटे-छोटे इलाकों में रहकर अपनी आर्थिक व्यवस्था पूरी नहीं कर सकते और अपना इन्तजाम भी अच्छी तरह से नहीं निभा सकते। लेकिन साथ ही साथ हम डॉ. अम्बेडकर साहब और उनके साथियों से भी पूछना चाहेंगे कि हमको प्राविंसेज़ के बराबर रखने के लिये आपको भी कुछ फिक्र करनी चाहिए थी। आपने जो शिड्युल 1 का पार्ट 3 रखा है, उसमें आपने हमको छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया है। आखिर उसमें भी हमें बड़ा-बड़ा बनना चाहिए था। आपने जो फैडरल कोर्ट में

अपील के लिए प्राविजन रखा है, उसके सम्बन्ध में जिनको कि रियासतें कहते हैं, अर्थात् प्रिंसेज स्टेट्स कहते हैं, उनको यह अपील का प्राविजन नहीं मिला है। यह केवल प्राविंसेज को मिला है, तो हमको इस फैडरल कोर्ट की अपील के मामले में हरिजन क्यों बना दिया गया है। तो जहां तक फेडरल कोर्ट और न्यायालय से ताल्लुक रखने वाली यह बात है, उसमें स्टेट्स के लोगों को हरिजन बनाने की जो यह नीति है, वह यह बताती है कि आपने भी बड़े-बड़े यूनिट बनाने के लिये कुछ फिक्र नहीं की है। बल्कि मैं तो यह देखता हूं कि आपने मैन्टल रिजर्वेशन रख छोड़ा है। आप कहते हैं कि बड़े-बड़े स्टेट्स बनाइये, लेकिन आपको चाहिए कि आप हमको भी हक दें। मिस्टर सिधवा ने अभी कहा कि आप बड़े-बड़े प्राविंसेज के बराबर अपने को बना लीजिये और पार पर उनके साथ आ जाइये। मैं पूछता हूं कि कौन पार पर नही आना चाहता। लेकिन आप तो कहते हैं कि स्टेट्स के प्रिंसेज और प्राविंसेज के आदमी गवर्नर हो सकते हैं। लेकिन आप यह मौका स्टेट्स के लोगों को क्यों नहीं देते? अगर आप चाहते हैं कि स्टेट्स और गवर्नर्स प्राविंसेज दो चीज हैं, तो आपको साफ बात करनी चाहिए और साफ कह देना चाहिए कि हम स्टेट्स के लिए यह रिजर्वेशन रखना चाहते हैं। इतनी-इतनी बातें हम अलग रखेंगे और स्टेट्स के लोगों को यह नहीं देंगे। आपको यह बातें साफ कहनी चाहिए। लेकिन एक तरफ तो कहा जाता है कि स्टेट्स को गवर्नर्स प्राविंसेज लोगों को यह हक नहीं होगा कि वह गवर्नर बन सके, वहां के राजा भले ही बन सकें, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मैं समझता हूं कि यह इस कांस्टीट्यूशन में कुछ कमी है और इस कमी को पूरा करना चाहिए।

दूसरी बात जो मैं कह देना चाहता हूं, वह है प्राविंसेज के इलाकों के बारे में। इस विधान के अन्दर यह रखा गया है कि जो प्राविंसेज है, उनके कुछ इलाके निकल कर दूसरे इलाकों में मिल सकते हैं। दो या दो से ज्यादा इलाके मिलकर एक प्राविंस बना सकते हैं। इस तरह के प्राविंसेज बनाने के लिए जो शर्त रखी गई है वह यह है कि स्टेट के प्रेसीडेंट को या तो स्टेट का लेजिस्लेचर या उसके मेम्बरों की मैजारिटी जाकर अर्ज कर दें, या उसके मेम्बरान जाकर अर्ज

[श्री जयनारायण व्यास]

कर दें कि हम अपना एक प्राविंस बनाना चाहते हैं। लेकिन इस मामले में भी स्टेट्स के लोगों के लिए एक रिजर्वेशन रखा गया है, जो शिड्यूल 1 के पार्ट 3 के अन्दर आ गया है। स्टेटों को अपने लेजिस्लेचरों के मार्फत या अपने लेजिस्लेचर के मैम्बरों के मार्फत अर्ज कर देने पर एक बड़ा यूनिट बनाने की इजाजत नहीं है। उसके लिये कंसेंट आफ दी स्टेट इज नैसेसरी। मैं नहीं समझता कि कंसेंट आफ दी स्टेट के मायने क्या हैं? अगर स्टेट के लेजिस्लेचर की राय आ गई, अगर उसके मेम्बरों की राय आ गई है, तो फिर यही मेम्बरों की राय कंसेंट आफ दी स्टेट होनी चाहिये थी; लेकिन साफ मायने शायद कंसेंट आफ दी स्टेट से "कंसेंट आफ दी रूलर" हैं। अगर यह बात नहीं है, तो फिर क्या रेफरैंडम लिया जायेगा, या किसी और दूसरी, पद्धति से मालूम किया जायेगा। अगर कंसेंट आफ दी स्टेट के मायने कंसेंट आफ दी रूलर नहीं हैं, तो यह बतलाया जाना चाहिये। इसलिए मेरे ख्याल में जहां तक कि स्टेट्स का ताल्लुक है, विधान पूरे मुकम्मिल तौर पर साफ नहीं है।

दो-एक बातें इस विधान के बारे में मैं और कह देना चाहता हूं। मैं इस बात की प्रशंसा करूंगा कि जो हक दिए गए हैं, वह अलग-अलग क्लासेज के लोगों को बराबर के हक दिए गए हैं। लेकिन पता नहीं जान बूझकर या कैसे, जहां कुओं और धर्मशालाओं का हक दिया गया है, वहां मंदिरों में जाने का हक़ नहीं दिया गया है। पता नहीं अम्बेडकर साहब के ध्यान में यह बात आई या नहीं कि मन्दिरों में हरिजनों को जाने का हक़ क्यों नहीं दिया गया है? मैं समझता हूं कि या तो यह गलती है, या ओमीशन रह गया है। अगर वह ओमीशन रह गया है, तो वह इसको पूरा करेंगे।

एक चीज यह है कि माइनारिटी और मैजारिटी दोनों में भेद रखने की जरूरत नहीं की गई है और जो सिटीजन है, उसको आम तौर पर सिटीजन समझा गया है। लेकिन फिर भी इस बात को मान लिया गया है कि अगर कोई शिक्षा-संस्थायें, एजूकेशनल इंस्टीट्यूशंस चलती हों और उनको माइनारिटी चलाती हो, तो फिर उनको भी स्टेट मदद दे सकेगी। तो इसके मायने यह है कि अभी तक जो कम्युनल स्कूल्स और कम्युनल एजुकेशन इंस्टीट्यूशंस हैं, उनको चलाने की इसमें गुंजाइश

रखी गई है। मैं समझता हूं कि इस आज़ादी के जमाने में जब कि हम माइनारिटी और मैजारिटी दोनों को भाई-भाई की तरह रहना चाहिये, उस वक्त इस तरह की गुंजाइश रखना कोई ठीक बात नहीं है। ग्रांट इन एड तो यही बात कहती है।

मुझे सिर्फ एक बात और कहनी है और वह है लैंग्वेज के बारे में। इसके बारे में हमारे कई भाइयों ने चर्चा की है और वह यह है। एक साहब ने तो यह फरमाया कि यहां हिन्दी इम्पीरियलिज़्म कायम किया जा रहा है। दूसरे साहब ने फरमाया कि यहां तो लिंग्विस्टिक फैनेटिसिज़्म कायम किया जा रहा है। मैं उनसे यह अर्ज करना चाहता हूं कि कोई हिन्दी इम्पीरियलिज़्म या कोई लिंग्विस्टिक फैनेटिसिज़्म की बात नहीं है, जब हम यह कहते हैं कि हमारी कोई नेशनल लैंग्वेज होनी चाहिए। अगर हम अंग्रेजी को अपना सकते हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि हम हिन्दी को क्यों नहीं अपनायें। मगर आप हिन्दी को नहीं अपनाते, तो हिम्मत करके कह दीजिये कि अंग्रेजी हमारी नेशनल लैंग्वेज है। पर ऐसा करते नहीं। तो अंग्रेजी हमारी नेशनल लैंग्वेज है, नहीं और दूसरी लैंग्वेज को हम नेशनल लैंग्वेज बनने नहीं देंगे, यह बात ठीक नहीं है। सहानुभूति हो सकती है, लेकिन उनके लिए साथ ही मैं यह बात भी कह दूं कि उनको अब अपनी एक लैंग्वेज बनाने की कोशिश करनी चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे, तो खतरा यह नहीं है कि अंग्रेजी हमारे ऊपर लद जायेगी, बल्कि खतरा यह है कि जो आज लिंग्विस्टिक प्राविंसेज की बात चल रही है, वह लिंग्विस्टिक कंट्रीज के रूप में परिणत हो जायेगी। हम यह नहीं कहते कि हम एक भाषा ही बोलें। जब तक यह साहिबान न बोल सकें, अंग्रेजी बोलें, कोई मना नहीं करता। मैं खुद भी हिन्दी बोल रहा हूं, यद्यपि मेरी भाषा राजस्थानी है, जो हिन्दी से अलग है और जिसमें हिन्दी से कुछ खास खूबसूरतियां हैं। लेकिन यह सब कुछ होते हुए भी मैं जानता हूं कि ज्यादा से ज्यादा आदमी हिन्दी बोल सकते हैं और हिन्दी सीख सकते हैं। इसलिए एक भाषा हमको बनानी चाहिए। तो मैं यह उम्मीद करता हूं कि जो लोग हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की कोशिश कर रहे हैं, उनके बारे में यह गलतफहमी नहीं करनी चाहिए कि वह भाषा का आधिपत्य जमाना चाहते हैं, बल्कि वह एक भाषा चाहते हैं जो कि एक मुल्क के लिए जरूरी है। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रान्तीय

[श्री जयनारायण व्यास]

भाषायें खत्म कर दी जायेंगी, या जो जगह अंग्रेजी की मिली हुई है, वह खत्म कर दी जायेगी। यह हो सकता है कि आगे जाकर अंग्रेजी खत्म हो जाये।

मैं इन शब्दों के साथ, डा. अम्बेडकर ने जो विधान पेश किया है, उसका समर्थन करता हूं और आशा है कि उनको जो रद्दोबदल सुझाई है, उसको उसमें लाने की कोशिश करेंगे।

***श्री बी.ए. मांडलोई** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मसौदा-समिति के सभापति डा. अम्बेडकर ने अपने बहुत ही स्पष्ट भाषण में विधान के मसौदे की मुख्य बातों की व्याख्या की है। जो प्रश्न उठाये गये हैं, अर्थात् शासन का स्वरूप क्या है और देश का विधान कैसा है, उनके सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि वह संघीय शासन है और उसके साथ सशक्त केन्द्र है, तथा वह परिषदात्मक शासन भी है, जिसमें एक ही न्यायाधीशवर्ग है और आधारभूत कानूनों के सम्बन्ध में एकरूपता है। उन्होंने यह भी कहा कि स्थिरता की अपेक्षा उत्तरदायित्व पर जोर दिया गया है। यह प्रणाली शांतिकाल में तथा युद्धकाल में भी शक्तिशाली प्रमाणित होगी। विधान के मसौदे की जो आलोचनाएं की गई हैं, उनका उत्तर उन्होंने अपने भाषण में दिया है और मैं यह कहूंगा कि उनके भाषण में विधान के मसौदे की बहुत ही स्पष्ट व्याख्या की गई है। मसौदा-समिति ने जिस विधान के मसौदे को तैयार किया है, वह विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर आधृत है, अर्थात् संघीय अधिकार समिति, प्रान्तीय विधान-समिति, परामर्श-समिति और अल्पसंख्यकों की समिति पर वह आधृत है। विधान-परिषद् ने अपने पहले ही अधिवेशन में विधान के लक्ष्य के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकार किया था। वह प्रस्ताव हमारे आदरणीय नेता पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किया गया था और एकमत से स्वीकार कर लिया गया था। हमें यह देखना है कि हमारा विधान उस प्रस्ताव पर, उस लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पर आधृत है, या नहीं जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव की मांगों को पूरा किया गया है। मेरा यह निवेदन है कि विधान का मसौदा लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव का सच्चा प्रतिबिम्ब है और इसलिए हम यह कह सकते हैं कि इसने हमारे लक्ष्य की पूर्ति की है।

हमारे देश और राष्ट्र के उद्देश्य के सम्बन्ध में एक और कसौटी है, जिस पर हमें देखना है कि यह विधान का मसौदा पूरा उतरता है या नहीं। वह कसौटी यह है कि क्या उससे हमारी स्वतंत्रता, हमारी स्वाधीनता और हमारे प्रजातंत्रात्मक असाम्प्रदायिक शासन का पोषण होता है या नहीं। मेरा अपना यह मत है कि इस दृष्टिकोण से भी विधान के मसौदे से हमारे लक्ष्य की पूर्ति होती है।

परन्तु इस विधान के मसौदे में कुछ बातें छूट गई हैं। और कुछ विषयों पर यथोचित जोर नहीं दिया गया है। जो बातें छूट गई है, वे राष्ट्रीय पताका और राष्ट्रीय गान के सम्बन्ध में हैं। विधान के मसौदे में और विधान में, जिससे हमारे देश का शासन होगा, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय पताका को यथोचित स्थान मिलना चाहिये। इसकी भी आवश्यकता है कि एक भाषा और एक लिपि के सम्बन्ध में कोई प्रावधान रखा जाये। इस सम्बन्ध में हमारी निश्चयोक्ति होनी चाहिए; क्योंकि आखिर हमारा लक्ष्य तो यही है कि हमारा एक राष्ट्र हो और एक राज्य हो। यदि हमारी एक भाषा न हुई तो हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारा एक राष्ट्र है और एक राज्य है। हमारे देश में प्रचलित विभिन्न भाषाओं पर विचार करने पर यह अविवाद कहा जा सकता है कि हिन्दी को और देवनागरी लिपि को ही इस सम्मानित पद पर विभूषित किया जाये। हमें अंग्रेजी भाषा को यथाशीघ्र विदा कर देना चाहिये क्योंकि हमारी राष्ट्रीयता के लिए यह एक अपमानजनक बात होगी कि हम एक विदेशी भाषा को स्वीकार करें। इस देश के लोगों का एक बृहत् समुदाय हिन्दी भाषा बोलता है और उसे समझता है, तथा देवनागरी लिपि एक बहुत ही वैज्ञानिक लिपि है और उसे सरकारी लिपि मान लेना चाहिये।

यद्यपि हमने केन्द्र को काफी शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया है परन्तु मैं निवेदन करता हूं कि हमने प्रान्तों की ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया है। प्रान्तीय आयव्ययक असम्पन्न रहते हैं और प्रान्त बराबर दरिद्रता से पीड़ित रहते हैं। उन पर बहुत बड़े दायित्व है। उन्हें अज्ञान को, रुग्णता की और कई बातों को मिटाना है और राष्ट्रनिर्माण के विभागों को तथा रचनात्मक कार्य को चलाना है। केन्द्रीय आय से न्याय आधार पर प्रान्तों को धनराशि दी जानी चाहिए, ताकि वे यथोचित रूप से और योग्यता से अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकें।

[श्री बी.ए. मांडलोई]

डा. अम्बेडकर ने अपने भाषण में राज्यों के सम्बन्ध में एक अपील की है और वह यह है कि जो राज्य संघांगों में परिणत हो गये हैं और भारतीय संघ में समाविष्ट हो गये हैं, उन्हें प्रान्तों के ही स्तर पर रखा जाना चाहिये। हम यह अवश्य चाहते हैं कि वहां के कानून भी हमारे ही समान हों और वहां भी उन्नति हमारे ही समान हो। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि विधान के मसौदे में हमें प्रान्तों और राज्यों में विभेद न करना चाहिये। इस सभा में राज्यों के प्रतिनिधि हैं और उनसे परामर्श करके हम राज्यों को उसी स्तर पर ला सकते हैं, जिस स्तर पर विधान के भाग 1 में उल्लिखित प्रान्त हैं।

अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में भी कुछ कहा गया है। अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित परामर्श-समिति ने अल्पसंख्यकों के लिये कुछ संरक्षणों की सिफारिश की है। यद्यपि भविष्य के व्यवहार का आधार संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली होगा, परन्तु इन संरक्षणों को प्रावहित किया गया है। श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि यह युग स्वेच्छा से समर्पण करने का है। सन् 1947 ई. में अंग्रेजों ने एक सौ पचास वर्ष तक अपने राज्य को स्थिर रखकर उसे स्वेच्छा से समर्पण कर दिया यद्यपि कई वर्षों से कांग्रेस लड़ाई लड़ रही थी। फिर हमने देखा कि भारतीय राज्यों के नरेशों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। मुझे विश्वास है कि यदि अल्पसंख्यक अपने संरक्षणों को समर्पण कर दें, तो उनकी स्थिति पहले से सुन्दर तथा सशक्त हो जायेगी और उन्हें बहुसंख्यकों का कोई भय न रह जाएगा। यदि वे संरक्षणों को समर्पित कर दें और बहुसंख्यकों से नाता जोड़ लें और उनसे एकप्राण होकर मिल जाये, तो भारत पहले से कहीं शक्तिशाली हो जायेगा और राष्ट्रीयता के अपने आदर्श को हम शीघ्र ही प्राप्त कर लेंगे।

श्रीमान्, संसार के कई सभ्य देशों के विधानों की तुलना करके हमने अपना विधान तैयार किया है। सभी विधानों की अच्छी-अच्छी बातें ऐसे परिवर्तनों के साथ सम्मिलित कर ली गई हैं, जो हमारे देश के हित में आवश्यक है। यदि हम इस विधान को सच्चाई से और निष्ठापूर्वक व्यवहार में लाये तो मुझे विश्वास है कि हमारा देश सम्पन्न होगा, सशक्त होगा और सुखी होगा और हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेंगे। हम उसकी रक्षा ही न करेंगे, बल्कि अपने स्वर्गीय

नेता, अपने राष्ट्रपिता के उद्देश्य को भी पूरा करेंगे, जिन्होंने कहा था कि अब भारत की ऐसी स्थिति हो जायेगी कि वह अन्य पराधीन देशों को भी मुक्त करा सकेगा और सारे संसार में शांति और सम्पन्नता का साम्राज्य स्थापित कर सकेगा।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि डा. अम्बेडकर ने जिस प्रस्ताव को इस सभा में उपस्थित किया है, उसे स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे कई मित्रों ने यहां आकर इस विधान के मसौदे के कार्यवाहक माननीय कानून-मंत्री को बधाइयां दी है और यदि मैं उन्हीं की भावनाओं को व्यक्त करूं तो यह उसी बात की पुनरावृत्ति होगी। परन्तु यदि मैं विद्वान् काननू मंत्री को, जिस स्पष्टता से उन्होंने विधान के मसौदे को हमारे विचारार्थ उपस्थित किया है, उसके लिये विनय तथा आदरपूर्वक बधाई न दूं, तो मैं समझता हूं कि मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हूंगा।

यहां कुछ मित्रों और आलोचकों ने विधान के सम्बन्ध में कुछ आपत्तियां की है। एक आपत्ति जो कई मित्रों ने की है, वह यह है कि हमारा विधान वृहदाकार हो गया है। प्रस्तावक महोदय ने स्वयं इसके वृहत् स्वरूप की ओर संकेत किया था। यदि हम अन्य विभिन्न विधानों के खण्डों और अनुच्छेदों की परीक्षा करें, तो हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि हमारा विधान वास्तव में वृहदाकार है। श्रीमान्, आपको विदित है कि उसमें 315 अनुच्छेद हैं, जबकि उत्तरी ब्रिटिश अमेरिका अर्थात् कनाडा के विधान में केवल 147 अनुच्छेद है, आस्ट्रेलिया के कामनवेल्थ के एक्ट में लगभग 128 अनुच्छेद है; दक्षिणी अफ्रीका के संघ के एक्ट में 153 अनुच्छेद हैं; आयरलैंड के विधान में केवल 63 अनुच्छेद हैं; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विधान में 28 अनुच्छेद हैं; सोवियत रूस के विधान में 146 अनुच्छेद हैं; स्विटजरलैंड के संघीय विधान में 123 अनुच्छेद हैं; जर्मन रीख के विधान में 181 अनुच्छेद हैं और जापान के विधान में 103 अनुच्छेद हैं। इन विधानों पर दृष्टिपात करने से यह पता लगता है कि किसी भी विधान में 200 से अधिक अनुच्छेद नहीं हैं, जब कि हमारे विधान में 315 अनुच्छेद हैं।

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

आलोचकों ने हमारे विधान के वृहदाकार के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि हमारा देश बहुत बड़ा है और यहां 33 करोड़ लोग बसते हैं और हम संसार के मनुष्यों के लगभग पांचवें भाग के लिये विधान बना रहे हैं। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारा विधान वृहत् है। केवल यही बात नहीं है कि हम ऐसे लोगों के लिये विधान बना रहे हैं, जिनके लिये अभी तक किसी देश ने विधान नहीं बनाया है, किन्तु साथ ही हमें विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को भी हल करना है। इसके अतिरिक्त हमने अपने विधान में एक ऐसी व्यवहार-प्रथा प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया है, जिससे संघ-शासन की अपरिवर्तनशीलता और एकात्मक शासन की स्वेच्छाचारिता का निराकरण हो जायेगा। संघ-शासन और एकात्मक शासन के बीच सामंजस्य उत्पन्न करने में हमें कई एक अनुच्छेदों को स्थान देना पड़ा, जिससे हमारे विधान का आकार वृहत् हो गया।

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं, हमारे देश की अपनी अलग समस्याएं हैं। संसार के किसी देश में भी हमारे देश के समान नरेश-शासित राज्य नहीं है और इसमें कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है। कि इन सब बातों को आधुनिक जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के अनुरूप बनाने में हमारे विधान का मसौदा बनाने वाले कुछ ही अनुच्छेदों में सब कुछ न रख सके। इसलिये हमारे विधान के वृहदाकार के सम्बन्ध में जो आपत्ति की गई है वह निराधार है।

दूसरी आपत्ति यह है कि हमने विभिन्न विधानों के प्रावधानों को अक्षरश: ले लिया है और सोवियत रूप के विधान पर हमने दृष्टिपात नहीं किया। जहां तक इस आपत्ति का सम्बन्ध है, मैं इस आदरणीय सभा का ध्यान हमारे देश और सोवियत रूस में कुछ प्रत्यक्षत: वास्तविक और आधारभूत अन्तरों की ओर आकर्षित करता हूं। हमें यह न भूलना चाहिये कि रूस का विधान एक ही दल अर्थात् रूस के साम्यवादी दल के पूरे अठारह वर्ष के शासन के उपरान्त अस्तित्व में आया। पूरे अठारह वर्ष तक शासन-सूत्र उस दल के हाथ में रहा। सन् 1917 ई. की अक्टूबर क्रांति के फलस्वरूप वह दल पदारूढ़ हुआ और सन् 1935 ई. तक उन्होंने अपने देश के लिये विधान बनाने के बारे में सोचा ही नहीं। अठारह वर्ष के कठोर

एकदल-शासन के उपरान्त उन्होंने रूस के लिये विधान बनाने की बात सोची। हमारे देश की परिस्थिति रूस की परिस्थिति से बिल्कुल भिन्न है। स्वभावतः यदि हमने रूस के विधान के कुछ ऐसे प्रावधान समाविष्ट नहीं किये हैं, जो ऊपर से न्यायोचित प्रतीत हों, तो हमें यह न भूलना चाहिये कि हमने जान बूझकर उन्हें समाविष्ट नहीं किया है। यह कहा जाता है कि रूस के विधान में अल्पसंख्यकों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान की गई है, परन्तु हम यह भूलते हैं कि उन अठारह वर्षों में जब वह कठोर दल, अर्थात् रूस का साम्यवादी दल, रूस के तथाकथित जनतंत्रात्मक गणराज्यों में शासनारूढ़ था, तो उसने रूस के इन गणराज्यों में ऐसा सशक्त शासन स्थापित कर दिया था कि अब भी यद्यपि विधान में केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध विच्छेद करने की उनको स्वतंत्रता है, परन्तु वहां की परिस्थिति ऐसी है कि उनके लिये ऐसा सोचना भी असम्भव है। विधान बनने के बहुत पहले से ही जार्जिया, यूक्रेन आदि के गणराज्य तथा केन्द्रीय एशिया के कुछ अन्य गणराज्य उस सुगठित, सुसंगठित रूसी साम्यवादी दल के चंगुल में फंसे हुए थे, इसलिये यह कहना कि हमने रूस के विधान के अमुक-अमुक महान सिद्धान्तों पर विचार नहीं किया और उन्हें अपने विधान में समाविष्ट नहीं किया, रूस की तथा हमारे देश की परिस्थिति की उपेक्षा करना है।

श्रीमान्, यदि हम अपने देश की राजनैतिक उन्नति पर दृष्टि डालें, तो हम देखेंगे कि हमारे दल, कांग्रेस राजनैतिक दल, ने जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्नति की है। रूसी साम्यवादी दल ने बिल्कुल ही भिन्न आधार पर उन्नति की है। उसका आधार क्रांतिपूर्ण सर्वसत्तात्मक शासन का रहा है। इसलिये उन मित्रों से, जिन्होंने इस मंच पर आकर रूस के विधान की प्रशंसा की है और उसके कई खंडों को सम्मिलित न करने के लिये हम पर व्यंग किया है, यह कहा जा सकता है कि उनकी आलोचना निराधार है। आलोचना करने में उन्होंने हमारे देश की परिस्थिति पर दृष्टिपात नहीं किया।

इसके अतिरिक्त हमें यह न भूलना चाहिये कि रूस की शासन-व्यवस्था के सिद्धान्तों तथा लक्ष्य में और जिस शासन-व्यवस्था को हम अपने देश में विकसित करना चाहते हैं, उसके सिद्धान्तों तथा लक्ष्य में सारभूत अन्तर है।

श्रीमान्, रूस में व्यक्ति का अपना बहुत कम महत्त्व है। राज्य के लिये, समाज के लिये तथा अपने दल के लिये ही व्यक्ति के अस्तित्व का महत्त्व है। परन्तु

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

अपने यहां हमने महात्मा गांधी के प्रेरणाप्रदायक नेतृत्व में एक भिन्न दृष्टिकोण से देखना सीखा है। हम व्यक्तियों को समाज के, उनके दल के तथा उनके राज्य के आधारस्तम्भ समझते हैं। व्यक्ति के महत्त्व पर इस प्रकार जोर देने से हमारी स्थिति रूस की स्थिति से भिन्न हो जाती है। इन कारणों को दृष्टि से रखते हुए यदि हमारे विधान-निर्माताओं ने रूस के विधान से कुछ नहीं लिया, तो मैं यह कह सकता हूं कि उन्होंने जानबूझकर कुछ नहीं लिया और उन्होंने यह उचित ही किया कि प्रेरणा प्राप्त करने के लिये उन्होंने जनतंत्रात्मक देशों की ओर देखा न कि रूस की ओर, जो ऊपर से देखने में तो एक जनतंत्रात्मक देश है, परन्तु वहां की शासन-व्यवस्था पर एक ही दल का कठोर प्रभुत्व रहता है।

हमारे विधान-निर्माताओं से जो तीसरी आपत्ति की गई है, वह यह है कि यह विधान केन्द्रीकरण की बहुत ही प्रबल मनोवृत्ति का परिचायक है और इसमें प्रान्तीय स्वायत्त शासन की जो थोड़ी-बहुत व्यवस्था है, वह भी सम्भव है, विधान को व्यवहार में लाने में मिट जायेगी और सम्भावना इसी की है कि सारी शक्ति संघ के राज्यों में केन्द्रीभूत हो जायेगी। परन्तु हम यह क्यों भूलते हैं कि हम, हमारा देश, हम सब केन्द्र-विघटन के असाध्य रोग से पीड़ित रहे हैं? विभिन्न अंगों की मुख्य शरीर से अलग हो जाने की यह मनोवृत्ति ऐतिहासिक है। हमें इसकी उपेक्षा न करनी चाहिये।

हम यहां राष्ट्र को एक सुगठित और सुसंगठित समाज में परिणत करने के लिये एकत्रित हुए हैं यदि हमारे विधान-निर्माता उस असाध्य रोग की रोक-थाम के लिये यत्नशील न रहे, जिससे हमारा देश शताब्दियों से पीड़ित रहा है, तो सम्भावना इसी की है कि हम भविष्य में पछतायेंगे। इसलिये मैं कहूंगा कि ये मित्र और आलोचक, जो यह सोचते हैं कि केन्द्र उस शक्ति का दुरुपयोग करेगा, जो उसे कुछ आकस्मिक परिस्थितियों का सामना करने के लिये दी गई हैं, भेड़िये के आने से पहले ही 'भेड़िया', 'भेड़िया' चिल्लाने का प्रयास कर रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि विधान में ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में कोई खण्ड नहीं है। इस कारण उस पर बहुत टिप्पणी की गई है; परन्तु मैं बताना चाहता हूं कि विधान में ग्राम-पंचायतों की उन्नति के लिये प्रतिषेद नहीं है। स्थानीय स्वायत्त शासन

के इन अंगों की उन्नति के मार्ग में यह विधान बाधा नहीं डालता है। उन्हें अपने मामलों को तय करने का अधिकार होगा। इसलिये मेरे विचार से यह आलोचना भी निराधार है।

श्रीमान्, मैं एक शब्द और कहकर समाप्त करता हूं। मुझे यह देखकर दुख हुआ है कि मेरे आदरणीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और आदरणीय वयश्रेष्ठ पं. लक्ष्मीकांत मैत्र ने, हमने राष्ट्रीय भाषा के लिये जो प्रयत्न किये हैं, उन्हें सन्देह और कुछ रोष की दृष्टि से देखा है। यदि उनका यह प्रभाव हुआ है, तो मैं अपने मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से हजार बार क्षमा याचना करता हूं। मैं सभा से यह कहूंगा कि हममें से वे लोग, जो यह समझते हैं कि एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए, एक माध्यम ऐसा होना चाहिये, जो अन्त में हमारे विचार-विनियम का साधन हो सके और यह भारतीय राष्ट्र भाषा हिन्दी होनी चाहिये, तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम अपने मित्रों को क्षुब्ध करना चाहते हैं। यदि ये मित्र राष्ट्रभाषा को उन्नति में हमारे साथ सहयोग करेंगे, तो किसी भी प्रान्तीय भाषा को हानि नहीं होगी। राष्ट्र के लिये एक भाषा निश्चित करने के निमित्त हमारे प्रयत्नों का यह उद्देश्य नहीं है कि हम अपने मित्रों को रुष्ट करें। हम सब जगह से सहानुभूति ही चाहते है; हम यह चाहते हैं कि दक्षिण का सारा दल हमें आपत्ति से छुड़ाये और अपने इस प्राचीन देश को एक भाषा प्रदान करने के लिये, हम जो प्रयत्न करें, उसमें हमारी सहायता करे। मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): (*हिन्दुस्तानी में भाषण आरम्भ किया*)

***श्री एस. नागप्पाः** श्रीमान्, क्या मैं यह प्रार्थना कर सकता हूं कि जो सदस्य अंग्रेजी में बोल सकते हैं, वे अंग्रेजी ही में बोलें?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** चूंकि मेरे मित्र यही चाहते हैं कि मैं अंग्रेजी में बोलू; इसलिये मैं इच्छाओं की पूर्ति नतमस्तक होकर करना चाहता हूं। यह सच है कि हिन्दी में बोलने में मुझे अधिक सुविधा होती है, परन्तु साथ ही मैं यह भी चाहता हूं कि इस सभा के सभी सदस्य मेरी बातों को समझें।

श्रीमान्, मसौदा-समिति के कार्य के सम्बन्ध में इस सभा में जो प्रशंसा-गान किया गया है, उसमें योग देने की मेरी भी इच्छा है, परन्तु मैं निर्वाध रूप से

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

यह न कर सकूंगा। जब मैं यहां कुछ मित्रों की शिकायतों को ध्यान में रखता हूं, तो मेरी यह धारणा होती है कि मसौदा-समिति ने वह सब नहीं किया है, जिसकी उससे आशा की जाती थी। कुछ सदस्य अनुपस्थित थे कुछ सम्मिलित नहीं हुए और कुछ ने काम में पूरा ध्यान नहीं लगाया। आर्थिक प्रावधानों के सम्बन्ध में हम क्या देखते हैं? समिति के सदस्यों ने मुख्य प्रश्न की उपेक्षा की है और कुछ अन्य प्रश्नों को भी हल नहीं किया है। यह विधान भारत की आत्मा का प्रतीक नहीं है। (*विधान की प्रति को दिखाते हुए उन्होंने कहा*) इस कैमरा में गांवों का स्वायत्त शासन प्रतिबिम्बित नहीं है और यह भारत के उस चित्र का सच्चा चित्रण नहीं कर सकता, जिसे कि कई लोग चाहते हैं। मसौदा-समिति के सदस्यों की बुद्धि, गांधीजी की बुद्धि और उन लोगों की बुद्धि के समान न थी, जिनका यह विचार है कि भारत के असंख्य लोग इसमें प्रतिबिम्बित हों। परन्तु जिस श्रम, उद्योग तथा योग्यता से डा. अम्बेडकर ने इस विधान पर विचार किया है उसकी प्रशांसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। उन्होंने इस सभा के सम्मुख जो भावनाएं व्यक्त की है, उन सब से सहमत न होते हुए भी मैं उन्हें उनके भाषण के लिये बधाई देता हूं।

श्रीमान्, मेरे विचार से इस विधान की आत्मा उसकी प्रस्तावना में है और उसमें 'बन्धुता' शब्द जोड़ने के लिये मैं डा. अम्बेडकर के प्रति सहर्ष कृतज्ञता प्रकट करता हूं। अब श्रीमान्, मैं सारे विधान को प्रस्तावना की कसौटी पर कसना चाहता हूं। यदि इस विधान में न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता सन्निहित है और यदि इन आदर्शों को हम इस विधान द्वारा प्राप्त कर सकते हैं, तो मेरी यह धारणा है कि यह विधान अच्छा है। यदि प्रस्तावना की इन चार बातों का उसमें अभाव है, तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि विधान अपूर्ण है। इसी दृष्टि से मैं इस विधान की परीक्षा करना चाहता हूं। मैं यह जानता हूं कि समय बहुत कम है और इसलिये मैं सब बातों पर विचार न कर सकूंगा। मैं केवल तीन या चार विषयों के सम्बन्ध में विचार करना चाहता हूं।

सबसे पहले मैं इस सभा का ध्यान ''नागरिकता'' शीर्षक भाग 2 की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। लगभग 60 लाख लोग पश्चिमी पाकिस्तान, सिंध, बलूचिस्तान और पूर्वी बंगाल से यहां आये हैं। ये लोग विदेशी नहीं हैं। यदि कानून की दृष्टि में उनको विदेशी समझा जाये, तो मैं यह कहूंगा कि ऐसा करना पाप है, क्योंकि यह स्थिति सरकार की लाई हुई है, जो देश के विभाजन के लिये

राजी हो गई। इसलिये यह कानून बनाना कि एक महीने के अन्दर उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को जिलाधीश के सामने जाकर यह घोषणा करनी होगी कि वह भारत का नागरिक है, एक प्रकार से कठोरता ही होगी। व्यवहार-दृष्टि से मैं समझता हूं कि ऐसा करना असम्भव ही होगा, क्योंकि इन 60 लाख लोगों में से अधिकांश निरक्षर है और विधान के इस प्रावधान के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है। यदि इस प्रकार का कोई निरक्षर व्यक्ति इस देश का नागरिक होने की रजिस्ट्री नहीं करा सके, जैसी कि इस अनुच्छेद के अधीन व्यवस्था है, तो उसका क्या होगा? इसलिये मेरी यह धारणा है कि भाग 2 में यह बहुत बड़ा दोष है। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि सरकार के देश-विभाजन के लिये राजी हो जाने के कारण, जो सब लोग पाकिस्तान से आ गये हैं, वे बिना परिश्रम किये हुये स्वत: भारत के नागरिक हो जाये। यदि वे घोषणा करके अपनी सुरक्षा करना चाहे, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं हैं, परन्तु यदि वे इस प्रावधान की शर्त्तों को पूरा न कर सके, तो मैं यह चाहता हूं कि हमें कोई ऐसा प्रावधान रखना चाहिये कि स्थायी निवास ही से उन्हें नागरिकता के अधिकार मिल जाये। इस पर जोर देना कि वे यहां के नागरिक तभी हो सकते हैं, जब वे जिलाधीश के सामने जाये और यह घोषणा करें कि वे भारत के नागरिक हो सकते हैं, मेरी राय में उन पर अत्याचार ही होगा।

इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस खंड को इस प्रकार संशोधित किया जाये कि ये 60 लाख लोग बिना कोई विशेष प्रयास किये हुये ही भारत के नागरिक हो जायें।

श्रीमान्, दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में, जैसा कि आप जानते हैं, अल्पसंख्यकों की समिति में मेरा वहीं दृष्टिकोण रहा है, जो आपका है और मैं यह कहूंगा कि मुझे और आप ही के समान विचार वाले लोगों को आप ही से प्रकाश मिला है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि प्रस्तावना के तीसरे खण्ड के अनुसार समाज में स्थान और स्वतंत्रता के सम्बन्ध में सभी के प्रति समता का व्यवहार हो।

बहुसंख्यक सम्प्रदाय के सम्बन्ध में, श्रीमान्, मेरी समझ में आता है कि या तो एक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्र होंगे, या बहुसदस्यात्मक। एक सदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्रों के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि यदि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति उन क्षेत्रों के लिये खड़ा होता है, तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लोग उनके लिये खड़े न होने दिये जायेंगे। इसका अर्थ यह है कि बहुसंख्यक

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

सम्प्रदाय के किसी व्यक्ति का वही निर्वाचनाधिकार न होगा, जो अल्पसंख्यक सम्पद्राय के किसी व्यक्ति का होगा। बहुसदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्रों में भी किसी व्यक्ति के लिये यह बहुत शर्म की बात होगी कि वे खड़े हों, अधिकतम वोटों को प्राप्त करें और फिर उनसे यह कहा जाये कि अल्पसंख्यक जाति का कोई अन्य व्यक्ति उस निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करेगा और वह नहीं करेगा; यद्यपि उसने अधिकतम वोट प्राप्त किये हों। इससे बहुत ही ग्लानि होगी और इसलिये मैं चाहता हूं कि निर्वाचनाधिकार के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों सम्प्रदायों के लोगों को बिल्कुल समान अधिकार होने चाहिये।

श्रीमान्, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय लोगों के हित-साधन में मैंने जीवनभर एक कार्यकर्त्ता के रूप में काम किया है। पिछले 35 वर्षों से मैं एक कार्यकर्त्ता रहा हूं और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सभी लोग जानते हैं कि आयव्ययक पर विचार होते समय मैंने शायद ही कभी इस सभा के सम्मुख ऐसा भाषण दिया हो, जिसमें मैंने जगहों, जमीन, धन, सम्पत्ति के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियों को तरजीह देने के लिये न कहा हो और मेरी यह धारणा है कि ऐसे सभी कानूनों को स्वीकार किया जाना चाहिये, जिससे उनका आर्थिक और सामाजिक उत्थान हो।

मैं खण्ड 299 और 300 के पक्ष में हूं, जिनमें उनके लिये पर्याप्त सुरक्षा की व्यवस्था की गई है; परन्तु जगहों को सुरक्षित करने के सम्बन्ध में मैं कहूंगा कि मैं इसका तीव्र विरोध करता हूं। जब ऐंग्लो-इंडियनों को वजन देने का प्रयास किया गया था, तो हमने इसके लिये प्रयत्न किया था कि इस वजन के प्रश्न को हमारे विधान में स्थान न मिले और अन्त में हमको सफलता मिली थी और यह निर्णय किया गया था कि ऐंग्लो-इंडियनों की संख्या में जो कमी होगी, उसकी पूर्ति मनोनयन द्वारा होगी। हमने धारा 293 और अन्य धाराएं भी रखी हैं, जिनमें यदि कोई कमी हो, तो उसे पूरा करने के लिये मनोनयन पर जोर दिया गया है। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों के सम्बन्ध में सुरक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जहां तक सम्पत्ति, सामाजिक प्रभाव और समाज में स्थान तथा अन्य बातों का सम्बन्ध है, सारी आबादी बहुत कुछ एक समान है। वास्तव में इनमें से कुछ सम्प्रदाय बहुसंख्यक सम्प्रदाय से सुसम्पन्न है। हरिजनों, अनुसूचित जातियों के बारे में यह कहा जा सकता है कि सम्पत्ति, सामाजिक

प्रभाव और समाज में स्थान के सम्बन्ध में वे अवश्य निम्न श्रेणी के हैं, परन्तु मैं चाहता हूं कि जगहें सुरक्षित करने के अतिरिक्त उन्हें अन्य प्रकार से ऊंचा उठाया जाये। इस अधिकार के सम्बन्ध में भी मैं इससे सहमत हूं कि यदि धारा 67 के अधीन दी हुई किसी संख्या में कमी हुई, तो हम मनोनयन का आश्रय लेंगे और यदि यह सभा समझे कि इस सम्बन्ध में उनके अधिकार की रक्षा की आवश्यकता है, तो उस संख्या की पूर्ति मनोनयन द्वारा की जा सकती है। जगहों को सुरक्षित रखने की कोई आवश्यकता नहीं है; परन्तु यदि कुछ को सुरक्षित रखना आवश्यक समझा जाये, तो सुरक्षा को इस प्रणाली से तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय को बहुत ग्लानि का अनुभव होगा और अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को बहुत हानि उठानी पड़ेगी। कल मि. करीमुद्दीन ने सभा में बहुत अच्छे कारण बताये थे। व्यवस्थापिका सभा में सरदार गुरुमुखसिंह ने सिखों की ओर से कहा था कि उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह जानता हूं कि अगस्त सन् 1947 ई. से स्थिति बदल गई है और मेरे मुसलमान और सिख मित्र अब इस विचारधारा को अपना रहे हैं कि जगहें सुरक्षित रखने से उन्हें कोई लाभ न होगा। मैं यह चाहता हूं कि उनमें से बहुत से लोग अपने विचारों को प्रकट करें। इसलिये जगहें सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में मेरा मत यह है कि यदि उन्हें सुरक्षित रखना यह सभा आवश्यक समझे, तो उन्हें मनोनयन द्वारा ही भरा जाये। हम जानते हैं कि नौकरशाही मनोनयन की शक्ति को कैसे प्रयोग में लाई, परन्तु मैं नहीं समझता कि लोगों द्वारा निर्वाचित प्रधान इस प्रकार का भ्रम या इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न कर सकता हैं जगहें सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में समाज में स्थान की समानता का प्रश्न उठता है और साथ ही इस प्रकार की प्रणाली पृथक्करण की मनोवृत्ति बनाये रखती है और बहुसंख्यक सम्प्रदाय इस प्रकार विचार करने के लिये बाध्य हो जाता है कि चूंकि जगहें सुरक्षित है, इसलिये उन्हें अधिक कुछ न करना चाहिये; जिससे डा. अम्बेडकर ने अन्तिम वाक्य में जिस भ्रातृभाव का उल्लेख किया है, उसका महत्त्व ही मिट जाता है। यदि हम पृथक्करण की मनोवृत्ति का अन्त करना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम अपने ही कार्य से पृथक्करण की भावना को प्रोत्साहन न दें। इसलिये श्रीमान, मेरा यह निवेदन है कि जगहें सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

यह सभा उसी प्रस्ताव को स्वीकार करे, जिसका मैं इस सभा में प्रवेश करने के दिन ही से समर्थन करता हूं।

इस सभा में कुछ ऐसी आलोचना हुई है कि इस विधान का आकार-प्रकार अधिकतर राजनैतिक है और यह उतना सामाजिक और आर्थिक नहीं है, जितना कि इसे होना चाहिये। प्रो. के.टी. शाह ने कल अपनी भावनाओं को प्रकट किया और जहां तक मेरा सम्बन्ध है, उन्होंने जो शब्द कहे उनमें से प्रत्येक का मैं आदर करता हूं, परन्तु क्या मैं नम्रतापूर्वक निवेदन कर सकता हूं कि इस विधान की 32, 33 और 38 धाराएं इसके सामाजिक और आर्थिक अंगों ही के बारे में हैं? श्रीमान्, मैं यह नहीं चाहता कि हमारा विधान ऐसा हो कि हम उसे व्यवहार में न ला सकें। यदि इस विधान में यह कहा जाये कि राज्य आजीविका और जीवनोपयोगी सुविधाओं के लिये पूर्ण व्यवस्था करेगा और निर्देशक सिद्धान्तों में विहित अधिकार भी न्याय हैं, तो हम अपना उपहास ही करायेंगे और ऐसी बात करने को कहेंगे, जिसे हम वर्तमान परिस्थिति में नहीं कर सकते हैं मेरे विचार से वर्तमान भारत सरकार वह सब कार्य करने में समर्थ नहीं है, जिन्हें कि यूरोप के राज्य कर सकते हैं। इस विधान में बहुत विनम्रता से कहा गया है कि हम अपनी पूरी योग्यता से वह सब कुछ करने का प्रयत्न करेंगे, जिसका कि हम दावा करते हैं। कुछ सदस्यों ने अपने भाषणों में इन निदेशक सिद्धान्तों की निन्दा की है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि मैं इन निदेशक सिद्धान्तों को इस विधान का प्राण समझता हूं। वे हमारे सामने एक लक्ष्य रखते हैं और हम इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यथाशक्ति प्रयास करेंगे। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 32, 33 और कुछ अन्य अनुच्छेदों में यह प्रावधान हैं कि उन्नति का आधार सामाजिक और आर्थिक होगा। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि जीवन-स्तर उच्च किया जायेगा। परन्तु यह प्रश्न उठता है कि जीवन-स्तर उच्च किया कैसे जायेगा?

भारत एक गरीब देश है, जहां प्रत्येक मनुष्य की फी हफ्ता औसत आमदनी लगभग पांच शिलिंग है। यदि इसे तुलनात्मक दुष्टि से देखा जाये, तो संसार के अन्य देशों में लोगों की आमदनी इसकी बीस गुना है। हमारी समझ में नहीं आता कि इस प्रश्न को हम किस प्रकार हल करें। यदि हम गांवों में जाये, तो पीने

का पानी भी आसानी से नहीं मिलता। कपड़े के सम्बन्ध में आप मुझ से अधिक परिचित हैं। इन बातों के सम्बन्ध में यदि हम सरकार को किसी प्रकार उत्तरदायी बनाना चाहते हैं, तो हमें स्पष्ट रूप से कहना चाहिये कि जैसे ही सरकार पूर्णतया शक्तिसम्पन्न हो जायेगी, तो वह सिंचाई और पनबिजली की योजनाओं को कार्यान्वित करेगी और इस उद्देश्य से नदियों में बांध बनवायेगी, तथा अन्न और चारे की पैदावार बढ़ाने के लिये अन्य साधनों से काम लेगी। इसी प्रकार हम यह भी अवश्य कह सकते हैं कि सरकार को देश में अच्छे पीने के पानी की व्यवस्था करनी चाहिये। यदि आप भारत में दूध और मधु की नदियां बहाना चाहते हैं, तो हमें यह भी कहना चाहिये कि सरकार को मवेशियों की अच्छी नस्लों का संरक्षण तथा संधारण करना चाहिये, तथा उनकी उन्नति के लिये चेष्टा करनी चाहिये और साथ ही उपयोगी मवेशियों, विशेषतः दूध देने वाली गायों और बछड़ों के वध पर प्रतिबंध लगाना चाहिये। इस सभा के सम्मुख मेरा यह नम्र निवेदन है। जब मैंने इस प्रस्ताव को इस सभा के सम्मुख रखा था, तो कांग्रेस-दल ने एकमत होकर इसे स्वीकार कर लिया था। परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य था कि इस पर इस सभा में विचार-विमर्श न हो सका और जब इसका समय आया, तो सभा स्थगित हो गई। मेरा यह नम्र निवेदन है कि इस देश में इसकी बहुत बड़ी मांग है कि लोगों को अच्छा खाना, अच्छा पीने का पानी और दूध प्राप्त कराने के लिये कुछ कार्यवाही की जाये। मैंने ''मवेशियों की उपयेगी नस्लें और उपयोगी मवेशी'' शब्दों का प्रयोग किया है। मैं यह कहूंगा कि भारत में प्रत्येक सरकार ने और मुसलमान बादशाहों ने भी तथा अफगानिस्तान की सरकार ने और वर्तमान काल में बर्मा ने भी इस प्रश्न को कानून द्वारा हमेशा के लिये तय कर दिया है। आज बर्मा में, यहां हमारे यहां से भिन्न धर्म प्रचलित है और जहां गौ पूजनीय नहीं समझी जाती है, कानून द्वारा गौ-वध को निषिद्ध कर दिया गया है। मैं यह तो नहीं चाहता हूं, परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि उपयोगी मवेशियों का वध निषिद्ध कर दिया जाये। मेरा इस सभा से यही नम्र निवेदन है और मेरे विचार से इससे किसी का मतभेद न होगा। इससे करोड़ों ऐसे लोगों को संतोष होगा, जिनका इस प्रश्न के प्रति भिन्न दृष्टिकोण है, यद्यपि मेरा वह दृष्टिकोण नहीं है।

मुझे इस सभा से एक और निवेदन करना है और वह यह है। हमने ग्राम-पंचायतों के बारे में बहुत-कुछ सुना है। इन ग्राम/पंचायतों का कार्य-संचालन किस प्रकार होगा, यह मैं नहीं जानता। हमारी एक कल्पना है और उस कल्पना

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

को हम व्यवहार में लाना चाहते हैं। मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करे कि जब नये विधान के अधीन निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित किये जायेंगे, तो वे प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र हों। केवल शहरों के या गांवों के ही निर्वाचन-क्षेत्र न हों। ऐसी प्रणाली निर्धारित की जानी चाहिये, जिससे शहर वालों और गांव वालों के बीच का अन्तर और जिन लोगों के पास बहुत कुछ है और जिन लोगों के पास कुछ भी नहीं है, उनके बीच का अन्तर हमेशा के लिये मिट जाये, ताकि हम एक राष्ट्र में परिणत हो सकें। मैं हाल में जब इंग्लैंड गया था, तो मैंने यह देखा कि जब नया कारखाना खोलने के लिये कोई अर्जी सरकार के पास आती है, तो यह कहा जाता है–"गांवों में जाइये, लंदन में हम अधिक कारखाने खोलने के लिये आज्ञा नहीं दे सकते"। मैं यह चाहता हूं कि भारत में सभी कारखाने ऐसी जगहों में खोले जायें कि गांवों के लिये या गांवों के समूहों के लिये कुछ काम-धंधे की व्यवस्था हो जाये। उद्योग-धंधों का भी शासन-प्रबंध की तरह विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। यदि हमें एक राष्ट्र बनाना है, तो शहर के लोगों और देहात के लोगों के जीवन में जो अन्तर है, उसे मिटा देना चाहिये। इस समय हम क्या देखते हैं? शहर के लोगों तथा देहात के लोगों का जीवन और जीवन की ओर उनका दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। गांवों के नजदीक जाना बहुत कठिन है। शहर के लोग गांवों में नहीं जाना चाहते। मैं यह जानता हूं कि कांग्रेस गांवों तक पहुंची है और इसके लिये उसकी जितनी प्रशंसा की जाये, वह थोड़ी है। परन्तु कांग्रेस में भी कई लोग ऐसे हैं, जो गांवों में नही जाना चाहते। वे जा ही नहीं सकते, क्योंकि उनका जीवन ही भिन्न प्रकार का है। आपको ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र बनाने होंगे, जिनमें शहर भी होंगे और गांव भी और उनमें कोई अन्तर न होगा। यदि एक लाख लोगों के लिये एक निर्वाचन-क्षेत्र हों, तो उसमें शहर भी हों और गांव भी। कुछ गांव के लोग भी शहर के लोगों को अपने साथ मिलाना पसंद न करेंगे और वे इस प्रस्ताव को अपने एकाधिकार से उन्हें वंचित करने के लिये एक चाल समझेंगे परन्तु मैंने सारे देश के उच्च से उच्च हित को सामने रख कर ही इसे उपस्थित किया है। मैं यह चाहता हूं कि गांवों में और देहात में जीवनोपयोगी साधन एक समान हों और भविष्य में आर्थिक या राजनैतिक क्षेत्रों में जो भी प्रयत्न किये जाये वे मुख्यत: गांवों को शहरों के स्तर पर लाने के लिये ही हों। मुझे आशा है कि यदि आप इस प्रश्न पर विचार करेंगे, तो आप इससे सहमत होंगे कि इस विधान को ऐसे ढंग से और ऐसी

भावना से कार्यान्वित करना आवश्यक है, जिससे इस देश के निवासियों का जीवन सुखमय और आनन्दमय हो।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् मुझे एक औचित्य-प्रश्न करना है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या यह इस सभा के लिये उचित है कि डा. अम्बेडकर, जिन्होंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है और जिनसे बहस के उपरान्त उत्तर की आशा की जा सकती है, यहां उपस्थित ही न रहें? क्या कोई व्यक्ति यहां उनकी जगह पर है?

***उपाध्यक्षः** जी हां।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय यह जो प्रश्न अभी श्री कामत ने उठाया है, वह बिल्कुल सही मालूम होता है, क्योंकि जब तक जो मेम्बर-इंचार्ज हैं, जो माननीय सदस्य इसके अधिकार में हैं, वह इन व्याख्यानों से, जो यहां हो रहे हैं, कुछ लाभ न उठायें और उन बातों पर ध्यान न दें, जो यहां कहीं जा रही है, तब तक किसी प्रकार का वाद-विवाद होना व्यर्थ जान पड़ता है। इसलिए मेरा यह अनुरोध है कि जिस समय तक के लिए वह यहां उपस्थित न हो सकें, उस समय तक के लिए इस वाद-विवाद को स्थगित कर दिया जाये। हां, यदि वह किसी दूसरे को अधिकार दे गए हों कि वह, जो बातें कहीं जा रही हैं, उनको अंकित करता जाये और फिर उनकी सहायता कर दे, तब तो कोई हानि न होगी; अन्यथा यह सारा वाद-विवाद जो किया जा रहा है, वह हवा में ही जा रहा है और उससे कोई लाभ विधान के संशोधन में नहीं हो सकता। इसलिए आपकी स्पष्ट रूलिंग होनी चाहिये, आपका स्पष्ट आदेश होना चाहिए कि यदि बहस होनी है, तो मेम्बर-इन्चार्ज, जो इसको पाइलट कर रहे हैं, इसका संचालन कर रहे हैं, यहां मौजूद रहें या उनके कोई प्रतिनिधि यहां मौजूद रहें। जब तक यह न हो जाये, तब तक के लिए यह स्थगित कर दिया जाये।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): मि. सादुल्ला, जो मसौदा-समिति में थे, यहां उपस्थित हैं और वे डा. अम्बेडकर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

***उपाध्यक्षः** मसौदा-समिति के कुछ सदस्य यहां उपस्थित हैं और वे डा. अम्बेडकर के स्थान पर है। मेरे विचार से इससे हमारी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं। मैं आशा करता हूं कि इससे सभा को संतोष हो जायेगा।

***रायबहादुर लाला राजकंवर** (उड़ीसा राज्य): श्रीमान् इस सभा में एक पीछे बैठने वाले और एक मौन सदस्य की हैसियत से मैं जो थोड़ी बहुत बातें कहने की धृष्टता करने जा रहा हूं, उसके लिए मैं आपसे व इस सभा से क्षमा-याचना करता हूं। यदि मैं इसे अपना मत कहूं, तो यह केवल एक ऐसे विषय के सम्बन्ध में है, जो एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। यह प्रश्न राष्ट्रभाषा का प्रश्न है ओर इसे हमें हल करना है।

उपाध्यक्ष: इस पर आप ही विचार कर सकते हैं कि इसकी विस्तृत व्याख्या इस समय आवश्यक है या नहीं।

***रायबहादुर लाला राजकंवर:** मैं इसकी विस्तृत व्याख्या नहीं करूंगा। मैं कुछ आम बातों तक ही अपने को सीमित रखूंगा। इस विधान में लोगों की इच्छा और मेरा विश्वास है उनकी वाणी, अर्थात् ईश्वर की वाणी प्रतिध्वनित होगी, जैसी कि एक लैटिन की कहावत है कि लोकवाणी देववाणी है। इसका अर्थ यह है कि यह विधान की भाषा का प्रश्न नहीं है परन्तु राष्ट्र की भाषा और देश की भाषा का प्रश्न है। श्रीमान्, उपनिषदों में, जो बुद्धिमत्ता और अध्यात्म ज्ञान से परिपूर्ण हैं और जिनके बारे में शापेनहावर जैसे महान् जर्मन दार्शनिक ने कहा है कि उपनिषदों के अध्ययन से जो उदात्त प्रेरणा प्राप्त होती है, वह संसार के अन्य किन्हीं ग्रन्थों के अध्ययन से नहीं होती, तथा उनके अध्ययन से मुझे अपने जीवन में बड़ी शांति की अनुभूति हुई है और मृत्युकाल में भी इसी शांति की अनुभूति होगी, यह लिखा है।

> ''यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति।
> तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।''

जैसे विचार उत्पन्न होते हैं, वैसी ही वाणी भी प्रस्फुटित होती है और जैसी वाणी प्रस्फुटित होती है, वैसे ही कार्य भी सम्पन्न होते हैं और जैसे कार्य सम्पन्न होते हैं, तद्‌रूप पुरुष हो जाता है। अर्थात् कार्यों से ही मनुष्य का स्वरूप निश्चित होता है। हमारे अन्तरतम विचारों की बाह्य व्यंजना ही भाषा है। एक राष्ट्रभाषा परमावश्यकीय है, क्योंकि इससे जो एकता और सुगठन हो सकता है, वह अन्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। प्रान्तीय सीमाओं के पुनर्निश्चयन के समान ही कुछ प्रान्तीय भाषाओं को प्राधान्य देने के लिये भी प्रयत्न किये जा रहे हैं और

उनके सम्बन्ध में मांग की गई है यह स्वाभाविक है, परन्तु किसी भाषा का किसी अन्य भाषा से विरोध न होना चाहिये। प्रान्तों को भाषाओं के आधार पर बनाया जाये या किसी अन्य आधार पर बनाया जाये या उनको वैसा ही छोड़ दिया जाये, इसका राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इसे हल करने में वर्तमान सरकार बहुत कुछ कर सकती है। अंग्रेजी भाषा को ही लीजिये, जो हमारे भूतपूर्व विदेशी शासकों के प्रभुत्व के फलस्वरूप इस वृहत् देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक फैल गई। परन्तु राष्ट्रभाषा होने के लिये उसके लिये आवश्यक है कि वह केवल बुद्धिमान लोगों तक ही सीमित न रहे, बल्कि साधारण लोगों की भी भाषा हो जाये। वह ऐसी भाषा होनी चाहिये, जिसे सभी वर्गों के अधिकांश लोग बोलते हों और समझते हों। भारत के वृहत् जनसमुदाय पर दृष्टिपात करने पर हम देखते हैं कि बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तैलगू या उड़ीसा के समान प्रांतीय भाषाओं में से किसी को भी भारत के अधिकांश लोग न बोलते हैं और न समझते हैं। यदि यह दावा किसी भाषा का हो सकता है तो वह हिन्दी का ही हो सकता है, जो न केवल उत्तर भारत में बोली जाती है, बल्कि मध्यप्रान्त, राजपूताना, बिहार और अन्य विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित है; परन्तु बोलचाल की हिन्दी मनीषियों और विद्वानों की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी नहीं है। इनकी संख्या देश के उस वृहत् जनसमुदाय की तुलना में बहुत कम है, जो छोटे-छोटे, मधुर और सरल शब्दों से परिपूर्ण और शुद्ध, अमिश्रित तथा परिमार्जित हिन्दी बोलते हैं। यही भाषा अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाती है और अशिक्षित लोग औरतें और बच्चे इसका पूर्णरूप से उपयोग करते हैं और स्वतंत्रता से बोलते हैं। यद्यपि संस्कृत भारत की भाषाओं की, भारत की भाषाओं की ही नहीं, बल्कि संसार की भाषाओं की जननी है, यद्यपि वह एक सर्वोत्कृष्ट भाषा है, जिसमें वेद, उपनिषद् शास्त्र, रामायण और महाभारत तथा चिरजीवी गीता लिखे गये हैं और यद्यपि महान् प्राच्य-पोषक सर विलियम जोंस के शब्दों में, ''संस्कृत ग्रीक से अधिक उत्कृष्ट है, लैटिन से अधिक वृहत् है और इटालियन से अधिक मधुर है,'' परन्तु वह भाषा साधारण लोगों की भाषा नहीं है और इसलिये यह उचित नहीं है कि हिन्दी भाषा की प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिये हम उससे शब्द लें। इसके अतिरिक्त लैटिन, ग्रीक और हेब्रू भाषाओं की तरह वह कई शताब्दियों से एक मृत भाषा रही है और संसार के सबसे बड़े व्याकरणाचार्य पाणिनि की आश्चर्यजनक और अद्वितीय अष्टाध्यायी के होते हुए भी संस्कृत को सीखना सबसे कठिन है।

[रायबहादुर लाला राजकंवर]

सरलता ही राष्ट्रभाषा की कसौटी होनी चाहिये और वह प्रत्येक देशवासी के समझने के योग्य होनी चाहिये। अब यह सभी मानते हैं कि संस्कृत के अक्षर संसार की अन्य लिपियों की तुलना में सबसे उत्कृष्ट और वैज्ञानिक हैं तथा अन्य अक्षरों की अपेक्षा बहुत ही प्राकृतिक भी हैं। उदाहरणार्थ सबसे पहला अक्षर 'अ' है। जब इस अक्षर का उच्चारण किया जाता है, तो मुंह स्वतः खुल जाता है और जो ध्वनि निकलती है, वह स्वाभाविक ध्वनि होती है। इसी प्रकार जब संस्कृत वर्णमाला का अन्तिम अक्षर अर्थात् 'म' उच्चारण किया जाता है, तो मुंह स्वतः बन्द हो जाता है, जिसका अर्थ यह है कि इसका अन्तिम अक्षर होना ठीक ही है; यद्यपि मुझे स्मरण है कि 'म' एक प्रकार से देवनागरी लिपि का अन्तिम अक्षर नहीं है, क्योंकि इसके बाद ऐसे अक्षर आते हैं जैसे कि 'य' 'र' 'ल' 'व', परन्तु ये अन्य अक्षरों के रूपान्तर ही है। उदाहरणार्थ 'य' 'इ' का रूपान्तर है, 'र' 'ऋ' का रूपान्तर है, 'ल' 'लृ' का रूपान्तर है और 'व' 'उ' का रूपान्तर हैं। चूंकि संस्कृत की वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है, इसलिये हिन्दी, जिसे इस देश के अधिकांश लोग बोलते हैं देवनागरी लिपि में ही लिखी जानी चाहिये। (*हर्षध्वनि*) कुछ समय पहले बुनियादी अंग्रेजी का स्वरूप निश्चित करने के लिये एक आन्दोलन हुआ था। यदि इसी प्रकार का कोई उपाय हिन्दी के सम्बन्ध में भी किया जाये, तो ऐसे लोग, जो इस समय न हिन्दी बोलते हैं, और न लिखते हैं, कम से कम समय में आसानी से हिन्दी सीख सकेंगे। फ़ारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू का अभी तक जो स्थान रहा है, और जो अब भी है, उसे दृष्टि में रखते हुए तथा इसे भी दृष्टि में रखते हुए कि वह हमारे साढ़े तीन या चार करोड़ मुसलमान भाइयों की भाषा है, जो सारे देश में फैले हुए हैं, और इसको भी दृष्टि में रखते हुए कि इस भाषा की लिपि की यह खूबी है कि वह एक प्रकार की आशुलिपि है, मेरे विचार से यह उचित ही होगा कि हम उर्दू की ओर भी कुछ ध्यान दें, परन्तु वास्तव में किसी कारण से भी वह राष्ट्र की प्रधान भाषा नहीं हो सकती है। राष्ट्रीय और सरकारी भाषा तो अवश्य ही देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी होनी चाहिये, परन्तु दूसरी भाषा मेरे विचार से उर्दू होनी चाहिये, क्योंकि वह एक प्रकार की आशुलिपि है, क्योंकि अन्य भाषाओं की तुलना में उसे लिखने में बहुत कम समय लगता है और वह जगह भी कम लेती है। उदाहरणार्थ 'मुन्तजिम' शब्द को लीजिये, जो उर्दू में एक संयुक्ताक्षर के रूप में लिखा जाता है; परन्तु यदि

आप उसे देवनागरी हिन्दी अक्षरों में लिखिये या रोमन में लिखिये, तो सात या आठ अक्षर काम में लाने होंगे। इसी प्रकार 'मुन्ताजिर', 'मुन्तशिर', 'मुन्तखिब' के समान सैंकड़ों ऐसे अक्षर-समूह हैं, जो इस समय एक ही शब्द के रूप में लिखे जाते हैं। इसलिये मेरे विचार से इसको दृष्टि में रखते हुए कि इस समय इस देश में काफी लोग उर्दू बोलते हैं, विशेषतया दिल्ली, आगरा, लखनऊ और अन्य बड़े शहरों में तथा दिल्ली के चारों ओर देहात में और उत्तरी भारत की बड़ी-बड़ी आबादियों में और इसे भी दृष्टि में रखते हुए कि उर्दू लिपि के आशुलिपि होने के कारण कई फायदे हैं, मेरा यह निवेदन है कि हमें उसे देश की दूसरी भाषा का स्थान देना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि हम उसे दूसरी भाषा का स्थान देंगे, तो इसका अर्थ मुसलमानों के प्रति सद्दिच्छा प्रकट करना होगा जिनकी संख्या, जैसा कि मैं बता चुका हूं, साढ़े तीन या चार करोड़ से कम नहीं है। एक ऐहिक राज्य में इस प्रकार की सद्दिच्छा प्रकट करने से लाभ ही होगा। देश के विभाजन और उसके उपरान्त जो ज्वाला धधक उठी, उनके दुष्परिणामों का चाहे हमें जितना भी ध्यान रहे, हमें यथार्थ को देखना चाहिये; क्योंकि आखिर हम क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना से तो निर्माण नहीं कर सकते। यद्यपि मैं इस समय भारत के एक सुदूर भाग, अर्थात् उड़ीसा राज्यों का प्रतिनिधित्व करता हूं, परन्तु मैं एक पंजाबी हूं और कई पंजाबियों की तरह मुझे भी देश विभाजन से कई प्रकार से बहुत नुकसान उठाना पड़ा है, परन्तु इस कारण हमें देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को न भूलना चाहिये। हमें यह भी न भूलना चाहिये कि राष्ट्रपिता ने अपने जीवन-काल में स्वतंत्र और निरपेक्ष रूप से अपना मत हिन्दुस्तानी के पक्ष में प्रकट किया था और इस मत-प्रकाश के कारण उन्हें कभी भी ग्लानि का अनुभव नहीं हुआ। इसके विपरीत उन्होंने वास्तविक स्थिति के महत्त्व को समझा और यह भी समझा कि उनका मत कितना सच्चा और आवश्यक है।

मेरी एक विनम्र सम्मति और है और वह यह है कि अपने विधान को बनाने में हमें परमात्मा से उसके आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। किसी भी बड़े उत्सव या महायज्ञ को आरम्भ करते समय प्रत्येक गृहस्थ इस प्रकार की प्रार्थना करता है। नवीन भारत में, जिसने इतने कष्ट के उपरान्त जन्म लिया है, इससे महान् यज्ञ और क्या हो सकता है? इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस विधान के आरम्भ में हमें यह कहना चाहिये कि इस पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के

[रायबहादुर लाला राजकंवर]

लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं और प्रस्तावना के अन्त में भी हमें कुछ ऐसे शब्द रखने चाहिये, जैसे ''ईश्वर हमारा सहायक हो''। जब रुडयार्ड किप्लिंग के देश के सम्मुख एक महान् संकट उपस्थित हुआ था, तो उसने प्रार्थना करते हुए कहा था: ''देवाधिदेव, अभी हमारे साथ रहो, ताकि हम भूलें नहीं, हम भूलें नहीं''। मुझे विश्वास है कि मेरे इस सुझाव पर यह आदरणीय सभा विचार करेगी।

अपनी जगह पर जाने के पहले, मसौदा-समिति के सभापति तथा माननीय कानून मंत्री डा. अम्बेडकर ने विधान का मसौदा प्रस्तुत करते समय जो उत्कृष्ट भाषण दिया, उसके प्रशंसा-गान में मैं भी योग देना चाहता हूं। उसमें जिस सरलता और स्पष्टता से विचार-व्यंजना हुई है, वह अद्वितीय है। वे और उनके सहयोगियों ने जिस परिश्रम से यह विधान का मसौदा तैयार किया है, उसके लिये वे कृतज्ञता के पात्र हैं, श्रीमान, मैं आपको अपना मत प्रकट करने के लिये, मुझे यह अवसर देने के लिये, धन्यवाद देता हूं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, इस प्रात:कालीन अधिवेशन के अवसान काल में मुझसे बोलने के लिये कहा गया है। इसलिये मैं अपने भाषण को यथाशीघ्र समाप्त करने का प्रयास करूंगा। इस सभा के विचारार्थ मैं कुछ थोड़ी सी बातें ही कहना चाहता हूं। पहली बात यह है कि विधान के सारे मसौदे में कहीं भी देश की आर्थिक स्वतंत्रता के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। जब हम इस देश की राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये संग्राम कर रहे थे, तो हमारे नेताओं ने कई बार यह कहा था कि हम इस देश के लिये ऐसा विधान बनायेंगे, जिससे देश में आर्थिक स्वतंत्रता की व्यवस्था हो सकेगी। परन्तु मुझे खेद है कि इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। इसमें जनसाधारण के लिये कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे वे अपने भविष्य के बारे में निश्चित हो सकें। विधान के इस मसौदे में कोई भी ऐसी व्यवस्था नहीं है, जिससे भविष्य में अपने विकास के लिये उन्हें पूर्ण अवसर मिलता हो। विधान में सब से प्रथम इसकी व्यवस्था होनी चाहिये कि सभी भूमि, कल-कारखाने, उत्पादन के अन्य साधन तथा उत्पादित वस्तुओं पर लोकहितार्थ राज्य का नियंत्रण तथा स्वामित्व होगा।

दूसरी बात यह है कि राज्य को प्रत्येक स्त्री और पुरुष की क्षमता और योग्यता के अनुसार उसे काम देना चाहिये और लोगों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार सामान देना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि लोगों की आवश्यकतानुसार वस्तुओं के उत्पादन का निश्चयन तथा नियमन होना चाहिये। विधान के मसौदे में किसी निश्चित अवधि में सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का आश्वासन नहीं दिया गया है और इसमें कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि इस देश में प्रत्येक स्त्री और पुरुष को काम दिया जाना चाहिये।

मेरा दूसरा सुझाव नागरिक स्वतंत्रता के बारे में है। विधान के मसौदे में यह व्यवस्था है कि राज्य के हित में कोई व्यक्ति बिना मुकद्दमा चलाये हुए ही हिरासत में रखा जा सकता है। मेरी समझ में नहीं आता कि 'राज्य के हित में' शब्दों का क्या अर्थ है। आपने देखा कि जनवरी के बाद पिछले कई महीनों में बिना मुकद्दमें के हिरासत में रखने का क्या फल हुआ है। कई उच्च न्यायालयों में यह समझा गया कि कुछ मामलों में प्रान्तीय सरकारों ने हिरासत के लिये जो आज्ञाएं दी थीं, वे गैर-कानूनी थी। जब विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रयोग करने के लिये इस देश का कानून वर्तमान है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि बिना मुकद्दमे के हिरासत में रखने के लिये कोई व्यवस्था ही क्यों हो? ब्रिटिश राज के समय हमने इसके विरुद्ध संग्राम किया था और मेरी समझ में नहीं आता कि अब भी यह व्यवस्था इसी प्रकार क्यों रहने दी जा रही है। इसमें सन्देह नहीं कि इस विधान के आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार करते समय इस सभा ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि इस दृष्टिकोण को बदलना चाहिये और विधान के मसौदे में इस प्रकार का जो प्रावधान रखा गया है, उसमें संशोधन करना चाहिये।

मेरा तीसरा सुझाव राज्यों के सम्बन्ध में है, जिनके नरेशों ने अपने अधिकार-क्षेत्र तथा शक्तियां केन्द्रीय सरकार को सौंप दी है। इस सम्बन्ध में विधान के मसौदे में जो प्रावधान रखे गये हैं, उनका उन विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिन पर विचार करने के लिये मसौदा-समिति से कहा गया था। मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदा-समिति अपने निर्देश-पदों के आगे क्यों चली गई और उसने राज्यों के लोगों की इच्छाओं की क्यों उपेक्षा की, जबकि ये राज्य अब भारत सरकार

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

के शासन के अधीन हैं और इन्होंने एक ऐसे विधान को स्वीकार किया है, जिसकी राज्यों के लोगों ने मांग भी नहीं की है और जिसे वे पसंद भी नहीं करते हैं। इसलिये मेरा यह अनुरोध है कि अनुच्छेद 212 में, जो उन राज्यों के सम्बन्ध में भी लागू किया गया है, जो प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं, संशोधन किया जाये और इस सम्बन्ध में लोगों की भावनाओं का आदर किया जाये। निस्सन्देह संशोधन यथासमय उपस्थित किये जायेंगे और मुझे आशा है कि यह सभा उन्हें स्वीकार करेगी।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं सिफारिश करता हूं कि विधान के मसौदे पर इस सभा में विचार किया जाये।

***उपाध्यक्षः** मैं माननीय सदस्यों को सहर्ष यह सुनाना चाहता हूं कि अध्यक्ष महोदय इसके लिये राजी हो गये हैं कि इस सभा की इच्छानुसार हम एक दिन और अर्थात् सोमवार को सामान्य रूप से विचार-विमर्श करें।

इसके उपरान्त सभा तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिये स्थागित हो गई।

भोजनोपरान्त तीन बजे उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में सभा पुनः समवेत हुई।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या कृपा करके आप यह आदेश...

***उपाध्यक्षः** क्या कृपया माननीय सदस्य अपना आसन ग्रहण करेंगे?

प्रतिज्ञा ग्रहण

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर अपने हस्ताक्षर किये:

श्री रतनलाल मालवीय (मध्यप्रांत और बरार स्टेट्स)

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव—(*जारी*)

***उपाध्यक्षः** अब हम फिर वाद-विवाद आरम्भ करते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या कृपाकर आप इस बात का आदेश देंगे कि माननीय डा. अम्बेडकर के उस भाषण की एक-एक प्रति, जो कि उन्होंने विधान सम्बन्धी मसौदे को पेश करते हुये यहां दिया है, यथाशीघ्र सदस्यों को दे दी जाये?

***उपाध्यक्षः** मैं समझता हूं कि माननीय डा. अम्बेडकर के भाषण को अभी साइक्लोस्टाइल करना है। यथाशीघ्र यह काम पूरा हो जायेगा और सम्भवतः या तो आज ही शाम को या कल सवेरे इसकी प्रतियां सदस्यों को उपलब्ध हो जायेंगी।

अब हम वाद-विवाद प्रारम्भ करते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांतः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय...

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या इस प्रस्ताव पर आपको दो बार बोलने की अनुमति मिली है?

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः नहीं। पहले मैं सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन पर बोला था। डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर तो मैं अभी बोला ही नहीं।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं, उन पर विचार करने के लिये हम, आज समवेत हुये हैं प्रारम्भ में ही मैं विद्वान डा. अम्बेडकर को, जिन्होंने यह प्रस्ताव हमारे समक्ष उपस्थित किया है, बधाई देता हूं। जो भाषण उन्होंने यहां दिया है, उसे मैंने कई बार पढ़ा है और मैं समझता हूं कि अपने विधान के सम्बन्ध में यह एक बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या है। निश्चय ही मेरा मत है कि विधान का इससे और योग्य पक्ष प्रतिपादन हो नहीं सकता था। किन्तु विधान में जिन सिद्धान्तों को समाविष्ट किया गया है, उनके सम्बन्ध में मैं कुछ जरूर कहना चाहता हूं।

श्रीमान्, जैसा कि स्वयं डा. अम्बेडकर ने कहा है, इस विधान में इंग्लैंड की प्रजातंत्रीय शासन-व्यवस्था को एक आदर्श माना गया है और अमेरिकन शासन-व्यवस्था को नापसन्द किया गया है। मैंने दोनों ही व्यवस्थाओं की तुलना की और फिर यह समझने की कि दोनों में कौन ज्यादा अच्छी है, कोशिश की है। मेरा अपना मत यह है कि हमारे देश को इस समय स्थिर शासन की आवश्यकता है। मैं तो समझता हूं कि हमारी पहली आवश्यकता यही है कि हमारी हुकूमत एक स्थायी हुकूमत हो। इसलिये मेरी समझ से हम लोगों को वैसी ही शासन-व्यवस्था अपनानी चाहिये थी, जैसी कि अमेरिका में प्रचलित है। प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुना हुआ प्रधान राष्ट्र का प्रमुख हो और उसे इस बात का अधिकार होना चाहिये कि शासन-संचालन के लिये वही अपने अधिशासी वर्ग को चुने। न्याय-व्यवस्था अधिशासी वर्ग से बिल्कुल स्वतंत्र होनी चाहिये। आज राष्ट्र के लिये सबसे जरूरी बात यह है कि उसकी हुकूमत स्थायी हो। विलगाव की प्रवृतियां अभी से ही दिखाई देने लगी हैं।

भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने की तथा उनके पुन: विभाजन की मांग हो रही है। केन्द्र तथा इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किस प्रकार किया जाये, इस पर जो विवाद हुए हैं, उन्हें हम देख ही चुके हैं। यह सारी प्रवृत्तियां स्वाभाविक हैं। किन्तु यदि हमने अपना विधान अमेरिकन प्रणाली के आधार पर बनाया होता, तो मैं समझता हूं कि उससे हमारी आवश्यकताएं और अच्छी तरह पूरी हो जाती। इसलिए एक बुनियादी बात में हमारा मा. डा. अम्बेडकर से मतभेद है, जिन्होंने कि ब्रिटिश प्रणाली को पसन्द किया है। अवश्य ही ब्रिटिश पद्धति खूब काम करती है। किन्तु यह सात सौ वर्षों के अनुभव और शिक्षा के फलस्वरूप

उसमें यह बात उत्पन्न हो पाई है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश-जीवन की दो अपनी महत्त्वपूर्ण विशेषताएं, जिनसे इस पद्धति को चालू रखने में, अंग्रेजों को सहायता मिलती है। वहां विलगाव की प्रवृत्तियां वर्तमान नहीं है और राजा के प्रति उनकी निष्ठा, एक ऐसा प्रबल बंधन है, जो उन्हें सदा एक किये रहता है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक अंग्रेज के हृदय में अपने विधान के प्रति एक संस्कारजन्य सम्मान है। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा समझता हूं कि अंग्रेजी प्रणाली की अपेक्षा जिसकी यहां सिफारिश की गई है, हमारे देश के लिए अमेरिकन-प्रणाली अधिक अच्छी होगी। अमेरिकन-प्रणाली के अन्दर घूसखोरी कम होगी और हम ज्यादा अच्छी तरह अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर सकेंगे।

उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायत सम्बन्धी प्रथा की निन्दा की है, जो भारत में पहले प्रचलित थी और जिसे हमारे बुजुर्गों ने अपने विधान के लिए एक आदर्श आधार माना था। मैं अभी-अभी महात्मा गांधी की वह वक्तृता पढ़ रहा था, जिसे उन्होंने सन् 1931 में लंदन की गोलमेज सभा में दिया था। संघीय विधान-मण्डल की निर्वाचन-पद्धति के सम्बन्ध में वह बोल रहे थे। इस प्रसंग में उन्होंने इस बात की सिफारिश की थी कि निर्वाचन के लिए गांवों को ही इकाई माना जाये। वस्तुत: उन्होंने ग्राम-पंचायतों को ही आधारभूत महत्त्व दिया था। उन्होंने कहा था कि भारत की वास्तविक आत्मा ग्रामों में ही वास करती है। मुझे आन्तरिक दुख हुआ कि डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में ऐसा मत व्यक्त किया। मुझे इस बात का विश्वास है कि सभा का कोई भी सदस्य ऐसा मत नहीं रखता है, जो कि डा. अम्बेडकर ने अभी व्यक्त किया है। जरा देखिये, डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में क्या कहा है। आपने फरमाया है:

> ''देश के भाग्यनिर्माण में उन्होंने क्या भाग लिया है इसका वर्णन भी मेटकाफ ने स्वयं किया है। वह कहता है:
>
> > 'कितने ही राजवंश आए और गये, कितनी ही क्रांतियां हुईं। हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, अंग्रेज—सभी बारी-बारी से देश के मालिक बने, किन्तु यहां की ग्राम-पंचायतें सदा ज्यों की त्यों बनी रही। जब-जब युद्ध हुए, संकट आए, इन्होंने अपने को हथियारबन्द किया, अपनी किलेबन्दी की।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

विरोधी सेना जब इनके प्रदेश में पहुंची, तो इन्होंने अपने मवेशियों को चहारदीवारी में इकट्ठा कर दिया और शत्रु को बिना रोके बढ़ जाने दिया।'

हमारी ग्राम-पंचायतों ने देश के इतिहास में यही ज्वलंत काम किया है। इसे जानते हुए हमें उनके लिए आखिर क्या गर्व हो सकता है? यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल-पुथल के होते हुए भी ये जीवित रह गयी। किन्तु केवल जीवित रहने का क्या मूल्य? प्रश्न तो यह है कि किस स्तर पर ये जीवित रही? निश्चय ही बड़े निम्न और स्वार्थपूर्ण स्तर पर ये जीवित रही। मेरा मत है कि यह ग्राम-पंचायतें ही भारत की बर्बादी का कारण रही है। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रांतीयता की, साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हैं, वही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं हमारे ग्राम हैं क्या? कूप-मण्डूकता के परनाले हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काली कोठरियां हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि विधान के मसौदे में ग्रामों को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति को राष्ट्र का अंग माना गया है।''

मुझे इस बात का निश्चय है कि सभा के बहुसंख्यक सदस्य, ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में, उनकी राय से सहमत नहीं हैं। मैंने ग्रामों में काम किया है और कांग्रेस-ग्राम-पंचायतों की कार्यशैली का मुझे गत पच्चीस वर्षों से अनुभव है और इस नाते मैं कह सकता हूं कि उन्होंने इस सम्बन्ध में जो चित्र रखा है, वह बिल्कुल ही काल्पनिक है। उन्होंने बिल्कुल ही गलत तस्वीर आपके सामने रखी है। मेरी अपनी धारणा तो यह है कि इन ग्राम-पंचायतों को, अगर हम वह समूचा प्रकाश तथा ज्ञान दे सकें, जिसे देश ने और दुनियां ने आज प्राप्त कर रखा है, तो ये ग्राम हमारे इतने शक्तिशाली अंग बन जायेंगे कि समूचे देश को एक बनाये रखने में तथा रामराज्य का जो हमारा आदर्श है, उसकी प्राप्ति में ये सफल सहायक सिद्ध होंगे। सोवियत विधान का आधार वस्तुतः ग्राम्य इकाइयां ही हैं, जिन्हें वहां 'ग्राम-पंचायत' का नाम दिया गया है। मेरा अपना मत यह है कि रूस की ग्राम-पंचायतों की तरह हमारी ग्राम-पंचायतें सुशासन के लिए एक आदर्श बन सकती हैं। मैं समझता हूं कि विधान में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रस्तुत मसौदे के अंतर्गत ऊपर वाली सभा का चुनाव, अव्यवहृत रूप से प्रान्तीय विधान-मंडल करेंगे। मैं समझता हूं कि इसका चुनाव और व्यापक मताधिकार के

आधार पर होना चाहिए तथा ग्राम-पंचायतों के द्वारा ही ऊपर वाली सभा का चुनाव होना चाहिए। यह जो पद्धति प्रस्तावित की गई है कि ऊपर वाली सभा का चुनाव प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं द्वारा हो, यह बिल्कुल गलत है। अगर ग्राम-पंचायतें ऊपर वाली सभा का चुनाव करें, तो इस तरह जो सभा बनेगी, वह अधिक प्रतिनिधायी होगी। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि जब तक गांवों को हम और अधिक दायित्व नहीं प्रदान करते, तब तक उनकी समस्याओं का वास्तविक समाधान नहीं हो सकता।

तीसरी बात जो मैं आपके सामने रखना चाहता हूं, वह है प्रादेशिक राज्यों के सम्बन्ध में। प्रान्तों के लिए तथा देशी रियासतों के लिए दो तरह का अलग-अलग विधान हो, इसके लिए डा. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है, उससे मैं पूर्णतः सहमत हूं। मैं समझता हूं कि रियासतों को भी प्रान्तों की पंक्ति में लाना चाहिए। मुझे आशा है कि रियासतों के प्रतिनिधि, जो यहां समवेत हैं, यही पायेंगे कि प्रान्तों के समान विधान रखने में उनको अधिक लाभ है। गवर्नरों की जगह अपने राजा को वे अपना वैधानिक प्रमुख बना सकते हैं। बहुतेरी छोटी-छोटी रियासतों ने तो आपस में मिलकर अपनी एक बड़ी इकाई बना ली है। जो रियासतें बिल्कुल ही छोटी है, वह अपने सन्निकटवर्ती प्रान्तों में मिल गई हैं। मैं ऐसा समझता हूं कि विधान में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर कोई रियासत प्रान्त की पंक्ति में आना चाहती हो, तो प्रान्तीय विधान ही उस पर भी लागू होगा। आशा है कि जब तक विधान पास होगा अधिकतर रियासतें प्रान्तों की पंक्ति में आना स्वीकार कर लेंगी।

श्रीमान्, मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने कहा है, दुनियां में कहीं भी मौलिक अधिकार सर्वथा सम्पूर्ण नहीं हैं। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि अपने मौलिक अधिकारों को और स्पष्ट असंदिग्ध रूप में रखना चाहिए था। मैं समझता हूं कि इस मन्तव्य में कि मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध रखे गये हैं, उनसे विधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का बहुत सा सार अपहृत हो जाता है। बहुत कुछ सच्चाई है। मेरी समझ से इन अनुच्छेदों में सुधार होना चाहिए।

अब एक बात राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में कहूंगा। मेरी समझ से विधान की भाषा के सम्बन्ध में एक स्वतंत्र खण्ड होना चाहिए, जिसमें कि आयरिश विधान के नमूने पर राष्ट्रभाषा के बारे में खण्ड रखा गया हो। निजी तौर पर मेरा यह मत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए और वह देवनागरी लिपि में लिखी जानी चाहिए। इसी प्रकार मेरा यह मत है कि विधान में राष्ट्रीय झंडे के स्वरूप का भी उल्लेख होना चाहिए। इसका रंग क्या हो, आकार क्या हो, यह सारी बातें विधान में आनी चाहिए। मैं श्री गोविन्ददास सेठ के इस कथन से पूर्णत: सहमत हूं कि भारतीय संघ में गौवध बन्द कर देना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा समझता हूं कि तीस करोड़ जनता की भावना का हमें आदर करना चाहिए। मेरी समझ से विधान में एक ऐसा अनुच्छेद होना चाहिए, जो गौवध पर प्रतिबंध आरोपित करता हो। मेरी राय में जनता जैसी भी है, हमें उसे अपनाना होगा और उसकी भावनाओं का भी आदर करना होगा। इसलिए मेरा मत है कि हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने विधान में हमें संशोधन करना चाहिए।

अन्त में श्रीमान्, मसौदा-समिति को मैं धन्यवाद देता हूं कि उसने एक ऐसा सुन्दर विधान हमें प्रदान किया है। मैं समझता हूं कि जो सुझाव मैंने रखे हैं, संशोधनों पर विचार करते समय उन पर भी विचार किया जायेगा और देश के विधान का जो अन्तिम स्वरूप निश्चित होगा, उसमें उनको स्थान मिलेगा। इन शब्दों के साथ श्रीमान्, सभा से सिफारिश करता हूं कि वह प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार करे।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, पूर्ववक्ताओं की भांति मैं भी मसौदा-समिति को और विशेषत: उसके सभापति डा. अम्बेडकर को बधाई देता हूं कि इस मसौदे के प्रस्तुत करने में इन लोगों ने इतना परिश्रम किया। किन्तु उन्होंने अपने भाषण में कुछ ऐसी बातें भी कहीं हैं, जिनसे मैं सहमत नहीं हूं। उन्होंने यह कहा है: ''हमारे ग्राम क्या हैं? कूप मण्डूकता के ये परनाले हैं, अज्ञान, संकीण्रता एवं साम्प्रदायिकता की काली कोठरियां हैं,'' मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि इस सभा का एक माननीय सदस्य, हमारी राष्ट्रीय सरकार का एक माननीय मंत्री, हमारे ग्रामों के सम्बन्ध में ऐसी हेय धारणा रखता है। मैं तो कहूंगा कि हमारे कालेज और स्कूलों में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार होने से ग्रामों से हमारा सम्पर्क ही जाता रहा था। किन्तु लगभग तीस वर्ष हुए कि हमारे नेता ने—पूज्य महात्मा गांधी ने—देश के बुद्धि सम्पन्न व्यक्तियों को गांवों को वापस जाने की सलाह दी। गत तीस वर्षों से हम गांवों में जाने लगे हैं और हमने अपने

को ग्रामीणों में मिला सा दिया है। डा. अम्बेडकर की आलोचना के उत्तर में मैं कहूंगा, हमारे ग्रामों में कूप मण्डूकता नहीं है। अज्ञान—अंग्रेजी भाषा का एवं अपनी अन्य लिखी भाषाओं का अज्ञान—वहां जरूर है, और इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है, वह सरकार, जो हमारे पहले यहां थी और जिसने हमारी शिक्षा-पद्धति को नष्ट कर दिया था। जहां तक प्रकृतिज्ञान का सम्बन्ध है, शास्त्रों और पुराणों से प्राप्त होने वाले नीतिज्ञान का सम्बन्ध है, मैं कहूंगा कि हमारे आधुनिक शहरों से कहीं अधिक ज्ञान और बुद्धि हमारे गांवों में वर्तमान है।

मुझे नगरों से घृणा नहीं है। मैं नगरों में रहा हूं। दो महादेशों में भी मैं रहा हूं, किन्तु दुर्भाग्य से भारतीय नगर अन्य देशस्थ नगरों से कहीं बिल्कुल भिन्न हैं। हमारे नगरों में रहने वाले लोग ग्रामीणों से, उनके जीवन से बहुत दूर हैं और यही कारण है कि हम ऐसा समझते हैं कि गांवों में कोई अच्छाई है ही नहीं। अब यह विचार बदलता जा रहा है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि कांग्रेस-परिधि के बाहर यह विचार बदल रहा है या नहीं; पर यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि कांग्रेस-परिधि में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में, गांवों का ख्याल सबसे पहले है। इसलिये मैं डा. अम्बेडकर से अपील करता हूं कि इस मसले पर वह पुनर्विचार करें और ग्रामों को वही स्थान दें जो उनको मिलना चाहिये; क्योंकि निकट भविष्य में हमारे ग्राम वही महत्त्व प्राप्त करने वाले हैं, जो पूर्वकाल में उन्हें प्राप्त था।

अब मैं विधान के मसौदे की ओर आता हूं। इस बात में कि केन्द्र को अधिक अधिकार दिये जाये। मैं डा. अम्बेडकर से पूर्णतः सहमत हूं; क्योंकि वर्तमान समय में हमारे लिए एक शक्तिशाली केन्द्र अत्यावश्यक है। हम भले ही यह कहें कि हमारे देशवासियों की संस्कृति के जो मूलभूत तत्त्व है, वह देश के विभिन्न सभी प्रान्तों में एक समान हैं पर वस्तुस्थिति यह है कि देश की जनता में विभिन्नता है और देश में तरह-तरह की विघ्नात्मक शक्तियां वर्तमान है, जो इस स्थिति से कि अंग्रेज यहां से चले गये हैं, लाभ उठाकर आज सिर उठाने की कोशिश कर रही हैं। इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारा केन्द्र खूब शक्तिसम्पन्न हो जिससे कि देश के विभिन्न लोगों को मिलाकर, देश को एक राष्ट्र का रूप

[श्री सारंगधर दास]

दे सकें। इस सम्बन्ध में मैं आपसे आग्रह करूंगा कि भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना के विचार को पांच या दस वर्षों के लिये स्थगित रख दें। यद्यपि मैं एक ऐसे प्रान्त से आ रहा हूं, जहां हम लोग यह समझते हैं कि हमारे प्रान्त के साथ अन्याय किया गया है, किन्तु भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना हो, इस विचार के कारण पड़ौसी प्रान्तों के निवासियों में बड़ी ही कटुता पैदा हो गई है और इसी कारण मैं आपसे यह आग्रह कर रहा हूं। कटुता लाने का यह समय नहीं है। हम लोग यही चाहते हैं कि पड़ौसी प्रान्तों में पारस्परिक सद्भाव रहे। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि भाषावार प्रान्तों का विचार कम से कम पांच वर्षों के लिये तो स्थगित ही कर दिया जाये। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है, मैं जानता हूं और देश का प्रत्येक स्वातंत्र्य प्रेमी नागरिक जानता है कि हमारी एक राष्ट्रभाषा अवश्य होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में भी हमारे पास विभिन्न प्रान्तीय भाषायें हैं, जिनमें कुछ तो बहुत ही विकसित हो गई हैं और सम्पन्न स्थिति में आ गई हैं और कुछ ऐसी है, जो पिछड़ी हुई हैं। इस तरह विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के बीच एक स्पर्धा उत्पन्न हो गई है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें याद रखना होगा कि हमें एक ऐसी भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाना होगा, जिसे देश के अधिकांश निवासी बोल और समझ सकते हों। हिन्दी के सिवाय अन्य कोई भी भाषा इस कसौटी पर ठीक नहीं उतर सकती। हिन्दी भाषा का आधार संस्कृत है और चूंकि विभिन्न प्रान्तों में कुछ न कुछ संस्कृत सभी लोग पढ़ते हैं; यद्यपि इतना नहीं, जितना कि हमारे बुजुर्ग पढ़ा करते थे; इसलिए हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है। हमारी प्रादेशिक भाषाओं का आधार भी संस्कृत ही है। उसे हमारे प्रान्त में साधु-भाषा कहते हैं; अर्थात् विद्वानों की भाषा यह है। उड़िया के रूप में बोली जाने वाली इस साधु-भाषा को हिन्दी वाले भी समझ सकते हैं और इसी प्रकार इसे पंजाबी भाई भी समझ सकते हैं इसी तरह उड़ीसा के लोग भी हिन्दी समझ लेते हैं, बोल वह भले न सकते हों। यही बात बंगाल और महाराष्ट्र आदि के साथ भी है। इस दृष्टि से देखते हुए मुझे आश्चर्य होता है कि अन्य अहिन्दी भाषी मित्र, खासकर के दक्षिण भारत के बन्धु हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की जो मांग है, उसको भाषा सम्बन्धी साम्राज्यवाद समझते हैं। मैं नहीं देखता कि इसमें भाषागत साम्राज्यवाद की क्या बात है। अगर दक्षिण भारत के लोग अंग्रेजी के सिवाय अन्य

कोई भाषा नहीं बोल सकते हैं, तो क्या इससे उनका यह अभिप्राय है कि मद्रास प्रान्त में रहने वाली करोड़ों जनता अंग्रेजी समझती है? अंग्रेजी समझने वालों की संख्या बहुत ही कम है। शहरों में रहने वाले कुछ अशिक्षित भी अंग्रेजी समझ लेते हैं, पर गांवों में इसे समझने वाला कोई भी नहीं है। हमें अंग्रेजी को उठाना ही होगा; किन्तु साथ ही हिन्दी के हिमायतियों से भी यह कहूंगा कि हम इसे तुरन्त नहीं हटा सकते। दक्षिण भारतवासियों को तथा अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों को हमें कुछ समय देना ही होगा, ताकि वे हिन्दी से परिचित हो जाये और राष्ट्रभाषा के द्वारा उत्तर भारत तथा पश्चिम भारत से अपना सम्पर्क स्थापित कर सकें।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह है भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में। दस मास पहले जब हम विधान सम्बन्धी सिद्धान्तों के सम्बन्ध में पहली बार विचार करने बैठे थे, तो उस समय हमारी रियासतों की स्थिति कुछ और ही थी। तब से आज बहुत सी बातें बदल गई है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि प्रान्तों तथा रियासतों—दोनों को ही कैसे इकाइयों के रूप में रख सकते हैं? भारतीय रियासतें अभी भी प्रान्तों के स्तर पर नहीं आ पाई हैं। इस सम्बन्ध में एक खास बात मैं यह देखता हूं कि रियासतों के हाईकोर्ट, सर्वोच्च न्यायालय की अधिकार-सीमा के अन्दर नहीं रहेंगे। मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले अध्याय में यह कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को इन अधिकारों के बारे में प्रत्याभूति दी जाती है। भारतीय रियासत में या उनके किसी संघ में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, भारत का नागरिक है और अगर वहां की सरकार उसके मौलिक अधिकारों का अपहरण करे तो वह वहां की उच्च न्यायालय में अपील करें, पर वहां उच्च न्यायालय का ही निर्णय अन्तिम होगा। किन्तु प्रान्तों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। वहां उच्च न्यायालय के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील की जा सकती है। इस स्थिति में मैं नहीं समझ पाता कि रियासतों में रहने वाले नागरिक की स्थिति, प्रान्तों में रहने वाले नागरिक की स्थिति के समान क्यों कर हो सकती है?

इसके अतिरिक्त बहुत सी रियासतों में और भी ऐसी बहुत सी बातें वर्तमान हैं और खास राजपूताना और मध्य भारत की रियासतों में। जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के नरेशों के अधीन बहुत से जागीरदार हैं, जो 75 से 90 प्रतिशत भूमिक्षेत्र के स्वामी हैं। वहां एक तरह का कर जागीरदार किसानों से वसूल करते हैं और फिर महाराजा की सरकार को भी उन्हें एक और कर देना पड़ता है। और इसके बाद

[श्री सारंगधर दास]

भी जब अपना माल किसी पड़ौसी रियासत में भेजते हैं, तो वह रियासत भी उन पर आयात कर लेती है। इस सम्बन्ध में मैं एक व्यवहारिक उदाहरण दे रहा हूं। जयपुर में रुई पैदा होती है। पैदा करने वाले दो कर तो जागीरदार के इलाके में चुकाते हैं और जब वह माल बीकानेर जाता है, जहां रुई नहीं होती, तो उस पर एक कर वहां लगाया जाता है। इन सारी बातों को बदलना होगा और जितना ही जल्द हम इन्हें बदल दें, उपज करने वाले, खपाने वाले तथा व्यापार, इन तीनों के लिए उतना ही अच्छा होगा।

एक और बात रह जाती है और यह आखिरी बात है, जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं। विभिन्न रियासतों के कबायली लोग प्रान्तों में आ गये हैं और विशेष करके उड़ीसा एवं मध्यप्रान्त में। संघ-सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह इनके जीवनस्तर को ऊंचा उठाये और इन लोगों को सामाजिक और आर्थिक सुविधायें दे। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अर्थ की दृष्टि से ये बहुत ही पिछड़े हुये हैं करीब 20 लाख कबायली उड़ीसा में हैं और 15 लाख मध्य प्रान्त में हैं। हमारे इन पिछड़े हुए नागरिक भाइयों की शीघ्र समुन्नति के लिये यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार इस काम के लिये बड़ी-बड़ी रकमें दे, क्योंकि प्रान्त इतने बड़े भार को सम्भाल नहीं सकते। केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच भी आर्थिक व्यवस्था तय हो, उसमें यह बात अवश्य होनी चाहिये कि जनसंख्या के आधार पर प्रति व्यक्ति के हिसाब से जो भी रकम कबायली लोगों के सम्बन्ध में दी जाये, वह उस रकम से चार या पांच गुना ज्यादा हो, जो गैर-कबायली लोगों के सम्बन्ध में दी जाये। मैं इस बात पर विशेष रूप से जोर देता हूं, क्योंकि अगर हमें इनकी स्थिति को शीघ्र समुन्नत करना है, तो उसके लिये जरूरी है कि जहां भी पिछड़े हुये लोग हैं और जब भी जरूरत हो, अधिक रकम खर्च की जाये।

चौधरी रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, मैं डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए दो-एक नम्र निवेदन करना चाहता हूं। मैं सेठ गोविन्ददासजी की तरह इस बात का हामी हूं कि यह अच्छा होता कि हम आरम्भ में ही राष्ट्रगीत, राष्ट्रपताका और राष्ट्र-भाषा का फैसला करते। मैत्रजी ने जो बात कल कही थी, उसके विषय में मैं यह कहना चाहता हूं कि इसमें कोई शक नहीं है कि हम दक्षिण के साथियों से आज यह तवक्को नहीं कर

सकते कि वह एकदम से हिन्दी में ही बोलें और हिन्दी में ही काम चलावें। लेकिन राष्ट्र-भाषा का फैसला पहले होने से एक फायदा यह था और अब भी लाभ है कि लोगों को यह पता लग जायेगा कि देश की कौन सी राष्ट्र-भाषा है और उनको कौन सी राष्ट्र-भाषा सीखने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इसके बाद मैं ताकत के एकीकरण या पृथक्करण के झगड़े में बहुत ज्यादा नहीं जाना चाहता। लेकिन मैं इस सभा का ध्यान एक बात की तरफ दिलाना चाहता हूं। राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने हमेशा हमें यह सिखाया है कि चाहे राजनीतिक क्षेत्र हो या आर्थिक क्षेत्र, उसके अन्दर पृथक्करण से जो ताकत पैदा होती है, वह ज्यादा मजबूत होती है और मेरे लिए इसके अलावा और भी दूसरे कारण हैं मैं एक देहाती हूं, किसान के घर में पला हूं और परवरिश पाया हूं। कुदरती तौर पर उसका संस्कार मेरे ऊपर है और उसका मोह और उसकी सारी समस्यायें आज मेरे दिमाग में हैं। मैं यह समझता हूं कि इस देश के अन्दर उसके निर्माण करने में जितना बड़ा हक देहातियों का होना चाहिए, उतना उनको मिलना चाहिए और हर एक चीज के अन्दर देहात का प्रभुत्व होना चाहिए।

इसके आगे एक और चीज है, जिसकी तरफ आज सुबह बाबू ठाकुरदास ने ध्यान दिलाया था। वह यह है कि देहाती और शहरी नशिस्तों (स्थानी) की तफरीक मिटा दी जाये। इसमें कोई शक नहीं है और मैं इसको मानता हूं कि अगर हम बहुत आगे की बातें सोचें, तो इसमें देहात का फायदा है, खासतौर पर हिन्दुस्तान जैसे देश के अन्दर, जहां पर कि 7 लाख देहात हैं और चन्द शहर हैं। पर आज जैसे हालात हैं, उनको हम भूल नहीं सकते। हम कितने ही अच्छे ढंग से देहातियों को समझावें और कितने ही अच्छे गीत गाकर उनको हम भुलाना चाहें, वह इस बात को भूल नहीं सकते कि आज देश के अन्दर प्रेस की ताकत और पढ़े-लिखे इंटेलीजैंसियों की जो ताकत देश में प्रभुत्व रखती है, वह शहरों तक ही महदूद है और देहात की आवाज का देश के निर्माण में बहुत थोड़ा हिस्सा है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हम आज जो हालात हैं, उसको भुला नहीं सकते। आज देश में यह जरूरत है कि अभी देहात की जो धारा सभायें नशिस्तें हैं, वह अलहदा रखी जाये, क्योंकि दरअसल अगर संरक्षण मिलना है और मिलना भी चाहिए, तो सिर्फ उन्हीं लोगों को मिलना चाहिए, जो कि पिछड़े हुए हैं। संरक्षण जो कि हमारे ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन में दिया गया है, वह संरक्षण तो अजीब है। हमें एक चीज को याद करना चाहिए, जो हमें राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने सिखाई है कि हमें अपने ध्येय को हासिल करने में मीन्स का भी हमेशा ध्यान रखना

[चौधरी रणबीर सिंह]

चाहिए। मीन्स का असर ध्येय पर अवश्य पड़ता है। तो जब हम एक सैक्युलर स्टेट बनाना चाहते हैं और निर्धर्मी सरकार बनाने का हमारा ध्येय है, तो फिर उसको हासिल करने के तरीके में अगर हम सीटें माइनारिटीज के लिये या कुछ सम्प्रदायों, रिलीजियन्स के लिये संरक्षित कर दें, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं नहीं समझता कि यह चीज जो मीन्स है, यह कहां तक ठीक है। क्या इन मीन्स का असर ध्येय पर नहीं पड़ेगा? मैं तो समझता हूं कि हमारा जो यह स्वप्न है कि देश के अन्दर एक निर्धर्मी सरकार बनावें, वह स्वप्न ही रह जायेगा, अगर आज भी हमने इस तरह का फैसला किया कि संरक्षण जो मिले, वह धर्म के आधार पर मिले। आज देश की हालत को देखें तो जहां तक कि मुसलमान मजहब के मानने वालों का ताल्लुक है, उनकी तरबियत और शिक्षा और उनकी ताकत का हम सबूत देख चुके हैं। हमने यह देखा कि उन्होंने अपने ऑरगेनाइजेशन की ताकत से और फॉरेन ताकत की मदद से देश के दो हिस्से कराए। दूसरी माइनारिटीज भी, जिनका जिक्र पहले आ चुका है, वह भी कोई कम ताकतवर नहीं हैं। उनको किसी तरह हम पिछड़ी हुई जातियां नहीं कह सकते हैं। हां, यह बात कही जा सकती है कि हरिजन भाई पिछड़े हुए हैं, तालीम के लिहाज से और आर्थिक दशा के हिसाब से वह पिछड़ी हुई जाति कही जा सकती है। लेकिन इस सिलसिले में भी हमको एक बात और सोचने की है, वह यह है कि अगर हम आज उनको हरिजनों के नाम से संरक्षण देते हैं, तो हम उनके हरिजन नाम को पक्का कर देंगे, जो कि हमारा ध्येय नहीं है। हम देश के अन्दर एक क्लासलैस सोसाइटी बनाना चाहते हैं। तो उस क्लासलैस सोसाइटी के अन्दर अगर हम इस तरह सुरक्षित स्थान देंगे, तो वह क्लासलैस सोसाइटी नहीं बन सकेंगी। बल्कि इस तरह से तो हम हरिजन शब्द को पक्का करेंगे। मेरी समझ में उनको सुरक्षित स्थान देने का दूसरा तरीका है, जो बहुत अच्छा है और वह यह है कि पिछड़े हुए जितने आदमी हैं, वह या तो किसान है या वह मजदूर हैं। रशिया में जो मनुष्य हाथ से मेहनत नहीं करते थे और जो दूसरे ढंग से अर्थात् रुपया से रुपया कमाते थे और जिनकी श्रम से कमाई नहीं थी, उनको डीफ्रैंचाइज कर दिया गया था। हम अपने देश में चाहे आज उनको डीफ्रैंचाइज न करें, उनको उनकी आबादी के हिसाब से पूरा अधिकार दे दें। लेकिन जो काम करने वाली जातियां हैं, किसान और मजदूर, उनके

लिए हम संरक्षण रखें और अगर संरक्षण देना है, तो उन्हीं आदमियों को देना है, जो कि किसान है और मजदूर हैं और उन्हीं को यह सही तौर पर दिया जा सकता है।

इसमें एक बात और है। जैसा मैंने पहले कहा था, शायद कोई कह सकता है कि इस तरह से एक और बीमारी पैदा हो जायेगी, वह यह है कि किसान और मजदूर का शब्द भी पक्का घर कर जायेगा। परन्तु मैं समझता हूं कि इससे तो कोई नुकसान नहीं होने वाला है। अगर सारा देश मजदूर बन जाये या किसान बन जाये, तो यह सबसे बेहतर है। अगर हर एक इन्सान श्रम करके खायेगा, तो यह देश के लिए सबसे अच्छी बात होगी और जो देश का आज का मसला अनाज और कपड़े का है, वह भी आसानी से हल हो सकेगा।

इसके बाद मेरा नम्र निवेदन, जो कि एक किसान के नाते हो सकता है, वह गौरक्षा के बारे में है। गौवध के बारे में मैंने और पंडित ठाकुरदास भार्गव जी ने कांग्रेस-पार्टी में एक प्रस्ताव (रिजोल्यूशन) रखा था और उस वक्त वह सर्वसम्मति से माना गया था। लेकिन यह बदकिस्मती की बात है कि उसका जिक्र हमारे कान्स्टीट्यूशन में किसी तरह से भी नहीं आया है। हालांकि हिन्दी के बारे में भी ऐसी ही बात हुई थी। हिन्दी का जो फैसला था, वह पार्टी के अन्दर हो चुका था, लेकिन वह भी इस हाउस के अन्दर नहीं आया था। फिर भी मसौदे में उसका प्रवेश कर दिया गया है। लेकिन गौरक्षा का जो रिजोल्यूशन था, उसका जिक्र नहीं आता। मेरा यह नम्र निवेदन है कि उस रिजोल्यूशन को पूरे तरीके से माना जाये, बल्कि उसका विस्तार इस तरह कर दिया जाये:

"In discharge of the primary duty of the State to provide adequate food, water and clothing to the nationals and improve their standard of living the State shall endeavour:–

(a) as soon as possible to undertake the execution of irrigation and hydro-electric projects by harnessing rivers and construction of dams and adopt means of increasing production of food and fodder.

(b) to preserve, project and improve the useful breeds of cattle and ban the slaughter of useful cattle, specially milch and draught cattle and the young stocks."

[चौधरी रणबीर सिंह]

अध्यक्ष महोदय, एक और निवेदन मैं आर्थिक व्यवस्था के बारे में करना चाहता हूं। मुझे इसमें तो कोई एतराज नहीं है, बल्कि मुझे बड़ी खुशी है कि सैन्टर बड़ा भारी मजबूत हो, लेकिन एक चीज, जो मैं निवेदन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, वह यह है कि सूबों के फाइनेन्सेज मजबूत किये जायें। आज एक किसान, जिसकी कमाई खून और पसीने की कमाई है, उसकी आमदनी का एक पाई भी ऐसा हिस्सा नहीं है, जिसके ऊपर टैक्स नहीं लगता। एक बीघा भी जमीन अगर वह काश्त करता है, तो इसके ऊपर टैक्स देना पड़ता है। इसके मुकाबले में इस भारत के दूसरे निवासियों को दो हजार तक की आमदनी पर कोई टैक्स नहीं लगता। किसान के साथ यह एक बहुत बड़ा अन्याय है और एक ऐसे देश में, जिसके अन्दर कि किसानों का प्रभुत्व है और जिसमें किसानों की इतनी बड़ी आबादी है, बल्कि यों कहना चाहिए कि जो देश किसानों का ही है, उसके अन्दर उनके साथ यह अन्याय जारी रहेगा, तो यह कैसा मालूम देगा? इसलिए मैं यह चाहता हूं कि सूबे की सरकारें जमीन का जो लगान है, उसको भी इन्कम टैक्स के ढंग से लागू करें। इसके लिए उनके फाइनेन्सेज को मजबूत किया जाये।

दूसरी बात एक पंजाबी होने के नाते में कहना चाहता हूं कि इस देश के आज़ाद होने से पंजाब तकसीम हुआ और पंजाब के तकसीम होने से सूबे का तमाम काम उथल-पुथल हो गया। उसको फिर दुबारा दूसरे सूबों की बराबर लाने के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम दस साल तक, जहां तक आर्थिक व्यवस्था का ताल्लुक है, ईस्ट पंजाब के साथ खास रियायत बरती जाये।

***उपाध्यक्षः** कई माननीय सदस्यों की ओर से मुझे इस आशय के पत्र मिले हैं कि सभा स्थगित कर दी जाये, क्योंकि वे लोग प्रदर्शनी देखने जाना चाहते हैं। मैं जानना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में सभा की क्या राय है।

***माननीय सदस्यगणः** हां, सभा स्थगित की जा सकती है।

***उपाध्यक्षः** मुझे 60 सज्जनों के नाम मिल चुके हैं, जो बोलना चाहते हैं। सभा स्थगित करने का अर्थ यह हुआ कि बहुत कम ही लोग बोल पायेंगे, क्योंकि अब एक ही दिन रह गया है। सभा जैसा चाहती हो वैसा निर्णय करे।

***एक माननीय सदस्यः** साढ़े चार बजे हमें सभा स्थगित कर देनी चाहिए।

***अन्य माननीय सदस्यः** चार बजे हम उठें।

***उपाध्यक्षः** सवा चार तक हम काम जारी रखेंगे।

***श्री आर.आर. दिवाकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, पूर्ववक्ता माननीय सदस्यों ने बहुत सी बातें कह दी हैं और मैं समझता हूं, उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति में मुझे सभा का समय नहीं लेना चाहिए। मैं कुछ ही बातों के सम्बन्ध में बोलूंगा, जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, खास कर जब कि हम अपने देश को एक नया विधान देने जा रहे हैं। एक बात जिसे मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं, वह यह है कि विधान का जो मसौदा हमारे सामने रखा गया है, वह वस्तुतः एक स्मरणीय कृति है और हम सभी इसके लिए मसौदा-समिति को तथा उसके अध्यक्ष को, जो कि सभा में इस विधान को अग्रसर कर रहे हैं, बधाई दे चुके हैं। पर साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि मसौदा-समिति ने न केवल विधान-परिषद् के निर्णयों को ही विधान का रूप दिया है, बल्कि मेरी तुच्छ राय में यह मसौदा-निर्माण के क्षेत्र से कही आगे बढ़ गया है। मैं शायद यह कह सकता हूं कि इसने परिषद् के निर्णयों पर पुनर्विचार किया हैं, उसके कई निर्णयों में उसने परिवर्तन कर दिये हैं, तथा उसके अनेक निर्णयों को नये रूप में रख दिया है। हो सकता है कि वर्तमान परिस्थिति में ऐसा करना परमावश्यक रहा हो, पर विधान-परिषद के हम सदस्यों को, जब कि हम मसौदे पर विचार कर रहे हैं और अपने संशोधन रखने की बात सोच रहे हैं, तो उपरोक्त तथ्य से अवगत हो जाना चाहिए।

दूसरी बात मैं उस जल्दीबाजी के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं, जिससे कि कई लोग विधान सम्बन्धी वाद-विवाद को शीघ्र ही समाप्त कर देना चाहते हैं। मैं नहीं समझता कि मसौदे पर विचार करने में बहुत शीघ्रता करना लाभप्रद होगा। इसके लिए यथेष्ट समय मिलना चाहिए और जो संशोधन आये हैं, उनमें से कोई भी किसी प्रकार दबाया नहीं जाना चाहिए और न वक्ता को अपर्याप्त समय मिलना चाहिए। महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर जो वाद-विवाद हों, उनके लिए काफी समय मिलना चाहिए। स्वतंत्र भारत का आविर्भाव हुए आज एक वर्ष से कुछ अधिक हुआ और इस वर्ष हमने बहुत से अनुभव प्राप्त किये हैं अगर और किसी विचार से नहीं, तो इन अनुभवों के विचार से ही मैं समझता हूं, हमें शीघ्रता न करनी चाहिए

[श्री आर.आर. दिवाकर]

और मसौदे की बहुत से प्रावधानों में, जिस रूप में वह हमारे सामने है—परिवर्तन करने के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

वयस्क मताधिकार के प्रश्न को ही लीजिए। हम लोगों में से बहुत से लोग यह सोचने लग गये हैं कि अगर हम बालिग मताधिकार अभी से चालू कर देते हैं, तो क्या विधान-मण्डलों के लिए उस प्रकार के लोग मिल जायेंगे, जो इन सभाओं के लिए अपेक्षित हैं। मैं उन व्यक्तियों में हूं, जो आपको यह सुझाव देंगे कि जहां तक निर्वाचकों का सम्बन्ध है, हम वयस्क मताधिकार को तो जिस रूप में यहां है, रखे; किन्तु परस्पर मिलकर हमें गम्भीरतापूर्वक इस बात पर विचार करना चाहिए कि उम्मीदवारों के लिए हमने जो योग्यताएं रखी है, वह क्या ऐसी है कि उनके आधार पर विधान-मण्डलों में आने वाले व्यक्ति अपने दायित्वों को योग्यतापूर्वक निभा सकेंगे? निश्चय ही पश्चिम की प्रजातंत्रीय प्रणाली का यह अन्धविश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति, जिसे मतदान का अधिकार प्राप्त है, वह विधान-मण्डल का सदस्य चुने जाने के योग्य है। मैं ऐसा नहीं समझता कि प्रजातंत्र के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पाश्चात्य देशों की परम्परा का ही अनुगमन किया जाये। हमें इस महत्त्वपूर्ण बात पर भी सोचना चाहिए कि हमें एक ऐसा विधि-निर्माता चाहिए, जो न केवल प्रतिनिधि मात्र हों, बल्कि ऐसा प्रतिनिधि हो जो कानून बना सकता हो और कुछ दूरदृष्टि रखता हो। हम राष्ट्रीयता की बातें, एकात्मक शासन व्यवस्था की तथा एक शक्ति सम्पन्न केन्द्र की बातें तो कर रहे हैं, पर ये बातें—ये बड़े बड़े शब्द—व्यर्थ हो जायेंगे। यदि हमारे विधान-मण्डलों में ऐसे व्यक्ति न आयें, जो दूरदृष्टि रखते हों और जो बनाये जाने वाले कानून के प्रत्येक पहलू को प्रसंगानुसार इसी दूरदृष्टि से न देख सकते हों। आखिर विधान को शक्ति प्राप्त होती है उन लोगों से, जो इसे कार्यान्वित करते हैं और अगर हम विधान-मण्डलों में ऐसे लोगों को नहीं भेज पाते हैं, जो इस सम्पूर्ण विधान की भावना को उसकी आत्मा को समझ सकते हों, तो मैं समझता हूं कि विधान को उस रूप में कार्यान्वित करना, जिस रूप में कि यह होना चाहिये, बहुत ही कठिन बात होगी। मैं बताना चाहता हूं कि इसी प्रकार की और भी कई बातें हैं, जिन्हें गत वर्ष के अन्दर अपने अनुभवों के आधार पर हम समझ पाये हैं और प्रस्तुत मसौदे पर विचार करने में हमें उनसे लाभ उठाना चाहिये।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है, भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना का प्रश्न तथा राष्ट्रभाषा का प्रश्न, जिनके सम्बन्ध में कि यहां बार-बार वक्तृताएं दी गई हैं। भाषा सम्बन्धी युद्ध तो प्राय: रोज ही यहां लड़ा गया है, या यह कहिए कि लड़ा जा रहा है। प्रकारान्तर से भिन्न-भिन्न रूप में रोज ही यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है। मेरा मत है कि जब हमने यह निर्णय कर लिया है कि हमारी एक अपनी राष्ट्रभाषा होगी, तो फिर हमें उसकी विस्तार की बातों के सम्बन्ध में अब नहीं झगड़ना चाहिए और व्यर्थ ही इस बात पर नहीं जोर देना चाहिए कि हमारा विधान भी उसी भाषा में आना चाहिए। हिन्दी—या हिन्दुस्तानी अथवा आप जिस नाम से भी उसे पुकारें—इस भाषा के प्रति समुचित सम्मान रखते हुए मैं यह कहना चाहूंगा कि इसमें अभी ऐसी अभिव्यक्तियों—शब्दों और पदों—का विकास नहीं हुआ, जिनका कानून और विधान सम्बन्धी कामों में तथा वैधानिक प्रणालियों और भाष्यों में स्वच्छन्दतापूर्वक प्रयोग करना आवश्यक होता है। इसलिए उस दिशा में शीघ्रता करने से पूर्व कुछ काल तक प्रतीक्षा करना हमारे लिए परमावश्यक है। मैं यह राय दूंगा कि अंग्रेजी भाषा में लिपिबद्ध विधान हम अभी स्वीकार करें और उसका एक अच्छा हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत करें, किन्तु अभी आगामी कुछ वर्षों तक के लिए अंग्रेजी में लिपिबद्ध विधान को ही प्रमाणिक मानें। मेरी तुच्छ राय तो यही है।

अब, अंग्रेजी भाषा वे प्रति हमारी जो पुरानी घृणा है, या जो अरुचि है, वह 15 अगस्त सन् 1947 ई. से अवश्य ही दूर हो जानी चाहिये। 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पहले तो हम पराधीन होने के नाते इस भाषा का प्रयोग करते थे और इसलिए उसके प्रति हममें विरक्ति का भाव आना ही चाहिए था। किन्तु आज यह बात नहीं है। आज तो हम कुछ काल के लिए इस भाषा का सहारा इसलिए ले रहे हैं कि हमें ही स्वेच्छा से एक भाषा चुननी है; सम्भवत: इसके गुणों के आधार पर अथवा इस कारण से इसे कुछ काल के लिए रख रहे हैं कि हमारे देश में विभिन्न भाषायें बोली जाती हैं।, जिससे भाषा के सम्बन्ध में एक कठिन स्थिति आज उत्पन्न हो गई है। और मेरी समझ से ऐसा ही करना सर्वोत्तम होगा।

इस समस्या के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि हम जो भी भाषा चुनें, वह ऐसी हो जो अधिकाधिक प्रदेशों में बोध-गम्य हो, प्रचलित हो। ऐसा

[श्री आर.आर. दिवाकर]

करने पर ही, आशा है कि हम किसी अच्छे नतीजे पर, सर्वसम्मत परिणाम पर पहुंच सकेंगे।

अब मैं इस प्रश्न की ओर आता हूं कि भाषावार प्रान्तों की रचना हो। इस प्रश्न पर वह आयोग छानबीन कर रहा है, जिसे विधान-परिषद् के प्रधान ने नियुक्त किया है। इसके सम्बन्ध में अभी कुछ कहना असामयिक होगा। वस्तुतः मैं यही चाहता हूं कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में इस सभा-भवन में चर्चा न की गई होती; किन्तु जब इसकी चर्चा यहां हो चुकी है, तो मैं समझता हूं कि इसको किसी तरह टालना या स्थगित करना ठीक न होगा, क्योंकि जब विधान-परिषद् समवेत ही है और हम देश के तथा प्रान्तों के भविष्य पर विचार कर रहे हैं, तो फिर इस प्रश्न को यह कहकर टालने में कोई लाभ नहीं है कि इस पर कोई निश्चय करने में अभी कठिनाइयां हैं। अगर कठिनाइयां हैं, तो इससे क्या? हम लोग यहां इसी लिए समवेत हुए हैं कि इन कठिनाइयों को दूर करें। मैं नहीं मानता कि ये कठिनाइयां ऐसी अजेय हैं कि एक राष्ट्र के रूप में प्रयास करके भी हम इनका समाधान नहीं कर सकते। इससे भी बड़ी कठिनाइयों को हमने दूर किया है और सम्भवतः भविष्य में इससे कहीं बड़ी कठिनाइयां हमें दूर करनी पड़ें। ऐसी कठिनाई के समय यह आवश्यक है कि राष्ट्र के प्रत्येक अंग की, देश के प्रत्येक दल की यह भावना हो, यह विश्वास हो कि भारत के भावी विधान के अन्तर्गत उसका भविष्य सुनिश्चित है, उसकी समुन्नति सुनिश्चित है और उसके उपेक्षित रखे जाने या दबाये जाने का कोई भय नहीं है।

उपाध्यक्ष महोदय, मैं पुनः इस बात पर जोर दूंगा कि विधान के सम्बन्ध में हमें जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिए। उसमें कुछ दिन कम लगें या कुछ दिन ज्यादा लग जायें, इससे कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। मैं आपसे आग्रह करूंगा कि जो अनुभव हमें गत वर्ष प्राप्त हुए हैं, उन पर आप पूरा ध्यान दें, तथा उनको दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत मसौदे की व्यवस्थाओं को रूप दें।

इन कतिपय विचारों को प्रकट करते हुए मसौदे का मैं अभिनन्दन करता हूं और इसके लिए मसौदा-समिति को धन्यवाद देता हूं और साथ ही इसके सुयोग्य सभापति को भी बधाई देता हूं कि उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ उसे सभा के समक्ष उपस्थित किया है।

***श्री हिम्मतसिंह के. माहेश्वरी** (सिक्किम और कूच बिहार): उपाध्यक्ष महोदय, गत दो दिनों में हमने प्रस्तुत मसौदे के सम्बन्ध में कई तीव्र तथा लाभप्रद आलोचनाएं

सुनी हैं। यहां मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि यहां उपस्थित किये हुए सुझावों में से किसी को दुहराऊं या उसकी विस्तृत व्याख्या करूं। मैं विधान के सम्बन्ध में केवल एक बात कहूंगा और आपसे एक अपील करूंगा। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

विधान के सम्बन्ध में जो एक-बात कहना चाहता हूं, वह यह है कि प्रस्तुत विधान ऐसा है कि इससे लोगों को विवादप्रिय-मुकदमेंबाज होने की, न्यायालयों में पहुंचने की अधिक प्रवृत्ति प्राप्त होती है या होगी, पर सत्यपरायण होने की तथा सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने की उतनी प्रवृत्ति नहीं प्राप्त होती है, जितनी की वांछनीय है। उपाध्यक्ष महोदय, मैं तो कहूंगा कि प्रस्तुत मसौदा कानूनदाओं के लिए एक वरदान सा है। इससे मुकदमेंबाजी के लिए एक विस्तृत क्षेत्र मिलता है और हमारे दक्ष और चतुर कानून-विशारदों को इससे यथेष्ट काम मिलेगा। उससे जाति को, राष्ट्र को भी सहायता मिल सकेगी, यह बात बहुत ही सन्देहास्पद है।

मसौदे के कतिपय प्रावधानों द्वारा जो लाभ या विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं, वह वास्तविक नहीं हैं; बल्कि ऊपरी हैं और मेरी राय में तो उनमें कुछ तो ऐसी हैं, जिनसे क्षति ही पहुंचेगी। अब प्रश्न यह उठता है कि इस दोष का कारण क्या है? एक उत्तर रखने का साहस तो मैं करूंगा और वह उत्तर यह है कि जिन सामग्रियों के आधार पर यह मसौदा तैयार किया गया है, वह सबकी सब विदेशी है। इसकी विचार-धारा विदेशी है, इसकी वेशभूषा विदेशी है और सबसे बुरी बात तो यह है कि इसका ढांचा बहुत ही भारी है। इन सारे दोषों को लेकर मैं नहीं समझता कि मसौदा-समिति ने जो चीज़ दी है, उससे अच्छी चीज़ देना उसके लिये सम्भव था। इन दोषों को अब दूर किया जा सकता, है या नहीं, यह कहने में तो मैं असमर्थ हूं; किन्तु इस बात पर मैं जरूर जोर दूंगा कि जब सभा में मसौदे पर विचार हो, उसकी हर धारा की छानबीन हो, तो यह चेष्टा अवश्य की जाये कि इसके अनावश्यक प्रावधान हटा दिये जायें और इन प्रावधानों को भी विधान में न रखा जाये, जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने में काम अपने भावी विधान-मण्डलों पर छोड़ना ही अधिक सुविधाजनक हो।

सभा से मैं जो अपील करना चाहता हूं, वह उस विषय के सम्बन्ध में है, जिसके बारे में आज और कल कई वक्ताओं ने चर्चा की है। विधान-मण्डलों में अल्पसंख्यकों को—मुसलमान, सिख, परिगणित जातियों तथा अन्य वर्गों को सुरक्षित स्थान दिये जायें, इसके सम्बन्ध में मैं आपसे अपील करना चाहता हूं। मेरे मित्र

[श्री हिम्मतसिंह के. माहेश्वरी]

श्री काजी करीमुद्दीन ने कल सुरक्षित स्थान देने का विरोध करके हमें ठीक ही सावधान किया। जिस रियासत से मैं आया हूं, वहां का जो मुझे निजी अनुभव है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि गत 25 या 30 वर्षों से वहां जो पृथक निर्वाचन नहीं स्वीकार किया गया, और मुसलमानों के लिये संरक्षित स्थान नहीं दिये गये, इसका नतीजा रियासत की जनता के लिए बहुत ही अच्छा रहा है। इसके कारण हिन्दू और मुसलमानों के बीच वहां सदा सद्भाव रहा है और 1946-47 के अशान्त काल में भी वहां सदा दोनों जातियों में पूरी मैत्री बनी रही और आपस में सिर फोड़ने की नौबत कहीं नहीं आई। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन दोनों में पारस्परिक सहयोग है और ये मित्र बने रहते हैं। संरक्षित स्थान की व्यवस्था करने से पार्थक्य की मनोवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना निश्चित है। ऐसी व्यवस्था से हमारा असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित करने का जो स्वप्न है, वह कुछ काल तक अपूर्ण ही रह जायेगा। जब तक कि कोई भी सम्प्रदाय संरक्षित स्थानों की मांग करता है और उस मांग की पूर्ति की जाती रहेगी, तब तक मेरी राय में वास्तविक असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित हो नहीं सकता, वह केवल दिवास्वप्न ही रहेगा। इसलिये अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के मित्रों से मैं इस बात का प्रबल आग्रह करूंगा कि स्वेच्छा से वे इस मांग को छोड़ दें, जिससे कि यह विधान एक सच्चे प्रजातंत्रीय पौरुषेय एवं सबल विधान के रूप में बिना किसी दोष के अपने कार्य का श्रीगणेश कर सके। कल हमारे एक सिख बन्धु ने भी, जहां तक कि मैं उन्हें समझ पाया, संरक्षित स्थान देने के विरुद्ध तक तर्क रखा था। निश्चय ही यह एक शुभ लक्षण है। परिगणित जाति वाले इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं, यह जानना अभी बाकी है। श्रीमान्, व्यक्तिगत रूप से सदा मेरा यही मत रहा है कि किसी भी व्यक्ति को परिगणित जाति का ठहराना उस पर एक कलंक डालना है।

(इसी समय घंटी बजी जिसका अर्थ था कि सदस्य का समय समाप्त हो चुका है।)

मैं आपके आदेश के प्रति सिर झुकाता हूं। श्रीमान्, मैं जो कुछ कहना चाहता था, उसे मैं प्रायः कह चुका।

***उपाध्यक्षः** सभा सोमवार, ता. 8 नवम्बर सन् 1948 ई. को प्रातः 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके बाद सभा सोमवार, ता. 8 नवम्बर सन् 1948 ई. को प्रातः 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. VII.4.48
350

अंक 7
संख्या 4

सोमवार
8 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर........ 257

2. विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव-(*जारी*)........ 257

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, ता. 8 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई; उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्षपद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की एवं रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

सर एच.पी. मोदी (बम्बई: जनरल)

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव—(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** (डा. एच.सी. मुकर्जी): सभा का यह निर्णय रहा है कि हम लोग वाद-विवाद आज बन्द कर देंगे। मेरी सूची में साठ नाम हैं और यह स्पष्ट है कि मेरे लिए यह असम्भव है कि मैं सबको बोलने का अवसर प्रदान...।

***अनेक माननीय सदस्य:** हम आपकी आवाज नहीं सुन पाते हैं श्रीमान्! माइक (*ध्वनि प्रसारक यंत्र*) काम नहीं कर रहा है।

***उपाध्यक्ष:** निश्चय ही मेरे लिए यह सम्भव नहीं है कि मैं प्रत्येक सदस्य को, जो बोलने की इच्छा रखते हैं, बोलने का अवसर दूं। इसलिये मैंने निश्चय किया है कि अल्पसंख्यक वर्गों के सदस्यों को पहले बोलने का अवसर दिया जाये। श्री महबूबअली बेग, आप बोलिए।

***श्री महबूबअली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय डा. अम्बेडकर द्वारा किया हुआ विवेचन एवं पर्यालोचन बहुत ही स्पष्ट, पाण्डित्यपूर्ण,

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री महबूबअली बेग साहब]

शिक्षाप्रद एवं व्याख्यात्मक रहा है। हो सकता है कि हम उनके विचारों से सहमत न हों, किन्तु सभी के सम्मुख मसौदे के विचारार्थ प्रस्ताव उपस्थित करते हुए आपने जो अनुपम भाषण दिया है, उसकी प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। मसौदे में जो शासन-प्रणाली रखी गई है या विधान-पद्धति रखी गई है, इन दोनों से ही मैं असहमत हूं। डा. अम्बेडकर ने इनके औचित्य के सम्बन्ध में जो कारण बताये हैं, उनसे भी सहमत होने में मैं असमर्थ हूं।

पहले मैं शासन पद्धति को ही लेता हूं। डा. अम्बेडकर का मन यह है कि ब्रिटेन का परिषदात्मक (पार्लियामेंटरी) अधिशासी-मण्डल अमेरिका की अपरिषदात्मक अधिशासी व्यवस्था से अधिक अच्छा है, क्योंकि ब्रिटेन की व्यवस्था दायित्वपूर्ण अधिक है, यद्यपि उसमें स्थैर्य कम है, पर अमेरिकन व्यवस्था में स्थिरता अधिक है पर दायित्व कम है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि परिषदात्मक शासन-व्यवस्था के गुणों को तो बहुत बढ़ाकर उसके दोषों को बहुत घटाकर उन्होंने बताया है। यह एक सर्वविदित तथ्य है और इसे अपने अनुभवों के आधार पर हम सभी जानते हैं कि गत दो दशाब्दियों से हम जिस दायित्वपूर्ण अधिशासी व्यवस्था के अधीन काम करते आ रहे हैं, उसने इस सच्चाई की ओर सद ही हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल का अस्तित्व अपनी ही पार्टी के विरोधी दलों की दया पर निर्भर करता है। जो कार्यक्रम अधिशासी वर्ग के सम्मुख रहता है, उसे पूरा करने का उसे समय ही नहीं रहता, क्योंकि उस प्रणाली में यह आवश्यक नहीं है कि अधिशासी वर्ग निश्चित काल तक पदासीन रहा आये। अधिशासी वर्ग को सदा इस बात का भय बना रहता है कि अविश्वास-प्रस्ताव द्वारा वह कहीं हटा न दिया जाये। भ्रष्टाचार की जड़ इसी बात से तो शुरू होती है। पार्टी का भ्रष्टाचारी—घूसखोर व्यक्ति निर्वाचकों द्वारा हटाया नहीं जा सकता, न तो वर्तमान विधान के अनुसार और न प्रस्तावित विधान के ही अनुसार। मंत्री को या मंत्रियों को सदा इस बात के लिए सावधान रहना पड़ता है कि दल के विभिन्न लोगों को उनकी उचित अथवा अनुचित सभी मांगों को पूरा करके सन्तुष्ट रखा जाये। श्रीमान्, यही राय उस कमीशन की—साइमन-एटिली कमीशन की—भी है, जो कुछ दिनों पहले भारत भेजा गया था। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह साफ-साफ कहा था कि मंत्रिमण्डल विधान-मण्डल को सन्तुष्ट रखने में, राजी रखने

में ही इतना व्यस्त रहता है कि शासन-व्यवस्था को देखने का अथवा अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने का उसको मुश्किल से समय मिलता है। यह दोष एक गम्भीर दोष है। इसके अलावा पार्टी के कई सदस्यों को मैंने यह कहते सुना है-दल का प्रतोद हमें किया जा चुका है, अत: ''हम अपने विवेक के अनुसार राय दे नहीं सकते। भगवान ही इस दल-प्रथा से हमारी रक्षा करें।'' यही राय अनेक सच्चे विधान-मण्डल के सदस्यों ने प्रकट की है। इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, जैसा मैंने कहा है, इसमें स्थिरता है ही नहीं।

परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल के विरुद्ध तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं कि, वह यह है कि देश के विभिन्न सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व यह नहीं कर सकता। इस व्यवस्था में दोष इतने अधिक हैं कि मैं तो एक स्थिर अधिशासन को—एक ऐसे अधिशासन को, जिसे यह भय न हो कि वह दूसरे ही दिन गद्दी से हटा दिया जायेगा, क्योंकि वह अपनी पार्टी के भ्रष्टाचारी समर्थकों को सन्तुष्ट नहीं रख सका है—अधिक पसन्द करूंगा। यह सच है कि प्रजातंत्रीय अधिशासन में मंत्रिमंडल अवश्य ही दायित्वपूर्ण होना चाहिए। पर आइये, हम इस बात पर विचार करें कि आया ऐसी भी कोई शासन-व्यवस्था है, जिसमें दायित्व और स्थैर्य दोनों ही बातें वर्तमान हों। निस्सन्देह यह सच है कि अमेरिकन शासन-व्यवस्था में दायित्व कम है और स्थिरता अधिक। किन्तु यदि आप एक अन्य वर्तमान शासन-प्रणाली-स्विटजरलैंड की शासन-प्रणाली को देखें, जिसमें निर्वाचित विधान-मण्डल अधिशासी-मण्डल का निर्वाचन करती है—तो आप पायेंगे कि उसमें दायित्व पर काफी जोर दिया गया है। वहां विधान-मण्डल अधिशासी-मण्डल को चुन देता है और फिर अपनी योजनाओं को चार वर्ष के अन्दर संतोषपूर्ण ढंग से कार्यान्वित करने का काम अधिशासी-मण्डल पर छोड़ देता है। वहां के अधिशासी-मण्डल को विधान-मण्डल का निर्णय मानना ही पड़ता है, जो कि अमेरिका के परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल के लिये आवश्यक नहीं है। इसलिए यदि स्थैर्य एवं दायित्व दोनों ही बातें चाहते हैं, तो इसके लिए स्विस-प्रणाली ज्यादा अच्छी है।

अब, श्रीमान् मैं विधान-पद्धति की ओर आता हूं। जो विधान-पद्धति इस मसौदे में रखी गई है, उससे सहमत होने में मैं असमर्थ हूं। लोगों का यह ख्याल दिखाई देता है कि केन्द्र बहुत सशक्त होना चाहिए और जब तक केन्द्र स्वयं बहुत सशक्त नही होगा, प्रान्त केन्द्र के सशक्त होने में सदा बाधक रहेंगे; यह विचार गलत हैं। यदि प्रान्तों को स्वशासन का अधिकार दे दिया जाता है, तो इससे यह जरूरी

[श्री महबूबअली बेग साहब]

नहीं है कि केन्द्र कमजोर हो ही जायेगा। किन्तु हम यहां क्या देखते हैं? मेरा मत तो यह है कि इस दशा में प्रान्तों का महत्त्व वही रह जायेगा जो एक जिला-बोर्डै को प्राप्त है। अनुच्छेद 275 को लीजिए। इसके अनुसार सद्यस्कृत्यता की स्थिति में केन्द्र सभी अधिकारों को स्वयं अपने हाथ में ले सकता है। खण्ड 226, 227 तथा 229 को लीजिए। इनके अनुसार केन्द्र प्रान्तों के लिए सभी विषयों के सम्बन्ध में कानून बना सकता है। और फिर आप लम्बी संघीय सूची एवं समवर्ती सूची को देखिए। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि ऐसी केन्द्रीय सरकार के लिए, जो कि इकाइयों के निर्णयों को उलटना चाहती है और शासन की संघीय व्यवस्था को एकात्मक व्यवस्था में परिणत करना चाहती है, यह सब करना आसान है। यहां इस बात की पूरी आशंका है कि इस प्रकार का अधिशासन सर्वसत्ताग्राही और सर्वेसर्वा बन जायेगा। जिस प्रकार का विधान मसौदे में रखा गया है, उससे इसी बात की आशंका होती है। इस सिलसिले में आप मूलाधिकारों को देखिये, जो मसौदे में रखे गये हैं क्या वस्तुत: उन्हें मूलाधिकार कहा जा सकता है? मूलाधिकार तो वे अधिकार होते हैं, जो बुनियादी किस्म के हों और जिनमें बहुत ही कठिन स्थिति में परितर्वन किया जा सके एवं साधारण स्थिति में जो सदा अपरिवर्तनीय रहें। किन्तु आप यहां क्या पाते हैं? इन मूलाधिकारों को अनेक प्रतिबंधों से जकड़ दिया गया है और इनके सम्बन्ध में व्यापक अपवाद रख दिये गये हैं। जिस अध्याय में मूलाधिकारों की चर्चा है, उनमें थोड़ी गड़बड़ी भी है। उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि बजाय इसके कि इस बात का फैसला सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ा जाये कि हुकूमत कतिपय विशेष परिस्थितियों में मूलाधिकारों का उल्लंघन कर सकती है या नहीं, मसौदे में ही ऐसी व्यवस्था रख दी गई है। मसौदे में विधान के स्वरूप के सम्बन्ध में जो व्यवस्थाएं हैं, उनमें कहा गया है कि विधान लचीला ही होना चाहिए।

ससम्मान डा. अम्बेडकर को मैं बताना चाहता हूं कि अतिविधिता और अपरिवर्तनशीलता ही तो लिपिबद्ध विधान के प्राण हैं, जिनके सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर का मत है कि उनसे बचना ही चाहिए। ब्रिटिश विधान की तरह हमारा विधान तो अलिखित रूप में है नहीं। ब्रिटिश विधान के सम्बन्ध में तो यह बात है कि इतिहास ने कालक्रम से उसे यह रूप दे दिया है। वहां का विधान अलिखित है और वह ब्रिटेन वासियों की अपनी विशेष प्रवृत्ति के लिये सर्वथा

उपयुक्त रहा है, जिससे कि वह बिना किसी लिपिबद्ध विधान के ही अपना काम चला लेते हैं। ब्रिटेन की विचित्र परिषदात्मक प्रजातंत्रीय व्यवस्था भी वहां की हुकूमत के सर्वथा उपयुक्त रही है। अपरिवर्तनशीलता और अतिविधिता यही दोनों, जिसकी कि डा. अम्बेडकर शिकायत कर रहे है, लिपिबद्ध विधान की आवश्यक एवं अपरिहार्य विशेषताएं हैं। हम नहीं चाहते हैं कि विधान उतना लचीला हो कि कोई भी अधिशासन मूलाधिकारों का भी जैसा चाहे उल्लंघन करे। इन मूलाधिकारों को लिपिबद्ध रूप देना ही व्यर्थ है, अगर इतने प्रतिबंधों और अपवादों से इन्हें बांध दिया जाता है। इन मूलाधिकारों को वही अनुच्छेद व्यर्थ भी कर देता है, जिसमें कि वे दिए हुए हैं। अनुच्छेद 13 में ही मूलाधिकारों के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''इस अनुच्छेद की किसी बात से वर्तमान कानून के प्रवर्त्तन पर किसी भी तरह प्रभाव न पड़ेगा''। आप जानते हैं कि वर्तमान विधियां कितनी प्रतिक्रियाशील हैं। अवश्य ही अनुच्छेद 8 में कहा गया है कि ऐसे सभी कानून, जो मूलाधिकारों से असंगत हैं, प्रभावशून्य हो जायेंगे। किन्तु इसके प्रतिकूल अनुच्छेद 13 में यह कहा जाता है कि सभी वर्तमान कानून मूलाधिकारों के प्रतिकूल होते हुए भी प्रभावी बने रहेंगे। यहां न केवल परस्पर विरोध ही है, बल्कि अर्थभ्रम भी है। अगर अनुच्छेद 8 में उन कानूनों की तथा उनकी धाराओं की एक सूची दे दी जाती, जो इसके अनुसार प्रभावशून्य कर दिये गये हैं, तब तो इसका कुछ अर्थ होता। किन्तु अनुच्छेद से इसका स्पष्टीकरण नहीं होता। इस अवस्था में, श्रीमान्, ये अधिकार मेरी समझ से तो मूलाधिकार हैं ही नहीं।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में एक बात कहना मेरे लिए नितान्त आवश्यक है। मसौदे में कहीं भी कोई ऐसी व्यवस्था नहीं रखी गई है, जिसके द्वारा लोगों के जाती कानून (Personal Law) की रक्षा हो सके। आप जानते हैं, श्रीमान्, कि हिन्दुस्तान में कई सम्प्रदाय ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में उनका अपना धर्मगत जाती कानून लागू होता है। जाती कानून के सम्बन्ध में भी कानून बनाया जा सकता है, किन्तु यह बात इस दावे के खिलाफ होगी कि यह अधिशासन एक असाम्प्रदायिक अधिशासन होगा और वह नागरिकों के धार्मिक अधिकारों के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा।

अब संरक्षण के सम्बन्ध में एक बात कहूंगा। श्रीमान्! मेरे कुछ मुस्लिम बन्धुओं में और खासकर मि. करीमुद्दीन ने यह कहा है कि अपने सम्प्रदाय के लिए वह

[श्री महबूबअली बेग साहब]

संरक्षण नहीं चाहते। किन्तु जब मैंने उनसे इस सम्बन्ध में बात की, तो उन्होंने साफ-साफ यह कहा है कि जब पृथक निर्वाचन न रह जायेगा, तो जो लोग भी विधान-मण्डलों में आयेंगे उनको बहुसंख्यक सम्प्रदाय ही मनोनीत करेगा और ऐसी हालत में ऐसा मुस्लिम उम्मीदवार सम्भवतः चुना ही न जा सकेगा, जो मुसलमानों का वास्तविक प्रतिनिधि हो। ऐसा प्रतीत होता है कि वह इसी कारण से संरक्षण नहीं चाहते हैं। अगर हम ऐसा कोई रास्ता निकाल सकें, जिससे कि निर्वाचित मुस्लिम सदस्य अपने सम्प्रदाय का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व कर सके, तो फिर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में यदि ऐसा कोई उपाय—और उदाहरण के लिये यह उपाय है कि निर्वाचन एकल संक्राम्य मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर हो—अधिकारारूढ़ दल निकाल सके या वह लोग निकाल सकें, जो इस विधान के निर्माण के जिम्मेदार हैं, तो उससे बड़ा ही काम हो। यदि ऐसा कोई उपाय नहीं रखा जाता, पृथक निर्वाचन नहीं रखा जाता, तो संरक्षण के हटाने की जो बात अल्पसंख्यक-उपसमिति में तय पाई गई है, उसका समर्थन करना, मैं समझता हूं, ऐसा कार्य न होगा, जो मेरे सम्प्रदाय के मत के अनुकूल हो।

अतः, श्रीमान्, कुल मिलाकर मेरा यही मत है कि विधान संतोषप्रद नहीं है। प्रस्तुत विधान से इस बात की बिल्कुल सम्भावना है कि इसकी शासन व्यवस्था तानाशाही पैदा करे या यह सर्वेसर्वा बन जाये और नागरिकों के तथा अल्पसंख्यकों के बहुमूल्य अधिकारों को कुचल दें।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्त-प्रान्तः मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, विधान पर अपना मत व्यक्त करने से पहले मैं आपके सामने एक शिकायत रखना चाहता हूं। विधान-परिषद् ने तो भाषा के सम्बन्ध में कोई निर्णय किया नहीं और इसके सम्बन्ध में विचार भविष्य के लिये स्थगित कर दिया, किन्तु मसौदा-समिति ने अपने मन से विधान में इस आशय का एक खण्ड रख दिया कि सभा के कार्य, संचालन के लिये हिन्दी और अंग्रेजी का प्रयोग किया जायेगा। आज के समाचार-पत्रों में मैंने इस आशय का एक समाचार देखा है कि संयुक्त प्रान्त और बिहार के मुस्लिम सदस्यों ने यह बात मान ली है कि देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी सरकारी भाषा होगी। इसलिये मैं आवश्यक समझता हूं कि प्रारम्भ में ही इस समाचार का खण्डन कर दूं और साफ-साफ यह बता दूं कि हम लोग हिन्दी या उर्दू लिपि में लिखी

हिन्दुस्तानी को ही अपनी मातृभूमि की राष्ट्रीय-भाषा मानते हैं। जहां तक अंग्रेजी का सम्बन्ध है, मेरी राय में इसे कुछ दिनों के लिये रखना जरूरी है, ताकि वे लोग जो हिन्दुस्तानी नहीं जानते हैं, सभा के वाद-विवाद में अच्छा सहयोग दे सकें। मद्रास के एक माननीय सदस्य ने ठीक ही कहा था कि भाषा-साम्राज्य नहीं लादा जाना चाहिये। इस कारण इस सभा के कार्य-संचालन के लिये हिन्दी या उर्दू में लिखी हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेजी का प्रयोग होना चाहिये।

अब मैं विधान के मसौदे की ओर आता हूं, जो प्रधानत: इस उद्देश्य से बनाया गया है कि एक प्रजातंत्रीय असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना हो। इस सम्बन्ध में हमें यह देखना होगा कि विधान के लिपिबद्ध प्रावधानों से, उनके स्वरूप तथा उनकी भावना से उन अभीष्टों की प्राप्ति में सहायता मिलती है या नहीं, जो उस लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव में दिये गये हैं, जिसे कि सभा ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया था और जिसे समस्त देश ने सहर्ष अपनाया था। मसौदे के प्रावधानों के मूल्यांकन के लिये हमें यह देखना होगा कि इस विधान से मनुष्य के प्राकृत अधिकारों की—उन अधिकारों की, जिनके बिना जीवन ही व्यर्थ है—कहां तक रक्षा होती है और गणतंत्रीय व्यवस्था के दुरुपयोग द्वारा सर्वसत्ताग्राही तानाशाही की स्थापना को रोकने के लिये कहां तक उसके प्रावधान उपयोगी सिद्ध होंगे। इन प्रावधानों से अल्पसंख्यकों को, यदि उदारता नहीं तो न्याय कहां तक सुनिश्चित रूप से प्राप्त होता है। और फिर अंतिम बात यह देखनी होगी कि देश के विभिन्न वर्गों के स्वतंत्र विकास में ये प्रावधान कहां तक सहायक हैं। इन प्रावधानों के मूल्यांकन के लिये हमें दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। पहली बात यह कि माननीय प्रस्तावकर्त्ता ने, अर्थात् माननीय डा. अम्बेडकर ने, जो कुछ स्वीकारोक्तियां की है, उनका क्या कारण है और दूसरी बात यह है कि गत 15 महीनों से, जब से हम स्वतंत्र हुये हैं, शासन सम्बन्धी कार्यों में हमारा क्या अनुभव रहा है। जिस समय कि सभा ने उन प्रस्तावों को स्वीकार किया, जो कि इस विधान के आधार हैं, उस समय हमारे सामने ऐसा कोई अनुभव नहीं था, किन्तु अब हमें यह अनुभव हो चुका है। माननीय प्रस्तावक महोदय ने पहली स्वीकारोक्ति, जो की है, वह उन्हीं के शब्दों में यों हैं:

> ''भारतीय भूमि स्वभावत: अप्रजातंत्रात्मक है और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है''...।

[श्री जैड.एच. लारी]

''ऐसी स्थिति में शासन सम्बन्धी नियमों को निश्चित करने का काम विधान-मंडल पर न छोड़ना ही श्रेयस्कर है''। ससम्मान मैं यह कहूंगा कि उनका यह कथन सही है।

***एक माननीय सदस्य:** उनका यह कहना गलत है।

***श्री जैड.एच. लारी:** इस सम्बन्ध में मैं उन विभिन्न सुरक्षा कानूनों (Security Acts) की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा, जो विभिन्न विधान-मण्डलों द्वारा पास किये गये हैं और खास करके एक प्रांत के सुरक्षा-कानून की ओर, जिसके द्वारा दण्ड-विधान-संहिता की धारा 491 के अनुसार हाईकोर्ट में अपील करने का जो अधिकार है, वह भी अपहृत कर लिया गया है। दूसरी स्वीकारोक्ति, जो उन्होंने की, वह यह है: ''वैधानिक नैतिकता प्रकृतिजन्य भावना नहीं है। इसे अभ्यास द्वारा अपनाना होता है। हमें यह जानना ही चाहिये कि हमारे देशवासियों को अभी इसे सीखना होगा...।''

मैं तो कहूंगा कि न केवल देशवासियों को ही इसे सीखना होगा, बल्कि हमारी सरकार को भी इसे सीखना होगा। इस बात को सिद्ध करने के लिये मैं आपके समक्ष दो उदाहरण उपस्थित करता हूं। सभा को याद होगा कि कलकत्ता हाईकोर्ट में एक मामला पेश था, जिसके सिलसिले में उस हाईकोर्ट ने इस बात के निर्णय के लिये एक पूर्ण न्यायासन (full bench) नियुक्त किया था कि शब्द ''reasonable'' का, उन कानूनों के सम्बन्ध में जो गिरफ्तार करने या हिरासत में रखने की शक्तियां शासन को देते हैं, क्या प्रभाव अथवा अर्थ माना जाना चाहिये।

उक्त न्यायासन दूसरे दिन विचारार्थ बैठने वाला ही था कि हुकूमत ने इस आशय का अध्यादेश निकाल दिया कि शब्द ''reasonable'' के सम्बन्ध में यह समझा जायेगा कि वह शब्द वहां से हटा दिया गया है। निश्चय ही इस सम्बन्ध में हाईकोर्ट का यह कथन बिल्कुल सही था कि ''अवश्य ही गवर्नर महोदय ने अध्यादेश जारी करके अपने अधिकारों का अतिक्रमण नहीं किया है, पर उनका यह काम वैधानिक नैतिकता के प्रतिकूल है''। इस सम्बन्ध में एक दूसरा उदाहरण, जो मैं सभा के सामने रखूंगा, वह है एक स्वायत्त शासन सम्पन्न संस्था के बारे में—मेरा अभिप्राय है, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयों से—उसके प्रधान को अभी हाल में आदेश दिया गया है कि वह अपने पद से हट जाये और उसे एक

दूसरे व्यक्ति को दे दे। यद्यपि पदारूढ़ प्रधान को विश्वविद्यालय की सभा का तथा उस सम्प्रदाय का, जिसकी वह संस्था थी, विश्वास प्राप्त था; पर उसे ऐसा आदेश दिया गया। इसलिए मसौदे की व्यवस्थाओं का मूल्यांकन करने में हमें दो बातों को ध्यान में रखना होगा—एक तो जो माननीय मिनिस्टर ने दो स्वीकारोक्तियां की हैं, उनको और दूसरी अपने गत 15 महीनों के राजकीय कार्य-संचालन को।

नागरिक को सबसे पहले इस बात की अपेक्षा रहती है कि उसका जीवन और उसकी स्वतंत्रता दोनों ही पूर्णतः सुरक्षित हों। इस विशिष्ट सभा ने मूलाधिकारों पर विचार करते समय यह निश्चित किया था कि कोई भी व्यक्ति अपने प्राण या दैहिक स्वातंत्र्य से विधि की समुचित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायेगा। अब इन शब्दों के स्थान पर ये शब्द रख दिये गये है "विधि द्वारा स्थापित कार्य-प्रणाली को छोड़कर"। इससे तो उन लोगों का मूल अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है, जो विधान में इस अनुच्छेद को रखना चाहते थे। जब आप यह कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित कार्य-प्रणाली द्वारा अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से वंचित किया जा सकता है, तो उससे विधान-मण्डल को इस बात का अधिकार मिल जाता है कि वह जब चाहे ऐसा कानून बना सकती है, जिससे जीवन और स्वातंत्र्य पर प्रभाव पड़ता हो। इससे तो मूल अभिप्राय ही व्यर्थ हो जाता है। इसलिए यहां पहले के शब्दों को रखना नितान्त आवश्यक है। विधान का मसौदा उपस्थित करते हुए जापान और आयरलैंड के विधानों का भी हवाला दिया गया है, किन्तु जिन लोगों ने जापान और आयरलैंड के विधान बनाये हैं, उन्होंने इस सम्बन्ध में एक व्यवस्था भी निर्धारित कर दी है। उदाहरण के लिए उन विधानों में यह कहा गया है कि जो भी व्यक्ति गिरफ्तार किया जायेगा, उसे इस बात का अधिकार है कि वह अपनी गिरफ्तारी का कारण पूछे और उसे यह भी अधिकार है कि न्यायालय द्वारा निर्णय कराये। इसलिए जापान और आयरलैंड के विधानों में तो इस सम्बन्ध में कार्य-प्रणाली निश्चित कर दी गई है और तब विधान को कहा गया है कि : "कोई भी व्यक्ति अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से, विधि द्वारा स्थापित कार्य प्रणाली को छोड़कर अन्य किसी प्रकार वंचित न किया जायेगा"। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में जापान और आयरलैंड का उदाहरण अप्रासंगिक है।

[श्री जेड.एच. लारी]

व्यक्ति के जीवन और स्वातंत्र्य की सुरक्षा के बाद उसके घर की सुरक्षा अपेक्षित होती है। कहा गया है कि घर प्रत्येक व्यक्ति का अपना दुर्ग है और व्यक्ति के लिए घर एक पवित्र वस्तु है। सभी गणतंत्रीय विधानों में आप ऐसी व्यवस्था पायेंगे कि घरों में तलाशी नहीं ली जा सकती या वहां किसी वस्तु को कब्जे में नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसका कारण न दिखाया जाये और इसके सम्बन्ध में कारण बताते हुए शिकायत न की गई हो। अपने विधान में भी एक ऐसा ही अनुच्छेद होना चाहिए।

इसके बाद व्यक्ति की दूसरी आवश्यकता है, प्रारम्भिक शिक्षा सम्बन्धी अधिकार की। यहां मूलाधिकारों में इस अधिकार का कहीं उल्लेख ही नहीं है। राज्य की नीति के सम्बन्ध में जो निर्देशक सिद्धांत रखे गये हैं उनमें यह कहा गया है कि राज्य का यह प्रयास होगा कि प्रारंभिक शिक्षा प्रदान की वह व्यवस्था करे। इस सम्बन्ध में मेरा कहना है, श्रीमान्, कि यह नितान्त अपर्याप्त है। आवश्यकता इस बात की है कि इस बात को राज्य का कर्त्तव्य बना दिया जाये कि वह प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करे और यह बात मूलाधिकारों में आनी चाहिए।

अब मैं अनुच्छेद 13 की ओर आता हूं, जिसमें भाषण और अभिव्यक्ति का, शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन का, तथा पार्षद अथवा संघ बनाने का स्वातंत्र्य दिया गया है। ये अधिकार दिये तो गये हैं, पर इनके सम्बन्ध में इतने प्रतिबंध लगा दिये गये हैं कि इन स्वातंत्र्यों का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। मेरी समझ से अनुच्छेद 13 के पूर्व में इन शब्दों को जोड़ देना ही यथेष्ट है: ''लोक-शान्ति तथा नैतिकता की समुचित आवश्यकताओं के अधीन रहते हुए''। मेरा मत है कि मसौदे में जो मूलाधिकार रखे गये हैं, वे अनिश्चित हैं, अपर्याप्त हैं और कई बातों में अस्पष्ट है।

दूसरी बात जो मैं आपके सामने रखना चाहता हूं, वह यह है। गणतंत्र के दो प्रमुख एवं सहगामी सिद्धान्त ये हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त है, तथा यह कि बहुमत को शासनाधिकार प्राप्त है। अत: निर्वाचन-पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को निश्चित रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। प्रौढ़ मताधिकार का यही वास्तविक महत्त्व है, किन्तु यहां जो पद्धति

अपनाई गई है, अर्थात् जो एक सदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्र रखा गया है, उससे वस्तुत: 49 प्रतिशत मतदाताओं का मताधिकार ही जाता रहता है। एक सदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्र में यह सम्भव है कि वहां के ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग को भी, जिसकी आबादी 49 प्रतिशत है, मताधिकार से वस्तुत: वंचित कर दिया जाये। प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं में तो राजनैतिक आधार पर बने अल्पसंख्यक वर्गों को भी प्रतिनिधित्व का अधिकार होता है; इसलिए इस सम्बन्ध में प्रस्तुत विधान में जो व्यवस्था रखी गई है, उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में यह दलील दी जा सकती है कि इंग्लैंड में यही पद्धति चालू हैं; किन्तु इसी कारण से मैंने सभा का ध्यान उन कई बुनियादी बातों की ओर आकृष्ट किया था, जिनका हवाला माननीय प्रस्तावक ने यहां दिया है। और मैं कहूंगा कि इस सम्बन्ध में आयरलैंड, स्विटजरलैंड या हाल के फ्रांस की पद्धति का अनुगमन करके एकल संक्राम्य मत द्वारा अथवा वर्द्धमान मत (cummulative voting) द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली चालू करना ही श्रेयस्कर है। इसके विरोध में यह दलील दी जा सकती है। कि इस पद्धति से दलों का बाहुल्य होता है। यह पद्धति आयरलैंड में 25 वर्षों तक चालू रही है और हर आदमी जानता है कि वहां 15 वर्षों से अधिक काल तक एक दल का ही शासन रहा है और वहां दो से अधिक दल भी कभी नहीं हुए। और इसके प्रतिकूल फ्रांस में उस समय भी जबकि इस सिद्धान्त को प्रयोग में लाने के लिए, जो कि वस्तुत: प्रजातंत्रात्मक है, स्वत: अधिक प्रगतिशील है, आनुपातिक प्रतिनिधान की व्यवस्था नहीं थी, दलों की वहां एक बड़ी संख्या थी।

अब मैं विधान की दूसरी बात की ओर अर्थात् अध्यादेश सम्बन्धी व्यवस्था की ओर आता हूं। एक जमाना था, जब हम यही शिकायत किया करते थे कि अध्यादेश से ही राज हो रहा है और विधान-मण्डल का मत ही नहीं किया जाता। मैं यहां राष्ट्रपिता की बात का उल्लेख करूंगा। यह बतौर शिकायत के कहते थे कि ब्रिटिश राज्य में कानून के लिए और उसका पालन कराने के लिए वायसराय को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दे दिया गया है। कानून सम्बन्धी तथा शासन सम्बन्धी दोनों शक्तियां एक ही जगह निहित कर दी जायें, इसके विरुद्ध सारे देश में एक प्रचण्ड विरोध था। हमारी राय में तब से ऐसी कोई नई बात नहीं हुई है कि हम इस बारे में अपना रुख बदलें। अध्यादेश द्वारा शासन होना ही नहीं

[श्री जैड.एच. लारी]

चाहिए। कानून बनाने का काम केवल विधान-मण्डल को ही करना चाहिए। यह कहा जाता है कि जब विधान-मण्डल न समवेत हो और सद्यस्कृत्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो ऐसी दशा में अध्यादेश जारी करना ही होगा। किन्तु अब समय और दूरी को लेकर तो कोई रुकावट रह नहीं गई और विधान-मण्डल दो दिनों में समवेत हो सकता है; इसमें कोई भी कठिनाई नहीं है। और अगर कोई कठिनाई हो भी तो आवश्यकता होने पर, उसे दूर करना ही होगा और फिर हमें यह देखना होगा कि इस अध्यादेश व्यवस्था का असर क्या होता है। इस अध्यादेश सम्बन्धी अधिकार के प्रयुक्त होने से विधायिनी सभा केवल एक मुहर मात्र रह गई है। हमारे प्रान्त में तो शायद ही कोई कानून होगा जो पहले इस अध्यादेश व्यवस्था से न उत्पन्न हुआ हो। परिषदात्मक हुकूमत में वस्तुतः मंत्रिमण्डल ही नीति निश्चित करता है। एक बार जब उसने कोई अध्यादेश बना लिया और वह कानून के रूप में चल पड़ा तो फिर बहुसंख्यक दल के लिए भी पीछे मुड़ना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार आप देखेंगे कि वस्तुतः मंत्रिमण्डल ही कानून बनाने के सम्बन्ध में निश्चय किया करता है। इसलिए मैं कहूंगा कि ऐसे प्रावधान की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं है, जिसके द्वारा अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया जाता हो।

इसके बाद सद्यस्कृत्यता की स्थिति का प्रश्न आता है। निश्चय ही सद्यस्कृत्यता के सम्बंध में एक खण्ड मसौदे में होना चाहिए। किन्तु मसौदे में सद्यस्कृत्यता का जो उल्लेख है, वह इतना व्यापक है कि न केवल प्रत्यक्ष हिंसा की दशा में अथवा प्रत्यक्ष आक्रमण की दशा में, जैसा कि अमेरिका में हुआ, बल्कि हिंसा का संकट दिखाई देने पर भी सद्यस्कृत्यता की दशा घोषित की जा सकती है। यह बात बड़ी खतरनाक है और इसे दूर करना ही चाहिए।

अब मैं मसौदे के उस भाग पर आता हूं, जिसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों का विवरण है। इन अधिकारों के सम्बन्ध में मसौदे में जो पहली बात विचारणीय है, वह है संरक्षित स्थानों के सम्बन्ध में प्रावधान। यह प्रावधान अपने विधान की एक अपूर्व व्यवस्था है। उसके अनुसार अल्पसंख्यकों के हित-संरक्षण की व्यवस्था यों की गई है कि विधान-मण्डल में उन्हें संरक्षित स्थान दे दिये गये हैं, पर उसमें यह सुनिश्चित नहीं है कि अपने प्रतिनिधियों के चुनाव में सम्बंधित अल्पसंख्यक

वर्ग की अपनी कोई आवाज भी होगी। यह व्यवस्था बिल्कुल ही व्यर्थ है, वरन् यह प्रवंचना मात्र है, अल्पसंख्यकों के संरक्षण की एकमात्र व्यवस्था यह होनी चाहिए कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली अपनाई जाये। एक लेखक ने 1948 की गोलमेज सभा में इस पद्धति का एवं आयरलैंड में यह कैसे काम करती है, इसकी चर्चा करते हुए कहा था कि इससे अल्पसंख्यकों के प्रति समुचित न्याय हुआ है और साथ ही एक स्थायी हुकूमत की जो आवश्यकताएं हैं, वह भी इससे पूरी हुई हैं।

अब मैं सरकारी नौकरियों के प्रश्न को लेता हूं। कितना विचित्र वैषम्य है। अल्पसंख्यकों को विधान-मण्डलों में संरक्षित स्थान देने का प्रावधान तो विधान में किया गया है, जो बिल्कुल व्यर्थ है, किन्तु जहां नौकरियों का सवाल आया है, वहां केवल इतना ही कह दिया गया है कि उनकी मांगों पर विचार किया जायेगा। यह तो अच्छी मौखिक शुभ-कामना है। संयुक्तप्रांत में तथा अन्य प्रांतों में, इस सम्बंध में, गत महीनों का जो अनुभव है, वह बतलाता है कि केवल मौखिक कामना ही पर्याप्त नहीं है। इसके सम्बन्ध में विधान में कोई प्रावधान होना चाहिए। विधान-मण्डलों में आपने जो संरक्षित स्थान दिये हैं, उन्हें तो आप चाहें तो लौटा लें, किन्तु नौकरियों में आप हमें, भगवान के लिए अनुरोध है कि संरक्षण अवश्य दें। यहां मैं संयुक्तप्रान्त के मुस्लिमों के लिए ही नहीं बोल रहा हूं, बल्कि वहां के अन्य अल्पसंख्यकों के लिए भी बोल रहा हूं। आपने ऐंग्लो-इंडियन्स के लिए तो यह संरक्षण दिया है, पर मुसलमानों को यह नहीं दे रहे हैं। आखिर यह भेदभाव क्यों? संयुक्तप्रान्त की अवस्था को ही लीजिए। यदि गत 12 महीनों की कार्रवाई का आप नतीजा देखें, तो आप पायेंगे कि मुश्किल से पांच प्रतिशत मुसलमान नौकरियों में लिये गये हैं। अगर आप नौकरियों से निकाले गये, बरखास्त किये गये लोगों की तालिका देखें, तो आपको मालूम होगा कि इनमें मुसलमानों की संख्या 75 प्रतिशत है, किन्तु नई भर्तियों में मुश्किल से उनकी संख्या पांच प्रतिशत होगी।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): आपके नेताओं ने पाकिस्तान में क्या किया?

***श्री जैड.एच. लारी:** मेरे माननीय मित्र चाहते हैं कि मैं पाकिस्तान के पदचिह्नों पर चलूं। मैं वैसा करने के लिए तैयार नहीं हूं।

उपाध्यक्ष: शान्ति, शान्ति।

***श्री जैड.एच. लारीः** अपने अधिकारों का पट्टा मैंने पाकिस्तान को नहीं लिख दिया है। मैं भारतीय नागरिक की हैसियत से यहां खड़ा हूं। पाकिस्तान क्या करता है और क्या नहीं करता है, इससे मेरा कोई सरोकार नहीं।

***एक माननीय सदस्यः** आज आपको बुद्धि आ गई है।

***उपाध्यक्षः** शान्ति, शान्ति।

***श्री जैड.एच. लारीः** हम लोगों ने यह कभी नहीं कहा कि यहां के मुसलमान पाकिस्तान चले जायेंगे। हम इस भूमि की सन्तान हैं और इस नाते हमारा दावा है कि भारतीय नागरिकों के अधिकार हमें भी प्राप्त हैं।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठीः** आपके यू.पी. आदि प्रान्तों के नेता भी तो भाग गये।

***श्री जैड.एच. लारीः** आप बीच-बीच में टोक कर जो कुछ कह रहे हैं, उससे यही पता चलता है कि कितने अनुदार कितने अप्रजातंत्रीय.............

***उपाध्यक्षः** शान्ति, शान्ति।

***श्री जैड.एच. लारीः** आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। श्रीमान्, मैं यह कह रहा था कि समय बहुत कम है।

***उपाध्यक्षः** आपका समय तो समाप्त हो चुका है।

***श्री जैड एच. लारीः** कृपया मुझे दो मिनट और दीजिए।

अब मंत्रिमण्डल का सवाल आता है। मैं मानता हूं कि इस सम्बंध में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था विधान में नहीं की जा सकती, परिषदात्मक शासन पद्धति में इसकी कल्पना ही नही की जा सकती किन्तु इस बात पर तो आपको विचार करना ही चाहिए कि क्या हमारे लिए यह ठीक नहीं होगा कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व चालू करके हम अध्यक्षात्मक पद्धति पर चलें। उस हालत में स्विस पद्धति के अनुसार मंत्रिमण्डल का निर्वाचन करना सम्भव होगा। किन्तु विधान के इस ढांचे में, मैं मानता हूं कि संरक्षण की व्यवस्था लिपिबद्ध नहीं की जा सकती है। मैं मानता हूं कि विधान का जो स्वरूप है, उसको देखते हुए यथाशक्ति जो कुछ भी इस सम्बन्ध में किया जा सकता था, किया गया है।

अन्त में मैं सभा से इस बात पर विचार करने का अनुरोध करूंगा। विधान में एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जो प्रावधान में विपक्षी दल का अस्तित्व स्वीकार करती हो। कुछ दिनों से, जब से कि समाजवादी लोग कांग्रेस से अलग हो गये हैं, जिम्मेदार व्यक्तियों की ओर से इस आशय की बातें कही गई हैं—मैं यह नहीं कहता कि यह राय पक्की है—कि बहुमत प्राप्त दल यह नहीं चाहता कि एक विपक्षी दल का अस्तित्व हो। जैसा कि दक्षिणी अफ्रीका में अथवा इंग्लैंड में या अन्य देशों में है, यहां भी विपक्षी दल के नेता का एक स्थान होना चाहिए और इस तरह किया जा सकता है कि विपक्षी दल के नेता के वेतन की व्यवस्था मसौदे में कर दी जाये, जैसा की अन्य देशों में है। हम जानते हैं कि जो पद्धति अब आगे बरती जाने वाली है, उसमें मेरे जैसे व्यक्तियों के पुन: विधान-मण्डल में आने की कोई उम्मीद नहीं है। इसलिये हमारे हित के लिए नहीं बल्कि गणतंत्र के हितों के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा समुचित विपक्षी दल हो, रचनामूलक हो और देश तथा मातृभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करता हो इसकी सुनिश्चित व्यवस्था तभी हो सकती है, जब कि स्वयं विधान में आप इसे लिपिबद्ध कर दें।

मसौदा-समिति ने जो और संशोधन रखे हैं, उसमें एक ऐसा सुझाव है कि प्रधान को परामर्श देने के लिये एक परामर्श समिति नियुक्त की जाये और इस प्रसंग में विपक्षी दल के नेता का स्थान स्वीकार किया गया है। किन्तु संघ के विधान में तथा प्रादेशिक राज्यों के विधान में भी उसका स्थान स्वीकृत होना चाहिए।

इन कतिपय विचारों को व्यक्त कर मैं अपनी बात खत्म करता हूं। डा. अम्बेडकर की कतिपय स्वीकारोक्तियों का मैंने यहां हवाला दिया है जरूर, पर अपने देशवासियों के सौजन्य पर, उदारता पर मुझे पूर्ण विश्वास है। आशा है कि हमारे देशवासी अवसर के अनुकूल अपने को महान् बनायेंगे और जब कि संकट का समय बीत गया है, लोगों का आवेश शान्त हो चुका है, देशवासी वास्तविकता को अपनायेंगे और अधिक मित्रवत् हो जायेंगे, जिससे कि भारत के बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक वर्गों के बीच, न केवल सैद्धांन्तिक बल्कि वास्तविक साम्य आ जाये और हम सब भारतवर्ष को महान् बनाने में दत्तचित्त हो सकें।

***श्री हुसैन इमाम** (बिहार: मुस्लिम): विधान के सम्बन्ध में, जिस रूप में कि यह हमारे सामने रखा गया है, मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं। जिन बातों

[श्री हुसैन इमाम]

के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना चाहता था, उनमें से कइयों पर मेरे पूर्ववक्ता ने प्रकाश डाला है और इसलिए मेरा काम बहुत कुछ हल्का हो गया है।

मैं यह जरूर कहूंगा कि मसौदा-समिति के अध्यक्ष को यहां मैं बड़ी ही विकट स्थिति में पाता हूं। वामपक्षियों ने तो उनके विरुद्ध यह कहा है कि उन्होंने सोवियत रूस के विधान का अनुगमन नहीं किया और दक्षिण पंथियों ने उन पर यह आरोप लगाया है कि उन्होंने प्राचीन परम्परा के अनुसार ग्राम-पंचायतों को इकाई नहीं स्वीकार किया। मैं कहूंगा कि मेरे कई मित्रों के दिमाग में कुछ भ्रमात्मक बातें हैं। जब वह यह कहते हैं कि विधान में उन सभी मुसीबतों का, बुराईयों का हल होना चाहिए, जिनसे कि आज देशवासी तकलीफ पा रहे हैं। यह काम विधान का नहीं है कि वह रोटी और कपड़े की व्यवस्था करे। इस सभा के एक बड़े ही गम्भीर एवं संयत सदस्य ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि इन बातों के लिये विधान में कोई प्रावधान नहीं है। मेरा कहना है, श्रीमान्, कि विधान जिस देश के लिए भी बनाया जाये, वह देश की आवश्यकताओं के अनुसार बनाया जाता है। हमें यही देखना चाहिए कि वह सारे प्रावधान, जो कि हमारी अपनी परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक हैं, विधान में रखे गये हैं या नहीं।

पहली त्रुटि जो इस सम्बन्ध में मुझे इसमें दिखाई दे रही है, वह यह है कि इसमें जनता के सर्वसत्ताशील होने का कोई उल्लेख नहीं है। जब तक आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते कि जनता सर्वसत्ता-सम्पन्न है, उसी से सारी शक्तियां प्राप्त की गई हैं और यह समस्त विधान जनता की ही इच्छा के आधार पर बना है, तब तक तरह-तरह के भ्रम इस सम्बन्ध में उत्पन्न होंगे।

इससे कई बातों के सम्बन्ध में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो गई है। उदाहरण के लिए उन प्रदेशों के नामों को ही लीजिए, जिन्हें हम पहले भारतीय रियासतें तथा ब्रिटिश भारतीय प्रान्त कहा करते थे। इन दोनों ही प्रकार के प्रदेशों को विधान में जो स्थान दिया गया है, उसे हम शायद ही समुचित और सम मान सकते हैं। जिन लोगों ने स्वराज्य के लिए, स्वतंत्रता के लिए प्रमुख रूप से युद्ध किया, उन्हें तो कम अधिकार दिये गये हैं; पर रियासतों के लोगों को, जिन्होंने

स्वातंत्र्य-संग्राम में प्रान्तीय जनता से कहीं कम हिस्सा लिया, अधिक अधिकार दिये गये हैं। कई रियासतों के आयात-कर को केन्द्रीय कोष से पूरा करने की व्यवस्था की गई है। नागरिकता के सम्बन्ध में हमें बताया गया है कि समस्त देश में केवल एक ही नागरिकता—भारतीय नागरिकता—रहेगी। जब सभी लोगों को नागरिकता के सभी अधिकार समान रूप से प्राप्त है, तो रियासतों के लोगों को कुछ भिन्न अधिकार क्यों कर दिये जा सकते हैं? रियासतों के लोग आय-कर से मुक्त रखे गये हैं, पर प्रान्तों पर वह कर लागू किया गया है। एक या दो रियासतों को छोड़कर, जिनके सम्बन्ध में कि निगम कर लागू हो सकता है, अन्य रियासतें इससे मुक्त हैं। इन सभी बातों को देखते हुए मैं तो यह सुझाव दूंगा कि एक तरह के आधिपत्य के साथ सर्वत्र एकरूपता होनी चाहिए। विधान के मसौदे के सम्बन्ध में यह मेरी पहली बुनियादी आपत्ति है।

दूसरी बात यह है कि जैसा डा. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है, मेरे मत से प्रान्तों और रियासतों के बीच किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखना चाहिए। रियासतों को जो सेना रखने का अधिकार दिया गया है, यह अनुचित है। भारत आज गतिशील अवस्था में है। सरदार पटेल की सुबुद्धि और दृढ़ता से भारतीय रियासतों का प्रश्न बहुत कुछ हल हो गया है और अब ये हमारी प्रगति में रुकावट नहीं रह गई है। कल जोधपुर के प्रधानमंत्री ने तथा मध्यभारत के एक प्रतिनिधि ने यहां भाषण देते हुए कहा कि प्रान्तों और रियासतों में एकरूपता होनी चाहिए और इससे मुझे प्रसन्नता मिली। मैं कोई कारण नहीं देखता कि सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा रियासत के नागरिकों के लिए बन्द रखा जाये। अगर वे भारत के नागरिक हैं, तो फिर उन्हें भी हमारे ही समान यह अधिकार प्राप्त है कि सर्वोच्च न्यायालय से अपने अधिकारों और हितों के सम्बन्ध में न्याय की मांग करें। मेरी समझ से इन सारी बातों का कारण यह है कि हमने जनता को सर्वसत्तासम्पन्न नहीं माना है और न इस बात को माना है कि एकरूपता होने से अपने आप एक ऐसी प्रणाली चल पड़ेगी इसके अनुसार शक्ति और दायित्व की दृष्टि से सभी लोग कानून की निगाह में बराबर हो जायेंगे।

मुझे इस बात पर भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि डा. अम्बेडकर जैसा वैधानिक-कानून का विद्वान् इस तथ्य को कैसे भूल गया कि अपरिषदात्मक

[श्री हुसैन इमाम]

अधिशासी-मण्डल की जिम्मेदारी परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल से कम नहीं है। अगर आप अच्छी तरह देखें, तो आपको मालूम हो जायेगा कि अमेरिका की प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) की समितियां तथा वहां की उत्तरागार इंग्लैंड की लोक-सभा (House of Commons) से शासन सम्बन्धी कार्यों पर अधिक नियंत्रण रखती है। यह कहना गलत है कि अमेरिका के अधिशासी-मण्डल के कार्यों के सम्बन्ध में पूछताछ करने तथा उन्हें ठीक करने का मौका प्रेसीडेंट के चार वर्ष के कार्यकाल के समाप्त होने पर नये निर्वाचन के समय ही आता है। इसके प्रतिकूल वहां प्रेसीडेंट पर दैनिक नियंत्रण भी रखा जाता है और सीनेट की समितियों तथा प्रतिनिधि-सभा के सम्बन्ध में तो यह बात ब्रिटेन की लोक सभा से भी ज्यादा लागू है। इस सम्बन्ध में बतौर उदाहरण के एक विख्यात घटना का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेसीडेंट विल्सन राष्ट्रमण्डल (League of Nations) सम्बन्धी अपनी योजना को इसलिये अग्रसर न कर सके कि सीनेट की समितियां उससे सहमत नहीं थी। विभिन्न देशों में भेजे जाने वाले राजदूतों की नियुक्ति भी वहां सीनेट की स्वीकृति पर होती है। इसलिए यह कहना गलत है कि अपरिषदात्मक अध्यक्षमूलक पद्धति में अधिशासी-मण्डल पर कोई नियंत्रण नहीं रहता या अगर रहता भी है, तो वह बहुत दूरस्थ होता है। अमेरिकन पद्धति में अधिशासी-मण्डल पर, अगर ज्यादा नहीं तो उतना लोक-नियंत्रण जरूर रहता है, जितना कि ब्रिटेन की परिषदात्मक पद्धति में है। इस मसले पर मैं और बहस नहीं करना चाहता, क्योंकि आगे चलकर जब हम इस विषय पर पुनः विचार करेंगे, तो हमें उस पर विचार व्यक्त करने का पुनः अवसर मिलेगा।

जैसा कि मैंने पहले कहा था, मैं फिर कहूंगा कि विधान इस प्रकार निर्मित होना चाहिये कि वह देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। मैं नेताओं से कहूंगा कि वे देश की हालत पर गौर करे। भारत के केन्द्र संयुक्तप्रान्त को देखिये, जहां एक मात्र दूसरा राजनैतिक दल समाजवादियों का है, जो बहुत ही प्रबल दल माना जाता था, स्थानीय और जिला बोर्डों के चुनावों में वहां क्या हुआ? वे हार गये। विधान-मण्डल के चुनाव में 12 स्थानों में जिन्हें समाजवादियों ने खाली किया था, हर एक सीट उनके हाथ से जाती रही। क्या इस प्रकार आप परिषदात्मक गणतंत्र चला पायेंगे? परिषदात्मक गणतंत्र के लिये एक प्रभावशाली विपक्षी दल का

होना आवश्यक है और अगर आप निर्वाचन क्षेत्रों को एक सदस्यात्मक रखते हैं, तो कोई प्रभावपूर्ण विपक्षी दल होगा ही नहीं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति अपनाकर ही आप देश में तानाशाही राज्य स्थापित होने के खतरे से बच सकते हैं। मैं बहुत विनम्रतापूर्वक आपके समक्ष अपना यह विचार रख रहा हूं कि देश में गणतंत्र की रक्षा के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि राज्य-व्यवस्था ऐसी हो, जिसमें एक विपक्षी दल सामने आये ही। कांग्रेस की प्रतिष्ठा, उसकी सर्वप्रियता, उसका नाम—इनको इतनी महत्ता प्राप्त हो गई है कि उसके विरुद्ध खड़ा होना किसी के लिये भी असम्भव है और इसका परिणाम यह है, जैसा कि कई बार इंग्लैंड में हो चुका है कि बहुसंख्यक निर्वाचकों के मतदान का कोई मूल्य नहीं रह जाता। वह इस प्रकार कि अगर तीन उम्मीदवार हुए, तो उनमें हारे हुए दो उम्मीदवारों के कुल मत, हो सकता है विजयी उम्मीदवार को मिले मतों से ज्यादा हों। अगर यह मान लिया कि तीन उम्मीदवार न होंगे, तो भी बहुत से मतदाताओं के मताधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। अगर 60 प्रतिशत और 40 प्रतिशत मत उम्मीदवारों को मिलें तो 40 प्रतिशत निर्वाचकों का कोई प्रतिनिधि नहीं जा सकता। इसके प्रतिकूल आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार, जो कि यूरोप के प्रायः सभी सद्यः समुन्नत देशों में प्रचलित है, आपको हर विचारधारा के लोगों का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकेगा और.....।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारतीय** (मद्रासः जनरल): यूरोप के वह कौन से देश हैं जिनमें आम निर्वाचनों में आनुपातिक प्रतिनिधान की पद्धति चालू है?

***श्री हुसैन इमामः** अमेरिका में यह पद्धति चालू...।

***अनेक माननीय सदस्यः** नहीं, नहीं।

***श्री हुसैन इमामः** स्विटज़रलैंड में यही प्रणाली प्रचलित है। (*नहीं नहीं की आवाज़ें*) अन्य किसी देश ने यह पद्धति न भी चला रखी हो, पर हमारे देश के लिये तो यह आवश्यक है। हमें दूसरों का अनुगमन नहीं करना चाहिये। जैसा कि मैंने प्रारम्भ में कहा है, हमें एक ऐसा विधान तैयार करना चाहिये, जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि दूसरों का अनुगमन किया जाये।

[श्री हुसैन इमाम]

मेरे पूर्ववक्ता ने एक बात कहीं है जिसका मैं खुलासा कर देना चाहता हूं। उनका कहना है कि अल्पसंख्यकों के जाती कानून हैं, उनको सुरक्षित रखा जाये यानी विधान-मण्डल उनमें रद्दोबदल न करे। यह कहना सही है। बहुसंख्यक-वर्ग के लिये तो इस सुरक्षा की आवश्यकता है ही नहीं, क्योंकि बिना उनकी स्वीकृति और सहमति के विधान-मंडल में कोई बात पास नहीं हो सकती। पर यह सुविधा अल्पसंख्यकों को तो प्राप्त नहीं है। इसलिये यह आवश्यक है कि मुसलमानों के एवं उन अन्य सम्प्रदायों के, जो कि ऐसा चाहते हों, जाती कानूनों के सम्बन्ध में विधान-मण्डल कोई हस्तक्षेप न करे, जब तक कि स्वयं उसी सम्प्रदाय के बहुसंख्यक सदस्य अपनी सहमति न दे दें।

अब मैं विधान-मण्डलों में स्थान-संरक्षण के प्रश्न पर आता हूं। जैसा कि मि. लारी ने कहा है, जब कि समुचित प्रतिनिधान की कोई व्यवस्था नहीं रखी जाती है, तो विधान-मण्डलों में संरक्षित स्थान रखने से कोई फायदा नहीं है। इसलिये मेरा यह कहना है कि आनुपातिक प्रतिनिधान का प्रावधान विपक्षी दल की स्थापना के लिये आवश्यक तो है ही, पर इससे अतिरिक्त लाभ यह भी होगा कि अल्पसंख्यकों के हितों के लिये भी यह फायदेमन्द होगा। अल्पसंख्यकों के लिये संरक्षित स्थान रखने की कोई जरूरत नहीं है। अगर आप उनके लिये एक बड़ी संख्या में आनुपातिक प्रतिनिधान की व्यवस्था कर दें। उदाहरण के लिये प्रत्येक जिला के एक या दो निर्वाचन क्षेत्रों को बहुसदस्यात्मक बना दीजिये, जिसमें प्रत्येक में 10 या 12 स्थान हों। और अगर आप सूची-पद्धति अपनाते हैं, जो कुछ दिन पहले जर्मनी में प्रचलित थी, तो उससे और भी उद्देश्य सिद्ध होगा क्योंकि उस हालत में मतदान व्यक्तिगत उम्मीदवारों के आधार पर न होगा, बल्कि समूची सूची के ही आधार पर होगा। हम चाहते हैं कि प्रतिनिधान अधिकतर दलों के आधार पर हो और व्यक्तियों के आधार पर न हो। हम लोग नहीं चाहते हैं कि फ्रांसीसी इतिहास की पुनरावृत्ति यहां भी हो। किन्तु हम यह भी नहीं चाहते हैं कि एक दल का शासन हो। ऐसा शासन प्रायः बिगड़कर अप्रजातंत्रीय हो जाया करता है।

श्रीमान्, अपना वक्तव्य समाप्त करने से पहले चन्द शब्द मैं भाषा सम्बन्धी प्रश्न के सिलसिले में कहूंगा। इस विषय को लेकर आज जो भावना लोगों में व्याप्त है, उसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कहूंगा। अंग्रेजी भाषा को अभी कुछ दिनों तक जारी रखना आवश्यक है, इसके पक्ष में दक्षिण भारतीय मित्रों ने बहुत कुछ

कहा है। किन्तु जहां तक हिन्दी का प्रश्न है, उस पर कोई मतभेद नहीं हैं; पर इस सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि आखिर हिन्दी है क्या। व्यक्तिगत रूप से मैं उस हिन्दी को अपनाने के लिए तैयार हूं, जिसमें सरदार पटेल बोलते हैं और जिसमें उन्होंने अभी हाल में बम्बई में अपना भाषण दिया था। वह उर्दू भाषी क्षेत्र से नहीं आए हैं। वह गुजराती हैं और ऐसी हिन्दी बोलते हैं, जो देश में सर्वत्र बोली जाती है। चौपाटी मैदान में दी हुई उनकी वक्तृता मैंने रेडियो पर सुनी थी। वह हिन्दुस्तानी—या आप, चाहे जो नाम इसे दें—के सिवाय और कुछ नहीं थी। चौपाटी में जो उनका भाषण हुआ था, वह मेरी समझ से हिन्दुस्तानी में था। उनके अधीनस्थ विभाग—आल इन्डिया रेडियो—में जो भाषा व्यवहृत होती है, उससे भी ज्यादा अच्छी तरह, लोग इस जुबान को समझते हैं, जिसमें उनकी चौपाटी की वक्तृता हुई थी।

इस सम्बन्ध में भी, श्रीमान्, हमें यह बताया गया है कि हम गांधीजी की विचारधारा का अनुगमन कर रहे हैं। किन्तु लोग यह भूल जाते हैं कि आखिरी वक्त तक महात्मा गांधी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। वह देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी के पक्ष में थे। जहां तक लिपि का सम्बन्ध है, देवनागरी की तुलना में अन्य कोई लिपि नहीं ठहर सकती। यही सर्वोत्तम माध्यम है। पर भाषा कौन सी रखी जाये? वस्तुतः हिन्दी को ही हम हिन्दुस्तानी कहते हैं, अगर उसमें आप संस्कृत के बड़े-बड़े शब्द न मिला दें और उभय लिंग शब्द न भर दें। जैसा कि मैंने कहा है, उपप्रधान-मंत्री की भाषा को ही, जो कि स्वयं किसी उर्दू भाषी प्रान्त के नहीं हैं, हमें इस सम्बन्ध में आदर्श मानना चाहिए। अगर विधान-परिषद् के सदस्य इसे स्वीकार करें, तो मैं सुझाव दूंगा कि देवनागरी और उर्दू लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी को ही हमें राष्ट्रभाषा स्वीकार करना चाहिए और यही महात्मा गांधी की अन्तिम इच्छा थी और यही भाषा आज देश में सर्वत्र सर्वाधिक मान्य है।

श्रीमान्, विधान केवल एक बार ही बनता है। यह ऐसी चीज़ नहीं है जो रोज़-रोज़ बनाई जाये। इसलिए सही और उचित बात यह है कि विधान बनाने में शान्त चित्त हो, हम गम्भीरतापूर्वक सभी मसलों पर विचार करें और ऐसा करते समय हमारे दिलों में कोई मालिन्य, कोई छिपाव नहीं होना चाहिए और न यहां

[श्री हुसैन इमाम]

कोई उत्तेजना ही आने देनी चाहिए। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह अतीत को भूल जाये और जो भी परस्पर अपराध हुए हों उन्हें क्षमा कर दे। रोज-रोज का यह बताया जाना कि पाकिस्तान की स्थापना के लिए हम जिम्मेदार है, बड़ा ही दुखद है। पाकिस्तान के निर्माण में कांग्रेस का भी उतना ही हाथ है, जितना अन्य किसी व्यक्ति का। इसी भावना से प्रेरित होकर मैं इस बात के लिए अपील करूंगा कि मुसलमानों को बतौर बन्धक या ज़ामिन के न समझा जाये। हमें यही समझना चाहिए कि वे भारतीय नागरिक हैं और भारत की—उनकी जन्म-भूमि की—सुख-सुविधाओं के उपयोग का उनको भी वैसा ही अधिकार है, जैसा कि अन्य किसी भारतीय को। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूल** (संयुक्तप्रान्तः मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय डा. अम्बेडकर ने मसौदे के सम्बन्ध में बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण और सरल व्याख्या यहां उपस्थित की है, एतदर्थ मैं उनका अभिनन्दन करती हूं। उनको तथा मसौदा-समिति को जो काम सम्पादित करना था, वह कोई सरल काम नहीं था और निश्चय ही वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीमान्, विधान-निर्माण में अपना कोई भी सहयोग हो, इसे मैं परम सौभाग्य की बात समझती हूं। यह अवसर कितना पवित्र है, इसे मैं भली भांति समझती हूं। दो शताब्दियों की पराधीनता के बाद भारत दास्य-कारावास से निकल कर आज स्वातंत्र्य रश्मियों का आलोक देखने में समर्थ हुआ है। आज इस ऐतिहासिक अवसर पर हम स्वतंत्र भारत के विधान-निर्माणार्थ यहां समवेत हुए हैं। हमारा विधान ऐसा होना चाहिए, जो हमारे भविष्य का स्वरूप निश्चित करता हो और इस महादेश में बसने वाले तीस करोड़ नर-नारियों के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अवस्थिति का रूप निर्धारण करता हो। इसलिए हमें अपनी जिम्मेदारियों से पूर्णतः अवगत हो जाना चाहिए और इस विचार के साथ, कि जैसे भी हो हम एक ऐसा विधान प्रस्तुत करें, जो हमारे देशवासियों की संस्कृति, प्राकृतिक योग्यता एवं उनकी आवश्यकताओं के सर्वथा अनुरूप हो, विधान-निर्माण के काम में संलग्न होना चाहिए।

इस तथ्य के सम्बंध में, कि हमारे बहुत से प्रावधान अमेरिकन, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैंड आदि के विधानों से लिये गये हैं, यहां बहुत कुछ कहा गया है। इस प्रकार अनुकरण करने में मुझे तो कोई क्षति नहीं दिखाई देती। हां, यह जरूरी है कि ऐसा करने में हमें अपने राष्ट्र के हितों का, उसके कल्याण एवं सुख सम्पत्ति का सदा ध्यान रखना चाहिए। इसमें शक नहीं है कि यह मसौदा इस प्रकार बनाया गया है कि वर्तमान शासन-व्यवस्था में यह ठीक-ठीक बैठ सके। पर आज जो देश की हालत है, उसमें ऐसा करना लाजिमी है। यह तो मानना ही होगा कि हम सब एक विशेष प्रकार की शासन-व्यवस्था के आदी हो गये हैं। यदि विधान के मसौदे में वर्तमान शासन-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किया जाता, तो देश में एक अव्यवस्था, गड़बड़ी पैदा हो जाती। भारत के लिए गणतंत्रीय शासन व्यवस्था एक नई व्यवस्था है। यहां के लोग शताब्दियों के स्वेच्छाचारी शासन के आदी हो गये हैं, और इसलिए सर्वोत्तम मार्ग यही होगा कि परिवर्तित स्थितियों के अनुसार उसमें यत्र-तत्र कुछ हेर-फेर करके अभी कुछ काल तक वही शासन-व्यवस्था चलाई जाये, जिसके कि लोग आदी हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अब यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है कि सारी सत्ता जनता से प्राप्त होती है और भारत के भाग्य को बनाना या बिगाड़ना जनता के हाथ की बात है।

डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसकी यहां बड़ी तीव्र आलोचना की गई है। उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर से पूर्णत: सहमत हूं। आधुनिक प्रवृत्ति यही है कि नागरिक का अधिकार प्रधान माना जाये, न कि किसी निकाय का या ग्राम-पंचायतों का, क्योंकि ये निकाय बहुत निरंकुश हो सकते हैं।

श्रीमान्, मूलाधिकारों के सम्बन्ध में मैं ऐसा देखती हूं कि जो अधिकार एक हाथ से दिये गये हैं, वही दूसरे हाथ से छीन भी लिए गये हैं। मूलाधिकार ऐसे होने चाहिए कि उनके सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध न हो और विधान-मण्डल कानूनों द्वारा उनमें परिवर्तन न कर सके। कम से कम इतना तो जरूर होना चाहिए कि विधान द्वारा कुछ नागरिक स्वतंत्रताओं को अवश्य ही सुरक्षित रखा जाये और यह न होना चाहिए कि विधान-मण्डल उनको आसानी से छीन सके। इसके प्रतिकूल

[बेगम ऐज़ाज़ रसूल]

हम यहां यह पाते हैं कि इन अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत से प्रतिबंध और अपवाद रख दिये गये हैं इसका अर्थ यह हुआ कि आज जो अधिकार दिये गये हैं, वही कल विधान-मण्डल के कानून द्वारा बदले भी जा सकते हैं।

मेरी समझ से एक ऐसे माध्यम के लिये प्रावधान अवश्य होना चाहिए, जो सदा इस बात पर दृष्टि रखे कि इन मूलाधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धान्तों का सभी प्रान्तों में सही-सही पालन हो; अन्यथा ऐसे किसी माध्यम के अभाव में यह सम्भव है कि ऐसे साम्प्रदायिक संगठनों का आविर्भाव हो जाये जो अपने-अपने सम्प्रदायों के हितों की रक्षा पर ही सदा ध्यान दें। उस माध्यम या एजेंसी का यह काम होगा कि वह उन बातों को सरकार की निगाह में लायेगी, जहां इन मूलाधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धान्तों का सही-सही पालन न किया जा रहा हो। आशा है यह महती सभा मसौदे के खण्डों पर विचार करते समय मेरे इस सुझाव पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी।

उपाध्यक्ष महोदय, एक नारी होने के नाते मुझे इस बात से परम संतोष है कि स्त्री अथवा पुरुष होने के कारण अब कोई भेदभाव न बरता जायेगा। यह उचित ही है कि मसौदे में इस आशय का प्रावधान रख दिया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अब स्त्रियां भी इस नवीन विधान के अधीन अवसर-साम्य प्राप्त करने की आशा रख सकती हैं।

मैं विधान सम्बन्धी विस्तार की बातों में नहीं जाऊंगी, क्योंकि जब हम विधान के प्रत्येक खण्ड पर विचार करेंगे, उस समय मुझे उसके विभिन्न प्रावधानों के सम्बन्ध में अपना मत ज्ञापित करने का अवसर मिलेगा। किन्तु गत दो या तीन दिनों के अन्दर इस सभा-भवन में कई बुनियादी प्रश्न उठाये गये हैं और उन पर वाद-विवाद भी हुआ है और इनके सम्बन्ध में मैं प्रसंगात अवश्य ही कुछ कहूंगी।

अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षित स्थानों का जो प्रश्न है, उस पर सभा में बहुत कुछ कहा गया है। यह सच है कि अल्पसंख्यक-उपसमिति की सिफारिश पर गत वर्ष इस सभा ने कई सम्प्रदायों के लिए संरक्षित स्थान का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था। उस समय भी मैं इसके विरोध में थी और आज मैं फिर कहती हूं

कि संयुक्त निर्वाचन के इस नवीन ढांचे में किसी भी सम्प्रदाय के लिए संरक्षित स्थान देना बिल्कुल व्यर्थ है। हमें बहुसंख्यक सम्प्रदाय को सद्‌भावना पर निर्भर करना ही होगा। इसलिए मुसलमानों की ओर से बोलते हुए मैं कहूंगी कि मेरी समझ से संरक्षित स्थान की मांग करना बिल्कुल बेमतलब है। पर डा. अम्बेडकर के इस कथन से मैं अवश्य सहमत हूं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी भी सम्प्रदाय के विरुद्ध कोई भेदभाव न बरते और इस कर्त्तव्य का उसे ज्ञान होना चाहिए। श्रीमान्, अगर यह सिद्धान्त—बहुसंख्यक सम्प्रदाय को किसी अल्पसंख्यक के विरुद्ध कोई भेद भाव न बरतना चाहिए—स्वीकार कर लिया जाये, तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, हम एक भी संरक्षित स्थान नहीं मांगेंगे। हम यह समझते हैं कि हमारे हितों में तथा बहुसंख्यक सम्प्रदाय के हितों में कोई भेद नहीं है और वे दोनों ही समान है और हम यह आशा करते हैं कि बहुसंख्यक वर्ग सभी अल्पसंख्यकों के प्रति उचित और न्यायपूर्ण व्यवहार करेगा। किन्तु, जैसा कि कई माननीय सदस्यों ने अपने भाषणों में कहा है, नौकरियों के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों को अवश्य ही संरक्षण मिलना चाहिए और मुझे आशा है कि जब हम इस प्रश्न पर आयेंगे, तो सभा इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी।

दूसरा प्रश्न जिस पर सभा में बहुत वाद-विवाद हो रहा है, वह है भाषा का प्रश्न। यह प्रश्न स्वभावत: एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जो भी हो हमें इस सम्बन्ध में एक उपाय निकालना ही होगा, जो देशवासियों को सर्वाधिक ग्राह्य हो। यह सच है कि ऐसी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिए जो देश भर में अधिक बोली और समझी जाती हो और इस सम्बन्ध में मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकती कि हिन्दी ही वह भाषा है, जिसे अधिकांश देशवासी बोलते और समझते हैं। (*प्रशंसा सूचक ध्वनि*) किन्तु 'हिन्दी' शब्द की जो व्याख्या आज बहुमत वाला वर्ग करता है वह गलत है। यह तो मानना ही होगा कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई बड़ा भेद नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इस तथ्य को स्वीकार करेगा कि जो भाषा देश में आज बोली जाती है, चाहे मुसलमानों द्वारा हो या हिन्दुओं द्वारा, वह उस भाषा से बिल्कुल ही भिन्न है, जिसे हिन्दी के समर्थक हिन्दी कहते हैं और जिसके लिए कि वे इतनी वकालत कर रहे हैं। ये लोग जिस भाषा का पक्ष प्रतिपादन कर रहे हैं वह है संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, जिसे देश का केवल एक छोटा सा वर्ग

[बेगम ऐज़ाज़ रसूल]

ही समझ पाता है। अगर हम गांवों की ओर देखें तो मालूम होगा कि जो भाषा देहातों में बोली जाती है, वह यहां की तथाकथित हिन्दी से सर्वथा भिन्न है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, मैं नहीं समझती कि यहां के चार करोड़ मुसलमानों को यह कहना ठीक होगा कि वे तुरन्त अपनी भाषा बदल दें। इस बात से तो मैं सहमत हूं कि देवनागरी लिपि में हिन्दी हमें सीखनी होगी, किन्तु इस परिवर्तन को अपनाने के लिए हमें कुछ समय अवश्य मिलना चाहिए। आपके लिए यह बहुत ही अनुचित बात होगी कि हमें आप यह आदेश दें कि हम राज्य के सभी काम तथा विधान-मण्डल का सारा कामकाज एकाएक एक ऐसी भाषा में करने लग जाये जिसे हम अच्छी तरह नहीं जानते हैं इसलिए मेरी समझ से यह एक ऐसा विषय है जिस पर हमें शान्त-चित्त से तथा गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। आखिर यह कोई ऐसा प्रश्न तो है नहीं जिस पर एकाएक कोई निर्णय कर बैठे अथवा उत्तेजना और भावुकता के प्रवाह में कोई फैसला कर लें। हमें देश की आवश्यकताओं को इस सम्बन्ध में ध्यान में रखना होगा। हमारे राष्ट्रपिता ने अपने आखिरी वक्त तक दोनों लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी को ही अपनाने की हमें राय दी और यह कहा कि यही एकमात्र भाषा है, जो हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी है और जिसे देश की जनता स्वीकार कर सकती है। इसलिए मैं तो यही सिफारिश करूंगी कि देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी ही अन्ततोगत्वा राष्ट्र-भाषा होगी, पर इस सम्बन्ध में हमें एक मध्यवर्ती समय निश्चित कर देना चाहिए—लगभग 15 वर्षों का समय रख लीजिए—और इस बीच दोनों लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी ही देश की भाषा मानी जाये।

अन्त में, श्रीमान्, मेरा यही कहना है कि विधान में हम चाहे जो भी बातें रखे, पर हमें सदा यही ध्यान में रखना चाहिए कि विधान ऐसा हो कि हमारा देश सशक्त और सम्पन्न हो और देशवासियों को सुख-समृद्धि प्राप्त करने का समान अवसर प्राप्त हो सके, ताकि यह देश विश्व के अन्य देशों का नेतृत्व कर सके और उन्हें शान्ति और समुन्नति की ओर अग्रसर कर सके।

***डा. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगालः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अभी कुछ दिन हुए कि हमारे कानून मंत्री एवं मसौदा-समिति के अध्यक्ष डा. बी.आर. अम्बेडकर

ने इस सभा के समक्ष विधान का मसौदा उपस्थित किया। इन चन्द दिनों के अन्दर सभा के कई सदस्यों ने इस मसौदे की तीव्र आलोचना की है। ऐसे कुछ सदस्य अवश्य है जिन्होंने यह बात कही है कि इस सभा को यह अधिकार और क्षमता ही नहीं प्राप्त है कि वह इस मसौदा को स्वीकार करे। इन चन्द सदस्यों को छोड़कर बाकी सभी सदस्यों ने इस सभा की एतीद्धषयिणी सत्ता को स्वीकार किया है। इन लोगों ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तनों के साथ इस विधान को स्वीकार किया है और इसे काम शुरू करने के लिए समुचित माना है। एक विशेष और सन्तोषप्रद बात, जो विधान में हम पाते हैं, वह है समस्त देश में एक नागरिकता की व्यवस्था। जैसा कि मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने बताया है, उस दशा में अमेरिकन व्यवस्था को अग्राह्य करके विधान में समस्त देश के लिए एक नागरिकता की व्यवस्था रखी है। आज जब चारों ओर प्रान्तीयता का बोलबाला है, प्रत्येक प्रान्त अपने पड़ौसी प्रान्त को नुकसान पहुंचा कर भी अपना हित साधन करना चाहता है और हमने पड़ौसी प्रान्तों की सहानुभूति और सद्भावना खो रखी है, समस्त देश के लिए यह एक नागरिकता की व्यवस्था वस्तुतः बड़ी ही सन्तोषप्रद है। पश्चिमी बंगाल का सदस्य होने के नाते मुझे यह सोचकर परम हर्ष होता है कि अब के विधान पास हो जाने के बाद सम्पूर्ण देश में एक नागरिकता लागू हो जायेगी और सभी देशवासियों को सर्वत्र समान अधिकार और सुविधाएं प्राप्त होंगी, जिससे हमारे पड़ौसी प्रान्तों का दरवाजा हमारे लिए अब खुल जायेगा, ताकि पूर्वी पाकिस्तान से आए हुए हमारे दुखी भाइयों को वहां गुजर-बसर करने की सुविधा प्राप्त हो सके।

अल्पसंख्यक समस्या के सम्बन्ध में एक बात और मैं कहना चाहता हूं। विधान में अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए जो व्यवस्थाएं रखी गई हैं, उनके कारण कुछ लोग आकृष्ट हैं। कोई भी व्यक्ति यह बात नहीं अस्वीकार कर सकता कि देश में कई अल्पसंख्यक वर्ग वर्तमान है। इस तथ्य को हम चाहे जितना भी अस्वीकार क्यों न करें पर इससे ये अल्पसंख्यक विलुप्त तो हो नहीं जायेंगे। गणतंत्र का अर्थ ही है बहुमत का शासन, जैसा कि आप भी जानते हैं श्रीमान्। बहुसंख्यक वर्ग का ही सदा शासन रहता है और अल्पसंख्यकों को उनकी कृपा पर निर्भर करना पड़ता है। बहुसंख्यक वर्ग के लिए जरूरी नहीं है कि वह अल्पसंख्यकों से डरे। हां, बहुसंख्यक वर्ग का यह कर्त्तव्य अवश्य है कि वह अल्पसंख्यकों की रक्षा करे, जिससे कि उनके हृदयों में सुरक्षा और विश्वास का भाव उत्पन्न हो। मेरी समझ से तो आज भारत के अल्पसंख्यक-वर्ग बहुसंख्यक सम्प्रदाय से जो

[डा. मनमोहन दास]

पाना चाहते हैं ओर जिसके वे वस्तुतः पात्र हैं, वह यह है कि बहुसंख्यक वर्ग उनकी समस्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्वक विचार करें और उनसे विरोध-भाव न रखें।

इस सभा के ख्यातनामा सदस्य ने यहां एक बड़ा ही युक्त प्रश्न उठाया है। आपने कहा है कि भारतीय विधान के मसौदे में विश्व के अन्य देशों के विधानों से तो बहुत सी बातें ली गई है, पर स्वयं अपने इस प्राचीन देश से, अपनी संस्कृति से कुछ भी नहीं लिया गया है। उनका अभिप्राय है कि मसौदे में यहां की पुरानी ग्राम-पंचायत-पद्धति को स्थान नहीं दिया गया है। हमारा राष्ट्र एक भावुक और आदर्श प्रधान राष्ट्र है और सुतरां हर प्राचीन एवं अतीत की वस्तु की ओर हमारा स्वाभाविक झुकाव और प्रेम होता है। इस सभा के कई सदस्यों ने मसौदा-समिति के अध्यक्ष की आलोचना इस बात के लिए की है कि उन्होंने मसौदे में यहां की ग्राम-पंचायत पद्धति को स्थान नहीं दिया है। उन्होंने यही मान रखा है कि यह विधान एक व्यक्ति की कृति है और इस बात को वे भूल गये हैं कि विधान निर्माण के लिए मसौदा-समिति नाम का एक निकाय बना है। मेरी समझ से यह एक आश्चर्य की बात है कि मसौदा-समिति और उसके अध्यक्ष दोनों ही ग्राम-पंचायत को विधान में रखना भूल गये हों और इस बात की ओर उनकी दृष्टि ही न गई हो। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा समझता हूं कि मसौदा-समिति ने जानबूझकर यह बात प्रांतीय विधान-मण्डलों पर छोड़ दी है कि इस सम्बन्ध में वे जैसा चाहे कानून बनायें।

वस्तुतः कई प्रान्तों में तो इस दिशा में कानून बनाने का काम शुरू हो गया है। मैं यहां संयुक्तप्रान्त की ग्राम-पंचायत बिल की ओर संकेत कर रहा हूं। विधान में ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे प्रान्तों पर इस दिशा में कानून बनाने पर कोई रोक लगती हो। यदि हमारे प्रान्तीय विधायक ऐसा समझते हैं कि ग्राम-पंचायत-प्रणाली से देश को बहुत लाभ होगा तो अपने-अपने विधान-मण्डलों में वे उसके लिए कानून पास कर सकते हैं। मेरा ऐसा ख्याल है, श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में आलोचना करते-करते वक्ताओं ने कहीं-कहीं मसौदा-समिति के अध्यक्ष को कुवचन तक कह

डाले हैं और यह बात बिल्कुल ही अनावश्यक अनुचित अशोभनीय, बल्कि मैं तो कहूंगा कि क्षुद्रतासूचक है।

उन सभी माननीय मित्रों को, जो ग्राम-पंचायत के इतने बड़े हामी हो रहे हैं, बतौर चेतावनी के मैं चन्द शब्द कहूंगा। जब तक कि गांवों के लोग शिक्षित नहीं हो जाते, राजनीतिक चेतना उनमें नहीं आ जाती, अपने नागरिक अधिकारों और कर्त्तव्यों का उन्हें ज्ञान नहीं हो जाता, इस ग्राम-पंचायत-प्रणाली को चलाने से लाभ के बदले हमें हानि ही अधिक होगी। ग्राम-पंचायत की व्याख्या यहां शताब्दियों तक रही है और अभी हाल में भी वह यहां वर्तमान थी पर इससे हमारे देश को क्या लाभ पहुंचा है? सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक समुत्थान में इससे हमें क्या सहायता मिली है? मैं जानता हूं कि यह कहकर मैं लोगों का आक्रोश मोल ले रहा हूं और इसके कारण लोग हमारी तीव्र आलोचना करेंगे। यदि ग्रामवासियों को शिक्षित बनाने से पहले ही आप यह प्रणाली चालू कर देते हैं तो श्रीमान्, मेरा ऐसा ख्याल है कि इससे यही होगा कि गांवों के जो प्रभावशाली लोग हैं वही सारे अधिकारों और सुविधाओं को हड़प जायेंगे और अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही उनका प्रयोग करेंगे। गांवों के जमींदार, ताल्लुकेदार, महाजन और ब्याज पर रुपया देने वाले लोग, इस पद्धति से लाभ उठाकर गांव के गरीब, कम शिक्षित और कम सुसंस्कृत लोगों का शोषण करने लग जायेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता हूं, जिसे मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने मसौदे के विचारार्थ उपस्थित किया है। सभा के समक्ष अपना मत व्यक्त करने का आपने मुझे अवसर दिया, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, कोई भी व्यक्ति, चाहे इस महती सभा में अथवा इसके बाहर मसौदा-समिति के प्रयास और सेवाओं की महत्ता को, जिसने कि इस मसौदे को सभा के समक्ष विचार एवं स्वीकृति के लिए उपस्थित किया है, कम नहीं कर सकता। आने वाली पीढ़ी इस बात पर गर्व करेगी कि मसौदा-समिति ने विश्व भर के प्रचलित सभी विधानों का मंथन किया और उनमें से उन प्रावधानों को अपने विधान में स्थान दिया जो कि हमारे इस महादेश के समुत्थान के लिए अपेक्षित हैं।

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

विधान की विभिन्न धाराओं पर विचार करते समय हमें यह देखना चाहिए कि इससे उन लोगों को जो कि पीड़ित है, गरीब है और उन सम्प्रदायों को जिनकी अब तक सदा उपेक्षा की गई थी, सुरक्षा प्राप्त होती है कि नहीं, उनको इनसे नागरिकता सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त होती हैं या नहीं। विधान को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें दो नई बातें रखी गई हैं जो विश्व के किसी भी देश के विधान में नहीं हैं। पहली बात यह है कि विधान में अस्पृश्यता की समाप्ति कर दी गई है। हरिजन सम्प्रदाय का सदस्य होने के नाते मैं इस प्रावधान का अभिनन्दन करता हूं। इस अस्पृश्यता ने राष्ट्र की आत्मा का ही हनन कर रखा था और हिन्दू सम्प्रदाय की सभी महत्ताओं और गौरवों के बावजूद भी समस्त विश्व हमें सन्देह की दृष्टि से देखता था। मैं प्रस्तुत प्रावधान का स्वागत करता हूं। इस प्रावधान से बहुसंख्यक सम्प्रदाय की यह महत्ता प्रकट होती है कि उन्होंने यह समझ लिया कि अस्पृश्यता एक ऐसा कीटाणु है जो राष्ट्र के गौरव को, स्वाभिमान को ही समाप्त कर देगा यह आभास मिलते ही उन्होंने इस दूषित परम्परा को समाप्त करने का निश्चय कर लिया है। आज भारत में अभी ऐसे लोग वर्तमान हैं जो कहते हैं कि अस्पृश्यता के विनाश के लिए देश में काफी प्रचार किया गया है और इस सम्बन्ध में अब और प्रचार की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं सच कहता हूं, मेरा ऐसा ख्याल है कि अगर आप ग्राम्य क्षेत्रों में जायें तो अभी भी आप यहां अस्पृश्यता को प्रचण्ड रूप में वर्तमान पायेंगे। सुतरां अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी जो प्रावधान विधान में रखा गया है, पर अभिनन्दनीय है।

विधान की दूसरी विशेषता यह है कि बेगार प्रथा का इसमें अन्त कर दिया गया है। अगर गांवों में किसी आम काम के लिये मज़दूरों की जरूरत होती है तो इन मजदूरों के कामों को करने के लिए ये अभागे हरिजन ही पकड़े जाते हैं। विधान में बेगार प्रथा को उठाने के लिए जो प्रावधान आपने रखा है उससे निश्चय ही आप इस सम्प्रदाय का उत्थान कर रहे हैं, जो अब तक समाज के दायरे से बाहर ही रखा गया था। नियति ने यह काम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को ही दे रखा था कि एक दक्ष कीटाणु-विशेषज्ञ की हैसियत से वह अस्पृश्यता रूपी कीटाणु के विनाशकारी प्रभाव को समझे, जो राष्ट्र के प्राणों का ही क्षय कर रहा था। उन्होंने इस कुप्रथा के विनाश के लिये कतिपय सुझाव हमें दिये और मुझे खुशी है कि मसौदा-समिति ने इस अभागे हरिजन सम्प्रदाय को अस्पृश्यता और

बेगार की मार से बचाने के लिये विधान में ऐसा प्रावधान रख दिया है, जिससे कि इन दोनों ही बुराइयों का अन्त हो जाये।

विधान के मसौदे में उसके रचयिताओं ने कहा है कि अस्पृश्यता का अन्त कानून बनाकर किया जा सकता है। मैं तो कहूंगा कि इस सम्बन्ध में कानून ही काफी नहीं है। इसके लिये विशेष कानून बनाने होंगे। मेरे अपने प्रान्त में विधायकों ने वर्तमान नागरिक अयोग्यताओं को हटाने के लिए सौजन्यपूर्वक एक कानून बनाया था, किन्तु उस पर अमल करते समय स्वयं वहां की सरकार के लिए यह सम्भव नहीं था कि उक्त कानून-द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को वह लागू कर सके। इसलिए मैं कहूंगा कि यदि आप वस्तुत: अस्पृश्यता और बेगार को हटाना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको विशेष कानून बनाने चाहिए।

मूलाधिकारों के सम्बन्ध में, जो सभी देशवासियों को और विशेषत: यहां के अभागे अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को दिए गए हैं, परामर्शदातृ-समिति, अल्पसंख्यक-समिति एवं मूलाधिकार-समिति—इन तीनों ने ही तत्सम्बन्धी सभी प्रावधानों पर विचार करके कई उपायों का अवलम्बन किया है, जिन्हें इस सभा ने स्वीकार किया है।

कुछ वर्ग यह कहते हैं कि स्थान-संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु जिन्होंने अभागे अल्पसंख्यकों को दुर्दशा देखी है, उनका ऐसा ख्याल है कि संरक्षण की व्यवस्था होनी ही चाहिए। जैसा कि अल्पसंख्यक-समिति ने स्वीकार किया है और जिसका समर्थन इस सभा ने भी किया है। जहां तक कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का सम्बन्ध है, स्वयं इस सभा की यही सद्दिच्छा है कि संयुक्त निर्वाचन की पद्धति के आधार पर प्रौढ़ मताधिकार लागू किया जाये। निश्चय ही इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि आज की स्थिति में इस सम्प्रदाय के समुत्थान के लिए, जो कि आर्थिक एवं शैक्षिक दोनों ही दृष्टियों से गरीब हैं, यह एक सर्वोत्तम व्यवस्था है। प्रौढ़ मताधिकार को हटाने का प्रयास करना एक महान पातक होगा। अल्संख्यकों के हित-संरक्षण के लिए जो प्रावधान विधान में रखे गये हैं, वह मेरी समझ से अभिनन्दनीय हैं, किन्तु प्रान्तों में अभी भी इन संरक्षण-मूलक प्रावधानों के विरुद्ध लोगों में घोर आक्रोश है। मैं हृदय से ऐसा समझता हूं कि इन प्रावधानों को हर प्रकार प्रभावी बनाना चाहिए।

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

ग्रामीणों की खासकर वहां के दीन-हीन कृषकों और मजदूरों की आर्थिक दशा को समुन्नत करने के लिए, मैं देखता हूं कि इस विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं कि गांवों को एक इकाई समझा जाये। अवश्य ही शोषण तथा अन्य कई बातों के कारण गांवों की दशा आज दयनीय है और वे प्राय: बर्बाद से ही हैं। किसी भी विधान-निर्मातृ-सभा का यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह ऐसा प्रावधान बनाये जिससे ग्रामों को शासन-व्यवस्था में समुचित स्थान प्राप्त हो। मनियागर एवं कारनाम आदि ग्राम अधिकारियों की नियुक्ति वंश परम्परा के आधार पर होती है और इससे वही लोग वस्तुत: गांवों के सर्वेसर्वा होते हैं। भारत के प्रान्तों के शासन प्रबन्ध के लिए तो हमने व्यवस्था कर दी है और समाज के शीर्ष स्थानीय वर्गों के लिए विधान बना दिया है, किन्तु यदि हम गांवों के पुन: निर्माण का काम यों ही छोड़ देते हैं, तो मेरा ऐसा ख्याल है कि यह बहुत ही बुरी बात होगी। महात्मा जी भी यही चाहते थे कि गांवों को स्वायत्त-शासन-प्राप्त इकाई बनाई जाये। मुझे विश्वास है कि यह महती सभा इस मसौदे पर विचार करेगी जो उसके सामने उपस्थित किया गया है और इस बात की कोशिश करेगी कि इसमें समुचित सुधार हो, ताकि ग्राम को या कतिपय ग्रामों के एक समूह को स्व-शासन प्राप्त इकाई का रूप दिया जा सके। जिला बोर्डों में या म्युनिसिपल बोर्डों में कहीं भी गांवों या तालुकों के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं। मेरे प्रांत में तो कई परिस्थितियों के कारण जिला बोर्ड के शासन का काम जिलाधीश को ही देखना पड़ता है। इन जिलाधीशों के सर पर पहले से ही इतने जिम्मेदार कामों का बोझ है कि वे स्वयं जिला बोर्ड का काम नहीं देख पाते और इसके लिये एक विशेष अधिकारी नियुक्त कर देते हैं। ये बोर्ड, जैसा कि वर्तमान स्वरूप है, सर्वप्रिय संस्था नहीं है। मैं ऐसा ख्याल करता हूं कि ग्राम्य-इकाई बनाने पर हमें विचार करना ही चाहिये।

मंत्रियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में, विधान में प्रधान को पूर्ण अधिकार दिया गया है। यदि आप भारत-शासन अधिनियम, 1935, को देखें तो वहां आप इस आशय का प्रावधान पायेंगे कि गवर्नर या प्रधान अपने मंत्रियों को चुनने में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हकों का भी ख्याल रखेंगे। इस मसौदे में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है। मुझे विश्वास है कि इस मसौदे पर आगे चलकर जब आप विचार करेंगे, तो ऐसा कोई प्रावधान इसमें जरूर रख देंगे जिससे कि

मंत्रि-पदों के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हकों का भी ख्याल रखा जाये। श्रीमान्, मेरा ऐसा विश्वास है कि यह एक ऐसा राजनैतिक अधिकार है, जिसके द्वारा इन उपेक्षित सम्प्रदायों को और अच्छी सेवाओं का अवसर प्राप्त हो सकता है। अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में भी धारा 10 में कहा गया है कि पिछड़े हुए सम्प्रदायों का ख्याल रखा जायेगा। किन्तु पिछड़े हुए सम्प्रदायों की सूबेवार सूची अगर आप देखें तो आपको मालूम होगा कि पिछड़ी हुई जातियों का वहां नाम ही नहीं है। मैं समझता हूं कि इसमें अवश्य सुधार होना चाहिए।

अन्त में अब मैं भाषा के प्रश्न की ओर आता हूं। राष्ट्रीय-भाषा के सम्बन्ध में बड़ा जबरदस्त मतभेद है। जहां तक मेरे अपने सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, उसकी 1 प्रतिशत जनसंख्या ने भी हिन्दी या हिन्दुस्तानी को अभी नहीं अपनाया है।

मेरा ऐसा ख्याल है कि श्रीमान्, कि इस महत्ती सभा को इस प्रश्न पर समुचित रूप से विचार करना चाहिये और किसी भी भाषा को किसी प्रान्त, जिला या प्रदेश पर, जहां के लोग उसे नहीं चाहते हैं, जबरदस्ती नहीं लादना चाहिए।

इन कतिपय मन्तव्य के साथ मैं मसौदा-समिति तथा उसके अध्यक्ष का अभिनन्दन करता हूं कि उन्होंने इस सभा के समक्ष यह मसौदा उपस्थित करके एक बड़ी ही सेवा की है और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस मसौदे को स्वीकार करे।

***श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन** (मद्रासः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अब जबकि विधान विचारार्थ हमारे सामने आ गया है, मैं उसके सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करने की अनुमति आपसे चाहती हूं। मसौदा-समिति के योग्य एवं सुवक्ता अध्यक्ष ने नवीन भारतीय गणतंत्र के विधान-निर्माण में प्रशंसनीय रूप से अपना कर्त्तव्य पालन किया है। मेरा ख्याल है कि चाहने पर भी वह उन मुख्य सिद्धांतों के बाहर नहीं जा सकते थे, जिनके आधार पर सत्ता हस्तान्तरित हुई है। इसलिए मेरी समझ से जो भी आलोचना इस सम्बन्ध में उनके विरुद्ध की गई है, वह सर्वथा अशोभनीय और अनुचित है और अगर कोई दोषारोपण की बात है—और मैं समझती हूं कि ऐसी बात है—तो उसका भागी हममें से केवल उन्हीं लोगों को बनाना चाहिए जो यहां उपस्थित हैं, जिन्हें विधान-निर्माण के लिए यहां भेजा गया है और

[श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन]

जिन पर यहां की उस असंख्य मूक जनता ने विधान-निर्माण का दायित्व दे रखा है, जिसने स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े कष्ट सहकर हमें यहां बड़ी-बड़ी आशायें लेकर भेजा है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मुझे मसौदे के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं करनी है। मैं तो समझती हूं कि अपने प्रारंभ काल से ही यह विधान-परिषद् विधान-निर्माण के बजाय अन्य बातों में अधिक उत्साह दिखाती रही है। हम रोजाना अपने बड़े-बड़े नेताओं के भाषण सुनते हैं, उनसे बड़े-बड़े आदर्शों और सिद्धांतों की बात सुनते हैं, किन्तु विधान में हम यह देखते हैं कि उन आदर्शों और सिद्धांतों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के नेता हममें विद्यमान है, किन्तु विधान में हम यह पाते हैं कि उनके बड़े-बड़े सिद्धांतों और आदर्शों का कोई उल्लेख ही नहीं है। वस्तुत: यह एक बड़ी ही हास्यास्पद बात है कि हम ऐसा विधान अपने समक्ष उपस्थित पाते हैं और मैं समझती हूं कि स्वयं मसौदा-समिति के सदस्यों ने भी शायद पूरी तरह इसे नहीं पढ़ा है।

इसके सम्बन्ध में यह एक आम आलोचना हुई है कि यह मसौदा भारत-शासन अधिनियम, 1935 ई. की बिल्कुल हूबहू नकल है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं शासन पद्धति की हमें एक देन मिली हुई है, जो परिषदात्मक पद्धति के नाम से विख्यात है। मुसीबत तो यह है कि हमें तब भी इसी पर निर्भर करना पड़ता था और स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद इस विधान के अमल में आने पर अब भी हमें इसी पर निर्भर करना पड़ेगा। ब्रिटिश शासक भारत को केन्द्र और प्रान्तों की दृष्टि से एक इकाई के रूप में रखना चाहते थे और उन्हीं की तरह हमने भी घबराहट और चिन्ता में पड़कर भारत को केन्द्र और प्रान्तों को एक सशक्त इकाई के रूप में रखने की कोशिश की है और शक्ति के इस केन्द्रीकरण के फलस्वरूप यह सारी कठिनाइयां हमारे सामने आई हैं। भारत को एक सशक्त इकाई बनाने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि शक्ति के केन्द्रीकरण द्वारा यह ध्येय पूरा किया जाये और दूसरा रास्ता यह है कि विकेन्द्रीकरण द्वारा हम अपना उद्देश्य सिद्ध करें। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात यह है कि शक्ति का केन्द्रीकरण तभी शक्य है, जब तक कि हम परिषदात्मक शासन-व्यवस्था पर चलें जिसे आज 'जनतंत्रीय व्यवस्था' का आकर्षक नाम दिया जाता है। किन्तु इस मसौदे में ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो गणतंत्रीय हो और विकेन्द्रीकरण का इसमें सर्वथा अभाव है। वस्तुत: यह बड़ी की दयनीय बात है कि हम विधान तो बनाने चले एक महान् देश के लिए, जिसमें तीस कोटि नर-नारी रहते हैं, जिसकी अपनी एक महत्ती संस्कृति है, जिसको

विश्व के वर्त्तमान सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के सिद्धांत और उपदेश प्राप्त हैं, किन्तु विधान हम बना पाए ऐसा जो हमारे लिए बिल्कुल ही विदेशी है। इस सम्बन्ध में मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने जो तर्क उपस्थित किए हैं, वह बिल्कुल ही लचर हैं। उन्होंने कहा है कि विधान बनाने का काम हमने बड़ी देर के बाद हाथ में लिया है। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं ऐसे उदाहरण रख सकती हूं, जिनसे उनके तर्क का थोथापन प्रकट हो जायेगा। मसौदा-समिति की सिफारिश है कि भारतीय संघ का प्रधान राज्य परिषद् (Council of States) के लिए 15 व्यक्तियों को मनोनीत करे। फिर और एक बात कही गई है कि विधान-निर्माण का कार्यकाल चार वर्षों से ज्यादा होना चाहिए। मसौदे में एक और बात गलत नाम से रखी गई है और वह है गवर्नरों के चुनाव या मनोनयन के सम्बन्ध में। समिति का ऐसा ख्याल है कि गवर्नर तथा प्रधानमंत्री, जो कि विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा, ये दोनों ही अगर जनता द्वारा निर्वाचित होंगे तो इन दोनों के बीच संघर्ष होने की सम्भावना रहेगी। किन्तु इस बुराई के लिए जो इलाज उन्होंने सुझाया है, वह तो खुद इस बुराई से भी बदतर है। इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था सुझाई गई है कि चार नामों की तालिका होगी, जिसमें से एक को प्रधान गवर्नर चुन लेगा। अब मान लीजिए कि कांग्रेस का अध्यक्ष प्रधान पद पर आरूढ़ है और प्रान्त में समाजवादी दल का बहुमत है। समाजवादी पार्टी तीन नाम तो अपने दल के लोगों के रखती है और एक नाम कांग्रेस पार्टी के आदमी का। ऐसी स्थिति में प्रधान क्या करेगा? निश्चय ही वह कांग्रेस पार्टी के व्यक्ति को ही गवर्नर चुनेगा और फिर इससे झगड़ा पैदा ही होगा। हम यह देखते हैं कि गवर्नर को नियुक्त करने की बात भारत-शासन अधिनियम सन् 1935, से ही ली गई है और इससे यह स्पष्ट है कि इस अधिनियम से एक विराम या अर्धविराम लेना भी हमने नहीं छोड़ा है।

और फिर मेरी समझ में यह बात नहीं आती है, श्रीमान्, कि नवीन विधान में केन्द्र-शासित क्षेत्रों की व्यवस्था क्यों रखी जाये। अंग्रेजों ने इन क्षेत्रों को केवल इसलिए रखा था कि देश में वह अपना सैन्य शासन रख सकें। पर मैं नहीं समझ पाती कि आखिर हम अपने वर्तमान विधान में इन्हें क्यों रखें? अच्छा होगा कि इन क्षेत्रों को पास के प्रान्तों में मिला दिया जाये और ऐसा करने में हमारा कोई नुकसान नहीं है। विधान-निर्माताओं ने यह खण्ड विधान में रख दिया है, और इसलिए हमें इस पर विचार करना पड़ रहा है।

[श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन]

अब चन्द शब्द मैं समाजवादी दल की, उस मांग के सम्बन्ध में कहूंगी, जिसको उन्होंने यहां इस समय उपस्थित किया है। समाजवादी दल को देश में आज द्वितीय स्थान प्राप्त है और वह विपक्षी दल के रूप में अधिकारारूढ़ दल के सामने आना चाहता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि देश में इस दल की धाक है और इसमें बहुसंख्यक लोग अनुगामी है। उन्होंने इस बात की घोषणा भी कर रखी है कि भविष्य में वह एक वैध विपक्षी दल के रूप में रहना चाहते हैं। किन्तु मैं इतना अवश्य कहूंगी कि मैं उनकी इस मांग से सहमत नहीं हूं कि इस विधान-परिषद् को समाप्त कर दिया जाये। इस सम्बन्ध में मुझे एक सुझाव रखना है। वर्तमान विधान प्रभावी होने पर आम चुनाव के समय जनता के समक्ष आयेगा। उस समय इसी बात पर चुनाव लड़ लिया जाये कि विधान मंजूर हो या रद्द किया जाये। यदि उस समय निर्वाचक बहुमत से उसे स्वीकार कर लें, तो हम समझ लें कि समस्त देश ने इसे मान लिया है और यदि बहुमत द्वारा यह अस्वीकृत हो जाये, तो हम ऐसा मान लें कि सारे देश ने इसे अस्वीकार किया है। फिर अधिकारारूढ़ होने वाला दल तथा तत्पश्चात् निर्मित विधान-मण्डल विधान पर विचार कर उसमें आवश्यक संशोधन कर सकते हैं, मैं समझती हूं, श्रीमान्, कि कांग्रेस पार्टी, जो आज अधिकारारूढ़ है, इस नीति को स्वीकार करेगी और ऐसा करेगी कि विधान-निर्माण के सम्बन्ध में अप्रजातंत्रीय होने का आरोप हम पर न लगाया जा सके।

श्री देशबन्धु गुप्त (दिल्ली): उपसभापति महादेय, मुझे अफसोस है कि मैं ड्राफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन डा. अम्बेडकर साहब को, जिन्हें हाउस के मुख्तलिफ मैम्बरान ने बधाई और मुबारकबाद दी है, मुबारकबाद नहीं दे सकता। मैंने ड्राफ्टिंग कमेटी की सिफारिशात का वह हिस्सा, जिसका चीफ कमिश्नर प्राविन्सेज से ताल्लुक है, बड़े गौर से पढ़ा है। मैं अपने रिमार्क इस हिस्से तक महदूद रखना चाहता हूं कि हाउस के मैम्बरान इस हिस्से को जरा गौर से पढ़ें। जनाब सदर, आपको मालूम होगा कि चीफ कमिश्नर प्राविन्सेज का मसला जिस वक्त इससे पेशतर कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली के सामने आया था, उस वक्त भी ड्राफ्टिंग कमेटी ने जो सिफारिश की थी, वह यह थी कि चीफ कमिश्नर प्राविन्सेज का तरीका हुकूमत वही रहे, जो अब तक चला आया है। हिन्दुस्तान की दुनियां बदल गई, मुल्क को स्वराज्य मिल गया, लेकिन देहली और दूसरे चीफ कमिश्नर्स

प्राविन्सेज की जितनी बड़ी आबादी है, उनकी एडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज नहीं हुई। जिस वक्त इस किस्म की सिफारिश हमारे सामने कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली में आई, तो चीफ़ कमिश्नर्स प्राविन्सेज के नुमाइन्दों ने अपनी आवाज बुलन्द की और कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली ने एक स्पेशल सब-कमेटी मुकर्रर की, जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह चीफ कमिश्नर्स प्राविन्सेज के लिए वहां के हालात के मुताबिक कान्स्टीट्यूशन मुरत्तब करें। जनाब सदर, इस स्पेशल सब-कमेटी के चेयरमैन हमारे आज के इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रेसीडेंट-एलेक्ट और इस हाउस के सीनियर मेम्बर डा. पट्टाभि सीतारमैया थे। इस स्पेशल सब-कमेटी को हमारे कान्स्टीट्यूशनल-पंडित श्री गोपालस्वामी आयंगर जैसे शख्स की खिदमात हासिल थी। इनके अलावा हमारे दूसरे कान्स्टीट्यूशनल-पंडित श्री संतानम् भी इसके मेम्बर थे, जो इसमें इतनी गहरी दिलचस्पी लेते रहे हैं। (*हंसी*) (Do you doubt it?) उन्होंने भी इसमें दिलचस्पी ली और उसने जो सिफारिशात की, वह सिफारिशात मुत्तफ़िका सिफारिशात थी। इस कमेटी ने कई मीटिंगें की, तमाम मसलों पर गौर किया, इसके तमाम पहलुओं को अच्छी तरह से देखा। इसने हुकूमत की मजबूरियों को भी सामने रखा, जिनकी वजह से हुकूमत के चीफ़ कमिश्नर्स प्राविन्सेज के साथ इतनी बेऐतनाई का सलूक करना मुनासिब समझा था। चुनांचे इस सब बातों का लिहाज करके सिफारिशात की गई और उनमें साफ तौर पर यह कह दिया गया था कि अगरचे यहां की जनता की आवाज़ तो यही है कि इन्हें भी इतना ही अधिकार प्राप्त हो, जो कि दूसरे सूबों की जनता को है, और कोई वजह नहीं है कि ऐसा क्यों न हो, लेकिन फिर भी इस बात का लिहाज रखते हुए कि देहली की एक विशेष व्यवस्था है, इन्होंने सिफारिश की कि देहली में और दूसरे सूबों में एक लैफ्टिनेंट गवर्नर प्राविन्स बनाया जाये और इस लैफ्टिनेंट गवर्नर की तकर्रुरी के बारे में इस बात की रियायत रखी जाये कि सैन्ट्रल का इस पर कन्ट्रोल हो। चुनांचे बजाय इसके कि लैफ्टिनेंट गवर्नर चुनकर आयें, वह तजवीज़ की गई कि रिपब्लिक का प्रेसीडेंट लैफ्टिनेट गवर्नर को नामज़द कर दे।

दूसरी एहतियात इसमें यह रखी गई है कि दूसरे प्राविन्सेज़ की तरह नहीं बल्कि उनसे अलहदा इन प्राविन्सेज़ का कान्स्टीट्यूशन यह हो कि प्राविंशियल और सेन्ट्रल लिस्ट कन्करेन्ट हों, ताकि सेन्टर को पूरा अख्तियार रहे कि प्राविन्स के पास किए हुए जिस लेजिस्लेशन में चाहे मदाखिलत कर सके, उस प्राविन्स का अपना एक्सक्लुसिव जूरिस्डिक्शन न हो।

[श्री देशबन्धु गुप्त]

यह भी कह दिया गया है कि उसका बजट भी सेन्टर के सामने आये और प्रेसीडेन्ट को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार हो। यही नहीं, एक एहतियात और रखी गई है और वह यह है कि लैफ्टिनेंट गवर्नर और मिनिस्टर्स के दर्मियान अगर किसी मामले में इख्तलाफ राय हो, तो यह मामला भी प्रेसीडेंट को रैफर किया जाये और उस मामले में प्रेसीडेंट की राय कतई समझी जाये। मैं नहीं समझता कि जब कमेटी ने इतने गौर-खौज के बाद ऐसी सिफारिशात की कि जिनमें सेंटर के अधिकार का ज्यादा से ज्यादा लिहाज़ रखा गया, उसके बाद भी ड्राफ्टिंग कमेटी ने क्यों यह जरूरी समझा कि चन्द लाइनें लिखकर इस मसले को खत्म कर दिया जाये और यह कह देना काफी समझा कि चूंकि देहली एक कैपिटल टाउन है इसलिए यहां लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन नहीं हो सकता। ड्राफ्टिग कमेटी ने बजाय इसके कि वह स्पेशल कमेटी की मुत्तफिका सिफारिशात को वज़न देती, या कोई और रास्ता निकालने की कोशिश करती, मालूम यह होता है कि उसने अपने प्रिजुडिसेज़ से काम लिया और यह समझा कि यह कोई ऐसा मसला नहीं है जिस पर गौर किया जाये। ऐसा मालूम होता है कि यह हज़रात समझे थे कि स्पेशल कमेटी तो देहली और दूसरे चीफ कमिश्नर्स प्राविंसेज़ के लोगों का दिल बहलाव करने के लिए बना दी गई थी, इसलिए उसकी सिफारिशात रद्दी की टोकरी में डाल दी गईं। मैं पूछना चाहता हूं कि इस कांस्टीट्यूएंट असेम्बली के इतने मेम्बरान अपने वक्त का इतना बड़ा हिस्सा देहली में गुज़ारते हैं या वह यह अन्दाज़ नहीं कर सकते हैं कि देहली में बीस लाख की आबादी के होते हुए यह मुनासिब है या नहीं कि उनकी भी अपने ऐडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज़ हो। क्या यह अच्छा मालूम होता है कि देहली में अगर आज एक छोटी सी हड़ताल हो जाये कि उसे रोकने के लिए हमारे होम मिनिस्टर और प्राइम मिनिस्टर को भाग-दौड़ करनी पड़े? क्या यह मुनासिब है कि नये तरीके-हुकूमत में देहली के छोटे-छोटे मामलात भी कैबिनेट मिनिस्टर तय किया करें और देहली के लोगों की एडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज़ न हो? कहा गया है कि आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं होता, इसलिए यह हिन्दुस्तान में भी नहीं हो सकता। मैं तो यह समझा था कि सभी दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशन्स से फायदा उठाने की कोशिश करनी चाहिए और मक्खी पर मक्खी नहीं मारनी चाहिए। आस्ट्रेलिया की मिसाल दी गई है, लेकिन वहां के कैपिटल टाउन की आबादी आठ हज़ार थी और सन् 1944 में उसका अन्दाज़ा तेरह हज़ार का था। देहली के नरेला टाउन से भी उसकी आबादी

कम थी। अगर आप आस्ट्रेलिया से मुकाबला करना चाहते हैं तो बड़ी खुशी से नरेला को अपना कैपिटल बना लीजिये और उसका अधिकार अपने हाथ में ले लीजिये। देहली वालों को कोई ऐतराज न होगा। दूसरी मिसाल वाशिंगटन की दी गई है। यह मिसाल एक हद तक मुनासिब हो सकती है। लेकिन मैं समझता हूं कि देहली और वाशिंगटन एक ही तराजू में नहीं तोले जा सकते। देहली एक कमर्शियल और इन्डस्ट्रियल टाउन है और देहली की आबादी बीस लाख है, जब कि वार्शिगटन की आबादी आठ लाख के करीब है। वाशिंगटन खास तौर पर राजधानी के लिए बनाया गया है। देहली सदियों से, बल्कि हज़ारों साल से चली आती है। यहां की एक खास तहज़ीव व तमीज़ है और देहली की आबादी की खास जरूरियात हैं। मैं समझता हूं कि देहली वालों के साथ यह कितनी बड़ी बेइन्साफी की जा रही है कि आज चन्द सतरों में यह कहकर इस सारे मसले को खत्म कर दिया जाता है कि चूंकि यूनाइटेड स्टेट्स में ऐसा नहीं होता है और आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं होता है, इसलिए देहली में भी कुछ नहीं किया जा सकता है। मैं पूछता हूं कि क्या मास्को का सेपरेट प्राविन्स नहीं है और क्या उसका अपना प्राविंशियल ऐडमिनिस्ट्रेशन नहीं है? अगर मास्को U.S.S.R. की राजधानी होते हुए एक सेपरेट ऐडमिनिस्ट्रेशन रख सकता है, तो देहली में ऐसा क्यों नहीं हो सकता? क्या यूनियन आफ साउथ अफ्रीका में चार अलग-अलग प्राविंसेज़ नहीं हैं? और क्या यह वाकया नहीं है कि वहां कि राजधानी भी एक सूबे की राजधानी है? फिर क्यों हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं किया जा सकता? हमारे सामने सिर्फ दो मिसालें रख दी गई हैं और उनमें से भी एक मिसाल ऐसी जगह की है, जिसकी आबादी आठ हज़ार है। मैं बड़े अदब से पूछना चाहता हूं कि आस्ट्रेलिया की राजधानी और देहली का क्या मुकाबला हो सकता है? क्या यह बेइन्साफी नहीं है कि एक आठ हज़ार के टाउन का मुकाबला करके देहली के केस को एक मिनट में खत्म कर दिया जाता है? मैं नम्रतापूर्वक यह कहना चाहता हूं कि अगर आज यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली भी, तो जनता की प्रतिनिधि है, जनता की आवाज़ को नहीं सुनती तो उसे मजबूर होकर अपनी आवाज़ सुनाने का और कोई तरीका अख्तियार करना होगा, ताकि वह मेम्बरान को एक खास तरीके पर अपनी आवाज़ सुना सकें। देहली के कोने-कोने से सन् 1927 से यह आवाज़ बुलन्द की जा रही है कि देहली का एडमिनिस्ट्रेशन अलहदा होना चाहिए। आज देहली की सूबा कांग्रेस कमेटी यह रेज़ोल्यूशन पास कर चुकी हैं प्राविंशियल पोलिटिकल कान्फ्रेंस भी यह रेज़ोल्यूशन पास कर चुकी है। चीफ़ कमिश्नर्स ऐडवाइज़री कौंसिल

[श्री देशबन्धु गुप्त]

यह रेज़ोल्यूशन पास कर चुकी है। देहली की म्युनिसिपैलिटी यह रेजोल्यूशन पास कर चुकी है। सैकड़ों जलसों में यह रेज़ोल्यूशन पास हो चुका है। लेकिन हमारे ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन के मेम्बरान ने इस बात की परवाह नहीं की कि इसकी तरफ़ जरा भी ध्यान दिया जाये। मैं समझता हूं कि यह बड़ी भारी बेइन्साफ़ी है। इससे बढ़कर कोई बेइन्साफी नहीं हो सकती कि देहली के रहने वालों को, जो कि हिन्दुस्तान का केन्द्र है, अपने ऐडमिनिस्ट्रेशन में किसी आवाज़ का मौका न दिया जायें। कह दिया जाता है कि कुछ लोग देहली में ख्वाहां हैं कि वह गवर्नर बन जायें, कुछ मिनिस्टर बनने के मुश्ताक हैं। मैं पूछता हूं कि एक तरफ तो मेरे लायक दोस्त माइनारिटीज़ के हकूक के इतने बड़े अलमबरदार हैं। अगर माइनारिटीज़ की कोई छोटी सी भी बात हो तो डा. अम्बेडकर की फौरी तवज्जह उसकी तरफ जाती है। लेकिन इस छोटे से प्राविंस की तरफ उनका ध्यान नहीं गया। उन्हें कम अज़ कम उसे एक माइनारिटी प्राविंस समझकर कुछ मुरव्वत बरतनी चाहिए थी। आज भी जब तक रिलीजस माइनारिटी का सवाल हमारे सामने आता है, जिसकी तादाद 30-35 लाख है, वह मामला कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली के सामने आता है और तमाम नेताओं की तवज्जह उसकी तरफ खींची जाती है और उसकी सारी ताकत उसे हल करने में लगी होती है। मगर देहली की तरफ से सब लापरवाही बरतते हैं। यह बेइन्साफी नहीं है कि बीस लाख की आबादी कोई चीज़ नहीं है? आज हमारे छ: लाख भाई वैस्ट पंजाब से तबाह-हाल होकर देहली आये हैं। देहली ने उनको पनाह दी। देहली ने उन्हें अपनाया। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली यह चाहती है कि देहली में जो यह छ: लाख आदमी आये हैं उन्हें एक और सज़ा यह मिले कि उन्हें डीफ्रैंचाइज कर दिया जाये? यह तो बड़ा भारी अन्याय होगा। अगर आप चाहते यह हैं कि देहली की राजधानी होने के कारण ज्यादा हिफ़ाज़त की जाये तो आप खुशी से ऐसा करें! देहली वाले इस खिदमत के लिए हाज़िर हैं। हमने पहले ही जो सिफारिशात आपके सामने रखी हैं, उनमें आपको वसीय अख्तियारात दे दिए हैं और फिर आपका इसमें बिगड़ता क्या है, अगर आप देहली को एक छोटी सी लेजिस्लेचर कौंसिल दे देते हैं, और चन्द मिनिस्टर्स मुकर्रर करते हैं? आपको हर वक्त यह पूरा अधिकार होगा कि आप जब चाहें उसे सस्पेंड कर दें। उस स्पेशल कमेटी ने यह सब अधिकार खुद ही प्रेसीडेंट को दे दिए हैं। इस पर भी बजाय इसके

कि एक तजरुबा किया जाये जो कि एक सही कदम होगा, हमें बताया जाता है कि तजरुबा करने की भी जरूरत नहीं है। प्रेजीडेंट को अख्तियार है अगर कभी कुछ मुनासिब होगा तो कर दिया जायेगा। इस पर तुर्रा यह है कि कहा जाता है कि यह इस मसले को हल करने का एक कांम्प्रिहेंसिव तरीका है। जनाब सदर, मैं बड़ी नम्रता से आपके जरिये कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली के मेम्बरान से प्रार्थना करूंगा कि वह इस मसले पर संजीदगी से गौर करें और यह अनुभव करें कि देहली की जनता की आवाज़ एक जबर्दस्त आवाज़ है और उनकी शिकायत और मांग बिल्कुल जायज़ है।

अजमेर-मेरवाड़ा के लिए भी यह सवाल हो सकता है, कुर्ग के लिए भी हो सकता है। लेकिन अग़लब यह है कि कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा अपने पड़ौसी प्रदेशों में शामिल हो जाये और उन्हें वह सारे अधिकार प्राप्त हो जायें, जो एक आटोनोमस प्राविन्स को होते हैं। लेकिन देहली के लिए तो यह फतवा सादिर किया जा रहा है कि देहली में और कोई तब्दीली होनेवाली नहीं है। देहली की आबादी पहले छः लाख के करीब थी, अब इसकी आबादी बीस लाख है और अंदाजा किया जाता है कि दस साल तक शायद इस आबादी में दस पन्द्रह लाख का इज़ाफा होगा। यह हिन्दुस्तान का चौथा सबसे बड़ा टाउन है, और इसके लोगों की ऐडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज़ न हो! आज हालत क्या है? देहली की ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट हमारे सामने नहीं आती। कहा गया है कि चीफ कमिश्नर्स ऐडवाइजरी कौंसिल बना दी गई है। आपको उससे मुत्तमईन होना चाहिए। इसके बारे में सुन लीजिए। आज इसको बने एक साल से ज्यादा हो गया है, लेकिन एक मौके पर भी चीफ कमिश्नर साहब को इस बात की जरूरत महसूस नहीं हुई कि वह देहली के मामलात्, जिनका डे-टू-डे ऐडमिनिस्ट्रेशन से ताल्लुक है, उनके बारे में भी चीफ कमिश्नर्स ऐडवाइज़री कौंसिल के मेम्बरान से मशविरा कर लें। देहली में रायट्स हुए तो सैन्ट्रल कैबिनेट ने एक इमरजैंसी कमेटी बनाई। मि. भाभा इसके चेयरमैन थे। लेकिन देहली की ऐडवाइज़री कौंसिल का इसमें कोई दखल न था। मैं पूछना चाहता हूं कि अगर आज देहली में कोई बरबादी होती है, तबाही होती है या देहली वालों की तरफ से मुश्किलात पैदा की जाती है, तो क्या इसका असर हम पर नहीं पड़ेगा? फिर यह कैसे हो सकता है कि ऐडमिनिस्ट्रेशन में देहली वालों की कोई आवाज़ न हो? देहली के गिर्द नये-नये शहर बसाये जा रहे हैं। नई-नई स्कीमें बनाई जा रही हैं उसमें देहली वालों को कोई पूछता नहीं है। इसमें कोई उनके लिये गुंजाइश नहीं रखी गई है। छोटे से छोटे मामले के लिये देहली वालों

[श्री देशबन्धु गुप्त]

को कभी प्राइम मिनिस्टर के पास जाना पड़ता है, कभी किसी मिनिस्टर के पास और कभी किसी के पास।

अगर बम्बई वाले हुकूमत के अहल हैं, अगर कलकत्ते वाले हुकूमत के अहल हैं और यू.पी. वाले 5 करोड़ की आबादी की हुकूमत चला सकते हैं, तो देहली वालों की भी यह हक हासिल है कि अपने सूबे की हुकूमत का काम चलायें। देहली वाले आजमाइश के वक्त किसी से पीछे नहीं रहे और आज़ादी की लड़ाई में कभी भी किसी से उन्होंने कम हिस्सा नहीं लिया। फिर भी कहा जाता है कि देहली वाले और अजमेर-मेरवाड़ा वाले या जो चीफ कमिश्नर्स प्राविंसेज वाले हैं, उनको कोई अधिकार नहीं दिये जा सकते। मैं कहना चाहता हूं कि यह मामला सहज तरीके से तय नहीं हो सकता।

जनाबवाला, मेरी आवाज़ कमज़ोर है। मैं यहां अकेला हूं और इसलिए मौका भी नहीं मिलता कि देहली वालों की आवाज़ हाउस तक पहुंचा सकूं। आज मुश्किल से यह मौका मिला है कि देहली वालों का केस सामने ला सका; वरना कौन सुनता है नक्कारे में तूती की आवाज़? यही सबसे बड़ी दलील है जो मैं आपके सामने रखना चाहता हूं कि आप जो चाहे हिफ़ाजती तदाबीर अख्तियार करें। हमको कोई ऐतराज़ नहीं है। लेकिन देहली वालों को लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन मिले और उनका स्टेट्स इसी प्रकार का हो जैसा कि दूसरे प्रान्तों का है। अगर आप यह अधिकार देहली वालों को नहीं देंगे, तो यह बड़ा भारी अन्याय होगा और इसका फल अच्छा नहीं होगा।

श्री गोकलभाई डी. भट्ट (बम्बई राज्य): माननीय सभापति जी, आज माइनौरटीज़ के लिये मौका दिया गया है और मैं देशी रियासतों में से आ रहा हूं। देशी रियासतें अभी नाबालिग जैसी है, वह धीरे-धीरे बालिग होती जा रही हैं और मैं इसलिये ही यहां आया हूं कि हम जो बालिग हैं, उनको आप बालिग मान लीजिये और जो रोड़ा अटकाते हैं, उनको कह दीजिये कि यह तो बालिग हैं। हमारे राज्य, राज्य-संघ दूसरे सूबों की तरह के हैं इसी कारण मुझे यह मौका दिया गया है और इसी लिहाज से मैंने मांगा भी था और में शुक्रिया अदा करता हूं, सभापतिजी कि मुझे यह मौका मिला। जब से यह विधान हमारे सामने आया है, तब से मैं इसको बराबर देखता आ रहा हूं। ऐसा नहीं है कि अभी थोड़े ही दिन पहले मैंने इस विधान को देखा हो। जब से मैंने इस विधान को देखा

है, तब से मुझे पता लगा है कि इसमें सही बात है ही नहीं। सही बात यह है कि अगर सही हिस्सा, अच्छा हिस्सा दूसरे विधानों में से हमको मिलता है, तो हमको उसे अपने रिटिन कान्स्टीट्यूशन में लेना चाहिए। और जो विधान बनाने वाली कमेटी है और उसके जो सदर हैं, वह हिम्मत के साथ और एक अधिकार के साथ यह कहते हैं कि हमारा विधान, जो हम बनाने जा रहे हैं, वह विधान सबसे बढ़िया होगा। उनका यह कहना है। क्योंकि, वह उसके अंगभूत है और उन्होंने विधान बनाया है। कुछ मुबारिकबाद तो जरूर देनी चाहिए, क्योंकि उन्होंने इसको बनाने में बहुत जहमत उठाई है, मेहनत की है और यह धन्यवाद का काम हुआ है क्योंकि कहां-कहां से चुन-चुन करके हिस्से जमा किए हैं यह ऐसा तो नहीं हुआ और ऐसा मैं कहना भी नहीं चाहता हूं कि कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा और भानमती ने कुनबा जोड़ा। ऐसी बात तो मैं नहीं कहना चाहता हूं। इतनी हद तक तो यह नहीं है; लेकिन दिल्ली शहर में हम बैठे हैं, जिसकी हिमायत हमारे देशबन्धुजी कर रहे हैं और जिनको एक अलग स्टेट्स भी मिलना चाहिए। तो इस दिल्ली शहर में भी कई मकानों में, जैसे कि गवर्नर-जनरल का मकान देखते हैं, तो पुराने समय की बात भी आती है, अब की बात भी आती है। इसी रीति से इस विधान में भी मेरा यकीन था कि अलग-अलग देशों के विधान में से अच्छे-अच्छे हिस्से किये जाये। लेकिन जो बात मुझे अखरती थी, पहले से और आज भी अखरती है, वह बात यह है कि दूसरों से तो हिस्से ले लिए जाते हैं, लेकिन हमारे जो पड़े हुए हैं, हमारी आर्यावर्त्त की भूमि में जो चीजें रहती है, हमारे लहू में जो चीज आई हैं, हमारे में जो सत्व है, वह सत्व की बात हमने इसमें से उड़ा दी है। यह विधान का एक मसविदा बनाया गया है, लेकिन इस मसविदे में जो प्राण, जो सात्विकता है, उसमें भारत का हृदय नहीं है। इस विधान में अपनापन नहीं है। इस विधान में सजावट है; वह सजावट फूलों की सजावट है, कई दूसरी चीजों की सजावट है। लेकिन उसमें जो महक आनी चाहिए, उसमें जो सौरभ, सुगन्ध आनी चाहिए, वह सुगन्ध इस विधान में नहीं पाई जाती है। माफ कीजिये, मैं कमेटी की मेहनत को बरबाद नहीं समझता हूं; लेकिन अगर यही विधान होता, तो मैं नहीं मानता हूं कि इतने महीने तक हम इसके पीछे क्यों लगे रहे हैं इसमें कुछ बातें अच्छी हैं, इसका मुझे कोई अन्देशा नहीं है और इसके लिए मैं जरूर मुबारिकबाद दे सकता हूं। लेकिन सारा विधान

[श्री गोकलभाई डी. भट्ट]

देखते हुए मुझे यह डर है कि यह विधान भारतीय विधान है कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता हूं।

डाक्टर साहब ने बड़ी हिम्मत से कहा और वह यह कहते हैं कि उनकी ड्राफ्टिंग कमेटी के दूसरे सदस्य यह मानते हैं कि इस विधान में जो चीज आनी चाहिए, जो भारतवर्ष का एक पंचायती राज्य, या तो ग्राम-पंचायती तंत्र आना चाहिए, उसकी बुनियाद इसमें नहीं है। उसकी बुनियाद नहीं है, तो मैं कहता हूं कि वह भारत का विधान कभी हो ही नहीं सकता है। जिस ग्राम-पंचायत की प्रथा ने हमको उठाया है और जिस ग्राम-पंचायत की प्रथा ने हमको आज तक जिन्दा रखा है, उस चीज़ को हम भूल जाते हैं, या तो उस चीज़ को ठुकरा देते हैं और यह कहते हैं बड़ी हिम्मत के साथ कि हमने जान बूझकर उस चीज़ को ठुकरा दिया है। मैं कहता हूं, बड़े अदब के साथ मैं अपना विरोध दर्शाता हूं। इस चीज़ को ठुकराना चाहिए और उसको हमारे विधान में न लाना चाहिए, ऐसा उनका कहना है। उन्होंने बड़े जोर से कहा है और इन लफ्ज़ों में कहा है। मुझे दर्द हुआ कि यह लफ्ज हमारी विधान कमेटी के सदर ऐसे शब्द इस्तेमाल करते हैं, वह यह कहते हैं, फरमाते हैं: What is the village but a sink of localism and den of ignorance... I am glad the Draft Constitution has discarded the village.'' मुझे बड़ा रंज हुआ कि इस रीत से हमारे महापंडित संस्कृत के ज्ञाता और राजनीति से बड़ी जानकारी रखने वाले, वह हमारी ग्राम-पंचायतों की जो प्रथा है, पंचों की प्रथा है, उसका घोर विरोध करते हैं। विलेज के यही मानी हैं कि ''It is to be discarded'' तो उसी तरह कोई हिम्मत के साथ यह भी कह सकता है कि ''this Constitution must be discarded'' लेकिन मैं तो एक अदना आदमी हूं, बहुत तज़रुबा भी नहीं रखता हूं। कुछ आवेश में भी बोल जाता हूं। कुछ भी हो, लेकिन किसी न किसी हालत में अभी भी हम जो अमेंडमेंट लाना चाहते हैं, उसमें यह चीज़ आनी ही चाहिए कि हमारी बुनियाद ग्रामों के प्रजातंत्र से पड़नी चाहिए और तभी वह विधान मुकम्मिल होने वाला है, तब वह विधान प्राणवत होने वाला है। तब हम समझेंगे कि हमारा यह विधान बना है। नहीं तो यह रेत की नींव पर हम एक बड़ी इमारत बनाने जा रहे हैं और वह सचमुच गिर जाने वाली है, यही मेरा एक खास सुझाव है। इसलिए मैं भी बोलना चाहता था।

एक दूसरी बात मैं आपको बतलाना चाहता हूं। वह यह है कि हमारी रियासतों के कई संघ बन चुके हैं। एक बड़ी खुशी की बात है कि हमारे काबिल नेता सरदार पटेल ने जिस तेजी के साथ रियासतों की शकल बदली है, उसके लिए हम बहुत गर्व करते हैं लेकिन अब समय वह आ गया है, मैं मानता हूं कि जब कि विधान हमारा दिसम्बर के आखिर तक या तो जनवरी में मुकम्मिल हो जायेगा, तब तक हमारी कई ऐसी रियासतें हैं, जो रियासतें वैसे अकेली रह सकती हैं। अगर उड़ीसा प्रान्त अकेला अलग रह सकता है, तो कोई कहेंगे कि कई रियासतें भी अलग रह सकेंगी। ट्रावनकोर अलग रह सकेगा, कोचीन रह सकेगा, जयपुर जोधपुर, बगैरह भी रह सकेंगे।

लेकिन मैं बड़े अदब के साथ कहना चाहता हं कि हम यह छोटे-छोटे प्रान्त अगर बनाने बैठेंगे तो जो प्राविन्शियलिज़्म आज है, उससे बहुत कुछ बढ़ जायेगी और हमारी जो एकता है वह बिखर जायेगी। हमारी मजबूती जितनी आज है, उतनी नहीं रहेगी, और उसके लिए मैं तो यह कहना चाहता हूं कि अगर स्टेट्स भी हैं, प्राविन्सेज भी हैं तो वह बड़े होने चाहिए और अच्छे होने चाहिए और उनको अपने पैरों पर खड़ा रहना चाहिए। छः करोड़, सात करोड़, आठ करोड़ की आमदनियां काफी नहीं हैं। यह चीज पर्याप्त नहीं है, उसमें एक सूबा अच्छी तरह से चल नहीं सकता है। मेरी अपनी राय तो यह है कि एक सूबे की आमदनी बीस-पच्चीस करोड़ से कम न हो और कम वाला वह सूबा न बनना चाहिये। अगर वह रियासती संघ बना हो, तो वह रियासती संघ भी नहीं बनना चाहिए। यह मेरी राय है।

लेकिन वह तो सोचने की बात है, हमारे नेताओं के सोचने की बात है, लेकिन मैं यह चाहता हूं। मैं तो राजपूताने से आ रहा हूं, छोटी रियासतों से आ रहा हूं। तो मेरा तो यह कहना है कि राजाओं ने बहुत कुछ कुर्बानी की है, राजाओं के आत्मसमर्पण की हम प्रशंसा करते हैं, हम यह देखते हैं कि भोपाल है, वह मध्य भारत से अलग एक टुकड़ा बना रहे, रामपुर, बनारस अलग बैठे रहें, हमारे जोधपुर और बीकानेर भी अलग बैठे रहें, यह कब तक? आखिर जब हिन्दुस्तान के सूबे बनने वाले हैं और बड़े सूबे बनाने चाहियें, तो मैं मानता हूं कि राजाओं को बड़े राजाओं को एक कदम आगे बढ़ना चाहिये और उन लोगों को मिलजुल कर अब अच्छे बड़े प्रान्त बनाने चाहियें। मैं राजपूताने का नाम लूं, तो राजपूताना

[श्री गोकलभाई डी. भट्ट]

और उसमें अजमेर-मेरवाड़ा का प्रश्न हल हो जायेगा। वह छोटा सा प्रान्त है, उसे क्यों अलग रखा जाये? वह राजपूताना का अंग है और उसी में मिला दिया जाये। राजाओं की कद्र करने के लिए उनको ओहदे दिए जाने चाहियें। राजप्रमुख और उपराजप्रमुख तो हैं ही, लेकिन भारत में और भी जगह हैं, वह उनको दी जायें, क्योंकि हम उनकी कद्र करते हैं, तो इन रियासतों के मामलें में अब हम अन्य सूबों से किसी तरह पीछे नहीं रहना चाहते हैं। और पीछे हमें नहीं रहना चाहिए। किसी लिहाज से हमें यह कहा जाये कि नहीं तुमको तो इतने ही सब्जैक्ट्स (Subjects) हैं, तो मैं कहता हूं कि नहीं। अब हम यह मानें कि हमारा स्टेट्स बढ़ा दिया जाये, क्योंकि आप हम पर मेहरबान हैं, आप हमें आगे ले जाना चाहते हैं, तो मैं कहता हूं कि हम दूसरे सूबों से अलग नहीं रहेंगे, उनकी स्थिति एक सी रहे, चाहे वह हाईकोर्ट का मामला हो या सुप्रीम कोर्ट का हो, वह एक से होने चाहिए। आप इसमें इमदाद कीजियेगा। और हमारे नेताओं से कहा जायेगा कि आप हमारी मदद कीजियेगा, आप हमें आगे ले जाइये और वहीं हमें बैठाइये, जहां उनका (प्रान्तों का) स्थान हो वहीं हमें भी बैठाया जाये।

मैं बहुत लम्बी-लम्बी बातें भी नहीं करूंगा, क्योंकि इतने मित्रों ने उन बातों का जिक्र किया है, लेकिन मैं इस चीज को कहना चाहता हूं कि छोटे-छोटे सूबे बनाने के बारे में (यानी Linguistic Provinces) के बारे में तो मेरी राय अलग है। और मैं यह मानता हूं कि आज जो हिन्दुस्तान की हालत है, उस हालत में कम से कम दस साल तक इस चीज का हम नाम न लें और अब हमारी एकता, जो हम स्थापित कर रहे हैं, और जो देश हम बना रहे हैं, उसे मजबूत बनाने में इन मित्रों को मैं जरूर अर्ज करना चाहता हूं कि वह इस (Linguistic Provinces) के झगड़े को फिलहाल मोकूफ रखें। जब हम स्थिर हो जायेंगे, तब दस साल के बाद इस चीज को हम सोचेंगे। यही मुझे अर्ज करना था। दिल्ली वगैरह के बारे में मैं उनको कहूंगा कि हमें देखना चाहिए कि दिल्ली राजधानी है, उसे एक अलग ''Status'' मिलना चाहिए, उसके लिए तो मैं भी देशबन्धुजी से एक राय हूं। लेकिन अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग, पन्थ-पिपलोदा, जो छोटी-छोटी चीजें हैं, उन चीजों को प्रान्त में मिला देना चाहिए। उसको ''Centrally Administered'' होने से क्या करना है। आखिर इतना ही मैं डाक्टर साहब से

अर्ज करना चाहता हूं। वह बड़े पंडित हैं, लेकिन पंडित हैं तो हिन्दस्तान को पंडित बनायें। भारतवर्ष का विधान जो बन रहा है, उसमें भारत का अपनापन दाखिल करें, यही मेरी अर्ज है।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): (*हर्षध्वनि के बीच उठते हुए*) उपाध्यक्ष महोदय, हम अपने सफर की आखिरी मंजिल पर पहुंचे गये हैं। करीब दो साल हुए, हम लोग इस भवन में समवेत हुए थे और उस पवित्र और गम्भीर अवसर पर मुझे ही यह प्रस्ताव उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो लक्ष्य-प्रस्ताव के नाम से आज विख्यात हैं इस प्रस्ताव को लक्ष्य-प्रस्ताव कहना तो उसको एक नीरस और शुष्क नाम देना होगा, क्योंकि उसमें न केवल लक्ष्य का ही वरन् उससे भी ऊंची बातों का समावेश था, यद्यपि किसी राष्ट्र के जीवन के लिए लक्ष्य एक बहुत बड़ी चीज होती है। उस प्रस्ताव में, जहां तक कि भाषा में उसे रखना सम्भव था, वह भावना रखने की कोशिश की गयी थी जो भारतीय जनसमुदाय के हृदयों में पूर्ण मात्रा में सदा व्याप्त रही है। मैं नहीं जानता कि हम ऐसा करने में कहां तक सफल हुए हैं। किन्तु जो भी हो, हमें उसी भावना से विधान-निर्माण का काम करना है और उसी भावना से हमें विधान सम्बन्धी बातों पर विस्तारपूर्वक विचार करना है और इस सम्बन्ध में सदा अपने सामने लक्ष्य-प्रस्ताव को ही मापदण्ड के रूप में रखकर विधान की प्रत्येक धारा, प्रत्येक वाक्य को हमें तय करना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह भी अवश्य हो सकता है कि हम उक्त प्रस्ताव से भी सुन्दर कोई बात विधान में रखें, यदि यह शक्य हो तो हमें अवश्य ऐसा करना चाहिए। किन्तु मैं समझता हूं कि उस प्रस्ताव के कुछ हिस्सों में वह बुनियादी और मूलभूत बातें बता दी गयी हैं, जो कि हमारे विधान में होनी चाहिए। आखिर विधान क्या है? यह एक प्रकार की विधि-पुस्तिका है, जिसके अनुसार शासन-व्यवस्था संचालित की जाती है और जिसके आधार पर जाति का जीवन-क्रम चलता है। वह विधान जिसका कि जाति के जीवन से सम्बन्ध नहीं, जिसमें राष्ट्र की आकांक्षाओं और लक्ष्यों की बात सन्निहित नहीं, वह बिल्कुल निष्प्राण और व्यर्थ है; यदि विधान में जातीय लक्ष्यों के लिये समुपयुक्त नहीं होता, तो इसका फल यह होता है कि वह समस्त राष्ट्र को ही

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

नीचे गिरा देता है। विधान कुछ ऐसा महान होना चाहिए कि जाति की दृष्टि और कल्पना उच्च लक्ष्यों की ओर ही जाये। मैं समझता हूं कि लक्ष्य-प्रस्ताव ने हमारा यह उद्देश्य अवश्य पूरा किया है। जब से लक्ष्य प्रस्ताव पास हुआ है, कई बार वाद-विवाद के सिलसिले में उत्तेजना पैदा हो चुकी है और यह सब ऐसी बातों को लेकर हुआ है जो मैं तो कहूंगा कि राष्ट्रीय आकांक्षाओं एवं इच्छाओं को मूर्तिमान रूप देने के काम को, अर्थात विधान निर्माण के काम को देखते हुए महत्त्वपूर्ण नहीं है, मेरा मतलब यह नहीं है कि जिन बातों को लेकर यहां उत्तेजना पैदा हुई है वह महत्त्वशून्य है, क्योंकि जाति के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली हर बात महत्त्वपूर्ण है; किन्तु फिर भी यह तो हमें सोचना ही चाहिए कि किस प्रश्न को हम प्राथमिकता दें और कौन सी बात अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। सत्य तो बहुत सी बातें हो सकती हैं, किन्तु हमें यह जानना आवश्यक है कि पहली सत्य बात क्या है। यह जानना बहुत जरूरी है कि एक स्थिति-विशेष में हमें पहले कौन काम करना होगा, पहले हम किस बात पर विचार करें और उसे तय करें। जाति और राष्ट्र की योग्यता ही इस बात से आंकी जाती है कि आया वह यह जानकारी रखता है कि नहीं कि पहले उसे कौन काम करना चाहिए और फिर बाद में कौन। अगर हम उस काम को प्राथमिकता दें, जिसे हमें बाद में करना चाहिए, तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि हमारा जो सबसे जरूरी काम होगा, वह पिछड़ जायेगा।

मसौदे के इस प्रारम्भिक वाद-विवाद में आपकी अनुमति से मैं भाग तो ले रहा हूं, उपाध्यक्ष महोदय, किन्तु मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि प्रस्तुत मसौदे के किसी विशेष भाग के सम्बन्ध में, प्रशंसा या आलोचना के रूप में कुछ कहूं, क्योंकि प्रशंसा या आलोचना के रूप में बहुत कुछ कहा जा चुका है और आगे भी अवश्य ही बहुत कुछ कहा जायेगा। किन्तु इस बात का ख्याल करके कि कई बुनियादी बातों की ओर फिर से सभा का ध्यान आकृष्ट करके शायद मैं इस वाद-विवाद में कुछ उपयोगी सहायता दे सकूं, मैंने सोचा कि मुझे अवश्य ही इसमें भाग लेना चाहिए; और विशेष करके इसलिए कि इधर कई दिनों और हफ्तों में अपने देश से दूर अनेक विदेशों में घूमा, उन देशों के प्रमुख नागरिकों

और राजनीतिज्ञों से मुलाकात की और मुझे अपने इस परम प्रिय देश को दूर से देखने की सुविधा मिली यह एक सुविधा की बात जरूर है। यह सच है कि जो लोग दूर से देखते हैं वह बहुत सी उन बातों को नहीं देख पाते जो इस देश में वर्तमान है। किन्तु उसी तरह यह भी सच है कि जो लोग यहां रह रहे हैं और सदा ही यहां की विभिन्न कठिनाइयों और समस्याओं से घिरे रहते हैं, सम्भव है कि वे यहां की पूरी तस्वीर को कभी-कभी न देख पायें। हमें दोनों ही काम करने है; कहने का मतलब यह कि हमें अपनी समस्याओं की प्रत्येक जटिल बात को देखना है, ताकि हम उन्हें अच्छी तरह समझ सकें और साथ ही हमें उन्हें एक विशेष रूप से भी देखना है, ताकि हमारे सामने उनकी पूरी तस्वीर आ जाये।

ऐसे द्रुत परिवर्तन के काल में, जिससे कि हम अभी गुजरे हैं, ऐसा करना और भी आवश्यक हो जाता है। इस परिवर्तन काल में विजय और हर्ष, दुख और क्षोभ, सभी का हमने अनुभव किया है। इन परिवर्तनों का हम पर असर पड़ा है। स्वयं हममें परिवर्तन आता जा रहा है। हम स्वकीय परिवर्तन को, या देश में जो घोर परिवर्तन हो रहा है, उसको नहीं देख पाते हैं और इस उथल-पुथल से परे होकर दूर से इन बातों को देखना और फिर कुछ हद तक दूसरों की दृष्टि से इन सारी बातों को देखना कुछ सहायक ही होता है। मुझे आप लोगों ने ऐसा अवसर दिया था और वस्तुत: मैं यह अवसर पाकर प्रसन्न हूं, क्योंकि इससे कुछ काल के लिए मैं दायित्व के उस गम्भीर भार से मुक्त हो गया था; जिसे हम सभी वहन कर रहे हैं और जिसको कि हममें से कइयों को, जिन पर कि शासन का भार है, विशेष रूप से वहन करना ही पड़ता है। कुछ काल तक मैं इन जिम्मेदारियों के भार से मुक्त था और निश्चित चित्त से उस तस्वीर को देख सकता था, उस पर विचार कर सकता था। मैं आप से कहता हूं कि उस दूरस्थ प्रदेश से मैंने क्षितिज में उदीयमान भारतीय सूर्य की मनोहर किरणों को देखा, (*हर्ष-ध्वनि*) और यह भी देखा कि सभी दुखद घटनाओं की उपेक्षा करके वह किरणें अपना मधुर प्रकाश विश्व के उन विभिन्न देशों पर बिखेर रही थीं, जो उसकी ओर आशा भरी निगाह से देख रहे थे, जो यह समझते थे कि नवीन स्वतंत्र भारत में ऐसी विभिन्न शक्तियों को प्रादुर्भाव होगा जो एशिया को सहायता देंगी, जो विश्व को सहायता देंगी ताकि वह ठीक-ठीक दिशा में चल सके, जो अन्यत्र वर्तमान ऐसी ही शक्तियों को सहयोग देंगी क्योंकि आज विश्व की हालत बुरी है, एशिया

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

अथवा यूरोप या बाकी दुनियां की हालत बुरी है और उनके सामने ऐसी समस्याएं खड़ी हो गई हैं जो प्राय: दु:साध्य सी दिखती हैं।

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम सभी किसी ऐसे भयंकर दुखान्त अभिनय के पात्र है, जिसमें विपत्ति अवश्यम्भावी रूप से अपनी चरमसीमा पर पहुंचती जा रही हो। फिर भी जब मैंने उस तस्वीर को बार-बार देखा, तो आशा एवं सफलता की भावना मेरे हृष्ट-हृदय में पैदा हुई न केवल भारत को सोचकर बल्कि इसलिए भी कि और अन्य कई बातों को देखकर यह पता चला कि जो विपत्ति अवश्यम्भावी मालूम पड़ती थी वह वस्तुत: अवश्यम्भावी नहीं है; और भी कई कल्याणकारी शक्तियां काम कर रही हैं; सद्भावना रखने वाले असंख्य नर-नारी विश्व में वर्तमान हैं, जो इस विपत्ति को रोकना चाहते हैं और निश्चय ही यह सम्भव है कि वे इसे रोकने में सफल होंगे।

आज प्राय: ठीक-ठीक एक वर्ष और ग्यारह महीने हुए कि मैंने इस सभा के समक्ष लक्ष्य-प्रस्ताव उपस्थित किया था और तब से हमने अनेक अद्भुत परिवर्तन और स्थिति-परिवर्तन देखे। आज हम उस समय की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रतापूर्वक यहां अपना काम कर रहे हैं। अब हम एक सर्वसत्ता प्राप्त एवं स्वतंत्र-राष्ट्र की हैसियत से काम कर रहे हैं। इस मध्यवर्ती काल में हमने बहुतेरे दुखों और गम्भीर शोकों का अनुभव किया है और इन सबका हम पर जबदस्त असर पड़ा है। वह देश जिसके लिए हम विधान बनाने जा रहे हैं दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। विभाजन के बाद जो कुछ हुआ, उसकी याद आज भी हमारे दिलों में बनी हुई है और उसकी विभीषिकाएं हमारी स्मृति में बहुत दिनों तक बनी रहेंगी। यह सारी घटनाएं घटी, किन्तु फिर भी भारत आज और भी अधिक स्वतंत्र और सशक्त हो गया है और निश्चय ही भारत की यह समुन्नति, एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उसका आर्विभूत होना, वर्तमान पीढ़ी के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है; हमारे लिए एवं इस देश में रहने वाले हमारे असंख्य भाई-बहनों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण बात है, यह एशिया के लिए एक महत्त्वपूर्ण बात है, समस्त विश्व के लिए महत्त्वपूर्ण है और आज विश्व यह समझने लगा है—और मुझे इसकी खुशी है—कि भारत एशिया एवं विश्व के कार्यों में एक प्रमुख और कल्याणकारी भाग लेगा। हो सकता है कि ऐसा समझते हुए भी विश्व इस सम्बन्ध में कभी-कभी आशंकित हो जाये, क्योंकि सम्भवत: भारत को ऐसे भी काम करने

पड़ें जो कुछ लोगों को, कुछ देशों को, जिनके कुछ अपने अन्य स्वार्थ है, खास तौर पर नापसन्द हों। यह सारी बातें तो हो ही रही है, किन्तु इस सम्बन्ध में प्रमुख महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत एक दीर्घकालीन पराधीनता के पश्चात् आज एक स्वाधीन सार्वभौम सत्ताधारी गणतंत्रीय राष्ट्र के रूप में सामने आया है और यह ऐसा तथ्य है जो इतिहास को बदल सकता है और बदल रहा है। यह तथ्य इतिहास को कहां तक बदलेगा, यह निर्भर करता है हम सब पर, इस सभा पर तथा आने वाली इसी प्रकार की अन्य सभाओं पर, जो भारतीय जनता की सुसंगठित भावना का प्रतिनिधित्व करेंगी।

यह एक महान् दायित्व है। स्वाधीनता के फलस्वरूप दायित्व का आना स्वाभाविक है और बिना दायित्व के भी कोई स्वाधीनता हो सकती है, यह बात ही अचिन्त्य है। दायित्व-शून्यता का अर्थ ही है, स्वाधीनता का अभाव। इसलिए हमें दायित्व के इस गम्भीर भार का सदा ध्यान रखना चाहिए, जो कि स्वाधीनता के फलस्वरूप आज हमारे सामने उपस्थित है। दायित्व का गम्भीर भार क्या है? यह है स्वतंत्रता सम्बन्धी अनुशासन तथा सुसंगठित रूप से इस स्वातंत्रय को कार्यान्वित करना। इतना ही नहीं बल्कि इससे और गम्भीरतर एक दायित्व है जिसका हमें ध्यान रहना चाहिए। इतिहास, परम्परा, साधन-सामग्री, हमारी भौगोलिक स्थिति एवं हमारी अस्तित्व-क्षमता आदि कई बातों के कारण हमें यह स्वाधीनता प्राप्त हुई है और यह स्वाधीनता अनिवार्य रूप से भारत को इस बात के लिए अग्रसर करती है कि वह विश्व के कार्यों में महत्त्वपूर्ण भाग ले। स्थिति यह नहीं है कि हम चाहे जो मार्ग ग्रहण करें, बल्कि वर्तमान भारत को देखते हुए तथा यह विचारते हुए कि स्वाधीन भारत को क्या होना होगा, हमें अनिवार्य रूप से विश्व के कामों में महत्त्वपूर्ण भाग लेना ही होगा। इस कारण हमारे सामने एक और भी गंभीर दायित्व का भार है, जिसे हमें वहन करना ही चाहिए। इस सम्बन्ध में मुझे अपने राष्ट्र पर पूर्ण विश्वास है, पूरा भरोसा है किन्तु फिर भी कभी-कभी मैं उन दायित्वों का ख्याल करके कांप उठता हूं, जो हम पर आरोपित किये जा रहे हैं और जिनसे हम भाग नहीं सकते। यदि हम इन संकीर्ण मत-भेदों में ही अपने को खो देते हैं, तो हो सकता है कि अपनी इस बड़ी जिम्मेदारी को हम भूल जायें। हम इसे भूलें या न भूलें, किन्तु यह जिम्मेदारी तो हमारे सामने है ही। अगर हम इसे भूल जाते हैं तो हम अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं। इसलिए मैं सभा से

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

अनुरोध करूंगा कि वह इन दायित्वों पर सोच-विचार करे जो कि भारत पर परिस्थिति द्वारा आरोपित किये गए हैं और चूंकि हम इस सम्बन्ध में भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, जैसा कि अन्य कई मसलों के सम्बन्ध में हम करते हैं, यह जिम्मेदारी इस सभा में हम पर है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि इस जिम्मेदारी को सदा ध्यान में रखते हुए वह विधान-निर्माण के कार्य में अथवा अन्य कार्यों में सदा सम्मिलित रूप से काम करे, क्योंकि सारी दुनियां की निगाह हमारी ओर है और विश्व का एक वृहद् भाग हम पर बड़ी-बड़ी आशा लगाये बैठा हैं हम आज लघु बनने का साहस ही नहीं कर सकते और अगर हमने ऐसा किया तो हम अपने देश का बड़ा अहित करेंगे, उन आशाओं और मनोरथों के प्रति बड़ा अहित करेंगे, जो अन्य देश हम पर केन्द्रित किये बैठे हैं मैं चाहता हूं कि सभा इसी भावना से प्रस्तुत विधान पर विचार करे। लक्ष्य-प्रस्ताव को सामने रखकर ही वह इस सम्बन्ध में अग्रसर हो और यह देखे कि कहां तक हम इस प्रस्ताव के अनुसार चल रहे हैं, कहां तक हम राष्ट्र-निर्माण का काम इस प्रस्ताव में कहें, इन शब्दों के अनुसार कर रहे हैं:

''यह विधान परिषद्-भारतवर्ष को एक पूर्ण स्वतंत्र जनतंत्र घोषित करने का दृढ़ और गम्भीर संकल्प प्रकट करती है और निश्चय करती है कि उसके भावी शासन के लिए एक विधान बनाया जाये, जिसमें सर्वतंत्र-स्वतंत्र भारत तथा उसके अंगभूत प्रदेशों और शासन के सभी अंगों की सारी शक्ति और सत्ता (अधिकार) जनता द्वारा प्राप्त होंगे... और जिसमें सभी लोगों (जनता) को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, वैयक्तिक स्थिति व सुविधा की तथा मानवीय समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों को प्रकट करने की, विश्वास व धर्म की, ईश्वरोपासना की, काम-धन्धे की, संघ बनाने व काम करने की स्वतंत्रता के अधिकार रहेंगे और माने जायेंगे... और यह प्राचीन संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शान्ति तथा मानव जाति का हित-साधन करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।''

मैं इस प्रस्ताव के अंतिम अंश को विशेष रूप से दुहरा रहा हूं, क्योंकि यह इस बात का हमें स्मरण दिला देता है कि विश्व के प्रति भारत का क्या कर्त्तव्य है। मैं चाहता हूं कि यह सभा इन विभिन्न मतभेंदों पर विचार करते समय—मतभेद तो होंगे ही और होने भी चाहिएं, क्योंकि हम एक सजीव, चेतना-सम्पन्न राष्ट्र हैं और यह उचित ही है कि लोग विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करें—इस बात का सदा ध्यान रखें कि हम जो निर्णय करें, मिलजुलकर करें और उन निर्णयों को कार्यान्वित करने में हम सम्मिलित रूप से सचेष्ट रहे हैं। समस्याएं भी तरह-तरह की होती हैं। कुछ समस्याएं बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं और जिनके बारे में हम निर्णय कर लेते हैं। कुछ ऐसी भी समस्याएं होती हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी सम्भवत: कुछ कम महत्त्व की होती है। बहुधा उनके सम्बन्ध में हम बहुत सा समय लगा देते हैं, अपनी शक्ति बर्बाद कर देते हैं, हममें उत्तेजना भी आ जाती है और उनके सम्बन्ध में हम उस भावना से निर्णय नहीं करते, जिससे कि हमें करना चाहिए। आज देश में कई प्रश्न उठाये जा रहे और मैं यहां ऐसे एक या दो प्रश्नों का उल्लेख करूंगा। इस सभा में भाषा के आधार पर प्रान्त-रचना की चर्चा की जा रही है और राष्ट्र-भाषा का प्रश्न उठाया जा रहा है। इन प्रश्नों के सम्बन्ध में मैं कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहता, सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि मुझे यह अनिवार्य प्रतीत होता है और बहुत दिनों से ही यह प्रतीत होता आ रहा है कि भारत में प्रांतों आदि का कुछ इस प्रकार से पुन: संगठन होना चाहिए कि जनता की सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं आर्थिक अवस्था के साथ तथा उनकी इच्छाओं के साथ उनका और अधिक मेल हो सके। बहुत दिन पहले ही हम ऐसा करने का वचन दे चुके हैं। मैं इसे अच्छा नहीं समझता कि अभी भाषावार प्रान्त बनाने की बात उठाई जाये। निश्चय ही यह महत्त्वपूर्ण, विचारणीय प्रश्न है। किन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण और विचारणीय बातें हमारे सामने वर्तमान हैं, जिन पर हमें अभी विचार करना है। इसलिए पहले इसके लिए हमने जो कुछ प्राप्त किया है, उसको खण्ड-खण्ड करके हम कोई नवीन स्वरूप दें, ठीक यह होगा कि हम सभी बातों पर आद्योपान्त पूर्णरूप से विचार कर लें। इस सम्बन्ध में, मैं जो बात सभा से कहना चाहता हूं, वह यह है कि हमारे भविष्य के जीवन एक

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

शासन की दृष्टि से यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण तो अवश्य है, पर मैं ऐसा नहीं समझता कि यह प्रश्न कुछ ऐसा महत्त्वपूर्ण है कि इसको आज अभी तय कर लेना हमारे लिए आवश्यक है। प्रधानतः यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में हमें शान्ति और सद्भावना के वातावरण में और इसके विभिन्न अंगों पर विद्वतापूर्ण ढंग से विचार करके किसी निर्णय पर पहुंचना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्य से मैं यह देखता हूं कि इसको लेकर यहां बहुत उत्तेजना पैदा हो गई है। उत्तेजना की अवस्था में हमारा दिमाग साफ नहीं होता। इसलिए मैं सभा से आग्रह करूंगा कि वह इस प्रश्न पर ऐसे समय मे विचार करे जिसे कि वह इसके लिए ठीक समझे। मैं आग्रह करूंगा कि आप लोग इस प्रश्न को ऐसा गम्भीर समझें कि इस पर उत्तेजना की अवस्था में, जल्दबाजी में हम विचार न करें, इस पर तो उपयुक्त समय आने पर ही विचार किया जा सकता है।

भाषा सम्बन्धी प्रश्न के बारे में भी मेरा यही कहना है। यह तो एक स्पष्ट बात है, नितान्त आवश्यक बात है कि प्रत्येक देश और स्वतंत्र देश तो अनिवार्य रूप से, अपनी ही भाषा में अपना सारा काम करें। मैं यहां अंग्रेजी में बोल रहा हूं और इसी तरह हमारे अन्य कई साथियों को भी यहां अंग्रेजी में ही बोलना पड़ता है। इससे ही जाहिर है कि हममें कुछ कमी है। कमी हममें जरूर है और इसे हमें स्वीकार करना चाहिए। हम इस कमी को दूर करेंगे। किन्तु अगर हम भाषा बदलने पर जोर देते हैं, इस दिशा में अविलम्ब कोई परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं, तो इससे हम असंख्य मतभेदों में फंस जायेंगे और सम्भवतः हमारा समूचा विधान यों ही रुका पड़ा रह जायेगा। मैं सभा से कहूंगा कि यह कोई बुद्धिमानी की बात न होगी। व्यक्ति के जीवन के लिए और राष्ट्र के लिए भाषा का बड़ा ही महत्त्व है और चूंकि यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है, हमें इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए महत्त्वपूर्ण होने के नाते यह एक ऐसा विषय है, जिस पर हमें शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। किन्तु साथ ही यह भी बात है कि विषय के महत्त्वपूर्ण होने के नाते इसमें शीघ्रता करने से हमारे उद्देश्य को हानि पहुंच सकती है। इसमें कुछ परस्पर विरोध है। यदि किसी आवश्यक प्रश्न

के सम्बन्ध में हम बहुमत द्वारा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले अनिच्छुक अल्पमत पर अथवा इस सभा के ही अल्पमत पर कोई निर्णय जबर्दस्ती लाद देते हैं, तो इससे वस्तुतः हम जो उद्देश्य सिद्ध करने चले हैं, उसमें हमें सफलता नहीं प्राप्त होगी। देश में विभिन्न शक्तियां काम कर रही हैं, जो अंग्रेजी के स्थान में किसी भारतीय भाषा को अथवा जहां तक कि प्रदेशों का सम्बन्ध है प्रादेशिक भाषाओं को, अनिवार्य रूप से बिठा ही देंगी। किन्तु समस्त देश के लिए एक ही राष्ट्र-भाषा होगी। इस एक राष्ट्र-भाषा के निर्माण के लिए विभिन्न शक्तियां कार्यरत है। भाषा का निर्माण जनता करती है। जबर्दस्ती जनता पर लाद देने से कोई भाषा नहीं बनती। किसी भी विशेष भाषा को अनिच्छुक लोगों पर लादने से उसका अधिकतर प्रबल विरोध ही हुआ है और इसका परिणाम बिल्कुल उसका उलटा हुआ है, जो कि उस भाषा के हिमायतियों ने सोचा था। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इस तथ्य पर विचार करें और इस बात को समझे—यदि वह मुझसे सहमत हों—कि एक प्राकृतिक अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा बनाने का सुनिश्चित मार्ग यह नहीं है कि उसके सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये जाये और कानून बनाये जायें, बल्कि सही रास्ता यह है कि उसके लिए और उपायों से काम लिया जाये। भारत की राष्ट्र-भाषा क्या हो, इसके सम्बन्ध में मेरा अपना निजी एक विचार है। इस सम्बन्ध में दूसरों के विचार, हो सकता है, मेरे से भिन्न हों। देश पर अथवा इस सभा पर मैं जबर्दस्ती अपना विचार नहीं लाद सकता और इसी तरह दूसरे भी अपना विचार नहीं लाद सकते, जब तक कि स्वयं देश ही उसे न स्वीकार कर ले। मैं न तो अपना विचार लादना चाहूंगा और न यह चाहूंगा कि औरों के ही विचार लादे जाये। इसके प्रतिकूल मैं यह चाहूंगा कि इस दिशा में मिलजुलकर काम किया जाये और यह विचार किया जाये कि विधान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों को तय कर लेने के बाद, यथेष्ट स्थिरता प्राप्त कर लेने के बाद और अधिक उपयुक्त वातावरण में हम एक-एक करके इन प्रश्नों को किस तरह तय करें।

आपको याद होगा कि जब मैंने लक्ष्य-प्रस्ताव को इस सभा के सामने उपस्थित किया था, तो मैंने इस बात का उल्लेख किया था कि प्रस्ताव द्वारा हम यह निश्चित कर देते हैं कि हमारा विधान एक स्वतंत्र सर्वसत्ता प्राप्त गणतंत्र राज्य का विधान

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

होना चाहिये। उस समय भी मैंने यह कहा था और बाद में भी कि अपने गणतंत्र राज्य स्थापित करने का जो सवाल है, उसके सम्बन्ध में निर्णय हम को ही करना है। इस प्रश्न का इस बात से कोई भी सम्बन्ध नहीं है कि हमारा अन्य देशों से, खासकर संयुक्त राज्य या कामनवेल्थ से अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से क्या सम्बन्ध हो। ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से तथा अन्य देशों से हमारा कैसा सम्बन्ध होना चाहिये, इसका भी निर्णय इस सभा को ही करना है और किसी को नहीं। और इस निर्णय से इस बात का भी कोई सम्बन्ध नहीं है कि हमारा विधान कैसा हो। मैं सभा को सूचित कर देना चाहता हूं कि उन दिनों जब मैं ब्रिटेन में था, जब भी इस विषय पर या इससे सम्बन्धित किसी विषय पर निजी तौर पर कोई विचार किया गया—सार्वजनिक रूप में इस सम्बन्ध में कोई विचार या निश्चय नहीं हुआ क्योंकि राष्ट्र-मण्डल सम्मेलन में, जिसमें मैं शामिल हुआ था, किसी भी बैठक में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था, पर उसके सम्बन्ध में निजी तौर पर विचार करना अनिवार्य था क्योंकि हमारे ही देश के लिये नहीं वरन् अन्य देशों के लिये यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है कि हम लोगों का दूसरे देशों के साथ कैसा सम्बन्ध, कैसा सम्पर्क हो—तो अनिवार्यत: पहली बात जो मुझे कहनी पड़ती थी, वह यह थी कि यद्यपि देश ने मुझे प्रधान मंत्री का गौरवान्वित पद प्रदान किया है, किन्तु व्यक्तिगत रूप से इस सम्बन्ध में देश की ओर से मैं कोई वचन नहीं दे सकता और जिस सरकार का प्रतिनिधित्व करने का मुझे यहां गौरव प्राप्त है, वह सरकार भी स्वयं इस सम्बन्ध में कोई निर्णय अन्तिम रूप से नहीं कर सकती है। यह ऐसा प्रश्न है जिसके सम्बन्ध में हमारी विधान-परिषद् ही कोई निर्णय कर सकेगी। इन सारी बातों को मैंने साफ-साफ कह दिया। और यह साफ करने के बाद मैंने परिषद् के इस लक्ष्य-प्रस्ताव की बात भी वहां बता दी। मैंने उनसे यह कहा कि अवश्य ही विधान-परिषद् चाहे तो इस प्रस्ताव में परिवर्तन कर सकती है, जैसा कि वह अन्य किसी भी बात के सम्बन्ध में कर सकती है, क्योंकि इन सभी मामलों में वह सर्वत: स्वतंत्र है। किन्तु परिषद् ने स्वयं को तथा मसौदा-समिति को विधान के सम्बन्ध में आदेश के रूप में यह लक्ष्य-प्रस्ताव दिया है और जब तक यह आदेश अपने वर्तमान रूप में बना रहता है—और मैंने यह भी बता दिया कि जहां तक मैं जानता हूं यह इसी रूप में रहेगा (*हर्ष ध्वनि*)—हमारा विधान इस लक्ष्य-प्रस्ताव के अनुसार ही होगा। यह सब स्पष्ट कर देने के बाद मैंने उन्हें कहा कि हमारी ओर से यह बात अक्सर कही

गई है कि हम अन्य देशों के साथ, संयुक्तराष्ट्र के साथ तथा संयुक्तराष्ट्र-मण्डल के साथ मैत्री का सम्बन्ध रखना चाहते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यह मैत्री-सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जा सकता है, अथवा किया जाना चाहिये, इस सम्बन्ध में स्वाभाविक है कि हमारी ओर से विधान-परिषद् सावधानी से विचार और अन्तिम निश्चय करेगी और उनकी ओर से उनकी अपनी सरकारें अथवा जनता करेगी। इस प्रश्न के सम्बन्ध में इस समय मैं इतना ही कहना चाहता हूं, क्योंकि इस अधिवेशन में आगे चलकर अवश्य ही यह प्रश्न सभा के सामने और भी ठोस रूप में आयेगा। यह प्रश्न चाहे जिस रूप में आये, अभी या आगे चलकर, पर जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि यह प्रश्न एक अलग बात है और प्रस्तुत विधान से यह सर्वथा स्वतंत्र है, इसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। विधान तो हमें स्वीकार करने जा रहे हैं, सर्वत: स्वतंत्र भारतीय प्रजातंत्र के लिये, एक अपनी इच्छा के गणतंत्र-राज्य के लिये। किन्तु मैत्री-सम्बन्धी प्रश्न ऐसा है कि जिस पर हम पृथक स्वतंत्र रूप से और किसी समय, जब कि सभा ठीक समझे, विचार करेंगे। इससे हमारे विधान पर कोई बन्धन नहीं आता है और न उसकी शक्ति ही सीमित होती है, क्योंकि इस विधान को भारतीय जनता के प्रतिनिधियों ने बनाया है और सुतरां इसमें, भारत के भावी शासन के सम्बन्ध में जनता की जो स्वतंत्र इच्छा है, वह सन्निहित है।

अब मैं फिर वही बात दुहराना चाहता हूं, जिसे मैंने पहले कहा है और वह बात यह है कि नियति ने इस देश पर कुछ विशेष कार्य सम्पादित करने का भार डाल रखा है। जो लोग यहां उपस्थित हैं उनमें किसी को हम भाग्य निर्माता कह सकते हैं या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता क्योंकि यह बहुत बड़ा विशेषण है, जो औसत आदमियों पर लागू नहीं हो सकता। पर हम भले ही भाग्य-निर्णायक नर या नारी न हों, किन्तु भारतवर्ष अवश्य ही एक भाग्य-निर्णायक देश है। (*हर्ष ध्वनि*) इसलिए जहां तक कि हमें इस महान देश का प्रतिनिधित्व करने का गौरव प्राप्त है, जिसके सामने कि एक सुविस्तृत भाग्यक्षेत्र पड़ा हुआ है, हमें भाग्य-निर्माता नर-नारी के रूप में ही काम करना होगा; हमें अपनी सभी समस्याओं पर इसी महान दृष्टिकोण से विचार करना होगा, समस्त विश्व और एशिया का ख्याल रखते हुए हमें अपनी समस्याओं पर विचार करना होगा और इस महान् दायित्व को कभी न भूलना होगा जिसे कि हमारी स्वाधीनता ने, हमारे देश के समुज्ज्वल भविष्य ने हम पर आरोपित कर रखा है। हमें इन तुच्छ मतभेदों और वाद-विवादों में ही नहीं अपने को खो देना चाहिए। ये मतभेद और वाद-विवाद हो सकता है कि

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

कुछ उपयोगी हो, पर वर्तमान परिस्थिति में अपने इस महान् दायित्व को देखते हुए ये नितान्त अप्रासंगिक है। असंख्य लोगों की निगाहें हमारी ओर लगी हुई हैं, उनके विचार हम पर केन्द्रित है, इसे हमें याद रखना होगा। हमारे ही करोड़ों देशवासी हमारी ओर देख रहे हैं, करोड़ों दूसरे लोग भी हमारी ओर देख रहे हैं और आप यह याद रखिये कि हम यह अवश्य ही चाहते हैं कि अपने विधान को अधिक से अधिक ठोस और स्थायी बनावें, किन्तु विधान में स्थायित्व नहीं होता, उसमें कुछ लचक होनी ही चाहिए। यदि आप किसी भी चीज को कठोर और स्थायी बनाते हैं, तो आप राष्ट्र के विकास को रोकते हैं, एक सजीव जाति के विकास को रोकते हैं, इसलिए विधान को लचीला रखना ही होगा। उसी तरह विधान को स्वीकार करते समय आप एक अवधि निर्धारित कर दें—वह अवधि चाहे जितने दिनों की हो—जिसके अन्दर विधान में आसानी से बिना किसी कठिन प्रक्रिया के परिवर्तन किया जा सके और मैं समझता हूं कि इस आशय की व्यवस्था विधान में है। कई कारणों से ऐसी व्यवस्था का होना बहुत आवश्यक है। इसका एक कारण तो यह है कि हम लोग, जो यहां सभा में समवेत हैं, अवश्य ही भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं, पर इस विधान के अधीन नया चुनाव होने के बाद, जिसमें कि हर बालिग नर-नारी को मतदान का अधिकार होगा, जो सभा बनेगी—उसका नाम कुछ भी हो—वह वास्तविक प्रतिनिधि-मूलक सभा होगी, जिसमें हमारे प्रत्येक वर्ग के लोग आवेंगे। यह उचित है कि इस प्रकार निर्वाचित सभा को यह अवसर मिलना चाहिए कि वह विधान में इच्छानुसार परिवर्तन कर सके, और विधान के अनुसार उसको अवश्य ही यह अधिकार दिया जायेगा। पर अपने विधान को किसी भी हालत में ऐसा अपरिवर्तनशील नहीं बनाना चाहिए जैसा कि अन्य देशों के विधान है जिसमें कि परिवर्तित स्थितियों के अनुसार आसानी से अनुकूल परिवर्तन किये ही नहीं जा सकते। खासतौर पर आज जब कि समस्त विश्व घोर विप्लव की दशा में है और हम एक द्रुतगामी परिवर्तन काल से गुजर रहे हैं, आज हम जो करते हैं, वह हो सकता है कि कल के लिए उपयोगी न हो। इसलिए हमें अपने विधान को यथासम्भव ठोस और बुनियादी तो बनाना ही चाहिए किन्तु साथ ही इसे लचीला भी रखना चाहिए और हमें ऐसी सुविधा होनी चाहिए कि कुछ वर्षों तक हम इसमें आसानी से संशोधन कर सकें।

आपकी अनुमति से एक शब्द मैं देश के उन लोगों से कहूंगा, जो आज भी अपने पृथक अस्तित्व की, अपने लिए विशेषाधिकार पाने की मनोवृत्ति रखते हैं। अपने लक्ष्य-प्रस्ताव में अल्पसंख्यकों के लिए, कबायली क्षेत्रों के लिए दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए, यथेष्ट संरक्षण की व्यवस्था है। ये संरक्षण उनको अवश्य ही प्राप्त होंगे और बहुसंख्यक-वर्ग का यह कर्त्तव्य और दायित्व है कि वह यह देखे कि उनको ये संरक्षण प्राप्त हों। बहुसंख्यकवर्ग का यह प्रयास होना चाहिए कि उन सभी अल्पसंख्यकों का उन्हें विश्वास प्राप्त हो जाये, जिनका उन पर सन्देह है, जो उनसे भय खाते हैं यह उचित और आवश्यक है कि हम पिछड़े हुए लोगों का जीवनस्तर ऊंचा उठायें और उन्हें अन्य लोगों के स्तर पर लायें। किन्तु यह ठीक नहीं है कि ऐसा करने की चेष्टा में हम और अन्य रुकावटें पैदा कर दें या मौजूदा रुकावटों को ही बने रहने दें, क्योंकि हमारा अन्तिम लक्ष्य पार्थक्य नहीं है, बल्कि यह है कि हमारा देश जीवन-शक्ति से ओत-प्रोत एक राष्ट्र हो। यह जरूरी नहीं है, हमारा राष्ट्र एकाकार हो, क्योंकि हमारी संस्कृतियां तरह-तरह की हैं, हमारा रहन-सहन सर्वत्र एक सा नहीं है, हमारी आदतें भिन्न हैं, हमारी सांस्कृतिक परम्परायें भिन्न हैं। इन विषमताओं की मुझे तो कोई शिकायत नहीं है। दूसरों पर अपना प्रभाव डालने की एक प्रबल प्रवृत्ति आज सभी प्रचलित संस्कृतियों में वर्तमान है। सम्भवत: यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पर मेरी समझ से भारतवर्ष की यही महिमा रही है कि उसने सदा ऐसा पथ ग्रहण किया है, जिसमें उसकी विभिन्न संस्कृतियों का अपना वैचित्र्य भी बना रहा है और साथ ही उनमें समन्वय भी सदा बना रहा है। हमें इन दोनों ही बातों को बनाये रखना है, क्योंकि यदि हम केवल अपनी विभिन्न संस्कृतियों की विशेषताओं को ही बनाये रखेंगे, तो इससे पार्थक्य की भावना होगी और देश के खण्ड-खण्ड बन जायेंगे। और इसके प्रतिकूल यदि हम एक कठोर ऐक्य आरोपित करते हैं, तो इससे हमारा चेतना-सम्पन्न राष्ट्र सर्वथा निष्प्राण हो जायेगा। इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को हम हर प्रकार का अवसर प्रदान करने का प्रयास करें, हर दलित वर्ग को ऊपर उठाने की हरचन्द कोशिश करें। पर मेरी समझ से यह ठीक न होगा कि हम तरह-तरह की रुकावटें पैदा करें, संरक्षणों की मांग करें और इस तरह फिर वही रास्ता अपनायें जो हममें से कुछ ने निकट भूत में अपनाया था। सच तो यह है कि इन दीवारों से, जो अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों को पृथक-पृथक रखेंगी, किसी भी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय या वर्ग को

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

कोई संरक्षण नहीं प्राप्त होगा, बल्कि इससे उन्हें क्षति पहुंचेगी। ऐसी व्यवस्था उनको स्थायी रूप से बहुसंख्यकों से पृथक कर देगी और देश के अन्य वर्गों के सन्निकट आने की उनमें कोई प्रवृत्ति ही न शेष रहने देगी।

आशा है, श्रीमान्, कि मैंने अभी जो कुछ कहा है, उसकी विधान की विभिन्न बातों पर विचार करते समय सभा ध्यान में रखेगी और विधान को उसी पवित्र भावना के साथ स्वीकार करेगी, जिससे कि इसने इस महान् कार्य का श्रीगणेश किया था।

(इसके बाद सभा भोजनादि के लिए 3 बजे तक स्थगित हुई।)

[भोजनोपरान्त 3 बजे उपाध्यक्ष, महोदय (श्री एच.सी. मुखर्जी) की अध्यक्षता में विधान-परिषद् पुनः समवेत हुई।]

ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर (पूर्वी पंजाबः सिक्ख): सभापति जी, मैं अपने ऑनरेबुल दोस्त देशबन्धु गुप्ता जी की तरह यह तो नहीं कह सकता कि इस डाफ्ट्र कान्स्टीट्यूशन कमेटी के प्रेसीडेंट डा. अम्बेडकर साहब किसी मुबारकबाद के मुस्तहक नहीं हैं। कई बातों में उन्हें मुबारकबाद दी जा सकती है और इस कान्स्टीट्यूशन पर कमेटी ने जो मेहनत की है, उससे पहले कान्स्टीट्यूशन के बनाने में वह मेहनत जरूर काबिले तारीफ है। मगर फिर भी इसमें जो-जो खामियां किसी को नजर आती हैं, वह अपनी समझ के मुताबिक उनका जिक्र करता है।

इस विधान में जो शहरियत के हक़ूक का पार्ट है, उसकी दफा पांच के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूं। इसके मुतल्लिक मेरे कुछ दोस्तों ने पहले भी ध्यान दिलाया है कि अनपढ़ लोगों के लिए डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के सामने जाकर बयान देना बड़ा मुश्किल है। मगर मैं इसे और नुक्तेख्याल से भी देखता हूं और दोनों ही तरीकों से इसमें कोई न कोई तरमीम होनी बड़ी जरूरी है। इसमें गैर-मुल्क और पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दू और सिक्खों में कोई फर्क नहीं रखा गया है। जो लोग इस वक्त भी मजबूरी के तौर पर पाकिस्तान में बैठे हैं, हमारे इस कान्स्टीट्यूशन के बन जाने के बाद उनको यहां का शहरी बनने का कोई हक़ नहीं रहता। मैं समझता हूं कि इसमें कोई ऐसी तरमीम होनी चाहिए कि वह जिस वक्त भी आवें, उन्हें यहां का शहरी तसव्वुर किया जाये। इसमें एक बात और भी है, इस वक्त ईस्ट बंगाल से गैर-मुस्लिम लोग वेस्ट बंगाल में आ रहे हैं। तो अगर हमारे विधान में यह पाबन्दी लगा दी गई कि इस कान्स्टीट्यूशन के पास हो जाने के बाद वह नहीं आ सकेंगे तो उनके आने की रफ्तार बहुत तेज हो जायेगी। हम पहले ही यहां पर जो रिफ्यूज़ीज आ रहे हैं, उनकी अच्छी तरह से पूरी सम्भाल नहीं कर पा रहे हैं, इस ख्याल से भी मैं ठीक समझता हूं कि इस मद में मुनासिब तरमीम होनी चाहिए।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि फंडामैन्टल राइट्स यानी जो हमारे बुनियादी हक़ूक हैं, उनका जिक्र तो बड़े शानदार तरीके से किया गया है, मगर कई जगह बन्धन लगाकर असली शान को कम कर दिया गया है। यहां सेठ दामोदरस्वरूप साहब ने अपनी पार्टी की तरफ से एक अमेंडमेंट पेश की

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

थी, जो गिर गई थी। उनका अमेंडमेंट पेश करने का मकसद यह था कि यह असेम्बली, जिसका चुनाव मुख्तरका इन्तखाब से नहीं हुआ, और दूसरे अडल्ट फ्रैन्चाइज़ से नहीं हुआ। इसलिए यह जनता को प्रतिनिधि नहीं। हम उनके साथ मुत्तफिक नहीं हुए, यानी हाउस ने उनकी तरमीम को गिरा दिया। मगर यह बात तो बिल्कुल साफ है कि अंगरचे हमारी असेम्बली का चुनाव मुश्तरका नहीं हुआ और अडल्ट फ्रैंचाइज से भी नहीं हुआ, मगर इस विधान सभा को विधान बनाते वक्त जनता का ख्याल तो रखना ही है, जैसा कि सेठ साहब के ऐतराज़ का जवाब दफा 9 से 13 तक, जहां जनता के हक़ूक का जिक्र किया गया मिलता है, मसलन मज़हब की बराबरी, नस्ल की बराबरी, जाति की बराबरी यानी जाति की बिना पर कोई तमीज़ नहीं होगी, छुआछूत नहीं मानी जायेगी, तकरीर की आज़ादी होगी, सजा के पाने में किसी मज़हब या किसी फ़िरके का ख्याल नहीं किया जायेगा। यह सब बातें रखी गई हैं और बहुत अच्छी यह सब बातें हैं मगर कुछ बन्धनों पर मुझे ऐतराज़ है। मिसाल के तौर पर दफा 13 में इस चीज की आजादी दी गई है, सारे देश में बिना लिहाज किसी प्राविन्स में आने-जाने की आज़ादी है। जायदाद हासिल करने की या फरोख्त करने की आज़ादी है। यह तमाम बातें दी हुई है। मगर इस दफा 13 की मद 5 में जो पाबन्दी लगा दी गई है, वह इसमें हरगिज़ नहीं होनी चाहिए। इस बन्धन की मौजूदगी में यह जो तमाम बुलन्द पाया कि फ़िकरे रखे गऐ हैं, इनमें कमी वाकई हो जाती है। इस वक्त भी हमें यह शिकायत है कि हमारे जो भाई पाकिस्तान से आये हैं, चाहे इसे कोई माने या न माने मगर मेरा यह निश्चय है कि कहीं-कहीं इनके साथ बर्ताव किया भी गया है, मगर फर्क जरूर रखा गया है और उनका वहां बसना पसन्द नहीं किया गया है। वह कहीं भी जाये और आज़ादी से और आराम से बसें, इसमें रुकावटें जरूरी कहीं न कहीं डाली गई हैं। इसलिए इस रिफ्यूजी नुक्तेख्याल से भी आज़ादी से देश भर में आने-जाने और जायदाद के लेन-देन पर कोई ऐसा बंधन नहीं होना चाहिए। जो लोग आराजी हासिल नहीं कर सकते, उनको जमीनें हासिल करने की आजादी हासिल होनी चाहिए। इसके मुतल्लिक हमारे पास चारों तरफ से तार आ रहे हैं कि इस बन्धन को हटा देना चाहिए, ताकि यह पुरानी तफरका की बीमारी दूर हो जाये।

तीसरी बात में ज़बान में मुत्तल्लिक कहना चाहता हूं। यह ज़बान का सवाल अहम तो बड़ा है, मगर में इसको इतना पेचीदा नहीं समझता था जैसा कि हमारे विद्वानों और रिसर्च स्कालर्ज़ ने इसको पेचीदा बना दिया है, जब तक यह सवाल इस शक्ल में मेरे सामने नहीं आया था, मैं हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई फर्क नहीं समझता था। मुझे कभी यह ख्याल भी नहीं आया था कि हिन्दी एक अलहदा ज़बान है और हिन्दुस्तानी अलहदा ज़बान है। हम सिलसिले में मुझे अपना ही पंजाब का एक शेर याद आता है: ''चंगा है सी अन्जानियां, सपनापई जद जानियां।'' यानी इसका न जानना अच्छा था। अब जब इसको जाना है, तब बड़ा ही झंझट सा पड़ गया है कि इसके मुतल्लिक क्या किया जाये। मगर यह बात बिल्कुल साफ है। प्रिंसिपल के तौर पर मैं समझता हूं, हमें अपने कान्स्टीट्यूशन में यह मान लेना चाहिए कि लिपि एक हो। सारे हिन्दुस्तान की लिपि एक हो और ज़बान एक हो, जैसा कि मेरे दोस्त सेठ गोविन्ददास जी ने और कुछ दूसरे दोस्तों ने कहा है। मैं इस बात को मानने वाला हूं कि हमारा यह जो पहला कान्स्टीट्यूशन है। इसको राष्ट्रीय-भाषा में पास करना चाहिए। यह मेरा निश्चय है और यह मेरी पक्की राय है। वैसे जहां तक जबान का ताल्लुक है, यह थोड़ी-थोड़ी जगह पर बदलती रही है, इसमें कोई शक नहीं है। ज़बान के सवाल के बारे में कुछ तकलीफ़ नजर आ रही है। कुछ ऑनरेबुल मेम्बरों ने तो यहां तक धमकी दे दी है कि अगर फलां फैसला हुआ तो हमें यहां बैठना भी छोड़ना पड़ेगा; या हमें इसके खिलाफ कुछ प्रौटेस्ट करना पड़ेगा; हमारी फौजों में रोमन लिपि राइज है, उर्दू लिपि भी है और अंग्रेजी लिपि भी है। अगर हमें एक ही लिपि लेनी है, तो हमें देखना होगा कि इन तीनों में कौन सी लिपि ऐसी है, जिसमें हमारी सारी ज़बानें लिखी जा सकें या अच्छी तरह प्रचलित हो सकें। मैं तो यहां तक जानता हूं कि अगर तमाम सूबाई ज़बानों वाले इस बात को मान जायें तो मैं इसके लिए तैयार हूं कि बंगाल वाले बंगला लिपि छोड़ दें, तमिल, तेलगू, सब अपनी-अपनी लिपियां छोड़ दें और सब ज़बानें एक ही देवनागरी लिपि में लिखी जायें तो मुझे इसमें कोई ऐतराज नहीं है। मौजूदा हालत में यह चीज कुछ मुश्किल सी नजर आती है, मगर इससे यगानियत हो सकती है। अगर हमारी कोई चीज नहीं मिलती तो एक चीज तो मिल जाये, जिस पर हम सब मुत्तफिक हो जायें। यानी एक लिपि हो, जिसमें हम अपनी ज़बानों को लिखें तो कई झंझटों से हम बच सकते हैं। अगर ऐसा न हो सके तो हर एक सूबे की लिपि को अपने-अपने सूबे में

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

एक जैसी महत्ता तो मिलनी ही चाहिए। बाकी सवाल रह जाता है, जबान का। इसके मुतल्लिक मैं यह कहना चाहता हूं कि यह जो विधान है, मैंने इसके सारे तरजुमे देखे हैं। हिन्दी का तरजुमा भी देखा है और उर्दू और हिन्दुस्तानी का तरजुमा भी। हिन्दी के बारे में मैंने 'देखा है' इसलिए कहा है कि मैंने अपने इन दोस्तों से बातें कीं, जो यहां हिन्दी के हामी है। वह भी मुझे हिन्दी के तरजुमे में से इसका मतलब नहीं समझा सके। हमारे पंजाब के मशहूर शायर डाक्टर इक़बाल फारसी में नज़में लिखते थे। मैंने उनकी फारसी की कई किताबें पढ़ी हैं। मगर जब उन्होंने देखा कि मेरी फारसी की शायरी हिन्दुस्तानियों के लिए एक जंगल का फूल है, जिसकी कोई खुशबू नहीं लेता, तो फिर उन्होंने उर्दू में लिखना शुरू किया। उर्दू की नज़मों में उन्होंने जो ज़बान इस्तेमाल की, अगर आप गौर से पढ़ेंगे, तो आपको पता लगेगा कि सिर्फ लोगों को अपने ख्यालात समझाने के लिए उनको कितना ज़बान की सादगी की तरफ आना पड़ा। आप सुनिए, मैं उनका एक शेर पढ़ता हूं।

''इकबाल बड़ा उपदेशक है, मन बातों में मोह लेता है,
गफतार का वह गाजी बन तो गया, करदार का गाजी बन न सका।''

अब बताइये, इसे आप उर्दू कहेंगे या हिन्दी कहेंगे या हिन्दुस्तानी कहेंगे। उपदेशक और मोह किस जबान के अलफाज़ हैं। अगर वह ज़बान जिसमें मेरे मित्र चौधरी रणवीरसिंह ने भाषण दिया, हिन्दी है तो मैं हिन्दी का हामी हूं। हमें अब यह देखना है कि कौनसी बात प्रैक्टिकल और अमल में आने वाली है। अगर आप पंजाब की बात पूछें तो पंजाब में जितने अखबार हिन्दी के हामी हैं, सब उर्दू में छपते है; मगर वहां जाती या अपनी आसानी का सवाल नहीं। सवाल यह है कि आयन्दा के लिए कौन सी बात ठीक और काबिल-अमल है। मेरा मतलब यह है कि हमारी ज़बान सादा हो। और आम फहम हो। मैं यह तजवीज़ करता हूं कि एक कमेटी बनाई जाये जो टर्म्स बनाये और जब टर्म्स बना ले और ज़बान की सादगी का फैसला हो जाये, तो मेरा ख्याल है कि इससे कोई मुश्किल नहीं रहेगी कि हम ज़बान का जो मसला है, उसको आसानी से हल न कर सकें। हममें यह थोड़ा सा नुक्स है और खास तौर पर पंजाब में कि हमारी हर एक बात मज़हबी रंग पकड़ जाती है। हम एक दूसरे के खिलाफ मज़हब की बिना पर टूट जाते हैं। बात सारी होती है, पर हम उसको मज़हबी रंग देकर बिगाड़ लेते हैं। लिंग्विस्टिक बेसिस पर सूबों की तकसीम की बात चल रही है, जिसके

मुतल्लिक हमारा विधान बहुत हद तक चुप है। सिर्फ थोड़ा सा इशारा दिया है। पंजाब में इस बात ने भी एक मजहबी रंग अख्तियार कर लिया है, हालांकि यह बात बड़ी सादी है। तो जैसा कि सुबह मेरे एक भाई ने कहा था, यह झगड़े का मामला है, इसको मुल्तवी कर देना चाहिए। मगर इस प्रिंसिपिल को मान लेना चाहिए कि जो भी ज़बानें डैवलप हो चुकी हैं, अगर ज़बान की बिना पर तकसीम हो तो उनका भी ख्याल रखा जाये। वक्त हो गया है, मगर मैं माइनोरिटीज के मुतालिक भी कुछ कहना चाहता हूं। मैंने तो इस मसले पर कुछ ज्यादा ख्याल नहीं किया है, क्योंकि मैं कांग्रेस का काम करने वाला हूं। अब भी सूबे की कांग्रेस का प्रेसीडेंट हूं। मैं समझता हूं कि जहां तक कांग्रेस की हुकूमत का ताल्लूक है, उसमें माइनोरिटीज़ के हक़ूक महफूज रहेंगे। मगर इस वक्त रिजर्वेशन का मामला बहुत हमारे सामने आ रहा है। यह ठीक है कि मैं मजहबी हैसियत से मारनोरिटी कम्यूनिटी से ताल्लुक रखता हूं और मुझे इस बात का फख्र है कि मैंने इस सवाल को कहीं फिरकेवाराना नजर से नहीं देखा। इसके मुतल्लिक मैं आपके सामने यह कहना चाहता हूं कि सिक्ख कौम इस बात पर फख्र करती है कि वह अपने देश को एक आज़ाद नेशन बनाने के लिए हमेशा बहादुरी से कुरबानियां करती रही है। इस वजह से पूज्य पंडित मालवीय जी ने यह कहा था कि हर एक हिन्दू के घर में एक लड़का सिक्ख होना चाहिए। श्री सावरकर साहब ने एक बार डॉ. अम्बेडकर साहब की जाति वालों को यह सलाह दी थी कि अगर तुम सिक्ख बनना चाहो तो बेशक बन जाओ। इस पर मैंने उस वक्त सावरकर साहब से पूछा था कि आपने एक हिन्दू और आर्यसमाजी होते हुए यह सलाह कैसे दी; तो सावरकर साहब ने यह जवाब दिया (*एक आवाज : सावरकर साहब आर्यसमाजी नहीं हैं।*) तो मैं यह लफ्ज वापस लेता हूं। खैर, उन्होंने मुझे जवाब दिया: ''और कोई वजह नहीं है। मैंने सिक्ख धर्म की स्टडी नहीं की है। मगर इतनी बात जानता हूं कि जब मैं कालेपानी में था, तो वहां बहुत से काफी बुजुर्ग और बूढ़े सिक्ख सियासी कैदी थे। उनमें मैंने देशभक्ति, कौमीसेवा और कुर्बानी का अथाह जोश देखा है; उसको देखकर मैं कहता हूं कि यह लोग अच्छे हैं। इसलिए मैंने डा. अम्बेडकर की जाति के लोगों को सिक्ख बनने की सलाह दी थी''। मैं माइनोरिटीज़ के नुक्तेख्याल से भी लेता हूं कि बगैर वेइटेज के रिजर्वेशन माइनोरिटी के लिए कोई मुफीद नहीं है। मैं तो यह अच्छा समझता हूं कि अगर हमारे दिल साफ हो जायें और एक दूसरे पर ऐतबार हो जाये तो कई ऐसे प्राविज़न्स भी रखे जा सकते हैं जो हमें एक नेशन बनने में मदद दे सकें। गवर्नर्स और प्रेसीडेंट

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

को यह अख्तियार दिए जा सकते हैं कि जिस जगह माइनोरिटीज़ चुनाव में अपना मुनासिब हिस्सा हासिल न कर सकें, वहां नोमिनेशन के जरिये से उनको मुनासिब हिस्सा दे दें। रिजर्वेशन के बगैर कोई ऐसा तरीका अख्तियार किया जाये, तो मैजौरिटी का इम्तिहान भी हो जाये और एक नेशन बनने की तरफ हमारा कदम भी बढ़े। ब्रिटिश गवर्नमेंट के मातहत अलहदा चुनाव और रिजर्वेशन वगैरह के उसूल पर अमल करके हम पहले देख चुके हैं। एक नेशन बनते-बनते हमारा देश टुकड़ों में बंट गया। ''मर्ज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की'' अब हमें समझ आनी चाहिए कि हम किस तरफ कदम रखें, ताकि किसी वक्त जाकर हम एक नेशन बन सकें। मैजोरिटी को यह देखना चाहिए कि अगर माइनोरिटीज़ की मेम्बरशिप में कमी रह जाती है, तो वह दूसरे जरिये से पूरी कर दी जाये। इस ख्याल से हम इस तरह चलें जिस तरह हमारी एक मुतहदा नेशन बन जाये।

वक्त नहीं है, वरना मुझे इस पर बहुत सी बातें कहनी थी।

***उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के एक संशोधन की सूचना मुझे मिली है, जो इस प्रकार है:

''विधान का मसौदा एक ऐसी विशिष्ट समिति (Select Committee) के सपुर्द कर दिया जाये, जिसे माननीय अध्यक्ष उचित समझें और मनोनीत या निर्वाचित करें और वह समिति इस पर अपनी रिपोर्ट उस समय तक भेज दे जिसे कि माननीय अध्यक्ष ठीक समझें।''

मैं इस संशोधन को अनियमित घोषित करता हूं, क्योंकि विधान के मसौदे पर विचार करने एवं उसे स्वीकार करने के सम्बन्ध में जो नियम हैं, उनमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि इसे विशिष्ट समिति को सुपुर्द किया जाये। इस संशोधन को स्वीकार करने से इन नियमों में, जो कि पहले से ही बनाये जा चुके हैं, संशोधन होगा, कार्यवाहक समिति के समक्ष इसे बिना रखे, हम ऐसा नहीं कर सकते। केवल इतना ही नहीं, नियम 31(4) में यह कहा गया है:

''The Chairman may disallow any amendment which he considers to be frivolous or dilatory.''

इस संशोधन को मैं विलम्बकारी समझता हूं और इसलिये इसे अनियमित ठहराता हूं।

***माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय** (आसाम: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस विधान निर्माण में डा. अम्बेडकर एवं मसौदा-समिति के अन्य सदस्यों ने जो कठिन परिश्रम किया है, उसके लिये कृतज्ञताज्ञापन में मैं भी सभा का साथ दूं, यह वस्तुत: मेरे लिये परम सौभाग्य की बात है। अवश्य ही ये महानुभाव हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

विधान का यह ढांचा, जो मसौदे में रखा गया है, मुझे तो अच्छा ही जंचता है; पर कई विस्तार की बातों को लेकर तथा अन्य कई आवश्यक विषयों में इसमें थोड़ा संशोधन करना जरूरी है। इस विधान द्वारा भारतवर्ष को अपनी अनेकता में भी एकता प्राप्त होती है। विभिन्न जाति, रंग, धर्म, भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता रखते हुए भी यह भारतवर्ष इस विधान द्वारा एक सुसम्बद्ध राष्ट्र का रूप प्राप्त करेगा, जो यहां के सभी निवासियों के हितों के लिये वह सदा सम्मिलित रूप से कार्य करेगा। ऐसा सुन्दर विधान बनाना कोई आसान काम नहीं है। यूरोप की तरह भारत भी एक ऐसा महादेश है जिसमें कई राज्य-प्रदेश है। यूरोप के विभिन्न राज्य-प्रदेश तो अब तक भी एक संयुक्त राष्ट्र का रूप न अपना पाये, पर ईश्वर की कृपा से एवं अपने नेताओं की बुद्धिमत्ता से भारतवर्ष को प्रादेशिक वैभिन्य होते हुये भी ऐक्य—एक राष्ट्र का रूप—प्राप्त है। केवल कानून द्वारा सभी विभिन्नताओं का अन्त कर और सभी प्रदेशों को एक सांचे में डाल देने से ही हमें यह ऐक्य नहीं प्राप्त हो सकता है। ऐसा प्रयास तो एक भयानक क्रांति पैदा कर देगा और इससे देश में सर्वत्र एक बड़ी विभीषिका छायेगी। यह ऐक्य हम क्रमिक विकास द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं जैसी कि विधान में व्यवस्था की गई है।

अल्पसंख्यकों के लिये, कतिपय विशेष क्षेत्रों के लिये तथा पर्वतीय जातियों के लिए ईश्वरोपासना सम्बन्धी स्वातंत्र्य देने की जो व्यवस्थाएं विधान में रखी गई हैं, वह इस क्रमिक विकास की आवश्यक सीढ़ियां हैं, जिनको पार करके ही हम अपनी विभिन्नताओं के होते हुए भी ऐक्य प्राप्त कर सकेंगे। अपने इस ऐक्य के ढांचे में अपनी विभिन्नताओं को स्थान देना भी जरूरी है, यह मानकर हमारे नेताओं ने तथा हमारे बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने जो बुद्धिमानी दिखाई है, उसकी सभी लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं और करेंगे। स्वयं भगवान इसी पद्धति पर चलते हैं। उन्होंने जो सृष्टि रची है, उसमें सर्वत्र विभिन्नताओं को रखते हुये ही उन्होंने एक समन्वय रखा है। परामर्शदातृ-समिति के अध्यक्ष सरदार पटेल को मैं धन्यवाद देता हूं कि

[माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय]
उन्होंने अल्पसंख्यकों और विशेष-पर्वतीय क्षेत्रों की आवश्यकताओं को समझा और तदनुसार व्यवस्था की।

मसौदा-समिति को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूं कि इसने आसाम के उन पहाड़ी जिलों के लिये, जिन्हें कि विधान की छठी अनुसूची में स्वायत्तशासी जिला कहा गया है, जिला-परिषदों के निर्माण का सुझाव स्वीकार किया। इन पहाड़ी जिलों को, जिनमें कि पहाड़ी लोग ही बसे हुये हैं, इस विधान के अधीन अपनी संस्कृति एवं गुण के अनुसार समुन्नति करने का अब पूरा अवसर प्राप्त हो सकेगा। मेरा विश्वास है कि इस व्यवस्था का परिणाम बड़ा ही सुन्दर होगा, अगर इन स्वायत्तशासी जिलों को इस प्रकार विकसित किया जा सकेगा कि वे अपने ढंग पर अपनी समुन्नति कर सकें और यह सब कर सकें बिना उस उद्देश्य को कोई बाधा पहुचाए, जो कि इस विधान का आधार है। यद्यपि इन पर्वतीय जातियों की संख्या बड़ी कम है, पर ये चिरकाल से अपनी शासन-व्यवस्था स्वयं ही चलाती रही हैं। इन प्रदेशों के विकास के लिये विधान में जो योजनाएं रखी गयी हैं, उनको कार्यान्वित करने के लिये अगर केन्द्र उचित रकम लगावे, तो इससे भावी भारत को निश्चित रूप से लाभ ही होगा। मसौदे की छठी अनुसूची को कुछ और ठीक करना होगा। आगे चलकर इस सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये जायेंगे, आशा है, सभा उन्हें स्वीकार करेगी।

डा. अम्बेडकर ने तथा और लोगों ने यहां जो यह विचार व्यक्त किया है कि केन्द्र को खूब मजबूत बनाना चाहिये, उससे मैं पूर्णतः सहमत हूं, किन्तु विभिन्न प्रदेशों को कमजोर बनाकर केन्द्र को असंतुलित रूप से सशक्त बनाया जाये, इसका मैं घोर विरोधी हूं। ऐसा करने से तो अपना राज्य एक ऐसे विकट आदमी की तस्वीर बन जायेगा, जिसके अवयवों में कोई सामंज्जस्य न हो—जिसका सिर बहुत ही बड़ा हो और अंग बिल्कुल ही दुर्बल-पतले हों। ऐसा विशाल सिर तो इस दशा में टिका ही नहीं रह सकता।

अनुच्छेद 131 के सम्बन्ध में जो संशोधन हमारे सामने छपे हुए रूप में आए हैं, उनको पढ़ने से पता चलता है कि मसौदा-समिति यह चाहती है कि शासकों की नियुक्ति प्रधान द्वारा हो। इसलिए शक्तियों को केन्द्रित करने का विचार किया गया है। मुझे आशा है मसौदा-समिति अपने मत पर फिर से विचार करेगी और इस संशोधन को रखना वांछनीय न समझेगी। मेरी समझ से तो इस देश ने बहुत दिन पहले से ही इस विचार का परित्याग कर दिया है कि मनोनीत शासकों को

व्यापक विवेक-मूलक शक्ति प्रदान करके रखा जाये। मसौदा-समिति ने भी इस सम्बन्ध में एक दूसरा सुझाव यह रखा है कि राज्य विधान-मण्डल के सदस्यों द्वारा चुने हुए चार अभ्यर्थियों की तालिका से किसी एक को प्रधान, शासक नियुक्त करे। कई सदस्यों ने इसके पक्ष में यह तर्क उपस्थित किया है कि निर्वाचित शासक और साथ ही निर्वाचित उत्तरदायी प्रधानमंत्री की व्यवस्था रखने से हो सकता कि दोनों में संघर्ष पैदा हो और शासन में शैथिल्य आ जाये। पर यह भी बात है कि व्यापक विवेक-मूलक शक्तियों के साथ मनोनीत शासक के होने से शासन में बाधा और अवरोध भी उपस्थित हो सकते हैं। मंत्रि-मण्डल का मैं स्वयं सदस्य रह चुका हूं और मुझे आठ मनोनीत शासकों का अनुभव है। मेरा अपना तो प्रबल मत यह है कि निर्वाचित शासक की व्यवस्था रखना कहीं अच्छा है। खैर, इस बारे में पूरी तौर पर विचार हम उस समय करेंगे, जब अनुच्छेद 131 से सम्बन्ध रखे जाने वाले संशोधन सभा में उपस्थित किये जायेंगे। उस समय मुझे इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक अपना मत व्यक्त करने का मौका मिलेगा। अर्थ सम्बन्धी बातों में, विशेष करके छोटे प्रान्तों के सम्बन्ध में, यह मसौदा बड़ा ही असन्तोषप्रद है। प्रान्तों के साथ इससे न्याय नहीं हुआ है। आसाम और उड़ीसा जैसे गरीब प्रान्तों को तो विशेष रूप से असन्तुष्ट होने का कारण है। इन प्रान्तों को आर्थिक दृष्टि से दुर्बल नहीं बनाना चाहिए। शरीर का एक भी अंग अगर कमजोर हुआ तो उससे सारा शरीर कमजोर हो जायेगा। अगर भारतवर्ष को जीवित रहना है, समृद्ध होना है तो, हमें उसके अंगभूत प्रदेशों को स्वस्थ और सम्पन्न रखना होगा। मैं अपने मन्तव्य की ओर आता हूं। मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 253 तथा 254 के प्रावधान हमें पसन्द नहीं हैं। इनको प्रायः उसी भाषा में रखा गया है जिसमें कि वे भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की धारा 140 में हैं। भारत सरकार की सारी सद्भावनाएं कागज़ों तक ही सीमित रही है और उड़ीसा तथा आसाम जैसे पिछड़े प्रान्त आज भी अपनी उसी दशा में पड़े हैं। इस साल भी केन्द्रीय सरकार की आर्थिक नीति से हमारे आसाम प्रांत को जबर्दस्त धक्का लगा है। हमें बड़ी आशायें थीं कि हमारी प्राथमिक आवश्यकताएं—जैसे कि जाति-निर्वाण सम्बन्धी विभिन्न कामों की शिक्षा देने के लिए शिक्षा-संस्थाओं के भवन निर्माण का काम—अब पूरी की जायेंगी, पर हमें अब यह बताया गया है कि इन कामों को अभी कुछ काल के लिए स्थगित कर देना पड़ रहा है। भारत की सुरक्षा के लिए तथा उन दुखियों को मदद पहुंचाने के लिए, जो कि पाकिस्तान की सीमा पर आबाद हैं, मौके की जगहों पर बड़े-बड़े रास्तों और सड़कों का निर्माण बड़ा ही जरूरी है और

[माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय]

इनके निर्माण की योजनाएं भी स्वीकृत हैं, पर शायद इसलिए ही उसको उस शीघ्रता से कार्यान्वित नहीं किया जा रहा है, जितनी गति से उनका कार्यान्वित करना आवश्यक है। हम यहां यों कह रहे हैं कि हमें यह बताया गया है कि इन योजनाओं के लिए जो रकम अपेक्षित है, उसका चतुर्थांश भी इस साल हमें उपलब्ध नहीं हो सकेगा। हमारी महती संस्था कांग्रेस की यह घोषणा है कि हमारा यह उद्देश्य है कि सहयोगिता के सिद्धान्त पर समस्त देश की समृद्धि बढ़ाई जाये, किन्तु जब ग्रामों की सर्वतोमुखी समुन्नति के लिए सहयोगिता-सिद्धान्त के आधार पर ग्राम्य-केन्द्रों को स्थापित करने की बात आती है, तो वह रकम नहीं मिलती है जो इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए अपेक्षित है। हमारी आसाम सरकार ने प्रांतीय सूची के सभी साधनों से कर संग्रह करके जहां तक हो सकता था, अपना कोष बढ़ाने की कोशिश की, किन्तु उसे अभी भी अपने ही खर्च के लिए एक करोड़ की कमी है। इस संबंध में यह मालूम होना चाहिए कि प्रान्त की कुछ आय चार करोड़ से कुछ ही ज्यादा होती है। पर यदि केन्द्रीय सरकार चाय के निर्यात-कर को खुद न ले लेती, तो आसाम के पास अपने व्ययों के लिए पर्याप्त रकम होती और उसे केन्द्र से भीख न मांगनी पड़ती। चाय और पेट्रोल दोनों ही आसाम में पैदा होते हैं। इन दोनों चीजों का निर्यात-कर आसाम को मिले—और यह रकम करीब आठ करोड़ होती है, जो केन्द्रीय सरकार की थैली में चली जाती है—तो उससे हमें अपनी समुन्नति सम्बंधी सभी योजनाओं के खर्च लिए काफी रकम आ जाती। यह निर्यात-कर, कम से कम इसका एक विशेष भाग तो हमें मिलना ही चाहिए और आखिर वह कौन सा कारण है, जिससे कि हमें नहीं दिया जाता?

इन सभी प्रश्नों पर छानबीन करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की गई थी और आसाम के प्रधानमंत्री श्री जी.एन. बारदोलोई के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि-मण्डल भी इस समिति से मिला। समिति ने यह तो स्वीकार किया कि जूट के निर्यात-कर का एक अंश बंगाल को मिलना चाहिए (इसका एक लघु अंश आसाम को भी मिलता है) और यह भी स्वीकार किया कि तम्बाकू के निर्यात-कर का एक अंश मद्रास को भी दिया जा सकता है, पर चाय और पेट्रोल के निर्यात-कर से कुछ आसाम को भी दिया जाये, इसे उसने अवांछनीय समझा। क्या यह व्यवहार उचित और समान है? केन्द्र ने आसाम के लिए ऐसी व्यवस्था

लागू कर दी है कि उसे केन्द्रीय दान-सहाय्य पर ही निर्भर रहना पड़ता है। हम लोगों की समझ में यह बात नहीं आती की आखिर यह भेदभाव क्यों बरता जाता है? ब्रिटिश शासन में कई वर्षों तक आसाम ने केन्द्रीय अधिकारियों के इस अन्याय के विरुद्ध गला फाड़-फाड़कर अपना रोना रोया है। किन्तु हमारे रुदन पर, हमारे अन्याय प्रतिरोध पर केन्द्र ने कभी कोई ध्यान नहीं दिया। आखिर हमारे प्रान्त को, जिसे आत्मनिर्भरता के लिए काफी रकम मिल सकती है, आप क्यों स्थायी रूप से भिखारी की दशा में रखना चाहते हैं? आशा है, श्रीमान्, कि केन्द्र को मजबूत बनाने की ऐसी किसी भी व्यवस्था का, जिससे कि प्रान्तों को उनके उचित अधिकारों से वंचित रखा जाता हो, यहां कोई समर्थन नहीं करेगा। मुझे विश्वास है, यह न्याय-परायण सभा समुचित रूप से सहानुभूतिपूर्वक हमारी बात पर विचार करेगी और यह देखेगी कि हमारे प्रान्त के साथ न्याय हो। सच्चाई से हमें दूर नहीं भागना चाहिए।

मैं खुद समझता हूं कि अधिकारी लोग अन्य बातों को लेकर इतने व्यस्त थे कि अतीत काल में वे इस बात की ओर ध्यान न दे सके, जो कि आसाम के लिए एक जीवन-मरण की बात है। आज हम सभी माननीय सदस्यों से आग्रह करते हैं कि अब वह हमारा उद्धार करें। यह बात न भूलनी चाहिए कि आसाम सीमावर्ती प्रान्त है, जिस पर चारों तरफ से आक्रमण हो सकता है। समस्त भारतीय संघ का यह कर्त्तव्य है कि दुर्दिन आने के पूर्व अभी से ही वह इस आशंका का समाधान कर ले। भारत के लिए यह भी आवश्यक है कि सीमावर्ती क्षेत्रों में वह आवश्यकता की सारी वस्तुएं पहुंचाये ताकि वहां के निवासी सन्तुष्ट रहें अन्यथा विरोधी लोग तरह-तरह की मुसीबतें पैदा करेंगे जिनके लिए हमें उस रकम से दस गुनी रकम खर्च करनी पड़ेगी जिसे कि शांति काल में खर्च करके हम इस ओर से निश्चित हो सकते हैं। यह बड़ी ही अदूरदर्शिता होगी, अगर हमारे आसाम प्रान्त को चाय के निर्यात-कर से वंचित रखा जाता है और पेट्रोल तथा चाय आदि के निर्यात-कर से उसे जो उचित अंश मिलना चाहिए, उसको कम कर दिया जाता है। अतीत काल में नौकरशाही सरकार ने आसाम और उड़ीसा जैसे पिछड़े प्रान्तों की समुचित मांगों की उपेक्षा की, पर अब तो यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि यह विधान-परिषद् भी उस अन्याय को जारी रहने देगी, जो कि विदेशी सरकार ने हमारे साथ किया है। आशा है, श्रीमान् कि जब सभा के सामने इस अन्याय के प्रतिकार के लिए संशोधन उपस्थित किये जायेंगे, तो इस महत्ती सभा के सभी सदस्य उनका पूर्णतः समर्थन करेंगे।

[माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय]

अपनी वक्तृता समाप्त करने से पूर्व मैं यह बात भी कहूंगा कि चुनाव के लिए प्रौढ़ मताधिकार की व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक है। सर्वत्र देशवासियों को यह अनुभूति मिलनी चाहिए कि वे अब स्वाधीन है और देश की शासन-व्यवस्था के निर्माण में उनका भी हिस्सा है। अतीत काल से कांग्रेस ने उन्हें यह आशा दे रखी है और अब अगर हम अपनी इस बात से हट जाते हैं, तो इससे लोगों में बड़ा असन्तोष फैलेगा और आन्दोलन खड़ा हो जायेगा। यह सच है कि गांव के सर्वसाधारण नागरिकों ने अभी बहुत कुछ नहीं सीख पाया है, पर यह राजनीतिज्ञों का कर्त्तव्य है कि सर्व-साधारण नागरिकों को वह सही दिशा में शिक्षा दें। अब हमने गणतंत्रीय सिद्धान्त को अपना लिया है और हमारे देश का कल्याण इसी में है कि यहां के सर्व साधारण नागरिकों को शिक्षित बनाया जाये और यह भरोसा रखा जाये कि वे अपना मताधिकार का प्रयोग ठीक-ठीक तरह करेंगे।

और भी बहुत सी बातें, आलोचनाएं मुझे यहां व्यक्त करनी है किन्तु मैं नहीं चाहता कि सभा का समय लूं। पर अपनी वक्तृता समाप्त करने से पहले मैं एक और बात जरूर कहूंगा और वह यह है कि अगर हमें एक गणतंत्रीय राज्य का निर्माण करना है, तो देश के हर व्यक्ति में, चाहे वह कितना भी गरीब और लघु क्यों न हो, यह अनुभूति भरनी होगी कि देश को और अच्छा बनाने में उसे भी अपना हाथ बटाना होगा, हिस्सा लेना होगा। हमें अपने देश में भ्रातृत्व की भावना पैदा करनी है, जिससे कि हमसे हर व्यक्ति, चाहे वह कितना भी लघु और तुच्छ क्यों न हो, अपने देश के लिए गर्व का अनुभव कर सके। जब हममें सच्चाई और भ्रातृत्व की भावना आयेगी, तो निश्चय ही ईश्वर भी हमें सहायता देगा।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, सर्व प्रथम आपके प्रति कृतज्ञताज्ञापन करूंगा कि इस वाद-विवाद में भाग लेने के लिए आपने मुझे भी कुछ समय दिया, जो कि यह अवसर मुझे मिलना है तब, जब यह वाद-विवाद प्राय: समाप्त हो रहा है। मैं जिन बातों को सभा के सामने रखना चाहता था, उनमें से अब कतिपय बातों का ही यहां उस संक्षिप्त समय के अन्दर उल्लेख करूंगा, जो मैं समझता हूं कि कृपा कर मुझे दिया गया है।

विधान के मसौदे पर विचार करने का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सभा के समक्ष जो भाषण डा. अम्बेडकर ने दिया है, वह वस्तुत: एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण

भाषण है। बड़ा ही स्पष्ट, प्रभावोत्पादक, चित्ताकर्षक, तर्क संगत यह भाषण था और मैं नहीं समझता कि इन गुणों की दृष्टि से इससे भी अच्छी वक्तृता हो सकती है। इसके लिए डा. अम्बेडकर को हजार बार बधाई है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने अपने भाग में जो कुछ कहा है, सभी मान्य है। उदाहरण के लिए आप प्रान्तीय स्वायत्तशासन को और केन्द्र तथा विभिन्न प्रादेशिक राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को ही लीजिए। वस्तुत: उनका तर्क अधिकतर एकात्मक राज्य के पक्ष में है। उनका तो कहना है कि विधान में संघीय पद्धति और एकात्मक शासन-पद्धति के मध्य का मार्ग अपनाया गया है, पर इस मसौदे को पढ़कर अपना मत तो यह है कि एकात्मक राज्य व्यवस्था पर ही इसमें बहुत अधिक जोर दिया गया है। मेरे मन से देश के सुख और समृद्धि के लिए ऐसी व्यवस्था अनुकूल न होगी। हमारा देश एक बड़ा ही विशाल देश है; इसकी बहुत ही बड़ी जनसंख्या है और इसके प्रदेश दूर-दूर पर अवस्थित हैं। केन्द्र चाहे कितना भी इसके लिए चिन्ताशील क्यों न हों कि देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के साथ एकसा व्यवहार हो, पर जैसी स्थिति है, उसमें त्रुटियां रहेंगी ही। स्वभावत: इससे असन्तोष और संघर्ष पैदा होंगे। इसी कारण से कई राजनीतिज्ञ मनीषियों का यह मत है कि हमारे जैसे देश के लिए संघीय शासन-पद्धति ही अधिक उपयुक्त है। भारत में हमें यह आशंका न होनी चाहिए कि विभिन्न प्रदेशों के बीच अनावश्यक संघर्ष खड़े होंगे और देश की अखण्डता जाती रहेगी। इस आशंका के पक्ष में यहां अमेरिका का उदाहरण दिया गया है। आखिर अमेरिका में क्या हुआ? यह देश, जिस में चालीस रियासतें हैं और सबके सब स्वायत्तशासी, एक सुसम्बद्ध इकाई के रूप में मानव इतिहास के दो कठोरतम महायुद्धों का आघात सहन करने में समर्थ हुआ है। इसके सभी प्रादेशिक राज्य भी सदा एक बने रहे और इन दोनों ही महायुद्धों की युद्धोत्तरकालीन समस्याओं की सारी कठिनाइयों का इन्होंने सफलतापूर्वक सामना किया। और फिर आप रूस का उदाहरण लीजिए। वहां के सभी प्रादेशिक राज्य स्वायत्तशासी गणतंत्र है। कहा तो यह जाता है कि वैदशिक मामलों पर भी उनका नियंत्रण रहता है। इस देश में क्या हुआ? इतने स्वायत्तशासी प्रादेशिक राज्यों के होने पर भी इस देश ने गत महायुद्ध के भयंकर आघातों का सफलतापूर्वक सामना किया और आज भी वह एक सुविशाल राष्ट्र के रूप में वर्तमान है और इतनी कठिनाइयों

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

और कठोरता के होते हुए भी अपने कार्य-संचालन में समर्थ है। इसलिए इस सम्बन्ध में महत्त्व की बात यह नहीं है कि हमारी शासन-पद्धति क्या है या हम कितनी अधिक शक्ति केन्द्र को प्रदान करते हैं। यहां वास्तविक महत्त्व है चरित्रबल का—शासन संचालकों के चरित्रबल का तथा शासितों के चरित्रबल का। रूस से बहुत से स्वायत्तशासी प्रादेशिक राज्य है, पर वहां क्या हुआ? रूस में आज राज्य ही सर्वेसर्वा है। वहां केन्द्र ने इतने अधिकार ले लिये हैं कि वह उनसे बोझिल हो गया है। यही मानव स्वभाव है। जब तब यहां यह कहा जाता है कि हमारा विधान एकतंत्रात्मक हो जायेगा। किन्तु एक बार जहां यह एकतंत्रात्मक बना कि शासन की यही प्रवृत्ति होगी कि एकात्मक व्यवस्था ही बनी रहे—स्वभावत: यही होता है। मैं कहता हूं कि हमारे देश में जो स्थिति है, उसके लिए एकात्मक संघीय-शासन-व्यवस्था ही अधिक उपयुक्त है।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्थितियां भिन्न-भिन्न है। इसलिए इनकी व्यवस्था उन्हीं लोगों द्वारा होनी चाहिये, जो इन स्थितियों के सन्निकट सम्पर्क में हों। इस सम्बन्ध में मैं केवल एक बात का उल्लेख करूंगा। जब प्रान्तों को स्वशासन के बहुत से अधिकारों से वंचित रखा जाता है, तो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित शासकों की यह व्यवस्था अपने प्रस्तुत विधान के अनुकूल नहीं है। माना कि शासक महज काठ की मूर्ति के रूप में रहेगा, पर उसकी स्थिति केवल एक वैधानिक प्रधान की होगी। उसके लिये निर्वाचन की लम्बी और कष्टप्रद प्रक्रिया बरती जाये। प्रान्त के लाखों नागरिक मतदान में शामिल हों, यह आवश्यक नहीं है। इसमें एक लम्बा खर्च तो होगा ही, पर उसके अलावा और भी बड़ी कठिनाइयां और मुसीबतें खड़ी होंगी। अवश्य ही शासक का निर्वाचन प्रान्त या रियासतों के ही किसी माध्यम (एजेंसी) द्वारा होना चाहिये और यह व्यवस्था उस प्रान्तीय स्वराज्य के बिल्कुल अनुकूल है, जिसका मैं हामी हूं। ऐसे माध्यम के लिए हम एक निर्वाचक-मण्डल बना सकते हैं जिसमें प्रान्तीय विधान-मण्डल के सदस्य, म्युनिसिपल और जिला-बोर्ड़ों के सदस्य रखे जा सकते हैं; और मैं तो यहां तक प्रस्तुत हूं, यदि आप चाहते हों कि उसमें ग्राम-पंचायतों के सदस्य रखे जाये। इसमें कुल मिलाकर ज्यादा से ज्यादा पचास हजार से साठ हजार तक मतदाता आयेंगे और प्रौढ़ मताधिकार

की व्यवस्था रखने से तो मतदाता-संख्या करोड़ों तक पहुंच जायेगी। और फिर शासक भी अगर प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर चुना जायेगा, तो स्वभावत: यदा कदा उसके और मंत्रि-मण्डल के बीच, जो जनता की ओर बोलने का दावा करेगा, संघर्ष उपस्थित हो जाया करेगा।

प्रस्तावकर्त्ता ने कहा है कि मूलाधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध रखे गये हैं, उनसे उन अधिकारों को कोई क्षति नहीं पहुंचती, पर वास्तविक बात तो यह है कि इन प्रतिबंधों ने अधिकारों को सर्वथा निष्प्राण कर दिया है। प्रस्तावक महोदय का कहना है कि इन प्रतिबंधों के—प्रत्येक के—समर्थन में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का कम से कम एक फैसला तो पेश किया ही जा सकता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट में जब भारत-शासन-अधिनियम सन् 1935 की रचना की जा रही थी, तो उस समय वहां के राजनीतिज्ञों ने उसके पक्ष में जो तर्क रखा था, वह ऐसा ही था। उन्होंने कहा था कि उस अधिनियम में वह उन्हीं बातों का समावेश कर रहे हैं, जो ग्रेट ब्रिटेन में रूढ़ि के रूप में चली आ रही है। उनका कहना था, जिन बातों को अधिनियम में रखा जा रहा है, वह पहले से ही चालू थी और इसीलिये उन्हें अधिनियम में शामिल किया जा रहा है। यह कहना कि चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने अमुक प्रकार से निर्णय किया है और यह फैसला दिया है कि कई प्रतिबंध वैध हैं और सही है, इसलिये इन प्रतिबंधों को विधान में रखना ही चाहिये, एक बात है और यह कहना कि मूलाधिकारों के सम्बन्ध में अगर कोई प्रश्न खड़ा होगा, कोई मतभेद खड़ा होगा तो नागरिकों को यह अधिकार होगा कि वे उसके सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय मांगें, यह बिल्कुल एक दूसरी बात है। यदि जनता को यह अधिकार दिया जाये कि वह इस सम्बन्ध में सरकार से मतभेद होने पर सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय की मांग कर सकती है, तो इससे उनमें वास्तविक स्वातंत्र्य का भाव पैदा होगा और इससे सरकार पर भी एक हितकर नियंत्रण बना रहेगा, जो गणतंत्र में आवश्यक है।

मेरे कुछ मित्रों ने दावे के साथ यह कहा है कि प्रस्तुत विधान एक राजनैतिक विधान है। पर क्या वस्तुत: यह ऐसा है? मैं नहीं जानता। इसमें स्पृश्यास्पृश्य, मंदिर प्रवेश और धार्मिक शिक्षा के प्रश्नों के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है। इसके लिये मैं विधान को या उसके रचयिताओं को दोष नहीं देता। मेरा तो कहना है कि विधान में इन सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में व्यवस्था रखना ठीक हैं किन्तु यहां

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

मैं एक महत्त्वपूर्ण और मौलिक प्रश्न का उल्लेख करूंगा और यह प्रश्न है, धार्मिक शिक्षा का विधान। इसमें कहा गया है कि राजकीय विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं प्रदान की जायेगी। इस व्यवस्था के साथ-साथ प्राय: सभी प्रान्तों में अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा भी चालू की जा रही है। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार धार्मिक शिक्षा के विरुद्ध है, सरकार इस बात के विरुद्ध है कि नागरिकों को उनके धर्म की शिक्षा दी जाये—चाहे वे धर्म की शिक्षा पाना ही क्यों न चाहते हों। इसलिये 15 वर्ष की उम्र तक, जब तक कि बच्चे प्रारिम्भक स्कूलों में पढ़ेंगे, उन्हें विद्यालय में अपने धर्म के सम्बन्ध में शिक्षा पाने का कभी अवसर न मिलेगा। किन्तु नागरिकों को अपने-अपने धर्मों की शिक्षा पाने का अधिकार है। इस अधिकार से राज्य की तटस्थता अथवा उसके असाम्प्रदायिक स्वरूप में कोई न्यूनता नहीं आती। राज्य उन लोगों पर कोई धार्मिक शिक्षा जबर्दस्ती नहीं लादेगा जो ऐसी शिक्षा नहीं पाना चाहते हैं। इससे जनता को यह सुविधा हो जायेगी कि अगर वह अपने बच्चों को अपने धर्म की शिक्षा देना चाहें, तो दे सकते हैं।

अब, श्रीमान्, मैं अल्पसंख्यकों का प्रश्न लेता हूं। कुछ मित्रों ने कहा कि आरक्षा (reservation) की व्यवस्था अब बिल्कुल उठा देनी चाहिए; कुछ ने कहा कि इससे कोई लाभ नहीं इसलिए इसे उठा देना चाहिए और किसी ने कहा कि आरक्षा की चर्चा ही न होनी चाहिये। उनका कहना है कि आवश्यकता है, सद्भावना की न कि आरक्षा की। वस्तुत: यह सच है, श्रीमान्, कि सद्भावना अपेक्षित है, इस विस्तृत विधान को कार्यान्वित करने के लिये भी सद्भावना की आवश्यकता है। पर इस तर्क के आधार पर तो विधान के कई प्रावधानों को हटाकर सद्भावना से ही काम चलाया जा सकता है। फिर भी विधान में ये प्रावधान रखे गए हैं। आखिर सद्भावना हवा में तो नहीं रहेगी, उसके आधार के लिये कोई चीज़ होनी चाहिए। सद्भावना के लिये, उसके विकास के लिए आधारभूत कोई न कोई वस्तु होनी ही चाहिए और ये प्रारम्भिक अधिकार—ये मूलाधिकार तथा अल्पसंख्यकों के संरक्षण ही उसके आधार हैं। यही कारण है कि मेरा सम्प्रदाय आरक्षा की मांग करता है यद्यपि केवल आरक्षा से ही उनकी आवश्यकतायें नहीं पूर्ण होती है मेरा यह मतलब नहीं है कि इससे उन लोगों को सन्तोष होगा, जो विधान-मण्डल

में प्रतिनिधित्व चाहते हैं। वस्तुतः हम यह चाहते हैं कि विधान-मण्डल के समक्ष अपने विचारों को, अपनी भावनाओं को और आकांक्षाओं को सही-सही रूप में रखने का हमें अधिकार हो। जो लोग संयुक्त निर्वाचन के अधीन निर्वाचित होकर इन संरक्षित आसनों पर बैठे हैं। वे क्या अपने सम्प्रदाय के विचारों को यहां व्यक्त करने में समर्थ होंगे? जब मैं यह कहता हूं तो इसको लेकर हमें अतीत की गढ़ी बातों की याद नहीं दिलानी चाहिये। अतीत की चर्चा कर मैं मतभेद और विवाद का विषाक्त वातावरण नहीं पैदा करना चाहता। हमें इस प्रश्न पर स्वतन्त्र रूप से विचार करना चाहिये, इसके पूर्ण-दोषों को देखते हुये हमें यह विचार करना चाहिये कि इसका रखना ठीक है या नहीं। मेरे विचार से तो हमें न केवल संरक्षित स्थानों की ही, बल्कि पृथक निर्वाचन द्वारा उनकी पूर्ति का भी प्रावधान रखना चाहिये। यदि आज अल्पसंख्यकों को यह अधिकार देना चाहते हैं कि वह बहुसंख्यक सम्प्रदाय के समक्ष, विधान-मण्डल के समक्ष, देश के समक्ष अपने विचार सही रूप से रखें, तो इस प्रावधान के सिवाय अन्य कोई और उपाय मुझे तो नहीं दिखाई देता। पृथक निर्वाचन का यही अभिप्राय है। एक सम्प्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय के बीच इससे कोई दीवार नहीं खड़ी होती है और अतीत काल में अगर कोई बखेड़ा हुआ था, तो उसका कारण यह निर्वाचन-पद्धति नहीं थी बल्कि और अन्य बातें थी। जैसा कि मैंने अभी कहा है, मैं अतीतकालीन बातों का उल्लेख नहीं करना चाहता। जब हम पृथक निर्वाचन की चर्चा करते हैं, तो साम्प्रदायिकता का अभियोग लगाया जाता है। इस सम्बन्ध में मैं एक कांग्रेसी मंत्री का कथन मात्र ही उद्धृत करूंगा जो अभी दस दिन पहले उन्होंने मद्रास के विधान-मण्डल में कहा है। किसी कॉलेज में विद्यार्थियों की भर्ती के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक प्रतिनिधान विषयक एक प्रश्न किया गया था। एक सदस्य ने मंत्री से यह प्रश्न किया:

> ''स्वयं हिन्दुओं के अन्दर भी साम्प्रदायिकता को स्थायी रखने और उसे प्रश्रय देने में मंत्री महोदय के लिए क्या औचित्य है?''

इसके उत्तर में शिक्षा मंत्री यह कहते हैं:

> ''सरकार ऐसा नहीं कर रही है। विभिन्न सम्प्रदाय पहले से ही वर्तमान हैं। जो चीज़ वर्तमान है, उसकी उपेक्षा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। लोग इन्हीं विभिन्न सम्प्रदायों में पैदा होते हैं और मरते हैं।"

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

फिर शिक्षा मंत्री ने यह कहा:

''सरकार साम्प्रदायिकता का अन्त कर देना चाहती थी, किन्तु विभिन्न सम्प्रदायों को विकास का समान अवसर प्रदान किये बिना ऐसा नहीं किया जा सका।''

बहुसंख्यक सम्प्रदाय के एक कांग्रेसी नेता ने यह मत व्यक्त किया है, जो आज इस देश के एक महत्त्वपूर्ण प्रान्त के एक महत्त्वपूर्ण विभाग की देख-रेख करते हैं।

इसलिए, श्रीमान्, यही आज की वास्तविक स्थिति है। इन विभिन्न सम्प्रदायों को स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं है और यह स्थिति हमारे देश के लिये कोई नई नहीं है। जब मैं नौजवान था, उस समय मिश्र देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि मैं बड़े ध्यान से देखा करता था। उन्होंने जब पहले स्वतंत्रता की मांग की, तो 'काप्ट्स' नामक एक सम्प्रदाय का वहां आविर्भाव हुआ। इस सम्प्रदाय ने राष्ट्रीय आन्दोलन के मुकाबले में एक दूसरा ही आन्दोलन चलाया। उन्होंने यह मांग की कि इस बात का उन्हें पक्का आश्वासन मिलना चाहिये कि स्वतंत्र होने पर उनके अधिकार सुरक्षित रहेंगे। तब मिश्र के नेता श्री जगलुक पाशा ने उन लोगों को बुलाकर कहा कि वे अपनी मांगों की तालिका बनाकर दें। यथा समय मांगों की तालिका लिखित रूप में उनके सामने आई और उन्होंने उन पर विचार किया। विचार कर लेने पर उन्होंने कहा कि केवल उन मांगों की पूर्ति से ही उनके अधिकारों की सुरक्षा नहीं होती। उन्होंने कहा कि इन मांगों की पूर्ति से तो उन्हें अपना मत व्यक्त करने का भी अधिकार नहीं प्राप्त होता है, उन्होंने उस सम्प्रदाय को कहा कि ''तुमने जो मांगा है, मैं उससे भी अधिक दूंगा''। यह व्यवहार था जो उस देश के अल्पसंख्यकों के साथ किया गया। उसके पहले ऐसा होता था कि जब भी मिश्र के सम्बन्ध में कोई बात चली नहीं कि 'काप्ट्स' लोगों की भी कुछ न कुछ बात सामने आई। किन्तु समझौते के दिन से ही यह सारी बातें बदल गई और आज तक हमें 'काप्ट्स' का नाम भी कभी नहीं सुनाई पड़ा। अब वे एक संतुष्ट वर्ग है और मिल-जुल कर एक जाति के रूप में रह रहे हैं। आशा है, सभा इस प्रश्न पर शान्तिपूर्वक विचार करेगी और किसी प्रकार की भावुकता को इसमें स्थान न देगी।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्तः जनरल): सभापति जी मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं कि अब एक घंटा कुल समय रह गया है। एक घंटा कुल समय वाद-विवाद के लिए अवशेष है, तो एक दिन और बढ़ा दिया जाये। बहुत से लोगों ने बोलने की इच्छा प्रकट की है और अब तक का जो हाउस है, उसमें कोई क्लोजर जैसा प्रस्ताव नहीं आया कि वाद-विवाद बन्द किया जाये। मालूम यह होता है कि लोग इस विषय में कुछ सुनना चाहते हैं प्रश्न ऐसे महत्त्व का है, जैसा कि कल श्री दिवाकर ने कहा था कि इस मामले में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। इसलिये कम से कम एक दिन और बढ़ा दिया जाये। केवल जो नाम आपके सम्मुख है, उन्हीं में से बहुत से लोग बोलेंगे।

मैं एक निवेदन और करना चाहता हूं। आज का पूरा समय आपने उन लोगों को दिया है, जिन्हें आप अल्पसंख्यक मानते हैं। अल्पसंख्यक लोगों ने अपनी बातें कही हैं, तो बहुसंख्यक लोग जो आपकी कल्पना में हैं क्या उन लोगों की संख्या के ही आधार पर छोड़ दिया जायेगा? या जो आपत्तियां उठाई गई है, उनका कुछ लाजिकल, तर्कसंगत उत्तर भी आना चाहिये कि जिससे संसार में प्रभाव पड़े कि जो निर्णय यहां हो रहे हैं, वह तर्क के आधार पर है, संख्या के बल पर नहीं। जो बातें कही गई है, उनका कोई उत्तर देना चाहता है, तो उसे इसका अवसर मिलना चाहिए। भाषा का प्रश्न है और दूसरी चीज़ें हैं। भारत का सम्बन्ध ब्रिटेन से क्या हो, यह ऐसे महत्त्व के प्रश्न है कि जिन पर यहां पर विस्तार से प्रकाश पड़ना चाहिए। इस कारण मेरा नम्र निवेदन यह है कि आप कृपा करके इसके लिए एक दिन का अवसर और दें। कम से कम एक दिन का समय अवश्य मिलना चाहिए, जिसमें और लोग भी बोल सकें।

उपाध्यक्षः आप एक दिन और चाहते हैं?

पं. गोविन्द मालवीय (संयुक्तप्रान्तः जनरल): मैं श्री अलगूराय शास्त्री के इस अनुरोध का समर्थन करता हूं। मेरी समझ से हम लोग एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण मसले पर विचार कर रहे हैं, जिसके लिए शायद हमें और अवसर नहीं मिलेगा। इसके विचार में हम तीन दिन लगा चुके हैं और अभी भी बहुत से सदस्य हैं, जिन्हें इस विषय पर अपने विचार सभा के समक्ष रखने हैं। मैं समझता हूं कि एक दिन बढ़ा देने में कोई बुराई नहीं है।

*__माननीय श्री बी.जी. खेर__ (बम्बई: जनरल): इस तरह तो कल फिर अनुरोध होगा कि एक दिन और बढ़ा दिया जाये। संशोधन आने पर हमें काफी मौका मिलेगा और हम इन सभी बातों की चर्चा कर सकेंगे। जो विषय सभा के सामने आज दो वर्षों से उपस्थित है उस पर भिन्न-भिन्न भाषाओं में तरह-तरह के विचार व्यक्त किये जा चुके हैं और यथेष्ठ प्रकाश या अंधकार, जो कहिए, इस पर डाला जा चुका है। मुझे उन सदस्यों से सहानुभूति है, जो इस मसले पर बोलना चाहते हैं और चाहते हैं कि सभा उनकी बात सुने, पर मैं कहूंगा कि ऐसे वाद-विवाद के लिए एक न एक समय तो हमें निश्चित ही कर लेना होगा, जिसके बाद उस पर हम और विचार नहीं करेंगे। एक दिन का समय हम इसके लिए पहले ही बढ़ा चुके हैं और मैं समझता था कि इतना समय इसके लिए काफी था। मेरा सुझाव है कि इसके लिए और समय नहीं बढ़ाना चाहिए।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्त: जनरल): अगर ऐसा एक भी सदस्य बाकी रह गया है, जो प्रस्तुत विषय पर अपना मत व्यक्त करना चाहता है, तो उसे इसके लिए पूरा मौका मिलना चाहिए। इसलिए मैं कहता हूं कि न केवल एक दिन बल्कि अगर कल सभा एक और दिन इसके लिए मांगे, वह भी मिलना चाहिए।

*__उपाध्यक्ष:__ मेरे पास तो 40 सदस्यों के नाम हैं, जो अभी बोलना चाहते हैं। मैं यह भी बतला दूं कि उन प्रमुख बातों का मैं एक विवरण रखता हूं, जिन पर कि सदस्य यहां बोलते हैं। मैं देखता हूं कि कम या बेशी 6 बातों के सम्बन्ध में सभी सदस्यगण बोलते हैं 30 सदस्य बोल चुके हैं और घुमा-फिरा कर सभी ने इन्हीं 6 बातों के सम्बन्ध में ही कहा है। अगर सभा को यह पक्का मालूम हो कि अब आगे बोलने वाले सदस्य इन 6 बातों के अलावा अन्य और बातों के सम्बन्ध में बोलेंगे, तब तो उनको समय देने में औचित्य है। मैं तो आप लोगों के हाथ में हूं। मैं समय बढ़ाने के लिए बिल्कुल तैयार हूं, बशर्ते कि आप इस बात का इत्मीनान करा दें कि आने वाले वक्ता कोई नई बात रखेंगे।

__पं. गोविन्द मालवीय:__ क्या आप यह चाहते हैं कि हम जिन बातों के सम्बन्ध में यहां चर्चा करना चाहते हैं, उनका एक सारांश आप को लिखकर दे दिया करें?

***उपाध्यक्षः** शायद आपने मेरी बात समझी नहीं और वह जानबूझ कर।

मैंने यह कभी नहीं कहा है कि आप मुझे सारांश लिखकर दें। जो लोग यहां पहले से बैठे हैं और बातें सुन रहे हैं उन्हें मालूम है। आप आज आये हैं, इसलिए आपको नहीं मालूम है कि किन-किन बातों की चर्चा यहां...

***पं. गोविन्द मालवीयः** किन्तु मैं यहां की कार्यवाही का विवरण घर लेता गया था और वहां उसे पढ़ा है।

***उपाध्यक्षः** जिन सदस्यों के नाम मेरे पास आये हैं, वे स्वयं अगर मुझे यह इत्मीनान दिला दें कि वे कुछ नई बात कहेंगे, तो मैं इस पर विचार करने के लिए तैयार हूं।

***श्री हुसैन इमामः** *(बीच में कुछ बोलते हैं, जो रिपोर्टरों तक नही सुनाई पड़ता।)*

***श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): जब 40 सदस्य और अभी बाकी हैं तो एक दिन का समय बढ़ाने से भी काम नहीं पूरा होगा। तब तो आप पूरा एक सप्ताह का समय और दीजिए।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठीः** मेरा सुझाव है कि प्रस्तुत वाद-विवाद के लिए कुछ और दिन मिलने चाहिए।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है, मैं एक दिन और दूंगा। पर यह आशा मैं जरूर करता हूं कि इसका सदुपयोग किया जायेगा।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे के सम्बन्ध में कुछ बातें मैं जरूर कहूंगा, पर उसके पहले माननीय डा. अम्बेडकर का अभिनन्दन करूंगा। उनकी प्रशंसा करूंगा कि उन्होंने विधान के सिद्धांतों की व्याख्या इतनी योग्यता एवं बोधगम्य रूप से की है। फिर भी मुझे यह कहना होगा कि मेरे माननीय मित्र ने भारतीय ग्राम-समाज की आम तौर पर जो निन्दा की है, उससे मैं सहमत नहीं हूं। मैं उनके इस कथन से भी अपना प्रबल मतभेद प्रकट करता हूं कि ''भारतीय भूमि पर प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है''। भारतीय इतिहास के आदि काल से ही यहां की विभिन्न संस्थाओं

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

में प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों का समावेश पाया जाता है। लोगों ने इन सिद्धान्तों को यहां तभी से अपना रखा है। प्रजातंत्र का आधुनिक स्वरूप यूरोपीय इतिहास में भी अपेक्षाकृत अप्राचीन ह—अभी हाल का ही है—क्योंकि इसकी मुख्य-मुख्य बातों का विकास फ्रांसीसी राज्यक्रांति और अमेरिका के स्वातंत्र्य-युद्ध के फलस्वरूप ही हुआ है। प्रजातंत्र के परमावश्यक और मूलभूत सिद्धान्त जिस रूप में कि आज वह समझे जाते हैं और उन पर अमल किया जा रहा है, इसके और बाद में जन्में हैं और गत महायुद्ध-काल में तथा उसकी समाप्ति के पश्चात् ही इनका प्रचलन बढ़ा है और इन्हें सारे संसार का समर्थन प्राप्त हुआ है।

मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने मसौदा-समिति के कार्य के सम्बन्ध में जो कतिपय बातें कहीं हैं उनको देखते हुए, पहले इसके कि मैं प्रस्तुत विधान के बारे में अपना मत व्यक्त करूं, मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना मेरे लिए तथा सभा के लिए भी आवश्यक है। स्वास्थ्य के प्रतिकूल होते हुए भी मसौदा-समिति के सदस्य के नाते, इस मसौदे के छपने के पहले मैंने इसकी कई बैठकों में यथेष्ट सक्रिय भाग लिया और जब कभी बैठकों में मैं शामिल नहीं हो सकता था, तब भी मैंने अपने सुझाव और नोट अपने साथियों के विचारार्थ भेजे। मसौदो के छप जाने के बाद, स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से मैं समिति की किसी भी बैठक में भाग नहीं ले सका। इसलिए मसौदे में जो सुधार हुए हैं, उनके सुझाव का श्रेय मुझे नहीं है। यह याद रहना चाहिए कि कतिपय प्रश्नों के सम्बन्ध में विधान की मुख्य-मुख्य बातें विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार करके इस सभा ने ही तय कर दी थी। इसलिये विधान के इस मसौदे पर विचार करने में सभा अब दो वर्ष के बाद कोई नया काम नहीं करने जा रही है। जिन कई सदस्यों ने सभा द्वारा निश्चित इस विधान की कतिपय बातों की आलोचना की है, वे भी, जो निर्णय हो चुका है उसके दायित्व से अपने को किसी प्रकार मुक्त कर सकते हैं, इसमें मुझे शक है। विधान का संघीय ढांचा जिसमें केन्द्र को व्यापक शक्तियां दी गई हैं, समवर्ती सूची और उसमें रखे हुए विषय, प्रान्तीय विधान-मण्डलों की रचना, प्रधान तथा शासक के निर्वाचन की पद्धति, विधान-मण्डल एवं अधिशासी वर्ग के बीच का सम्बन्ध, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों का निर्माण और उनकी शक्तियां, वे मूलाधिकार जिनके सम्बन्ध में नागरिकों को प्रत्याभूति प्राप्त रहेगी,

तथा विधान से सम्बन्ध रखने वाली अन्य कई बातें—ये सभी—इस सभा द्वारा ही निश्चित की गई हैं, अथवा इस सभा द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों द्वारा इन पर विचार किया गया है। जहां तक कि मसौदा-समिति ने इन अनुच्छेदों में इस सभा द्वारा तय किये हुए निर्णयों को स्थान दिया है, यह निर्णयों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराई जा सकती। हां, सभा को यह अधिकार है कि विशेष कारणों के आधार पर वह इन निर्णयों में परिवर्तन करे। विधान के उन प्रावधानों के बारे में, जिन पर कि सभा ने विचार नहीं किया है, उसे अधिकार है कि वह पहले के स्वीकृत प्रस्तावों से तथा इस विधान के साधारण स्वरूप से सामंजस्य रखते हुए इनके सम्बन्ध में कोई निर्णय करे।

विधान के सम्बन्ध में जो मुख्य-मुख्य आलोचनायें हुई हैं, उनको हम उन शीर्षकों में बांट सकते हैं।

आलोचना 1. प्रस्तुत विधान में विदेशी विधानों से ही बहुत कुछ लिया गया है और इसमें यहां का कुछ भी नहीं है। इस आलोचना में कोई खास जोर है यह देखते हुए कि संघीय पद्धति अपने आधुनिक रूप में अभी हाल में अमेरिका की क्रांति के बाद उत्पन्न हुई है और अमेरिका के इस उदाहरण के आधार पर ही बाद की संघीय राज्य-व्यवस्थाएं स्थापित हुई हैं। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न संघों में एक बड़ी प्रबल परिवारमूलक समरूपता है और प्रत्येक संघीय विधान अपने से पहले उत्पन्न विश्व के अन्य संघीय विधानों के आधार पर निर्मित हुआ तथा उनके अनुभवों और कार्य-प्रणाली से उसने लाभ उठाया। इस सम्बन्ध में यह भी याद रखना चाहिए कि सोवियत रूस का विधान भी संघीय-शासन के कई स्वीकृत सिद्धान्तों को लेकर बना है।

आलोचना 2. विभिन्न प्रादेशिक राज्यों को दुर्बल बनाकर केन्द्र को आवश्यकता से अधिक सशक्त बना दिया गया हैं आधुनिक जगत में औद्योगिक, व्यावसायिक एवं आर्थिक अवस्थाओं की जटिलता की दृष्टि से तथा रक्षा-सम्बन्धी विस्तृत आयोजनों की आवश्यकता की दृष्टि से प्रत्येक संघ में संघीय-शासन को सशक्त बनाने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति वर्तमान है। प्रस्तुत मसौदे ने अपने कई प्रावधानों में इस प्रवृत्ति का ध्यान रखा है और इसको सर्वोच्च न्यायालय पर नहीं छोड़ दिया है कि वह अपने अदालती भाष्य द्वारा केन्द्र को सशक्त बनाये। इस सम्बन्ध में

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

मैं यह बता दूं कि अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के विधान के व्यापार वाणिज्य सम्बन्धी धारा तथा सर्वसाधारण की भलाई सम्बन्धी धारा के बारे में व्यापक भाष्य देकर वस्तुतः राज्य के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो गया है, ताकि वह ऐसी स्थिति में रहे कि इन दो धाराओं के बल पर वह वहां की आर्थिक कार्रवाइयों को, पूंजीपति और मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध को, श्रमिकों को कितने घंटे काम करने होंगे—आदि सभी बातों को स्वयं नियंत्रित कर सके।

आलोचना 3. समवर्ती विषयों की सूची बड़ी विस्तृत है और इससे हो सकता है कि केन्द्र प्रांतीय क्षेत्रों का अतिक्रमण कर दे और विधान एकात्मक-शासन-पद्धति के अनुकूल हो जाये। समवर्ती सूची में रखे गये विभिन्न विषयों को पढ़ने से पता चलता है कि इनका सम्बन्ध प्रधानतः ऐसी बातों से है, जो समस्त देश में सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है। ब्रिटेन ने भारत में जिस प्रकार शासन-संचालन किया, उसके विरुद्ध हम चाहे जितनी आलोचना क्यों न करें, पर दण्ड और व्यवहार-प्रणाली-संहिता की रचना करके उन्होंने विधि में तथा विधि-प्रशासन में एकरूपता ला दी और यही उनके शासन का विशेष गुण रहा है। इसे सभी जानते हैं कि देशी रियासतों ने भी दण्ड और व्यवहार प्रणाली सम्बन्धी भारतीय संहिताओं (Indian Codes) को अपनाया है। बजाय इसके कि समवर्त्ती सूची को न रखा जाये अथवा समवर्त्ती विषयों में कांट-छांट की जाये, मैं तो यह कहूंगा कि इस सूची को भाग 3 में उल्लिखित रियासतों पर भी लागू किया जाये। समवर्त्ती सूची के रहने से विधान के संघीय स्वरूप में किसी प्रकार कमी नहीं आती, क्योंकि प्रान्तीय विषयों की एक स्वतंत्र सूची है।

आलोचना 4. हमारी ग्राम-पंचायतें भारत के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की विशेष अंग है, पर विधान में उन्हें यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया गया है। स्थानीय स्वशासन एवं अन्य मामलों के बारे में प्रांतीय और रियासती राज्यों की विधान-मण्डलों को विस्तृत शक्ति प्रदान की गई है, इसलिए प्रांतीय विधान-मण्डल उन कई प्रकार्यों को पूरा करने के लिए, जो प्रादेशिक राज्यों को सौंपे गये हैं, चाहे तो स्वयं शासन के लिए ग्राम-इकाइयों का निर्माण स्वयं कर सकती है।

आलोचना 5. मूलाधिकारों के सम्बन्ध में यह आलोचना की गई है कि उनको बहुत से प्रतिबंधों के द्वारा इतना जकड़ दिया गया है कि इनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता, यद्यपि विधान में इनके सम्बन्ध में प्रत्याभूति दी गई है। विधान में मूलाधिकारों की व्यवस्था करने में और उनके सम्बन्ध में प्रत्याभूति देने में सबसे बड़ी समस्या यह आती है कि वैयक्तिक-स्वातंत्र्य तथा सामाजिक नियंत्रण के बीच मध्यवर्ती रेखा कहां खींची जाये। यह सच है कि स्वतंत्रता एक सुव्यवस्थित राज्य में ही फल-फूल सकती है जब कि राज्य की बुनियाद को कोई संकट न हो। अमेरिका के विधान में ये अधिकार बड़े व्यापक शब्दों में रखे गये हैं और इन पर लिखित रूप में कोई प्रतिबंध नहीं है। पर अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने दीर्घकालीन इतिहास में, कई अवसरों पर निर्णय देते हुए अनेक प्रतिबंधों को इन अधिकारों में स्वतः सन्निहित बतलाया। प्रस्तुत विधान ने, बजाय इसके कि इन आवश्यक प्रतिबंधों को लिखित रूप न देकर न्यायालय पर छोड़ दे कि वह अपने निर्णय द्वारा इनको मान्य बनाये, इन प्रतिबंधों और अपवादों को, जो किसी भी सुव्यवस्थित राज्य के लिए मान्य हैं, संक्षिप्त रूप में लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यदि हम इन प्रतिबंधों को लिपिबद्ध न करके न्यायालयों पर छोड़ देते हैं कि वह अपने न्यायाधीशों के व्यक्तिगत स्वभाव और बद्ध मूलधारणा के अनुसार निर्णय द्वारा आवश्यक प्रतिबंध लागू करें, या यों कहिये कि अदालती कानून द्वारा हम इन्हें लागू बनाये तो इसमें खतरा है।

अल्पसंख्यकों की समस्या के सम्बन्ध में सबकी सहमति से एक समझौता हो गया है और सभी वर्गों को यह सन्तोषप्रद है। इस विधान में तो सिर्फ इस समझौते को कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है। जैसा कि आज सबेरे, हमारे प्रधान-मंत्री ने अपने ओजस्वी भाषण में बताया है, रस्मी या कानून द्वारा लादी गई एकता से तो कोई फायदा नहीं है, पर ऐसी कोई बात हमें नहीं करनी चाहिए, जिससे राष्ट्र स्थायी रूप से विभिन्न अल्पसंख्यकों में विभक्त बना रहे और उसका एकीकरण रुकता हो।

दूसरी आलोचना यह की गई है कि विधान में साधारण जनता की उपेक्षा की गयी है और इसमें समाजवादी रंग नहीं है। देश किसी विशेष आर्थिक अथवा सामाजिक

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

पद्धति को ही अपनाये, ऐसी बात विधान में नहीं है। बल्कि इसमें भावी व्यवस्थापिकाओं को, भावी संसदों को इस बात की काफी गुजांइश दी गई है कि वे किसी भी आर्थिक व्यवस्था को प्रचलित करें या कोई भी कानून बनायें, जिसे जनहित के लिए वे पसन्द करें। इस विधान में 'राज्य-नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्त' के नाम से जो विभिन्न अनुच्छेद रखे गये हैं उनका यही महत्त्व है, यही प्रयोजन है। जिस रूप में ये हैं, इनको अमली रूप दिलाने के लिए हम न्यायालय में अपील तो नहीं कर सकते हैं, फिर भी अनुच्छेद 29 के शब्दों में ये सिद्धान्त देश के शासन में मूलभूत है और विधि बनाने में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। यह कहना व्यर्थ है कि कोई भी उत्तरदायी शासन अथवा प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधान-मण्डल इन सिद्धान्तों की उपेक्षा कर सकता है, या करेगा।

इस मसौदे में जो अर्थ सम्बन्धी प्रावधान हैं, उनकी तीव्र आलोचना मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने की है। संघीय शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आय के स्वतंत्र साधन या साधनों का होना तो अवश्य ही आवश्यक है, किन्तु फिर भी कई संघों में ऐसी प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से वर्तमान है कि केन्द्रीय सरकार ही कर निर्धारित करने का काम करती है और इसमें वह, इन दो बातों के लिए, कि उस आमदनी से इकाइयों को हिस्सा मिले और केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकार उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करे, पर्याप्त प्रावधान रखने का सदा ध्यान रखती हैं। आखिर हम इस बात को तो नहीं भूला सकते कि कर देने वाला कोई राज्य का ही नागरिक या निगम है और कर निर्धारित करने वाला माध्यम कोई भी हो पर अगर उनकी संख्या बहुत हुई तो इससे नागरिकों को सुविधा न होगी। देश की वर्तमान अनिश्चित अवस्था में अपनी समस्त व्यवस्था को बदलना और एक नये ढंग से करों के सम्बन्ध में पुनर्व्यवस्था करना हमारे लिए सम्भव हो सकता है इसमें मुझे सन्देह है। यही कारण है कि इसमें इस आशय का प्रावधान रखा गया है कि दस वर्ष के बाद एक आर्थिक कमीशन बिठाया जाये। सम्भवत: मसौदे में यह त्रुटि रह गई है कि इसमें इस बात के लिए एक विशेष प्रावधान नहीं रखा गया है कि आर्थिक कमीशन के सुझावों के अनुसार आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में परिवर्तन किया जा सके और वैधानिक संशोधनों के लिए जो प्रक्रिया रखी गई है, उसका अनुगमन करना इसके लिए आवश्यक न हो।

संघवाद पर Prof. Wheare ने पुस्तक अभी हाल में लिखी है, उसमें कर-निर्धारण के सम्बन्ध में आप यह कहते हैं:

> ''संघीय पद्धति में आर्थिक साधनों के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कोई ऐसी बात निश्चित नहीं की जा सकती है कि अमुक साधन संघ को और अमुक साधन प्रादेशिक राज्यों को दिये जायें। इनके सम्बन्ध में तो परिवर्तित स्थितियों के अनुसार सुधार और पुनर्वितरण की व्यवस्था ही करनी होगी।''

फिर विधान में यह दोष बताया गया है कि यह बड़ा ही विस्तृत-वृहत् है और इसमें इतने अनुच्छेद है कि जितने दुनियां के और किसी भी विधान में नहीं हैं। यह आलोचना करने वाले आलोचक इस बात को भूल जाते हैं कि हम किसी क्रांति के बाद कोई नया विधान नहीं बना रहे हैं। वर्तमान शासन-व्यवस्था, जो इतने दिनों से काम करती आ रही है, आप नवीन विधान बनाने में सर्वथा उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। दूसरी बात जो आलोचक भूलते हैं, वह यह है कि इस विधान में सर्वोच्च न्यायालय तथा न्यायालयों की रचना और शक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले विस्तृत प्रावधान हैं तथा प्रादेशिक राज्यों के विधान के सम्बन्ध में भी इसमें अनुच्छेद हैं, जो और विधानों में नहीं है। अगर हम इन सभी अनुच्छेदों को हटा सकते, तो हमारा विधान भी और सरल और संक्षिप्त हो जाता।

न्यायाधीश वर्ग के सम्बन्ध में भी विधान का यह विचार है कि प्रजातंत्र और विशेषतः संघीय विधान पर अमल करने के लिए एक स्वतंत्र न्यायाधीश-वर्ग की नितान्त आवश्यकता रहती है। प्रस्तुत विधान के अधीन अपने सर्वोच्च न्यायालय को इतनी व्यापक शक्तियां प्रदान की गई है, जितनी दुनियां की अन्य किसी संघीय व्यवस्था में किसी भी न्यायालय को नहीं दी गई हैं। देश के भविष्य-निर्माण के सम्बन्ध में साधारण जनता तथा उसकी शक्तियों पर पूरा भरोसा रखते हुए इस सभा ने विधान में प्रौढ़-मताधिकार की व्यवस्था की है और मेरी समझ से सभा का सर्वाधिक साहसपूर्ण कार्य यही रहा है। प्रौढ़ मताधिकार की इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए ठीक-ठीक निर्वाचक सूची बनाने में तथा देश के भिन्न-भिन्न भागों में एक सी पद्धति बरतने में हम जितना भी प्रयत्नशील क्यों न हों, वह कम है। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम ने कल अपनी वक्तृता में जो सुझाव दिया था, उस पर विचार करने की, मैं सभा से सिफारिश करूंगा।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

और बहुत सी बातें है, जिनके सम्बन्ध में विधान के अन्तिम रूप से स्वीकृत होने के पहले सभा को बड़े ध्यान से, बड़ी सूक्ष्मता से विवेचन करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए नागरिकता का प्रश्न है, नवीन राज्यों के निर्माण का प्रश्न है, तथा उन रियासतों की स्थिति का प्रश्न है जो हमारे सरदार के योग्य नेतृत्व और अभिभावकत्व में गुटबन्द की गई हैं। इन सभी प्रश्नों पर सभा को बारीकी से विचार करना होगा। जिन रियासतों के प्रतिनिधि विधान-परिषद् में नहीं हैं, उनकी स्थिति के सम्बन्ध में भी इस विधान को अन्तिम रूप से पास करने के पहले विचार करना होगा, अन्यथा भारतीय संघ तथा इन रियासतों के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में बड़े जटिल कानूनी प्रश्न खड़े हो सकते हैं।

वाद-विवाद के प्रसंग में दो और बातों की भी चर्चा की गई है। सद्यस्कृत्य स्थिति तथा अध्यादेश के सम्बन्ध में जो शक्तियां शासन को प्रदान की गई हैं, उनकी यहां आलोचना हुई है। इस सम्बन्ध में एक बात याद रखने की यह है कि प्रधान जिस किसी भी शक्ति का प्रयोग करेगा वह अपने दायित्व पर नहीं करेगा। यहां 'प्रधान' शब्द उस समस्त निकाय के लिए ही आया है जो विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा। चाहे अध्यादेश निकालना हो, या सद्यस्कृत्य स्थिति की शक्तियों का प्रयोग करना हो, इसके लिए मंत्रि-मण्डल ही सर्वजन-निर्वाचित विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा। यह भी याद रखना चाहिए कि गत वाद-विवाद में प्रतिनिधि लोग ही थे...

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रासः जनरल): सभा-भवन में बहुत कोलाहल हो रहा है। भवन के उस कोने में शायद एक और वाद-विवाद चल रहा है।

***उपाध्यक्षः** कृपया सभा में शान्ति रखिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मैं यहां यह बता दूं कि गत वाद-विवाद में प्रान्तों के प्रतिनिधि ही—मय अपने मंत्रियों के सद्यस्कृत्यता सम्बन्धी अधिकारों के लिए औरों से ज्यादा चिन्तित थे। यह वही लोग थे जो शासन-संचालन के

अनुभव के आधार पर सद्यस्कृत्या सम्बन्धी अधिकारों को रखना चाहते थे। किस प्रकार सद्यस्कृत्यता सम्बन्धी अधिकार के प्रावधान रखे गये हैं, उसमें कोई परिवर्तन आवश्यक है या नहीं, यह सब तो और बात है। अध्यादेश सम्बन्धी अधिकार का जहां तक सम्बन्ध है, स्वाभाविक अवस्था में अध्यादेश उसी समय चालू किया जायेगा, जब कि विधान-मण्डल का अधिवेशन न होता हो। अगर विधान-मण्डल बैठा होगा, तो मैं नहीं समझता कि बालिग-मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि अपने अधिकारों के लिए इस सभा के सदस्यों से हम चिन्तित होंगे, जो अपेक्षाकृत बहुत कम मतदाताओं द्वारा निर्वाचित हुए हैं।

विधान के मसौदे पर एक सरसरी निगाह डालने से सदस्यों को यह अवश्य मालूम हो जायेगा कि यह प्रजातंत्रीय शासन के ठोस सिद्धान्तों पर आधृत है, इसमें विकास और विस्तार की सभी आवश्यक बातें वर्तमान है और यह विश्व के सर्वाधिक समुन्नत प्रजातंत्रीय विधान के समकक्ष हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि विधान कुल मिला कर वैसा ही होगा जैसा हम उसे बनायेंगे। इसका ज्वलंत उदारहण आप पायेंगे अमेरिका के विधान में, जिसे कि वहां की विभिन्न रियासतों ने जब अन्तिम रूप से स्वीकार किया था, तो उनमें इसके लिए जरा भी उत्साह और उल्लास नहीं था, किन्तु काल की कसौटी पर यह खरा उतरा है और शेष प्रजांतत्रीय विश्व इसे एक आदर्श विधान मानता है।

*__श्री के. हनुमन्थय्या__ (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने कृपा कर अपने भाषण में भारतीय रियासतों का उल्लेख किया और यह अपील कि जहां तक इकाइयों—प्रादेशिक राज्यों—का सम्बन्ध है, विधान की रूपरेखा में रियासतों और प्रान्तों के बीच कोई भेदभाव न रखना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसा विचार व्यक्त किया गया और शायद यह पहली बार ऐसी राय दी गई है। अब तक हर रियासत को अपनी विधान-सभा बनाने का अधिकार था और सम्मिलित रियासतों के संघों को भी अपने विधान बनाने के लिए विधान-सभा बुलाने का अधिकार था। हममें से कई लोग इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि रियासतों में तथा रियासती संघों में विधान-सभा बुलाई जायेंगी; उन्हें क्या अपना विधान बनाने की स्वतंत्रता है? क्या वे भारतीय विधान के अनुसार वैध होंगी? मैं आपके सामने कुछ सुझाव

[श्री के. हनुमन्थय्या]

रखना चाहता हूं जिनसे इस सम्बन्ध में हम अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर सकते हैं।

उपाध्यक्ष महोदय, मैसूर की विधान-सभा ने प्राय: आधा काम पूरा कर लिया है और यह एक मसौदा-समिति नियुक्त करने ही जा रही थी कि उसकी समझ में यह बात आई कि रियासतों की अन्य सभाओं के मत और इस महती सभा का मत सम्भवत: अन्तिम रूप से विधान तैयार करने में बहुमूल्य सिद्ध हो। यही सोचकर उसने पांच सदस्यों की एक समिति नियुक्त की है, जो अन्य रियासती विधान-सभाओं से और अगर सम्भव हुआ तो इस सभा से भी सम्पर्क स्थापित करेगी। समिति के सदस्यों के नाम भी घोषित हो चुके हैं। आशा है कि रियासतों के आये हुए प्रतिनिधि यहां सरकारी या गैर-सरकारी तौर पर अपनी अलग बैठक करके एक ऐसी नीति तय कर सकेंगे, जो इस सभा के लिए और इस देश के लिए मान्य होगी। विभिन्न रियासतों में या रियासती संघों में जो विधान-सभाएं होंगी, वह अवश्य ही, उस राय का स्वागत करेंगी, जो यहां रियासतों के प्रतिनिधि उन्हें देंगे। किन्तु इसमें कुछ रुकावटें हैं, जिन्हें मैं बता देना चाहता हूं।

अंग्रेजी राज में भी, जैसा कि आप जानते हैं, श्रीमान्, रियासतों को प्रान्तों से कुछ अधिक मात्रा में स्वायत्त-शासन का अधिकार प्राप्त था और मैं कह सकता हूं कि उसका दुरुपयोग कभी नहीं हुआ। हर रियासत को उसको स्वशासन सम्बन्धी अधिकार कितनी भी मात्रा में क्यों न प्राप्त रहा हो, भारत के हित का उन सबके मन में ध्यान रहा है और सबने तदनुसार कार्य किया है। हम लोगों को, अर्थात् रियासती जनता को ऐसा ख्याल है कि विधान का जैसा वर्तमान स्वरूप है, उसमें शायद संधान की इकाइयों को, अपने कार्यों को सुचारू रूप से निपुणतापूर्वक चलाने का पर्याप्त स्वातंत्र्य न मिलें। मसौदे को, जैसा कि इसका अब स्वरूप है—डा. अम्बेडकर क्षमा करेंगे, मेरा उनसे यहां, मतैक्य नहीं है—आवश्यकता से अधिक केन्द्रोन्मुखी बना दिया गया है। यह तो भारतीय राज्य-संघ को संघानीय न बनाकर एकात्मक बना देता है। केन्द्र को सशक्त बनाने की चिन्ता में इन लोगों ने केन्द्र को विधि-निर्माण की तथा अर्थ सम्बन्धी बहुत अधिक शक्तियां दे दी हैं और प्रान्तों एवं रियासतों के साथ ऐसा व्यवहार किया है, मानो वे प्रान्त के मण्डल (जिला)

मात्र हैं। मुझे सन्देह है कि इस प्रवृत्ति से उन्हें वह बात नहीं प्राप्त होगी, जिसे यह केन्द्र की शक्ति कहते हैं। मैं उन सबको, जिनका विधान-निर्माण में हाथ है, यह बता देना चाहता हूं कि केन्द्रीय कार्यालय में केवल फाइलों का ढेर लगे रहने से ही केन्द्र को शक्ति नहीं प्राप्त हो जायेगी। केन्द्र की शक्ति—अगर मैं इसे सही-सही समझता हूं—इसमें है कि उसके पास बलशाली सेना हो, मजबूत जहाजी और हवाई बेड़ा हो, इन सबके लिए यथेष्ट धन हो और न कि इसमें वह प्रान्तों या रियासतों के सामने अपना भिक्षा पात्र लेकर खड़ा हो। बजाय ऐसा करने के यदि केन्द्र बहुत सी शक्तियां लेता है और अपने विधि-निर्माण के क्षेत्र को बढ़ाता जाता है, तो इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्तों में प्रेरणात्मक शक्ति नष्ट हो जायेगी और वह आप से आप चलने वाले यंत्र मात्र रह जायेंगे। मैंने बड़े-बड़े विधान-विशारदों की पुस्तकें पढ़ रखी हैं। उनके अनुसार, किसी देश की स्वतंत्रता को परखने की मान्य कसौटी यह देखना है कि उसकी इकाइयों को और स्थानीय निकायों को कितनी स्वतंत्रता, कितना स्वशासनाधिकार प्राप्त है। केन्द्र की शक्ति को भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न बातों में समझते हैं और हमारी मसौदा-समिति केन्द्र की शक्ति इसी में समझती है कि केन्द्रीय कार्यालय (Imperial Secretariat) में कागजों का—फाइलों का—सदा ढेर लगा रहे। सभी इकाइयों के लिए एक सा विधान हो, इसे मानने में रियासतों के सामने यह एक बड़ी बाधा है। पहले इसके कि रियासतें प्रांतों के स्तर पर आना स्वीकार करें—मैं यहां प्रांतों और रियासतों दोनों के लिए ही कह रहा हूं—इन्हें इस बात का पक्का विश्वास दिलाना होगा कि उन्हें स्वायत्त-शासन का वास्तविक अधिकार मिलेगा; ऐसा स्वायत्त-शासन नहीं दिया जायेगा, जिसमें कुल मिलाकर प्रादेशिक-राज्यों के हित को क्षति पहुंचती हो, बल्कि उन्हें यथेष्ट अधिकार और दायित्व मिलेंगे, जिससे कि सुचारू रूप से निपुणतापूर्वक वे अपना प्रबंध कर सकें। हम भूल गये हैं कि हम यहां राष्ट्रपिता शब्द किसके लिए बार-बार प्रयुक्त कर रहे हैं। हमारे राष्ट्र-पिता ने तो यह कहा था कि हमारा विधान पिरामिड के आकार का होना चाहिए, जिसमें केन्द्र को शीर्ष-स्थान प्राप्त हो। पर हमारा प्रस्तुत विधान तो इससे बिल्कुल उलटा है। रियासती जनता के मन में यह डर है कि केन्द्र बहुत अधिक शक्ति स्वयं ले रहा है।

[श्री के. हनुमन्थय्या]

अब और ऐसी कोई बात नहीं रह गई है जिस पर काफी प्रकाश न डाला गया हो। हां, एक बात मैं कहूंगा और आशा है, मैं गलत न समझा जाऊंगा। स्टेट मिनिस्ट्री ने रियासती जनता को जितना असन्तोष पहुंचाया है, शायद उतना पूर्ववर्ती राजनैतिक विभाग (Political Department) ने भी नहीं पहुंचाया है। मैंने यहां सभा में रियासत के लोगों को यह कहते सुना है कि स्टेट मिनिस्ट्री ने रियासती जनता की राय पर ध्यान ही नहीं दिया। उसे तो राजाओं की तथा उनके दीवानों की ज्यादा फिक्र है और जनता की कोई पूछ ही नही है। ऐसा मालूम होता है, मानो राजाओं को और दीवानों को सभी चीजें दी जा रही है, पर जनता को कुछ भी नहीं। रियासतों को अगर आज मिलाकर संघ बनाये जा रहे हैं, तो यह इस कारण नहीं हो रहा है कि राजा या दीवान ऐसा चाहते थे और उन्होंने उसके लिए प्रयास किया, बल्कि यह इसलिए हो रहा है कि रियासती जनता ने, जिसने आज़ादी के आन्दोलन में भाग लिया, आज ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिसमें राजाओं को ऐसा करने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह गया है। वस्तुतः यह बड़े दुख की बात है कि राजाओं और दीवानों को खुश रखने की फिक्र में हमने जनता को भुला दिया। स्टेट मिनिस्ट्री की इस भावना को हमें यथा शक्ति ठीक करना होगा, जिससे रियासतों की जनता वस्तुतः ऐसा समझ सके कि उनको भी शेष भारत का दर्जा प्राप्त है और उनका भाग्य सुरक्षित है।

और फिर, श्रीमान्, कर-निर्धारण सम्बन्धी मामले में रियासतों को प्रान्तों से अधिक स्वातंत्र्य प्राप्त हैं। हमने उन्हें तीन विषय दे रखे हैं और इन तीनों के सम्बन्ध में अपना खर्च पूरा करने के लिए उनको काफी रकम मिल सकती है। बहुत सी रियासतें इसी समय आय-कर इकट्ठा करती हैं। अगर यह कर केन्द्र को जाये, तो इसमें हम लोगों को कोई आपत्ति नहीं है, पर आगम के अन्य करमूलक साधन रियासतों को ही दिये जाने चाहिए, ताकि वह अपना खर्च पूरा कर सकें। सही बात तो यह है कि बार-बार यह शिकायत की जा रही है कि रियासतों में, जिनका कि विलीनीकरण हो गया है, आज जनता को इतनी भी अच्छी सरकार नहीं मिली है, जितनी कि राजाओं के जमाने में वहां थी। वह राय है उन लोगों की, जो जनता के माने हुए प्रतिनिधि हैं। यह बहुत ही दुखद है। हम तो यह आशा लगाये बैठे थे कि राजाओं के हटने पर जब रियासतें प्रान्तों में मिल जायेंगी, तो रियासत की जनता को पहले से अच्छी सुविधाएं, अच्छे अवसर मिलेंगे। रियासतों

से आये प्रतिनिधि आज ऐसे दुखद विचार व्यक्त कर रहे हैं उडीसा की रियासतों में तथा दक्षिण की रियासतों में कांग्रेस सरकार के अधीन जो शासन चल रहा है, वह उतना अच्छा नहीं है जितना कि पहले राजाओं के अधीन वहां का शासन था। मैं यहां केवल मैसूर के प्रतिनिधि की हैसियत से ही नहीं बोल रहा हूं, बल्कि अन्य रियासतों के प्रतिनिधि से भी इस संबंध में बातचीत का मौका मिला है, और यह उनकी राय है।

दिल्ली, श्रीमान्, आज हमारी राजधानी हैं हम में से बहुत से सदस्य, जो दक्षिणात्य प्रदेश, बंगाल तथा देश के अन्य भाग से आये हैं, ऐसा समझते हैं कि दिल्ली कई कारणों से भारत की राजधानी के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक कुख्यात अभिशापग्रस्त नगर हो गया है। यहां जो भी राज्य रहे, उन सबको इस नगरी ने दफना दिया और उनकी कब्रें आज तक इसके इर्द-गिर्द चारों और वर्तमान है। हम नहीं चाहते कि हमारे अपने राज्य का भी यही हाल हो। इस भावुकता प्रधान कारण के आधार पर ही मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं। यहां केवल दो महीने छोड़कर बाकी साल भर हमें उग्र जलवायु का—कठोर शीत या भीषण ताप का—सामना करना पड़ता है और कोई भी मेहनत का काम करना यहां असम्भव है। देश की राजधानी देश के मध्य भाग में अवस्थित होनी चाहिए और ऐसा होना ही उचित है। हमें अपनी राजधानी को मध्यप्रान्त में या अन्यत्र कहीं उसके आस-पास रखना चाहिए।

***माननीय श्री बी.जी. खेरः** बम्बई इसके लिए और अच्छा होगा।

***श्री के. हनुमन्थय्याः** इस सम्बन्ध में मैंने अन्य कई साथियों की राय ली है और मेरा कहना है कि मध्य प्रान्त को लोग अधिक पसन्द करते हैं। मध्य प्रान्त में आप बेतुल को ही राजधानी बना सकते हैं। इस सम्बन्ध में लोग यह तर्क रखते हैं कि हमने दिल्ली के निर्माण में इतनी लम्बी रकम खर्च कर डाली और अब अन्यत्र राजधानी बनाने में फिर और खर्च करें, इसमें क्या लाभ है? दिल्ली में हम अभी भी अपने कई केन्द्रीय दफ्तर रख सकते हैं। पूर्वी पंजाब अपनी राजधानी बनाने की फिक्र में लगा हुआ है और अम्बाला को वहां वाले अपनी राजधानी बनाना चाहते हैं। हम यहां की आधी इमारतें पंजाब सरकार को देकर उनसे इसके लिए रुपया ले सकते हैं। मैं देखता हूं कि विभाजन के बाद

[श्री के. हनुमन्थय्या]

पंजाब अपना व्यय-निर्वाह नहीं कर पा रहा है और हमें उसको आर्थिक सहायता देने की जरूरत पड़ेगी तभी वह अपने पांव पर खड़ा हो सकेगा। इस दृष्टिकोण से तथा जनता का मत देखते हुए, देश और उसके भीविष्य के लिए यह अच्छा है कि दिल्ली भारत की राजधानी न रहे। हमें मध्य प्रान्त में नई राजधानी बनानी चाहिए। आपने मुझे मत व्यक्त करने का समय दिया, इसके लिए, श्रीमान्, मैं कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** पं. गोविन्द मालवीय।

***पं. गोविन्द मालवीयः** वाद-विवाद कल तक चालू रहेगा। ऐसी स्थिति में क्या आप मुझे यह सुविधा दे सकेंगे कि मैं कल बोलूं?

***उपाध्यक्षः** मैं चाहता हूं कि आप आज ही बोलें।

***पं. गोविन्द मालवीयः** उपाध्यक्ष महोदय, पहले इसके कि मैं और कोई बात कहूं मैं सदस्यों का, मसौदा-समिति का, तथा उसके योग्य प्रतिभा सम्पन्न अध्यक्ष, मित्र डा. अम्बेडकर का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं कि उन्होंने हमें यह विधान देकर बड़ा ही सुन्दर कार्य किया है। विधान-निर्माण की कठिन समस्या का उन्हें समाधान करना था और उन्होंने सफलतापूर्वक अपना काम सम्पादित किया है। मसौदे में बहुत सी ऐसी बातें हो सकती हैं, जिनके सम्बन्ध में हम किंचित परिवर्तन चाहते हों, पर ऐसा तो सभी बातों के साथ होता ही है।

मैंने आपसे समय देने के लिए जो अनुरोध किया, वह इसलिए नहीं कि मैं सभा के सामने मसौदे की उन सभी बातों को रखूं, जो मेरी समझ से, अगर कुछ ही भिन्न रूप में होती तो अच्छा था। ऐसी बातों में मतभेद होना स्वाभाविक है पर इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, अगर कुल मिला कर चीज ठीक है। उदाहरण के लिए विधान के मसौदे में कई ऐसी बातें हैं, जो अगर कुछ भिन्न रूप में होती तो मुझे ज्यादा पसन्द आतीं। प्रधान का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान द्वारा एकल संक्राम्य मत से होगा। मुझे यह व्यवस्था पसन्द नहीं हैं अगर सीधे बहुमत से प्रधान का निर्वाचन होता, तो मुझे ज्यादा पसन्द था। अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति सम्भवतः बहुत हानिकारक है, पर मैं आवश्यकता से अधिक एक मिनट भी आपका समय नहीं लेना चाहता। मैंने केवल प्रसंगात् यह उल्लेख किया है।

ऊपर वाली सभा के लिए 15 सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार प्रधान को दिया गया है। यदि वह व्यवस्था न रखी गई होती, तो मुझ प्रसन्नता होती। संघीय न्याय-मण्डल के लिए न्यायधीशों की कम से कम क्या संख्या होगी, यह तो निश्चित कर दिया गया है, पर अधिक से अधिक उनकी क्या संख्या होगी यह निश्चित नहीं किया गया है। मुझे खेद है, श्रीमान्, कि मैं आज ही आया हूं और मुझे मालूम नहीं था कि वह वाद-विवाद चल रहा है। मैं अपने कागजात भी नहीं लाया हूं, इसलिए मैं अभी बोलने के लिए तैयार नहीं था। मैं उन्हीं चन्द बातों की चर्चा करूंगा जो मुझे खटकती हैं। न्यायाधीशों की अल्पमत संख्या तो निश्चित कर दी गई है, पर अधिकतम संख्या नहीं निश्चित की गयी है। ऐसी परिस्थिति आ सकती है, जब अधिशासी-मण्डल यानी भारत सरकार इस व्यवस्था का दुरुपयोग कर अनेक नवीन न्यायाधीशों की नियुक्ति कर ले और पहले वाले अनुकूल न्यायाधीशों की उपेक्षा कर अपना काम बना ले। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा होगा ही, किन्तु जब हम देश के भावी शासन के लिए विधान बना रहे हैं, तो हम जितनी ही सावधानी बरतें, अच्छा है। इसलिए संघीय न्याय-मण्डल के न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या निश्चित कर देना मेरी समझ से ज्यादा अच्छा होगा।

विधान में ऐसी और भी बहुत सी बातें हैं जो जैसा कि मैंने कहा है, अगर कुछ भिन्न रूप में होती तो मुझे और प्रसन्नता होती। पर प्रधान बात यह नहीं है जिसके लिए मैं सभा का समय ले रहा हूं। विशेष रूप से जो बात मैं यहां कहना चाहता हूं, वह है विधान की प्रस्तावना के सम्बन्ध में। हम अपने देश के प्रति, अपने समस्त इतिहास के प्रति, अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति तथा भारतीय आदर्श के प्रति कर्त्तव्यपालन में असफल होंगे, यदि विधान के प्रारूप में दी हुई इस कुरूपा प्रस्तावना को अपनाते हैं। मैं चाहूंगा कि इसमें जगन्नियन्ता का, परमात्मा का उल्लेख हो जो समस्त विश्व की गतिविधि संचालित करता है। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि दुनियां के अन्य कई विधानों में ऐसा किया गया है। इस कारण से मैं यह सुझाव नहीं रख रहा हूं। जैसा कि मैंने कहा है, इस देश की परम्परा, इसकी समस्त संस्कृति की यह मांग है कि प्रस्तावना में परमात्मा का उल्लेख हो। इस सम्बन्ध में मैं एक ही बात कहूंगा, क्योंकि सभा का समय

[पं. गोविन्द मालवीय]

मैं नहीं, बर्बाद करना चाहता और यथासम्भव संक्षेप में मैं अपनी बात आपके सामने रखूंगा। हम यहां भारतीय जनता के प्रतिनिधि के रूप में समवेत हुए हैं। आज देश में, यदि इस सम्बन्ध में जनता की राय जानने के लिए किसी उपाय का अवलम्बन करें, तो मुझे निश्चय है कि 90 प्रतिशत से अधिक निवासी—अगर ज्यादा नहीं—ईश्वर में प्रबल विश्वास रखने वाले ही मिलेंगे। वह यही चाहेंगे कि प्रस्तावना में परमात्मा का उल्लेख अवश्य हो। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि अगर हममें से कुछ लोग अथवा सभी ईश्वर में विश्वास न रखते हों, तो भी—मैं 'अगर' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं, मैं यह नहीं कहता कि सभी नास्तिक हैं, पर अगर सभी हों भी तो—मैं ससम्मान कहूंगा कि हम अपने देश के प्रति, देशवासियों के प्रति, जिनके कि हम प्रतिनिधि हैं, कर्त्तव्य पालन में चूकेंगे यदि हम प्रस्तावना में परमात्मा का उल्लेख नहीं करते हैं, क्योंकि जैसा कि मैंने कहा है, यहां के 90 प्रतिशत से अधिक निवासी ईश्वर में विश्वास करते हैं और प्रस्तावना में भगवान का उल्लेख वह चाहेंगे। हमारी संस्कृति की, हमारे दर्शन की, हमारे सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि हमने सहिष्णुता के साथ अन्य विचारधाराओं को, बिना किसी बाधा के समाज में स्थान दिया है। नास्तिक को, शून्यवादी को—सबको—हमने समाज में स्थान दिया पर कुल मिलाकर हममें, समस्त राष्ट्र में सदा प्रबल रूप से ईश्वर में प्रगाढ़ विश्वास बना रहा है। अपने सुदीर्घ और वैभवशाली इतिहास के प्रारम्भ से ही भारतवासियों में एक परमव्यापक, सक्रिय एवं सजीव विश्वास ईश्वर में उसकी भक्ति में रहा है और यही विश्वास सदा हम लोगों के जीवन का मौलिक आधार, परमावश्यक तत्त्व रहा है। महात्मा गांधी का जीवन, हमारे राष्ट्र निर्माता का जीवन उसका एक सजीव उदाहरण है। उन्होंने जीवन भर ईश्वर-विश्वास का ही उपदेश दिया। मरते समय भी उनके मुख पर भगवान का नाम था। प्रतिदिन वह प्रार्थना करते थे और रामधुन का गीत गाते थे। मैं कहूंगा कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों और सभाओं में, विश्व में सर्वत्र भारत ने जो अपना प्रबल प्रभाव डाला है, हमारे प्रधान मंत्री ने अभी उस सम्मेलन में, जहां ब्रिटिश कामनवेल्थ के सभी देशों के प्रतिनिधि उपस्थित थे, भारत का जो प्रभाव स्थापित किया है, इसका प्रधान कारण हमारे देश की दार्शनिक पृष्ठभूमि ही है, जो आज इस समुज्ज्वल और सुखद नीति के रूप में सामने आई है, जिसका हमारे प्रिय प्रधानमंत्री प्रतिपादन करते हैं और

जिसका हमने महात्मा गांधी के नेतृत्व में सदा अनुगमन किया है। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि यदि हम ऐसा नहीं करते हैं, तो हम अपने देश के प्रति, अपने देशवासियों के प्रति अन्याय करेंगे। इसलिए आशा है, मेरे मित्र डा. अम्बेडकर तथा अन्य बन्धु इस पर विचार करेंगे और मेरी समझ से जो दोष है जो बात छूट गयी है उसको ठीक करेंगे।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि विधान में हमें देश का नाम रखना चाहिए। मैं तो ऐसे विधान की कल्पना नहीं कर सकता, जिसमें हमारे देश को 'इंडिया' कहा गया हो। मैं इसके लिए कोई विशेष नाम आपके सामने नहीं रखूंगा। जो भी नाम सभा को अच्छा लगे, रखा जाये, मुझे उससे सन्तोष है। किन्तु मेरा कहना यह है कि अपने देश को विधान में 'इंडिया' नाम देना ठीक नहीं है। अगर आवश्यक हो तो कुछ समय के लिए अपने दिए हुए नाम के बाद ब्रैकेट में 'इंडिया' शब्द भी हम रख सकते हैं या ''(Known in English as India)'' यह रख सकते हैं जैसा कि आयरलैंड वालों ने किया है। किन्तु अपने देश के लिए 'इंडिया' नाम रखना तो बड़ा हास्यास्पद मालूम पड़ता है। यह हुई दूसरी बात, जो मैं सभा के विचारार्थ कहना चाहता था।

तीसरी बात, जिसे मैं यहा रखना चाहता हूं, वह कुछ नाजुक बात है आशा है कोई भी मित्र मुझे गलत न समझेंगे। अपने भाषण में डा. अम्बेडकर ने अल्पसंख्यकों के प्रश्न की चर्चा की है। आपने विभाजन के सम्बन्ध में आयरलैंड की विधान विषयक कार्यवाहियों का उल्लेख किया है। किन्तु वह यह भूल जाते हैं कि ''भाड़ में जायें आपके संरक्षण; मैं आपके द्वारा शासित होना ही नहीं चाहता''। कहने वाला कासग्रेव नामक व्यक्ति अगर वहां था, तो उसकी पीठ पर सारी अंग्रेजी हुकूमत का हाथ था। हमारे यहां तो अब ऐसा कोई नहीं है। मुझे निश्चय है कि अब कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग वस्तुत: यह न चाहेगा कि उसका एक पृथक राज्य हो। इस सम्बन्ध में मुझे एक बात कहनी है। मैं यह नहीं कहता कि हम अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्था न रखें। अवश्य ही हमें उनके संरक्षण के लिये हर सम्भव आश्वासन उन्हें देना चाहिए, न केवल शब्दों द्वारा बल्कि अपने कार्यों द्वारा। पर मैं कहना यह चाहता हूं, श्रीमान्, कि स्थान-संरक्षण के सम्बन्ध

[पं. गोविन्द मालवीय]

में जो अनुच्छेद विधान में है, उसमें एक और धारा जोड़ी जानी चाहिए। मैं इस अनुच्छेद को यों ही रहने देना चाहता हूं, उसमें कोई कमी नहीं करना चाहता। अल्पसंख्यकों को संरक्षण अवश्य दिया जाये। इस सम्बन्ध में अभी जो खण्ड है, उसमें कहा गया है कि दस वर्ष के बाद संरक्षण की व्यवस्था स्वत: समाप्त हो जायेगी, यदि अन्यथा निर्णय न हुआ। मेरा कहना इतना ही है कि अगर अल्पसंख्यक अथवा उनका कोई वर्ग, दस वर्ष के पहले ही खुद यह चाहे कि उसके संरक्षण या विशेष प्रतिनिधान की व्यवस्था हटा ली जाये, तो इस अनुच्छेद के कारण उसमें कोई बाधा न पड़नी चाहिए। जैसा मैंने कहा है, आशा है लोग मुझे गलत न समझेंगे। मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि जो संरक्षण उनको दिये गये हैं, उनमें रंच मात्र भी कमी की जाये। मेरा कहना इतना ही है कि हो सकता है कि अल्पसंख्यक स्वयं ही इस व्यवस्था को उठा देने का फैसला करें और हमें इस सम्भावना को ध्यान में रखना चाहिए। आशा है, सभा इस सम्बन्ध में अनुकूल व्यवस्था करेगी।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि विधान के अन्त में एक ऐसा प्रावधान होना चाहिए, जिसके अनुसार एक निश्चित अवधि में विधान को हमेशा दुहराया जाये। मैं जानता हूं, विधान में संशोधन करने के लिए खूब सोच-विचार से बनाया हुआ एक प्रावधान रखा गया है। फिर भी मैं ऐसा समझता हूं कि इस प्रावधान के अनुसार चलना आसान नहीं है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि विधान सम्बन्धी संशोधन के लिए किसी सरल प्रावधान में मैं विश्वास नहीं करता। बल्कि मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि विधान में संशोधन करने के लिए हमें एक कठोर प्रावधान ही रखना चाहिए, किन्तु मेरी समझ से विधान में एक ऐसा प्रावधान होना ही चाहिए, जिससे कुछ वर्षों के अनुभव के बाद केवल एक बार विधान का पुनरावलोकन किया जा सके और उसके फलस्वरूप जो परिवर्तन सुझाये जायें उनके सम्बन्ध में साधारण बहुमत द्वारा निर्णय हो जाये। केवल एक बार के पुनरावलोकन के लिए ही प्रावधान होना चाहिए। इस सुझाव की विस्तार की बातों के सम्बन्ध में मेरा कोई विशेष आग्रह नहीं है। तीन वर्ष बाद, पांच वर्ष बाद या सात वर्ष के बाद, चाहे जब आप पुनरावलोकन करें। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि विधान

में एक ऐसा प्रावधान होना चाहिए, जिससे तीन या पांच वर्षों के अनुभव के बाद विधान की एक आवृत्ति हो ही और तब केन्द्र तथा प्रान्तों के लोगों का जो अनुभव है, उसके आधार पर जो भी संशोधन आवश्यक हो, स्वीकार किये जायें। इसके बाद मेरा अपना भी यही मत है कि विधान में संशोधन करने के लिए जो प्रावधान हम रखें, वह अवश्य यथाशक्य कठिन ही हों।

मुझे यह चिन्ता है कि कहीं आप घंटी बजाकर मुझे बैठने का आदेश न दे दें। इसलिए अब मैं अपनी बात समाप्त करता हूं। यही कई सुझाव में सभा के सामने रखना चाहता था और इसके लिये आपने मुझे अवसर किया एतदर्थ मैं आपका कृतज्ञ हूं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, बैठक के स्थगित होने के पहले क्या मैं यह जान सकता हूं कि विचाराधीन प्रस्ताव के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से क्या कार्यक्रम रहेगा?

***उपाध्यक्ष:** कल के बाद कोई यह कहने का दावा न कर सकेगा कि विचारार्थ और समय मिलना चाहिए।

सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

तत्पश्चात् सभा मंगलवार, ता. 9 नवम्बर, सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।

Con. 3. VII.5.48
350

अंक 7
संख्या 5

मंगलवार
9 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव–(*जारी*) 357

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 9 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी), अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुकर्जी): मुझे विश्वास है कि सभा की यह इच्छा है कि माननीय डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर साधारण वादानुवाद आज समाप्त कर दिया जाये। मैं यह देख रहा हूं कि उन्हीं तर्कों को बार-बार दुहराया जा रहा है और इसलिये मैं यह अनुरोध करता हूं कि जो लोग आज बोलें, वे उन प्रश्नों को न उठायें जिन पर विचार हो चुका है।

***श्री आर. शंकर** (ट्रावनकोर): श्रीमान्, विधान का मसौदा बनाने वालों ने जिस योग्यता से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, उसके लिये मैं आरम्भ में ही उनको बधाई देना चाहता हूं और विशेषत: डा. अम्बेडकर ने अपने तेजस्वी भाषण में जिस स्पष्टता और योग्यता से विधान के मसौदे के आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या की है, उसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूं। मैं विधान के मसौदे की विस्तृत व्याख्या न कर उसके सम्बन्ध में केवल एक दो बातों की ही चर्चा करके संतोष कर लूंगा। मेरे विचार से एक बहुत ही सशक्त केन्द्र और बहुत कुछ अशक्त और एक समान प्रदेश ही विधान के मसौदे की मुख्य बातें हैं। डा. अम्बेडकर ने बड़ी सच्चाई के साथ रियासतों के प्रतिनिधियों से यह आग्रह किया है कि उनका रुख ऐसा होना चाहिये कि सभी रियासतों और प्रान्तों के लिये यह सम्भव हो सके कि वे एक ही स्तर पर आ जायें और कुछ समय के उपरान्त रियासत और प्रान्त बिना किसी विभेद के समान रूप से संधान के अंग हो सकें। परन्तु मेरे

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री आर. शंकर]

विचार से कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण रियासतों के बीच आपस में तथा रियासतों और प्रान्तों के बीच विभेद है। उनमें से कुछ तो बहुत उन्नत हैं और कुछ ऐसी है, जो अपेक्षाकृत कम समुन्नत हैं। वास्तव में वे रियासतें पिछड़ी हुई हैं। कुछ रियासतें ऐसी है, जहां पांच प्रतिशत लोग भी साक्षर नहीं हैं। कुछ रियासत ऐसी हैं, जहां पचास प्रतिशत से भी अधिक लोग साक्षर है। कुछ रियासतें ऐसी हैं, जिन्होंने आय-कर लगाया है और कुछ ऐसी हैं, जिन्होंने आय-कर लगाया ही नहीं है। वास्तव में रियासतों के बीच इतने विभेद हैं कि कुछ रियासतों और प्रान्तों के बीच भी उतने विभेद नहीं हैं और इसलिये रियासतों और प्रान्तों के बीच उनके वर्तमान रूप में किसी भी प्रकार की समानता की आशा नहीं की जा सकती है। उन्नत रियासत का उदाहरण देने के लिये मैं ट्रावनकोर की रियासत को लेता हूं, जिसका कि सौभाग्य से मैं प्रतिनिधित्व करता हूं। मेरे विचार से ट्रावनकोर भारत की सर्वोन्नत रियासतों में से है। कुछ बातों के सम्बन्ध में तो वह प्रान्तों से भी आगे है। उसकी इस स्थिति का कारण यह है कि बहुत समय से उसके आगम के साधनों का सदुपयोग होता रहा है और बहुत पहले से वहां के नरेश उस रियासत को उन्नत करने के लिये सचेष्ट रहे हैं। आज दिन वह भारत में सबसे समुन्नत औद्योगिक क्षेत्रों में से है। वहां पचास प्रतिशत से अधिक लोग साक्षर हैं। यद्यपि वह एक छोटी रियासत है, जिसका कि क्षेत्रफल केवल 7662 वर्ग मील है, तथापि उसका आगम 9 करोड़ रुपया है। इस समय उसका शिक्षा-व्यय दो करोड़ रुपया है, औषधि तथा लोक-स्वास्थ्य व्यय आधे करोड़ से अधिक है और ग्रामोन्नति पर भी उसका बहुत व्यय होता है। राष्ट्र निर्माण के अन्य कार्यों में भी वह रियासत बड़ी-बड़ी धनराशियां व्यय करती है। परन्तु यदि कल विधान का यह मसौदा कानून का रूप धारण कर लेता है, तो इस रियासत का भविष्य क्या होगा? साधारणतया सभी रियासतों के लोगों को और विशेषतया ट्रावनकोर के लोगों को यही चिन्ता है। हमारा निराक्रम्य आगम लगभग 1 करोड़ रुपया है। हमें आय-कर से लगभग 2 करोड़ का आगम और अन्य संधानीय मदों से लगभग एक करोड़ का आगम प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में जिस दिन से विधान का यह मसौदा कानून का रूप धारण कर लेगा, इस रियासत की लगभग 45 प्रतिशत आय केन्द्रीय आगम का भाग हो जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि ट्रावनकोर जैसी रियासत अपनी वर्तमान शासन-कुशलता में उन्नति करना तो अलग रहा, उसे बनाये भी न रख सकेगी। रियासतों के लोग इस चित्र को बहुत कुछ इस दृष्टिकोण से देखते हैं। बहुत से नरेशों ने, जो अभी तक लोगों के रास्तें में रोड़ों के समान थे, अपने

राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का निश्चय कर लिया है और इस सम्बन्ध में ट्रावनकोर के नरेश ने कोई बात उठा नहीं रखी है। लोगों को अब इसकी चिन्ता है कि वे रियासत के शासन-कार्य को कम से कम उस ढंग से भी कैसे चलायेंगे जैसे कि वह पुराने अनुत्तरदायी शासन-काल में चलता रहा है। मुझे विश्वास है कि इस सभा के माननीय सदस्यों के ध्यान में यह बात आयेगी कि ट्रावनकोर जैसी रियासत के लिये बहुत ही संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। जब तक मेरी जैसी रियासत के लिये किसी प्रकार की आय-सम्बन्धी स्वतंत्रता प्रवाहित न की जायेगी, तो आज तक जिस उन्नति के स्तर पर वह रही है, उसे बनाये रखना उसके लिये असम्भव हो जायेगा। बहुत काल के संघर्ष के बाद लोग यह आशा लगाये बैठे हैं कि रियासतों की वर्तमान उत्तरदायी सरकारें उनके सैकड़ों प्रश्नों को, विशेषतः आर्थिक प्रश्नों को हल करेंगी। परन्तु यदि रियासतों की स्थिति आगे चल कर अच्छी होने के बजाय पहले से बुरी हो जाये, तो वे कुछ भी न कर सकेंगी और किसी भी प्रश्न को हल न कर सकेंगी। जब यह सभा इस मसौदे पर विचार करे, तो इन बातों की ओर ध्यान दें।

दूसरा प्रश्न जिसके बारे में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं, भाषा का प्रश्न है। उत्तर भारत के माननीय सदस्यों में, जिनकी मातृभाषा हिन्दी या उर्दू है, इसके लिये बहुत उत्साह दिखाई देता है कि इस भाषा को एकाएक उन लोगों पर लाद दिया जाये, जो इसका एक शब्द भी नहीं समझते हैं। यद्यपि दक्षिण में राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रचार करने के लिये बहुत काम किया गया है, परन्तु यदि आप गांवों में जायें तो आप देखें कि एक प्रतिशत लोग भी हिन्दी नहीं जानते हैं। यदि आप शिक्षा को दृष्टि से उन्नत ट्रावनकोर या कोचीन ऐसी रियासतों को भी देखें, तो आपको एक प्रतिशत लोग भी ऐसे न मिलेंगे जो आज भी हिन्दी या उर्दू समझ पाते हैं। इसलिये मैं उन सदस्यों से, जिनको इस सम्बन्ध में बहुत उत्साह है, यह प्रार्थना करता हूं कि वे कुछ समय के लिये राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को स्थगित कर दें और दक्षिण तथा पूर्व के लोगों को उससे पर्याप्त रूप से परिचित होने का अवसर दें। निस्संदेह सभी जगह लोग हिन्दी के पक्ष में हैं। केवल कुछ समय—दस या बीस वर्ष—देना होगा। इस बीच अंग्रेजी का वही स्थान रहना चाहिये, जो अभी तक उसका रहा है। यदि ऐसा हो जाये तो मेरे विचार से भारत के किसी भाग से भी कोई व्यक्ति हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने में आपत्ति न करेगा।

चूंकि मेरा समय बीत चुका है, मैं इन शब्दों के साथ समाप्त करता हूं।

***श्री एम. थिरूमल राव** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस विधान निर्मातृ सभा में आये हुये एक नये सदस्य के नाते मुझे इस समय जिन थोड़ी सी बातों को कहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन पर सहिष्णुता से विचार करने की प्रार्थना करता हूं।

इस समय महान् परिवर्तनों का आरम्भ काल है और हमें अपने भविष्य की ऐसी रूपरेखा निश्चित करने की शक्ति प्राप्त है, जो हमारी संस्कृति तथा हमारी परम्परा के अनुरूप हो। निस्संदेह हमारे सम्मुख जो विधान उपस्थित किया गया है, उस पर 150 वर्ष के ब्रिटिश शासन की अमिट छाप लगी हुई है। मैं विधान की विस्तृत व्याख्या नहीं करना चाहता। मैं उसके केवल एक अंग के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं, अर्थात् इस प्रश्न पर कि क्या इस देश को ब्रिटिश कामनवेल्थ का सदस्य रहना चाहिये या नहीं।

श्रीमान्, लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में स्पष्टतया यह कहा गया है कि हमारे राज्य का आधार पूर्णतया सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणतंत्र होना चाहिये। श्रीमान्, संसार की वर्तमान गतिविधि को देखते हुये यह उचित ही है कि भारत को आरम्भ से ही अपने पैरों खड़ा होने का प्रयास करना चाहिये और प्रत्यक्ष रूप से हमें दिखा देना चाहिये कि अपने देश के अनुरूप अपनी संस्थाओं को उन्नत करने में हम समर्थ हैं। निस्संदेह ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और ऐसे अन्य लोग जो साम्राज्यवादी रहे हैं इस सम्बन्ध में सशंक हैं कि कहीं हम ब्रिटिश साम्राज्य से अलग न हो जायें। पिछले कई वर्षों की घटनाओं के फलस्वरूप 'साम्राज्य' से ऐसी भावना व्यक्त होती है कि अब उससे किसी प्रकार का वैधानिक सम्बन्ध रखने का समय नहीं रह गया हैं हमें यह जान लेना चाहिये कि यह बात ठीक न होगी कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद या ब्रिटिश कामनवेल्थ से स्थायी रूप से अपना गठबंधन करके हम रूस या अमेरिका ऐसी शक्तियों के द्वेष के भागी बनें।

चाहे इसके विपरीत कुछ भी कहा जाये, इस समय भी शक्ति-संतुलन के सिद्धान्त का संसार की वर्तमान समस्याओं पर पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है और भारत को, जिसका कि हिन्द महासागर में प्रशांत, अन्ध तथा भूमध्य महासागरों के बीच एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, विश्व शांति के लिये एक विशेष दायित्व निभाना है। यद्यपि हमारा राष्ट्र शैशवावस्था में है और हमारे रक्षा के साधन बहुत ही अपर्याप्त हैं, परन्तु यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय जगत में कोई ऐसी बात न करें, जिससे कोई देश हमसे बिछुड़ जाये। इसलिये यदि हम स्पष्ट रूप से यह

बता दें कि पूर्णतया सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र राज्य ही हमारा आदर्श है और इसी व्यावहारिक आधार पर हम अपने विधान का निर्माण कर रहे हैं, तो भविष्य में हमसे अमेरिकावासी जैसे लोगों का बिछोह न होगा।

ऐंग्लो अमेरिकन गुट के सम्बन्ध में बहुत सी बड़ी-बड़ी बातें कही गई हैं, परन्तु अमेरिका में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से द्वैषभाव वर्तमान है। अमेरिकावासियों ने इस बात को समझ लिया है, यहां तक कि अमेरिका के जनतंत्री पत्रों ने भी यह जान लिया है कि भारत को इसलिये शक्तिशाली बनाने के लिये, ताकि वह रूस से पूर्व को चली आने वाली राजनैतिक शक्तियों की बाढ़ के खिलाफ बांध का काम कर सके, उन्हें अपने वाणिज्य व एकाधिपत्य का कुछ मात्रा में त्याग करना होगा। इस दृष्टि से मेरे विचार में हमारे विधान में पूर्णतया गणतंत्रात्मक और स्वतंत्र सर्वसत्ता की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे निकट भविष्य में जो देश हमारी सहायता और सहयोग प्राप्त करने के इच्छुक होंगे, वे हमारा आदर करने लगेंगे और थोड़ी बहुत हमारी सहायता भी करेंगे।

अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में हमें आस्ट्रेलिया और कनाडा के विधानों से शिक्षा लेनी चाहिये, क्योंकि इन देशों में केन्द्र और प्रान्तों के कुछ ऐसे सम्बन्ध है कि अभी भी उनके सम्बन्ध में न्यायालयों में विवाद उपस्थित किये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में अभी हाल में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के लिये जो प्रयत्न किया गया था, वह इसका एक दृष्टान्त है। केन्द्र बैंकों का राष्ट्रीयकरण चाहता था, परन्तु प्रान्तों ने इसका विरोध किया। अपने देश के विकास को दृष्टि में रखते हुये हमें केन्द्र और प्रान्तों के ऐसे सम्बन्ध निश्चित करने हैं कि उनसे देश का हित हो। निस्संदेह हमें एक सशक्त केन्द्र की आवश्यकता है, परन्तु सशक्त केन्द्र का अर्थ यह न होना चाहिये कि प्रान्त अशक्त हो जायें। प्रान्तों को भी अपने विभिन्न कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये तथा अपनी योजनाओं के विकास के लिये समान रूप से सशक्त होना चाहिये। अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिये तथा केन्द्र को सशक्त बनाने में अपना योग देने के लिये उनके पास पर्याप्त आर्थिक साधन होने चाहिए।

देश-रक्षा के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि अंग्रेजों की कूटनीतिपूर्ण चालों के फलस्वरूप हमारे बीच दुर्भाग्य से फूट पड़ गई है। चाहे पाकिस्तान हो या भारत, जहां तक देश-रक्षा का सम्बन्ध है, भारत अखण्ड है। पाकिस्तान के उत्तर में तथा उत्तर पूर्व में भारतीय संघ के विस्तृत प्रदेश हैं। और वह इतना छोटा

[श्री एम. थिरूमल राव]

देश है कि उसे अपने रक्षार्थ अपने साधनों का भारत के साधनों के साथ एकीकरण करना होगा। हमारी सीमायें पाकिस्तान से भी आगे हैं और हमारी पूर्वी सीमा आसाम से भी परे है और यदि हमें इन्हें सुसम्बद्ध बनाना है, तो हमें रियासतों को सुगठित करना होगा और पाकिस्तान से भी एक प्रकार की सन्धि करके उसे इस संधान के महासंधान में सम्मिलित करना होगा।

श्रीमान्, मेरे सम्मुख उस समय का चित्र है जब कि नवीन राज्यों के लिये बहुत काल तक पृथक प्रदेशों के रूप में रहना असम्भव हो जायेगा। यह एक बुद्धिमत्ता का प्रस्ताव था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, मुद्रा और रक्षा जैसे कुछ उद्देश्यों के लिये इन दो राज्यों को एक हो जाना चाहिये। मैं यह समझता हूं कि निकट भविष्य में, हो सकता है अगले दस वर्षों में, यदि हम अपने विधान का समुचित रूप से विकास कर सके तो इस प्रकार का एका होना असम्भव नहीं है।

श्रीमान्, मुझे एक बात और कहनी है। हम लोग असाम्प्रदायिक राज्य के बारे में बहुत कुछ कहते रहे हैं। असाम्प्रदायिक राज्य का क्या अर्थ है? मेरे विचार से असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म का इतना महत्त्व न होगा कि राज्य के अन्य कार्य गौण हो जायें। परन्तु हमें इसे स्पष्ट कर देना चाहिये कि विधान द्वारा इस देश की प्राचीन परम्परा और संस्कृति की पूर्ण रक्षा होगी।

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे जो समय दिया गया था, वह समाप्त हो गया है परन्तु यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं अपने भाषण को एक मिनट में समाप्त किये देता हूं।

यदि आप इंग्लैंड की पार्लियामेंट को, जो सभी पार्लियामेंटों की जननी है और इंग्लैंड की अन्य संस्थाओं की ओर दृष्टिपात करें; चाहे वे विश्वविद्यालय हों या न्यायालय हों या अन्य संस्थायें हों, तो आप देखेंगे कि वे गिरजे से किसी न किसी प्रकार संलग्न हैं। यद्यपि मैं अपनी संस्थाओं में इस सीमा तक धर्म को स्थान देने के पक्ष में नहीं हूं, परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि हमें अपनी संस्कृति, अपनी राष्ट्रीय विशेषताओं और अपनी परम्परा की रक्षा करनी चाहिये। विधान द्वारा इनकी रक्षा होनी चाहिये। हम जहां कहीं भी जायें, हमें यह न भूलना चाहिये कि हमारा

राष्ट्र सांकर्य दोष से युक्त केवल विभिन्न संस्कृतियों का बेमेल सम्मिश्रण मात्र नहीं है, किन्तु हमारी अपनी संस्कृति है, अपना शासन है और अपनी सभ्यता है। विधान में इसका प्रतिबिम्ब होना चाहिये।

*__श्री राजबहादुर__ (मत्स्य संघ): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस बहस में भाग लेने के लिये इसी कारण से मैंने आपसे समय लिया है, कि मैं इस महती सभा का ध्यान उन दो बातों की ओर दिलाऊं, जिनसे कि मेरी समझ में हमारी नवप्राप्त स्वतंत्रता तथा देश की एकता और अखण्डता को पूरा खतरा है और जिनकी ओर संकेत करने को मेरी कर्त्तव्य-भावना मुझे प्रेरित कर रही है, मुझे आशा है और मेरी यह इच्छा है कि यह सभा हमारी स्वतंत्रता के नवीन तथा सुकुमार पुष्प की इन दो संकटों से रक्षा करने के लिये विधान में समुचित संरक्षणों की व्यवस्था करेगी। ये संकट इतने गम्भीर है कि इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मेरा संकेत ''प्रान्तीयता'' तथा ''साम्प्रदायिकता'' की विभीषिकाओं की ओर है, जो ''महान् बलिदान'' के उपरान्त भी अभी मृतप्राय नहीं हुई है। इस ''महान् बलिदान'' से मेरा अर्थ राष्ट्रपिता के बलिदान से है। अब यह दिखाई देता है कि साम्प्रदायिकता का भूत निश्चित रूप से दफना दिया गया है, परन्तु कल मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि मि. इस्माइल और मि. लारी जैसे माननीय सदस्यों ने...

*__नवाब मोहम्मद इस्माइल खां__ (संयुक्तप्रान्त: मुस्लिम): मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि कल मैं बोला नहीं।

*__श्री राजबहादुर:__ इस सभा में कुछ सदस्यों ने कल अनुपाती प्रतिनिधित्व और पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों की ओर संकेत किया था। श्रीमान्, मेरे कहने का अर्थ यह है कि यदि हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहें, तो जिस प्रकार हमने अपने विधान में अस्पृश्यता के अभिशाप का अन्त करने के लिये एक प्रावधान रखा है, इसी प्रकार हमें उन प्रवृत्तियों की रोकथाम के लिये, जिनके कारण हमारे देश का विभाजन हुआ है, किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था करनी होगी। मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि देश के विभाजन के फलस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई है, वह हमारे राजनैतिक जीवन में इस समय भी दुखदायी सिद्ध हो रही है। चूंकि हम अभी विभाजन के दुखद परिणामों से मुक्त नहीं हुये हैं, इसलिये इस स्थिति से लाभ उठाने के लिये देश में ऐसे लोग और ऐसी शक्तियां वर्तमान हैं, जो साम्प्रदायिकता से परिपूर्ण राजनीति के पुनरुत्थान तथा उसे चिरस्थायी बनाने के लिये

[श्री राजबहादुर]

यत्नशील है। जब हम अपना विधान बनायें तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम इन कलुषित शक्तियों को अपनी स्वतंत्रता को संकट में न डालने दें।

मैं यह कहूंगा कि हमारा देश एक और संकट से पीड़ित हो सकता है। वह ''सामन्तवाद'' का संकट है, जिसका कि इस समय राजपूताना की कुछ रियासतों में बोलबाला है। हमारे राज्य-मंत्री की मेधावी शक्ति से रियासतों का प्रश्न सुचारू रूप से हल हो गया है, परन्तु फिर भी मैं यह कहूंगा कि राजपूताना की विभिन्न रियासतों में अब भी जनता इन सामन्तशाही जमींदारों के प्रभुत्व से पीड़ित हैं वहां अब भी जागीरदारी की प्रथा प्रचलित है और जिन गरीब किसानों की स्वतंत्रता से सांस नहीं ले पा रहे हैं। इन जागीरदारों की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और इसलिये मुझे आशा है कि जिस प्रकार रियासतों का प्रश्न सुचारू रूप से हल कर दिया गया है, उसी प्रकार इन सामन्तशाही जमीदारों के प्रश्न को भी सुचारू रूप से सुलझा कर हल कर दिया जायेगा।

सामन्तवाद की चर्चा करते हुये मेरा ध्यान स्वभावत: रियासतों के प्रश्न की ओर आकर्षित होता है। इस सभा के विचारार्थ विधान का मसौदा उपस्थित करते हुए माननीय कानून मंत्री ने दोहरी राजनैतिक व्यवस्था की चर्चा की थी। परन्तु मैं देखता हूं कि इस विधान में रियासतों के लिये प्रान्तों के विधानों से भिन्न विधानों को रख कर तिहरी राजनैतिक व्यवस्था प्रवाहित की गई है। हम यह देखते हैं कि रियासतों को अपनी पृथक सेनाओं को रखने दिया गया है। हम यह भी देखते हैं कि उनके विधान उन्हीं की पृथक् विधान-परिषदें बनायेंगी। इसके अतिरिक्त उनके अपने पृथक् न्याय-मण्डल होंगे और रियासतों के लोगों को अपने मूलाधिकारों के रक्षार्थ भी सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख अपील करने का अधिकार न होगा। पृथक सेनायें, पृथक विधान-परिषद् और पृथक न्याय-मण्डल ऐसी बातें हैं, जिनसे हम लोग, रियासतों से आये हुये लोग बहुत चिंतित हैं और मैं यह अनुभव करता हूं कि अब इस समय तो हमें भारतीय संघ के विभिन्न अंगों के विभेद को समाप्त कर ही देना चाहिये। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह आशा की जा सकती है कि नरेशों ने जिस प्रकार राष्ट्र के हित में अपनी शक्तियों का परित्याग किया है, उसी प्रकार राष्ट्र को सुगठित बनाने के लिये वे रियासतों को प्रान्तों के स्तर में लाने के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। मेरे विचार से इस प्रकार

के किसी प्रावधान की भी व्यवस्था करना सम्भव हो सकेगा कि राजप्रमुखों का वही पद हो, जो गवर्नरों का है। विभिन्न प्रान्तों में गवर्नरों की जो शक्तियां हैं, वही शक्तियां राजप्रमुखों की भी होनी चाहिये, परन्तु साथ ही मैं श्री व्यास के इस अनुरोध का समर्थन करता हूं कि गवर्नर के उच्च पद के लिये निर्वाचित होने का अधिकार एक साधारण मनुष्य को भी प्राप्त होना चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि गवर्नर का उच्च पद केवल नरेशों तक ही क्यों सीमित रखा जाये और रियासतों के सम्बन्ध में उसके लिये नियुक्ति उन्हीं की इच्छा पर क्यों निर्भर हो?

अब मैं आदरपूर्वक एक और बात की ओर संकेत करना चाहता हूं, जो अभी हाल ही में हमारे राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध में ज्ञात हुई है और वह यह है कि आजकल सभी प्रान्तों में हमारे मंत्रियों की बड़ी आलोचना हो रही है। वह आलोचना निराधार हो, परन्तु इस प्रकार की आलोचना तो की ही जा रही है कि वे अपने जीवन में गांधी जी के आदर्शों का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। वे हवाई जहाजों से यात्रा करते हैं, विशाल भवनों में रहते हैं, इत्यादि। इसलिये मैं समझता हूं कि हमारे विधान में कोई ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिसमें कि इसका उल्लेख हो कि मंत्रियों का आचरण किस प्रकार का हो ताकि आगे चलकर इतिहासकार यह निर्णय न करें कि हम अपने कर्त्तव्यपालन में असमर्थ रहे।

अन्त में श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि विधान में राज्य-परिषद् के लिये जो प्रावधान रखा गया है, वह मुझे अनावश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि उत्तरागार के कारण लोगों की उन्नति के मार्ग में बाधा ही पड़ी है। यह प्रतीत होता है कि इस प्रावधान को रखकर पश्चिमी देशों की दासत्व भाव से नकल की गई है। मेरे विचार से यह अनावश्यक है।

मुझे आशा है कि यह सभा मेरे सुझावों पर यथासमय विचार करेगी।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रासः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे यह देख कर खेद हुआ है कि मसौदा-समिति के सदस्य उस आधारभूत बात को भूल गये हैं, जिसके फलस्वरूप यह विधान-परिषद् अस्तित्व में आई और उनको भारत के विधान के इस मसौदे को तैयार करने का अवसर मिला। उनसे यह आशा की जा सकती थी कि वे हमारे सम्मुख यह बात साफ तौर पर रख देते कि यह विधान उस

[प्रो. एन.जी. रंगा]

विधान-परिषद् द्वारा बनाया जा रहा है, जो इस देश के अगणित शहीदों और स्वतंत्रता संग्राम के सैनिकों के परिश्रम के फलस्वरूप अस्तित्व में आई और जिस स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया; परन्तु इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त यह विधान-परिषद् अस्तित्व में आई और यह कि हमारे राष्ट्र के लिये स्वतंत्रता के अधिकार को प्राप्त करने के लिये अगणित स्त्री-पुरुषों ने निरंतर जो संग्राम किया, उसके लिये हम कृतज्ञ हैं। अपने स्वतंत्रता-संग्राम के इन शहीदों की सेवाओं की प्रशंसा में हम कम से कम इतना तो कह ही सकते हैं। मुझे आशा है कि समय आने पर यह सभा इस मसौदे में इस आशय के आवश्यक संशोधन को स्थान देगी।

श्रीमान्, अब मैं यह कहूंगा कि डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के बारे में जो कुछ कहा, उसे सुन कर मुझे बहुत दुख हुआ। उन्होंने हमारे देश की जनतंत्रात्मक परम्परा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यदि वे पिछले एक सहस्त्र वर्ष से अधिक काल में दक्षिण भारत में ग्राम-पंचायतों ने जो उन्नति की है, उससे परिचित होते तो वे ऐसी बातें न कहते। यदि उन्होंने भारत के इतिहास को उतनी ही सावधानी से पढ़ा होता, जितनी सावधानी से उन्होंने अन्य देशों के इतिहास पढ़े हैं, तो वे ऐसी बातें कदापि न कहते। श्रीमान्, मैं इस सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि इस विधान में अधिक से अधिक राजनैतिक संस्थाओं को प्रवाहित किया जाये, ताकि हमारी ग्रामीण जनता जनतंत्रात्मक संस्थाओं से अधिक से अधिक परिचय प्राप्त कर सके, जिससे वे जनतंत्र के नवीन युग में प्रौढ़ मताधिकार द्वारा अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके। हमारे देश में इन ग्राम-पंचायतों के अभाव में हमारे जन साधारण के लिये यह कैसे सम्भव होगा कि वे जनतंत्रात्मक व्यवस्था में यथोचित भाग ले सकें? श्रीमान्, क्या हम शासन-प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण चाहते हैं, अथवा केन्द्र-विघटन? महात्मा गांधी तीस वर्ष तक केन्द्र-विघटन के पक्ष में अपना तर्क उपस्थित करते रहे। कांगेस जनों के नाते हमने केन्द्र-विघटन की प्रतिज्ञा ली है। वास्तव में सारा संसार इस समय केन्द्र विघटन के पक्ष में है; परन्तु यदि हम केन्द्रीयकरण के पक्ष में हैं, तो मैं इस सभा को यह चेतावनी देना चाहता हूं कि इससे केवल सोवियत-व्यवस्था अथवा एकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित हो सकेगी और जनतंत्र स्थापित न हो सकेगा। इसलिये श्रीमान्, मैं तथाकथित सशक्त केन्द्र

के नारे के पक्ष में नहीं हूं। आधुनिक औद्योगिक उन्नति तथा आर्थिक दशाओं के फलस्वरूप केन्द्र का सशक्त होना, उत्तरोत्तर सशक्त होना, अवश्यम्भावी है। इसलिये आरम्भ में ही केन्द्र को विशेष रूप से शक्तिशाली बनाने का प्रयास अनावश्यक ही नहीं, संकटापन्न भी है। आरम्भ में अपने लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में हमने यह कहा था कि प्रान्तों को अवशिष्ट अधिकार दिये जाये, परन्तु मसौदा बनाने वालों ने यह समझा कि इन दो वर्षों के अल्पकाल में लोकमत बिल्कुल ही बदल गया है और केन्द्र को अत्यन्त शक्तिशाली बनाने के पक्ष में हो गया है।

निस्संदेह मैं इतने अधिक विषयों को समवर्ती विषयों के रूप में रखने के पक्ष में नहीं हूं। जैसा कि श्री सन्तानम् ने कहा था कि जिस विषय को आप आज समवर्त्ती विषय समझ रहे हैं, वह पांच या दस वर्ष में ही पूर्णतया संधानीय विषय हो सकता है। इसलिये यद्यपि मैं अवशिष्ट अधिकारों को केन्द्रीय सरकार के लिये छोड़ने के लिये तैयार हूं किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि जिस प्रकार उन्हें विधान के मसौदे में अशक्त बना दिया गया है उस प्रकार उन्हें अशक्त न बनाना चाहिये।

श्रीमान्, अत्यधिक केन्द्रीयकरण का निश्चित रूप से यही परिणाम होगा कि केन्द्रीय सरकार सशक्त न होगी, बल्कि केन्द्रीय सचिवालय सशक्त हो जायेगा। केन्द्रीय सचिवालय में एक चपरासी और दफादार से लेकर सेक्रेटरी तक प्रत्येक व्यक्ति अपने को किसी प्रान्तीय प्रधान मंत्री से बड़ा आदमी समझने लगेगा और प्रान्तों के प्रधान-मंत्रियों को केन्द्र से किसी प्रकार की सूचना प्राप्त करने के लिये दफ्तर-दफ्तर में ठोकर खानी पड़ेगी। धारा-सभाओं के सदस्यों के नाते हम यह जानते हैं कि मंत्रियों को सचिवालय में इन सेक्रेटरियों के कार्य पर पूर्ण नियंत्रण रखने में कितनी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। इस दशा में प्रान्तीय सरकारों को अपना दास बनाना और उन्हें केन्द्रीय सचिवालय और केन्द्रीय नौकरशाही के प्रभुत्व में रखना बहुत ही संकटापन्न होगा।

श्रीमान्, मैं अवश्य ही प्रान्तीय सीमाओं के पुनर्निर्धारण के पक्ष में हूं, परन्तु इसको दृष्टि में रखते हुये कि इसकी सम्भावना की जांच के लिये विधान-परिषद् के अध्यक्ष महोदय ने एक भाषा-सम्बन्धी आयोग नियुक्त किया है। मेरे विचार से इस सभा में इस विषय पर विस्तृत वादानुवाद नियमानुकूल न होगा। जब यह विषय विचाराधीन है और इस आयोग ने अपनी सम्मति प्रकट नहीं की है, तो प्रधानमंत्री और उपप्रधान मंत्री से लेकर इस सभा के एक साधारण सदस्य तक प्रत्येक व्यक्ति

[प्रो. एन.जी. रंगा]

को अपना मत प्रकट करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि भाषा के आधार पर प्रान्तों की सीमाओं के पुनर्निधारण का प्रश्न विचाराधीन है। यद्यपि मुझे एक भाषा-भाषी प्रान्तों के पक्ष में बहुत कुछ कहना है, परन्तु इस समय मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

हमारे आदर्श क्या होंगे? हमने मूलाधिकारों के अध्याय में तथा निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में अपने कुछ आदर्शों का उल्लेख किया है। परन्तु क्या यह आवश्यक नहीं है कि इन निदेशक सिद्धान्तों में से किसी एक में हम इसे पूर्णतया स्पष्ट कर दें कि राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक गांव और गांवों के प्रत्येक समूह में ग्राम-पंचायतों को स्थापित करे, जिससे ग्रामीणों को स्वायत्त-शासन की शिक्षा पाने और सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में ग्रामीण स्वायत्त-शासन की स्थापना में सहायता मिल सके? इस प्रकार से ग्राम-पंचायतें हमारे विधान की आधारशिला सिद्ध होंगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मैं प्रान्तों और रियासतों के बीच किसी विभेद का समर्थन नहीं कर सकता। ऐसा क्यों हो कि प्रान्त तो डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के समान बना दिये जायें और इन रियासतों को सभी प्रकार के विशेषाधिकार दिये जायें? इन रियासतों को अपनी विधान-परिषद् स्थापित करने और अपने विधान बनाने की आज्ञा क्यों दी जाये? या तो हम सशक्त राज्यों को बना सकते हैं और भारतीय रियासतों तथा प्रान्तों को इसी प्रकार का होना चाहिये या हम अशक्त राज्यों तथा प्रान्तों का निर्माण कर सकते हैं जैसा कि इस विधान में प्रस्तावित है। मैं प्रान्तों और राज्यों को अशक्त बनाने के प्रस्ताव का कभी भी समर्थन नहीं कर सकता। मैं शक्तिशाली राज्यों के पक्ष में हूं। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि भारतीय रियासतों के मेरे माननीय मित्र सभी साधनों का एकीकरण करने में हमारे साथ सहयोग करें और फिर हम सभी इस प्रस्ताव पर एकमत हो जायें कि सभी भारतीय रियासतों और प्रान्तों को एक ही स्तर पर रखा जाये और उनको यथासम्भव शक्तिशाली बनाया जाये।

श्रीमान्, हमने अपने लक्ष्यों का वर्णन करते हुये अपने ग्रामीण लोगों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। औद्योगिक श्रमिकों का निस्संदेह कुछ उल्लेख है। निस्संदेह औद्योगिक श्रमिक अभागे हैं, परन्तु वे ग्रामीणों से अधिक अभागे नहीं हैं। हमें अपने गांवों के सम्बन्ध में इस ओर भी ध्यान देना चाहिये। अब तक पर्याप्त विलम्ब

हो चुका है और न होना चाहिये। निस्संदेह भारतीय कांग्रेस के सन् 1942 ई. के बम्बई के प्रस्ताव में खेतों, कारखानों, इत्यादि में काम करने वालों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। परन्तु इस विधान में उनका उल्लेख नहीं किया गया है। उल्लेख किया गया है तो केवल औद्योगिक श्रमिकों का किया गया है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि हम जो कुछ भी करें वह गांवों में, कस्बों में, खेतों में तथा कारखानों, इत्यादि में काम करने वालों के लाभ के लिये हो।

श्रीमान्, अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में मैं यही कहूंगा कि जहां तक महान् मुस्लिम जाति का सम्बन्ध है, मैं उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने में पक्ष में नहीं हूं। वे अपनी जाति को अब इतनी गई बीती नहीं समझ सकते कि उनके लिये इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता हो। उनमें से एक मित्र ने आगे बढ़कर यह भी कहा है कि उनको इस प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता नहीं है।

मैं द्विवेश्म विधान-मण्डल के पक्ष में नहीं हूं और विशेषत: प्रान्तों में तो इस प्रकार की व्यवस्था होनी ही नहीं चाहिये। द्वितीय सभा की व्यवस्था करने से उन्नति के मार्ग में बाधा ही पड़ेगी। कुछ लोगों का यह विचार है कि बिना इस प्रकार के अवरोध के कार्य सुचारु रूप से, नहीं चल सकता परन्तु मेरे विचार से इससे केवल अनुदारता का प्रादुर्भाव होगा। इसलिये हमें इस प्रकार की व्यवस्था न करनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त कुछ मित्रों ने यह मत प्रकट किया था कि इस विधान को एक डण्डे के समान बेलोच बना देना चाहिये। मैं बेलोच डण्डों के पक्ष में नहीं हूं। मैं एक लचीला विधान चाहता हूं। हमने यह देखा कि पिछले दो वर्षों में हमें कभी एक तरफ जाने की आवश्यकता पड़ी, तो कभी दूसरी तरफ जाने की; कभी अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को देने पड़े, तो कभी केन्द्र को सौंपने पड़े। फिर अगले दस वर्षों में तो अपने अनुभवों के आधार पर हमें कई वैधानिक परिवर्तन करने पड़ेंगे। अभी तक हमें कोई अनुभव नहीं है। हमारे वैधानिक सलाहकार सारे संसार में घूमे और उन्होंने राजनीतिज्ञों से परामर्श किया और यहां वापस आकर उन्होंने कई संशोधनों को स्थान देने की राय दी। हम नहीं जानते हैं कि जब यह विधान स्वीकार हो जायेगा और हमारे नये विधान-मण्डल अस्तित्व में आ जायेंगे, तो अगले दस वर्षों में हमें अपने विधान में न जाने कितने संशोधन करने पड़ें। इसलिये कल माननीय प्रधानमंत्री ने कम से कम अगले दस वर्षों में आवश्यक

[प्रो. एन.जी. रंगा]

वैधानिक संशोधनों को स्थान देने की सुविधा के लिये विधान को यथासम्भव लचीला बनाने के पक्ष में जो मत प्रकट किया, उसका मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मसौदा-समिति के विधान के इस मसौदे को हमारे सम्मुख रखते ही इसके सम्बन्ध में बहुत सी आधारभूत आपत्तियां की गई थीं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इस विधान में हमारी प्राचीन संस्कृति तथा परम्परा का कहीं भी प्रतिबिम्ब नहीं हैं यह सच है कि पश्चिम के प्राचीन विधानों के अंशों को लेकर उनको बेमेल ढंग से इसमें स्थान दिया गया है और यहां तक कि वहां के कुछ नवीन विधानों की उपेक्षा भी की गई है और साथ ही सन् 1935 ई. के भारत सरकार के अधिनियम की नकल की गई है। यह सच है कि इन सबके अंशों को लेकर उन्हें एक साथ रखा गया है। इसके लिये डा. अम्बेडकर उत्तरदायी नहीं है। इस प्रकार के विधान का उत्तरदायित्व हम ही लोगों पर है। हमने इसकी चिन्ता नहीं की कि हम इसमें कुछ ऐसी विशेष बातों को स्थान दें, जिनसे हमें अपनी प्राचीन सभ्यता का स्मरण हो आये। इसमें हमारा ही अधिक दोष है और डा. अम्बेडकर का उतना दोष नहीं है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि डा. अम्बेडकर ने विधान के विभिन्न प्रावधानों का विश्लेषण किया और दुर्भाग्य से उसके कुछ अंगों पर जोर दिया तथा ग्राम-पंचायतों, ग्रामीण स्वायत्त-शासन और जनतंत्र पर उन्होंने अपना मत प्रकट किया। वह चाहते तो इन प्रश्नों के सम्बन्ध में हमारे सामने तथा इस सभा के सामने विवाद खड़ा न कर सकते थे। श्रीमान्, मेरी अपनी इच्छा तो यह है कि यह विधान स्वतंत्र ग्राम-पंचायतों पर आधृत होना चाहिये। यदि इस सभा या किसी अन्य सभा के लिये किन्हीं व्यक्तियों को चुनने इत्यादि जैसे कुछ सार्वजनिक कामों के लिये ही लोग एकत्रित हों और इसके अतिरिक्त सामूहिक रूप से उन्हें कोई कार्य करने को न हो, तो जनतंत्र का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। भारत में इस समय यही होता है। गांव के लोगों को अभी तक जनतंत्र के योग्य अपने को बनाने के लिये कोई भी अवसर नहीं मिला है। उन्होंने किसी के साथ मिलकर उत्तरदायित्व को वहन नहीं किया है। वे बहुत ही अनुत्तरदायी हैं। अंग्रेजों ने इसे सामने रख कर और इस स्थिति को बनाये रख कर हम पर 150 वर्ष तक शासन किया। उन्होंने हमारी स्वतंत्रता के तत्वों को, हमारी अकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था को तथा हमारी ग्राम-पंचायतों को विनष्ट कर दिया। वे शासन का संकेन्द्रण चाहते थे और उन्होंने सारी शक्ति गवर्नर-जनरल को और अन्ततोगत्वा ब्रिटिश पार्लियामेंट को

प्रदान कर दी थी। इसी दृष्टि से उन्होंने ऐसी कार्यवाही की, जिससे गांव अपना शासन स्वयं न चला सकें। हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि जिस सामाजिक व्यवस्था को हम स्थापित करने जा रहे हैं, उसकी इकाइयां ग्राम ही हों। ग्रामों में भी मैं चाहता हूं कि परिवार ही इकाई समझा जाये, यद्यपि सम्पूर्ण भारत के लिये हम जो कार्य करें, उनके लिये व्यक्ति को ही इकाई समझा जाये और वही मतदान दे। गांवों का इस आधार पर पुनर्निर्माण होना चाहिये, अन्यथा वे केवल व्यक्तियों के समूह मात्र रह जायेंगे और उनका कुछ भी सार्वजनिक उद्देश्य न रह जायेगा। इस दशा में वे यदाकदा ही एकत्रित होंगे और उन्हें अपनी यथोचित आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त न होगा।

अपनी वर्तमान परिस्थिति में क्या हमारे लिये यह सम्भव है कि हम तुरन्त ही अपने विधान को ग्राम-पंचायतों पर आधृत करें? मैं इसे स्वीकार करता हूं कि हमारा लक्ष्य यही होना चाहिये। परन्तु ये ग्राम-पंचायतें हैं कहां? हमें उन्हें स्थापित करना है। वर्तमान परिस्थिति में पश्चिमी विधानों पर आधृत जो विधान हमारे सामने रखा गया है, उससे अच्छा विधान हम बना ही नहीं सके। इसलिये मेरी यह राय है कि हमें अपने निर्देशक सिद्धांतों के साथ एक खण्ड इस बात पर जोर देने के लिये जोड़ना चाहिये कि भविष्य में जो सरकारें अस्तित्व में आयें, वे ग्राम-पंचायतों को स्थापित करें और उन्हें राजनैतिक स्वायत्त-शासन तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करें, ताकि वे अपने प्रश्नों को स्वयं अपने ढंग से हल कर सकें। आगे चल कर एक समय ऐसा आयेगा, जब हम इन स्वतंत्र पंचायतों के आधार पर एक विधान बना सकेंगे। कल हमारे नेता, हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने यह कहा था कि इस विधान को पांच वर्ष तक अस्थायी रूप से स्वीकार किया जाये, ताकि इस काल में हमें जो कुछ भी अनुभव हो, उसके आधार पर भविष्य में प्रौढ़ मताधिकारियों द्वारा निर्वाचित एक परिषद् उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सके। मैं उनके कथन का समर्थन करता हूं। मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि मसौदा-समिति ने जो विधान हमारे सम्मुख रखा है, उसे इस संरक्षण के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए और उसे अन्तिम रूप दे देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इस विधान के विरुद्ध एक और आलोचना की गई है और मेरे विचार से वह अधिक गम्भीर आलोचना है। साधारण व्यक्ति के लिये राजनैतिक जनतंत्र का कुछ भी अर्थ नहीं है, जब तक कि उसके साथ आर्थिक जनतंत्र संलग्न न हो। मूलाधिकारों में भाषण देने के अधिकार, सभाओं में भाषण देने के अधिकार, इच्छानुसार लिखने के अधिकार आदि का आश्वासन दिया गया है, परन्तु

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

जीवित रहने के अधिकार का कोई आश्वासन नहीं दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य के लिये जीवन धारण करने के लिये खाना और कपड़ा आवश्यकीय है। क्या कहीं विधान में एक शब्द भी इस आशय का है कि प्रत्येक मनुष्य को खाना और कपड़ा राज्य देगा? राज्य को प्रत्येक व्यक्ति के लिये आजीविका के साधन उपलब्ध करने चाहिये। रूस ने इस प्रश्न को हल करने का बीड़ा उठाया है और वह खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करने तथा प्रत्येक नागरिक को भोजन देने के लिये उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करने के लिये संचित है। इंग्लैंड में यदि सरकार एक नागरिक को भी भूख से मरने दे, तो वह एक दिन के लिये भी पदारूढ़ नहीं रह सकती। बंगाल में अकाल से 35 लाख लोग मर गये, परन्तु हमने उससे कोई शिक्षा नहीं ली। क्या हम इसी प्रकार की दुर्घटनायें होने देंगे? क्या विधान में इस आशय का एक शब्द भी है कि आने वाली सरकारों पर इसका दायित्व है कि भारत में कोई व्यक्ति भूख से न मरे। जब तक लोगों को जीवन धारण के साधन ही उपलब्ध नहीं हैं, तो यह कहने से क्या लाभ है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा दी जायेगी और प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक अधिकार प्राप्त होंगे, इत्यादि? इंग्लैंड में सरकार को या तो प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका प्रदान करनी होती है, या उसे कुछ धन देना होता है ताकि वह भूख से न मरे। यह बड़े खेद की बात है कि हमने अपने विधान में इस आशय का कोई प्रावधान नहीं रखा है। मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि अब भी इसे स्थान दिया जा सकता है। चाहे अन्य बातों को हम स्थगित कर दें, परन्तु हमें इसकी चिंता करनी चाहिये।

एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है और उसकी व्यवस्था करनी है, अन्यथा भारत में केवल आन्तरिक अशांति की ही सम्भावना न होगी, किन्तु वह युद्ध-ग्रस्त भी हो सकता है। लड़ाई के बादल उमड़ रहे हैं। शक्ति प्राप्ति और संसार के प्रभुत्व के लिये दो विचारधाराओं में संघर्ष है। एक तरफ तो पश्चिम का जनतंत्र है, परन्तु उसके साथ अमेरिका का आर्थिक एकतंत्र भी है। हम आर्थिक एकतंत्र को किसी प्रकार भी नहीं चाहते, परन्तु जनतंत्र को अवश्य चाहते हैं। रूस में राजनैतिक जनतंत्र तो नहीं है, परन्तु आर्थिक जनतंत्र है। दोनों शक्तियों के बीच संसार के प्रभुत्व के लिये संघर्ष है और इस कारण किसी समय भी युद्ध छिड़ सकता है। क्या इस विधान में कहीं इसका भी उल्लेख है कि हम आर्थिक जनतंत्र तथा राजनैतिक जनतंत्र के पक्ष में हैं? लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में अस्पष्ट रूप से केवल यह कहा गया है कि सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा। आर्थिक न्याय का कुछ भी अर्थ हो सकता है और कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता है। इसलिये

में यहीं पर और इसी समय यह कह देना चाहता हूं कि ऐसी कार्यवाही की जानी चाहिये कि आने वाली कोई भी सरकार उत्पादन के साधनों को गैर-सरकारी माध्यमों के हाथ में न दे सके। हमने देखा है कि गैर-सरकारी माध्यमों के हाथ में देने से क्या होता है। जहां तक कपड़े का सम्बन्ध है, नियंत्रणों को हटाने के कुछ ही दिनों बाद दाम चढ़ गये। हम सभी कारखानों को अपने हाथ में क्यों न ले लें और कपड़े को स्वयं क्यों न तैयार करें? खाने के सम्बन्ध में भी इस सरकार के और पिछली सरकार के सभी प्रकार के प्रयत्न करने पर भी क्या हम पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ उत्पन्न कर सके हैं और उन्हें देश में वितरित कर सके हैं? इसलिये मैं यह कहूंगा कि अब इस देश के लिये वह समय आ गया है, जब इसे अपना पुराना मार्ग छोड़ देना होगा। हमें पश्चिम के आर्थिक एकतंत्र और रूस के राजनैतिक एकतंत्र का अनुसरण न करना चाहिये। हमें मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, जिससे हमें राजनैतिक जनतंत्र तथा आर्थिक जनतंत्र दोनों प्राप्त हों। यदि हमें एशिया का रक्षक होना है, एक नया मार्ग प्रशस्त करना है, तथा भविष्य में किसी भी युद्ध में संलग्न नहीं होना है, तो इसी प्रकार हम सफल हो सकते हैं। हमें संतुष्ट होकर बैठे न रहना चाहिये। साम्यवाद फैल रहा है। उत्तर में साम्यवाद का ही बोलबाला है और वह हमारे दरवाजे तक ही पहुंच गया है। चीन को तो साम्यवादी बहुत कुछ निगल ही गये हैं। हिन्द-चीन का भी यही हाल है। बर्मा भी उनके चंगुल में फंसा हुआ है। मैं कह नहीं सकता कि कलकत्ते मे टेलीफोन के तारों को किसने तोड़-फोड़ दिया। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि वहां पानी की कल और बिजलीघर को भी तोड़-फोड़ देने की चेष्टा हो रही है। एक अफवाह यह भी फैली हुई है कि दिल्ली में भी वाटर वर्क्स विभाग और बिजली के विभाग में हड़ताल होने जा रही है। जब तक हम इस देश में आर्थिक जनतंत्र स्थापित करने का निश्चय न कर लेंगे और उसके लिये अपने विधान में समुचित व्यवस्था न कर देंगे, हम अपने देश में साम्यवाद के प्रवाह को न रोक सकेंगे।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात, जिसकी व्यवस्था करना आवश्यक है, यह है कि हमारे देश का यथाशीघ्र सुसंगठन होना चाहिये। कल अपने मित्र श्री हनुमन्थय्या के शब्दों को सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ। रियासतों के लोग भारत के अन्य लोगों के साथ मिलने के लिये चिंतित थे। वे नरेशों से छुटकारा पाना चाहते थे। हमने उनकी सहायता की। जब उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली, तो अब वे इन नरेशों से आगे बढ़ना चाहते हैं और अपनी रियासतों में स्वयं शासक हो जाना चाहते हैं। बड़ी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

और छोटी दोनों प्रकार की रियासतें भारत से पृथक होना चाहती हैं। वे उसी विधान को क्यों न स्वीकार कर लें, जो प्रान्तों के लिये बनाया गया है?

*__श्री के. हनुमन्थय्या__ (मैसूर): श्रीमान्, अपनी बातों का स्पष्टीकरण करने के लिये मैं यह कहना चाहता हूं कि मैंने किसी भी रियासत के लिये पृथक् स्थान या स्वतंत्रता की मांग नहीं की है।

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर: एक दृष्टिकोण इस प्रकार का है कि यदि रियासतें भारत में समाविष्ट हो जायें, तो वे अपनी छोटी सी जगहों में अपने प्रधानमंत्री रखने के अजीब अधिकार से वंचित हो जायेंगी। उनको अवश्य यह असुविधा होगी, परन्तु भारत के शेष भागों के स्तर पर आने से उनको लाभ ही होगा। वे भारत के शेष भागों को अपना क्यों नहीं समझते और तीन चार विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों को अपने ही लिये क्यों सुरक्षित रखते हैं?

(इस समय उपाध्यक्ष महोदय ने घण्टी बजाई)

किसी विधेयक के सम्बन्ध में समय का कोई प्रश्न नहीं उठता, परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि आपने काल-सीमा रखी है।

*__उपाध्यक्ष__: आपको दूसरों के सामने आदर्श रखना चाहिये।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__: आप जो कुछ कहते हैं, उसे मैं स्वीकार करता हूं। मुझे कई अवसर मिलेंगे और उस समय मैं इसे स्पष्ट कर दूंगा।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी__ (आसाम : जनरल): श्रीमान्, इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वादानुवाद में भाग लेने का जो अवसर आपने मुझको प्रदान किया है, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। परन्तु अन्य बातें कहने के पहले मैं मसौदा-समिति के सदस्यों, उसके योग्य सभापति और सबसे अधिक अपने वैधानिक सलाहकार की प्रशंसा में अपना भी योग देना चाहता हूं, जिन्होंने अपने युवाकाल में मेरे गरीब प्रान्त के लिये जो सेवायें कीं, वे अब भी बड़े स्नेह और बड़ी कृतज्ञता से स्मरण की जाती है।

परंतु मैं यह कहूंगा कि यह मसौदा दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता इसमें दोनों

ही प्रकार के दोष है। जो बातें होनी ही न चाहियें थीं, वह इसमें वर्तमान हैं और जो होनी चाहिये थीं, वे इसमें है नहीं। इनकी ओर मैं अपने भाषण में संकेत करूंगा। पहला प्रश्न जो मेरे ध्यान में आता हैं और जिस पर इस सभा को विचार करना चाहिये, यह है कि क्या आसाम का राज्य इस विधान-सम्बन्धी अधिनियम की प्रथम अनुसूची में रखा जाना चाहिये या नहीं। इस समय परिस्थिति कुछ जटिल हो गई है और आपको हमेशा के लिये ऐसे उपायों के बारे में निश्चय कर लेना चाहिये और उन्हें इस विधान में प्रवाहित कर लेना चाहिये, जिनसे आसाम भारत में रह सके। मेरा संकेत इस ओर है कि जहां तक मेरे प्रान्त का सम्बन्ध है, उसके आर्थिक साधनों की दुखद उपेक्षा की जा रही है। प्रतिवेदन में यह कहा गया है कि पांच वर्ष तक स्थिति को यथापूर्व बनाये रखना चाहिये, जिसका अर्थ यह है कि पांच वर्ष के अन्त में आसाम प्रान्त की महत्त्वपूर्ण प्रान्तों में गिनती न हो सकेगी। श्रीमान्, मैं इसे कुछ विस्तार से कहूंगा। इस समय उस प्रान्त के खर्च में एक करोड़ रुपये की कमी है और वहां का कुल आगम, जिसमें भारत सरकार से प्राप्त धन भी सम्मिलित है, चार करोड़ रुपया है; परन्तु वहां पांच करोड़ रुपया व्यय हो चुका है। यदि आपको किसी भारतीय प्रान्त के शासन-प्रबन्ध को निम्न से निम्न स्तर पर भी रखना है, तो उसके लिये कम से कम आठ करोड़ रुपये की आवश्यकता है। यह धन कहां से आयेगा? हम बहुत दिनों से कहते चले आये हैं कि हमें पेट्रोल और मिट्टी के तेल की उत्पाद-बलि तथा चाय की निर्यात-बलि का एक भाग मिलना चाहिये, परन्तु यद्यपि परिस्थिति बहुत बिगड़ गई है, परन्तु अभी तक कुछ नहीं किया गया है। मसौदा-समिति ने उस प्रान्त की विशेष दशाओं को जानते हुये भी उसके लिये किसी प्रकार का वर्जन नहीं किया। श्रीमान्, हमने वहां अधिक से अधिक कर लगा दिया है। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा हमारे यहां करों की दर बहुत अधिक है और हमने 4:3 के अनुपात से अपने ऊपर कर लगाया है, जब कि अन्य प्रान्तों में उसका अनुपात 4:9 है। हमने अन्य प्रान्तों से बहुत पहले अपने यहां कृषि-आय पर कर लगाना आरम्भ कर दिया था तथा आमोद-प्रमोद तथा सुख-विलास के साधनों पर भी उनसे पहले कर लगा दिया था परन्तु फिर भी उस प्रान्त की हालत बहुत खराब है। और मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि यदि आपको आसाम को वास्तव में भारत में रखना है, तो आपको विधान में उसके लिये कोई विशेष आर्थिक प्रावधान रखना है और उसकी ओर कुछ विशेष ध्यान देना है, अन्यथा उसका दिवाला निकल जायेगा। राजनैतिक दृष्टि से भारत एक है और यदि उसका एक अंग भी सड़ जाये, तो अन्त में उसका सारा शरीर सड़ जायेगा। यदि आप इस समय आसाम को बर्बाद होने देंगे, तो आप देखेंगे कि अन्त में आपकी भी वही दशा होगी।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं एक और बात की ओर संकेत करना चाहता हूं और वह अनुच्छेद 149 के सम्बन्ध में हैं मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक ऐसे संशोधन का सुझाव रखा गया है, जिसे यदि प्रयोग में लाया गया तो एक संकटपूर्ण सिद्धान्त का निरूपण होगा, जिससे एक आम जनसमुदाय एक अत्यंत अल्पसंख्यक समुदाय में परिणत हो जायेगा। मेरा संकेत उस संशोधन की ओर है जिसका सुझाव मसौदा समिति ने रखा है और जो इस प्रकार है:-

> ''That in clause (3) of article 149, after the words 'save in the case of the autonomous district of Assam' the words 'and in case of constituencies having seats reserved for the purposes of article 294 of this Constitution' be substituted''.

> ''(अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में 'आसाम के स्वायत्त-शासी जिलों को छोड़कर, शब्दों के बाद 'और इन निर्वाचन-क्षेत्रों को छोड़ कर, जिनके लिये इस विधान के अनुच्छेद 294 के प्रयोजन के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं' शब्द जोड़ दिये जायें।)''

यदि इसको प्रयोग में लाया गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि जिन सम्प्रदायों के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं, उनके निर्वाचन-क्षेत्र होंगे, जिनकी जनसंख्या एक लाख से कम होगी, परन्तु जनसाधारण के ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र होंगे, जिनकी जनसंख्या एक लाख होगी। इसका अर्थ यह होगा कि सुरक्षित जगहें अधिक वजनी हो जायेंगी, जिसकी कि किसी भी सम्प्रदाय में मांग नहीं की है। प्रान्त में जनसंख्या का अनुपात इस प्रकार है:

पहाड़ी वन-जातियां..	18 प्रतिशत
मुसलमान..	17 प्रतिशत
अनुसूचित जातियां	4 प्रतिशत
और जनसाधारण...	34 प्रतिशत

यह आपने किस प्रान्त में देखा है कि वहां के जनसाधारण की जनसंख्या कुछ 74 प्रतिशत जनसंख्या में से 34 प्रतिशत होने पर भी उन सम्प्रदायों को विशेष रूप से वजनी बनाया गया है, जिनकी जनसंख्या कुल जनसंख्या की 18 प्रतिशत और 17 प्रतिशत है। यदि यह संशोधन स्वीकार किया गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि जनसाधारण को अपनी कुछ जगहों से हाथ धोना पड़ेगा और जनसंख्या के आधार पर वे जो कुछ पाने के अधिकारी हैं, उससे उन्हें कम मिलेगा। यह

एक संकटपूर्ण सिद्धान्त है। यद्यपि इस संशोधन में केवल एक ही प्रान्त का उल्लेख है परन्तु इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी कि जनसाधारण एक अल्पसंख्यक समुदाय में परिणत हो जायेंगे और उन लोगों को वजन मिल जायेगा, जिनके लिये जगह सुरक्षित रखी गई हैं। जो प्रस्ताव मैंने रखा है उससे वन जातियों की आबादियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि उनके अपने स्वायत्तशासी जिले होंगे। मुझे तो यह निश्चित रूप से दिखाई देता है कि यदि आप एक लाख जनसंख्या के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करते हैं, तो सुरक्षित जगहों के सम्बन्ध में पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। परन्तु इस सम्बन्ध में सबसे अच्छी बात यह होगी कि एक लाख लोगों के निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था से आसाम को छूट दे दी जाये।

मैं एक और बात की ओर संकेत करूंगा, जिसकी कि उपेक्षा की गई है। विधान के मसौदे में औरतों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मेरे विचार से चूंकि मसौदा-समिति एक अजीब ढंग की थी और उसमें ऐसे लोग थे, जिनके औरतों से किसी प्रकार के भी पारिवारिक सम्बन्ध न थे, इसलिये उनको इस विषय को उठाने में घबराहट का अनुभव हुआ। इस सभा में औरतों के एक विशेष निर्वाचन-क्षेत्र की कभी भी चर्चा नहीं हुई। मैं यह जानता हूं कि यहां ऐसी महिलायें हैं, जिनका पुरुषों की उदारता पर असीम विश्वास है और जिनका यह विचार है कि चाहे उनके लिये विशेष निर्वाचन-क्षेत्र सुरक्षित न रखे जाये, परन्तु वे पर्याप्त जगहें प्राप्त कर सकेंगी। परन्तु इस सभा से बाहर इस प्रकार की भावना नहीं है। साधारणतया पुरुषों की उदारता के बारे में महिलाओं का विश्वास उठ गया है। ट्रामों और बसों तक में आजकल के नवयुवक उनका आदर नहीं करते हैं।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य अपने भाषण की काल-सीमा तक पहुंच गये हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मुझे एक व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति करनी है। इस प्रकार के विधेयकों के सम्बन्ध में मैंने नियमों में किसी काल-सीमा का उल्लेख नहीं पाया।

***उपाध्यक्षः** वह इस सभा की अनुमति से ही निश्चित की गई थी। पहले दस मिनट का समय रखा गया। फिर यह बढ़ाकर पन्द्रह मिनट कर दिया गया और फिर बीस मिनट कर दिया गया और फिर घटाकर दस मिनट कर दिया गया।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मुझे पार्लियामेंट का और दुनियां का जो अनुभव है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि औरतों के लिये एक अलग निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था करना बुद्धिमता की ही बात होगी। हम जानते हैं कि जब कोई औरत कोई चीज मांगती है, तो उसे प्राप्त करना और उसे दे देना आसान है, परन्तु जब वह किसी विशेष चीज को मांगती ही नहीं तो यह पता लगाना कठिन होता है कि वह क्या चाहती है। यदि आप उन्हें एक अपना निर्वाचन-क्षेत्र दे देंगे, तो वे अपनी दौड़ धूप स्वयं कर लेंगी और बिना सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र में आये हुये ही आपस में स्वयं लड़ लेंगी, वरना यह हो सकता है कि कभी हम कमजोरी का अनुभव करें और उनके पक्ष में झुक जायें और उन्हें ऐसी जगह दे दें, जिनके लिये वे अधिकृत ही न हों।

श्रीमती रेणुका राय (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान्, विधान के मसौदे के मुख्य अंगों में जनतंत्रात्मक संधान के सिद्धान्त सन्निहित हैं और इसलिये वह सभी की प्रशंसा के योग्य है। साथ ही कुछ बातें ऐसी हैं जो मेरे विचार से उसमें स्पष्ट नहीं हैं और कुछ बातें ऐसी हैं कि यदि हमें इस विधान को उन आदर्शों के अनुरूप बनाना है, जिनको लेकर भारत ने कई वर्षों तक संघर्ष किया है और जो उस लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में सन्निहित हैं, जिसकी ओर कल हमारे प्रधानमंत्री महादेय ने संकेत किया था; तो हमें उनमें परिवर्तन करना होगा। श्रीमान्, मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर की इस बात से सहमत हूं कि वास्तव में जिस भावना से विधान को प्रयोग में लाया जाये, उसका महत्त्व होता है। मेरी यह धारणा है कि कागज का विधान चाहे जैसा भी हों, वास्तव में महत्त्व होना है उस भावना का, जिससे वह प्रयोग में लाया जाता है। हम चाहे जैसा भी विधान बनायें, हम इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं कि व्यवहार में वह हमारी आवश्यकताओं और हमारी जाति की अन्तरात्मा के अनुरूप होगा या नहीं। इसलिये जैसा कि कल प्रधानमंत्री महोदय ने कहा था कि इस समय विधान को लचीला होना चाहिये। मेरे विचार से अगले दस वर्षों तक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि विधान में सीधे-सीधे बहुमत से संशोधन हो जाने चाहिये, ताकि हम अपने अनुभव के आधार पर उसमें परिवर्तन कर सकें।

जहां तक नागरिकता सम्बन्धी खण्ड का प्रश्न है मेरे विचार से उसमें इस प्रकार की निश्चयोक्ति होनी चाहिये कि एकल एक समान नागरिकता होगी और सभी के समान अधिकार और स्वत्व होंगे। चूंकि अधिकारों के साथ कर्त्तव्य भी संलग्न है, इसलिये इस खण्ड में नागरिक के कर्त्तव्यों की भी गणना होनी चाहिये।

मूलाधिकारों के अध्याय में समान अधिकार निर्धारित किये गये हैं। यह कहना ठीक ही है कि राज्य धर्म, जाति और स्त्री-पुरुष के आधार पर नागरिकों के बीच विभेद नहीं करेगा। परन्तु इस देश की परिस्थिति को तथा लोगों की कुछ सम्मितियों को ध्यान में रखते हुये, चूंकि अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय की उदारता से हम पर गहरा प्रभाव पड़ा है, मेरे विचार से इस आशय का एक स्पष्ट प्रावधान रखने की आवश्यकता है कि विभिन्न सम्प्रदायों के विवाह और उत्तराधिकार के सामाजिक नियमों के कारण वर्ण या लिंग के आधार पर किसी प्रकार की अयोग्यता उत्पन्न न होगी। निस्संदेह समता के अधिकार का यही अर्थ है, परन्तु कई प्रकार की व्याख्यायें हो सकती हैं, जिनसे अर्थ-भ्रम हो सकता है। इसलिये मैं सभा से यह अनुरोध करती हूं कि इसकी व्याख्या के लिये एक प्रावधान रख दिया जाये।

मेरे माननीय मित्र अनन्तशयनम् आयंगर ने जो कुछ कहा है, उसे मैं नहीं दुहराऊंगी, परन्तु जनसाधारण के आर्थिक अधिकारों के सम्बन्ध में मैं यह अनुभव करती हूं कि कुछ कमी रह गई है। यद्यपि मैं इससे सहमत हूं कि यह प्रावधान कि ''कोई व्यक्ति बिना विधि-प्राधिकार के अपनी सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा'' एक अधिकार है, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि न्याय अधिकारों के अधीन इस खण्ड का दूसरा भाग क्यों हो, जिसमें राज्य के अपने हाथ में सम्पत्ति ले लेने पर मुआवजे का तथा कानून के अनुसार लोकहितार्थ प्रयोजनों का ब्यौरा दिया हुआ है। निस्संदेह यदि इसे विधान में स्थान देने की आवश्यकता है, तो इसे निदेशक सिद्धान्तों के अधीन रखना चाहिये और ऐसे अधिकारों के अधीन न रखना चाहिये जो न्याय हैं और न्यायालयों द्वारा व्यवहार्य हैं। यह ठीक नहीं है कि हम भविष्य को वर्तमान की आर्थिक व्यवस्था से बांध दें।

शिक्षा के सम्बन्ध में, जो मेरे विचार से सबसे आधारभूत अधिकारों में हैं, मैं यह अनुभव करती हूं कि बहुत ही अपर्याप्त व्यवस्था है। अन्य वक्ताओं ने जो कुछ कहा है, उसे मैं दुहराना नहीं चाहती; परन्तु मेरा इस सभा से यह अनुरोध है कि एक ऐसा प्रावधान रखा जाये, जिससे आय-व्ययक में निश्चित अनुपात से कोई धनराशि इस उद्देश्य से रखी जा सके। यह कोई नवीन बात नहीं है। चीन के विधान में इस प्रकार की व्यवस्था है और उसमें कहा गया है कि:

> ''शैक्षिक नियोजन लेखे में केन्द्रीय सरकार के आय-व्ययक की कुल धनराशि का कम से कम 15 प्रतिशत होगा और प्रान्तों, जिलों तथा नगरों के आय-व्ययकों की कुल धनराशि का कम से कम 30 प्रतिशत होगा''

[श्रीमती रेणुका राय]

यदि हमको समुन्नत तथा सुसम्पन्न होना है, तो मेरा सुझाव यह है कि राष्ट्र-निर्माण की दो सेवाओं, अर्थात् शिक्षा और जन-स्वास्थ्य की सेवाओं के सम्बन्ध में विधान में चीन के विधान के समान कोई प्रावधान होना चाहिये।

जहां तक अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने का सम्बन्ध है, हमने निस्संदेह एक असाम्प्रदायिक राज्य में पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था नहीं की है। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि हम अल्पसंख्यकों के लिये जगह सुरक्षित रखें ही क्यों। व्यवस्था यह की गई है कि दस वर्ष के उपरान्त, जब तक कि किसी संशोधन द्वारा कालावधि बढ़ाई न जाये, यह अधिकार समाप्त कर दिया जायेगा, परन्तु, मनोविज्ञान की दृष्टि से यह ठीक नहीं है। मुझे इसका विश्वास है कि यदि यह अधिकार इस समय दिया गया, तो इसकी कालावधि बढ़ाने के लिये बड़ा शोर किया जायेगा। यह अल्पसंख्यकों के लिये उचित नहीं है और न उनके आत्मसम्मान के अनुरूप ही है। यदि यह सभा निश्चित रूप से अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व कराना चाहती है, तो मेरा सुझाव यह है कि सामूहिक मतदान के साथ बहुनिर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था हो। कुछ वक्ताओं ने एकल संक्राम्य मत के साथ अनुपाती प्रतिनिधित्व का सुझाव उपस्थित किया है। मेरे विचार से यह विशेषत: भारत के लिये, एक कठिन कार्यप्रणाली सिद्ध होगी और इसलिये मैं इसे स्वीकार करने की सिफारिश नहीं कर सकती। मेरे विचार से सामूहिक मतदान के साथ बहुनिर्वाचन-क्षेत्रों की प्रणाली में कई बातें ऐसी हैं कि उसे स्वीकार करने की सिफारिश की जा सकती है। पहले तो उससे इन अल्पसंख्यकों का ही नहीं, किन्तु अन्य लोगों का भी अच्छी प्रकार प्रतिनिधित्व हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली से बिना पृथक्करण की भावना उत्पन्न हुये ही अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व का आश्वासन मिल सकेगा। अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने, जिन्होंने अपने को महिलाओं का रक्षक और समर्थक बताया है और जो उनकी सामाजिक अयोग्यताओं को समाप्त करने के पक्ष में है, औरतों के लिये विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों का सुझाव उपस्थित किया। हमेशा से भारत की नारियां जगहों को सुरक्षित करने और विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था करने के विरुद्ध रही हैं। सन् 1935 ई. के अधिनियम के प्रयोग में आने के बहुत पहले से ही हम उसके विरुद्ध थीं और हमने किन्हीं अस्पष्ट शब्दों में अपना मतप्रकाश नहीं किया था, परन्तु इस पर भी वह बलपूर्वक प्रयोग में लाया गया और आज स्थिति यह है कि मुझ से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय के शौर्यप्रदर्शन को ध्यान में रखते

हुये भी भारत की नारियां विधान में जगहों की इस प्रकार की सुरक्षा को सहन नहीं करेंगी।

अन्य लोगों ने ग्राम-पंचायतों के बारे में जो कुछ कहा है, उसे मैं नहीं दुहराऊंगी। मेरी यह धारणा है कि अज्ञान और अन्धविश्वास से मुक्त होने पर गांधी जी के ढंग की ग्राम-पंचायतें इस देश के विधान की आधारशिला सिद्ध होंगी। मेरे विचार से विधान में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे इस प्रकार की व्यवस्था के मार्ग में बाधा पड़े।

अब मैं केन्द्र और प्रदेशों के बीच शक्तियों के विभाजन के प्रश्न को उठाती हूं। प्रान्तों को यथासम्भव स्वायत्तशासी बनाने के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसके साथ जब देश में, विशेषकर राष्ट्र-निर्माण की सेवाओं में, बहुत क्षति की पूर्त्ति करनी है, तो संगठन की शक्ति प्रबल होनी चाहिये और केन्द्र को शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रबन्धात्मक और एकीकरण की कुछ शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। मेरे विचार से प्रान्तों से कुछ आर्थिक प्रतिभूतियों का अपहरण करके उन्हें अशक्त न बनाना चाहिये। विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों के अनुसार उन्हें आय-कर का कम से कम 60 प्रतिशत देना चाहिये, अर्थात् प्राप्ति के आधार पर 35 प्रतिशत, जनसंख्या के आधार पर 20 प्रतिशत और विपत्ति का ध्यान रखते हुये 5 प्रतिशत देना चाहिये। यह बहुत अच्छी सिफारिश है और मुझे आशा है कि यह सभा इसे विधान में स्थान देने के लिये सहमत हो जायेगी। मेरी यह भी धारणा है कि एक आर्थिक आयोग पांच वर्ष बाद नहीं, बल्कि तुरन्त ही नियुक्त किया जाये।

समाप्त करने के पूर्व मैं एक भाषा-भाषी प्रान्तों के बारे में कुछ कहना चाहती हूं। आज हमारा लक्ष्य एकता ही होना चाहिये। हमारे देश के इतिहास के इस काल में भाषा के आधार पर प्रान्तों की सीमाओं का पुनर्निर्धारण एक त्रुटि ही होगी। इसके कारण इस समय भी बहुत कटुता और कलह उत्पन्न हो गया है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा। यदि देश के एक भाग में इस प्रकार की व्यवस्था की जाये और अन्य भागों को छोड़ दिया जाये तो यह तो न न्यायपूर्ण होगा और न तर्कपूर्ण। उदाहरणार्थ यदि आप एक महाराष्ट्र प्रान्त बनायें, तो देश के अन्य भाग भी इसी प्रकार की मांग करेंगे। बंगाल में इस प्रकार की कटुता फैली हुई है कि उसने शक्ति के हस्तांतरण के लिये अपने एक भूभाग का बलिदान कर दिया, परन्तु उसे अब भी अपने अधिकार नहीं दिये जा रहे हैं। जब भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम छेड़ा गया तो अंग्रेजों की राजनैतिक अवसरवादिता के फलस्वरूप तथा

[श्रीमती रेणुका राय]

विदेशी सरकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बंगाल के एक बहुत बड़े भूभाग का बलपूर्वक अपहरण किया गया था। मैं इस सिद्धान्त का समर्थन नहीं करती हूं कि इस समय भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिये। यदि ऐसा करना आवश्यक ही हो, तो यह दस वर्ष के बाद किया जाये जब कि लोगों का आवेश शांत हो जाये। परन्तु शासन-प्रबन्ध के लिये तो भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक प्रान्त में एक भाषी अल्पसंख्यकों को निस्संदेह यह आश्वासन मिलना चाहिये कि उन्हें अपनी ही मातृ-भाषा में शिक्षा दी जायेगी। मेरा यह अनुरोध है कि भाषाओं के आधार पर सीमाओं को पुनर्निर्धारित करने वाले आयोग को अपना काम रोक देना चाहिये, या कम से कम दस वर्ष के लिये उसे स्थगित कर देना चाहिये। मैं इसे फिर दुहराऊंगी कि यदि हम यह चाहते हैं कि भारत सशक्त हो, सुसम्पन्न हो और राष्ट्र-मण्डल में अपना यथोचित स्थान प्राप्त करे, तो हमारे सामने सर्वोपरि विचार एकता का ही होना चाहिये।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त__ (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): श्रीमान्, यह कहा गया है कि संघ की भाषा सरल हिन्दुस्तानी होनी चाहिये और यह कि विधान की भाषा और वह भाषा जिसमें हम अपने कानून बनायेंगे, हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिये। मैं इस सरल हिन्दुस्तानी की खोज में रहा। मैं उसे मध्यप्रान्त में न पा सका। मैं उसे कानून की किताबों में न पा सका। मैं उसे इस आदरणीय सभा की सरकारी कार्यवाही के प्रतिवेदनों में न पा सका। इस सभा की सरकारी कार्यवाही के प्रतिवेदन तीन भाषाओं में प्रकाशित होते हैं। अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू में। मैंने इस विचार से अंग्रेजी का संस्करण पढ़ा, हिन्दी का संस्करण पढ़ा और उर्दू का संस्करण पढ़वाया कि मैं उस भाषा को पा सकूं, जिसे सरल हिन्दुस्तानी कहा जाता है। मैं उसे नहीं देख सका। उर्दू उर्दू थी और हिन्दी हिन्दी। इस प्रकार की कोई चीज न थी, जिसे सरल हिन्दुस्तानी कहा जाता है। मेरे हृदय में यह विचार उठा कि सम्भवत: मैं उसे समाचारपत्रों में पा सकूं। 'तेज लिमिटेड', जिसकी जयंती कुछ दिन पहले मनाई गई थी, दो भाषाओं में समाचारों को प्रकाशित करता है। उसके हिन्दी के पत्र का नाम 'विजय' है और उर्दू के पत्र का नाम 'तेज' हैं मैंने इन दोनों पत्रों की भाषाओं की तुलना की, फिर भी मैं सरल हिन्दुस्तानी को न पा सका। इन प्रकाशनों के उद्धरण पढ़कर, सुना कर मैं इस आदरणीय सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। मेरे हाथ में 'विजय' पत्र की एक प्रति है। 'विजय' में सब हिन्दी है और 'तेज' में सब उर्दू है। मैंने विचार किया कि सम्भवत: दिल्ली की प्रारम्भिक पाठशालाओं में सरल हिन्दुस्तानी प्रयोग की जाती हो। मुझे रेखागणित

की दो प्रारम्भिक पुस्तकें मिली। मैं उनमें भी सरल हिन्दुस्तानी को न पा सका। मैंने गणित और भूगोल की भी प्रारम्भिक पुस्तकें देखीं। मैं उनमें भी उस भाषा को न पा सका, जिसे सरल हिन्दुस्तानी कहा जाता है। वे सब या तो उर्दू में लिखी हुई थी, या हिन्दी में। मैं आपको कुछ उदाहरण दूंगा। श्रीमान्, प्रारंभिक गणित है, जिसे हिन्दी में 'गुणन' कहा जाता है उसे उर्दू में 'जरब' कहा जाता है, जिसे हिन्दी में 'गुण्य' कहा जाता है, उसे उर्दू में 'मजरब' कहा जाता है, जिसे हिन्दी में 'गुणक' कहा जाता है, उसे उर्दू में मजरबफी' कहा जाता है। 'गुणनफल' उर्दू में 'हासिल-इ-जरब' कहा जाता है। 'भाजक' को 'मकसूम इलाह' कहा जाता है, 'भाज्य' को 'मकसूम' कहा जाता है, 'भजनफल' को 'खर्फ-इ-किस्मत' कहा जाता है और 'लघुत्तम समापवर्त्य' को 'जुआजाफड-अक्रल' कहा जाता है।

मैं कई उदाहरण दे सकता हूं। अब मैं प्रारम्भिक रेखागणित को लेता हूं। 'तृज्या' को उर्दू में 'निस्फकुतुर' कहा जाता है। 'समद्विबाहुतृभुज' को 'मुसल्लस मुसाबि-उल-साकैन', 'समतृबाहु तृभुज' को 'मुसल्लम' मुसाबि-उल-जिला', 'समकोण समद्विबाहुतृभुज' को 'मुसल्लस मुसाविउस्साकैन कायमुज्जाविया' उर्दू मैं कहा जाता है।

मैं इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दे सकता हूं। मैं इन प्रारम्भिक पाठय पुस्तकों में भी सरल हिन्दुस्तानी को न पा सका। जब हमारी महिलायें तथा हमारे पुरुष उच्च स्वर से यह कहने लगते हैं कि हम अपने कानूनों को सरल हिन्दुस्तानी में लिख सकते हैं, तो मैं भ्रम में पड़ जाता हूं। मुझे केवल बाजार में ही सरल हिन्दुस्तानी सुनने को मिली। जब हम प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तकों तक में सरल हिन्दुस्तानी भाषा को नहीं प्रयोग कर सकते, तो हमारे कानून उस भाषा में कैसे लिखे जा सकते हैं? श्रीमान्, मुझे इतना ही कहना है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं। तीन दिन से मैं इस विधान के मसौदे पर बोलने के लिये इच्छुक रहा हूं। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आपने मुझे चन्द मिनटों के लिये बोलने का अवसर दिया है।

मैं आरम्भ में मसौदा-समिति के विधान के मसौदे में आद्योपान्त जिस उच्च कोटि की कानूनी भाषा का प्रयोग किया है, उसके लिये उसे धन्यवाद देता हूं

[श्री महावीर त्यागी]

और बधाई भी देता हूं। मैं मसौदा-समिति की आलोचना नहीं करना चाहता हूं। उन्होंने बड़ी योग्यता से अपना कार्य सम्पन्न किया हैं हमने समय-समय पर विधान-सम्बन्धी जिन सिद्धान्तों को उनके सामने रखा था, उनका उन्होंने संकलन किया है और सिहांवलोकनार्थ हमारे सामने एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित किया है।

श्रीमान्, जब हम सबसे पहले भारत के विधान का चित्र बनाने बैठे थे, तो हमारे सामने एक खाली पर्दा खिंचा हुआ था और हममें से बहुत से वास्तव में नहीं जानते थे कि किस तरफ से आरम्भ करें और कौन से रंग काम में लायें। यह इन प्रतिभाशाली कानून-विशेषज्ञों की ही योग्यता का फल है कि आज हमारे सामने एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित है। जब आप किसी कलाकार की रचना की परख करना चाहें, तो आपको उसके सम्बन्ध में एक साधारण आदमी से पूछना चाहिये। यदि वह साधारण आदमी को अच्छा लगता है तो वह अच्छा है। मेरी तो कसौटी यही है। कानून-विशेषज्ञों ने अपना कार्य समाप्त कर दिया है और सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने है। एक साधारण आदमी की हैसियत से उसके सम्बन्ध में मैं अपने विचार आपके सामने रखता हूं। जब यह काम मसौदा-समिति को सौंपा गया था, उस समय की परिस्थिति में और आज की परिस्थिति में बहुत अन्तर है। यह हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि भारत के इतिहास में जो दीपक हमारे हृदयों की स्वतंत्रता की सहानुभूति से प्रकाशित किये हुए था वह बुझा दिया गया और हम खेद के समुद्र में जलमग्न हो गये। इसके अतिरिक्त आबादियां बदल गई और देश की सारी आकृति ही बदल गई। बहुत कुछ लोगों की विचारधारा भी बदल गई। अब उसी पुराने चित्र खींचने का अर्थ यह होगा कि हम वर्तमान काल की उपेक्षा कर रहे हैं। हमें वर्तमान वातावरण, वर्तमान परिस्थिति और विकासशील विचारधाराओं को ध्यान में रखना चाहिये। इसलिये श्रीमान, हमें इस चित्र की परीक्षा उस प्रकाश में करनी चाहिये, जिसमें कि हमें स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई है। वास्तव में हमें उसे गांधी जी के दृष्टिकोण से परखना चाहिये और उसे उसी प्रकार देखना चाहिये, जैसे वे स्वयं देखते। अब उनकी दृष्टि हमारे बीच से उठ गई है, किन्तु इस सभा में ऐसे व्यक्ति उपस्थित हैं जिनको उनकी दृष्टि का प्रकाश कुछ अंश में प्राप्त हैं हम सब इसका फिर से स्मरण कर सकते हैं कि गांधीजी की स्वराज्य की कल्पना क्या थी। इसको न भूलना चाहिये कि वह विधान-परिषद् उन लोगों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप निर्मित हुई, जो तीस वर्ष तक रात-दिन स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सचेष्ट रहे। यह उन्हीं के पुरुषार्थ का फल है। वास्तव में उन्हीं

को हमारे लिये विधान बनाना चाहिये था। वही विधान बनाने में समर्थ हैं। विधान को तो होना चाहिये था केवल क्रांतिकारियों की कृति। परन्तु चूंकि इस सभा का निर्माण अंग्रेजों के हाथों से हुआ, इसलिये हम अन्य सम्भावनाओं की कल्पना नहीं कर सकते और इसीलिये यह विधान पूर्णतया गांधीवाद के अनुरूप न हो सका। मैं इसे स्वीकार करता हूं। परन्तु चूंकि हमारा बहुमत है, इसलिये हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि कहीं गांधीजी की मृत्यु के बाद तुरन्त ही उनकी विचारधारा का लोप न हो जाये।

मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मुझे इस विधान को देख कर बहुत निराशा हुई है। मुझे इसमें गांधीवाद की एक भी झलक नहीं दिखाई देती। इसमें मसौदा समिति का कोई दोष नहीं है। हम ही इसके लिये दोषी हैं। जब हमने इस विधान के सम्बन्ध में सिद्धान्तों को निश्चित किया, तो हमने उन लोगों के सामने कुछ आधारभूत सिद्धान्त रखे, जिनके अनुसार वे अपना निर्माण कार्य कर सकें। परन्तु अब परिस्थिति वह नहीं है जो कि उस समय थी। जब हमने विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधित्व, भाषा तथा अन्य विवादाग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में निश्चय किया तो हमने इसे भी ध्यान में रखा कि हमारे निश्चय की पाकिस्तान में क्या प्रतिक्रिया होगी। पाकिस्तान अपने अल्पसंख्यकों के प्रश्नों से पूर्णतया मुक्त हो गया है। वहां ये प्रश्न लुप्त हो गये हैं कि यहां भी जो जटिल प्रश्नाकार थे, जो किसी न किसी बहाने से हमसे लड़ते रहे, वे अपनी मातृ-भूमि भारत को छोड़कर उस पार एक सौतेली मां के पास चले गये हैं। अब हमारे बीच में केवल वे मुसलमान, सिक्ख और अन्य लोग रह गये हैं, जो भारत को अखण्ड देखना चाहते हैं। भारत आज अखण्ड है और इसलिये हमारा विधान वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिये।

इसलिये श्रीमान्, जब मैं इस चित्र को गांधीजी के दृष्टिकोण से देखता हूं, तो मैं मुख्यत: एक चीज का अभाव पाता हूं। गांधीजी इस देश में पूर्ण रूप से मद्यनिषेध के लिये बहुत इच्छुक थे, परन्तु इस विधान में इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। हमने निर्वाचकों को जो वचन दिये थे, उनको केवल मद्रास में और कुछ अन्य प्रान्तों में पूरा किया गया हैं गांधीजी को इसकी बड़ी चिंता थी कि सारे भारत में पूर्णतया मद्यनिषेध होना चाहिये। मेरा यह सुझाव है कि विधान में हस्ताक्षर करने के पहले हमें गांधीजी के इस विचार को उसमें स्थान दे देना चाहिए।

[श्री महावीर त्यागी]

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, गांधीजी की यह प्रबल इच्छा थी कि घरेलू उद्योग-धंधों को स्वावलम्बी बनाकर संगठित किया जाये। उनके रचनात्मक कार्यक्रम में इसका प्रथम स्थान था। इस विधान में इसका भी अभाव है। मैं एक कट्टर गांधीवादी हूं और इसमें संदेह नहीं कि मैं समाजवादी नहीं हूं और इसीलिये मैं सभी बड़े-बड़े उद्योग-धंधों को समाप्त करने के पक्ष में नहीं हूं। आज की परिस्थिति में देश के विभिन्न उद्योग-धंधों से बड़ी सहायता मिल रही है। परन्तु यदि उन्हें कभी समाप्त करना हो, तो उन्हें एक साथ ही समाप्त कर देना चाहिये। आप समाजवाद को धीरे-धीरे एक उद्योग के बाद दूसरे उद्योग का समाजीकरण करके नहीं ला सकते हैं। जब समाजवाद का आगमन हो तो उसे एकबारगी सभी चीजों पर छा जाना चाहिये। यदि समाजवाद का एकबारगी आगमन हो तो उससे किसी को कोई क्षति न होगी, क्योंकि एक तरफ से क्षति होगी तो दूसरी तरफ से लाभ भी होगा; क्योंकि सभी सम्पत्ति पूर्णतया सामाजिक सम्पत्ति हो जायेगी। विधान के मसौदे में यह कहना कि लोगों को बिना न्यायोचित मुआवजा दिये हुये उनको अपनी सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा, यह अर्थ रखता है कि भारत में स्थायी स्वार्थ चिरस्थायी हो जायेगा। आज स्थिति यह है कि घास का भी कोई पत्ता ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी का न हो। धूल का एक कण भी ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी का न हो। यदि आने वाली पीढ़ियां सभी सम्पत्ति का और उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण करना चाहें, तो इस विधान के अनुसार उन्हें हर एक घास के पत्ते के लिये और हर एक धूल के कण के लिये मुआवजा चुकाना होगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि वे इस सब सम्पत्ति का मुआवजा कहां से चुकायेंगे? वह तो मुआवजा मांगने वाले लोगों के ही साथ में रह जायेगी। इस प्रकार मुआवजा देना असम्भव हो जायेगा। गांधीजी का तो कहना यह था कि धनिकों को अपने को सम्पत्ति का केवल धरोहरी समझना चाहिये। वे उस सीमा तक कभी नहीं गये थे, जिस सीमा तक हम इस विधान के मसौदे में जा रहे हैं। इसलिये श्रीमान्, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस विधान पर हस्ताक्षर करने के पहले हमें यह देखना चाहिये कि कहीं हम भारत में रक्तपूर्ण क्राति के बीज तो नहीं बो रहे हैं। यदि क्रांति से देश को बचाना है, तो हमें आने वाली पीढ़ियों के लिये दरवाजा खुला रखना चाहिये, जिससे यदि उनकी इच्छा हो तो वे सभी स्थायी स्वार्थों और देश में उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण कर सकें। यदि हम भविष्य में समाजीकरण न होने देने के उद्देश्य से दरवाजा बन्द कर दें, जैसा कि हमने अनुच्छेद 24(2) के द्वारा किया है, तो मैं यह कहूंगा कि भारत के युवा उठ खड़े होंगे और दरवाजा खटखटायेंगे और उसे तोड़ गिरायेंगे और इसका परिणाम

होगा रक्तपूर्ण क्रांति (वाह वाह) इसलिये श्रीमान, मेरा यह आग्रह है कि हमें इस पूरे उपखण्ड को निकाल देना चाहिये, ताकि भविष्य में पार्लियामेंट बिना मुआवजा दिये हुये सभी सम्पत्ति और उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण कर सके। श्रीमान्, यह कहना भी एक गलती है कि हमारी सभा एक सर्वसत्ताधारी सभा है। मेरे विचार से हम उस अर्थ में सर्वसत्ताधारी नहीं हैं, जिस अर्थ में किसी विधान-परिषद् को होना चाहिये। हमारी सर्वसत्ता उसी प्रकार की है, जिस प्रकार भारत में अंग्रेजों की थी। वह हस्तांतरित सर्वसत्ता है। वास्तविक सर्वसत्ता तो उस पार्लियामेंट की होगी, जो प्रौढ़ मताधिकार के प्रयोग में आने पर अस्तित्व में आयेगी। इसलिये इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने के लिये वही पार्लियामेंट नैतिक तथा वैधानिक रूप से अधिक अधिकृत होगी।

अब मैं अल्पसंख्यकों के प्रश्न को उठाता हूं। मुझे इसका खेद है कि डा. अम्बेडकर ने यह कहा है कि अल्पसंख्यक एक विस्फोटक शक्ति है, जिसका विस्फोट होने पर राज्य का सारा ढांचा गिर पड़ेगा। मेरा यह कहना है कि ये अल्पसंख्यक इस प्रकार की कोई बात नहीं कर सकते। इसका सीधा-साधा कारण यह है कि ये वास्तविक नहीं हैं, ये केवल काल्पनिक हैं और इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। मैं उनको चुनौती देता हूं। उन्हें यहां पृथक् प्रतिनिधित्व पाने का कोई अधिकार नहीं है। वे किसका प्रतिनिधत्व करेंगे? काल्पनिक अल्पसंख्यकों का सृजन अंग्रेजों ने किया था। अनुसूचित जातियां अल्पसंख्यक कदापि नहीं कहें जा सकते। केवल इस कारण कि कुछ गरीब वर्गों की एक साथ एक अनुसूची में गणना की गई है, उनको "अनुसूचित अल्पसंख्यक" नहीं कहा जा सकता। ये अल्पसंख्यक केवल कागज में लिखे हुये अल्पसंख्यक हैं। इनको अब चिरस्थायी बनाने का प्रयास इसलिये किया जा रहा है कि इनमें से कुछ अवसरवादी परिवार विधान-मण्डलों में अपनी जगहों को सुरक्षित रखना चाहते हैं। वे लोग जो अपने को अल्पसख्ंयक कहने में हर्षित होते थे, यहां से चले गये हैं। वही लोग अब यहां हैं जिनका विश्वास एक राज्य में है। इसलिये श्रीमान्, अब कोई अल्पसंख्यक समुदाय नहीं है और इस विधान में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के बारे में कोई प्रावधान न होना चाहिये, क्योंकि इससे अभी तक तथाकथित अल्पसंख्यकों का ही विनाश हुआ है। मुसलमानों को ही लीजिये। मैं यह जानता हूं कि उनकी भावनाऐं क्या हैं और मैंने देहरादून में अपनी आंखों से देखकर इसका अनुभव किया है। आज उनका नैतिक बल बिल्कुल नष्ट हो गया है। वे नागरिकता के साधारण अधिकारों का भी उपयोग करने के लिये अपने में नैतिक स्वतंत्रता नहीं पाते। पिछले दिनों में उनका गलत नेतृत्व होने के कारण आज वे इतने कायर हो गये हैं कि वे भारत

[श्री महावीर त्यागी]

में किसी जगह सीधे खड़े भी नहीं हो सकते। इसलिये श्रीमान्, मैं अनुसूचित जातियों, सिक्खों, मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों और हिन्दुओं से भी यह कहूंगा कि वे अपने लिये जगहें सुरक्षित रखने की मांग न करें। हमारा एक असाम्प्रदायिक राज्य हैं हम लोगों के किसी धार्मिक समूह को न तो स्वीकृति प्रदान कर सकते हैं और न उसको कोई वजन दे सकते हैं। यदि वे विभिन्न जातियों के होते, तो उनका बहुमत या अल्पमत होने के कारण उनकी जो मांगें होती, वे मेरी समझ में आ सकती थीं। विश्वास और धर्म तो एक व्यक्तिगत चीज़ है। मैं डा. अम्बेडकर के इस दावे का भी खण्डन करता हूं कि भारत में बहुसंख्यक साम्प्रदायिक आधार पर बहुसंख्यक हैं। बहुसंख्यक तो वास्तव में कांग्रेस है, जो एक राजनैतिक संस्था है।

श्रीमान्, एक शब्द मैं गांवों के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। डा. अम्बेडकर ने यह कहा कि उन्हें इसका हर्ष है कि ''मसौदा-समिति ने ग्रामों को कोई स्थान नहीं दिया है।'' उन्होंने उनका ''कृपमण्डूकता के गड्ढे और साम्प्रदायिकता के अड्डे'' कहकर वर्णन किया है। दासत्व के इन्हीं गड्ढों में स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में दमन-चक्र चल रहा था। जब चिमूर में दासत्व के इन गड्ढों में उत्पीड़न हो रहा था और अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तो स्वतंत्रता के ये स्तूप अंग्रेजों की पीठ पर मालिश कर रहे थे। (वाह वाह) गांवों के विरुद्ध डा. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है, उसके विरुद्ध जब तक मैं अपनी आवाज़ नहीं उठाता हूं, तब तक मैं अपने गांवों के लोगों के सामने जाकर मुंह नहीं दिखा सकता। डा. अम्बेडकर को यह पता नहीं है कि स्वतंत्रता-संग्राम में गांवों ने कितना बलिदान किया है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि देश के शासनकार्य में गांव वालों का यथोचित भाग होना चाहियें। यदि उन्हें उनका यथोचित भाग न दिया गया, तो मैं यह कहूंगा कि इसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं। (*हर्षध्वनि*)

***बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, इस प्रस्ताव पर कुछ शब्द बोलने का जो अवसर आपने मुझे दिया है, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। सबसे पहले मैं भाषा के प्रश्न की ओर संकेत करना चाहता हूं। जब मैंने इस सम्मानित सभा में पहले प्रवेश किया तो मैंने यह अनुभव किया कि इस सभा की कार्यवाही को न समझ सकने के कारण मेरे सामने एक बहुत बड़ी अयोग्यता है। फिर मुझे ज्ञात हुआ कि इस सभा के एक बहुत बड़े भाग की

वही दुखद स्थिति है और मेरे हृदय में यह विचार उठा कि यह विधान–परिषद् जो इस देश के करोड़ों लोगों के भाग्य का हमेशा के लिये निर्णय करने जा रही है, इस प्रकार अपना कार्य–संचालन कर रही है कि उससे न इस सभा का ही और न राष्ट्र का ही सम्मान हो सकता है। हम अपना कार्य चलाते आ रहे हैं और कई महत्त्वपूर्ण और सारपूर्ण विषयों पर बोलते आ रहे हैं, परन्तु हममें से प्रत्येक एक दूसरे को नहीं समझ पा रहा है। यह वास्तव में एक बड़े दुर्भाग्य की बात है। मैंने इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई थी, परन्तु मैं यह कहूंगा कि मैं असफल रहा। अब भी वह अयोग्यता वर्तमान है, परन्तु वह अब उस सीमा तक नहीं है, जिस सीमा तक पहले थी और मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कम से कम यह अयोग्यता जितनी पहले थी, उतनी अब नहीं रही।

श्रीमान्, विधान के मसौदे में यह प्रवाहित है कि सरकारी भाषायें हिन्दी और अंग्रेजी होंगी। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इससे भी भ्रम उत्पन्न हो जायेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसकी व्यवस्था है कि किसी भाषा में दिये हुये सभी भाषणों का सार दूसरी भाषा में दिया जायेगा, परन्तु इसे अभी प्रवाहित करना है कि यह किस सीमा तक किया जायेगा और इसे करने की क्या प्रणाली होगी।

श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि कुछ निश्चित समय के लिये, चाहे वह दस वर्ष हो या पन्द्रह वर्ष, यह प्रवाहित करना अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। हम किसी कारण से अंग्रेजी भाषा से घृणा नहीं कर सकते हैं। वास्तव में उस भाषा द्वारा हमने जो संस्कृति प्राप्त की है, उसके लिये हमें कृतज्ञ होना चाहिये। वास्तव में हमने जो स्वतंत्रता प्राप्त की है, उसके लिये हमने जो आन्दोलन किया, उसमें अंग्रेजी भाषा ने और उसके द्वारा हमने जो संस्कृति प्राप्त की उसने बहुत योग दिया। इसलिये मेरे विचार से इस भाषा में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे हम घृणा करें और विशेषतया जब कि हमने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, तो हमें इसका अधिकार है कि संसार के किसी भाग में भी यदि किसी राष्ट्र में कोई बहुत अच्छी बात है, तो हम उसे स्वीकार कर लें। मैं यह भी कहूंगा कि किसी भाषा पर किसी का अपना स्वामित्व नहीं है। अंग्रेजी भाषा के सम्बन्ध में अंग्रेज यह नहीं कह सकते कि यह हमारी ही भाषा है और इस पर हमारा एकाधिकार है और इसी प्रकार हम हिन्दी को अपनी ही भाषा नहीं कह सकते। संसार में कई भाषायें हैं और हमें इसका अधिकार है कि हम

[बी. पोकर साहब बहादुर]

उनमें से प्रत्येक को प्रयोग में लायें। इस प्रकार हमें अंग्रेजी भाषा प्रयोग करने का अधिकार है और जब तक हमारी राष्ट्रभाषा ऐसी न हो जाये कि उसे हमारे देश के जनसाधारण समझने न लगें, हमें उसे स्वीकार करना चाहिये। जब तक वह स्थिति न आ जाये, हमें अंग्रेजी को ही सरकारी भाषा रहने देना चाहिये, ताकि पार्लियामेंट में आने वाले प्रत्येक सदस्य की समझ में अन्य सदस्यों की बातें आ सकें। निस्संदेह कोई बिरले सदस्य होंगे ऐसे भी हो सकते हैं, जो अंग्रेजी भाषा से परिचित न हों, परन्तु उनमें से अधिकांश अंग्रेजी जानेंगे और इसलिये श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि कम से कम पन्द्रह वर्ष तक सरकारी भाषा अंग्रेजी ही रहने देनी चाहिये। इस काल में राष्ट्र अपनी राष्ट्र-भाषा अंगीकार करने के लिये तैयार हो जायेगा।

अब श्रीमान्, प्रश्न यह है कि राष्ट्रभाषा का स्वरूप क्या होना चाहिये? इसे इस आदरणीय सभा को हल करना है। मैं आरम्भ में ही यह बता देना चाहता हूं कि मैं न हिन्दी जानता हूं न उर्दू और न हिन्दुस्तानी। इसलिये मैं इस प्रश्न पर तटस्थ होकर विचार कर रहा हूं। यह कहना बहुत कठिन है कि इस देश के लोग एक ही दिन में हिन्दी भाषा को सीख सकते हैं। निस्संदेह हमारी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिये, परन्तु इसे सीखने की व्यवस्था करके हमें राष्ट्र को इसे स्वीकार करने के लिये तैयार करना चाहिये। अब यदि हिन्दी का अनिवार्य रूप से सरकारी भाषा बना दिया जाता है, तो यह प्रश्न उठेगा कि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर जो चुनाव होंगे, उनके लिये जो उम्मीदवार खड़े होंगे, उनकी सर्वप्रथम योग्यता यह होनी चाहिये कि उन्हें हिन्दी का ज्ञान हों। मेरे विचार से यदि यह हुआ और हिन्दी का ज्ञान ही उम्मीदवारों को परखने की कसौटी हुई तो इससे देश का अहित ही होगा।

मैं इस सम्बन्ध में अब अधिक नहीं बोलना चाहता हूं, क्योंकि मेरे पास बहुत कम समय है। मेरा केवल यह निवेदन है। मेरा सुझाव यह है कि इस आदरणीय सभा को केवल इस कारण हिन्दुस्तानी के पक्ष में निश्चय करना चाहिये कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का यही पवित्र मत था। वे इस भाषा-सम्बन्धी विवाद से अच्छी तरह परिचित थे और वे यह भी जानते थे कि उनका राष्ट्र कैसा है। बहुत सोच-विचार के बाद ही उस महान् पुरुष ने यह मत प्रकट किया कि नागरी और फारसी लिपियों के साथ हिन्दुस्तानी ही सरकारी भाषा होनी चाहिये। मुझे आशा है कि यह सम्मानित सभा देवनागरी और उर्दू लिपियों के साथ हिन्दुस्तानी

को सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार करके उस महापुरुष की स्मृति का आदर करेगी।

श्रीमान्, यदि हम उनके परामर्श को न मानें, तो संसार हमसे यह कह सकता है कि महात्मा जी के प्रति हमारी श्रद्धा और भक्ति केवल मौखिक ही है और इससे अधिक कुछ नहीं है। हमें इस अभियोग से बचना चाहिये कि महात्माजी की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद उनके विचारों तथा उनकी इच्छाओं को जमीन में सैकड़ों गज नीचे दफना दिया गया। कम से कम उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये श्रीमान्, मेरा आपसे तथा इस सभा के सभी सदस्यों से यह अनुरोध है कि वे हिन्दुस्तानी को ही सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में मतदान करें।

अब श्रीमान्, मैं एक दूसरे प्रश्न को उठाता हूं और वह व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में है। हाल में हमने अध्यादेशों के प्रवर्त्तन की शक्ति के बारे में बहुत कुछ सुना है और यह भी सुना है कि विभिन्न सरकारें उसे प्रयोग में ला रही हैं। मैं विशेषतया उस स्थिति से पूर्णतया परिचित हूं, जिसके अधीन मद्रास प्रेजीडेंसी में अध्यादेश द्वारा परिचालित शासन का प्रवर्त्तन हुआ। विधान-मण्डल सभा सत्रस्थ थी। एकाएक एक दिन संध्या को उसका सत्रावसान हो गया और दूसरे ही दिन प्रातःकाल को अध्यादेश का यह बम फटा, जिससे दंडविधि संग्रह की धारा 491 के अधीन बन्द्युपस्थापन का आदेश निकालने के उच्च न्यायालय के अधिकार का भी अपहरण हो गया। मैं यह दिखाने के लिये इसकी ओर संकेत कर रहा हूं कि यदि अध्यादेश निकालने की शक्ति सुरक्षित रही तो, इस शक्ति का दुरुपयोग होने की बहुत सम्भावना है, जिससे नागरिकों की स्वतंत्रता पर मनमाने ढंग से आघात होगा। इन अध्यादेशों के अधीन हजारों लोग भेड़ बकरियों की तरह बन्दी बना दिये गये और उनसे यह तक न कहा गया कि उनके विरुद्ध क्या अभियोग है और वे क्यों नजरबन्द हैं, जैसा कि कम से कम जनसुरक्षा अधिनियम के अधीन किया जाना चाहिये था। इस सम्बन्ध में मैं इस सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय की शक्तियों का किसी प्रकार अपहरण न हो। न किसी विधान-मण्डल को और न किसी सरकार को कोई ऐसा कानून या अध्यादेश पार करने देना चाहिये, जिससे नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को शक्ति का अपहरण हो। यह एक आधारभूत बात है। जब अंग्रेजों का राज्य था और वे बिना मुकदमा चलाये हुये लोगों को नजरबन्द कर लेते थे

[बी. पोकर साहब बहादुर]

तो हम गला फाड़-फाड़ कर उसका विरोध करते थे। मैं यह कहूंगा कि यह एक पवित्र अधिकार है और मूलाधिकारों में यह प्रवाहित होना चाहिये कि कोई व्यक्ति, चाहे उसका धर्म और राजनैतिक विचार कुछ भी क्यों न हो, तब तक बन्दी न बनाया जाये जब तक कि उसके विरुद्ध मुकद्दमा न चलाया जाये और न्यायालय इस सम्बन्ध में निर्णय न करे। यह एक पवित्र अधिकार है और इससे कोई नागरिक वंचित न किया जाना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि सद्यस्कृत्यस्थिति उत्पन्न हो सकती है। यदि सद्यस्कृत्यस्थिति उत्पन्न भी हो जाये, तो उच्च न्यायालय को यह शक्ति होनी चाहिये कि वह सम्बन्धित व्यक्ति पर मुकदमा चलाने की व्यवस्था करें। उसे मुकदमे का फैसला होने के बाद ही नजरबन्द किया जाना चाहिये। विधान-मण्डल अथवा सरकार को ऐसा कानून बनाने या अध्यादेश निकालने की शक्ति न देनी चाहिये, जिससे बिना किसी न्यायालय के सम्मुख किसी नागरिक के विरुद्ध मुकदमा चलाये हुये वे उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण कर सकें। इसलिये मैं इस सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि मूलाधिकारों में यह प्रावधान रखना चाहिये कि प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता की रक्षा होगी और वह बिना किसी न्यायालय के सम्मुख मुकदमा चलाये हुये बन्दी न बनाया जायेगा।

श्रीमान्, मैं एक शब्द और कहना चाहता हूं और वह उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के सम्बन्ध में है। आज प्रातःकाल जब संधान-न्यायालय के मुख्य न्यायधीश तथा विभिन्न न्यायालयों के मुख्य न्यायधीशों द्वारा उपस्थित स्मृतिपत्र हमको दिया गया, तो उसे पढ़कर मैंने यह अनुभव किया कि वर्तमान वेतनों के बनाये रखने के सम्बन्ध में उनका मत तर्कयुक्त है। ये वेतन 70 वर्ष पूर्व निश्चित किये गये थे। उसके बाद जो कुछ भी हुआ उसके कारण उनको बनाये ही रखना चाहिये न कि कम करना चाहिये। रुपये की क्रय शक्ति कम हो गई है, आय-कर बढ़ा दिया गया है और आधुनिक जीवन बहुत धन-साध्य हो गया है। न्यायधीशों के सम्मान को बनाये रखने के लिये तथा उनको किसी प्रलोभन में न पड़ने देने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के वर्तमान वेतनों में कमी न की जाये।

श्रीमान्, मैं केवल एक मिनट और लूंगा। मैं एक बात को केवल कह भर देना चाहता हूं। मैंने अपनी इस धारणा को प्रकट किया है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा केवल पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों से हो सकती है। मैं इसकी व्याख्या नहीं करूंगा। मैं यह जानता हूं कि इस प्रस्ताव पर इस सभा में विचार हो चुका

है और उसने इसके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया मुझे यह ज्ञात है कि इस समय भी यह सभा इसके विरुद्ध होगी। परन्तु मेरी सच्ची भावना यही है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने का यही एक उचित उपाय है और मैं इस सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस प्रस्ताव पर तटस्थ होकर विचार करें। यदि किसी कारण यह व्यावहारिक न समझा जाये और इस सभा की यह धारणा हो कि वह इससे सहमत नहीं हो सकती है, तो जगहों को सुरक्षित रखना परमावश्यक है। मैं इसके कारण नहीं बताना चाहता। चाहे कुछ भी हो, जगहों को सुरक्षित करना आवश्यक है। एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व अथवा सामूहिक मतदान के साथ बहु निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था कुछ अन्य उपचार हो सकते हैं। परन्तु मैं केवल यही कहूंगा कि पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था ही उचित उपचार है और इसी प्रणाली से अल्पसंख्यकों की रक्षा हो सकती है। परन्तु यदि वह व्यावहारिक न हो, तो जगहों को सुरक्षित रखना आवश्यक है। कम से कम अन्य प्रणालियों की परीक्षा की जानी चाहिये। एकल संक्राम्य मतदान के साथ अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचन करने की प्रणाली एक पेचीदी प्रणाली सिद्ध होगी, वरना मैं उसे पसन्द करता।

श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, चूंकि मैं इस वादानुवाद के अवसान काल में बोलने के लिये उपस्थित हुआ हूं, इसलिये मैं शायद ही किसी नये विषय को छेड़ सकूंगा। परन्तु मेरे हृदय में यह विचार उठा कि अपने कुछ विचारों को व्यक्त करके मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

डा. अम्बेडकर ने जिस विद्वत्ता और तेजस्विता से विधान के मसौदे की व्याख्या की है, उसके लिये वे इस सभा के धन्यवाद के पात्र हैं उन्हें इस मसौदे के प्रावधानों के लिये इसलिये धन्यवाद नहीं दिया जा सकता कि उन्होंने इनकी रचना नहीं की है। माननीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि विधान के मसौदे के अधिकांश खण्डों पर इसी सभा में विचार-विमर्श हुआ और उनके सम्बन्ध में यही निर्णय किया गया। केवल कुछ विषयों के समावेश का कार्य मसौदा-समिति पर छोड़ दिया गया। परन्तु उन्हें व्यवस्थित रूप देने के लिये वे इस सभा के धन्यवाद के पात्र हैं।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

श्रीमान्, मुझे इसका खेद है कि गांवों के सम्बन्ध में तथा बहुसंख्यकों के प्रकार और 'वैधानिक नैतिकता' के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने जो बातें कहीं और जो सम्मति प्रकट की, उसमें वे बहुत आगे बढ़ गयें और उन्होंने इस सभा की इच्छाओं और भावनाओं का कुछ भी विचार नहीं किया। गांवों के प्रश्न के सम्बन्ध में माननीय सदस्यों ने बहुत कुछ कहा है। मैं केवल इतना और कहना चाहता हूं। वे कहते हैं: "मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मसौदे में गांव का परित्याग कर दिया है और व्यक्ति को इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है।" मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि गांवों से भिन्न व्यक्ति हैं ही कहां? जब वे यह कहते हैं कि गांवों का परित्याग कर दिया गया है और व्यक्ति पर विचार किया गया है, तो वे इसे अपनी सुविधा के लिये भूल गये हैं कि व्यक्तियों को ही लेकर तो गांव बनते हैं और ऐसे ग्रामीणों की संख्या, जो हमारे मतदाता है, लगभग 90 प्रतिशत है।

उन्होंने एक और बात की ओर संकेत किया है और वह बहुसंख्यकों के प्रकार के सम्बन्ध में है। वे कहते हैं—"अल्पसंख्यकों ने स्वामिभक्ति से बहुसंख्यकों के शासन को स्वीकार किया है, यद्यपि वे साम्प्रदायिक आधार पर बहुसंख्यक हैं न कि राजनैतिक आधार पर।" मेरी समझ में नहीं आता कि उनके मस्तिष्क में क्या है? राजनैतिक स्तर पर और सरकारी स्तर पर केवल एक दल कार्यशील रहा है और वह है भारतीय कांग्रेस; परन्तु वह एक बिल्कुल ही असाम्प्रदायिक संगठन और राजनैतिक दल है। इस पर भी डा. अम्बेडकर कहते हैं कि "वे साम्प्रदायिक आधार पर बहुसंख्यक हैं।" यह सच नहीं है। मैं यह कहूंगा कि ये शब्द गलत हैं, भ्रामक हैं और दुष्टतापूर्ण हैं। मैं चार बातों के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं, अर्थात् सरकार के स्वरूप के बारे में, अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर, भाषा के प्रश्न पर और प्रौढ़ मताधिकार तथा निर्वाचनों के बारे में। मैं यह जानता हूं कि जितना थोड़ा सा समय मेरे पास है, उसमें मैं इन प्रश्नों पर विस्तार से नहीं बोल सकता; किन्तु मैं इनके कुछ अंगों की चर्चा करूंगा।

डा. अम्बेडकर ने कहा था कि विधान के मसौदे का स्वरूप संधानीय है। जिस पाठक ने इस सारे विधान को सावधानी से पढ़ा होगा, उसे यह ज्ञात हो जायेगा कि इसका स्वरूप उतना संधानीय नहीं है, जितना कि वह एकात्मक है। यदि मैं प्रतिशत में अपनी धारणा व्यक्त करूं तो मैं यह कहूंगा कि वह 75 प्रतिशत एकात्मक है और 25 प्रतिशत संधानीय है। कई सदस्यों ने शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में जोरदार भाषण दिये हैं। मेरे विचार से इतना अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं

थी, क्योंकि देश की वर्तमान परिस्थिति में केन्द्र का शक्तिशाली ही होना आवश्यक है। मेरे विचार से आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है। मेरा विचार है कि शक्तिशाली केन्द्र का निश्चित रूप से यही अर्थ नहीं है कि अशक्त प्रान्त हों। इसका प्रयत्न भी किया गया है और मैं इस प्रकार की मनोवृत्ति भी देखता हूं कि केन्द्र पर अत्यधिक भार डाल दिया जाये और अधिक से अधिक केन्द्रीयकरण किया जाये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि डा. अम्बेडकर ने एक प्रकार की चेतावनी दी है। मुझे यह सोच कर प्रसन्नता होती है कि विधान के व्यवहार में आने पर केन्द्र को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने के प्रयास का फल संघर्ष ही होगा। आखिर यह स्मरण रखना चाहिये कि जंजीर की मज़बूती उसकी सबसे कमज़ोर कड़ी से जानी जा सकती है और इस कारण प्रान्तों को प्रतिद्वन्द्वी सरकारी संगठन न समझना चाहिये। केन्द्र जितना वह हजम नहीं कर सकता, उससे अधिक खाने का प्रयास कर रहा है। मैं अन्तकालीन प्रावधानों में यह देखता हूं कि पहले पांच वर्षों में प्रान्तीय विषयों को भी ले लेने का प्रयास किया गया है। यह सभा ही के निर्णय करने की बात है कि वह इसे किस सीमा तक स्वीकार कर सकती है।

श्रीमान्, जहां तक अल्पसंख्यकों के प्रश्न का सम्बन्ध है, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्य अब इस विचारधारा को अपना रहे हैं कि साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों से क्या प्रकारान्तर से संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्रों से भी कोई लाभ नहीं हो सकता। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि बेगम ऐज़ाज़ रसूल ने इनका परित्याग कर दिया है और वे अब पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों के पक्ष में नहीं है। मित्र करीमुद्दीन ने भी यही बात कही, परन्तु वे एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को चाहते हैं। मुझे इसका खेद है कि यह प्रकारान्तर से उसी बात को कहना है। यह उचित नहीं है और यह सुझाव कि यह अनुपाती प्रतिनिधित्व द्वारा किया जा सकता है, बिल्कुल ही अव्यावहारिक है; विशेषतया साधारण निर्वाचनों में, जिनका सम्बन्ध उन स्त्री-पुरुषों के वृहत् समुदायों से रहता है, जो निरक्षर हैं। माननीय सदस्यों को यह समझना चाहिये कि उस प्रणाली के अधीन मतदाता को उम्मीदवारों के नामों के आगे 1, 2, 3 इत्यादि संख्याएं लिखनी होती हैं। यह कठिन ही नहीं बल्कि अव्यावहारिक भी है। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने कहा है, अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों का विश्वास करना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक आधारभूत बात को स्मरण रखना चाहिये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि श्री त्यागी ने इस पर जोर दिया कि नागरिक अधिकारों को सम्प्रदायों के आधार पर निश्चित नहीं करना चाहिये। हमें इस आधारभूत सिद्धान्त को स्मरण रखना चाहिये।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

एक असाम्प्रदायिक राज्य में प्रतिनिधित्व का अधिकार केवल किसी क्षेत्र विशेष के प्रतिनिधित्व का अधिकार है, जिसमें कि सभी प्रकार के सम्प्रदायों के लोग रहते हैं और यदि कोई व्यक्ति किसी विधायिनी सभा में प्रतिनिधित्व करता है, तो उसे अपने क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों, सभी सम्प्रदायों और सभी वर्गों के स्त्री-पुरुषों की ओर से बोलने का अधिकार है। हमें इसी दृष्टिकोण से कार्य करना चाहिये। इस अवसर पर मैं उन कतिपय अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की प्रशंसा करता हूं, जिनका हमेशा राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहा है और जिन्होंने जन्म या सम्प्रदाय के आधार पर कभी भी विशेष प्रावधानों को रखने की मांग नहीं की। मैं उस सम्प्रदाय की ओर संकेत कर रहा हूं जिसके कि श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय आप सदस्य हैं। मुझे अपने ईसाई मित्रों के निकट सम्पर्क का अवसर मिला और मैंने यह देखा कि उन्होंने कभी भी विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों अथवा विशेष प्रावधानों की मांग नहीं की। मुझे इसकी प्रसन्नता है। यदि किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के कुछ सदस्य इस समय जगहों की सुरक्षा नहीं चाहते हैं, तो इसके लिये मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता, क्योंकि वे परिस्थितिवश जो कुछ हो सकता है वह कर रहे हैं। परन्तु महान् ईसाई सम्प्रदाय ने कभी भी विशेष सुविधा की मांग नहीं की। उनकी बराबर यही धारणा रही है कि पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों से कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि आखिर सभी को साथ रहना है। मुझे इसकी भी प्रसन्नता है कि पारसी सम्प्रदाय ने भी विशेष सुविधाओं की मांग नहीं की।

श्रीमान्, एक माननीय सदस्य सेवाओं में जगहों की सुरक्षा चाहते थे। मेरे विचार से यद्यपि यह शुद्ध राष्ट्रीयता के अनुरूप नहीं है, परन्तु कुछ समय तक हमें इनके लिये सेवाओं में भी जगहें सुरक्षित रखनी चाहियें। परन्तु एक बात को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये। इन सभी शांति और समझौते के उपायों के लिये एक काल-सीमा निश्चित कर देनी चाहिये और आपको यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि एक निश्चित काल के उपरान्त इन सभी विशेष प्रावधानों का लोप हो जायेगा। विशेषतया मैं श्रीमती रेणुका राय के इस सुझाव का समर्थन करता हूं कि अनुच्छेद 306 के अन्तिम भाग में से वे शब्द निकाल दिये जिनका आशय यह है कि दस वर्ष के उपरान्त भी इसे चालू रखा जाये। हमें जोरदार और निश्चित शब्दों में अपने इस विचार को व्यक्त कर देना चाहिये कि हम साम्प्रदायिक आधार पर जगहों की सुरक्षा को इसलिये सहन कर रहे हैं कि इस दोष को इस समय स्वीकार करना आवश्यक है।

मैं भाषा के प्रश्न के बारे में भी कुछ कहना चाहता हूं। राष्ट्र भाषा की यथोचित परिभाषा न होने के कारण ही बहुत सी कठिनाइयां उपस्थित हो जाती है। निस्संदेह भारत के लिये एक राष्ट्र-भाषा का होना आवश्यक है, परन्तु साथ ही आपको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस समय भारत में एक ही भाषा नहीं है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि विधान का मसौदा बनाने वाले इस प्रकार के किसी विवाद में नहीं पड़े हैं। उन्होंने अनुच्छेद 99 में केवल यह कहा है कि "पार्लियामेंट का कार्य अंग्रेजी अथवा हिन्दी में होगा," बस इतना ही उन्होंने कहा है। मेरे विचार से, जैसा कि प्रधान मंत्री महोदय ने कहा है कि राष्ट्रभाषा को निश्चित करने के प्रश्न को इसी स्थान पर और इसी समय छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि हमें निश्चय ही करना है, तो हमें केन्द्रीय सरकार के लिये एक भाषा निश्चित कर देनी चाहिये और साथ ही इसे बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिये कि प्रान्तों में प्रान्तीय भाषायें और विभिन्न प्रदेशों में उनकी प्रादेशिक भाषाऐं ही सरकारी भाषाऐं समझी जायेंगी। यदि इसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जाये, तो इस समय जो उत्तेजना और विवाद उपस्थित है, उसका अन्त हो जायेगा। इसे निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये कि प्रादेशिक भाषाऐं प्रान्तों की विधान-मण्डलों तथा उच्च न्यायालयों दोनों में प्रयुक्त होंगी।

श्रीमान्, यदि आप मुझे दो मिनट दें तो केवल एक बात और कहूंगा। वह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचन के संबंध में है। मद्रास के श्री टी.आर. वेंकटराम शास्त्री जैसे वैधानिक विशेषज्ञों को प्रौढ़ मताधिकार की उपयोगिता के सम्बन्ध में सन्देह है, परन्तु इस सम्बन्ध में अब हमने निश्चय कर लिया है और अब हम पीछे नहीं हट सकते। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात, जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं, यह है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों को लोकमत को सच्चाई के साथ प्रकट करना चाहिये। माननीय सदस्य इससे परिचित है कि दुर्भाग्य से निर्वाचनों का संचालन किस प्रकार होता है। आज हमें पत्रों से ज्ञात हुआ कि इस विधान-परिषद् के एक माननीय सदस्य एक निर्वाचन में मतदान देने के लिये गये। उनसे यह कहा गया कि आपका मतदान हो चुका है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सभी जगह एक बड़े पैमाने में हो रहा है। सन् 1937 ई. में मैं स्वयं चुनाव के लिये खड़ा हुआ और दो तीन चुनावों में मेरी दिलचस्पी रही। मैं यह जानता हूं कि दो बार ऐसा हुआ कि मतदाताओं की वास्तविक संख्या की कम से कम दुगुनी संख्या में मतदान अनुचित ढंग से हुआ। कुछ ऐसा प्रबंध किया जाना चाहिये, जिससे निर्वाचनों में इस प्रकार का दुराचार न हो सके। मेरा एक

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

सुझाव है और मैं उसे इस सभा के विचारार्थ उपस्थित करूंगा और इसके आगे न बढूंगा। प्रत्येक व्यक्ति को एक अभिज्ञा-पत्र देना चाहिये। ब्यौरे के लिये अभिज्ञा-पत्र में व्यक्ति सूचक चिह्न होना चाहिये। मैं तो यह चाहता हूं कि अभिज्ञा-पत्र के साथ मतदाता का चित्र संलग्न होना चाहिये। डाकघर में एक रुपया देकर हमको अभिज्ञा-पत्र मिलता है। उसके साथ हमारा चित्र लगा दिया जाता है और जहां कहीं हम जायें, उसे ले जा सकते हैं। यदि इस प्रकार की या इसी के समान प्रणाली को स्वीकार किया गया, तो मतदाता को पहले अपना अभिज्ञा-पत्र उपस्थित करना होगा और उसके उपस्थित करने पर उसे मत-पत्र मिलेगा और तब वह मतदान कर सकेगा। मैं इस सम्बन्ध में ब्यौरा दे सकता हूं। यह प्रबन्ध बहुत ही सुविधाजनक सिद्ध होगा। यदि इस सुझाव को स्वीकार किया गया और ठीक स्थान में समाविष्ट किया गया, तो मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि निर्वाचित सदस्य लोकमत का सच्चा प्रतिनिधित्व करेंगे।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी** (मध्यप्रान्त और बरार: राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ है और मैं उसकी आलोचनाओं को बड़ी सावधानी से सुनता रहा हूं। दो प्रकार की आलोचनायें हुई हैं। कुछ आलोचकों ने वास्तव में अपनी आलोचना की है न कि विधान के मसौदे की। उन्होंने कुछ निर्णय किये और मसौदा-समिति ने उन सभी निर्णयों का मसौदे में समावेश किया और जहां कहीं उसने अपने सुझाव किये हैं, उनके नीचे लकीर खींच दी गई है और इस प्रकार इन सुझावों और परिवर्तनों की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करने का पर्याप्त प्रयास किया गया है। परन्तु आलोचकों ने आलोचनायें की हैं और इस प्रकार परोक्ष रूप से अपने ही निर्णयों की आलोचना की हैं। दूसरे प्रकार की आलोचना इस तरह हुई है कि आलोचक विचाराधीन विषय के परे चले गये हैं और उन्होंने ऐसी बातें उपस्थित की है, जिन पर किसी देश के विधान के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना अनावश्यक है। मैं इस समय विधान की विस्तृत व्याख्या न करूंगा और यह न बताऊंगा कि उसका प्रकार क्या है और उसके आर्थिक तथा अन्य प्रावधान किस प्रकार के हैं। इन विषयों पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैंने प्रयत्न इसका किया कि मैं देखूं कि विधान के मसौदे में छत्तीसगढ़ रियासतों का क्या स्थान है। मैंने अनुसूची को देखा कि जिसमें शासन-प्रबन्ध की इकाइयों की गणना की गई है, परन्तु उनका कहीं उल्लेख न पाया। वास्तव में इन रियासतों के शासन-प्रबन्ध का मध्यप्रान्त के शासन-प्रबन्ध में समावेश हो गया है और इन

रियासतों की शासन-प्रबन्ध की इकाइयां, जिले बना दिये गये हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि विधान के मसौदे में इन रियासतों को मध्यप्रान्त का एक अंग क्यों नहीं समझा गया है। मैं यह प्रार्थना करता हूं कि यह परिवर्तन कर दिया जाये। परन्तु इससे मेरा यह आशय नहीं है कि इन रियासतों को समाविष्ट करने से लोगों को कोई विशेष लाभ का अनुभव हुआ है। रियासतों की समाविष्टि की अन्तर्कालीन अवस्था में लोगों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। उन्होंने वास्तव में नुकसान उठाया है। उनकी स्थिति पहले से कुछ बिगड़ गई है, परन्तु मुझे विश्वास है और सच्चाई के साथ मेरा यह विश्वास है कि ये केवल अन्तर्कालीन अवस्थायें हैं और इनका अन्त हो जायेगा और आगे चलकर इन छोटी-छोटी रियासतों को मध्यप्रान्त में समाविष्ट हो जाने से लाभ ही होगा। वे किसी प्रकार भी अपना संघ बनाने में समर्थ नहीं हैं और न उनके पास अपनी समुन्नति के लिये पर्याप्त आर्थिक तथा अन्य प्रकार के साधन हैं। इसलिये किसी भी दशा में उनका पृथक्करण न होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त मैं इस सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि अन्न की प्राप्ति और वितरण के सम्बन्ध में कृषि की उन्नति के एकीकरण और योजनाकरण के विषय का संघ-सूची में केन्द्रीय विषय के रूप में समावेश करना आवश्यक है। ऐसा कहते हुये मैं इस सभा का ध्यान माननीय कृषि मंत्री के उस उत्तर की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूं, जो उन्होंने विधान-मण्डल के रूप में समवेत इस सभा में पूछे हुये प्रश्नों के उत्तर में दिया था। उन्होंने कहा था कि समुचित व्यवस्था अथवा शक्ति न होने के कारण केन्द्र के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह देश की कृषि की उन्नति के प्रश्न को प्रभावपूर्ण ढंग से हल करे। जब हम भारत की व्यवस्था के पुनर्निर्माण की बात सोच रहे हैं, तो हमारे ध्यान में सबसे पहले, भारत की कृषि की व्यवस्था आनी चाहिये। यदि आप भारत में सुव्यवस्थित समुन्नति चाहते हैं, जिसमें कृषि की सुव्यवस्था भी सम्मिलित है, तो यह आवश्यक है कि कृषि की उन्नति तथा उसके योजनाकरण को संघ-सूची में स्थान मिलना चाहिये न कि प्रान्तीय सूची में। भारत में अन्न का प्रश्न बहुत गम्भीर है। विदेशों से अन्न के आयात ही में हमारे लगभग सभी डालर तथा अन्य विनिमय के साधन समाप्त हो जाते हैं और बहुत कुछ इसी कारण हमारी औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकी है और न भविष्य में हो सकेगी। इसलिये अन्न के सम्बन्ध में देश को कृषि की उन्नति द्वारा स्वावलम्बी बनाने के लिये वह आवश्यक है कि सारे देश में कृषि का योजनाकरण किया जाये। इसलिये मैं मसौदा-समिति से यह प्रार्थना करता हूं कि वह मेरे इस सुझाव पर

[श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी]

विचार करे और कृषि की उन्नति के एकीकरण को केन्द्रीय विषयों के अधीन रखे। मुझे इसका विश्वास है कि कृषि-विभाग ने भी मसौदा-समिति का ध्यान इस ओर दिलाया है।

अब मैं कामनवेल्थ से भारत के सम्बन्धों के प्रश्न को उठाता हूं। यद्यपि समाचारपत्रों में और सदस्यों के भाषणों में इस प्रश्न की ओर संकेत किया गया है, परन्तु इसके सम्बन्ध में अभी कोई निश्चय नहीं किया गया है। जहां तक मेरा मत है, मैं तो यह चाहता हूं कि भारत को अपने को स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणतंत्र घोषित कर देना चाहिये। विधान के किसी भाग में हमें कामनवेल्थ के साथ अपने सम्बन्ध का उल्लेख न करना चाहिये। अपने को एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित करने के उपरान्त ही भारत को किसी राष्ट्रसमूह के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करनी चाहिये, परन्तु इस समय उपनिवेश की स्थिति में कामनवेल्थ से सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ यही होगा कि हमारा देश अब भी कामनवेल्थ और इंग्लैंड के सम्राट के अधीन है।

जहां तक गांवों में निर्वाचनों के प्रश्न का सम्बन्ध है, गांवों के बारे में वास्तव में बहुत कुछ कहा गया है। डा. अम्बेडकर के इन शब्दों की कि "गांव अज्ञान के अड्डे हैं," बड़ी कड़ी आलोचना हुई है। वास्तव में बड़ी कठोर आलोचना हुई है। मुझे यह ज्ञात है कि सभा ने सच्ची भावना से प्रेरित होकर ही यह आलोचना की है। सभा की यह इच्छा है कि गांवों को आगे बढ़ना चाहिये और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में यथोचित भाग लेना चाहिये। क्योंकि सभा की यह हार्दिक इच्छा है, इसलिये मैं उससे प्रार्थना करता हूं कि विधान में ही निर्वाचन-प्रणाली का ब्यौरा दे दिया जाये। भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रौढ़ मताधिकार प्रदान करने के साथ-साथ विधान-मण्डलों के लिये पात्रता उन्हीं लोगों तक सीमित की जाये, जो न तो आय-कर देते हैं और न 100 एकड़ से अधिक भूमि के स्वामी हैं। मुझे विश्वास है कि इस व्यवस्था से बहुत से ग्रामीण विधान-मण्डलों में आ जायेंगे और वे अपना यथोचित योग दे सकेंगे।

अब मैं एक भाषा-भाषी प्रान्तों के प्रश्न को उठाता हूं। इस प्रश्न की परीक्षा करते समय यह कहा गया था कि भाषा ही के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निश्चयन आवश्यक है। मेरे विचार से यह ठीक सिद्धान्त नहीं है। आर्थिक साधनों का ही ध्यान रख कर भारत के किसी प्रान्त का निर्माण होना चाहिये, ताकि वह अपने प्रत्येक नागरिक को विकास का पूर्ण अवसर प्रदान कर सके। एक भाषा-भाषी प्रान्तों

के सम्बन्ध में विचार-विमर्श से और भाषा के आधार पर इस प्रश्न पर विचार करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति से देश में एक प्रकार की उत्तेजना फैल गई है, जिसका प्रभाव राजनैतिक दलों पर भी पड़ा है। मैंने यह सुना कि कांग्रेस संस्था के अन्दर मनीपुर, त्रिपुरा और कचार का एक जिला अपने लिये एक पृथक् प्रान्त की मांग कर रहे हैं। अन्य भी कुछ ऐसे छोटे-छोटे संघ हैं जो पृथक् प्रदेशों के रूप में रहना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति राष्ट्र के लिये बहुत हानिकारक सिद्ध होगी और इसे रोकना आवश्यक है।

भाषा के सम्बन्ध में मैं तो यह चाहता हूं कि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेना चाहिये। परन्तु मेरा यह अर्थ नहीं है कि विधान के मसौदे के अनुवाद में जिस हिन्दी का प्रयोग किया गया है, उसे स्वीकार करना चाहिये।

उपाध्यक्षः माननीय सदस्य ने अपने समय से अधिक समय ले लिया है।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठीः** अच्छी बात है। श्रीमान्, चूंकि अब मेरे पास समय नहीं हैं, इसलिये मैं इतना ही कह कर समाप्त करता हूं। डा. अम्बेडकर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसका मैं समर्थन करता हूं।

श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी (संयुक्तप्रान्तः जनरल)ः श्रीमान्, आपके सम्मुख अंग्रेजी में बोलते हुये मुझे कुछ संकोच का अनुभव हो रहा है। यह प्रतीत होता है कि कुछ मित्रों को, विशेषतया दक्षिण भारत के मित्रों को यह भ्रम हो गया है कि हम हिन्दी में इस कारण बोलते हैं कि हम उन्हें अपने विचारों से परिचित नहीं कराना चाहते हैं। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि बात यह नहीं है। वास्तव में बात यह है और मैं इसे स्पष्टतया कहना चाहता हूं कि हम अपने विचारों को हिन्दी में अंग्रेजी से दस गुना अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हैं। यही कारण है कि हम में से कुछ लोग बराबर हिन्दी में बोलते हैं। परन्तु इन मित्रों की इच्छा को पूरा करने के लिए मैं अंग्रेजी में बोलने जा रहा हूं।

मुख्य विषय पर आते हुये मैं यह कहना चाहता हूं कि मसौदा-समिति के सदस्यों तथा उसके सभापति ने जो परिश्रम किया और जिस कोटि का विधान बनाया, उसके लिये लगभग सभी वक्ताओं ने उन्हें रस्मी तौर पर बधाई दी है। परन्तु मैं इस रस्म को पूरा करने नहीं जा रहा हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि

[श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी]

उन्होंने बहुत परिश्रम किया है और इस विधान-परिषद् में हमने जो सिद्धान्त निश्चित किये थे उनके आधार पर हमारे सम्मुख विधान का सम्पूर्ण चित्र रखा है। मैं इससे भी परिचित हूं कि विधान के मसौदे में बहुत सी अच्छी बातें हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने विभिन्न देशों के विधानों का गम्भीर अध्ययन किया और उनमें से अच्छी बातें ली, तथा उन्हें इस देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया। यही इस विधान का मुख्य गुण है। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि यह विधान 'रूढ़िगत' है।

परन्तु विधान के मसौदे के गुणों के साथ हमें यह भी देखना है कि इसके दोष क्या हैं और इसमें कौन सी बातें छूट गई हैं। इसके उपरान्त हमें इन दोषों को दूर करने तथा छूटी हुई बातों को स्थान देने का प्रयास करना चाहिये।

इन मुख्य दोषों और छूटी हुई बातों को बताने के पहले मैं विधान के मसौदे के प्रस्तावक महोदय द्वारा व्यक्त किये हुये कुछ विचारों की ओर इस सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मैं अनावश्यक ब्यौरे की चर्चा नहीं करना चाहता क्योंकि इन बातों पर मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता प्रभावपूर्ण ढंग से अपना मत प्रकट कर चुके हैं। परन्तु मैं कुछ विचारों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। एक बात मुझे आपत्तिजनक लगी और मैं उसका उत्तर देना चाहता हूं। डा. अम्बेडकर ने यह कहा कि भारत की भूमि जनतंत्र के लिये अनुपयुक्त है। मेरी समझ मैं नहीं आता कि उन्होंने भारत का इतिहास किस प्रकार पढ़ा। मैं स्वयं इतिहास और राजनीति का विद्यार्थी हूं और मैं इसे निश्चित रूप से कह सकता हूं कि यूनान या संसार के किसी देश से पहले भारत में जनतंत्र का बोलबाला था। पश्चिम के सभी देशों ने यूनान से प्रजातंत्र के विचारों को ग्रहण किया और साधारणतया यह समझा जाता है कि यूनान में ही सबसे पहले जनतंत्र चलन में था।

परन्तु मैं यह कहता हूं और मैं इसका प्रमाण दे सकता हूं कि यूनान से बहुत पहले भारत में जनतंत्र का साम्राज्य था। मैं इस समय इस सम्बन्ध में ब्यौरा नहीं दूंगा, परन्तु मैं दो तीन बातों की ओर प्रस्तावक महोदय का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मुझे यह ज्ञात है कि उन्होंने इतिहास पढ़ा है और वे संस्कृत के भी विद्वान है और इसलिये उन्हें स्मरण होगा कि बुद्ध के समय में भी भारत में जनतंत्र का चलन था। मैं यहां तक ऐसे वाक्य को दुहराना चाहता हूं जिसे कि प्राय: उद्धृत किया जाता है। कुछ व्यापारी उत्तर भारत से दक्षिण की ओर गये।

दक्षिण भारत के राजा ने पूछा कि उत्तर भारत का राजा कौन है? उन्होंने उत्तर दिया-'देव' 'केचिद्देशाः गणधीनाः के चिद् राजाधीनाः'। इसका अर्थ यह है कि उत्तर में कुछ देशों में गणतंत्र है और कुछ में राजतंत्र है।

सिकन्दर के काल में हम यह देखते हैं कि सिकन्दर के इतिहास-लेखकों ने उत्तर भारत के नगर-राज्यों की बहुत प्रशंसा की है, जिनका शासन, जनतंत्र के आधार पर गणतंत्र के रूप में होता था। इसमें सन्देह नहीं कि आगे चलकर बाहर से आक्रमणों के कारण राजनैतिक उन्नति अवरुद्ध हो गई। परन्तु फिर भी हम यह देखते हैं कि हमारे गांवों के ग्राम-पंचायतों के नाम से इसी प्रकार की जनतंत्रात्मक व्यवस्था रही। प्रस्तावक महोदय ने अपने भाषण में इसे स्वीकार किया है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि उन्होंने ऐसी बातें कही हैं, जिनकी पुष्टि इतिहास से नहीं हो सकती।

जहां तक विधान के मसौदे के दोषों का सम्बन्ध हैं, मैं आप का ध्यान लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव की ओर आकर्षित करता हूं। उसमें भी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। 'इंडिपेण्डेण्ट (स्वतंत्र)' शब्द की जगह 'डिमोक्रेटिक (जनतंत्रात्मक)' और 'रिपब्लिक (गणतंत्र)' शब्द की जगह, 'स्टेट (राज्य)' शब्द रखा गया है। मेरे विचार से मसौदा-समिति को ऐसा न करना चाहिये था। इस प्रकार के परिवर्तन का सुझाव ही हमारे लिये अरुचिकर है और मुझे आशा है कि यह सभा उसे स्वीकार नहीं करेगी।

मूलाधिकारों के सम्बन्ध में हम यह देखते हैं कि भाषण-स्वातंत्र्य और सम्मेलन स्वातंत्र्य आदि का अधिकार एक हाथ से दिये गये हैं, तो दूसरे हाथ से छीन लिये गये हैं। अनुच्छेद 13 के प्रथम खण्ड में जो अधिकार दिये गये हैं, उनको बाद में आने वाले खण्डों में छीन लिया गया है। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में भी यही किया गया है। आपको स्मरण होगा कि मैंने आपके सम्मुख इस आशय का एक संशोधन रखा था कि 'रिपब्लिक (गणतंत्र)' शब्द के पहले 'सोशियलिस्ट (समाजवादी)' शब्द जोड़ दिया जाये। मुझे इसका खेद है कि उस समय सेठ दामोदरस्वरूप ने मेरा समर्थन करना उचित नहीं समझा। परन्तु मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अब वे समाजवाद का समर्थन करने के लिये यहां आये हैं। मुझे खेद है कि उस समय किसी ने मेरे प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया और वह अस्वीकार हो गया। चाहे समाजवादी शब्द प्रयुक्त हो या न हो, हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि यदि हम विधान में राजनैतिक जनतंत्र को स्थान दें, तो आर्थिक जनतंत्र को भी स्थान दें।

[श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी]

जहां तक विधान के मसौदे में दिये हुए राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, मैं यह कहूंगा कि यह सोचने के लिये कोई कारण नहीं है कि इनका भारत के भविष्य के सामाजिक ढांचे पर कोई प्रभाव पड़ेगा।

इसमें कुछ अन्य दोष भी हैं परन्तु मैं इनकी ओर संशोधनों पर विचार विमर्श होते समय संकेत करूंगा।

किन्तु मुझे अवश्य ही उन मुख्य बातों की चर्चा करनी चाहिये, जिन्हें कि विधान के मसौदे में छोड़ दिया गया है। तीन ऐसी बातें हैं जो बहुत ही गम्भीर और महत्त्वपूर्ण हैं, अर्थात् राष्ट्रीय पताका, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय भाषा को छोड़ दिया गया है। मेरे विचार से इनको छोड़ देना एक बहुत गम्भीर बात है। मसौदा-समिति को इन तीनों विषयों को विधान में समाविष्ट कर देना चाहिये था। पताका के सम्बन्ध में तो कोई विवाद हैं नहीं। इसे तो आसानी से समाविष्ट किया जा सकता था।

राष्ट्र-गान के सम्बन्ध में ऐसा कुछ विवाद है कि 'वन्देमातरम्' को चुना जाये या 'जन-गण-मन' को। मेरे विचार से 'वन्देमातरम्' जो पिछले 50 वर्षों से हमारा गान रहा है, तथा हमारे स्वतंत्रता संग्राम का प्रकाश-स्तम्भ रहा है हमारे देश के राष्ट्रगान के स्थान को प्राप्त करेगा।

राष्ट्रभाषा का भी प्रश्न है।

***उपाध्यक्षः** यदि आप बोलते जायेंगे तो मेरे पास अन्य वक्ताओं के लिये बहुत कम समय रह जायेगा।

श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठीः श्रीमान्, राष्ट्रभाषा की ओर संकेत करके मैं अपना भाषण समाप्त कर दूंगा।

हमारा देश बहुत विशाल है और इसलिये अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका है कि सारे भारत के लिये एक ही भाषा हो। परन्तु एक स्वतंत्र देश के निवासी होने के नाते अब हमें किसी ऐसी भाषा को विकसित करना है, जो भारत की

राष्ट्र–भाषा का रूप धारण कर सके। इस सम्बन्ध में मेरे यह सुझाव हैं। पहली बात यह है कि प्रत्येक प्रान्त में सरकार का तथा लोगों का कार्य लोगों की भाषा या भाषाओं में होना चाहिये। दूसरी बात यह है कि यद्यपि अंग्रेजी भाषा हम पर विदेशियों द्वारा लादी गई हैं। उसे कुछ समय तक अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिये रहने देना चाहिये। तीसरी बात यह है कि हमें देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी को अपनी राष्ट्र–भाषा स्वीकार करना चाहिये। (*हर्ष ध्वनि*) हमें इसी विधान पर और इसी समय निश्चित रूप से निर्णय कर लेना चाहिये कि देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र–भाषा होगी, यद्यपि जब तक हम उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत में हिन्दी का पर्याप्त रूप से विकास नहीं कर लेते हैं, तब तक अंग्रेजी एक दूसरी भाषा के रूप में रहे। राष्ट्र–भाषा के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है।

अन्तिम बात जो मुझे आप से कहनी है, वह यह है कि हमें सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से इसकी व्यवस्था करनी है कि गऊ की रक्षा हो। हमारे कांग्रेस दल ने यह निश्चय कर लिया था कि गौ–रक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। सम्भवत: मसौदा–समिति इससे परिचित नहीं थी। इसी कारण विधान के मसौदे में इस सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं रखा गया है। मुझे आशा है कि यह विधान–परिषद् इस आशय के प्रावधान को हमारे विधान में समाविष्ट करेगी।

मुझे इतने ही शब्द कहने हैं। मैं आशा करता हूं कि इन विषयों के सम्बन्ध में जिस समय संशोधन आयेंगे, उस समय यह सभा उन पर विचार करेगी और मसौदे के जिन दोषों की ओर मैंने संकेत किया है, उन्हें दूर करने तथा छूटी हुई बातों को स्थान देने का प्रयास करेगी। जय हिन्द।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं संधानीय शासन–प्रणाली के विरुद्ध हूं, क्योंकि मुझे इसका भय है कि अर्थ–सत्ताधारी राज्यों के निर्माण से विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों का उदय होगा, जिससे कि भारत की एकता छिन्न–भिन्न हो जायेगी। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के कारण देश का विभाजन हो गया। संधानीय शासन–प्रणाली से इस उपनिवेश में असंख्य पाकिस्तानों की स्थापना हो जायेगी।

हमारे केन्द्र के मंत्री पिछले पन्द्रह महीनों से शासनारूढ़ रहे हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि यदि वे सुधार की किसी योजना को कार्यान्वित करना चाहते हैं, तो उसके लिये प्रान्तीय मंत्रियों की स्वीकृति प्राप्त करना कितना कठिन है। उनकी स्वीकृति

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

प्राप्त करने में बहुत समय नष्ट हो जाता है और बहुत कम अवसरों पर वह स्वीकृति प्राप्त होती है।

प्रान्तीय सरकारों के कारण साधारण मनुष्य को किसी प्रकार का भी लाभ नहीं होता। उनको यदि समाप्त कर दिया जाये, तो उसका कोई अहित न होगा। इसके विपरीत मुझे विश्वास है कि उसकी दशा बहुत सुधर जायेगी। निस्सन्देह पेशेवर राजनीतिज्ञों को अपनी आजीविका से वंचित होना पड़ेगा। प्रांतों में एक साधारण मनुष्य को ही अपने यहां के खर्चीले शासन-प्रबन्ध का भार वहन करना पड़ता है। गवर्नर, मंत्रियों, पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों और विधान-मण्डलों के सदस्यों के वेतन में ही सारे आगम की आय व्यय हो जाती है। राज्य की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये गरीब लोगों का ही शोषण होता है।

संधानीय शासन-प्रणाली राजनीति में एक प्रतिगामी शक्ति है। वह जनतंत्रीय आर्थिक आन्दोलनों के उत्थान तथा उन्नति को अवरुद्ध कर देती है। इसके कारण प्रान्तों के बीच आर्थिक असमानता चिरस्थायी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उनकी आपस की प्रतिस्पर्धा तथा कटुता और भी बढ़ जाती है और एक भाषा प्रान्तों की मांग होने लगती है।

समूहवादी युग की आवश्यकताओं के लिये संधानीय शासन-प्रणाली बिल्कुल अनुपयुक्त है। राष्ट्रोन्नति की वृहत् योजनाओं को तुरन्त ही कार्यान्वित करना होता है। यदि केन्द्रीय शासन के मार्ग में, जिसे कि निरक्षरता, दरिद्रता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता के चतुर्मुखी प्रश्न को हल करना है, ये अर्धसत्ताधारी राज्य बाधाएं डालें तो यह भारत के निवासियों के प्रति एक अपराध होगा। जो लोग संधानीयता, प्रादेशिकता, प्रान्तीय स्वायत्त-शासन और एक भाषा-भाषी प्रान्तों की चर्चा करते हैं, वे यह नहीं जानते हैं कि वे एक अतीत काल की भाषा बोल रहे हैं। ये शब्द 19वीं शताब्दी की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त थे, जब कि औद्योगिकता का आरम्भ काल था। राजनैतिक संगठन के ये साधन उन कृषिजीवी सम्प्रदायों की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त हैं, जो एक वृहत् क्षेत्र में फैले हुये हों। आज चित्र बिल्कुल बदल गया है। आज हम एक ऐसे विश्व-राज्य की कल्पना कर रहे हैं, जिसे बहुत आबादी वाले क्षेत्रों से लोगों को कम आबादी वाले क्षेत्रों में बसाने की पूरी शक्ति होगी। विश्व-राज्य को मनुष्यों की सारी आर्थिक सम्मत्ति का नियमन

करने का अधिकार होगा। राष्ट्रवादी राज्यों का आजकल की व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है और उनसे मानव की उन्नति तथा हितसाधन के मार्ग में बाधा ही पड़ती है। इस युग की प्रधान प्रवृत्ति किसी सर्वसत्ताधारी अन्तर्राष्ट्रीय प्राधिकारी के हाथों में सारी शक्ति का संकेन्द्रण करने की है। उपराष्ट्रीय समूहों और संधानीय शासन-प्रणाली की चर्चा करना प्रतिक्रियावादिता का ही लक्षण है। यदि कोई विश्व-युद्ध छिड़ जाये तो न जाने भारत की क्या दशा होगी। यदि भारत को कम से कम दस वर्ष के लिये राष्ट्र-निर्माण का अवसर मिल गया, तो वह अन्य राष्ट्रों प्रान्तीय तथा संधानीय अर्धसत्ताधारी राज्य उसके मार्ग में बाधा न डालें तो वह तीसरे विश्व-युद्ध की चुनौती का उत्तर दे सकता है। भारत संसार की महान् शक्तियों से कई शताब्दी पीछे है। यदि हमें बाह्य और आन्तरिक प्रतिक्रिया की शक्तियों पर विजय पानी है, तो हमें राष्ट्रोन्नति के कुछ स्तरों से शीघ्रातिशीघ्र पार निकल जाना है और शताब्दियों को क्षणों में परिणत कर देना है। संसदात्मक संधानीयता को स्वीकार करने से हम अपने शत्रुओं के हाथों में कठपुतली बन जायेंगे। विभाजित जर्मनी और खण्डित कोरिया का अन्तर्राष्ट्रीय लुटेरों की राजनैतिक योजनाओं में मुख्य स्थान है। जिन लोगों की अपनी योजनायें हैं, उन्हें विभाजित भारत के कारण भी कुछ सुरक्षा मिल जाती है। हमारे हिस्से में भारत का जो भाग आया है, यदि उसमें हम संधानीय सिद्धांतों का समावेश करें, तो इससे ऐसे राष्ट्रांघ लोगों को पूर्ण प्रश्रय मिलेगा, जिनका लूट-खसोट ही जीवन है। कोई भी विदेशी शक्ति यह नहीं चाहती कि भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार हो। भारत में शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार होने से सभी पशोपेश में पड़ जायेंगे। शक्तियों का संधानीय, प्रान्तीय और समवर्त्ती रूप में विभाजन करने का अर्थ आत्मघात ही है। शक्तियों के इस प्रकार के विभाजन से सभी ओर से राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो जायेगी।

श्री एस. नागप्पा (मद्रास : जनरल): क्या कोई माननीय सदस्य लिखा हुआ भाषण पढ़ सकता है?

उपाध्यक्षः मैं इसे आपत्तिजनक नहीं समझता। आप आगे बढ़िये।

श्री ब्रजेश्वर प्रसादः जिलों के कलेक्टर और कमिश्नरियों के कमिश्नर के केन्द्रीय गृहविभाग के अधीन कर दिये जाने चाहियें। गवर्नरों, मंत्रियों और प्रान्तीय

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

विधान-मण्डलों के सदस्यों की जगहों को समाप्त कर देना चाहिये। सभी प्रान्तों और राज्यों की सरकारों को समाप्त कर देना चाहिये। विधान-परिषद् को सब अधिशासी, विधायिनी, न्याय-सम्बन्धी तथा अर्थ-सम्बन्धी शक्तियां राष्ट्रपति को दे देनी चाहियें। उनके चार परामर्शदाता होने चाहियें। अर्थात् राजा जी, पण्डित जी, सरदार पटेल और मौलाना आज़ाद। इस प्रकार की शासन-व्यवस्था करने के उपरान्त विधान-परिषद् का अवसान हो जाना चाहिये। इस परिषद् को तभी समवेत होना चाहिये, जब कि एक और अधिकांश परामर्शदाताओं और दूसरी ओर राष्ट्रपति के बीच किसी प्रश्न पर गम्भीर मतभेद हो जाये। यदि राष्ट्रपति अथवा किसी परामर्शदाता की मृत्यु हो जाये, तो उसका उत्तराधिकारी चुनने के लिये विधान-परिषद् बुलाई जाये। तीसरा विश्व-युद्ध किसी समय भी छिड़ सकता है और इसलिये उसके अन्त तक इस प्रकार की शासन-व्यवस्था होनी चाहिये। वर्तमान भारत सरकार के एक्ट को समाप्त कर देना चाहिये।

मैंने दार्शनिक राजाओं के शासन का समर्थन किया है और वह इसलिये कि प्लेटो का, जिसे मैं राजनीति-विज्ञान का जन्मदाता समझता हूं, यह मत था कि यही सबसे अच्छी शासन-प्रणाली है। हम बड़े गर्व से अयोध्या के राजा राम और मिथिला के राजा जनक के राज-काल का स्मरण करते हैं। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया है, वह भारत में हमेशा व्यवहार में रही है। मैंने दार्शनिक राजाओं के शासन का इसलिये समर्थन किया है कि यही सबसे अच्छी शासन-प्रणाली है। मेरा जीवित लोगों में जितना विश्वास है, उतना किसी लिखित विधान के निष्प्राण खण्डों में नहीं है। मेरा किसी चिरस्थायी विधान में विश्वास नहीं हैं अब एक युग का अन्त हो रहा है। हमारे लिये यह समझना बहुत कठिन है कि आने वाली शताब्दी की आवश्यकताएं क्या होंगी। अमेरिकनों ने पूंजीवाद के युग के आरम्भ काल में अपना विधान निर्माण किया। इस युग के अन्त में हम अपना विधान बनाने जा रहे हैं। तृतीय विश्व-युद्ध इसका निर्णय करेगा कि आने वाले युग में आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था किस प्रकार की होगी। आज हम अपने को उथल-पुथल तथा विनाश की अवस्था में पाते हैं। सारे एशिया में उथल-पुथल मची हुई है। राष्ट्र अभी शैशवास्था में है और उसके भरण-पोषण की आवश्यकता है। यह एक नई सामाजिक व्यवस्था के जन्म के पूर्व की प्रसव-पीड़ा का काल है। आज हम चाहे जैसा भी विधान बनायें,

वह आगे चल कर असामयिक प्रतीत होगा। मतदाताओं के हाथ में शक्ति दे देना संकटास्पद ही होगा।

इस्लाम के खलीफों अबू वक्र और शाह उमर की परम्परायें प्रशंसनीय हैं। जर्मनी, इटली और तुर्की ने हिटलर, मुसोलिनी और कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में ऊंची प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त किया। रूस के एकाधिपति ने बड़ी आश्चर्यजनक बातें कर दिखाई हैं। हमारे इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, गुप्तवंश के सम्राटों और हर्षवर्धन तथा अकबर के राजकाल में भारत में शांति तथा समुन्नति का साम्राज्य रहा, तथा वे सबसे अच्छे राजकाल समझे जाते हैं।

इस समय सारे एशिया में किसी देश की भी संसदात्मक शासन-प्रणाली चर्चा के योग्य नहीं है। इसके कुछ आधारभूत कारण हैं। भारत में संसदात्मक प्रणाली को बलपूर्वक प्रयुक्त करने से केवल संकट और विनाश ही उपस्थित होंगे।

मैं संसदात्मक शासन-प्रणाली को जनतंत्र का अव्यवहित रूप समझता हूं। जिस शासन-प्रणाली को हिटलर, मुसोलिनी, कमाल अतातुर्क और स्टालिन ने स्थापित किया था, वह जनतंत्र का व्यवहित रूप है। जर्मनी, इटली और तुर्की के सभी लोग अपने एकाधिपतियों के अनुगामी रहे। हमारे लिये पंडित नेहरू जितनी प्रतिष्ठा के पात्र हैं, सम्भवत: उतनी ही अथवा उससे अधिक प्रतिष्ठा के पात्र रूस के लोगों के लिये स्टालिन हैं। हम रूस के शासन को अजनतंत्रीय कैसे कह सकते हैं? हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं कि सभी शासन-व्यवस्थाओं का आधार, चाहे वे संसदात्मक हों अथवा एकसत्तात्मक हों, जनतंत्र ही है।

जनतंत्र की आत्मा निर्वाचनाधिकार नहीं है। लोगों की प्रत्यक्ष भावना नहीं, बल्कि वास्तविक भावना का प्रतिनिधित्व ही जनतंत्र की आत्मा है। एक ही आदमी, यदि वह लोगों की वास्तविक भावना का समर्थन करता है, तो चाहे लोग उसे निर्वाचित करें या न करें, वह सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है। यदि कोई एकाधिपति अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक हित की चिन्ता करता है, तो उसका शासन सच्चे अर्थ में जनतंत्रीय है। रूप से अधिक महत्त्व गुण को होता है।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

एक-दल शासन जनतंत्र के आदर्शों के बिल्कुल अनुरूप है; इस बात को समझना चाहिये। वर्गहीन समाज में ही वास्तविक जनतंत्र पनप सकता है। युद्ध के कारण जब राष्ट्रीय राज्यों तथा पूंजीवाद का विनाश हो जाता है, तभी वास्तविक जनतंत्र का उदय होता है। मेरे मित्र यह कह सकते हैं कि एक दल शासन से फ़ासिज्म की उत्पत्ति होगी। इसके उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि लोग अपने राजनैतिक दायित्वों को अच्छी प्रकार न समझे, तो जैसा कि जर्मनी और इटली में हुआ था, संसदात्मक शासन-प्रणालियां ही फ़ासिज्म के उत्थान में सहायक हो सकती हैं। क्या भारत के लोग अपने राजनैतिक दायित्वों को समझते हैं? भारत के अधिकांश लोग निरक्षरता, दरिद्रता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता के घोर अंधकार में पड़े हुए हैं। केवल दार्शनिक सम्राट ही इस प्रश्नों को हल कर सकता है। संसदात्मक तथा संधानीय दोनों शासन-प्रणालियों से रोग बढ़ता ही जायेगा।

आलोचक यह कह सकते हैं कि शक्ति से दुराचार होता है और अत्यन्त शक्ति से अत्यन्त दुराचार होता है। मेरा इस कथन में विश्वास नहीं है। क्या हिटलर दुराचारी था? क्या स्टालिन दुराचारी है? मुस्तफा कमाल और मुसोलिनी का जीवनवृत्त उतना ही अच्छा है जितना कि संसदात्मक जनतंत्र के नेताओं का।

इस अणु-युग में आधुनिक राज्य के प्रश्न इतने जटिल और भ्रामक हो गये हैं कि अब ऐसे लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है जो यह समझते हैं कि शासन का संचालन विशेषज्ञों द्वारा ही हो सकता है। संसदात्मक जनतंत्र की उपयोगिता अब समाप्त हो गई है।

यदि हम एशिया में एंग्लो-अमेरिकन चुनौती का जवाब देना चाहते हैं, यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य को आवश्यकताओं को पूरा करना चाहते हैं; यदि हम तीसरे विश्व-युद्ध के आसन्न संकट का सामना करना चाहते हैं और यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आघातों का उत्तर देना चाहते हैं, तो हमें सारी शक्ति अपने नेताओं को समर्पित कर देनी चाहिये।

हमारे विदेशी मित्रों के लिये यह सम्भव नहीं है कि वे स्पेन अथवा सोवियत रूस के मामलों में हस्तक्षेप करें, क्योंकि उनकी सीमाओं पर लोहे का पर्दा पड़ा हुआ है। संसदात्मक जनतंत्र से विदेशियों को किसी देश के आन्तरिक मामलों में

हस्तक्षेप करने की सुविधा मिल जाती है। यदि हमें अपने विदेशी मित्रों के कुचक्रों से बचना है, तो हमें उन्हें किसी प्रकार की सुविधा न देनी चाहिये। हमारा विधान हर तरह से एक पक्का विधान होना चाहिये। संसदात्मक जनतंत्र का परित्याग कर दिया जाना चाहिये।

डा. अम्बेडकर ने कहा था कि हमारा विधान संधानीय भी है और एकात्मक भी। शांतिकाल में तो उसका स्वरूप संधानीय रहता है, परन्तु युद्धकाल में उसे एकात्मक रूप दिया जा सकता है। शांतिकाल और युद्धकाल का विभेद केवल काल्पनिक है, क्योंकि वस्तुतः इस समय हम एक असैन्य युद्ध में संलग्न हैं। यदि हम विदेशी शक्तियों के आघातों का सामना करना चाहते हैं, तो जिस प्रकार के जनतंत्र का हम इस समय निर्माण कर रहे हैं, उससे हमारे मार्ग में बाधा ही पड़ेगी। शांतिकाल की आवश्यकतायें उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं और उन्हें तत्काल ही उसी प्रकार पूरा करना होता है, जैसे कि युद्ध-काल की आवश्यकताओं को। यदि हम इस समय एकात्मक विधान को स्वीकार करते हैं, तो हम तीसरे विश्व-युद्ध से अपनी रक्षा करने के लिये जो बातें आवश्यक होंगी, उन्हें पूरा कर सकेंगे। मैं नहीं जानता कि पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल से भी अधिक योग्य नेता हमारे बीच में हैं या नहीं। फिर हम सभी प्रकार की आलोचनाएं करके भारत सरकार का समय क्यों नष्ट करते हैं? हमें सुव्यवस्था स्थापित करनी है। यदि हम युद्ध की चुनौती का जवाब न दे सके, तो इतिहास में हमारे राष्ट्र का एक विनष्ट राष्ट्र के नाम से ही उल्लेख होगा। मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि यदि युद्ध छिड़ा, तो इस देश की क्या दशा होगी और इसे किन परिणामों को भोगना पड़ेगा। सारे एशिया में उथल-पुथल मची हुई है। हमें चाहिये कि हम अपने नेताओं की शक्ति को क्षीण न करें वही सबसे अच्छे लोग हैं और वही इस देश का शासन कर सकते हैं। क्या उन पर नियंत्रण रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम विधान-मण्डल में बैठे रहें और सभी प्रकार की बकवास करते रहें?

इसके उपरान्त सभा तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिये स्थगित हो गई।

सभा दोपहर के भोजन के उपरान्त तीन बजे पुनः समवेत हुई।
उपाध्यक्ष महोदय, डा. एच.सी. मुकर्जी अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, प्रस्ताव पर आगे विचार करने से पहले क्या मैं आपसे इस सम्बन्ध में इस बात के निर्णय के लिये प्रार्थना कर सकता हूं कि क्या इस सभा के माननीय सदस्यों के भाषणों को ''बकवास'' कहना संसदात्मक पद्धति के अनुरूप है?

***उपाध्यक्षः** मैं उसे पद्धति के अनुरूप नहीं समझता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** यह प्रश्न श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के भाषण के सम्बन्ध में उठता है। उन्होंने इस सभा के माननीय सदस्यों के भाषणों का वर्णन करते हुये 'बकवास' शब्द कहा। इसलिये मैंने इस प्रश्न को उठाया है।

***उपाध्यक्षः** क्या वे यहां उपस्थित हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मुझे ज्ञात नहीं है कि यह शब्द असंसदात्मक है। यदि यह ऐसा है, तो श्रीमान्, मैं इसे वापस लेता हूं और माननीय सदस्य महोदय जिस शब्द का भी सुझाव करें, उसे मैं उसकी जगह रखने के लिये तैयार हूं।

***उपाध्यक्षः** अब हम डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर आगे विचार करेंगे।

श्री एम. सत्यनारायण (मद्रास : जनरल): यह आप लोगों को सुनकर अचम्भा होगा कि मद्रास की तरफ से कोई हिन्दुस्तानी बोलने वाले यहां आये हैं। अब तक तो यह समझा जाता था कि मद्रास के जितने मेम्बरान हैं, वह अंग्रेजी में बोलना चाहेंगे। यह अचम्भा मुझको नहीं है। कारण यह है कि मैं इस बात में पूरी तरह विश्वास रखता हूं कि इस असेम्बली में जितने भी व्याख्यान हों, वे हिन्दुस्तानी में ही हों। लेकिन बड़े दुर्भाग्य और बड़ी मुश्किल की बात है कि 30 साल से काम करते हुये भी दक्षिण से, पूर्व से और पश्चिम से पूरी तरह से हिन्दुस्तानी बोलने वाले इसमें नहीं आ पाये। इसका मतलब यह नहीं है कि इन प्रान्तों में हिन्दुस्तानी बोलने वाले नहीं हैं, लेकिन हिन्दुस्तानी बोलने वाले इस सभा में आ नहीं पाये हैं। यहां पर उत्तर से भी जितने लोग आये हैं, वे भी मैं देखता हूं कि अंग्रेजी में ही बोलते हैं। इसकी वजह यह हो सकती है कि वे लोग दक्षिण के और दूसरे प्रान्तों के लोगों के साथ ज्यादा सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। वजह कुछ भी सही, पर वह अंग्रेजी में ही बोलते हैं।

यह जो हमारा विधान बन रहा है, इसमें तरह-तरह की बातें हमारे सामने रखी गई हैं और उन बातों में से मैं जो समझ पाया हूं उनसे मुझे यह मालूम होता है कि हमारा यह विधान ऊपर से बन रहा है, नीचे से जमीन से नहीं बन रहा है। यदि हमारा विधान जमीन से बनता तो हमारा विधान पहले देशी भाषाओं में बनता। देश के लोग समझते कि जिसे हम स्वराज्य कहते आये हैं, जिसके लिये हम 30 साल से काम करते आये हैं, जिसके लिये हम 30 साल से लड़ाई लड़ते आये हैं और लोगों के सम्पर्क में आये हैं, वह क्या है और वह समझते कि यह विधान उनके लिये बन रहा है न कि किसी और के लिये। हमारा विधान बनाने में अधिकतर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि रखी जा रही है, बनिस्वत राष्ट्रीय दृष्टि के, बनिस्वत गांव वालों की दृष्टि के। हम चाहते हैं कि पहले हमारा विधान सारे देश के लिये देशी भाषा में बनना चाहिये, यह विधान हमारे गांव वालों के लिये बनना चाहिये, जिसमें उनके खाने और कपड़े का प्रबंध हो और जिसके न होने की वजह हमने स्वराज्य मांगा। हमारे लिये यह बहुत ही अच्छा होगा कि हमारी देशी भाषाओं में हमारा विधान बनाया जाये और फिर उसके बाद अंग्रेजी में या दूसरी भाषाओं में, जिनके विधान की नकल की गई है, और जिनको हमें अपना विधान दिखलाना है, उनके लिये उसका अनुवाद कर दिया जाये। अगर हम यह बात पहले ही देख लेते तो अच्छा होता। अगर पहले ही से हम इस बात पर नजर रखते तो आज यहां जितनी बातें की गई हैं कि यह विधान हमारे देश के लिये अनुकूल नहीं है, गांव वालों के लिये अनुकूल नहीं है, गरीबों के लिए अनुकूल नहीं है, इन बातों के कहने का मौका न मिलता। हमने पहले से इस बात की नजर नहीं रखी इससे ही ऐसा काम हुआ। मैं यह मानता हूं कि जब हम लोगों को अपने गरीबों के लिये खाना और कपड़ा चाहिये, रहने की जगह चाहिये, तो हम लोगों के विधान की बुनियाद सारे गांव होने चाहियें, गांवों की पंचायतें होनी चाहिये। उनको ध्यान में रखकर हमें आगे बढ़ना चाहिये। ऐसा न होने की वजह से हमें यह सोचने की जरूरत पड़ती है कि हमारे प्रान्त मजबूत हों या कमजोर हों, या हमारा केन्द्र मजबूत हो या कमजोर हो। यह बात इसीलिये होती है कि हमने विधान बनाने में अपने प्रान्तों और अपने गांवों का ख्याल नहीं रखा। हम लोगों ने अपना सारा विधान इस बात पर निर्भर किया कि हमारा देश किस तरह इंग्लैंड के साथ टक्कर लेगा, या अमरीका के साथ टक्कर लेगा और इनके साथ क्या ताल्लुक रखेगा। इस सारे विधान की देखने से यह महसूस नहीं होता कि हम अपने अन्दर वालों के लिये, अपने गांव वालों के वास्ते या छोटे शहरों के वास्ते, अपने गरीबों के वास्ते क्या करना चाहते हैं। जहां तक हम लोगों

[श्री एम. सत्यनारायण]

की सम्पत्ति का ख्याल है, गांव वालों से ज्यादा से ज्यादा काम करा कर ज्यादा से ज्यादा सम्पत्ति पैदा कराने की ऐसी कोई बात इसमें नहीं है। मैं समझता हूं कि इसके जवाब में यह कहा जायेगा कि आगे चलकर जब हम विधान को काम में लायेंगे, तो सारी बातें इसमें ले आयेंगे और उन बातों को काम में लाया जायेगा, पर विधान में इन बातों को नहीं रखा जा सकता। लेकिन मैं यह मानने वाला हूं कि जिस तरह किसी के चेहरे को देखकर यह मालूम हो जाता है कि इसके अन्दर क्या है, उसी तरह इस विधान को देखने से साफ मालूम हो जाना चाहिये कि यह विधान किधर आगे बढ़ाने वाला है। इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि जब विधान के ऊपर एक-एक धारा को लेकर विचार किया जायेगा, तो उस वक्त इस बात की कोशिश की जायेगी कि जिस तरह की चीजों को हम अपने देश वालों को देने का वादा करते आये हैं, वह इसमें रखी जायें।

एक बड़ा सवाल यहां पर चार पांच दिन से प्रान्तीय भाषाओं और राज्य भाषा या राष्ट्र-भाषा का चल रहा है कि इन दोनों के बीच में क्या सम्पर्क होना चाहिये। प्रान्तीय भाषाओं को क्या जगह मिलनी चाहिये और राष्ट्रीय-भाषा को क्या जगह मिलनी चाहिये, इस पर काफी बहस मुबाहिसा हुआ है। मैं मानता हूं कि जब तक हम इस बात का निश्चय नहीं करेंगे कि प्रांतीय भाषाओं का क्या स्थान होगा, किस तरह वह भाषाएं प्रान्तों में काम में लाई जायेंगी और लोगों को कैसे उनके सम्पर्क में लाया जायेगा, जब तक राष्ट्र-भाषा का निर्णय नहीं हो सकता। मैं ऐसा मानता हूं कि हमारी जितनी प्रान्तीय भाषायें हैं, उनको राज्य भाषा से छोटी जगह नहीं मिलनी चाहिये। अगर इसका निर्णय न हुआ तो इसका बहुत आन्दोलन किया जायेगा और लोग इस बात पर बहुत जोर देंगे कि जो उत्तरी प्रान्त है, जहां के लोग यह मानते हैं कि हिन्दी उनकी मातृभाषा है, वह लोग अपनी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इसका बहुत जोर प्रान्तों पर पड़ेगा और वह मुखालिफत करेंगे और हमारा देश टुकड़ों-टुकड़ों में बंट जायेगा, जैसा कि यह पहले बंटा हुआ था। इसको रोकने के लिये यह बहुत जरूरी है कि प्रांतीय भाषाओं के लिये यह बात साफ कर दी जाये कि किसी भी हालत में राज-भाषा प्रान्तीय भाषाओं का स्थान नहीं ले सकती। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो इसमें बहुत बड़ा खतरा होने की गुंजाइश है। इसको दूर करना बहुत जरूरी है। राजभाषा का काम सारे राज को एक करने का होगा। राजभाषा का यह भी कार्य है कि जो अन्तर्राष्ट्रीय

काम हैं, उनको भी आगे बढ़ा सके मेरा ख्याल यह है कि यह बहुत जरूरी है कि हम लोग एक मिली जुली संस्कृति बनायें, एक मिली जुली भाषा को बनायें और एक मिले जुले समाज को बनायें। हम लोग सदियों से यह करते रहे हैं कि जो कोई भी इस देश में आया और वह जो कोई भी संस्कृति और भाषा और पोशाक यहां लाया, उसको हमने अपनाया और आगे बढ़ते गये। इसी तरह की रीति हमें आगे भी अख्तियार करनी चाहिये। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो बहुत मुमकिन है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उस तरह न बढ़ सकेंगे, जैसा कि हमारे प्रधानमंत्री चाहते हैं, बल्कि अपने अन्दरूनी झगड़ों में ही लगे रहेंगे। अगर हम ऐसा न करें तो ज्यादा अच्छा होगा।

इस बात के ऊपर सिर्फ ख्याल करना ही नहीं, बल्कि काम करना बहुत जरूरी है। इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि हमारे देश की जो राष्ट्रीय भाषा होगी और जिसका यहां पर उपयोग होगा, उसमें ऐसी मिली जुली संस्कृति की सन्धि होनी चाहिये और साथ ही साथ ऐसे मिले जुले शब्द होने चाहिये, ऐसा मिला जुला मुहाविरा होना चाहिये और ऐसी मिली जुली लिपि भी होनी चाहिये, जिसमें हम आगे चलकर कम से कम दस पन्द्रह साल तक एक दूसरे को समझकर आगे बढ़ने की कोशिश करें और उस वक्त तक के लिये मिली जुली संस्कृति हो, उसे छोड़ने के लिये कभी भी हम उद्योग न करें। मैं इसे और मुख्तसर में कहने के लिये यह कहना चाहता हूं कि हमारे देश की भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिये, हमारे देश की संस्कृति हिन्दुस्तानी संस्कृति होनी चाहिये। हमारे देश की लिपि जब तक हमारे देश के सब लोग, जो इस वक्त दो अलग-अलग लिपियां लिखते हैं, वह एक कॉमन लिपि सीख न जाये, तब तक उन सब लिपियों को यहां पर स्थान मिलना चाहिये, ताकि किसी को यह बात कहने का मौका न मिले कि हम यहां पर पचास साल से यह लिपि लिखते आये हैं और अब स्वराज्य मिलने पर हमारी लिपि को दबाया गया और हमारे धर्म और संस्कृति को दबाया गया। अगर आज हम इस बात के लिये तैयार हैं कि पन्द्रह-बीस साल तक के लिये अंग्रेजी को रखने की जरूरत है, तो कोई वजह नहीं है कि दूसरी प्रचलित भाषायें भी साथ-साथ उस समय तक न रह सकें। आज दूसरे लोग कहते हैं कि हमारी भाषा में इतने शब्द आये हैं, इतने लफ़्ज आये हैं हम उन्हें और आगे बढ़ायें और उनको भी हम रायज रखें और उनका भी इस्तेमाल कर सकें। इसलिये मैं ऐसा

[श्री एम. सत्यनारायण]

मानता हूं कि इन्साफ के ख्याल से और अपनी सुविधा के ख्याल से भी इन बातों का रखना जरूरी है।

मैं कहना तो बहुत चाहता हूं और इस मसले के ऊपर बहुत ज्यादा कहना शायद मुश्किल भी नहीं है। सवेरे से इतने लोगों ने जरूरत से ज्यादा वक्त लिया है और उन पर हमारे सभापति जी ने काफी फब्तियां भी कसी हैं। इसलिये मैं और ज्यादा समय न लेकर इतने शब्दों के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं कि अभी जो प्रस्ताव हमारे पास आये हैं, वह जब वक्त आयेगा, उस वक्त अगर मुझको मौका मिलेगा, तो मैं अपने और विचार आपके सामने रखने की कोशिश करूंगा।

***श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं बड़े विनय भाव से प्रेरित होकर इस सभा को जो महत्त्वपूर्ण कार्य इतिहास में समर्पित किया है, उसके सम्बन्ध में बोलने के लिये उठा हूं। उसने इस महान् और प्राचीन देश के लिये, जिसकी सभ्यता उस युग की है जिसका मनुष्य को स्मरण भी नहीं है, एक जनतंत्रात्मक विधान का निर्माण करना है। किसी राष्ट्र को भी सफलता और विफलता, सुख और दुख तथा प्राप्ति और अप्राप्ति का इतना अनुभव नहीं हुआ है, जितना कि हमको हुआ है। अपने राज्य तथा अपनी सरकार का स्वरूप निश्चित करते समय हमें इतिहास से जो शिक्षाएं प्राप्त हई हैं, उनमें से कम से कम एक की ओर ध्यान देना चाहिये। वह यह है कि जिस किसी क्षेत्र में भी हमने प्रतिष्ठा प्राप्त की, वह ऐसे काल में प्राप्त की जब भारत राजनैतिक एकता के लिये प्रयत्नशील रहा और इस कार्य में सफल हुआ। इस प्रकार की एकता के लिये हमेशा केन्द्र में कोई न कोई एकता स्थापित करने वाली प्रबल शक्ति रही। उस शक्ति का स्वरूप विभिन्न कालों में विभिन्न रहा और हमें भी ऐसी शक्ति को स्थापित करना होगा, जो वर्तमान काल के लिये उपयुक्त हो, परन्तु सत्य यही है कि भारत की महानता एक शक्तिशाली एकता स्थापित करने वाले केन्द्र पर निर्भर ही है और निर्भर रहेगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि हमारे विधान में एक शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था की जाये और मुझे इसका हर्ष है कि मसौदा-समिति ने इसे मुख्यत: अपनी दृष्टि में रखा। ऐतिहासिक कारणों के फलस्वरूप तथाकथित 'प्रान्तीय स्वायत्त-शासन' की उत्तरोत्तर जो मांग की गई, उसे अब दबाने की आवश्यकता है। जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, तो

हमें ज्ञात है कि यह देश 52 स्वायत्तशासी प्रदेशों में विभाजित था और हमें यह भी ज्ञात है कि इसका क्या परिणाम हुआ। जब केन्द्र अनुत्तरदायी था और उस पर विदेशियों का पूर्ण प्रभुत्व था, तो इसे किसी प्रकार ठीक भी कहा जा सकता था। उस समय भी 'प्रान्तीय स्वायत्त-शासन' से प्रान्तीयता को प्रोत्साहन मिला। इस अभिशाप की केवल इस कारण वृद्धि न हुई है कि अखिल भारतीय कांग्रेस का प्रान्तीय मंत्रिमंडलों पर नियंत्रण था और उसके प्रभाव के कारण देश का एकीकरण ही होता था। अब देश में कोई विदेशी शक्ति नहीं रही है और इसलिये अब केन्द्र और प्रान्तों के बीच कोई कलह न होना चाहिये। जहां तक प्रान्तों का प्रश्न है, जब कभी प्रान्तों के बीच विद्वेष इतना बढ़ जाये कि उससे देश की एकता ही संकट में पड़ जाये, या देश की उन्नति अवरुद्ध हो जाये, तो ऐसे समय में हस्तक्षेप करने की शक्ति यदि केन्द्र को हो, तो कलह की सम्भावना बहुत कम रह जायेगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि केवल युद्धकाल में या सद्यस्कृत्यस्थिति के समय ही राज्य को एकात्मक राज्य के रूप में कार्य न करना चाहिये, बल्कि शान्तिकाल में भी केन्द्र को हस्तक्षेप करने की कुछ शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें, क्योंकि बिना इसके देश का पुनर्निर्माण सम्भव न हो सकेगा।

शक्तियों के सीमाकरण के विषय के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने भारतीय इतिहास में ग्रामीण लोगों के स्थान के बारे में जो आलोचना की है, उसके बारे में मैं कुछ ही बातें कहकर सन्तोष कर लूंगा। यह सच है कि कुछ कालों में जब देश में बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटनाएं हुई, तो ग्रामीण लोग प्रभावशून्य रहे। परन्तु यह उन्हीं कालों में हुआ, जब राष्ट्र निस्तब्धता और अकर्मण्यता को प्राप्त था और राजनैतिक जीवन भी विच्छिन्न हो रहा था। ऐसे ही समय में हमारे ग्राम इतिहास की गतिविधि के प्रति उदासीन रहे। परन्तु ऐसे भी काल रहे हैं, जब राष्ट्रीय जीवन स्वस्थ रहा है और जब हमारे ग्राम शक्ति संचय में अपना योग देते रहे हैं मुझे इसका विश्वास है कि यदि हमारे ग्रामों को फिर से अनुप्राणित किया जाये और शक्ति से परिचित कराया जाये, तो वे हमारे राज्य के शक्ति-स्तम्भ ही प्रमाणित न होंगे, बल्कि उन्हीं से उसे मुख्यत: शक्ति प्राप्त होगी।

भारत को हमेशा इसका गर्व रहा है और मुझे भी इसका गर्व है कि देश में अनेकता होते हुए भी उसने सांस्कृतिक एकता प्राप्त की है। परन्तु इस समय हमारे राजनैतिक जीवन में यह आवश्यक है कि हम अनेकता से अधिक एकता

[श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार]

और एकरूपता पर ही जोर दें। इसलिये मैं सारे देश के लिये एक समान राजनैतिक ढांचा चाहता हूं। हमारे उपप्रधान मंत्री के क्रियात्मक तथा प्रेरणाप्रदायक नेतृत्व में स्टेट्स मिनिस्ट्री ने देश के एकीकरण का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और कर रही है, इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये वह कम है। मुझे आशा है कि वह कार्य उस सीमा तक पहुंच जायेगा, जब कि प्रतिस्पर्धा राज्यों और राज्य-संघों में देश के राजनैतिक ढांचे के अन्दर वही शासन-व्यवस्था हो जायेगी, जैसी कि अन्य प्रदेशों में है, अर्थात् जैसी कि वर्तमान प्रान्तों में है। जैसा कि मसौदा-समिति के सभापति महोदय ने स्वयं कहा है। इन प्रदेशों में ऐसी आधारभूत समानताएं हैं कि मैं नहीं चाहता कि उन्हें 'स्टेट (राज्य)' भी कहा जाये, क्योंकि इससे यह अर्थ बोध हो सकता है कि भारतीय संधान संयुक्त राज्य अमेरिका के समान है। सभी प्रदेशों को, चाहे वे वर्तमान प्रान्त हों अथवा समाविष्ट राज्य हों, समान रूप से 'प्राविंस (प्रांत)' का ही नाम दिया जाये।

मुझे अपनी भाषा की उन्नति का तो गर्व है ही, परन्तु साथ ही मुझे भारत की प्रमुख भाषाओं की उन्नति का भी गर्व है। निस्सन्देह मैं सारे देश के लिये एक राष्ट्र-भाषा के पक्ष में हूं, परन्तु साथ ही मेरी यह भी धारणा है कि यदि हमने प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के प्रति उदासीनता दिखा कर उन्हें अशक्त बना दिया, तो इससे जो हानि होगी उसे कभी भी पूरा न किया जा सकेगा। जिस भाषा को भी हम राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें, उसे किसी के ऊपर लादा न जाये। यदि उसे धीरे-धीरे और स्वाभाविक रूप से प्रविष्ट किया जायेगा, तो सभी उसे स्वेच्छा से स्वीकार करेंगे और उससे यह भावना उत्पन्न न होगी कि वह एक प्रकार से बलपूर्वक लादी गई है। मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता महोदय इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उन पर किसी ने हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी लादी नहीं, परन्तु माननीय सदस्यों ने अभी देखा कि कितने प्रवाह से वे अभी बोले। जहां तक अंग्रेजी का सम्बन्ध है, हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के माध्यम के रूप में उसकी उपयोगिता की उपेक्षा नहीं कर सकते। देश के अन्दर भी उसके प्रयोग के सम्बन्ध में मैं हिंसापूर्वक उसका गला घोट देने के पक्ष में नहीं हूं, परन्तु यह चाहता हूं कि वह धीरे-धीरे हटाई जाये। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी काल-सीमा को निश्चित करना ठीक न होगा।

यह एक दुर्भाग्य की बात है कि एक भाषा भाषी प्रान्तों के प्रश्न को प्रान्तीयता के प्रश्न के साथ जोड़ दिया गया है। एक भाषा भाषी प्रान्तों के सिद्धान्त का दो कारणों से समर्थन किया जा सकता है। अर्थात् शासन-प्रबन्ध और शिक्षा-सम्बन्धी सुविधा की दृष्टि से और हमारी प्रमुख भाषाओं की उन्नति की दृष्टि से, इस सम्बन्ध में किसी और प्रश्न पर विचार करना असंगत होगा। दुर्भाग्य से इस विषय पर बहुत ही उत्तेजनापूर्ण विवाद और कलह मचा हुआ है। सम्भवत: अब भी हम पर उसी खिन्नावस्था का प्रभाव अवशेष है, जो कुछ ही समय पूर्व समाप्त हुई है और जिस अवस्था में हमारे विदेशी शासकों ने विभाजन की भावना को प्रोत्साहित किया तथा सुदृढ़ बनाया। मुझे आशा है कि कुछ समय के उपरान्त हम वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। यह आवश्यक है कि इस समय सभी प्रकार के आन्तरिक कलहों का परित्याग किया जाये। इसलिये प्रान्तों का भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण करने के प्रश्न को यदि इस समय बिना कटुता और कलह के हल नहीं किया जा सकता, तो मेरे विचार से इस प्रश्न को दस वर्ष के लिये स्थगित कर देना चाहिये। मेरा केवल यह अनुरोध है कि विधान में कोई ऐसा प्रावधान न रखा जाये, जिसके कारण भविष्य में इस प्रश्न को हल करने में कठिनाई का अनुभव हो। साथ ही मैं अपने सभी देशवासियों से यह भी प्रार्थना करता हूं कि वे कोई ऐसी बात न करें, जिससे हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी के राष्ट्र-भाषा होने के अधिकार को हानि पहुंचे। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के प्रति मुझे प्रेम है और मैं इस आवश्यकता को भी अनुभव करता हूं कि हमारे देशवासी विधान को समझें और उसका अनुसरण करें। इसी कारण मैंने यह कहा है कि विधान को सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करा देना चाहिये और विधान को उसके अन्तिम रूप में स्वीकार करने के पूर्व उसे भारतीय भाषाओं में लिखे हुए रूपान्तरों का अनुमोदन कर लेना चाहिये।

मुझे केवल एक शब्द और कहना है। मुझे आशा है कि गांधीवाद के इस युग में मेरे शब्दों से अर्थभ्रम न होगा। मैं लोगों के शस्त्र-धारण करने के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। हम विधान को आज स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु जहां तक मैं समझता हूं इस सम्बन्ध में उसमें कोई उल्लेख नहीं है। मैं यह चाहता हूं कि इस सभा को मूलाधिकार के रूप में विधान में यह प्रावहित करना चाहिये

[श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार]

कि सभी प्रौढ़ वयस्कों को, यदि कभी भारत माता संकट में पड़े, तो उस समय उसके रक्षार्थ शस्त्र-धारण करने का अधिकार होगा। जय हिन्द।

*पं. **मुकुट बिहारी लाल भार्गव** (अजमेर मेरवाड़ा): उपाध्यक्ष महोदय, पिछले कई दिनों से इस सभा में विधान के मसौदे की आलोचना होती रही है। मैं पूरे विधान के मसौदे के सम्बन्ध में नहीं बोलूंगा, बल्कि उसके केवल एक अंग के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट करूंगा, अर्थात् मैं अपने को विधान के मसौदे के भाग 7 तक ही सीमित रखूंगा। उसमें भारत सरकार के सन् 1935 ई. के एक्ट के अधीन चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का वर्णन है। मैं आरम्भ में ही आदरपूर्वक इस सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के सम्बन्ध में मसौदा-समिति तथा उसके सभापति ने बड़ा अन्याय किया है। वास्तव में विधान के मसौदे के भाग 7 में मसौदा-समिति ने जो सिफारिशें की हैं उनको देखने से यह पता लगता है कि वह अपने अधिकारों से परे चली गई है। इस सभा ने 29 अगस्त सन् 1947 ई. को जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, वह इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट है और यदि आवश्यक समझा जाये, तो उसे देखा जा सकता है, क्योंकि उसी के अनुसार मसौदा-समिति अस्तित्व में आई। उस अवसर पर सभा ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसमें मसौदा-समिति की शक्तियां निश्चित की गई हैं। केवल सभा के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये उसे बनाया गया था। जब इस सभा में चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का प्रश्न उठा था, तो संघीय विधान-समिति ने यह सिफारिश की थी, जैसा कि आप उसके प्रतिवेदन के भाग 8 के खण्ड 1 में देख सकते हैं कि चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का शासन केन्द्र उसी प्रकार करता रहे, जैसे कि वह भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम के अधीन करता रहा है। जब संघीय विधान समिति के प्रतिवेदन के भाग 8 खण्ड 1 को माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर ने इस सभा में उपस्थित किया था, तो मेरे मित्र श्री देशबन्धु गुप्त ने उसमें एक संशोधन का प्रस्ताव किया था और वह एकमत से स्वीकार कर लिया गया था। उस संशोधन का उद्देश्य यह था कि इस आदरणीय सभा के सात सदस्यों की एक तदर्थ समिति बनाई जाये, जो चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के प्रश्न पर विचार करे और इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्थाओं में जनतंत्रात्मक आधार पर ऐसे परिवर्तन करने के लिये सुझाव उपस्थित करे, जो देश की बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल

हों। इस संशोधन का इस सभा द्वारा एकमत से स्वीकार होने के स्पष्ट अर्थ यह है कि यह सभा इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्थाओं में जनतंत्रात्मक आधार पर ऐसे परिवर्तन करने के लिये वचनबद्ध है, जो स्वतंत्र भारत के गणतंत्रात्मक विधान के अनुरूप हों। इस सभा का यह आदेश होते हुये भी मसौदा-समिति ने विधान के वर्तमान मसौदे के अनुच्छेद 212 से 214 में ऐसी सिफारिशें की हैं, जिनको देख कर दु:ख होता है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि चूंकि मसौदा-समिति तदर्थ समिति की सिफारिशों की उपेक्षा नहीं कर सकती थी, इसलिये उसे इस प्रकार की सिफारिश करने का अधिकार नहीं था। तदर्थ समिति में इस सभा के तीन प्रतिष्ठित सदस्य थे। वे श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर, श्री सन्तानम् और श्री पट्टाभि सीतारमय्या थे। यह सब होते हुये भी तदर्थ समिति ने एकमत से जो सिफारिश की थी, उसका 212 से 214 तक के अुनच्छेदों से खण्डन कर दिया गया है। अनुच्छेद 212 में यह प्रावहित है कि चीफ कमिश्नर के प्रान्तों का शासन राष्ट्रपति चीफ कमिश्नर द्वारा उस सीमा तक करता रहेगा, जिसे कि वह उपयुक्त समझे। मसौदा-समिति ने इस अनुच्छेद 212 में केवल भारत-सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम की धारा 93(3) के शब्दों को दुहराया है। श्री गुप्त के संशोधन को स्वीकार करने से इस सभा ने इन्हीं शब्दों का शून्यन कर दिया था। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि अनुच्छेद 212 और 213 में मसौदा समिति अपने अधिकारों से परे चली गई है और इस सभा को उन पर विचार न करना चाहिये। तदर्थ समिति ने चीफ आयुक्तों के प्रान्तों के प्रश्न पर विचार किया और उसने उनकी वर्तमान शासन-व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिये कुछ सिफारिशें कीं। वास्तव में आधुनिक युग में, जब कि भारत ने अपने स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है और जब हम यहां इसलिये एकत्रित हुये कि हम एक ऐसा विधान बनायें, जो स्वतंत्र गणतंत्रीय भारत के लिये उपयुक्त हो, हम एक ऐसी सिफारिश की कल्पना भी नहीं कर सकते, जो 212 से लेकर 214 तक के अनुच्छेदों द्वारा की गई है। इन सिफारिशों का उद्देश्य स्वेच्छाचारिता की शासन-व्यवस्था को चिरस्थायी बनाना ही है। मुख्यायुक्तों के प्रान्त स्वेच्छाचारी तथा नौकरशाही शासनों के अड्डे रहे हैं और यद्यपि पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त किये पन्द्रह महीने हो गये हैं, परन्तु हम आज भी यह देखते हैं कि वहां केवल स्वेच्छाचारिता का ही बोलबाला है। राजनैतिक कारणों से तथा अपनी चालों को सफल बनाने के लिये ब्रिटिश सरकार मुख्यायुक्तों के प्रान्तों की उत्तरदायी शासन की स्थापना को मांगों की उपेक्षा करती रही। उसने सन् 1924 में केवल एक रियायत की और उनको विधान-मण्डल में एक जगह

[पं. मुकुट बिहारी लाल भार्गव]

दे दी। इसके अतिरिक्त इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्था इस प्रकार की है कि केवल एक आदमी शासन करता है। जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का सम्बन्ध है, वहां का शासन तो दुराचार, पक्षपात और अकौशल से परिपूर्ण है जब तक लोगों के विश्वास पात्र प्रतिनिधियों को वहां की शासन-व्यवस्था में अधिकार न दिया जायेगा और उनकी बात न मानी जायेगी, तब तक इस निन्दनीय अवस्था का कैसे अन्त हो सकता है? उनमें से प्रत्येक ने इन मुख्यायुक्तों के प्रान्तों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की मांग की है। पिछले तीन वर्षों में अजमेर-मेरवाड़ा में तीन सम्मेलन हो चुके हैं और उनमें तुरन्त ही उत्तरदायी शासन स्थापित करने की मांग को दुहराया गया। प्रान्तीय कांग्रेस समितियों ने भी प्रत्येक स्थान में वही मांग की है। परन्तु इसके होते हुये भी स्वेच्छाचारी शासन चलता रहा है और विधान के मसौदे के 212 से लेकर 214 तक के तीन अनुच्छेदों का यही उद्देश्य है कि उसे चिरस्थायी बनाया जाये। मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि यह एक ऐसी सभा द्वारा कैसे सहन किया जा सकता है, जो स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिये एकत्रित हुई है? कल राजपूताना के एक संघ की ओर संकेत किया गया था। हम सब लोग चाहते हैं कि राजपूताना की विभिन्न रियासतों की शासन-व्यवस्थाओं तथा प्रदेशों का एकीकरण हो और यह शीघ्रातिशीघ्र कार्य रूप में आ जाये। परन्तु उस समय तक वर्तमान शासन-व्यवस्थाओं को रहने क्यों दिया जाये? हम नहीं जानते हैं कि राजपूताना संघ का भविष्य में कैसा चित्र होगा। यदि वह स्थापित हुआ, तो अजमेर-मेरवाड़ा उसका स्वागत करेगा और यदि उसमें उसका ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व वही रहा, जो उसका इतिहास के आदिकाल से लेकर पठान, मुगल, मरहटों तथा अंग्रेजों के काल में रहा है, तो वह सहर्ष उसमें सम्मिलित हो जायेगा, परन्तु चूंकि ऐसे संघ के स्थापित होने की सम्भावना है, इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वेच्छाचारी शासन चलता रहे। दूसरे चीफ कमिश्नर के प्रान्त अर्थात् दिल्ली की ओर भी कल संकेत किया गया था। कुर्ग का जहां तक प्रश्न है, उसकी अवस्था भी इन्हीं के समान है। वहां विधान-मण्डल का काम केवल परामर्श देना है। उसे न कानून बनाने का अधिकार है और न प्रतिदिन के शासन-प्रबन्ध में उसकी कुछ सुनी जाती है। वहां भी लोगों की यही मांग है कि उत्तरदायी शासन की स्थापना हो। मेरी समझ में नहीं आता कि तदर्थ समिति की सभी सिफारिशों को स्वीकार करने में इस सभा को क्या आपत्ति हो सकती है।

तदर्थ समिति ने बड़ी सावधानी के साथ सिफारिशें की हैं। उसने सिफारिश की है कि इन प्रदेशों की आर्थिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये यह आवश्यक है कि केन्द्र को उनके सम्बन्ध में शासकों के प्रान्तों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त हों। हम लोगों ने, जो मुख्यायुक्तों के प्रान्तों के प्रतिनिधि हैं अनिच्छा होते हुये भी केवल समझौते की दृष्टि से प्रतिबन्धों को स्वीकार किया है। केवल नाममात्र को ही आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है, क्योंकि सभी अर्थ-सम्बन्धी प्रस्तावों के लिये संघ के राष्ट्रपति की स्वीकृति अपेक्षित होगी। इसी प्रकार कानून के क्षेत्र में यह सिफारिश की गई है कि प्रत्येक विधेयक को कानून का रूप देने के पहले संघ के राष्ट्रपति की स्वीकृति अपेक्षित होगी। तदर्थ समिति के प्रतिवेदन में यह भी प्रावहित है कि यदि कभी उपशासक और मंत्रियों के बीच मतभेद हो, तो राष्ट्रपति का निर्णय अन्तिम होगा। इसलिये इन सिफारिशों को स्वीकार करने में और अजमेर-मेरवाड़ा तथा अन्य मुख्यायुक्तों के प्रान्तों को किसी प्रकार का उत्तरदायी शासन प्रदान करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है।

प्राय: यह तर्क उपस्थित किया गया है कि यह प्रदेश अपना जीवन धारण करने में समर्थ नहीं है। यह स्वावलम्बी नहीं है और यहां जीवनोपयोगी वस्तुओं की कमी रहती हैं। मैं आदरपूर्वक पूछता हूं कि इसका दोष किस पर है? अजमेर-मेरवाड़ा के लोग कभी भी यह नहीं चाहते थे कि उनको पृथक् किया जाये और उनके प्रदेश को राजपूताना के राज्यों के बीच में एक द्वीप के समान बना दिया जाये। इस समय की केन्द्रीय सरकार ही इसके लिये उत्तरदायी है और उसी ने यह निर्णय किया कि अजमेर-मेरवाड़ा को एक पृथक् प्रदेश बनाया जाये, ताकि पड़ोस के राज्यों पर दृढ़ता से अपना प्रभुत्व जमाये रखने के लिये वह केन्द्र का एक गढ़ सिद्ध हो। इसके लिये अब लोगों को क्यों दंडित किया जाये? जैसा कि मैंने कहा है, राजनैतिक कारणों से तथा प्रभुत्व जमाये रखने के लिये ही उसे एक द्वीप के रूप में छोड़ दिया गया था। इस अवस्था में क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि केन्द्रीय सरकार सीमाप्रान्त को लगभग एक करोड़ रुपये और सिंध को भी आर्थिक सहायता क्यों देती थी? यदि अब वह आसाम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब को सीमाओं के रक्षार्थ तथा प्रभुत्व बनाये रखने के लिये आर्थिक सहायता देने का निश्चय करे, तो अजमेर-मेरवाड़ा को भी आर्थिक सहायता क्यों न दी जाये? जिन कारणों को मैंने सभा के सम्मुख उपस्थित किया है, उनको दृष्टि में रखते हुये मैं यह कह सकता हूं कि मसौदा-समिति अपने अधिकारों के

[पं. मुकुट बिहारी लाल भार्गव]

परे चली गई है। यह सभा इस प्रान्त की शासन-व्यवस्था में यथोचित परिवर्तन करने की नीति को अपनाने के लिये वचनबद्ध है और इसलिये उसने जो तदर्थ समिति नियुक्त की थी, उसकी सिफारिशों को स्वीकार कर लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, उसका मैं समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** यह एक स्वीकृत प्रथा है कि यदि किसी सदस्य को सभा के वादानुवाद में भाग लेने के लिये पुकारा जाये और वे उस समय अनुपस्थित हों, तो बोलने का अधिकार खो बैठते हैं। इस सभा की आज की बैठक के आरम्भ में हमारे एक सहकारी के साथ यही बात हुई। उन्होंने मुझे बताया है कि वे ऐसे कारणों से अनुपस्थित रहे, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। यदि मुझे सभा आज्ञा दें, तो मैं उन्हें बोलने का एक दूसरा अवसर दें दूंगा। चूंकि किसी को आपत्ति नहीं है, इसलिये मैं उन्हें बोलने की आज्ञा देता हूं और सभा के सम्मुख भाषण देने के लिये कहता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर)**:** उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे पर मुझे बोलने का अवसर प्रदान करने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। मसौदा-समिति और उसके सभापति डा. अम्बेडकर का विभिन्न वक्ताओं ने जो प्रशंसा-गान किया है, उसमें मैं भी अपना योग देना चाहता हूं।

विधान के इस मसौदे में संसार के एकात्मक तथा संधानीय दोनों प्रकार के प्रजातंत्रात्मक विधानों में जो अच्छी बातें हैं, उन्हें प्रविष्ट करने का प्रयास किया गया है। निस्संदेह कोई भी विधान दोषमुक्त नहीं हो सकता है और हमें अपने विधान में भी उसे स्वीकार करने के पहले कुछ परिवर्तन करने होंगे।

मैं पहले नीति के निदेशक सिद्धान्तों की चर्चा करूंगा। मेरा यह निवेदन है कि इनमें समाजवादी शासन के परमाणु हैं। मेरा यह निवेदन है कि इस अध्याय को प्रस्तावना के बाद ही रखा जाये। चूंकि ये लक्ष्य-सम्बन्धी सिद्धांत हैं, इसलिये इस प्रकार हम इन्हें अन्य सिद्धान्तों से अधिक पवित्र बना देंगे और वे भविष्य की सरकार का भी पथप्रदर्शन करेंगे। कुछ परिवर्तनों के साथ इनको भारत की भावी पार्लियामेंट के समाजवादी कार्यक्रम के आधारभूत सिद्धान्त माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मैं मूल सिद्धान्तों की ओर संकेत करना चाहता हूं। मैं यह देखता हूं कि कुछ महत्त्वपूर्ण बातें छोड़ दी गई हैं। अधिकांश प्रजातंत्रात्मक विधानों में समाचारपत्रों की स्वतंत्रता प्रत्याभूत है, परन्तु मैं यह देखता हूं कि हमारे विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। निस्संदेह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रावहित है। परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि एक ऐसे देश में जहां 87 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं, हमारे समाचार-पत्रों को राजनैतिक तथा जनतंत्र के क्षेत्रों में जनसाधारण को शिक्षित बनाने के लिये एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। मेरी यह धारणा है कि मूल सिद्धान्तों में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता प्रत्याभूत करने के लिये एक विशेष प्रावधान रखा जाना चाहिये। वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान में यह प्रावधान है कि राज्य कोई ऐसा कानून न बनायेगा, जिससे कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता सीमित हो जाये। इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन की पवित्रता तथा शांति को सुरक्षित रखने की प्रत्याभूति दी जानी चाहिये। इसी प्रकार मेरे विचार से भारत के किसी नागरिक को भी राज्य से निर्वासित न करना चाहिये। मूलाधिकारों के अध्याय में इस प्रकार के प्रावधान को स्थान देना चाहिये।

धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में जो प्रावधान रखा गया है, उसमें से मैं चाहता हूं कि एक बात निकाल दी जाये। यह अधिकार, जो कुछ लोगों को प्राप्त रहा है, हमारे देश के राजनैतिक जीवन में एक अभिशाप सिद्ध हुआ है। सम्भवतः पुरानी व्यवस्था को ध्यान में रखते हुये ही इस प्रकार के प्रावधान को स्थान देना उचित समझा गया है। मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि एक असाम्प्रदायिक राज्य में, विशेषतः जब कि धर्म का अवाध रूप से आचरण करने तथा विचारों की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति दी गई है, इस प्रकार के प्रावधान को हमारे विधान से निकाल देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त प्रान्तों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण का प्रश्न है। मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो इस प्रश्न को हल करने में संकट का अनुभव करते हैं। यदि एक भाषा-भाषी प्रान्त स्वतंत्रता संग्राम में शक्तिशाली गढ़ सिद्ध हुये हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि जब वे भाषा के आधार पर, प्रान्तों के निर्माण की मांग करते हैं, तो उनको विघटनशील कह कर निन्दित कैसे किया जा सकता है। वास्तव में प्रत्येक नागरिक को यह अनुभव करना चाहिये कि उसे स्वतंत्रता प्राप्त है। मेरी यह धारणा है कि प्रत्येक प्रदेश की पार्लियामेंट को अपने ही प्रदेश की भाषा को

[श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव]

स्वीकार करना चाहिये। निस्संदेह बम्बई और मद्रास के समान बहुभाषा-भाषी प्रान्तों का कोई स्थान नहीं है।

प्रान्तों का भाषा के आधार पर निर्माण होना चाहिये। परन्तु इस प्रश्न को हल करने के लिये हम एक दूसरे का सर तोड़ने नहीं जा रहे हैं। इसे शांतिपूर्वक समझौते और सहयोग से हल किया जा सकता है।

इसी प्रकार भाषा का भी प्रश्न है। दक्षिण भारत की भाषाओं में स्वतंत्रता से संस्कृत से शब्द लिये गये हैं। द्राविड़ी भाषाओं में तत्सम शब्द भी है और तद्भव शब्द भी। मैं यह अनुभव करता हूं कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी हमें स्वीकार्य होगी, परन्तु मेरे विचार से उसे हम पर एकाएक न लादा जाना चाहिये, क्योंकि दक्षिण भारत के निवासियों की संख्या अत्यधिक है। उसका धीरे-धीरे प्रवेश होना चाहिये। हम देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी को भारत की सरकारी भाषा स्वीकार करने के लिये तैयार हैं, परन्तु हमें हिन्दी सीखने के लिये समय मिलना चाहिये। इस विधान में इस सभा के प्रत्येक वर्ग को बुद्धिमत्ता प्रतिबिम्बित होनी चाहिये। यदि आप हमें अपने साथ ले चलना चाहते हैं, तो हमें आपके तर्कों को समझना चाहिये, आपके दृष्टिकोण को समझना चाहिये और हमें इस विधान को ऐसा रूप देना चाहिये कि वह सभी को स्वीकार्य हो। इसी प्रकार उन लोगों को जो उर्दू लिपि में लिखते पढ़ते हैं, देवनागरी लिपि सीखने के लिये कुछ समय देना चाहिये बेगम ऐजाज रसूल का भी यही सुझाव है।

प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में भाग 7 के प्रावधानों के सम्बन्ध में अर्थात् 212 से लेकर 214 तक के अनुच्छेदों के सम्बन्ध में, मैं एक बात और कहना चाहता हूं। मेरे विचार से उन्हें विधान में स्थायी रूप से स्थान न मिलना चाहिये। वास्तव: में भारत सरकार की यह नीति रही है कि राज्यों को स्वावलम्बी प्रदेशों का रूप दिया जाये। 212 से लेकर 214 अनुच्छेदों से तथा मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों का सुझाव किया है, उनसे केवल देश में इन छोटे-छोटे खर्चीले राज्यों की संख्या बढ़ जायेगी। लेफ्टिनेण्ट गवर्नरों, मन्त्रिमण्डलों इत्यादि के लिये प्रावधान रखे गये हैं। यदि इन्हें विधान में स्थायी रूप में स्थान दिया गया, तो मेरे विचार से देश छोटे-छोटे प्रदेशों में बंट जायेगा और केन्द्र पर इन खर्चीले प्रदेशों के संधारण का भार पड़ेगा। इन छोटे-छोटे प्रदेशों

को थोड़े ही समय में उन बड़े-बड़े प्रान्तों और राज्यों में समाविष्ट होने के लिये, प्रोत्साहित करना चाहिये, जिनके बीच में वे स्थित हैं। उदाहरण के लिये कुर्ग के प्रान्त को ही लीजिये। उसका क्षेत्रफल केवल 1,500 वर्ग मील है और उसकी जनसंख्या 160,000 है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि जब से कुर्ग का आयव्ययक केन्द्रीय आयव्ययक से पृथक कर दिया गया है, वह प्रान्त निर्माण की किसी भी योजना को कार्यान्वित नहीं कर पाया है। वह एक ऐसे पुल की भी मरम्मत नहीं कर पाया, जिस पर केवल 5,000 रु. खर्च होता।

भारत की राजधानी के सम्बन्ध में, मैं मैसूर के अपने माननीय मित्र के इस सुझाव से सहमत हूं कि पूर्वी पंजाब की राजधानी और दिल्ली के प्रसार पर बहुत बड़ी धनराशि खर्च करने के पूर्व हमें राजधानी को किसी केन्द्रीय स्थान में स्थित करने के प्रस्ताव पर विचार करना चाहिये।

दिल्ली को केन्द्र प्रशासित क्षेत्र के रूप में रखना न्यायसंगत हो सकता है, क्योंकि यह राजधानी है; परन्तु इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की संख्या बढ़ाई जाये। वास्तव में केन्द्रीय सरकार को दो रूप में कार्य करना होगा, एक तो केन्द्रीय सरकार के रूप में और दूसरे केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों के लिये प्रान्तीय सरकार के रूप में। मैं नहीं समझता कि केन्द्र के लिये इन खर्चीले प्रदेशों पर बड़ी-बड़ी धनराशि खर्च करने के लिये कोई न्यायसंगत कारण है।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर और प्रोफेसर रंगा दोनों ने यह पूछा है कि राज्यों के लिये विधान-परिषद् हो ही क्यों? मेरा यह निवेदन है कि इसके लिये हम दोषी नहीं ठहराये जा सकते। पिछली जुलाई को जैसे ही हम लोग यहां आये, राज्यों के कुछ प्रतिनिधियों ने इस आदरणीय सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि राज्यों के लिये एक अनुकरणीय विधान बनाने के लिये एक समिति बनाई जाये। यदि कार्यवाह समिति की पुस्तकों को देखा जाये, तो उनमें इस प्रकार का प्रस्ताव मिलेगा। परन्तु दुर्भाग्य से इस सभा ने कोई कार्यवाही नहीं की और ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन के लिये संग्राम करते हुये हमें उनके लिये विधान-परिषदों की मांग करनी पड़ी। मैं इसमें कोई हानि नहीं देखता हूं, क्योंकि इन विधान-परिषदों द्वारा बनाये हुये विधान इस सभा द्वारा निर्माण किये हुये विधान के सिद्धान्तों का खण्डन न करेंगे। उन्हें सारे भारत

[श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव]

की रूप रेखा के अनुरूप ही होना होगा। जब तक वे इस प्रकार कार्य करते रहें, मैं नहीं समझ पाता कि उन्हें अपना कार्य क्यों न समाप्त करने दिया जाये।

एक सुझाव इस प्रकार का उपस्थित किया गया है कि राज्यों और प्रान्तों की शक्तियां एक समान होनी चाहियें। इस सम्बन्ध में श्रीमान्, ट्रावनकोर और मैसूर जैसी रियासतों की ओर से बोलते हुये मेरा यह निवेदन है कि ये रियासतें औद्योगिक तथा आर्थिक दृष्टि से कुछ प्रान्तों से बहुत आगे हैं। मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि प्रान्तों और रियासतों के बीच एकरूपता लाने के लिये किसी को नीचे न गिराया जाये, केवल ऊंचा उठाने का प्रयास किया जाये। अखिल भारतीय प्रश्नों को हल करने में मैसूर सहयोग करता रहा है और इस समय भी सहयोग कर रहा है और मुझे विश्वास है कि एकरूपता लाने में भी वह सहयोग करेगा; परन्तु वह केवल इसी को सामने रखेगा कि ऊपर उठाने के लिये ही प्रयास किया जाये और नीचे गिराने के लिये नहीं। वास्तव में मेरी तो यह धारणा है कि रियासतों को और प्रान्तों को एक समान शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें। मैं यह चाहता हूं कि सर्वोच्च न्यायालय को केवल वैधानिक विषयों के सम्बन्ध में ही नहीं, किन्तु व्यवहार और दण्ड के विषयों के सम्बन्ध में पुनर्विचार की शक्तियां दी जानी चाहिये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मसौदा-समिति ने इसे प्रावहित किया है और मुझे इसका विश्वास है कि रियासतें इस प्रावधान से लाभ उठायेंगी।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के अर्थ सम्बन्धी अधिकारों के सम्बन्ध में मैं अनुच्छेद 258 पर अपने कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं। राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वे भाग 3 में उल्लिखित किसी रियासत और संघ के बीच में किये हुये किसी समझौते को पांच वर्ष के उपरान्त समाप्त कर सकते हैं। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि पांच वर्ष का समय बहुत कम है। इस खंड में ही यह कहा गया था कि इस प्रकार का समझौता कम से कम दस वर्ष के लिये वैध समझा जायेगा। यदि इस प्रकार के समझौते को पांच वर्ष के उपरान्त समाप्त कर दिया जायेगा, तो इससे सम्बन्धित रियासत की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो जायेगी। वास्तव में किसी दीर्घकालीन योजना के लिये पांच वर्ष का समय बहुत कम है। मेरा यह निवेदन है कि रियासत की अनुमति से उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। यदि अर्थायोग के प्रतिवेदन उपस्थित करने पर राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि इस प्रकार के समझौते को समाप्त करना आवश्यक है तो वे सम्बन्धित रियासत

से परामर्श करके ऐसा कर सकते हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह समझौता एकतरफा नहीं होना चाहिये, क्योंकि इससे सम्बन्धित रियासत को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी।

श्रीमान्, जहां तक विधान में संशोधन करने की शक्ति का सम्बन्ध है, मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् की इस सम्मत्ति से सहमत नहीं हूं कि विधान बेलोच होना चाहिये। उसे यथासम्भव लचीला होना चाहिये, क्योंकि इस समय भी छोटे प्रदेशों का बड़े प्रदेशों में समावेश हो रहा है और प्रान्तों तथा रियासतों में एकरूपता लाने का कार्य भी हो रहा है। सम्भवतः विधान के विभिन्न अंगों में एक प्रकार की एकरूपता लाने में कुछ समय लगेगा। इसलिये आरम्भ में पार्लियामेंट को परिस्थिति के अनुसार विधान को संशोधित करने की यथासंभव सुविधा प्राप्त होनी चाहिये। विधान में संशोधन करने की शक्ति लचीली होनी चाहिये, परन्तु इस सम्बन्ध में भी रियासतों और प्रान्तों में अन्तर किया गया है। मेरा यह निवेदन है कि जहां तक मतदाताओं की संख्या का सम्बन्ध है, रियासतों और प्रान्तों के इस अन्तर को समाप्त कर देना चाहिये। जहां तक विधान में संशोधन करने का सम्बन्ध है, रियासतों और प्रान्तों को समान अधिकार दिये जाने चाहिये।

इन शब्दों के साथ मैं विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, उसका समर्थन करता हूं।

***श्री एन. माधव राव** (उड़ीसा : राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मेरा इस बहस में भाग लेने का विचार नहीं था, परन्तु वादानुवाद के समय विधान के मसौदे के प्रावधानों के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि जिस ढंग से मसौदा-समिति ने काम किया है, उसके सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें कही गई है। उपेक्षणीय बातों की अपेक्षा तथा अपेक्षणीय बातों की उपेक्षा के समिति के तथाकथित दोषों के सम्बन्ध में आलोचना की गई थी। मि. अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कल अपनी वक्तृता से और श्री सादुल्ला ने, जो कुछ समय उपरान्त समिति की ओर से अपनी वक्तृता देंगे, उस भ्रम का निराकरण कर दिया है या कर देंगे, जिस पर यह आलोचना आधृत है। मैंने यह विचार किया कि चूंकि समिति का एक सदस्य होने के नाते, जब से मैं समिति में सम्मिलित हुआ, मैंने उसकी कई बैठकों में भाग लिया है, इसलिये मुझे भी यदि इस सभा के अधिकांश सदस्यों को किसी प्रकार का भ्रम है, तो उसका निराकरण करने में अपना योग देना चाहिये।

यह सच है कि विधान के मसौदे में वे सब बातें प्रावहित नहीं है और उस विधि से प्रावहित नहीं है, जैसे कि प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छानुसार चाहता।

[श्री एन. माधव राव]

उदाहरणार्थ माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि विधान में गौवध का निषेध नहीं किया गया है, मूलाधिकारों में बहुत से प्रतिबन्ध लगे हुये हैं तथा राष्ट्रपिता राष्ट्रपताका और राष्ट्रगान का कोई उल्लेख नहीं है। हमारे दो माननीय मित्रों ने यह भी ठीक ही कहा है कि विधान के मसौदे में ईश्वर का भी कहीं उल्लेख नहीं है। हम सभी के अपने-अपने विचार हैं, परन्तु अन्य प्रसंगों में वे चाहे कितने ही बहुमूल्य और तर्कयुक्त हों, उन्हें विधान में उस समय तक स्थान नहीं दिया जा सकता, जब तक कि वे उसके उद्देश्यों के अनुरूप न हो और विधान-परिषद् उनको स्वीकार न कर ले।

कई वक्ताओं ने मसौदे की इस कारण आलोचना की है कि उसमें गांधी-विचारधारा का कोई भी प्रतिबिम्ब नहीं हैं और यद्यपि उसमें कुछ प्रावधान बाहर से तथा भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम से लिये गये हैं, किन्तु उसकी रूपरेखा में भारत की प्राचीन शासन-व्यवस्था के तत्व कहीं भी सन्निहित नहीं हैं।

क्या गांधी-विचारधारा के हमारे मित्र हमें यह बतायेंगे कि क्या वे तर्कयुक्त होकर अपने विचारों तथा उनके प्रतिफलों को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं, क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें उदाहरणार्थ सशस्त्र सेनाओं का परित्याग करना होगा, विधान-मण्डलों को भी समाप्त करना होगा, जिनके काम के बारे में हमें अधिकृत रूप से बताया गया है कि गांधीजी का यह मत था कि उससे केवल समय नष्ट होता है और साथ ही अपने न्यायाधीश वर्ग को भी समाप्त करना होगा, और उसके एवज में किसी सरल और सुगम न्याय-प्रणाली से काम लेना होगा तथा इस पर जोर देना होगा कि कोई भी सरकारी कर्मचारी अथवा समाज-सेवक 500 रुपये प्रति माह या जो भी वेतन सीमा निश्चित की जाये, उससे अधिक न पाये। मैं कांग्रेस के कुछ ऐसे नेताओं को जानता हूं कि जिनका यह विश्वास है कि यह सब कुछ किया जाना चाहिये और यह सब किया जा सकता है। परन्तु इस समय हम उस विधान की चर्चा कर रहे हैं, जिसे विधान-परिषद् ने अपनी पिछली बैठक में निश्चित किया था। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव (जिसे कि भारतीय स्वतंत्रता का पत्र भी कहा जाता है) और मूलाधिकारों को निश्चित करने के अतिरिक्त इस सभा ने विधान-मण्डलों की रचना तथा उसकी शक्तियों, संघ और प्रान्तों के अधिशासी-वर्ग तथा न्यायाधीश-वर्ग, विधायिनी शक्तियों का वितरण, संघ और प्रदेशों के राजकीय

सम्बन्ध, अर्थ-प्रबन्ध तथा उधार लेने की शक्तियां, विधान के संशोधन आदि के सम्बन्ध में कभी विस्तारपूर्वक निर्णय किया और कभी इनकी केवल रूपरेखा निश्चित की थी। क्या कोई भी ऐसा उदाहरण दिया जा सकता है कि सभा ने तो गांधी जी के सिद्धांतों के आधार पर निर्णय किया और उसे विधान के मसौदे के यथोचित रूप से स्थान नहीं दिया गया? यदि इन आलोचकों की यह धारणा हो कि सभा के निर्णयों को पूर्ण रूप से स्थान नहीं दिया गया है, या उसके विरुद्ध कोई प्रावधान रखे गये हैं, तो यह दूसरी बात है।

हमारे उन मित्रों को, जो यह चाहते थे कि शासन-व्यवस्था की स्वदेशीय विचारधारा को विधान में स्थान मिलना चाहिये, यह स्वीकार करना होगा (जैसा कि आज एक माननीय सदस्य ने कहा है) कि यद्यपि सिकन्दर के काल में उत्तर भारत में गणराज्य रहे हों, परन्तु राजा का ही भारतीय शासन व्यवस्था में मुख्य स्थान था। ऐसे समय में जब राजा लोकप्रिय नहीं रह गये हैं और भारतीय नरेशों के प्रति शक्ति परित्याग के उपरान्त भी केवल नाममात्र की सहिष्णुता दिखाई जाती है, जब कि रस्मी चुनाव और मतपत्र-पेटिका जनतंत्र के आवश्यक तथा प्रामाणिक चिह्न समझे जाने लगे हैं, भारत के प्राचीन दर्शनों से अपने तात्कालिक कार्य के लिये पथ-प्रदर्शन की सामग्री ढूंढना अव्यावहारिक होगा। इससे अधिक सार्थक बात तो यह है। इन सुन्दर विचारधाराओं के प्रतिपादकों ने पिछले अधिवेशन में, जब कि विधान बहुत कुछ निश्चित कर दिया गया था, इनकी ओर सभा का ध्यान यथेष्ट समय पर क्यों आकर्षित नहीं कराया और इन्हें उससे क्यों स्वीकार नहीं करवाया? यदि उनके सुझाव व्यावहारिक हैं, तो वे अब भी ऐसा क्यों नहीं करते हैं? वे मसौदा-समिति को अपनी बाद में सोची हुई बातों को स्थान न देने के लिये क्यों दोष देते हैं?

निस्संदेह कांग्रेस के तथा अन्य कुछ क्षेत्रों में यह भावना प्रबल है कि केन्द्र की राष्ट्रीय सरकार तथा प्रान्तों की लोक-सरकारें गांधी जी के सिद्धान्तों के विपरीत जा रही हैं और वे उसी नौकरशाही के ढंग से काम कर रही है, जैसे कि उनके पहले विदेशी शासक करते थे और यह कि जिस रामराज्य के लिये वचन दिया गया है, वह कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। इस परिस्थिति में "गांधी की राह पर" का नारा एक प्रकार से संग्राम का नारा हो गया है और वह अधिकारियों के लिये एक चुनौती है। वह ठीक हो या गलत, परन्तु उस नारे को ठीक ही जगह उठाना चाहिये। मसौदा-समिति को जो सीमित कार्य सौंपा गया था, उस प्रसंग

[श्री एन. माधव राव]

में इस नारे को लागू करना निरर्थक प्रतीत होता है। इस प्रसंग में मुझे टामस हर्ने नाम के एक पुरातत्ववेत्ता के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसकी दो पंक्तियां स्मरण हो आई हैं:

''काल ने टामस हर्ने से कहा, 'जिसे मैं भूल जाऊं उसे आप सीख लें।''

''जिसे मैं भूल जाऊं उसे आप सीख लें'' वाली सलाह एक सीधी-सादी सलाह प्रतीत होती है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरा एक औचित्य प्रश्न है। सभा के सदस्यों ने मसौदा-समिति से मसौदा तैयार करने के लिये कहा था और अब सदस्य उस पर अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। मसौदा-समिति के किसी सदस्य के हमसे यह कहने से कि हम नारे उठाते हैं, कोई लाभ न होगा। मैं मसौदा-समिति के किसी सदस्य के ऐसी भाषा के प्रयोग के प्रति अपना घोर विरोध प्रकट करता हूं।

***उपाध्यक्षः** श्री दास, आप यह तो नहीं चाहेंगे कि मसौदा-समिति के किसी सदस्य के भाषण-स्वातंत्र्य को सीमित कर दिया जाये? आप या मैं उनसे सहमत न हों, परन्तु उन्हें अपने विचारों को प्रकट करने का अधिकार तो है ही? क्या यह ठीक नहीं है?

***श्री एन. माधव रावः** यह एक दुर्भाग्य की बात है कि ग्राम-पंचायतों के विषय में बहुत वाद-विवाद हुआ। डा. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में जो कड़ी बातें कहीं, उनका आधार उनका अपना ही अनुभव है। परन्तु श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के समान मैं अपने अनुभव के आधार पर अपनी ही ओर से बोलना चाहता हूं। पिछले तीस वर्षों से मैसूर सरकार ग्रामीणों के पुनरुत्थान और ग्राम-पंचायतों की उन्नति के कार्य को अपने कार्यक्रम में अग्रिम स्थान देती रही है। इस कार्य के लिये बहुत सा सरकारी धन व्यय किया गया है। दीवान से लेकर तहसीलदार तक सभी अधिकारियों ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ग्रामसुधार में अपना योग दिया है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि मैसूर की वर्तमान सरकार इस दिशा में अत्यन्त प्रयत्नशील है। इसका जो परिणाम हुआ है, वह कुछ जगहों में तो उत्साहवर्धक है और कुछ जगहों में संतोषजनक है। यह सच है कि कुछ गांव इस प्रकार झगड़ों में फंसे रहते हैं कि उनसे उनका छुटकारा ही नहीं हो पाता,

अथवा वहां छोटे मोटे अत्याचार होते रहते हैं अथवा वे अस्पृश्यता के गढ़ हैं। उनमें से बहुत से भावनाशून्य अथवा प्राणशून्य हैं। परन्तु—उनमें से लगभग तीस प्रतिशत अच्छे गांव हैं, अर्थात् वहां के लोगों की नियमित रूप से सभायें होती हैं, वे पंचायत-कर उघाते हैं, स्वेच्छा से कुछ कार्य करते हैं और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हैं, प्रति सप्ताह स्वेच्छा से सफाई का काम करते हैं और बच्चों के टीके लगवाने के लिये यथोचित कार्यवाही करते हैं; इत्यादि। इस दिशा में जो कुछ भी सफलता होती है, वह किसी कार्यशील मुखिया या प्रभावशाली जमींदार ही के कारण होती है। मुझे विश्वास है कि देश के अन्य भागों में भी लोगों का यही अनुभव है। कुछ छोटी भारतीय रियासतों में, जहां नौकरशाही शासन-प्रणाली प्रयुक्त न होने पाई थी, मैंने गांवों में यह देखा है कि स्वयंसेवा और संगठित रूप से कार्य करने की भावना प्रबल रही है। यदि प्रान्तों और रियासतों की सरकारें बराबर प्रयत्न करती रहें, तो इसकी आशा की जा सकती है कि ग्रामीण लोगों का पुनरुत्थान हो सकता है। इस सभा के सदस्य इससे परिचित हैं कि गांधी जी गांवों में रचनात्मक कार्य चलाने पर बहुत जोर देते थे। एक अवसर पर उन्होंने यह कहा था—"यदि हमारे अधिकांश कांग्रेस-कर्मी गांवों के ही लोग हैं, तो वे हमारे गांवों को हर प्रकार से स्वच्छता के नमूने बना सकते हैं। परन्तु उन्होंने कभी भी इसे अपना कर्त्तव्य नहीं समझा कि वे ग्रामीणों के दैनिक जीवन से ऐक्य स्थापित करें।" विधान के मसौदे में कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे यथासम्भव प्रगति और शीघ्रता से ग्राम-पंचायतों का विकास करने में प्रान्तीय सरकारों को बाधा का अनुभव हो। इस समय केवल यही प्रश्न प्रमुख है कि विधान मण्डलों की निर्वाचन-योजनाओं को इन पंचायतों पर आधृत किया जाये या नहीं। यदि यह सभा यह निर्णय करे कि ऐसा करना आवश्यक है, तो विधान के मसौदे के दो अनुच्छेदों में थोड़ा बहुत संशोधन करना होगा। परन्तु इस कदम को उठाने के पहले इस सभा को सावधानी से इस पर विचार करना होगा कि क्या इन ग्राम पंचायतों को विभिन्न दलों की राजनीति के गर्त्त में डालने से उनकी शासन-प्रबन्ध की उपयोगिता हमेशा के लिये नष्ट तो न हो जायेगी।

उन सदस्यों की आलोचना के विपरीत, जिन्होंने मसौदा-समिति को इस कारण दोषी ठहराया कि उसने विधान को उनकी विचारधारा के अनुरूप नहीं बनाया, यद्यपि उस विचारधारा को सभा ने स्वीकार नहीं किया था, अन्य लोगों ने यह आलोचना की है कि समिति सभा के आदेशों से आगे बढ़ गई है। इस विषय पर आगे बोलने वाले वक्ता महोदय प्रकाश डालेंगे। श्री दास की आलोचना को

[श्री एन. माधव राव]

ध्यान में रखते हुये मुझे केवल यह कहना है कि मसौदा-समिति के सदस्य होने का यह अर्थ नहीं है कि समिति में या सभा में सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता नहीं रह गई है।

विधान के मसौदे को बहुत कुछ इस अधिवेशन की विस्तृत कार्यावलि समझना चाहिये, क्योंकि इसी को आधार मान कर काम किया जायेगा। इसके अतिरिक्त अन्य विचारणीय प्रलेख भी हैं, जैसे विशेषज्ञों की अर्थ-सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की समिति की रिपोर्ट। सभा के सम्मुख केवल यही विचारणीय प्रलेख नहीं है। यदि विधान के मसौदे को इस दृष्टि से देखा जाये, तो सदस्यों को यह ज्ञात हो जायेगा कि यह आरोप, कि समिति सभा के आदेशों से आगे बढ़ गई है, निराधार है।

एक सदस्य महोदय ने यह कहा कि यदि इस विधान को स्वीकार किया गया, तो इससे मुकदमेबाजी बहुत बढ़ जायेगी। यदि विधान का स्वरूप संधानीय रहेगा, तो मुकदमेबाजी की सम्भावना अवश्य ही रहेगी। इसलिये इसकी और भी अधिक आवश्यकता है कि सभी अनुच्छेदों और खण्डों की ध्यानपूर्वक जांच की जाये, ताकि मुकदमेबाजी और उससे शासन में जो अनिश्चितता उत्पन्न होगी, वह यदि समाप्त न हो तो बहुत कम तो हो ही जाये।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं एक दो बातों की ओर संकेत करना चाहता हूं। एक यह है कि जब कभी कोई संधानीय विधान बनता है, तो दो प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधारायें उत्पन्न हो जाती हैं। एक विचारधारा तो इस प्रकार की होती है कि केन्द्र को शक्तिशाली होना चाहिये और दूसरी इस प्रकार की होती है कि राज्यों को अधिक से अधिक स्वायत्तशासी होना चाहिये। विधान के मसौदे के प्रावधानों में इन दोनों विचारधाराओं के बीच का मार्ग सुझाया गया है। मेरी अपनी धारणा यह है कि पलड़ा केन्द्र के पक्ष में कुछ भारी है। यदि सभा के अधिकांश सदस्य मुझ से सहमत हों, तो संतुलन ठीक किया जा सकता है। श्रीमान्, दूसरी बात यह है कि राज्यों के संघ में प्रवेश के सम्बन्ध में जो प्रावधान हैं वे अपर्याप्त हैं। हाल में कई प्रकार से समाविष्टि हुई है और हमें जहां तक ज्ञात है, अभी अन्तिम स्वरूप निश्चित नहीं हुआ है। जिस प्रणाली के अनुसार राज्य संघ में प्रवेश करेंगे, उसे शीघ्र ही ठीक-ठीक निश्चित करना है, ताकि सम्बन्धित अनुसूची में

प्रविष्ट राज्यों का उल्लेख हो सके और विधान के अन्य भागों का अन्तिम रूप दिया जा सके।

यह एक बुद्धिमत्तापूर्ण कथन है कि "शासन-प्रणालियों के सम्बन्ध में अन्य लोगों को विवाद करने दीजिये। जिससे सबसे अच्छी प्रकार शासन हो, वही सबसे अच्छी शासन-प्रणाली है।" परन्तु वर्तमान परिस्थिति के अधीन दुर्भाग्यवश हमें किसी प्रकार का लिखित विधान तैयार करना है और उसे वकीलों के ही हाथों बनना है। यदि कुछ माननीय सदस्य विधान के मसौदे को प्राचीन राजनैतिक बुद्धिमत्ता अथवा उदात्त देशप्रेम की भावना से अनुप्राणित करने में समर्थ हों, तो इस सभा में हममें से बहुत से लोग इस प्रयत्न का अवश्य ही स्वागत करेंगे।

श्री विश्वनाथ दास (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं स्पष्टीकरण के उद्देश्य से अपने माननीय मित्र से पूछ सकता हूं कि समिति के माननीय सदस्यों ने विधान-परिषद् के तथा विभिन्न समितियों के निर्णयों को भी क्यों परिवर्तित कर दिया?

***श्री एन. माधव राव:** यदि कोई स्पष्ट उदाहरण दिया गया, तो मुझसे बाद में बोलने वाले वक्ता महोदय उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास : जनरल): माननीय श्री माधव राव ने यह कहा है कि हमारे पूर्वज मत पत्र-पेटिका और मत-पत्र से परिचित न थे। श्रीमान्, मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि कांजीवरम् से बीस मील की दूरी पर उत्तरामेरूर नाम के एक गांव में एक मन्दिर है, जिसकी दीवारों पर एक शिलालेख में मत-पत्र-पेटिका और मत-पत्रों का वर्णन है। उसमें पूरा ब्यौरा दिया हुआ है। मत-पत्र-पेटिका एक बरतन के आकार की होती थी और जमीन पर रखी रहती थी। उसका मुंह ढका रहता था और उसके पेंदे में एक छेद होता था। मत-पत्रों के लिये कदजन की पत्तियों से काम लिया जाता था। प्रौढ़ मताधिकार था और निर्वाचन केवल गांव के लिये ही नहीं, बल्कि सारे भारत के लिये होता था। यह एक हजार वर्ष पहले की व्यवस्था है। मेरे माननीय मित्र इससे परिचित न थे और इसीलिये उन्होंने त्रुटिपूर्ण, बहुत ही भ्रमपूर्ण वक्तव्य दिया। मैं उसकी शुद्धि करना चाहता हूं।

*__सैयद मोहम्मद सादुल्ला__ (आसाम : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे पर सामान्य रूप से जो बहस हो रही है, उसकी संक्षेप में चर्चा करने में मुझे कुछ संकोच का अनुभव हो रहा है, क्योंकि मैं भी मसौदा-समिति का एक सदस्य रहा हूं। इस सभा में पिछले चार दिनों में जो प्रश्न उठाये गये, उन सभी का तो उत्तर मैं नहीं दूंगा, परन्तु जिस प्रकार की आलोचना हुई है, उसके सम्बन्ध में सामान्य रूप से मैं कुछ कहूंगा और उन वास्तविक बातों को भी बताने का प्रयत्न करूंगा, जिनके आधार पर मसौदा-समिति ने कार्य किया। विधान के मसौदे को जिस कठिन परिश्रम के साथ तैयार किया गया है, उसकी कई माननीय सदस्यों ने कृपा करके प्रशंसा की है। कुछ माननीय सदस्य मसौदा-समिति को बधाई न दे सके, परन्तु मैं इसका भी स्वागत करता हूं क्योंकि सभी जानते हैं कि मिठाइयों के साथ नमकीन चीजों से भोजन अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। पिछले तीन दिनों में जो आलोचनायें की गई हैं उनको मैंने बहुत ध्यानपूर्वक सुना है। मसौदा-समिति को मेरे सहकारियों अर्थात् श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्री माधवराव के इस बहस में भाग लेने से मेरा कार्यभार कुछ हल्का हो गया है। हमारे कार्य के सम्बन्ध में जितनी भी आलोचनायें की गई हैं, उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ इस श्रेणी की हैं कि हम अपने अधिकार क्षेत्र से बहुत आगे बढ़ गये हैं और कुछ इस क्षेणी की हैं कि विभिन्न समितियों की सिफारिशों को न मान कर हमने उनकी सम्मति की उपेक्षा की है और कुछ इस श्रेणी की हैं कि हमने भारतीय रियासतों और प्रान्तों में विभेद किया है। श्रीमान्, यदि मनुष्य की स्मरण-शक्ति को कमजोर कहा जाये तो सरकारी लोगों की स्मरण शक्ति को और भी कमजोर कहा जा सकता है। मसौदा-समिति स्वत: अस्तित्व में नहीं आई। यदि मुझे ठीक स्मरण है, तो यह अगस्त सन् 1947 ई. में इस सभा के एक प्रस्ताव द्वारा अस्तित्व में आई। उस समय मैं बहुत बीमार था और इसलिये उसकी बैठक में उपस्थित न हो सका। श्रीमान्, कार्यवाही की रिपोर्टों से मुझे यह पता चलता है कि उससे केवल लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव तक ही अपने को सीमित रख कर विधान बनाने को कहा गया था और इसलिये जिस प्रकार की आलोचना की गई है, वह स्वाभाविक ही है। उस समय भी बुद्धिमान लोग यही समझते थे कि इस प्रकार की आलोचना होगी और इसलिये बम्बई के विद्वान प्रधानमंत्री श्री खेर ने सरकारी प्रस्ताव पर एक संशोधन उपस्थित किया था, जिसमें हमको कुछ आदेश दिये गये थे। मैं उनके भाषण के कुछ अंश पढ़कर सुनाऊंगा। उन्होंने मूल प्रस्ताव

पर मसौदा-समिति के निर्माण के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था और उसमें यह कहा गया था कि—''मसौदा-समिति का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह वैधानिक सलाहकार के तैयार किये हुये भारतीय विधान के मसौदे की जांच करे, असेम्बली के निर्णयों को कार्यरूप में लाये और इनसे सम्बन्ध रखने वाली या इस प्रकार के विधान में सम्मिलित की जाने वाली सभी बातों को यथोचित स्थान दे और अपने दुहराये हुये विधान के मसौदे को सभा के विचारार्थ उपस्थित करे''। उनका यह संशोधन था। अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि-''हमने एक यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि प्रान्तीय विधान के अधीन सभी कार्यवाही गवर्नर के नाम से होगी। सभा ने यह निर्णय किया है और यह भारत सरकार के एक्ट में भी सन्निहित है और इसे कार्यान्वित करने के लिये कई बातों को ठीक करना होगा। इस सम्बन्ध में अन्य विधानों में भी कुछ प्रावधान हैं और इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रावधान भी हैं, जो सामान्यत: इस विधान में समाविष्ट किये जाने चाहिये। यद्यपि इनके सम्बन्ध में सभा में अभी तक न कोई बहस ही हुई है और न कोई निर्णय ही किया गया है, परन्तु इनको मसौदे में स्थान देना ही होगा। हमने सभी महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में निर्णय किये हैं। इनका समावेश होगा, परन्तु मसौदे में ऐसी बातें भी होंगी जो इनसे सम्बन्धित होंगी, अथवा अन्य प्रकार से आवश्यक होंगी।''

सभा ने इस संशोधन को स्वीकार किया था। श्रीमान्, सभा द्वारा स्वीकृत श्री खेर के इस संशोधन को दृष्टि में रखते हुये विधान-परिषद् के सदस्य किस मुंह से यह बात कह सकते हैं कि हम अपने अधिकारों के परे चले गये हैं?

***श्री विश्वनाथ दास:** श्रीमान, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या इस आदेश का यह अर्थ है कि समितियों की रिपोर्टों को स्वीकार किया जाये, उनमें परिवर्तन किया जाये अथवा इन समितियों की महत्त्वपूर्ण सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया जाये?

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला:** मैं उड़ीसा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री माननीय श्री दास से प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे भाषण में विघ्न न डालें। मैं उनके प्रश्न का उत्तर अपने वक्तव्य के अन्त में दूंगा। मैं इस सभा के अन्य माननीय सदस्यों से भी यही प्रार्थना करता हूं, क्योंकि अन्यथा मेरी विचारधारा टूट जायेगी। मैं यहां अपने मित्रों के समान निपुण वक्ता नहीं हूं और मैं लिखी हुई बातों को देख कर भी नहीं बोल रहा हूं। इसलिये यदि वे शांत रहे तो उनकी कृपा होगी। यदि वे मुझ

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

से कुछ प्रश्न पूछना चाहे, तो मेरा भाषण समाप्त होने पर पूछें। यदि मैं उनका उत्तर दे सकूंगा तो सहर्ष दूंगा।

विधान के मसौदे को वास्तव में हमारे विद्वान प्रधानमंत्री द्वारा उपस्थित और इस सभा द्वारा एकमत से स्वीकृत लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव की कसौटी पर ही कसकर परखा जा सकता है। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में केवल आठ अनुच्छेद हैं, जिनमें से अन्तिम अनुच्छेद को विधान में स्थान देना आवश्यक नहीं है। क्या यहां कोई कह सकता है कि जिन सिद्धान्तों की लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में परिभाषा की गई है, उनके अनुरूप हमने कार्य नहीं किया है? हम यह नहीं कह सकते है कि वही आठ अनुच्छेद हमारे विधान में होने चाहियें, क्योंकि उनसे तो केवल ढांचे का ही निर्माण होता है। मसौदा-समिति से तो विधान का पूरा चित्र बनाने को कहा गया। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए हमारे लोकप्रिय प्रधानमंत्री ने कहा था कि यह हमारे स्वप्न की अभिव्यंजना है, हमारी आकांक्षाओं का लक्ष्य है और यह एक 'घोषणा' मात्र है। ऐसे मोटे शब्दों में कोई विधान नहीं बन सकता; इसलिये इस सभा ने सरकार के आदेशानुसार, क्योंकि उस समय प्रस्ताव सरकारी दल के मुख्य प्रतोद (चीफ व्हिप) द्वारा उपस्थित किया गया था। सभा ने यह निश्चय किया कि विधान का मसौदा तैयार करने का कार्य समिति को सौंपा जाये। मैंने उस समिति में आने के लिये अपनी ओर से कोई भी प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में मसौदा-समिति से मुझे निकालने के लिये बहुत प्रयत्न किये गये। मैं कार्यवाही की रिपोर्टों में यह देखता हूं कि हमारे साहसी मित्र श्री कामत ने यह औचित्य प्रश्न उठाया था कि जब मेरा नाम प्रस्तावित किया गया था, उस समय मैं विधान-परिषद् का सदस्य नहीं था। सम्भवत: बिना वास्तविकता को जाने हुए ही उन्होंने यह बात कह डाली थी। मैं पहले से ही विधान-परिषद् का सदस्य था। परन्तु यह उन्होंने ठीक कहा था कि सिलहट के जिले में मतगणना के उपरान्त उसका एक हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान में मिला दिया गया था और विधान-परिषद् में आसाम से आने वाले सदस्यों की संख्या कम करनी पड़ी थी, जिसके लिये एक नया चुनाव हुआ था परन्तु यदि मुझे अब ठीक स्मरण है, तो प्रान्तीय विधान-मण्डलों में हमने अगस्त सन् 1947 ई. में विधान-परिषद् के लिये सदस्य चुने थे और यदि मुझे ठीक स्मरण है, तो जिस समय श्री कामत ने यह आपत्ति की थी, उस समय मैं फिर चुन लिया गया था।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, स्पष्टीकरण के उद्देश्य से क्या मैं यह बता सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र मि. सादुल्ला इस सभा में नहीं पधारे थे। उन्होंने न तो शपथ ली थी और न रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये थे। इसलिये औचित्य की दृष्टि से उनको इस सभा का सदस्य नहीं कहा जा सकता था।

***सैयद मोहम्मद सादुल्लाः** श्रीमान्, मेरे प्रार्थना करने पर भी श्री कामत ने मेरे भाषण में विघ्न डालना उचित समझा है।

***श्री एम. थिरूमल रावः** क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह सब कुछ किस प्रकार इस बहस से सम्बद्ध है?

***उपाध्यक्षः** हमें आगे बढ़ना चाहिये?

***सैयद मोहम्मद सादुल्लाः** श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता था कि मसौदा-समिति के ये लोग वास्तव में विधान-परिषद् ने ही एकमत से चुने थे और अब कोई भी किस मुंह से यह कह सकता है कि वे योग्य नहीं हैं, वे एक विशेष दल के सदस्य नहीं हैं और यह कि उनमें से एक को छोड़कर और किसी सदस्य पर जेल से छूटने की छाप नहीं लगी हुई है? मैं माननीय सदस्य को कैसे बताऊं कि हमने यथाशक्ति अथक परिश्रम किया, कि हमने इस मसौदे को तैयार करने के लिये, जिसे केवल बहुरंगी कह दिया गया है, हमने तीन महाद्वीपों के सभी—परिचित, प्राचीन और आधुनिक विधानों की छानबीन की। परन्तु जो लोग कला प्रिय हैं, जिनको कलाकौशल से प्रेम है, वे अच्छी प्रकार जानते हैं। मेरा यह दावा है कि हमारे मसौदे में चाहे जितनी भी बातें रह गई हों, हमने कम से कम एक सम्पूर्ण चित्र तैयार करने का प्रयत्न किया है और सभा के विचारार्थ एक सम्पूर्ण प्रलेख को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मसौदा-समिति का कभी भी यह दावा नहीं रहा है कि उसने विधान के सम्बन्ध में अन्तिम बात कह दी है, अथवा उसने जो प्रावधान निश्चित किये हैं, वे अकाट्य हैं अथवा इन अनुच्छेदों में किसी प्रकार का परिवर्तन हो ही नही सकता। इस मसौदे को इस सभा के सम्मुख अन्तिम रूप से स्वीकार होने के लिये प्रस्तुत करने का ही यह अर्थ है कि हम किसी विशेष नीति के पोषण के लिये वचनबद्ध नहीं हैं जहां कहीं हमने समितियों की

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

सिफारिशों से भिन्न मार्ग अपनाया है अथवा इस सभा के स्वीकृत सिद्धान्तों के विपरीत एक दो शब्द बदल दिये हैं, हमने अधोलिखित टिप्पणियों में इसकी ओर पर्याप्त रूप से संकेत कर दिया है ताकि यह न समझा जाये कि हमने धोखा देकर कुछ रख दिया है। जिन विषयों के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने यह समझा कि सभा के स्वीकृत सिद्धान्तों से अथवा समितियों की सिफारिशों से भिन्न मत ग्रहण करना चाहिये, उनकी ओर उसने सभा का ध्यान आकर्षित किया है।

समितियों के सम्बन्ध में हमने अपने को कठिन स्थिति में पाया। कुछ समितियों की सिफारिशें सभा के सामने रखी गई, उन पर विचार विमर्श हुआ और निर्णय किया गया, परन्तु कुछ समितियों की रिपोर्टें विशेषत: अर्थ-सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की समिति की रिपोर्टें सभा के सम्मुख उपस्थित ही नहीं की गई थी। उन पर माननीय सदस्य विचार-विमर्श नहीं कर सके और उनके सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया गया। कुछ विषयों के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने स्वतंत्रता से अपनी सम्मति दी है। परन्तु हमने यह सब कुछ सद्दिच्छा से ही किया। दो विषयों के सम्बन्ध में, मैं आगे विस्तार से चर्चा करूंगा, परन्तु ईश्वर के लिये आप यह कटु धारणा न बनायें कि मसौदा-समिति का इस सभा के निर्णयों से पथ-प्रदर्शन नहीं हुआ।

इन दो समितियों के सम्बन्ध में पहले तो यह आलोचना की गई है कि मसौदा-समिति ने केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की तदर्थ समिति की सिफारिशों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। इन क्षेत्रों अर्थात् दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के कई योग्य व्यक्तियों ने इस विचार का प्रतिपादन किया है। हमने बड़े आदर से उनके विचारों को सुना, परन्तु इसी सभा में हमने यह आलोचना भी सुनी है कि भारत को छोटे-छोटे प्रदेशों में विभाजित करके उन्हें संघ के अंग न बनाना चाहिये। इस तदर्थ समिति की सिफारिशें हमारे सामने थीं, परन्तु हमारी समझ में नहीं आया कि उनके सम्बन्ध में क्या किया जाये। उदाहरणार्थ दिल्ली को ही लीजिये, उसकी जनसंख्या बीस लाख है। यदि उसे एक पृथक् प्रदेश बना दिया जाये—यद्यपि उसे लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त बनाकर या केन्द्र के अधीन रखकर भी पृथक् प्रदेश नहीं बनाया जा सकता—तो हम अजमेर-मेरवाड़ा के समान अन्य केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के सम्बन्ध में क्या करेंगे? सन् 1941 ई. की जनगणना के अनुसार अजमेर-मेरवाड़ा

की जनसंख्या 6 लाख थी। परन्तु श्री मुकुटबिहारी भार्गव ने कृपा करके हमें यह बताया कि जनसंख्या बढ़कर 9 लाख हो गई है। हमें इस समय की जनसंख्या को 10 लाख समझ लेना चाहिये। इस दशा में यदि हम दिल्ली को लेफ्टिनेंट-गवर्नर का एक पृथक् प्रांत बनायें, तो अजमेर-मेरवाड़ा के सम्बन्ध में ऐसा क्यों न करें? फिर कुर्ग का क्या होगा? वह भी केन्द्र प्रशासित क्षेत्र है और उसकी जनसंख्या दो लाख से कुछ कम हैं। उसके अतिरिक्त अंडमान द्वीपसमूह के लोगों का भी यह दावा है कि उनके यहां भी एक मुख्यायुक्त है। इसलिये हमने इसे ही सर्वोचित समझा कि इस सम्बन्ध में बड़ी सभा, अर्थात् विधान-परिषद् ही निर्णय करे। क्या हमने यह ठीक नहीं किया? हमने विधान के मसौदे के भाग 7 में इस आदरणीय सभा का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित किया है? आप देखेंगे कि अधोलिखित टिप्पणी में हमने कहा है कि ''समिति का यह मत है कि इस समय मुख्यायुक्तों के प्रान्त कहे जाने वाले तथा प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित राज्यों का मुख्यायुक्तों के प्रान्तों से सम्बन्धित तदर्थ समिति की सिफारिशों के अनुसार निर्माण करने के सम्बन्ध में विस्तृत प्रावधान रखना आवश्यक नहीं है। इस भाग में जिन दुहराये हुए प्रावधानों का प्रस्ताव किया गया है, उनसे यदि विधान-परिषद् ने तदर्थ समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया, तो उन्हें अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से व्यवहार में लाया जा सकेगा''।

यदि हम इन क्षेत्रों की और इनकी आकांक्षाओं की उपेक्षा करना चाहते, तो हम यह न कहते कि यह विधान-परिषद् पर निर्भर है कि वह तदर्थ समिति की सिफारिशों के आधार पर उनके लिये विधान बनाये या न बनाये।

अब मैं इससे अधिक गम्भीर इस आरोप के बारे में कहूंगा कि हमने अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया। पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और आसाम के जिन सदस्यों ने हमारी सिफारिशों के इस भाग की आलोचना की है, उनकी बातें मेरी समझ में आती हैं और उनसे मेरी सहानुभूति है। परन्तु मैं यह चाहता हूं कि सभा इस सम्बन्ध मैं निर्णय करे कि जो प्रावधान हमने रखे हैं, वे अन्ततोगत्वा उन सिफारिशों से अच्छे हैं, या नहीं, जिनको कि अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति ने उपस्थित किया है। मद्रास के

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

एक माननीय सदस्य की। यह आलोचना सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि या तो हमने उन सिफारिशों को लापरवाही से पढ़ा या हममें इतनी योग्यता न थी कि हम उनमें सन्निहित सिद्धान्तों को समझ सकें। इन दोनों आरोपों के सम्बन्ध में मैं पूरे जोर से कहना चाहता हूं कि ये गलत हैं। इसके विपरीत हमने विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों पर बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया। मैं उनकी रिपोर्ट से तथा उनके आंकड़ों से यह दिखाऊंगा कि यदि उस समिति की सिफारिशें स्वीकार की गई, तो प्रान्तों को विशेषतया आसाम, उड़ीसा और बिहार के गरीब प्रान्तों को नुकसान उठाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह कथन भी ठीक नहीं है कि मसौदा-समिति ने अर्थ-सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया है। उस समिति को रिपोर्ट मेरे हाथ में है और यदि किसी सज्जन के पास भी वह है, तो वे देख सकते हैं कि पृष्ठ 41, परिशिष्ट 4 में समिति ने विधान के मसौदे में कुछ संशोधनों की सिफारिश की है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि मसौदा-समिति ने उनमें से 95 प्रतिशत सिफारिशों को स्वीकार किया है और वे हमारे प्रावधानों में समाविष्ट मिलेंगी। केवल अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति ने हमसे जिन आंकड़ों को अपनी सिफारिशों में सम्मिलित करने का सुझाव किया था, उनको हमने स्वीकार नहीं किया।

अब कुछ विशेष बातों के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। मैं पहले विशेषज्ञों की समिति की उस सिफारिश की चर्चा करूंगा, जो उन्होंने सन के निर्यात-कर के उस भाग के बारे में की थी, जो भारत के सन उत्पन्न करने वाले प्रान्तों को प्राप्त है। भारतीय गणराज्य के लिये यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि सभी जानते हैं कि संसार में सन केवल हमारे यहां चार प्रान्तों में ही उत्पन्न किया जाता है। मुझे समाचार पत्रों की इस सूचना से प्रसन्नता हुई कि मद्रास प्रान्त में सन उत्पन्न करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु यदि वस्तुस्थिति को देखा जाये, तो संसार में जितना सन उत्पन्न होता है, उसका 85 प्रतिशत अविभाजित बंगाल में उत्पन्न किया जाता था। बिहार में उसका 7 प्रतिशत, आसाम में 6 प्रतिशत और उड़ीसा में 2 प्रतिशत उत्पन्न किया जाता था; परन्तु बंगाल के पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल में विभाजित हो जाने के उपरान्त अब यह अनुपात नहीं रहा है।

पूर्वी बंगाल में, बंगाल में जितना सन उत्पन्न होता था, उसका 75 प्रतिशत उत्पन्न होता था। इसलिये वर्तमान पश्चिमी बंगाल में संसार के सन का केवल 10 प्रतिशत या 12 प्रतिशत उत्पन्न होता है। इस स्थिति से आसाम, बिहार और उड़ीसा की प्रतिशत उत्पत्ति में भी अन्तर आ गया है। परन्तु फिर भी अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की रिपोर्ट में हम क्या पाते है? उनकी यह सिफारिश है कि चार प्रान्तों को भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम के अधीन सन के निर्यात-कर का जो 62½ प्रतिशत भाग मिलता था, वह अब समाप्त कर दिया जाये। वे चाहते हैं कि इस बिना पर प्रान्तों को धन न दिया जाये। परन्तु उन्होंने यह अनुभव किया कि गरीब प्रान्तों को इसके कारण बहुत हानि उठानी पड़ेगी और इसलिये उन्होंने यह सिफारिश की है कि दस वर्ष तक कम से कम शिष्टता के नाते भारत सरकार को यह धन इस अनुपात में देना चाहिये:

पश्चिम बंगाल	–	एक करोड़
आसाम	–	पन्द्रह लाख
बिहार	–	सत्रह लाख, और
उड़ीसा	–	तीन लाख।

माननीय सदस्यों से मेरी यह प्रार्थना है कि वे इस पर गम्भीरता से विचार करें कि क्या इस प्रकार का वितरण आसाम जैसे या उड़ीसा या बिहार जैसे प्रान्त के लिये न्यायपूर्ण होगा। बिहार का उत्पादन भारत के सन के उत्पादन के 7 प्रतिशत से बढ़कर 35 प्रतिशत हो गया है। इसी प्रकार आसाम का उत्पादन बढ़कर 30 प्रतिशत हो गया है और इसी अनुपात में उड़ीसा का भी उत्पादन बढ़ गया है। इस पर भी अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति, नौकरशाही के जमाने में जो अन्याय किया गया था, उसे बनाये रखना चाहती है और उसी अनुपात में प्राप्त कर का वितरण करना चाहती है, जिसके अनुसार पश्चिमी बंगाल को, जो सन के कुछ उत्पादन का केवल 10 या 12 प्रतिशत उत्पन्न करता है, एक करोड़ की धनराशि मिलती है।

समिति ने एक यह तर्क किया है कि अन्य प्रान्तों में भी चाहे सन उत्पन्न किया जाता हो, परन्तु जो कारखाने सन का माल तैयार करते हैं वे बंगाल ही में हैं। यह सच है कि निर्यात-कर केवल कच्चे सन पर ही नहीं लगाया जाता,

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

बल्कि तैयार माल पर भी लगाया जाता है। परन्तु विचार कीजिये कि इसका प्रभाव क्या होगा। पश्चिमी बंगाल अपनी भूमि का प्रसार नहीं कर सकता। वहां जितनी भी ऊसर जमीन है, वह पूर्वी बंगाल से आये हुये शरणार्थियों को बसाने के लिये ली जा रही है। यदि कोई प्रान्त सन का उत्पादन बढ़ा सकते हैं, तो वे आसाम और उड़ीसा के प्रान्त हैं। परन्तु यदि हमें कोई लाभ न हुआ और यदि हमने सन के निर्यात-कर का उनका भाग उन्हें न दिया, तो कम से कम आसाम किस कारण सन की फसल बढ़ायेगा? भारत के लिये सन इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि पश्चिमी बंगाल की सन की सभी पैदावार यूरोप अथवा अमेरिका के हाथों बेच दी जाती है और उसके बदले में हमें स्टर्लिंग अथवा डालर का विनिमय प्राप्त होता है, जिसकी हमें बहुत आवश्यकता रहती है। यदि कल आसाम और उड़ीसा के प्रान्त सन पैदा करना छोड़ दें, तो बंगाल के सन के कारखाने बेकार हो जायेंगे और उन्हें बन्द करना पड़ेगा। इसी कारण मसौदा-समिति ने उन सिफारिशों को स्वीकार करना उचित नहीं समझा और पहले के समान स्थिति को बनाये रखना ही श्रेयस्कर समझा।,

अर्थ-सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति की दूसरी सिफारिश यह है कि सन के निर्यात-कर के इन प्रान्तों के भाग को समाप्त करने से इन्हें जो हानि होगी, उसे पूरा करने के लिये भारत सरकार को, जो इस समय प्रान्तों के आय-कर का 50 प्रतिशत भाग लेती है, उनके भाग को बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर देना चाहिये; अर्थात् उनके भाग में 10 प्रतिशत की वृद्धि कर देनी चाहिये। श्रीमान्, इस सभा के अधिकांश सदस्य यह नहीं जानते हैं कि आयकर की इस वितरण-व्यवस्था से बिहार और आसाम के गरीब प्रान्तों के साथ कितना अन्याय हो रहा है। बिहार कच्चा माल पैदा करता है। बिहार ही में बड़े-बड़े लोहे के कारखाने तथा दफ्तर हैं, परन्तु उनके मुख्य दफ्तर बंबई में हैं और इसलिये आय-कर बंबई में दिया जाता है। इसलिये इस आय-कर के लिये बिहार को कोई श्रेय नहीं मिलता है। बिहार इस व्यवस्था में बदलाव के लिये गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाता रहा है, परन्तु उसे अभी तक सफलता नहीं मिली है। आसाम में इससे भी बुरी दशा है।

देश के विभाजन के पूर्व आसाम में लगभग 1200 चाय के बाग थे। सिलहट के एक बड़े भाग के पूर्वी पाकिस्तान में मिल जाने पर भी आसाम में एक हजार चाय के बाग थे। आसाम का यही एक संगठित उद्योग है। परन्तु इन 1000 चाय के बागों में से लगभग 800 के बड़े दफ्तर या प्रबन्धकों के दफ्तर या तो कलकत्ते में या लंदन में स्थित हैं जब से यह प्रणाली प्रयोग में आई, आसाम इस प्रणाली को बदल डालने के लिये केन्द्रीय सरकार से बराबर प्रार्थना करता रहा है। इस प्रणाली के अधीन वसूली के आधार पर विभाजन होता है, न कि इस आधार पर कि उत्पत्ति कहां हुई है।

अब श्रीमान्, क्या आप यह समझते हैं कि यदि हम अर्थ-सम्बन्धी समिति के प्रावधान को स्वीकार करें, तो क्या इससे बिहार और आसाम के प्रति न्याय होगा? हम सारी प्रणाली को बदल डालना चाहते थे और अर्थ-सम्बन्धी समिति ने हमारे सबल तर्क को स्वीकार किया। परन्तु उन्होंने बीच का मार्ग ग्रहण करने का प्रयास किया है और उन्होंने जो सिफारिशें की हैं, वे धारा 55 में दी हुई हैं। उनका कहना है—''हमारी यह सिफारिश है कि प्रान्तीय भाग अर्थात् कुल आय का 60 प्रतिशत प्रान्तों के बीच निम्नलिखित ढंग से वितरित किया जाये:

20 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर

35 प्रतिशत वसूली के आधार पर

5 प्रतिशत उस प्रकार, जैसे पैरा 46 में बताया गया है।''

पैरा 56 इस प्रकार है—''अभिभाजन-प्राधिकारी को 5 प्रतिशत की तीसरी धनराशि संतुलन के लिये काम में लानी चाहिये, ताकि अन्य दो धनराशियों के विभाजन के कारण कोई प्रान्त कठिनाई में पड़ जाये, तो उसकी कठिनाई को दूर किया जा सके।''

श्रीमान्, देशी रियासतों के उड़ीसा प्रान्त में समावेश हो जाने के उपरान्त वर्तमान प्रान्तों में आसाम ही की जनसंख्या सबसे कम है। सन् 1941 ई. की जनगणना के अनुसार आसाम की जनसंख्या 102 लाख थी, परन्तु अब वह 72 लाख रह गई है। उड़ीसा की जनसंख्या बढ़ गई है। इसलिये यदि आय-कर की विभाजनीय धनराशि को जनसंख्या के आधार पर विभाजित किया जाये, तो आसाम को बहुत कम मिलता है; या यों कहिये कि आसाम को कम की हुई धनराशि मिलेगी।

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

इसके अतिरिक्त यह कहा गया है कि 35 प्रतिशत वसूली के आधार पर वितरित किया जाना चाहिये। इस प्रकार आसाम और बिहार दोनों प्रान्तों को हानि होगी, क्योंकि आसाम के सम्बन्ध में वसूली कलकत्ते में होती है और बिहार के सम्बन्ध में बम्बई में। इसलिये 60 प्रतिशत का एक बड़ा भाग इन प्रान्तों के हाथ से निकल जायेगा। केवल उस कठिनाई को दूर करने के लिये 5 प्रतिशत रह जाता है, जो विशेष प्रान्तों के सम्बन्ध में उत्पन्न हो। अभी तक हमारा चिल्लाना बेकार हुआ है। हमारी आवाजें केन्द्र में नहीं सुनी जाती है। चाहे जितना भी गला फाड़ कर हम चिल्लायें और चाहे जितना भी प्रयास हमारा प्रधान-मंत्री करे, हमारी कोई सुनवाई नहीं होती है। इसलिये मसौदा-समिति ने यह विचार किया कि यदि विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया जाये, तो इससे गरीब प्रान्तों का हितसाधन न होगा।

इसके अतिरिक्त समिति ने यह सिफारिश की है कि तम्बाकू का उत्पादन-कर प्रान्तों के बीच अगणित उपभोग के आधार पर विभाजित किया जाना चाहिये। इससे आसाम या उड़ीसा के प्रान्तों को कोई लाभ न होगा, क्योंकि उनकी जनसंख्या कम है। यद्यपि अपनी मुख्य सिफारिशों में विशेषज्ञों की समिति ने इस ओर संकेत किया है, परन्तु परिशिष्ट 6 में उसने संशोधनों की जो सूची दी है, उसमें इसका उल्लेख नहीं किया है। इसलिये जब उन्होंने इसको स्वीकार नहीं किया है तो मसौदा-समिति इसे स्वीकार न करने के लिये दोषी नहीं ठहराई जा सकती।

अन्त में श्रीमान्, विशेषज्ञों की समिति ने यह सिफारिश की है कि प्रान्तों और केन्द्र की आर्थिक स्थिति की जांच करने के लिये तुरन्त ही एक अर्थायोग नियुक्त होना चाहिये। हमने इसे स्वीकार नहीं किया है कि उसको तुरन्त ही नियुक्त करना आवश्यक है, क्योंकि हमने यह अनुभव किया कि इस समय ऐसे आयोग की नियुक्ति से न प्रान्तों को ही कोई लाभ होगा और न केन्द्रीय सरकार को ही। इसके अतिरिक्त उसको काम करने के लिये आवश्यक सामग्री उपलब्ध न होगी। विशेषज्ञों की समिति ने स्वयं कहा है:

> ''इस देश में अर्थ-सम्बन्धी आंकड़ों तथा इसी प्रकार के अन्य ब्यौरे के अभाव के कारण बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसलिये मोटी तौर पर विचार करके ही साधनों का विभाजन किया जाता है; कम से कम उस समय तक के लिये तो यही किया जाता है, जब तक आवश्यक ब्यौरा प्राप्त नहीं हो जाता है। हम इस प्रकार के आंकड़ों को इकट्ठा करने और इससे

सम्बन्धित अनुसन्धान को बहुत महत्त्व देते हैं और हमें विश्वास है कि सरकार अविलम्ब आवश्यक प्रबन्ध करेगी...''

*एक माननीय सदस्यः माननीय सदस्य महोदय का कब तक बोलते रहने का विचार है? क्या उनके लिये कोई काल-सीमा नहीं है?

*सैयद मोहम्मद सादुल्लाः यदि मेरे मित्र मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ ही मिनटों में समाप्त कर दूंगा।

*उपाध्यक्षः मेरे विचार से मसौदा-समिति की जो आलोचनायें की गई हैं, उनका उत्तर देने के लिये जितना समय चाहें ले सकते हैं। इसके लिये आपको उन्हें अवश्य ही समय देना चाहिये।

*सैयद मोहम्मद सादुल्लाः हम यह देखते हैं कि विशेषज्ञों की समिति के सिफारिश करने पर भी इस समय कोई ब्यौरा उपलब्ध नहीं है। पुस्तिका के पृष्ठ 27 में जो आंकड़े प्रकाशित किये गये हैं, उनसे पता लगता है कि सन् 1937-38 ई. से केन्द्रीय सरकार का आयव्ययक घाटे का आय-व्ययक रहा है। सन् 1946-47 ई. की दुहराई हुई आगणनाओं के अनुसार उसे 45 लाख का थोड़ा सा घाटा हुआ है, परन्तु श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि जब आंकड़े अन्तिम रूप से प्रकाशित किये जायेंगे तो यह प्रत्यक्ष हो जायेगा कि घाटा अधिक है। मैं यह समझता हूं कि इसी कारण से केन्द्रीय सरकार ने चार प्रान्तों को दिये जाने वाले सन के निर्यात-कर को एकबारगी कम कर दिया है और वह अब 62½ प्रतिशत से घट कर केवल 20 प्रतिशत रह गया है। यदि उसे अत्यधिक अर्थ-सम्बन्धी कठिनाई न होती, तो वह यह असाधारण कार्यवाही न करती।

माननीय श्री के. सन्तानम् (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह औचित्य प्रश्न है कि मसौदा-समिति का भारत सरकार के आर्थिक-प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है मेरे विचार से माननीय सदस्य महोदय को अपनी चर्चा विधान तक ही सीमित रखनी चाहिये।

***सैयद मोहम्मद सादुल्लाः** श्रीमान्, मसौदा-समिति पर यह आरोप लगाया गया है कि उसने इस विषय की उपेक्षा की है।

पिछले दस वर्षों से भारत सरकार के घाटे के आय-व्ययक रहे हैं और अब वह शरणार्थियों को बसाने में, कश्मीर की लड़ाई में तथा हैदराबाद की पुलिस की कार्यवाही में बहुत धन व्यय कर रही है। इस कारण वह प्रान्तों को पर्याप्त सहायता देने में समर्थ नहीं है। यद्यपि प्रान्त गला फाड़कर यह चिल्ला रहे हैं कि केन्द्र उनको आर्थिक सहायता नहीं दे रहा है और उनकी उपेक्षा कर रहा है। श्रीमान्, मैं एक शब्द विशेषतया आसाम की स्थिति के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं, क्योंकि इस सभा के अधिकांश सदस्य उस प्रान्त की स्थिति से परिचित नहीं हैं। वह भारतीय गणराज्य का सीमावर्ती प्रान्त ही नहीं है, बल्कि पूर्व से आक्रमण को रोकने के लिये एक भीति के समान भी है। (*विघ्न*)

श्रीमान्, यदि आप मुझे बोलने की आज्ञा नहीं देते हैं, तो मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है। परन्तु आसाम के सदस्य के नाते मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप मसौदा-समिति के सदस्य के नाते बोल रहे हैं।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई : जनरल): क्या मैं यह सुझाव उपस्थित कर सकता हूं कि वे इस विषय पर कल बोल सकते हैं, ताकि हमें कुछ समय मिल सके?

***सैयद मोहम्मद सादुल्लाः** श्रीमान्, मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है। मैंने यह विचार किया कि मैं इस सभा में तीन हैसियत से उपस्थित हूं। एक तो मैं मसौदा-समिति का सदस्य हूं और साथ ही आसाम के उपेक्षित प्रान्त का प्रतिनिधि हूं तथा मुसलमानों का भी प्रतिनिधि हूं। असम और मुसलमानों के बारे में मैं केवल दो बातें कहना चाहता था, परन्तु उन्हें मैं आगे चल कर किसी अवसर पर कह लूंगा।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से श्री कामत कोई संशोधन उपस्थित करना चाहते थे। क्या माननीय सदस्य महोदय उस पर जोर देना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उस पर जोर नहीं दे रहा हूं, क्योंकि वह केवल शाब्दिक संशोधन है।

उपाध्यक्षः प्रस्ताव यह है कि:

''विधान-परिषद् अपने ता. 29 अगस्त सन् 1947 ई. के प्रस्ताव के अनुसार नियुक्त मसौदा-समिति द्वारा निश्चित विधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करती है।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** मुझे सभा के भविष्य के कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ कहना है। हमें संशोधन उपस्थित करने के लिये कल और परसों के दो दिन तो मिल ही जायेंगे। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि एक सदस्य महोदय ने हमारे अध्यक्ष महोदय के पास एक पत्र भेजा था, जिसमें उन्होंने दस दिन के समय की मांग की थी। हमने अपने लिये जो कार्यक्रम निश्चित किया है, उसमें बहुत उलट-फेर किये बिना इतना समय देना असम्भव है। इसलिये अन्तिम दिन वृहस्पतिवार होगा और समय 11 तारीख को 5 बजे तक का होगा।

मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि तीन हजार संशोधन प्राप्त हो चुके हैं और मुझे यह विश्वास है कि अगले दो दिनों में और भी संशोधन भेजे जायेंगे। मैं साहस बटोर कर सभा के विचारार्थ एक सुझाव उपस्थित करता हूं, वह यह है कि इस सभा में एक-एक संशोधन को उठाने के बदले यह अच्छा होगा कि जिन लोगों ने संशोधन उपस्थित किये हैं, वे या तो मसौदा-समिति के सभी सदस्यों से एक साथ मिलकर या उसके कुछ सदस्यों से मिलकर विचार-विमर्श कर लें। इस प्रकार शीघ्रता से कार्य हो सकेगा। यह आप पर निर्भर है कि आप इस सुझाव को बिना सुने हुये भी तुरन्त ही अस्वीकार कर दें या किसी प्रकार का समझौता कर लें। यह हो सकता है कि मसौदा-समिति कुछ संशोधनों को स्वीकार करने के लिये राजी हो जाये और यह भी हो सकता है कि कुछ संशोधनों पर आगे विचार करने की आवश्यकता न होगी। यदि आप इस सुझाव को स्वीकार करें, तो मेरी राय से यह व्यवस्था शुक्रवार से व्यवहार में आ जाये और इसके लिये 10-30 बजे प्रातःकाल का समय निश्चित किया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि मसौदा-समिति अस्तित्व में है?

*__उपाध्यक्षः__ वह चाहे अस्तित्व में न हो, परन्तु, उसके सदस्य जीवित हैं और वे इस सभा के कार्य को कम करने के उद्देश्य से इस कष्ट हो उठाने के लिये तैयार हैं।

*__प्रो. एन.जी. रंगाः__ आप अवश्य ही उस प्रणाली से परिचित होंगे, जिसका हम पहले अनुसरण करते रहे हैं। जहां तक उन लोगों का सम्बन्ध है, जो भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य हैं या जिनका उससे सम्बन्ध है, वे जैसा कि आपने सुझाया है, इस काम को कम करने के लिये और आपके काम में सुविधा पैदा करने के लिये प्रत्येक दिन तीन चार घण्टे के लिये मिलते रहे हैं। यदि हम आपके सुझाव को स्वीकार करें, तो इसके अतिरिक्त हमें यहां मसौदा-समिति के साथ बैठना होगा और उनसे अमुक-अमुक संशोधन को स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करनी होगी। इसका अर्थ यह होगा कि हमें फिर प्रत्येक दिन तीन या चार घण्टे के लिये और मिलना होगा। इसलिये मेरा आपसे आदरपूर्वक यह निवेदन है कि यह सुझाव व्यावहारिक न होगा और हममें से बहुत से लोगों को स्वीकार्य न होगा। इसलिये हम यह चाहते हैं कि आप हमें इस सुझाव से मुक्त कर दें।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): मैं प्रो. रंगा के सुझाव का समर्थन करता हूं। जो सुझाव उपस्थित किया गया है, वह वास्तव में व्यावहारिक नहीं है और अच्छा तो यह होगा कि इन संशोधनों को शीघ्रता से निबटाने का कार्य सदस्यों पर ही छोड़ दिया जाये। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि जो कार्य-प्रणाली अब तक रही है, उसे रहने दिया जाये और यदि सदस्य मसौदा-समिति से समझौता न कर सके, तो उनको इस सभा में संशोधन उपस्थित करने का अधिकार होना चाहिये।

*__उपाध्यक्षः__ यदि आप सहमत नहीं हैं, तो आप मेरे सुझाव को स्वीकार न करें। इसके अतिरिक्त मसौदा-समिति का अस्तित्व अभी नहीं मिटा है।

एक बात और है। शुक्रवार के दिन मुहर्रम के कारण पूरी छुट्टी रहेगी और माननीय अध्यक्ष महोदय ने हमें शनिवार का दिन संशोधनों के अध्ययन के लिये दिया है। इसलिये अब हम सोमवार 15 तारीख को दस बजे प्रातःकाल मिलेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या प्रस्तावना पर सबसे पहले विचार होगा या सब से अन्त में?

***उपाध्यक्षः** मैं इस समय इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं सुना सकता।

इसके पश्चात् सभा सोमवार ता. 15 नवम्बर सन् 1948 ई. को 10 बजे प्रातःकाल तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VII.6.48
350

अंक 7
संख्या 6

सोमवार,
15 नवम्बर,
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 453

2. विधान का मसौदा–(*जारी*) [अनुच्छेद 1 पर विचार] 453

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 15 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई।

उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

1. श्री पी.एस. नटराज पिल्ले (ट्रावनकोर)

विधान का मसौदा-(*जारी*)

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुकर्जी): मौलाना हसरत मोहानी।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि 6 नवम्बर को मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी:

> ''विधान के मसौदे के एक-एक खण्ड पर विचार उस समय तक के लिये स्थगित किया जाये जब तक कि अन्तिम रूप से यह न निश्चय हो जाये कि निम्नलिखित तीन शब्द-समूहों में से कौन सा शब्द-समूह प्रस्तावना में सम्मिलित किया जाये:
>
> 'Sovereign Independent Republic (सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य)'
> 'Sovereign Democratic Republic (सर्वसत्ताधारी जनतंत्रात्मक गणराज्य)'
> 'Sovereign Democratic State (सर्वसत्ताधारी जनतंत्रात्मक राज्य)'

अभी इसका निश्चय नहीं हुआ है कि इसमें से कौन सा शब्द-समूह विधान में सम्मिलित किया जायेगा। परन्तु मुझे ज्ञात हुआ है कि कांग्रेस-दल ने विधान के एक-एक खण्ड पर विचार करने का निश्चय कर लिया है, यद्यपि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय नहीं हुआ है कि प्रस्तावना में गणराज्य रखा जाये या राज्य।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[मौलाना हसरत मोहानी]

मेरी एक शिकायत है। आपके दफ्तर को जिन संशोधनों की सूचना दी गई थी, वे छप गये हैं, परन्तु मेरा संशोधन छोड़ दिया गया है। क्या मैं जान सकता हूं कि वह क्यों छोड़ दिया गया?

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से वह कार्य-प्रणाली के अनुरूप न होने के कारण ही छोड़ दिया गया। इसके अतिरिक्त वह नियमानुकूल भी नहीं है। मुझे बताया गया है कि कामन्स सभा में प्रस्तावना पर अन्त में विचार होता है। इससे मेरा निर्णय और भी सुदृढ़ हो जाता है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान्, क्या मैं एक बात बता सकता हूं? पहले एक बार जब मैंने ऐसा ही प्रस्ताव उपस्थित किया था, तो विधान-परिषद् के अध्यक्ष महोदय ने यह निश्चय किया था और यह निर्णय सुनाया था कि मेरा संशोधन, जो उसी आशय का था जैसा कि मैंने आज प्रस्तुत किया है, नियमानुकूल है। इस बारे में उनकी व्यवस्था बड़ी स्पष्ट थी। सरकारी रिपोर्ट में उनके जो शब्द छपे हुये हैं, उन्हें मैं यहां पढ़कर सुना देता हूं:

''मेरे विचार से यह संशोधन नियमानुकूल है। सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह इसे अस्वीकार कर दे।'' इसलिये इस संशोधन को प्रस्तुत करने का मुझे पूर्ण अधिकार है। यह बात अवश्य सभा पर निर्भर करती है कि वह उसे स्वीकार करे या अस्वीकार करे। इसलिये मैं यह कहता हूं कि इस बात को तो अध्यक्ष महोदय ने तय कर दिया है। यदि आप चाहें तो अध्यक्ष महोदय से पूछ सकते हैं कि यह ठीक निर्णय है, या नहीं।

इसके अतिरिक्त जब जुलाई में संघीय विधान-सभा के सम्मुख उपस्थित किया गया था, तो उस अवसर पर भी मैंने इसी प्रकार की आपत्ति की थी और उस समय भी विधान-परिषद् के अध्यक्ष महोदय ने यह स्पष्ट व्यवस्था दी थी कि मेरे संशोधन को नियम-प्रतिकूल नहीं ठहराया जा सकता। यदि आप चाहें, तो मैं उनके ही शब्दों को पढ़ दूंगा। उन्होंने कहा था:

''मैं वचन देता हूं कि जब कभी आप इस आशय के संशोधन को उपस्थित करेंगे, वह नियम-प्रतिकूल नहीं ठहराया जायेगा''

इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मेरा संशोधन नियम प्रतिकूल न घोषित किया जाये, क्योंकि अध्यक्ष महोदय ने अन्तिम रूप से यह निर्णय कर दिया है

कि मेरे संशोधन के उपस्थित किये जाने के लिये आज्ञा दी जाये। निस्संदेह सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह उसे स्वीकार करे या अस्वीकार करे। यही पिछले अवसर पर हुआ था, जब पंडित नेहरू ने संघीय विधान को उपस्थित किया था। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि पंडित नेहरू के स्थान पर आज डा. अम्बेडकर हैं। मेरे विचार से उन्होंने सारे कार्यक्रम को उलट दिया है। मेरा यह निवेदन है कि मुझे इसका पूरा अधिकार है कि मैं आपसे प्रार्थना करूं कि आप मेरे अधिकारों की रक्षा करें और यह अवसर प्रदान करें कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, उसके लिये अपने कारण भी दे सकूं। निस्संदेह यदि सभा मेरे संशोधन को स्वीकार न करना चाहे, तो वह उसे गिरा सकती है, जैसा कि उसने पिछली बार भी किया था। परन्तु मेरे विचार से मुझे इस प्रकार निरुत्साह न किया जाना चाहिये। किसी भी संशोधन को उपस्थित करने के मेरे अधिकार की रक्षा होनी चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मेरी सम्मति में यह बात कि आपको संशोधन पेश करने का अधिकार है और यह बात कि प्रस्तावना पर किस समय विचार किया जाये, एक दूसरी से सर्वथा भिन्न है। मेरी यह व्यवस्था है कि प्रस्तावना को विचार के लिये हम सर्वप्रथम न लेंगे और यह व्यवस्था इस बारे में अन्तिम है।

अब हम विधान के मसौदे के एक-एक खंड पर विचार करेंगे।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, इसके पहले कि आप इस विधान को लें, मैं एक जरूरी बात की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। आज्ञा हो, तो मैं कहूं?

***उपाध्यक्षः** कृपा करके माइक (ध्वनि-प्रसारक यंत्र) पर आइये।

श्री अलगू राय शास्त्रीः अध्यक्ष महोदय, मैं यह निवेदन करना चाहता था कि इधर दो-तीन दिन हुये, अखबारों में निकला है कि सिन्ध असेम्बली के बहुत से हिन्दू मेम्बर वहां से अलग कर दिये गये हैं, इसलिये कि वहां से बहुत से सिन्धी सिन्ध को छोड़कर हिन्दुस्तान चले आये हैं। जो लोग यहां आ गये हैं, उनकी तादाद लगभग 14 लाख के करीब मालूम होती है और इसलिये यह आवश्यक मालूम होता है कि इस तरह से जो सिन्ध के भाई अपना स्थान छोड़ने के लिये विवश किये गये हैं और अपना घर छोड़कर वह यहां चले आये हैं, उनका कोई न कोई प्रतिनिधित्व इस असेम्बली में होना चाहिये। हम संविधान बनाने जा रहे हैं, समस्त भारत का। उस संविधान में उन भाइयों का, जिन्हें इस प्रकार अपना घर छोड़ना पड़ा है, कोई न कोई प्रतिनिधित्व होना आवश्यक है। मैं यह चाहता हूं

[श्री अलगू राय शास्त्री]

कि कोई ऐसी व्यवस्था की जाये, जिससे सिन्ध के वह लोग जो यहां पर चले आये हैं, उनका प्रतिनिधित्व इस सभा में हो। यदि आप आज्ञा दें, तो हम बाजाब्ता प्रस्ताव इस तरह का पेश करें कि जिससे उनका प्रतिनिधित्व यहां हो सके।

***उपाध्यक्ष:** इस प्रश्न पर यहां विचार नहीं हो सकता।

यह प्रतीत होता है कि कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में मैंने एक गलती की है। मुझे इस समय यह कहना है कि अनुच्छेद 1 विधान का अंग समझा जाये।

मेरे विचार से इस विषय पर हमारे मित्र श्री आयंगर कुछ कहना चाहते हैं। संशोधनों के सम्बन्ध में वे कुछ सुझाव उपस्थित करना चाहते हैं।

अनुच्छेद 1

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि 83 से लेकर 96वें संशोधन तक के बारे में विचार-विमर्श स्थगित किया जाये। उनका सम्बन्ध नामों के पर्याय अथवा बहुत-कुछ नामों के स्थानान्तरण से है; अर्थात् इससे कि अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'इण्डिया' शब्द की जगह 'भारत' 'भारतवर्ष' 'हिन्दुस्तान' रखा जाये।

इस बारे में कुछ विचार की आवश्यकता है। आपके द्वारा मैं इस सभा से प्रार्थना करता हूं कि कृपा करके कुछ समय के लिये इन संशोधनों पर विचार स्थगित कर दिया जाये। कुछ ही दिनों बाद जब हम प्रस्तावना को उठायेंगे, तो इन संशोधनों पर उस समय विचार हो सकता है। मैं 83 से 96 तक के संशोधनों और 97वें संशोधन की ओर संकेत कर रहा हूं, जिसमें कहा गया है कि अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में ''इण्डिया'' शब्द की जगह ''भारत (इण्डिया)'' शब्द और ''स्टेट्स'' की जगह ''प्राविंसेज'' शब्द रखा जाये।

इसलिये मेरी यह इच्छा है कि इन सब पर विचार स्थगित किया जाये।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा इससे सहमत है?

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, यदि आप इन संशोधनों पर विचार-विमर्श दो या तीन दिन के लिये स्थगित कर दें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैं आपके ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि मेरे नाम से

जो संशोधन 85 है, उसका उद्देश्य केवल 'इंडिया' का नाम बदलकर 'भारतवर्ष' रखना नहीं है, किन्तु कुछ और भी है। मुझे इसकी आशंका है कि यदि आप इस संशोधन पर विचार स्थगित करेंगे, तो आगे चलकर वह अप्रासंगिक प्रतीत होगा। मैं यह निवेदन करता हूं कि मुझे इस संशोधन को उपस्थित करने दिया जाये। निस्सन्देह ''इंडिया'' का नाम ''भारतवर्ष'' रखने के सम्बन्ध में मैं जोर नहीं दूंगा। यद्यपि मैं इस समय नाम परिवर्तन पर जोर नहीं दे रहा हूं, मैं निवेदन करता हूं कि मुझे इस संशोधन का दूसरा भाग उपस्थित करने दिया जाये।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मेरी यह प्रार्थना थी कि केवल नाम सम्बन्धी संशोधनों पर विचार स्थगित किया जाये, परन्तु इस मामले में इस आश्वासन के साथ कि ''इंडिया'' शब्द की जगह कोई दूसरा शब्द रखा जाये, वे अपने संशोधन का दूसरा भाग उपस्थित कर सकते हैं। मैं इसके लिये नहीं कह रहा हूं कि इस संशोधन का दूसरा भाग उपस्थित न किया जाये।

***उपाध्यक्ष:** इसलिये माननीय सदस्य उचित अवसर पर अपने संशोधन का दूसरा भाग उपस्थित कर सकते हैं।

अब हम संशोधनों पर विचार करेंगे। संशोधन संख्या 98 प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में, 'Shall be a' शब्दों के बाद 'Secular, Federal, Socialist' (असाम्प्रदायिक, संधानीय, समाजवादी) शब्द रखे जाये।''

संशोधित अनुच्छेद अथवा खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

''India shall be a Secular, Federal, Socialist Union of States. (भारत असाम्प्रदायिक, संधानीय समाजवादी राज्य संघ होगा।)''

सभा के सामने यह प्रस्ताव उपस्थित करते हुए पहले मैं यह बताना चाहता हूं कि प्रस्तावना पर इस समय विचार न करने के सम्बन्ध में जो निर्णय किया

[प्रो. के.टी. शाह]

गया है, उसके कारण उन लोगों के लिये कुछ कठिनाई उत्पन्न हो गई है, जो कुछ विशेष खण्डों में संशोधन करके अपनी आशाओं और आकांक्षाओं को विधान में व्यक्त रूप से स्थान देना चाहते हैं। इस कारण से जैसा हम सबको विदित है, खण्डों की कानूनी बनावट सर्वदा बड़ी परिसीमित रूप की होती है। यदि विधान के मसौदे में सन्निहित निर्देशक आदर्शों पर विचार करना सम्भव होता, तो इन प्रस्तावों के औचित्य पर ही विचार करना आसान न होता, बल्कि उन पर इस दृष्टि से भी विचार करना आसान होता कि वे उन आदर्शों के अनुरूप है, या नहीं, जो उस प्रस्तावना में सन्निहित हैं, जिसे कि स्वीकार किया गया है।

अब जैसी भी बात है, उसको ध्यान में रखकर मैं यह कहने के लिये उत्कण्ठित हूं कि मैंने यह संशोधन इसी विचार से सुझाया है कि इसमें वास्तविकता के दिग्दर्शन के साथ-साथ उस आदर्श की भी झलक है, जिसके बारे में उसे भरोसा है कि वह शीघ्र ही हमारे जीवन में वास्तविकता का रूप धारण कर लेगा। इस संशोधन द्वारा मेरा यह प्रयास है कि हमारे राज्य अथवा संघ की व्याख्या में तीन शब्द जोड़ दिये जायें, अर्थात् नया संघ संधानीय, असाम्प्रदायिक समाजवादी राज्य-संघ होगा।

इस सिलसिले में यदि मैं यह भी कह दूं, तो अनुचित न होगा कि संविधान के प्रारूप में परिभाषा देने वाली किसी धारा के न होने के कारण हमारा कार्य अत्यन्त कठिन हो गया है। क्योंकि ऐसे शब्द जैसे 'राज्य' एक अनुच्छेद से लेकर दूसरे अनुच्छेद तक कई अर्थों में प्रयुक्त हैं और एक ही शब्द के कई अर्थ लगाना और कभी-कभी स्वविरोधात्मक अर्थ लगाना कोई आसान काम नहीं है। वर्तमान प्रसंग में मैं समझता हूं कि 'संघ' शब्द का अर्थ राज्य-समूह है; अर्थात् स्वयं एक नया राज्य और मेरे संशोधन के अनुसार वह एक संधानीय, असाम्प्रदायिक, समाजवादी, राज्य होगा।

पहले मैं ''संधानीय'' शब्द को लूंगा। इस शब्द का अर्थ यह है कि यह एक संघ है, जिसका तात्पर्य है कि यह एकात्मक राज्य नहीं है क्योंकि; इसके अंग, जो विधान के मसौदे में राज्य कहकर वर्णित हैं, समान रूप से संघ के अंग तथा सदस्य है; और उनके निश्चित अधिकार, निश्चित शक्तियां और निश्चित कार्य है और यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि ये परस्पराच्छादित हों, तथापि ये बहुधा संघ या संघीय सरकार को दी हुई शक्तियों और प्रकार्यों के समवर्त्ती होती हैं। अत:

मैं तो यह समझता हूं कि हम ऐसा प्रयास करें, जिससे कि उस नये राज्य अथवा संघ के बारे में, जिसे हम भारत-संघ के नाम से पुकारा करेंगे, एतद्पश्चात् कोई मिथ्या धारणा न फैले और न उसकी भ्रमात्मक व्याख्या हो।

ताकि ''संघ'' शब्द से कोई यह न समझे कि यह एकात्मक शासन है, मैं पहले ही अनुच्छेद में, पहले अनुच्छेद के पहले ही खण्ड में यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह ''संधानीय संघ'' है, ''संधानीय'' शब्द से संधान के अंगभूत राज्यों के समान अभिसमय-आश्रित संविदाजन्य पार्षद का बोध होता है। मेरा निवेदन है कि यदि परिस्थिति की समानता न हो और संघ के सदस्यों के बीच भेदभाव बरता जाये, तो संधान ही न बन सकेगा और संघ उस मात्रा में सशक्त न हो सकेगा, जिस मात्रा में उसके कुछ राज्य उसी के दूसरे राज्यों की अपेक्षा कम शक्ति रखते हैं। यदि अन्य सदस्यों की अपेक्षा कुछ सदस्य कम शक्तिशाली हों, तो मेरा निवेदन है कि संघ की शक्ति सबसे शक्तिशाली सदस्य की शक्ति से बढ़ने के बजाय सबसे अशक्त सदस्य के कारण परिसीमित हो जायेगी। इसलिये सभी सदस्यों की परिस्थिति, शक्तियों और प्रकार्यों की समानता आवश्यक है और इस संशोधन में ''संधानीय'' शब्द जोड़कर मैंने इसी बात का आश्वासन देने की चेष्टा की है।

जहां तक मुझे स्मरण है भारत के इस नवीन राज्य को संधानीय घोषित करने के लिये यह शब्द विधान में कहीं भी प्रयुक्त नहीं हुआ है और मेरे विचार से इस शब्द को रखने के लिये यह सर्वोचित स्थान है और ऐसा करने से एतद्पश्चात् इस बारे में किसी भ्रम अथवा मिथ्या बोध के लिये कोई स्थान न रहेगा।

अब जहां तक राज्य के असाम्प्रदायिक होने का प्रश्न है, प्रत्येक मंच से हमें यह बताया गया है कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक है। यदि यह बात सच है और आज भी मान्य है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस शब्द को विधान में क्यों न स्थान दिया जाये जिससे, मिथ्याबोध की आशंका न रह जाये। मैं इससे सहमत हूं कि ''असाम्प्रदायिक'' शब्द उन विधानों में प्रयुक्त नहीं हुआ है, जिस पर हमारा विधान आधृत है। परन्तु प्रत्येक विधान अपने यहां के लोगों के पूर्व इतिहास को दृष्टि में रख कर बनाया जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि एक राज्य

[प्रो. के.टी. शाह]

का दूसरे राज्य से विभेद प्रकट करने के लिये इस प्रकार का रस्मी अथवा स्पष्ट वर्णन उसके संविधान में नहीं दिया जाता है और न इस प्रकार का वर्णन हमारे राज्य के विशिष्ट रूप के प्रति खासतौर से व्यक्त करने के लिये ही दिया गया है, किन्तु मेरी सम्मति में यह कोई ऐसी बात नहीं है, जिसके कारण हम इस घड़ी में, जबकि हम अपना संविधान बना रहे हैं, अपने राज्य की इस प्रकार की स्पष्ट परिभाषा अपने संविधान में न।

पिछले वर्ष की तथा उससे पूर्व की दु:खद घटनाओं को तथा धर्म, सम्प्रदाय तथा पंथ के हेतु होने वाले अत्याचारों को ध्यान में रखने के कारण ही यह आवश्यक नहीं है कि राज्य के असाम्प्रदायिक रूप का विशेष उल्लेख किया जाये, वरन् ऐसा करने मैं उस राज्य के स्वरूप तथा मूलभूत गुणों को भी स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूं, जिसे हम आज बना रहे हैं और जो सारे लोगों को, अपने प्रत्येक जानपद को इस बात का आश्वासन देगा कि देश के शासन से सम्बद्ध सब विषयों में तथा मनुष्य-मनुष्य के परस्पर व्यवहार में तथा जानपद और राज्य के परस्पर व्यवहार में वस्तुस्थिति का शुद्ध स्वरूप ही उनकी दृष्टि में निर्णायक तथ्य होगा अर्थात् इन बातों के सम्बन्ध में हमारे रहन-सहन, हमारे जीवन, हमारी कार्यशक्ति का निश्चयन तथा परिसीमन करनेवाली भौतिक बातों को ही ध्यान में रखा जायेगा तथा इस क्षेत्र में किन्हीं अन्य तथा असंगत विचारों के आधार पर कार्य न किया जायेगा और न किसी अनाधिकारी को इसमें हस्ताक्षेप ही करने दिया जायेगा, जिससे कि मानवों के पारस्परिक सम्बन्धों में, जानपद तथा राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों में, राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में उन अन्य विचारों का कोई भी प्रभाव न पड़े, जिनसे कि इन विभिन्न जानपदों के बीच में अन्याय अथवा असमानता पैदा होती हे, जोकि सामूहिक रूप में भारत के लोक कहे जाते हैं।

अन्त में ''समाजवादी'' शब्द है। मैं इस बात से परिचित हूं कि वर्तमान भारतीय राज्य का समाजवादी संघ कहकर वर्णन करना ठीक नहीं होगा। मैं यह समझता हूं कि वह अभी समाजवादी नहीं है, चाहे फिर उसका और कोई भी रूप क्यों न हो। परन्तु हम यहां अपनी एक आकांक्षा को प्रकट क्यों न करें, जो मैं समझता हूं कि मेरी ही नहीं है बल्कि इस सभा में अन्य सदस्यों की भी है। और वह यह है कि आज नहीं तो शीघ्र ही कुछ समय बाद हमारे राज्य के आकार-प्रकार में परिवर्तन होगा और ऐसा आधारभूत, संतोषजनक तथा प्रभावपूर्ण परिवर्तन होगा कि देश सच्चे अर्थ में राज्यों का समाजवादी संघ हो जायेगा।

मैं यह जानता हूं कि कई ऐसे लोग हैं, जो 'समाजवादी' शब्द से भयभीत हो जाते हैं, जो इसकी परीक्षा नहीं करते कि उसका प्रभाव क्या होगा या यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि वह किन बातों के लिये और किस अर्थ में प्रयुक्त होता है। वे लोग 'समाजवादी' शब्द को, यदि कोई उसे व्यवहार में लाये तो गाली का ही पर्याय समझते हैं और इसलिये वे उसकी ध्वनि से ही, उसके नाम से ही भयभीत हो जाते हैं और उसका विरोध करने लगते हैं। मैं जानता हूं कि यदि कोई व्यक्ति समाजवाद का प्रतिपादन करे या यदि कोई खुले आम समाजवादी हो तो उसे वे निकृष्ट समझते हैं और एक क्षण के लिये भी उसकी बातों पर विचार नहीं करते।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): यह बिल्कुल गलत है।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यदि कुछ मित्रों ने जो आश्वासन दिया है, वह ठीक है, तो सभा को इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि वे मित्र, जिन्होंने इस बात को बड़े जोर से कहा है, इस सभा में अन्य सदस्यों को भी दलजनित बाधाओं की चिन्ता न करने के लिये प्रोत्साहित करेंगे और राज्य का इस प्रकार आशाप्रद तथा उत्साहवर्धक वर्णन करने में मेरा समर्थन करेंगे।

मैं यहां एकत्रित अपने मित्रों को आश्वासन देना चाहता हूं कि इन संशोधन में 'समाजवादी' शब्द का यही आशय है कि हमारा एक ऐसा राज्य होगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के प्रति न्याय-समता तथा अवसर-समता होगी और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जायेगी कि वह अपने परिश्रम से, अपने बुद्धिबल से और अपने कार्य से राज्य की यथाशक्ति सेवा करेगा और प्रत्येक व्यक्ति को यह आश्वासन मिलेगा कि एक सभ्य जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिये उसकी जो भी आवश्यकतायें होंगी, वे पूरी की जायेंगी।

मुझे विश्वास है कि बिना शान्तिपूर्ण और नियमित उन्नति के पथ में बाधा डाले हुये इस प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि इस शब्द में ऐसी कोई भी ध्वनि नहीं है, जिससे यह आशंका हो कि इसके प्रयोग के कारण ऐसी हिंसात्मक क्रांति हो सकती है, जिससे निहित स्वार्थ नष्ट हो जायेंगे, जो यह समझते हैं कि इस शब्द में न्याय की भावना सन्निहित

[प्रो. के.टी. शाह]

है और जो मेरे इस विचार से सहमत हैं कि भविष्य में समाजवाद का बोलबाला तो होगा ही, साथ ही यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य-मनुष्य के बीच में न्याय होगा और विशिष्ट वर्गों के अधिकारों और शोषक वर्गों की सम्पत्ति का शून्यन होगा, उन्हें चाहिये कि वे मेरे इस संशोधन का समर्थन करें। समाजवादी व्यवस्था ही ऐसी है, जिसमें मनुष्य को अपने प्राकृतिक अधिकार मिल सकते हैं और अवसर-समता प्राप्त हो सकती है और उसका जीवन इन कृत्रिम बन्धनों, रीति-रिवाजों, प्रथाओं, कानूनों और आदेशों से नहीं बंध सकता है, जिन्हें उसने अपने ऊपर तथा अपने बन्धुओं के ऊपर स्थिर स्वार्थों के रक्षार्थ आरोपित किया है। यदि इस आदर्श को स्वीकार कर लिया जाये, तो मेरे विचार से इस शब्द को, इस वर्णनात्मक विशेषण को, इस अनुच्छेद में स्थान देने में तथा अपने संघ को समाजवादी राज्य संघ कहने में कोई आपत्ति न होगी।

मुझे केवल एक बात और कहनी है। जैसा कि मैंने आरम्भ में ही कहा था कि यह संशोधन केवल एक शब्द जोड़ने के लिये या कानूनी शब्दावली ठीक करने के लिए या कुछ बातों में परिवर्तन करने के लिये प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि इससे एक आकांक्षा प्रकट होती है और वर्तमान वस्तुस्थिति का वर्णन होता है। विधान के मसौदे में ''shall be (भविष्य बोध 'होगा')'' शब्द है। इन्हीं शब्दों को लेकर मैंने अपना तर्क उपस्थित किया है, क्योंकि इन शब्दों में मुझे एक वचन और एक आशा का बोध होता है, जिसे मैं विनिश्चित तथा परिवर्धित करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि इस सभा के सब सदस्य नहीं, तो कम से कम अधिकांश सदस्य मुझसे सहमत होंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता हूं। संक्षेप में मुझे दो आपत्ति करनी हैं। पहले तो, जैसा कि मैंने सभा के सम्मुख प्रस्तुत प्रस्ताव के समर्थन में अपने प्रारम्भिक भाषण में कहा था, यह विधान राज्य के विभिन्न अंगों को संचालित करने के लिये एक यंत्र-स्वरूप है। किन्तु यह ऐसा यंत्र नहीं है, जिसके द्वारा कोई विशेष दल अथवा विशेष व्यक्ति ही पदारूढ़ हो सके। राज्य की नीति क्या हो या समाज का आर्थिक तथा सामाजिक संगठन

किस प्रकार का हो, ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें देश और काल को देखकर लोग ही हल कर सकते हैं इनको विधान में स्थान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि इसका अर्थ होगा जनतंत्र का विनाश। यदि आप विधान में यह कहें कि राज्य के सामाजिक संगठन का एक विशेष स्वरूप होगा, तो मेरे विचार से आप लोगों को इस स्वतंत्रता से वंचित कर रहे हैं कि वे अपने लिये स्वयं ही निश्चित करें कि वे किस प्रकार का सामाजिक संगठन चाहते हैं। आज अधिकांश लोगों के लिये यह समझना बिल्कुल सम्भव है कि समाज का समाजवादी संगठन, पूंजीवादी संगठन से अच्छा है। परन्तु विचारशील लोगों के लिये यह भी सम्भव है कि वे किसी ऐसे सामाजिक संगठन की व्यवस्था करें, जो आज के या कल के समाजवादी संगठन से अच्छा हो। इसलिये मेरे विचार से विधान द्वारा लोगों को एक ही प्रकार की व्यवस्था में रहने के लिये बाध्य करना और उन्हें अपना निश्चय स्वयं करने की स्वतंत्रता न देना उचित न होगा। इस संशोधन का विरोध करने के लिये यह एक कारण है।

दूसरा कारण यह है कि यह संशोधन अनावश्यक है। मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया है कि मूलाधिकारों के अतिरिक्त हमने कुछ ऐसी धाराओं को प्रविष्ट किया है जिनका विषय राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त हैं यदि मेरे माननीय मित्र भाग 4 के अनुच्छेदों को पढ़ेंगे, तो उन्हें पता लगेगा कि इस विधान में विधानमण्डल और अधिशासी-वर्ग दोनों का अपनी नीति के सम्बन्ध में कुछ उत्तरदायित्व निश्चित किया गया है। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 31 ही को पढ़ने से ज्ञात हुआ कि उसमें यह कहा गया है कि:

''विशेषतया राज्य अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा–

(1) कि नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो;

(2) कि समुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो;

(3) कि आर्थिक व्यवस्था के चालन का ऐसा परिणाम न हो कि धन और उत्पादन-साधनों का सार्वजनिक अहितकारी संकेन्द्रण हो;

(4) कि पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों को ही समान कार्य के लिये समान वेतन मिले...।''

बहुत कुछ इसी प्रकार की कुछ अन्य बातें भी हैं, मैं प्रोफेसर शाह से यह पूछना चाहता हूं कि यदि ये निदेशक सिद्धान्त, जिनकी ओर मैंने ध्यान दिलाया है, अपने निदेश और अपने विषय की दृष्टि से समाजवादी नहीं है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि समाजवाद है क्या?

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इसलिये मेरा निवेदन यह है कि ये समाजवादी सिद्धान्त विधान में सन्निहित हैं और इस संशोधन को स्वीकार करना अनावश्यक है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यदि संशोधन को स्वीकार कर लिया गया, तो उस स्थान पर जहां मेरे मित्र इस संशोधन का समावेश चाहते हैं, वहां यह अप्रासंगिक प्रतीत होगा। उन्होंने ''असाम्प्रदायिक और समाजवादी'' शब्दों को जोड़ने का जो सुझाव रखा है, उसके बारे में मेरा यह विचार है कि यदि उनको स्थान दिया जा सकता है, तो प्रस्तावना में ही स्थान दिया जा सकता है। यदि आप इस भाग के शीर्षक को देखें, तो वह ''संघ और उसका राज्यक्षेत्र तथा अधिकार-क्षेत्र'' है। इसलिए इस भाग का सम्बन्ध संघ के राज्य-क्षेत्र तथा अधिकार-क्षेत्र से है और विधान के भविष्य के स्वरूप से नहीं है।

जहां तक ''संघ'' शब्द का सम्बन्ध है, यदि प्रोफेसर शाह ने विधान के मसौदे के पृष्ठ 2 के नीचे लिखी हुई टिप्पणी देखी होती, तो उन्हें मालूम होता कि ''समिति का यह विचार है कि उत्तरी ब्रिटिश अमेरिका में सन् 1867 ई. के ऐक्ट की प्रस्तावना की भाषा का अनुसरण करते हुए भारत का वर्णन संघ संज्ञा से करना अनुचित न होगा। यद्यपि उसका विधान संधानीय क्यों न हो। मेरे सामने उत्तरी ब्रिटिश अमेरिका का विधान भी है। उसमें कहा गया है:

''चूंकि कनाडा, नोवा स्कोशिया ने एक संधान में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की है,'' परन्तु बाद में ''संधान'' शब्द निकाल दिया गया था और ''संघ'' शब्द रखा गया था। इसी प्रकार हमारे विधान में ''संघ'' शब्द पर, न कि ''संधान'' शब्द पर जोर दिया जाना चाहिये। इतिहास के आदिकाल से ही हमारे राजनैतिक संगठन को विघटित करने की प्रवृत्ति प्रबल रही है और यदि इस प्रवृत्ति को रोकना है, तो इस अनुच्छेद से संधान शब्द को निकाल देना चाहिये।

श्रीमान्, आपको स्मरण होगा कि इस विधान में संधान का आशय सन्निहित है और हमने ''संघ'' इत्यादि के लिये विभिन्न सूचियां निर्धारित की हैं, यदि विधान में यह आशय सन्निहित है तो मेरी समझ में नहीं आता कि संघ के विशेषण के रूप में यह ''संधानीय'' शब्द यहां विशेष रूप से क्यों रखा जाये। इसलिये मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'shall be a' शब्दों के बाद 'Secular, Federal, Socialist' (असाम्प्रदायिक, संधानीय, समाजवादी) शब्द रखे जाये।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं। डा. अम्बेडकर के उत्तर दे देने के बाद मैं अधिक वादानुवाद की आज्ञा नहीं दूंगा। मैं एक बार गलती कर चुका हूं और उसे अब न दुहराऊंगा। (*हंसी*)

***श्री महबूबअली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'union (संघ)' शब्द की जगह 'federation (संधान)' शब्द रखा जाये।"

श्रीमान्, आपको स्मरण होगा कि जब डा. अम्बेडकर ने इस विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये प्रस्ताव किया और जब वे शासन के स्वरूप की चर्चा कर रहे थे, तो उन्होंने कहा था...।

***उपाध्यक्ष:** हम इस प्रकार का वादानुवाद नहीं चाहते हैं। मैं माननीय सदस्य महोदय से अनुरोध करता हूं कि वे यदि कोई नई बात चाहते हों, तो उसी को यहां रखें।

***श्री महबूबअली बेग साहब:** डा. अम्बेडकर ने शासन के स्वरूप की चर्चा करते हुये कहा था कि दो प्रकार की शासन-प्रणालियां हैं। एक एकात्मक शासन-प्रणाली है और दूसरी संधानीय शासन-प्रणाली है।

***श्री के. हनुमनथय्या** (मैसूर): श्रीमान्, मेरा एक औचित्य प्रश्न है। हम अभी प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन को अस्वीकार कर चुके हैं। उसमें 'संधान' शब्द था और सभा उस प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय कर चुकी है। यदि वर्तमान संशोधन के प्रस्तावक महोदय अपने संशोधन को उपस्थित करते हैं, तो सभा को फिर से उसी प्रश्न पर विचार करना होगा। इसलिये इस दृष्टि से कि पहले संशोधन में इस संशोधन का आशय सन्निहित है और उस पर विचार-विमर्श तथा मतदान हो

[श्री के. हनुमनथय्या]

चुका है, मेरे विचार से हम संशोधन का रखा जाना नियम-विरुद्ध है। मुझे आशा है कि सभापति महोदय इस विषय में स्वविवेक से काम लेंगे, ताकि हमारा काम शीघ्रता से समाप्त हो सके।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपके इस विचार से सहमत हूं कि इस प्रश्न पर विचार-विमर्श हो चुका है, परन्तु यदि प्रस्तावक महोदय इस संशोधन को उपस्थित ही करना चाहते हैं, तो मेरे विचार से उनका यह प्रस्ताव नियम-विरुद्ध नहीं होगा।

***श्री महबूबअली बेग साहब:** डा. अम्बेडकर ने कहा था कि विधान के मसौदे में जो शासन-प्रणाली प्रस्तावित है, वह एकात्मक नहीं है, बल्कि संधानीय है परन्तु बाद में उन्होंने कहा कि चाहे जिस नाम से आप कहें, उससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता, आप चाहें तो उसे संघ कहें या संधान कहें। उन्होंने यह कहा था कि 'संघ' शब्द जानबूझकर रखा गया है, ताकि उसके अंगों को पृथक होने की स्वतंत्रता न रहे। मैं समझता हूं कि मैं डा. अम्बेडकर के दृष्टिकोण की ठीक व्याख्या कर रहा हूं। श्रीमान्, विधान या तो एकात्मक होता है या संधानीय, परन्तु यदि विधान का मसौदा बनाने वालों के मस्तिष्क में एकात्मक शासन था और फिर भी उन्होंने उसे संधानीय कहा तो...।

***उपाध्यक्ष:** चूंकि हमारे पास बहुत कम समय है, इसलिये आप विचाराधीन विषय तक ही सीमित रहिये।

***श्री महबूबअली बेग साहब:** यदि डा. अम्बेडकर यह कहें कि 'संघ' शब्द को रखने के लिये कोई विशेष कारण न था, तो हम ठीक शब्द 'संधान' ही को क्यों न प्रयोग करें? परन्तु इसके विपरीत यदि 'संघ' शब्द इस उद्देश्य से रखा गया है कि आगे चलकर यह संधानीय शासन-प्रणाली एकात्मक शासन-प्रणाली का रूप धारण कर ले, तो इस सभा का दायित्व है कि ठीक शब्द का प्रयोग किया जाये, ताकि भविष्य में किसी शक्ति प्रिय पदारूढ़ दल के लिये इसे आसानी से एकात्मक शासन-प्रणाली का रूप देना कठिन हो। इसलिये इस सभा का यह कर्त्तव्य है कि वह ''संघ'' शब्द के स्थान में ठीक शब्द 'संधान' का प्रयोग करे। श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करने के लिये मेरा यही तर्क है। यदि आप संधानीय शासन चाहते हैं और एकात्मक शासन को नहीं चाहते और यदि आप चाहते हैं कि आगे चल कर कोई शक्तिप्रिय दल इसे एकात्मक शासन का रूप

देकर फ़ासिस्ट अथवा सर्वाधिक सम्पन्न न हो, तो हमें ठीक शब्द अर्थात् 'संधान' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। इसलिये, श्रीमान, मेरा यह प्रस्ताव है कि 'संघ' शब्द की जगह 'संधान' शब्द रखा जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्षः** श्री लारी का संशोधन संख्या 100 है। मेरे विचार से इसका आशय 99वें संशोधन में आ जाता है। क्या मि. लारी इसे उपस्थित ही करना चाहते हैं? (*मि. लारी सभा में उपस्थित नहीं थे*) अब हम संशोधन संख्या 101 को लेते हैं। श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं इसके केवल दूसरे भाग को उपस्थित कर रहा हूं। आरम्भ में ही क्या मैं आपसे निवेदन करूं कि...

***उपाध्यक्षः** श्री आयंगर, आप क्या कहना चाहते हैं?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है मैं इसे स्थगित नहीं कराना चाहता। मैं इसके दूसरे भाग के प्रस्तुत होने में कोई विशेष आपत्ति नहीं देखता।

***एक माननीय सदस्यः** श्रीमान्, संशोधन संख्या 104 का भी यही आशय है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, आरम्भ में ही क्या मैं यह बात आपके ध्यान में ला सकता हूं कि मैंने आरम्भ में यह संशोधन अलग-अलग दो संशोधनों के रूप में भेजा था। दुर्भाग्य से दफ्तर ने इन दोनों को एक ही में मिला दिया। यदि ये संशोधन अलग-अलग छपे होते, तो कोई कठिनाई नहीं होती। पहला संशोधन ''संघ'' शब्द के पहले 'संधानीय'' शब्द रखने के बारे में था और दूसरा 'राज्य' शब्द के स्थान में ''प्रदेश'' शब्द रखने के बारे में था।

[श्री एच.वी. कामत]

अब मैं संशोधन पर ही विचार प्रकट करूंगा। संशोधन का दूसरा भाग सभा के सम्मुख प्रस्तुत है। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में ''स्टेट्स'' शब्द की जगह ''प्रदेशाज'' शब्द रखा जाये।''

***श्री सी. सुब्रमणियम** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा एक औचित्य प्रश्न है। यह कोई संशोधन नहीं है। ''प्रदेश'' ''स्टेट्स'' शब्द का केवल हिन्दी अनुवाद है। यदि हम शब्दों के अनुवादों को संशोधनों के रूप में स्वीकार करें, तो इससे असंख्य पेचीदगियां उत्पन्न हो जायेंगी। विधान का मसौदा अंग्रेजी भाषा में है और हमें अंग्रेजी शब्दावली को ही स्वीकार करना चाहिये और अन्य शब्दों को, चाहे वे हिन्दी के हों या हिन्दुस्तानी के, स्वीकार न करना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** मैं यह बताना चाहूंगा कि यह औचित्य प्रश्न नही है, बल्कि 'प्रदेश' शब्द के प्रयोग के विरुद्ध एक तर्क है। यदि श्री कामत बोलना चाहें, तो कृपा करके उन्हें सभा के सम्मुख बोलने दीजिये।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कई सदस्य अपनी सम्मति प्रकट कर चुके हैं, क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि सभा इस सम्बन्ध में कितनी दिलचस्पी ले रही है। इस विश्वास से सशक्त होकर में आगे बढ़ता हूं। कई कारणों से मैं ''स्टेट'' शब्द की जगह ''प्रदेश'' शब्द को रखना चाहता हूं। एक तो मैं यह देखता हूं कि विधान के इस मसौदे में ''स्टेट'' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। क्या मैं आपका ध्यान भाग 3 के अनुच्छेद 7 की ओर आकर्षित कर सकता हूं, जिसमें यह कहा गया है कि ''स्टेट'' शब्द में भारत की सरकार और पार्लियामेंट तथा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधान-मण्डल तथा भारत के राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है। यहां हमने 'राज्य' शब्द को बिल्कुल भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसलिये ''स्टेट'' शब्द के स्थान में ''प्रदेश'' शब्द रखने का पहला कारण यह है कि ''स्टेट'' शब्द को इस विधान में भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करने से जो गड़बड़ी पैदा हो गई है, वह दूर हो जाये। दूसरा कारण यह है कि मुझे शंका है, यद्यपि मेरी इच्छा है कि यह शंका मिथ्या सिद्ध हो कि ''स्टेट'' शब्द को अमेरिका के विधान से आंखे बन्द करके नकल कर लिया गया है। इस विधान के मसौदे प्रस्तुत करते समय डा. अम्बेडकर ने अपने प्रारम्भिक भाषण में

कहा था कि हमने संसार के विधानों में से कई बातें ली हैं। यहां मुझे ऐसा लगता है कि यह ''स्टेट'' शब्द अमेरिका के विधान से लिया गया है। परन्तु मैं आंख बन्द करके नकल करने के विरुद्ध हूं। तीसरा कारण, श्रीमान्, यह है कि अपने इतिहास को देखने से हमें यह पता चलता है कि पिछले 150 वर्षों में ''स्टेट'' शब्द का सम्बन्ध एक ऐसी चीज से रहा है, जो हमारे लिये अत्यंत घृणास्पद रही है। भारत की ''स्टेटों'' में एक ऐसी शासन-प्रणाली रही है कि उसका शीघ्रातिशीघ्र अन्त करने के लिये हम चिन्तित हैं और सरदार पटेल के मेधावी नेतृत्व में यह कार्य बहुत-कुछ सम्पन्न हो गया है। इसलिये मैंने जो संशोधन सभा के सम्मुख उपस्थित किया है, उसके द्वारा मैं जिस ब्रिटिश शासन का हमारे हित में अन्त हुआ है, उसके इस दुर्गन्धयुक्त संस्मरण का भी अन्त कर देना चाहता हूं। उन मित्रों से जो अंग्रेजी भाषा के प्रेमी हैं और जिनका यह विचार है कि चूंकि यह विधान अंग्रेजी में लिखा गया है, इसलिये इसमें हमें अपने शब्द न रखने चाहियें, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे विचार से स्वदेशी, हिन्दी या भारतीय शब्दों के सम्बन्ध में तो कोई निषेध नहीं है। मैं आपको ''कान्स्टीट्यूशनल प्रिसिडेंट्स'' नाम की पुस्तक से, जो हमें इस सभा के सेक्रेरियट ने डेढ़ वर्ष पहले दी थी, स्वतंत्र आयरिश राज्य के विधान के सम्बन्ध में पढ़कर सुनाता हूं। इस पुस्तक के 114वें पृष्ठ के अन्त में हम यह पाते हैं:

''आयरिश भाषा मैं भी''

इसका अर्थ यह है कि सन् 1937 ई. का विधान पहले अंग्रेजी भाषा में स्वीकार किया गया था, क्योंकि पृष्ठ के नीचे जो लेख है, उसमें कहा गया है कि आयरिश भाषा में भी स्वीकार किया गया। इसका अर्थ यह है कि आरम्भ में वह अंग्रेजी भाषा में स्वीकार किया गया था और बाद में आयरिश भाषा में भी स्वीकार किया गया। यदि आप आयरलैंड के विधान को देखें, तो आपको अंग्रेजी शब्दों के स्थान में कई आयरिश शब्द मिलेंगे; जैसे ओइरीखवस, डायल आयरीन, टाओइसीख (प्रधान मंत्री के लिये) और सीनाड आयरीन। ये सब शब्द शुद्ध आयरिश शब्द हैं और आयरलैंड के अंग्रेजी भाषा के विधान में इन शब्दों को रखा गया है, तथा उन्होंने इनके अंग्रेजी पर्याय रखने की चिन्ता नहीं की है। इसलिये यह सभा ही यह निश्चय कर सकती है कि हम अपने विधान में किन भारतीय शब्दों को, चाहे वे हिन्दी के हों या देश की किसी अन्य भाषा के हों, स्थान दें।

इसलिये श्रीमान्, जो कारण मैंने बताये हैं, उनको ध्यान में रखते हुये इस प्रसंग में ''स्टेट'' शब्द हमारे विधान में कहीं भी प्रयोग में न आना चाहिये। श्रीमान्, मैं एक बात और कहूंगा, जो राज्य अभी संघ में समाविष्ट हुये हैं, जो पहले

[श्री एच.वी. कामत]

''राज्य'' या ''भारतीय रियासतों'' के नाम से पुकारे जाते थे और जिनको हमने मिलाकर उनकी इकाइयां बना दी हैं, उनके सम्बन्ध में हम ''प्रदेश'' शब्द ही प्रयोग में लाये हैं। हिमाचल संघ को हम हिमाचल प्रदेश कहते हैं, विंध्य संघ को हम विंध्य प्रदेश कहते हैं और आसाम में भी वहां के राज्यों के संघ को पूर्वांचल प्रदेश कहने के लिये एक आन्दोलन हो रहा है।

एक बात यह है कि हम निकट भविष्य में प्रान्तों को एक नये आधार पर निर्माण करने जा रहे हैं। इस समय भी मद्रास, मध्यप्रान्त और बम्बई ने कुछ भारतीय रियासतों को समाविष्ट कर लिया है। इस प्रकार नये प्रान्त पुराने प्रान्तों से भिन्न प्रकार के होने जा रहे हैं और इसलिये ''स्टेट'' शब्द से ''प्रदेश'' शब्द बहुत उपयुक्त है।

श्रीमान्, अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरे मित्र श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने भी इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया है। यदि यह गिर जाता है, तो मेरे मित्र के संशोधन के लिये कोई स्थान न रह जायेगा। परन्तु यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो उसके परिणामस्वरूप सारे विधान के मसौदे में परिवर्तन करने होंगे।

इसलिये श्रीमान्, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'स्टेट्स' शब्द की जगह 'प्रदेशाज' शब्द रखा जाये और मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि इसे स्वीकार कर लिया जाये।''

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान् अपने संशोधन के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं। श्री कामत के संशोधन में केवल यह कहा गया है कि अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में ''स्टेट्स'' शब्द की जगह ''प्रदेशाज'' शब्द रखा जाये। इसका अर्थ यह होगा कि अन्य खण्डों में और अन्य अनुच्छेदों में इस शब्द को न रखा जाये। यदि ऐसा होगा, तो यह ठीक न होगा। इसलिये मेरा 104वां संशोधन या तो श्री कामत के संशोधन में संशोधन समझा जाये, या मुझे उसे इस समय उपस्थित करने दिया जाये, ताकि किसी प्रकार की पेचीदगी उत्पन्न न हो। यह एक अनर्गल बात होगी कि केवल अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में ''स्टेट्स'' शब्द की जगह ''प्रदेशाज'' शब्द रखा जाये। श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 1 का खण्ड (1) पढूंगा; उसमें कहा गया है—''भारत राज्यों (स्टेट्स)

का एक संघ होगा।'' श्री कामत इसी स्थान में परिवर्तन चाहते हैं। इसका अर्थ है कि यह इस प्रकार हो जायेगा—''भारत प्रदेशों का एक संघ होगा।" खण्ड (2) और (3) में तथा अन्य खण्डों में ''स्टेट्स'' ही शब्द रहेगा।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं आपकी आज्ञा से बीच में कुछ कह सकता हूं? यदि श्री कामत का यह संशोधन गिर जाता है तो फिर संशोधन संख्या 104 पर विचार होगा। यदि वह स्वीकार भी हो गया, तो आपका संशोधन बाद में उठाया जायेगा और उस समय आपको अवसर मिलेगा। मेरे विचार से इस प्रकार सभा का कुछ समय बच जायेगा।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** श्रीमान्, मैंने जिस कार्यक्रम का सुझाव दिया है उससे सभा का समय वास्तव में बच जायेगा। यदि मैं अपने संशोधन को श्री कामत के संशोधन में संशोधन के रूप में उपस्थित करूं, तो सभा का समय बच जायेगा। अन्यथा ऐसी बात हो सकती है, यद्यपि मैं यह नहीं कहता कि यह अवश्य ही होगी कि श्री कामत का संशोधन स्वीकार हो जाये और मेरा अस्वीकार हो जाये...।

***उपाध्यक्षः** क्या आप उसे अभी उपस्थित करना चाहते हैं?

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है, आप ऐसा कर सकते हैं।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं किः

> ''अनुच्छेद 1 में जहां कहीं 'स्टेट' शब्द आया हो, उसकी जगह 'प्रदेश' शब्द रखा जाये और इस परिवर्तन के फलस्वरूप सारे विधान के मसौदे में आवश्यक परिवर्तन किये जायें।''

इस प्रस्ताव को इसी समय उपस्थित करने का कारण मैं बता चुका हूं। यदि श्री कामत का संशोधन स्वीकार हो गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि केवल अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में संशोधन होगा और शेष भाग में संशोधन न होगा। परन्तु यदि मेरा संशोधन स्वीकार हुआ, तो न केवल हम अनुच्छेद 1 के खण्ड (1)

[माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त]

में ''स्टेट'' शब्द की जगह ''प्रदेश'' शब्द रखेंगे; परन्तु अनुच्छेद 1 के शेष भाग में तथा सारे विधान के मसौदे में भी यही करेंगे ताकि उसमें एकरूपता आ जाये; अन्यथा कुछ अनर्गलता रह जायेगी। ''स्टेट'' शब्द की जगह मैं 'प्रदेश'' इस कारण रखना चाहता हूं कि भाग 1 और भाग 2 में ''स्टेट्स'' शब्द से वास्तव में प्रान्तों से अभिप्राय है और भाग 3 में ''स्टेट्स'' शब्द से इस समय की भारतीय रियासतें अभिप्रेत हैं और स्वीकृत अर्थ के अनुसार इनको ही ''स्टेट्स'' कहा जा सकता है। दोनों में एकरूपता लाने के लिये तथा अमेरिकन विधान का अनुसरण करने के लिये सम्भवत: ''स्टेट'' शब्द का प्रयोग किया गया हो, परन्तु अमेरिकन विधान हमारे देश के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि आरम्भ में अमेरिका के स्टेट्स सर्वसत्ताधारी स्टेट्स थे। हमारे प्रान्त सर्वसत्ताधारी नहीं हैं। उनकी केन्द्र से अलग कभी सत्ता न थी। भारतीय रियासतें भी सर्वसत्ताधारी नहीं हैं हम यह चाहते हैं कि भारत एक राष्ट्र ही न हो बल्कि एक स्टेट भी हो। इसलिये मेरा निवेदन है कि कहा यह जाना चाहिये कि ''भारत प्रदेशों का एक संघ होगा''। मैंने ''प्रान्त'' शब्द को नहीं लिया है, क्योंकि यह तथाकथित शब्द भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में उपयुक्त न होगा। हम इन दोनों में एकरूपता लाना चाहते हैं। प्रदेश शब्द प्रान्तों और तथाकथित भारतीय रियासतों दोनों के लिये प्रयोग में आ सकता है। हमारे नेताओं के परिश्रम के फलस्वरूप भारतीय रियासतें शीघ्र ही संघ में समाविष्ट हो रही हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वयं इस शब्द को पसंद करती हैं। उदाहरण के लिये हिमाचल प्रदेश और विंध्य प्रदेश हैं। यदि इस शब्द को हम अपने प्रान्तों और रियासतों दोनों के लिये प्रयोग में लाना चाहें, तो सब प्रकार की विषमता दूर हो जायेगी। मुझे इतना ही कहना है।

*__श्री के. हनुमनथय्या:__ श्रीमान्, मुझे इसका खेद है कि मुझे अपने मित्र श्री कामत और श्री गुप्त के संशोधनों का विरोध करना पड़ रहा है। मैं तो यह कहूंगा कि आप गुलाब को चाहे जिस नाम से कहें, उससे सुगन्ध ही आयेगी। मसौदा-समिति ने यहां पर भारत को स्टेट्स का संघ कहा है, परन्तु मेरे मित्र उसे प्रदेशों का संघ कहना चाहते हैं। मैं नहीं चाहता कि इस अवसर पर किसी प्रकार का भाषासम्बन्धी वाद-विवाद किया जाये। मैं सभा से यह अनुरोध करता हूं कि इस प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार न किया जाये। सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि ''प्रदेश'' शब्द अंग्रेजी का शब्द नहीं है। हम अंग्रेजी भाषा में लिखे हुये मसौदे पर विचार कर रहे हैं। मैं अपने उन मित्रों से, जिन्होंने संशोधन उपस्थित किये हैं, आदरपूर्वक कहता हूं कि क्या वे अंग्रेजी के किसी कोष में ''प्रदेश'' शब्द को दिखा

सकते है? हम अंग्रेजी भाषा में जिन शब्दों को उचित समझें, उन्हें अपनी ही तरफ से नहीं जोड़ सकते। अंग्रेजी भाषा के अपने शब्द हैं हम विधान के मसौदे में बेमेल ढंग से विभिन्न भाषाओं के शब्द नहीं भर सकते। इसके अतिरिक्त मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करता हूं कि विधान एक कानूनी लेख है। इसमें शब्दों का निश्चित अर्थ है। हम अस्पष्ट अर्थ के शब्दों को विधान में सम्मिलित नहीं कर सकते, क्योंकि इससे न्यायालयों में उनकी गलत व्याख्या होने का भय बना रह सकता है। इसलिये मैं प्रस्तावक महोदय तथा समर्थक महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे इस शब्द को विधान के मसौदे में सम्मिलित करने के लिये जोर न दें। यदि मेरे मित्रों को हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में बहुत उत्साह हो तो उन्हें जानना चाहिये कि हम किसी से पीछे नहीं हैं और उनका समर्थन करेंगे। परन्तु इस जगह और इस समय हिन्दी के शब्द विधान के मसौदे में सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिये। इसलिये श्रीमान्, सुविधा और कानून की दृष्टि से मसौदा समिति का शब्द ''स्टेट'' बहुत अच्छा है। इस शब्द के स्थान में ''प्रदेश'' शब्द रखने से बहुत वाद-विवाद खड़ा हो जायेगा और यदि विधान के अन्य अनुच्छेदों में भी कनाड़ी, तमिल और हिन्दी शब्दों को रखने के बारे में संशोधन आयें, तो जैसा कि मैं कह चुका हूं, सारा मसौदा भाषा सम्बन्धी विवाद का एक नमूना हो जायेगा। मैं प्रस्तावकों से प्रार्थना करता हूं कि इन संशोधनों पर जोर न दें, क्योंकि ये शब्द केवल अनुवाद मात्र है और अंग्रेजी मसौदे में गैर-अंग्रेजी शब्दों को प्रविष्ट न करें।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन का विरोध करते हुये मेरे माननीय मित्र श्री हनुमनथय्या ने अभी जो भाषण दिया है, उसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना। मैं यह उचित समझता हूं कि अपने माननीय मित्र श्री हनुमनथय्या से तुरन्त ही कह दूं कि उन्हें इस संशोधन के उपस्थित होने से हिन्दी शब्दों की प्रविष्टि के लिये किसी चाल का सन्देह न होना चाहिये। विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये सामान्य प्रस्ताव पर बोलते हुये मैंने परोक्ष रूप से राज्यों को विस्तारपूर्वक चर्चा की थी। शब्द का संसार के विधान-सम्बन्धी साहित्य में एक विशेष अर्थ है। (*हर्ष ध्वनि*) ''स्टेट'' शब्द में सर्वसत्तापूर्ण स्वतंत्रता इत्यादि का भाव सन्निहित है। संयुक्त राज्य अमेरिका में स्टेटों के अधिकारों की एक विचारधारा थी। उस विचारधारा के अनुसार स्टेटों की स्वतंत्र सत्ता समझी जाती थी और इस प्रकार के दीर्घकालीन वाद-विवाद के फलस्वरूप ऐसी कटुता उत्पन्न हुई कि वहां गृह युद्ध छिड़ा, जिसमें खून की नदियां बह गई। इतिहास इसका प्रमाण है। इसलिये अपने देश का स्टेटों के संघ

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

के रूप में वर्णन करने से मुझे यह भय है कि वे प्रान्त, जिन्हें स्टेटों का सम्मानित पद दिया जा रहा है, वे देशी राज्य जो अभी तक भारतीय नरेशों के अधीन थे और जो अब भारतीय संघ में समाविष्ट हो गये हैं, आगे चलकर सम्भवत: यह विवाद खड़ा कर दें कि वे स्वतंत्र सत्ताधारी थे और देशी राज्य भारतीय संघ में केवल तीन विषयों के लिये, अर्थात् यातायात, रक्षा और वैदेशिक सम्बन्धों के लिये सम्मिलित हुये थे। भविष्य में इस प्रकार के वाद-विवाद की कोई सम्भावना न रहने देने के लिये मैंने सभा के सम्मुख यह सुझाव रखा था कि ''स्टेट'' शब्द की जगह कोई अन्य शब्द रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। हमें कोई भी ऐसी बात न रखनी चाहिये, जिससे भविष्य में इस प्रकार का वाद-विवाद उत्पन्न हो सके। इस समय भी मैं इसके लिये तैयार हूं कि मेरे मित्र कोई नया शब्द खोज निकाले और इसके स्थान में उसे रख दें। इस शब्द से एक प्रकार की दुर्गन्ध आती है। यह सुझाव रखा गया है कि ''स्टेट'' शब्द की जगह ''प्रदेश'' शब्द रखा जाये। मैं अपने मित्र श्री हनुमनथय्या और उनकी विचारधारा के अन्य लोगों से, जो यह चाहते हैं कि यह शब्द हिन्दी मसौदे में रखा जाये, यह कहना चाहता हूं कि यह संस्कृत शब्द है। यह अंग्रेजी शब्द नहीं है; परन्तु यदि इसे अपनाया जाये, तो कोई कठिनाई न होगी। आप अनुच्छेद 1 के उपखण्ड (2) में कहते हैं कि:

''स्टेटों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उल्लिखित स्टेट अभिप्रेत होंगे।''

यदि आप अनुसूची का भाग 1 देंखे, तो आपको उसमें मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, असम और उड़ीसा के गवर्नरों के प्रान्त संगठित मिलेंगे और यदि आप भाग 2 को देखें, तो आप उसमें दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा, पंथ पिप्लोदा और कुर्ग पायेंगे। मैं गम्भीरतापूर्वक पूछता हूं कि क्या आप दिल्ली के शहर को स्टेट कहने जा रहे हैं? क्या आप अजमेर-मेरवाड़ा को स्टेट कहने जा रहे हैं? यदि आप कहेंगे, तो यह हास्यास्पद ही होगा। इसलिये किसी यथोचित अन्य शब्द के अभाव के कारण ''प्रदेश'' शब्द ही जो संस्कृतगर्भित शब्द है और जिससे एक बड़े भूभाग का बोध होता है, उपयुक्त होगा। यदि पहली अनुसूची में वर्णनात्मक रूप से ''प्रदेश और भारत का राज्यक्षेत्र'' शब्द रखे जाये, तो इससे कोई हानि न होगी। इससे फिर किंचितमात्र भी सन्देह नहीं रह जायेगा कि ''प्रदेश'' का ठीक-ठीक अर्थ क्या है। मैं यह जानता हूं कि विधान का यह मसौदा अंग्रेजी भाषा में है। मेरे माननीय मित्र के इस कथन में कुछ बल है कि अंग्रेजी मसौदे में हमें संस्कृत के शब्द न रखने चाहिये। परन्तु मेरे मैसूर के मित्र

को तो सबसे अन्त में अपने प्रदेश को एक स्वतंत्र स्टेट कहना चाहिये था। क्या इसके लिये कोई तर्क की आवश्यकता है? क्या उन्होंने अभी तक यह तर्क नहीं उपस्थित किया है कि इन स्टेटों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होनी चाहिये और इन्हें संघ में समाविष्ट कर लेना चाहिये? इसलिये ''स्टेट'' शब्द को किसी प्रकार भी ऐसा न समझना चाहिये कि वह हटाया ही नहीं जा सकता। यदि मसौदा तैयार करने वाले या इस सभा में कोई अन्य व्यक्ति, हम जो कुछ चाहते हैं, उसे व्यक्त करने के लिये यदि किसी अन्य शब्द का सुझाव कर सकते हैं, तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। हमने हमेशा केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिये तर्क उपस्थित किये हैं। मसौदे में एक संधानीय ढांचे की व्यवस्था है, परन्तु मसौदा-समिति ने उसको एकात्मक भी बनाया है और यह उसने ठीक ही किया। हम इसकी प्रशंसा करते हैं यदि हम इस विचारधारा को व्यवहार में लाना चाहते हैं तो हमें एक ऐसे शब्द को ढूंढ निकालना है, जो हमारे दृष्टिकोण को पूर्ण रूप से व्यक्त करे। इस दृष्टि से मेरा यह विश्वास है कि यदि हम स्टेटों को प्रदेश कहें तो इससे कोई हानि न होगी। यदि यह सुझाव स्वीकार हुआ, तो सभी प्रकार के स्टेट, चाहे वे गवर्नरों के प्रान्त हों या चीफ कमिश्नरों के प्रान्त और चाहे वे तथाकथित देशी रियासतें हों, सभी प्रदेश कहे जायेंगे और ''प्रदेश'' शब्द को पहली अनुसूची में सम्मिलित किया जा सकता है। ''स्टेट'' शब्द की जगह ''प्रदेश' शब्द रखने के लिये जो प्रस्ताव किया गया है, मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, आगे के लिये मैं आपसे इसकी आज्ञा चाहता हूं कि मुझे निकट से निकट माइक्रोफोन से बोलने दिया जाये, क्योंकि हमारी जगहों से यहां तक की लम्बी दूरी से कभी-कभी हमें अपने विचारों को भूलने ही की सहायता मिलती है। (*हंसी*)

मैं इस संशोधन का विरोध करना चाहता हूं। सबसे पहले मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करता हूं और मैं बड़ी आसानी से सभा से यह कह सकता हूं कि वह उसे अस्वीकार कर दे। वे चाहते हैं कि ''स्टेट्स'' शब्द को जगह ''प्रदेशाज'' शब्द रखा जाये। वे यह निर्णय कैसे कर बैठे हैं कि ''प्रदेशाज'', ''प्रदेश'' का बहुवचन है? यद्यपि आप अंग्रेजी शब्द को निकालना चाहते हैं, परन्तु आप फिर भी अंग्रेजी व्याकरण का ही प्रयोग कर रहे हैं उसे तो ''प्रदेश'' होना चाहिये था। वह ''प्रदेशाज'' नहीं हो सकता। इस कारण और इस कारण भी कि यदि आप अनुच्छेद 1 ही में ''प्रदेश'' शब्द को रखें और अन्य अनुच्छेदों में उसे न रखें, तो इसका कोई अर्थ नहीं होता। मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

करता हूं, परन्तु अपने मित्र मध्यप्रान्त की असेम्बली के सभापति श्री गुप्त के संशोधन का विरोध मुझे सावधानी से करना चाहिये।

परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि उन्होंने जिस परिवर्तन का प्रस्ताव किया है, उसका उद्देश्य क्या है? उन्होंने किसी भावना से प्रेरित होकर ऐसा किया होगा, यह मेरी समझ में आता है; परन्तु मैं इसकी सराहना नहीं कर सकता। इस समय श्रीमान्, अंग्रेजी भाषा में लिखे हुये विधान पर विचार हो रहा है और यही विधान राष्ट्रभाषा में भी लिखा जायेगा, चाहे आप उस भाषा को हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी। जब आप विधान को हिन्दुस्तानी में लिखने लगेंगे, तो यह स्वाभाविक ही है कि आप ''स्टेट'' या ''प्राविंस'' शब्द की जगह ''प्रदेश'' रखेंगे। जब आप विधान को अंग्रेजी में लिख रहे हैं, तो यह समझ में नहीं आता कि आप ''स्टेट'' शब्द की जगह ''प्रदेश'' क्यों रखना चाहते हैं। इसका क्या उद्देश्य है? यही मैं जानना चाहता हूं। यदि इसका उद्देश्य यह है कि जो लोग हिन्दी नहीं जानते हैं, उन्हें ''प्रदेश'' शब्द से परिचित कराया जाये, तो यह भी मेरी समझ में आता है। दक्षिण भारत के लोग हिन्दी नहीं समझते हैं, इसलिये उन्हें ''प्रदेश'' शब्द को सिखलाया जाये और फिर किसी दूसरे शब्द को सिखलाया जायेगा और इस प्रकार धीरे-धीरे यह भाषा दक्षिण भारत के लोगों पर लाद दी जायेगी। (*हंसी*) क्या इसका यही उद्देश्य है?

इसके अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त के अन्त में ''प्रदेश'' शब्द जोड़ने से बड़ा भोंडा लगेगा। क्या आप संयुक्तप्रान्त प्रदेश या मध्यप्रान्त प्रदेश कहेंगे? और यदि ''प्रान्त'' की जगह भी आप ''प्रदेश'' शब्द रखना चाहें तो दो जगह ''प्रदेश'' प्रदेश हो जायेगा। यह बुरा लगेगा।

बंगाल को लीजिये। आप पश्चिमी बंगाल को क्या कहेंगे? क्या आप उसे पश्चिमी बंगाल प्रदेश कहेंगे? पश्चिम बंग प्रदेश तो मेरी समझ में आता है; परन्तु केवल ''प्रदेश'' शब्द रखना मेरी समझ में नहीं आता।

यदि यह शब्द बदल दिया जायेगा, तो ये सब पेचीदगियां पैदा हो जायेगी। इससे किसी का लाभ न होगा। परन्तु इसके विपरीत यदि ''स्टेट'' शब्द को ही रहने दिया जाये, तो इससे किसी की भावनाओं को ठेस न पहुंचेगी। इसलिये मैं माननीय श्री गुप्त से प्रार्थना करता हूं कि वे इस प्रश्न पर फिर विचार करें।

यदि किसी कुसंयोग से यह संशोधन स्वीकार हो जाये, तो श्रीमान्, आप कृपा करके पहली अनुसूची में संशोधन करने के लिये हमें समय देंगे, क्योंकि यू.पी. प्रदेश और सी.पी. प्रदेश कहना बड़ा भोंडा लगता है। इसके अतिरिक्त मैं आसाम प्रदेश को कामरूप प्रदेश कहना चाहूंगा, क्योंकि जैसा कि मुझे दिखाई देता है, आज कल आसाम शब्द हर एक के कानों में खटकता है।

***उपाध्यक्ष:** आपको घण्टी का संकेत समझना चाहिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मुझे घण्टियों की आवाज नहीं सुनाई देती।

***सेठ गोविन्द दास:** श्रीमान्, सबसे पहले मैं हिन्दी न बोलने वाले प्रान्तों के माननीय सदस्यों को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि इस संशोधन को हमने इस उद्देश्य से उपस्थित नहीं किया है कि हम किसी पर हिन्दी भाषा को बलपूर्वक लादें। जहां तक इस संशोधन का प्रश्न था इस सम्बन्ध में भाषा-सम्बन्धी विवाद तो उठना ही न चाहिये था। हम ''स्टेट'' शब्द को निकालना चाहते थे और इसीलिये वह संशोधन प्रस्तुत है।

अपने मित्र श्री रोहिणीकुमार चौधरी के भाषण को सुनकर मुझे एक प्रकार से आश्चर्य हुआ। उन्होंने हमसे पूछा है कि यदि ''प्रदेश'' शब्द को स्वीकार कर लिया गया, तो यू.पी. और सी.पी. का क्या होगा? मैं उनको बताना चाहता हूं कि उनका संयुक्त प्रदेश और मध्य प्रदेश हो जायेगा। वे यू.पी. प्रदेश और सी.पी. प्रदेश न कहे जायेंगे। मेरे विचार से श्री रोहिणीकुमार संस्कृत अच्छी तरह जानते हैं और इसलिये वे इससे सहमत होंगे कि यदि हम विधान में ''प्रदेश'' शब्द को स्थान दें, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेजी का शब्द ''प्राविंसेज'' या ''प्राविंस'' ''प्रदेश'' के साथ प्रयुक्त होंगे। यदि हम ''स्टेट'' शब्द को इसलिये निकालना चाहें कि विभिन्न देशों में वह विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है, तो यह हम उसके स्थान में ''प्रदेश'' शब्द को ही रखकर कर सकते है।

अब जहां तक ''प्राविंसेज'' शब्द का सम्बन्ध है, एक दूसरी विवादास्पद बात है। कई स्टेट या स्टेटों के संघ ऐसे हैं, जो आरम्भ में ''प्राविंस'' शब्द को स्वीकार न करना चाहेंगे। यद्यपि सभी ''प्राविंसों'' के प्रति भविष्य में एक-सा ही व्यवहार होगा, परन्तु आरम्भ में स्टेटों के इन संघों को ''प्राविंस'' कहना ठीक न होगा।

[सेठ गोविन्द दास]

इसलिये इन कठिनाइयों को सामने रखकर हमने यह विचार किया कि ''प्रदेश'' शब्द ही उचित होगा। अंग्रेजी भाषा में लिखे हुये विधान में भी ''प्रदेश'' शब्द रखने में मेरे विचार से कोई कठिनाई न होगी। अंग्रेजी भाषा में ''बाज़ार'' ''राज्य'' जैसे कई शब्द ले लिये गये हैं। इन शब्दों का बहुवचन बनाने के लिये हम ''एस'' अक्षर को जोड़ते हैं और अंग्रेजी में वह ''बाजार्स'' या ''राज्याज'' हो जाता है। इसी प्रकार हिन्दी भाषा के किसी शब्द का अंग्रेजी भाषा में बहुवचन बनाने के लिये आपको केवल 'एस' अक्षर जोड़ना होगा। मेरी समझ में नहीं आता कि ''प्रदेश'' शब्द के साथ ''एस'' अक्षर जोड़कर बहुवचन में ''प्रदेशाज'' कहने में क्या कठिनाई है।

श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस प्रसंग में भाषा-सम्बन्धी विवाद अथवा अन्य प्रश्न नहीं उठाये जायेंगे और यदि हमारा यह विचार हो कि ''स्टेट'' शब्द निकाल देना चाहिये और वर्तमान परिस्थिति में ''प्राविन्सेज'' शब्द को नहीं रखा जा सकता, तो मेरे विचार से सबसे अच्छा यही होगा कि हिन्दी भाषा में लिखे हुये विधान तथा अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए विधान में भी ''प्रदेश'' शब्द रखा जाये।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, इस प्रश्न पर मैं कोई लम्बा तर्क उपस्थित नहीं करना चाहता, परन्तु केवल यह बताना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव से मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा है। कुछ समय पहले जब हम दो समितियों, अर्थात् संघीय विधान समिति और प्रान्तीय विधान समिति के रूप में सम्मिलित हुये थे तो हमने इस प्रश्न पर विचार किया था और इस प्रश्न पर भी विचार किया था कि सभाओं के क्या नाम होने चाहिए। काफी विचार-विमर्श के उपरान्त हमने यह निर्णय किया था कि एक सभा का नाम ''हाउस आफ स्टेट्स'' रखा जाये। इसलिये मैं यह कहता हूं कि इस प्रश्न पर विभिन्न रूप से विचार-विमर्श हुआ है। अब मैं यह अनुभव करता हूं कि यदि इस समय किसी ''प्राविंस'' के नाम में परिवर्तन किया जाये और उसे ''प्रदेश'' कहा जाये, तो मेरे विचार से यह बहुत नासमझी की बात होगी। (वाह, वाह) इस समय मैं इसके औचित्य पर विचार नहीं कर रहा हूं। यह हो सकता है कि हमें परिवर्तन करना पड़े; परन्तु यदि हम ऐसा करें तो सभी जगह इन परिवर्तनों में एकरूपता होनी चाहिये। जहां तहां एक दो शब्द रखना ठीक न होगा। सुन्दरता की दृष्टि से या कला या भाषा की दृष्टि से या अन्य किसी दृष्टि से वे ठीक नहीं जंचते हैं।

इसके अतिरिक्त मेरे विचार से यह कोई बलशाली तक नहीं है कि ''स्टेट'' शब्द से जिन बातों का बोध होता है, वे बातें हम अपने संघ के अंगों में नही चाहते। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण दिया गया था। जैसी परिभाषा आप ''स्टेट'' शब्द की करेंगे, तदनुसार ही स्टेट शब्द का अर्थ होगा। आप इस विधान में अपने संघांगों की शक्तियों की ठीक-ठीक परिभाषा कर दें। यदि आप उन्हें ''प्रदेश'' या ''प्राविंस'' कहें तो वह कमियां दूर नहीं हो जाती। इसके अतिरिक्त ''प्रदेश'' एक ऐसा शब्द है जिसकी कोई परिभाषा नहीं है। कोई भी नहीं जानता कि उसका अर्थ क्या है। आदरपूर्वक मैं यह कहना चाहूंगा कि इस सभा में उपस्थित कोई सदस्य महोदय भी इसकी परिभाषा न कर सकेंगे, क्योंकि पहले इस प्रसंग में इसका कभी भी प्रयोग नहीं हुआ है। यह अन्य दूसरे प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है। यह बहुत अच्छा शब्द है और धीरे-धीरे इसका महत्त्व बढ़ जायेगा और तब हम इसे अपने विधान में या अन्य जगह प्रयोग में ला सकते हैं। इस समय यह शब्द साधारणतया सैकड़ों विभिन्न अर्थों में प्रयोग में आता है और ''स्टेट'' शब्द बाह्‌य जगत के लिये ही नहीं किन्तु हमारे लिये भी कहीं अधिक सुनिश्चित और सुस्पष्ट है। इसलिये यह एक दुर्भाग्य की बात होगी कि हम एक बिल्कुल कृत्रिम शब्द को काम में लायें और यह बात इस प्रकार के विधान के लिये भाषा की दृष्टि से अनुचित होगी। मैं उस स्थिति की कल्पना कर सकता हूं कि जब हमारा विधान उन्नत हो जायेगा और वह हमारी ही भाषा में लिखा होगा तथा उसमें सभी उपयुक्त शब्द होंगे। मैं कह नहीं सकता कि ''प्रदेश'' शब्द उपयुक्त है या नहीं। यह बात विशेषज्ञों के तय करने की है और मैं उनके निर्णय को स्वीकार करूंगा। इस समय हम इस प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे हैं। हम इस पर विचार कर रहे हैं कि विधान के वर्तमान अंग्रेजी के मसौदे में कौन से शब्द रखे जाने चाहिये और मैं यह कहूंगा कि ऐसे शब्दों को रखना, जो भारत में कई लोगों को भोंडे और अनुपयुक्त प्रतीत हों, ठीक न होगा। इस शब्द को इस प्रसंग में प्रयोग करना एक नवीन बात है। प्रसंगानुसार उससे परिचित होना होता है और जितने ही अधिक ऐसे शब्दों को आप प्रविष्ट करेंगे, उतना ही अधिक यह विधान साधारण लोगों को अजीब सा लगेगा। मेरी तो अपनी कसौटी यह होगी कि यह न देखा जाये कि भाषा-सम्बन्धी समितियों और विद्वानों की क्या राय है, बल्कि बाजार से तरह-तरह के सौ लोगों से यह पूछा जाये कि इस विषय के सम्बन्ध में उनकी क्या राय है और यह देखा जाये कि वे क्या कहते हैं। हम जनसाधारण का नाम लेकर बातचीत करते हैं, परन्तु वास्तव में हम कुछ चुने हुये लोगों के दृष्टिकोण से काम करते हैं और यह भूल जाते हैं कि जनसाधारण क्या सोचते हैं और क्या समझते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक विषयों के लिये पारिभाषिक शब्द चुनने के लिये आप जनसाधारण से नहीं पूछ सकते, फिर भी

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

इसमें अन्तर है कि जनसाधारण किसे अधिक समझते हैं और किसे कम समझ सकते हैं। इसलिये मैं इस सभा से प्रार्थना करता हूं कि वह इस प्रश्न पर इस दृष्टिकोण से विचार करें और अंग्रेजी भाषा में लिखे हुये विधान में अंग्रेजी ही के साधारण शब्द को स्थान दे और बाद को इस पर पूर्ण रूप से विचार करे कि हमारे विधान में हमारी भाषा के कौन से शब्द रखे जायें, जिनका निस्संदेह वही अर्थ होगा जो कि अंग्रेजी शब्दों का। परन्तु इस शब्द को यहां स्थान देने से अर्थभ्रम हो सकता है और अन्य देशों की दृष्टि में इससे बहुत ही अर्थभ्रम होगा, क्योंकि इससे कोई परिचित नहीं है और इसलिये भी कि इन परिवर्तनों का महत्त्व समझने में काफी समय लगेगा। जहां तक मेरा सवाल है, मुझे इस सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं है कि इस समय के प्रान्त और स्टेट के वर्णन में कोई अन्तर न होना चाहिये। दोनों के वर्णन में एकरूपता होनी चाहिये। प्रस्ताव यह है कि दोनों के लिये ''स्टेट'' शब्द काम में लाया जाये और यदि यह स्वीकार हो जाये, तो दूसरी सभा को ''हाउस ऑफ स्टेट्स'' कहा जाये।

एक और बात भी विचारणीय है। इस संशोधन से ऐसे कुछ अन्य सवाल भी उठ खड़े होते हैं, जिनके बारे में सभा में पर्याप्त मत विभिन्नता है। चाहे ये विवाद भाषा के सम्बन्ध में हों, या जो कुछ भी आप इन्हें कहना चाहें, परन्तु यदि हम इन्हें परोक्ष रूप से प्रविष्ट करें तो यह एक दुर्भाग्य की बात होगी। इनका सामना करने, इनको समझने और इनके सम्बन्ध में इनका ठीक-ठीक महत्त्व समझ कर निर्णय करने की आवश्यकता होगी। निस्संदेह यह धारणा बन गई है कि इस प्रकार छोटे-छोटे परिवर्तनों को करने से मुख्य प्रश्नों के बारे में, जो इस समय लोगों का मत है, उसमें कुछ अन्तर हो जायेगा। मेरे विचार से विधान पर विचार करते समय हमें इन बातों को न आने देना चाहिये। हमारा विधान एक वृहत् लेख है, जिसमें सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है और हमारी राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था निश्चित की गई है। जहां तक हो सकता है, मैं इन प्रश्नों को नहीं उठाना चाहता, क्योंकि यद्यपि ये महत्त्वपूर्ण हैं, इनको हम विधान का मसौदा तैयार करते समय तय कर सकते थे। वरना सम्भावना इसकी है कि हम वैधानिक दृष्टि से इन अप्रासंगिक प्रश्नों पर, चाहे ये महत्त्वपूर्ण ही क्यों न हों, अपनी शक्ति तथा अपने समय को नष्ट करते रहेंगे और वास्तविक वैधानिक प्रश्नों को हल करने में हम अपनी शक्ति और समय न लगा सकेंगे। इसलिये मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि इन दो संशोधनों को स्वीकार न किया जाये और ''स्टेट'' शब्द को ही रहने दिया जाये।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

''अनुच्छेद 1 में जहां कहीं 'स्टेट' शब्द आया हो, उसको जगह 'प्रदेश' शब्द रखा जाये और इस परिवर्तन के फलस्वरूप सारे विधान के मसौदे में आवश्यक परिवर्तन किये जायें।''

मेरे विचार से ''नहीं'' वालों का मताधिक्य है।

श्री एच.वी. कामतः मैं मत लेने के लिये सभा के विभाजन की मांग करता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ मुझे यह प्रतीत होता है कि ''नहीं'' वालों की बात रह गई है। मेरे लिये यह आवश्यक नहीं है कि मैं सभा-विभाजन की अनुमति दूं। मुझे इसका अधिकार है कि मैं इस प्रार्थना को स्वीकार न करूं। मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे स्थिति पर विचार करें। मुझे स्पष्टतया यह प्रतीत होता है कि ''नहीं'' वालों का मताधिक्य है।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ मैं यह स्वीकार करता हूं कि ''नहीं'' वालों का मताधिक्य है।

*__माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः__ क्या मैं यह सुझाव उपस्थित कर सकता हूं कि हम लोग प्रार्थना करने के बजाय अपने हाथ खड़े कर दें। इससे स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।

*__उपाध्यक्षः__ क्या माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त यह स्वीकार करते हैं कि ''नहीं'' वालों का मताधिक्य है?

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ मैं इसे स्वीकार करता हूं कि ''नहीं'' वालों का मताधिक्य है।

प्रस्ताव गिर गया।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ मेरा एक औचित्य प्रश्न है। श्रीमान्, आपने कृपा करके मेरा संशोधन सभा के सामने रखा और वह गिर गया, परन्तु श्री कामत का प्रस्ताव सभा के सम्मुख यथाविधि रखा जाना चाहिये।

*__उपाध्यक्षः__ मुझे यह जान पड़ता है कि श्री कामत का संशोधन आपके संशोधन में आ जाता है। वे कुछ भागों में शब्द निष्कासन चाहते हैं परन्तु, आप सब जगह चाहते हैं।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ श्री कामत का संशोधन मेरे संशोधन से कम विस्तृत है। यदि सभा शतप्रतिशत के लिये राजी नहीं हुई है, तो वह पांच प्रतिशत के लिये राजी हो सकती है।

*__माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः__ उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन को मतदान के लिये सभा के सम्मुख रखने में सम्भवतः कम समय लगेगा और यही उचित प्रणाली भी है कि यह मतदान के लिये सभा के सम्मुख रखा जाये।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'यूनियन' शब्द के आगे 'फेडरल' शब्द और 'स्टेट्स' शब्द के स्थान में 'प्रदेशाज' शब्द रखा जाये।''

प्रस्ताव गिर गया।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं किः

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'स्टेट्स' शब्द की जगह 'प्राविंसेज' शब्द रखा जाये।''

*__श्री बी. दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरा एक औचित्य प्रश्न है। चूंकि पहला संशोधन सभा ने अस्वीकार कर दिया है, इसलिये यह संशोधन व्यवस्था के विरुद्ध है।

*__उपाध्यक्षः__ हुआ केवल इतना ही है कि ''प्रदेश'' शब्द अस्वीकार कर दिया गया है।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे माननीय मित्र श्री बी. दास यह औचित्य प्रश्न रखने के लिये उठे थे कि यह संशोधन व्यवस्था के विरुद्ध है। जिस संशोधन को सभा ने अस्वीकार कर दिया, उसका आशय यह था कि ''स्टेट'' शब्द की जगह ''प्रदेश'' शब्द रखा जाये। परन्तु इससे यह संशोधन कि यदि सभा चाहे तो ''स्टेट'' शब्द की जगह कोई अन्य शब्द रखा जाये, व्यवस्था के विरुद्ध नहीं होता। इसलिये मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है कि इस अनुच्छेद में और इस प्रसंग में मसौदे में जहां कहीं भी ''स्टेट'' शब्द आया है, उसकी जगह ''प्राविंस'' शब्द रखा जाये। जब मैंने ''प्रदेश'' शब्द के सम्बन्ध में अपना पहला संशोधन उपस्थित किया था, तो मैंने यह स्पष्ट कर दिया था कि मैं ''स्टेट'' शब्द को रखने के विरुद्ध क्यों हूं। उस समय सभा के सम्मुख जो तर्क मैंने उपस्थित किया था, उसे मैं दुहराना नहीं चाहता। मैं केवल यह कहकर उसका स्मरण कराना चाहता हू कि ''स्टेट'' शब्द से यह प्रतीत होता है कि केवल नकल की गई है, क्योंकि इस शब्द को संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान में स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त ''स्टेट'' शब्द से एक दूषित भाव व्यक्त होता है, अर्थात् दुर्गन्ध आती है, क्योंकि यह मृतप्राय अंग्रेजी राज्य के अधीन देशी रियासतों से संलग्न रहा है। इसलिये किसी भी हालत में मैं सभा से यह कहूंगा कि ''स्टेट'' शब्द को निकाल ही देना चाहिये, चाहे इसके लिये हमें कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। यदि सभा की इस समय वह अच्छा नहीं है कि ''प्रदेश'' शब्द को स्वीकार किया जाये, तो मैं उनसे अनुरोध करता हू कि ''प्राविंस'' शब्द को स्वीकार कर लिया जाये क्योंकि इस स्वीकार करने में कम दोष है। आज हमारी स्थिति यह है कि हमने प्राचीन देशी रियासतों का अन्त कर दिया है। क्या हमने हिमाचल प्रदेश और विंध्य प्रदेश ऐसे शब्दों को स्वीकार नहीं किया है? हम उन्हें भारतीय प्रान्तों के स्तर पर लाना चाहते हैं और इसलिये मेरा विचार है कि नई व्यवस्था में ''प्राविंस'' शब्द अधिक उपयुक्त होगा और इससे उन प्रदेशों के ढांचे का बोध होगा, जिन्हें कि हम स्थापित करना चाहते हैं। इसलिये श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हू और सभा से यह सिफारिश करता हू कि इसे स्वीकार कर दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

(इस अवसर पर श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरी बोलने के लिये उठे।)

***उपाध्यक्षः** माननीय डा. अम्बेडकर भाषणों का उत्तर दे चुके हैं। इसलिये मुझे खेद है कि मैं इस प्रस्ताव पर अधिक वाद विवाद की आज्ञा नहीं दे सकता।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, सम्बन्धित सदस्य द्वारा प्रत्येक प्रस्ताव के उपस्थित होने पर यदि आप डा. अम्बेडकर से यह पूछें कि वे उसे स्वीकार करते हैं या नहीं और उनका भाषण हो जाने के बाद यदि आप उस विषय पर किसी सदस्य को न बोलने दें, तो यह सभा के लिये बड़ी सख्ती होगी।

***उपाध्यक्षः** मैं समझता हूं कि पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने मेरी स्थिति को ठीक-ठीक नहीं समझा है। मैं प्रत्येक सदस्य को हमेशा यथासम्भव सुविधा देने के लिये तैयार रहता हूं, जिसका प्रमाण मैंने पिछले दिनों में जो कुछ किया है, उससे अधिक मैं नहीं देना चाहता। इस समय हमारे पास बहुत कम समय है। श्री कामत द्वारा संशोधन उपस्थित होने के बाद मैं कुछ देर तक यह देखने के लिये रुका कि कोई सदस्य खड़े होंगे, परन्तु चूंकि कोई सदस्य खड़े नहीं हुये और विशेषतया जब मैंने यह देखा कि श्री कामत ने अपने पिछले ही तर्क को दुहराया है, मैंने यह सोचा कि डा. अम्बेडकर से मेरा यह प्रश्न पूछना कि वे उत्तर देना चाहते हैं या नहीं, ऐसी बात न होगी, जो सभा की इच्छा के विरुद्ध हो। यदि मैं सभा की इच्छा को न समझ पाया, तो मुझे इसका खेद है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** आपको इसका पूर्ण अधिकार है कि आप किसी ऐसे भाग पर वादानुवाद की आज्ञा न दें, जिसे आप साधारण समझें और जिसके सम्बन्ध में आप समझें कि काफी बहस हो चुकी है। आपको इसका अधिकार है कि आप बहस को समाप्त कर दें और मसौदे के प्रस्तावक महोदय से उत्तर देने के लिये कहें। यदि इस अधिकार को प्रयोग में लाते हुये आपने डा. अम्बेडकर से उत्तर देने के लिये कहा, तो यह कोई आपत्ति की बात नहीं है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मतदान लेता हैं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'स्टेट्स' शब्द की जगह 'प्राविंसेज' शब्द रखा जाये।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 108, श्री महावीर त्यागी।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं विभाजन की मांग करता हूं।

***उपाध्यक्षः** आपने कुछ देर कर दी है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रांत : जनरल): श्रीमान्, जिन शब्दों का मेरे संशोधन में उल्लेख है, उन सभी को सम्मिलित करने के लिये मैं बहुत इच्छुक नहीं हूं। मैं भाषण देकर सभा का समय भी नष्ट नहीं करना चाहता। किन्तु मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं और इस उद्देश्य से यह संशोधन विधिवत् उपस्थित करता हूं:

> ''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में 'स्टेट्स' शब्द की जगह 'Republican States and the sovereignty of the Union shall reside in the whole body of the people (गणतंत्रीय राज्य और संघ की सर्वसत्ता सारे लोकसमूह में सन्निहित होगी)' रखा जाये।''

विधान के मसौदे में मैं यह देखता हूं कि इसका कहीं भी वर्णन नहीं है कि सर्वसत्ता कहां स्थित रहेगी। यह स्पष्टतया नहीं बताया गया है कि सर्वसत्ता कहां स्थित है। मैं यह चाहता हूं कि इसका उल्लेख हो जाना चाहिये। यदि विधान के प्रस्तावक महोदय सभा के सम्मुख या तो प्रस्तावना के सम्बन्ध में या विधान के किसी अन्य अनुच्छेद के सम्बन्ध में इस आशय का संशोधन उपस्थित करें कि सर्वसत्ता सारे जनसमूह में सन्निहित होगी तो मुझे संतोष हो जायेगा। ''स्टेट'' शब्द का एक जगह एक अर्थ है और दूसरी जगह दूसरा अर्थ है। इसलिये यह कहना संतोषप्रद न होगा कि सर्वसत्ता ''स्टेटों'' में स्थित होनी चाहिये। माननीय प्रस्तावक महोदय का क्या सुझाव है? क्या सर्वसत्ता ''संघ'' में स्थित है या ''स्टेटों'' में? मसौदे से यह स्पष्ट नहीं होता है। इसलिये मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि निश्चित रूप से यह बता दिया जाये कि सर्वसत्ता कहां स्थित है, या भविष्य में कहां स्थित होगी।

मैं एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूं। यदि हम यूनाइटेड किंगडम के परिवार में रहें या उससे सम्बद्ध रहे, तो सम्भवतः कानून की दृष्टि से सर्वसत्ता सम्राट में स्थित होगी। मैं देश को इस संकट से मुक्त करना चाहता हूं। मैं इसे बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि कानून और व्यवहार की दृष्टि से सर्वसत्ता वास्तव में जनसाधारण में ही स्थित है।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं यह बता सकता हूं कि इस प्रकार का संशोधन प्रस्तावना के सम्बन्ध में ही उपस्थित किया जाना चाहिये?

***श्री महावीर त्यागीः** प्रस्तावना में कहीं भी इसकी परिभाषा नहीं दी गई है। मैं यह चाहता हूं कि इसकी स्पष्ट परिभाषा हो जानी चाहिये। मुझे इस सम्बन्ध में विशेष ज्ञान नहीं है। मैं मसौदे के विशेषज्ञों से यह जानना चाहता हूं कि क्या प्रस्तावना विधान की एक अंग होगी? क्या प्रस्तावना हमेशा कानून का उल्लंघन कर सकती है? मेरे विचार से ऐसा नहीं हो सकता है। मैं यह चाहता हूं कि विधान के किसी अनुच्छेद में सर्वसत्ता की परिभाषा कर दी जाये। प्रस्तावना में साधारणतया इसका उल्लेख किया गया है कि हम भारत को सर्वसत्ताधारी संघ का रूप दे रहे हैं। इससे मसौदा-समिति के मेरे मित्र इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि सर्वसत्ता ''लोगों'' में स्थित है। इससे मुझे संतोष नहीं होता। जो परिणाम समझा जाये हम उस पर निर्भर नहीं रह सकते। मैं इस पर जोर देता हूं कि विधान में ही सर्वसत्ता की परिभाषा कर देनी चाहिये। मैं यह चाहता हूं कि सर्वसत्ता देश के जनसाधारण में ही स्थित हो न कि ''स्टेट'' में या ''संघ'' में। ''स्टेट'' से केवल केन्द्र में एक प्रकार के सरकारी ढांचे का बोध हो सकता है या उसका अर्थ लोगों से भी हो सकता है या केवल संघ या एक या एक से अधिक राज्य हो सकता है। अब प्रान्त भी ''स्टेट'' कहे जायेंगे, इसलिये हमें भविष्य के लिये स्पष्ट शब्दों में यह परिभाषा कर देनी चाहिये कि सर्वसत्ता कहां स्थित है। मैं यह निवेदन करता हूं कि चीन के विधान में इसका उल्लेख है कि सर्वसत्ता जनसाधारण में स्थित है। हम अपने विधान में भी इसका उल्लेख कर सकते हैं। इसलिये मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय** (संयुक्तराज्य ग्वालियर, इंदौर, मालवा : मध्य भारत): मैं एक भारतीय रियासत से यहां आया हूं। इस संशोधन में मेरी विशेष दिलचस्पी है और मैं यह चाहता हूं कि सभा इसको स्वीकार कर ले। इस विधान में भारतीय रियासतों का भी ''स्टेटों'' के नाम से उल्लेख किया गया है। हम नहीं चाहते कि राजप्रमुख और अन्य लोग वहां स्थायी रूप से बने रहें। निस्संदेह, चूंकि संधियों पर हस्ताक्षर हो गये हैं, इसलिये उन्हें कुछ समय के लिये तो रहना ही चाहिये, परन्तु विधान में हमें इसका उल्लेख कर देना चाहिये कि साधारण लोग भी प्रान्तों और रियासतों के प्रमुख हो सकते हैं। रिसायतों को प्रान्तों के स्तर पर लाने के लिये यह भी एक उपाय होगा। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। स्टेट मिनिस्ट्री

इस प्रश्न पर अवश्य विचार कर रही होगी। इसलिये यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में तत्काल निर्णय हो जाना चाहिये। विधान-निर्माण का कार्य समाप्त करने के पहले ही हमें रियासतों को प्रान्तों के स्तर पर लाने के लिये सभी प्रयत्न करने चाहियें। इस संशोधन से इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। सर्वसत्ता एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शक्ति है और यह बता दिया गया है कि चीन के विधान में इसका किस प्रकार उल्लेख है। इसलिये इस संशोधन को स्वीकार करने से कोई हानि न होगी। मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे इसके पक्ष में मतदान दें।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्री त्यागी ने जो संशोधन उपस्थित किया है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैंने भी इसी प्रकार के एक संशोधन (संख्या 189) की सूचना दी है और वह इस प्रकार है:

''भाग 1 के बाद निम्नलिखित भाग जोड़ा जाये और आगे के भागों की इस प्रविष्टि के फलस्वरूप पुनर्गणना की जाये:

भाग 1-ए

साधारण सिद्धान्त

6-संघ का नाम **भारत** होगा।

7-भारत सर्वसत्ताधारी, स्वतंत्र, जनतंत्रात्मक, समाजवादी गणराज्य होगा।

8-सरकार की सम्पूर्ण विधायिनी, अधिशासी तथा न्याय-सम्बन्धी शक्तियां लोगों से प्राप्त होंगी, जो केवल इस विधान द्वारा स्थापित सरकारी साधनों द्वारा या उनके अधिकार से प्रयोग में आयेंगी।

9-भारत का राष्ट्रीय झण्डा हाथ से काते और हाथ से बुने शुद्ध खादी कपड़े का तथा केसरी, सफेद और हरे रंगों से विभूषित तिरंगा झण्डा होगा, जिसकी बीच की पट्टी के मध्य में नीले रंग से अंकित अशोक का धर्मचक्र होगा और उसकी लम्बाई चौड़ाई 2 : 1 के अनुपात में होगी।

10-देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होगी:

परन्तु संघ के प्रत्येक राज्य को हिन्दी के अतिरिक्त अपने प्रदेश में प्रयोग के लिये अपनी प्रादेशिक भाषा को अपनी राजभाषा के रूप में स्वीकार करने का अधिकार होगा।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

11—इस विधान के प्रयोग में आने के उपरान्त पांच वर्ष के अन्तर्काल में भारत की दूसरी सरकारी भाषा अंग्रेजी होगी।

12—भारत का राष्ट्रीय गान ''वन्देमातरम्'' होगा, जो दूसरी अनुसूची में उल्लिखित है।

(उल्लेख : आगे की अनुसूचियों की इस प्रविष्टि के फलस्वरूप पुनर्गणना की जाये।)

13—भारत के राज-चिह्न में एक सिल और धर्मचक्र के ऊपर तीन सिंह हैं, जैसे कि वे सारनाथ के अशोक-स्तम्भ पर स्थित हैं।

14—भारत की राजधानी दिल्ली का नगर है।''

मेरा अपना विचार यह है कि इस संशोधन को इस खण्ड में स्थान न देना चाहिये। एक अलग खण्ड ऐसा होना चाहिये, जिसमें मैंने जिस संशोधन की सूचना दी है, उसका आशय सन्निहित हो। अध्याय 2 में सर्वसत्ता की परिभाषा दी गई है। अपने संशोधन में मैंने यह सुझाव किया है कि इसको किस प्रकार रखना चाहिये। सरकार की सम्पूर्ण विधायिनी, अधिशासी तथा न्याय-सम्बन्धी शक्तियां लोगों से प्राप्त होंगी जो केवल इस विधान द्वारा स्थापित सरकारी साधनों द्वारा या उनके अधिकार से प्रयोग में आयेंगी। इस प्रकार सर्वसत्ता लोगों में स्थित होगी और राज्य की सम्पूर्ण विधायिनी, अधिशासी तथा न्याय सम्बन्धी शक्तियां लोगों की ही होंगी।

श्रीमान्, रियासतों के मेरे मित्र ने अभी बताया कि यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि हम यहां यह न कहें कि सब अधिकारों के स्रोत लोग ही हैं, तो राजाओं के दैवी अधिकारों की विचारधारा चलती रहेगी। इसलिये यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि विधान में इसका उल्लेख होना चाहिये कि सर्वसत्ता लोगों की ही है। हमारे देश में रियासतें हमेशा बड़ी दुखदायी रही हैं और हमें आशा है कि हम शीघ्र ही इस दुःख से निवृत्त हो जायेंगे। मेरे विचार से इस विधान में इस प्रावधान को स्थान मिल जाना चाहिये। मैं अपने विद्वान मित्र डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि जब वे इस संशोधन के सम्बन्ध में अपना उत्तर दें, तो उसमें यह भी कहें कि वे इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। मुझे आशा है कि वे विधान में इसे यथोचित स्थान देंगे। आयरलैंड के विधान की तरह मेरे विचार से दूसरे अध्याय में संघ के नाम उसकी भाषा और दूसरी बातों के सम्बन्ध में निश्चित प्रावधान होने चाहियें। इसमें यह कहा जा सकता है कि सरकार की सम्पूर्ण

विधायिनी, अधिशासी तथा न्याय-सम्बन्धी शक्ति लोगों से प्राप्त है। मेरे विचार से आधारभूत बातों की दृष्टि से इस संशोधन का बड़ा महत्त्व है। इसलिये मुझे आशा है कि यह संशोधन बिना विचारे ठुकरा न दिया जायेगा और डा. अम्बेडकर इसे विधान में यथोचित स्थान देंगे।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ श्रीमान्, मैं इस कारण श्री महावीर त्यागी के संशोधन का समर्थन करने उठा हूं कि वह इस सभा के लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव की भावना के अनुरूप है। हमारे प्रधान मंत्री अभी से नहीं बल्कि पहले से ही बार-बार यह कहते आये हैं कि हमारा विधान लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप होना चाहिये। उन्होंने कहा था–मैं छपी हुई किताब से पढ़ता हूं:

> ''हम लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव को बिल्कुल भी नहीं बदल रहे हैं। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव एक ऐतिहासिक बात है और उस पर निर्धारित सभी सिद्धान्तों पर हम अटल हैं।''

मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर को याद दिलाना चाहूंगा कि जब विधान-निर्माण के लिये एक समिति बनाई गई थी, तो उस समय स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि उसे लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप कार्य करना होगा। डा. अम्बेडकर कुछ भटक गये हैं। उन्होंने लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप कार्य नहीं किया है, और मैं आप सब से प्रार्थना करता हूं कि आप देखें कि उन्होंने क्या किया है। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप विधान का मसौदा तैयार करने के बजाय वे चाहते हैं कि इस समय वे जिसका प्रस्ताव कर रहे हैं, उसके अनुरूप लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव हो। विधान का यह मसौदा परस्पर विरोधी बातों से भरा हुआ है और केवल रद्दी की टोकरी में फेंक देने के लायक है। उन्होंने मनमाने ढंग से काम किया है और इसलिये उनके सभी प्रयत्नों से केवल समय और शक्ति का ह्रास होता है।

*__उपाध्यक्ष:__ मौलाना साहेब, आप अपने को संशोधन तक ही सीमित कीजिये।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं, क्योंकि यह लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पर ही आधृत है। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप कार्य करने के बजाय डा. अम्बेडकर ने ''रिपब्लिक'' शब्द को बदल कर उसकी जगह ''स्टेट'' शब्द रख दिया है और ''इंडिपेण्डेण्ट'' शब्द की जगह ''डिमोक्रेटिक'' शब्द रख दिया है। इससे पता चलता है कि उनका दिमाग किस तरह काम कर

[मौलाना हसरत मोहानी]

रहा है। विधान के मसौदे से मुझे यह विश्वास हो जाता है कि वे एक एकात्मक भारतीय साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं, जो फिर एक वृहत् ऐंग्लो-अमेरिकन साम्राज्य के अधीन हो जायेगा, जिसमें अमेरिका और उसके उपग्रह ब्रिटिश कामनवेल्थ तथा कुछ पश्चिमी यूरोप के देश होंगे।

*__उपाध्यक्षः__ मैं आपसे फिर कहता हूं कि आप अपने को संशोधन तक ही सीमित रखिये।

*__मौलाना हसरत मोहानीः__ श्रीमान् मैं श्री त्यागी के संशोधन का समर्थन करता हूं और सारे विधान का विरोध करता हूं। यह हो सकता है कि डा. अम्बेडकर ने इस मसौदे को इसलिये तैयार किया कि कानून मंत्री की हैसियत से उनसे इसे तैयार करने को कहा गया है; परन्तु उन्होंने एक दूषित चीज तैयार की है और मेरे विचार से उन्होंने जो गलतियां की हैं, उनको उन्हें दूर करना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

*__श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका__ (पश्मिची बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं। यह एक अनर्गल बात है कि जहां-जहां शब्दों को रखने का प्रयास किया जाये। विधान का मसौदा एक सम्पूर्ण ढांचे के रूप में है और उसकी विभिन्न धाराओं में इसकी परिभाषा की गई है कि सर्वसत्ता कहां स्थित है। अधिशासी-वर्ग और व्यवस्थापिका सभाओं की क्या शक्तियां हैं, इत्यादि। जहां-तहां शब्द रखने का प्रयास करना मेरे विचार से संकटापन्न होगा और यदि हम इस प्रकार के संशोधनों को स्वीकार करेंगे, तो विधान का सारा मसौदा उलट जायेगा और हम कह नहीं सकते कि हम किस स्थिति में होंगे। निस्संदेह यदि सिद्धान्त की दृष्टि से कोई बात कहनी हो, तो उसके लिये आज्ञा मिलनी चाहिये; परन्तु इस मसौदे में, जिस पर समिति में विचार हो गया है, शाब्दिक परिवर्तन करना केवल समय नष्ट करना होगा और हमें चाहिये कि हम इस प्रकार संशोधनों को स्वीकार न करें।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः__ मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं। प्रस्तावना में हमने कहा है कि हम भारत के लोगों ने गम्भीरतापूर्वक निश्चय किया है कि हम अपने लिये विधान बनायें, इत्यादि। हम ही लोग है, जो यहां अपने लिये विधान बनाने के लिये एकत्रित हुये हैं। जब तक हम सर्वसत्ताधारी न हों, हम अपने लिये

विधान नहीं बना सकते। अभी तक इंग्लैंड की पार्लियामेंट विधान बनाती थी। यही बात कि हम विभिन्न विधान मण्डलों द्वारा चुने गये हैं और यहां विधान बनाने के लिये आये हैं, यह सिद्ध करती है, कि सर्वसत्ता लोगों में स्थित है।

***श्री महावीर त्यागी:** निस्संदेह हम यहां एक सर्वसत्ताधारी सभा के रूप में एकत्रित हैं। परन्तु भविष्य में क्या होगा? अंग्रेजों ने इस सर्वसत्ता को हमें सौंपा है। आप उसे लोगों को क्यों नहीं देते?

***उपाध्यक्ष:** आप उन्हें बोलने दीजिये।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं श्री महावीर त्यागी के प्रश्न का उत्तर दूंगा। हम यहां प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर नहीं आये हैं, परन्तु हम यहां तीस करोड़ लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं और यहां अपने लिये विधान बनाने के लिये एकत्रित हुये हैं। यदि हम जन-साधारण की तरफ से विधान बनाने में समर्थ हैं, तो इससे यह सिद्ध होता है कि भविष्य में जब बड़े हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर सदस्य चुने जायेंगे, तो वह सभा और अधिक सच्चाई के साथ सर्वसत्ताधारी होगी। इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वसत्ता लोगों में स्थित है। इसलिये मैं समझता हूं कि इस खण्ड को जैसे का तैसा रहने देने में कोई कठिनाई न होगी और मेरे विचार से इस संशोधन में जिस प्रविष्टि का सुझाव किया गया है, वह अनावश्यक है। मैं सभा का ध्यान केवल अमेरिका के विधान की प्रस्तावना की ओर आकर्षित करता हूं, जिसमें कहा गया है:

> ''हम, संयुक्त राज्य के लोग अधिक सम्पूर्ण संघ स्थापित करने, न्याय की व्यवस्था करने तथा घरेलू शांति का आश्वासन देने के लिये...।''

इस विधान में कई अनुच्छेद हैं। बाद में विधान में संशोधन किये गये थे। अमेरिका के विधान निर्माताओं ने या उन लोगों ने, जिन्होंने बाद को विधान में संशोधन किये थे, कभी भी यह नहीं कहा कि विधान में कोई बात रह गई है या यह कि सर्वसत्ता उनमें स्थित है, लोगों में स्थित नहीं है। इसलिये यह अनावश्यक है। एक प्रकार का सन्देह उत्पन्न किया गया है और फिर उसे दूर करने के लिये एक संशोधन उपस्थित किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और है। जो बातें दब गई हैं, उन्हें मैं दबे ही रहने देना चाहता हूं। जहां तक रियासतों का प्रश्न है कुछ रियासतों के नरेश सर्वसत्ता की मांग कर रहे हैं और हम उन्हें समाप्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं उनमें से कई समाप्त कर दिये गये हैं और ये नरेश इन रियासतों में आ गये हैं। पहली अनुसूची के भाग 3 में किसी न किसी रूप में नरेश रियासतों से सम्बद्ध है। लोग अपने अधिकारों की मांग करने

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

लगे हैं और यही एक ऐसा कारण है, जिससे सारी बात समाप्त हो जायेगी। जैसा कि संशोधन में सुझाव किया गया है, मैं इस खण्ड को इस स्थान पर समाविष्ट नहीं होने देना चाहता हूं। यह काफी है कि यह बात प्रस्तावना तक ही सीमित रखी जाये और उसे चलने दिया जाये। हम सर्वसत्ताधारी है और इसी हैसियत से हम यहां एकत्रित हुये हैं और हम अपने लिये विधान बनायेंगे। एक भूत खड़ा करने और बाद में उसे परास्त करने से कोई लाभ न होगा। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** उपाध्यक्ष महोदय, इस सभा के एक माननीय सदस्य ने इस संशोधन का इस कारण विरोध किया है कि इसे स्वीकार करने से विधान का सारा ढांचा, यह सारी योजना बदल जायेगी। मेरे विचार से यह एक साहसपूर्ण वक्तव्य है और मैं इस प्रकार के वक्तव्य को स्वीकार नहीं करना चाहता। यदि विधान का ढांचा बदल जाता है, तो हमने इसकी तो प्रतिज्ञा नहीं की है कि वह नहीं बदला जायेगा और हम केवल उन्हीं बातों को स्वीकार करेंगे, जिससे वह न बदले। इसलिये मुझे यह वक्तव्य संकटापन्न प्रतीत होता है कि हम इसे इसलिये स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि इससे विधान के मसौदे की सारी योजना बदल जाती है। यदि आवश्यकता हो, तो उसे बदलने ही के लिये हम यहां उपस्थित हैं। परोक्ष रूप से इसका अर्थ यह है कि इस विधान का आधार, इसकी योजना तथा इसका ढांचा इस प्रकार का है कि वह इस संशोधन में सन्निहित सिद्धान्त के प्रतिकूल है। यदि यह स्थिति है, तो वह मेरे विचार से और भी अधिक संकटापन्न है, क्योंकि इस संशोधन में स्पष्टतया केवल इतना ही कहा गया है कि भारत की सर्वसत्ता भारत के जनसाधारण में ही स्थित है।

अब मेरे एक मित्र ने अभी कहा कि वह वास्तव में भारत के लोगों में स्थित है और इसलिये यह संशोधन अनावश्यक है। मैं यह निवेदन करता हूं कि यह एक प्रकार से पाखण्डपूर्ण वक्तव्य है, क्योंकि मुझे स्मरण है कि डा. अम्बेडकर ने कहीं पर बोलते हुये यह कहा था कि सर्वसत्ता भारत सरकार में सन्निहित है; परन्तु मैं समझता हूं कि भारत सरकार और भारत के लोगों में अन्तर है। वे एक भी हो सकते हैं और भिन्न भी। यह हो सकता है कि भारत सरकार का एक अर्थ समझा जाये और भारत के लोगों का दूसरा अर्थ। एक दिन यही स्थिति थी। इसलिये हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि हमारी सर्वसत्ता कहां स्थित है। क्या वह भारत के लोगों में स्थित है? क्या वह मंत्रिमण्डल में स्थित है? क्या वह सरकार में स्थित है? क्या वह प्रधान में स्थित है या कहीं और स्थित है? इसलिये

मेरे विचार से इस कमी को हमेशा के लिये पूरा कर देने के लिये हमें यह घोषित कर देना चाहिये कि सर्वसत्ता भारत के प्रत्येक नागरिक में सन्निहित है। कम से कम इस उद्देश्य से यह संशोधन बहुत ही उपयुक्त है। मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता कि इस संशोधन को स्वीकार करके इस जगह स्थान दे देना चाहिये, परन्तु यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि हमें यह सन्देह करने की आवश्यकता नहीं कि सर्वसत्ता भारत के प्रत्येक नागरिक में सन्निहित नहीं है। इसलिये मैं इस संशोधन की भावना का समर्थन करता हूं और यह दुहराना चाहता हूं कि वास्तव में भारत की सर्वसत्ता प्रत्येक नागरिक में सन्निहित है, चाहे वह कितना ही बड़ा हो या छोटा, पंडित हो या पंडित न हो, मूर्ख हो या बुद्धिमान। वह लोगों की ही होगी, उनमें से प्रत्येक की होगी और हमेशा के लिये उन्हीं की होगी।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** उपाध्यक्ष महोदय, मसौदा बनाने वाले विद्वान सदस्य महोदय ने जो कुछ कहा है, अर्थात् यह कि इस मसौदे के होते हुये भी सर्वसत्ता लोगों में ही सन्निहित है, उसको दृष्टि में रखते हुये मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देना चाहता। श्रीमान्, मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर इससे सहमत हैं कि इस मसौदे का यह अर्थ है कि सर्वसत्ता लोगों ही में सन्निहित है। इनका स्पष्टीकरण भविष्य में देखने के लिये सरकारी कागजात में दर्ज हो सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह लोगों ही में सन्निहित है। मैं अपने मित्र से यह भी कह देना चाहता हूं कि प्रस्तावना पर विचार-विमर्श करते समय यदि इस प्रश्न को फिर उठाया जायेगा, तो मुझे किंचितमात्र भी आपत्ति न होगी।

***श्री महावीर त्यागीः** तो मैं अपना संशोधन वापस लेने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापिस ले लिया गया।

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) में ''States'' शब्द के बाद ''equal inter se'' शब्द जोड़ दिये गयें।''

इस सभा से इस संशोधन को स्वीकार करने की सिफारिश करते हुये मैं मसौदा समिति के सभापति के प्रति, हमारे सामने विधान की रूपरेखा की एक नवीन व्याख्या

[प्रो. के.टी. शाह]

उपस्थित करने के लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। कम से कम मुझे यह एक नवीन बात प्रतीत हुई कि विधान सरकार के विभिन्न अंगों तथा कार्यों का नियमन करने की एक व्यवस्था है और उसमें लोगों की किसी आकांक्षा को स्थान देना बहुत कुछ अप्रासंगिक होगा। मैं इस दृष्टिकोण के लिये कृतज्ञ हूं, क्योंकि भविष्य में अपने संशोधनों तथा भाषणों के सम्बन्ध में मैं इसे ध्यान में रखूंगा। परन्तु मैं यह कहूंगा कि क्योंकि निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय की ओर संकेत किया गया है, इसलिये मैं डा. अम्बेडकर को यह आश्वासन दिलाना चाहता हूं कि मैंने भी उनको पढ़ा है; यद्यपि मैंने उन्हें उतनी गम्भीरता से या उतनी बार न पढ़ा हो, जितनी बार उन्होंने पढ़ा हो। मेरी सम्मति में निदेशक सिद्धान्त बहुत ही अस्पष्ट और ढीले-ढाले हैं और वास्तव में लोगों की आंखों के सामने पर्दा डालने के लिये धोखे की पट्टी है और उसे लोगों को ऐसी बातें समझाने के लिये काम में लाया जा सकता है, जो सम्भवत: मसौदा तैयार करने वालों के मस्तिष्क में भी न थीं। जब ये मामले फैसले के लिये या मध्यस्थता के लिये न्यायालयों में लाये जायेंगे, तो यह हो सकता है कि इन खण्डों का वह अर्थ न लगाया जाये, जो इनसे लोग समझते हैं।

इस संशोधन-विशेष का प्रस्ताव करते हुये, श्रीमान्, मुझे वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं है। आज दिन ''स्टेटों'' में चाहे वे प्रान्त हों या रियासतें जो इस समय ''स्टेट'' कहीं जाती हैं, मैं समझता हूं कि आबादी अथवा अवसरों की, क्षेत्र अथवा साधनों की समानता है।

परन्तु मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि इस समय राजनैतिक स्थिति की समानता नहीं है और हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिये प्रयत्नशील होना है कि वे हमारे बीच में हमारे संधान के सदस्य होने के नाते वास्तविक समानता का पद प्राप्त करें। यदि इस संघ को, जैसा कि हमें आश्वासन दिया गया है, सच्चा संधान होना है; यदि इस संघ को, जैसा कि हमसे बार-बार वादा किया गया है, एक जनतंत्रात्मक संधान होना है, तो मेरा सुझाव यह है कि यह बहुत महत्त्व की बात है कि संघ के अंगों को बराबरी का पद मिलना चाहिये।

मैं सभा को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि क्षेत्र, जनसंख्या, मालगुजारी या साधन अथवा औद्योगिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति के सम्बन्ध में न यह समता है और न इसकी आवश्यकता ही है। हम सभी जानते हैं कि दुर्भाग्य से इस देश के राजनैतिक या भौगोलिक दृष्टि से निश्चित किये हुये विभिन्न भाग समान रूप से उन्नत नहीं हैं। संघ का पहला कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि वे लोग,

जो बिना अपने किसी दोष के ही पिछड़े हुये हैं, पिछड़े हुए ही न रहें और वे लोग जो कुछ आकस्मिक कारणों से अन्य लोगों से लाभप्रद तथा उन्नत स्थिति में हैं, इतने स्वार्थसेवी न रहें कि वे अपनी स्थिति को तो बनाये रहें और अन्य लोगों को पिछड़ा हुआ रखें। यदि देश की प्रगति के साथ कोई भाग आगे नहीं बढ़ सकता है, तो न तो देश की वास्तविक उन्नति हो सकती है और न हम देश को सुसम्पन्न और समुन्नत बनाने के अपने आदर्शों को ही कार्यान्वित कर सकते हैं। इस कारण मैं यह सुझाव उपस्थित कर रहा हूं कि हमें इसी समय और इसी जगह अपनी इस इच्छा को विधान में प्रकट कर देना चाहिये कि जब विधान यथेष्ट रूप से बन जाये और व्यवहार में आ जाये, तब कम से कम इस संघ में उसके अंग राजनैतिक दृष्टि से एक समान समझे जाये। राजनैतिक दृष्टि से समान का अर्थ मेरी सम्मति में यह है कि यदि किसी अंग को, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, किसी प्रकार का कर लगाने का अधिकार हो, तो अन्य अंगों को भी, चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हों, यह अधिकार अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि किसी अंग को अपनी पुलिस रखने और उससे काम लेने का अधिकार हो, तो अन्य अंगों को भी यह अधिकार अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि किसी अंग को अपनी ही सेना रखने का अधिकार हो, तो अन्य अंगों को भी यह अधिकार प्राप्त हो। ''स्टेट्स'' की तुलनात्मक दृष्टि से समानता का अर्थ मैं यही समझता हूं और इसलिये इस समय जिन क्षेत्रों को प्रान्त कहा जाता है और जिन क्षेत्रों को रियासत कहा जाता है, इस अन्तर को और जो रियासतें संघ में समाविष्ट हो गई हैं, या जो उसमें सम्मिलित हुई हैं, उनके बीच में अन्तर को यथाशीघ्र समाप्त करना होगा, चाहे वर्तमान स्थिति में इसे कितने ही दुर्भाग्य की बात क्यों न समझी जाये।

केवल यही एक कारण नहीं है, जिसको दृष्टि में रखकर सभा के सामने मैंने यह सुझाव रखा है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं, जब भारतीय संघ ग्राम-पंचायतों का एक संगठन हो जायेगा, जो सहकारी रिपब्लिकों के रूप में आपस में गुंथी होंगी और जो अपने साधनों की ही उन्नति के लिये नहीं, बल्कि सारे देश की उन्नति के लिये संगठित होंगी। संघ के इस भावी रूप को ध्यान में रखकर, उसके अंगों के इस रूप में स्थान तथा उनकी संभाव्य विकास-शक्ति को ध्यान में रख कर मेरा यह विचार बना है कि यदि किसी संघांग को दूसरों की अपेक्षा राजनैतिक अथवा सामाजिक दृष्टि से हेय समझा गया, तो इस भावी रूप के बनने में पर्याप्त बाधा होगी। यदि यह समझा जाये कि कुछ ही अंग नेतृत्व करते रहें और अन्य अंगों के भाग्य में यह लिखा मान लिया जाये कि उन्हें अनुयायी ही बने रहना है, तो मैं फिर कहूंगा कि इससे देश बड़ी विपत्ति में पड़ जायेगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

जैसे हमने यह संकल्प कर लिया है और इससे सहमत हो गये हैं कि हम आपस में कानून की दृष्टि से बराबर नागरिक या बराबर व्यक्ति समझे जायेंगे और जैसे हमने इसका भी विचार किया है कि इस देश के वैयक्तिक जीवन में से धर्म और जाति जन्य विभेदों का लोप कर दिया जायेगा; इसी प्रकार, मेरा निवेदन है कि जितनी जल्दी हम इसका प्रबन्ध कर सकें, उतनी जल्दी ही हम इस देश में एक समान प्रदेश बना दें, एक संधान के एक समान अंग बना दें। इनमें से प्रत्येक अंग अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति तथा अपने साधनों की उन्नति के लिये आतुर हो, सशक्त हो और सुसम्पन्न हो; तथा उनमें से प्रत्येक सारे देश को शक्तिशाली तथा उन्नत बनाने के हेतु यथाशक्ति सहयोग प्रदान करने के लिये इच्छुक हो। इस देश के कई भाग निस्संदेह ऐसे हैं, जो सभी प्रकार की भौतिक और नैतिक उन्नति की दृष्टि से पिछड़े हुये हैं। उन्हीं के सम्बन्ध में मैं इस पर जोर देना आवश्यक समझता हूं कि यदि वे आज एक समान नहीं हैं, तो उन्हें शीघ्रातिशीघ्र एक समान बना दिया जाये।

इसी कारण इसके पहले प्रत्येक संघांग को गणतंत्रात्मक बनाने के लिये जो प्रस्ताव किया गया था, उसका मैं पूर्णरूप से हार्दिक समर्थन करता हूं। ये सब अवशेष, आर्थिक व्यवस्था की ये सब अनर्गलताएं और इतिहास की ये सब असामयिक बातें, जो तथाकथित नरेशों में सन्निहित हैं, समाप्त हो जानी चाहियें। जब हम इन निरंकुश तथा धनिक शासकों से छुटकारा पा सकेंगे, तभी हम एक मानवी और तर्कयुक्त विधान का निर्माण कर सकेंगे और हमारे महान उपदेशक ने जीवन का जो आदर्श हमारे सामने रखा है, उसे प्राप्त कर सकेंगे।

इसी कारण मैंने विधान के एक अन्य भाग के सम्बन्ध में इसी आशय का एक संशोधन रखा है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि कम से कम अब भारतीय संघ में ऐसे गांव या गांवों के समूह होंगे, जिनमें स्वायत्त शासन तथा गणतंत्र होगा और यदि आवश्यक हो, तो उन्हें अपने पड़ोसियों से सहयोग करने का अधिकार होगा, ताकि उनके संयुक्त और सामूहिक प्रयत्नों के फलस्वरूप अभी हाल ही में अपने राजनैतिक और आर्थिक दासत्व से मुक्त हुये भारतीय लोग संसार के राष्ट्रों के बीच अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकें और मानवता की उन्नति में प्रभावपूर्ण ढंग से अपना योग दे सकें।

मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपने मित्र प्रो. शाह के संशोधन का समर्थन करने के लिये उठा हूं। इसको देखते हुये कि इस सभा ने ''संघ'' शब्द की जगह 'संधान'' शब्द स्वीकार नहीं किया है, मेरे विचार से रियासतों की प्रस्थिति की परिभाषा करना आवश्यक है। जैसा कि मेरे मित्र ने कहा है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रान्त या रियासतें या चीफ कमिश्नरों के प्रान्त एक समान नहीं हैं। इसलिये स्पष्टता, यथार्थबोध और निश्चित वैधानिक शब्दावली की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम रियासतों के परस्पर सम्बन्ध तथा प्रस्थिति की परिभाषा करें। इसलिये मेरे विचार से मेरे मित्र प्रो. शाह का संशोधन बहुत ही उपयुक्त है। इस प्रकार के विधान में, जिसका कि वास्तव में एक संधानीय ढांचा है, जैसा कि पृष्ठ 2 के नीचे लिखे हुये लेख से प्रकट होता है, कोई रियासत किसी अन्य रियासत की अपेक्षा श्रेष्ठप्रतिष्ठ अथवा निम्नप्रतिष्ठ न होनी चाहिये। कोई भी रियासत ऐसी न होनी चाहिये, जो समान रियासतों में सबसे अग्रगण्य समझी जाये। भविष्य की वैधानिक रूपरेखा में हमें इस प्रकार की बातों को स्थान न देना चाहिये। प्रत्यक्षतः हमारे लिये यह निश्चित करना आवश्यक है कि सभी रियासतें आपस में एक समान है। सभी राज्यों की प्रस्थिति एक समान ही होनी चाहिये। यदि कोई राज्य या सरकार या व्यवस्था श्रेष्ठ समझी जाये, तो वह संघ-सरकार ही होनी चाहिये। अर्थात् जहां तक भारत का सम्बन्ध है, यदि मुझे इन शब्दों का प्रयोग करने दिया जाये, वह श्रेष्ठ राज्य या सर्वश्रेष्ठ राज्य समझा जाये। जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है वे आपस में बिल्कुल एक समान समझी जायें। इसलिये मैं अपने मित्र प्रो. शाह के इस संशोधन का समर्थन करता हूं कि भारत समान राज्यों का एक संघ होगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मैं न तो प्रस्तावक महोदय को समझ पाया हूं और न श्री कामत को, जिन्होंने उनका समर्थन किया है। यदि हम इस संशोधन को स्वीकार करें, तो भारत ऐसे राज्यों का संघ होगा जो आपस में एक समान होंगे। यह समानता क्या है? क्या यह अधिकार-सीमा अथवा क्षेत्र अथवा जनसंख्या अथवा आर्थिक साधनों के सम्बन्ध में है? वे किस प्रकार एक समान होने चाहियें?

***एक माननीय सदस्यः** राज्य।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** राज्य क्या है? जहां तक प्रतिनिधित्व का सम्बन्ध है, पहली अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित कई राज्य एक समान हैं; उनके बीच में कोई अन्तर नहीं है। जहां तक पहली अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों का सम्बन्ध है, उनको समझौतों के आधार पर सम्मिलित किया गया

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

है। हमने इन समझौतों को स्वीकार किया है और जब तक हम इन समझौतों को रद्द नहीं कर देते, अथवा भिन्न प्रकार के समझौते नहीं करते, हम उन्हें एक समान नहीं बना सकते। अपने बीच में भी प्रथम अनुसूची के भाग 1 में समाविष्ट प्रान्तों या राज्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार की समानता नहीं हो सकती, जिसका कि प्रस्ताव है। यह एक बहुत ही अस्पष्ट संशोधन है। जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है, जनसंख्या के आधार पर नीचे की तथा ऊपर की दोनों सभाओं में उनका प्रतिनिधित्व है। इसलिये यह संशोधन न तो समझ में आने वाला है और न स्पष्ट और व्यावहारिक ही है और इसलिये इसे स्वीकार न करना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस संशोधन को मतदान के लिये उपस्थित करता हूं।

संशोधन गिर गया।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) के अन्त में निम्नलिखित शब्द रखे जाये: 'and shall be known as the United States of India (और भारत का संयुक्त राज्य कहा जायेगा)' ''

श्रीमान्, इस संशोधन के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता। इसका उद्देश्य संघ को अधिक विस्तृत, गम्भीर और कर्णप्रिय नाम देना है। यदि इसके लिये किसी दृष्टान्त की आवश्यकता है, तो हमारे सम्मुख ''संयुक्त राज्य अमेरिका'' का दृष्टान्त है। मेरा यह निवेदन है, कि पश्चिमी गोलार्ध और पूर्वी गोलार्ध के बीच संतुलन की दृष्टि में हमें इस पदसंहति को भारत के लिये प्रयुक्त करना चाहिये। भारत पूर्व का अग्रगामी देश है और हमें इसका ऐसा नाम रखना चाहिये, जो गौरवपूर्ण हो। जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, इस संशोधन के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं हो सकता और मैं सभा से कहूंगा कि इसकी उपयुक्तता की दृष्टि से इस पर विचार किया जाये।

दूसरा संशोधन इसी का विकल्प है। मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) के अन्त में निम्नलिखित शब्द रखे जायें: 'and shall be known as the Union of India (और भारत का संघ कहा जायेगा)' ''

मेरा एक और संशोधन है, और वह इस प्रकार है। उसे मैं उपस्थित करता हूं:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) के अन्त में निम्नलिखित शब्द रखे जायें: 'and shall be known as the Indian Union (और भारतीय संघ कहा जायेगा)' ''

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि ये तीन विकल्प हैं। मैं पहले के पक्ष में हूं, परन्तु यह सभा पर ही निर्भर है कि वह इसके बारे में क्या सोचे।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 110 और 112 का विरोध करने के लिये उठा हूं। जहां तक संशोधन संख्या 110 का सम्बन्ध है, मेरे मित्र ने संयुक्त राज्य अमेरिका का दृष्टान्त देकर जो तर्क उपस्थित किया है, वही मेरे विचार से इसे अस्वीकार करने के लिये पर्याप्त तर्क है। उन्होंने कहा था कि पूर्व और पश्चिम का मिलन होना चाहिये या इसी प्रकार के कुछ शब्द कहे थे। मैं निस्संदेह सामंजस्य के पक्ष में हूं और चाहता हूं कि पूर्व और पश्चिम का सम्मिश्रण हो जाये, परन्तु मैं सांकर्य की बाहुल्यता नहीं चाहता। मेरे माननीय मित्र ने सभा के सम्मुख जो संशोधन उपस्थित किया है, उससे पूर्व और पश्चिम के सम्मिलन से उद्भूत सांकर्य की ही उन्नति होगी। इस समय जब कि हम तटस्थ वैदशिक नीति का अनुसरण कर रहे हैं, हम नहीं चाहते कि कोई भी हमें संदेह की दृष्टि से देखे। हम इस सभा में इस प्रकार का कोई भी संकेत नहीं देना चाहते कि हम सोवियत रूस अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका की नकल करने जा रहे हैं। जहां तक सोवियत रूस का सम्बन्ध है, उसका इस विधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और जहां तक संयुक्त राज्य अमेरिका का सम्बन्ध है, इस संशोधन से यही ज्ञात होगा कि हम संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान की नकल कर रहे हैं। श्रीमान् ''shall be known as the United States of India (भारत का संयुक्त राज्य कहा जायेगा,)'' शब्दों को जोड़ने के लिये जो संशोधन हैं, उसका मैं विरोध करता हूं।

जहां तक संशोधन संख्या 111 का सम्बन्ध है, मैं उस संशोधन का समर्थन करता हूं क्योंकि उससे हम उस धृणित शब्द ''स्टेट'' को निकाल सकेंगे। अभी सभा ने इस आशय के संशोधन को अस्वीकार कर दिया और मैं नहीं चाहता कि भारतीय संघ की रूपरेखा का वर्णन करते समय इसको अप्रत्यक्ष रूप से विधान में स्थान

[श्री एच.वी. कामत]

दिया जाये और इसीलिये मैं अपने मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के इस संशोधन का समर्थन करता हूं कि भारत को 'भारत का संघ' कहा जाये।

संशोधन संख्या 112 के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि जब हम "भारत का संघ" शब्दों को स्वीकार करते हैं, तो फिर तीसरे संशोधन की आवश्यकता नहीं रह जाती। मेरे विचार से भाषा, ध्वनि और कर्णमाधुर्य की दृष्टि से "Union of India (भारत का संघ)" शब्द "Indian Union (भारतीय संघ)" शब्दों से उत्तम हैं। इसलिये 110वें और 112वें संशोधनों का मैं विरोध करता हूं और 111वें संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं इन सभी संशोधनों का विरोध करता हूं। जहां तक पहले संशोधन का सम्बन्ध है, जिसका उद्देश्य यह है कि "India (भारत)" को "United States of India (भारत का संयुक्त राज्य)" कहा जाये। मेरे मित्र श्री कामत ने जो बातें कहीं, वह बहुत ही तर्कयुक्त हैं और मैं उन्हें सहर्ष स्वीकार करता हूं। मैं इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर चुका हूं कि मैंने "Union (संघ)" शब्द का प्रयोग क्यों किया और "Federation (संधान)" शब्द को क्यों छोड़ दिया।

दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में, जिसका उद्देश्य यह है कि "India (भारत)" को "Union of India (भारत का संघ)" कहा जाये मैं फिर यह कहूंगा यह अनावश्यक है, क्योंकि सदा से हमारा उद्देश्य यही रहा है कि इस देश को "India (भारत)" कहा जाये और उसके नाम से हमने यह प्रकट नही होने दिया है कि संघांगों के संघ से किस प्रकार के सम्बन्ध हैं। पिछले कई वर्षो से इतिहास में यह देश "India (भारत)" ही के नाम से कहा जाता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संगठन (यू.एन.ओ.) के सदस्य के नाते भी यह देश "India (भारत)" ही कहा जाता है और सभी समझोतों पर इसी नाम से हस्ताक्षर होते हैं। मेरे विचार से देश के नाम में इसका संकेत न होना चाहिये कि उसके अंग किस प्रकार के हैं। इसलिये मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं और इसकी पुष्टि करता हूं कि जहां तक इन संशोधनों का सम्बन्ध है, विधान के मसौदे में जिस प्रकार का प्रावधान है, वह बिल्कुल ठीक है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं प्रत्येक संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, अपने संशोधनों को वापस लेने के लिये मैं सभा की अनुमति चाहता हूं।

सभा का अनुमति से संशोधन वापस ले लिये गये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 113

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं 113वें संशोधन को नहीं उपस्थित कर रहा हूं। परन्तु मैं 114वें संशोधन को उपस्थित करता हूं। श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (2) के आरम्भ से ''The'' शब्द निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, इस भाग में वास्तव में ''The States (दी स्टेट्स)'' शब्दों की परिभाषा करने का प्रयास किया गया है। मैं यह निवेदन करता हूं कि ''The (दी)'' शब्द डेफनिट आर्टिकल है और वह किसी नाम या संज्ञा का भाग नहीं है। यद्यपि यह शब्द इस प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु यह अन्य पदसंहति के साथ भी आया है जैसे ''एक राज्य'', ''कोई राज्य'', ''प्रत्येक राज्य'' सभी प्रकार के राज्यों के अर्थ में।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं एक औचित्य प्रश्न करने के लिये उठा हूं। मेरा औचित्य प्रश्न यह है कि यह संशोधन ही नहीं है। मैं इस सम्बन्ध में मे साहब की लिखी हुई पुस्तक ''पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस'' से एतद्सम्बन्धी निर्देश खोज रहा हूं, परन्तु उसके मिलने से पहले ही मैं इस प्रश्न को उठाना चाहता हूं। यदि मेरे मित्र मुझे क्षमा करें, तो मैं यह कहूंगा कि उन्हें तमाम तरह के संशोधनों को उपस्थित करने की आदत पड़ गई है, जिनका उद्देश्य यही होता है कि एक कॉमा एक जगह लगा दिया जाये या दूसरी जगह से निकाल दिया जाये, इत्यादि। मेरे विचार से इस प्रकार के प्रस्तावों को हमें आरम्भ में ही समाप्त कर देना चाहिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यदि स्वतंत्रता के आरम्भकाल में ही मुझे इस प्रकार रोक दिया जाता है, तो मैं चुप हो जाऊंगा और उपाध्यक्ष महोदय के निर्णय को मान लूंगा।

***उपाध्यक्षः** आप इस औचित्य प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस औचित्य प्रश्न का उत्तर मेरी ओर से यह है। मैं इस अनुच्छेद से ''The (दी)'' शब्द निकालना चाहता हूं, इसलिये मेरा प्रस्ताव एक संशोधन है। निस्संदेह यह एक मसौदा-सम्बन्धी संशोधन है। इसका इस कारण विरोध किया जा सकता है कि यह अनावश्यक, तर्क विरुद्ध तथा निरुद्देश्य, इत्यादि है। परन्तु डा. अम्बेडकर का यह कहना ठीक नहीं है कि यह संशोधन ही नहीं है। इसको इस कारण नियम विरुद्ध नहीं घोषित किया जा सकता कि यह संशोधन ही नहीं है।

विराम इत्यादि के सम्बन्ध में संशोधन उपस्थित करने की मेरी आदत के बारे में मेरे माननीय मित्र ने जो बातें कहीं, उनके सम्बन्ध में मैं उन्हें तथा इस सभा को सहर्ष यह सूचित करना चाहता हूं कि जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है, मैंने उस आदत से काम नहीं लिया है। (*हंसी*)

***उपाध्यक्षः** आप कहते हैं कि यह एक मसौदा-सम्बन्धी संशोधन है। क्या हम इसे मसौदा-समिति और उसके सभापति पर नहीं छोड़ सकते कि वे तीसरी बार जब अवलोकन हो, तो उस समय वे इसकी ओर ध्यान दें? मुझे विश्वास है कि यदि इन संशोधनों में कोई सार होगा, तो वे इन्हें स्वीकार करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उस दशा में यह सभा उन संशोधनों पर निर्णय न करेगी, बल्कि मसौदा-समिति निर्णय करेगी। मसौदा-समिति के वक्ता महोदय अपने विचार प्रकट कर चुके हैं; इसलिये मसौदा-समिति पर इसे छोड़ना मेरे संशोधन को वापस लेने के समान ही होगा। इसलिये मैं फिर यह निवेदन करता हूं कि ''the (दी)'' शब्द नाम का भाग नहीं है।

***उपाध्यक्षः** मैं इस विषय पर डा. अम्बेडकर की सम्मति की प्रतीक्षा कर रहा हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं समझ नहीं पाया कि माननीय सदस्य महोदय को ''The (दी)'' शब्द से क्यों आपत्ति है। ''The (दी)'' डेफनिट आर्टिकल है और चूंकि हम अनुसूची में उल्लिखित राज्यों की ओर संकेत कर रहे हैं, इसलिये यह बहुत ही आवश्यक है। हम साधारणतया राज्यों की और संकेत नहीं कर रहे हैं, किन्तु अनुसूची में उल्लिखित कुछ विशेष राज्यों की ओर संकेत

कर रहे हैं। इसलिये डेफनिट आर्टिकल ''The (दी)'' आवश्यक है। उसका संकेत अनुसूची उल्लिखित विशेष राज्यों की ओर है।

इसके अतिरिक्त मैं निवेदन करना चाहता हूं कि किसी भारतीय के लिये, मेरा मतलब अपने ही लिये है, यह समझ लेना ठीक नहीं कि उसका अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार है और उसका निश्चयात्मक रूप से इस पर भी जोर देना ठीक नहीं कि इस जगह एक कॉमा आवश्यक है, उस जगह एक सेमीकोलन आवश्यक है; यहां आर्टिकल 'ए' रखना उचित होगा और वहां आर्टिकल 'दी' इत्यादि। परन्तु यदि मेरे मित्र अपने को उसी प्रकार अधिकृत समझते हैं, जैसे कि अंग्रेजी भाषा के व्याकरणाचार्य, तो मैं उनका ध्यान आस्ट्रेलिया के विधान की ओर आकर्षित करता हूं, जिससे कि हमने ये शब्द लिये हैं और जिसमें 'दी' आर्टिकल प्रयुक्त है। इसलिये अपने तर्क की पुष्टि के लिये मैं आस्ट्रेलिया के विधान का प्रमाण देता हूं, जिसके बारे में हम यह मान सकते हैं कि अच्छे मसौदा बनाने वालों ने उसका मसौदा तैयार किया था, जिनको अंग्रेजी भाषा का ज्ञान था और जिन पर हम भाषा के सम्बन्ध में त्रुटि करने का दोष नहीं लगा सकते।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन को मतदान के लिये उपस्थित करता हूं।

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 119, मि. नजीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के खण्ड (3) के उपखण्ड (सी) में 'as may' शब्दों के बाद 'hereafter' शब्द रखा जाये।''

श्रीमान्, मैंने इस संशोधन को उपस्थित तो कर दिया है, परन्तु मैं इस सम्बन्ध में सशंक हूं कि कहीं मसौदा-समिति के माननीय सभापति रुष्ट न हो जाये। परन्तु मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करता हूं कि सदस्यों के ध्यान में जो भी बातें आयें, उन्हें उनको सभा के सम्मुख रखना चाहिये और उन पर उसकी सम्मति लेनी चाहिये। यदि मैंने किसी सदस्य को रुष्ट किया है, तो...

***उपाध्यक्ष:** किसी को रुष्ट करने का प्रश्न नहीं उठता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान् मेरा निवेदन यह है कि प्रसंग से ''hereafter'' शब्द् से यह बोध होता है कि इसके बाद जो रियासतें अवाप्त की जायेंगी इसलिये 'hereafter' शब्द् उपयुक्त होगा और मैं सभा से यह निवेदन करता हूं कि इस शब्द् की प्रवेष्टि पर विचार किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह कहूंगा कि यह बिल्कुल अनावश्यक है और मैं इसका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं संशोधन को मतदान के लिये उपस्थित करता हूं।

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्षः** मुझे ज्ञात हुआ है कि कल बैंक की छुट्टी है। इसलिये हम इस पर आगे विचार बुधवार के दिन दस बजे से करेंगे। हम संशोधन संख्या 126 से आरम्भ करेंगे।

इसके उपरान्त सभा बुधवार, 17 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VII.7.48
350

अंक 7
संख्या 7

बुधवार
17 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर... 505

2. विधान का मसौदा-(*जारी*) 505-560
[अनुच्छेद 1, 2 तथा 3 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, ता. 17 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रात: 10 बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्न सदस्यों ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

1. श्री बी.एच. खाण्डेकर (कोल्हापुर रियासत)
2. श्री ए. तानू पिल्ले (ट्रावनकोर रियासत)

विधान का मसौदा—(*जारी*)
अनुच्छेद 1—(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** (डा. एच.सी. मुकर्जी): अब हम संशोधनों को लेंगे। संशोधन संख्या 126–प्रोफेसर शाह।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन पेश करता हूं कि:

''प्रथम अनुच्छेद के खंड (3) के उपखंड (ग) में निम्न पद और जोड़ दिया जाये:

'अथवा जो संघ में सम्मिलित होने या प्रवेश करने या विलीन होने को सहमत हों।''

संशोधित वाक्यखंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''ऐसे राज्य क्षेत्र जो अवाप्त किये जायें अथवा जो संघ में सम्मिलित होने या प्रवेश करने या विलीन होने के लिये सहमत हों।''

मेरे विचार से यह अत्यन्त साधारण संशोधन है। इसके द्वारा मैंने इस बात का प्रयास किया है कि संघ में उन प्रदेशों के अतिरिक्त, जो उसके क्षेत्र में आजकल

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो. के.टी. शाह]

हैं, अथवा जो इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन उसके दायरे में आ जाते हैं, वे प्रदेश भी उसके अन्दर माने जा सकें जो संविधान के स्वीकार हो जाने के पश्चात् संघ में सम्मिलित होना, प्रवेश करना अथवा विलीन होना स्वीकार कर लें। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं ''अवापन'' शब्द का बहुत प्रेमी नहीं हूं। मैं यह नहीं कहता कि अवापन अनिवार्यतः विजय द्वारा ही होता है। मैं इस बात से सहमत हूं कि विजय के अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी अवापन हो सकता है। इसलिये मैंने 'अवापन' शब्द के परिवर्तन करने के लिये सुझाव नहीं रखा।

फिर भी मेरा विचार है कि यह शब्द पर्याप्त मात्रा में सारगर्भित नहीं है। उदाहरणार्थ इससे राज्य क्षेत्र में वह वृद्धि व्यक्त नहीं होती, जो स्वेच्छा से की हुई संविदा के कारण अथवा ऐसे राज्यों के प्रवेश के कारण हुई हो, जो इस संविधान के पारित होने के समय संघ में या तो प्रविष्ट अथवा विलीन नहीं हुये थे। मेरे मन में खास कर ऐसे उदाहरण मौजूद हैं और उन्हीं के कारण मैंने यह संशोधन पेश किया है। आज भी पड़ौस में ऐसे राज्यक्षेत्र हैं, जो स्वाधीन है और जिनसे कि हमारा निकट सम्बन्ध है। वे यदि समझें कि हम से घनिष्ट सम्बन्ध करने पर उनको अपनी प्रगति तथा उन्नति करने के लिए और भी अधिक अवसर मिलेंगे और ऐसी दशा में सम्भव है कि वे भी इस संघ में प्रवेश करना चाहें और हमारे साधन सम्पन्न महान् राष्ट्र से मिल कर जो लाभ हो सकते हैं, उन लाभों को वे भी अपने लिये प्राप्त करना चाहें। मेरे इस सुझाव के पीछे ऐसी कोई बात नहीं है कि बल प्रयोग द्वारा किसी पड़ौसी राज्य क्षेत्र पर अनुचित दबाव डाला जा सके या उसे जीत लिया जा सके या उसके प्रति अन्य कोई आक्रामक चाल चली जा सके। यह तो केवल ऐसा प्रावधान है कि समय पड़ने पर संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता हो इस संविधान में वर्तमान प्रावधानों के अधीन ही हम ऐसे राज्यों को जो अपने अधिकार में ही अब तक प्रभुताशील स्वतंत्र और जो यह सम राज्य है संघ में सम्मिलित होने अथवा करने की अनुमति दे सकें।

यह ऐसा प्रावधान है, जिसके कारण संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता उस समय ने पड़ेगी जब कि वे राज्य-संघ में प्रवेश अथवा विलीन होना चाहेंगे,

जो अभी तक प्रभुतासम्पन्न तथा स्वतंत्र है; पर जो एतद्पश्चात् किसी समय यह समझते हैं कि संघ से संधि या गुटबन्दी की अपेक्षा अधिक निकट और दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना उनके लिये आवश्यक है। उन राज्यों के प्रवेश अथवा विलयन के लिए स्वीकृति उस समय वर्तमान प्रावधानों के अधीन ही दी जा सकेगी। अत: मुझे भरोसा है कि इस प्रावधान के सम्बन्ध में, जो कि राज्यों के प्रवेश को आसान करता है और उसके लिये सुविधा देता है इस सभा के किसी विभाग को भी कोई आपत्ति न होगी।

इसके अतिरिक्त उन राज्यों के प्रवेश का भी सवाल है, जो उस समय तक संघ में प्रविष्ट नहीं हुये थे जब कि मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी। मैं समझता हूं कि जिस राज्य की ओर मेरा संकेत है, वह सबके ध्यान में आ गया होगा। अब तक मैं यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि वह राज्य तो वैधानिक विधि की परिभाषा की दृष्टि से आज भी संघ में प्रविष्ट माना जा सकता है या नहीं। सच्चाई कुछ भी क्यों न हो, यह प्रावधान ऐसा है कि जब कभी संघ में ऐसी रियासत प्रवेश करेगी तो इसके अनुसार संघ के राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत वह रियासत भी होगी।

तीसरी सम्भाव्यता विलयन की हो सकती है। हमें उस सम्भाव्यता के लिये भी प्रावधान करना चाहिये, जिसमें कि कोई राज्य-संघ से इतना मिल जायेगा कि वह अपने अस्तित्व को खो कर संघ का एक भाग मात्र, उसका अखंड अंग, हो गया होगा और ऐसा करना इसलिये आवश्यक है कि अन्त में संघ ऐसे भागों का हो जाये जो, यह मेरी आशा है कि आपस में समान होंगे और संघ की अंगभूत इकाइयां होंगे।

यह तीनों सम्भाव्यतायें, जिनके लिये प्रावधान करने का मैंने इस संशोधन द्वारा प्रयास किया है, अर्थात् स्वेच्छा से सम्मिलित होने वाले राज्यों के लिये, ऐसे राज्यों के प्रवेश के लिये जो अब तक प्रविष्ट नहीं हुये हैं तथा संघ में विलीन होने वाले राज्यों के लिये, ये तीनों सम्भाव्यतायें कभी भी पैदा हो सकती हैं। अत: मैं नहीं समझता कि सभा के किसी विभाग को भी यह संशोधन आपत्तिजनक लगेगा। विलयन की समस्या जटिल है और ऐसी है कि उसके बारे में फूंक-फूंक कर कदम रखना होगा। साथ ही हमें यह भी ज्ञात नहीं है कि इस महत्त्वपूर्ण

[प्रो. के.टी. शाह]

बात का अन्तिम रूप क्या होगा। पर वह रूप चाहे कोई सा भी क्यों न हो, यह साफ है कि संघ की अखण्डता अथवा मैं यों कह दूं कि उन राज्यों का पारस्परिक अटूट बंधन, जो अभी तक अपना अलग अस्तित्व रखे हुये हैं, इस बात को आसान कर देगा कि इस संघ का राज्य क्षेत्र आज की अपेक्षा कहीं अधिक एकरूप हो जाये तथा एक वह एकल क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत हो और उसके विभाग आपस में कहीं अधिक समान हों। महोदय, मेरा विचार है कि इन कारणों से यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न है कि:

''अनुच्छेद (1) के खंड (3) के उपखंड (सी) में निम्न शब्द और जोड़ दिये जाये:

'सम्मिलित होने या प्रवेश करने या विलीन होने के लिये सहमत हों।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** सरदार हुक्मसिंह के अगले संशोधन संख्या 127 पर मेरा विचार है कि अनुच्छेद 1 के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता ही नहीं है। उचित समय तथा उचित स्थल पर इसको लिया जा सकेगा।

मेरे विचार से श्री बी.ए. माण्डलोई तथा ठाकुर छेदीलाल के संशोधन संख्या 128 के बारे में भी यही आपत्ति लागू होती है। बाद में इस पर वाद-विवाद किया जायेगा।

अब हम संशोधन सं. 129 पर आते हैं। प्रोफेसर के.टी. शाह!

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे नाम से है वह इस प्रकार है कि:

जिस सामान्य विचार का प्रचार करने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं, उसका यह भी एक अंग है। इसके द्वारा मेरा यह प्रयास है कि उन आदर्शों को वास्तविकता का रूप प्राप्त हो जाये, जिनके बारे में मुझे यह आशा है कि वे इस सभा को पसन्द होंगे; अर्थात् यह आदर्श कि अन्ततोगत्वा यह संघ ऐसे स्वायत्तशासी स्थानीय इकाइयों का संगठन होगा, जो आपस में एक-सा दर्जा रखती हैं और जो मेरे विचार में इस देश के लिये शक्तिप्रद तथा कल्याणकर सिद्ध होंगी।

श्रीमान्, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न अनुसूचियों तथा आगामी अनुच्छेदों में पुराने प्रान्तों में—अब तक इनको प्रान्त नाम से ही व्यक्त किया जाता था—ही विभेद नहीं रखे गये हैं वरन् पुराने राज्यों के बारे में भी यह विभेद रखें गये हैं और वह भी उस हालत में, जब कि इस राज्य नाम को हम सब के सब सदस्यों के लिये प्रयोग करने जा रहे हैं; हालांकि वे सब एक समान स्थान नहीं रखते हैं। मैं मान सकता हूं कि ऐसे कारण हो सकते हैं, जिनसे कि तुरन्त अर्थात् लेखनी के झटके मात्र से उनको आपस में तथा अपने अधिकार रूप में एक दूसरे के बराबर बनाना सम्भव न हो। मैं इस कठिनाई को स्वयं समझता हूं। किन्तु इस संविधान में तथा विशेषज्ञ समिति तथा अन्य समितियों को रिपोर्टों में मुझे यह बात दिखाई दी है कि उनमें भी यह उद्देश्य निहित है कि आज चाहे ये कठिनाइयां वर्तमान है, पर फिर भी कुछ निश्चित अवधि के पश्चात्—और मैंने यह अवधि दस वर्ष की रखी है—कि कुछ निश्चित अवधि के पश्चात् ये विभेद मिट जाने चाहियें और देश का समान रूप से पुनर्संगठन होना चाहिये। इस समय ये विभेद प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार के एक रूप होने में तथा प्रशासन के एकरूप कार्य करने में ही बाधक नहीं है, वरन् मेरे विचार में तो इस एकरूपता को असम्भव करके ये देश की उन्नति में भी बाधक सिद्ध हो रहे हैं।

भूतकाल की विरासत कुछ भी क्यों न हो और आज की जिन अवरोधक तथा प्रतिबन्धक शक्तियों के वशीभूत होकर हमें सदस्य-राज्यों में इन विभेदों को मानना पड़ रहा है, वे कैसी भी क्यों न हों मेरे विचार में हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये और इस संविधान द्वारा प्रावहित कर देना चाहिये कि ये विभिन्नताएं, ये असमताएं, ये विभेद हटा दिये जायेंगे और यह सब पूर्वनिश्चित अवधि के अभ्यन्तर, विनिहित 10 वर्ष की अवधि के अन्दर कर दिया जायेगा।

प्रस्तावित दस वर्ष की अवधि इतनी लम्बी है कि वर्तमान विभिन्नताओं को सुगमता से मिटाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। कर व्यवस्था को दस वर्ष की अवधि में अच्छी तरह नये सिरे से बनाया जा सकता है। यदि न्याय प्रणाली अथवा विधि अथवा वैत्तिक प्रणाली का पुनर्समायोजन आवश्यक समझा जाये तो उनके पुनर्संगठन के लिये यह दस वर्ष की अवधि काफी होगी तथा यही दस वर्ष की अवधि संचार, यातायात तथा अन्य सामान्य बातों के पुनर्समायोजन के लिये काफी होंगी,

[प्रो. के.टी. शाह]

जिनसे की आजकल अनेक विभेद पैदा हो गये हैं और जो मेरी समझ में पर्याप्त मात्रा में कष्टकर और रूकावटें डालने वाली है और जिनके कारण विभिन्न इकाइयों में पर्याप्त द्वेषभाव और मनोमालिन्य है। इस सम्बन्ध में आपके सामने एक उदाहरण दे देना उचित होगा। हाल में बहुत से लोगों ने यह दिखाया है कि राज्यों की स्वतंत्र सत्ताएं होने के कारण बहुत से लोग कर देने में धोखेबाजी कर पाते हैं और इससे भी बुरी बात तो यह होती है कि उद्योग धंधे अप्राकृतिक रूप से एक प्रदेश से ऐसे दूसरे प्रदेश की ओर चले जाते हैं, जिनके बारे में यह ख्याल होता है कि उनमें कर कुछ कम मात्रा में लगाये जाते हैं, अथवा यह कि उनमें उद्योगों की उन्नति के लिये आवश्यक साधन तथा सुविधाएं सुलभ्य है अथवा अधिक हैं। इस प्रकार का आकर्षण इसलिये पैदा नहीं होता कि इन प्रदेशों में कोई निहित अच्छाइयां हैं, अथवा उनके साधन अधिक हैं या उनमें कोई अन्य विशेषताएं हैं; यह इसलिये नहीं पैदा होता कि इन प्रदेशों में ऐसे प्राकृतिक विभेद हैं, जिन्हें मानवी प्रयास से दूर नहीं किया जा सकता; यह तो सर्वथा और केवल इसीलिये पैदा होता है क्योंकि ये प्रदेश अलग-अलग सत्ताओं के अधीन हैं और जो सत्ताएं इन विभेदों को इकट्ठा होने देने में सहायक हैं।

मैं इस बात की ओर पहले ही संकेत कर चुका हूं कि इन विभेदों के रहे जाने से देश के दीर्घकालीन हितों को पर्याप्त हानि होगी। और वह उस समय जब कि हमारा देश आगे बढ़ने के लिये प्रयत्नशील है और इस बात का प्रयास कर रहा है कि निश्चित अवधि में सर्वतोमुखी उन्नति करने के लिये सब प्रदेशों के लिये समान योजना बने। अत: यह ठीक ही होगा कि हम यह प्रयास करें और इन परम्परागत विभिन्नताओं को मिटा दें, जिससे कि किसी निश्चित अवधि के अन्दर हम इस लक्ष्य पर पहुंच जाये, जो कि हमारी आंखों में समाया हुआ है।

मैं यह बात पहले कह चुका हूं कि ये सब विभिन्नताएं मनुष्यों ने ही सृजित की हैं और ये हमें भूतकाल की देन है। किन्तु चूंकि ये हमारे पथ में रोड़े के समान है, अत: उनको प्रथम अवसर पर ही हमें दूर कर देना चाहिये। जिन इकाइयों से मिल कर हमारा देश बना है, उनको न्यूनाधिक मात्रा में एकरूप करने के लिये

तथा उनका पुनर्समायोजन करने के लिये, आवश्यक रचनात्मक प्रयास के लिये दस वर्ष की अवधि काफी लम्बी होगी।

मैंने यह बात और सुझाई है कि इन विभिन्न इकाइयों के पुनर्निर्माण तथा पुनर्समायोजन के साथ इनका पुनर्संगठन भी होना चाहिये। जब भी हमें ऐसा करने के लिये अवसर उपलब्ध हो, हमें उनको ऐसे स्वायत्त-शासी ग्राम समूहों के रूप में पुनर्संगठित कर डालना चाहिये, जिनमें कि विशेष प्रयोजन से सहस्त निर्मित उन राज्यसत्ताओं की अपेक्षा, जिन्हें हम आजकल प्रान्त अथवा रियासत शब्द से व्यक्त करते हैं, अधिक प्रकृतिजन्य भौगोलिक एकता तथा आर्थिक सहानुभूति होगी।

इस क्षेत्र में हमारे सामने पहले से ही ऐसी ज्वलन्त समस्या उपस्थित है, जिसके कारण भाषा के आधार पर इकाइयों अथवा प्रान्तों के पुनर्संगठन में पर्याप्त बाधा पड़ रही है। भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्संगठन ऐसी बात नहीं है, जिससे यह प्रत्याभूति मिल जाती हो कि किसी प्रदेश अथवा समूह की आन्तरिक एकता समुचित रूप से विकसित तथा दृढ़ होगी और न इससे भी अधिक इस महत्त्वपूर्ण बात के लिये कोई प्रत्याभूति प्राप्त होती है कि स्थानीय एकता, स्थानीय सम्पर्कता तथा स्थानीय हित की अभिन्नता के आधारों से अन्य किसी आधार पर पुनर्संगठित विभिन्न इकाइयों में प्रजा की, प्रजा के लिये, प्रजा द्वारा संचालित सरकार वाले प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्त को समान रूप से बरता जायेगा। यही कारण है कि मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि इन इकाइयों को ग्राम के आधार पर फिर से बांटा जाये, फिर से संगठित किया जाये, फिर से समायोजित किया जाये। आपस में मिल कर काम करने के लिये योग्य बनाने वाला और एक प्रकार से उनको देश के अन्दर लोकतंत्र का रूप देने वाला या यों कहिये कि राज्यान्तर्गत राज्य बनाने वाला ग्रामों का सहकारिता आधृत संगठन ही ऐसा है, जो हमें अपने वांछित लक्ष्य तक पहुंचाने की प्रत्याभूति दे सकता है। किसी ऐसे दूरस्थ शासन की अपेक्षा जैसा कि हमारा केन्द्रीय शासन है अथवा जैसे प्रान्तीय मुख्य स्थानों, उन प्रान्तों के शासन जो कि छोटे-बड़े रूप में हमारे देश में हैं, इन सबकी अपेक्षा ग्रामों का ऐसा संगठन स्थानीय साधनों की, स्थानीय योग्य व्यक्तियों की, स्थानीय सम्भाव्यताओं की परख कहीं अच्छी प्रकार कर सकेगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, हमारे नेताओं ने ग्रामों को पुनः सशक्त करने के सवाल को जो महत्ता दी है, वह उल्लेखनीय है। अतः मैं समझता हूं कि मैं बड़े आदरणीय चरण-चिह्नों का अनुसरण कर रहा हूं जब कि मैं आपके सामने इस आदर्श को रखता हूं और आपको आमंत्रित करता हूं कि आप राज्य को उस रीति से पुनर्संगठित करने की सम्भाव्यता पर विचार करें, जिस रीति से ही मैं समझता हूं कि यह पूर्णतया विकसित हो सकता है, अर्थात् सहकारिता के आधार पर पुनर्संगठित ग्रामों के ऐसे समूहों को बनाया जाये, जो इतनी मात्रा में सशक्त और बड़े हों कि मिल-जुल कर उन्नति कर सकें और जीवन चर्चा के उस स्तर को स्थापित कर सकें, जिसे पाने की हमें सर्वदा आशा रही है और जिसके लिये हम सर्वतः प्रयत्नशील रहे हैं। इन शब्दों के साथ मैं सभा से अभ्यावेदन करता हूं कि वह यह प्रस्ताव स्वीकार कर ले।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इस विचार से सहमत हूं कि शीघ्र या विलम्ब करके हमें इस देश का पुनर्संगठन ग्राम-पंचायतों के आधार पर करना है। किन्तु आज तो हमारे सामने ऐसी पंचायतें हैं नहीं। अतः उनके अभाव में यदि हम से आज यह कहा जायें कि संविधान तक में विनिहित की जाने वाली दस वर्ष की अवधि में ही सारे विभेद मिटा दिये जाने चाहियें, तो मैं यही कहूंगा कि ऐसी बात नहीं है जिसे व्यवहार-रूप दिया जा सके। मैंने और प्रोफेसर रंगा ने निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक ऐसा संशोधन पेश करने की सूचना दी है कि राज्य इस बात का प्रयास करेगा कि ग्राम-पंचायतों को हर जगह पुनर्संगठित तथा पुनः स्थापित किया जाये, जिससे कि प्रजातंत्र के हितों की रक्षा के लिये ग्राम के लोग यथासम्भव मात्रा में स्वशासन अथवा यों कहिये कि स्वायत्त-शासन की कला में पूर्णतया दीक्षित हो जायें। इस प्रकार ग्रामों की उन्नति हो सकती है। परन्तु स्वयं विधान में स्वतंत्र रूप से यह कहना कि राज्यों में परस्पर भेद विभेद को मिटा देना चाहिये और समस्त देश को ग्राम्य स्वायत्त-शासन के आधार पर पुनर्संगठित करना चाहिये, एक भिन्न बात है। अभी हम ऐसा नहीं कर सकते हैं दुर्भाग्यवश दलबन्दी के कारण ग्राम क्षत-विक्षत है और उत्तरदायित्व नाम की वस्तु अब वहां नहीं है। इन परिस्थितियों में जो कुछ डाक्टर अम्बेडकर कह चुके हैं, उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं। वे कुछ अधिक निराशावादी हैं; मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि हम कभी ग्रामों का सुधार नहीं कर सकते

और उनको स्वशासन करने योग्य नहीं उन्नत कर सकते। हमें ग्राम-सुधार करने में समर्थ होना चाहिये और उनमें प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्तों का प्रचलन करना चाहिये। इसमें समय लगेगा। अतः अभी यह कहना कि वर्तमान समस्त विभिन्नताओं को एक दम मिटा देना चाहिये, ऐसी बात नहीं है जो मानी जा सके। हमें भी यह आशा है कि सरदार पटेल के अथक परिश्रम से रियासतों तथा प्रान्तों में वे विभेद स्वतः ही मिट जायेंगे। बड़ी शीघ्रता से विभेद मिटते चले जा रहे हैं, और सब जगह लोकप्रिय सरकारें बनती चली जा रही है। मुझे विश्वास है कि इस गति से दस वर्ष की अवधि के पूर्व ही प्रोफेसर के.टी. शाह के विचारों में और अन्य बेंचों पर बैठने वाले किसी व्यक्ति के विचारों में उस आदर्श के सम्बन्ध में कोई मतभेद न रहेगा, जिस आदर्श को हम सब पाना चाहते हैं।

किस गति से और रीति से यह ध्येय प्राप्त किया जाना है, इस बारे में ही सोच-विचार का सवाल पैदा हो सकता है। रियासतों के लोगों के सहित समस्त लोगों की असीम प्रभुता को स्थापित करने के कार्य में हम सब लोग लगे हुये हैं। हमें इस कार्य-साधन के लिये स्थानीय आवश्यकताओं तथा दशाओं के अनुरूप ही प्रणालियों को अपनाना चाहिये। अन्ततोगत्वा यह देश बहुत से ऐसे ग्राम लोकतंत्रों से मिल कर ही बनेगा, जो यथासम्भव स्वायत्त-शासी होंगे और जो आपस में एक दूसरे से बंध कर राज्य का रूप धारण करेंगे और जिनके ऊपर एक केन्द्रीय संघ शासन होगा। हम जनता से अधिकार अवश्य प्राप्त करते हैं, पर उनको भी शासन कला में प्रवीण और उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण होना चाहिये। परन्तु यह संशोधन असामयिक है। अतः मैं प्रोफेसर शाह से निवेदन करता हूं कि वे अपने संशोधन पर जोर न दें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे, तो मुझे खेद सहित उसका विरोध करना पड़ेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, इस संशोधन में प्रोफेसर शाह ने दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की व्याख्या की है। एक सिद्धान्त यह है कि दस वर्ष के पश्चात् वे यह आशा करते हैं कि भारतीय सरकार एक विशेष स्वरूप प्राप्त कर लेगी और ग्राम-पंचायत के समूहों के आधार पर उसका संगठन हो जायेगा। ग्राम-पंचायत परस्पर समान रूप से संगठित होंगी और संघ के अधीन प्रकार्य करेंगी। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अनेकों सदस्य इन दोनों सिद्धांतों से सहमत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

होंगे। मैंने स्वयं कुछ संशोधनों की सूचना दी है, जिन में मैंने यह विचार प्रकट किया है कि इस विधान में निहित अनेकों सिद्धान्तों का दस वर्ष के पश्चात् प्रवर्तन हो जायेगा और उनको कानून का बल प्राप्त हो जायेगा। इसी प्रकार हमने अन्यत्र अपने संशोधनों में इस बात की व्यवस्था की है कि ग्राम शासन प्रबन्ध सम्बन्धी वर्तमान पद्धति का ग्राम-पंचायत के आधार पर पुनर्संगठन होना चाहिये। उस दिन सभा को यह बताया गया था कि हम भारतीय गणतंत्र को स्वायत्त शासन प्राप्त ग्राम-तंत्र पर आश्रित करना चाहते हैं। परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि कानून का वर्तमान रूप अस्पष्ट है, उसको स्पष्ट करना चाहिये। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इसे इस सर्वव्यापी रूप में रखने की अपेक्षा श्री शाह को उन विभिन्न खंडों पर संशोधन रखने चाहियें, जिनमें कि उन संशोधनों को जोड़ा जा सके। मैं स्वयं दोनों सिद्धान्तों से सहमत हूं—सर्वप्रथम अनेकों अनुसूचियों में निहित विभेद को मिटा देना चाहिये और दूसरा यह कि विधान में ग्राम-पंचायत को स्थान मिलना चाहिये और सर्वत्र ग्राम-पंचायत के निर्माण की एक विधि ग्रहण की जानी चाहिये। वास्तव में गांधी जी के आदेश पर प्रोफेसर अग्रवाल द्वारा रचित विधान में यह बताया गया है कि महात्मा गांधी यह चाहते थे कि ग्राम में लोक-तंत्र होने चाहिये। वे यह विचार उपस्थित करते हैं कि प्रति 20,000 व्यक्तियों के लिये एक पंचायत होनी चाहिये। और इन इकाइयों को तालूक पंचायत तथा जिला पंचायत का निर्वाचन करने का अधिकार होना चाहिये। मैं इस बात से सहमत हूं कि इन पंचायतों को विधान में स्थान मिलना चाहिये; और उत्तरागार के निर्वाचन में भी इनकी कुछ आवाज़ होनी चाहिये; परन्तु मेरे विचार से इस स्थल पर यह कहना उपयुक्त नहीं है कि अनुसूचियों मे निहित भेद-विभेदों को मिटा दिया जाये। मेरे विचार से यह बहुत अस्पष्ट होने के साथ-साथ विषय से भी बहुत परे है। मैं यह निवेदन करता हूं कि श्री शाह को विभिन्न अनुसूचियों पर संशोधन उस समय रखने चाहिये, जब कि उन पर विचार किया जाये। मैं आशा करता हूं कि श्री शाह अपने संशोधन पर जोर नहीं देंगे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, प्रोफेसर शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन का मैं पूर्ण समर्थन करता हूं। इसमें उन्होंने यह कहा है कि

भारतीय संघ के अंगभूत प्रदेशों का संगठन सहकारिता द्वारा संगठित ग्राम-पंचायतों के समूहों के आधार पर किया जाये। मैं एक कदम और आगे जाना चाहूंगा, और कहना चाहता हूं कि ग्राम-पंचायतों को इकाई बनाने के स्थान में हमें ग्राम द्वारा निर्वाचित परिषद् को अपने विधान की इकाई बनाना चाहिये। आप लोगों को यह बताना विषय से परे जाना नहीं होगा कि मैं महात्मा गांधी से मिला और मैंने उनको रूसी विधान भेंट किया और उस विधान में दी हुई समस्त बातों पर वाद-विवाद किया। वे उस विधान से सहमत हुये और कम से कम उसके दो सिद्धान्तों को स्वीकार किया। उनमें से एक यह था ''कार्य नहीं तो वोट नहीं''। दूसरा यह था कि ग्राम द्वारा निर्वाचित परिषद् हमारी इकाई होनी चाहिये और उन्होंने यह कहा कि रूसी विधान यहां की अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के विधान के समान है—क्योंकि हमारे यहां ग्राम कांग्रेस समिति हैं, जो तहसील कांग्रेस समिति के प्रतिनिधियों का चुनाव करती है, तहसील कांग्रेस समिति जिला कांग्रेस समिति के लिये अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है; जिला कांग्रेस समिति प्रान्तीय कांग्रेस समिति के लिए और प्रान्तीय कांग्रेस समिति अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के लिये अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। रूसी विधान में भी इसी प्रणाली को अंगीकार किया गया है। वहां प्रत्येक ग्राम स्वात्म निर्भर ग्राम-परिषद् हैं। वह उच्च परिषद् को अपना प्रतिनिधि भेजता है। यदि हम ग्राम-परिषद् का विचार छोड़ कर ग्राम-परिषद् को अपनी इकाई मान लें तो वे सब व्यर्थ की बातें, जो हमारे विधान में अल्पसंख्यकों के लिये प्रावधान, इत्यादि के रूप में है, मिट जायेगी। इस सुझाव के साथ प्रोफेसर शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन को मैं सम्पूर्ण हृदय से स्वीकार करता हूं और उसका समर्थन करता हूं।,

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

''अनुच्छेद 1 के साथ निम्न परादिक बढ़ा दिया जाये:–

'पर इस संविधान की प्रवर्तन तिथि के पश्चात् इतने काल में, जो दस वर्ष से अधिक न होगा, जो इस संविधान की कई अनुसूचियों में तथा इसके अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में किये गये सब विभेदों और विभिन्नताओं को मिटा दिया जायेगा तथा

[उपाध्यक्ष]

भारत-संघ के सब सदस्य राज्यों का संगठन सहयोग के आधार पर एक दूसरे से बंधित तथा संघ में लोकतंत्रात्मक इकाइयों के रूप में कार्य करने वाले ग्राम्य पंचायतों के समूहों के रूप में कर दिया जायेगा।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** इसके पश्चात् संख्या 130 है। श्री माण्डलोई।

***श्री बी.ए. माण्डलोई** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** अब हम उन पीछे वाले संशोधनों को लें, जिन पर सोमवार को हमने विचार नहीं किया था। संख्या 83।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं निवेदन करता हूं कि इनको स्थगित रखा जाये और अनुच्छेद 1 पर अब वोट ले ली जाये।

***उपाध्यक्षः** कृपया मुझे कार्य करने दीजिये। संख्या 83 लिपि तथा भाषा के सम्बन्ध का है। ठीक समय आने पर इस पर वाद-विवाद किया जायेगा, जबकि हम अनुच्छेद 99 के अंतर्गत लिपि और भाषा के प्रश्न पर वाद-विवाद करेंगे। श्री नजीरुद्दीन अहमद!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 1 के ऊपर शीर्षक के आरम्भ में ''CHAPTER 'I' शब्द और रोमन अंक जोड़ दिये जाये।''

श्रीमान्, प्रारूप सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न से इसका सम्बन्ध है। माननीय सदस्य यह देख सकते हैं कि विधान के प्रारूप में अध्याय की संख्या क्रम से नहीं है। अनेकों ऐसे स्थल हैं जहां अध्याय संख्या नहीं दी गई है और कुछ ऐसे

उदाहरण हैं, जहां कि अनेकों अध्याय हैं और उनको पृथक्-पृथक् संख्याओं से अंकित किया गया है। इसका परिणाम यह है कि कुछ गड़बड़ हो जाती है। उन भागों को छोड़कर जिनका अध्यायों से सम्बन्ध है, यदि हम अध्यायों को क्रम से अंकित करें तो यह लाभ होगा कि जब हम किसी विशेष अध्याय का उल्लेख देंगे, तो उस विशेष भाग के उसी परिच्छेद के लिये वह संकेत यथेष्ट होगा। यदि हम वर्तमान क्रम-संख्या को रहने देंगे, तो इसका फल यह होगा कि हमें यह कहना पड़ेगा कि भाग 3 का अध्याय 1, भाग 4 का अध्याय 3 इत्यादि, इत्यादि। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि विधान के प्रारूप में अध्यायों को क्रम संख्या से अंकित करना अधिक लाभदायक होगा। व्यावहारिक रूप में यह बहुत लाभदायक होगा। श्रीमान्, मेरे सामने भारतीय कानून के अनेकों उदाहरण हैं। इस सम्बन्ध में भारत में एक समान प्रणाली रही है; यद्यपि मैं यह बता दूं कि जहां तक वर्तमान भारतीय अधिनियम का सम्बन्ध है; यह वर्तमान प्रारूप इंग्लैंड की प्रणाली का अनुसरण करता है। उस अधिनियम में अध्यायों की संख्या क्रम से नहीं है, जैसी कि भारतीय प्रणाली में है।

श्रीमान्, उन विभिन्न कानूनों में, जिनसे कि प्रत्येक व्यक्ति परिचित है, अर्थात् व्यवहार कार्य-प्रणाली संहिता, दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता, साक्षी-अधिनियम तथा अन्य सब अधिनियमों को सदस्यगण यदि देखें तो उनको ज्ञात हो जायेगा कि ये सब अधिनियम अनेकों विभागों में विभाजित है। अध्यायों की संख्या प्रत्येक भाग के लिये पृथक-पृथक अंकित नहीं की गई है और यद्यपि भाग अनेकों है, पर अध्याय संख्या क्रम से है। इसके परिणामस्वरूप उनके उद्धरण देने में बड़ी सुविधा होती है। दंड कार्य-प्रणाली संहिता, दंड-संहिता और अन्य अधिनियमों में हम उन भागों का उल्लेख किये बिना, जिनमें वे अध्याय हैं, केवल अध्याय की संख्या का ही उल्लेख करते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि भारत में सर्वत्र यही प्रथा प्रचलित है। ऐसे और भी बहुत से अधिनियम हैं जो भागों में विभाजित है, परन्तु उनके अध्यायों की संख्या क्रम से है। अत: भारत में प्रचलित प्रथा को ध्यान में रखकर तथा उद्धरण देने की सुविधा को विचार में रखकर मेरे विचार से अध्यायों की क्रम से संख्या होनी चाहिये और इस पर कोई ध्यान न देना चाहिये कि अध्याय किस

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

भाग में हैं। यह सुविधा का विषय है और सभा के समक्ष अपने विचार उपस्थित करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। इन चन्द शब्दों के साथ, मैं सभा की स्वीकृति के लिये अपना संशोधन पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 1 के ऊपर शीर्षक के आरम्भ में 'CHAPTER I' शब्द और रोमन अंक जोड़ दिये जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि जहां तक यह संख्या 85 का सम्बन्ध है, उसके प्रथम भाग को पेश किया जा सकता है क्योंकि दूसरे भाग पर तो विचार हो ही चुका है। अत: मैं श्री लोकनाथ मिश्र से प्रथम भाग पेश करने के लिये निवेदन करता हूं।

***माननीय पं. गोविन्दबल्लभ पन्त** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि अब हम अनुच्छेद 2 को ले लें और अनुच्छेद 1 पर के शेष संशोधनों पर वाद-विवाद स्थगित करें। अभी तक इस महत्त्वपूर्ण विषय पर कोई मत नहीं बना सके है। मुझे आशा है कि यदि वाद-विवाद स्थगित कर दिया गया, तो सम्भव है कि कोई ऐसा हल निकल आये जो सबको मान्य हो। अत: कोई हानि तो होगी ही नहीं। आखिरकार हमें निर्णय ही तो करना है, वह आज हो, कल हो या परसों। उससे किसी को नुकसान तो होगा ही नहीं—और यदि हम ऐसा हल निकाल सकते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिये संतोषजनक हो तो मेरी समझ से सभा आगे आने वाले कार्य का सामना करने के लिये और भी अधिक शक्तिशाली हो जायेगी। मैं आशा करता हूं कि इस विषय पर कोई मतभेद नहीं होगा और मैं नहीं समझता कि किसी क्षेत्र से कोई आपत्ति होगी। आखिरकार हमें निर्णय तो करना ही होगा। यहां किसी दल या वर्ग की शक्ति को और कोई तो घटा-बढ़ा ही नहीं सकता है और हम यहां दल या वर्ग के रूप में हैं ही नहीं। हममें से प्रत्येक यहां पर इन दुर्बोध गहन तथा कठिन समस्याओं के सुलझाने

में सर्वोत्तम प्रयत्न करने के लिये तत्पर हैं और यदि हम किंचित सब्र और संतोष से इन्हें सुलझायें, तो मैं आशा करता हूं कि हम अधिक संतोषजनक रूप में इन पर निर्णय कर सकेंगे, अन्यथा नहीं। इस कारण में निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 1 के शेष संशोधनों पर वाद-विवाद स्थगित किया जाये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, जो तर्क मेरे माननीय मित्र पं. गोविन्दवल्लभ पन्त ने प्रस्तुत किये हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूं। मैं आपसे केवल यह जानना चाहता हूं कि संख्या 85 से 96 के समस्त संशोधनों पर कब तक वाद-विवाद स्थगित किया जा रहा है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यदि हम प्रथम खंड के सर्वप्रथम शब्द से सम्बन्धित संशोधनों पर विचार-विमर्श को स्थगित करते चले जायेंगे, तो इस देश में तथा अन्य देशों में बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।

***माननीय सदस्यः** नहीं, नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** और यदि हम अनिश्चित समय के लिये इन दोनों संशोधनों पर विचार-विमर्श स्थगित करते चले गये, तो इसका अवश्यम्भावी बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसलिये मैं आपसे यह जानना चाहता हूं कि कितने समय के लिये इनको स्थगित किया जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** अपने माननीय मित्र श्री कामत द्वारा प्रस्तुत किये गये इस तर्क को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि यदि हम इस विषय को स्थगित करते चले गये, तो अन्य देशों को कदाचित आश्चर्य हो। इसके विपरीत यदि हम कोई संतोषजनक हल प्राप्त कर लें और इस विषय पर सर्वसम्मति से निश्चय कर लें, तो इस सभा के सम्बन्ध में अन्य देशों के बहुत उच्च विचार होंगे। मुझे आश्चर्य है कि कामत जैसे व्यक्ति आगे बढ़ें और इस प्रकार से बोलें। पंडित पंत ने जो कुछ कहा, वही वास्तव में सुन्दर हल है और मैं इस सभा से यह आशा कर रहा था कि बिना किसी प्रकार के विरोध-प्रदर्शन करके यदि हम वास्तव में किसी सर्वमान्य निर्णय को प्राप्त कर लें, तो वह विधान के इतिहास में एक उल्लेखनीय

[श्री आर.के. सिधवा]

कार्य होगा। इसलिये अपने माननीय मित्र पंडित पन्त द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं पूर्ण हृदय से जोरदार समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त के सुझाव का मैं समर्थन करता हूं।

***सेठ गोविन्ददास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं पंडित पन्त के प्रस्ताव का पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं। सभा को यह भली प्रकार विदित है कि अपने देश का नाम भारत रखने के विषय में मेरा मत कितना स्पष्ट है। परन्तु इसके साथ-साथ हमें सभा के प्रत्येक दल को एक मत करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि यह सम्भव हो ही न सके, तो हम अपनी-अपनी विचारधारा का अनुसरण कर सकते हैं। परन्तु जब तक किसी समझौते द्वारा सर्वमान्य निर्णय तक पहुचने की कोई भी सम्भावना हो, तो उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और मैं आशा करता हूं कि हमारे नेताओं के प्रयत्न द्वारा इस प्रकार के मौलिक विषय पर किसी प्रकार का मत विभाजन नहीं होगा—केवल इसी विषय पर ही नहीं परन्तु अन्य विषयों पर भी जैसे कि हमारी राष्ट्र भाषा, राष्ट्र लिपि इत्यादि, इत्यादि पर हम सर्वमान्य निर्णय कर सकेंगे। इसलिये अभी माननीय पंडित पंत ने जो विचार प्रकट किये हैं, मैं उनका समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल यह जानना चाहता था कि कितने दिनों तक ये संशोधन स्थगित रखे जायेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** एक दिवस, एक सप्ताह या एक पक्ष तक के लिये।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से इन अल्प खंडों पर उतने समय तक के लिये विचार-विमर्श स्थगित कर दिया जाये, जितना समय किसी प्रकार का समझौता करने के लिये यथेष्ट हो। यह सभा के और विशेष कर देश के उच्च हितों की पूर्ति के लिये उचित होगा।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक निवेदन करना है। श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, यदि आपका निर्णय यही है कि मेरा संशोधन पेश नहीं किया जाये या उसको रोक दिया जाये, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

मैं इस बात से सहमत हूं कि मेरे संशोधन के दो भाग हैं—इंडिया के नाम से परिवर्तन और कुछ अन्य बातें। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि नाम के परिवर्तन वाला भाग इसलिये स्थगित किया जा रहा है कि हम किसी सर्वमान्य निर्णय तक पहुंच जायें जिससे सब प्रसन्न हो सकें। पर मैं निवेदन करता हूं कि मुझे संशोधन के शेष भाग को पेश करने देना चाहिये। यह किसी प्रकार से भी प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन के अनुरूप नहीं है। यदि मुझे यह विदित होता तो जो कुछ मुझे कहना था, वह मैं उस समय कह देता जब कि उन्होंने संशोधन पेश किया था। इस कारण मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप कृपा कर संशोधन के उस भाग को छोड़कर, जो इंडिया के नाम में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में हैं, संशोधन के शेष भाग को पेश करने की अनुमति दीजिये।

***उपाध्यक्ष:** भाषा का विषय होने के अलावा, मेरा विचार है कि आपके संशोधन में जो कुछ कहा गया है, वह सार रूप में वही है जो कि प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन में कहा गया है। उस पर वाद-विवाद हो चुका है; अत: उस पर फिर वाद-विवाद नहीं हो सकता।

***श्री. लोकनाथ मिश्र:** इस प्रकार से तो अचानक किसी को आश्चर्य में डालना है।

अनुच्छेद 2

***उपाध्यक्ष:** दूसरा प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 2 विधान का भाग मान लिया जाये।''

***श्री एच.वी. कामत:** अनुच्छेद 1 पर मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** उस अनुच्छेद को स्थगित कर दिया गया है। जब तक संशोधनों पर विचार न हो, तब तक उस पर मत नहीं लिया जा सकता।

मि. नज़ीरुद्दीन अहमद, संशोधन संख्या 131।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद**: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 2 के स्थान में निम्न रखा जाये:

'2 पार्लियामेंट विधि द्वारा—

(क) नये राज्यों का संघ में प्रवेशन कर सकेगी;

(ख) किसी राज्य का दो या अधिक राज्यों में प्रति विभाजन कर सकेगी;

(ग) निम्न वर्गों के किसी दो या अधिक राज्य क्षेत्रों का एक राज्य में समामेलन कर सकेगी, अर्थात्

(1) राज्य,

(2) किसी राज्य के एक अथवा अधिक भाग,

(3) नवीन अवाप्त राज्य-क्षेत्र;

(घ) पद (क) के अन्तर्गत प्रविष्ट हुये अथवा पद (ख) और (ग) के अन्तर्गत निर्मित किसी राज्य का नाम रख सकेगी;

(ङ) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी:

पर किसी प्रयोजन के लिये कोई विधेयक पार्लियामेंट की किसी सभा में न रखा जायेगा, सिवाय अध्यक्ष की सिफारिशों के और वह भी तब जब कि:

(क) यदि विधेयक में दी हुई प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नामों पर पड़ता हो, तो विधेयक को रखने की प्रस्थापना के सम्बन्ध में और उस विधेयक के प्रावधानों के सम्बन्ध में प्रधान ने उस राज्य के अथवा प्रत्येक राज्य के, जैसी भी स्थिति हो, विधान-सभा के और यदि द्विसभात्मक विधान-मंडल हों तो विधान-मंडल की दोनों सभाओं के विचार निश्चित रूप से न जान लिये हों; और

(ख) यदि ऐसी प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नामों पर पड़ता हो, तो उस प्रस्थापना के लिये उस राज्य अथवा प्रत्येक राज्य की, जैसी भी स्थिति हो, पूर्व सहमति निश्चित रूप से न जान ली हो।''

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करते हुये मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इसमें कई बातें शामिल हैं। किसी सीमा तक दोनों अनुच्छेद 2 और 3 परस्पर आच्छादित हैं। अनुच्छेद 3 में कुछ बातें व्यर्थ हैं और एक या दो छोटी-छोटी बातों की कमी है। अभी मैं उनको बताऊंगा। अनुच्छेद 2 का विश्लेषण यह है कि पार्लियामेंट नये राज्यों का संघ में प्रवेशन कर सकता है और उनका स्थापन कर सकता है। अनुच्छेद 2 में केवल यही दो विषय है। अनुच्छेद 3 में पार्लियामेंट को (क) किसी राज्य से उसका प्रदेश अलग कर के अथवा दो या अधिक राज्यों या राज्यों के भागों को मिला कर नया राज्य बनाने (ख) किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाने (ग) किसी राज्य के क्षेत्र को घटाने (घ) किसी राज्य की सीमा में परिवर्तन करने और किसी राज्य के नाम में परिवर्तन करने के अधिकार हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 2 का प्रथम भाग संघ में किसी नये राज्य का प्रवेशन अनुच्छेद 3 के प्रथम भाग से आच्छादित है। अनुच्छेद 3 की तीनों बातें किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ाना या किसी राज्य का क्षेत्र घटाना या उसकी सीमाओं में परिवर्तन करना व्यर्थ है। यदि आप किसी राज्य का प्रतिविभाजन करते हैं, तो आप उसका क्षेत्र घटाते हैं। यदि आप किसी राज्य से दूसरा राज्य या राज्य का भाग मिलाते हैं, तो अवश्यम्भावी रूप से आप उसके क्षेत्र को बढ़ाते और राज्य-क्षेत्रों की पुनर्व्यवस्था में सीमाओं का परिवर्तन करना आवश्यकीय है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि ये तीन बातें राज्य के क्षेत्र का घटाना, उसका बढ़ाना और उसकी सीमाओं में परिवर्तन करना अनुच्छेद के दूसरे भाग से इतने अधिक आनुषंगिक हैं कि इनका विधान में रखना निरर्थक होगा और व्यवहार रूप में व्यर्थ होगा। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यदि आपको एक राज्य को दो अथवा अधिक भागों में विभाजन करने अथवा दो राज्यों या राज्यों के भागों को संयुक्त

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

करने का अधिकार है, तो ये तीन बातें आवश्यक रूप से आनुषंगिक हैं और इस कारण उनको दुहराने की आवश्यकता नहीं है। क्षेत्र को बढ़ाना, क्षेत्र को घटाना और सीमाओं में परिवर्तन करना अन्य प्रदत्त अधिकारों के परिणामस्वरूप है। इन परिणामों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है। विभाजन करने, जोड़ने और घटाने की विधि ये आवश्यक रूप से सम्बद्ध है। अतः इन तीन बातों को हटा देना चाहिये।

अनुच्छेद 3 (क) में राज्य से प्रदेशों को पृथक् करने के प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि यह कहना कि हम किसी राज्य का प्रतिविभाजन करते हैं और उसके दो या अधिक राज्य बनाते हैं, अधिक उपयुक्त होगा। मेरे विचार से यह अधिक स्पष्ट होगा और इसके अनंतर दो या अधिक राज्यों को मिलाने के स्थान में "दो या अधिक राज्य या राज्य के भागों का समामेलन करना" पदाबलि अधिक उपयुक्त होंगी। और फिर वर्तमान अनुच्छेद में नवीन अवाप्त राज्यों के समामेलन के लिये कोई अधिकार भी नहीं दिया गया है। इस सम्बन्ध में पार्लियामेंट के अधिकार मेरे संशोधन में विशिष्ट रूप से दिये हुये हैं, परन्तु विधान के प्रारूप में इनका पूर्णतया अभाव है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्य मि. नज़ीरुद्दीन ने अनुच्छेद 2 और 3 पर अपना संशोधन पेश किया है। अनुच्छेद 2 विचार-विमर्श के लिये लिया गया है न कि अनुच्छेद 3। अतः जब तक कि दोनों अनुच्छेदों को विचार-विमर्श के लिये नहीं लिया जाता है, तब तक संशोधन को इसके वर्तमान रूप में पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** (मि. नज़ीरुद्दीन से) कृपया कहे जाइये।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, आपकी व्यवस्था क्या है?

***उपाध्यक्षः** जब मैंने यह कह दिया कि वे कहते जायें, तो निर्णय समझ लेना चाहिये।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः इसीलिये मैंने संशोधन में निम्न विषयों को ले लिया है:

(क) नये राज्यों का संघ में प्रवेशन कर सकेगा;

(ख) किसी राज्य का दो या अधिक राज्यों में प्रतिविभाजन कर सकेगा;

(ग) निम्न वर्गों के किसी दो या अधिक राज्य-क्षेत्रों का एक राज्य में समामेलन कर सकेगा, अर्थात्

(1) राज्य,

(2) किसी राज्य के एक अथवा अधिक भाग,

(3) नवीन अवाप्त राज्य-क्षेत्र,

(घ) पद (ख) और (ग) के अन्तर्गत प्रविष्ट हुये किसी राज्य का नाम रख सकेगा;

और इसके पश्चात् नाम परिवर्तन करने का अधिकार दिया ही हुआ है। मैं निवेदन करता हूं कि इनमें अनुच्छेद 2 और 3 की मुख्य बातें आ गई हैं। इसमें हम दुहराने से बच जाते हैं और इसमें अनुच्छेद के वे भाग भी नहीं आते हैं, जो व्यर्थ हैं और जो आवश्यक रूप से सम्बद्ध है। प्रस्तावित संशोधन के कलेवर पर विचार समाप्त होता है, इसके पश्चात् वर्तमान वाक्य खंड 3 के सम्बन्ध में...।

*श्री एच.वी. कामतः एक औचित्य प्रश्न है। जब कि अनुच्छेद 3 विचार-विमर्श के अन्तर्गत नहीं है, तो वे उसका उल्लेख किस प्रकार कर सकते हैं? अभी अनुच्छेद 3 पर संशोधन नहीं किया जा सकता।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः मैं निवेदन करता हूं कि यह व्यवस्था दी जा चुकी है कि यह संशोधन कि अनुच्छेद 2 और 3 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये, नियमानुकूल है। यह वास्तव में अनुच्छेद 2 पर संशोधन है, यद्यपि इसमें अनुच्छेद 3 का समामेलन हो जाता है। इसलिये माननीय उपाध्यक्ष महोदय यह व्यवस्था दे चुके है कि संशोधन नियमानुकूल है।

मैं निवेदन करता हूं कि ''क्षेत्र बढ़ाना'' या ''क्षेत्र घटाना'' (increasing area or diminishing area) बहुत उपयुक्त शब्द नहीं है। आप जोड़ कर क्षेत्र नहीं बढ़ा सकते और घटाकर क्षेत्र कम नहीं कर सकते। इन शब्दों का अधिकतर प्रयोग

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

अकर्मक रूप में होता है। उदाहरण के रूप में आप किसी गुब्बारे में हवा भर कर उसके क्षेत्र को बढ़ा सकते हैं और उसकी हवा निकाल कर उसके क्षेत्र को घटा सकते हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि ये शब्द अधिक उपयुक्त नहीं है। यदि इन बातों को रखना ही है, तो ''वृद्धि करना'' और ''कमी करना'' (enlarge and reduce) शब्द अधिक उपयुक्त होंगे। जोड़ कर क्षेत्र बढ़ाने और घटा कर क्षेत्र कम करने का प्रचलित प्रयोग नहीं है; पर खैर, दूसरी आपत्ति यह है कि वे पूर्णतया व्यर्थ है। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 2 के कलेवर को स्वीकार कर लेना चाहिये।

परादिकों पर संशोधन का केवल निम्नकथित प्रभाव होगा। प्रथम भाग के परादिक (क) में विधान-मंडल में प्रतिनिधान करने का प्रतिबंध है। दूसरे में संकल्प का प्रश्न है। मैं निवेदन करता हूं कि परादिक (क) का प्रथम भाग हटा दिया जाये। उस प्रकार का संकल्प जैसा कि परादिक के खंड (क) के भाग 2 में दिया हुआ है, अधिक उपयुक्त होगा। अत: परादिकों में परिवर्तन करने का प्रभाव यही है कि परादिक (क) के प्रथम भाग को निकाल दिया जायेगा। ये मुख्य परिवर्तन इस संशोधन में प्रस्थापित किये गये हैं, अर्थात् कुछ विषयों का निकाल देना जो मुझे व्यर्थ प्रतीत हुये। एक या दो बातें और हैं, जिनकी शायद उपेक्षा की गई है। इस संशोधन की प्रस्थापना मैं बड़े सम्मान के साथ कर रहा हूं। प्रारूप समिति ने जो महान् कार्य किया है, मैं उसकी किंचित मात्र भी उपेक्षा नहीं करता हूं।

इस सम्बन्ध में मेरा दूसरा संशोधन, जिसे मैं पेश करता हूं, इस प्रकार है कि:

''अनुच्छेद 2 में से 'समय-समय पर' शब्दों को हटा दिया जाये।''

''समय-समय पर'' शब्दों ने पहले भी कुछ कठिनाई उपस्थित की थी। ये शब्द सामान्य खण्ड अधिनियम (General Clauses Act) में दिये हुये हैं। उस अधिनियम के अधीन यदि कोई शक्ति या अधिकार दिया जाता है, तो यह समझा जाता है कि जब तक कि स्पष्टतया कोई विपरीत उल्लेख न हो, तब तक उस शक्ति या अधिकार का प्रयोग ''समय-समय पर जैसा अवसर हो'' किया जा सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि यदि कोई शक्ति दी जाती है, तो उस शक्ति का प्रयोग समय-समय पर किया जा सकता है, जब तक कि उसके प्रयोग न करने

के लिये निश्चित रूप से आदेश न दिया गया हो। विधान के प्रारूप में यह पद बार-बार मिलता है। विधान के प्रारूप की धारा 303 के अनुच्छेद (2) में हमने विशिष्ट प्रावधान रखे हैं, जिनमें यह दिया हुआ है कि इस विधान की व्याख्या करने में सामान्य खण्ड अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे। मैं उस वाक्यखंड को पढ़कर सुनाता हूं:

"जब तक प्रसंग द्वारा अन्य अर्थ अपेक्षित न हो, इस विधान की व्याख्या करने में सामान्य खंड अधिनियम सन् 1897 ई. का (सन् 1897 ई. का 10) लागू होगा।"

इस सम्बन्ध में भारतीय सरकार का अधिनियम यू.के. के सन् 1889 ई. के व्याख्या सम्बन्धी अधिनियम (Interpretation Act) द्वारा नियंत्रित था, और अनुच्छेद 303 का यह वाक्य-खंड (2) भारतीय अधिनियम के उसी प्रावधान के समान है। अत: इसका यह अर्थ निकला कि इस विधान की व्याख्या के लिये हमें सामान्य खंड अधिनियम का आश्रय लेना चाहिये। और सामान्य वाक्यखंड अधिनियम निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था करता है कि "समय-समय पर" शब्दों की बार-बार पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये। जब हम यह कहते हैं कि औचित्य प्रश्न पर अध्यक्ष व्यवस्था दे सकते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि वे समय-समय पर जब जैसा अवसर हो व्यवस्था दे सकते हैं। इसी प्रकार व्यावहारिक जीवन में और कानून के दिन प्रतिदिन के प्रारूप में हम एक अटल नियम के समान यह देखते हैं कि इस पद की पुनरावृत्ति बार-बार अनेकों स्थलों पर नहीं की जाती है। स्वयं इसी विधान में "समय-समय पर" शब्द सब स्थलों पर नहीं मिलते हैं। सभा इस बात पर ध्यान देगी कि अनुच्छेद (2) पंक्ति 1 में "समय-समय पर" शब्द मिलते हैं। "पार्लियामेंट समय-समय पर..." और अनुच्छेद (3) में हमें केवल "पार्लियामेंट कानून द्वारा..." ही मिलता है और "समय-समय पर" नहीं मिलता। ऐसे अनेकों अन्य स्थल है, जहां ऐसे समान प्रसंगों में "समय-समय पर" शब्द नहीं मिलते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि प्रारूप का समान रूप होना चाहिये। यदि एक स्थान पर हम "समय-समय पर" शब्दों को रखते हैं और अन्य समान स्थान पर इन शब्दों को नहीं रखते, तो यह तर्क उठाया जा सकता है कि एक स्थान पर शक्ति का समय-समय पर प्रयोग किया जा सकता है। और दूसरे स्थान पर उसका प्रयोग समय-समय पर नहीं किया जा सकता है। इस कारण मैं कहता हूं कि प्रारूप के विषय में एकरूपता होनी चाहिये। "समय-समय पर" शब्दों को हटा देना चाहिये

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

और यदि उनका प्रयोग करना ही है, तो अन्य समस्त समान स्थलों पर उनका प्रयोग होना चाहिये।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं सभा के विचारार्थ अपना संशोधन पेश करता हूं। मैं केवल विचार-विमर्श के लिये इन बातों को रखना चाहता था और यदि आवश्यक समझा जाये, तो अनुच्छेद का फिर से प्रारूप बनाने के लिये मैं इन बातों को पेश करता हूं और ये बातें विचार करने योग्य हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं। ये भाषा सम्बन्धी विषय है और मैं तो आपसे यह भी निवेदन करूंगा कि आप इस प्रकार के संशोधनों को पेश करने की आज्ञा न दें। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि इस पर अब मत ले लिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 131 और 132 पर मैं मत लूंगा। डा. अम्बेडकर बोल चुके हैं और अब और वाद-विवाद नहीं हो सकता।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। यदि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाता है तो यह अनुच्छेद 3 का भी संशोधन करेगा। अतः जब तक कि यह व्यवस्था नहीं दी जाती कि इस संशोधन के सम्बन्ध में अनुच्छेद 2 और 3 दोनों पर वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श किया जाता है, तब तक इस संशोधन पर मत नहीं लिया जा सकता। जैसा कि मैंने कहा है कि यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह अनुच्छेद 3 का भी संशोधन करेगा।

संशोधन अस्वीकार किये गये।

***उपाध्यक्षः** मैं देखता हूं कि संशोधन संख्या 133 प्रस्तावना से सम्बन्धित है, अतः उसको बाद में लिया जायेगा; उसके लिये यह स्थल उपयुक्त नहीं है।

संशोधन संख्या 134 और 135 पेश नहीं किये जाते हैं।

संशोधन संख्या 136 पर विचार समाप्त हो चुका।

संशोधन संख्या 137 शाब्दिक परिवर्तन के सम्बन्ध में है, मैं इसे नियम विरुद्ध ठहराता हूं।

संशोधन संख्या 138 पेश नहीं किया जाता है।

तत्पश्चात् मैं अनुच्छेद 2 पर मत लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 2 पर बोलना चाहता हूं।

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद में कुछ कमी है, जिसकी मेरे माननीय मित्र जो कि योग्य स्मृतिज्ञ तथा विचार-विशेषज्ञ है, समिति द्वारा इस अनुच्छेद का प्रारूप बनाते समय पूर्ति करेंगे। यदि हम संघीय-विधान समिति की रिपोर्ट को देखें—मैं कमेटी की रिपोर्टों की द्वितीय ग्रन्थमाला, जुलाई सन् 1947 ई. से अगस्त सन् 1947 ई. तक, में से पढ़ रहा हूं, जिसकी प्रति गत वर्ष प्रत्येक सदस्य को दी गई थी। इसमें अनुच्छेद 2 इस प्रकार आरम्भ होता है:

''संधान का पार्लियामेंट'' यह सच है कि हमने संधान के स्थान में संघ शब्द रखा है, परन्तु यहां अनुच्छेद 2 में आप पार्लियामेंट शब्द को एक दम ले आते हैं, बिना यह कहे हुये कि यह किस पार्लियामेंट का उल्लेख करता है। यह एक कमी है, क्योंकि अभी तक पहले अनुच्छेद में पार्लियामेंट के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। अत: हमें यहां पर ''संघ की पार्लियामेंट'' कहना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि कमी की पूर्ति की जायेगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री कामत ने जो कुछ कहा है, उसका हम ध्यान रखेंगे।

***उपाध्यक्षः** सभा के समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 2 विधान का अंग माना जाये।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 2 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 3

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 3 पर आते हैं।

संशोधन संख्या 139 निषेधात्मक संशोधन है और नियम-विरुद्ध है। इसके पश्चात् हम संशोधन संख्या 140 पर आते हैं।

पेश नहीं किया गया।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 3 के खंड (क) में निम्न शब्द बढ़ा दिये जायें:

'अथवा राज्यों या राज्य के भागों में अन्य प्रदेशों को मिलाकर।''

मुझे सभा का समय नहीं खोना चाहिये। यह केवल खंड (क) को पूर्ण तर्कयुक्त बनाता है, क्योंकि किसी समाविष्ट राज्य के एक भाग से अन्य प्रदेशों को मिलाकर, जो भारत द्वारा अवाप्त किये जा सकते हैं, एक नया राज्य बनाया जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं सभा से निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करे, क्योंकि इसके बढ़ाने से ही यह अनुच्छेद पूर्ण होता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री सन्तानम् द्वारा पेश किये गये संशोधन के सिद्धान्त से मैं सहमत हूं। प्रश्न केवल यही है कि मैं यह चाहता हूं कि भाषा में थोड़ा सा अन्तर कर दिया जाये: ''अथवा किसी राज्य के भाग से किसी प्रदेश को संयुक्त कर।''

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं इस परिवर्तन से सहमत हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 3 के खंड (क) में निम्न शब्द बढ़ा दिये जाये:

'अथवा किसी राज्य के भाग से किसी प्रदेश को संयुक्त कर।' ''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 3 खंड (ङ) के अन्त में निम्न नवीन परादिक बढ़ा दिया जाये:

'परन्तु कानून-निर्माण की प्रत्येक प्रस्थापना, जो किसी वर्तमान राज्य के क्षेत्र को बढ़ाती या घटाती है अथवा उसके नाम या सीमाओं में परिवर्तन करती है, सम्बन्धित अथवा प्रभावित राज्य के विधान-मंडल में उसी प्रकार से प्रारम्भ की जायेगी जो प्रकार कि सम्बन्धित विधान-मंडल की कार्य पद्धति के नियमों के अनुकूल समझा जाये।'

श्रीमान्, इस प्रस्थापन द्वारा सर्वप्रथम उस राज्य के विधान-मंडल से, जिसके नाम या सीमाओं में परिवर्तन होने वाला है, या जिसका क्षेत्र घटाया या बढ़ाया जाने वाला है, परामर्श करना चाहिये। हम सबको यह विदित है कि इस संघ की वर्तमान अंगभूत इकाइयां परस्पर समान नहीं है, तर्क सम्मत नहीं हैं और उनकी ऐसी सुन्दर रचना नहीं है कि वे देश की उन्नति अथवा अपने क्षेत्र ही की उन्नति में सहायक हो सकें। यह आवश्यक है और सम्भव है कि शीघ्र ही किसी न किसी रूप में यह क्रियान्वित करना पड़े कि इन क्षेत्रों का पुनर्निर्माण हो। जिसका यह अर्थ है कि उनकी सीमाओं में, शायद उनके नामों में भी, और उनके राज्य क्षेत्रों में परिवर्तन किया जाये—बढ़ाये जाये या घटाये जाये। यदि ऐसा आवश्यक हो तो मैं निवेदन करता हूं कि जिन लोगों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता हो, उनसे उनके सम्बन्ध में परामर्श करना उचित होगा और यदि प्रभावान्वित जनता की सम्मति द्वारा यह न हो तो कम से कम विधान-मंडल के परामर्श द्वारा होना चाहिये, अपेक्षाकृत इसके कि परिवर्तन का ऊपर से आरोपण किया जाये जैसा कि मेरी राय से खंड के वर्तमान रूप से अपेक्षित है। सर्वप्रथम जिन लोगों पर प्रभाव पड़ता है, वे उस क्षेत्र के ही लोग हैं, जिसकी सीमाओं या नाम में परिवर्तन होने वाला है या जिस क्षेत्र की स्थिति का किसी प्रकार से पुनर्निर्माण करना है। और यह एक साधारण बात है। केवल मौलिक सिद्धान्तों का विषय है कि लोक-राज्य में जिन लोगों पर किसी परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है, उन लोगों से आपको परामर्श करना चाहिये। उस परिवर्तन का ऊपर से निर्धारण न होना चाहिये। मैं यह मानता हूं कि अनुच्छेद के वर्तमान रूप में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी किसी अवस्था में या तो आपके पास केन्द्रीय पार्लियामेंट में लोक-प्रतिनिधियों की ओर से इस प्रकार के परिवर्तन का विचार आना चाहिये, अथवा विकल्पतः सम्बन्धित जनता के प्रतिनिधि इस विषय में प्रधान से मिलने चाहियें। परन्तु यह कार्य तो केन्द्रीय प्राधिकारी का हुआ न कि उन लोगों का, जिनके ऊपर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ेगा। मैं निवेदन करता हूं कि सिद्धान्त रूप में यह गलत रास्ता है। विधान के मसौदे का सामान्य प्रवाह, जैसा कि मुझे विदित होता है, अनावश्यक तथा अधिकाधिक रूप में केन्द्र को अधिकार देने की ओर है और वह भी केवल अंगभूत इकाइयों का घोर विरोध करके ही नहीं, वरन् लोकतंत्र के उस आधारभूत विचार का विरोध कर, जिसका हम अपने मुंह मियां मिट्ठू बन कर इस विधान में समावेश करते हैं। यदि यह जनतंत्रात्मक विधान है, यदि हम यह चाहते हैं कि जनता स्वयं शासन करे अथवा यह कि यदि आज वे इस कार्य का संपादन

[प्रो. के.टी. शाह]

करने के योग्य नहीं हैं, तो स्वशासन के योग्य बनने के लिये तथा आचरण करने के लिये त्रुटियां करके भी अनिवार्य रूप से सीखें, तो मेरे विचार से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रकार के प्रावधान पर जोर दिया जाये।

वर्तमान अंगभूत इकाइयों में परिवर्तन सम्बन्धी, उनके राज्य-क्षेत्रों, सीमाओं अथवा नामों में परिवर्तन सम्बन्धी कोई प्रश्न उन लोगों से आरम्भ होना चाहिये, जिन पर उसका प्राथमिक प्रभाव पड़ता है। केन्द्र के अधिकारियों द्वारा यह प्रश्न नहीं उठना चाहिये। यह स्पष्ट है कि केन्द्र के अधिकारी स्थानीय परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित नहीं हो सकते, अथवा हो सकता है कि उस मार्ग को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिये उनका दृष्टिकोण, उनके विचार और कारण कुछ और ही हों। सम्बन्धित क्षेत्र के प्रतिनिधियों के किसी प्रस्ताव अथवा अन्य कार्यप्रणाली द्वारा कार्रवाई करने पर भी केन्द्र का अधिकारी केवल उन चन्द व्यक्तियों से मार्ग प्रदर्शन पा सकता है, जो निर्वाचन की किसी योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय पार्लियामेंट में उन क्षेत्रों के प्रतिनिधि बन कर आ गये होंगे। वह समस्त जनसंख्या से सम्बन्धित क्षेत्र के वयस्क मतदाताओं से तो परामर्श कर ही नहीं सकता, जिसकी इस प्रकार की किसी पुनर्व्यवस्था के लिये प्रथम आवश्यकता है।

कहीं मुझे गलत न समझा जाये, इसलिये मैं यह कहूंगा कि वास्तव में मैं इस वर्तमान स्थिति से अथवा वर्तमान रूप में प्रान्तों और रियासतों के क्रम को जारी रखने से प्रसन्न नहीं हूं। उनमें परिवर्तन होना चाहिये और उनमें परिवर्तन करना चाहिये। परन्तु जिस प्रकार कि वे लोग जिन पर परिवर्तन का खास प्रभाव पड़ता है, चाहते हैं उसी प्रकार परिवर्तन होना चाहिये न कि उन पूर्वधारणाओं, विचारों और व्यवस्थाओं के अनुसार जो कि केन्द्र के सदस्य माने हुये हैं फिर चाहे इन केन्द्र के सदस्यों में उन लोगों के प्रतिनिधि भी हों।

इसलिये मैं इसे आवश्यक बनाना चाहता हूं कि सर्वप्रथम चाहे संयुक्त करने के लिये हो, चाहे पृथक् करने के लिये, चाहे सीमाओं की पुनर्व्यवस्था हो, चाहे कोई नया आकार-प्रकार बनाना हो, आन्दोलन स्वयं जनता से आरम्भ होना चाहिये। इस विषय में एक और बात विचारणीय है, जिसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये और वह यह है कि इस प्रकार की किसी भी पुनर्व्यवस्था का केवल एक ही समूह पर प्रभाव नहीं पड़ेगा या उससे केवल एक ही समूह का सम्बन्ध नहीं होगा; कम से कम दो अथवा अधिक समूहों पर प्रभाव पड़ेगा। अत: इन दो समूहों

अथवा अधिक समूहों के प्रतिनिधि इस योग्य न हों कि वे समस्त जनता के विचारों का प्रदर्शन कर सकें। यह मानता हूं कि लोकतंत्र में बहुसंख्यकों का राज्य होना चाहिये। परन्तु बहुसंख्यकों को यह एकाधिकार प्राप्त नहीं है कि वे सदैव ठीक तथा सदैव न्यायपूर्ण ढंग से सोचें। यदि ऐसा है और मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि ऐसा ही है, तो मैं निवेदन करता हूं कि यदि आप लोकतंत्र का प्रचलन चाहते हैं, तो इलाज केवल यही है कि इस प्रकार की पुनर्व्यवस्था के लिये पहले से ही सम्मति प्राप्त कर ली जानी चाहिये और जिन लोगों का उससे सम्बन्ध है, उन्हीं लोगों द्वारा यह आरम्भ होना चाहिये। सीमाओं की वास्तविक पुनर्व्यवस्था, नई इकाइयों का वास्तविक निर्माण योग्य-सीमा आयोगों पर छोड़ देना चाहिये, जिसकी नियुक्ति या तो एतदर्थ इसी विशेष प्रयोजन के लिये हो या सामान्य रूप में एक प्रकार से कानून द्वारा स्थापित वैधानिक अधिकार द्वारा हो, जिनका रूप अर्ध-न्यायिक हो और वे इन विषयों पर निश्चय करें। परन्तु ऐसे किसी प्रावधान की अनुपस्थिति में तथा ऐसी किसी योजना से पृथक् जिसका नियोजन बाद में हो, मेरे विचार से इस सिद्धान्त को कभी नहीं भुला देना चाहिये कि इस विषय का आरम्भ केवल उन्हीं लोगों द्वारा हो जिनका इससे सम्बन्ध है। केवल विधान-मंडल के मत की अपेक्षाकृत मैं स्वयं तो सीधे लोक-सम्मति के पक्ष में हूं, परन्तु क्योंकि इस प्रकार की आदरणीय सभा में लोक-सम्मति का सुझाव बहुत क्रांतिकारी समझा जायेगा, इसलिये मेरा सुझाव, जिसे मैंने अपने संशोधन में रख दिया है, वह यह है कि केवल विधान-मंडल से परामर्श कर लिया जाये और समस्त जनता से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। मेरा विश्वास है कि मेरे इस पूर्ण और सहज संयम का प्रमाण सभा को स्वीकार होगा और संशोधन का केवल यह कहकर विरोध नहीं किया जायेगा कि ''मैं विरोध करता हूं'' परन्तु इस प्रकार के हुक्मनामे की अपेक्षा किसी प्रकार के तर्कयुक्त उत्तर से विरोध किया जायेगा। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखता हूं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं एक निवेदन करना चाहता हूं। मेरे विचार से डा. अम्बेडकर अपना संशोधन पेश कर दें, तो विषय साफ हो जायेगा और हममें से जिन लोगों के नाम से संशोधन हैं, वे यह निश्चय कर सकेंगे कि उनको अपना संशोधन पेश करना चाहिये या नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूं। डा. अम्बेडकर अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 3 के वर्तमान परादिकों के स्थानों में निम्न परादिक रखे जायें:

'पर इस प्रयोजन के लिये कोई विधेयक पार्लियामेंट की किसी सभा में न रखा जायेगा, सिवाय अध्यक्ष की सिफारिशों के और वह भी तब जब कि:

(क) यदि विधेयक में दी हुई प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नाम पर पड़ता हो तो विधेयक की प्रस्थापना के सम्बन्ध में और उस विधेयक के प्रावधानों के सम्बन्ध में अध्यक्ष ने उस राज्य के अथवा प्रत्येक राज्य के, जैसी भी स्थिति हो, विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से न जान लिये हों; और

(ख) यदि ऐसी प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य या राज्यों की सीमाओं अथवा नाम पर पड़ता हो, तो उस प्रस्थापना के लिये उस राज्य अथवा प्रत्येक राज्य की, जैसी भी स्थिति हो, पूर्व सहमति न ले ली गई हो।"

श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, यदि संशोधित परादिकों को विधान के प्रारूप में दिये हुये मूल परादिकों से तुलना करें, तो सदस्यों को यह प्रतीत होगा कि नये संशोधन दो परिवर्तन उपस्थित करते हैं। एक यह है: मूल प्रारूप में विधेयक को रखने का अधिकार केवल भारतीय सरकार को ही दिया गया था। मूल प्रारूप में इस प्रकार के किसी कानून बनाने के प्रस्ताव को रखने का अधिकार पार्लियामेंट के किसी गैर-सरकारी सदस्य को नहीं था। प्रारूप-समिति का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया गया था कि यह पार्लियामेंट के सदस्यों के किसी प्रस्ताव को, जिसे वे चाहें और जिससे उनका सम्बन्ध हो, पेश करने के अधिकारों में कुछ कठोर तथा अनावश्यक रूप से कमी करता है। परिणामस्वरूप हमने केवल भारतीय सरकार को अधिकार देने वाले प्रावधान को निकाल दिया है और

अध्यक्ष को यह अधिकार दे दिया है और यह कह दिया है कि इस प्रकार के किसी भी विधेयक पर, चाहे वह भारतीय सरकार द्वारा उपस्थित किया गया हो, चाहे किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा प्रधान की सिफारिश होनी चाहिये। यह एक परिवर्तन है।

दूसरा परिवर्तन यह है : मूल अनुच्छेद 3 में किसी विधान-निर्माण के लिये भारतीय सरकार के अधिकार को दो प्रतिबंधों से नियंत्रित किया गया था, जो कि (क) (1) और (2) में दिये हुये हैं। प्रतिबंध ये थे कि किसी कार्य के आरम्भ करने के पूर्व उस राज्य के विधान-मंडल में उस क्षेत्र के प्रतिनिधियों के बहुमत द्वारा प्रधान से निवेदन किया जाना चाहिये, या विधेयक में दी हुई प्रस्थापना जिसे राज्य की सीमाओं अथवा नाम पर प्रभाव डालती हो तो, उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा उस सम्बन्ध का प्रस्ताव रखा गया हो। यहां यह और भी दिया गया था कि ऐसा कोई छोटा अल्पमत हो सकता है, जिसकी यह दृढ़ धारणा हो कि उसकी स्थिति तब तक सुरक्षापूर्ण नहीं होगी, जब तक कि उस राज्य की सीमाओं में परिवर्तन नहीं होगा और उस विशिष्ट अल्पमत को दूसरे राज्य के बन्धुओं से मिलने नहीं दिया जायेगा और तदनुसार यदि उन बन्धुओं को वहां रहने दिया जाता है, तो कार्य पूर्णतया असफल हो जायेगा। अत: संशोधित मसौदे में हम अब यह प्रस्ताव रखते हैं कि मूल मसौदे में से (क) के (1) और (2) तथा (ख) को भी निकाल दिया जाये। इनको दो भागों (क) और (ख) में रख दिया है। (क) उन प्रदेशों के पुनर्संगठन से सम्बन्ध रखता है जो भाग 1 के राज्यों पर प्रभाव डालते हैं, अर्थात् प्रान्त और नये संशोधन का भाग (ख) वर्तमान समय में देशी रियासतें कहे जाने वाले राज्यों से सम्बन्ध रखता है। मेरे संशोधन के नये उपखंड (क) और (ख) में यह अन्तर है कि (क) में अर्थात् भाग 1 के अन्तर्गत राज्यों के प्रदेशों के पुनर्संगठन में केवल परामर्श करना ही आवश्यक है, सहमति की आवश्यकता नहीं। प्रधान को केवल यह करना होगा कि सिफारिश करने के पूर्व वे इस बात से संतुष्ट हो जायें कि उनसे परामर्श कर लिया गया है।

(ख) में सहमति का प्रावधान है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, अन्तर इस तथ्य पर आश्रित है कि जहां तक हमारा सम्बन्ध है, अभी तक प्रान्तों की स्थिति रियासतों की स्थिति से भिन्न है। रियासतें सर्वसत्ताधारी राज्य है और प्रान्त सर्वसत्ताधारी

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

नहीं है। अत: सरकार के लिये यह आवश्यक नहीं है कि प्रान्तों की सीमाओं में परिवर्तन करने के लिये यह उनकी सहमति ले; परन्तु देशी रियासतों के लिये ऐसा करना समुपयुक्त है, क्योंकि उनके साथ अभी तक सर्वसत्ताएं हैं और उनकी सहमति ली जानी चाहिये।

प्रोफेसर शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन और मेरे संशोधन के नये परादिकों के उपखंड (क) में मुझे कुछ अधिक अन्तर दिखाई नहीं देता है। उनका कहना है कि विवाद राज्यों में प्रारम्भ हो। मेरे परादिकों के उपखंड (क) में भी यह व्यवस्था की गई है कि राज्यों से परामर्श किया जाये। प्रधान परामर्श करने की जिस विधि को ग्रहण करेंगे, उसके सम्बन्ध में मुझे कोई संशय नहीं है। वह यही होगी कि वे या तो प्रधानमंत्री से या गवर्नर से कहेंगे कि वह एक प्रस्ताव रखें और उस पर उस राज्य के विधान-मंडल में वाद-विवाद हो, जिस पर कि प्रभाव पड़ता है। अत: आरम्भ स्थानीय विधान-मंडल द्वारा ही किया जायेगा न कि पार्लियामेंट द्वारा। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि प्रोफेसर शाह का संशोधन वास्तव में अनावश्यक है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं नहीं कह सकता कि प्रोफेसर शाह अपने संशोधन की पेचीदगियों को पूर्णतया समझते भी हैं या नहीं। यदि उनका संशोधन मान लिया जाता है तो उसका यह आशय होगा कि किसी भी राज्य का अल्पमत एक नये प्रान्त बनाने या समवर्त्ती प्रान्त में मिलने के लिये प्रदेश पृथक् करने का निवेदन नहीं कर सकेगा, जब तक कि वह उस राज्य के विधान-मंडल में बहुमत प्राप्त न कर लें। मैं नहीं समझ पाता कि ''आरम्भ करने'' से उनका क्या आशय है। उदाहरणार्थ मद्रास प्रान्त को ही ले लीजिये। आन्ध्र निवासी चाहते हैं कि वे पृथक हो जायें। वे मद्रास विधान-मंडल में प्रस्ताव उपस्थित करते हैं। बहुमत द्वारा वह प्रस्ताव गिर जाता है और वहीं कार्य समाप्त हो जाता है। आन्ध्र निवासियों का मार्ग पूर्णतया रुक जाता है। आन्ध्र प्रान्त बनाने के लिये वे और कोई कार्रवाई नहीं कर सकते हैं। इसके विपरीत जैसा कि माननीय डा. अम्बेडकर ने फिर से मसौदा बनाया है, यदि आन्ध्र निवासी विधान-मंडल में बहुमत प्राप्त करने में असफल होते हैं, तो वे सीधे प्रधान के पास जा सकते हैं और उनसे

यह निवेदन कर सकते हैं कि उनके विषय में बहुमत ने क्या किया और अपने लिये प्रान्त बनाने के मार्ग में रुकावट को दूर करते हुए आगे और कार्रवाई करने के लिये प्रार्थना कर सकते हैं। यदि प्रधान उनकी बात से संतुष्ट हो जायेंगे, तो वे उसकी सिफारिश कर सकते हैं और या तो भारतीय सरकार स्वयं इस प्रयोजन का कानून ला सकती है या कोई गैर सरकारी सदस्य अथवा केन्द्रीय विधान-मंडल के कुछ सदस्य मिल कर इस प्रश्न को उठा सकते हैं। ऐसा प्रोफेसर शाह नहीं चाहते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से अपने उत्साह में, जिसे वे सिद्धान्त कहते हैं, उन्होंने ऐसा संशोधन रखा है, जो उनके ही उद्देश्यों की पराजय करता है। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि उनके संशोधन को अस्वीकार किया जाये और डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को स्वीकार किया जाये।

***उपाध्यक्षः** श्री सिधवा।

***श्री आर.के. सिधवाः** उपाध्यक्ष महोदय...

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या हम संशोधन 149 और 150 पर साथ-साथ विचार कर रहे हैं? संशोधन 150 पर दो संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** जो कुछ श्री सिधवा कहना चाहते हैं, उसे हम सुन लें। जिन संशोधनों की ओर श्री कामत ने ध्यान आकर्षित किया है, हम उनको अवश्य लेंगे।

***श्री आर.के. सिधवाः** प्रोफेसर शाह द्वारा प्रेषित संशोधन के विरुद्ध श्री सन्तानम् ने जो तर्क उपस्थित किया है, उससे मैं सहमत नहीं हूं। उन्होंने कहा कि आन्ध्र के पृथक् करने का प्रस्ताव यदि मद्रास विधान-मंडल में बहुमत से गिर जाता है तो डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के अन्तर्गत उन सदस्यों को, जिन पर प्रभाव पड़ता है, केन्द्र के प्रधान के समक्ष अपना विषय रखने का अधिकार है। श्रीमान् यदि प्रस्ताव का यही प्रभाव है, तो मैं उसका स्वागत नहीं करता हूं। लोकतंत्र में बहुमत की व्यक्त अभिरुचि के विरुद्ध प्रधान की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न अनुचित है। यदि बहुमत कहता है कि वह आन्ध्र का पृथक्करण नहीं चाहता है, तो अल्पमत को यह अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह गुप्त रीति से अध्यक्ष के पास जाये और पृथक्करण पर जोर दे।

परन्तु इस विषय में मैं प्रोफेसर शाह के विचारों का भी साथी नहीं हूं। डा. अम्बेडकर का संशोधन बहुत स्पष्ट तथा व्यापक है। वह कहता है कि यदि कोई

[श्री आर.के. सिधवा]

व्यक्ति नाम में परिवर्तन चाहता है या पृथक् होना चाहता है, वह उसके लिये स्थानीय विधान-मंडल में प्रस्ताव रख सकता है। प्रोफेसर शाह भी यही चाहते हैं। पर मुझे ऐसा लगता है कि डा. अम्बेडकर का सरकारी प्रस्ताव अधिक व्यापक है और उसका समर्थन करना चाहिये। यद्यपि प्रोफेसर शाह ने यह कहा कि इस प्रकार के विषयों पर उनके मन में लोकमत का विचार है, पर संशोधन में ऐसा नहीं कहा गया है। यदि लोकमत लेना ही है, तो विधान-मंडल को यह आवश्यक रूप से अधिकार प्राप्त है ही कि वह ऐसा करे। श्री सन्तानम् का तर्क मुझे प्रभावित नहीं करता है। पर जैसा कि मैंने कहा, प्रोफेसर शाह का संशोधन प्रावधान की उपयोगिता को प्रतिबन्धित करता है, इसलिये मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करने की सभा से प्रार्थना करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

(*संशोधन पेश नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्ष:** श्री हृदयनाथ कुंजरू।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं कि:

> ''डा. अम्बेडकर के संशोधन में, जो अभी पेश किया गया है, 'पूर्व सहमति' शब्दों के स्थान में 'विचार' शब्द और 'ले ली गई हो' शब्दों के स्थान में 'जान लिये हों' शब्द रखे जाये।''

श्रीमान्, जैसा कि माननीय सदस्यों को स्पष्ट विदित होगा, मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को, जहां तक कि किसी राज्य के प्रदेश के पुनर्संगठन का सम्बन्ध है, उसी स्तर पर लाया जाये जिस पर कि अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्य हैं। डा. अम्बेडकर ने हमें बताया है कि संशोधन में क्यों कर अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों और भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में विचार करने में अन्तर रखा गया है। उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि अनुच्छेद के भाग 3 में उल्लिखित राज्य सर्वसत्ताधारी राज्य हैं और इस कारण वे प्रान्तों से उच्च स्थिति धारण किये हुये हैं। अत: जब कि प्रान्तों के प्रदेशों के पुनर्संगठन में प्रान्तों की सहमति लेने की

आवश्यकता नहीं है तब यदि किसी प्रकार से भी रियासतों की सीमाओं में परिवर्तन किया जाता है, तो अनुसूची के भाग 3 के राज्यों की सहमति लेनी आवश्यक है।

श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि विधान में ऐसे अनेकों प्रावधान हैं जो कि डा. अम्बेडकर के अभी बताये हुये सिद्धान्त के अनुसार नहीं हैं। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 226 को ही लीजिये। इस अनुच्छेद में दिया हुआ है कि जब राज्य-परिषद् ने विनिहित बहुमत द्वारा यह घोषित कर दिया हो कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक अथवा उपयुक्त है कि पार्लियामेंट राज्य सूची में अंकित और उस संकल्प में उल्लिखित किसी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाये, "तो पार्लियामेंट के लिये उस विषय के सम्बन्ध में, समस्त भारतीय राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिये कानून बनाना वैध होगा। इस प्रावधान से यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सर्वसत्ताधिकारी होते हुये भी संघीय-पार्लियामेंट कुछ परिस्थितियों में उन विषयों के सम्बन्ध में भी कानून बना सकती है, जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार उन राज्यों ने अपने प्रवेश-विलेख में संघीय-पार्लियामेंट को नहीं सौंपा है। मैं जानता हूं कि मसौदा-समिति ने इस खंड का फिर से मसौदा बनाया है। यह व्यवस्था कर दी गई है कि अनुच्छेद 226 में उल्लिखित प्रकार के कानून निर्माण की आवश्यकता अथवा वांछनीयता के सम्बन्ध में राज्य-परिषद् द्वारा की गई घोषणा लगातार तीन वर्ष के लिये सीमित होनी चाहिये, परन्तु उसको बार-बार दुहराया जा सकता है। अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत जो अधिकार संघीय-पार्लियामेंट प्राप्त करती है, उसकी अवधि चाहे कितनी ही हो यह स्पष्ट है कि प्रान्तों और देशी रियासतों में किसी अन्तर को न रखते हुए संघीय-पार्लियामेंट कुछ परिस्थितियों में उस विषय के सम्बन्ध में भी कानून बना सकती है, जिसके सम्बन्ध में देशी रियासतों ने अपने कानून निर्माणाधिकार का परित्याग नहीं किया है। अत: मुझे कोई तर्क इसके विरुद्ध दिखाई नहीं देता है कि जिस सिद्धान्त पर अनुच्छेद 226 आश्रित है, उसी सिद्धान्त के अनुसार हम ऐसी व्यवस्था क्यों न करें कि प्रदेशों के पुनर्संगठन के विषय में भी प्रान्तों और रियासतों को एक आधार पर आश्रित किया जाये।

केवल अनुच्छेद 226 ही एक ऐसा उदाहरण नहीं है कि जिसमें प्रान्तों और रियासतों के सम्बन्ध में समान रूप से विचार किया गया है, फिर प्रवेश-विलेख में चाहे कुछ भी क्यों न हो। दूसरा उदाहरण—मैं सभा से निवेदन करूंगा कि

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

वह अनुच्छेद 230 को देखे, जो अन्तर्राष्ट्रीय संधि, संविदा तथा संप्रतिज्ञा के सम्पालनार्थ है। यह अनुच्छेद निर्धारित करता है कि पार्लियामेंट को किसी अन्य देश अथवा देशों के साथ की हुई किसी संधि, संविदा अथवा संप्रतिज्ञा के सम्पालनार्थ किसी राज्य अथवा उसके भाग के लिये कोई कानून बनाने का अधिकार है। यदि डा. अम्बेडकर के सिद्धान्त का समान रूप से पालन किया जाता, तब तो अनुच्छेद 230 के दायरे से अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों का अपवर्जन मैं समझ सकता था; परन्तु यदि सभा द्वारा यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया गया, तो वास्तव में इसका प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों पर ही नहीं पड़ेगा, वरन् देशी रियासतों पर भी पड़ेगा; अर्थात् अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों पर भी पड़ेगा। प्रवेश-विलेख चाहे जो कुछ कहे, संघीय-पार्लियामेंट को अन्तर्राष्ट्रीय संधि, संविदा और संप्रतिज्ञा करने का अधिकार है, चाहे उनका सम्बन्ध उन विषयों से हो जो राज्य-सूची में उल्लिखित हैं।

श्रीमान्, अभी एक उदाहरण और भी है, जिसको यह सिद्ध करने के लिये दिया जा सकता है कि एक महत्त्वपूर्ण विषय पर इस विधान के मसौदे में सरकार को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह राज्यों को एक विशेष रीति के अनुसार कार्य करने के लिये आदेश दे। मैं नये मसौदे के अनुच्छेद 294 का हवाला दे रहा हूं। अनुच्छेद 294 के पहले के मसौदे में प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के विधान-मंडलों में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधान की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद का अब जिस प्रकार मसौदा किया गया है, उसके अनुसार प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के विधान-मंडलों को भी अपने-अपने राज्यों के विधान-मंडलों में कथित अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिये स्थान आरक्षण करने के लिये बाध्य किया गया है। यह उस रीति का एक और उदाहरण है, जिस रीति से कि डा. अम्बेडकर ने जो कुछ उनकी सर्वसत्ताधारी स्थिति के सम्बन्ध में कहा है, उसके होते हुये भी विधान के मसौदे ने प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों पर देय अथवा दायित्वों का आरोप किया है।

यह कहा जा सकता है कि विधान के मसौदे में से जो उदाहरण मैंने दिये हैं, उनसे यह भाव नहीं निकलता है कि संघीय-विधान-मण्डल अनुसूची के भाग 3

में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में किसी अधिकार का प्रयोग कर सकता है, जो प्रवेश-विलेख के विरुद्ध हो। यह तर्क उठाया जा सकता है कि प्रवेश-विलेख तभी स्वीकार किया जायेगा, जब कि राज्य अनुच्छेद 226, 230 और 294 में कथित दायित्वों को स्वीकार कर ले। यदि ऐसा है तो सरकार और आगे चलकर राज्यों को उनकी सीमाओं का उसी रीति से पुनर्संगठन करने के लिये, जैसे कि उनसे परामर्श करके अध्यक्ष वांछनीय समझें, राजी कर लें? मैं यह मांग नहीं कर रहा हूं कि अपनी प्रादेशिक सीमाओं से सम्बन्धित विषयों में राज्यों का हाथ न रहे। मैं केवल यह मांग कर रहा हूं कि रियासतों को अपनी सीमाओं के पुनर्संगठन में उनकी सहमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं होना चाहिये। उनसे परामर्श करना पर्याप्त होगा। साधारणतया उनके विधान-मंडलों से परामर्श कर लेना चाहिये, परन्तु क्योंकि हमको यह निश्चित रूप से पता नहीं है कि प्रत्येक रियासत का विधान-मण्डल है या शीघ्र विधान-मंडल बनेगा, इसी कारण मैं रियासतों के भी सम्बन्ध में इस प्रकार का संशोधन नहीं रख सका कि सम्बन्धित विधान-मंडलों के विचार किसी कार्य के करने के पूर्व जान लिये जाने चाहियें। मैं नहीं समझ पाता कि राज्यों की पूर्व सहमति की जितनी आवश्यकता अनुच्छेद 226, 227 और 294 से सम्बन्धित विषयों में है उससे अधिक अनुच्छेद 3 के सम्बन्ध में क्यों है। यदि सरकार अनुरूपता चाहती है, तो मेरी सम्मति से उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जो संशोधन मैंने सभा के समक्ष रखा है, उसे वह स्वीकार कर ले। विधान के मसौदे में जिस स्थिति को उसने ग्रहण किया है, उसके अनुसार वह जिस संशोधन को मैंने पेश किया है, उसके सिद्धान्त पर कोई आपत्ति नहीं उठा सकती है।

श्रीमान्, जैसा कि मैं समझता हूं, यदि मेरा संशोधन समस्त सैद्धान्तिक आपत्तियों से मुक्त है, तो क्या रियासतों के सम्बन्ध में प्रान्तों से भिन्न प्रकार से विचार करने के लिये कोई व्यावहारिक आधार प्रबल हो सकता है? मैं नहीं समझता कि ऐसा कोई भी कारण है, जिससे राज्यों को यह अधिकार दिया जाये कि वे अपने प्रादेशिक पुनर्संगठन के सम्बन्ध में, चाहे फिर यह संगठन लोकहित की दृष्टि से कितना ही आवश्यक क्यों न हो, स्थायी रूप में नकारात्मक मत दे सकें। श्रीमान्, ऐसे संघ हैं जो बहुत छोटे हैं और उनकी आय अर्वाचीन समय में सरकार को जिन कर्त्तव्यों का वहन करना होता है, उनका पालन करने के लिये बहुत ही

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

कम है। क्या यह वांछनीय है कि ये राज्य अपने नागरिकों के हितों की पूर्ण उपेक्षा करके अपने प्रदेशों के पुनर्संगठन के सम्बन्ध में समस्त प्रस्थापनाओं को नियम-विरुद्ध घोषित कर दें? यदि सरकार जनता के हित को ध्यान में रखती है—केवल प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों की जनता का ही नहीं, वरन् उसी अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों की जनता का भी ध्यान रखती है—तो उसके लिये यह आवश्यक है कि प्रादेशिक पुनर्संगठन के प्रश्न पर जिस रीति से वह चाहे उसी रीति से विचार करने के अधिकार को अपने हाथों में ले ले, फिर चाहे उसका सम्बन्ध प्रान्तों से हो अथवा देशी रियासतों से। यदि वह ऐसा न करेगी तो प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के निवासियों द्वारा उस पर यह दोष बहुत अच्छी प्रकार लगाया जा सकेगा कि वह उनके प्रति सौतेली मां का सा व्यवहार कर रही है और उनको अपने ही साधनों का यथासंभव प्रयोग करके अपने भविष्य का निर्माण करने के लिये असहाय और अकेला छोड़ दे रही है। सारा सिद्धान्त, जिस पर विधान का मसौदा आश्रित है, यह है कि कुछ सारभूत विषयों के सम्बन्ध में निर्णय करने और भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र के हित में उसका संपादन करने के लिये केन्द्रीय सरकार को पर्याप्त अधिकार होना चाहिये। श्रीमान्, मेरा संशोधन इसी आधार पर है और मैं निवेदन करता हूं कि सरकार के लिये यह अनुचित तथा असंगत होगा कि वह मेरी प्रस्थापना को इस आधार पर अस्वीकार कर दे कि यद्यपि रियासतों को कुछ विषयों में तो भारतीय विधान-मंडल की इच्छाओं के सामने सिर झुकाने के लिये बाध्य किया जायेगा, परन्तु उनके प्रदेशों के पुनर्संगठन के सम्बन्ध में उन्हें प्रान्तों के समानान्तर रखने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा फिर चाहे वह विषय कितना ही आवश्यक क्यों न हो।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहायः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरी सम्मति से प्रान्तों का निर्माण करना तथा वर्तमान प्रान्तों और रियासतों की सीमाओं का पुनर्विभाजन करना एक व्यापक रोग का रूप ग्रहण कर रहा है। मैं यह अनुभव करता हूं कि आधुनिक काल में ''एक भाषा भाषी'' और ''सांस्कृतिक'' शब्दों का जितना दुरुपयोग हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ। कानून-निर्माण में, और विशेषकर ऐसे कानून-निर्माण में, जिस पर हम विचार कर रहे हैं, हमारे लिये यह निश्चय करना आवश्यक है कि हमें किस प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना चाहिये और किस प्रकार

की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। इसी दृष्टिकोण से मैं इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में और जो संशोधन हमारे समक्ष हैं; उनके सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूं।

मुझे इसमें संदेह नहीं है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन, जो उन्होंने अपने मसौदे पर पेश किये हैं, कुछ ऐसे ही विचारों से पोषित है, जिनको मैंने आपके तथा सभा के समक्ष अभी रखा है। मसौदे में जिस प्रकार से अनुच्छेद दिया हुआ है, वह केवल यह निर्धारित करता है कि सीमाओं के पुनर्संगठन अथवा राज्य के नाम-परिवर्तन का विधेयक तभी रखा जायेगा, जब कि इस प्रकार की इच्छा उस राज्यक्षेत्र के प्रतिनिधियों के बहुमत द्वारा प्रकट की गई हो। मेरी सम्मति में मसौदे में दिये हुये अनुच्छेद की भाषा संदिग्ध है। क्योंकि उसके अनुसार राज्यक्षेत्र के प्रतिनिधि का अर्थ समस्त प्रान्त के राज्यक्षेत्र से हो सकता है और वर्तमान मसौदे के अन्तर्गत समस्त प्रान्त के प्रतिनिधियों को, इसके पूर्व कि इस प्रकार का कानून-निर्माण पार्लियामेंट में आ सके, अपनी सम्मति देने की आवश्यकता हो सकती है। और अब डा. अम्बेडकर ने वह संशोधन पेश किया है, जिसमें प्रान्तों के और प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के निश्चय रूप से विचार जान लेने की रीति में अन्तर है। यद्यपि पंडित कुंजरू की एक बात से मैं सहमत हूं, जो उन्होंने अभी कही थी कि इस अन्तर के लिये कोई कारण नहीं है, परन्तु जो संशोधन उन्होंने प्रस्थापित किया है, मैं उससे सहमत नहीं हूं। मेरे विचार से दोनों प्रान्तों और देशी राज्यों के लिये "पूर्व सहमति" शब्द रखने चाहिये। डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये परादिकों के भाग (क) में ये शब्द है—"यदि विधेयक में दी हुई प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य अथवा राज्यों की सीमाओं अथवा नाम पर पड़ता हो, तो विधेयक की प्रस्थापना के सम्बन्ध में और उस विधेयक के प्रावधानों के सम्बन्ध में अध्यक्ष ने उस राज्य के अथवा प्रत्येक राज्य के, जैसी भी स्थिति हो, विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से न जान लिये हों।"

श्रीमान्, यह प्रान्तों के सम्बन्ध में है। जब वे इस परादिक के भाग (ख) पर आते हैं, जो कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों अर्थात् देशी राज्यों के सम्बन्ध में है, तो वे कहते हैं—"उस प्रस्थापना के लिये उस राज्य अथवा प्रत्येक राज्य की, जैसी भी स्थिति हो, पूर्व सहमति न ले ली गई हो"। श्रीमान्,

[रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय]

एक कठिनाई है जिसे मैं इस संशोधन में देखता हूं। मान लीजिये की सीमाओं का पुनर्संगठन ऐसे दो राज्यों में हो, जिनमें से एक प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित हो और दूसरा प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित हो, तो प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्य के सम्बन्ध में विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से जानने होंगे और दूसरे राज्य के सम्बन्ध में उसकी सहमति ले लेनी होगी और यदि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्य प्रान्त के सहमत हो जाने पर भी सहमति नहीं देता है, तो पुनर्संगठन नहीं किया जा सकेगा। अतः पं. कुंजरू के समान मेरे भी यही विचार हैं कि इन दो प्रावधानों में परस्पर अन्तर नहीं होना चाहिये। परन्तु प्रान्तों को इतनी अधिक सुविधा देने के स्थान में मैं यह निवेदन करूंगा कि डा. अम्बेडकर इस बात पर विचार करें कि क्या यह उचित नहीं होगा कि ''सहमति'' शब्द को प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में रख दिया जाये। मेरे नाम से एक संशोधन था जिसकी संख्या सूची में 161 है। परन्तु मेरा ऐसा ख्याल है कि डा. अम्बेडकर के इस संशोधन को इस सभा का बहुत अधिक समर्थन प्राप्त होगा और प्रारूप में दिये हुये प्रावधान पर मेरे संशोधन को कोई अवसर नहीं मिलेगा। अतः मैं प्रार्थना करता हूं कि इतनी देर के बाद भी यदि प्रस्तावक महोदय को कोई आपत्ति न हो, तो वे आप कृपा करके डा. अम्बेडकर द्वारा प्रेषित-परादिक के भाग (क) में ''विचार'' शब्द के स्थान में ''सहमति'' शब्द को प्रयोग करने के संशोधन को स्वीकार कर लें।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब वाइस प्रेजिडेंट साहब, मैं चन्द ख्यालात इस अमेंडमेंट पर और के.टी. शाह साहब के अमेंडमेंट पर पेश करने के वास्ते खड़ा हुआ हूं। इस बिल में यह जो अमेंडमेंट डा. अम्बेडकर साहब ने पेश किया है, यह औरीजनल सेक्शन से भी ज्यादा सख्त है।

पहली चीज जो मैं अर्ज करना चाहता हूं, वह यह है कि हर एक हिस्सा, हिन्दुस्तान के वास्ते यह सहूलियत दी जानी चाहिये कि अगर वह किसी हिस्से से बाहर निकल कर किसी दूसरे हिस्से में शामिल होना चाहे, तो उसके सामने किसी किस्म की रुकावट पेश न हो। यह हमारा हिन्दुस्तान जिस पर अंग्रेजों का

राज था, बहुत से ऐसे हिस्सों में बंटा हुआ है, जो Homogeneous नहीं है और haphazard तरीके से बने हुए हैं। यही नहीं कि जिले के जिले ऐसे हैं, जो एक province से निकल कर दूसरे में मिलना चाहते हैं। बल्कि तहसीलें और दस, दस-बीस, बीस गांव के टुकड़े भी ऐसे हैं, जो एक हिस्से में से निकल कर दूसरे हिस्सों में शामिल होना चाहते हैं। उनके वास्ते यह Section एक तरह से उनका गला घोंटने के वास्ते काफी है। मिसाल के तौर पर मैं अर्ज करूंगा कि हरियाना, जो आज कल ईस्ट पंजाब में शामिल है, वह चालीस साल से कोशिश कर रहा है कि वह ऐसे हिस्सों के साथ शामिल कर दिया जाये, जिनके जवान traditions और customs उनके जैसे हों और एक अलहदा प्रोविन्स बना दिया जावे। लेकिन कोई कामयाबी हासिल नहीं हो सकी। वजह यह थी कि जब यू.पी. के लीडरान से बात हुई, तो वह इसे सुनते ही कहने लगे कि आप यू.पी. के टुकड़े करना चाहते हैं और इस बात पर गौर नहीं किया कि ऐसा करना सही है या नहीं। Provincialism और दूसरी चीजें हमारे रंग व रेशे में इस तरह समा चुकी है कि merits को देखने को कोई तैयार ही नहीं है। मैं यह पूछना चाहता हूं कि नारनौल का एक ऐसा हिस्सा है, जिसमें एक भी सिक्ख नहीं है। फिर उसमें क्यों गुरुमुखी पढ़ाने का हुक्म हुआ है। आज 1948 में एक ऐसे हिस्से में, जिसमें एक भी सिक्ख नहीं रहता, वहां के लिए गुरुमुखी पढ़ाने का हुक्म होता है और वहां के बच्चों को अब जबर्दस्ती गुरुमुखी पढ़नी होगी। यह Section जो अब पेश किया जा रहा है, उन leaderless हिस्सों के लिए नामुमकिन बना देगा, जो इस झगड़े से निकलना चाहते हैं। यह उनके वास्ते कोई जगह नहीं छोड़ेगा। क्योंकि इसके मुताबिक वह हक जो हर एक मेम्बर पार्लियामेंट को होना चाहिए, वह President को दिया जाता है। मैं निहायत अदब से गुजारिश करना चाहता हूं कि आज Govt. of India Act में कई Provisions ऐसे हैं, जिनकी रूप से एक मेम्बर को अख्तियार नहीं है कि वह किसी खास किस्म के कानून को पेश कर सके। मैंने जब-जब यह चाहा कि joint Hindu family के मुताल्लिक एक कानून पेश किया जाये, ताकि वह tax से मुस्तसना कर दिया जावे; पर यह sanction के बगैर नहीं हो सकता था। मैंने sanction के लिये दरख्वास्त दी, पर वह नामंजूर हो गई। मैं जानता हूं कि सब Government एक ही तरह का काम किया करती है। President की sanction के मानी यह है कि हर एक मेम्बर, जिसको कानून पेश

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

करने का हक है, उसको कानून पेश करने की इजाजत नहीं होगी। डा. अम्बेडकर साहब ने अभी फरमाया है कि उनके सामने यह नुक्ताख्याल पेश किया गया और इस वजह से उन्होंने यह तब्दीली कर दी कि बजाय इसके कि गवर्नमेंट कानून लाये, उन्होंने यह इजाजत दे दी कि मेम्बर कानून ला सकें। लेकिन उन्होंने पहले के मुकाबले में भी इस कानून को ज्यादा सख्त बना दिया है। अगर गवर्नमेंट ऑफ इंडिया अपनी जिम्मेदारी पर कानून लाती, तो वह उसे पास करा सकती थी, लेकिन recommendation से इसको देना या न देना उसकी मर्जी पर मुनस्सिर होगा, बमजबूरी moral ही कायम न हो सकेंगे। अगर President न चाहे और Cabinet न चाहे और recommend न करे, तो पार्लियामेंट कुछ कर ही नहीं सकती। Individual member का तो कहना ही क्या। Recommendation के मानी यह है कि ऐसे बिल को originate करने की Power हर एक मेम्बर से ले ली गई है। इस वास्ते मैं यह अर्ज करूंगा कि यह Provision निहायत Undemocratic है। इसी तरह से मैं अर्ज करूंगा कि दफा 34 में जिस पार्लियामेंट को यह भी अख्तियार है कि वह प्रेजिडेंट को कोई हक़ूक दे, या न दे या वह हक़ूक किसी और को दे दे। पार्लियामेंट को यह अख्तियार न होगा कि Provinces की boundaries को तब्दील करने के लिए कानून ला सके, जब तक कि प्रेजिडेंट की recommendation न हो। यह हर एक मेम्बर का हक है और यह provision इस हक को खत्म कर देगा। हम लड़ाई के जमाने से सुनते चले आते हैं कि हर एक को self-determination का हक़ है। यह Provision इस हक़ को खत्म कर देता है। अगर किसी एरिया के लोग अलहदा होना चाहते हैं, तो उनको self-determination का हक़ होना चाहिये। मिस्टर के.टी. शाह ने अपनी तरमीम की वज़ाहत करते हुये कहा है: referendum से तो मुझे डर लगता है। लेकिन जो तजवीज उन्होंने पेश की है, उससे self-determination का खात्मा हो जाता है। मिसाल के तौर पर अगर किसी बड़े सूबे का एक हिस्सा उससे निकलना चाहे, तो उसके लिए सिर्फ यह चारा है कि Legislature के members के सामने वह सवाल पेश करे। पर ऐसा करने से वह मकसद खत्म हो जाता है; क्योंकि majority ऐसी तजवीज को फौरन मुस्तरद कर देगी। प्रोफेसर साहब की तरमीम का principle तो दुरुस्त है। लेकिन जो तजवीज उन्होंने पेश की है, वह गलत है। मेरी राय में हमें एक ऐसा Provision evolve करना चाहिये कि अगर किसी हिस्से के लोग अलहदा होना चाहते हैं, तो उस इलाके के लोगों

का referendum लेकर उसके मुताबिक उनको अलहदा किया जाये। मैं जानता हूं कि इसका नतीजा यह होगा कि बहुत से हिस्से निकलना चाहेंगे और provinces का Legislature ऐसा करने की इजाजत नहीं देगा। इसलिए सारे Legislature की राय लेने से कोई फायदा न होगा और छोटे हिस्से के हक से न होंगे पहले Govt. of India Act में भी ये provision था। 1946 में मैंने एक रेज्युलेशन बराय तकर्रुरे कमिश्नर Redistribution Assembly में बदकिस्मती से पेश न हो सका और Cabinet Mission of province के सामने भी तजवीज पेश की कि Re-distribution के लिये एक कमीशन (Commission) कायम किया जाये। अब एक Linguistic Commission कायम हुआ है। मैंने सुना है कि उसकी activities को भी shelve करने की कोशिश की जा रही है। मैं चाहता हूं कि कांग्रेसी हुकूमत province के उन हिस्सों की ख्वाहशात का पूरा अहतराम करे, जो कि खास सूबाजात से निकलना चाहते हैं और कोई रुकावट उनके रास्ते में कायम न की जावे और उनको कानूनी सहूयिलत नये सूबा बनाने को दी जावे। लेकिन जब तक यह मौजूदा Section रहेगा, तब तक चाहे वह इलाका दो चार जिलों का भी हो, उसकी कोई बात नहीं सुनी जायेगी। पहले जो provision था कि जो territory अलहदा होना चाहे उसके Representatives की राय ली जाये। उसको भी अब हस्व कर दिया गया है अब यह तजवीज किया गया है कि Legislature की राय देखी जाये। Province का सारा Legislature एक हिस्से को अलग होने की राय नहीं देगा और उस इलाका के Representative पर ऐसा असर डाला जायेगा कि वह आजादाना तौर पर अपनी राय का इज़हार न कर सके। इस वास्ते जरूरी यह चीज है कि Referendum लिया जाये। उनकी राय का लिहाज करके और province के Legislature की राय का लिहाज करके Parliament को तय करने का अख्तियार होना चाहिये, न कि President को। यह जरूरी है कि हर एक मेम्बर-पार्लियामेंट को अख्तियार होना चाहिये कि वह इस किस्म का बिल ला सके। Province के Legislature की views ली जायें। लेकिन जो तब्दीली की जाये, वह उस इलाके की मर्जी के मुताबिक की जाये, जो अलहदा होना चाहता है। अगर ऐसा न किया गया, तो self-determination का उसूल खत्म हो जायेगा। सुना करते थे कि स्वराज्य होने पर हर एक हिस्से को self-determination का हक़ होगा। इस Section से वह हक़ खत्म हो जायेगा और लोगों के साथ इन्साफ़ नहीं हो सकेगा। मैं छोटे से जिला हिसार का रहने वाला हूं, जो सारे हिन्दुस्तान का epitome

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

है और बहुत से इलाकों की सरहदें हिसार में मिलती हैं। मसलन जींद के स्टेट की, जिसमें 88 प्रतिशत हिन्दू और 12 प्रतिशत सिक्ख हैं। Eastern Punjab States में शामिल कर दिया गया है। देहली पहले यू.पी. में था। अम्बाला के 6 जिला इसके साथ थे। सन् 57 में चूंकि इस इलाके को लौरेंस ने जीता था, जो पंजाब का गवर्नर हुआ। इसलिये इस इलाके को पंजाब को दे दिया। हमने अरसा दराज तक कोशिश की कि देहली व अम्बाला डिवीजन पंजाब से निकल जाये, क्योंकि इस इलाके की कोई चीज पंजाब से नहीं मिलती थी। लेकिन हम कामयाब न हुए। अब partition होने के बाद न जाने हमारा क्या हसर होगा और किस इलाके के साथ यह सारा अम्बाला डिवीजन व देहली रखा जावेगा और वहां की बोली पंजाबी होगी या हिन्दी। जब सुनते है कि हमें Punjabi speaking सूबा बना दिया जायेगा। हमारे बच्चों को, जिनको पंजाबी से कोई वास्ता नहीं है, अब जबर्दस्ती पंजाबी पढ़नी होगी। इससे बढ़कर और जुल्म नहीं हो सकता और यह Provision किसी भी तरह की आजादी नहीं देता। यह Constitution इस वास्ते बनाया गया है कि देश के सारे हिस्से आराम से रह सकें और अलहदा-अलहदा अपनी जिन्दगी organic evolve कर सकें। लेकिन मौजूदा दफा 3 व तरमीम से हर हिस्सा अपनी आज़ादी हासिल नहीं कर सकेगा। इस वास्ते मैं अर्ज करूंगा कि यह Provision undemocratic है और Parliament की आजादी को restrict करता है। Legislature की राय ली जा सकती हैं मगर वह सिर्फ देखी जानी चाहिये। पूरा असर उसी हिस्से की राय को होना चाहिये, जो निकलना चाहता हो। जिसके लिये मौजूदा कानून में कोई Provision ही नहीं है। इन अलफाज़ के साथ मैं यह अर्ज करूंगा कि इस तरह की तरमीम होनी चाहिये कि छोटे से छोटे हिस्से को अधिकार हो और वह अपनी पूरी आज़ादी हासिल कर सके।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे इस सभा के दो वीर सदस्य प्रो. शाह और पंडित कुंजरू के संशोधनों का विरोध करना पड़ रहा है। मैं इन संशोधनों का इस कारण विरोध नहीं कर रहा हूं कि मैं उनको कम चाहता हूं, परन्तु इस कारण कि मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को अधिक चाहता हूं और वह इसलिये कि वह वर्तमान परिस्थिति के पूर्णतया अनुकूल हैं। श्रीमान्, प्रो. शाह के संशोधन को भाषा अथवा उसके

असंतोषजनक रूप अथवा 'उप-क्रमण' शब्द के आधार पर मैं उसका विरोध नहीं कर रहा हूं। मैं उनसे इस बात में पूर्णतया सहमत हूं कि यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष में वह राज्य बिल्कुल ही नहीं है, जिस पर उस प्रस्ताव का प्रभाव पड़ता है, तो उस प्रस्ताव पर किसी भी सभा द्वारा विचार नहीं किया जाये। यहां तक तो मैं प्रोफेसर शाह से सहमत हूं। परन्तु मैं उनके संशोधन का इस आधार पर विरोध करता हूं कि वह बहुत ही प्रतिबन्धात्मक है। वह किसी अन्य प्राधिकारी अथवा भारतीय सरकार को छोड़कर किसी गैर-सरकारी सदस्य को प्रस्ताव पेश करने का अधिकार प्रदान नहीं करता है। अत: इसी कारण से मेरे विचार में इस संशोधन का विरोध होना चाहिये।

पं. कुंजरू के संशोधन के बारे में मेरा यही कहना है कि मेरे विचार में वह ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो बहुत ही खतरनाक है और इस अवस्था में तो यह खास तौर पर खतरनाक है। हो सकता है कि उसके कारण डलहौजी की संयोजन-नीति की पुनरावृत्ति हो जाये। उसके अधीन केन्द्रीय विधान-मंडल को यह अधिकार होगा कि वह राज्य की पूर्व सहमति लिये बिना ही राज्य के नाम में परिवर्तन कर दे, उसकी सीमाओं को घटा दे, बढ़ा दे अथवा परिवर्तन कर दे। राज्यों के विषय में हमने अब तक बड़ी सावधानी से काम किया है—इसके लिए सरदार पटेल बधाई के पात्र हैं। किसी राज्य से हमने बिना अपनी सहमति के विलीन होने या प्रवेश करने के लिये नहीं कहा। केवल हां, हैदराबाद से रक्षात्मक कार्य के बारे में सहमति का कोई प्रश्न ही न था और हम नहीं कह सकते कि उसका अन्त किस प्रकार होगा। अत: जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि ऐसी दशा में यदि हम राज्यों में यह विचार उत्पन्न कर दें कि केन्द्रीय विधान-मंडल के बहुमत को किसी भी समय, जब भी वह उपयुक्त समझे, यह अधिकार होगा कि वे किसी राज्य का कोई भाग लेकर उसे किसी दूसरे प्रान्त से मिला सकता है, अथवा किसी प्रान्त के लाभहीन भाग के साथ जोड़ सकता है, तो हमारे लिये यह महान् मूर्खता होगी और इससे राज्य सचेत हो जायेगा तथा इसके कारण उस मित्रता का अन्त हो जायेगा, जिसके आधार पर आज कल राज्य आगे बढ़कर हम से संयुक्त होते चले जा रहे हैं। हां, मैं इस बात से सहमत हूं कि धारा 226 तथा 230 के अधीन हमने इस विधान में हस्तक्षेप करने के कुछ अधिकारी को अपने हाथ में रख लिया है। परन्तु इन धाराओं से यह भी

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

विदित है कि इस विषय में हम कितनी सावधानी से अग्रसर हो रहे हैं। जब इतनी बात हो गई है, तो यह उचित नहीं है कि आप अपने मेहमानदार से यह भी आशा करें कि चूंकि उसने आपको रहने की जगह दी है, इसलिये वह अपना बिस्तरा भी आपके सोने के लिए आपको दे दे। क्योंकि राज्य सब विषयों में हमारी ओर बढ़ने और हमसे मिलने की प्रवृत्ति दिखा रहे हैं। इस कारण हमें उनसे किसी ऐसी बात से सहमत होने के लिये नहीं कहना चाहिये, जिससे कि आप उनकी सहमति लिये बिना ही उनके नामों में परिवर्तन कर सकें, उनका क्षेत्र घटा सकें, उनको सीमाओं में परिवर्तन कर सकें अथवा इसी प्रकार के अन्य कार्य कर सकें।

इन शब्दों के सहित मैं डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करता हूं। मैं उनसे अथवा सभा के किसी भी सदस्य से यह जानना चाहूंगा कि क्या प्रधान शब्द का अर्थ यह है कि प्रधान की सिफारिश सरकार की सहमति से होगी या यह कि प्रधान स्वतंत्र रूप से अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेंगे। 'स्वविवेक' शब्द का वास्तव में प्रयोग तो नहीं हुआ है, परन्तु मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या वे इस प्रकार के प्रस्ताव को पेश करने की आज्ञा देने में अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेंगे। मेरे विचार से इस विषय में प्रधान को अपने स्वविवेक के प्रयोग का अधिकार देना अधिक उपयुक्त होगा। अपेक्षाकृत इसके कि वे अपनी सरकार के मत का अनुसरण करें। विधान के प्रारूप में ऐसे अन्य प्रावधान हैं, जिनमें प्रधान सरकार अथवा केन्द्रीय विधान-मंडल से परामर्श किये बिना स्पष्टतया अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेगा। यद्यपि वहां 'स्वविवेक' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ दंड की छूट के विषय में प्रधान के लिये यह आवश्यक नहीं है कि दंड में छूट करने या न करने के विषय में वह अपने मंत्रिमंडल की सहमति ले। फिर भी वह अनुच्छेद है और उसमें 'स्वविवेक' शब्द नहीं है। अतः मेरा विचार है कि डा. अम्बेडकर ने जो व्याख्या की है, वह ठीक है और जब कि केवल 'प्रधान' शब्द दिया हुआ है, तो इसका अर्थ यह होगा कि ऐसे विषयों में वे अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकेंगे।

*__श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय__ [ग्वालियर-इंदौर-मालवा-संयुक्त राज्य (मध्य भारत)]: उपाध्यक्ष महोदय, इन प्रस्तावों में से किसी के पक्ष अथवा विपक्ष में

मैं बोलने नहीं जा रहा हूं। मुझे केवल कुछ बातें कहनी है। देशी राज्यों का प्रतिनिधि होने के कारण मैं इस विषय में राज्यों की जनता के भावों को प्रकट करना चाहता हूं। श्रीमान्, मेरे विचार से राज्य की जनता सहमति लेने या न लेने के विषय में कोई अन्तर रखना नहीं चाहती है। (वाह, वाह) हमारी इच्छा तो यही है कि रियासतों को उसी स्तर पर रखा जाये जिस पर कि प्रान्त हैं। (वाह वाह) अत: रियासतों की सहमति लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं सचमुच बहुत प्रसन्न होऊंगा, यदि इस अनुच्छेद में कम से कम कुछ इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाये कि जिससे रियासतों के विधान-मंडलों से परामर्श किया जा सके। मेरे विचार से रियासतों के सम्बन्ध में भी उनसे केवल परामर्श करना पर्याप्त होगा जैसा कि प्रान्तों के सम्बन्ध में है। मेरे विचार से राजाओं अथवा रियासतों के सर्वसत्ताधिकार सम्बन्धी प्रश्न को उपस्थित नहीं करना चाहिये। मेरा ख्याल है कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भी, जब वे भारत में आये, राज्यों की व्याख्या की थी और यह सोचा था कि राजा राज्य है और अब भी कहीं ऐसी बेढंगी बात फिर से पैदा न हो जाये। मैं कहता हूं कि रियासती जनता की यह इच्छा है कि रियासतों के लिये कोई अन्तर नहीं रखना चाहिये और सहमति लेना आवश्यक नहीं है। आप रियासतों को उसी स्तर पर रख सकते हैं जिस पर प्रान्त हैं। रियासती जनता ने सदैव राजाओं की प्रभुता का विरोध किया है—वे राजाओं की प्रभुता को नहीं मानते हैं। बहुत-सी रियासतें छोटी थी; अब वे किसी संघ में मिल गई हैं; परन्तु यदि राजाओं को प्रभुताधिकार दे दिये गये, तो फिर यह प्रश्न उठ खड़ा होगा। रियासती जनता प्रान्तों की जनता से पूर्णतया सम्बन्धित है—वह भी वैसी ही है जैसी कि प्रान्तों की जनता। प्राचीन प्रणाली के आधार पर हम अपने देश के और अधिक टुकड़े होने देना नहीं चाहते हैं। देशी रियासतों और प्रान्तों में अभी तक अन्तर रखा जा रहा है, परन्तु अब हमारे विचार से इस अन्तर को मिटा देना चाहिये। सभा को किसी ऐसी बात पर विचार करना चाहिये, जो रियासतों को प्रान्तों के समकक्ष लाने में सहायक हो। मैं इस बात को पसन्द करता कि यह पूरी परिषद् कुछ समय के लिये और रोक दी जाती, अथवा स्थगित कर दी जाती, जिससे कि रियासतों को समस्त विषयों में प्रान्तों के समकक्ष बना लिया जाता है। मेरे विचार से राज्य-मंत्रणालय को यह कार्य कुछ पहले कर लेना चाहिये था। यह कार्य वास्तव में किये जाने के योग्य था। क्योंकि हम विधान-निर्माण कर रहे हैं और बाद में

[श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय]

इसमें परिवर्तन करना बहुत कठिन होगा। अतः मेरे विचार से इस अन्तर को मिटा देना चाहिये। मैं डा. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं कि वे इसके लिये कोई मार्ग खोजें। इस विषय में मैं रियासती जनता के विचारों को प्रकट कर रहा हूं। मैं किसी विशेष संशोधन पर नहीं बोल रहा हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, प्रस्ताव पर अब मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** सभा का क्या विचार है?

***श्री एच.वी. कामतः** अभी नहीं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है।

***उपाध्यक्षः** प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना!

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उपाध्यक्ष महोदय, यह मौलिक विषय है और डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन बहुत महत्त्वपूर्ण है। अपनी व्याख्या में उन्होंने यह कहा है कि यह संशोधन किसी सदस्य को सीमाओं में परिवर्तन करने के लिये गैर सरकारी विधेयकों की सूचना देने का अधिकार देता है और उस विधेयक की प्राप्ति के पश्चात् प्रधान ऐसी कार्यवाही करेंगे, जिससे कि तत्सम्बन्धी विधान-मंडल के विचार निश्चित रूप से जान लिये जाये और तत्पश्चात् प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर यह सिफारिश करेंगे कि वह विधेयक विचार के लिये रखा जाये। मेरे मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव ने अभी यह कहा था कि मूल खंड से यह संशोधन बहुत अधिक कठोर है। मैं उस विचार से सहमत नहीं हूं। मूल खंड द्वारा केवल भारतीय सरकार ही इस प्रकार के विधेयकों को उपस्थित कर सकती थी, परन्तु इस संशोधन द्वारा प्रधान की सिफारिश से कोई भी सदस्य उपस्थित कर सकता है। प्रतिबन्ध केवल यही है कि किसी सदस्य से इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना पाने के पश्चात् तत्सम्बन्धी क्षेत्र के विचार जानने का वे प्रयत्न करेंगे और फिर अपने मंत्रिमंडल से परामर्श करने के पश्चात् विधेयक को पेश करने अथवा न पेश करने की सिफारिश करेंगे। यदि मूल खंड बना रहता, तो कोई गैर सरकारी विधेयक उपस्थित नहीं किया जा सकता था; नये संशोधन के अन्तर्गत कोई गैर-सरकारी

विधेयक उस प्रतिबन्ध के साथ, जिसका मैं अभी विवरण दे चुका हूं, उपस्थित किया जा सकता है। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि मूल वाक्यखंड से यह अधिक अच्छा है। कदाचित् श्री ठाकुरदास भार्गव बहुत आगे बढ़ना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि किसी भी गैर-सरकारी सदस्य को सीमाओं में परिवर्तन करने सम्बन्धी विधेयक को सभा में उपस्थित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। सीमाओं में परिवर्तन करना बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है और उसको इतना सरल नहीं बना देना चाहिये कि प्रति दिन कोई सदस्य सीमाओं में परिवर्तन करने के प्रस्ताव को उपस्थित कर दे और विधान-मंडल उस विषय पर विचार-विमर्श करे। ऐसा करने से अनावश्यक उत्तेजना बढ़ेगी और विरोध फैलेगा, जिससे मैं समझता हूं कि बचना चाहिये। मेरे विचार से जहां तक संशोधन की भाषा का सम्बन्ध है, वह श्री ठाकुरदास भार्गव की इच्छाओं के अनुकूल है। यह सच है कि सदस्य को प्रधान की सिफारिश प्राप्त करनी होगी और कदाचित् यदि प्रधान यह समझें कि उस क्षेत्र के लोगों की—उनके बहुमत की—राय यह है कि यदि उनको किसी अन्य रियासत या प्रान्त में मिला दिया जाये, तो वे अधिक खुश रहेंगे, तो वे प्रधानमंत्री को मंत्रणा देंगे और कदाचित् प्रधानमंत्री भी उनसे इस बात में सहमत होंगे कि प्रस्ताव को रखने दिया जाये और संसद् इस विषय पर विचार-विमर्श करे। मेरे विचार से यह प्रणाली प्रत्येक क्षेत्र को, जो अपनी सीमाओं में परिवर्तन चाहता है, पूर्ण स्वतंत्रता तथा अवसर प्रदान करती है।

इस संशोधन का एक अंग वास्तव में बहुत बुरा है, जिसके सम्बन्ध में आरम्भ में ही अपने स्पष्ट भाषण में डा. अम्बेडकर ने विचार प्रकट किये हैं, जब कि उन्होंने यह कहा कि इस विधान में देशी राज्यों को प्रान्तों से भिन्न आधार पर रखने के लिये हमें बाध्य होना पड़ा है। प्रथम अनुसूची में देशी राज्य भाग 3 में रखे गये हैं और प्रान्त भाग 1 में। यहां इस अनुच्छेद 3 में भाग 1 तथा भाग 3 के साथ पृथक्-पृथक व्यवहार किया गया है। भाग 1 के अन्तर्गत राज्यों के सम्बन्ध में उनके विधान-मंडलों से ''परामर्श'' किया जायेगा, तो भाग 3 के अन्तर्गत राज्यों के सम्बन्ध में उनकी ''सहमति'' लेने की आवश्यकता होगी। श्रीमान्, मैंने एक ऐसे संशोधन की सूचना दी थी, जो इस प्रकार के अन्तर को मिटा देने के सम्बन्ध में था और मुझे विश्वास है कि हमारे विद्वान डा. अम्बेडकर भी अपने सच्चे दिल से यही चाहते हैं। प्रान्तों और रियासतों में कोई अन्तर नहीं होना

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

चाहिये और हम सब चाहते हैं कि इस अन्तर को मिटा दिया जाये। मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने भी तर्क किया था कि कम से कम इस विषय में अर्थात् ''सहमति'' तथा ''परामर्श'' के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। वे चाहते हैं कि प्रान्तों की भांति रियासतों से भी परामर्श करना चाहिये। उन्होंने विधान के प्रारूप में उन धाराओं को भी बताया, जिनमें कि रियासतों को प्रान्तों के समानान्तर रखा है और मेरे विचार से उन्होंने अपने पक्ष को खूब पुष्ट कर दिया है। जो कुछ उन्होंने कहा, उस सबसे मैं बहुत कुछ सहमत हूं। परन्तु मेरा व्यक्तिगत विचार है कि हमारे नेता सरदार पटेल (राज्य-मंत्री) के विचार इस विषय में यह हैं कि यह विश्वासघात होगा, यदि हम देशी राज्यों से पूर्व संविदा किये बिना विधान में प्रावधान रख दें। उन्होंने हम से प्रतिज्ञा की है कि वे इस विषय में उनकी सहमति प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे और विधेयक के तृतीय पठन के पूर्व वे उनकी सहमति प्राप्त कर लेंगे। हम सब उनके लिये इस प्रयत्न में सफलता की कामना करते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है। सरदार पटेल ने इस वाद हेतु पर कोई भाषण नहीं दिया है और मैं समझता हूं कि मेरे मित्र औचित्य से परे हैं, यदि वे किसी ऐसे भाषण का उल्लेख कर रहे है, जो उन्होंने गुप्त रीति से दिया हो।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं केवल उनकी इच्छाओं को प्रकट कर रहा हूं। उन्होंने ऐसा कोई भाषण नहीं दिया है—मैं केवल यह कह रहा हूं कि वे अपना प्रयत्न करेंगे और विधेयक के तृतीय पठन के पूर्व वे उनकी सहमति प्राप्त कर सकेंगे। यदि वे ऐसा नहीं कर सके, तो हमको अपने साधनों की शरण लेनी पड़ेगी। परन्तु विधान में इस प्रकार का प्रावधान रख कर हम बाद में किसी परिवर्तन के लिये महान् कठिनाई उपस्थित कर रहे हैं। जब यह विधान का अंग बन जाता है, तो किसी प्रकार के परिवर्तन करने के लिये दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होगी और यह बहुत कठिन हो जायेगा। मैं निवेदन करता हूं कि इसके लिये कोई मार्ग खोज निकालना चाहिये। तृतीय पठन के पारित होने के पूर्व इस प्रकार की सहमति प्राप्त नहीं हो पाती है, तो यह अनुच्छेद दो तिहाई के बहुमत द्वारा

नहीं वरन् केवल बहुमत द्वारा परिवर्तनीय होना चाहिये। और यदि विद्वान डाक्टर इस प्रकार का संशोधन कर सकते हैं कि यह भाग विधान में परिवर्तन किया नहीं समझा जायेगा, तो मैं समझता हूं कि हमारी कठिनाइयां सुलभ हो जायेंगी। मुझसे पहले बोलने वाले माननीय सदस्य ने भी यह कहा था कि रियासती जनता भी यही चाहती है कि रियासतें प्रान्तों के समकक्ष रहे। यह विषय मौलिक महत्त्व का है कि रियासतें एक पृथक् रूप में पृथक् प्रभुताधिकार धारण किये हुये न रहें। केवल एक ही प्रभुताधिकार होना चाहिये और वह गणतंत्रीय प्रभुताधिकार होना चाहिये और रियासतें केवल एक प्रभुताधिकारी गणतंत्र का अंग होनी चाहिये। अत: मैं आशा करता हूं कि राजा लोग स्वयं इस देश-भक्ति सम्बन्धी लक्ष्य से सहमत होंगे और यदि वे सहमत नहीं होते हैं, तो मैं आशा करता हूं कि एक ऐसा प्रावधान बनेगा कि जब देशी रियासतों के लोग अपने अधिकार प्राप्त कर लेंगे, वे आवश्यक परिवर्तन कर सकेंगे और मैं आशा करता हूं कि इसके लिये विधान दो तिहाई के बहुमत का निर्धारण नहीं करेगा। मुझे तो ऐसी आशा है कि यदि इस खंड में परिवर्तन करने के लिये साधारण बहुमत ही निर्धारित किया जाता है, तो जब कि अपने विधान-मंडलों में देशी रियासतों के लोग अधिकार-सम्पन्न हो जायेंगे, तब वे इस बात पर विचार करेंगे कि उन पर भी वैसा ही शासन होना चाहिये, जैसा प्रान्तों में होता है; अथवा नहीं; परन्तु जब तक ऐसा नहीं होता तब तक जिन रियासतों से हमने संविदा कर लिया है, उन रियासतों से विश्वासघात करना हमारी बुद्धिमानी नहीं होगी।

*__श्री एल. कृष्णास्वामी भारती__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन और उसके अन्तर्गत सिद्धान्त का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं। उन्होंने यह कहा कि प्रान्तों के अर्थात् भाग 1 के राज्यों के सम्बन्ध में केवल परामर्श करना पर्याप्त होगा और देशी रियासतों के सम्बन्ध में पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होगा। परन्तु इस अन्तर के लिये जो तर्क उन्होंने उपस्थित किया है, वह मान्य नहीं है और इसमें सन्देह नहीं है कि सभा उसे पूर्णतया अस्वीकार कर देगी। यदि मैंने उनका भाषण ठीक-ठीक सुना तो उन्होंने यह कहा था कि रियासतें प्रभुता-सम्पन्न हैं, वर्तमान समय में इस प्रकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना बहुत संकटास्पद है। दो रियासतों ने विशेषतया, एक समय ट्रावनकोर ने और अभी अभी

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

हैदराबाद ने प्रभुता सम्पन्न होने का दावा किया और हम सदैव इस स्थिति को अस्वीकार करते रहे और यह घोषणा करते रहे कि प्रभुता सम्पन्न, शब्द के किसी भी मान्य अर्थ में वे प्रभुता सम्पन्न नहीं हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ के पेरिस अधिवेशन में यही मौलिक वाद हेतु था।

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह उनके व्यक्तिगत विचार हैं। यदि हम उनके संशोधन को स्वीकार करते हैं, तो इस तर्क के आधार पर नहीं। मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि इस अन्तर को रखना बहुत आवश्यक है। हम शनैः शनैः अग्रसर होना चाहते हैं और रियासतों पर प्रवेश-विलेख लागू होता है। हम निःसन्देह जनता की सहमति प्राप्त कर लेंगे, जब वह आवश्यक होगी। परन्तु रियासतें प्रभुता सम्पन्न हैं, यह कहना तो एक संकटास्पद सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है और यदि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेती है, तो वह डा. अम्बेडकर के इस तर्क के कारण नहीं वरन् अन्य गम्भीर विचारों के कारण इसे स्वीकार करेगी।

*__श्री राजबहादुर__ (मत्स्य संयुक्त राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यहां उन विचारों को प्रकट करने के लिये खड़ा हुआ हूं जो कि मेरी समझ में उन लोगों के व्यापक विचार है, जो भारत के उस भाग में बसते हैं जिनको अब तक देशी रियासतें कहा जाता था। जब हम इस संशोधन को पढ़ते हैं जो मसौदा-समिति द्वारा विधान के प्रारूप पर प्रस्थापित किया गया है तो दो बातें पैदा होती है। पहली यह कि विधान में इस प्रकार के प्रावधान की आवश्यकता है, जिसके अन्तर्गत जब कभी आवश्यकता हो, संघ के विभिन्न प्रादेशिक अंगों की सीमाओं का पुनर्विभाजन, पुनर्समायोजन अथवा पुनर्समीकरण किया जा सके दूसरी यह कि इस विषय में वर्तमान समय की देशी रियासतों और प्रान्तों में परस्पर कुछ अन्तर रखने की व्यवस्था इस प्रावधान में की गई है। मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस संशोधन के परादिक (क) और (ख) में दिये हुए प्रावधान की शब्दावलि के अन्तर से हम लोग जो कि रियासतों से आये हैं, किसी प्रकार भी खुश नहीं हैं। इसके विपरीत हम स्वयं मैं कुछ क्षुद्रता का अनुभव करते हैं और यह सोचते हैं कि हमारे साथ पूर्ण रूप से न्याय नहीं हुआ। हम जानते हैं कि इस 'रियासत' शब्द की प्रथम गोलमेज परिषद् के समय से ही निर्दयतापर्वूक व्याख्या की गई

है। हमने यह देखा कि गोलमेज परिषद् के समय से लार्ड लिनलिथ्गो की 8 अगस्त 1940 ई. की घोषणा तक, तत्पश्चात् इस घोषणा की तिथि से क्रिप्स प्रस्थापनाओं की तिथि तक और क्रिप्स प्रस्थापनाओं की तिथि से मंत्रिमंडल मिशन (Cabinet Mission) तक और उसके पश्चात् विचार-विनिमय-समिति (Negotiating Committee) के विमर्श काल में भी सदैव यही प्रवृत्ति रही, बल्कि मैं तो उसे स्थिर विचार कहूंगा, कि रियासत शब्द का अर्थ रियासत की जनता से नहीं है वरन् रियासत के शासक से है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब मैं इस व्याख्या का विरोध प्रकट करता हूं तो मैं रियासतों की जनता के व्यापक विचारों को प्रकट करता हूं। यह हो सकता है कि स्वतंत्रता के संघर्ष में हमारे त्याग को किसी ने अपेक्षाकृत कम मात्रा का समझ हो, परन्तु यह कोई ऐसा कारण नहीं है कि जिससे हमें समान अधिकार तथा समान अवसर से तथा इस भावना से वंचित रखा जाये कि हमारा देश के साथ सामंजस्य है और देश की शेष जनता से हम किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। इसी आधार पर मैं कहता हूं कि हम इस अन्तर से खुश नहीं हैं।

हमारे सामने यह तर्क उपस्थित किया गया है और सदैव यही प्रबल प्रमाण हमारे विरोध में उपस्थित किया जाता है कि चूंकि ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र हैं, जिन पर देशी राजाओं और राज्य-मंत्रणालय के हस्ताक्षर हैं और चूंकि अभी उचित रीति से निमित विधान-मंडल रियासत अथवा रियासतों के संघों में विद्यमान नहीं है, इसलिये परादिक में जो अन्तर है उसे मिटाया नहीं जा सकता। परन्तु मेरी समझ से अब परिस्थितियां भिन्न है। एक समय था जब कि प्रभुता राजाओं में निहित थी, परन्तु आज यह कटु सत्य है कि वह प्रभुता समस्त स्थितियों में जनता को हस्तान्तरित कर दी गई है—मैं तो यह कहूंगा कि स्थायी रूप में हस्तान्तरित कर दी गई है। एक या दो अपवाद हो सकते है, परन्तु यह अपवाद भी तुरन्त मिट जायेगा और यदि राजी से वह नहीं मिटता, तो हैदराबाद में जो कुछ हुआ उसका पाठ उनको पढ़ना पड़ेगा।

भारतीय संघ की जनता का संगठित आत्मबल तथा प्रयत्न किसी भी अड़ियल दल को ठीक मार्ग पर लायेगा, तथा उन लोगों का भी सुधार करेगा जो देश की शेष जनता की प्रवृत्तियों के अनुकूल विचार नहीं रखते हैं। मैं यह बात को दुहराता

[श्री राजबहादुर]

हूं कि आजकल प्रभुता जनता में निहित है, अतः वह इस विधान-परिषद् में निहित है। भारतीय संघ के एक तथा प्रत्येक भाग के सम्बन्ध में विधान-परिषद् की प्रभुता निस्सीम तथा प्रतिबन्ध शून्य है। इस प्रभुता पर कौन आपत्ति करता है अथवा इस प्रभुता में किसे संदेह है। रियासतों की जनता इस महान् विधान-परिषद् की उतनी ही पृष्ठपोषक है, जितनी कि देश की शेष जनता है। वह उसकी रक्षा तथा समर्थन के लिये वे सब कुछ बलिदान करने के लिय उद्यत है। यदि इस परिषद् की प्रभुता की रक्षा करने के लिये उनके बलिदानों की आवश्यकता हो तो वह उनको भी सहर्ष करेगी। अतः किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं रखना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस संशोधन को भी स्थगित रखा जाये, क्योंकि विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है; अथवा मैं तो यह कहूंगा कि रियासतों की जनता के लिये तो यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि यह ही समझा जाये कि इस संशोधन पर विचार करना ही है, तो मेरा निवेदन यह है कि इसको उस समय विचार के लिये लिया जाये, जबकि यह परिषद् अन्य विवादास्पद विषयों पर निर्णय कर ले। यदि मेरा निवेदन ठीक नहीं समझा जाता और इस संशोधन पर विचार किया ही जाता है, तो जिन बातों को मैंने अभी आपके समक्ष रखा है, उन बातों को अपने मन में रखकर रियासतों के प्रतिनिधि इसे स्वीकार करेंगे।

यह कहकर मैं समाप्त करता हूं कि जहां तक इस परिषद् का सम्बन्ध है, हमने दो निश्चित सिद्धान्तों को मान लिया है: अर्थात् समस्त संघ के एकीकरण और गणतंत्रीकरण के सिद्धान्त। अतः विधान के प्रारूप के किसी प्रावधान में ऐसा विचार उपस्थित नहीं किया जा सकता है, जिससे प्रान्तों और रियासतों के साथ किसी प्रकार का भी भिन्न-भिन्न व्यवहार हो। 'राज्य' शब्द की परिभाषा विधान के प्रारूप के अनुच्छेद 7 में इस प्रकार है।

> ''यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में 'राज्य' शब्द में भारत के शासन और संसद् तथा राज्यों में से प्रत्येक के शासन और विधान-मण्डल तथा भारत के राज्यक्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है।''

जिस शब्द का प्रयोग किया गया है, वह ''समावेश'' है; जिसका अर्थ यह है कि ''राज्य'' शब्द के अंतर्गत कुछ और भी आ सकता है। मेरे विचार से ''राजा'' शब्द का विचार उपस्थित हो सकता है। इसी कारण परादिक (ख) में प्रारूप समिति द्वारा प्रस्थापित संशोधन में ''राज्य'' शब्द के प्रयोग से हम प्रसन्न नहीं हैं।

श्रीमान्, मेरा विनम्र निवेदन यह है कि जिस रूप में मैंने अपने विचारों तथा टिप्पणियों को उपस्थित किया है, उसी रूप में उन पर विचार किया जायेगा।

चौधरी रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर साहब के संशोधन का समर्थन करते हुए एक बात कहे बगैर नहीं रह सकता कि इस संशोधन के अनुसार हमें इसमें कोई शक नहीं है कि केन्द्रीय धारा-सभा के मेम्बरों के लिये कुछ थोड़ी बहुत प्राईवेट बिल लाने की आज़ादी देंगे और इसमें भी कोई शक नहीं है कि मजहब की या किसी जाति के अकलियत के लिये भी हम कुछ आज़ादी देंगे और मौका देंगे कि वह जिस किस्म से किसी सूबे के बनाने में वह अपनी आवाज़ उठाना चाहते हैं, वह अपनी आवाज उठा सकेंगे।

लेकिन एक बात मैं इस बारे में जो कहना चाहता हूं वह यह है कि हमारे देश का ध्येय जो है, वह तो एक सेकुलर स्टेट बनाने का ध्येय था। और उस विधर्मी सरकार का नियम भी यह होना चाहिये था कि यह धर्म और जाति के बिना पर यह जो चीजें हैं, इनका खात्मा किया जाये।

इसके विपरीत जैसा कि पहले सुझाव के अनुसार किसी इलाके की अक्सीरियत को, जो कि स्टेट में माइनोरिटी में था, उसको मौका था, उसकी आवाज़ का जो वजन था। मुझे डर है कि इस सुझाव के मंजूर हो जाने से वह उतना नहीं रहेगा, जितना कि पहले सुझाव के अनुसार था।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी** (मैसूर): श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि इस विषय पर विचार अब कल किया जाये?

***उपाध्यक्षः** वृहस्पतिवार, ता. 18 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रातःकाल 10 बजे तक सभा स्थगित की जाती है।

तत्पश्चात् वृहस्पतिवार, ता. 18 नवम्बर सन् 1948 ई.
के प्रातःकाल 10 बजे तक सभा स्थगित हुई।

भारतीय विधान-परिषद

बृहस्पतिवार, ता. 18 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 10 बजे आरंभ हुई।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर करना

निम्न सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

1. डा. जीवराज मेहता (बड़ौदा)
2. श्री चिम्मनलाल चक्कूभाई शाह (सौराष्ट्र)

विधान का मसौदा–(*जारी*)
अनुच्छेद 3–(*जारी*)

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, इसके पूर्व कि हम वाद-विवाद आरम्भ करें, मैं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण औचित्य प्रश्न उपस्थित करना चाहता हूं। वह इस सभा के सदस्यों के अधिकारों और सुविधाओं के संबंध में है। आपके प्रति पूर्ण-श्रद्धा रखते हुए क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि कल संशोधन पेश करने के लिए आपकी आज्ञा न मिलने पर मैंने यह महसूस किया कि मुझे उस संशोधन के पेश करने के उस अधिकार से वंचित किया गया, जो सदस्य के नाते मुझे सदैव प्राप्त है। मैंने नियमों को देखा और मुझे यह प्रतीत हुआ कि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो मुझे संशोधन पेश करने के अधिकार से वंचित करे। आपने इस आधार पर संशोधन पेश न करने दिया कि मेरा संशोधन प्रो. के.टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन के अनुरूप था। मैं नहीं जान सका कि ये दोनों संशोधन किस प्रकार अनुरूप माने जा सकते हैं। प्रोफेसर शाह का संशोधन अर्थ संबंधी है और मेरा संशोधन राजनीति संबंधी। वे दस वर्ष आगे की

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री लोकनाथ मिश्र]

सोचते हैं और मेरा प्रस्ताव इसी समय लागू करने योग्य है, पूर्णतया वैध है और अभी प्रवर्त्तनीय है। वे ''रियासतों'' को छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं, मैं रियासतों को रहने देना चाहता हूं और उनकी पूर्ण व्याख्या करना चाहता हूं। मेरा प्रस्ताव जनता की उस सर्वोच्चता पर आश्रित है, जो उनमें निहित है, वह कोई शर्त नहीं लगाता है और फिर ये दो संशोधन परस्पर इतने भिन्न हैं कि...

***उपाध्यक्षः** (डा. एच.सी. मुकर्जी): क्या इन समस्त तर्कों की आवश्यकता है?

*__श्री लोकनाथ मिश्रः__ मेरे संशोधन की संख्या 85 है और प्रो. शाह के संशोधन की संख्या 126 है।

***उपाध्यक्षः** यह औचित्य प्रश्न उठाया जा चुका है और इस पर निर्णय भी दिया जा चुका है। यह दुर्भाग्य की बात है कि अपने पद के कारण मुझे कुछ निर्णय करने पड़ते हैं। इस संबंध में निर्णय दिया जा चुका है और उस पर फिर विचार करने के लिये मैं उद्यत नहीं हूं।

*__श्री लोकनाथ मिश्रः__ प्रश्न यह है कि ऐसी दशा का क्या इलाज है?

***माननीय सदस्यगणः** शान्ति, शान्ति।

***उपाध्यक्षः** कृपया अपना स्थान ग्रहण कीजिये और मुझे आभारी कीजिये।

चौ. रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, कल मैं यह बता रहा था कि इस संशोधन के अनुसार धार्मिक या किसी जात-पात की माइनोरिटी जिसकी किसी स्टेट या किसी इलाके में मैजोरिटी नहीं है, तो भी उसके लिये, इसमें कोई शक नहीं कि इस संशोधन से गुंजायश पैदा हो जाती है कि प्रेसीडेंट या भारत सरकार चाहे तो उनको उनकी मर्जी की स्टेट के अंदर हदबंदी की तब्दीली की जा सकती है। लेकिन मुझे डर है कि इस संशोधन के अनुसार वह, ऐसे इलाकों के लिये जो किसी स्टेट के इलाकों में मैजोरिटी में हों, लेकिन स्टेट के अंदर माइनोरिटी में हो, उनकी कामयाबी के चान्सेज जो हैं, वह कम कर देती है और उनकी मांग का वजन तथा उनकी आवाज का वजन भी कम हो

जाने का डर है क्योंकि इस संशोधन के अनुसार वह मसला स्टेट के लेजिस्लेचर की बहस के अंदर आयेगा, क्योंकि वह इलाका स्टेट के अंदर एक माइनोरिटी है, चाहे वह स्टेट के किसी इलाके में मैजोरिटी में भी है। कुदरती तौर पर इसका नतीजा यह होगा कि यह लिख दिया जायेगा कि चन्द लेजिस्लेचर के मेम्बर स्टेट की बाउण्ड्री की तब्दीली चाहते हैं। तो इससे जिस तरह से पहले संशोधन के अनुसार यह था कि किसी इलाके की मैजोरिटी मेम्बरों की यह चाहें कि वह इलाका किसी दूसरी स्टेट या एक नई रियासत के साथ जोड़ दिया जाये, तो उसके ऊपर विचार हो सकता था। अब जो नया संशोधन है, उससे मुझे डर है कि उनकी आवाज के असर में फर्क पड़ जायेगा और खास तौर पर ऐसे इलाकों की, जिनके पास न कोई नेता है, न जिनके पास कोई अपना प्रेस है और न कोई दूसरा रास्ता आवाज उठाने का जरिया (साधन) है, उनके लिये खास तौर पर यह मुश्किल पैदा होगी। यू.पी. को ही ले लीजिए। जिस समय हम पिछली दफा विधान के बारे में विचार कर रहे थे, हमारी पार्टी के अन्दर कई दफा इस मसले पर विचार होते हुये यह बात साफ हुई कि यू.पी. वाले यह महसूस करते हैं कि उनका सूबा बहुत बड़ा सूबा है। मिसाल के तौर पर उस समय यू.पी. वालों ने कहा था कि दूसरे सूबों की तरह एक लाख के ऊपर एक मेम्बर की नुमायन्दगी आयेगी। तो यू.पी. का हाउस 600 का बन जायेगा और वह बहुत बड़ा हाउस होगा। इस किस्म की legal और administrative difficulties को मानते हुए भी यह कहा जाता है कि कोई भी इलाका दिल्ली को या हरियाना प्रान्त को न दिया जाये। हालांकि इस इलाके के लोग यह चाहते हैं कि वह दिल्ली या हरियाना प्रान्त के अन्दर मिला दिया जाये। लेकिन हुआ क्या? चूंकि उनके पास अपना कोई नेता नहीं था, न अपना प्रेस था। पहले तो यू.पी. में, जिन्होंने इस किस्म की आवाज उठाई थी, उनकी वफादारी के ऊपर शक किया गया और उनकी आवाज को इतनी बुरी तरह से दबाया गया कि जिसका कोई अन्दाज नहीं। प्राविंशियल कांग्रेस कमेटी ने उनको बैन कर दिया और कहा कि वह कोई आवाज सूबे की तब्दीली के लिए नहीं उठा सकते।

अतः मुझे डर है कि यह जो संशोधन है, इससे उन आदमियों के लिये जिनकी सभ्यता एक है, बोली एक है, ढंग एक है, जिनका legal और administrative दूसरे नुक्ते निगाह से इकट्ठा होना देश के लिये फायदेमन्द है, वह कुछ न कर सकेंगे। मेरी राय में जैसा कल ठाकुरदास ने बतलाया था, हरियाणा प्रान्त के बारे में जब आवाज को उठाया गया, तो उससे कुछ आदमियों की वफादारी पर शक

[चौ. रणवीर सिंह]

किया गया और कहा गया कि यह जाट सूबा बनाना चाहते हैं। लेकिन सच यह है कि अगर हरियाना प्रान्त बनता, जैसे अंग्रेजों के समय में भी जिस समय राउन्ड टेबुल कान्फ्रेंस का समय था, उस समय कारवेट स्कीम के मुताबिक एक नया सूबा बनाने की स्कीम थी। उस समय भी इस प्रान्त का कोई बड़ा नेता न था। इसलिये उस स्कीम को टारपीडो कर दिया गया। तो आज भी यही कह दिया जाता है कि यह लोग जाट सूबा अलग बनाना चाहते हैं। लेकिन जैसा अभी मैं बताना चाहता था, सच यह है कि जाट इसके अंदर एक माइनोरिटी हैं और उनकी अकेली community के नाते भी और कोमों के मुकाबले में मैजोरिटी नहीं होती है। अगर कोई ज्यादा गिनती वाली community हैं तो वह हरिजन भाइयों के अंदर चमार community है, तो अगर कोई स्थान या सूबा बनता है, तो वह चमारों का सूबा बनता है। परन्तु चूंकि उनके पास अपना प्रेस नहीं है, इसलिये उनकी आवाज को उठने नहीं दिया जाता।

इसमें कोई शक नहीं कि मैं संशोधन का समर्थन करता हूं, पर इसके साथ-साथ मैं यह चाहता हूं कि इसके अंदर कोई इस किस्म की तब्दीली जरूर कर दी जाये, जिससे जब केन्द्र प्रान्तीय धारा सभा से उसकी राय पूछे, तो उसके अन्दर यह भी दर्ज हो कि उस इलाके की, जो इलाका पृथक होकर दूसरे के साथ मिलना चाहता है, उसके representation की majorty की राय क्या है? उसकी राय केंद्रीय असेम्बली में दर्ज होकर आये और पता लगे कि इलाका क्या चाहता है।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय, जिस प्रभुता के सिद्धान्त का मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने कल प्रतिपादन किया था, मैं आशा करता हूं कि उस सिद्धान्त से पूर्वकालीन भारतीय रियासतें अनुचित लाभ न उठायेंगी। मैं कह नहीं सकता कि क्या उनका आशय यह था कि ये बड़े राज्य के अन्दर छोटे राज्य के समान हैं? मैं समझता हूं कि आधुनिक समय में ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करना संकटापन्न है। यदि हम प्रथम अनुसूची के भाग 3 को लें, तो हम देखेंगे कि इस भाग के दो विभाग हैं—विभाग 'अ' और विभाग 'ब'। इनमें से अनेकों रियासतें सन्निकट भारतीय प्रान्तों में मिल चुकी है। कुछ रियासतों ने आपस में मिलकर बड़े-बड़े संघ बना लिये हैं और कुछ रियासतें अभी तक अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए हैं। मेरे माननीय मित्र

डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन के उपखंड (ब) में यह लिखित हैं कि जहां इस प्रकार का प्रस्ताव प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रियासत या रियासतों की सीमा या उनके नामों पर प्रभाव डालता हो...इसका आशय यह हुआ कि प्रथम अनुसूची के तीसरे भाग में दी हुई समस्त रियासतों का उल्लेख इसमें आ जाता है, चाहे फिर वे पृथक रियासतें हो, चाहें संयुक्त रियासतों के संघ हो या चाहे वे प्रान्तों में विलीन रियासतें हों। मैं सोचता हूं कि क्या उन छोटी-छोटी रियासतों के लिये भी, जो प्रान्तों में विलीन हो गई हैं, प्रभुता का यह सिद्धान्त लागू होगा और क्या इन रियासतों के मिलाने के लिये भी प्रत्येक रियासत की सहमति ली जायेगी? इसके अतिरिक्त इस बारे में यह भी बात विचार किये जाने लायक है कि क्या इन रियासतों को प्रभुता सम्पन्न रियासत माना जाये? यदि डा. अम्बेडकर यह कहें कि भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिये लिखे गये प्रवेश-विलेख के अभिसमयों के अनुसार इस बारे में राज्यों की सहमति प्राप्त करनी होगी, तो इस बात को मैं कुछ सीमा तक ठीक मान सकता हूं। परन्तु श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि आगामी दो या तीन माह के पश्चात्, जब कि हम इस विधान को स्वीकार कर चुके होंगे, तब वह आशा जो डा. अम्बेडकर ने विधान के मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव संबंधी भाषण में प्रकट की है, अर्थात सब प्रकार से उस समय तक रियासतें प्रान्तों के समान हो जायेंगी—पूरी हो जायेंगी और इसमें संदेह नहीं कि इस संबंध में सरदार पटेल के कठिन प्रयास सफल होंगे और जब तक हम इस विधान को स्वीकार कर पायेंगे, उस समय तक रियासतों और प्रान्तों में कोई अन्तर न रह गया होगा। इन विचारों को दृष्टि में रखते हुए मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन में बहुत कुछ तथ्य है। यदि विधान के स्वीकार होने तक प्रांतों और रियासतों की राजनैतिक व्यवस्था एक सी नहीं हो जाती, तब यह बात सोची जायेगी कि क्या ऐसे कोई कारण हैं, जिनके लिये रियासतों की तथाकथित प्रभुता को हम विशेष महत्त्व दें; साथ ही यह कह देना भी ठीक होगा कि इस विषय में राजाओं की प्रभुता उनकी केवल नाम के लिये ही प्राप्त है। अत: मैं पंडित कुंजरू के इस तर्क से सहमत हूं कि यदि रियासतों में प्रान्तों की सी राजनैतिक व्यवस्था भी हो जाती है, तब भी हमें रियासतों के राजाओं या उनके विधान-मण्डलों के विचार जान लेने के अतिरिक्त उनसे और कुछ न पूछना चाहिये। यह स्पष्ट है कि जब हम रियासतों के राजाओं के या राजप्रमुखों के या रियासतों के विधान-मंडलों के विचार जान लेंगे और यदि उनके विचार ऐसे प्रस्ताव के विरुद्ध हों, तो वह प्रस्ताव पेश नहीं किया जायेगा। इसी प्रकार

[श्री एच.वी. कामत]

यदि प्रान्तों से परामर्श किया जाता है और यदि उनके विचार भी ऐसे प्रस्ताव के विरुद्ध हों, तो वह प्रस्ताव संघ की पार्लियामेंट में नही रखा जायेगा। अत: मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रकार का अन्तर किस लिये रखा जाये। यदि आप किसी अधिकारी अथवा किसी सरकार से परामर्श लेते हैं, तो इसका आशय यह है कि यदि वह सरकार उस प्रस्ताव के विरुद्ध है, तो वह प्रस्ताव संघीय पार्लियामेंट में नहीं रखा जायेगा। सरदार पटेल विगत इतने महीनों से हमें यह कहते चले आ रहे हैं कि हम प्रान्तों और रियासतों के मध्य सब अंतरों को मिटा देंगे और प्रान्त रियासतों के अनुरूप बना दिये जायेंगे। इसलिये यह वान्छनीय है कि यदि आप प्रान्तों से परामर्श करते हैं, तो रियासतों से भी परामर्श करें और यदि आप रियासतों की सम्मति लें तो प्रान्तों की भी सम्मति लें।

अन्त में मैं डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि वे परिषद में अपने प्रथम भाषण में प्रकट की गई आशा को, अर्थात् उस आशा को जो उन्होंने यह कह कर व्यक्त की थी कि यथासंभव अत्यन्त शीघ्र ही प्रान्तों के अनुरूप बना दिया जायेगा और ध्यान में रखकर और विधान के उन अनुच्छेदों को विचार में रखकर, जिनकी ओर पंडित कुंजरू ने कल संकेत किया था और जो कि इस प्रकार के अंतर को मिटाने के संबंध में है मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे यह भी विचार करें कि इस प्रकार के गुप्त विभेद भी मिटाना आवश्यक है या नहीं। श्रीमान्, मुझे आशा है कि हम शीघ्र ही भगवान की कृपा से प्रभुता के इस सिद्धान्त का शीघ्र ही अन्त कर देंगे, जिसे कि रियासतों के लिये इस बारे में प्रतिपादित किया गया है।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् उपाध्यक्ष, अनेकों सदस्यों ने यह कहा है कि यह संशोधन सदस्यों को इस संशोधन में ही हुई बातों पर प्रभाव डालने वाले किसी विधेयक को पेश करने के अधिकार से वंचित करता है। इस संबंध में कुछ सदस्यों ने ऐसे तर्क उपस्थित किये हैं जो मुझे आश्चर्यजनक लगते हैं। श्रीमान्, विधान मंडल में सदस्यों के विधेयकों अथवा प्रस्तावों को पेश करने के अधिकार तथा अन्य सुविधाओं की रक्षा करने में मैं किसी से पीछे नहीं रहता। यद्यपि डा. अम्बेडकर के संशोधन में यह उल्लिखित है कि प्रधान की सहमति ली जानी चाहिये, तथापि उसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि उससे सदस्यों का कोई अधिकार छिन गया। उदाहरणार्थ मैं यह बात आपके

सामने रखता हूं कि सड़कों पर चलने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है, कोई भी व्यक्ति जिस प्रकार वह चाहे चल सकता है। परन्तु जब वह सड़क पर चलता है तब उसे कुछ प्रारम्भिक नियमों का पालन करना होता है, जिससे कि वह सड़क में कोई रुकावट पैदा न करे या किसी से टकरा न जाये अथवा किसी की मृत्यु का कारण न बने। यदि कोई व्यक्ति मोटर या गाड़ी चलाता है तो उसे लाइसेंस लेना पड़ता है। उसे कुछ प्रारम्भिक नियमों का पालन करना होता है और यदि उन नियमों का पालन न किया जाये तो बड़ा गोल-माल हो जाये। अत: यह कहना कि डा. अम्बेडकर के इस प्रस्ताव द्वारा सदस्य अपने अधिकारों से वंचित किए जा रहे हैं, ठीक नहीं है। इसके विपरीत यह कहीं नहीं कहा गया है कि कोई भी सदस्य विधेयक पेश नहीं कर सकता है। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है और इसीलिये यह उल्लिखित है कि अध्यक्ष से परामर्श किया जाये और उनकी सिफारिश मानी जाये। सच तो यह है कि इस से लाभ उन सदस्यों को ही होगा, जो प्रधान, अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से भारत सरकार से, इस बारे में सम्मति लेंगे। ऐसी सम्मति प्राप्त कर लेने से उन्हें इस प्रकार का प्रस्ताव रखने में बड़ा बल प्राप्त हो जायेगा।

कल मेरे माननीय मित्र श्री भार्गव ने यह तर्क उपस्थित किया था कि कुछ छोटे प्रान्तों को जो बड़े प्रान्तों से पृथक् होना चाहते हैं, इस संशोधन के अंतर्गत पृथक होने का अधिकार नहीं रहेगा। मैंने कल कहा था और आज फिर कहता हूं कि यदि बहुसंख्यक किसी प्रदेश का विभाजन नहीं चाहते हैं तो अल्पसंख्यकों का बहुसंख्यकों के इस अधिकार में हस्तक्षेप करना अनुचित होगा। यदि आप बहुसंख्यकों पर अल्पसंख्यकों का शासन चाहते हैं तो वह शासन-व्यवस्था एक प्रकार की तानाशाही व्यवस्था होगी। प्रजातंत्र का अर्थ है बहुसंख्यकों का राज्य। अत: मेरा विचार है कि जो संशोधन पेश किया गया है, वह कल्याणकारी है। वह किसी सदस्य को अधिकार से वंचित नहीं करता है। इस बात के विरुद्ध मैं यह कह सकता हूं कि जब प्रधान इस बारे में अपनी सम्मति दे देगा तो इस विषय को उस सम्मति से और भी बल मिल जायेगा।

श्रीमान्, पंडित कुंजरू के संशोधन के बारे में मैं केवल एक बात पर प्रकाश डालूंगा। मेरी समझ में यह बिल्कुल नहीं आता कि प्रथम अनुसूची के प्रथम भाग के राज्यों अर्थात प्रान्तों और प्रथम अनुसूची के भाग 3 की रियासतों में क्यों अंतर रखा गया है? एक के लिये यह कहा गया है कि विधान-मंडल की राय लेनी

[श्री आर.के. सिधवा]

चाहिये और दूसरों के लिये अर्थात रियासतों के लिए उन्होंने यह कहा कि पूर्व अनुमति प्राप्त कर लेनी चाहिये। राय का अर्थ ''विचार'' से है और अनुमति का अर्थ ''सहमति तथा विषय के निर्णय'' से है। श्रीमान्, आपको यह विदित है कि इस विधान को विभिन्न प्रान्तों में भेजा गया था और उन प्रान्तों ने अपने-अपने विधान मंडलों में इस पर वाद-विवाद किया था और अपने-अपने विचार इस सभा को भेजे थे और हमको वे प्रतियां दी गई थी। यह विधि ठीक है। किसी विधान मंडल ने कोई निर्णय नहीं किया। बिहार, बंगाल तथा बम्बई के सभी विधान-मंडलों ने इस विषय पर वाद-विवाद किया और कार्यवाइयों की छपी प्रतियां हमको दी गई हैं। अनुमति का अर्थ रियासत की अनुमति से है। मैं उन लोगों के साथ सहमत नहीं हूं जो यह कहते हैं कि अनुमति का अर्थ है, राजा की अनुमति। अनुमति का अर्थ है, राज्य के विधान मंडल की अनुमति। राज्य का अर्थ राजा नहीं है। जिस प्रकार कि अध्यक्ष का अर्थ स्वयं उसके व्यक्तित्व से नहीं है; वरन् भारतीय सरकार से है। उसी प्रकार यदि राजा अनुमति देता है तो उसे रियासत के विधान मंडल से अनुमति प्राप्त करनी होगी। मैं यह जानना चाहता हूं कि रियासतों के संबंध में यह क्यों कहा गया है कि अनुमति प्राप्त करनी चाहिये और मैं यह चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर सभा को यह बतावें कि रियासतों के संबंध में भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि अनुमति की अपेक्षा उनकी राय ही ली जाये। अत: मेरा विचार है कि जब तक कोई मान्य कारण ऐसा करने के लिये न हो—मान्य कारण यह हो सकता है कि चूंकि भारतीय संघ में राज्य समझौते के आधार पर सम्मिलित हुये हैं, अत: उनके राजाओं से इस बारे में संपृच्छा करना आवश्यक है—तब तक न तो सारे भेद दूर करने में कोई रुकावट ही हो सकती है और न किसी प्रकार के समझौते का सवाल ही पैदा हो सका है। रियासतों की जनता के अधिकार प्रान्तों की जनता के अधिकार के समान हैं। रियासतों की जनता में इतना उत्साह है कि वे लोग सीधे ही संघ में सम्मिलित होना चाहते हैं अथवा प्रान्तों में मिलना चाहते हैं, जैसा कि हमें बताया गया है कि बिना सहमति या समझौते के उनको मिला लेना वांछनीय नहीं है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं। पर हम यह आशा करते हैं कि उनकी राय जानने के प्रश्न में वही पद्धति बरती जायेगी जो प्रान्तों के लिये है।

इन विचारों के साथ मैं इस संशोधन का पूरे बल से समर्थन करता हूं और मैं आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर इस बात को स्पष्ट करेंगे कि रियासतों के लिये यह अंतर क्यों रखा गया है और क्यों उन्होंने यह कहा कि प्रान्तों के संबंध में विधान-मंडल के विचार प्राप्त किये जायेंगे और रियासतों के संबंध में उनकी पूर्व सहमति प्राप्त की जायेगी।

***उपाध्यक्षः** डा. अम्बेडकर।

***एक माननीय सदस्यः** श्रीमान्, अब वाद-विवाद समाप्त किया जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं एक औचित्य प्रश्न उपस्थित करना चाहता हूं। डा. अम्बेडकर ने केवल एक संशोधन पेश किया है, इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि उनको उत्तर देने का कोई अधिकार नहीं है। मेरे पास सभा का एक आदेश है जिसमें यह साफ कहा गया है...

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं समझता हूं कि समस्त अनुच्छेद विचाराधीन हैं। यदि अनुच्छेद विचाराधीन हैं तो डा. अम्बेडकर को उत्तर देने का अधिकार है।

***मौलाना हसरत मोहानीः** डा. अम्बेडकर भाषण दे चुके हैं, उनको और कोई भाषण देने का अधिकार नहीं है।

***उपाध्यक्षः** कृपया अध्यक्ष को सम्बोधन करिये।

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि व्यवस्था में यह दिया हुआ है, मैं इस सभा की छपी हुई कार्यवाईयों में पढ़ रहा हूं कि संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार नहीं है। वह दूसरा भाषण नहीं दे सकता।

***उपाध्यक्षः** मेरा निर्णय है कि अनुच्छेद तथा संशोधन दोनों ही विचाराधीन हैं। डा. अम्बेडकर।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार होता है।

***उपाध्यक्षः** इससे मेरी स्थिति और भी अधिक बलवान हो जाती है।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** श्रीमान्, मेरे कहने का तात्पर्य यह है। नियम दो प्रकार के हैं। एक विधान-मंडल की कार्यपद्धति के नियम और दूसरे हमारे विधान संबंधी कार्यपद्धति के नियम। विधान मंडल के नियमों में यह दिया हुआ है कि संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार नहीं है। विधान की कार्यपद्धति के संबंध में उस नियम को जानकर के छोड़ दिया गया है। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि प्रत्येक संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार है।

***उपाध्यक्षः** आप डा. अम्बेडकर के उत्तर देने का विरोध तो नहीं करते हैं?

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** केवल समर्थन ही नहीं करता हूं बल्कि मैं इस प्रणाली का स्थापन करना चाहता हूं कि संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार है, क्योंकि विधान-मंडल के लिए निर्मित नियमों और हमारे नियमों में बहुत अंतर है।

***उपाध्यक्षः** इस प्रश्न को डा. अम्बेडकर के उत्तर देने के पश्चात् तय करेंगे।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरे नाम से एक संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** श्री साहू कृपा कर अपना स्थान ग्रहण करिये।

डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): जो संशोधन डा. कुंजरू ने पेश किया है वह ऐसा संशोधन है जिससे मुझे बहुत कुछ सहानुभूति है, परन्तु दुर्भाग्यवश हम जिन परिस्थितियों में हैं उन परिस्थितियों में मैं उसे मानने के लिये तैयार नहीं हूं। अपने संशोधन को पेश करते हुए मेरे मित्र ने जो तर्क उपस्थित

किया है वह यह है कि अपना संशोधन पेश करते हुए मैंने जो विचार प्रकट किये थे वे विधान में दिये हुए अन्य वाक्य-खंडों तथा अनुच्छेदों से असंगत हैं। उनका कहना है कि प्रान्तों और राज्यों के बारे में जो विभेद अनुच्छेद 3 में समाविष्ट प्रावधानों में रखा गया है, उसको ठीक सिद्ध करने के लिये जो दलील मैंने सभा के सामने रखी थी, वह अनुच्छेद 226, 230 और 294 से असंगत है। मेरा निवेदन यह है कि उस तर्क में, जो मैंने प्रान्तों और रियासतों में अंतर रखने के समर्थन में उपस्थित किया था और उन अनेकों अनुच्छेदों में जिनका उन्होंने उल्लेख किया है, कोई विरोध नहीं है।

अनुच्छेद 226 के सम्बन्ध में जो प्रान्तीय सूची के अन्तर्गत विषयों पर केन्द्रीय विधान मंडल को कानून-निर्माण का अधिकार देता है, मेरा यह निवेदन है कि पार्लियामेंट द्वारा इस अधिकार का प्रयोग उत्तरागार के दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर ही किया जायेगा। वे यह स्वीकार करेंगे कि उत्तरागार या राज्य-परिषद में रियासतों के भी उतने प्रतिनिधि होंगे जितने कि प्रान्तों के। वे उस विशेष प्रस्ताव पर विचार करने में अवश्य भाग लेंगे जिसके द्वारा प्रस्ताव में उल्लिखित विषयों पर कानून निर्माण करने का अधिकार पार्लियामेंट को प्रदान किया जायेगा। अत: यह कहना कि 226 धारा स्वत: ही भारतीय रियासतों की प्रभुता का हरण करती है कभी उचित नहीं हो सकता। सच तो यह है कि यह तो ऐसी व्यवस्था है जो उत्तरागार के जिसमें कि राज्यों का पूरा प्रतिनिधान है, विशेष संकल्प द्वारा प्रभुता प्रदान करती है। अत: असंगति के सिद्ध करने के लिये यह उदाहरण कुछ महत्त्व नहीं रखता।

230 अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी मेरा यह निवेदन है। इस विधान के स्वीकृत होने के बाद चाहे रियासतें कुछ भी क्यों न करें, इस समय तो यही बात है। जैसा कि मेरे विद्वान मित्र को भी ज्ञात है कि रियासतें संघ में केवल तीन विषयों के लिये ही सम्मिलित हुई हैं और उनमें से एक विषय विदेशी मामला है। अत: यह बात तो प्रत्यक्ष है कि संधि को पूरा करने का काम उस शक्ति के प्रयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जो शक्ति कि केन्द्रीय विधान-मण्डल को संधि पूरा करने के लिये दी गई है और जिसका पूरा करना 'विदेशी मामलों' का केवल

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

एक अंग है। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि इससे उनकी प्रभुता का अपहरण होता है।

अनुच्छेद 264, जो अल्पसंख्यकों की रक्षा से सम्बद्ध प्रावधानों को भारतीय रियासतों में लागू करने के सम्बन्ध में है, इस समय नि:सन्देह उनके प्रभुता-जन्य अधिकार का हरण करता हुआ-सा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तविकता इस से सर्वथा भिन्न है। यह केवल उन प्रस्तावों में से एक है जिनको हम भारतीय रियासतों के समक्ष रखेंगे, जब कि वे भारतीय संघ में सम्मिलित होंगे उनको खण्ड 264 स्वीकार करना होगा। मैं यह भी बता दूं कि मसौदा-समिति ने इन प्रावधानों के क्षेत्र को विस्तृत करना क्यों उचित समझा। उसे यह बात सुनाई दी कि कुछ भारतीय रियासतों की परिषदें इस बारे में बहुत प्रकार के और डर पैदा करने वाले प्रावधान बना रही हैं। अत: उसने यह उचित समझा कि वह यह पूर्णतया साफ कर दे कि किस प्रकार के अल्पसंख्यक रक्षण-सम्बन्धी प्रबंध को संघ सरकार स्वीकार्य करार देगी और किस प्रकार के रक्षण को अस्वीकार्य समझेगी।

श्रीमान्, भारतीय रियासतें और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में अन्तर रखने के प्रश्न पर बहुत कुछ कहा जा चुका है और मैंने यह भली प्रकार समझ लिया है कि विधान में इस अन्तर के रखने पर सभा बहुत ही उत्तेजित है, पर मैं सभा को दो बातें बताना चाहता हूं। पहली यह है कि हम अभी दोनों निगोशियेटिंग कमेटियों द्वारा किये गये संविदा की शर्तों में बंधे हुए हैं—एक समिति को ब्रिटिश प्रान्तों का प्रतिनिधान करने के लिये भारतीय विधान-परिषद ने नियुक्त किया था और दूसरी भारतीय रियासतों द्वारा मनोनीत सदस्यों की थी। ये इसलिये नियुक्त की गई थीं कि दोनों भागों में लागू होने के लिए एक विधान का मसविदा तैयार करने का आधार निश्चित करें। निगोशियेटिंग कमेटियों की रिपोर्टों में दी गई छोटी-छोटी बातों में मैं नहीं जाना चाहता। परन्तु यदि मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू समिति की रिपोर्ट देखें तो उनको यह विदित होगा कि उसमें एक स्पष्ट प्रावधान है कि निगोशियेटिंग कमेटी की रिपोर्ट से यह नहीं समझा जायेगा कि भारतीय संघ को

देशी रियासतों के राज्य क्षेत्र पर अधिकार जमाने की खुली छुट्टी है। मेरा निवेदन यह है कि यदि वह दो दलों का समझौता है—मेरा आशय प्रसंविदा अथवा संविदा से नहीं है—तो इस समय उस समझौते को मान लेने में ही भलाई है। एक बात मैं और बताना चाहता हूं—विधान में एक और अनुच्छेद है—और मुझे खेद है कि मेरे मित्र कुंजरू ने उसका कोई उल्लेख नहीं किया—वह अनुच्छेद 212 है, जो बड़ा महत्त्वपूर्ण है और मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि रियासतों के सम्बन्ध में भारतीय विधान के मसौदे में किन-किन सम्भावनाओं की व्यवस्था की गई है। माननीय सदस्यों ने यह देखा होगा कि अनुच्छेद 3 में भारतीय रियासतों को भारतीय संघ में ऐसे संघ-विलेखों के आधार पर सम्मिलित करने की व्यवस्था की गई है, जिन्हें भारतीय रियासतें भारतीय संघ को लिख कर देंगी। जब इस प्रकार कोई रियासत भारतीय संघ में आती है, तो केन्द्रीय सरकार के सामने, प्रान्तों के सामने, उसकी स्थिति वही होगी जो संघ-विलेख की शर्तों के अनुसार होनी चाहिए, पर संघ-विलेख ही भारतीय रियासतों को भारतीय विधान में सम्मिलित करने का एकमात्र साधन नहीं है। विधान में एक और बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रावधान है। वह अनुच्छेद 212 है, उसमें यह व्यवस्था की गई है कि किसी भारतीय रियासत का राजा अपनी रियासत के सम्बन्ध में अपनी समस्त प्रभुता को भारतीय संघ को हस्तांतरित कर सकता है। प्रावधान 212 के अन्तर्गत, जब कि समस्त प्रभुता-जन्य अधिकार हस्तान्तरित कर दिये गये हों तो उस राजा का राज्य-क्षेत्र एक प्रकार से भारत का राज्य-क्षेत्र हो जाता है और समस्त प्रभुता-जन्य अधिकार भारतीय संघ को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार जब अनुच्छेद 212 के अंतर्गत अधिकार दे दिये जाते हैं तो वह राज्य-क्षेत्र, जिसके प्रभुता-जन्य अधिकार राजा द्वारा पूर्णत: भारतीय संघ को हस्तान्तरित कर दिये गए हैं। भारत के प्रान्त के अनुसार शासित किया जा सकेगा और उस दशा में विधान का दूसरा भाग जो भारतीय प्रान्तों के विधान की व्याख्या करता है, अपने आप उस रियासत पर लागू हो जायेगा या केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों की भांति उस पर भी शासन किया जा सकेगा जिससे कि प्रधान तथा केन्द्रीय पार्लियामेंट की उस विशेष राज्य-क्षेत्र में किसी भी प्रकार के शासन चलाने का पूर्ण अधिकार हो। यदि मैं इस शब्दावलि का प्रयोग कर सकूं तो मैं सभा से निवेदन करूंगा कि इस विषय में सुधबुध खोने की आवश्यकता नहीं हैं। यदि हम थोड़ा सब्र से काम लें तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारी भारतीय रियासतों के मंत्री

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

महोदय, जिन्होंने कि हमारे विधान-निर्माण कार्य आरम्भ करने के पूर्व जो उपद्रव विद्यमान थे, उनको कम करने के लिये इतना महान कार्य किया है, उन प्रभुता-जन्य अधिकारों का यथोचित प्रयोग करेंगे, जिसे भारतीय संघ ने प्राप्त कर लिया है और भविष्य में उपद्रवों को और भी कम होने देंगे और भारतीय रियासतों को समझा-बुझा कर और उन से उन्हीं प्रावधानों को स्वीकार करा कर, जो हमने देशी रियासतों के लिये भी रखे हैं और या 212 धारा का अनुसरण कराके और हमको प्रभुता-जन्य अधिकारों का अर्पण कराके एक व्यवस्था स्थापित करेंगे, जिससे कि भारतीय संघ भारतीय रियासतों से उसी प्रकार का व्यवहार कर सके जिस प्रकार का व्यवहार वह प्रान्तों के साथ करने में समर्थ है।

मैं निवेदन करता हूं कि अभी तो इसी में बुद्धिमानी है कि दोनों निगोशियेटिंग कमेटियों ने जो कुछ तय किया है उसका हम आदर करें और उसको तब तक मानें जब तक कि दोनों पक्षों से प्रीतिपूर्वक, शांतिपूर्वक और सम्मानपूर्वक आगे होने वाले संविदा में मूलभूत परिवर्तन न करा लें।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं पं. हृदयनाथ कुंजरू के संशोधन के अनुसार संशोधन संख्या 150 के परिवर्तित रूप पर मत लेता हूं। (*बाधाएं*) कृपया जिस प्रकार मैं कार्रवाई का संचालन करना चाहता हूं, उस प्रकार मुझे संचालन करने दीजिये।

***माननीय पं. गोविन्द बल्लभ पन्त** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान् मेरी समझ में नहीं आता कि आप पं. हृदयनाथ कुंजरू के संशोधन के अनुसार परिवर्तित संशोधन पर सभा का मत किस प्रकार ले रहे हैं। मेरी समझ से सर्वप्रथम आपको पं. कुंजरू के संशोधन पर मत लेना चाहिये और उसके पश्चात् दूसरे संशोधन को लेना चाहिए। प्रारंभ में उसे लेना और दोनों को मिला देना ठीक नियमानुसार नहीं होगा।

***उपाध्यक्ष:** कृपया ध्वनि-वर्द्धक यंत्र पर आइये।

***माननीय पं. गोविन्द बल्लभ पंत:** मेरा निवेदन यह है कि डा. अम्बेडकर का यह संशोधन पं. कुंजरू के संशोधन के अनुसार परिवर्तित रूप में मतदान के

लिये रखा जा रहा है और मैं यह चाहता हूं कि आप ऐसा न करें। मेरा निवेदन यह है कि प्रथम आप पं. कुंजरू के संशोधन पर मत लें। यदि वह स्वीकार कर लिया जाये, तब आपको परिवर्तित संशोधन पर मत लेना होगा। यदि वह अस्वीकार किया गया तो आपको डा. अम्बेडकर के मूल प्रस्ताव पर मत लेना होगा। दोनों को मिला देने से कुछ गड़बड़ी हो जायेगी।

*__श्री एच.वी. कामतः__ प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 149 का क्या हुआ?

*__उपाध्यक्षः__ यदि डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो प्रो. के.टी. शाह का संशोधन अपने आप ही गिर जाता है। इसी कारण मैं डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव को ले रहा हूं। यही सरल विधि है। 149वां संशोधन शब्दों को पूर्णतया बदल देने के सम्बन्ध में है।

अच्छा, तो हम सर्वप्रथम पं. कुंजरू के संशोधन पर मत लेंगे।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ श्रीमान्, मैं एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न करना चाहता हूं। मेरे विचार से माननीय पं. कुंजरू को ठीक जवाब मिल गया है। साधारण नियम यह है कि जो वाद-विवाद आरम्भ करता है, उसे उत्तर देने का अधिकार है, यदि उस अधिकार को संक्षिप्त न किया गया हो। विधान निर्माण-सम्बन्धी इस सभा की कार्य पद्धति का संचालन करने वाले नियमों में नियम 111 में दिया हुआ है कि...

*__उपाध्यक्षः__ क्या यह नियम यहां लागू होता है?

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ नहीं, क्योंकि हमारे पास तत्सम्बन्धी नियम नहीं है और कारण स्पष्ट है। हम यहां एक बड़े महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहे हैं। और संशोधन पेश करने वालों को, जिन्होंने कि वास्तव में एक सारयुक्त प्रस्ताव सभा के समक्ष रखा है, सभा में वाद-विवाद सुनने के पश्चात् बहुत कुछ उस विषय पर कहना है। इस कारण, यही बात कि हमारी कार्यपद्धति के नियमों में नियम संख्या 111 के समान कोई नियम नहीं है, स्पष्ट सिद्ध करती है कि विधान पर संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार है। और यह है

[माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त]

भी स्वाभाविक, क्योंकि विषय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, वाद-विवाद के साधारण नियम हमारी कार्यपद्धति में भी लागू होने चाहिये। मेरा यही निवेदन है।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मेरे विचार से माननीय पंडित कुंजरू को अपने संशोधन के सम्बन्ध में उत्तर देने का अधिकार नहीं है। मेरा तर्क यह है कि जिस नियम का उल्लेख मेरे मित्र श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने किया है, उस नियम में यह दिया हुआ है कि संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार नहीं है। उनका तर्क यह है कि हमारी परिषद् में ऐसा कोई नियम नहीं है इसलिये हम यह कह सकते हैं कि संशोधन पेश करने वाले को ऐसा करने का अधिकार है। इसके विरोध में मैं यह कहूंगा कि मैंने किसी महत्त्वपूर्ण विधान-मंडल या परिषद् में इस अधिकार का प्रदान किया जाना नहीं सुना। जब इस परिषद् का कोई नियम नहीं है, तो विधान परिषद् (विधान-मंडल) के नियम लागू होने चाहिये, क्योंकि कानून निर्माण कार्य के लिये हमारे देश में वही सर्वोच्च संस्था है। इस सम्बन्ध का हमारी इस परिषद् में कोई नियम नहीं है। अत: सर्वोच्चता में द्वितीय स्थान प्राप्त विधायिनी सभा के नियमों को मान्य होना चाहिए। मेरे विचार से यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। हमें कुछ नियमों के अनुसार कार्य-संचालन करना चाहिये। मैंने ऐसी किसी महत्त्वपूर्ण विधान-मंडल अथवा अन्य संस्था और यहां तक किसी स्थानीय संस्था को भी संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार देते नहीं सुना। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि श्री गुप्त द्वारा उपस्थित किये गये विचार तथा तर्क मान्य नहीं है। और यह इस तर्क के आधार पर कि हम एक अन्य समान संस्था के नियमों द्वारा अनुशासित होते हैं, जो संशोधन के पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार नहीं देती है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन** (सयुंक्त प्रांत : जनरल): श्रीमान्, मेरे मित्र सिधवा बड़े बहादुर हैं। उन्होंने एक ऐसे विषय को लिया है, जिसके सम्बन्ध में आप मुझे यह कहने की आज्ञा देंगे कि उनको पूर्ण ज्ञान नहीं है। उन्होंने कहा कि वे किसी महत्त्वपूर्ण विधान-मण्डल से परिचित नहीं हैं, जो संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार देती हो। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि देश में

संयुक्त प्रान्त यथेष्ट रूप में महत्त्वपूर्ण प्रान्त है और मैं आपको यह बता सकता हूं कि संयुक्त प्रांत की विधायिनी सभा का इस सम्बन्ध में यह निश्चित तथा स्पष्ट नियम है कि संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार है। (वाह, वाह) यह विधेयकों के सम्बन्ध में है। विधेयक के किसी खण्ड में संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार है। यह जरूर है कि विधेयक से सम्बन्धित विभाग के मंत्री को अन्तिम शब्द कहने का अधिकार है। परन्तु, यह दूसरा विषय है। पर यह साफ है कि विधेयक के वाक्य-खंड में संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार दिया जाता है।

यहां मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि और इस बात की ओर मेरे मित्र ने इशारा करके ठीक ही किया है कि हम एक महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहे हैं। मेरे विचार से यह उचित होगा कि संशोधन पेश करने वाले को उन आलोचनाओं का उत्तर देने का अधिकार दिया जाये, तो आलोचनायें उस विषय पर की गई हैं, जिसको उन्होंने सभा के समक्ष रखा हैं यदि आप चाहते हैं तो आप तत्सम्बन्धी मंत्री को अन्तिम शब्द कहने की आज्ञा दे सकते हैं। परन्तु मैं यह निवेदन करता हूं कि संशोधन पेश करने वाले को अपने प्रकट किये हुये विचारों की आलोचना का उत्तर देने की आज्ञा होनी चाहिए।

***श्री आर.के. सिधवाः** कितने प्रान्तीय विधानमंडलों में ऐसा नियम है?

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं अपनी स्थिति थोड़ी और अधिक स्पष्ट कर दूं, जिससे कि उसके सम्बन्ध में कोई भ्रम न रहे। कुछ समय पूर्व विधान का मसौदा हमें दिया गया था। उसमें अनेकों प्रकार की रियासतों के राज्यक्षेत्रों के पुनर्विभाग सम्बन्धी एक प्रावधान है। डा. अम्बेडकर ने सभा के समक्ष विधान के मसौदे में दिये हुये प्रावधान को नहीं रखा। जिस बात की ओर उन्होंने हमारा ध्यान आकर्षित किया, वह मूल प्रावधान पर संशोधन था और अपने प्रस्ताव को पेश करते हुये वे केवल अपने प्रस्ताव के औचित्य पर नहीं बोले, वरन् विधान के मसौदे में दिये हुये मूल प्रस्ताव पर भी बोले। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि दुबारा बोलते समय वे किसी ऐसे विचार को रखेंगे जिसको वह पहले नहीं रख सके। मेरे विचार से उन्होंने अपने बोलने का अधिकार समाप्त कर दिया। फिर भी अन्य सदस्यों की बातों के उत्तर देने की उनको आज्ञा दे

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

दी गई। यद्यपि उन्होंने जो कुछ कहा, उस सबसे अथवा उसके अधिकांश भाग से मैं सहमत नहीं हूं, पर उसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु इस व्यवस्था से उन सदस्यों के अधिकार के सम्बन्ध में जो संशोधन पेश करते हैं, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा हुआ है और इस प्रश्न का मैं उत्तर चाहता हूं। यदि मंत्री को, जो संशोधन पेश करता है, उत्तर देने का अधिकार है तो क्या उसी अवस्था में अन्य किसी सदस्य को वह अधिकार नहीं है?

श्री घनश्याम सिंह गुप्तः एक औचित्य प्रश्न...

उपाध्यक्षः मैं अपनी व्यवस्था दे रहा हूं। नियमों में ऐसी कोई बात नहीं मालूम होती जो संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार प्रदान करती हो। यदि डा. अम्बेडकर से मैंने उत्तर देने के लिये कहा था तो वह इस कारण था कि उनसे कुछ प्रश्न किये गये थे और मैंने यह ठीक और उचित समझा कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने का उन्हें एक अवसर दिया जाये। यह मेरी व्यवस्था है।

अब मैं पंडित कुंजरू के संशोधन का मत लेता हूं। प्रश्न यह है कि:

''संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 150 के अनुच्छेद 3 के परादिक के वाक्य-खंड (ब) ''Previous Consent'' शब्दों के स्थान में ''The Views'' शब्द रख दिये जायें और ''Has Been'' शब्दों के स्थान में ''Have Been'' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

उपाध्यक्षः प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 3 के वर्तमान परादिक के स्थान में निम्न परादिक रखा जाये परन्तु इस आशय का कोई भी विधेयक पार्लियामेंट की किसी भी सभा में नहीं रखा जायेगा जब तक कि उस पर अध्यक्ष की सिफारिश न हो और

(अ) यदि विधेयक में दिया हुआ प्रस्ताव प्रथम अनुसूची के प्रथम भाग में उस समय उल्लिखित रियासत या रियासतों के नाम अथवा सीमाओं पर प्रभाव डालता हो तो जब तक अध्यक्ष द्वारा रियासत या प्रत्येक रियासत के विधान-मंडल के विधेयक को उपस्थित करने के प्रस्ताव और उसके प्रावधान इन दोनों विषयों पर विचारों का प्राप्त न कर लिया गया हो; और

(ब) यदि विधेयक में दिया हुआ प्रस्ताव अनुसूची के तीसरे भाग में उस समय उल्लिखित रियासत या रियासतों के नाम अथवा सीमाओं पर प्रभाव डालता हो तो जब तक कि रियासत या प्रत्येक रियासत के प्रस्ताव के लिये पूर्व स्वीकृति प्राप्त न कर ली गई हो।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रो. के.टी. शाह का संशोधन तथा संशोधन संख्या 175 तक के समस्त संशोधन डा. अम्बेडकर के संशोधन की स्वीकृति के पश्चात् गिर जाते हैं। अब हम संख्या 176 को ले सकते हैं।

*__श्री लक्ष्मी नारायण साहू:__ मैं अपने नाम के संशोधन सं. 154 को पेश करना चाहता हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ वह संशोधन उस अनुच्छेद के स्थान पर अन्य पदावली रखे जाने के सम्बन्ध का है जिसे पूरा का पूरा हटा दिया गया है। अत: उस पर यहां वाद-विवाद नहीं हो सकता।

(संशोधन सं. 176 पेश नहीं किया गया।)

हमारे पास एक संशोधन सं. 176 (अ) बेगम ऐज़ाज रसूल का है। वह राष्ट्रीय भाषा के सम्बन्ध का है। अन्य संशोधनों की भांति इसे भी उचित स्थान के लिये स्थगित किया जाये।

अनुच्छेद 3 समाप्त होता है। क्या कोई समूचे अनुच्छेद पर वाद-विवाद करना चाहता है?

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): यदि किसी माननीय सदस्य को इस समूचे अनुच्छेद पर बोलने दिया जाता है तो उसकी क्या स्थिति होगी? क्या फिर डा. अम्बेडकर को उसका उत्तर देने के लिये कहा जायेगा?

*__उपाध्यक्ष:__ कदापि नहीं।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:__ इस समूचे अनुच्छेद पर अभी विचार समाप्त नहीं किया गया है और डा. अम्बेडकर ने अभी तक केवल संशोधन का उत्तर दिया है, समूचे अनुच्छेद का नहीं।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य का वक्तव्य हम सुनेंगे और यदि वह पुरानी बातें दुहरायेंगे तो उनसे रुकने के लिये हम निवेदन करेंगे।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** अतः डॉ. अम्बेडकर को उत्तर देने का अधिकार नहीं है।

***उपाध्यक्षः** नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर** (मद्रास : जनरल): वह कल्पित बात है। ऐसा प्रश्न उठता ही नहीं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): यह अनुच्छेद तीन आशयों की पूर्ति के लिये है...

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल) इसमें कार्यपद्धति का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है। इस अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन रखे गये थे, परन्तु आपने केवल दो या तीन को ही पेश करने की आज्ञा दी और उसके पश्चात आपने दो पर मत लिया। अन्य संशोधनों को पेश करने का अवसर ही न मिला। मेरे विचार से समस्त संशोधनों को पेश कर लेने दिया जाता और फिर मत लिया जाता। अन्यथा अन्य सदस्यों को अपने संशोधनों के मूल्य आंकने का अवसर नहीं मिलेगा। यदि उनको सभा में पेश करने दिया जाता तो शायद सभा उनमें से कुछ को स्वीकार कर लेती।

***उपाध्यक्षः** किन संशोधनों को पेश नहीं किया गया?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** संख्या 174 तक के समस्त संशोधनों को।

***उपाध्यक्षः** उनका प्रश्न ही नहीं उठता। डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के कारण उनको व्यवहारिक रूप में अस्वीकार कर दिया गया।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उनको पेश तो करने दिया जाता।

***उपाध्यक्षः** आपने ठीक समय पर यह क्यों नहीं बताया?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** भविष्य में इस पर ध्यान रखा जाये।

***उपाध्यक्षः** इस बात को ध्यान में रखा जाएगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** यह अनुच्छेद निम्न तीन आशयों की पूर्ति के लिये है:

(अ) किसी प्रान्त या रियासत की सत्ता मिटाने को,

(ब) सरदार पटेल को शक्तिशाली बनाने को,

(स) नये प्रान्तों की उत्पत्ति करने को।

दो मौलिक बातों पर यह अनुच्छेद खामोश है: अर्थात्

(1) इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अन्तर्गत नवनिर्मित रियासतों के वैधानिक अधिकार के बारे में भारत की भावी पार्लियामेंट के बहुसंख्यक दल की इच्छा पर यह बात छोड़ दी गई है कि वह केवल साधारण बहुमत से निश्चय करने की अति सुगम विधि द्वारा यह निश्चय करे कि नई रियासत को प्रथम अनुसूची के प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय किस भाग में रखा जाए। (2) इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अन्तर्गत किन परिस्थितियों में पार्लियामेंट प्रकार्य कर सकती है। पार्लियामेंट को अनुचित रीति से प्रान्तों को तोड़ने और संयुक्त करने का कानूनी अधिकार है। इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अन्तर्गत ऐसे कोई प्रतिबंध नहीं है कि जो पार्लियामेंट को इस अधिकार के निर्बाध प्रयोग से रोकते हों।

मैं इस विषय पर एक उदाहरण देता हूं। यदि केन्द्र में अधिकार प्राप्त बहुसंख्यक दल का बिहार प्रान्त को मिटाने का विचार होवे तो इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अन्तर्गत दी हुई दो विधियों में से किसी एक विधि द्वारा वह सरलता से ऐसा कर सकेगा, जैसे:

1. बिहार को भागों में विभाजित किया जा सकेगा और समस्त राज्य क्षेत्र को सीधे भारतीय सरकार के शासनाधिकार में रखा जा सकेगा। अनुच्छेद का स्पष्ट अर्थ यह है कि किसी राज्य को प्रथम अनुसूची के प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय किसी भाग में रखने का पूरा अधिकार भारतीय सरकार को है।

2. बिहार को उड़ीसा में मिलाया जा सकेगा और इस प्रकार बने हुये नये प्रान्त का शासन पूर्णतया केन्द्रीय पार्लियामेंट के अधीन किया जा सकेगा।

भारतीय सरकार को उन प्रान्तों के शासनाधिकार प्राप्त करने का अधिकार होना

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

चाहिए। जिनका शासन ठीक नहीं है या जो विधान के अनुसार नहीं है। इसी प्रकार उसे उन अड़ियल प्रान्तों के दंड देने का अधिकार होना चाहिए। जो केन्द्र से विलग होने की भावना के कारण केन्द्र से दूर भागते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दूसरा कारण जिसके लिये यह अनुच्छेद रखा गया है वह सरदार पटेल को शक्तिशाली बनाना है। देशी रियासतों की वैधानिक स्थिति अभी अनिश्चित है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** भारतीय रियासतें, न कि देशी रियासतें।

श्री ब्रजेश्वर प्रसादः भारतीय रियासतों की अपेक्षा देशी रियासतें ही अधिक उपयुक्त हैं। भारतीय राष्ट्रीयता की श्रृंखला में देशी रियासतें सदैव अत्यन्त शक्तिहीन कड़ी के समान रही हैं। इन समस्याओं के सुलझाने में बड़ी सावधानी और ध्यान से काम लेना चाहिए। देशी रियासतों में विधान-परिषदों की वर्तमान सनक को रोकना चाहिए। रियासतों की सेनाओं को हटा देना चाहिए। देशी रियासतों को राज्यों के मंत्रणालय (Ministry of States) और भारतीय सरकार के संचालन, निरीक्षण और नियंत्रण के अधीन ले लेना चाहिए। प्रथम अनुसूची के द्वितीय भाग में उनको रखना वांछनीय होगा। अनेकों रियासतों के मिल कर संघों के बनाने में न्यूनतम अवरोधक प्रणाली को अंगीकार किया गया है। इन संघों का निर्माण घातक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देगा। इन समस्त राज्य-क्षेत्रों को सीधे केन्द्रीय प्रशासन के अधीन लाना सरदार पटेल के अधिकार में है। रियासत निवासियों के मनों में इस भ्रम के उत्पन्न होने की आशंका से बचने के लिये कि हमारी प्रवृत्ति निरकुंश तथा अनियंत्रित राज्यक्रम की ओर है, मैं उन लोगों में से जो इस विधान-परिषद में रियासत की जनता के प्रतिनिधि हैं किसी को राज्य के उपमंत्री के पद पर नियुक्त करने के लिये निवेदन करता हूं।

तीसरा आशय जिसके लिये यह अनुच्छेद सोचा गया है, वह उन लोगों के लिए कुछ गुंजाइश करने के लिए है जो कि एक भाषा-भाषी प्रान्त-निर्माण के महारथी हैं। जहां तक यह अनुच्छेद इस आशय की पूर्ति करता है मैं इसका विरोध करता हूं।

इस बात पर बहुत उपद्रव किया जा रहा है कि सम्प्रदाय के एक बड़े विभाग की चिरसंचित आशाओं, अभिलाषाओं और उत्कण्ठाओं का विरोध करना प्रजातंत्रवाद

के विरुद्ध है। परन्तु किसी बात को प्रभावोत्पादक होने के लिए वास्तव में पुष्ट होना चाहिए। किसी प्रकार का पुष्ट प्रजातंत्रवाद उस महान भूल को निर्दोष नहीं बता सकता जो इस देश के साथ 15 अगस्त सन् 1947 ई. के दु:खदायी विभाजन द्वारा की गई।

***उपाध्यक्ष:** विचारान्तर्गत अनुच्छेद से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। माननीय सदस्य छलागें ले रहे हैं और 5 मिनट समाप्त भी हो गये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैंने आरम्भ में ही कह दिया था कि मुझे 10 मिनट की आवश्यकता है और अभी तक मैंने 5 मिनट ही लिये हैं। खैर मैं हर प्रकार से आपके हाथों में हूं।

***उपाध्यक्ष:** उसी प्रकार मैं भी आपके हाथों में हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** प्रजातंत्र से राष्ट्रीयता मुझे अधिक प्रिय है। प्रजातंत्र के सम्बन्ध में यह कहना बड़ी तुच्छ धारणा है कि प्रशासन-सम्बन्धी समस्त कार्यों पर अनुमति प्राप्त करना और स्वीकृति लेना परमावश्यक है। ऐसा राष्ट्र केवल विप्लव तथा अराजकता की ओर अग्रसर होगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान् एक औचित्य प्रश्न है। मैं नहीं समझ पाता कि कौन से प्रावधान के अन्तर्गत सभा में संशोधनों के स्वीकार किये जाने के पश्चात् आपने इस प्रकार के भाषण की आज्ञा दे दी है। मुझे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिसमें किसी संशोधित प्रस्ताव अथवा विधेयक के किसी संशोधित प्रावधान को सभा में लाने की आज्ञा दी गई हो और उस पर वाद-विवाद करने दिया गया हो। यदि यहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को इस वाक्य-खंड के वाद-विवाद की आलोचना लिखने दी जाए और उस वक्तव्य को सभा पर लादा जाए तो उसका कहीं अन्त नहीं होगा। ऐसी कोई कार्य-प्रणाली नहीं है, जो संशोधनों के स्वीकार किये जाने के पश्चात् इस प्रकार के भाषण देने की आज्ञा देती हो।

***उपाध्यक्ष:** मैं बता सकता हूं कि एक ऐसा प्रमाण है जबकि दूसरे अनुच्छेद के अन्त में श्री कामत ने वक्तव्य दिया था और किसी क्षेत्र से भी उस समय कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** प्रजातंत्र का सार यह है कि जनता राजनैतिक जीवन के उच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उत्सुक हो। जनता की कोई मांग जो

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

इस प्रमुख पूर्वाकांक्षित अभिलाषा की पूर्ति नहीं करती है तो वह प्रजातंत्रात्मक नहीं है।

***उपाध्यक्षः** यह सभा का समय बरबाद करना है।

प्रश्न यह है कि:

''संशोधित रूप में अनुच्छेद 3 विधान का अग बन जाये।''

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): जब तक उन संशोधनों पर जो रोक लिये गये हैं निर्णय नहीं किया जाता, तब तक इस अनुच्छेद को सभा के समक्ष नहीं रखा जा सकता।

***उपाध्यक्षः** उनको छोड़ दिया गया है, क्योंकि डा. अम्बेडकर के संशोधन को सभा द्वारा स्वीकार किये जाने के पश्चात् वे नियमानुकूल नहीं हैं।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त मत्स्य राज्य): श्रीमान्, मैं इस बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि माननीय सदस्य श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने भारतीय रियासतों के लिये ''देशी रियासतें (Naive states)'' शब्दों का प्रयोग किया है। मैं ''देशी'' शब्द के प्रयोग पर घोर आपत्ति प्रकट करता हूं और आपसे निवेदन करता हूं कि ऐसे शब्दों का प्रयोग न करने दिया जाये।

***एक माननीय सदस्यः** ऐसे शब्दों को कार्रवाई के विवरण में से निकाल दिया जाए।

***उपाध्यक्षः** यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता।

प्रश्न है कि:

''संशोधित रूप में अनुच्छेद 3 विधान का अंग बन जाए।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 4

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में क्या मैं एक ऐसा सुझाव उपस्थित कर सकता हूं, जिससे कि समय व्यर्थ बरबाद न हो। आपने अनुच्छेद 4 पर विचारारम्भ करने के लिये कहा है और आपने

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद को अपना संशोधन पेश करने के लिये कहा है। जो सदस्य वाद-विवाद में भाग लेना चाहते हैं उन सबको अनुच्छेद और अनुच्छेद के साथ-साथ संशोधनों पर बोलने दिया जाए। जिससे कि जब आप समूचे अनुच्छेद को रखें, तब फिर एक बार और दुहराने की आवश्यकता न पड़े। यदि समस्त संशोधन समाप्त कर दिये जाते हैं तो फिर कोई भाषण नहीं हो सकता। यह आपके अधिकार की बात है और इस प्रकार के आदेश देने में आपको किसी प्रकार की रुकावट नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपके सुझाव को स्वीकार करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह संशोधन पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 4 के वाक्य-खंड (1) में से ''of this Constitution'' शब्द हटा दिये जायें और समस्त विधान के मसौदे में जहां-जहां ये शब्द इसी प्रसंग में मिलते हों वहां से हटा दिये जायें; और अनुच्छेद 303 के वाक्य-खंड (1) में एक नई व्याख्या (ब ब) रखी जाए:

''(ब ब) 'अनुच्छेद' का अर्थ इस विधान के अनुच्छेद से है।''

इस देश के साधारण कानून-निर्माण में जब कभी हम किसी धारा का उल्लेख करते हैं तो हम 'इस एक्ट की धारा' शब्दों को बार-बार नहीं कहते। जहां तक इस विधान का सम्बन्ध है, हमने 'धारा' शब्द के स्थान में ''अनुच्छेद'' शब्द का प्रयोग किया है और ''एक्ट के'' शब्द इस कारण लागू हो ही जाते हैं कि वे ''सामान्य वाक्य-खंडों के एक्ट'' के अन्तर्गत हैं। मैं निवेदन करता हूं कि एक नई व्याख्या (ब ब) को स्वीकार करके हमें इस विधान में उसी विधि का प्रयोग करना चाहिये। जब कभी हम किसी अनुच्छेद का उल्लेख करते हैं, तो यह स्पष्ट है कि आशय सदैव इसी विधान के अनुच्छेद से होता है। मैं यह सम्मानपूर्वक बताता हूं कि इस विधान के मसौदे में कई स्थलों पर ''of this Constitution'' शब्दों के दिये बिना अनुच्छेद की संख्या दी गई है। इस अनुच्छेद में भी एक स्थान पर हमें ''of the Constitution'' शब्द मिलते हैं और दूसरे स्थान पर नहीं मिलते। हम इन शब्दों को समान रूप से सब स्थलों पर छोड़ सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य अनुच्छेद 4 पर अपने समस्त संशोधन एक-एक करके कार्यावलि की संशोधन संख्या 181 तक यथासम्भव संक्षिप्त रूप में पेश कर सकते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मैं संक्षेप में कहूंगा। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाये कि मेरे इस संशोधन से कम से कम 68 संशोधनों पर विचार हो जाएगा। अनुसूची के साथ हम ''of this Constitution'' शब्दों का दुहराना छोड़ गये हैं। जब आप किसी अनुसूची का उल्लेख करते हैं तो आप उस अनुसूची की संख्या का उल्लेख करते हैं तथा यह नहीं कहते कि ''इस विधान की'' अमुक-अमुक अनुसूची। यह एक विशेष व्याख्या के कारण है, जो स्वयं इसी विधान के मसौदे में दी हुई है। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 303 के खंड (1) के पद (5) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। ''अनुच्छेद'' का अर्थ है ''इस विधान का अनुच्छेद''। यह बहुत आवश्यक प्रावधान है। इस समानता के कारण ''अनुच्छेद'' का अर्थ भी इस विधान के अनुच्छेद से होना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि जो संशोधन मैंने पेश किया है वह 303 (1) के पद (5) के समान है।

अब मैं 178 से 181 तक अन्य प्रस्तावों को पेश करूंगा। मैं पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 4 के वाक्य-खंड (1) में 'article 2 or article 3' शब्दों के स्थान में 'article 2 or 3' शब्द और अंक रखे जाये।''

मैं निवेदन करता हूं कि ''article'' शब्द को उस प्रकार दुहराने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि खंड (1) में और इस विधान के मसौदे में अनेकों स्थलों पर लाया गया है।

इसके बाद मैं पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'article 2 or article 3' शब्दों के स्थान में 'article 3' शब्द और अंक रखे जायें।''

इसके पश्चात् मैं पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'shall contain such provisions for' शब्दों के स्थान में 'shall also provide for' शब्द रखे जाये।''

यह बहुत साधारण संशोधन है।

अब मैं इस अनुच्छेद का अपना अन्तिम संशोधन पेश करता हूं कि:

"अनुच्छेद 4 के खंड (2) में, 'for the purpose of' शब्दों के स्थान पर 'within the meaning of' शब्द रखे जायें।"

यह केवल शाब्दिक संशोधन है।

***उपाध्यक्ष:** आगे वाले संशोधनों को अब एक-एक करके पेश किया जा सकता है। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन सं. 182 इसके पश्चात् आता है। यद्यपि यह खंड 2 के हटाने के लिए है और इस कारण पेश नहीं करने दिया जा सकता है। फिर भी इस अनुच्छेद पर बोलने का मैं उनको अवसर दूंगा।

इसके पश्चात् तत्सम्बन्धी समूचे अनुच्छेद पर वाद-विवाद होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** खंड (2) के हटाने के लिये मैं संशोधन संख्या 182 को पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री महबूब अली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 184 पेश करता हूं कि:

अनुच्छेद 4 के खंड (2) में 'for the purpose of article 304' शब्दों के स्थान में 'under article 304' शब्दों को रखा जाये। वर्तमान शब्दों के रहने देने से किसी न किसी प्रकार की उलझन पैदा हो जाएगी। इसलिये हमें उन शब्दों के स्थान में 'under article 304' रख देना चाहिए।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी आज्ञा से मैं बहुत संक्षेप में अपने माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन के संशोधन सं. 177 पर बोलूंगा।

आपके डा. अम्बेडकर को उत्तर देने के लिए बुलाने के पूर्व मैं उनसे यह निवेदन करता हूं कि यदि वे ऐसा समझते हों कि संशोधन सं. 177 अस्वीकार किया जाये तों वे अपने इस विरोध के समर्थन में कुछ तर्क उपस्थित करें न कि केवल अपने पुराने गुर को दुहरा दें कि "मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।" क्योंकि संशोधन पेश करने वाले मेरे मित्र ने जो तर्क उपस्थित किये हैं, उनके अलावा मैंने विधान सम्बन्धी प्रमाण-द्वितीय ग्रन्थमाला नामक पुस्तक में, जो कि परिषद् के कार्यालय द्वारा हमें दी गई थी, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, स्विट्जरलैंड और जर्मनी के सब विधानों को देखा है। मैंने उन सबको बड़े ध्यान

[श्री एच.वी. कामत]

से पढ़ा है और मुझे यह मालूम हुआ कि ''of this Constitution'' पद का इस प्रकार बार-बार का प्रयोग उनमें से किसी में नहीं मिलता है।

मेरे विचार से संक्षेप ही विधान की आत्मा या उसका सार है और हमें विधान को व्यर्थ तथा अनावश्यक शब्दों, पदों या वाक्यों के लादने से बचाने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं देखता हूं कि हमारे विधान के मसौदे में इस ''of this Constitution'' पद का बार-बार घृणोत्पादक मात्रा में प्रयोग किया गया है। मेरे विचार से संशोधन तर्क-संगत और हानि-रहित है। हमें विधान के अनुच्छेदों की भाषा की ओर भी कुछ ध्यान देना चाहिये। अन्त में मैं डा. अम्बेडकर से फिर निवेदन करता हूं कि वे केवल ''मैं विरोध करता हूं'' के गुर की पुनरावृत्ति न करें, वरन् तर्क उपस्थित करें कि वे ऐसा क्यों करते हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं इस मंच पर इस संशोधन के विरोध द्वारा अपने मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के प्रति सम्मान प्रदर्शन करने के लिये आया हूं (*हंसी*)। मुझे खेद है कि उन्होंने सभा का कुछ समय व्यर्थ खोया और मैं अपने को भी लांछित करता हूं कि उनके विरोध करने के प्रलोभन को नहीं रोक सका और ऐसा करके सभा का भी कुछ समय व्यर्थ खो रहा हूं। मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख हूंगा, यदि मैं यहां उस प्रशंसा का उल्लेख न करूं, जो प्रशंसा हम सबों को उन चोरों के भले दल की करनी चाहिये, जो ईस्ट इंडियन रेलवे में हावड़ा से दिल्ली तक अपना कार्य करते हैं। हमें इस भले दल को इसलिये धन्यवाद देना चाहिये कि उसने केवल उसी थैले को चुराया, जिसमें हमारे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के अन्य अनेकों संशोधन थे और हमारे लिये यह चोरी सौभाग्यप्रद हुई है, अन्यथा इस प्रकार के संशोधन हमारे सामने हजारों और होते। मैं अपने मित्र प्रोफेसर शाह को भी चेतावनी देता हूं कि कहीं यह भला दल बम्बई और दिल्ली के बीच में भी काम शुरू न कर दे।

***उपाध्यक्ष:** यह विचारान्तर्गत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** प्रश्न यह है कि यदि उनके डिब्बे में से उनके थैले की चोरी न हुई होती, जब कि वे इस बार परिषद् में उपस्थित होने के लिए आ रहे थे, तो इस प्रकार के अनेकों और संशोधन होते जो कि मसविदा लेखकों पर आसानी से छोड़े जा सकते थे और सभा के समक्ष न लाये जाते। श्रीमान् मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधनों के सम्बन्ध में मैं यह भी कहूंगा कि

यद्यपि उनमें से कुछ संशोधन बहुत अच्छे हैं, परन्तु क्योंकि वे उनके नाम से रखे जाते हैं, इस कारण उनका बिना किसी आलोचना के बहुधा विरोध किया जाता है। इसलिये मैं अपने माननीय मित्र से यह निवेदन करूंगा कि यदि वे बड़े गम्भीर संशोधन रखने के लिए प्रस्तुत हों, तो वे अपने नाम परिवर्तन करने का भी एक संशोधन रख दें, जिससे कि उनके संशोधनों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा सके।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ श्रीमान्, मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी कि अनुच्छेद 4 का खंड (2) को छोड़ दिया जाये, परन्तु आपने उसे कार्यक्रम में नहीं आने दिया। मेरे विचार से किसी खंड के हटाने के लिये संशोधन पेश किया जा सकता है, परन्तु आपकी इस सम्बन्ध में जो व्यवस्था है, मैं उसको सिर झुकाकर स्वीकार करता हूं। मेरे विचार से अनुच्छेद 4 के एक विशेष पहलू पर हमें ध्यान देना चाहिए और उस पहलू की ओर मैं डा. अम्बेडकर का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। इस अनुच्छेद मैं डा. अम्बेडकर ने सीमाओं में परिवर्तन करने के लिये एक सरल विधि की व्यवस्था की है, क्योंकि वाक्य-खंड (2) में वे कहते हैं कि ''उपरोक्त कोई भी ऐसा कानून अनुच्छेद 304 के आशय के लिये इस विधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा।'' अनुच्छेद 304 में यह दिया हुआ है कि विधान में किया जाने वाला कोई भी परिवर्तन दो तिहाई बहुमत से पास होना चाहिये और यहां इस बात की व्यवस्था की गई है कि जहां तक इस विधान के अनुच्छेद 2 और 3 से सम्बन्धित किसी भी कानून का सम्बन्ध है, वह इस विधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा। श्रीमान्, मेरा व्यक्तिगत विचार है कि रियासतों की सीमाओं का परिवर्तन बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है और केवल बहुमत के आधार पर परिवर्तन नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि रियासतों की सीमायें स्थायी होनी चाहियें और पार्लियामेंट के हर एक बहुमत के लिये, जब कि वह अधिकार संपन्न हो जाए, सीमाओं में परिवर्तन करना सम्भव नहीं होना चाहिये; परन्तु यह खंड (2) उनको सीमाओं में परिवर्तन करने देगा। मेरे विचार से यह प्रावधान ठीक नहीं है, पर फिर भी मैं यह मान सकता हूं कि प्रथम दस या बीस वर्ष तक इसको रखा जा सकता है। मेरे माननीय मित्र डा. पट्टाभि सीतारम्मैया तथा अन्य मित्रों ने इस प्रकार के संशोधन की सूचना दी है, परन्तु वे उसे पेश नहीं कर रहे हैं। मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं, परन्तु मेरा ऐसा विचार जरूर है कि सीमाओं में परिवर्तन करना इतना सरल नहीं होना चाहिये कि वह केवल बहुमत के आधार पर किया जा सके। यदि हम इस खंड को अभी रखना चाहते ही हैं तो हमें कम से कम कुछ कालावधि निश्चित कर देनी

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

चाहिये। इसको विधान का स्थायी भाग नहीं बनाना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर डा. अम्बेडकर अपने विचार स्पष्ट बतायेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष: महोदय, मेरे विचार से यह ऐसा विषय नहीं है जिस पर मेरे किसी वक्तव्य की आवश्यकता हो, परन्तु, क्योंकि श्री कामत ने ऐसी इच्छा प्रकट की है कि मैं संशोधन को केवल अमान्य स्वीकार ही न करूं, वरन् यह स्पष्ट करूं कि मैं अपने माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन द्वारा पेश किये गये संशोधन को स्वीकार करने के लिए क्यों कर तैयार नहीं हूं। अत: मैं उसे स्पष्ट करने के लिये उपस्थित हुआ हूं। मेरे विचार से यह माना जाएगा कि इस प्रकार के विषयों में, जिनका केवल वाक्य विन्यास से ही सम्बन्ध है और स्वयं अनुच्छेद के सार से नहीं, यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसी प्रकार से भी सिद्धान्त सम्बन्धी विषय है। यह केवल प्रमाण सम्बन्धी विषय है कि विभिन्न विधानों में समान विषयों पर कैसी भाषा का प्रयोग किया गया है। ''of the Constitution'' पद के दुहराने सम्बन्धी प्रश्न पर जिस भाषा का हमने प्रयोग किया है, उसके सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि हमारे पास पूरा प्रमाण है। मेरे मित्र श्री कामत ने कहा है कि उन्होंने अनेकों विधानों को देखा, जैसे कि आस्ट्रेलिया और अनेक देशों के विधान; परन्तु उनको यह पद ''of this Constitution'' उनमें नहीं मिला। मुझे खेद है कि उन्होंने आयरलैंड के विधान तक अपना अनुसंधान नहीं बढ़ाया। यदि वे ऐसा करते तो उनको यह विदित होता कि इस विधान में वही वाक्य विन्यास है, जो कि आयरलैंड के विधान में है। हवाले के लिये आयरलैंड के विधान में अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 27 उपवाक्य खंड (4), अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 46 उपवाक्य खंड (5) की ओर मैं उनका ध्यान आकर्षित करूंगा, जिनमें उनको जहां कहीं ''article'' शब्द मिलेगा उसके पश्चात् ''of this Constitution'' पद भी मिलेगा।

मैं श्री कामत को यह भी बता दूं कि इस सम्बन्ध में हमने भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम के वाक्य विन्यास का भी अनुसरण किया है। मुझे खेद है कि मुझे भारतीय सरकार के अधिनियम की समस्त धाराओं के परीक्षण करने का समय नहीं मिला, परन्तु अपने सौभाग्य से मुझे अभी एक धारा मिली

जो कि 124 (अ) है, जिसमें कि इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया गया है। अतः जहां तक कि मि. नजीरुद्दीन के संशोधन के प्रथम भाग का सम्बन्ध है, मेरा निवेदन यह है कि हमने किसी सनक में काम नहीं किया है, बल्कि हमने जिस वाक्य विन्यास का भी प्रयोग किया है, वह अन्य देशों के विधानों में भी है।

उनके दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में कि हमें ''or'' शब्द के पश्चात् ''article'' शब्द का फिर से प्रयोग नहीं करना चाहिये, तथा हमें केवल ''article 2 or 3'' ही कहना चाहिये, मेरा फिर वही निवेदन है। इस सम्बन्ध में भी हमने प्रसिद्ध विधानों का अनुसरण किया है और यदि मेरे मित्र उन विधानों की जांच करेंगे, तो उनको यह विदित होगा कि ऐसी पदावली अन्य स्थानों में भी है। सूचनार्थ मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे भारतीय सरकार के एक्ट की धारा 69 उपवाक्य-खंड (3) को देखें। वहां ''paragraph'' शब्द को प्रयोग हुआ है। उसमें ''paragraph (d) of paragraph (e)'' दिया हुआ है न कि केवल ''paragraph (d) or (e)'' इसलिये जहां तक सिद्धान्त का विषय है, यह विवादास्पद विषय अथवा मतभेद का विषय नहीं हो सकता है। यह केवल प्रमाण सम्बन्धी प्रश्न है और यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि हमने कोई ऐसा काम नहीं किया, जो प्रमाण रहित हो? और मेरा विनम्र उत्तर यह है कि वाक्य विन्यास के प्रयोग करने में हमने जो कुछ भी किया है, उसके लिये प्रमाण है और इस कारण मसौदे में जिस प्रकार वाक्य खंड है, उन पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** तो फिर अनुच्छेद 4 के वाक्य खंड (2) के सम्बन्ध में क्या हो? मेरे विचार से वाक्य-खंड (2) में ''of this Constitution'' शब्दों के प्रयोग करने के लिये अल्पकालीन सूचना का संशोधन होना चाहिये जिससे कि मसौदा में अर्थ-स्पष्टीकरण हो।

***उपाध्यक्षः** अल्पकालीन सूचना के संशोधन को स्वीकार करके हम सभा में एक बुरा उदाहरण उपस्थित करने देना नहीं चाहते।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है कि:

अनुच्छेद 4 के खंड (1) में से ''of this Constitution'' शब्द हटा दिये जायें और समस्त विधान के मसौदे में से जहां-जहां ये शब्द इसी प्रसंग में मिलते हों, वहां से हटा दिये जायें और अनुच्छेद 303 के खंड (1) में एक नई व्याख्या (ब ब) रखी जाये।''

''(ब ब) 'अनुच्छेद का अर्थ इस विधान के अनुच्छेद से है।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'article 2 or article 3' शब्दों के स्थान में 'artilcle 2 or 3' शब्द और अंक रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'article 2 or article 3' शब्दों के स्थान में 'artilce 2 ' शब्द और अंक रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'shall contain such provisions for' शब्दों के स्थान में 'shall also provide for' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (2) में 'for the purpose' शब्दों के स्थान में 'within the meaning of' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (2) में 'for the purpose of article 304' शब्दों के स्थान में 'under article 304' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (1) विधान का भाग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ प्रश्न यह है कि:

''अनुच्छेद 4 के खंड (2) विधान का भाग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ अनुच्छेद 4 समाप्त हुआ। इसके पश्चात् कुछ संशोधन, संख्या 185 तथा अन्य अनुवर्ती संशोधन राष्ट्रीय झंडे, राष्ट्रीय भाषा, लिपि तथा अन्य ऐसे ही विषय सम्बन्धी है। मेरी समझ से किसी प्रकार के समझौते करने का प्रयत्न हो रहा है और मेरे विचार से यदि हम अभी इन पर विचार करना स्थगित कर दें और भाग 4 को ले लें, तो इससे सभा का हित भी होगा तथा समय भी बचेगा।

*__सेठ गोविन्ददास__ (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, भाग 4 पर विचार आरम्भ करने के पूर्व मैं आपको यह सूचित करना चाहता हूं कि ये नये खंड राष्ट्रीय झंडे, राष्ट्रीय भाषा, लिपि तथा देश के नाम तथा अन्य ऐसे ही विषय सम्बन्धी हैं। मुझे इसमें आपत्ति नहीं कि इन पर भविष्य में विचार हो, परन्तु इसके साथ-साथ मैं एक विषय पर आपकी व्यवस्था चाहता हूं और वह यह है कि भविष्य में जब कभी भी इन विषयों को लिया जाये, मान लीजिये कि जब पार्लियामेंट की भाषा का प्रश्न अनुच्छेद 99 में उपस्थित होता है, तब हमें राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्रीय लिपि तथा अन्य उन विषयों के प्रश्नों को रखने दिया जाएगा, जो कि इन अनेकों संशोधनों में निहित हैं, जो इस समय पेश नहीं किये जा रहे हैं। उस समय यह नहीं कह दिया जाये कि क्योंकि अनुच्छेद 99 केवल पार्लियामेंट की भाषा तथा अन्य समान विषयों के सम्बन्ध का है, इन संशोधनों

[सेठ गोविन्ददास]

को पेश नहीं किया जा सकता। इसलिये श्रीमान्, मैं इसे व्यवस्था के रूप में दर्ज करा देना चाहता हूं जिससे कि भविष्य में इन प्रश्नों को उपस्थित किया जा सके और यदि सभा द्वारा कुछ निर्णय कर दिया जाता है, तो उन अनुच्छेदों को विधान में जहां भी उचित समझा जाये, रख दिया जाये। (*बाधाएं*)

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, कार्यपद्धति के विषय में मैं यह निवेदन करता हूं कि यह अध्यक्ष के अधिकार में है कि वह इस बात का नियमन करे कि कौन-कौन सी धारायें ली जायेंगी और किस-किस क्रम से। इस कारण मेरे विचार से आपके इस आदेश पर कि भाग 4 को पहले ले लिया जाये, कोई वाद-विवाद नहीं होना चाहिये। किसी माननीय सदस्य को यह अधिकार नहीं है कि वह पसन्द करके यह कहें कि इस अनुच्छेद को वहां और उस समय रखा जाये। आपने यह कहा कि अब भाग 4 को ले लिया जाये, अत: मैं निवेदन करता हूं कि अन्य किसी बीच में उपस्थित की गई बात पर विचार न करते हुए हमें उसी भाग के अनुच्छेद को ले लेना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस पद के लिये अयोग्य हूं, पर मेरे विचार से यहां किसी व्यक्ति को इस बात में कोई शंका नहीं होनी चाहिये कि ये संशोधन बाद में अनियमित करार दे दिये जाये।। जहां तक मैं समझता हूं, हम यहां सर्वमान्य एक निश्चय करने के लिये और उस विधान को पास करने के लिये हैं, जो हम सबके लिये लाभदायक हो। मेरे विचार से यहां प्रत्येक सभा-सदस्य को शेष सभासदों के समक्ष अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अवसर दिया जाएगा और मैं सेठ गोविन्ददास को यह आश्वासन देता हूं कि यदि मैं यहां होऊंगा तो मैं यह देखूंगा कि किसी के साथ भी अन्याय न हो।

***श्री दामोदरस्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं संशोधन संख्या 187 पेश करना चाहता हूं, जिसका इस भाषा सम्बन्धी प्रचलित वाद-विवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा संशोधन इस प्रकार है। (*माननीय सदस्य अपना संशोधन पढ़ने लगे*)

***उपाध्यक्ष:** मैं यह व्यवस्था देता हूं कि यहां आपका संशोधन अनुचित है। हम भाग 4 पर आते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** इसके पूर्व कि आप भाग 4 को लें, मुझे अपनी व्यक्तिगत बात रखनी है। जब मैंने यह कहा कि किसी महत्त्वपूर्ण विधान-मण्डल

में संशोधन पेश करने वाले को उत्तर देने का अधिकार प्रदान करने वाला कोई नियम नहीं है, तो माननीय श्री पुरूषोत्तम दास टन्डन ने मुझ पर दोषारोपण किया। मेरे पास प्रान्तीय व्यवस्थापिका बम्बई के नियम हैं, जो इस प्रकार हैं कि:

''प्रस्ताव पेश करने वाला न कि संशोधन पेश करने वाला''... (*बाधाएं*)

***उपाध्यक्ष:** इस समय इस विषय से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है और मैं बाध्य हूं कि माननीय सदस्य से अपना स्थान ग्रहण करने के लिए कहूं।

(*श्री सिधवा ने अपना स्थान ग्रहण किया।*)

***उपाध्यक्ष:** अब हम भाग 4 पर आते हैं। मैं यह व्यवस्था देता हूं कि संशोधन संख्या 831 और 832 नियम विरुद्ध है। संशोधन संख्या 833 के प्रथम भाग को मैं नियम विरुद्ध घोषित करता हूं। मि. महबूबअली बेग, यदि आप चाहें तो दूसरा भाग पेश कर सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान, मेरे विचार से यह संशोधन अपने उपयुक्त स्थल पर नहीं है। इस संशोधन में दिया हुआ है ''या विकल्पत:।'' निम्न परादिक अनुच्छेद 35 के साथ जोड़ दिया जाये, इत्यादि-इत्यादि। यह संशोधन संख्या 835 के पश्चात् आना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** आप अपनी आपत्ति बाद में रख सकते हैं।

***श्री महबूब अली बेग साहिब:** श्रीमान मैं उसे संशोधन सं. 835 के पश्चात् पेश करूंगा। क्या श्रीमान्, मुझे सामान्य रूप में भाग 4 पर बोलने की आज्ञा है?

***उपाध्यक्ष:** नहीं, आप केवल इसी संशोधन के संबंध में बोल सकते हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** उपाध्यक्ष महोदय, हम भाग 4 पर वाद-विवाद करने के लिए तैयार नहीं है? भाग 1 से भाग 4 पर यह तो लम्बी कुदान है। हम केवल भाग 2 और भाग 3 पर विचार विमर्श करने के लिये तैयार होकर आये थे। मेरे विचार से हमें समय मिलना चाहिये और वाद-विवाद स्थगित कर देना चाहिए।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ श्रीमान् भाग 4 निदेशक सिद्धान्त हैं। इस भाग पर बहुत से संशोधन नहीं हैं। भाग 2 नागरिकता के सम्बन्ध का है और भाग 3 मौलिक अधिकार के सम्बन्ध में है, जो न्याय विषय है। इन दोनों भागों पर अनेकों संशोधन आ चुके हैं। यह तय करने में कि किन संशोधनों को पेश करना है और किन को नहीं कुछ समय लगता ही है। जहां तक भाग 4 का सम्बन्ध है, उसके लिये बहुत समय की आवश्यकता नहीं है। वे केवल निदेशक सिद्धान्त हैं। उन पर विचार हो ही चुका है और जब इन सिद्धान्तों पर वाद-विवाद किया गया था। हमें बहुत समय लगा था। इन परिस्थितियों में मेरे विचार से किसी को भाग 4 के सम्बन्ध में सूचना के अभाव की शिकायत नहीं करनी चाहिये।

*__उपाध्यक्ष:__ क्या आपको संशोधन की सूची मिल गई है?

*__माननीय सदस्य:__ जी हां।

*__श्री अमियकुमार घोष__ (बिहार : जनरल): श्रीमान, सामान्य प्रणाली यह है कि वाद-विवाद क्रमानुसार चलता है परन्तु हम अब भाग 1 से भाग 4 पर कूद रहे हैं। भाग 2 और 3 पर हमारे पास अनेकों संशोधन हैं। हम उनको पेश करने के लिये तैयार हैं, परन्तु भाग 4 के संशोधनों पर हमारी तैयारी नहीं है। अचानक हमारे सामने यह विषय आ गया और यही हमारी कठिनाई है। भाग 4 पर हमारे पास बहुत से संशोधन हैं।

*__उपाध्यक्ष:__ आप यह मानेंगे कि हमें सभा की कार्यवाही शीघ्र समाप्त करनी है?

*__श्री अमियकुमार घोष:__ परन्तु, श्रीमान उसकी भाषावधि है।

*__उपाध्यक्ष:__ आप यह बात भी मानेगें कि यह सभा के हितार्थ है कि यहां आने से पूर्व संशोधन भेजने वालों को मसौदा समिति के सदस्यों से वाद-विवाद करने का और कुछ समझौता करने का अवसर मिलता है। यह सभा के महान हित के लिये है और इस विचार से कि सभा का समय बचे। इन बातों से प्रेरित होकर मैंने भाग 2 और 3 पर विचार करने के लिये समय दिया है। मुझे विश्वास है कि मुझे सभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त है।

श्री अमियकुमार घोषः श्रीमान, क्या आपसे निवेदन करूं कि आप इस समय सभा विसर्जन करें और अवकाश के पश्चात् फिर बैठें। बारह बज चुके हैं, हम तीन बजे फिर बैठ सकते हैं।

उपाध्यक्षः मैं इस पर विचार करूंगा।

काज़ी सैयद करीमुद्दीन (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, सदस्यों को कल यह सूचना दे देनी चाहिए थी कि हम भाग 4 पर वाद-विवाद करेंगे। भाग 4 पर पेश करने के लिये हम संशोधनों तक को नहीं लाये हैं। अनायास ही यह विषय हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है। हम लोगों के लिये, जिन्हें संशोधन पेश करना है। बड़ी कठिनाई है, क्योंकि संशोधनों पर हमारी तैयारी नहीं है। श्रीमान जो तैयार नहीं है उनके लिये तो यह अन्याय होगा।

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः श्रीमान, आश्चर्य है कि मि. करीममुद्दीन इस प्रकार की शिकायत कर रहे हैं। प्रत्येक सदस्य की अपने संशोधन पर तैयारी है।

बी. पोकर साहब बहादुर (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान श्री अनन्तशयनम् आयंगर का यह कहना बहुत अनुचित है कि इस विधान के 300 या 400 अनुच्छेदों में से किसी भी अनुच्छेद पर प्रत्येक सदस्य को अपने संशोधन पर तैयारी रखनी चाहिए। श्रीमान किसी भी व्यक्ति के लिये ऐसा करना असम्भव है। मैं निवेदन करता हूं कि इन महत्त्वपूर्ण भागों को छोड़कर आगे के भाग को लेना बहुत ही अनुचित है, क्योंकि हम में से अनेकों को यह आशा नहीं थी कि यह भाग लिया जाएगा। हमारे लिये क्रम से चलना ही उचित है, या जब तक सुविधा न हो सके, तब तक के लिये सभा स्थगित कर देनी चाहिए। (*बाधाएं*)

श्री लोकनाथ मिश्रः श्रीमान, छुपी तौर पर जो बातें की जा रही हैं, उन से हम न केवल किंकर्त्तव्यविमूढ़ ही हो गए हैं, वरन् और सब लोगों के साथ तेज चलने में भी असमर्थ हैं। यह हमारे लिये अशोभनीय है। घुटने टेककर मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप ऐसी परिस्थिति से हमें बचाइये और हमें नियमपूर्वक तथा उचित रीति से अपना कार्य संपादन करने में सहायता करिये। यदि ऐसी ही बातें होने को हों और पीठ पीछे ही कार्य-संपादन होना हो, तो कृपा करके हमें निकाल दीजिये और फिर जिस प्रकार वह चाहते हैं, उसी प्रकार कार्य होता रहेगा। परन्तु मैं आपसे निवेदन करूंगा कि इन संशोधनों पर विचार करने

[श्री लोकनाथ मिश्र]

और तैयार करने के लिये हमें समय दीजिये। हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि हम अपने निर्वाचकों, महान उद्देश्य, अपने व्यक्तित्व तथा इस महान सभा के साथ न्याय कर सकें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं बहुसंख्यक दल के उद्बोधक तथा दल के नेताओं से निवेदन कर सकता हूं कि वे दूरदर्शिता तथा उदार विचारों से काम लें? मैं समझता हूं कि कदाचित् यह दुर्भाग्य की बात है और अन्याय तो है ही कि वादहेतुओं पर कांग्रेस के निर्णय करने की असमर्थता के कारण वे इस प्रकार की परिस्थितियों को अंगीकार करने के लिये समस्त सभा को विवश करें। मेरे विचार से या तो सभा विसर्जित कर देनी चाहिये या कोई ऐसा कार्य लेना चाहिये जिस पर विचार-विमर्श करने के लिये सदस्य तैयार हों।

***उपाध्यक्षः** यदि सदस्यों का बहुमत सभा की कार्यवाही में भाग लेने में असमर्थ है, तो मैं अभी सभा-विसर्जन करने के लिये पूर्णतया तैयार हूं। हम कल दस बजे एकत्रित होंगे।

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** सभा कल प्रातःकाल दस बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

***बी. पोकर साहब बहादुरः** श्रीमान, क्या मैं जान सकता हूं कि किस भाग पर विचार किया जाएगा।

***उपाध्यक्षः** कल सर्वप्रथम हम भाग 4 पर विचार करेंगे। यदि समय रहा तो हम आगे बढ़ेंगे।

इसके पश्चात् शुक्रवार ता. 19 नवम्बर, सन् 1948 ई. के प्रातः दस बजे तक के लिये सभा स्थगित हुई।

Con. 3. VII-9.48
350

अंक 7
संख्या 9

शुक्रवार
19 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा–(*जारी*) 599
[28 से 30-(क) अनुच्छेदों पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्
शुक्रवार, ता. 19 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में, प्रातः दस बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।

विधान का मसौदा–(*जारी*)
अनुच्छेद 28

***उपाध्यक्षः** (डा. एच.सी. मुकर्जी): क्या हम भाग 4 के पर्यालोचन में आगे अग्रसर हों? यदि मुझे ठीक-ठीक याद है, तो संशोधन सं. 831, 832 और 833 पर कल विचार हो चुका था। इस संशोधन सं. 834 से आरम्भ करते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, इसके पूर्व कि हम एक-एक खंड पर विचार करें, मेरा यह निवेदन है कि सभा को राज्य की नीति के सामान्य प्रावधानों पर विचार-विमर्श करने का अवसर दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** मुझे खेद है कि ऐसा नहीं हो सकता।

(संशोधन संख्या 834, 835 और 836 पेश नहीं किये गये।)

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, जिस संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं, वह यह है:

"भाग 4 के नीचे शीर्षक में से 'निदेशक' शब्द निकाल दिया जाये।"

श्रीमान्, यह बहुत अच्छा होता, यदि श्री कामत का संशोधन मेरे संशोधन के साथ-साथ ले लिया जाता। निदेशक सिद्धान्तों के प्रावधान, जो भाग 4 में दिये हुये हैं, समान व्यवहार तथा दंड-पद्धति के सम्बन्ध में, आर्थिक योजना तथा अनेकों बातों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। निदेशक सिद्धान्तों का यह

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

अर्थ है कि राज्य के लिये वे अनिवार्य रूप से मान्य नहीं हैं और किसी भी स्थिति में वे न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय नहीं हो सकते हैं। मेरा निवेदन यह है कि यदि यह विधान इन सिद्धान्तों को किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तन किये जाने के लिये प्रावधान नहीं करता अथवा यदि वे राज्य के लिये अनिवार्य रूप से मान्य नहीं रखे जाते, तो वे निरर्थक सिद्ध होंगे। डा. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में जो कुछ कहा है, उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। उन्होंने लिखा है कि विधान में इन सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों के रूप में रखना चाहिये तथा ऐसी योजना को दस वर्ष के अन्दर कार्यरूप दे दिया जाना चाहिये, जो इन सिद्धान्तों पर आश्रित हों। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 31 में दिये हुये देश के आर्थिक गठन को अस्पष्ट रूप में वर्णित व्यापक सिद्धान्तों पर आश्रित कर दिया गया है। यह बहुत आवश्यक है कि 'निदेशक' शब्द को निकाल दिया जाये और जैसा कि श्री कामत ने निवेदन किया है, उनको राज्य की नीति के मौलिक सिद्धान्त ठहरा दिया जाये। अत: मेरा निवेदन यह है कि 'निदेशक' शब्द अनावश्यक और निरर्थक है। इस अध्याय में दिये हुये प्रावधान केवल कोरी बातें अथवा पवित्र कामनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगते। और डा. अम्बेडकर ने यह बिल्कुल ठीक ही कहा है कि वे न्यूनाधिक रूप में आदेशात्मक विलेख हैं। यदि वे वास्तव में आदेशात्मक विलेख हैं, तो मैं नहीं समझता कि उनको इस विधान में निहित मौलिक सिद्धान्तों के अन्दर क्यों दिया गया है। डा. अम्बेडकर ने आगे अपने भाषण में यह कहा था कि कुछ-सिद्धान्तों का हम इस कारण निर्धारण नहीं करना चाहते, जिससे कि आगे आने वाली पीढ़ी को अपनी योजना बनाने का अधिकार हो। इसके अतिरिक्त मुझे पूरे भाषण को पढ़ना आवश्यक नहीं लगता है। मैं समझता हूं कि विधान परिषद के सदस्यों की इच्छा है कि अनुच्छेद 31 में देश के लिये एक आर्थिक योजना हो। अनुच्छेद 31 में केवल यह कहा गया है कि आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य बातों में सुधार होंगे। किन्तु उन बड़ी-बड़ी सद्भावनाओं के वर्णन से लाभ ही क्या है, जो अनुच्छेद 31 में उल्लिखित हैं? अत: मैं निवेदन करता हूं कि इन सिद्धान्तों को निदेशक मानने से कोई लाभ नहीं है। उनके द्वारा जनता तथा राज्य की भलाई नहीं होगी। यह बहुत आवश्यक है कि इन समस्त सिद्धान्तों को आदेशमूलक बना दिया जाये, जिससे कि जिस योजना में ये सिद्धान्त निहित है, उसका प्रवर्त्तन दस वर्ष में हो सके।

श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और मेरे संशोधन को श्री कामत के संशोधन के साथ पढ़े जाने पर यहां ''मौलिक अधिकार'' ऐसा पद रख दिया जाना चाहिये।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यदि मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन, श्री कामत का अनुसरण करते हैं, तो चूंकि श्री कामत ने अपना संशोधन वापस ले लिया है...।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैंने अभी अपने संशोधन को पास नहीं लिया है।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ मेरे विचार से वे उसे पेश नहीं कर रहे हैं। बात यह है। ऐसा नहीं है कि श्री करीमुद्दीन इस अध्याय को ही नहीं चाहते हों। वे केवल यह चाहते हैं कि 'निदेशक' शब्द...।

*__काज़ी सैयद करीमुद्दीन:__ मैं अध्याय को चाहता हूं। मैं तो केवल यह चाहता हूं कि शीर्षक में से 'निदेशक' शब्द को निकाल दिया जाये।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ वे यह नहीं चाहते कि इस अध्याय को निकाल दिया जाये।

*__श्री एच.वी. कामत:__ एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है। श्रीमान्, क्या कल हमने यह बात स्वीकार नहीं की थी कि पहले किसी अनुच्छेद पर समस्त संशोधनों को पेश कर दिया जायेगा और तत्पश्चात् अनुच्छेद पर वाद-विवाद होगा?

*__उपाध्यक्ष:__ श्री कामत ठीक कहते हैं। मुझे खेद है कि यह बात मेरे ध्यान से बिल्कुल ही उतर गई। वाद-विवाद बाद में होगा।

अगला संशोधन श्री कामत के नाम में है, संख्या 838। क्या आप संशोधन सं. 838 को पेश कर रहे हैं?

*__श्री एच.वी. कामत:__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं कि:

''भाग 4 के नीचे शीर्षक में 'निदेशक' शब्द के स्थान में 'मौलिक' शब्द रखा जाये।''

[श्री एच.वी. कामत]

श्रीमान्, इस संशोधन को अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर तथा सभा के विचारार्थ प्रस्तुत करते हुये कि उसके पक्ष में केवल दो कारण आपके सामने रखना चाहता हूं। पहला यह है कि हमसे यह कहा गया है कि भाग 3 और भाग 4 में कुछ अधिकार दिये गये हैं; भाग 3 में न्याय अधिकार है और भाग 4 में वे अधिकार हैं जो न्याय नहीं हैं, परन्तु दोनों मौलिक अधिकारों के समान समझे अथवा माने जाते हैं मुझे माननीय सरदार पटेल की रिपोर्ट का समर्थन प्राप्त है। मैं समितियों की रिपोर्ट द्वितीय ग्रन्थमाला, जुलाई से अगस्त 1947 ई. तक, में से पढ़ रहा हूं। सभा के समस्त सदस्यों का इस पुस्तिका की प्रतियां इस वर्ष मार्च में दी गई थीं। मैं माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल की रिपोर्ट में से पढ़ रहा हूं, जो 30 अगस्त सन् 1947 ई. को परिषद् में उपस्थित की गई थी। उसमें वे विधान-परिषद् के अध्यक्ष को सम्बोधन करते हुये कण्डिका 2 में कहते हैं:

''हम इस परिणाम पर पहुंचे''

(''हम'' से आशय मौलिक अधिकार विषय सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति के सदस्यों से है।)

''हम इस परिणाम पर पहुंचे कि इन मौलिक अधिकारों के साथ-साथ विधान में राज्य की नीति के कुछ निदेशक सिद्धान्तों का समावेश होना चाहिये, जो कि यद्यपि किसी न्यायालय द्वारा विचार्य्य न होंगी, परन्तु देश के प्रशासन में उनको मौलिक रूप वाला माना जायेगा।''

इस पुस्तिका के 48वें पृष्ठ पर, जिसमें उस समिति की रिपोर्ट है जिसके माननीय सरदार पटेल सभापति थे, उन्होंने इन्हीं अधिकारों का शीर्षक दिया है जिनको कि अब भाग 4 ''प्रशासन सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त'' में रखा है। मैं डा. अम्बेडकर तथा प्रारूप-समिति के सदस्यों से यह जानना चाहूंगा कि इन अधिकारों का जो शीर्षक सरदार पटेल ने दिया था, उससे वे विमुख क्यों हुये? उस समिति ने ''प्रशासन सम्बधी मौलिक सिद्धान्त'' शीर्षक रखा था, परन्तु यहां प्रारूप-समिति ने उस शीर्षक का परिवर्तन कर ''राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त'' रखा है। सैयद करीमुद्दीन के इस तर्क में कुछ बल है कि ये दोनों प्रकार के अधिकार, अर्थात् जो न्याय हैं और जो न्याय नहीं हैं, मौलिक अधिकार है। सभा से अपने संशोधन पर विचार करने की प्रार्थना करते हुये मैं अन्त में यही कहूंगा

कि यदि यह संशोधन अस्वीकार किया जाता है, तो आप मेरे संशोधन को अस्वीकार नहीं करेंगे, वरन् सरदार वल्लभभाई पटेल की सिफारिश को अस्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्षः** संशोधन सं. 839 पेश नहीं किया गया। क्या संशोधन सं. 840 पेश किया जायेगा?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** सं. 840 उसी प्रकार का है, जैसा सं. 838।

***उपाध्यक्षः** तब तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक जिन संशोधनों पर विचार किया गया है, वे इस अध्याय के शीर्षक से सम्बन्ध रखते हैं। इस विषय पर जो सदस्य बोलना चाहते हैं, वे बोल सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, कुछ अधिकारों को न्याय रखने तथा कुछ को न्याय न रखने का प्रयोजन तो सर्वविदित है। यहां पर ये अधिकार न्याय नहीं है जैसा कि पैरा 29 में दिया हुआ है। वे किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय नहीं होंगे। श्री करीमुद्दीन चाहते हैं कि ये भी न्याय अधिकार हों। मैं यह नहीं जानता हूं कि श्री करीमुद्दीन वकील है या नहीं। खैर, उनके एक या दो विचारों के बारे में आप लोग विचार करें। अनुच्छेद 26 में यह कहा गया है कि दस वर्ष की अवधि में राज्य को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का पुनःस्थापन कर देना चाहिये। इसी को उदाहरणस्वरूप ले लीजिये। मान लीजिये कि राज्य ऐसा नहीं करता है, तो क्या कोई न्यायालय उसको ऐसा करने के लिये बाध्य कर सकेगा? किसके विरुद्ध? यदि किसी न्यायालय द्वारा डिग्री दे दी जाती है, तो उसका कौन पालन करेगा? यदि सरकार उसका पालन नहीं करती तो क्या हाईकोर्ट अथवा सर्वोच्च न्यायालय इसको मनवा सकती है? क्या सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह ऐसी सरकार को बदल दे? अपने अधिकार द्वारा क्या वह किसी न्यायालय के अधिकारी, किसी अमीन या शरीफ़ द्वारा सब मंत्रियों को जेल भेज सकती है और नये मंत्रियों को उनके स्थान पर रख सकती है? स्वभावतः ये केवल निदेशक ही हैं और किसी प्रकार भी न्याय अधिकार नहीं हो सकते। अतः निदेशक शब्द को निकालने से किसी आशय की पूर्ति नहीं हो सकते। अतः निदेशक शब्द को निकालने से किसी आशय की पूर्ति नहीं होती है। ये ऐसे सिद्धान्त है, जिनका, जो सरकार भी पदारूढ़ हो, उसे ही इन्हें ध्यान में रखना चाहिये और उसे इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये। हमने विधान में उनको रख दिया है

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

क्योंकि हम उनको महत्त्वपूर्ण समझते हैं। परन्तु भाग 3 में दिये हुये मौलिक सिद्धान्तों के साथ उनका वर्गीकरण करने से तो दोनों वर्गों का अन्तर मिट जायेगा और सब अधिकार न्याय हो जायेंगे और ऐसा करना स्वभावत: अव्यवहार्य होगा। आवेश में आने से कोई लाभ नहीं है। हमें व्यावहारिक होना चाहिये। हमारे लिये यह उचित नहीं कि यहां ऐसे विभिन्न प्रावधान जोड़ते जाये जिनकी उपेक्षा कोई भी ऐसी सरकार कर सकती है, जो जनमत के प्रति उदासीन है। इन प्रावधानों अथवा अधिकारों को न्यायालय नहीं मनवा सकता है। लोकमत तथा किसी मांग के साथ लोकमत की शक्ति ही इन प्रावधानों को मनवा सकती है। चार वर्ष में एक बार निर्वाचन होगा और मतदाताओं को यह अधिकार होगा कि वह उन लोगों को फिर न भेजें, जो लोकमत के प्रति उदासीन हैं। यही वास्तविक व्यवहारशक्ति है, किसी न्यायालय का प्रामाणिककरण कुछ भी शक्ति नहीं रखता है।

अत: यह संशोधन अविचारपूर्ण है और मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह इसे स्वीकार न करे।

*__श्री नज़ीरूद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, 'निदेशक' शब्द को निकाल देने के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं। केवल शीर्षक ही नहीं वरन् पूरा का पूरा अध्याय ही अविचारपूर्ण है। प्रो. शाह के संशोधन का, (संख्या 98) जिसके द्वारा वे कुछ शब्दों का इस विधान में पुर:स्थापन चाहते थे, उत्तर देते हुये अभी उस दिन डा. अम्बेडकर ने एक बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या की थी, जब कि उन्होंने यह कहा कि विधान में निहित करने के लिये पवित्र भावनायें उपयुक्त नहीं होती हैं। उन्होंने कहा कि ''विधान केवल एक रचना है और उसमें किसी राजनैतिक सिद्धान्त अथवा नीतियों का समामेलन न तो होना चाहिये और न उसकी आवश्यकता है''। आगे चल कर उन्होंने यह भी कहा कि ''राजनैतिक सिद्धान्त की अथवा नीतियों का निर्देश स्वयं जनता की ओर से होना चाहिए और आगे आने वाली सन्तानों की किसी नीति अथवा सिद्धान्त की घोषणा द्वारा शृंखलाबद्ध कभी नहीं करना चाहिये''। इतने उच्च अधिकारी के मुंह से निकले हुये ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। मैं निवेदन करता हूं कि इस पवित्र सिद्धान्तों की तब तक व्याख्या नहीं करनी चाहिये, जब तक कि कानून का पृष्ठपोषण न हो और उनको भी न्याय अधिकार न बना दिया जाये। डा. अम्बेडकर ने यह

और कहा कि ''पवित्र भावनाओं का पुर:स्थापन करना जनता से मत देने का अधिकार छीन लेना होगा और ये बातें 'व्यर्थ' होंगी''। मेरा निवेदन है कि यदि आप 'पवित्र सिद्धान्तों का पुर:स्थापन उनको न्याय बनाये बिना करते हैं, तो यह कुछ ऐसा ही होगा जैसा कि नव वर्ष के प्रथम दिन का किया हुआ संकल्प दूसरी जनवरी को तोड़ दिया जाता है। मैं निवेदन करता हूं कि ये पवित्र कामनायें इतनी स्पष्ट है कि उनकी व्याख्या करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि आप उनकी व्याख्या करते हैं तो आप यह भी कह सकते हैं कि लोगों को जल्दी उठना चाहिये, तथा अपने पड़ौसियों पर दया करनी चाहिये; इत्यादि, इत्यादि। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि विधान में निहित करने के लिये ये बातें उपयुक्त नहीं है और सैयद करीमुद्दीन का संशोधन स्वीकार किया जाये।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर: (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मुझे खेद है कि इन दोनों संशोधनों में से मैं एक को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। वर्तमान रूप में जैसा वाक्यविन्यास है, उसमें श्री कामत के संशोधन का समामेलन हो ही जाता है। श्री कामत देखेंगे कि ''मौलिक'' शब्द इस भाग के प्रथम अनुच्छेद में ही वर्तमान है। अत: उनके इस उद्देश्य की पूर्ति, कि इन सिद्धान्तों को मौलिकवत् समझा जाये, अनुच्छेद के शब्दों से ही हो जाती है।

'निदेशक' शब्द के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि यह आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है कि इस शब्द को रखा जाये, क्योंकि यह समझ लेना है, जैसा कि मैंने कहा था कि विधान के इस भाग के निर्माण करने में विधान-परिषद् आने वाले विधान-मंडल तथा अधिशासी वर्ग को यह बताने के लिये कुछ निदेश दे रही है कि उनको जो विधान तथा अधिशासन सम्बन्धी अधिकार मिलेंगे उनका वे किस रीति से प्रयोग करें। यदि 'निदेशक' शब्द को निकाल दिया जाये तो मुझे भय है कि कही विधान-परिषद् की इस भाग के निर्माण करने की कामना ही निष्फल न हो जाये। वह बात ठीक नहीं है जो कुछ लोगों ने यहां कही है कि इनको केवल पवित्र भावनाओं के रूप में ही विधान में रखा जा रहा है। इस परिषद् की यह मंशा है कि भविष्य में दोनों विधान-मंडल तथा अधिशासी वर्ग इस भाग में अधिनियमित सिद्धान्तों के प्रति केवल मौखिक सहानुभूति ही न रखें, परन्तु इनको उन समस्त अधिशासी तथा विधान सम्बन्धी कार्यों के लिये आधार मानें जो देश के शासन सम्बन्धी विषय में अब से अनंतर किये जायें। अत: मैं निवेदन करता हूं कि दोनों 'मौलिक' तथा 'निदेशक' शब्द आवश्यक हैं और उनको रखा जाये।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"भाग 4 के नीचे शीर्षक में से 'निदेशक' शब्द निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं सभा से अपना प्रस्ताव वापस लेने के लिये अनुमति चाहता हूं।

परिषद् की अनुमति से प्रस्ताव वापस लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संख्या 841 से 846 तक के संशोधनों को लेते हैं। प्रस्तावक महोदय एक-एक करके इनको पेश करें और फिर वाद-विवाद होगा।

संशोधन सं. 841 निषेधात्मक है, अत: यह नियम-विरुद्ध घोषित किया गया।

क्योंकि इसको पेश करने वाले सदस्य यहां नहीं हैं, अत: संशोधन सं. 842 गिर जाता है।

संशोधन संख्या 843 से 846—मि. नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं 843, 844 और 846 संख्या वाले संशोधनों को पेश करता हूं। संशोधन सं. 845 को पेश नहीं करूंगा।

श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 28 में से 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

"अनुच्छेद 28 में 'requires' शब्द के स्थान में 'indicates' शब्द रखा जाये।"

"अनुच्छेद 28 में 'the state' शब्दों के स्थान में 'State' शब्द रखा जाये।"

अपने पहले संशोधन के सम्बन्ध में, जो 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' शब्दों को निकालने के लिये है, मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं। इस भाग में केवल थोड़े से प्रावधान हैं। इस अनुच्छेद में 'the State' की व्याख्या

करने का प्रयास किया गया है, जिसका आशय विधान के भाग 3 के राज्यों से है। मेरा निवेदन है कि कोई कठिनाई तथा गड़बड़ी नहीं है। यदि हम यह कहते हैं कि 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' तो इससे यह बोध भी हो सकता है कि 'the State' शब्द का 28वें अनुच्छेद द्वारा जो अर्थ रखा गया है, वह प्रसंगानुसार अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी समझ के अनुसार बदला जा सकता है। इससे अनिश्चितता तथा प्रसंग में बड़ी अनावश्यक अनिश्चितता उत्पन्न होगी। मैं यह निवेदन करूंगा कि इस शब्द की सही व्याख्या की जानी चाहिये। सच तो यह है कि 'राज्य' शब्द की व्याख्या इतने अधिक स्थानों में इतने अधिक अर्थों के लिये की गई है कि 'राज्य' शब्द को समझने में पहले से ही बड़ी गड़बड़ी हो रही है और इन शब्दों के 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' पुर:स्थापन से और भी अधिक उलझनें हो जायेंगी। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि इन शब्दों को निकाल दिया जाये और यदि आवश्यक हो तो किसी विशेष प्रसंग के सम्बन्ध में शंकाओं का निवारण प्रारूप में समुचित परिवर्तन द्वारा किया जाये।

दूसरा संशोधन केवल शाब्दिक है और मैं 'requires' के स्थान में 'indicates' शब्द रखना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में मैं और कुछ कहना नहीं चाहता हूं।

तीसरे संशोधन के सम्बन्ध में कि 'the State' शब्दों के स्थान में 'State' शब्द रखा जाये, मुझे यह निवेदन करना है कि प्रसंग में 'State' शब्द ही उपयुक्त है। यदि हम 'the State' पद की व्याख्या करें तो इससे उन खण्डों में, जिनमें यह पद प्रयुक्त है, कठिनाई उपस्थित होगी। मैं यह निवेदन करता हूं कि शब्द 'State' ही अधिक उपयुक्त है और इस विचार के लिये अपने कारण भी दे देता हूं।

मेरे विचार से जिस आस्ट्रेलिया के उदाहरण को एक अन्य प्रसंग में डा. अम्बेडकर ने उद्धृत किया था, उसका परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर है। इस संशोधन को रखने का कारण यह है कि प्रसंग में 'the State' पद अनुच्छेद 29 से 40 तक मिलता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'the State' शब्दों की व्याख्या

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विधान के भाग 3 के प्रयोजन के लिये 'State' के रूप में की गई है। अतः अनुवर्त्ती अनुच्छेद 29 से 40 तक में 'the State' शब्द उपयुक्त नहीं होगा। यदि केवल एक ही राज्य है, जिसकी ओर हम संकेत करना चाहते हैं, तब तो प्रसंग में 'the State' शब्द उपयुक्त होंगे। परन्तु हमारे विचार में केवल एक 'State' अथवा 'the State' ही नहीं है, वरन् अनेकों प्रसंगानुसार अनेकों 'state' हैं। इस कारण मैंने 'State' शब्द रखा है। इस कारण मैं 'the' शब्द को निकालना चाहता हूं जो शब्द कि मेरे विचार से नितान्त अनावश्यक है। यह अंग्रेजी व्याकरण का आर्टिकल है, जिसकी परिभाषा में कोई आवश्यकता नहीं है। यदि हम परिभाषा में 'the' शब्द रखते हैं तो ये शब्द अपृथकनीय हो जाते हैं और फिर अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में इस पद का प्रयोग करने के लिये हम अनिवार्य रूप से बाध्य हो जाते हैं। अतः इस पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधनों का विरोध करता हूं। अनुच्छेद 28 में 'the State' शब्दों का प्रयोग जान कर किया गया है। इस विधान में 'State' शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया गया है। इसका समुच्चय-बोधक सत्ता के रूप में प्रयोग किया गया है, जो या तो केन्द्र का प्रतिनिधान करती हो या प्रान्त का। विधान के कुछ भागों में दोनों को 'State' कहा गया है। यहां 'the State' शब्दों का प्रयोग दोनों समुच्चय-बोधक तथा पार्थक्यबोधक अर्थ में किया गया है। यदि मेरे मित्र भाग 3 को देखें, जो विधान के अनुच्छेद 7 से प्रारम्भ होता है, तो उनको यह मालूम हो जायेगा कि 'State' शब्द का किस अर्थ में प्रयोग हुआ है। यदि प्रसंगवश दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में 'the State' शब्द में भारत के शासन और संसद तथा राज्यों में प्रत्येक के शासन और विधान-मंडल तथा भारत के राज्य के क्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है। अतः जहां तक निदेशक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, एक ग्राम-पंचायत अथवा स्थानीय जिला सभा भी राज्य है। जिस अर्थ में हमने इन शब्दों का प्रयोग किया है, उसमें अन्तर करने के लिये हमने यह

वांछनीय समझा कि 'State' तथा 'the State' दोनों का प्रयोग किया जाये। माननीय सदस्यों को यह अन्तर विधान के अनुच्छेद 12 में भी मिलेगा, वहां हम कहते हैं:

''राज्य ('the State') कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा;

भारत का कोई जानपद किसी विदेशी राज्य (State) से कोई उपाधि स्वीकार न करेगा।''

यहां हम 'the State' शब्द का प्रयोग नहीं करते; पर प्रथम भाग में हम 'the State' शब्द का प्रयोग करते हैं। हम यह नहीं चाहते कि कोई भी प्राधिकारी चाहे वह केन्द्र का हो अथवा प्रान्तों का, किसी व्यक्ति को कोई उपाधि प्रदान करे। इस अन्तर के कारण सभा यह अनुभव करेगी कि अनुच्छेद 28 में 'the State' शब्दों का रखना उस प्रणाली के अनुकूल है–जिसकी इस विधान के बनाने में हमने अंगीकार किया है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इन तीनों संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 में से 'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 में 'requires' शब्द के स्थान में 'indicates' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 28 में 'the State' शब्द के स्थान में 'State' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** मैं अनुच्छेद 28 पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 28 विधान का भाग बन जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 28 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 29

***उपाध्यक्षः** सभा अब अनुच्छेद 29 पर विचार-विमर्श करेगी।

अनुच्छेद 29 को निकालने का प्रस्ताव करने वाला संशोधन 847 नियम-विरुद्ध है।

प्रोफेसर के.टी. शाह अब अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

प्रो. के.टी. शाह (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

अनुच्छेद 29 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये।

"29-इस भाग में दिये हुये प्रावधान जनता के प्रति राज्य के कर्त्तव्य समझे जायेंगे, ये ऐसी रीति तथा ऐसे प्राधिकारी द्वारा प्रवर्तनीय होंगे जो इस प्रकार के प्रत्येक प्रावधान से सम्बन्धित कानून के अन्तर्गत तथा उसके अधीन समुचित समझे जायें। आवश्यक तथा समुपयुक्त कानून बनाने में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।"

इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखते समय में सर्वप्रथम डा. अम्बेडकर के उन विचारों के प्रति, जो उन्होंने कुछ मिनट पूर्व व्यक्त किये हैं। अपने उत्कट प्रशंसा के भावों को प्रकट करूंगा। उन्होंने केवल इस बात पर जोर ही न दिया कि ऐसे विषयों को हमें पवित्र सिद्धान्तमात्र के रूप में ही न छोड़ देना चाहिये, वरन् हमें उनको एक प्रकार के निदेशक सिद्धान्त भी बना देना चाहिये—जो यद्यपि आज्ञामूलक शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ है पर आज्ञामूलक माने जा सकते हैं। मैं उस समय कुछ दुखित हुआ था जब कि किसी पूर्व अवसर पर विद्वान् डाक्टर ने यह कहा था कि ऐसे सिद्धान्तों को निहित करने के लिये विधान कोई उपयुक्त प्रलेख नहीं है।

ऐसा लगता है कि डॉ. अम्बेडकर के समान सचेत, कुशाग्रबुद्धि वाले तथा नवविचारों के प्रति सजग व्यक्तियों में मत-परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत शीघ्र ही पूरी हो जाती है। इसीलिये यह कहने में मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने इस विधान

में इस पावन भावनाओं को स्थान देने के लिये जिस शीघ्रता से अपना मत परिवर्तित करके स्वीकृति दी है, उसको मैं अत्यन्त सराहनीय समझता हूं। सच तो यह है कि वे एक कदम आगे बढ़ गये हैं और यद्यपि विधान में उनको अपने उचित नाम तथा शीर्षक से स्थान देने को वे प्रस्तुत नहीं है, किन्तु वे इसके लिये तैयार हैं कि ये सिद्धान्त व्यावहारिक रूप से काम में लाये जायेंगे क्योंकि विधान में भी उन्हें मूलभूत सिद्धान्त कह कर उनका उल्लेख किया गया है।

श्रीमान्, ऐसा भाव प्रकट कर देने से मैं यह आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर मेरे इस संशोधन को स्वीकार करना भी अभीष्ट समझेंगे कि इस अनुच्छेद 29, जिसे मैं समस्त विधान का अपमान समझता हूं, उसके स्थान में जो कुछ मैंने सुझाया है उसे रख लिया जाये।

श्रीमान्, अनुच्छेद 29 के पहले ही वाक्यांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन आदर्शों का पालन कोई न्यायालय अपने आदेश द्वारा न करा सकेगा। फल यह होगा कि केवल जिस प्राधिकारी को हम इस विधान द्वारा इस बात के लिये स्थापित कर रहे हैं कि इन विधियों के बनाने में और इस संविधान का निर्माण करने में जो भी हमारी आशायें और आकांक्षायें हैं, जो भी हमारी महत्त्वाकांक्षायें और इच्छायें हैं, वह उन सबका पालन कराये, वही प्राधिकारी इस संविधान के सब से अधिक महत्त्वपूर्ण, फलदायी तथा रचनात्मक अध्याय को काम में लाने के कर्त्तव्य से सर्वथा मुक्त हो गया होगा। सैकड़ों वर्षो का शोषण हमें सहन करना पड़ा है और सैकड़ों ही वर्ष तक हमें अपने अधिकारों से वंचित रहना पड़ा है और अपनी इच्छाओं का गला घोटना पड़ा है। और आज जब हम पुनः अपनी सत्ता को पा रहे हैं, तो स्वाभाविक है कि हम यह बात दृढ़ता से चाहें—और मुझे पूरा भरोसा है कि यह सभा भी मेरे इस आशय का पूर्ण समर्थन करेगी—कि दुःख की यह घोर निशा सदा के लिये समाप्त हो जायेगी और क्षितिज पर भगवान भास्कर की प्रथम रश्मियों के साथ ही, प्रभात की प्रथम झलक के साथ ही हम भूतकाल में अपने नेताओं द्वारा प्रदर्शित सब आशाओं को रूपवती करने के लिये एकाग्र मन से कटिबद्ध हो जायेंगे।

श्रीमान्, जैसा कि यह अध्याय है, ऐसे अध्याय के आरम्भ में भी यह नियम बना देना कि किसी न्यायालय को यह अधिकार न होगा कि वह हमारी इन आशाओं

[प्रो. के.टी. शाह]

और आकांक्षाओं को फलमयी करने का आदेश दे सके, हमारी उपर्युक्त आशा से सर्वथा असंगत है। यदि बिना किसी को उत्तेजित किये में कह सकूं, तो मैं यह कहूंगा कि यह तो ऐसा प्रावधान है जिससे कि न्यायालय को तथा अधिशासी को भी इस बात का प्रोत्साहन मिले कि वे इस बात की जरा भी परवाह न करें कि संविधान में क्या उल्लेख है और अपनी सुविधा के अनुसार अपना काम करें और इन प्रावधानों को वहीं तक मानें, जहां तक कि वे उन्हें व्यवहार में लाना ठीक समझें और इस प्रकार अग्रसर होते चले जायें, मुझे तो यह बात ऐसी हुंडी के समान लगती है, जिसे साहूकार तब चुका सकता है जब वह चुकाने के योग्य हो अर्थात् ऐसी जिसे वह तभी चुकावे, जब कि उसके आर्थिक साधन उसको ऐसा करने की सुविधा देते हों।

मैं समझता हूं कि इस विधान का मसौदा बनाने के कार्य से सम्बन्धित कोई भी ऐसा प्राधिकारी न होगा, जो हुंडी-अधिनियम में किसी ऐसे प्रावधान का समामेलन करना स्वीकार करेगा, जिसके द्वारा ऐसी हुंडी देने का अधिकार हो जिसका भुगतान समर्थ होने पर किया जाये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मेरा संशोधन स्वीकृत न हुआ, तो अपने वर्तमान स्वरूप में यह अध्याय अपने निर्माताओं की इस धुंधली आशा की अभिव्यंजना मात्र के अतिरिक्त कुछ और न रहेगा कि हम परिस्थितियों और अवस्थाओं के अनुकूल होने पर यह बात करेंगे या वह बात करेंगे या कोई और तीसरी ही बात करेंगे। उन सबके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुये, जिन्होंने इस अध्याय के शीर्षक में 'निदेशक' शब्द के रहने देने अथवा अनेकों प्रावधानों में अनिवार्य का समावेश करने के पक्ष में भाषण दिया है, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस अध्याय में आदेश-मूलक तो कुछ है ही नहीं। श्रीमान्, उन लोगों के लिए, जो बाद में देश का शासन भार सम्भालेंगे, किसी आदेशमूलक निदेश के न होने के कारण यह सम्भव हो सकता है कि ये सब बातें, जिनकी हम इतने वर्षों से आशा करते चले आ रहे हैं तथा जिनके लिए प्रयत्न करते चले आ रहे हैं कि वे होवें ही नहीं और कम से कम हमारे जीवन काल में तो किसी प्रकार से भी न होवें। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसे कोई भी लोकप्रेमी न्यायसंगत ठहराने की इच्छा नहीं करेगा और न उसे न्यायसंगत सिद्ध करने का साहस करेगा।

श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि जब तक प्रयास नहीं किया जाता, अनेकों बातें असाध्य सी प्रतीत होती है और जब प्रयास किया जाता है, तो वे साध्य हो जाती है। वास्तव में कोई भी बात साध्य नहीं है जब तक कि प्रयास न किया जाये। शिक्षा सम्बन्धी प्राथमिक अधिकार को ही लीजिये इसकी राष्ट्र-सन्तति के लिए व्यवस्था करने में प्रत्येक शिष्ट सरकार प्रयत्नशील है। प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा तक के अधिकार की व्यवस्था इतने भद्दे ढंग से, बेमन से तथा संकोचपूर्ण रीति से की गई है कि यह आश्चर्य होता है कि आया प्रारूप लेखक इस बात के लिए उत्कंठित भी थे कि अज्ञानता के श्राप का, जो हम सबके ऊपर इतने वर्षों से लदा चला आ रहा है, निराकरण किया जाये। यहां जो प्रावधान दिया गया है, वह राज्य को दस वर्ष की अवधि में इस आकांक्षा को क्रियान्वित करने के लिए केवल 'प्रयत्न' करने का आदेश प्रदान करता है। यहां भी वह अनिवार्य नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र-बालक के लिए प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का प्राथमिक अधिकार भी आदेशमूलक नहीं है। अत: मेरा विचार है कि जब तक कुछ परिवर्तन नहीं किया जायेगा, जब तक आप इन प्रारम्भिक कर्त्तव्यों को राज्य के लिए आदेशात्मक कर्त्तव्य नहीं बनायेंगे, तब तक राज्य अथवा उसकी अंगभूत इकाइयां इन राज्यों के कर्त्तव्यों की ओर ध्यान नहीं देंगी। मेरी सम्मति में ये बहुत ही साधारण कर्त्तव्य हैं, ये ऐसे कर्त्तव्य हैं तो प्राथमिक हैं और यदि मैं ऐसा कह सकूं तो ये बड़े ही पवित्र कर्त्तव्य हैं और कोई भी व्यक्ति इन्हें असाध्य कहकर सभा का अपमान नहीं करना चाहेगा।

अब मैं अपने इन प्रावधानों के पीछे के बल के अभाव होने के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। इस बात की ओर मेरे एक विद्वान मित्र ने पहले ही संकेत किया है। एक पुराने अंग्रेजी के लेखक ने, मेरे विचार से वह वाल्टर बेजहोट था, अंग्रेजी विधान पर अपनी पुस्तक के एक सुविचारपूर्ण अध्याय में लिखा है कि पार्लियामेंट सम्राट के लिये प्रति वर्ष तक बड़ी धनराशि स्वीकृत करती है, पर किसी व्यक्ति को यह अधिकार तथा क्षमता नहीं है कि वह सम्राट को उस राशि के व्यय करने के लिए बाध्य करे। मैं इस बात से सहमत हूं। इंग्लैंड के अलिखित विधान में अभी तक कोई ऐसा वैधानिक प्राधिकारी नियत नहीं किया गया है, जो वह देखे कि स्वीकृत राशियां अवश्य खर्च की जायें। किन्तु क्या किसी भी व्यक्ति के मन में यह विचार आ सकता है कि, जब तक कि किसी मंत्री की बुद्धि भ्रष्ट न हो गई हो, कोई मंत्री एक क्षण के लिये भी यह सुझायेगा कि चूंकि इन राशियों को व्यय करने के लिये कोई बाध्यता नहीं है इसलिये व्यय न किया जाये। इसी

[प्रो. के.टी. शाह]

प्रकार क्या कोई यह सोच सकता है कि सम्राट के विशेषाधिकारों को, जैसे कि किसी व्यक्ति को पद से हटाने के अधिकार को, भूतकाल की रीति के अनुसार आज भी मनमानी तौर पर प्रयोग किया जा सकता है? श्रीमान्, मैंने इस उदाहरण को केवल इस तथ्य पर जोर डालने के लिए दिया है कि यह आप पर निर्भर है कि आप चाहें तो ऐसा संकल्प कर सकते है कि हमारे ऊपर जो अभिशाप अब तक रहे हैं, वे अब और अधिक एक क्षण के लिए भी नहीं रहेंगे। इन पवित्र आशाओं तथा आकांक्षाओं अथवा सामान्य निदेशकों को रखने से कोई लाभ नहीं है, जिनका प्रवर्त्तन जब कभी परिस्थितियां अनुकूल हों तभी हों सके। हो सकता है कि जब तक परिस्थितियों को आप अनुकूल न बनायें, वे कभी अनुकूल न हों। इसी कारण आरम्भ से ही मैं यह चाहता हूं कि ये राज्य के लिये आदेशमूलक अनिवार्य कर्त्तव्य हों, जिनकी मांग करने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार हो और इस मांग की पूर्ति की जाये। तथा यदि आप इन प्रावधानों के पीछे कोई बल रखने की तरकीब नहीं सोच पाते, यदि आप इस बात के अतिरिक्त कि इन कर्त्तव्यों के पालन न करने पर मंत्रिगण समय-समय पर होने वाले निर्वाचनों में असफल होकर अपदस्थ हो जायेंगे और कोई रीति इनके मनवाने की नहीं सोच पाते, तो यह आपकी दुर्बलता है। आपका कर्त्तव्य है कि आप कोई समुचित रीति खोज निकालें, अक्सर दुहराई पुरानी कहावत को कि जहां इच्छा है वहां पथ भी है, मैं भी दुहरा देना चाहता हूं। यदि आप यह कहें कि कोई साधन नहीं मिलता तो या तो यह इसलिए है कि अक्ल का दिवाला निकल गया है या यह इस कारण है कि जो कुछ आशा हम करते चले आ रहे थे, या जिसके लिए प्रयत्न करते चले आ रहे थे उसे पूरा करने की इच्छा का पूर्ण अभाव है।

इस सभा में ऐसे अनेकों सदस्य होंगे—मुझे विश्वास है कि उनमें डा. अम्बेडकर सबसे अग्रगण्य हैं—जिनको यह स्मरण होगा कि जब स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने सर्वप्रथम अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी विधेयक उपस्थित किया था, तो उस समय की भारतीय सरकार के अफसरों ने अनेक प्रकार के तर्क यह सिद्ध करने के लिये उपस्थित किये थे कि इस प्रकार का कार्य असाध्य है। एक तर्क यह भी था कि दस वर्ष में तीन करोड़ रुपये का खर्च अर्थात् तीन लाख रुपया प्रति

वर्ष का खर्च उस समय की भारतीय सरकार की आर्थिक व्यवस्था के लिये बहुत भारी रकम थी। परन्तु चार वर्ष में ही वे केवल तीन करोड़ ही नहीं वरन् तीस करोड़ रुपया उस लड़ाई में बरबाद करने लगे, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध न था और जिसके लिये हमसे परामर्श न किया गया था।

यह उस समय की दशा है, जब हम अधिकार वंचित थे, जब हम अपने देश में ही असहाय थे। परन्तु आज वह परिस्थिति नहीं है और मैं आशा करता हूं कि नई भारतीय सरकार के मंत्रियों को, स्वतंत्र भारतीय सरकार के मंत्रियों को, गणतंत्रीय भारत के स्मृतिज्ञों को इन पवित्र भावनाओं की अभिव्यंजना मात्र से संतोष न मिल जायेगा। यदि मार्ग में कोई रुकावटें हैं, तो वे केवल पार करने के लिये हैं। किसी प्रकार भी इन कठिनाइयों से हमारी उन्नति में बाधा न होनी चाहिये। अतः मैं सभा से निवेदन करता हूं, कि वह मुझ से इस बात में सहमत हो कि इस अध्याय के प्रावधानों को राज्य और नागरिक के परस्पर एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य समझे जायें। प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होना चाहिये कि वह राज्य को इन कर्त्तव्यों के प्रवर्त्तन के लिये बाध्य कर सकें, फिर चाहे ऐसा कराने का साधन कुछ भी क्यों न हो और इसके साथ-साथ राज्य को भी यह देखने का अधिकार होना चाहिये कि प्रत्येक नागरिक राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करता है।

केवल एक बात और है जो मुझे कहनी है, इसके बाद फिर मैं समाप्त कर दूंगा। मेरे माननीय मित्र श्री रोहिणीकुमार चौधरी ने चोरों के उस दल की प्रशंसा की, जो कलकत्ता और दिल्ली के बीच चोरी करते हैं और मुझे इसके लिये सचेत किया कि कहीं वे बम्बई और दिल्ली के बीच भी चोरी न करने लग जायें। मैं उनकी इस चिन्ता के लिये बहुत कृतज्ञ हूं, जो उन्होंने मेरे तथा एक और अन्य माननीय सदस्य के प्रति प्रकट की। मैं उन्हें केवल यह आश्वासन दे सकता हूं कि उनकी शंकायें निराधार हैं, क्योंकि मैं रेल के डिब्बे में अपने बक्स में अपने संशोधनों को बन्द कर सर के नीचे रखकर यात्रा करने का अभ्यस्त नहीं हूं। मैं संशोधनों को अपने मस्तिष्क में रखकर चलता हूं। इसलिये जब तक कि चोर अपने साथ किसी कुशल सर्जन को लेकर न चलें, जो मेरे मस्तिष्क में से उन संशोधनों को निकाल सकें, तब तक वे मेरे संशोधनों को नहीं चुरा सकते और

[प्रो. के.टी. शाह]

सभा उनसे बच नहीं सकती और न श्री रोहिणीकुमार चौधरी इन संशोधनों पर विचार करने की आवश्यकता से मुक्त ही हो सकते हैं क्या मैं यह भी कह दूं कि संशोधनों के खो जाने से श्री नजीरुद्दीन की या मेरी हानि नहीं हुई। इससे सभा को हानि हुई क्योंकि हम में से जो लोग यहां आते हैं और इन संशोधनों को उपस्थित करते हैं, वे किसी विनोद अथवा उपद्रव के लिये नहीं करते हैं वरन् उनमें मानसिक श्रम लगाना पड़ता है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ यद्यपि मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता, तो भी मैं अपने संशोधन पर बोलना चाहता हूं।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः__ एक ऐसा ही संशोधन जो 'the State' शब्दों के स्थान में 'every State' शब्द रखने के लिये था, पेश किया गया था और अस्वीकार किया गया था।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ यह प्रसंग पर निर्भर है।

*__उपाध्यक्षः__ यदि आप बोलने का आग्रह करते हैं, तो आप बोल सकते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान्, मैं एक मिनट से अधिक नहीं लूंगा।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः__ मैं निवेदन करता हूं कि निरर्थक संशोधनों से बचने के लिये अध्यक्ष को सदैव यह अधिकार है कि उनको पेश करने की आज्ञा न दे। इस विषय पर सभा विचार कर ही चुकी है। इस पर विचार समाप्त हो चुका है और सिवाय इसके कि सभा का समय खोया जाये और कोई अन्य उद्देश्य प्रतीत नहीं होता। मैं निवेदन करता हूं कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन में कोई सार नहीं है और यदि फिर भी उस पर आग्रह किया जाता है, तो उसके सम्बन्ध में आपकी व्यवस्था चाहता हूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मुझे बहुत दुख है कि मेरे समझाने के प्रयत्न को व्यर्थ समय खोने वाला समझा गया।

*__उपाध्यक्षः__ मेरा निवेदन यह है कि आप को जो कुछ उन्होंने कहा है, उस पर ध्यान दिये बिना अपनी बात कहें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि: अनुच्छेद 29 में 'the State' शब्दों के स्थान में 'every State' शब्द रखे जायें।

श्री अनन्तशयनम आयंगर की बातों के बल को मैं पूर्णतया समझता हूं, परन्तु सभा के समक्ष तक कठिनाई उपस्थित करने के लिये विवश हुआ हूं। अनुच्छेद 29 में दिया हुआ है कि कानून बनाने में इन सिद्धान्तों का पालन करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। यहां राज्य का अर्थ एक राज्य से है, परन्तु राज्य अनेकों हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या मैं माननीय सदस्य से यह निवेदन कर सकता हूं कि वे अनुच्छेद 29 पर ध्यान दें। 'the State' की परिभाषा इस प्रकार से की गई है कि इसका वही अर्थ है, जो इस विधान के भाग 3 में है। अत: अनुच्छेद 29 में भी 'the State' का वही अर्थ है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मसौदे में जो कठिनाई है, मैं तो उसे बता रहा था। 'the State' शब्दों को स्वीकार करके हम एक पशोपेश में पड़ गये हैं और यह पशोपेश अन्य खंडों में हमारा पीछा कर रहा है। मैं यह कहूंगा कि 'every State' शब्द अधिक उपयुक्त है। यह तथ्य कि हमने परिभाषा को स्वीकार कर लिया है, अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में निरर्थकताओं से हमें नहीं बचा सकता है। मैं निवेदन करता हूं कि प्रसंग में यह अभिव्यंजना पूर्णतया निरर्थक है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं, परन्तु मैं सम्पूर्ण अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं। श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन रखे गये और उनमें से अनेकों संशोधनों का प्रयोजन यही है कि इस अध्याय के लिये कुछ बन्धक बल होना चाहिये। मैंने भी एक संशोधन की सूचना दी है, जो छपी हुई सूची में 861 संख्या पर है और जिसमें यह दिया हुआ है कि ''दस वर्ष के पश्चात् राज्य की नीति के ये निदेशक सिद्धान्त जनता के मौलिक अधिकार हो जायेंगे और किसी भी न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय हो सकेंगे।'' परन्तु इस अध्याय के अनेकों अनुच्छेदों पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् मैं यह अनुभव करता हूं कि इस प्रकार के महान् आदेश को दे देना

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

ठीक नहीं है। प्रारूप-समिति ने 14 वर्ष आयु तक के बच्चों के लिये अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिये 10 वर्ष की अवधि तथा अधिशासी वर्ग और न्यायाधीश वर्ग को पृथक् करने के लिये तीन वर्ष की अवधि तथा ऐसी ही अन्य और बातें स्वयं निर्धारित की हैं। मैं जो कुछ चाहता हूं, वह यह है कि इस अध्याय के ये निदेशक सिद्धान्त पवित्र भावनामात्र ही न रह जाये। मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह भी यह चाहते हैं कि कानून-निर्माण करने में राज्य इन मौलिक सिद्धान्तों का पालन करे। मैं उनको यह आश्वासन देना चाहता हूं कि यह तथ्य कि यह अध्याय विधान का अंग हैं, इस प्रकार की गारंटी देता है और प्रत्येक स्मृतिज्ञ को यह अधिकार होगा कि जब कोई अधिनियम परिषद् के समक्ष उपस्थित किया जाये, वह यह बताये कि वह अधिनियम इस अध्याय में निर्धारित सिद्धान्त के विरुद्ध है। अतः केवल यही तथ्य कि उनको विधान में रखा जा रहा है, यह सिद्ध करता है कि विधान के अन्तर्गत इन निदेशक सिद्धान्तों का आदर करना प्रत्येक स्मृतिज्ञ का कर्त्तव्य होगा, अतः कोई भी अधिनियम, जो इन सिद्धान्तों के विरुद्ध है, अनियमित हो जायेगा। यद्यपि इन सिद्धान्तों के प्रवर्त्तन कराने के लिये प्रत्येक नागरिक न्यायालय की शरण नहीं ले सकेगा, परन्तु प्रत्येक परिषद के अध्यक्ष को किसी विधेयक को नियम-विरुद्ध ठहराने का अधिकार होगा और उसे यह कहने का अधिकार होगा कि इस विधेयक को पेश नहीं किया जा सकता क्योंकि यह विधान के मौलिक निदेशक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। अतः मेरा विचार है कि यह अध्याय केवल पवित्र कामनाओं का अध्याय ही नहीं है, परन्तु महान सिद्धान्तों का अध्याय है। अनुच्छेद 31 के पढ़ने से यह विदित होगा कि उसमें अनेकों उच्च सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है और मुझे आशा है कि प्रो. शाह भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि दोनों संघ-विधान-मंडल तथा राज्य-विधान-मंडलों में, यदि इन सिद्धान्तों का पालन किया जाता है तो हमारा एक ऐसा राज्य होगा जिसमें ये सिद्धान्त लगभग मौलिक अधिकार होंगे और न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तनीय होंगे। यह सत्य है कि इनके प्रवर्त्तन के लिये प्रत्येक व्यक्ति न्यायालय की शरण नहीं ले सकेगा, परन्तु प्रत्येक स्मृति इन सिद्धान्तों के विरोध करने वाले किसी भी विधेयक को नियम-विरुद्ध ठहरा सकेगा। इसलिये मेरा विचार है कि मेरा संशोधन, जिसके द्वारा द्रुतगति से इनके अभिपूरण करने के लिये राज्य पर एक प्रकार की समय-सीमा नियत की गई थी, जिससे कि दस वर्षों में इन समस्त सिद्धान्तों का पार्लियामेंट के अधिनियम में समामेलन हो जाये, अपनी इस समय-सीमा के कारण कुछ

कठिनाइयां उत्पन्न कर देगा। मैं आशा करता हूं कि मेरा आशय इस तथ्य से समझ लिया जायेगा कि यह भाग विधान का अंग होगा और प्रत्येक परिषद् के लिये यह अपेक्षित होगा कि वह इस भाग में दिये हुये सिद्धान्तों का आदर करे और यह ध्यान रखे कि इस अध्याय में दिये हुये सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई भी अधिनियम पारित न हो। अतः मेरा विचार है कि जो मित्र इस अनुच्छेद को केवल पवित्र कामना का अध्याय समझते हैं, वे सही नहीं है। यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जो उन सिद्धान्तों को निर्धारित करता है जो राज्य की नीति का संचालन करेंगे और इस प्रकार वे देश की जनता को प्रस्तावना में दिये हुये महान् आदर्श की प्राप्ति का आश्वासन देंगे। इसलिये मैं आशा करता हूं कि प्रो. के.टी. शाह ने अपने संशोधन में जिस विरोध को प्रकट किया है, उस पर जोर नहीं दिया जायेगा। इस कारण मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

*__श्री हुसैन इमाम__ (बिहार : मुस्लिम): क्या मैं पूछ सकता हूं कि प्रस्तावकों के अतिरिक्त इन संशोधनों पर अन्य व्यक्ति वाद-विवाद में क्या भाग नहीं ले सकते?

*__उपाध्यक्षः__ यदि आप मेरी दृष्टि में पड़ जाते, तो मैं आपको अवसर देता।

*__श्री हुसैन इमामः__ मैंने यह समझा था कि संशोधनों पर मत लेकर जब उन पर विचार समाप्त कर दिया जायेगा, तब वाद-विवाद होगा।

*__उपाध्यक्षः__ नहीं कल यह निश्चय किया गया था कि माननीय सदस्य दोनों पर, संशोधन पर तथा अनुच्छेद पर भी बोल सकते हैं।

*__श्री हुसैन इमामः__ वाद-विवाद से सभा के अन्य सदस्यों को भी अवसर प्राप्त होगा।

*__उपाध्यक्षः__ आप खड़े क्यों नहीं हुये?

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 29 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'29–इस भाग में दिये हुये प्रावधान जनता के प्रति राज्य के कर्त्तव्य समझे जायेंगे, ये ऐसी रीति तथा ऐसे अधिकारी द्वारा प्रवर्त्तनीय होंगे, जो इस प्रकार के प्रत्येक प्रावधान से सम्बन्धित कानून के अन्तर्गत तथा उसके अधीन समुचित समझे

[उपाध्यक्ष]

जायें। आवश्यक तथा समुपयुक्त कानून बनाने में इन सिद्धांतों का अनुसरण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।' ''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 29 में 'the State' शब्दों के स्थान में 'every State' शब्द रखे जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 29 विधान का भाग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैंने यह कहा था कि मैं इस अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं; मैं खड़ा भी हुआ था।

***उपाध्यक्ष:** मैंने आपको नहीं देखा। क्या आप अनुच्छेद 30 पर नहीं बोल सकते हैं?

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** अनुच्छेद 29 बहुत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद हैं।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब लौटने में असमर्थ हूं। अनुच्छेद 30 पर बोलने का मैं आपको अवसर दूंगा।

***श्री अमियकुमार घोष** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं ठीक पद्धति जान सकता हूं? जब कोई खंड सभा में रख दिया जाता है, तो क्या सदस्य को यह अधिकार नहीं है कि वह उसके पक्ष अथवा विपक्ष में बोले?

***उपाध्यक्ष:** अवश्य है।

***श्री अमियकुमार घोषः** परन्तु मेरे विचार से इस अनुच्छेद के बारे में ऐसा अवसर नहीं दिया गया। संशोधनों पर मत ले लिया गया। जब खंड पर मत लिया जा रहा था तो अनेकों सदस्य समस्त खंड का विरोध करने को खड़े हुये थे। मेरे विचार से सही पद्धति यह है कि संशोधन पर मत लेने और उनके गिर जाने के पश्चात् समस्त खंड सभा में रखा जाये। उस समय यदि कोई सदस्य उसका विरोध करना चाहता है तो उसे विरोध करने का अधिकार है, अथवा इसी प्रकार समर्थन करने का अधिकार है। वे समस्त खंड पर बोल सकते हैं। यही सही पद्धति है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, कल आपने यह व्यवस्था दी थी और वह स्वीकार कर ली गई थी कि दो पृथक्-पृथक् वाद-विवाद करने की अपेक्षा एक बार ही दोनों अर्थात् संशोधनों और अनुच्छेद पर वाद-विवाद होगा और संशोधनों पर मत लेने के पश्चात् बिना किसी वाद-विवाद के अनुच्छेद पर भी मत लिया जायेगा और उसे स्वीकृत अथवा अस्वीकृत घोषित किया जायेगा। यह आपकी व्यवस्था थी और हम उसका अनुसरण कर रहे हैं। पृथक् वाद-विवाद की, एक संशोधन के लिये और दूसरा अनुच्छेद के लिये, आवश्यकता नहीं है।

***श्री अमियकुमार घोषः** वह समस्त विधान के लिये व्यवस्था नहीं थी, वह केवल अनुच्छेद 3 के लिये ही थी। मेरे विचार से श्री आयंगर एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे हैं।

***उपाध्यक्षः** वही पद्धति अंगीकार कर ली गई थी। (*बाधायें*) कृपा कर के मुझे बोलने दीजिये। क्या मैं आगे कहूं? (*बी. पोकर साहब बहादुर से, जो खड़े हो गये थे*) क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम)**:** श्रीमान्, मुझे यह देख कर बड़ा दुख हुआ कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर बहुधा अध्यक्ष के कार्य को स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं। (*बाधायें*)

***उपाध्यक्षः** शांति, शांति।

बी. पोकर साहब बहादुरः श्रीमान्, वे अध्यक्ष को सदैव आदेश देते हैं। वास्तव में...(*बाधायें*)

***कुछ माननीय सदस्यगणः** वापस लीजिये।

बी. पोकर साहब बहादुरः मैं एक सच बात की ओर संकेत कर रहा हूं। अभी...

*__श्री के. हनुमन्थय्या__ (मैसूर): श्रीमान्, वे एक माननीय सदस्य की निन्दा कर रहे हैं।

*__उपाध्यक्षः__ शांति, शांति।

बी. पोकर साहब बहादुरः मैं तो सच बात कह रहा हूं। उन्होंने अभी यह कहा कि संशोधनों के प्रस्तावों और खंड के विरुद्ध प्रस्तावों पर साथ-साथ वाद-विवाद करना चाहिये। सच तो यह है कि जब श्री महबूबअली आये और उन्होंने खंड के विरुद्ध बोलना चाहा, तो अध्यक्ष महोदय ने उन से यह कहा कि संशोधनों के समाप्त करने के पश्चात् जब कि खंड सभा के समक्ष आवे, उस समय आपका बोलना उचित होगा। जो कुछ भी हो किसी प्रश्न का निर्णय करना अध्यक्ष का कार्य है।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है। बड़े दुख की बात है कि एक माननीय सदस्य उपाध्यक्ष तथा सभा के माननीय सदस्यों का ध्यान कुछ प्रश्नों की ओर आकर्षित करने के लिये कूदकर जा पहुंचते हैं, जब कि उन प्रश्नों पर स्वयं उपाध्यक्ष महोदय को ध्यान देना चाहिये। यह बात कि उपाध्यक्ष महोदय ने उन पर ध्यान नहीं दिया है, सिद्ध करती है कि या तो वे स्वयं इन बातों को चाहते हैं अथवा वे ही उनकी व्यवस्थायें हैं। उन माननीय सदस्य का कोई कर्त्तव्य नहीं है कि वे इस सभा को अथवा माननीय उपाध्यक्ष महोदय को कोई ऐसा मार्ग बतावें, जिसको उन्हें स्वयं सोचना चाहिये। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इससे अध्यक्ष पद का अपमान होता है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप ऐसी बातों को सहन न करें और कार्रवाई में ऐसे उपद्रव न होने दें।

*__उपाध्यक्षः__ क्या मैं यह निवदेन करूं कि श्री आयंगर ने केवल उस प्रणाली को दुहराया है, जिसके अनुसार अपनी कार्रवाई संचालन करना इस सभा ने अंगीकार कर लिया था। कल जो कुछ पारित किया गया था, सभा को उसकी याद दिलाने में श्री आयंगर ने मेरी समझ में तो कोई गलती नहीं की। मुझे बहुत दुख है

कि वक्ताओं ने उन बातों को ठीक-ठीक नहीं समझा। मैं चाहता हूं कि हम पूर्णतया एकरूप होकर कार्य करें और किसी प्रकार का मिथ्या भ्रम उत्पन्न न होने दें। हमको यहां स्वच्छ तथा निर्मल हृदय लेकर आना चाहिये और परस्पर विश्वास करने के लिये उद्यत रहना चाहिये। प्रजातंत्र में सदैव ऐसा ही होता है कि अल्पसंख्यक केवल अपने विचार उपस्थित कर सकते हैं और बहुसंख्यकों पर जोर डालने का प्रयत्न कर सकते हैं तथा बहुसंख्यकों के आदेश पर अपने को छोड़ सकते हैं। प्रजातंत्र का यही अर्थ है जैसा कि मैंने अपनी क्षुद्र बुद्धि से समझा है। नि:सन्देह सभा के कार्य का संचालन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि कुछ नियमों का केवल अक्षरश: ही नहीं, वरन् श्रद्धापूर्वक भावत: पालन भी नहीं किया जाता। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि यदि श्री महबूबअली मेरी दृष्टि में पड़ जाते तो मैं उन्हें बोलने का अवश्य अवसर देता। यदि माननीय सदस्य मेरे कार्य-संचालन का सूक्ष्म परीक्षण करें और इस बात पर विचार करें कि किस प्रकार मैंने सभा की कार्रवाइयों के संचालन करने का प्रयत्न किया है, तो उनको यह विदित होगा कि कुछ ऐसे समूहों को सुविधा प्रदान करने में मैंने अपने मार्ग का परित्याग कर दिया है, जो कि वर्तमान समय में यह समझते हैं कि उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि अपनी आवाज़ सुना सकें। मेरी यह नीति रही है और इस नीति के पालन करने में बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने मुझे पूर्ण सहयोग किया है, जिस बात के लिये मैं कृतज्ञ हूं। इन परिस्थितियों में, श्री पोकर साहब, मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप कृपाकर अपना स्थान ग्रहण करें और जिस प्रकार से मैं उत्तम समझूं, उस प्रकार से मुझे सभा की कार्रवाइयों का संचालन करने दें और किसी का अपमान न करें, जिससे मुझे दुख हो—न श्री आयंगर का, जो यहां हमारी सहायता करने के लिये हैं और न मेरा, जो समस्त सभा के लिये संतोषप्रद कार्रवाई का संचालन करने में अपनी क्षुद्र योग्यताओं के अनुसार भरसक प्रयत्न कर रहा है। क्या आप कृपा कर अपना स्थान ग्रहण करेंगे?

*__बी. पोकर साहब बहादुर:__ आपने जिस विनम्र रूप में अल्पसंख्यक लोगों को सुविधा प्रदान करने के हेतु अपनी उत्कण्ठा प्रकट की है, उसके लिये धन्यवाद देने के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं। मुझे भी इस बात के लिये आपसे क्षमा मांगनी चाहिये कि आपने यह समझा कि किसी प्रकार से भी मेरा

[बी. पोकर साहब बहादुर]

आशय आपका या आयंगर साहब का अपमान करने से था। मैं तो आपको केवल यही बता रहा था कि आपने जो कुछ कहा, उसको हम कितना गलत समझे और यह कि समस्त संशोधनों पर वाद-विवाद समाप्त हो जाने के पश्चात् हमने सोचा कि हमें और भी अवसर मिलेंगे। श्रीमान्, आपने अल्पसंख्यकों को अपने भाव प्रकट करने के लिये अवसर प्रदान करने के सम्बन्ध में जिस रूप से अपनी उत्कण्ठा प्रकट की है, उसके लिये मैं आपका आभारी हूं।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं एक सुझाव रख सकता हूं? जब मैंने इस प्रकार का समझौता कर लिया है कि कोई माननीय सदस्य किसी विशेष अवसर पर बोल सकेगा, तो उस समय वह सामने के स्थानों को ग्रहण कर ले, जिससे कि मेरी दृष्टि में आने में उनको अधिक कठिनाई न हो। मैं एक बार फिर सभा को यह आश्वासन दूं कि अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के व्यक्तियों को हर प्रकार की समभाव्य सुविधा प्रदान करने में, मैं अपनी पूर्ण शक्ति का उपयोग करूंगा।

***श्री हुसैन इमामः** क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि आप अपनी व्यवस्था को और स्पष्ट रूप में रख दें, क्योंकि जिस समय यह व्यवस्था दी गयी थी, उस समय मैं उपस्थित न था। इस कारण मैं चाहता हूं कि सभा के मार्ग-प्रदर्शन के लिये सर्वप्रथम उसका स्पष्टीकरण कर दिया जाये। मेरा विचार स्वयं यह हुआ था कि आपकी व्यवस्था का यह आशय था कि जो सदस्य संशोधनों पर बोल चुके हों, उनको मूल प्रस्ताव पर भाषण देने का और अधिकार नहीं है। उसका यह आशय कदापि नहीं था कि जैसे ही संशोधन पेश किया जाता है और अनुच्छेद का प्रस्तावक यह कह देता है कि उसे स्वीकार किया गया अथवा अस्वीकार, तो वाद-विवाद समाप्त हो जाता है। उसका केवल यही आशय है कि वाद-विवाद का अन्त केवल वहीं तक होता है जहां तक कि उस संशोधन का सम्बन्ध है, मूल अनुच्छेद पर वाद-विवाद जारी रह सकता है। इस सम्बन्ध में मैं आपको याद दिलाऊंगा कि ज्योंही डा. अम्बेडकर ने संशोधनों पर अपनी सम्मति दी, त्योंही मैं खड़ा हो गया; अतः मैं अनुच्छेद पर अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण रूप से अधिकारी था तथा मैं आपकी दृष्टि में भी आ गया था। इस प्रतिबंधित प्रणाली

पर मैं आपकी व्यवस्था चाहता हूं, आया कि जैसा मैंने समझा है, वह सही है या गलत।

***उपाध्यक्षः** मैंने आपकी बात समझ ली है। सर्वप्रथम संशोधन पेश किये जाते हैं और जो सदस्य उनको पेश करते हैं वे समस्त खंड पर भी बोल सकते हैं। तत्पश्चात् माननीय सदस्यों को यह अवसर दिया जाता है कि वे संशोधन तथा स्वयं अनुच्छेद पर भी वाद-विवाद कर सकते हैं; इसके पश्चात् डा. अम्बेडकर उत्तर देते हैं और वाद-विवाद समाप्त हो जाता है। मैंने इसको इसी प्रकार समझाने का प्रयत्न किया है और अब से अनंतर इसी पद्धति पर अनुसरण किया जायेगा।

***श्री हुसैन इमामः** यह स्पष्ट है कि मूल अनुच्छेद पर वाद-विवाद समाप्त हो जायेगा। संशोधन पर वाद-विवाद समाप्त हो सकता है, न कि सामान्य वाद-विवाद।

श्री रामसहाय (संयुक्त राज्य : ग्वालियर व इन्दौर): सभापति जी, मेरा यह निवेदन है कि अमेंडमेंट पर जो बहस शुरू होती है और हाउस के सामने जो अमेंडमेंट आते हैं, उन पर कई मेम्बर इसलिये नहीं बोलना चाहते कि यह अमेंडमेंट निरर्थक है, बेकार है और उनका कोई उपयोग नहीं है। तो ऐसी सूरत में यह हालत हो जायेगी कि असल दफा पर कोई बहस नहीं हो सकेगी। इसलिये मेरा अर्ज करना यह है कि जो अमेंडमेंट इस किस्म के आपके सामने बहुत ज्यादा आ रहे हैं, उन पर बोलना पसन्द नहीं करते और वैसे ही खत्म हो जाते हैं। तो फिर असल दफा पर बोलना ज्यादा जरूरी हो जाता है और उस पर बहस करना जरूरी है।

इसलिये मेरा निवेदन है कि जो अमेंडमेंट बेकार है और बिना बहस पेश किये गए हैं, वे खत्म कर दिए जायेंगे और असल दफा पर जरूरी बहस करनी चाहिए।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, सभा के विभिन्न वर्गों के प्रति आप जो सहानुभूति प्रकट करते चले आ रहे हैं, उसकी प्रशंसा करते हुये मैं इस प्रश्न का स्पष्टीकरण करना चाहता हूं। मान लीजिये कि किसी अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन पेश किये जाते हैं, तो उन संशोधनों पर वाद-विवाद होगा और उसके पश्चात् माननीय प्रस्तावक महोदय, उसका उत्तर देंगे।

[श्री मुहम्मद इस्माइल साहब]
मैं यह जानना चाहता हूं कि प्रस्तावक महोदय के, मेरा प्रयोजन कानून-मंत्री से है, उत्तर देने के पश्चात् वह अनुच्छेद सामान्य वाद-विवाद के लिये सभा के समक्ष रहेगा या नहीं। यह हो सकता है कि संशोधनों का सम्बन्ध अनुच्छेद के कुछ भागों से ही हो। अन्य ऐसे भाग हो सकते हैं जिन पर माननीय सदस्य कुछ कहना चाहते हों। इस कारण मैं आपसे यह बात स्पष्ट करने के लिये निवेदन करता हूं कि समस्त संशोधनों पर विचार कर लेने के पश्चात् क्या सदस्यों को अनुच्छेद पर बोलने का अधिकार है या नहीं।

***उपाध्यक्षः** जो कुछ मैंने कहा था वह यह है; मान लीजिये चार संशोधन है। उनको एक-एक करके पेश किया जाता है। संशोधनों के पेश करने और प्रारूप-समिति के सभापति के उत्तर देने के अन्तर्वर्त्ती काल में अन्य सदस्य वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं और वे संशोधनों पर ही नहीं, वरन् अनुच्छेद पर भी बोल सकते हैं।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहबः** मेरा प्रश्न यह है कि संशोधन पर विचार कर लेने के पश्चात् क्या सदस्यों को संशोधित अथवा मूल अनुच्छेद पर बोलने का अधिकार नहीं है—मैं यह जानना चाहता हूं। उचित तो यह है कि सदस्यों को अनुच्छेद पर बोलने का अवसर दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** उनको ऐसा अवसर है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** उपाध्यक्ष महोदय, इस अवसर का आशय यह है कि डा. अम्बेडकर के बोलने के बाद में!

***उपाध्यक्षः** नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यह देखकर कदाचित् आश्चर्य होता है कि जो व्यक्ति विधान-मंडलों में रहे हैं, वे ऐसी आपत्ति करते हैं। हम जानते हैं कि पहले प्रस्ताव पेश किया जाता है और फिर उस विशेष खंड अथवा संकल्प पर समस्त संशोधन पेश किये जाते हैं। इसके पश्चात् दोनों संकल्प तथा संशोधनों पर वाद-विवाद होता है। उसके बाद संशोधनों पर मत लिया जाता है और फिर खंड पर। उस प्रथा से विमुख नहीं होना चाहिये, जिसका संघीय विधान-मंडल में अनुसरण किया जाता है।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से और अधिक वाद-विवाद करने से कोई लाभ नहीं है। मेरी यह व्यवस्था अन्तिम है। मैं और अधिक वाद-विवाद नहीं होने दूंगा।

***श्री नवाब मुहम्मद इस्माइल खां**: (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): संशोधन के पेश हो जाने के पश्चात्...

***उपाध्यक्ष**: मुझे भय है कि आप इस बात को न समझ सके कि व्यवस्था दी जा चुकी है। मैं इस पर फिर से वाद-विवाद कराना नहीं चाहता।

***श्री नवाब मुहम्मद इस्माइल खां**: वाद-विवाद में सुविधा के लिये संशोधनों के पेश हो जाने के बाद अध्यक्ष कृपा कर यह कह दिया करें कि अनुच्छेद पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है, जिससे कि लोग प्रस्ताव पर बोल सकें।

अनुच्छेद 30

***उपाध्यक्ष**: सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 30 को विधान का भाग माना जाये।''

पहला संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है यह नियम-विरुद्ध है। दूसरा संशोधन श्री दामोदरस्वरूप सेठ के नाम से है।

***श्री दामोदरस्वरूप सेठ** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं कि अनुच्छेद 30 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

''30–राज्य का यह प्रयास होगा कि प्रजातंत्रीय सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा संधारण द्वारा लोक-हित, लोक-कल्याण तथा लोक-उन्नति की वृद्धि करे और इस प्रयोजन के लिये राज्य अपनी नीति का संचालन:

(क) संचार के प्रमुख साधन, ऋण और विनिमय, खनिज पदार्थों के साधन तथा प्राकृतिक शक्ति के साधन और ऐसे अन्य महान अर्थ सम्बन्धी व्यावसायिक धंधों, जो सामाजिककरण के लिये उपयुक्त हों, का स्वामित्व जनता को हस्तांतरण कराने;

(ख) सार्वजनिक उपयोगिताओं के लिये स्थानीय स्वशासनाधिकार दिलाने;

(ग) सहकारिता के आधार पर कृषि, ऋण तथा उद्योगों के संगठन का प्रोत्साहन करने;

के निमित्त करे।''

[श्री दामोदरस्वरूप सेठ]

श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करने का कारण यह है कि मेरे विचार से अनुच्छेद का वाक्य-विन्यास जैसा इस समय है वह उस रूप में बड़ा ही अनिश्चित तथा अस्पष्ट है और उससे यह स्पष्ट भाव प्रकट नहीं होता कि सामाजिक व्यवस्था का क्या आर्थिक रूप स्थापित किया जा रहा है। हम सब जानते हैं कि जिस समाज में हम आजकल रह रहे हैं, उसकी व्यवस्था अथवा उसका स्वरूप पूंजीवाद पर आश्रित है और हम समाज में दोनों शोषक तथा शोषित वर्गों को साथ-साथ उपस्थित देखते हैं। और यह स्वाभाविक बात है कि शोषक वर्ग आराम और मजे में है और शोषित वर्ग दबे हुये और पिसे हुये हैं। हम सबको यह भली भांति विदित है कि ऐसी समाज में जनसमूह का वास्तविक हित तथा श्रमिकों का वास्तविक कल्याण तब तक न तो सुरक्षित रह सकता है और न उसकी वृद्धि की जा सकती है, जब तक कि समाज में से शोषक वर्गों का सफाया न कर दिया गया हो। और यह सफाया तभी हो सकेगा जब कि हमने लोकतंत्रीय साम्यवादी व्यवस्था स्थापित कर दी होगी, और जब कि उत्पादन, संचार, साख, विनिमय, के साधनों को तथा खनिज पदार्थ, प्राकृतिक शक्ति तथा अन्य ऐसे आर्थिक उद्योग-धन्धों को जो—जिनका समाज के नियंत्रण में रखे जाने का समय आ चुका है—हमने हस्तांतरित करके लोक स्वामित्व के अधीन कर दिया हो और जब कि लोकोपयोगी आर्थिक संस्थाएं नगरमंडलों के हाथ में दे दी हों और जब कि हमने कृषि साख तथा उद्योग-धंधों के संगठन को सहकारिता प्रणाली के आधार पर निर्मित करने के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया हो।

जहां तक मैं जानता हूं, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने निर्वाचन सम्बन्धी नीति-घोषणा पत्र में सार्वजनिक उपयोगिताओं, संचार, उत्पादन, साख और विनियम के साधनों के स्वामित्व का जनता को हस्तांतरण करने की प्रतिज्ञा की थी। कांग्रेस की आर्थिक समिति की रिपोर्ट भी इस सिद्धान्त को मानती है। इसके अभाव में हम उस सामाजिक प्रजातंत्रीय व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते हैं, जिसमें जनता के वास्तविक हित साबित हो सकें। श्रीमान्, हमको प्रयास करना चाहिये कि हमारे सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जाये कि अंग्रेजी शासन की ही तरह हमने भी प्रतिज्ञाओं को भंग करने का विचार मन में रख कर ही ये प्रतिज्ञाएं की थीं। यहां हम प्रजातंत्र तथा लोक-हित की बातें तो बहुत करते हैं; परन्तु व्यवहार में हमें

प्रजातंत्र बहुत सूक्ष्म अंश में अथवा नहीं के ही बराबर दिखाई देता है। शासक की स्वेच्छा आज भी कानून के रूप में वर्तमान है। यदि हम वास्तव में यह चाहते हैं कि जनसमुदाय के लिये कुछ किया जाये और उनके लिये वास्तविक हित का प्रापण किया जाये तो हमें समझ लेना चाहिये कि यह केवल सामाजिक प्रजातंत्रीय व्यवस्था द्वारा ही समभाव्य हो सकेगा। और यदि हम ऐसी व्यवस्था की स्थापना के लिये वास्तव में उत्सुक हैं, तो इस विधान में हमें यह निर्धारण कर देना चाहिये कि जिस व्यवस्था की हम स्थापना करने जा रहे हैं, वह सामाजिक प्रजातंत्रीय अथवा प्रजातंत्रीय सामाजिक व्यवस्था होगी। उसके शब्द जितने स्पष्ट हो सकते हैं, उतने स्पष्ट होने चाहिये जिससे कि जब कभी शासकवर्ग अपने स्वार्थ-साधन के लिये उसके अर्थ में परिवर्तन करना आवश्यक समझे, तो वह ऐसा न कर सके।

इन शब्दों के साथ मै अपना संशोधन परिषद की स्वीकृति के लिये उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** सं. 864 उसी प्रकार का है, जैसा कि सं. 863। अतः उसके पेश करने की आवश्यकता नहीं है। क्या सं. 867 पेश हो चुका?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी हां, मैं उसे पेश करता हूं।

मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 30 में से 'strive to' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, अनुच्छेद में, यह पैरा इस प्रकार है:

''The State shall strive to promote the welfare of the people...''

मैं 'strive to' शब्दों को हटाने के पक्ष में हूं। फिर अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''The State shall promote the welfare of the people...''

श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यह व्यवस्था करके कि ये अधिकार विचार्य नहीं होंगे, हमने इस अनुच्छेद को बहुत अशक्त बना दिया है और इस पर भी लोक-हित की वृद्धि के साथ प्रयास 'shall strive' लगाकर हम इस अनुच्छेद को और भी अधिक अशक्त कर रहे हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यदि विधान में इन अधिकारों का पुरस्थापन किया जाता है, तो इसे इस प्रकार रखना चाहिये कि ''राज्य लोकहित की वृद्धि करेगा'' न कि केवल ''प्रयास करेगा'' (strive to)।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

जिस रूप में प्रावधान है उसका अर्थ यह है कि राज्य से लोक-हित की वृद्धि की आशा नहीं की जाती है, बल्कि उससे ऐसा करने के लिये प्रयास की ही आशा की जाती है। अतः अनुच्छेद को कुछ व्यावहारिक अर्थ देने के हेतु इन शब्दों को निकाल दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 870 को पेश करता हूं कि:

''अनुच्छेद 30 में 'National life' शब्दों के पूर्व 'the' शब्द को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, इस संशोधन की सूचना देने की मेरी इच्छा नहीं थी और वह यह सोचकर कि यह बहुत ही निम्न श्रेणी का संशोधन है, परन्तु 'the' शब्द मेरे कानों को बहुत खटका और अन्त में मैंने उसे भेजने का निश्चय किया। मैं इतना धृष्ट नहीं हूं कि विद्वान् मित्र डा. अम्बेडकर अथवा प्रारूप-समिति के उनके योग्य साथियों को भाषा के विषय में सलाह दूं। परन्तु मुझे यह आशा है कि इस उदाहरण में 'the' शब्द जितना मुझे कर्ण-कटु है, उतना ही उनको भी विचार करने पर मालूम होगा; यह ललितोच्चारण के नियमों का उल्लंघन करता है। अतः मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे इसे निकाल दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्षः** सं. 871 पेश नहीं किया गया।

अब अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***महबूबअली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान्, सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन (सं. 863) तथा इस अनुच्छेद दोनों का ही मैं विरोध करता हूं। कारण यह है कि इस संशोधन द्वारा एक विशेष राजनैतिक विचारधारा के कुछ सिद्धान्तों का विधान में समावेश करने का प्रयास किया जा रहा है। मेरा विचार यह है कि विधान में किसी भी राजनैतिक विचारधारा के सिद्धान्तों का समावेश नहीं होना चाहिये।

इसी आधार पर मैं इस अनुच्छेद का भी विरोध करता हूं। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के प्रश्न की परीक्षा दो बातों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिये। अर्थात् एक प्रजातंत्रीय सिद्धांत और दूसरी इन सिद्धान्तों की प्रावर्त्तनीयता। पहली बात के बारे में मैं यही कहना चाहता हूं कि जैसा आप सब लोग जानते हैं, संविधान की प्रस्तावना में प्रजातंत्रात्मक लोकतंत्र अथवा राज्य को स्थापित करने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त संविधान के मुख्य भाग में ऐसे प्रजातंत्र की, जिसे साधारणतया परिषदात्मक प्रजातंत्र कहते हैं, व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार संविधान में जिस अधिशासी की व्यवस्था की गई है, उसे परिषदात्मक अधिशासी कहा जाता है और जो इसलिये पदारूढ़ होती है कि चुनाव में निर्वाचकगण ने अधिक संख्या में उसके दल के लोगों को चुन दिया है और जो संसद के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। अत: यह प्रत्यक्ष है कि देश में आवश्यक रूप में अनेकों दल होंगे, जो संसद में चुनाव द्वारा आने का प्रयत्न करेंगे। इन राजनैतिक दलों के भिन्न-भिन्न विशिष्ट विचार, आदर्श, विचारधारा, कार्यक्रम और सिद्धान्त होंगे। कभी-कभी ये इतने भिन्न होते हैं कि वे परस्पर विरोधी भी कहे जा सकते हैं। निर्वाचकगण इन दलों के लोगों को संसद के लिये इसी आधार पर चुनते हैं कि उनके सिद्धान्त और कार्यक्रम कितने अच्छे हैं और जब किसी विशेष दल का संसद् में बहुमत हो जाता है, तो वह शासन-व्यवस्था संभालने का अधिकारी हो जाता है। उस समय जनता तथा निर्वाचकगण को यह अधिकार होता है कि उन कार्यक्रमों तथा सिद्धान्तों के पालन किये जाने की वे आशा करें। संसदात्मक प्रजातंत्र का यही अर्थ है और ऐसा यूनाइटेड किंगडम में है और इस विधान में भी इसी के समावेश करने का प्रयास किया गया है। अत: यह प्रश्न विचारणीय है कि ऐसी दशा में राज्य के लिये न निदेशक सिद्धान्तों का उस संसदात्मक प्रजातंत्र से कहां तक सामंजस्य है, जिसमें अधिशासी ऐसी संसद् के प्रति उत्तरदायी होता है, जो कि उस दल के सिद्धान्तों और कार्यक्रम की अच्छाई-बुराई के आधार पर चुनी गई है, जो पदारूढ़ है। हमारे विचार करने के लिये वह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। हम उन स्थितियों की कल्पना कर सकते हैं, जिनमें जनता द्वारा कोई

[महबूबअली बेग साहब बहादुर]

ऐसा दल भेजा जा सकता है, जिसके सिद्धान्त और कार्यक्रम इस अध्याय में दिये हुये सिद्धान्तों के विरुद्ध हों। हमें विदित है कि अभी-अभी ब्रिटिश संसद् में अनुदारवादियों ने लोहे और फौलाद के राष्ट्रीयकरण की अस्वीकृति के लिये प्रस्ताव उपस्थित किया हैं कल हमने सुना कि बड़ी गड़बड़ी हुई। नि:सन्देह मजदूर दल ने उस प्रस्ताव को गिरा दिया; यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि राजनैतिक दलों के अलग-अलग और खास-खास कार्यक्रम होते हैं और संसदात्मक प्रजातंत्र में अपने कार्यक्रम के औचित्य पर ही दलों को संसद् के लिये चुना जाता है। इस विधान में जब इस स्थिति को ग्रहण किया गया है, तो उसमें इन निदेशक सिद्धान्तो का क्या स्थान है? उनके लिये स्पष्टतया कोई स्थान नहीं है। जिन बातों को यहां प्रावहित किया जा रहा है, वे प्रजातंत्र के तथा संसदात्मक प्रजातंत्र के विरुद्ध हैं। क्या इन सिद्धान्तों से यह प्रयोजन है कि इस विधान में निर्धारित कुछ कार्यक्रमों तथा सिद्धान्तों का देश के राजनैतिक दलों के साथ गठबन्धन कर दिया जाये? नि:संदेह ऐसा नहीं है, अन्यथा वह प्रजातंत्रवाद नहीं है, अथवा कम से कम वैसा प्रजातंत्रवाद नहीं है जिसकी व्यवस्था यह संविधान कर रहा है; अर्थात् संसदात्मक प्रजातंत्र जो जनता के प्रति उत्तरदायी हो। अत: मेरा निवेदन यह है कि ये सिद्धान्त असामयिक है तथा संसदात्मक प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं।

कुछ लोगों ने यह कहा कि ये मौलिक सिद्धान्त है। मेरा निवेदन है कि यदि ये इतने मौलिक हैं कि विधान में संशोधन करने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से इनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता, तब तो इनको यहां स्थान नहीं मिलना चाहिये। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में मेरा निजी विचार यह है कि ये वे अधिकार हैं, जो विधान-मंडल के क्षेत्र से परे कर दिये गये हैं तथा वे इतने मौलिक हैं कि कोई भी दल उनके लिये निषेधाधिकार नहीं रखता है यदि ये सब अधिकार जो यहां दिये गये हैं मौलिक हैं, तो इनको मौलिक अधिकारों के अध्याय में रख देना चाहिये। मेरे विचार से उनमें बहुत से मौलिक अधिकार नहीं है, वरन् किसी

राजनैतिक विचारधारा के कार्यक्रम के पदमात्र हैं। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि इन वाक्यखंडों को यहां स्थान ही न मिलना चाहिये और मेरा विश्वास है कि इसीलिये डा. अम्बेडकर ने इसी प्रकार के कार्यक्रम का विरोध करते हुये, जो कि प्रो. के.टी. शाह के संशोधन में ग्राम-पंचायत के सम्बन्ध में दिया हुआ था, कहा था कि यह विधान केवल एक रचना है जिसके द्वारा कोई भी दल जो शक्ति सम्पन्न हो जाता है, अपने राजनैतिक विचारों, सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के अनुसार अपने कार्यक्रम का अभिपूरण कर सकता है। यह बिल्कुल सही है। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह कार्यक्रम किस प्रकार विधान में आ सकता है। या तो वे मौलिक अधिकार हैं या नीति के विषय हैं। यदि वे इतने मौलिक हैं कि कोई भी विधान-मंडल उनमें हस्ताक्षेप नहीं कर सकता है तथा उनको विधान-मंडल और अधिशासी वर्ग के क्षेत्र से परे रखना आवश्यक है, तब तो उनको कहीं अन्यत्र ही रखना चाहिये। मेरे विचार से ये मौलिक तो कदापि नहीं हैं, हां केवल राज्य की नीति मात्र हैं। और डा. अम्बेडकर ने यह ठीक कहा है कि यह संविधान केवल रचना मात्र है तथा कोई भी दल जो शक्ति प्राप्त कर लेता है, वह इसके द्वारा अपने सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों, आदर्श तथा विचारधाराओं का अभिपूरण कर सकता है।

श्रीमान्, इसके पश्चात् हमें यह देखना है कि क्या ये प्रवर्त्तनीय है या नहीं। इस प्रकार के विधान में सिवाय उन खण्डों के जिनमें किसी प्रकार से प्रकार्य करने का अधिकार गवर्नर, गवर्नर-जनरल अथवा अन्य किसी प्राधिकारी के स्वविवेक पर छोड़ा गया है, अन्य कोई ऐसा खंड नहीं होना चाहिये, जिसका प्रवर्त्तन न किया जा सके। मान लीजिये, कोई सरकार, जो अधिकार सम्पन्न हो जाती है, इन बातों की कोई चिन्ता नहीं करती है, इन बातों की अवहेलना तथा उपेक्षा करती है, इस कारण कि जनता से उस सरकार को भिन्न प्रकार का आदेश मिला है। जनता ने इसके प्रोग्राम को मान लिया है और इसलिये चुनाव में सफल हो कर पदारूढ़ हुए दल को यह लगता है कि ये निदेश, जो आपने यहां दिये हैं, उस जनादेश के विरुद्ध हैं जो जनता ने उसके प्रोग्राम को चुनाव में अपनाकर उसे दिया है। हो सकता है कि ऐसी अवस्था में वह उन निदेशों की उपेक्षा करती है। अथवा यही मान लें कि जानबूझकर वह दल इनके विरुद्ध काम करता है तो क्या होगा? कौन यह निर्णय करेगा कि क्या बात ठीक है और कौन सी गलत।

[महबूबअली बेग साहब बहादुर]

मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने यह कहा कि देश निर्णय करेगा। देश इन निदेशक सिद्धान्तों पर विचार नहीं करता है। वह तो सम्बन्धित दलों के आदर्श कार्यक्रमों और सिद्धान्तों पर विचार करता है। इसी को संसदात्मक प्रजातंत्र कहते हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि केवल अनुच्छेद 31 के लिये ही नहीं, वरन् समस्त अनुवर्त्ती अनुच्छेदों—समूचे के समूचे अध्याय—के लिये भी स्थान नहीं है। यह बात हो सकती है कि किसी दल विशेष ने यह सोचा है कि यदि उसने ऐसी संविधान-परिषद् के द्वारा, जिसमे उसका बहुमत है, इस संविधान में इस प्रकार के कुछ सिद्धान्त न रखे तो देश में अन्य राजनैतिक दल उस दल की नीति की आलोचना करके यह प्रयत्न करें कि इस शक्तिसम्पन्न दल के विरोध में जनता उनकी ओर हो जाये। सम्भव है कि इन निदेशक सिद्धान्तों के रखे जाने का यह कारण हो। यदि यह बात नहीं है तो सम्भवत: यह सोचते हैं कि ये मौलिक अधिकार हैं। मुझे विश्वास है कि ये मौलिक अधिकार नहीं कहे जा सकते हैं। अत: जो दल शक्ति-सम्पन्न है, उसकी यह उत्कण्ठा है कि वह यह कहकर निर्वाचकगणों को सान्त्वना दे कि हमने ऐसा विधान बनाया है, जिसमें हमने उन प्रावधानों को रखा हैं जो यदि अधिक नहीं तो कम से कम उन सिद्धान्तों तथा प्रोग्राम के समान कल्याणकारी हैं, जो सिद्धान्त तथा कार्यक्रम किसी अन्य ऐसे दल के हैं, जैसा कि समाजवादी दल है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि ये सिद्धान्त गलत हैं। इस विधान में इनके लिये कोई स्थान नहीं है और चूंकि इनका प्रवर्त्तन नहीं किया जा सकता है, ये व्यर्थ हैं और अच्छा होगा यदि इनको निकाल दिया जाये।

***श्री के. हनुमन्थय्या:** श्रीमान्, मेरे समाजवादी मित्र श्री दामोदर स्वरूप सेठ ने जो संशोधन पेश किया है, मैं उसका विरोध करता हूं और जिस रूप में अनुच्छेद है उसी रूप में उसका पूर्ण समर्थन करने के लिये मैं सभा से कुछ निवेदन करना चाहता हूं। यदि वह माननीय सदस्य जिसने संशोधन सं. 863 पेश किया है, अनुच्छेद 30 तथा अनुच्छेद 31 खंड (1) और (2) को सावधानी से पढ़ें तो उनको यह अवश्य विदित होगा कि इनमें वे सब विचार दिये हुये हैं जिनका वे समामेलन करना चाहते हैं। वास्तव में पूर्व वक्ता श्री बेग ने इसी आधार पर मूल खंड तथा

संशोधन पर अपने विरोध को आश्रित किया है। जो कुछ वह अपने संशोधन से प्राप्त करना चाहते हैं, वह इन दो खंडों में दिया हुआ है; अतः इस संशोधन को स्वीकार करना बिल्कुल व्यर्थ है।

श्री बेग के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि उनकी विचारधारा के समर्थकों का यह स्वभाव हो गया है कि वह सदैव बहुसंख्यक दल की टीका-टिप्पणी किया करते हैं और उनके तर्क के सम्बन्ध में केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि उनके बारे में "अंगूर खट्टे हैं" की कहावत चरितार्थ होती है। चूंकि आजकल उनके मत वाले लोग अल्पसंख्यक हैं, इसीलिये वे यदाकदा इस प्रकार के समर्थक देश से उस विचारधारा को मनवाने में सफल हो जाते हैं तो इसमें कोई पाप, कदाचार अथवा आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु यह बात कि वह ऐसा नहीं करा सके हैं, ऐसी है जिससे उनकी अयोग्यता व्यक्त हो जाती है। चाहिये तो यह था कि वह इस असफलता को स्वीकार कर लेते, पर ऐसा वह नहीं करते। पर यह भी साफ है कि बहुसंख्यक दल के विरुद्ध भी वे वाक्यवाण छोड़ न पायेंगे। उनकी इस दलील का—कि इस विशेष धारा अथवा अनुच्छेद के पीछे यह प्रयोजन छिपा हुआ है कि विशेष प्रकार की सरकार ही पदारूढ़ हो का—भी मैं इसी प्रकार का उत्तर देता हूं। यह बात ठीक है कि आज से कुछ शताब्दियों पूर्व इस देश में प्रजातंत्रात्मक शासन की बात करना भी पाप समझा जाता था। उस समय तो यही सवाल रहता था कि कोई विशेष राजा अथवा कोई विशेष सम्राट राज्य करे। किन्तु व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष के देश पर राज्य करने के दिन सर्वदा के लिये चले गये हैं। अब प्रजातंत्र का युग है। किसी विशेष प्रकार की शासन-व्यवस्था का जनता अथवा राज्य पर किसी विशेष समय के लिये ही अधिकार रहता है। एक समय था जब व्यक्तिवाद तथा 'अकेला छोड़ो' की नीति शासन-व्यवस्थाओं को अच्छी लगती थी। उस नीति को अब तिलांजलि दे दी गई है। अब सामाजिकीकरण का बोलबाला है। अब युगधारा समाजवाद की ओर है और उसी की ओर सबका झुकाव है। इस सभा के बहुत से माननीय सदस्य अनुच्छेदों में दिये हुये आदर्शों से भी आगे बढ़ना चाहते हैं परन्तु प्रारूप-समिति ने बहुत सुन्दर वाक्य रचना की है, जो इनमें से किसी भी अति का समर्थन नहीं करती है; और साथ ही साथ उसमें इतनी बुद्धिमानी से शब्दों का प्रयोग किया गया है कि यदि साम्यवादी दल भी अधिकार सम्पन्न हो जाता है, तो वह अनुच्छेद 30 तथा अनुच्छेद 31 के खंड (1) तथा

[श्री के. हनुमन्थय्या]

(2) के अधीन अपनी विचारधारा का अभिपूरण कर सकेगा। इन धाराओं के अन्तर्गत किसी भी दल को अपने प्रोग्राम के अभिपूरण करने में रुकावट न होगी। यदि कोई व्यक्ति शब्दों का अध्ययन करे तो उसे यही विदित होगा जो मुझे हुआ है। यह कहना कठिन है कि किस शब्द अथवा वाक्य पर वह आपत्ति कर सकता है। इस कारण संशोधन सं. 836 व्यर्थ है और जिस रूप में अनुच्छेद है उसी रूप में वह इस सभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त करने के योग्य है।

*__श्री हुसैन इमामः__ उपाध्यक्ष महोदय, मुझे दुःख है कि मैं न तो सेठ दामोदरस्वरूप का पूर्ण समर्थन कर सकता हूं और न मैं शासन अथवा प्रस्ताव अथवा इस अनुच्छेद के समर्थकों की ही प्रशंसा कर सकता हूं, जो कि सब अत्यन्त भयान्वित हैं, कि कहीं सभा के सामने ऐसी कोई बात न रख दी जाये, जिसमें समाजवाद की गंध आती है। श्रीमान्, मुझे खेद है कि सरकार किसी को भी सान्त्वना नहीं दे सकी है, न पूंजीपतियों को और न मजदूरों को...।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल)ः सरकार से इस सभा का क्या सम्बन्ध?

*__श्री हुसैन इमामः__ मैं वास्तविक तथ्य का वर्णन कर रहा हूं। अनुच्छेदों का लाया जाना दल विशेष नियंत्रण कर रहा है और दल-उद्बोधकों के अधीन संशोधन रोक दिये जाते हैं...।

*__उपाध्यक्षः__ शान्ति, शान्ति।

*__श्री एम. थिरूमल राव__ (मद्रास : जनरल)ः मेरे मित्र कुछ सत्य वर्णन करना चाहते हैं। क्या वह विवादान्तर्गत विषय से संगत नहीं होना चाहिये?

*__श्री हुसैन इमामः__ मुझे कह लेने दीजिये, उसके पश्चात् आप जो चाहें कह सकते हैं। श्री गौतम ने भी ऐसा संशोधन रखा था।

*__श्री मोहनलाल गौतम__ (संयुक्त प्रान्त : जनरल)ः क्या मुझे उस संशोधन को पेश करने के लिये बुलाया गया था?

*__श्री हुसैन इमामः__ नहीं, श्रीमान्।

*__उपाध्यक्षः__ कृपया अध्यक्ष को सम्बोधन करिये और परस्पर तर्क न करिये, अन्यथा मैं भी इस पद से हट जाऊंगा। मैं उनको अनुच्छेद की आलोचना करने

का अवसर दूंगा न कि किसी राजनैतिक दल की आलोचना। जहां तक इस सभा का सम्बन्ध है, इसमें कोई राजनैतिक दल नहीं है।

***श्री हुसैन इमामः** श्रीमान्, मैं आपकी राय पर चलूंगा। मैं एक बात कहना चाहता हूं। भावी राज्य पर कई देयताएं निदेशक सिद्धान्तों द्वारा लाद दी गई हैं। जिस रूप में विधान बनने जा रहा है, उसको ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि इस संशोधन द्वारा मैं केवल यह प्रयास कर रहा हूं कि विधान द्वारा लादी गई देयताओं के पूरा करने के लिये कुछ परिसम्पत्ति का भी प्रावधान हो। इसलिये मैं साधारण सामाजिकीकरण का स्वागत करूंगा। इस संशोधन में जिस सामाजिकीकरण का विचार उपस्थित किया गया है, सामाजिकीकरण नहीं है। उदाहरण के लिये उसमें भूमि के राष्ट्रीयकरण का समावेश नहीं किया गया है। यद्यपि राष्ट्रीयकरण वर्तमान काल में भारत के अनेकों राज्य की सक्रिय नीति है। अतः यह कहना, कि प्रस्तावक महोदय कोई क्रांतिकारी परिवर्तन अथवा मौलिक परिवर्तन चाहते हैं, गलत है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह कहकर कि राज्य को यह, वह तथा अन्य अनेकों बातें करनी हैं, हम भावी राज्य पर देयताएं लाद रहे हैं। ऐसे राज्य के हाथ में कुछ निधि रखने का प्रयत्न करना क्या कोई गलत बात होगी?

यह उचित होगा कि मैं सभा के सामने यह बात रख दूं कि जब मद्यनिषेध लागू करने के प्रयोजन से अमरीका के संविधान में अठारहवां संशोधन करने का प्रस्ताव रखा गया, तो उसको सभा के सामने रखने के बारे में इस कारण से कोई बाधा न हुई कि उस (मद्य निषेध) के प्रसार की बात का कोई उल्लेख संविधान में नहीं है। इसी प्रकार 6 वर्ष के पश्चात्, जब कि उस संशोधन को विखंडित किया गया, तो संविधान की किसी बात से ऐसा करने में कोई बाधा न हुई। क्या ब्रिटिश-विधान में खानों, सरकारी बैंकों तथा लोहे और फौलाद के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के लिये कोई प्रावधान है? ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, पर फिर भी वे ऐसा कर रहे हैं। यदि वर्तमान विधान मजदूर दल के लिये समाजवादी परिवर्तन उपस्थित करने में कोई रुकावट नहीं डालता है, तो मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस संशोधन में दिया हुआ प्रावधान किस प्रकार अनुदार दल को शक्ति प्राप्त करने तथा इन प्रावधानों के प्रवर्त्तन न करने से रोकेगा? यह न्याय

[श्री हुसैन इमाम]

अधिकार नहीं है। यह केवल राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त हैं। शक्ति प्राप्त कोई भी राजनैतिक-दल इन निदेशक सिद्धान्तों की उपेक्षा कर सकता है और कहीं भी ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो कि उस दल के लिए यह कर्त्तव्य निर्धारित करे कि इन निदेशक सिद्धान्तों का अनुसरण किया ही जाना चाहिये। संघ के अध्यक्ष को भी यह अधिकार नहीं दिया गया है कि किसी राज्य को निदेशक सिद्धान्तों के विरुद्ध जाते हुये देखकर भी वह हस्तक्षेप कर सके। अतः मेरा निवेदन है कि इस प्रकार के संशोधन के प्रस्तुत करने से किसी राजनैतिक दल के शक्ति प्राप्त करने में कोई रुकावट नहीं होगी। इसमें कोई त्रुटि भी नहीं है। ये निदेशक सिद्धान्त जिस रूप में रखे गये हैं, पूर्ण रूप से अप्रवर्त्तनीय है। उनसे केवल यह अर्थ निकलता है कि यदि जनता और शासन-व्यवस्था दोनों भली हैं, तो इन निदेशकों का पालन कर लिया जायेगा। मैं समझता हूं कि प्रभावहीन निदेशकों के रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब आप किसी कानून की व्यवस्था करते हैं अथवा कोई आदर्श नियत करते हैं, तब आपको यह भी आवश्यकता होती है कि उन लोगों के बारे में भी व्यवस्था की जाये, जो उस आदर्श पर आचरण करने में असमर्थ हैं और यह सब इसलिये करना पड़ता है कि उस कानून का अतिक्रमण न हो, पर इस प्रकार के अतिक्रमण को रोकने के लिये इसमें कौन से प्रावधान हैं? समस्त निदेशक सिद्धांतों की राज्यशासन व्यवस्थाओं द्वारा उपेक्षा की जा सकती है और इसके लिये कोई उपचार नहीं है। निदेशक सिद्धान्तों के पालन कराने के सम्बन्ध में संघ के प्रधान भी कुछ नहीं कर सकेंगे। केन्द्रीय विधान-मंडल में इस प्रकार का प्रस्ताव न लाया जा सकेगा कि इन निदेशक सिद्धान्तों की उपेक्षा करने वाली सरकार को अपदस्थ कर दिया जाये अथवा इनके बारे में कोई अन्य व्यवस्था की जाये। भारतीय सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत शासकों को जो आदेश-पत्र दिये जाते थे, उनमें केन्द्रीय शासन या राज्य मंत्री को यह अधिकार दिया जाता था कि वह उन आदेशों का पालन कराये। परन्तु यहां हमने इस प्रकार की भी कोई व्यवस्था नहीं की है। मुझे तो ऐसी कोई बात विदित नहीं होती है और यदि डा. अम्बेडकर कोई ऐसी विधि बताने की कृपा करें, जिसके द्वारा राज्य के शासनों को निदेशक सिद्धान्तों के उल्लंघन करने से रोका जा सकेगा, तो मैं उनका कृतज्ञ होऊंगा। विधान-मंडल द्वारा हस्तक्षेप करने की कोई विधि होनी चाहिये। प्रांतीय विधान-मंडल हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, क्योंकि प्रान्तीय सरकार उत्तरदायी सरकारें हैं। यदि निदेशक सिद्धान्तों के अनुसार काम नहीं होता है, तो केवल मंत्रिगण

ही नहीं वरन् समस्त विधान-मंडल भी उसके लिये उत्तरदायी होंगे। अत: इस बात का परीक्षण करने के लिये, कि निदेशक सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है अथवा नहीं, कोई उच्च प्राधिकारी होना चाहिये। इन आधारों पर यदि कोई प्रावधान नहीं बनाया जाता, तो वह यही सिद्ध करेगा जैसा कि एक माननीय सदस्य ने बताया कि इन सिद्धान्तों को इसलिये यहां रखा गया है कि आलोचना बन्द हो जाये और एक अच्छा विज्ञापन हो जाये कि हमारे विचार सुन्दर हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि सभा इन संशोधनों पर और भी अधिक निरावेश होकर विचार करे और यदि इन संशोधनों में कुछ अच्छाइयां हैं, तो उनका केवल इस आधार पर परित्याग न करे, कि उनको एक ऐसे सदस्य ने प्रस्तुत किया है, जो बहुसंख्यकों के लिए मान्य व्यक्ति नहीं है। हम विधान-निर्माण कर रहे हैं और मैं सभा से निवेदन करूंगा कि इस कार्य में हमें और भी अधिक उदार, आराधक तथा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिये और विचारों के मूलरूप को समझ कर उन्हें स्वीकार करना चाहिये और यह नहीं सोचना चाहिये कि इन संशोधनों से किसी दल को लाभ होगा। और किसी दल को लाभ होने की सम्भावना भी नहीं है। यह बहुत आवश्यक है कि सामाजिकीकरण के लिये किसी प्रकार का प्रावधान होना चाहिये। मैं यह कहता तो हूं पर फिर भी मैं वहां तक नहीं जाना चाहता, जहां तक श्री दामोदरस्वरूप गये हैं परन्तु विधान में अपनी विचारधारा का कुछ संकेत तो हमें करना चाहिए। उदाहरण रूप में कोयले की खानों के राष्ट्रीयकरण के विषय को ही लीजिये, जिसको ब्रिटिश सरकार ने अन्तिम लक्ष्य के रूप में बहुत समय पूर्व स्वीकार कर लिया था। 1935 में जिस समिति ने इस विषय पर रिपोर्ट दी थी, उसने इसे अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया था, यद्यपि उस समय इंग्लैंड में अनुदार दल शासनारूढ़ था। मैं निवेदन करता हूं कि इन संशोधनों पर निरावेश होकर विचार करना चाहिये और यदि इनमें कुछ अच्छाइयां हैं, तो विधान के मसौदे के प्रस्तावक महोदय द्वारा उसकी स्वीकृति हो जानी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अपने देश के लिये विधान-निर्माण करने के विषय को विचार में रखते हुये यह अनुच्छेद बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें कम से कम हमारे विचारगत उद्देश्यों का चतुर्थांश हैं क्योंकि प्रस्तावना में हमने यह कहा है कि न्याय, समानता और बन्धुत्व प्राप्त कराने के उद्देश्य से हम यह

[श्री महावीर त्यागी]

विधान बना रहे हैं। श्रीमान्, यही केवल एक खंड है जो सीधे न्याय से सम्बन्ध रखता है और न्याय की व्याख्या यहां सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय के रूप में की गई है। श्रीमान, वास्तव में इसके अन्तर्गत जो कुछ हम चाहते हैं, वह सब कुछ आ जाता है। इसके अन्तर्गत समस्त नारे एक विशेष रूप में आ जाते हैं। यह सामाजिक और आर्थिक न्याय ही है, जिसकी मांग संसार के उग्र से उग्र समाजवादियों द्वारा पेश की जाती है। वास्तव में यह खंड विधान की धुरी है, परन्तु फिर भी इसकी भाषा की आलोचना करने की मेरी इच्छा है। भाषा के विचार से खंड शक्तिशाली नहीं है, वह कुछ अटकता-सा है। इस विधान के निर्माण करने में हमारा यह उद्देश्य है कि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय प्राप्त करायें, परन्तु खंड में जिस प्रकार का शब्दविन्यास है, उसमें दुर्भाग्यवश अनेकों अटकने वाले उपवाक्य खंड हैं। उस में दिया हुआ है कि ''राज्य का प्रयास होगा... वृद्धि करे''। मेरे विचार से मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन द्वारा पेश किये संशोधन से खंड का उत्तम रूप हो जाता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, एक बात के बारे में मैं कुछ सूचना चाहता हूं। चूंकि माननीय सदस्य इस खंड का समर्थन कर रहे हैं, क्या मैं उनसे पूछ सकता हूं कि वे कृपाकर इस खंड में प्रयुक्त 'inform' शब्द की व्याख्या करें।

***श्री महावीर त्यागी:** 'inform' शब्द का अर्थ है कि संस्थाओं को राष्ट्रीय जीवन से अनुप्राणित करना। 'inform' एक बड़े मुहावरे का शब्द है, जिसका इस वाक्य खंड में प्रयोग किया गया है। यह वाक्य खंड को सुन्दरता प्रदान करता है। 'inform' शब्द का अर्थ है कि संस्था के निर्माण का आधार न्याय होना चाहिये। 'inform' शब्द को आप सूचना विभाग के साधारण अर्थ में न समझें।

श्रीमान्, यह खंड बड़ा अटकता-सा है। मैं डा. अम्बेडकर तथा उनके अन्य साथियों से यह निवेदन करूंगा कि वे सभा की सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करें। जब हम किसी यथार्थ वस्तु को विधान में रखना चाहते हैं तो इन स्मृतियों को हमारी इच्छाओं तथा विधान के मध्य क्यों कर हस्तक्षेप करना चाहिये? उनको इसे निरपेक्ष रूप से स्पष्ट कर देना चाहिये कि विधान का प्रयोजन सामाजिक,

राजनैतिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्त कराने से है। अत: श्रीमान, उनको 'प्रयास (strive to)' शब्द का प्रयाोग क्यों कर करना चाहिये? मान लीजिये कोई व्यक्ति मुझसे कुछ सिफारिश चाहता है और मैं कहता हूं कि "मैं प्रयास करूंगा" तो इसका अर्थ यह है कि मैंने वचन नहीं दिया। यह क्यों नहीं कहा जाता है कि "राज्य वृद्धि करेगा?"

और फिर उस में यह कहा गया है कि "राज्य का प्रयास होगा कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जितना हो सके, परिणामकारी रूप में, स्थापना तथा रक्षा करके जिसमें... वृद्धि करें"। इस खंड में इतने अटकने वाले खंड क्यों रखे जायें? यह क्यों कहा जाये कि "जितना हो सके"? यदि कोई सरकार ऐसा नहीं कर सकती है, तो हम उस सरकार को नहीं चाहते हैं। यदि कोई राज्य ऐसा नहीं कर सकता, तो उस राज्य से हमें क्या लाभ? राज्य का यही कार्य समझा जाता है कि कानून और व्यवस्था का पुलिस और फौज द्वारा केवल संधारण करना। हम पुलिस-राज्य नहीं चाहते हैं। सच पूछा जाये तो समस्त सुव्यवस्था तथा शान्ति जो मनुष्य समाज में पाई जाती है, वह इसलिये नहीं है कि किसी सरकार ने उसे स्थापित किया है। वे तो समाज के मूल में कार्य करने वाली प्रवृत्तियों से पैदा हुये हैं। यदि सरकार रखने की प्रथा का अन्त भी कर दिया जाये, तो भी सुव्यवस्था भली भांति कायम रही आयेगी। यह मानव का सहज गुण है कि वह दूसरों से मिलकर रहना चाहता है, अत: संसार में शान्ति तथा अक्षोभ होने का श्रेय उन लोगों का होता है, जिनसे मिलकर कोई समाज बनता है। सरकार का सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह लोक-कल्याण की वृद्धि करे। इसीलिये सरकारें होती हैं। यदि सरकार ऐसा नहीं कर सकती है, तो उस में इतनी ईमानदारी होनी चाहिये कि वह हट जाये और दूसरों को अवसर दे। श्रीमान्, राज्य के लिये यह अनिवार्य कर देना चाहिये कि 'जितना हो सकें' इन शब्दों के बगैर लाये हुये वह सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय प्राप्त कराकर लोक-कल्याण की वृद्धि करे। मेरी डा. अम्बेडकर से प्रार्थना है कि वे उन लोगों की सम्मति पर ध्यान दें, जो लोग कि जनसाधारण श्रेणी के हैं, अथवा जिन्होंने मेरे समान इंग्लैंड में या अन्यत्र किसी विधि-विद्यालय में विधि की शिक्षा नहीं पाई है।

दुर्भाग्यवश मेरी शिक्षा तो जनता की सेवा में रत रहने से ही हुई है, अत: मेरी सभा से प्रार्थना है तथा निवेदन है कि वह जनता की इच्छाओं को पूरा करे।

[श्री महावीर त्यागी]

मुझे आशा है कि इस खंड के शब्द विन्यास में इस प्रकार का परिवर्तन मेरे वकील मित्रों द्वारा कर दिया जायेगा कि राज्य के लिये यह अनिवार्य हो जाये कि वह लोक-कल्याण की वृद्धि करे। मैं शब्दों में विश्वास करने वाला व्यक्ति नहीं हूं, वरन् विचार तथा कर्मों में विश्वास करने वाला हूं। मैं केवल विचार प्रस्तुत कर सकता हूं। डा. अम्बेडकर शब्दों में विश्वास करने वाले हैं, अतः वे इस विचार की अभिव्यंजना के लिये उपयुक्त शब्द सोच सकते हैं। इस खंड को बहुत शक्तिशाली तथा असन्दिग्ध बना देना चाहिये। सरकार के लिये यह प्रमुख तथा आवश्यक कर्त्तव्य बना दिया जाना चाहिये कि वह लोक-हित-वृद्धि हेतु ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा रक्षा करे, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय द्वारा राष्ट्रीय जीवन की सब संस्थाएं अनुप्राणित हों। यदि मेरे इस विचार को मान लिया जाता है, तो उग्र से उग्र सुधारवादी भी संतुष्ट हो जायेगा।

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या यह वाद-विवाद अब समाप्त किया जा रहा है?

***उपाध्यक्ष:** मैं दोनों संशोधन के पक्ष तथा विपक्ष वालों को वाद-विवाद के लिये यथेष्ट समय दे चुका हूं।

***श्री मोहनलाल गौतम:** क्या आप कृपाकर मुझे बोलने की आज्ञा देंगे?

***उपाध्यक्ष:** मेरा यह विचार है कि वाद-विवाद में हमने यथेष्ट समय—लगभग एक घंटा—ले लिया है और अब उचित है कि डा. अम्बेडकर सभा को सम्बोधन करे।

***श्री मोहनलाल गौतम:** मेरा आग्रह यह है कि मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी। दैवयोग से सेठ दामोदरस्वरूप का संशोधन ऊपर रखा गया और मेरा संशोधन उसके नीचे। अतः आपने यह वांछनीय अथवा आवश्यक नहीं समझा कि मैं उसे पेश करूं। मैं दो या तीन बार खड़ा हुआ और यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे अपने संशोधन पर बोलने का अवसर नहीं मिला।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से संशोधन पर पूर्ण रूप से वाद-विवाद हो चुका है और मैं समझता हूं कि अब उसके पेश करने से कोई लाभ नहीं होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इस सभा में कांग्रेसियों की गतिविधि के सम्बन्ध में एक सदस्य ने कुछ बातें कहीं हैं। मैं समझता हूं कि उस कथन का प्रतिवाद करना कांग्रेसियों का कर्त्तव्य है। श्रीमान्, क्या मैं आपसे यह निवेदन कर सकता हूं कि उन दोषों का, जो हम पर लगाये गये हैं, खंडन करने का हमें आप एक अवसर दें?

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से यह अच्छा होगा कि वाद-विवाद को यहीं समाप्त कर दिया जाये।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मेरे विचार से यह बहुत ही अनुचित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं देखता हूं कि विधान में दिये हुये इन प्रावधानों के प्रयोजन के सम्बन्ध में इस सभा के उन अनेकों सदस्यों में पर्याप्त भ्रम है, जो इस प्रकार के निदेशक सिद्धान्तों में रुचि रखते हैं। यह बात हो सकती है कि इनके बारे में भ्रम अथवा इनको ठीक-ठीक समझने में कठिनाई इस कारण से हुई है कि प्रश्न के इस स्वरूप के सम्बन्ध में मैंने अपने उस वक्तव्य में कुछ न कहा था, जो कि मैंने इस प्रस्ताव के रखते समय सभा के सामने दिया था। यह बात न थी कि मैं इस प्रश्न को सभा के सामने पूरी स्पष्टता से रखना न चाहता था और इसलिये मैंने इस बारे में मौन साधा। इसके विपरीत मैं तो सभा के सामने पूरी तरह रखना चाहता था, पर मैंने समझा कि मेरा व्याख्यान अत्यन्त लम्बा होने के कारण पहले ही पर्याप्त अरुचिकर हो गया होगा और यह उचित न होगा कि उसे और लम्बा करके और अधिक अरुचिकर बनाया जाये। किन्तु मैं समझता हूं कि यह उचित है कि मैं सभा के कुछ क्षण इस बात को साफ करने के लिये लूं कि इस बारे में संविधान की क्या आधारभूत मान्यता है। मैं पहले कह चुका हूं कि शासन-प्रणाली की दृष्टि से यह संविधान संसदात्मक प्रजातंत्र की स्थापना करता है। संसदात्मक प्रजातंत्र का

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

अर्थ है 'एक मानव, एक मत' हमारा यह भी आशय है कि प्रत्येक शासन अपने प्रत्येक दिन के कारोबार में तथा विनिहित अवधि के उपरान्त, जब कि मतदाताओं को वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से शासन के काम को आंकने का अवसर दिया गया होगा, आलोचना के शिकंजे में रहेगा। इस विधान द्वारा हमने राजनैतिक प्रजातंत्र की स्थापना इसी कारण से की है कि हम किसी प्रकार से भी किसी विशेष जनसमाज का स्थायी एकाधिपत्य स्थापित करना नहीं चाहते हैं। यद्यपि हमने राजनैतिक प्रजातंत्र की स्थापना कर दी है, फिर भी हमारी यह इच्छा है कि अपने आर्थिक प्रजातंत्र के आदर्श की भी रूपरेखा हम इसमें दे दें। हम केवल इसी शासन-प्रणाली का निर्माण नहीं करना चाहते, जिसके द्वारा जनता आये और अधिकार ग्रहण कर ले। इस संविधान का यह भी अभिप्राय है कि उन लोगों के सामने एक आदर्श रख दिया जाये, तो लोग कि भविष्य में मंत्रिमंडल में होंगे। यह है 'आर्थिक प्रजातंत्र' का आदर्श। और जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इसका यही अर्थ समझता हूं कि 'एक मानव, एक मत'। प्रश्न यह उठता है कि क्या इस सम्बन्ध में हमारा कोई निश्चित विचार है कि हम किस प्रकार से आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना करेंगे? ऐसी अनेकों विधियां हैं, जिनके द्वारा लोग विश्वास करते हैं कि आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना की जा सकती है। ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो यह विश्वास करते हैं कि व्यक्तिवाद ही आर्थिक प्रजातंत्र का उत्तम रूप है; ऐसे भी हैं जो समाजवादी राज्य को आर्थिक प्रजातंत्र का सर्वोत्तम रूप समझते हैं; ऐसे भी हैं जो साम्यवादी विचारों को आर्थिक प्रजातंत्र का बिल्कुल ठीक रूप समझते हैं।

यह सोचते हुये कि ऐसी अनेकों विधियां हैं, जिनके द्वारा आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना की जा सकती है, हमने जानूबूझ कर निदेशक सिद्धान्तों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जो निश्चित अथवा असंदिग्ध नहीं है। भिन्न-भिन्न विचारधारा के लोगों के लिये आर्थिक प्रजातंत्र के आदर्श को प्राप्त करने, अपनी विधि के अनुसार प्रयास करने, निर्वाचकगणों से यह आग्रह करने, कि आर्थिक प्रजातंत्र को प्राप्त करने का यही सर्वोत्तम मार्ग है, अर्थात् जिस प्रकार से वे काम करना चाहें उसी प्रकार से कार्य करने का पूरा-पूरा अवसर प्रदान करने के सम्बन्ध में हमने काफी गुंजाइश रखी है।

श्रीमान्, यही कारण है कि भाग 4 के अनुच्छेदों की भाषा इस रूप में रखी गई है और इसी रूप में प्रारूप-समिति ने उसको उत्तम समझा है। किसी ऐसी वस्तु को, 'जो असंदिग्ध नहीं हैं, परिवर्तन जिसका मौलिक गुण हैं' और जिसे परिस्थिति तथा समय के अनुरूप परिवर्तनशील होना चाहिये, उसे निश्चित तथा असंदिग्ध रूप देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। अत: यह कहने से कोई लाभ नहीं कि निदेशक सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं है। मेरे विचार से निदेशक सिद्धान्तों का बड़ा मूल्य है, क्योंकि वे हमारे आदर्श, आर्थिक प्रजातंत्र की रूपरेखा, चित्रित करते हैं। संविधान में हमने जानूबूझकर निदेशक सिद्धान्तों का समावेश किया है और हमने ऐसा इसलिये किया है, क्योंकि हम यह नहीं चाहते थे कि इस संविधान में प्रावहित विविध शासन अभियंत्रों द्वारा हम एक कोरे तथा ऐसे संसदात्मक प्रजातंत्र की स्थापना करें, जिसे हमने यह निदेश न दिया हो कि हमारा आर्थिक आदर्श क्या है और हम कैसी सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं। मेरे विचार से यदि वे मित्र, जो इस प्रश्न पर उत्तेजित हो गये हैं, उस बात को ध्यान में रखें, जो मैंने अभी उनके सामने रखी है, अर्थात् इस विधान के निर्माण में हमारे उद्देश्य दो हैं— (1) राजनैतिक प्रजातंत्र का स्वरूप निर्धारण करना; (2) यह निर्धारण करना कि हमारा आदर्श आर्थिक प्रजातंत्र क्या है तथा यह भी निर्धारण करना कि प्रत्येक सरकार का, चाहे वह कहीं भी पदारूढ़ हो, यह प्रयास होगा कि वह आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना करे तो बहत से मिथ्याभ्रम, जिससे अनेकों सदस्य विमुह्य हैं, दूर हो जायेंगे।

मेरे मित्र श्री त्यागी ने मुझ से अनुरोध किया है कि 'प्रयास (strive)' शब्द तथा अन्य ऐसे पदों को निकाल दिया जाये। मेरे विचार से हमने 'प्रयास' शब्द का जिस कारण से उपयोग किया है, उसको उन्होंने समझा है। मेरी समझ में 'प्रयास' शब्द, जो कि विधान में वर्तमान है, बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। हमने इसका इसलिए प्रयोग किया है कि हमारा यह अभिप्राय व्यक्त हो जाये कि यदि ऐसी परिस्थितियां भी आ जायें, जब कि इन निदेशक सिद्धान्तों को ललित करने के लिये सरकार के मार्ग में रुकावटें अथवा बाधायें हों, तो भी उन कठिन तथा बुरी परिस्थितियों में इन आदेशों को पूर्ण करने का वह प्रयास करे। इसलिये ही हमने प्रयास शब्द का उपयोग किया है। यदि ऐसा न हो तो सरकार यह कह सकती है कि परिस्थितियां

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इतनी बुरी थी, अर्थ प्रबन्धन इतना अपर्याप्त था कि हम विधान के अनुसरण करने का प्रयत्न तक नहीं कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि मेरे मित्र त्यागी यह विचार करेंगे कि इस प्रसंग में 'प्रयास' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसको निकालना बहुत बड़ी त्रृटि होगी।

शेष संशोधनों का मुझे विरोध करना है।

*__उपाध्यक्ष:__ केवल दो संशोधन पेश किये गये हैं। मैं उस पर मत लूंगा। पहला संशोधन श्री दामोदर स्वरूप सेठ का है।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__श्री एच.वी. कामत:__ श्रीमान्, मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ इसके पश्चात् संशोधन सं. 867, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का है।

*__श्री एल. कृष्णास्वामी भारती__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, श्री कामत को अपना संशोधन वापस करने के लिये सभा की अनुमति प्राप्त करनी चाहिये।

*__श्री हुसैन इमाम:__ प्रस्तावक महोदय ने संशोधन स्वीकार कर लिया है।

*__उपाध्यक्ष:__ क्या सभा वापस करने की उन्हें अनुमति देती है।

*__अनेक माननीय सदस्य:__ जी हां।

*__श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:__ मैं अनुमति देने के विरोध में हूं।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ यदि वे वापस करना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, उन्हें वापस कर लेने दीजिये।

*__श्री एच.वी. कामत:__ इस बात पर सभा में कुछ मतभेद है। एक माननीय सदस्य का यह विचार है कि डा. अम्बेडकर ने इसे स्वीकार कर लिया है। मुझे

नहीं मालूम था कि डा. अम्बेडकर ने उसे स्वीकार कर लिया है। यदि उन्होंने स्वीकार कर लिया है, तो वापस लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

***उपाध्यक्षः** क्या आप वापस लेना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** जी हां।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***उपाध्यक्षः** सभा के समक्ष प्रस्ताव है किः

''अनुच्छेद 30 विधान का भाग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 30 विधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 30-क

***श्री महावीर त्यागीः** क्या यह खंड ''the'' शब्द सहित स्वीकार किया जाता है?

***उपाध्यक्षः** जिस रूप से यह इस समय वर्तमान है, उसी रूप में स्वीकार किया गया है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं किः

''अनुच्छेद 30 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जायेः

'30-क—राज्य नशे के प्रयोजनार्थ नशीले पदार्थों के सेवन, परिवहण, विक्रय अथवा निर्माण के निषेध का प्रयास करेगा।''

इस विषय पर मैं एक लम्बा व्याख्यान नहीं देना चाहता हूं। अमरीका के विधान में इसको मौलिक अधिकार के रूप में रखा गया है। अमरीका के विधान के संशोधन 21 को मैं पढ़कर सुनाता हूंः

''संयुक्त राज्य के किसी राज्य अथवा प्रदेश अथवा अधीनस्थ प्रदेश में मादक द्रव्यों का इस हेतु से परिवहण अथवा आयात कि उनके कानूनों के विरुद्ध उनको वहां दिया जाये अथवा प्रयोग किया जाये, एतद्द्वारा वर्जित किया जाता है।''

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

श्रीमान्, इस सत्य से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है कि महात्मा गांधी जीवन पर्यन्त यह प्रचार करते रहे कि नशीले पदार्थों के प्रयोग और निर्माण का भारत में निषेध किया जाये; और वास्तव में उस नीति के पालन करने के हेतु भारत में प्रान्तीय सरकारें मद्य-निषेध के सम्बन्ध में कानून बना रही है और उन कानूनों का प्रयोग कर रही है। मुझे सचमुच इस बात का आश्चर्य है कि इस विधान में, जिसको बनाया जा रहा है, भारत में नशीले पदार्थों के विक्रय अथवा निर्माण की मनाई करने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। हम जानते हैं कि इस व्यसन के कारण अनेकों कुटुम्बों का नाश हो गया है और अनेकों कुटुम्ब दुखी हैं। मेरे विचार से कम से कम इनको निदेशक सिद्धान्तों में, जिनको यद्यपि डा. अम्बेडकर के अनुसार कोई संमोदन प्राप्त नहीं है, रखना ही चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से राज्य मद्य-निषेध के लिये भरसक प्रयत्न कर सकेगा। इस कारण इस खंड का टाल देना महात्मा गांधी की कामनाओं को टाल देना होगा।

***उपाध्यक्षः** संशोधन सं. 873 पेश नहीं किया गया। जो कोई व्यक्ति संशोधन 872 पर बोलना चाहता है, वह बोल सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मेरे मित्र काज़ी करीमुद्दीन साहब ने बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। यद्यपि मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि इसके लिये यहां पृथक खंड की आवश्यकता है; परन्तु मैं यह जरूर चाहता हूं कि खंड 31 में एक ऐसा उपखंड रखा जाये, जिसमें यह समामेलन किया जाये कि मद्य-निषेध राज्य की नीति है। यह सच है कि कांग्रेस ने प्रारम्भ में ही, अर्थात् सन् 1920 ई. में ही मद्य-निषेध को अपने आन्दोलन का एक मुख्य उद्देश्य रखा था। हम में से अनेकों शराब तथा ताड़ी की दुकानों पर धरना देने के कारण जेल गये थे। और मेरी समझ से यह उचित नहीं है कि इस विधान में इस समय जब कि हम राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त रख रहे हैं, तो हम उस में मद्य-निषेध का जिक्र तक न करें। यद्यपि अनुच्छेद 31 के भाग (6) में एक सामान्य खंड है, जिसमें यह दिया हुआ है किः

''बाल्यकाल और युवावस्था का विदोहन तथा आचारिक और आर्थिक परित्यजन से रक्षण हो।''

यह सच है कि इसका भी वही अर्थ है, पर यह बहुत ही सामान्य है और मैं समझता हूं कि मद्य-निषेध इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसको खंड 31 के एक उपखंड के रूप में रखना चाहिये। इस विषय पर लम्बे वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह विदित ही है कि हमारी अनेकों सरकारों ने अनेकों जिलों में मद्य-निषेध की घोषणा कर ही दी है। हम आबकारी-आगम पर जीवित नहीं रहना चाहते हैं जो कि वास्तव में वह आगम है जिसकी प्राप्ति अनेकों मजदूर खानदानों की बर्बादी के कारण होती है। हमारे देश में सब धर्म मद्य-निषेध के सम्बन्ध में एकमत है, अतः मैं समझता हूं कि अपने देश के इस संविधान में हम अनुच्छेद 31 में काज़ी करीमुद्दीन के इस संशोधन को कोई स्थान दे दें। चूंकि यह एक ऐसी बात है, जिस पर समस्त सभा का मतैक्य है, अतः मैं आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर इसका समावेश करना स्वीकार कर लेंगे।

***सेठ गोविन्द दासः** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं, डा. अम्बेडकर पर इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये जोर डालना नहीं चाहता हूं, परन्तु साथ ही साथ मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर सक्सेना से पूर्णतया सहमत हूं कि मद्यनिषेध की नीति का पालन करने के लिये हम वचनबद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति इस बात से परिचित है कि अनेकों प्रान्तों के आगमों में कमी होने पर भी हम इस नीति का अनुसरण कर रहे हैं। यह सत्य है कि अब तक किसी प्रान्त में मद्यनिषेध पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। परन्तु फिर भी केवल प्रान्तों में ही नहीं, वरन्, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों में भी पूर्ण रूप से मद्यनिषेध का प्रयत्न किया जा रहा है। श्रीमान्, यह वास्तव में हमारी परम्परा के अनुरूप नहीं है कि जब कि हम अपने देश के लिये नया विधान रच रहे हैं, तो उसमें हम मद्यनिषेध का उल्लेख न करें। मैं आशा करता हूं कि यदि यह संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है, तो माननीय डा. अम्बेडकर तथा प्रारूप-समिति विधान में कोई ऐसा उपयुक्त स्थल खोज निकालेगी, जहां मद्यनिषेध का उल्लेख किया जा सके और मेरे विचार से इस देश का प्रत्येक सम्प्रदाय हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी तथा अन्य लोग इस बात से सहमत होंगे कि मद्यनिषेध के सिद्धान्त को इस देश में स्वीकार किया जाये और हमारे विधान में मद्यनिषेध के सम्बन्ध में कुछ हो। यद्यपि मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करने के बारे में अपनी सहमति

[सेठ गोविन्द दास]

प्रगट करूं, फिर भी मैं डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि वे इस विषय पर अपनाई जाने वाली नीति को स्पष्ट कर दें।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, सभा के समक्ष उपस्थित संशोधन के समर्थन करने का मुझे गौरव प्राप्त हुआ है। श्रीमान्, आप जानते हैं कि इस संशोधन में निहित सिद्धान्त पर जनता के किसी वर्ग का न तो कोई मतभेद था और न है। लगभग सभी राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के वर्ग इस सिद्धान्त से सहमत है। इस कारण कोई भी व्यक्ति सरकार से यह आशा कर सकता था कि वह इस सिद्धान्त को आज्ञात्मक अथवा स्थायी विधानाश्रित अनुच्छेद का मूल विषय बनायेगी। यह तो वास्तव में एक बहुत ही मामूली संशोधन है। इस सिद्धान्त को; जिस पर देश में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है, कम से कम इस भाग अर्थात् निदेशक सिद्धान्तों का भाग बना दिया जाना चाहिये। अत: श्रीमान्, मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से आग्रहपूर्वक निवेदन करता हूं कि वे इस संशोधन को स्वीकार करें। यदि वे इसे अनुच्छेद 30 के भाग के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं, तो जैसा कि मेरे एक-दो मित्रों ने सुझाया है, वे इसे अनुच्छेद 31 का भाग बना लें। मैं उनसे एक बार फिर निवेदन करूंगा कि वे मद्यनिषेध को विधान में स्थान दे; क्योंकि इस विषय में किसी प्रकार का भी मतभेद नहीं है। आगम में चाहे जितनी भी कमी हो जाये, लोग इस बात से सहमत हैं कि सरकार आगम के अन्य मार्ग तथा साधन निकाले और इस सिद्धान्त का प्रवर्त्तन करे, जिसका वर्षों से कांग्रेस तथा अन्य दल प्रचार करते रहे हैं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मुझे खेद है कि मुझे अपने माननीय मित्र अर्थात् इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय का विरोध करना पड़ रहा है। मेरे विरोध के ये कारण हैं। हम—मेरा आशय देश के राष्ट्रवादियों से हैं—पूर्ण मद्यनिषेध के सिद्धान्त के समर्थक हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश मेरे मित्र केवल यही बात चाहते हैं और उसके लिये प्रस्ताव करते हैं कि मादक द्रव्यों के बनाने तथा प्रयोग के निषेध को हम इस संविधान में एक निदेशक सिद्धान्त के रूप में रख दें, पर अफीम के बारे में क्या किया जायेगा? अफीम बहुत बुरी वस्तु है, पर इसका देश में पर्याप्त प्रचार है। श्रीमान्, चीन तथा पूर्वीय देश अफीम-सेवन के कारण

ही अपनी वर्तमान स्थिति को पहुंच गये हैं इसलिये मैं तो किसी ऐसे मद्य-निषेध के पक्ष में नहीं हूं, जिसमें सेवन के प्रयोजन के लिये अफीम का निर्माण तथा प्रयोग का निषेध न हो।

श्रीमान्, मैं इस प्रकार के सुधार को विधान के निदेशक सिद्धान्तों में रखने के पक्ष में नहीं हूं। विधान में दिये हुये मौलिक अधिकारों को अथवा निदेशक सिद्धान्तों को मैं ईसा के पहाड़ी पर दिये हुये धर्मोपदेश के समान समझता हूं। श्री भागवत में दिया हुआ है कि छोटा और बड़ा कोई नहीं है, पर यह सत्य है कि छोटे और बड़े हैं। अत: इन सामान्य बातों को मौलिक अधिकारों में रखने से कुछ लाभ नहीं होगा। इन परिस्थितियों में मैं समझता हूं कि जो कुछ हमने (मौलिक अधिकारों में) रखा है, उसमें कुछ और अधिक बढ़ाने से कोई लाभ न होगा। हम प्रजातंत्र के पक्ष में है। हमारी राष्ट्रीय सरकार बनने वाली है। राष्ट्रीय सरकार पंडित जवाहरलाल नेहरू अथवा सरदार पटेल जैसे व्यक्तियों द्वारा संचालित है। जनता के सहयोग के अभाव में वे भी अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकते। जब ऐसी स्थिति है, तो मैं नहीं समझ पाता कि ईसा के पहाड़ी पर दिये हुये धर्मोपदेश के समान मद्यनिषेध के प्रश्न को यहां रखा ही क्यों जाये? श्रीमान, कठिनाइयों के होते हुये भी, आर्थिक अभाव के होते हुये भी, अनेकों प्रतिबंधों के होते हुये भी मद्रास तथा अन्य प्रान्तों की सरकारों ने अपूर्ण रूप से इस सुधार को अपनाया है। मैं अपने मित्रों से धैर्य रखने की प्रार्थना करता हूं। मैं यह चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय नीति हो, जिसमें मद्य तथा अफीम सेवन रूपी बलवान दैत्य से युद्ध करने में प्रान्त और राज्य दोनों मिलकर योग दें।

इन परिस्थितियों में, मैं नहीं समझता कि विधान में इसको निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखकर किसी प्रकार का लाभ उठाया जा सकता है। निदेशक सिद्धान्त वास्तव में लाभप्रद है और आने वाले मंत्रिमंडल के लिये ये मार्ग प्रदर्शक का कार्य करेंगे। तीन या पांच वर्ष की पद-अवधि के पश्चात् मंत्रिमंडल के कार्य को जांचने के लिये वे एक प्रकार की कसौटी होंगे। कसौटी के रूप में वे सदैव रहेंगे, परन्तु यदि हम इसे (मद्यनिषेध) विधान में रखें और उसे निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखे, तो इससे हम किसी प्रकार अपने लक्ष्य के निकट न पहुंच जायेंगे। इन परिस्थितियों में, मैं इस अनुच्छेद के बढ़ाने का घोर विरोध करता हूं, क्योंकि

[श्री विश्वनाथ दास]

इसके बढ़ाने से इससे अधिक कुछ और न हो सकेगा कि यह एक अतिरिक्त प्रावधान हो जायेगा, जो ईसा के पहाड़ी पर धर्मोपदेश के समान है। मैं चाहता हूं कि इसे क्रियात्मक स्वरूप दिया जाये, तथा कठिनाइयों के होते हुये भी इसे क्रियात्मक स्वरूप दिया जा रहा है। मुझे इस बात में लेशमात्र भी शंका नहीं है कि जब भारत में राष्ट्रीय सरकार पदारूढ़ हो जायेगी और संविधान-परिषद् अथवा राष्ट्रीय संसद् के सदस्यों के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल के मतानुसार वह संचालित होगी, तो उसके लिए इस महान सुधार को अविलम्ब हाथ में लेने के अतिरिक्त और कोई पथ न रहेगा।

यद्यपि यह बात हास्यास्पद लगती है, तो भी कठिनाइयों के होते हुये भी केन्द्रीय सरकार दिल्ली प्रान्त में मद्य-निषेध करने की बात सोच रही है। मैं यह सब इस हेतु कह रहा हूं कि यह व्यक्त हो जाये कि सरकार इस ओर बढ़ने के लिये कितनी व्यग्र है। मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से पुन: निवेदन करता हूं कि महात्मा गांधी के नाम पर भावनाओं को उत्तेजित करने से कोई लाभ नहीं है। हमें यह देखना चाहिये कि यह बात कहां तक व्यवहार्य है। इसे निदेशक सिद्धान्तों में रखने से कोई लाभ न होगा। इन परिस्थितियों में मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मेरा संशोधन भी इसी प्रकार का है और वह सं. 999 है। परन्तु उसके साथ वास्तविक विनोद किया गया है और दो शब्दों के छोड़ देने से मेरा संशोधन बिल्कुल ही बदल गया है। मुझे नहीं मालूम कि कहां, किस समय अथवा कब लिखाई की यह त्रुटि हुई। मेरा संशोधन इस प्रकार पढ़ा जाता है।

***उपाध्यक्ष:** परन्तु मैं आपको अब संशोधन पेश करने की आज्ञा नहीं दे सकता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** जी नहीं, मैं तो केवल उसे पढ़कर सुना रहा हूं। वह इस प्रकार है कि:

''अनुच्छेद 30 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'और मद्य के प्रयोग में कमी अथवा मद्य-निषेध इन दोनों रीतियों द्वारा भैषजिक आधार के अतिरिक्त मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के मुंह द्वारा सेवन का प्रयास करेगा।' ''

"सेवन करने को रोकने के लिये प्रयत्न करेगा" शब्द होने चाहिये। मुझे एक उर्दू का छन्द याद आता है, जिसे मैं आपकी अनुमति से यहां दुहरा देता हूं:

इलाही हम से मयख्वारों को वो दुनिया: अता होती;
जहां हुक्मन पिया करते, न पीते तो सजा होती।

श्रीमान्, इस अवसर पर मैं इस संशोधन का विरोध करने आया हूं, इसलिए नहीं कि मैं इसके उद्देश्य से असहमत हूं, बल्कि इसलिए कि इसको प्रस्तावक महोदय ने समय से थोड़ा पहले रख दिया है। मेरा विचार है कि काज़ी सैयद करीमुद्दीन का संशोधन ऐसा है, जिसका अनुमोदन हम बड़े बहुमत से कर सकते हैं, परन्तु कठिनाई यह है कि यह उपयुक्त स्थल नहीं है, जहां इस संशोधन को रखना चाहिए। मेरे मित्र चाहते हैं कि यह 30 (क) के रूप में रखा जाये। मेरा निवेदन है कि इसे अनुच्छेद 31 के नीचे रखा जाये, जहां कि समस्त निदेशकों को रखा गया है। उनके संशोधन के लिए वही उपयुक्त स्थान है।

मद्य-निषेध होना चाहिए, यह तो सर्वमान्य बात है ही। मद्य-निषेध गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग था (*करतल ध्वनि*) और हम सब उस कार्यक्रम का पालन करने के लिए वचनबद्ध है। गांधी जी के समक्ष हमने प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। हमने उस प्रतिज्ञा को स्वतंत्रता के दिवसों पर बीसों वार दुहराया है और अब राष्ट्र के सम्मुख हम उस प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हट सकते। उसको हमें विधान में स्थान देना चाहिए। मैं संशोधन में निहित आदर्श से पूर्णतया सहमत हूं, पर उसको रखने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। जैसा कि मैंने अनेकों बार कहा है और आज फिर कहता हूं कि यह विधान अपने मूल रूप में गांधी जी के विचारों से शून्य है, इस रूप में यह बहुत ही निर्बल है। हमने उनके विचारों को जरा सा भी स्थान नहीं दिया है। मुझे आशा थी कि उनके स्वर्गवास के पश्चात् भी हम उनकी आत्मा को जीवित रखेंगे, परन्तु इस विधान के द्वारा तो उसका भी स्वर्गवास हो गया। उनकी आत्मा के अभाव में मैं समझता हूं कि यह विधान भी मृतकवत् है। उनके कार्यक्रम के पालन करने की हमने प्रतिज्ञा की थी और अति निश्चित तथा शुद्ध रूप से हमने ऐसा किया था। श्रीमान्, ऐसे प्रश्नों पर हम कांग्रेसी समझौता नहीं कर सकते, परिणाम चाहे कुछ भी हो। यह मद्य-निषेध उनके कार्यक्रम में था। यह हमारे निर्वाचन-घोषणा-पत्र में भी था, जिसके आधार पर प्रान्तीय परिषदों के समस्त प्रतिनिधियों का निर्वाचन हुआ, अतः यह कहा जा सकता है

[श्री महावीर त्यागी]

कि हमारे आधाररूप समस्त निर्वाचक गणों ने मद्यनिषेध के कार्यक्रम के पक्ष में अपना मत दिया है और प्रांत की इन निर्वाचित संस्थाओं ने हमें यहां चुनकर भेजा है और इस प्रकार हम यहां जनता के व्यवहृत रीति से निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। और यदि उस आदर्श को इस संविधान में हमने प्रावहित न किया, तो हम सारे निर्वाचक मंडल के प्रति तथा उस जनता के प्रति, विश्वासघाती सिद्ध होंगे, जिसके बारे में हमारा यह सही या गलत दावा है कि हमें उसी की ओर से यह संविधान बना रहे हैं। हमें नहीं भूलना चाहिये कि हम जनता के नाम का उपयोग करते हैं। यदि हम उसकी भावनाओं की सराहना नहीं करते हैं और उन भावनाओं को इस विधान में स्थान नहीं देते हैं, तो हमें जनता के नाम का उपयोग करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं रहता। यदि हम अपने विधान में मद्य-निषेध के विचार को नहीं रख सकते, तो फिर हमें यहां किसलिए भेजा गया है? हम क्रान्ति तथा अनेकों अन्य प्रकार की प्रगतियों के सम्बन्ध में बातें करते चले आ रहे हैं। यदि हम अपने विधान में मद्य-निषेध के छोटे से सुधार को न रख सके, तो यह पुस्तक चिमटे से छूने योग्य भी न होगी। अत: मैं आग्रह करता हूं कि यदि हम अपने विधान के मसौदे में मद्य-निषेध को नहीं रखेंगे, तो वह गांधीजी के विचारों से शून्य विधान होगा, क्योंकि जहां मद्य है, वहां गांधी जी नहीं है और जहां गांधी जी हैं, वहां मद्य नहीं है। सच्चाई यही है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि विधान में किसी उपयुक्त स्थल पर इस संशोधन को समाविष्ट कर देना चाहिए। मैं संशोधन की भावना का समर्थन करता हूं पर केवल इसलिए उसका विरोध करता हूं कि इसे ऐसे स्थान पर रखने के लिए पेश किया गया है, जो उसके लिए उपयुक्त नहीं है। इस संशोधन का आधारभूत भावना का विरोध न करके मैं इन थोड़े शब्दों से इस बात को कहता हूं कि मेरे मित्र ने इस संशोधन के लिए जिस स्थान पर रखने के लिए प्रस्ताव लिया है, वह स्थान इसके लिए उपयुक्त नहीं है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** यदि डा. अम्बेडकर मेरे संशोधन के भावों को स्वीकार करते हैं तथा अनुच्छेद 31 में उसे रखने के लिए उद्यत हैं, तो मुझे वैसा करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

***बी. पोकर साहब बहादुर:** श्रीमान्, मैं इस संशोधन का हृदय से समर्थन करता हूं और ऐसा करने के लिए मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता

हूं, बस एक बात ही ओर सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। एक पूर्व वक्ता ने आर्थिक कठिनाइयों का जिक्र किया है, जो मद्य-निषेध की नीति के प्रवर्त्तन से उपस्थित हो जायेंगी। मैं सभा का ध्यान केवल इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि मद्रास-सरकार तथा मद्रास विधान-मंडल ने मद्य-निषेध की नीति को स्वीकार कर लिया है और उन्होंने बड़े उत्तम प्रकार से इसकी व्यवस्था की है। आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी उस पर बहुत उत्तम प्रकार से कार्य हो रहा है और उन कठिनाइयों का निवारण किया जा रहा है। इसलिए मैं कहूंगा कि आर्थिक कठिनाइयां हमारे मार्ग में बाधक नहीं होनी चाहिए। जैसा कि पूर्व वक्ता ने कहा कि यदि हम गांधी जी के आदर्शों का लेश मात्र भी आदर करते हैं, तो हमारा धर्म है कि यदि हम आदेश-मूलक मूलाधिकारों के अध्याय में मद्य-निषेध का समावेश नहीं कर सकते, तो कम से कम उनका समावेश निदेशक सिद्धांतों के अध्याय में अवश्य कर दें। निदेशक सिद्धांतों सम्बन्धी अध्याय में इसका रखना कोई कठिन बात नहीं है। उस अध्याय में केवल यही तो दिया हुआ है कि जो कुछ यहां कहा गया है, उसे प्राप्त कराने का सरकार प्रयास करेगी। अत: मैं सभा से निवेदन करूंगा कि जो सदस्य यहां हैं, वे अपने सम्बन्ध में यह नहीं कहलाने देंगे कि गांधी जी के स्वर्गवास के सद्योपरान्त ही उनकी कामनाओं तथा विचारों को गहरा गाढ़ दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** सभा सोमवार, ता. 22 नवम्बर के प्रात: दस बजे तक के लिए स्थगित की जाती है।

तदुपरान्त परिषद् सोमवार, ता. 22 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।

Con. 3. VII.10.48
350

अंक 7
संख्या 10

सोमवार
22 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान का मसौदा–(*जारी*) 657
[अनुच्छेद 30-ए, 31 तथा 31-ए पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 22 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 10 बज कर 10 मिनट पर उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई।

अनुच्छेद 30-ए—(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** इससे पहले कि हम आज की कार्यवाही आरम्भ करें मैं परिषद् से क्षमा मांगता हूं कि मुझे विलम्ब हो गया। किन्तु मैं यह भी कह दूं कि यह मेरी किसी गलती के कारण नहीं हुआ।

अब हम नए अनुच्छेद 30-ए पर वाद-विवाद पुन: आरम्भ करेंगे क्या कोई सदस्य संशोधन संख्या 872 पर बोलना चाहते हैं?

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, उस दिन मैं इस संशोधन पर विस्तार से बोला था, और मैंने इस संशोधन के प्रस्तावक से निवेदन किया था कि वे कृपया इस बात को मान लें कि उस समय इस प्रश्न पर वाद-विवाद स्थगित हो जाये और जब संशोधन संख्या 999 पर विचार आरम्भ हो तब इस पर भी विचार कर लिया जायें। मुझे आशा है कि यदि माननीय प्रस्तावक सहमत हों, तो यह अच्छा रहेगा कि आप इस विषय पर अभी पर्यालोचन स्थगित करने की कृपा करें और उचित समय पर इसे लिया जाये।

***श्री अज़ीज अहमद खां** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, इस संशोधन का सुझाव मि. करीमुद्दीन ने रखा था, जो आज यहां उपस्थित नहीं हैं। पर इसके साथ ही इस संशोधन को उन्होंने और मैंने दोनों ने ही भेजा था और उन्होंने मुझे स्पष्टतया अधिकार दिया था कि मैं निवेदन करूं कि यदि इस विषय पर कोई समझौता

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अज़ीज अहमद खां]

हो जाये अथवा माननीय कानून-मंत्री द्वारा आश्वासन दे दिया जाये कि वे इस संशोधन के सिद्धान्त का विधान में कहीं समावेश करने के लिये तैयार हैं, तो यह संशोधन वापस लिया जा सकता है और मैं ऐसा करने के लिये तैयार हूं। अत: मैं इस प्रश्न को आपके निर्णय पर छोड़ने के लिये सर्वथा तैयार हूं कि जब तक हम धारा 38 पर विचार आरम्भ न करें तब तक इस संशोधन पर पर्यालोचन स्थगित कर दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं पूर्णत: नहीं समझा हूं कि इसका आशय क्या है, पर यदि इसका सम्बन्ध नशाबन्दी से है...

***उपाध्यक्ष:** हां।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** तो, मेरे और श्री त्यागी के बीच तय हो चुका है कि वे अनुच्छेद 38 में एक संशोधन का प्रस्ताव करेंगे और मेरा विचार उनके संशोधन को स्वीकार करने का है। अत: इस विषय को तब तक के लिये स्थगित कर दिया जाये जब तक कि हम अनुच्छेद 38 पर विचार आरम्भ न करें।

***उपाध्यक्ष:** तब हम अगले संशोधन संख्या 873 को लेंगे।

श्री बसन्तकुमार दास (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं इसको पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** अगला संशोधन संख्या 874 है।

***श्री राज बहादुर** (संयुक्तराज्य मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने इस संशोधन की सूचना इसलिये दी थी कि मुझे यह बात दिखाई दी कि प्रारूपित संविधान में ऐसे प्रावधान नहीं हैं, जिनसे हमारे देश के उन प्रदेशों के लोगों को, जो कि आजकल जागीरदार और सामन्तशाहियों के नियंत्रण तथा कुन्बे में हैं, मामूली न्याय मिल सके अथवा उनको भारतीय संघ के शिष्ट तथा आत्मसम्मान प्रेमी नागरिकों

की हैसियत से जीवित रहने मात्र की सुविधा प्राप्त हो सके। मैं परिषद् का ध्यान उन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, जिनसे सहानुभूति और करुणा जाग उठती है—वे लोग इन्हीं परिस्थितियों में रह रहे हैं। पर ऐसा करने से पहले मुझे अपना संशोधन पढ़ देना चाहिये। संशोधन इस प्रकार है:

''कि अनुच्छेद 30 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद 30-ए जोड़ दिया जाये:

'30 ए. राज्य सामन्तशाही को किसी रूप में मान्यता नहीं देगा, और भारत के प्रदेश में कोई मनुष्य जागीरों या मुआफ़ी-भूति की श्रेणियों में आने वाली किसी सम्पत्ति के आधार पर किसी विशेष अधिकारों या हितों का अधिकारी नहीं होगा।''

कई बार इन जागीरदारों और इन सामन्तशाही जागीरों को जमींदारों और जमींदारियों की तरह समझ लिया जाता है। मेरा निवेदन है कि अपनी कल्पना, उत्पत्ति तथा प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ये दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। वास्तव में इन दोनों में कोई समानता या सादृश्य है ही नहीं। जागीरदारों का आरम्भ भूतकाल के इतिहास में है। वे रियासतों के कुछ राजपरिवारों से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे शब्दों में वे इन परिवारों के वंशज हैं। उन्हें सर्वथा कुछ भी धनराशि दिये बिना ही अपनी जागीरों और एस्टेटों के स्वामी बने रहने का अधिकार है, या यदि वे कुछ थोड़ी सी रकम देते भी हैं, तो वह उस सरकार या रियासत को देते हैं। जिसके कारण वे जागीरदार बने हैं। उन्हें स्वतंत्र न्यायाधिकार है। कई स्थानों पर तो उन्हें आयात-निर्यात-कर लगाने का भी अधिकार है। कई अन्य स्थानों पर उन्हें पृथक पुलिस-दल रखने का भी अधिकार है। वे बिक्री-कर भी लगाते हैं। उनका उत्तराधिकार सदा ज्येष्ठाधिकार के सिद्धान्त पर होता है। अत: वे जिस रियासत में होते हैं उनके समक्ष और केन्द्रीय सरकार के समक्ष, उनकी स्थिति सर्व-सत्ताधारियों की सी है। अतएव मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जमींदारों और सामन्तों में कोई समानता नहीं है। अपने लोगों पर उनके अधिकार और प्राधिकार लगभग असीमित हैं। वे अपने अधीनस्थ किसानों से अत्यधिक लगान

[श्री राज बहादुर]

लेते हैं। सब जानते हैं कि वे बेगार अर्थात् बलात्श्रम लेते हैं—केवल खेती सम्बन्धी साधारण प्रयोजनों के निमित्त ही नहीं, वरन् निम्न कोटि के और अपमानजनक कार्यों के लिये भी। एक और बात है जो मानवता मात्र के लिये अपमानजनक है, वह यह है कि वे विवाहों या अन्य अवसरों पर 'लागबाग' नामक कर लेते हैं और यह भी कि वे कुछ अपमानजनक सामाजिक प्रतिबंध लगाते हैं, जैसे कि कई स्थानों पर वे अपने किसानों और रैयत को अपनी उपस्थिति में घोड़े पर चढ़ने नहीं देते। यदि बारात जाती हो तो वर घोड़े पर नहीं बैठ सकता, उनकी रैयत में महिलाओं को चांदी के आभूषण भी पहनने की आज्ञा नहीं होती। कई स्थानों पर तो छतरी तक रखने का निषेध है। अत: मैं परिषद् का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं कि यदि स्वतंत्र भारत में ऐसी स्थितियां रहीं और उनको सहन किया गया तो इसका अर्थ स्पष्टतया यह होगा कि लोगों को प्रजातंत्र और स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है। इसी कारण जब हम इन लोगों को सम्बोधित करते हैं और कहते हैं कि 'स्वराज आ गया है' तो वे शून्यता से हमारे मुख की ओर देखते हैं। वे इस पर विश्वास नहीं करते कि स्वराज वास्तव में आ गया है और हम अपने आपको एक विचित्र स्थिति में पाते हैं। यह सत्य है कि अब रियासतों में प्रजातंत्र स्थापित हो जाने से रियासतों में, लोकप्रिय मंत्रिगण कार्य कर रहे हैं, किन्तु कुछ रियासतों में, जहां कि जागीरें अथवा सामन्तशाही एस्टेटें हैं, कुछ मिश्रित सी सरकारें और मंत्रिमंडल हैं तथा हमारे लोकप्रिय मंत्री इन दलित और पीड़ित लोगों की सहायता करने में असमर्थ हैं।

यदि हम इस समस्या पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार करें, तो हम यह भी देख सकते हैं कि हमारे विधान में तीन प्रकार के राज्य अथवा इकाइयां हैं। पहले गवर्नरी प्रांत, दूसरे चीफ कमिश्नरी प्रांत और तीसरे वे रियासतें जो संघ में प्रवेश कर चुकी हैं। पर यह स्पष्ट है कि यह सामन्तशाही जागीरें, जिन्हें अपनी जनता पर सर्वोच्च सत्ता के समान अधिकार हैं, स्वयं एक भिन्न श्रेणी हैं। अत: यह केवल उचित ही होता कि इन सामन्तशाही जागीरों के लोगों को सामाजिक, न्याय, स्वतंत्रता और प्रजातांत्रिक स्वराज्य प्राप्त कराने के लिये इस विधान में कुछ व्यवस्था होनी चाहिये थी। दुर्भाग्य से ऐसी व्यवस्था नहीं हैं मैंने जिस संशोधन की सूचना

दी, उससे यही सरल प्रश्न उत्पन्न होता है कि आया इन लोगों की न्यूनतम स्वतंत्रता का आश्वासन देने के उद्देश्य से हमारे इस विधान में कुछ व्यवस्था होनी चाहिये या नहीं। जहां तक विधान के मसविदे का सम्बन्ध है, हमें यह आश्वासन दिया गया है कि समय आने पर, या कदाचित इस विधान के मसविदे पर विचार समाप्त होने से पूर्व रियासतों की स्थिति भारत संघ की शेष इकाइयों के समान बना दी जायेगी। पर इस समय विधान के मसविदे में एक ओर विद्यमान रियासतों या रियासत-संघों और दूसरी ओर प्रान्तों के प्रबन्ध के लिये जो व्यवस्थायें रखी गई है, उनमें सुनिश्चित रूप से अन्तर है। यह अन्तर इस हद तक है कि रियासतों के लोग अपने मूल अधिकारों की रक्षा के लिये भी सर्वोच्च न्यायालय में नहीं पहुंच सकते। यदि आप कुछ विषयों के सम्बन्ध में अपील करना चाहे तो आपको ऐसा करने के लिये एक विशेष कार्यप्रणाली को काम में लाना होगा और उस कार्य-प्रणाली से हमारे लिये यह भी कठिन हो जायेगा कि हम अपने अधिकारों को भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणित करा सकें। मैं परिषद् के समक्ष यह प्रश्न इसलिये रखता हूं कि मेरा ख्याल है कि परिषद् इस पर ध्यानपूर्वक विचार करेगी। मैं अपने संशोधन को प्रस्तुत करने के लिये विशेष उत्सुक नहीं हूं। मैं जिस बात के हेतु विशेष उत्सुक हूं वह यह कि जब मैं अपने निर्वाचन-क्षेत्र को वापस जाऊं, तो मैं शुद्ध अन्तःकरण से लोगों के समक्ष जा सकूं। मैं जानना चाहता हूं कि यदि वे मुझसे पूछें कि "आपने हमारे लिये, जो कि इन सामन्तशाही स्वामियों की सत्ता से इतनी बुरी तरह पीड़ित हैं, क्या किया है" तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूं? मैं इस परिषद् से यह उत्तर मांगता हूं। मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि किसी व्यर्थ या अनावश्यक संशोधनों द्वारा विधान के मसविदे पर उचित रूप से विचार करने के कार्य में विलम्ब कराऊं; पर मेरा निवेदन है कि इस परिषद् को उन उत्पीड़ित लोगों की सहायता करनी चाहिये और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हमारे विधान में समुचित व्यवस्था होनी चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मैं नहीं समझ सका हूं कि यह संशोधन नियमित रूप से उपस्थित किया गया है, या नहीं।

***श्री राज बहादुरः** मैंने इसे नियमित रूप से नहीं रखा है। मैं केवल इस विषय पर बोला हूं जिससे कि परिषद् का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो जाये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह बहुत दुर्भाग्य की बात है कि इस विषय से सम्बन्धित कई संशोधन इस संशोधन-सूची में यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं। यह बहुत अच्छा होता यदि ग्राम-पंचायत सम्बन्धी यह संशोधन एकत्र किये जाते और सूची में इसी विधि से रखे जाते। पर दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है, किन्तु मुझे वह इसलिये रखना पड़ रहा है क्योंकि यह संशोधन कार्यावलि में है और मैं इस संशोधन को पेश न करके यह भ्रम उत्पन्न करना नहीं चाहता कि मैं उस बात से पीछे हट गया हूं, जो विधान के मसौदे पर विचार करने के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर बहस के समय मैंने कही थी। यह देख कर मुझे प्रसन्नता है कि मेरी धीमी आवाज को इस परिषद् में मेरे अनुभवी और वृद्ध सहयोगियों के प्रबल समर्थन के कारण बल मिला है और मुझे हर्ष है कि इस विषय पर अनेक संशोधन आये हैं। श्रीमान्, यदि आपकी ऐसी इच्छा हो तो मैं इस संशोधन को अभी पेश कर दूंगा तथा आपसे निवेदन करूंगा कि जब तक इस विषय पर अन्य संशोधन विचारार्थ प्रस्तुत न किये जायें या सहमति से कोई संशोधन उपस्थित न हो, तब तक आप इस संशोधन पर विचार स्थगित कर दें। जैसी भी स्थिति होगी तथा इस विषय पर जो भी संशोधन परिषद् द्वारा स्वीकृत होगा, उसके पक्ष में अन्य संशोधन वापस ले लिये जायेंगे और बाद में मेरा संशोधन भी वापस ले लिया जायेगा; पर इस समय जैसी स्थिति है, उसमें मेरे पास इसके अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है कि मैं इस संशोधन को परिषद् के सामने रखूं। मैंने डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर अपने भाषण में जो कुछ कहा था, अब मैं उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता। मैं केवल यही आशा प्रगट करूंगा कि जब यूरोप एवं अमरीका जैसी पूंजीवादी परिषदात्मक लोकतंत्र प्रणाली तथा सोवियत संघ जैसी केन्द्रित समाजवाद-प्रणाली दोनों ही मानव के लिये शांति, सुख एवं समृद्धि प्रदान करने में असफल रही हैं, तब सम्भवत: हम भारत में एक नवीन राजनीतिक और आर्थिक ढांचे का निर्माण करने में सफल हो सकेंगे और कि हम महात्मा गांधी के पंचायत राज के स्वप्न को सत्य कर सकेंगे। उनकी विकेन्द्रित समाजवाद-पद्धति द्वारा हम मानवता तथा संसार को शांति एवं सुख के लक्ष्य तक पहुंचा देंगे।

अत: मैं आपकी अनुमति से इस संशोधन को नियमित रूप से पेश करता हूं, आपसे मैं व्यक्तिगत रूप से प्रार्थना करता हूं कि आप इसको तब तक के

लिये स्थगित कर दें जब तक कि इस अनुच्छेद में अन्य संशोधन पर्यालोचन के हेतु तैयार न हो जायें। मैं अपना संशोधन पढ़ता हूं:

''कि अनुच्छेद 30 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद रख दिया जाये:

'30-ए. राज्य ग्राम-पंचायतों को अन्त में शासन-प्रबंध के आधारभूत अंग बनाने के उद्देश्य से ग्राम-पंचायतों के स्वस्थ विकास को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।' ''

***उपाध्यक्ष:** क्या डा. अम्बेडकर इस संशोधन पर कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह मामला स्थगित रहे।

***उपाध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि सूची में संख्या 927 का संशोधन श्री के. सन्तानम् के नाम में है। वह एक नया अनुच्छेद 31-ए जोड़ने के विषय में हैं यह और वह संशोधन साथ ही लिये जा सकते हैं। क्या परिषद् की यह इच्छा है कि ऐसा किया जाये?

अनुच्छेद 31

***उपाध्यक्ष:** तो हम अनुच्छेद 31 को लेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 30 अभी तक परिषद् के समक्ष नहीं रखा गया।

***उपाध्यक्ष:** यह रखा जा चुका है और स्वीकृत हो गया है।

अब परिषद् अनुच्छेद 31 पर पर्यालोचन करेगी।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में 'समानरूप से पुरुष तथा महिलायें' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

जिस खंड पर विचार किया जा रहा है, वह यह है कि ''समान रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है।''

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि 'समान रूप से नर और नारी' यह शब्द अनावश्यक और व्यर्थ हैं। वास्तव में इस संशोधन की स्वीकृति से यह खंड इस प्रकार बन जायेगा: ''कि नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है''। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि 'नागरिक' शब्द की परिभाषा अनुच्छेद 5 के खंड (क) में दे दी गई है। वह परिभाषा सामान्य शब्दों में है और मेरे विचार में इसमें महिलायें भी सम्मिलित हैं। यह सर्वविदित है कि पुल्लिंग में स्त्रीलिंग भी आ जाता है। इस परिस्थिति में, जब कि हमने परिभाषा...

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:__ क्या माननीय सदस्य ने यह कहा है कि पुल्लिंग का अर्थ स्त्रीलिंग है?

*__श्री नजीरुद्दीन अहमद:__ व्याख्या में पुल्लिंग में स्त्रीलिंग सन्निहित है। अनुच्छेद 5 (क) में 'प्रत्येक व्यक्ति' शब्द है, उनमें निस्संदेह उसका अर्थ पुल्लिंग और स्त्रीलिंग भी है। अत: क्योंकि नागरिक शब्द को सुनिश्चित परिभाषा कर दी गई है और वह पारिभाषित शब्द 'नागरिक' इस अनुच्छेद में प्रयुक्त हुआ है, मेरे विचार में 'समान रूप से नर और नारी' यह शब्द जोड़ना अनावश्यक है। यदि हमें यह स्पष्ट करना पड़े कि कोई कानून समान रूप से नर और नारियों पर लागू होगा और हमें यह बात प्रत्येक स्थान पर लिखने के लिये बाध्य होना पड़े तो इन शब्दों को कई स्थानों पर अनावश्यक ही प्रयोग करना होगा। यद्यपि मैं इस सिद्धान्त से सहमत हूं कि जाति या मत, लिंग या वर्ण के भेद के बिना सभी नागरिकों को समानाधिकार होंगे, किन्तु इन शब्दों को रखने की आवश्यकता नहीं है।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

*__श्री महावीर त्यागी:__ श्रीमान्, मुझे एक सुझाव देना है। अनेक ऐसे संशोधन हैं जो भाषा सुधार या शब्द परिवर्तन के संबंध में हैं। उनमें भावान्तर या एतद् संबंधी अनुच्छेद के अर्थ के विषय में कोई सुझाव नहीं है। ऐसी स्थिति में क्या मैं यह सुझाव दूं कि उन सबको एकत्र कर लिया जाये। फिर आप एक समिति नियुक्त कर दें, जिसे यह सब संशोधन विचारार्थ और निर्णय करने के लिये भेज दिये जाये। यदि यह कर दिया जाये तो परिषद् का बहुत सा समय बच सकता है जिसमें अत्यावश्यक और महत्त्वपूर्ण संशोधनों पर विचार किया जा सकता है।

*__उपाध्यक्ष:__ मैं इस सुझाव पर चलने के लिये तैयार हूं, यदि परिषद् की यही इच्छा हो। सम्भवत: हम इस सुझाव पर बाद में विचार करेंगे, दो तीन दिन बाद।

*__श्री लोकनाथ मिश्र__ (उड़ीसा : जनरल): क्या इसका यह अर्थ है कि इन प्रस्तावों पर विचार स्थगित हो गया?

*__उपाध्यक्ष:__ नहीं। हम विचार स्थगित क्यों करें? हम इस विषय में तत्काल ही मत ले सकते हैं और किसी निर्णय पर पहुंच सकते हैं।

*__प्रो. के.टी. शाह__ (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में,

'कि नर ओर नारी सभी नागरिकों को समान रूप से...पर्याप्त...अधिकार हों' इन शब्दों के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक को....पर्याप्त...अधिकार हों' यह शब्द रख दिये जायें।' ''

श्रीमान्, परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव रखते हुए सर्वप्रथम में चाहता हूं कि मेरी इस बात को समझ लिया जाये कि यह संशोधन केवल भाषा में सुधार करने का प्रयत्न ही नहीं है। मैं स्वयं को अंग्रेजी भाषा का प्रमाणित विद्वान नहीं कहता और इस भाषा की विशेष रचना शैली के रहस्यों में तो मैं और भी कम प्रवीण हूं। मैं इस मामले को व्यावहारिक ज्ञान के दृष्टिकोण से ही देखता हूं। इस खंड में 'नागरिकों' शब्द का जिस प्रकार प्रयोग हुआ है, उस रूप में यह इतना समूह-वाचक है कि मुझे भय है, इस शब्द का व्यक्तिवाचक आशय दृष्टि से लोप हो जाना अति सम्भव है। अत: मैं 'नागरिकों' शब्द के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रखने का प्रस्ताव रख रहा हूं, ताकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार होगा। मेरे संशोधन से व्यक्ति-वाचक आशय अधिक अच्छी तरह व्यक्त होता है। यही भाषा बाद में इसी अध्याय के एक अनुच्छेद में, जिसमें कि प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की चर्चा की गई है, प्रयुक्त हुई हैं अत: मैं कोई नवीन शब्द का सुझाव नहीं दे रहा हूं जो मसविदा लेखक की शब्दावलि में स्वीकार न किया गया हो। हां, मैं यह कह सकता हूं कि एक ही अध्याय के एक ही अनुच्छेद में समूह-वाचक शब्द 'नागरिकों' काम में लिया गया है, उधर उसी अध्याय के एक और अनुच्छेद में 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द प्रयोग किये गये हैं, और किसी अन्य अनुच्छेद में अन्य शब्द प्रयुक्त हुये हैं। इसी कारण से, अर्थात् एक ही अभिप्राय को व्यक्त करने के लिये विभिन्न शब्दों के प्रयोग करने के सम्बन्ध में प्रारूपक के मन में होने वाले अर्थ विभेद

[प्रो. के.टी. शाह]

के मामूली वृद्धि के लोगों की बुद्धि से बाहर होने के कारण मैं यह संशोधन पेश कर रहा हूं। यदि 'नागरिकों' शब्द समूह-वाचक आशय से प्रयुक्त हुआ है, तो मेरा निवेदन है कि मैं इस समय इस अनुच्छेद को पढ़ कर जितनी समझता हूं, उससे भी कहीं अधिक बुरी बात होगी। क्योंकि इस शब्द को समूह-वाचक अर्थ में लें, तो इससे अन्त में सामान्य (औसत) नागरिक की समृद्धि के लिये अनिश्चित आशा ही व्यक्त होगी। औसत का नियम बहुत धोखे में डालने वाला नियम है और इससे आपको एक ऐसा संतोष सा हो जाता है, जिसका वास्तव में कोई आधार नहीं होता। मेरी यह इच्छा नहीं है कि इस वाद-विवाद को ऐसा बना दूं कि मैं परिषद् का मनोरंजन करने की योग्यता का छिछला प्रदर्शन करने लगूं, पर मैं परिषद् को यह बताये बिना नहीं रह सकता कि एक कल के समान काम करने वाले अंक-विशेषज्ञ के बुद्धि चातुर्य्य से औसत के नियम को कैसे बिगाड़ा जा सकता है और ऐसा परिणाम निकाला जा सकता है, जो यथार्थता के सर्वथा प्रतिकूल हो। उदाहरणार्थ, क्या मैं निवेदन करूं कि मैंने एक महिलाश्रम की कहानी सुनी है। जब महिलाश्रम के प्रबन्धकों को पता चला कि आश्रम की दस लड़कियों में से एक लड़की ने स्पष्टत: दुराचरण किया है, तो गड़बड़ हुई और मामले की जांच करने और अपनी रिपोर्ट पेश करने के लिये एक अंक-विशेषज्ञ बुलाया गया। उसने आश्रम की महिलाओं के विषय में पड़ताल की और अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट पेश की, जिसमें उन्होंने बताया कि आश्रम की प्रत्येक महिला 90 प्रतिशत शुद्ध है तथा दस प्रतिशत गर्भवती है। इस बयान में उन्होंने केवल औसत के नियम का व्यवहार किया। मैं नहीं जानता कि इसको अच्छी तरह समझा गया है या नहीं कि विशेषज्ञ इस प्रकार के परिणामों पर पहुंच सकते हैं; और क्योंकि मैं नहीं चाहता कि हमारे विधान से हम इस विशेष प्रकार की पूर्णता प्राप्त करें; अत: मैं 'नागरिकों' शब्द के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रखना चाहता हूं, जिससे कि इस विषय में कोई संदेह का प्रश्न ही न रहे।

मैं 'समान रूप से नर और नारी' इन शब्दों को हटा देने का जो प्रस्ताव कर रहा हूं, उसका एक कारण और है। मेरे विचार में इसमें ऐसी पर्याप्त भावना है कि पुरुष महिलाओं के आश्रयदाता हैं। कोई कारण नहीं है कि पुरुष यह सोचे कि वह महिलाओं के बराबर है, उनसे उच्चतर होना तो दूर रहा। मेरा सदा से यही मत रहा है कि नारी की तुलना में नर एक निम्नतर प्रकार का जीव है।

मेरे ख्याल में पुरुष का महिलाओं के आश्रयदाता होने का यह दिखावा, कि जैसे हम उन्हें कोई विशेष अधिकार प्रदान कर रहे हैं, विधान से निकाल देना चाहिए।

नागरिक नागरिक है चाहे उसकी आयु, लिंग या मत कुछ हो और यह विधान द्वारा स्वीकृत मूल सिद्धान्त है, इसलिये मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम 'समान रूप से नर और नारी' क्यों कहें, जैसे कि हमने नर और नारियों को समान अधिकार देने की कृपा की है, विशेषत: जबकि वे अधिकार भी निदेशक ही हैं, और इनको तत्काल कार्यान्वित करना भी आवश्यक नहीं है। इन कारणों से, मेरा सुझाव है कि इस संशोधन को केवल शाब्दिक संशोधन नहीं समझना चाहिये, अपितु आशय सम्बन्धी संशोधन समझना चाहिये। और मुझे विश्वास है कि जो इस विधान को परिषद् में रख रहे हैं, वे इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि यद्यपि संशोधन नं. 884 अस्वीकार कर दिया जायेगा, किन्तु मैं श्री नज़ीरुद्दीन को इस पर बोलने का अवसर अवश्य दूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद नं. 885, प्रोफेसर के.टी. शाह।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रख दिया जाये:

(2) कि देश के प्राकृतिक साधनों का, जो कि खानों, खनिज सम्पत्ति, वनों, नदियों तथा बहते हुए जलों के रूप में एवं देश के तट के साथ-साथ सागर के रूप में है, स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबन्ध सामूहिक रूप से देश में निहित होगा तथा देश के ही अधीन होगा और समुदाय की समाज के हित में राज्य ही उनका विकास करेगा और उन्हें उत्पादन-कार्य में लगायेगा; जो कि (अर्थात् राज्य) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों अथवा स्थानीय शासक प्राधिकारी अथवा कानूनी निगम (कारपोरेशन) द्वारा प्रतिरूपित होगा, जैसे भी संसद् के कानून द्वारा व्यवस्था की जाये।''

श्रीमान्, मौलिक वाक्यखंड, जिसके स्थान पर मैं यह नया खंड रखना चाहता हूं, इस प्रकार है:

[प्रो. के.टी. शाह]

(2) कि लोकसमुदाय के प्राकृतिक साधनों का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो;"

यदि मैं ऐसा कहने का साहस करूं, तो श्रीमान्, इस खंड का जिस प्रकार कि यह इस समय मसौदे में है, कुछ भी अर्थ निकाला जा सकता है। और जिस पृष्ठ भूमि पर हम कार्य कर रहे हैं, जिस परम्परा के अधीन शासन-व्यवस्था चल रही है और इस परिषद् में निहित हितों के प्रति जितनी अनुशक्ति है, उन सबके होते हुए, मुझे भय है कि यदि यह खंड ज्यों का त्यों रहने दिया गया तो इससे कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। बल्कि इस खंड से देश के समुचित विकास अथवा सामाजिक न्याय के किसी हद तक स्थापित करने अथवा देश की सम्पति के न्यायोचित पुनः वितरण की आशायें भी शून्य स्वप्न बनकर रह जायेंगी। अतः मेरा सुझाव है कि इस खंड की जगह एक नया खंड रखना चाहिए जो कि मैंने अभी पढ़कर सुनाया है। इससे प्राकृतिक साधनों का स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध सामूहिक रूप से जनता में निहित हो जायेगा और जनता ही केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय अथवा स्थानीय सरकारों अथवा ऐसी कानूनी संस्थाओं द्वारा जो एतदर्थ बनाई जायें, इन साधनों को उत्पादन कार्य में लगायेंगी और उनका विकास करेंगी।

मेरे विचार में इस बात पर तो कोई मतभेद हो ही नहीं सकता कि मैंने जिस प्राकृतिक साधनों का वर्णन किया है, किसी मनुष्य ने अपने श्रम से उनका मूल्य स्थिर नहीं किया।

वे प्रकृति के उपहार हैं। वे प्रारम्भिक देन हैं जो प्रत्येक देश को कम वेशी परिमाण में मिलती है; ओर यह केवल न्याय है कि वे सामूहिक रूप से सारी जनता की निधि बने रहें। और यदि उनका विकास हो तो वह भी सामूहिक रूप से जनता द्वारा, उसी के निमित्त और उसकी ओर से होना चाहिए।

ऐसे प्राकृतिक साधनों का उत्पादन चाहे जनता के लिए कितना भी लाभदायक, महत्त्वपूर्ण अथवा आवश्यक हो; पर निहित हितों, निजी एकाधिकारों एवं स्वयं के लिए लाभ की आकांक्षा करने वालों की सृष्टि या उनकी उपस्थिति ही मेरे विचार में जनता के प्रति और समस्त देश के भावी हितों और आने वाली पीढ़ी के प्रति अन्याय है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम में से वे लोग जो निजी सम्पत्ति

और लाभोद्देश्य के आदर्शों से मानो चोटी तक ओतप्रोत हैं, इस बात को पूर्ण रूप में समझ नहीं पाते।

मेरे संशोधन में जिन साधनों की चर्चा है उनका मूल्य या महत्त्व किसी की सम्पत्ति होने के कारण उत्पन्न नहीं होता, पर इससे बड़ी बात यह है कि उनका वास्तविक मूल्य सदा समाज के मिले-जुले प्रयत्नों से उत्पन्न होता है। वह उन सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है जो किसी विशेष हितों या इस प्रकार के साधनों को मूल्यवान बनाती है।

खानों और खनिज सम्पत्ति को ही लीजिए। सब जानते हैं कि यह ऐसी सम्पत्ति है जो घटती रहती है, नष्ट होती रहती है। दुर्भाग्य है कि इनकी परवाह या रक्षा करने के स्थान पर, इन्हें बचत और मितव्ययता से जनता के प्रयोग के लिए सुरक्षित रखने के स्थान पर इन्हें विशेषाधिकार वाले तथा लाभ के इच्छुक व्यक्तियों और गैर-सरकारी एकाधिकारियों को सौंप दिया गया है। इस कारण इन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। वास्तव में उनका ऐसी विधि से प्रयोग किया जाता है जो लगभग अपराधपूर्ण है, जिससे कि इनके स्वामी इनसे अपने लिए अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। यह कोई नहीं सोचता कि जब यह खानें समाप्त हो जायेंगी या जब युगों की संचित सम्पत्ति का अवसान हो जायेगा, तब क्या होगा।

अतः मेरा सुझाव है कि हम इन खानों और खनिज सम्पत्ति के विदोहन में गैर-सरकारी लाभ-आकांक्षियों के दूरकालिक हितों को सन्निहित न होने दें। इन खानों और खनिज सम्पत्ति पर हमारी औद्योगिक स्थिति निर्भर है, हमारी आकांक्षायें, आशायें और इस देश के उद्योगीकरण के स्वप्न निर्भर है और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे देश की सुरक्षा और प्रतिरक्षा निर्भर है। इसलिए मैं फिर कहता हूं, यह जनता और भावी संतान के प्रति अत्याचार होगा, यदि आप अब भी यह न समझें कि देश की खनिज सम्पत्ति को गैर-सरकारी निकायों के हाथों में अछूता नहीं छोड़ा जा सकता कि वे जैसे चाहें अपने लाभार्थ उसका प्रयोग करें, दुरुपयोग या विदोहन करें, उसे खत्म कर दें।

अतएव अब उचित समय है कि हम विधान में स्पष्ट व्यवस्था कर दें कि इन साधनों का स्वामित्व, सीधा नियंत्रण, प्रबंध और विकास अन्त में राज्य के

[प्रो. के.टी. शाह]

हाथ में हो या राज्य के अभिकर्ता, राज्य के प्रतिनिधि या राज्य द्वारा बनाए हुए निकायों जैसे प्रान्तों, नगर-मंडलों या कानूनी संस्थाओं के हाथ में हों।

मेरे विचारों के समर्थन में एक और तर्क भी दिया जा सकता है। यह साधन है ही इस प्रकार के कि उनका अच्छी तरह से या लाभप्रद तरीके से तब तक उत्पादन नहीं किया जा सकता, जब तक कि वे एकाधिकार में न हों। किसी न किसी रूप में उनका विकास एकाधिकार-प्रणाली द्वारा ही करना होगा। और एकाधिकार निकायों पर सदा अविश्वास किया जाता है, जब तक कि वे गैर-सरकारी अधिकार में होते हैं और निजी लाभ के हेतु चलाए जाते हैं। यदि उन पर एकाधिकार रहना है, जैसा कि मुझे विश्वास है अनिवार्य रूप से होगा ही, तो यह अच्छा होगा कि उन पर राज्य का स्वामित्व रहे और राज्य उनका प्रबन्ध करे और उन्हें चलाये।

उन पर राज्य द्वारा नियंत्रण की व्यवस्था कर देना ही काफी नहीं है। जैसा कि मौलिक खंड में किया गया है। यही कह देना काफी नहीं है कि उनका उपयोग इस प्रकार किया जायेगा कि ''सार्वजनिक हित का अनुसेवन हो''। इसका तो प्रत्येक शब्द अनिश्चित, अपरिभाषित और अपरिभाष्य है और किसी न्यायालय में, किसी न्यायाधिकरण के समक्ष कोई चतुर, कुशल वकील इसका आशय ऐसा तोड़-मोड़ सकता है कि वह मसौदा बनाने वाले के भाव से सम्पूर्ण रूप से भिन्न हो। मैं यह मान लेता हूं कि मसौदा बनाने वाले का कुछ ऐसा ही भाव है जो कि मैं परिषद् के सामने रखने का प्रयत्न कर रहा हूं। हमें इस बात पर और अधिक पक्का भरोसा होना चाहिये कि उनका (साधनों का) उचित, सामाजिक और पूर्णतया लाभप्रद उपयोग किया जायेगा; और यह तभी हो सकता है कि जब उनका स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध जनता के हाथों में हो। अतएव तात्कालिक सम्पत्ति, उद्योगीकरण, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामाजिक न्याय के विचारों से ही प्रेरित होकर मैं परिषद् से अनुरोध करता हूं कि मेरे संशोधन पर अनुकूलता से विचार किया जाये। इसका अर्थ है कि जब तक राज्य या उसके प्रतिनिधियों को इन साधनों पर समुचित सर्वांगी स्वामित्व, सम्पूर्ण नियंत्रण और सीधा प्रबंधाधिकार नहीं होगा तब तक हम

अपने सारे स्वप्नों को अच्छे, कुशल और कम खर्च तरीके से पूरा न कर सकेंगे। मैं उन स्वप्नों को इसी प्रणाली से पूरा करना चाहता हूं।

मुझे परिषद् को यह बताने की शायद ही आवश्यकता हो कि इस सम्पत्ति के अधिकांश साधनों का अभी तक विकास नहीं किया गया है या बहुत ही मामूली सा विकास किया गया है। आशा की जाती है कि आगामी वर्षों में हम देश का, इसके प्रत्येक उपलब्ध साधनों का विकास करने हेतु एक अधिक प्रभाववर्ती, अधिक उपयोगी और अधिक अच्छी योजना बनायेंगे और उसे कार्यान्वित करेंगे। यदि ऐसा है, यदि देश में जो नवजीवन स्फुरित हो रहा है, यदि उसके लिये हम इस काम को सबसे पहले हाथ में लेने जा रहे हैं, यदि हम इसे सिद्ध करने जा रहे हैं, तो मैं आपके समक्ष यह बात रखता हूं, श्रीमान्, कि इस प्रकार की किसी व्यवस्था के बिना हम अपने उद्देश्य को इतनी जल्दी और मितव्ययता से पूरा नहीं कर सकेंगे, जितना कि हम चाहते हैं।

मैं बस एक बात और कहूंगा। मैंने देश के प्राथमिक साधनों की सूची में जान-बूझकर सब से बड़ा साधन शामिल नहीं किया है; वह है भूमि। मैंने इसकी चर्चा नहीं की है। इसका कारण यह नहीं है कि मेरी ऐसी धारणा नहीं है कि भूमि पर भी सामूहिक रूप से स्वामित्व तथा अधिकार एवं कार्य होना चाहिये। किन्तु इसका कारण यह है कि मैं मानता हूं कि कुछ वर्षों में भूमि अधिपतियों-जमींदारों को निकालने के लिये और उनकी जमीनों पर अधिकार करने के लिये जो विभिन्न चेष्टायें की गई हैं, उनका स्वयं ही यह अर्थ हो जायेगा कि देश की कृषि-भूमि अर्थात् उपजाऊ भूमि पर सामूहिक रूप में देश का अधिकार है और उस भूमि का प्रयोग और विकास देश के निमित्त ही होना चाहिये।

इसलिये, श्रीमान्, मैंने उन भौतिक साधनों पर जोर दिया है, जिन पर हमें सामूहिक रूप से स्वामित्व रखना चाहिये और जिनका हमें मिलजुल कर विकास करना चाहिये, किन्तु मैंने उनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन की जानबूझ कर चर्चा नहीं की है। पर मुझे विश्वास है कि इससे इस सुझाव के निर्णय पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं यह प्रस्ताव परिषद् में विनम्रता से पेश करता हूं।

(संशोधन सं. 886 और 891 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(3) कि भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन में, सामाजिक सेवा में, अथवा सार्वजनिक हित की चीजों में किसी रूप में गैर-सरकारी एकाधिकार नहीं होंगे और न ही उत्पादन और वितरण के साधनों का गैर-सरकारी हाथों में संकेन्द्रण होगा और ऐसे संकेंद्रण या एकत्रीकरण को रोकने के लिये राज्य प्रत्येक उपाय काम में लेगा।"

श्रीमान्, मौलिक खंड का मसौदा इस प्रकार है:

"(3) कि आर्थिक व्यवस्था के चालन का ऐसा परिणाम न हो कि धन और उत्पादन-साधनों का संकेंद्रण हो जाये जो सबके लिये अहितकारी हो।"

मुझे इस बार भी वही तर्क उपस्थित करना है कि मेरे संशोधन में जो शब्द प्रयुक्त हुये हैं, वे मैंने लगभग पूर्णत: मसौदे से ही लिये है। पर मसौदे की अपेक्षा मैंने इसे अधिक सुस्पष्ट और संशयरहित बनाने का प्रयत्न किया है। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि यदि मसौदे को जैसे का तैसा रहने दिया गया, तो इसका ऐसा अर्थ निकाला जा सकता है जो कि कदाचित मसौदा बनाने वाले का विचार कदापि नहीं होगा; अथवा कम से कम पाठक इसे उस अर्थ में नहीं समझ सकता।

श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि एकाधिकार सार्वजनिक कल्याण के लिये बहुत अहितकारी होते हैं। प्रत्येक देश में, जिसका कि इतिहास लिपिबद्ध है, जहां भी एकाधिकार स्थापित हुए, उनके अस्तित्व के विरुद्ध आवाज उठाई गई है। कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण निर्णय जिनका कि इंग्लिश विधान के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ा है, सम्राट द्वारा प्रदत्त एकाधिकारों के सम्बन्ध में हैं। इंग्लैंड, फ्रांस या अन्य देशों में जहां कि एकाधिकार अधिक विकट रूप में थे, गत युगों में एकाधिकारों के विरुद्ध जितना तीव्र द्वन्द हुआ था, उतना किसी और प्रणाली के विरुद्ध नहीं हुआ।

पर यह आवश्यक नहीं है कि एकाधिकारों की स्थापना या निर्माण स्वीकृति या आज्ञापत्र द्वारा या कानूनी, साक्षात विधि से ही हो, या विधान के इस प्रावधान जैसी किसी व्यवस्था के प्रत्यक्ष प्रवर्त्तन या व्यापक रूप से कानून की प्रणाली द्वारा ही हो, जिससे कि उन एकाधिकारों का पता लगाया जा सके और उन पर अंकुश रखा जा सके।

एकाधिकार इससे भी अधिक कृत्रिम पद्धति द्वारा विकसित होते हैं, एकाधिकार अधिकतर उन्हीं परिस्थितियों के दबाव से उत्पन्न होते हैं, जो प्रतिद्वन्द्वता की उपज समझी जाती है। हमें बताया जाता है कि प्रतिद्वन्द्वात्मक समाज में सार्वजनिक हित की पूर्ति इसी प्रकार से हो सकती है कि केवल परस्पर प्रतिस्पर्धा होने से ही प्रतिद्वंद्वी उत्पादकों को इस तरह अपने मूल्य कम करने पड़ेंगे, उन्हें लागत अथवा विक्रय मूल्य को घटाना पड़ेगा, यदि एकाधिकृत पदार्थ का अधिकाधिक उपभोक्ता प्रयोग करें तो अधिकाधिक लाभ हो सकता है। पर वास्तव में, श्रीमान्, प्रत्येक देश में जहां व्यापक पैमाने पर उद्योग या व्यापार आरम्भ हो गया है, आप देखेंगे कि प्रतिद्वन्द्वी शीघ्र ही यह समझ जाते हैं कि प्रतिद्वन्द्वता में किसी का लाभ नहीं है। अत: परस्पर बातचीत करके और ट्रस्ट सिन्डीकेट तथा कारटेल बनाकर सब प्रकार के उपायों से वे वस्तुत: एकाधिकारों का निर्माण कर लेते हैं। यह एकाधिकार देखने में चाहे अबाधक हों, या ऐसा भी दिखाई दे कि उनका उद्देश्य लागत कम करना और ऊपरी व्यय घटाना है जिससे कि सामग्री अधिक सुगमता से और सस्ती उपलब्ध हो सके; पर वास्तव में उनका परिणाम यह होता है कि उद्योगपतियों के बढ़ते हुए लाभ में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

श्रीमान्, मेरे विचार में इस परिषद् के विद्वान सदस्य इंग्लैंड या अमरीका में ट्रस्टों तथा जर्मनी या फ्रांस में सिन्डीकेंटों और कारटेलों के इतिहास से तो भली भांति परिचित होंगे, और मुझे यह इतिहास दोहराने की आवश्यकता नहीं होगी। वे सुगमता से समझ लेंगे कि कैसे छल से, कैसे शनै: शनै:, पर कितनी दुर्निवारता से ट्रस्ट, सिन्टीकेट, कारटेल, संयोग अथवा एकाधिकरण स्थापित करने का आंदोलन सब महत्त्वपूर्ण उद्योगों में जोर पकड़ता गया, वे लोग इन एकाधिकारों पर सुदृढ़ता

[प्रो. के.टी. शाह]

से अधिकार रखने और अपने ही भाई-बांधवों में से कुछ चुने हुए लोगों में ही सीमित रखने के लिये क्या-क्या उपाय काम में लेते हैं; और संयुक्त निदेशक-मंडल (Interlocking Directorate) का नीति के सामान्य निदेशन में कितना हाथ होता है; जब प्रतिद्वन्द्वता तीव्र होती है तो वे प्रतियोगिता-क्षेत्र में प्रत्येक नये उद्योग को नष्ट करने का कैसा प्रयत्न करते है, जिससे कि सारे क्षेत्र पर उनका निर्द्वन्द्व अधिकार हो जाये, सारे क्षेत्र के वे निर्द्वन्द्व स्वामी बने रहें।

इस देश में हमें विदेशी एकाधिकारियों के कार्य का अत्यन्त कटु, नया-नया, भिन्न-भिन्न प्रकार का और अत्यधिक अनुभव है। ये लोग कुछ समय पूर्व तक हमारे देश में सत्ताधारी थे, जिससे कि देश के किसी भी उद्योग को, जो कि विदेशी एकाधिकारियों के निहित हितों के लिये अहितकर हो, विदेशी एकाधिकारियों से अतीव तीव्र संघर्ष करना पड़ता था।

अभी कुछ ही दिन पहले हमने एक महान् राष्ट्रीय जलयान-उद्योग के विकास का इतिहास देखा है। जिनको यह पता है कि इस उद्योग को कितने उलट-फेर में से निकलना पड़ा है, वे समझ सकेंगे कि इस उद्योग को कितने लम्बे वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा, कितनी निरुत्साहक परिस्थितियों का उसे सामना करना पड़ा, और वह सब इसलिये कि उन दिनों भारत सरकार एक विदेशी सरकार थी। क्योंकि प्रतिद्वंद्वी भारतीय उद्योग नया था, अत: सरकार को यह बात अपने हित में न लगती थी कि वह किसी भी प्रकार विदेशी एकाधिकारियों को हानि पहुंचने दे तथा नवीन भारतीय उद्योग को पनपने दे। अत: भारतीय उद्योग को सब प्रकार के विघ्नों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिनका पूर्ण विवरण सुनाने का न यह स्थान है और न इसके लिये समय ही है। इन सब बाधाओं के रहते हुए भी जनता के समर्थन से तथा वे जो कार्य करना चाहते थे, उसकी आंतरिक शक्ति से, यह उद्योग अब तक जीवित रह गया। किन्तु इससे वह मुख्य तर्क गलत सिद्ध नहीं होता जो कि मैं परिषद् के समक्ष रखने में प्रयत्नशील हूं। वह तर्क यह है कि गैर-सरकारी एकाधिकार अपनी प्रकृति से ही, जनता के हितानुकूल नहीं होते, जब तक कि वे समस्त जनता के एकाधिकार में न हों।

गैर-सरकारी एकाधिकारी सदा एक लुटेरा होगा। जो लोग उसकी सामग्री या सेवाओं का उपभोग करेंगे, वह उनको ढूंढेगा तथा शिकार के समान उन पर झपटेगा। चाहे एक विशेष वस्तु बनाने वाला साधारण उद्योग हो, या चाहे उपभोग्य सामग्री का उत्पादन करने वाला उद्योग हो, चाहे शिक्षा अथवा स्वास्थ्य के समान सामाजिक सेवा निकाय हो, सब में सदा यह भय है कि एकाधिकारी प्रबल निजी हित का निर्माण कर लेगा, जिसे सहन करना देश के हित में कदापि न होगा। मैं इसी कारण चाहता हूं कि शिक्षा या शिक्षा सम्बन्धी यंत्रों, या स्वास्थ्य अथवा मूल औषधियों के उत्पादन या औषधियों के निर्माण अथवा शल्य चिकित्सा के तथा अन्य औजारों या सामग्रियों के सम्बन्ध में एकाधिकारों के स्थापित होने की सम्भावना का ही वर्जन कर दिया जाये। मैं परिषद् से नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि हमारे देश में गैर-सरकारी एकाधिकारियों के आधिपत्य होने की अत्यधिक आशंका है। यदि हम आरम्भ से ही, इसी विधान में, यह सर्वथा स्पष्ट न कर देंगे कि नवभारत में ऐसे निजी एकाधिकारों के लिये कोई स्थान न होगा, जो कि लुटेरे हों, जो अपने ही समान उद्योगों का ऐसे शिकार करें जैसे कि प्रशांत सागरों का कोई जंगली या तथाकथित जंगली जन्तु भी नहीं करता।

आधुनिक काल का सभ्य नरभक्षी, रक्त शोषक है। ऐसा शोषक है जिसको कि उच्च सम्मान मिलता है, जिसे प्राय: उपाधियां दी जाती है, जो इस परिषद् में पूर्णत: प्रतिरूपित है और इसी कारण वह आपको अपनी इच्छा पर चला सकता है, वह आपको कई प्रकार से प्रेरणा दे सकता है, कि आप इसी विधान में उसकी सुरक्षा के लिये क्या प्रावधान रखें, जिससे कि उसका जीवनकाल और दीर्घ हो जाये और वह विभिन्न प्रकार से बढ़ता जाये, विभिन्न रूप धारण करता जाये और अपने एकाधिकार को अधिक प्रबल बनाता जाये, पर यह सब जन-साधारण के लिये अहितकर होगा, इस देश की सुरक्षा के लिये अहितकर होगा और उन सबके लिये अहितकर होगा जो इस समय की आशा लगाये बैठे थे। वे सब लोग यह आशा करते थे कि इस युग में, जब कि ऐसा समझा जाता है कि वास्तविक शक्ति इस परिषद् में लोगों के प्रतिनिधियों में निहित है, वे कम से कम जीवन की तात्कालिक आवश्यकतायें तो लाभाकांक्षियों को कर चुकाये बिना प्राप्त कर सकेंगे और इससे वे जानवरों से कुछ अच्छा जीवन बिताने में समर्थ हो सकेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या 'गैर-सरकारी एकाधिकार' इन शब्दों में पब्लिक कम्पनियां भी समाविष्ट हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं एक पिछले संशोधन में पहले ही कह चुका हूं कि मैं एकाधिकारी को तभी रहने देना चाहूंगा जब वे सार्वजनिक (पब्लिक) एकाधिकार हों, या तो सरकारी अधिकार में हों, राज्य उनका स्वामी हो या राज्य के कारपोरेशन इसके स्वामी हों। यदि पब्लिक कम्पनियों से आपका अर्थ कानूनी कम्पनियां हों तो मेरा उत्तर 'हां' में है। पर यदि आप पब्लिक कम्पनियों का अर्थ उन्हीं कम्पनियों से लेते हैं जो कम्पनी कानून के अन्तर्गत आ जाती हैं और रजिस्टर (दर्ज) हो गई हैं, तो मेरा उत्तर नकारात्मक है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'गैर-सरकारी कम्पनियां' इन शब्दों में 'पब्लिक लिमिटेड कम्पनियां' नहीं आयेंगी।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं अपने माननीय मित्र को आमंत्रित करता हूं कि इसको अधिक स्पष्ट करने में वे मेरी सहायता करें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनके इन विभेदात्मक शब्दों पर अधिक ध्यान न देने के लिये वे मुझे क्षमा करें। मेरे दिमाग में तो ऐसे एकाधिकारी निकाय हैं जैसे कि प्रन्यास (ट्रस्ट), संयुक्त संचालक-मंडल और ऐसी विभिन्न पद्धतियां जिनके द्वारा बैंक, बीमा कम्पनियां, यातायात प्रतिष्ठान, विद्युत प्रतिष्ठान, शक्ति निगम (पावर कारपोरेशन) सब प्रकार के जनोपयोगी निगम परस्पर मिल जाते हैं—खड़े, पड़े, तिरछे, उल्टे, सीधे सब प्रकार से मिल जाते हैं इसका फल यह होता है कि यदि आप उन सबको एक साथ लें, तो आप देखेंगे कि इस देश का आर्थिक जीवन 300 से 500 लोगों या परिवारों के पंजे में है। उनके भतीजे, भतीजी, भानजे, भानजी, विभिन्न कामों में संलग्न हैं। हो सकता है कि उनमें से कोई कारखाने में काम कर रहा है, तो कोई खेलों में नाम कमा रहा है, तीसरा कला के साथ चोचले कर रहा है और चौथा विज्ञान और विद्वत्ता की भेंट दे रहा है। एक प्रबंधक (मैनेजर) हो सकता है और दूसरा लोकोपकारी हो सकता है और इसके अतिरिक्त कोई अन्य धार्मिक गुरु हो सकता है, पर इससे कुछ रूप नहीं बदलता। इस देश में कुछ सौ परिवार हैं जो हम सब को इसी प्रकार की आर्थिक दासता में जकड़े हुए हैं जैसी कि अमरीका के दक्षिणी राज्यों में भी नहीं है। यदि आप अब भी अपनी आंखें नहीं

खोलते, तो आप अपनी ही आंखों के सामने ऐसी क्रांति को ऐसे रूप में आमंत्रित कर रहे हैं, जिस रूप में हम में से कोई भी उसे नहीं चाहता, पर उसे हम में से कोई रोक भी न सकेगा। श्रीमान्, मैं विनम्रतापूर्वक यह सुझाव परिषद् के समक्ष रखता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं नम्रतापूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (3) में 'संकेन्द्रण' (Concentration) शब्द के स्थान पर 'अनुचित संकेन्द्रण' यह शब्द रख दिये जायें।''

मेरे संशोधन का यह प्रभाव होगा कि इस खंड द्वारा धन और उत्पादन-साधनों के सार्वजनिक अहितकारी अनुचित संकेन्द्रण का वर्जन किया जायेगा। मेरा निवेदन है कि हमारे यहां आजकल जो आर्थिक व्यवस्था है और जिसको ध्यान में रखकर यह प्रावधान किया गया है, उसका अनिवार्यतः यह अर्थ होगा कि धन और उत्पादन-साधनों का प्रयोग लाभप्रद रीति में न होंगे; यदि हम साम्यवादी राज्य बनाना नहीं चाहते, तो असमानतायें अनिवार्य होंगी। यहां तक कि आजकल के साम्यवादी राज्य में भी असमानतायें विद्यमान है। श्रीमान् मेरा निवेदन है कि सब लोगों में धन और उत्पादन-साधनों का समान वितरण असम्भव है। मेरा निवेदन है कि एक कुशल व्यवसायी, एक विख्यात वकील, एक विख्यात मंत्री और एक साधारण मनुष्य अथवा चपरासी की आय समान नहीं हो सकती। अतः मैं निवेदन करता हूं कि हमें बस यही प्रयत्न करना चाहिये कि धन एवं उत्पादन-साधनों का ''अनुचित'' संकेन्द्रण रोका जाये। कुछ धन और कुछ उत्पादन-साधनों का संकेन्द्रण तो अनिवार्य रूप से होगा ही। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इस शब्द से गलतफहमी दूर हो जायेगी।

(संशोधन सं. 896 और 903 प्रस्तुत नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, संशोधन सं. 904 में तीन भाग हैं जिनमें से मैं केवल दूसरे और तीसरे भाग को पेश करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मैं नम्रतापूर्वक प्रस्ताव करता हूं।

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'abused' शब्द के स्थान पर 'exploited' शब्द और 'economic necessity' इन शब्दों के स्थान पर 'want' शब्द रख दिये जायें।''

***उपाध्यक्षः** क्या भाषण देना आवश्यक है?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** संशोधन सं. 905, श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं देखता हूं कि जहां तक मेरे इस संशोधन का सम्बन्ध है, मुझे बहुत समर्थन मिल रहा है। मैं देखता हूं कि मसौदा-समिति ने इसी आशय का एक संशोधन सं. 907 रखा है।

अपने वर्तमान रूप में खंड निम्न प्रकार है:

> ''...राज्य अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा... कि नागरिकों को आर्थिक आवश्यकताओं के वशीभूत होकर अपने वयस अथवा शक्ति के अनुकूल उपव्यवसायों (अवोकेशन्स) में न जाना पड़े।''

मेरे संशोधन का उद्देश्य ''लिंग'' शब्द भी जोड़ना है, जिससे कि यह फिर इस प्रकार बन जायेगा:

> ''आर्थिक आवश्यकताओं के वशीभूत होकर अपने वयस, लिंग अथवा शक्ति के अनुकूल उपव्यवसायों में न जाना पड़े।''

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि जब तक ऐसी ही आर्थिक व्यवस्था रहेगी, जैसी कि आज है, तब तक यह कल्पना की जा सकती है कि कदाचित स्त्रियों को अत्यधिक आवश्यकता के वशीभूत होकर ऐसा काम करना पड़े जो कि उन अवस्थाओं के अनुकूल न हों, जो कि प्रकृति ने उन पर आरोपित कर रखी है। व्यक्तिगत रूप से मेरा ख्याल है कि ऐसी व्यवस्था करना एक बुद्धिमानी का संशोधन होगा, बुद्धिमानी की बात होगी कि महिलाओं को आवश्यकता से बाध्य होकर कुछ विशेष उपव्यवसायों में न जाना पड़े।

किन्तु, इस संशोधन की सूचना देने के बाद मैंने इस परिषद् में अपनी माननीय महिला मित्रों से पता कर लिया है कि वे इस खंड में इस प्रकार का प्रावधान रखवाने के लिये विशेष उत्सुक नहीं हैं। अतः यद्यपि मेरा विचार इसके प्रतिकूल है, यद्यपि मैं इस संशोधन को रखने के लिये इच्छुक हूं, तदपि मैंने उनकी इच्छा का आदर करने के हेतु इस संशोधन पर जोर न देने का तथा इसे उपस्थित न करने का निश्चय किया है। हां, मैं संशोधन सं. 907 पर निर्णय की प्रतीक्षा करूंगा, जो सरकारी तौर पर रखा गया है।

***श्री सी. सुब्रह्ममण्यम** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यदि एक सदस्य अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर रहा हो, तो क्या उस समय वक्तृता दी जा सकती है?

***उपाध्यक्ष:** मुझे अंत तक पता नहीं चल सका कि श्री कामत अपना संशोधन पेश नहीं करेंगे। हम सब इस मामले में श्री कामत के हाथ में हैं। मैं कोई ज्योतिषी नहीं हूं।

इसके पश्चात् हम संशोधन सं. 906 को लेते हैं। श्री साहू!

श्री लक्ष्मी नारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): उपप्रधान जी, मेरे नाम पर जो संशोधन यहां है मैं उसको अभी प्रस्तावित करता हूं।

...That in clause (v) of article 31, for the words 'their age' the words 'their age, sex' be substituted.''

[कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में ''उनकी आयु'' इन शब्दों के स्थान पर ''उनकी आयु, लिंग'' यह शब्द रख दिये जायें।]

अभी कामत साहब ने यहां फरमाया है कि वे भी चाहते हैं कि यह शब्द सैक्स (sex) यहां रहना चाहिये। लेकिन उन्होंने कहा है कि कई स्त्री मेम्बरों ने इस शब्द को पसन्द नहीं किया, इसलिये उन्होंने इस शब्द को यहां पर नहीं रखा। लेकिन मैं चाहता हूं कि यह शब्द यहां रहे। मैं यह जानना चाहता हूं कि जो उन्होंने यह कहा कि वे इस शब्द को पसन्द नहीं करते, इसका क्या सबब है। हम यह देखते हैं कि पहले ही फंडामैंटल राइट्स (Fundamental Rights) के आर्टिकल 9 में तो शब्द 'सैक्स' का प्रयोग किया गया है। हम लोग यह भी जानते हैं कि हम भाषा में भी लिंग का प्रयोग करते हैं, तब यहां सैक्स शब्द के प्रयोग करने से क्या खराबी होगी, यह मेरी समझ में नहीं आई।

दूसरी चीज़ यह है कि अगर हम इस जगह पर इस सैक्स शब्द को नहीं लावेंगे तो बहुत असुविधा रह जायेगी। इसलिये मैं चाहता हूं कि बात को स्पष्ट करने के लिये यहां यह शब्द जरूर जाना चाहिये:

"unsuited to their age, sex or strength.''

ऐसी बहुत सी फ़ैक्टरीज़ हैं और ऐसी बहुत सी खानें हैं, जहां स्त्रियों का काम करना मुनासिब नहीं। लेकिन बहुत सी स्त्रियां ऐसी हालत में होती हैं कि उनको

[श्री लक्ष्मी नारायण साहू]

वहां जाकर काम करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। इसलिये इसको बन्द करने के लिये यहां स्पष्टतया यह शब्द सैक्स जरूर रखना चाहिये।

तीसरी बात मैं यह देखता हूं कि ड्राफ्टिंग कमेटी के मेम्बरान भी इस शब्द को यहां रखना चाहते हैं। तो फिर जब ड्राफ्टिंग कमेटी के मेम्बर भी जब इस शब्द 'सैक्स' को यहां लाना चाहते हैं, तो फिर इसको यहां से हटाने के लिये कोई सबब नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह शब्द 'सैक्स' यहां जरूर रहना चाहिये जिससे औरतों को बहुत सुविधा हो। हम लोगों के देश में स्त्रियों की हालत बहुत बुरी है और मैं नहीं चाहता कि स्त्रियां जाकर खान में काम करें और रात में भी काम करें और बाध्य होकर ऐसा काम करें जिसमें घर की हालत बहुत खराब हो जाये। इसलिये यह शब्द जरूर रहना चाहिये और मैं ज्यादा इसका कुछ कारण नहीं देता हूं। इन तीन कारणों से मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि यह शब्द यहां जरूर रहना चाहिये और मैं इस अमेंडमेंट को पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** संख्या 907, डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** इसके पश्चात् सं. 908, श्री सैयद अब्दुर्रऊफ़!

***सैयद अब्दुर्रऊफ़** (आसाम : मुस्लिम)ः मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूंः

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'अपने वयस या शक्ति के' इन शब्दों के स्थान पर 'अपने लिंग, वयस अथवा स्वास्थ्य के' यह शब्द रख दिये जायें।"

संशोधनों को देखने में पता चलता है कि जहां तक 'लिंग' शब्द को स्वीकार करने का प्रश्न है, इस परिषद् में सब एकमत हैं। मैंने अपने संशोधन में 'शक्ति' के स्थान पर 'स्वास्थ्य' शब्द जोड़ने का प्रयत्न किया है, क्योंकि मेरे विचार में 'स्वास्थ्य' शब्द में 'शक्ति' शब्द शामिल है और 'स्वास्थ्य' शब्द 'शक्ति' शब्द का परिचायक है, किन्तु 'शक्ति' शब्द 'स्वास्थ्य' शब्द का अवश्य ही परिचायक नहीं

है इसी कारण 'शक्ति' शब्द उपयुक्त नहीं है। यदि हम श्रमिक को नाश से बचाना चाहते हैं, तो हमें उसके स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिये, केवल उसकी शक्ति का ही नहीं। इसलिये मैं विनयपूर्वक इस संशोधन को परिषद् में स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'शक्ति और स्वास्थ्य' इन शब्दों के स्थान पर 'स्वास्थ्य और शक्ति' यह शब्द रख दिये जायें।"

मेरे संशोधन का उद्देश्य केवल शब्दों के क्रम को बदलना है। मेरी युक्ति केवल यही है कि शक्ति स्वास्थ्य की अनुगामी है और नई शब्दावलि सुनने में अच्छी है। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

(संशोधन सं. 910 से 913 तक पेश नहीं किये गये।)

***रैवरैण्ड जेरोम डीसूज़ा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आपने इस संशोधन पर, जो कि मैंने और मेरे कुछ मित्रों ने भेजा है, मुझे एक छोटी सी वक्तृता देने का जो अवसर दिया है, मैं उसके लिये आपका आभारी हूं।

मैं तत्काल ही इस परिषद् को एक बार पुनः आश्वासन दे दूं कि मेरा बयान संक्षिप्त होगा और मैं अब जो कारण बताऊंगा उनसे मेरा विचार इस संशोधन पर जोर देने का नहीं है। किन्तु, श्रीमान्, मैं यह बात को कुछ महत्त्वपूर्ण समझता हूं कि जिन कारणों से हमने यह संशोधन भेजा था वह इस परिषद् को समझ लेने चाहियें और यह मोटे-मोटे सिद्धांत जिन पर हमारा निवेदन आश्रित था, समझ लिये जाने चाहियें, ताकि चाहे इस समय तथा वर्तमान रूप में यह संशोधन स्वीकार्य न हो और इस पर जोर देना बुद्धिमानी न हो, किन्तु इसकी भावना हृदयंगम की जा सके और किसी प्रकार इस महत्त्वपूर्ण तथा गम्भीर प्रलेख अर्थात् हमारे विधान में सन्निहित कर दी जा सके।

श्रीमान्, इस परिषद् के कई भागों से शिकायतें हुई हैं कि हमारा विधान हमारे लोगों की आत्मा अथवा स्वाभाविक बुद्धि को प्रतिबिम्बित नहीं करता, और यह विभिन्न वैदेशिक स्रोतों और वैदेशिक विधानों से लिये हुये प्रावधानों की खिचड़ीमात्र है। किसी हद तक ऐसा होना अनिवार्य था, किन्तु मुझे विश्वास है कि विधान

[रैवरैण्ड जेरोम डीसूज़ा]

बनाने वालों ने विधान के इस भाग, निदेशक सिद्धान्तों में कुछ ऐसे सिद्धान्त समवेत करके इस आलोचना का अंशतः निराकरण कर दिया है।

हां, श्रीमान्, हमारे लोगों के विशेष गुणों में एक बात उनकी प्रतीक है, वह है पारिवारिक बंधन की शक्ति एवं पवित्रता, वह है ऐसी पवित्र भावना कि हम गार्हस्थ्य जीवन के संगठन एवं वातावरण के विचारों को पवित्र समझने के आदी हो गये हैं। अतः मुझे विश्वास है कि इस परिषद् का प्रत्येक वर्ग यह अनुभव करेगा कि यह उचित है कि हमारे राष्ट्र एवं प्रजाति की यह प्रबल तथा परंपरागत भावना किसी न किसी प्रकार हमारे विधान में व्यक्त की जाये। श्रीमान्, मैं कह सकता हूं कि यदि हमारे लोगों के गुण, शक्ति तथा पुरुषत्व आक्रमणों एवं परतंत्रता की इतनी शताब्दियों के पश्चात् भी आज बने हुए हैं, तो इसका कारण यही है कि बाह्य एवं राजनीतिक परिवर्तनों के होते हुए भी हमारे देश में परिवार की शक्ति, इसकी आश्रयदाता शक्ति, गुणों और नैतिक शक्ति को प्रेरित करने और बनाये रखने की इसकी क्षमता, कभी कम नहीं हुई, वह कभी पूर्णतया समाप्त नहीं हुई। वर्ण व्यवस्था में जो कुछ खूबियां हैं—और कोई भी यह नहीं कहेगा कि इसमें बुराई ही बुराई है—मैं कह सकता हूं कि वे खूबियां पारिवारिक भावना का ही विस्तार है, और इससे उत्पन्न कौटुम्बिक बंधनों के प्रति आसक्ति सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च प्रशंसनीय गुण हैं।

श्रीमान्, हम विधान द्वारा समाज के संगठन का कानून बनाते हैं। हम गांवों की, प्रांतों की, केन्द्र की, आदिवासियों की, अन्य सम्प्रदायों की और समाज के सब प्रकारों की चर्चा कर रहे हैं। और समाज का आधारभूत अंग परिवार है, इसकी सीमा और गुण प्रकृति ने स्वयं निश्चित कर दिये हैं। बाह्य शिष्ट समाज के प्रकार तथा रूप विभिन्न हो सकते हैं तथा बदल सकते हैं, किन्तु परिवार की सीमायें, गुण एवं मूल आकृति प्रकृति द्वारा नियत है। यह भी परिवार के वातावरण की ही खूबी है कि वहां उन सामाजिक गुणों का विकास होता है जिनके आधार पर हम यह विधान बना रहे हैं और जिनकी दृढ़ता के कारण हम विधान को क्रियान्वित कर सकेंगे। पारस्परिक सम्मान, पारस्परिक निर्भरता, प्राधिकार एवं व्यवस्था के प्रति आदरभाव, दूरदर्शिता तथा योजना-निर्माण शक्ति, और यहां तक कि अन्य अंगों से समझौता करने की क्षमता, यह मूल गुण परिवार के घेरे में ही विकसित

होते हैं और अति स्थिर रूप से पाये जाते हैं। हमें अपने राजनैतिक तथा सार्वजनिक जीवन में इन्हीं गुणों की अतीव आवश्यकता होगी। श्रीमान्, इतना ही नहीं; देश-प्रेम भी परिवार के प्रेम का विस्तृत और विकसित रूप ही है। हम अपने देश को मातृभूमि या पितृभूमि कहते हैं। हमें अपने प्राचीन इतिहास की संस्कृति, विस्तार एवं महानता का ज्ञान भी नहीं हो पाता, उससे पूर्व ही हम अपने देश से प्रेम करने लगते हैं; क्योंकि हमें उस छोटे से स्थान से प्रेम होता है जहां कि हमारा जन्म हुआ है, क्योंकि उन स्थानों के दृश्य तथा ध्वनियां तथा नजारे सर्वदा हमारी स्मृति में होते हैं। वे दृश्य एवं ध्वनियां जीवन की सर्वाधिक मूल्यवान स्थायी निधियों में से है। अतः मेरे विचार में यह परिषद् इस अनुरोध को नहीं ठुकरायेगी कि किसी न किसी रूप में पारिवारिक परंपरा के प्रति हमारा स्नेह, सम्मान इस विधान में प्रतिबिम्बित होना चाहिये।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इस विषय में गम्भीर मतभेद हैं कि इस संशोधन का क्या आशय होना चाहिये, परिवार को किस रूप में रक्षा की जानी चाहिये तथा इसका स्थायित्व किस प्रकार स्थिर रखना चाहिये। श्रीमान्, मैं स्पष्टतया आपके समक्ष संक्षिप्त रूप में बता दूं कि परिवार के स्थायित्व को बनाये रखने के साधनों के विषय में मेरे दिमाग में क्या बात है। सर्वप्रथम, मेरा विश्वास है कि इसका यह आशय है कि अधिकांश रूप में, समाज की सामान्य अवस्था में, कुटुम्ब माता को इतना समय एवं स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह अपना सारा ध्यान अपनी संतान के लालन-पालन तथा परिवार के पोषण में लगा सके। मैं यह नहीं कहता कि वह सर्वदा ऐसा ही करने के लिये बाध्य है—इसमें अपवाद भी होते हैं, तथा कभी-कभी यह सम्भव है कि उसे सार्वजनिक सेवा एवं सार्वजनिक जीवन के उच्च कार्यों में अपनी शक्ति लगाना सुविधाजनक जान पड़े। किन्तु सामान्य अवस्था में यही उसका प्रमुख तथा पवित्र कर्त्तव्य है और इसका यह आशय है कि आजीविका उपार्जन करने वाले को, चाहे वह मज़दूर हो, चाहे वह देश में सबसे दरिद्र हो, इतना पारिश्रमिक मिलना चहिये कि जिससे वह अपनी पत्नी तथा बालकों का निर्वाह कर सके, उसे अपने परिवार के योग्य वेतन मिलना चाहिये। इसी विचार को आधुनिक सामाजिक कानूनों में अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है। अतः मैं कहता हूं कि उदार अर्थ शास्त्र के नियमों के हिसाब से कार्योनुसार-वेतन के सिद्धान्त पर ही, परिवार के कर्त्ता को उसके काम का वेतन नहीं मिलना चाहिये।

[रैवरैण्ड जेरोम डीसूज़ा]

मैं तो बल्कि यह कहता हूं कि उसे परिवार का कर्त्ता होने की हैसियत से और समाज के संगठन का एक सर्वाधिक महत्त्व का अंग होने की हैसियत से समाज से जीविका प्राप्त करने का अधिकार है, जो जीविका कि अंशतः उस कार्य पर निर्भर नहीं होगी जो कि वह करता है। एक तो यह सिद्धान्त इस संशोधन में सन्निहित है।

दूसरी बात, मुझे विश्वास है कि इस संशोधन का, परिवार की पवित्रता के इस विचार का यह आशय है कि राज्य विवाह-पद्धति को सर्व सम्भव ढंगों से, स्थायी एवं एक-विवाह प्रथा के रूप में, स्वीकार करने एवं प्रोत्साहित करने के लिये तैयार है। मैं इस परिषद् का ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि सब समाजों में अब केवल एक-विवाह प्रथा को ही कानूनी रूप में स्वीकार करने की ओर लोगों का झुकाव है। इसके अतिरिक्त मैं जानता हूं और मैं यहां इस विषय पर बहस नहीं करना चाहता, हमारे देश की महिलाओं की ओर से यह मांग की जाती है कि उन्हें किसी मात्रा में उन बन्धनों को तोड़ने की सुविधा मिलनी चाहिये जो कि सुखद बंधन नहीं रहे हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि जब दाम्पत्य जीवन अत्यन्त दुःखद बन जाये तो पृथकत्व युक्तियुक्त हो सकता है। मैं कम से कम, यह अनुरोध करता हूं कि तलाक के लिये बढ़ती हुई सुविधाओं पर राज्य को सावधानी तथा समझदारी से, बल्कि विरोध भावना से गौर करना चाहिये, जिससे कि परिवार का स्थायित्व तथा समृद्धि बनी रहे।

तीसरी बात, और मैं जानता हूं कि इस बारे में भी बहुत से मेरा विरोध करेंगे, पर फिर भी इस अवसर पर और इस परिषद् में यह कह देना आवश्यक है कि यह दुर्भाग्य की बात होगी यदि परिवारों को कृत्रिम रीतियों से सीमित करने के कार्य को राज्य-आश्रय या स्वीकृति या प्रोत्साहन दे। हम भारतीयों को प्रकृति से ऐसी वृहद निधि प्राप्त हुई है कि हमारी सम्पत्ति के महानतम साधन अर्थात् हमारे देश के लोगों की, हमारी प्रजाति के श्रमशील नर-नारियों की वृद्धि से हमारे मन में किसी प्रकार का भय न होना चाहिये। अंत में, मैं एक और बात कहूंगा जो कि परिवार की पवित्रता, स्थायित्व एवं स्थिरता के इस विचार में सन्निहित होनी चाहिये। मैं अनुरोध करूंगा कि माता-पिता के अधिकारों का सम्मान होना चाहिये, बच्चों के विषय में माता-पिता के सब उचित प्राधिकारों को मानना चाहिये। हमें विशेषतया यह मान लेना चाहिये कि माता-पिता को ऐसी व्यवस्था करने का अधिकार

है कि उनके बालकों का ऐसी परम्परा एवं श्रद्धा के वातावरण में पालन हो जो कि माता-पिताओं को प्रिय हो, जिससे कि उनके परिवार का सुखी वातावरण, एकरूपता और अभिन्नता, जिनका कि परिवार में साम्राज्य होना चाहिये, नष्ट न हों। यह है मेरा आशय—यह गम्भीर है और बहुत सी बातों पर इसका प्रभाव पड़ता है, किन्तु मुझे विश्वास है कि यह हमारे देश के अत्यधिक बहुमत को स्वीकार्य है—यही है इस संशोधन का आशय। किन्तु जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मुझे पता चला है कि इस रूप में इसका अर्थ स्पष्ट न होने के कारण, शायद इस संशोधन पर गम्भीर मतभेद हो, अत: मैं इस समय इस पर जोर न देने के लिये तैयार हूं। किन्तु मैं चाहता हूं कि यह परिषद् और मेरे मान्य तथा आदरणीय मित्र किसी न किसी प्रकार किसी भी समय तथा किसी भी रूप में ऐसी बात रखें, जिससे कि भावी संतान को भी वही नियामतें प्राप्त हों जो कि उन्हें और हमें उत्तराधिकार में मिली हैं और जिनका हमने उपभोग किया है। वे इस बात को मानें कि किसी देश की महत्ता बनाने के लिये जो महान गुण—व्यक्तिगत महानता—चाहिये, वह सर्वाधिक प्रारम्भिक काल में तथा गार्हस्थ्य के वातावरण में ही विकसित होते हैं। हम आशावादी तथा प्रजातंत्रवादी हैं, किन्तु हम जानते हैं कि मनुष्य के स्वभाव में अनेक बुरी प्रवृत्तियां होती हैं, तथा वे प्रवृत्तियां उसकी अच्छाइयों पर विजय न पा सकें तथा उसकी संकीर्ण एवं समाज-विरोधी भावनायें उसके सद्गुणों को आच्छादित न कर सकें, इसलिये इस कोमल आयु में ही स्थायी सामाजिक सदाचार का बीजारोपण किया जाना चाहिये। अत: मेरे सम्मानित मित्रों, मैं आपसे कहता हूं कि आप उस निधि की ओर ध्यान दें, उस पर विचार करें, जिसकी कोमलतम तथा पवित्रतम स्मृतियां आपके पास हैं, उन ध्वनियों तथा उन आकृतियों की ओर ध्यान दें और आपको उस वातावरण तथा उन लोगों से जो कुछ मिला है, उसका मूल्य समझते हुए आप कुछ ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे इस देश की भावी संतान को भी वही आनन्द प्राप्त हो।

***श्री वी.सी. केशवराव** (मद्रास : जनरल): मैं संशोधन सं. 917 को, जो कि मेरे नाम में है, पेश नहीं करता, किन्तु मैं बाद में मूलाधिकारों के सम्बन्ध में इसे पेश करने का अधिकार सुरक्षित रखता हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं इस समय संशोधन सं. 920 पेश नहीं कर रहा हूं, किन्तु जब हम मूलाधिकारों पर विचार करेंगे तब इसे मैं पेश करूंगा।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मैं संशोधन संख्या 923 भी पेश नहीं कर रहा हूं। इसके बारे में भी वही बात है जो कि मैंने 920 के विषय में कही है।

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर व्यापक पर्यालोचन हो सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): यह ऐसा खंड है जो कि हमारे विधान में अत्यन्त आधारभूत है। जिस प्रकार के संशोधन रखे गये हैं, उनसे भी पता चलता है कि यह सारे विधान के मूल तक जाता है। निसंदेह मेरी सहानुभूति प्रो. के.टी. शाह के संशोधनों के साथ है। उन्होंने दो संशोधन रखे हैं जिनका वास्तव में यह आशय है कि इस खंड में हमें यह बात रख देनी चाहिये कि हमारे राज्य की व्यवस्था ''समाजवादी'' होगी। मैंने प्रस्तावना में एक संशोधन भेजा है जिसमें मैंने कहा है कि 'संघ' शब्द के पहले 'समाजवादी' शब्द जोड़ देना चाहिये। मैं स्वयं तो यह अनुभव करता हूं कि उन्होंने जो विशेष संशोधन रखे हैं, वे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं और मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि वे कम से कम इन संशोधनों का आशय इस विधान में कहीं न कहीं समाविष्ट कर दें। खंड 31 के भाग (2) में लिखा है:

''...समाज के भौतिक साधनों का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो।''

अब ''समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व तथा नियंत्रण को इस प्रकार बांटना कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो'' यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की अतीव विस्तृत परिभाषा है। यह वर्णन इतना व्यापक है कि कोई भी आर्थिक पद्धति इस पर आधारित हो सकती है। यह समाजवादी आर्थिक प्रणाली का भी आधार बन सकता है, जिसमें कि देश के सब साधन राज्य की सम्पत्ति होते हैं तथा सम्पूर्ण समुदाय के कल्याणार्थ प्रयुक्त होते हैं। किन्तु अगली परिषद् में बहुमत यह भी कह सकता है कि रुज़वैल्ट ने जो नई प्रणाली (न्यू डील) का आविष्कार किया, वही सर्वोत्तम पद्धति है और इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यह खण्ड इस बात को भावी संसद् पर छोड़ देता है कि वह अपनी पसंद की सर्वोत्तम योजना बनाये। किन्तु मैं तो यह अनुभव करता हूं कि हमें आज न्यूनातिन्यून यह बात रख देनी चाहिये कि देश के मूलोद्योगों पर राज्य का स्वामित्व रहेगा। 1921 से यह कांग्रेस का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है। कांग्रेस ने इस सिद्धान्त

को स्वीकार कर लिया है कि मूलोद्योगों पर राज्य का नियंत्रण होगा। अभी हाल ही में कांग्रेस ने जो समिति नियुक्त की थी, उसकी रिपोर्ट में चर्चा की गई थी कि मूलोद्योगों का स्वामी राज्य होना चाहिये। इस समय हमने मूलोद्योगों के राष्ट्रीयकरण का कार्य दस वर्ष के लिये स्थगित कर दिया है। किन्तु मैं यह अवश्य अनुभव करता हूं कि हमें अपने विधान में यह बात रख देनी चाहिये कि यह हमारी मूल नीति है। यदि हम विधान में ही यह बात नहीं रखेंगे कि मूलोद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जायेगा तथा उनका उपयोग मुख्यत: राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में ही किया जायेगा, तो हम महान् विश्वासघात के दोषी होंगे। आज इस सिद्धान्त को लागू नहीं करना है, तो भी हमें निदेशक सिद्धान्तों सम्बन्धी इस खंड (2) में यह बात अवश्य रख देनी चाहिये कि मूलोद्योगों का स्वामी राज्य होगा। कांग्रेस के अनुसार देश के भौतिक साधनों के वितरण की यही सर्वोत्तम प्रणाली है। अत: मेरे विचार में प्रो. शाह के संशोधन ने इस मूल सिद्धान्त की ओर ही ध्यान आकृष्ट किया है।

उनका दूसरा संशोधन एकाधिकारों के विरुद्ध है और मुझे उनसे पूर्ण सहानुभूति है। एकाधिकारों की प्रणाली को सर्वत्र अति बुरा माना गया है। अमरीका में राष्ट्र की 54 प्रतिशत सम्पत्ति के स्वामी 60 परिवार हैं और कहा जाता है कि इन औद्योगिक प्रतिष्ठानों के 12 संचालक अमरीका के मंत्रि-मंडल के मंत्रियों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। अतएव मेरे विचार में हमें अन्य देशों से शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये तथा अपने विधान में ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये कि भारत में एकाधिकारों को नहीं रहने दिया जायेगा। इस कारण मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इस विचार को उपयुक्त संशोधन द्वारा इस खंड में सन्निहित कर देंगे।

मैं जानता हूं कि उनके मसौदे में एक गुण है कि उन्होंने यह बात अनिश्चित रहने दी है और मुझे यह आशा है कि वे इस बात को इस खंड में समाविष्ट कर देंगे। इस परिषद् को, जिसमें कि ऐसे एक दल का बहुमत है, जिसने कि इन सिद्धान्तों को पहले ही स्वीकार कर लिया है, इन सिद्धान्तों को विधान में रख देना चाहिये। जैसा मैंने कहा है, डा. अम्बेडकर ने सारी बात अनिश्चित रहने दी है और यह सम्भव है कि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित परिषद् यह व्यवस्था कर देगी कि राज्य मूलोद्योगों का स्वामी होगा और उन पर नियंत्रण रखेगा।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैंने श्री कामत के एक संशोधन (875-ए) में एक संशोधन की सूचना दी थी; श्री कामत ने अपना यह संशोधन पेश नहीं किया। उसमें मेरा उद्देश्य यह था कि 'राज्य वृद्धि का पोषण करेगा' इन शब्दों के स्थान पर 'राज्य विकास को प्रोत्साहित करेगा' यह शब्द रख दिये जायें। संशोधित संशोधन इस प्रकार होता: 'राज्य आर्थिक एवं सामाजिक प्रजातंत्र के विकास को प्रोत्साहित करेगा और उसी उद्देश्य से अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा...'। मैंने सुझाव दिया था कि यह संशोधन अनुच्छेद 31 की प्रथम पंक्ति में शामिल कर दिया जाये। उस दिन डा. अम्बेडकर ने अपना विचार बताया था कि हम ऐसा आर्थिक प्रजातंत्र चाहते हैं जिसका आधार 'एक मनुष्य, एक मूल्य' हो, मेरा सुझाव उसके अनुसार था। यह एक महान् आदर्श है और उन्हें बधाई देता हूं कि उन्होंने उस महान् आदर्श को व्यक्त किया। इन शब्दों के साथ मैं परिषद् से इस अनुच्छेद पर विचार करने का निवेदन करता हूं और मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर मेरी आलोचना के पीछे निहित भावना को स्मरण रखेंगे।

***श्री यदुवंश सहाय** (बिहार : जनरल): आपकी कृपापूर्ण अनुमति से, श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि इस समय परिषद् के सामने जो अनुच्छेद 31 विचारार्थ प्रस्तुत है, मैं उस पर कुछ कहूं तो परिषद् मुझे क्षमा करेगी।

श्रीमान्, यह कहा गया था, सम्भवत: कल ही, कि इस अध्याय का यह अनुच्छेद आर्थिक लोकतंत्र का घोषणा-पत्र है। यह भी कहा गया था कि इस अध्याय में तथा इस अनुच्छेद में हम समाजवाद एवं अन्य वादों के कीटाणु पा सकते हैं। यह भी कहा गया था कि यह अध्याय निर्धन लोगों का अधिकार-पत्र है। मैं अत्यन्त सम्मान के साथ निवेदन करता हूं कि इस अध्याय में अनुच्छेद 31 एक धुरा है, जिसके चारों ओर सब कुछ घूमेगा। इस अनुच्छेद में खंड (3) सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, जिस पर मैं इस परिषद् का ध्यान सादर दिलाऊंगा। किन्तु मुझे खेद है कि मेरे मित्र प्रो. शाह के संशोधन का समर्थन करना मेरे लिये सम्भव नहीं है, क्योंकि मेरा यह सादर निवेदन है कि यह संशोधन अव्यवस्थित शब्दों में है। किन्तु मैं इस परिषद् की जानकारी के लिये यह कह दूं कि जहां तक उनके संशोधन में सन्निहित सिद्धांतों का सम्बन्ध है, मैं उनका समर्थन करता हूं। इसके आशय का मैं भी समर्थन करता हूं। मैं नहीं समझ सकता कि यह महान् परिषद्, जो प्रत्येक देश में केवल एक ही बार समवेत होती हैं, इस बात के लिये इतनी उत्सुक क्यों नहीं है कि स्पष्टतया और साहस के साथ इस अनुच्छेद में यह बात शामिल

कर दे, कि देश के उत्पादन-साधन तथा प्राकृतिक अथवा भौतिक साधन समाज की तथा इसके द्वारा राज्य की सम्पत्ति होंगे। मैं इस बात को नहीं समझ सकता, यद्यपि अधिकांश संशोधनों को यदि आप गौर से देखें, तो पता लगेगा कि वे प्रो. शाह के संशोधन में सन्निहित सिद्धांतों के अनुकूल हैं। मैं नहीं समझ सकता कि क्या कारण है कि कांग्रेस, जो कि यहां अत्यधिक बहुमत प्राप्त दल है, इस बात पर जोर नहीं दे रही।

कल एक माननीय सदस्य ने कहा था कि यह राजनीतिक विषय है और राजनीतिक दलों को ऐसे संशोधन नहीं रखने चाहियें। मैं यह सुनकर बहुत चकित हुआ। विधान-निर्माण राजनीतिक दलों का काम है। जहां तक उस संस्था का सम्बन्ध है, जिसका सदस्य होने का मुझे सम्मान प्राप्त है, अर्थात् कांग्रेस का सम्बन्ध है, हम कांग्रेसजनों ने कई मंचों से करोड़ों लोगों को आश्वासन दिये हैं कि जहां तक राज्य के उत्पादन-साधनों तथा प्राकृतिक साधनों का सम्बन्ध है, वे कुछ थोड़े से इष्ट लोगों के हाथों में नहीं छोड़े जायेंगे। हम अपने वचन को कैसे छोड़ सकते हैं। आखिर, यह निदेशक सिद्धान्त है। मैं आप से यह नहीं कह रहा हूं कि ऐसी व्यवस्था कर दीजिये कि पूंजीपति तथा देश के बड़े धनी लोगों को खानों तथा खनिज पदार्थों के प्रबन्ध का अवसर ही न मिले सके। यह केवल निदेशक सिद्धान्त है। क्या हम इसे अपना उद्देश्य नहीं रखना चाहते कि इस देश के सारे उत्पादन-साधन तथा प्राकृतिक साधन राज्य अथवा समुदाय के स्वामित्व में होने चाहियें। श्रीमान्, मुझे खेद है कि पूंजीपतियों ने यह आडम्बर खड़ा कर दिया है कि यदि आप ऐसी बातें करेंगे, तो हम उत्पादन करना बन्द कर देंगे। मैं जानता हूं कि यहां अधिकांश मित्र पूंजीपतियों के इस आडम्बर से नहीं डरेंगे, क्योंकि आजकल उत्पादन समाज के कल्याण के लिये नहीं होता। यह पूंजीपतियों के कल्याण के लिये है। वे लाभ के लिये उत्पादन करते हैं। इस परिषद् के माननीय सदस्य मेरे से अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि वे लाभार्थ उत्पादन करते हैं और जब तक उन्हें लाभ प्राप्त हुए जायेगा वे उत्पादन करते जायेंगे; जब नहीं होगा, वे नहीं करेंगे। अतएव हमें इस नारे से नहीं डरना चाहिये। जहां तक भारत सरकार का सम्बन्ध है, कहा जाता है कि किसी ने प्रधानमंत्री का हवाला देते हुए कहा था कि दस वर्ष के बाद राष्ट्रीयकरण होगा। पत्रों के समाचार के अनुसार सर आदीश्वर दलाल ने कहा है कि प्रधानमंत्री ने कुछ कह दिया था, इसलिये उत्पादन में बाधा पड़ रही है।

[श्री यदुवंश सहाय]

श्रीमान्, इस अध्याय में और विशेषत: इस अनुच्छेद में क्या हम यह सुझाव देने नहीं जा रहे हैं कि हमें अन्ततोगत्वा उनका राष्ट्रीयकरण करना है, क्या हम यह बात नही कहने जा रहे हैं कि यह राष्ट्र का उद्देश्य है, यह राष्ट्र का लक्ष्य है। हमने अगस्त के प्रस्ताव में कहा था कि भूमि कृषक की सम्पत्ति है। आपने यहां विशाल एवं ज्योतिर्मय शब्द रखे हैं—सामाजिक न्याय, राजनीतिक न्याय तथा आर्थिक न्याय। वे अतीव सुन्दर एवं महान् शब्द हैं, किन्तु वे करोड़ों श्रमिकों से बहुत दूर दिखाई पड़ते हैं। हम यहां क्यों न कह दें कि आज नहीं कल नहीं, पर दूर भविष्य में समाज उन वस्तुओं का स्वामी होगा जो प्रकृति तथा ईश्वर से उसे दान में मिली हैं। मैं समाजवादी दल का सदस्य नहीं हूं, किन्तु मैं उस कांग्रेस का सदस्य हूं जिसके यहां कई सदस्य हैं। क्या मैं डा. अम्बेडकर से अनुरोध करूं, जो कि देश के पददलित अछूतों के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, कि वे हमारे हृदयों से इस आशा को मिटा न दें कि भविष्य में समाज के प्राकृतिक साधन थोड़े से विशेषाधिकार-प्राप्त लोगों की सम्पत्ति नहीं होंगे, अपितु देश के निर्धन लोगों की सम्पत्ति होंगे, सबके लाभ तथा कल्याण के लिये होंगे।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यही एक ऐसा खंड है, जिससे जनसाधारण में भविष्य के लिये कुछ आशा का संचार हो सकता है। खंड (2) तथा (3) निर्धन लोगों के लाभार्थ रखे गये हैं। निस्संदेह, यह अच्छा होता यदि इस खंड को इस अनिश्चित भाषा में न रख कर अधिक सुनिश्चित शब्दो में रखा जाता। सामान्य मुनष्य के नाते, साधारण मनुष्य के नाते, मैं इन खंडों में भविष्य के लिये कुछ आशा-किरण देख सकता हूं। यहां जो माननीय सदस्य समवेत हुए हैं, उन सबका उद्देश्य यथा-सम्भव शीघ्र ही समाजीकरण करना है। जब तक यह खंड हैं, भारत में पूंजीवाद के फलने-फूलने की कोई सम्भावना नहीं है। मैं मसौदा-समिति और उसके प्रधान का अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि उन्होंने विशेषत: यह खंड रखे हैं, और मेरी केवल यही शिकायत है कि उन्हें अधिक सुनिश्चित भाषा में नहीं रखा गया। श्रीमान्, आज के यही नारे हैं कि जनोपयोगी सेवाओं को नगर-समितियों के अधिकार में दे दिया जाये तथा उद्योगों एवं उत्पादन-साधनों का राष्ट्रीयकरण कर

दिया जाये और जब तक यह बातें नहीं होती तब तक जनसाधारण के लिये कोई आशा नहीं है। आज भूमि कुछ लोगों के हाथों में संकेंद्रित है और किसान अपने आपको गम्भीर कठिनाइयों में पाता है। एक मित्र भारत में सामंतशाही समाप्त करने के विषय में संशोधन रख रहे थे। जब ऐसी अनुभूतियां होंगी जो शताब्दियों से पीड़ित हैं। उनसे कई घंटो तक तथा कई दिनों तक बिना पारिश्रमिक काम करने की आशा की जाती है, जब कि कारखानों में निश्चित कार्य-समय होता है। मुझे बहुत प्रसन्नता है, श्रीमान्, कि मूल अधिकारों में बेगार तथा बलात्श्रम को रोकने के लिये प्रावधान रखा गया है। मैं विधान निर्माताओं से निवेदन करता हूं कि वे इस बात का ध्यान रखे कि इसका प्रत्येक शब्द कार्यान्वित किया जाये। सद्दिच्छाओं से या आडम्बरमय शब्दों के रखने से कोई लाभ नहीं है।

इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं बोल सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** मुझे अत्यन्त खेद है। मेरे विचार से पर्याप्त पर्यालोचन हो चुका है। डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, इस अनुच्छेद में जो बहुत से संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें केवल चार हैं, जो विचारार्थ शेष हैं। सर्वप्रथम मैं श्री कृष्णमूर्ति राव के संशोधन को लेता हूं। यह केवल शाब्दिक संशोधन है और मैं तुरन्त ही कहता हूं कि मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये सर्वथा तैयार हूं।

तत्पश्चात् मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत तीन संशोधन रह जाते हैं। उनका प्रथम संशोधन है कि 'नागरिकों' शब्द के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रख दिये जायें। यदि वे केवल यही संशोधन रखते तो मुझे उनके संशोधन को स्वीकार करने में कोई बहुत अधिक कठिनाई नहीं होती, किन्तु वे 'समान रूप से नर और नारी' इन शब्दों को भी हटाना चाहते हैं जिस पर मुझे बहुत आपत्ति

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है। अत: मैं उनसे कहूंगा कि वे अपने इस विशेष संशोधन पर जोर न दें तथा विश्वास रखें कि जब इस विधान पर इस परिषद् में विचार हो चुकेगा तथा यह शाब्दिक परिवर्तनों के लिये मसौदा-समिति के पास पुन: भेजा जायेगा, तब मैं उनके सुझाव का इसमें समावेश करने के लिये बिल्कुल तैयार होऊंगा, क्योंकि मैं बिल्कुल समझता हूं कि 'प्रत्येक नागरिक' ये शब्द 'नागरिकों' शब्द से अधिक अच्छे हैं।

उनके अन्य संशोधनों, अर्थात् अनुच्छेद 31 के उप-खंड (2) और (3) के स्थान पर उनके अपने खंड रखने के विषय में मुझे बस यही कहना है कि मैं प्रो. शाह के संशोधनों पर विचार करने के लिये बिल्कुल तैयार हो जाता, यदि वे सिद्ध कर देते कि वे अपने खंड रख कर जो बात करना चाहते हैं वह विद्यमान भाषा के अंतर्गत होना सम्भव नहीं है। जहां तक मैं देख सकता हूं, मेरे विचार में मसौदे में जो भाषा रखी गई है वह अधिक विस्तृत है, जिसमें वे भी बातें सम्मिलित हैं जो प्रो. शाह ने रखी हैं और इस कारण मेरी समझ में नहीं आता कि इस खंड की जगह, जो कि एक उद्देश्य विशेष से जानबूझ कर व्यापक भाषा में रखा गया है, इन सीमित खंडों को रखने की क्या आवश्यकता है। अत: मैं उनके दूसरे तथा तीसरे संशोधनों का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में से 'समान रूप से नर और नारी' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में 'कि नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से...पर्याप्त अधिकार हो' इन शब्दों के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक को...पर्याप्त...अधिकार हो' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रख दिया जाये:

'(2) कि देश के प्राकृतिक साधनों का, जो कि खानों, खनिज सम्पत्ति, वनों, नदियों तथा बहते हुए जलों के रूप में एवं देश के तट के साथ-साथ सागर के रूप में हैं, स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध सामूहिक रूप से देश में निहित होगा तथा देश के ही अधीन होगा और समाज की ओर से राज्य ही उनका विकास करेगा तथा उन्हें उत्पादन कार्य में लगायेगा, जो कि (अर्थात् राज्य) केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों अथवा स्थानीय शासक प्राधिकारी अथवा कानूनी निगम द्वारा प्रतिरूपित होगा, जैसे भी संसद् के कानून द्वारा व्यवस्था की जायें।'

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(3) कि भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन में, सामाजिक सेवा में, अथवा सार्वजनिक हित की चीजों में किसी रूप में गैर-सरकारी एकाधिकारी नहीं होंगे और न ही उत्पादन और वितरण के साधनों का गैर-सरकारी हाथों में संकेन्द्रण होगा और ऐसे संकेन्द्रण या एकत्रीकरण को रोकने के लिये राज्य प्रत्येक उपाय काम में लायेगा।'

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'संकेन्द्रण' शब्द के स्थान पर 'अनुचित संकेंद्रण' यह शब्द रख दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'abused' शब्द के स्थान पर 'exploited' शब्द और 'economic necessity' के स्थान पर 'want' शब्द रख दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'उनकी आयु' इन शब्दों के स्थान पर 'उनकी आयु, लिंग' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'उनको आयु या शक्ति के' इन शब्दों के स्थान पर 'उनके लिंग, आयु या स्वास्थ्य के' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'कि उनकी शक्ति और स्वास्थ्य' इन शब्दों के स्थान पर 'कि उनके स्वास्थ्य और शक्ति' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 संशोधित रूप में विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 31, संशोधित रूप में, विधान में जोड़ दिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 31-ए को लेंगे।

अनुच्छेद 31-ए

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन संख्या 927 मेरे नाम में है, किन्तु श्री संतानम् ने इस संशोधन में एक संशोधन दिया है जो इसके स्थान पर रखने के लिये हैं। मैं देखता हूं कि उसकी भाषा अधिक अच्छी है। श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मेरे संशोधन के स्थान पर उन्हें अपना संशोधन रखने को अनुमति दी जाये। यदि आप चाहते हैं कि मैं नियमित रूप से अपना संशोधन प्रस्तुत करूं तो मैं ऐसा कर दूंगा, किन्तु मैं 31-ए के स्थान

पर उनका संशोधन स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। आप जैसा भी निदेश दें, मैं वैसा ही करने को तैयार हूं।

***उपाध्यक्ष:** श्री सन्तानम् प्रस्ताव रख सकते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'31-ए. राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिये कार्यवाही करेगा और उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में प्रकार्य करने देने के लिये उन्हें यथावश्यक शक्ति एवं प्राधिकार प्रदान करेगा।' ''

श्रीमान्, मुझे इस खंड की आवश्यकता को विस्तार से बताने की जरूरत नहीं है। कई माननीय सदस्यों ने ग्राम-पंचायतों के विषय में ऐसे ही संशोधन भेजे हैं, किन्तु उन्होंने इसके साथ स्वावलम्बन की तथा अन्य शर्तें लगा दी हैं, जिन्हें कि हम में से कइयों ने निदेशनों में रखना वांछनीय नहीं समझा। ग्राम-पंचायतों को क्या शक्तियां दी जानी चाहियें, उनके क्या प्रदेश होने चाहियें तथा इसके क्या प्रकार्य होने चाहियें। प्रांत-प्रांत तथा राज्य-राज्य में विभिन्न होंगे और यह वांछनीय नहीं है कि इस विधान में कोई अटल निदेशन दिये जायें। कई बहुत छोटे-छोटे ग्राम हो सकते हैं, जो इतने दूर-दूर हों कि 50 परिवारों के लिये ही हमें एक ग्राम पंचायत की आवश्यकता हो; अन्य स्थानों पर उन्हें एक वर्ग में एकत्र करना वांछनीय हो सकता है ताकि वे छोटे नगर बन जायें तथा कुशलतापूर्वक लगभग नगर-समितियों का सा प्रबंध चला सकें। मेरे विचार में यह प्रांतीय धारा सभाओं पर छोड़ दिया जाना चाहिये। यहां पर केवल यही प्रयत्न किया गया है कि एक सुनिश्चित तथा असंदिग्ध निदेशन दे दिया जाये कि राज्य ग्राम-पंचायतों के संगठन करने के लिये कार्यवाही करेगा तथा उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में प्रकार्य करने देने के लिये यथावश्यक शक्तियां तथा प्राधिकार प्रदान करेगा। जितने संशोधन आये हैं उन सब में यह बात समान है कि इस देश में स्वशासन तथा स्वतंत्रता का सम्पूर्ण ढांचा संगठित ग्राम्य जीवन पर आश्रित होना चाहिये और यही बात इस संशोधन का सैद्धांतिक आधार रखी गई है। मुझे आशा है कि इसे एक मत से स्वीकार कर लिया जायेगा। धन्यवाद, श्रीमान्।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं।

(इसी समय सेठ गोविंददास बोलने के लिये खड़े हुए)

***उपाध्यक्षः** यदि आप कुछ और पर्यालोचन करना चाहते हैं, तो प्रो. रंगा अपना संशोधन प्रस्तुत करें, तत्पश्चात् कर सकते हैं।

***एक माननीय सदस्यः** प्रो. रंगा यहां नहीं हैं।

***उपाध्यक्षः** मैं द्विविधा में हूं। यह संशोधन स्वीकृत हो चुका है। यदि मैं एक वक्ता को अवसर दूं तो सारे प्रश्न पर फिर बहस करनी होगी। मैं इस विषय में विशेषज्ञों के परामर्श को मूल्यवान समझूंगा।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगरः** यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं केवल उस प्रणाली का हवाला दूं जो कि इस परिषद् में तब प्रयोग की जाती है जब कि यह परिषद् व्यवस्थापिका सभा के रूप में बैठती है। यदि एक सदस्य जो विधेयक का प्रस्तावक है, किसी संशोधन को स्वीकार भी कर ले, तो वह यह संकेत मात्र होता है कि अन्य सदस्यों को क्या कार्यविधि अपनानी चाहिये। वे तत्पश्चात् भी वक्तृतायें दे सकते हैं तथा प्रस्तावक को उनके बोलने के बाद उत्तर देने का सदा अधिकार होता है। कई विषयों पर जिनमें सिद्धांत का प्रश्न नहीं होता, पर्यालोचन संक्षिप्त करने के हेतु लोग यह जानना चाहते हैं कि सरकार का क्या दृष्टिकोण होगा। यदि यह व्यर्थ समझा जाये तो वे उस विषय पर शायद अधिक जोर नहीं दें, और यही कारण है कि डा. अम्बेडकर ने कह दिया है कि वे इस संशोधन को स्वीकार करते हैं। अभी भी जब वक्तृतायें अथवा पर्यालोचन समाप्त हो जायें तब वे उत्तर दे सकते हैं यह अति महत्त्वपूर्ण विषय है तथा प्रत्येक सदस्य इस पर कुछ प्रकाश डालना चाहता है।

***उपाध्यक्षः** ऐसा है तो मैं सर्वप्रथम श्री प्रकाशम् से बोलने का अनुरोध करता हूं।

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे प्रसन्नता है कि सरकार ने इस संशोधन को सुन्दरता से स्वीकार कर लिया है और वह इसे संविधान में समाविष्ट करने के लिये सहमत हो गई है। हमें संविधान के निर्माण के समय प्रारम्भ में ही इस संशोधन को रखने का प्रयत्न करना चाहिये था।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मुझे पता नहीं चलता कि वे किस सरकार की चर्चा कर रहे हैं।

***श्री टी. प्रकाशम्:** आज जिस प्रकार सरकार स्थापित है, मैं उसी की चर्चा कर रहा हूं।

यह ऐसा विषय है जो कि देश को और इस परिषद् के सदस्यों को बहुत प्रिय है। उन्होंने व्यापक पर्यालोचन में जिस प्रकार भाग लिया तथा इस बात को पर्यालोचन में सबसे आगे रखा कि यह बात विधान में ही रखी जानी चाहिये, उससे यह प्रगट हो गया कि यह विषय उन्हें कितना प्रिय है। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने भी, जो कि विधान-परिषद् के अध्यक्ष हैं, इसी पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है कि ग्राम-पंचायतों को ही विधान का आधार बनाना चाहिये।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी:** सरकार का हमारे पर्यालोचनों से क्या सम्बन्ध है?

***उपाध्यक्ष:** उनका संकेत विधान-परिषद् के अध्यक्ष की ओर था, सरकार की ओर नहीं।

***श्री टी. प्रकाशम्:** मैंने सरकार की चर्चा नहीं की है। धन्यवाद।

डा. राजेन्द्र प्रसाद ने अपना मत इस पक्ष में व्यक्त किया है कि ग्राम-पंचायतों को उस समस्त विधान का आधार बनाना चाहिये, जो विधान आजकल हम बना रहे हैं। श्रीमान्, दस मई को डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इस विषय पर अपने विचार प्रगट किये थे। वैधानिक परामर्श दाता सर बी.एन. राव ने जब इस विषय पर विचार किया तब उन्होंने भी इस विषय से सहानुभूति प्रगट की, किन्तु उन्होंने बताया कि अब विधान का आधार बदलने का प्रयत्न करने का समय नहीं है, क्योंकि इस काम में हम काफी दूर बढ़ चुके हैं। श्रीमान्, मैं भी सहमत हूं कि यदि त्रुटि हुई है तो त्रुटि हमारी थी कि हम काफी सावधान नहीं रहे तथा इस बात को उचित समय पर परिषद् में नहीं रखा। जब बात इतनी देर में उठाई गई तो मसौदा-समिति के सभापति डा. अम्बेडकर से आशा नहीं कर सकता था कि वे इसे स्वीकार करने की कृपा करें।

श्रीमान्, ग्राम-पंचायत या ग्राम इकाई को विधान का वास्तविक आधार न बनाने से अत्यन्त गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। यह तो सबको स्वीकार करना पड़ेगा

[श्री टी. प्रकाशम्]

कि यह ढांचा ऊपर से आरम्भ हुआ है तथा नीचे तक पहुंचता है। इस विषय में डा. राजेन्द्र प्रसाद ने स्वयं जो सुझाव दिया था वह यह था कि ढांचा नीचे नींव से आरम्भ होना चाहिये तथा ऊपर जाना चाहिये था। श्रीमान्, इसी ढांचे का स्वर्गीय महात्मा गांधी ने संकेत किया था तथा लगभग तीस वर्ष तक इसके निर्माण के लिये प्रयत्न किया था। इन परिस्थितियों में यह बहुत सौभाग्य की बात है कि यह इस समय किया जाये, इसका समावेश किया जाये तथा उचित तरीके से इसे क्रियान्वित किया जाये। मैं वास्तव में श्री सन्तानम् को इस पर बधाई देता हूं कि उन्होंने इस संशोधन को इस रूप में उपस्थित किया ताकि वे सब, जिन्होंने कि संशोधन भेजे थे और जिनमें मैं भी हूं इसे मानने के लिये तैयार हो गये, क्योंकि इससे प्रत्येक प्रांत तथा समस्त भारत के लोगों को अवसर मिल जाता है कि वे इस आधार पर चल कर सारी रचना कर सकें और इस समय विधान की प्रगति में बाधा न पड़े।

श्रीमान्, इस परिषद् के योग्य मित्रों में से एक उस दिन मुझे कह रहे थे कि "आप ग्राम-पंचायतों तथा इन सब बातों के विषय में क्यों सोच रहे हैं? बैलगाड़ियों का समय गया, अब वह कभी नहीं लौटेगा"। यह उनके विचार थे। मैं उन मित्र महोदय से कह दूं कि इस देश में जिन ग्राम-पंचायतों की स्थापना तथा निर्माण का विचार किया जा रहा है, वे बैलगाड़ियों के ग्रामों की पंचायतें नहीं होंगी। श्रीमान्, इस प्रस्ताव के अन्तर्गत जो ग्राम-पंचायतें स्थापित की जायेंगी, जो कि मानों सरकार की आज्ञानुसार स्थापित की जायेंगी, वे ऐसी ग्राम-पंचायतें होंगी जो जंगलों में काटी हुई ईंधन को किराये के रूप में कुछ धन प्राप्त करने के लिये कस्बों तथा शहरों में पहुंचाया करें। यह ग्राम-पंचायतें बैलगाड़ियों को गांव में उत्पन्न धान तथा अन्य चीजों को अपने स्वयं के लाभार्थ तथा जनता के लाभ के हेतु पहुंचाने के काम में लेगी। यह ग्राम-पंचायतें हमारे उन वीरों की भी सेवा करेंगी जो कि अब काश्मीर में युद्ध कर रहे हैं। कुछ दिन हुए मैं वही था; मैंने देखा कि युद्धस्थल में वे मित्र किस तरह से अपना काम कर रहे थे। उनमें से कुछ ने मुझे कहा कि "श्रीमान्, जब आप देश लौटें तो कृपया ऐसी व्यवस्था करें कि खाद्य पदार्थों के मूल्य कम हो जायें तथा हमारे लोग जब रहने के लिये छोटे-छोटे स्थानों की मांग करें तो उन्हें वे दिला दिये जायें।" इन सब चीजों में ग्राम-पंचायतें सर्वोत्तम सम्भव तरीके से सैनिक लोगों की सेवा कर सकेंगी।

यह ऐसी चीज नहीं है कि हम अपने इतिहास तथा संसार के इतिहास को भूलकर इस पर घृणा के साथ दृष्टिपात करें। हमारे देश में यह सब से प्रथम बार नहीं किया जा रहा है। इन पंचायतों को पुनः स्थापित करके हम अपने लोगों पर कृपा नहीं कर रहे हैं। जब हम सारे देश में ऐसी संस्थायें स्थापित कर देंगे, तो मैं आपको बता सकता हूं कि अन्न के दुर्भिक्ष नहीं पड़ेंगे, वस्त्र के अकाल नहीं पड़ेंगे और आजकल हमें खाद्यान्न के आयात पर जो एक अरब 10 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ रहे हैं, वे नहीं करने पड़ेंगे, यह धनराशि देश में बच सकती है। हम वास्तविकता से बहुत दूर पहुंच गये हैं। यह ग्राम-पंचायतें अत्यन्त आश्चर्यजनक तरीके से चोरबाजारी को रोक देंगी। यदि यह ग्राम-पंचायतें ठीक प्रकार से चलाई जायें तथा स्वावलम्बन के आधार पर संगठित की जायें, जिस पर कुछ लोगों को आपत्ति हो सकती है, और यदि ग्राम की स्वशासित अंग बना दिया जाये तो इससे मुद्रास्फीति भी रोकी जा सकती है, जिसे रोकने में सरकार ज्यादा हद तक सफल नहीं हो सकी है। यह ग्राम-संस्था हमारे देश में शांति स्थापित कर देगी। आज सरकार अन्य देशों से खाद्यान्न मंगाने तथा इसका वितरण करने में यहां ऊपर से कुछ भी करती हो। खाद्यान्न साधारणतः उन साधनों के द्वारा जो कि हमारे पास केन्द्र या प्रान्तों में हैं, जनसाधारण में बांटा नहीं जा सकता। जहां तक इस मामले का सम्बन्ध है, सारी कठिनाई तत्काल दूर हो जायेगी। मैं आपको यह भी बता दूं कि हमारे देश में साम्यवाद का जो भय है—हम देख रहे हैं कि चीन में क्या हो रहा है, हमने देखा कि चेकोस्लोवेकिया में क्या हुआ और हम जानते हैं कि बर्मा में क्या स्थिति है, हम जानते हैं कि हमारे देश में ही साम्यवाद के विषय में क्या स्थिति है। यदि ग्रामों का इस प्रकार संगठन कर दिया जाये तथा उन्हें उचित रूप में चलाया जाये तो साम्यवाद को तत्काल रोका जा सकता है। हमारे लोगों के लिये साम्यवादी बनने का कोई प्रलोभन ही नहीं रहेगा और वे हमारे अपने ही आदमियों का इस प्रकार वध नहीं करते फिरेंगे जैसे कि वे करते रहे हैं। इन सब कारणों से मैं इसका समर्थन करूंगा और मैं इस बात के लिये बहुत उत्सुक हूं कि विधान के स्वीकृत होते ही इस पर सब प्रांतों में जितनी जल्दी हो सके, अमल किया जाये और मैं आज उस प्रकाश और वैभव को देख रहा हूं जो इस विधान के स्वीकार कर लिये जाने के बाद

[श्री टी. प्रकाशम्]

तथा इस ग्राम-संगठन के अस्तित्व में आ जाने के पश्चात् देश में उत्पन्न होगा।

***श्री सुरेन्द्र मोहन घोष** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं आपका आभारी हूं कि आपने मुझे अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् के प्रस्ताव पर अपने विचार प्रगट करने का अवसर दिया। श्रीमान्, आप देखेंगे कि मेरे नाम एक और संशोधन संख्या 991 है जो कि लगभग मेरे माननीय मित्र के इस संशोधन के समान ही है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने ऐसा सर्व स्वीकृत संशोधन रखा है और माननीय कानून मंत्री डा. अम्बेडकर ने इसे स्वीकार कर लिया है।

श्रीमान्, मेरे विचार में यदि हमारे विधान में इसके समान कोई प्रावधान नहीं होता, तो जहां तक करोड़ों भारतवासियों का सम्बन्ध है, यह विधान कुछ नहीं होता। एक और बात भी है, वह यह कि हजारों वर्षों से भारत में हमारे जीवन का उद्देश्य, जैसा कि विभिन्न कार्यों में व्यक्त होता था, यह था कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। यह मान लिया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण तथा अबाध स्वतंत्रता थी, किन्तु व्यक्ति को उस स्वतंत्रता का क्या करना चाहिये, इस विषय में कुछ निदेशन थे। व्यक्ति को केवल एकता के लिये काम करने की स्वतंत्रता थी। उस स्वतंत्रता से उन्हें हमारे लोगों की एकता की खोज करना है। यदि कोई व्यक्ति हमारी एकता को भंग करने के लिये कार्य करे, उसे स्वतंत्रता नहीं थी। यही सिद्धान्त अनन्तकाल से भारतीय विधान में स्वीकार किया गया था। हमारे शरीर के छिद्रों के समान प्रत्येक ग्राम को यह स्वतंत्रता थी कि वह स्वयं के विचारों को व्यक्त करे, किन्तु इसके साथ ही उस स्वतंत्रता से उन्हें भारत की एकता को स्थापित रखने तथा उसकी रक्षा करने के लिये कार्य करना होता था।

श्रीमान्, हमारी ग्रामीण जनता इस प्रणाली से इतनी परिचित है कि यदि आज हमारे विधान में इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं होता है तो वे इसे अपना विधान नहीं समझते; ऐसा विधान नहीं समझते जिससे वे कुछ परिचित हों, या जिसे वे

अपने ही देश का विधान कह सकें। इसीलिये, श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है और मैं अपने मित्र माननीय श्री सन्तानम् तथा माननीय डा. अम्बेडकर दोनों को बधाई देता हूं कि श्री सन्तानम् ने यह संशोधन पेश किया तथा डा. अम्बेडकर ने उसे स्वीकार कर लिया। श्रीमान्, मैं इसका समर्थन करता हूं।

सेठ गोविन्ददास (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): सभापति जी, यहां पर हिन्दी में इतने कम भाषण होने लगे हैं कि हमारे दक्षिण भारत के भाइयों को समझाने के लिये अगर कोई बात होगी तब तो अब में अंग्रेजी मैं कहूंगा नहीं तो फिर से मैं हिन्दी में बोलना आरम्भ करता हूं।

माननीय डा. अम्बेडकर ने जब इस विधान को पेश करते हुये अपने भाषण में देहातों के सम्बन्ध में कुछ कहा था, तब मुझे बड़ा दु:ख हुआ था और मेरा यह ख्याल है कि इस सभा के अधिकांश सदस्यों को उनके इस कथन पर दु:ख हुआ होगा। परन्तु मुझे बड़ा हर्ष है कि अन्त में उन्होंने माननीय श्री सन्तानम् के इस सुधार को स्वीकार कर लिया। दिन भर का भूला भटका अगर रात को घर आ जाये तो उसे भूला भटका नहीं माना जाता।

मैं उस प्रान्त से आता हूं कि जिस प्रान्त में इस सम्बन्ध में शायद सबसे ज्यादा काम हुआ है। हमारे ग्राम-पंचायत, न्याय पंचायत और जनपद के कानूनों की चर्चा आज सारे हिन्दुस्तान में है। एक समय था जब वह प्रान्त बड़ा पिछड़ा प्रान्त माना जाता था, परन्तु अब समूचे देश को स्वीकार करना पड़ेगा कि कई बातों में हमारा प्रान्त छोटा होते हुये भी इस देश के अन्य प्रान्तों को रास्ता दिखाता है। और जहां तक इस ग्राम-योजना का सम्बन्ध है, वहां तक तो यह बात निर्विवाद है कि मेरे प्रान्त में इस सम्बन्ध में सबसे अधिक काम हुआ है।

यह देश बड़ा प्राचीन देश है और इस देश में ग्राम का सदा ही महत्त्व रहा है। सब प्राचीन देशों में यह बात नहीं रही। मसलन यूनान में शहरों का ग्रामों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व था। वहां पर ऐथेन्स और स्पार्टा के जो जनतंत्र थे उनका आज सारे संसार के इतिहास में महत्त्व है; परन्तु वहां पर ग्रामों का महत्त्व नहीं था। हमारे यहां तो ग्रामों का इतना महत्त्व था कि हमारे प्राचीनतम ग्रंथ उपनिषदों तक में जो कथायें आई हैं उनमें यदि एक ओर तपोवनों और ऋषियों-मुनियों के आश्रमों का वर्णन है तो दूसरी ओर ग्रामों का। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में भी हमारे प्राचीन ग्रामों की चर्चा है। आधुनिक इतिहासज्ञों ने भी

[सेठ गोविन्ददास]

इस बात को स्वीकार किया है, सर हेनरी मैन की ''एनशियेन्ट ला'' नामक पुस्तक में, बेडेन पावेल की ''इंडियन विलेज कम्यूनिटीज'' में, श्री बी.सी. पाल को ''फन्डामेंटल यूनिटी आफ इंडिया' में हमारे प्राचीन ग्राम संगठन का वर्णन है। मैं इस सभा के सदस्यों से इन पुस्तकों को देखने की प्रार्थना करता हूं। इससे उनको मालूम होगा कि प्राचीन समय से हमारे यहां ग्रामों का कितना महत्त्व था। मुसलमानों के राज्य-काल में भी ग्रामों का प्रधान स्थान रहा है। यह तो अंग्रेजों के राज्य के समय बेचारे ग्रामों की पूछ ताछ नहीं रही। इसका कारण था अंग्रेज राज्य। इस देश में मुट्ठी भर लोगों के समर्थन पर कायम रहा। अंग्रेजी राज्य में प्रान्तों की, जिलों की, तहसीलों की और अन्य चीजों की हमारे यहां रचना हुई। ताल्लूकेदारियों, जमींदारियों और मालगुजारियों की रचना हुई। अंग्रेजी राज्य इतने वर्ष तक इस देश पर इन थोड़े से आदमियों पर स्थित रहा।

महात्मा गांधी ने जिस प्रकार इस देश के जीवन के हर एक क्षेत्र में एक क्रांति उत्पन्न कर दी, उसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी किया। वे ग्राम में ही निवास करने लगे थे। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशनों तक को ग्रामों में कराया। और आज जब हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं तो धारा-सभा के सदस्यों को मैं उनके दिल्ली के ही एक भाषण का स्मरण दिलाता हूं, जो उन्होंने यहां पर एशियाटिक कान्फ्रेंस में दिया था। उन्होंने भिन्न-भिन्न देशों से आने वाले प्रतिनिधियों से कहा था कि यदि उनको यथार्थ में भारत के दर्शन करने हैं तो उनको देहात में जाना चाहिये, उनको शहरों में सच्चे भारत के दर्शन नहीं हो सकते। इस देश के 100 में से 80 निवासी आज भी ग्रामों में निवास करते हैं। यदि हम इस सम्बन्ध में इस विधान में ग्रामों का कोई जिक्र न करें तो हमारे लिये बड़े खेद की बात होगी।

मैं माननीय श्री सन्तानम् के इस विचार का समर्थन करता हूं और मुझे विश्वास है कि यह जो डाइरेक्टिव सब प्रान्तों को इस विधान द्वारा दिया जा रहा है, उसके कारण जिस प्रकार मध्यप्रान्त में हुआ है, उसी प्रकार का कार्य मध्यप्रान्त का अनुसरण कर शेष प्रान्त भी करेंगे और ऐसा समय आ जायेगा जब हम प्राचीन समय के अपने वैभव को फिर ग्रामों में देख सकेंगे।

*श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् के यह संशोधन रखने से और मसौदा-समिति के सभापति के इस कथन से कि वे इसे स्वीकार करने जा रहे हैं, ग्रामों में रहने वाले अपेक्षाकृत कम सौभाग्यशाली लोगों के प्रति सार्वभौम निकाय के वास्तविक विचार प्रगट होते हैं मेरे माननीय मित्र श्री प्रकाशम् ने मान्य नेताओं, राजेन्द्र प्रसाद तथा महात्मा गांधी, के वक्तव्य की चर्चा की है। किन्तु हम जानते हैं कि यह तथ्य है कि ग्राम नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में हैं और यदि कोई सुविधायें या स्वशासन देना है तो इस सार्वभौम निकाय द्वारा ग्रामों को दिया जाना चाहिये। उस दिन जब मैंने विधान के मसौदे पर वक्तृता दी थी तब मैंने कहा था कि देहाती क्षेत्रों को स्वशासन देने का कोई प्रावधान नहीं है। अब इस संशोधन के अन्तर्गत हम ग्रामों को आत्म-भरित बनाने तथा वहां स्वशासन स्थापित करने के लिये कुछ शक्ति प्रदान करते हैं। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि समस्त भारत के सात लाख ग्राम विधान में इस संशोधन के प्रावधान का स्वागत करेंगे। श्रीमान्, देहाती क्षेत्रों से जो आगम (मालगुजारी) प्राप्त होते हैं, उनसे ही नगरों का निर्माण तथा वहां सब सुविधायें देना सम्भव हो सका है। किन्तु जो मनुष्य करों के रूप में आगम देता है उसे मूल सुविधायें भी प्राप्त नहीं हो सकी है। मैं अनुभव करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करके हम ग्रामों के पुनर्निर्माण का काफी कार्य करेंगे, जो कि शताब्दियों से नष्ट-भ्रष्ट होने दिये गये हैं। यदि छोटी-छोटी चीजों की चिन्ता की जाये, तो बड़ी चीजें स्वयं ठीक हो जायेंगी। अत: मैं अनुभव करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करके हम अपने ग्रामों के पुनर्निर्माण का काफी कार्य कर रहे हैं, जिन्हें कि आज इस प्रकार के पुनर्निर्माण की अत्यावश्यकता है।

*डा. वी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जब भारत माता अपने विधान को जन्म देगी, तब यदि इस विधान में कोई चेतन तत्व होगा तो वह यही ग्राम-पंचायत-संशोधन होगा जिसे मेरे माननीय मित्र थी सन्तानम् ने प्रस्तुत किया है। यह सुविदित सत्य है कि आज हमारी राजनीतिक व्यवस्था में यह चेतन-तत्व-ग्राम-पंचायत है, इसी से आज भारत संसार में स्वशासित इकाई के रूप में खड़ा है। आज यदि हम सब प्रकार से देश को प्रबल और स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो हमारे विधान में अर्थात् निदेशक सिद्धान्तों में यह खंड होना अत्यावश्यक है।

हां, स्वावलम्बन के विषय में कुछ मतभेद है। जब हम किसी ग्राम के

[डा. वी. सुब्रह्मण्यम्]

स्वावलम्बी होने की बात करते हैं तो मैं उसका यह अर्थ समझता हूं। मान लीजिये एक ग्राम में मूंगफली अधिक होती है, तो वह उसे निर्यात करे चाहे उसे ग्राम के लोगों की आवश्यकता के लिये डालडा तथा अन्य पदार्थ मंगाने पड़ें। उसे स्वावलम्बी बताने से हमारा यही आशय है कि वह जो कुछ सामग्री उत्पन्न कर सकता है वह करे तथा अन्यावश्यक वस्तुएं पड़ौस के ग्रामों से आयात करे। यह है मेरी व्याख्या। किन्तु यह ऐसी चीजें है जिन्हें ग्राम-पंचायतें ही सविस्तार से निश्चय करेंगी।

स्पष्ट है कि जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। यह संशोधन स्वीकृत होना ही चाहिये और हमारे भावी विधान में ग्रामों को अत्यधिक शक्तियां दी जानी चाहियें। वास्तव में हम यह भी नहीं जानते कि हमारे देश में कितने बढ़ई हैं। यदि ग्राम पंचायतें हों तो हमें केवल उनके उल्लेखों को देखने की आवश्यकता है, और हम प्रत्येक ग्राम में बढ़इयों की संख्या निकाल सकते हैं। इन पंचायतों से बहुत लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा। यह खंड अत्यावश्यक है और मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, हम काफी पर्यालोचन कर चुके हैं तथा श्री भारती के बाद मैं बहस बंद करने का प्रस्ताव करना चाहूंगा।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं माननीय श्री सन्तानम् को बधाई देता हूं कि उन्होंने यह संशोधन रखा तथा डा. अम्बेडकर को भी बधाई देता हूं कि उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। मैं यह अवश्य कहूंगा कि मैं इस संशोधन से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हूं, और इसका सीधा कारण है कि आज भी, वर्तमान विधान के अंतर्गत भी, मेरे विचार में प्रांतीय सरकारों को ग्राम-पंचायतें बनाने तथा उन्हें स्वशासित अंगों के रूप में चलाने के पर्याप्त अधिकार हैं। किन्तु इस संशोधन में जितनी भी हद तक यह जाता है, उससे मुझे अपना संतोष अवश्य प्रगट करना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह निदेशक सिद्धांतों में ही है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि श्री सन्तानम् ने स्वावलम्बन के विचार को क्यों स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इस सिद्धान्त को स्वीकार

न करने के जो कारण बताये हैं, वे जरा भी संतोषजनक नहीं है। वास्तव में दो तीन माननीय सदस्यों—श्री रंगा, श्री अनंतशयनम् आयंगर तथा श्री प्रकाशम्—ने इन विचारों के संशोधन भेजे हैं। श्री अनंतशयनम् आयंगर के संशोधन में कहा गया है कि राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों के प्रभाविक विकेन्द्रीकरण की अतीव आवश्यकता है। आखिर इस संशोधन द्वारा उन्हें केवल राजनीतिक स्वतंत्रता दी जा रही है। आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता व्यर्थ है। निदेशक सिद्धान्तों में निहित आशय इस बात पर जोर देता है कि हम देश को किस प्रकार चलाना चाहते हैं। इसी कारण हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि आर्थिक प्रजातंत्र का विकेन्द्रीकरण आवश्यक हैं और इसके लिये आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। गांधीजी ने इस पहलू पर जोर दिया था। यदि भारत को प्रजातंत्र के रूप में प्रकार्य करना है, तो राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र दोनों में विकेन्द्रीकरण सर्वथा आवश्यक है। वास्तव में एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन में भाषण देते हुए महात्माजी ने दिल्ली नगर की ओर संकेत करते हुए कहा था:

> ''यह भारत नहीं है। आप लोग दिल्ली को देख रहे हैं—यह भारत नहीं है। ग्रामों में जाइये; वह भारत है, वहां भारत की आत्मा निवास करती है।''

अत: मैं नहीं जानता कि उन्हें 'स्वावलम्बन' पर शर्म क्यों आती है? महात्माजी ने इसे अच्छी तरह समझा दिया है, और यदि आवश्यक हो तो मैं उनके भाषणों में से कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं माननीय सदस्य को यह बता दूं कि स्वशासन केवल राजनीतिक ही नहीं है। यह आर्थिक या आध्यात्मिक हो सकता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** मैं यह बात अच्छी तरह समझता हूं और यही कारण है कि इसे स्पष्ट कर देना चाहिये। यदि स्वशासन में यह सम्मिलित है तो यह अत्यधिक अच्छा है कि हम इसे स्पष्ट कर दें क्योंकि यह स्पष्टीकरण अत्यावश्यक है। मैं 'स्वावलम्बन' शब्द को गांधी जी के अर्थों में अत्यधिक पसंद करूंगा। स्मरण रहे सब मामलों में स्वावलम्बन नहीं, किन्तु जीवन की अत्यावश्यक चीजों में, यथासम्भव भोजन तथा वस्त्र में स्वावलम्बन। यही गांधीजी ने कहा था। इसका अर्थ सम्पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है। श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति चाहता हूं कि

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

महात्माजी के लेखों में कुछ महत्त्वपूर्ण अंश पढ़ कर सुनाऊं जिससे कि मामला साफ हो जाये। गांधीजी ने लिखा था:

> ''ग्राम स्वराज्य से मेरा यह आशय है कि ग्राम एक पूर्ण प्रजातंत्र हो, जो अपनी मूल आवश्यकताओं के लिये अपने पड़ौसियों पर निर्भर न करे, और फिर भी कई अन्य आवश्यकताओं के लिये वे परस्पर निर्भर हों जिनके लिये निर्भरता आवश्यक हो।''

एक माननीय सदस्य ने कहा था: ''अच्छा, हम क्या कर सकते हैं? कुछ ग्राम केवल धान उत्पन्न करते हैं, वे स्वावलम्बी नहीं बन सकते''। क्या यह ऐसी असम्भव बात है? गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया था कि वे यह सुझाव नहीं दे रहे थे कि ग्राम को इन सब बातों में स्वतंत्र होना चाहिये, किन्तु कुछ बातों में आपको आत्म विश्वास होना चाहिये। आधारभूत भावना यह थी कि काम नहीं तो भोजन नहीं। अब ग्राम्य-जनता सोचती है कि यह स्वराज्य सरकार है अत: खादी तथा भोजन आकाश से टपक पड़ेंगे। गांधीजी का स्वावलम्बन का यह आशय था: ''सरकार से कुछ आशा मत करो; आपके हाथ पैर हैं काम करो; बिना काम आपको भोजन नहीं मिलेगा। यदि आप काम नहीं करेंगे तो आपको भोजन-वस्त्र नहीं मिलेगा''। यह विकेन्द्रीकरण तथा आर्थिक प्रजातंत्र का मूल भाव है। और यदि ग्राम्य-जनों में यह भावना रखनी है तो हमें इसे यहां रख देना चाहिये और उन्हें स्वावलम्बन के विषय में बता देना चाहिये कि 'सरकार से कुछ आशा मत करो। सरकार क्या है? आखिर आप ही सरकार हैं। आपको काम करना चाहिये, आपको उत्पादन करना चाहिये। इन कारखानों पर निर्भर न रहें। अपना चरखा चलाते रहो, अपना अन्न स्वयं उपजाओ''। यही स्वावलम्बन और विकेन्द्रीकरण तथा आर्थिक प्रजातंत्र का मूल अभिप्राय है।

महात्माजी ने कहा था:

''ग्राम स्वराज्य से मेरा यह आशय है कि ग्राम एक पूर्ण प्रजातंत्र हो जो अपनी मूल आवश्यकताओं के लिये अपने पड़ौसियों पर निर्भर न करे और फिर भी कई अन्य आवश्यकताओं के लिये वे परस्पर निर्भर हों जिनके लिये निर्भरता आवश्यक हो। अत: प्रत्येक ग्राम का यह प्रथम कार्य होगा कि वह अपने अन्न की फसल उपजायें और अपने वस्त्र के लिये कपास उत्पन्न करें। उनके पास अपने ढोरों

के लिये चरागाह होना चाहिये, बड़ों और बच्चों के लिये प्रमोदस्थान तथा क्रीड़ास्थल होना चाहिये। तब यदि और भूमि उपलब्ध हो तो धन लाभार्थ फसलें बोनी चाहियें, किन्तु गांजा, तम्बाकू, अफीम तथा एतद्सम फसलें नहीं बोनी चाहियें। ग्राम में एक ग्राम-नाट्यशाला, पाठशाला तथा सार्वजनिक सभा-मंडल होना चाहिये। ग्राम के पानी की नल भी होनी चाहिये जिससे कि शुद्ध जल प्राप्त हो सके। यह नियंत्रित कूपों तथा सरोवरों द्वारा किया जा सकता है। शिक्षा आधारभूत (बुनियादी) पाठ्यक्रम के अंत तक अनिवार्य होनी चाहिये। यथासम्भव प्रत्येक कार्य सहकारी आधार पर चलाया जायेगा। आजकल के समान जातियां नहीं होंगी, जिनमें क्रमशः अस्पृश्यता है। ग्राम्य जनता की शक्ति का आधार अहिंसा तथा सत्याग्रह एवं असहयोग की कला होगी।

(इसी समय उपाध्यक्ष ने समयावधि का संकेत करने के हेतु घंटी बजा दी।)

श्रीमान्, मेरे विचार में महात्माजी ने जीवन के विषय में जो लिखा था उसकी केवल कुछ ही और पंक्तियां है। आपकी अनुमति से मैं उन्हें पूरी करना चाहता हूं:

> ''ग्राम-रक्षकों की अनिवार्य सेवा होगी, जिसमें ग्राम की पंजी (रजिस्टर) के अनुसार क्रमशः लोगों को चुना जायेगा। ग्राम का शासन पांच जनों की पंचायत द्वारा चलाया जायेगा। यह पंचायत प्रतिवर्ष प्रौढ़ ग्रामीणों द्वारा चुनी जायेगी जिनमें ऐसे नर और नारी होंगे जो न्यूनतम प्रदिष्ट योग्यतायुक्त हों।''

यह गांधीजी के विचारों का आशय है और इसलिये मेरी सम्मति में यह अत्यावश्यक है कि यह सार्वभौम निकाय महात्मा गांधी के मूल सिद्धान्तों को घोषित करें तथा उन पर अपने विचार प्रगट करें। उनका अभिप्राय यह था विकेन्द्रीकरण होना चाहिये तथा ग्राम को आर्थिक इकाई के रूप में प्रकार्य करना चाहिये। हां, माननीय श्री सन्तानम् ने कह दिया है कि यह भी सम्मिलित है। मैं केवल यही चाहता था कि यह अधिक स्पष्ट कर दिया जाये ताकि महात्माजी की आत्मा को अत्यधिक हर्ष हो। उन्होंने कहा था कि यदि ग्राम मर जायेंगे तो भारत मर जायेगा, यदि ग्राम जीवित रहेंगे तभी भारत जीवित रह सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं। मुझे और कुछ आगे नहीं कहना है।

(एक माननीय सदस्य बोलने के लिये खड़े हुए।)

*__उपाध्यक्ष:__ इस विषय में मेरा निर्णय अंतिम है। मुझे अभी तक कोई ऐसा सदस्य नहीं दिखाई दिया जिसने श्री संतानम् के प्रस्ताव का विरोध किया हो इसकी प्रशंसा करने के विभिन्न तरीके हो सकते हैं, किन्तु इसकी तह में तथा आधारत: यह वक्तृतायें संशोधन की प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के बाद निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'31-ए राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिये कार्यवाही करेगा और उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में प्रकार्य करने देने के लिये उन्हें यथावश्यक शक्ति एवं प्राधिकार प्रदान करेगा।' ''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

''कि नया अनुच्छेद 31-ए विधान का भाग हो।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 31-ए विधान में जोड़ दिया गया।

तत्पश्चात् परिषद् मंगलवार, ता. 23 नवम्बर सन् 1948 के प्रात 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. VII.11.48
350

अंक 7
संख्या 11

मंगलवार
23 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान का मसौदा–(*जारी*) 709
[अनुच्छेद 32, 33, 34, 34-ए, 35, 36, 37 तथा 38 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 23 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे उपाध्यक्ष महादेय (डा. एच.सी. मुखर्जी) के सभापतित्व में समवेत हुई।

विधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 32

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से संशोधन सं. 933 और 934 साथ ही उपस्थित करूंगा।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

"(1) कि अनुच्छेद 32 में 'शिक्षा' इस शब्द के पश्चात् एक अर्ध विराम (कोमा) तथा 'to medical aid' (चिकित्सा सम्बन्धी सहायता) यह शब्द जोड़ दिये जायें।

(2) कि 'undeserved want (अनर्ह अभावावस्था)' इन शब्दों के स्थान पर 'deserving relief (उचित सहायता)' यह शब्द रख दिये जायें।"

यह भाग शक्ति-आरूढ़ सरकार के लिये निदेशनों के सम्बन्ध में है और इस अनुच्छेद में सामाजिक सहायता तथा अन्य सुविधाओं के विभिन्न पहलुओं का प्रसंग है, जो राज्य को लोगों के कल्याणार्थ प्राप्त कराने का प्रयत्न करना चाहिये। इनमें कर्माधिकार, शिक्षाधिकार तथा वृत्तिहीनता, वृद्धता, रुग्णावस्था, अयोग्यावस्था तथा अन्य "अनर्ह अभावावस्थाओं" में लोक साहाय्याधिकार समाविष्ट है। मेरे संशोधन के स्वीकृत होने से राज्य पर चिकित्सा सम्बन्धी सहायता का भी एक और उत्तरदायित्व हो जायेगा।

दूसरे संशोधन के विषय में मेरा निवेदन है कि यद्यपि 'अनर्ह अभावावस्था यह शब्द अन्य विधानों में प्रयुक्त हुये होंगे, किन्तु "उचित सहायता (deseving relief)"

---

*इस संकेत का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय]

यह शब्द, जो विधानों की भाषा में कोई नये नहीं हैं; आशय को अधिक अच्छे प्रकार से व्यक्त करते हैं तथा स्वीकृत हो जाने चाहिये।

इस देश में स्वास्थ्य की स्थिति तथा मृत्यु के आंकड़े एवं वास्तविक आंकड़ों के अनुसार जीवन की अवधि को ध्यान में रख कर मेरा निवेदन है कि चिकित्सा सम्बन्धी सहायता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

मैं ऐसा नहीं समझता कि इस संशोधन का प्रतिपादन करने के लिये अधिक युक्तियां देने की आवश्यकता है। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): मैं अपने संशोधन सं. 936 को उस रूप में पेश करता हूं जिस रूप में कि वह द्वितीय तालिका में मेरे संशोधन सं. 69 द्वारा संशोधित हुआ है। यदि दोनों को साथ लिया जाये तो मेरा आशय सुस्पष्ट हो जायेगा। मेरे संशोधन का प्रभाव यह होगा कि इस अनुच्छेद में 'लोक (public)' शब्द के स्थान पर 'राज्य' शब्द रख दिया जायेगा। मैं देखता हूं कि भोजन, वस्त्र, निवास स्थान तथा चिकित्सा सम्बन्धी सहायता उठाने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं अन्य एतद्सम सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। मेरे विचार से मेरे मित्र श्री श्यामानन्दन सहाय का चिकित्सक सहायता सम्बन्धी संशोधन उसमें सन्निहित है। भोजन, वस्त्र, चिकित्सा सम्बन्धी सहायता आदि के प्रावधानों को इस अनुच्छेद में विशेष रूप से समाविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं।

*__उपाध्यक्ष__ (डा. एच.सी. मुखर्जी): मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

संशोधन सं. 933, 934 तथा संशोधित रूप में संशोधन सं. 936 अस्वीकृत हो गये।

*__उपाध्यक्षः__ अब मैं अनुच्छेद 32 पर परिषद् का मत लूंगा।

प्रश्न यह है "कि अनुच्छेद 32 विधान का भाग हो।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 32 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 33

***उपाध्यक्ष:** अब परिषद् अनुच्छेद 33 पर पर्यालोचन आरम्भ करेगी।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): मेरे संशोधन सं. 940 का विषय अनुसूचियों के प्रसंग में है, अत: मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 33 पर परिषद् का मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 33 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 33 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 34

***उपाध्यक्ष:** अब परिषद् अनुच्छेद 34 पर पर्यालोचन आरम्भ करेगी।

(*संशोधन संख्या 938 से 947 तक पेश नहीं किए गए*)

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 34 की संख्या 34(1) कर दी जाये तथा इस प्रकार, जो खण्ड '(1) हो जाये, उसके पश्चात् निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये;

(2) राज्य स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन देगा तथा घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करेगा, विशेषत: ग्राम्य क्षेत्रों में, जिससे कि यह क्षेत्र यथासम्भव स्वावलम्बी बनाये जा सकें।'

इस संशोधन को उपस्थित करने में मैं परिषद् का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाना चाहता हूं कि ग्राम्य क्षेत्रों की अवस्था आज अतीव बुरी है। वास्तव में ग्राम्य क्षेत्र खाली हो गये हैं, और जानबूझ कर उन्हें उनकी प्राचीन मौलिकता तथा कार्य प्रेरणा से वंचित एवं विहीन कर दिया गया है। गांवों में अवस्था ऐसी खराब है कि लगभग समस्त कारीगर लोग नगरों में आ गये हैं। यहां तक कि एक नाई भी, जो अच्छी हजामत बनाना जानता हो, गांवों में नहीं ठहरता अपितु नगरों में चला जाता है जहां कि उसे अधिक धन प्राप्त हो सकता है। ग्रामवासियों की सेवा

[श्री महावीर त्यागी]

करके वह अपनी रोटी नहीं कमा सकता। यह नगर मैं जाकर सैलून खोल लेता है। ग्राम का बढ़ई भी, यदि वह अपने काम में चतुर हो, तो ऐसे ही करता है। वह नगर चला जाता है और सुगमता से पांच-छह रुपये प्रतिदिन कमा लेता है। राज भी ऐसा ही करते हैं और दर्जी भी। सारे कारीगर अपने गांवों को छोड़ कर नगरों में चले जाते हैं। मैं यह बात परिषद् के समक्ष रखना चाहता हूं कि इस अवस्था में, जबकि ग्रामीणों की स्थिति ऐसी बिगड़ गई है कि उन्हें अपने मैले कपड़े भी धुलवाने के लिये नगर ले जाने पड़ते हैं, तब ग्रामों में रहने वाली हमारी तीन चौथाई जनता का क्या हाल होगा? हमने यह उल्लेख किया है कि हम आर्थिक प्रजातंत्र चाहते हैं। ग्राम्य क्षेत्रों में विद्यमान वस्तुस्थिति में आर्थिक प्रजातंत्र कैसे स्थापित होगा?

हमने ग्रामवासियों को केवल मताधिकार दिया है। और यह भी प्रति पांच वर्ष वापस ले लेने के लिये—क्योंकि वह हमें मत देगा और तत्पश्चात् कुछ न कर सकेगा। वह केवल मत देने के अधिकार का संरक्षक है; और उसके नेता होने के कारण, उसे निर्वाचन के समय हमें वोट वापस देना होगा। हम सदा उसके नेता हैं। श्रीमान्, मुझे विधान-मंडलों का दस-बारह वर्ष का अनुभव है और मैं जानता हूं कि हम ग्रामीण लोगों के साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं। समस्त आय अधिकांश में नगरों पर व्यय कर दी जाती है। केवल नगरों में ही बिजली तथा सब प्रकार की सुविधायें है। उनकी सड़कें सीमेंट की बनी हुई हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य की व्यवस्था भी नगरों में ही है किन्तु ग्रामीणों की पूर्णतः अवहेलना की जाती है। कोई भी मनुष्य जिसमें कि तनिक भी कार्येच्छा हो, नगर आ जाता है। सब बुद्धिमान व्यक्ति नगरों में आ गये हैं और अब ग्रामों में केवल आलसी लोग शेष रह गये हैं। जो भी मैट्रिक की परीक्षा पास कर लेता है वही नगर आ जाता है तथा किसी न किसी नौकरी में लग जाता है। इस प्रकार ग्राम नष्ट हो रहे हैं। श्रीमान्, यह कथन बहुत अच्छा है कि हम आर्थिक समानता तथा आर्थिक लोकतंत्र चाहते हैं, किन्तु क्या हम इस अवसर पर देश की भावी सरकारों को यह निदेशन नहीं दे सकते हैं कि यह एक मार्ग है जिससे हम आर्थिक लोकतंत्र के अपने उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं। मैं इस बात के विरुद्ध नहीं हूं कि बड़े उद्योग बड़े नगरों में संकेंद्रित हों। वास्तव में यह उद्योग ग्रामों के हृष्ट पुष्ट लोगों को आकर्षित करते हैं। गांव इन उद्योगों के भरती क्षेत्र हैं। ग्रामवासी इन उद्योगों में आकर नौकरी कर लेते हैं, पर इससे नगरों के कलुषित वातावरण में उनका नैतिक पतन ही होता है। यही कारण है कि अंग्रेजों ने उन्हें जानबूझ कर

सब प्रकार निर्बल तथा निर्धन रखा था। उन्हें कार्येच्छा से रहित कर दिया गया क्योंकि अन्यथा वे केवल श्रमिक बन कर काम नहीं करते। श्रीमान्, सारे ग्रामीण नगरों में नहीं आ सकते। यदि आप औद्योगिक नगरों को बढ़ायें भी जायें तो भी आप ग्राम्य क्षेत्रों में रहने वाली वृहत् जनसंख्या को नहीं खपा सकते। आप नगरों में मकानों की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे। इस संशोधन को आपके समक्ष रखने का मेरा उद्देश्य यह है कि हृष्ट पुष्ट लोगों को मशीनों के निकट जाना पड़े इसके स्थान पर मैं मशीनों को उनके निकट ले जाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि मशीनों को ग्रामों में पहुंचाया जाये जिससे कि ग्रामीण लोग, जो कि अपने स्वस्थ वातावरण में अपने मधुर गृहों में रहते हैं, वे अपने परिवारों से वंचित न किये जायें। श्रीमान्, इस समय भूमि पर बहुत बोझ पड़ रहा है। इस परिषद् को शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् 1891 में हमारी जनसंख्या का केवल 61 प्रतिशत भाग कृषि में संलग्न था। 1901 में यह संख्या 66 प्रतिशत थी तथा 1931 में 72 प्रतिशत थी। कृषि-भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो गये हैं तथा कृषि में अब कुछ भी बचत नहीं होती। यदि यही स्थिति रही तो अधिकांश ग्रामवासी नगरों में आ जायेंगे। हम यहां नगरों में अपने जीवन आनन्द से बिता रहे हैं किन्तु गांव वाले, जिनके कि नाम में हम यहां आते हैं, नागरिकता के साधारण विशेषाधिकारों से भी वंचित हैं। अतएव, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन को कृपया स्वीकार कर लिया जाये। हमारा दल, कांग्रेस दल, अपने आदिकाल से ही स्वदेशी तथा घरेलू उद्योगों का प्रसार करता रहा है, किन्तु अब जब कि अपना विधान-निर्माण करने का समय आया है, यदि हम ग्रामवासियों की उपेक्षा करेंगे तो यह ग्राम्यजनों के लिये अतीव निराशाजनक बात होगी। मैं इस परिषद् का और अधिक समय नहीं लेना चाहता क्योंकि इस माननीय महान् परिषद् के अधिकांश सदस्य मेरे संशोधन की उपयोगिता को पहले ही समझते हैं। मुझे आशा है कि माननीय सदस्य संसार के समक्ष सामाजिक क्रांति का एक नया नमूना पेश करने की सम्भावना पर विचार करेंगे। कहते हैं कि रूस में आर्थिक लोकतंत्र है, किन्तु रूस में इस आर्थिक लोकतंत्र ने समस्त शक्ति राज्य के हाथ में एकत्र कर दी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि राज्य स्वेच्छाचारी हो गया है। यदि आप राजनीतिक लोकतंत्र के साथ आर्थिक लोकतंत्र भी स्थापित करना चाहते हैं तथा डा. अम्बेडकर के ''एक व्यक्ति, एक अंग'' के सिद्धान्त को जीवन में क्रियान्वित करना चाहते हैं तो आपको चाहिये कि ग्रामों को स्वावलम्बी तथा आत्मभरित बनायें। अन्यथा ग्रामों के करोड़ों बेकार लोग कभी स्वतंत्रता के फलों का आनन्द नहीं ले सकेंगे; वे आज के समान नगर निवासियों के दास ही बने रहेंगे। राजनीतिक चेतना तथा देशभक्ति तभी उत्पन्न

[श्री महावीर त्यागी]

होगी जबकि वे आर्थिक रूप में संतुष्ट होंगे। ऐसा करने का यही तरीका है कि उनके लिये घरेलू उद्योग स्थापित किये जायें जिससे कि वे अपने परिवारों के साथ अपने सुखद वातावरण में सुखी रह सकें। केवल तभी वे भावी सरकार पर कुछ प्रभाव डाल सकेंगे और देश की प्रगति में सहायता कर सकेंगे। श्रीमान्, इन्हीं शब्दों के साथ मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं तथा आशा करता हूं कि परिषद् इसे स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस संशोधन पर श्री रामालिंगम चेटियर का एक संशोधन है। क्या आप इसे उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी, किन्तु श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि इसमें कुछ परिवर्तन कर दिया जाये, क्योंकि इस परिवर्तित संशोधन के स्वीकृत होने की अधिक सम्भावना है।

मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी, उसके स्थान पर मैं आपकी अनुमति से यह प्रस्ताव करता हूं कि अनुच्छेद 34 के अन्त में हम निम्नलिखित शब्द जोड़ दें:

"और विशेषत: राज्य ग्राम्य-क्षेत्रों में सहकारी ढंग पर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।"

***उपाध्यक्ष:** क्या आप उस अनुच्छेद में कुछ जोड़ना चाहते हैं जो कि पहले ही स्वीकृत तथा पारित हो चुका है?

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर:** इस अनुच्छेद पर इस समय विचार किया जा रहा है।

***श्री अमिय कुमार घोष** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, श्री गुप्तनाथ सिंह के नाम पर एक संशोधन है जो बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि वह संशोधन जो कि अब उपस्थित किया जाने वाला है। संशोधन संख्या 954 है।

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर:** मैं श्री त्यागी के संशोधन के स्थान पर यह रखना चाहता हूं।

***श्री अमिय कुमार घोषः** नया खण्ड 34ए जिसे उपस्थित करने का सुझाव दिया जा रहा है बिल्कुल ऐसा ही है। यह है:

"राज्य घरेलू उद्योगों के विकास करने तथा उन्हें प्रोत्साहन देने और यथासम्भव उन्हें आत्मभरित बनाने का प्रयत्न करेगा।"

***एक माननीय सदस्यः** क्या दो व्यक्तियों को एक ही समय पर परिषद् में बोलने की अनुमति है?

***उपाध्यक्षः** दो व्यक्ति नहीं बोल रहे हैं। मुझे भय है आप गलती कर रहे हैं। श्री घोष को अपने स्थान पर बैठ जाना चाहिये था।

श्री चेटियर, क्या आप अपना संशोधन रख चुकें?

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियरः** श्रीमान्, यही संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** श्री घोष, आप क्या कहना चाहते हैं? कृपया ध्वनि-यंत्र पर आ जाइये।

***श्री अमिय कुमार घोषः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह निवेदन कर रहा था कि जब इसी आशय का एक संशोधन (सं. 954) है, तो श्री महावीर त्यागी के संशोधन पर संशोधन पेश करने के स्थान पर यह अधिक अच्छा है कि हम संशोधन सं. 954 को ले लें जिसका कि वही आशय है। मैं नहीं समझता कि हम श्री महावीर त्याागी के संशोधन में यह संशोधन क्यों रखें।

अब मेरे मित्र जो संशोधन रखने वाले हैं वह इस आशय का है कि राज्य घरेलू उद्योगों के विकास करने तथा उन्हें प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा, आदि। यह श्री महावीर त्यागी के संशोधन पर संशोधन के रूप में है, किन्तु मेरा निवेदन है कि श्री गुप्तनाथ सिंह के नाम में एक संशोधन पहले ही है जिसका कि वही आशय है कि राज्य घरेलू उद्योगों के विकास करने तथा उन्हें प्रोत्साहन देने और यथासम्भव ग्रामों को आत्मभरित बनाने का प्रयत्न करेगा। अतः इस संशोधन के पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतएव हम संशोधन सं. 954 पर पर्यालोचन कर सकते हैं और यदि यह प्रस्तावक को स्वीकार्य हो तो हम इसे स्वीकार कर सकते हैं तथा खण्ड 34ए के रूप में रख सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** श्री रामालिंगम चेटियर का संशोधन इस प्रकार है:

"और विशेषत: राज्य ग्राम्य-क्षेत्रों में सहकारी ढंग पर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।"

यह भी चेटियर द्वारा रखे गये संशोधन की भाषा है। अत: यह नियमित रूप में है। अब इस अनुच्छेद पर पर्यालोचन हो सकता है।

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, इस देश में व्यापक इस भावना के विषय में कोई सन्देह नहीं है कि घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिये। मैं केवल यही बात कहना चाहता हूं कि अब तक घरेलू उद्योग दो कारणों से उन्नति नहीं कर पाये थे। एक तो विदेशी तथा मिल के बने हुये सामान से प्रतियोगिता के कारण और घरेलू उद्योगों के सहायतार्थ कोई संस्था न होने के कारण कच्चा माल पहुंचाना, वेतन देना और सबसे बड़ी बात विक्रय का प्रबंध करना हैं। विक्रय के सम्बन्ध में हमारे अधिकांश घरेलू उद्योगों का बहुत बुरा प्रबन्ध रहा है। इन चीजों को सम्भालने के लिये एक संस्था आवश्यक है और अब तब हम केवल दो ही उपाय ढूंढ सके हैं, या तो गुरू पूंजीपतियों का समावेश, जो कि श्रम का शोषण करते हैं, या सहकारी संस्थायें। हममें से यह किसी का उद्देश्य नहीं है कि हम इन गुरू पूंजीपतियों को प्रोत्साहन दें, जो कि ग्राम के श्रमिकों और यहां तक कि नगर के श्रमिकों का भी व्यवहारत: विदोहन करते हैं। अतएव एक ही प्रणाली हमारे पास है और वह है कच्चे माल के पहुंचाने के लिये तथा उपज के विक्रय के लिये सहकारी समितियों का निर्माण करना। श्रीमान्, इसी कारण मैंने इस संशोधन के उपस्थित करने का साहस किया है और मुझे आशा है कि परिषद् इसे एकमत से स्वीकार कर लेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है कि राज्य के निदेशक सिद्धान्तों सम्बन्धी भाग में अनुच्छेद 34, 32 तथा 31 रखे गये हैं। यदि इन अनुच्छेदों के प्रावधानों को गम्भीरता से क्रियान्वित किया जायेगा और यदि सरकार वास्तव में सच्चाई के साथ इन अनुच्छेदों के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही करेगी, तो मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि यह एक नया घोषणा पत्र होगा—शोषित जनों तथा उत्तराधिकारों एवं विशेषाधिकारों से वंचित लोगों के लिये नवजीवन का घोषणा पत्र होगा, और वह होगा—हमारे देश में आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र की योजना का आधार तथा ढांचा। श्रीमान्, वास्तव में हमें इस देश में इसी आदर्श के लिये कार्य करना चाहिये। यह तर्क दिया जा सकता है कि यह एक अनिश्चित कल्पना

है। आर्थिक लोकतंत्र क्या है और सामाजिक लोकतंत्र क्या है? यदि मुझे ठीक स्मरण है तो जब पंडित नेहरू ने इस परिषद् में उद्देश्यों सम्बन्धी प्रस्ताव रखा था उन्होंने आशा प्रकट की थी कि ''शेष सारे विश्व के साथ-साथ हमारा देश भी समाजवाद की ओर बढ़ेगा'' यद्यपि उनके अपने मन में भी यह संशय था कि लोकतंत्र का क्या अर्थ है, राजनीतिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है अथवा आर्थिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है। किन्तु, श्रीमान्, अनुच्छेद 30 में लिखा है कि हमारे यहां सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय होगा। क्या यह कहना अधिक अच्छा नहीं रहेगा कि हमारे यहां राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र होगा, केवल न्याय ही नहीं, जो कि एक अनिश्चित कल्पना है। (*बाधायें*)

आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र की यह कल्पना 1936 के पश्चात् कांग्रेस द्वारा पारित अधिकांश प्रस्तावों का आधार तथा विषय था; श्रीमान्, मैं विशेषत: कांग्रेस के मेरठ अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव की चर्चा करूंगा जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र का आशय दिया हुआ है। डा. अम्बेडकर ने कहा था कि उनके विचार में राजनीतिक लोकतंत्र का अर्थ है ''एक व्यक्ति, एक मत''; आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ है ''एक व्यक्ति, एक मूल्य''। श्रीमान्, मैं कहूंगा कि मेरे विचार में सामाजिक लोकतंत्र का अर्थ है कि 'समस्त जन, एक श्रेणी; समस्त जन, एक जाति,' और मुझे आशा है कि श्रीमान्, हम जातिरहित तथा वर्गरहित समाज के निर्माण की ओर बढ़ रहे हैं जो गांधी जी ने भारत की सामाजिक व्यवस्था के लिये सोचा था।

श्रीमान्, हमने अब राजनीतिक लोकतंत्र प्राप्त कर लिया है। केवल यहां के, या केवल यूरोप के या केवल अमेरिका के ही नहीं वरन् समस्त संसार के अनुभव से आज हम यह समझ गये हैं कि राजनीतिक लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है, यदि आप इस राजनीतिक स्वतंत्रता को, इस राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक तथा सामाजिक रूप में जनसाधारण के जीवन में क्रियान्वित नहीं करेंगे, तो यह राजनीतिक लोकतंत्र कार्यशील नहीं होगा तथा राजनीतिक लोकतंत्र मृतप्राय: हो जायेगा।

इसी कारण जब लोकतंत्र का विरोध किया जाता है अथवा उसमें बाधा डाली जाती है तो इससे निरंकुश सा शासन स्थापित हो जाता है। यदि राजनीति के लोकतंत्र का ऐसा विकास तथा प्रगति होने दी जाये कि वह आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र बन जाये तो संघर्ष नहीं होगा; युद्ध नहीं होंगे, निरंकुश शासन स्थापित नहीं होगा। आज भी हम देखते हैं कि आधा संसार दास है तथा आधा स्वतंत्र। एशिया तथा

[श्री एच.वी. कामत]

अफ्रीका में भूमि में बड़े-बड़े प्रदेशों पर औपनिवेशिक शासन है। इसी कारण यह साम्यवाद का आन्दोलन बल पकड़ रहा है। आप चाहे उन्हें साम्यवादी गुण्डे कहिये चाहे साम्यवादी सह-पथिक। उनकी निन्दा करने या उन्हें गालियां देने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप शोषण की सामाजिक व्यवस्था को अधिक स्वतंत्र व्यवस्था में परिणत नहीं करेंगे तो सामाजिक व्यवस्था को हिंसा द्वारा समाप्त करने का यह आन्दोलन चलता ही रहेगा। अत: हमें यथा समय सावधान हो जाना चाहिये तथा अपने देश में सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये। श्रीमान्, यहां अनुच्छेद 34 में एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान है। इसमें लिखा है कि: ''राज्य समुचित विधि-निर्माण अथवा आर्थिक संगठन अथवा किसी अन्य उपाय द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि काम, आदि प्राप्त कराने का प्रयत्न करेगा...'' मुझे प्रसन्नता है कि यह व्यवस्था की गयी है। हमारे पास तीन विकल्प हैं अथवा वे सभी है: विधि-निर्माण, संगठन अथवा अन्य कोई उपाय। श्रीमान्, मुझे आशा है कि सरकार इससे लाभ उठायेगी और एतदनुसार कार्य करेगी और ऐसी व्यवस्था करेगी कि इस अनुच्छेद के अनुसार सब श्रमिकों को—चाहे वह उद्योगों के हों अथवा अन्य—काम, जीविका के लिये उपयुक्त वेतन तथा जीवन का उचित स्तर प्राप्त हो। हम श्रमिकों का समाज चाहते हैं, प्रत्येक को श्रम करना होगा। हमें अपने लोकतंत्र के मंदिर के प्रवेश-द्वार पर अंकित कर देना चाहिये कि जो कार्य नहीं करेगा उसे भोजन नहीं मिलेगा; काम नहीं तो भोजन नहीं। श्रीमान्, यही बाइबिल में लिखा है, गीता में भी लिखा है जो बिना यज्ञ करे, बिना कार्य करे, भोजन करता है वह चोर है, ''स्तेन एवं स:''। वह समाज की चोरी करता है। अतएव हमें यह आशय रख देना चाहिये कि कार्य अनिवार्य है, कार्य आवश्यक कर्त्तव्य है। अनुच्छेद 32 में उल्लिखित है कि राज्य कार्य का अधिकार प्राप्त करायेगा; अनुच्छेद 34 और भी आगे जाता है और उसमें कहा गया है कि राज्य कार्य प्राप्त करायेगा। आज भारत में दसियों लाख व्यक्ति हैं जो कार्य करना चाहते हैं किन्तु उन्हें कार्य नहीं मिलता। जैसा कि बर्नार्ड शाह ने कहा है एक और तो हमारे यहां भूख वाले व्यक्ति हैं किन्तु भोजन नहीं है, दूसरी ओर भोजन वाले व्यक्ति हैं पर भूख नहीं है। इस सामाजिक व्यवस्था में तो आंतरिक विरोध है। जब तक यह आंतरिक विरोध चलता रहेगा तब तक संसार में शांति नहीं होगी, संसार में सुख नहीं होगा। हिंसात्मक आन्दोलन होंगे; हताश व्यक्ति मोलियां, बन्दूकें लेकर सामाजिक व्यवस्था को उलटने का प्रयत्न करेंगे। आप सारा दोष उन पर नहीं डाल सकते; आप उन्हीं का समस्त अपराध नहीं बता सकते; हम में से

उन लोगों का भी दोष है जो कि शोषण पर आश्रित सामाजिक व्यवस्था को चिरस्थायी कर देना चाहते हैं। गोलियों और बन्दूकों का उत्तर टैंक तथा बमवर्धक नहीं है, जैसा कि आज मलाया में हो रहा है, इसका इलाज है सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन। मुझे आशा है कि भावी नवभारत में जो सरकार स्थापित होने वाली है वह इन अनुच्छेदों को कार्यान्वित करेगी तथा वह सरकार आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न करेगी।

मैं केवल एक बात और कहना चाहता हूं। भारत का कार्य युगों से आध्यात्मिक लोकतंत्र की भावना के उच्च तथा महान् आदर्श को प्रसारित करना रहा है, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र इसी के फल-मात्र हैं। यदि हमारे समाज में सच्चा आध्यात्मिक लोकतंत्र जड़ पकड़ लेता है तो निःसंदेह हम मानवजाति को जीवन का एक नया पथ प्रशस्त करेंगे और चाहें संसार के सब देशों ने हिंसात्मक उपायों से, अव्यवस्था से, संघर्ष से आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न किया हो, पर हम यहां से श्रीगणेश कर सकते हैं और आगे बढ़ सकते हैं तथा यह नई व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

***उपाध्यक्षः** मुझे भय है कि आप संशोधनों पर बहुत समय लगा रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं अनुच्छेद पर भी बोल रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** आप अनुच्छेद को काफी समझा चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं समाप्त कर चुका है। हमें अपने देश में शांति तथा अहिंसा के तरीकों से यह नई व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रकार संसार को एक नया पथ दिखाना चाहिये। अन्यथा, वर्तमान व्यवस्था, जोकि विदोहन पर आश्रित है, नष्ट हो जायेगी, अपनी ही अग्नि में भस्म हो जायेगी। किन्तु मुझे आशा है कि राख में से अतीत के उस पौराणिक पक्षी फिनिक्स (Phoenix) के समान एक नई व्यवस्था उत्पन्न होगी जिसके नेत्रों में प्रभात का प्रकाश होगा।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं परिषद् का समय नहीं लेना चाहता, मैं केवल एक संशोधन रखना चाहता हूं। To all workers, industrial (औद्योगिक)' इन शब्दों के आगे 'agricultural (कृषक)' शब्द जोड़ दिया जाये। श्रीमान्, मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रमिक जनता में अधिकांश कृषक श्रमिक हैं।

***उपाध्यक्षः** यह अनियमित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, क्योंकि ऐसी भावना बहुत दृष्टिगोचर होती है कि निदेशक सिद्धान्तों में घरेलू उद्योगों की चर्चा होनी चाहिये अतएव मैं इस परिषद् के सदस्यों की इच्छा पूर्ण करने के लिये अनुच्छेद 34 में कुछ शब्द रख देने के लिये सिद्धान्ततः तैयार हूं। अतएव मैं अपने मित्र श्री रामालिंगम चेटियर द्वारा प्रस्तुत संशोधन को एक-दो शब्दों के परिवर्तन के साथ स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। मैं जो परिवर्तन करना चाहता हूं उनमें से एक यह है कि Cottage Industries or इन शब्दों के आगे individual or यह शब्द रखे जायें। मैं उनके शब्द 'lines (ढंग)' के स्थान पर 'basis (आधार)' यह शब्द रखना चाहूंगा। तत्पश्चात् संशोधन इस प्रकार हो जायेगा:

"और विशेषतः राज्य ग्राम्य क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।"

मेरे विचार में इससे उन अधिकांश सदस्यों की इच्छाओं की पूर्ति हो जायेगी जो इस विषय में विशेषतः रुचि रखते हैं।

मैं यह भी कह दूं कि मैं श्री नागप्पा द्वारा प्रस्तुत संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि 'industrial' शब्द के पश्चात् 'agricultural' शब्द जोड़ दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** इसकी अनुमति नहीं दी गई थी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि आप इसकी अनुमति दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे विचार में श्री नागप्पा के इस सुझाव में कुछ शक्ति है कि 'कृषक श्रमिक' 'औद्योगिक श्रमिक' के बराबर ही महत्त्वपूर्ण हैं अतः उसकी चर्चा 'अन्य' शब्द में ही नहीं होनी चाहिये। किन्तु यह आपके निर्णय का प्रश्न है और आपको ही इसका निश्चय करना है।

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियरः** मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह कह सकता हूं कि हम 'Cottage Industries' पर ही समाप्त कर दे तथा शेष शब्दों

को हटा दें। हम 'व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर' इन शब्दों को क्यों रखना चाहते हैं? इन शब्दों को रखने में कोई लाभ नहीं है, जब तक आप सहकारी आधार पर विशेष जोर देना न चाहते हों। मैं चाहता हूं कि 'व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर' यह शब्द निकाल दिये जायें।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, क्या मैं स्पष्टीकरण कर सकता हूं? मैं देखता हूं कि जो सदस्य इस विषय में रुचि रखते हैं उनमें दो दल हैः एक दल का विश्वास है कि घरेलू उद्योग केवल सहकारी आधार पर हों। दूसरे दल का विश्वास है कि घरेलू उद्योगों पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लगना चाहिये। दोनों दलों को संतुष्ट करने के लिये मैंने यह शब्द जानबूझ कर प्रयोग किये हैं, जिनसे मुझे विश्वास है कि दो मतों के लोग संतुष्ट हो जायेंगे।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास : जनरल): मैं बोलना नहीं चाहता।

*__उपाध्यक्षः__ मेरे विचार में हम इस विषय पर काफी पर्यालोचन कर चुके। अब हम वास्तविक मतगणना करेंगे।

*__श्री महावीर त्यागीः__ इस आशा से कि स्वावलम्बन के आधार पर ही चला जायेगा, मैं अपने संशोधन पर संशोधन स्वीकार करता हूं, जिस रूप में भी डा. अम्बेडकर ने अन्त में इसे पेश किया था; और इसलिये मैं अपना संशोधन वापस लेता हूं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन (सं. 951) वापस ले लिया गया।

*__श्री अमिय कुमार घोषः__ श्रीमान्, मैं जानना चाहता हूं कि 'कृषक श्रमिकों' को सम्मिलित किया गया है या नहीं।

*__उपाध्यक्षः__ इसे सम्मिलित नहीं किया गया है, किन्तु यदि सारी परिषद् बिना किसी मतभेद के डा. अम्बेडकर के सुझाव को मान ले तो मैं अपना निर्णय बदलने के लिये सर्वथा तैयार हूं।

*__माननीय सदस्यः__ हां।

*__उपाध्यक्षः__ तो फिर मैं श्री रामालिंगम चेटियर के संशोधन पर डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित रूप में मत लेता हूं।

संशोधित रूप में संशोधन स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं डा. नागप्पा द्वारा संशोधित संशोधन पर मत लेता हूं।

संशोधित रूप में संशोधन स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** अब परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव है:

''कि पूर्वोक्त रूप में संशोधित अनुच्छेद 34 विधान का भाग होना चाहिये।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 34 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 34-ए

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 34-ए पर संशोधन सं. 952 को लेते हैं। (*संशोधन सं. 952 पेश नहीं किया गया।*) संशोधन संख्या 953—श्री रणवीर सिंह चौधरी।

***चौधरी रणवीर सिंह** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं इस पर जोर नहीं दे रहा हूं, किन्तु मैं अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह संशोधन, संशोधित रूप में अनुच्छेद 34 में सन्निहित है। यह सब ऐसे विषय हैं जो बहुत हद तक विधान-परिषद् द्वारा विधान में रखे जाने योग्य नहीं हैं अपितु केन्द्र या प्रान्तों में कानून निर्माण के योग्य हैं। अत: मेरे विचार में इसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। इस समय भी प्रान्तों में अत्यधिक ब्याज लेने पर प्रतिबन्ध हैं। ब्याज के लिये प्रतिशत दर नियत है।

***उपाध्यक्ष:** क्योंकि भाषा भिन्न है, अत: श्री रणवीरसिंह चौधरी को अपना संशोधन पेश करने का अधिकार है किन्तु वे ऐसा करते हैं या नहीं, यह उन पर निर्भर है। मुझे आशा है कि वे परिषद् का अत्यधिक समय नहीं लेंगे। आपको स्मरण रखना चाहिये कि हमारे अध्यक्ष की इच्छा है कि हमें अपने विधान को 9 दिसम्बर तक अन्तिम रूप दे देना चाहिये। इसे सरकाने के विषय में कुछ बात हुई थी। हमारा देश के प्रति विशेष कर्त्तव्य है। मेरे पास अनेक तार आते रहते हैं, यहां तक कि कभी-कभी मुझे अर्धरात्रि में जगा दिया जाता है और हम पर दोष डाला जाता है।

***चौधरी रणवीर सिंह:** मिस्टर वाइस प्रेसीडेण्ट, मैं इसीलिये पहले खड़ा हुआ था कि जो अपनी दो-चार बातें एक्सप्रैस करना चाहता हूं वह जनरल आर्टिकल

पर कह लेता। लेकिन चूंकि मुझे उस वक्त समय नहीं दिया गया; अगर आप इजाजत दें तो एक दो मिनट में अपनी बात कह लेना चाहता हूं। यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं अपने अमेंडमेंट को प्रेस नहीं करूंगा। इसके अलावा एक बात और भी है। जैसा कि श्री आयंगर साहब ने बताया...

***उपाध्यक्षः** कृपया संशोधन पर बोलिये।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से संशोधन पेश नहीं करता, तो क्या उसे परिषद् में वक्तृता देने की अनुमति है?

***उपाध्यक्षः** आप ठीक कहते हैं। (*श्री चौधरी से*) आप सर्वप्रथम प्रस्ताव पेश करेंगे तत्पश्चात् परिषद् में वक्तृता देंगे।

***चौधरी रणवीर सिंहः** मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 34 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद 34-ए जोड़ दिया जाये:

'34-ए (क) के राज्य समुचित कानून-निर्माण अथवा आर्थिक संगठन अथवा किसी अन्य प्रकार से कृषक को कृषिजन्य पदार्थों का न्यूनतम लाभप्रद मूल्य प्राप्त कराने का प्रयत्न करेगा।

(ख) राज्य उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के राष्ट्रीय सहकारी संगठन को सहायता देगा।

(ग) विशेष कानून-निर्माण द्वारा कृषि-सम्बन्धी बीमें का नियमन किया जायेगा।

(घ) किसी रूप में भी अत्यधिक ब्याज लेना वर्जित किया जाता है।' "

***उपाध्यक्षः** क्या मैं यह समझ लूं कि आप इस संशोधन को नियमित रूप में पेश कर रहे हैं। मेरे विचार में वह पेश किया जा चुका है।

***श्री जैड.एच. लारीः** उन्होंने कहा है कि संशोधन इस प्रकार है। उन्होंने अपना संशोधन पेश नहीं किया है।

***उपाध्यक्ष:** मान लो कि आप इस बात को छोड़ देते हैं। अब श्री चौधरी आप वक्तृता दे सकते हैं?

***चौधरी रणवीर सिंह:** सभापति महोदय, जिस हालत में अब आर्टिकिल 34 स्टेंड करता है और डा. अम्बेडकर साहब ने नागप्पा जी का जो सुझाव माना है उससे भी एक क्लास और बाकी रह जाती है जिसके इकानॉमिक इंटरेस्ट्स सुरक्षित नहीं होते, और वह क्लास लैंडलार्डस का नहीं है क्योंकि उनके बारे में मैं कुछ नहीं कहना चाहता, बल्कि वह पंजाब के पीजेंट प्रोपराइटर्स का क्लास है जो कि न तो किसी को एक्प्लाइट करता है और न किसी से एक्सप्लाइट होना चाहता है। पीजेंटरी के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तक कि हम उसकी प्रोड्यूस की कोई इकानॉमिक प्राइस मुकर्रर नहीं करेंगे तब तक उसके साथ बड़ा भारी अन्याय होता रहेगा। आज स्टेट की ड्यूटी ला एण्ड आर्डर को कायम रखना ही नहीं है, बल्कि आर्थिक उलझनों को सुलझाना भी है और यह एग्रीकल्चरिस्ट के लिये आज एक बड़ी भारी समस्या है। पिछले दिनों का जिक्र है कि गुड़ और कई चीजों की प्राइस इतनी गिरी कि जो प्राइस 4 या 5 महीने पहले थी उसकी चौथाई रह गई। यह एक कृषि प्रधान देश है और ऐसे देश में इस किस्म की उथल-पुथल एग्रीकल्चरल इकानॉमी को उथल-पुथल किये बगैर नहीं रह सकती। मैं इसको बहुत ज्यादा प्रेस नहीं करना चाहता क्योंकि मैं भी इस बात को मानता हूं कि पिछली आर्टिकिल से यह बात हल हो जाती है, पर इन चीजों का ध्यान रखना चाहिये। मेरे कहने के मानी यह है कि एग्रीकल्चर की चीजों की इकानॉमिक प्राइस मुकर्रर किये बगैर एग्रीकल्चरिस्ट की इकानॉमिक लाइफ में स्टेबिलिटी नहीं आ सकती और उसको स्टेबिल करना जरूरी है। बाकी जो तीन हिस्से हैं वह भी थोड़ा-बहुत इसी को सपोर्ट करते हैं। चूंकि हाउस के बहुत ज्यादा मेम्बर यह समझते हैं कि यह आशय इससे पहले वाले आर्टिकिल से हल हो जाता है, इसलिये मैं अपने इस अमेंडमेंट को पेश नहीं करता।

***उपाध्यक्ष:** अतएव मैं इस पर मत नहीं लूंगा। अगला संशोधन श्री गुप्तनाथ सिंह का है।

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं देखता हूं कि मेरा प्रयोजन बहुत हद तक डा. अम्बेडकर के संशोधन से सिद्ध हो गया है। अत: मैं अपना संशोधन सं. 954 पेश नहीं करना चाहता।

अनुच्छेद 35

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 35 को लेते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मुझे आपसे निवेदन करना है कि इस अनुच्छेद को अभी रहने दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** इस अनुच्छेद को बाद में विचार करने के लिये रहने दिया जाता है, क्या परिषद् सहमत है?

***माननीय सदस्यगणः** हां।

अनुच्छेद 36

***उपाध्यक्षः** तो फिर, परिषद् के सामने यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 36 विधान का भाग हो। संशोधन सं. 961 नकारात्मक प्रस्ताव है। अतएव हम संशोधन सं. 962 को लेते हैं—श्री एल.के. मैत्र।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव रखता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 36 में 'प्रत्येक नागरिक निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा और' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, आपने वक्तृताओं के संक्षिप्त बनाने के विषय में जो आज्ञा दी मैं सख्ती से उसका पालन करूंगा। मैं इस संशोधन का आशय समझाने के लिये आधा दर्जन वाक्य ही बोलूंगा। यदि इस संशोधन को परिषद् ने स्वीकार कर लिया, जैसी कि मुझे आशा है वह करेगी, तो यह खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> "राज्य इस विधान के आरम्भ से दस वर्ष की अवधि से सब बालकों और बालिकाओं को चौदह वर्ष की आयु की पूर्ति तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा।"

अतएव यह प्रकट हो जायेगा कि यह अनुच्छेद 36 पूर्वगत तथा आगे के अनुच्छेदों के समान हो जायेगा—कम से कम रूप में तो हो ही जायेगा। परिषद् देखेगी कि अनुच्छेद 30, 31, 32, 33, 34, 35, 37 और 38 सब ''राज्य... आदि आदि'' इन शब्दों से आरम्भ होते हैं। किन्तु केवल अनुच्छेद 36 ही ''प्रत्येक नागरिक...आदि'' इन शब्दों से आरम्भ होता है। अतः यदि हम उन शब्दों को हटा दें, जिनकी कि मैंने चर्चा की है, तो यह अनुच्छेद भी अन्य अनुच्छेदों के समान हो जायेगा। रूप के प्रश्न के अतिरिक्त इसमें आशय का भी प्रश्न है।

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

भाग 4 राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के विषय में है और इसके प्रावधानों में उस नीति का संकेत किया गया है जिस पर देश की भावी सरकारों को चलना है। दुर्भाग्य से अनुच्छेद 36 में राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त के साथ एक प्रकार का मूल अधिकार भी जोड़ दिया गया है अर्थात् ''प्रत्येक नागरिक नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा''। इसका दूसरों के साथ सामंजस्य नहीं बैठ सकता। यहां एक निदेशक सिद्धान्त को मूलाधिकार से मिला दिया गया है। अतएव मेरा निवेदन है कि मैंने जो शब्द बताये हैं वह निकाल दिये जाने चाहिये।

एक और भी बात है जिसकी ओर मैं मसौदा-समिति का ध्यान विशेषतया आकर्षित करना चाहता हूं। आप देखेंगे कि मौलिक मसौदे में इस अनुच्छेद के हाशिये में लिखा है ''नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान'' किन्तु अनुच्छेद 36 में हम प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में कोई अन्तर नहीं कर रहे हैं इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक के लिये 14 वर्ष की आयु तक राज्य इस विधान के आरम्भ से दस वर्ष की अवधि में नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करेगा। दूसरे शब्दों में शिक्षा अवश्य ही प्राथमिक श्रेणियों तक सीमित नहीं होगी बल्कि यह माध्यमिक श्रेणियों तक भी हो सकती है, जब तक कि बालक 14 वर्ष का न हो जाये। अतएव हाशिये के शब्दों में तदनुसार संशोधन कर दिया जाये। श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 36 में 'शिक्षा' शब्द के स्थान पर 'प्राथमिक शिक्षा' यह शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, जैसे कि पूर्व वक्ता ने स्पष्ट बता दिया है इस अनुच्छेद में प्राथमिक शिक्षा का प्रसंग है।

यह प्राथमिक शिक्षा से आरम्भ होता है तथा हाशिये के शब्दों से भी यह स्पष्ट हो जाता है। किन्तु जैसा कि अभी बताया गया है, अन्त में इसमें यह लिखा है कि राज्य विधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि में ''नि:शुल्क तथा अनिवार्य'' शिक्षा का प्रबन्ध करेगा। प्रसंग तथा अन्य बातों को देखकर मुझे विश्वास है कि आशय यही है कि अनिवार्य 'प्राथमिक' शिक्षा होगी। राज्य नि:शुल्क माध्यमिक शिक्षा देने का दायित्व नहीं ले सकता।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** जहां तक सम्भव हो सके।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** किन्तु यदि आप सरकार के कर्त्तव्य क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर दे तो यह प्रभावशून्य हो जायेगा। मेरे विचार में इसे प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित रखना अधिक अच्छा होगा और यही राज्य की नीति का निदेशक सिद्धान्त होना चाहिये। मेरे विचार में यही इसका अभिप्राय है। मेरा निवेदन है कि यदि यह शब्द रख दिया जायेगा तो एक स्पष्ट भुल का सुधार हो जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा होगा यदि आप अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर दें, क्योंकि इससे आपको दुबारा आने का कष्ट नहीं होगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 36 में 'शिक्षा' शब्द के पश्चात् एक सैमी-कोलन (;) चिह्न रख दिया जाये।''

क्योंकि यह केवल चिह्न लगाने का प्रश्न है, अत: मैं मसौदा-समिति से इस पर विचार करने के लिये कह रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 36 पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): इन निदेशक सिद्धान्तों में कभी मुझे अनुरक्ति नहीं रही है। वे केवल पवित्र आशायें तथा पवित्र इच्छायें हैं जो इस हेतु रखी गई हैं कि जिससे समय-समय पर प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के लिये विपत्ति खड़ी की जा सके और इस परिषद् की आलोचनाओं से केन्द्रीय सरकार बहुत ही कम बार प्रभावित होगी। किन्तु अनुच्छेद 36 में प्राथमिक शिक्षा का प्रसंग है, जिसका प्रावधान मूलाधिकारों के अनुच्छेद 23 में नहीं किया गया है; उस अनुच्छेद पर अभी हमने वाद-विवाद भी नहीं किया है। मैं वक्तृताओं से अभी तक संतुष्ट नहीं हो सका हूं कि नि:शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा किस प्रकार की होगी। क्या यह एक भाषा में होगी या यदि प्रान्त में दो-तीन प्रकार के लोग हों तो क्या यह शिक्षा दो-तीन भाषाओं में होगी?

मैं उड़ीसा के विषय में कहता हूं, जहां कुछ आंध्र लोग हैं तथा कुछ बंगाली लोग हैं, जिनके लिये कि मेरे विचार में राज्य को एक विशेष श्रेणी तक नि:शुल्क

[श्री बी. दास]

प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। यही मांग मैं मद्रास, बंगाल तथा मध्यप्रांत से करता हूं, जहां उड़िया लोगों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है। मेरे मित्र प्रधानमंत्री श्री शुक्ल मेरी ओर देख रहे हैं। यह उनके मंत्रिमंडल का दोष नहीं है। यह एक परम्परा है जो स्थापित हो गई है। कोई भी इसकी चिंता नहीं करता है कि किसी जाति को, जिसकी कि अपनी भाषा तथा लिपि है, उसी में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा दी जाये। सन् 1881 की जनगणना में बंगाल के मिदनापुर जिले में पांच लाख उड़िया थे। पिछली जनगणना में कुछ हजार थे तथा अगली जनगणना में शायद वे सर्वथा मटियामेट हो जायेंगे। किन्तु तदपि प्राथमिक शिक्षा से व्यक्ति को अपने भगवान से प्रार्थना करने तथा अपनी धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने का अवसर मिलता है। मिदनापुर के उड़िया बच्चों को इस समय बंगाली पढ़नी पड़ती है। उन्होंने अपने नामों के स्थान पर बंगाली नाम रख लिये हैं। ऐसी ही बात मद्रास के विजगापट्टम जिले में है जहां बहुत बड़ी संख्या में उड़िया लोग रहते हैं, और यह उनका दुर्भाग्य था कि वह प्रदेश 1936 में उड़ीसा प्रान्त का भाग नहीं बन सका। पर मैं यह अवश्य चाहता हूं कि द्विभाषी प्रदेशों में जहां कि दूसरी जाति के बहुत से लोग हों प्रान्तीय मंत्रिमंडल तथा सम्बद्ध सरकार उन बालकों को अपनी भाषा में ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार से वंचित न करे; जिससे कि जब वे पढ़-लिख जायें तो वे अपनी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करने के योग्य हो सकें। इस परिषद् की यह नीति नहीं है कि और न ही यह इस विधान का उद्देश्य है कि प्रत्येक प्रान्त को, जिस रूप में कि वह इस समय निमित है, सब लोगों को एक भाषा भाषी बना देना चाहिये। इस समस्या पर मैंने निजी रूप में बातचीत की है। मुझे ज्ञात हुआ है कि मसौदा-समिति इस पर अनुच्छेद 23(1) में विचार करेगी। यही कारण है कि मैंने अपना संशोधन सं. 970 उपस्थित नहीं किया जिसमें कि सब बालकों के लिये उनकी अपनी-अपनी मातृभाषा में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की मांग की गई थी। यह बहुत प्रमुख तथा आवश्यक समस्या है कि हमें उन लोगों का अराष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहिये जिनकी कि अपनी राष्ट्रभाषा है तथा उन्हें किसी दूसरे की राष्ट्रभाषा सीखने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिये चाहे वह कितनी ही उपयुक्त क्यों न हो।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं मेरे मित्र श्री मैत्र का संशोधन स्वीकार करता हूं जिससे ''प्रत्येक नागरिक निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा''। इन शब्दों के निकाल देने का सुझाव दिया गया है। किन्तु मैं मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार

नहीं हूं। वे ऐसा समझते होंगे कि अनुच्छेद 36 के शेष भाग का आशय निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित है। किन्तु ऐसा नहीं है। संशोधन के पश्चात् जिस रूप में यह खण्ड है वह यह है कि प्रत्येक बालक को उस समय तक शिक्षा संस्था में पढ़ाया जायेगा जब तक कि वह 14 वर्ष का न हो जाये। यदि मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद ने अनुच्छेद 18 पर ध्यान दिया होता तो वे देखते कि उस अनुच्छेद में एक प्रावधान है कि बालकों को 14 वर्ष से पहले सेवायोजित न किया जायेगा। स्पष्ट है कि यदि एक बालक को 14 वर्ष की आयु से पूर्व सेवायोजित नहीं किया जाना है तो उसे अवश्य किसी शिक्षा संस्था में कार्यलग्न रखना होगा। यही अनुच्छेद 36 का उद्देश्य है, और इसी कारण मैं कहता हूं कि इस खण्ड विशेष में 'प्राथमिक' शब्द सर्वथा अनुपयुक्त है। इसलिये मैं उनके संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है

''कि अनुच्छेद 36 में 'प्रत्येक नागरिक निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा और' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 36 में 'शिक्षा' शब्द के स्थान पर 'प्राथमिक शिक्षा' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 36 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 36 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 35

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि निम्नलिखित प्रावधान अनुच्छेद 35 में जोड़ दिया जाये:

''पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति का यदि कोई निजी कानून हो तो उसे वह कानून छोड़ने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।''

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

किसी वर्ग या सम्प्रदाय का अपने निजी कानून पर अनुसरण करने तथा उस पर दृढ़ रहने का अधिकार तो मूलाधिकारों में से है। और वास्तव में यह प्रावधान कानूनी तथा न्याय मूलाधिकारों में रखा जाना चाहिये। इसी कारण से मैंने तथा अन्य मित्रों ने कई अन्य अनुच्छेदों में, जो कि इससे पूर्व के हैं, संशोधन भेजे हैं, जिन्हें कि मैं उचित समय पर पेश करूंगा।

निजी कानूनों पर चलने वाले लोगों के लिये इन पर चलना उनके जीवन का भाग है; यह उनके धर्म का भाग है और संस्कृति का भाग है। यदि निजी कानूनों पर प्रभावकारी कोई बात की जाती है तो यह, जो लोग इन कानूनों पर युगों से तथा पीढ़ियों से चल रहे हैं, उनके जीवन की प्रणाली में हस्तक्षेप करने के बराबर है। हम जो असाम्प्रदायिक राज्य बनाना चाहते हैं उसे लोगों के धर्म या जीवन की प्रणाली में हस्तक्षेप करने का कोई काम नहीं करना चाहिये। निजी कानून को बनाये रखने का प्रश्न कोई नया नहीं है, हमें यूरोप के देशों में इसके उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ यूगोस्लाविया को लीजिये जो कि सर्ब, क्रोट तथा स्लोवन जातियों का राज्य है। वह संधि-शर्तो के अनुसार अल्पसंख्यकों के अधिकारों की प्रत्याभूति देने के लिये बाध्य है। मुसलमानों के अधिकारों के विषय में खण्ड इस प्रकार है।

सर्ब, क्रोट तथा स्लोवन राज्य मुसलमानों के लिये उनके पारिवारिक कानून तथा निजी स्थिति के सम्बन्ध में इन मामलों के नियमन के हेतु मुस्लिम परम्परा के अनुसार उपयुक्त प्रावधान करने के लिये तैयार हैं।

हम कई अन्य यूरोपीय विधानों में भी इसी प्रकार के खण्ड पाते हैं किन्तु यह सब अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में हैं, और मेरा संशोधन केवल अल्पसंख्यकों के विषय में ही नहीं है अपितु सबके सम्बन्ध में है जिनमें बहुसंख्यक जाति भी सम्मिलित है, क्योंकि इसमें ''कोई वर्ग, सम्प्रदाय या जाति'' आदि शब्द प्रयुक्त हुये हैं। अतएव इसका अभिप्राय सब लोगों के विद्यमान निजी कानून के विषय में उनके अधिकारों को सुरक्षित रखना है।

इसके अतिरिक्त, इस संशोधन का उद्देश्य लोगों के लिये कोई नवीनता या नये कानून स्थापित करना नहीं है, बल्कि केवल लोगों के कुछ वर्गों में इस समय विद्यमान निजी कानूनों को स्थायी रखना है। प्रश्न यह है कि लोग अनुच्छेद 35 में वर्णित एक-विध व्यवहार-संहिता क्यों चाहते हैं? स्पष्टत: उनका विचार एकरूपता

द्वारा समन्वय उत्पन्न करना हैं किन्तु मेरा कहना है कि इस काम के हेतु लोगों के निजी कानून सहित व्यवहार विषयक कानून को एक करना आवश्यक नहीं है। इससे असन्तोष होगा तथा समन्वय पर कुप्रभाव पड़ेगा। किन्तु यदि लोगों को उनके निजी कानून पर चलने दिया जाये तो कोई असंतोष नहीं होगा। प्रत्येक वर्ग के लोग अपने निजी कानून का पालन करने के लिये स्वतंत्र होंगे तो उनका वास्तव में एक दूसरे से संघर्ष नहीं होगा।

***श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है, कि इस समय जो कुछ कहा जा रहा है वह अनुच्छेद 35 का सर्वथा निराकरण है और इसे संशोधन नहीं समझा जा सकता। माननीय सदस्य केवल विरोध में बोल सकते हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब**: अनुच्छेद 35 इस प्रकार है:

''राज्य भारत के साद्यन्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एक-विध व्यवहार-संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा।''

इसमें निजी कानून भी सम्मिलित होगा।

***उपाध्यक्ष**: मेरा निर्णय है कि माननीय सदस्य नियमानुसार हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब**: अतएव, श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि देश में समन्वय उत्पन्न करने तथा बढ़ाने के लिये यह अपेक्षित नहीं है कि लोगों को उनके निजी कानून छोड़ने के लिये बाध्य किया जाये। मैं माननीय प्रस्तावक से निवेदन करता हूं कि वे इस संशोधन को स्वीकार कर लें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद**: श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित शर्त जोड़ दी जाये, अर्थात्:

'पर किसी जाति का निजी कानून, जो कानून द्वारा प्रत्याभूत हो, उस जाति की पूर्व सहमति के बिना परिवर्तित न किया जायेगा और यह सहमति उस प्रणाली द्वारा विदित की जायेगी जो कि संघीय विधान-मंडल कानून द्वारा निश्चित करे'।''

यह प्रस्ताव पेश करते हुये मैं अपनी चर्चा उन असुविधाओं तक ही सीमित नहीं रखना चाहता जो कि केवल मुसलमानों को अनुभव होंगी। मैं इसकी चर्चा अधिक विस्तृत आधार पर करूंगा। वास्तव में प्रत्येक सम्प्रदाय, प्रत्येक धार्मिक

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

सम्प्रदाय के विशेष धार्मिक कानून होते हैं, विशेष व्यवहार विषयक कानून होते हैं, जिनका धार्मिक विश्वासों तथा आचरण से अखण्ड सम्बन्ध होता है। मेरा विश्वास है कि कोई एकविध कानून बनाते समय इन धार्मिक कानूनों अथवा अर्ध-धार्मिक कानूनों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। इस संशोधन के कई कारण हैं। उनमें से एक यह है कि कदाचित यह विधान के मसौदे के अनुच्छेद 19 के प्रतिकूल है। अनुच्छेद 19 में यह व्यवस्था है कि ''लोक की व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य और इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये, सब व्यक्तियों को विश्वास-स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अवाध-रूपेण मनाने तथा प्रचार करने का समान अधिकार होगा''। वास्तव में यह इतनी आधारभूत बात है कि मसौदा समिति ने इसे इस स्थान पर रख कर उचित कार्य किया है। तत्पश्चात् उसी अनुच्छेद के खण्ड (2) में इस अधिकार के सीमाकरण के रूप में आगे यह भी प्रावधान रखा गया है कि ''इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा, जो धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन अथवा आयंत्रण करती हो''। मैं भली प्रकार समझ सकता हूं कि धार्मिक आचरण से सम्बद्ध कई हानिकारक प्रथायें हो सकती हैं और उन पर नियंत्रण किया जा सकता है। किन्तु कुछ धार्मिक आचरण, कुछ धार्मिक कानून ऐसे हैं जो खण्ड (2) के अपवादों में, अर्थात् धार्मिक आचरण से सम्बद्ध आर्थिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं के अन्तर्गत नहीं आते। धार्मिक आचरण तथा धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देने के पश्चात्, जो कि औचित्यपूर्ण है, मेरे विचार में अनुच्छेद 19 में जो कुछ दिया गया है, वर्तमान अनुच्छेद में उसका निराकरण कर दिया गया है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हमें परस्पर विरोधी बातों को निकाल देने का प्रयत्न करना चाहिये। अनुच्छेद 19 में हमने एक निश्चित प्रावधान रखा है जो न्याय है तथा जिसका प्रवर्त्तन किसी भी राज्य का कोई भी नागरिक, चाहे वह किसी जाति अथवा सम्प्रदाय का हो, न्यायालय में जाकर करवा सकता है। उधर हम वर्तमान अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य को कुछ ढील दे रहे हैं जिससे कि वह इस प्रदत्त अधिकार की उपेक्षा कर सकता है। यह अनुच्छेद सरकार से कुछ काम करने की सिफारिश करता है और इस प्रकार उसे कुछ अधिकार देता है। पर इसके साथ-साथ इस प्रावधान में प्रजा को कोई अधिकार नहीं किया गया है। मेरा निवेदन है कि विद्यमान अनुच्छेद से राज्य को अनुच्छेद 19 में प्रदत्त प्रत्याभूतियों का उल्लंघन करने का प्रोत्साहन मिलना सम्भव है।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि व्यवहार विधि संहिता (सिविल प्रौसीजर कोड) में कई ऐसी बातें हैं जिनसे निजी कानूनों में हस्तक्षेप हुआ है और यह अत्यंत उचित हुआ है। किन्तु अंग्रेजों ने अपने पौने दो सौ वर्ष के राज्य काल में कुछ मूल निजी कानूनों में हस्तक्षेप नहीं किया। उन्होंने रजिस्ट्रेशन कानून, अवधि कानून (लिमिटेशन एक्ट), व्यवहार विधि संहिता, आपराधिक विधि संहिता, दंड संहिता, साक्षी कानून, सम्पत्ति हस्तान्तरण कानून, शारदा कानून और कई अन्य कानून निर्माण किये। ज्यों-ज्यों अवसर आया, उन्हें शनैः शनैः लागू किया गया और उनका उद्देश्य कानूनों में एकरूपता उत्पन्न करना था, यद्यपि वे सम्प्रदाय विशेष के निजी कानूनों के प्रतिकूल हैं। किन्तु विवाह प्रणाली तथा उत्तराधिकार के कानूनों को लीजिये। उन्होंने इनमें कभी हस्तक्षेप नहीं किया। हमारे समाज की इस अवस्था में लोगों से यह कहना कठिन होगा कि वे अपने विवाह सम्बन्धी नियमों को छोड़ दें जो कई जातियों में धार्मिक भावनाओं से सम्बद्ध है। उत्तराधिकार के नियमों को भी धार्मिक आदेशों का ही परिणाम माना जाता है। मेरा निवेदन है कि इन मामलों में हस्तक्षेप धीरे-धीरे होना चाहिये और समय के साथ इसमें प्रगति होनी चाहिये। मुझे इसमें संदेह नहीं है कि एक समय आयेगा जब कि व्यवहार कानून एकरूप होगा। किन्तु अभी ऐसा समय नहीं आया है। हमें विश्वास है कि राज्य को व्यवहार संहिता बनाने का जो अधिकार दिया गया है, वह समय से पहले किया गया है। इस अवस्था में किसी भी राज्य को अनुच्छेद 35 के अधीन तत्काल ही विभिन्न जातियों के निश्चित कानूनों में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। उदाहरणार्थ विभिन्न जातियों में विवाह की प्रणालियां हैं। यदि हम ऐसा कानून बनाना चाहें कि प्रत्येक विवाह को दर्ज किया जायेगा और यदि दर्ज नहीं होगा तो विवाह वैध नहीं होगा, तो हम अनुच्छेद 35 के अधीन ऐसा कर सकते हैं। किन्तु क्या आप ऐसे विवाह को, जो वर्तमान कानून और वर्तमान धार्मिक आचरण के अनुसार वैध है, केवल इसी आधार पर अवैध कर देंगे कि वह किसी नये कानून के अनुसार दर्ज नहीं हुआ है और क्या आप इस प्रकार उस विवाह से उत्पन्न बालकों को हरामी कह देंगे?

यह केवल एक उदाहरण है कि हस्तक्षेप किस सीमा तक जा सकता है। जैसा कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं, हमारा उद्देश्य एकविध व्यवहार संहिता होना चाहिये किन्तु यह काम शनैः शनैः होना चाहिये तथा एतद् सम्बन्धी लोगों की सहमति से होना चाहिये। अतः मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव दिया है कि किसी सम्प्रदाय विशेष के सम्बन्ध में धार्मिक कानूनों को उस सम्प्रदाय की सहमति के बिना नहीं बदलना चाहिये और यह सहमति ऐसी प्रणाली द्वारा विदित की जानी चाहिये जो कि ससंद् कानून द्वारा निश्चित करे। चाहे संसद् उस जाति की इच्छा उनके

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

प्रतिनिधियों द्वारा ही जानने का निश्चय करे। और यह प्रतिनिधि अपने निर्वाचन-भाषणों तथा प्रतिज्ञाओं द्वारा उनकी इच्छा जान सकते हैं। वास्तव में यह किसी निर्वाचन में विश्वास की कसौटी बनाई जा सकती है तथा इस पर जनता के मत को सहमति समझी जा सकती है। यह तो विस्तार की बातें है। मैंने अपने संशोधन द्वारा यह निर्णय केन्द्रीय विधान-मंडल पर छोड़ देने का प्रयत्न किया है कि यह सहमति किस प्रकार जानी जाये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह केवल आदर्शवाद की बात नहीं है। यह एक कठोर सत्य है, जिसका सामना करने से हमें इन्कार नहीं करना चाहिये, और मेरा विश्वास है कि इससे देश के बहुत से वर्गों में अत्यधिक गलत-फहमी तथा घृणा उत्पन्न हो जायेगी। जिस कार्य को अंग्रेज पौने दो सौ वर्षों में न कर सके अथवा करने से डरते थे, जिस कार्य को मुसलमानों ने 500 वर्षों में भी नहीं किया, हमें यही काम तत्काल ही करने का अधिकार राज्य को नहीं दे देना चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, वरन् सावधानी से, अनुभव से, सूझ बूझ से तथा सहानुभूति से कार्य करना चाहिये।

(*मि. बी. पोकर साहब बोलने के उठे।*)

***उपाध्यक्षः** जब हम सारे खंड पर एक साथ विचार करेंगे, तब आपको अवसर मिलेगा। संशोधन सं. 960। प्रस्तावक ने इसे एक नया उप-खंड 35-ए बताया है। हम इसे बाद में ले सकते हैं अब सारे अनुच्छेद पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): मैंने अनुच्छेद 35 पर एक संशोधन की सूचना दी है। इसकी संख्या 833 है।

***उपाध्यक्षः** यह मेरे ध्यान से चूक गया। मुझे हर्ष है कि आपने यह बता दिया।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि अनुच्छेद 35 के साथ निम्नलिखित शर्त लगा दी जायेः

"पर इस अनुच्छेद की किसी बात से नागरिक के निजी कानून पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

अनुच्छेद 35 के विषय में मेरा विचार यह है कि 'व्यवहार संहिता' इन शब्दों में किसी नागरिक का पूर्णतया निजी कानून सम्मिलित नहीं है। व्यवहार-संहिता में

इस प्रकार के कानून सम्मिलित होते हैं: यथा सम्पत्ति, सम्पत्ति के हस्तांतरण के कानून, संविदे का कानून, साक्षी का कानून आदि। किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष का कानून अनुच्छेद 35 में नहीं आता। यह मेरा दृष्टिकोण है। किन्तु फिर भी इस बात को स्पष्ट करने के लिये कि अनुच्छेद 35 से नागरिकों के निजी कानून पर प्रभाव नहीं पड़ता, मैंने इस संशोधन की सूचना दी है। श्रीमान्, यदि किसी कारण से इस अनुच्छेद के बनाने वालों के मस्तिष्क में यह बात समा गई है कि 'व्यवहार संहिता' में नागरिकों का निजी कानून भी शामिल है, तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि वे एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा कर रहे हैं कि कुछ सम्प्रदायों को उनका निजी कानून बहुत प्रिय है। जहां तक मुसलमानों का संबंध है, उनके उत्तराधिकार, विवाह तथा विवाह-विच्छेद के कानून पूर्णत: उनके धर्म पर आश्रित हैं।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ यह तो संविदे का ही प्रश्न है।

*__श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर:__ मैं जानता हूं कि दूसरी जातियों के कानूनों के विषय में श्री अनन्तशयनम् आयंगर के सदा बहुत विचित्र विचार होते हैं। इसका अर्थ संविदा बताया जाता है, जब कि हिंदुओं में विवाह एक संस्कार होता है और यूरोप के लोगों में यह स्थिति का प्रश्न है। यह मुझे भली-भांति ज्ञात है। यह संविदा करना मुसलमानों के लिए कुरान के अनुसार आवश्यक हैं और यदि उसके अनुसार अमल नहीं किया जाता तो विवाह कदापि वैध विवाह नहीं होता। साढ़े तेरह सौ वर्षों से मुसलमान इस कानून पर चलते रहे हैं और सब राज्यों के समस्त अधिकारियों ने इसे मान्यता प्रदान की है। यदि आज श्री अनंतशयनम् आयंगर यह कहने लगें कि विवाह सिद्ध करने की कोई अन्य प्रणाली बनाई जानी है तो हम इसे मानने से इंकार कर देंगे क्योंकि वह हमारे धर्मानुसार नहीं हैं। यह उस संहिता के अनुसार नहीं है जो इस विषय में हमारे लिये सदा के लिये नियत की गई है। अतएव, श्रीमान्, यह मामला इतनी अगंभीरता से निपटाने का नहीं है। मैं जानता हूं कि कुछ अन्य जातियों के प्रसंग में भी, उनका निजी कानून सर्वथा उनके धार्मिक सिद्धांतों पर ही आश्रित है। यदि अन्य जातियों की अपने धार्मिक सिद्धांतों तथा आचरणों पर चलने की अपनी प्रणाली है, तो वह किसी ऐसी जाति पर नहीं थोपी जा सकती जो कि इस बात पर दृढ़ है कि वह अपने धार्मिक सिद्धांतों पर अमल करती रहे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): सब सम्बद्ध लोगों की सहमति से ही ऐसा करने का अभिप्राय है।

***उपाध्यक्ष:** श्री भारती, बहुसंख्यक जाति सदा इतनी उदार रही है कि मैं आपसे व्यक्तिगत रूप में यह अनुग्रह करने का अनुरोध करता हूं कि आप हमारे मुसलमान भाइयों को उनके विचार प्रकट करने की यथा सम्भव पूर्ण स्वतंत्रता दें। मैं आपसे कुछ समय के लिये धैर्य रखने का अनुरोध करता हूं। मुझे ज्ञात है कि इस विषय पर उनकी भावनायें बहुत प्रबल है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, बात यह थी कि यह कोई थोपने का प्रयत्न नहीं था। यदि कुछ भी किया जायेगा तो यह सब सम्बन्धित लोगों की सहमति से ही किया जायेगा, और माननीय सदस्य को इस बात पर इतना कहने की आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** यह बात ज्ञात है और मैं इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर:** श्रीमान्, ऐसा प्रतीत होता है कि असाम्प्रदायिक राज्य के विषय में लोगों के बहुत विचित्र विचार है। लोग ऐसा सोचते प्रतीत होते हैं कि असाम्प्रदायिक राज्य में सारे नागरिकों को समस्त विषयों में, जिनमें जीवन की दैनिक क्रिया, भाषा, संस्कृति तथा निजी कानून भी सम्मिलित हैं, एक ही कानून का अनुसरण करना चाहिये। असाम्प्रदायिक राज्य के विषय में यह ठीक दृष्टिकोण नहीं है। असाम्प्रदायिक राज्य में विभिन्न जातियों के नागरिकों को अपना धर्म पालन करने की, अपने जीवन के आचरण की स्वतंत्रता होनी चाहिये तथा उनका निजी कानून उन पर लागू किया जाना चाहिये। अतएव मुझे आशा है कि इस अनुच्छेद के निर्माताओं के मन में यह बात नहीं होगी कि 'व्यवहार संहिता' शब्द में लोगों का निजी कानून सम्मिलित है। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह बात यह शर्त लगाकर स्पष्ट कर दी जाये। जिससे कि यह अर्थ न निकाला जा सके कि 'व्यवहार संहिता' इन शब्दों में किसी जाति का निजी कानून सम्मिलित है।

***श्री बी. पोकर साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं मि. मोहम्मद इस्माइल साहब के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं जिसका आशय है कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित शर्त जोड़ दी जाये:

''पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय अथवा जाति का यदि कोई निजी कानून हो तो उसे वह कानून छोड़ने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।''

इस अनुच्छेद 35 पर यह अतीव नम्र तथा उचित संशोधन है। अब मैं परिषद् से प्रार्थना करूंगा कि इस संशोधन पर केवल मुसलमान सम्प्रदाय के ही दृष्टिकोण से नहीं, अपितु इस देश में रहने वाली विभिन्न जातियों के दृष्टिकोण से विचार करें, जो कि उत्तराधिकार, विवाह, विवाह-विच्छेद, दान तथा अन्यान्य विषयों में विभिन्न कानून-संहिताओं का पालन करती है। परिषद् को ध्यान होगा कि अंग्रेज इस देश पर विजय पाने के पश्चात् यहां गत डेढ़ सौ वर्ष से अपना शासन चलाने में जो सफल रहे, उसका एक कारण यह भी था कि उन्होंने इस देश में विभिन्न जातियों को उनके निजी कानूनों का पालन करने की प्रत्याभूति दी थी। यह सफलता का रहस्य था तथा न्याय की व्यवस्था का आधार था, जिस पर विदेशी राज्य भी आश्रित था। श्रीमान्, मैं पूछता हूं कि हमने इस देश के निमित्त जो स्वतंत्रता प्राप्त की है, क्या हम उससे अपने विश्वास की स्वतंत्रता को और धार्मिक आचरण की स्वतंत्रता को तथा अपने निजी कानून के पालन की स्वतंत्रता को छोड़ देंगे और सारे देश पर व्यवहार कानून की एक संहिता लादने का प्रयत्न या आकांक्षा करेंगे, चाहे उसका कुछ भी आशय हो—और मैं कहता हूं कि उसमें विद्यमान रूप में व्यवहार कानून की सारी ही शाखायें सम्मिलित हो सकती है, अर्थात् विवाह का कानून, उत्तराधिकार का कानून, विवाह-विच्छेद का कानून और अन्य कई सम्बद्ध विषय भी सम्मिलित हो सकते हैं।

सर्वप्रथम मैं यह जानना चाहूंगा कि यह खण्ड वास्तव में किस अभिप्राय से रखा गया है। यदि 'व्यवहार संहिता' इन शब्दों को रखने का यही प्रयोजन है कि इसमें केवल व्यवहार विधि संहिता तथा अन्य ऐसे कानून शामिल होंगे जो कि वर्तमान भारत में एकरूप हैं, तो किसी को उस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु देश के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न व्यवहार न्यायालयों ने प्रत्येक जाति के लिये विवाह, उत्तराधिकार, विवाह-विच्छेद आदि के विषय में अपने निजी कानूनों पर चलने का अधिकार प्राप्त कराया है। पर यदि अभिप्राय यह है कि राज्य की आकांक्षा इन प्रावधानों का उल्लंघन करने की होनी चाहिये और सारे लोगों के लिये इन विषयों के सम्बन्ध में, जो कि विभिन्न प्रान्तों में व्यवहार न्यायालयों के कानूनों द्वारा नियमित होते हैं, एक विधि कानून लागू करने की होनी चाहिये, तो मैं केवल

[श्री बी. पोकर साहब]

यही कहता हूं कि श्रीमान्, यह एक कठोर प्रावधान है, जिसे सहन नहीं किया जाना चाहिये, और आपको यह नहीं समझना चाहिये कि मैं केवल मुसलमानों की ही भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं। इस कथन में मैं इस देश के अनेक वर्गों की भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं जो यह अनुभव करते हैं कि इस समय वे जिन धार्मिक कानूनों और धार्मिक आचरणों द्वारा शासित होते हैं, उनमें हस्तक्षेप करना वास्तव में अन्याय होगा।

श्रीमान्, आप में से अनेकों के समान मुझे बहुत सी पुस्तिकायें प्राप्त हुई हैं जिन में इन विषयों पर लोगों की भावनायें व्यक्त की गई है। मैं उन अनेक पुस्तिकाओं की चर्चा कर रहा हूं जो मुझे मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं से, हिंदुओं की संस्थाओं से प्राप्त हुई हैं, जिनमें इस प्रकार के हस्तक्षेप को अत्यन्त अन्याय बताया गया है। श्रीमान्, वे यहां तक कहते हैं कि इस परिषद् को वैधानिक दृष्टिकोण से उनके अधिकारों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार तथा प्राधिकार है। वे पूछते हैं कि इस परिषद् के सदस्य कौन होते हैं जो धार्मिक अधिकारों तथा आचरणों में हस्तक्षेप करने का विचार कर रहे हैं? क्या उन्हें इस प्रश्न पर चुना गया था कि उन्हें यह अधिकार है या नहीं? क्या वे उन विभिन्न विधान-मंडलों द्वारा चुने गये हैं जिनके कि चुनाव इन प्रश्नों पर हुये थे?

यदि ऐसी परिषद् धार्मिक अधिकारों तथा आचरणों में हस्तक्षेप करती है, तो यह अन्याय होगा। श्रीमान्, मैं जैसी भाषा प्रयोग कर रहा हूं इन संस्थाओं ने तो उससे भी अधिक जोरदार भाषा का प्रयोग किया है। अतएव मैं परिषद से यह प्रार्थना करूंगा कि मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे ऐसा नहीं समझें कि वह केवल मुसलमान सम्प्रदाय के ही दृष्टिकोण से है। मुझे ज्ञात है कि हिन्दू जाति के विभिन्न वर्गों के उत्तराधिकार सम्बन्धी तथा अन्य मामलों में बहुत विभिन्नता है। क्या यह परिषद् इन सब विभिन्नताओं को मिटा कर उन्हें एकरूप करने जा रही है? मैं पूछता हूं कि एकरूपता से आपका क्या आशय है, और किस जाति के किस कानून को आप मापदण्ड मानने जा रहे हैं? इस प्रकार के खण्ड की रचना करने में आपका उद्देश्य क्या है? मिताक्षर तथा दयाभाग प्रणालियां है; अन्य कई जातियों की अनेक विभिन्न प्रणालियां हैं। आप किस को आधार बना रहे हैं? क्या हमको इस प्रकार का कुछ भी कार्य करने का अधिकार है? इस एक खण्ड द्वारा आप समस्त देश और उसकी सारी व्यवस्था में क्रांति कर रहे हैं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसे कि इस प्रस्ताव पर वक्तृता देते समय एक पूर्व वक्ता ने कहा था, यह मूलाधिकारों के एक प्रावधान खण्ड 19 के सर्वथा प्रतिकूल है। यदि यह प्रतिकूल है, तो इस प्रकार के खण्ड से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? क्या इस परिषद् को यह अधिकार है कि जरा सी जवान हिला कर ऐसा अनुच्छेद पारित कर दे जिससे कि सारे देश में क्रांति (परिवर्तन) हो जाये? क्या यही इसका अभिप्राय है? मैं नहीं जानता कि इस अनुच्छेद के बनाने वालों का इससे क्या आशय है। इतने गम्भीर एवं महत्त्वपूर्ण विषय पर, मुझे यह देख कर बहुत खेद है कि इस अनुच्छेद के बनाने वालों अथवा मसौदा तैयार करने वालों ने इस पर काफी गम्भीरता से विचार नहीं किया। यह मुझे पता नहीं है कि इसे कहीं से नकल किया गया है या नहीं। फिर भी अगर इसे कहीं से नकल किया गया है, तो मैं उस विधान में भी इस प्रावधान की निंदा करूंगा। जिन देशों में परिस्थितियां सर्वथा भिन्न हैं उनके विधानों से धाराओं की नकल करना बहुत सरल है। इतनी अनेकों जातियां हैं जो शताब्दियों से या सहस्त्रों वर्षो से विभिन्न रीतियों का पालन करती है। जरा सा लिख देने से ही आप उन सबको अवैध कर देना चाहते हैं और उन्हें एक रूप बना देना चाहते हैं। क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? इस एकरूपता से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, सिवाय इसके कि लोगों की आत्मा का हनन होगा और उनमें यह भावना उत्पन्न हो जायेगी कि उनके धार्मिक अधिकारों तथा आचरणों के विषय में उन्हें कुचला जा रहा है? हमारे विधान में ऐसी कठोर व्यवस्था नहीं रखी जानी चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हिन्दू जाति के कई ऐसे वर्ग हैं जो इसके विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं और जो अपनी भावनाओं को मेरे से भी अधिक जोरदार शब्दों में व्यक्त करते हैं। यदि इस अनुच्छेद के बनाने वाले कहें कि बहुसंख्यक जाति भी इसके समर्थन में एकमत है तो मैं उन्हें चुनौती देता हूं कि वे ऐसा कह दें। ऐसा नहीं है। यदि यह भी मान लिया जाये कि बहुसंख्यक जाति इस विचार की है, तो भी मैं कहता हूं कि इसकी निन्दा की जानी चाहिये, और यह होने नहीं देना चाहिये, क्योंकि जनतंत्र में, जैसा कि मैं समझता हूं बहुसंख्यकों का यह कर्त्तव्य है कि वे प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति को उनके पवित्र अधिकार प्राप्त करायें। यदि बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के अधिकारों के साथ मनमानी करते हैं तो इसे लोकतंत्र कहना गलत है। यह लोकतंत्र है ही नहीं, यह अन्याय है। श्रीमान्, मैं आपसे तथा इस परिषद के अन्य सदस्यों से निवेदन करूंगा कि इस अनुच्छेद पर बहुत गम्भीरता से ध्यान दें, यह इस प्रकार पारित करने योग्य साधारण वस्तु नहीं है।

श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में निवेदन करता हूं कि मैंने मूलाधिकारों में भी एक संशोधन की सूचना दी है। यह केवल निदेशक सिद्धान्त है।

***उपाध्यक्ष:** वह उचित समय पर लिया जा सकता है।

***श्री बी. पोकर साहब:** मैं केवल यही निवेदन करता हूं कि इस पर मत लेने का जो परिणाम हो, उसका प्रभाव उस संशोधन के निर्णय पर न पड़ने दिया जाना चाहिये।

***श्री हुसैन इमाम** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, भारत इतना वृहद् देश है, इसकी भारी जनसंख्या इतनी विभिन्न है कि उस पर एक प्रकार का कोई रंग चढ़ाना लगभग असम्भव हैं हमारे यहां उत्तर में अत्यधिक शीत है, दक्षिण में अत्यधिक उष्णता है। आसाम में संसार भर से अधिक वर्षा होती है। पास ही राजपूताना मरुस्थल में कोई वर्षा नहीं होती। क्या इतने बहुरंगे देश के व्यवहार-कानून में एकरूपता लाना सम्भव है? आगे चल कर हमने स्वयं ही उत्तराधिकार, विवाह, विवाह-विच्छेद तथा अन्य विषयों में केन्द्र तथा प्रान्तों को समवर्त्ती क्षेत्राधिकार दिया है। जब ग्यारह-बारह विधान-मंडल किसी विषय पर अपने लोगों की आवश्यकतानुसार तथा अपनी परिस्थितियों के अनुसार कानून बनाने के लिये तत्पर हों, तब एकरूपता स्थापित करना कैसे सम्भव है? देखिये हमने पिछड़े हुये वर्गों को कैसे संरक्षण दिये हैं उनकी सम्पत्ति का संरक्षण एक विशेष प्रणाली से किया जाता है जिससे अन्य सम्पत्ति का नहीं किया जाता। अनुसूचित क्षेत्रों में—मुझे झारखण्ड तथा सन्थाल परगनों के विषय में ज्ञान है—हमने आदिवासी जनता को विशेष संरक्षण दिया है। कुछ परिस्थितियां हैं जिनमें व्यवहार-कानून की भिन्नता होना अपेक्षित है। अतएव, श्रीमान्, मेरे पूर्व वक्ता मित्रों ने जो तर्क उपस्थित किये हैं, उनके अतिरिक्त, मेरा सुझाव है कि कई अन्य कठिनाइयां भी हैं जो सर्वथा वैधानिक हैं, जो विभिन्न जातियों के अस्तित्व पर इतनी निर्भर नहीं हैं जितनी कि भारत के लोगों की बुद्धि तथा साधनों के विभिन्न स्तरों के अस्तित्व पर निर्भर हैं। आपको एकविध विकसित देश के विषय में नियम नहीं बनाने हैं। देश के कुछ भाग अत्यन्त पिछड़े हुये हैं। आसाम के आदिवासियों को देखिये, उनकी क्या अवस्था है? क्या आप उनके लिये वैसा ही कानून बना सकते हैं जैसा कि आप बम्बई के प्रगतिशील लोगों के लिये बना सकते हैं? आपको काफी अन्तर रखना होगा। श्रीमान्, मेरे विचार में एकविध कानून बनाना सर्वथा उपयुक्त तथा अति वांछनीय है, किन्तु बहुत समय पश्चात् ही ऐसा करना चाहिये। इसके निमित्त हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये, जब कि सारा भारत शिक्षित हो जाये, जब जनसाधारण की निरक्षरता दूर हो जाये, जब लोग प्रगतिशील हो जायें, जब उनकी आर्थिक अवस्था अब से अच्छी

हो जाये, जब प्रत्येक मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होने लगे तथा अपने जीवन-संग्राम में स्वयं लड़ सके। तब आप एकविध कानून बना सकते हैं। क्या आप एक बालक तथा एक युवक के लिये एक रूप कानून बना सकते हैं?

आज भी आपराधिक कानून में आप प्रौढ़ अपराधियों को जितना दण्ड देते हैं, नवयुवक अपराधियों को उससे हल्का दण्ड देते हैं अल्पसंख्यक जाति को जो भय है, वह बहुत वास्तविक है। असाम्प्रदायिक राज्य का यह अर्थ नहीं है कि यह धर्म विरोधी राज्य हैं इसका आशय यह है कि यह अधार्मिक नहीं है, अपितु धर्महीन है। अतएव मेरा सुझाव है कि मसौदा-समिति के सदस्यों के लिये यह अच्छी नीति होगी कि वे इस प्रावधान में ऐसे संरक्षण रख दें जिससे कि लोगों का वास्तविक भय दूर हो जाये। और मुझे पूर्णाशा है कि डा. अम्बेडकर के बुद्धि चातुर्य्य से इस का कोई न कोई उपाय निकल सकेगा।

श्री के.एम. मुंशी (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं कुछ विचार उपस्थित करना चाहता हूं। इस खण्ड विशेष पर, जो कि परिषद् के सामने है, पहली ही बार विवाद नहीं हो रहा है। परिषद् में पेश होने से पहले इस पर अनेकों समितियों तथा अनेकों स्थानों पर विवाद हो चुका है। इसके विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किये गये हैं ये यह हैं, प्रथम यह कि यह खण्ड अनुच्छेद 19 में कथित मूलाधिकार का उल्लंघन करता है और दूसरा यह है कि यह अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय है।

जहां तक कि अनुच्छेद 19 का प्रश्न है, परिषद् ने इसे स्वीकार कर लिया तथा यह सुस्पष्ट कर दिया कि: ''इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा, जो (क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध—मैं अनावश्यक शब्दों को छोड़ रहा हूं—अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन अथवा आयंत्रण करती हो; (ख) सामाजिक कल्याण अथवा सुधार के लिये हों''। अतएव परिषद् ने पहले ही इस सिद्धांत को मान लिया है कि यदि अब तक पालन किये जाने वाले किसी धार्मिक आचरण में लौकिक आचरण सन्निहित हो अथवा वह सामाजिक सुधार अथवा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में हो, तो इस विषय में संसद् को कानून बनाने का अधिकार होगा और इससे अल्पसंख्यकों के इस मूलाधिकार का उल्लंघन नहीं होगा।

[श्री के.एम. मुंशी]

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि यह खण्ड नहीं रखा जाये, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि भावी संसद् को व्यवहार संहिता बनाने का अधिकार नहीं होगा। इस अधिकार पर अनुच्छेद 19 का ही एक प्रतिबन्ध होगा और मैं पहले ही कह चुका हूं कि अनुच्छेद 19 में जिसे कि परिषद् ने एकमत से स्वीकार किया है, ऐहिक आचरणों के विषय में कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। इस अनुच्छेद का समस्त आशय यह है कि यदि तथा जब भी संसद् उपयुक्त समझे या बल्कि जब भी संसद् में बहुमत उपयुक्त समझे, तब देश के निजी कानूनों को एकरूप बनाने का प्रयास हो सकता है।

एक और तर्क उपस्थित किया गया है कि एक व्यवहार संहिता का निर्माण अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय होगा। क्या यह अन्याय है? किसी भी उन्नत मुस्लिम देश में प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति के निजी कानून को इतना अटल नहीं माना गया है कि व्यवहार संहिता बनाने का निषेध हो। उदाहरणार्थ तुर्की अथवा मिस्र को लीजिये। इन देशों में किसी अल्पसंख्यक को ऐसे अधिकार नहीं दिये गये हैं। किन्तु मैं दूर नहीं जाता। जब पुराने साम्राज्य में केन्द्रीय विधान-मंडल ने शरियत-कानून पारित किया था, तब खोजा और कच्छी मैनन लोग अत्यन्त असंतुष्ट थे।

वे उस समय कुछ हिन्दू परम्पराओं का पालन करते थे, धर्म-परिवर्तन के समय से कई पीढ़ियों से वे उनका पालन करते आये थे। वे शरियत के अनुसार नहीं चलना चाहते थे; किन्तु केन्द्रीय विधान-मंडल के कुछ मुसलमान सदस्यों ने जिनकी यह भावना थी कि सारी जाति पर शरियत कानून लागू होना चाहिये, अपनी बात मनवा ली। खोजा और कच्छी मैनन लोगों को अतीव अनिच्छा से इसे मानना पड़ा। उस समय अल्पसंख्यकों के अधिकार कहां थे? जब आप किसी जाति में एकरूपता स्थापित करना चाहते हों तो आपको केवल यही विचार करना होगा कि समस्त जाति को क्या लाभ होगा और उसके एक वर्ग के रीति-रिवाजों का विचार नहीं करना होगा। अतएव यह कहना ठीक नहीं है कि ऐसा कानून बहुसंख्यकों का अन्याय है। यदि यूरोप के उन देशों की बात लें, जहां कि व्यवहार संहिता है, तो आप देखेंगे कि वहां जो कोई संसार के किसी भाग से जाता है, उसे और प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति को उस व्यवहार संहिता का पालन करना होता है। यह अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय नहीं समझा जाता है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हम अपने निजी कानून को एकरूप तथा एकविध बनाने जा रहे हैं ताकि यथासम्भव सारे देश के जीवन की प्रणाली एकविध तथा लौकिक बन जाये। हम

धर्म को निजी कानून से अलग करना चाहते हैं, उसे सामाजिक सम्बन्धों से अथवा उत्तराधिकार के विषय में पक्षकों के अधिकारों से अलग करना चाहते हैं। इन चीजों का धर्म से क्या सम्बन्ध है, यह वास्तव में मेरे समझ में नहीं आता। उदाहरण के लिये हिन्दू कानून के मसौदे को ही लीजिये जो कि विधायिनी सभा के समक्ष है यदि कोई मनु अथवा याज्ञवल्क्य अथवा अन्य शास्त्रों को देखे तो मेरे विचार में इस नये विधेयक के अधिकांश प्रावधान उनके आदेशों के विपरीत है। किन्तु आखिर हमारा समाज प्रगतिशील है। हम ऐसी अवस्था में है जबकि हमें धार्मिक आचरणों में हस्तक्षेप किये बिना राष्ट्र को प्रत्येक उपाय से एकरूप तथा एकविध बनाना चाहिये। किन्तु यदि भूतकाल में धार्मिक आचरण का ऐसा अर्थ निकाला गया है कि उसमें जीवन का सारा क्षेत्र सन्निहित हो जाता है, तो हम सभी अवस्था पर पहुंच चुके हैं कि हमें दृढ़ता से कह देना चाहिये कि यह विषय धर्म सम्बन्धी नहीं है, वे लौकिक कानूनों के ही विषय है। इस अनुच्छेद में इसी बात पर जोर दिया गया है।

अब आप देखिये कि व्यवहार-संहिता के न होने से कितनी हानियां हैं जो स्थायी रूप से रहेंगी। भारत के कुछ भागों में 'मयूख' कानून लागू हैं, अन्यत्र 'मित्ताक्षर' कानून है और बंगाल में 'दायभाग' लागू है। इस प्रकार हिन्दुओं के ही भिन्न-भिन्न कानून हैं और हमारे अधिकांश प्रान्तों तथा राज्यों में अपने लिये भिन्न-भिन्न हिन्दू कानून आरम्भ कर दिये हैं। क्या हम, इस आधार पर कि इसका देश के निजी कानून पर प्रभाव पड़ता है, यह पृथक पृथक कानून-निर्माण होने देंगे। अतएव यह केवल अल्पसंख्यकों का ही प्रश्न नहीं है, इसका बहुसंख्यकों पर भी प्रभाव पड़ता है।

मैं जानता हूं कि हिन्दुओं में भी ऐसे बहुत लोग हैं जो एकविध व्यवहार-संहिता नहीं चाहते, क्योंकि उनका भी वही दृष्टिकोण है जो पूर्व वक्ता मुस्लिम सदस्यों का है। उनकी यह भावना है कि उत्तराधिकार आदि का निजी कानून वास्तव में उनके धर्म का भाग है। यदि ऐसा है तो उदाहरणार्थ आप महिलाओं को समानता कभी प्रदान नहीं कर सकते। किन्तु आपने अभी इस आशय का मूलाधिकार पारित किया है और आपके यहां एक अनुच्छेद है जिसमें लिखा है कि लिंग के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा। हिन्दू कानून को लीजिये; आपको महिलाओं के विरुद्ध कितना ही विभेद दिखाई देगा; और यदि यह हिन्दू धर्म अथवा हिन्दू धार्मिक आचरण का भाग हो तो आप कोई भी कानून पारित नहीं कर सकते,

[श्री के.एम. मुन्शी]

जिससे स्त्रियों की अवस्था पुरुषों के समान बनाई जा सकें। अतएव कोई कारण नहीं कि सारे भारत के लिये एक व्यवहार संहिता क्यों न हो।

एक महत्त्वपूर्ण विचार है जिसे हमें मस्तिष्क में रखना चाहिये—और मैं चाहता हूं कि मेरे मुस्लिम मित्र इसे समझ लें—कि जितना जल्दी हम जीवन की इस पार्थक्य भावना को भूल जायेंगे उतना ही देश के लिये अच्छा होगा। धर्म को ऐसे क्षेत्रों में सीमित रखना चाहिये जो न्यायपूर्वक उसके क्षेत्र हैं, किन्तु शेष जीवन को इस प्रकार अनियमित, एकरूपित तथा परिवर्तित करना चाहिये कि हम यथासम्भव शीघ्र एक सबल तथा संगठित राष्ट्र का निर्माण कर सकें। हमारी प्रथम समस्या तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या इस देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना है। किन्तु बहुत सी बातें हैं—और वे महत्त्वपूर्ण बातें हैं—जिनसे अब भी हमारी राष्ट्रीय एकता को गम्भीर खतरा है। और यह बहुत जरुरी है कि हमारा सारा जीवन—जहां तक कि वह लौकिक क्षेत्रों से सम्बद्ध है—ऐसे तरीके से एकविध बनाया जाना चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र ही हम यह कहने योग्य हो जायें कि ''हम अपने आपको एक राष्ट्र कहते हैं इसीलिये एक राष्ट्र नहीं है, अपितु हम वास्तव में भी एक ही राष्ट्र हैं, अपने रहने के तरीके से, अपने निजी कानून से, हम एक प्रबल तथा संगठित राष्ट्र हैं। केवल इसी दृष्टिकोण से, मेरा निवेदन है कि—यदि मैं ऐसा कह दूं तो—विरोधी दल को उचित परामर्श नहीं मिला है। मुझे आशा है कि हमारे मित्र यह नहीं समझेंगे कि यह अल्पसख्यंकों के साथ अन्याय करने का प्रयत्न है। यह बहुसंख्यकों के लिये कहीं अधिक कठोर है।

अंग्रेजी राज्य में हमारे मस्तिष्क में यह भाव था कि निजी कानून धर्म का भाग है, यह भावना अंग्रेजों तथा उनके न्यायालयों ने उकसाई थी। अतएव हमें इसे त्याग कर आगे बढ़ जाना चाहिये मैं अन्तिम वक्ता माननीय सदस्य को फरिश्ता की एक घटना याद दिला दूं जो मुझे याद आ गई है। अलाउद्दीन खिलजी ने बहुत से परिवर्तन किये थे जो शरियत के विरुद्ध थे, यद्यपि वे पहले शासक थे जिन्होंने यहां मुस्लिम सल्तनत स्थापित की थी। दिल्ली के काजी ने उनके कुछ सुधारों पर आपत्ति की, तब उन्होंने उत्तर दिया कि ''मैं अज्ञानी मनुष्य हूं और मैं इस देश पर इसके सर्वोच्च हितों के अनुसार राज्य कर रहा हूं। मैं अपनी अज्ञानता को भी जानता हूं और अपनी सद्‌भावनाओं को भी, जब परमात्मा यह देखेंगे कि मैंने शरियत के अनुसार कार्य नहीं किया, तो वे मुझे क्षमा करेंगे।'' जब अलाउद्दीन इस सिद्धान्त को न मान सका तो एक आधुनिक सरकार कैसे

मान सकती है कि धार्मिक अधिकारों में निजी कानून अथवा अन्य कई विषय सम्मिलित हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से अपने धर्म का अंग मानने की हमें शिक्षा दी गई है। यही मेरा निवेदन है।

*श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र माननीय श्री मुंशी द्वारा अति पूर्ण व्याख्या के पश्चात् सब बातों की पुनरावृत्ति करना अपेक्षित है। किन्तु यह समझ लेना अच्छा होगा कि आया इस अनुच्छेद के वर्तमान रूप में इस पर कोई वास्तविक आपत्ति हो सकती है।

> ''राज्य भारत के साद्यन्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एकविध व्यवहार-संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा।''

जैसा कि बताया गया है व्यवहार संहिता में व्यवहार सम्बन्धों के प्रत्येक विषय आ जाते हैं। संविदे का कानून, सम्पत्ति का कानून, उत्तराधिकार का कानून, विवाह का कानून तथा एतद्सम अन्य विषय इसमें सम्मिलित हैं। यहां इस प्रकार के व्यापक वक्तव्य पर क्या आपत्ति हो सकती है कि राज्य भारत के साद्यन्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एकविध व्यवहार-संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा?

दूसरी आपत्ति यह थी कि धर्म संकट में है और यदि एकविध व्यवहार संहिता हो जायेगी तो जातियां स्नेहभाव से नहीं रह सकेगी। वास्तव में इस अनुच्छेद का उद्देश्य स्नेहभाव ही है। आशय यह है कि उत्तराधिकार तथा अन्य विषयों में विभिन्नता भी ऐसी एक चीज है जो भारत की विभिन्न जातियों में अन्तर उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। इसका उद्देश्य यही है कि इन विषयों पर समझौते का कोई सामान्य उपाय निकाला जाये। यह बात नहीं है एक न्याय प्रणाली दूसरी पर प्रभाव नहीं डालती अथवा उससे प्रभावित नहीं होती। कई मामलों में हिन्दू संहिता के प्रस्तावकों ने केवल हिन्दू कानून से ही सब बातें नहीं ली है किन्तु अन्य प्रणालियों से भी ली है। इसी प्रकार उत्तराधिकार कानून रोमन तथा अंग्रेजी दोनों प्रणालियों पर आश्रित है। अतएव कोई प्रणाली तब तक आत्मभरित नहीं हो सकती, जब तक कि इसमें विकास का तत्त्व नहीं होगा। हमारे पूर्वजों ने एकविध राष्ट्र को लोकतंत्र के एक धागे में बांधने की कल्पना नहीं की थी। सदा अतीत से चिपटे रहने से कोई लाभ नहीं है। हम एक महत्त्वपूर्ण बात में अतीत से विदा ले रहे हैं, वह यह है कि हम सारे भारत को एक ही राष्ट्र के रूप में बनाना

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

तथा संगठित करना चाहते हैं। क्या हम उन बातों में सहायता दे रहे हैं जो एक राष्ट्र के संगठन में सहायक होती हैं। अथवा क्या इस देश को सदा प्रतिद्वन्द्वी जातियों का स्थान बनाये रखना है। यही प्रश्न विचारणीय है।

मेरे मित्र मि. पोकर ने मसौदा-समिति पर दोष लगाया था कि वे अपना काम नहीं जानते थे। मैं पूछना चहता हूं कि आपने ध्यान से पढ़ा है कि ब्रिटिश राज्य में क्या हुआ? आपको ज्ञात होना चाहिये कि मुस्लिम कानून में संविदा, आपराधिक कानून, विवाह-विच्छेद कानून, विवाह कानून सब आ जाते हैं और मुस्लिम धर्मशास्त्र में वर्णित कानून के सब अंग आ जाते हैं। जब अंग्रेजों ने इस देश पर अधिकार किया तो उन्होंने कहा: "हम इस देश में एक ही आपराधिक कानून बनाने जा रहे हैं जो सारे नागरिकों पर लागू होगा। क्या मुसलमानों ने आपत्ति की और क्या एक आपराधिक कानून बना देने पर मुसलमानों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया? इसी प्रकार हमारे यहां संविदे का कानून है जो मुसलमानों एवं हिन्दुओं और मुस्लिमों एवं मुस्लिमों के बीच के व्यवहारों पर लागू है। वे कुरान के कानून द्वारा शासित नहीं होते, वरन् आंग्ल-भारतीय न्यायशास्त्र द्वारा शासित होते हैं, किन्तु इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई। इसके अतिरिक्त हस्तांतरण के कानून में अनेक सिद्धांत हैं जो अंग्रेजी न्यायशास्त्र से लिये गये हैं।

अतएव, जब दो सभ्यताओं अथवा दो संस्कृतियों में सम्पर्क होता है तो यह आवश्यक है कि एक संस्कृति दूसरी संस्कृति द्वारा प्रभावित हो तथा उस पर प्रभाव डाले। यदि दृढ़ विरोध हो, अथवा जनता के किसी वर्ग की ओर से प्रबल विरोध हो, तो इस देश के कानून निर्माताओं के लिये उसकी अवहेलना करने का प्रयत्न करना बुद्धिमानी नहीं होगी। आज अनुच्छेद 35 की अनुपस्थिति में भी भारत की भावी संसद् के लिये ऐसे कानून बनाने का कोई निषेध नहीं है। अतएव, अभिप्राय एकविध व्यवहार-संहिता बनाने का है। यूरोप के विभिन्न देशों में मुसलमान हैं, हिन्दू हैं, कैथोलिक हैं, ईसाई हैं, यहूदी हैं। मैं मि. पोकर से जानना चाहता हूं कि क्या फ्रांस में, जर्मनी में, इटली में और यूरोप के सारे देशों में विभिन्न निजी कानून स्थायी रूप से लागू हैं? क्या विभिन्न राज्यों में उत्तराधिकार के कानूनों को अनियमित तथा एकविध नहीं किया गया है? उन्होंने तो मुस्लिम न्याय शास्त्र का सविस्तार अध्ययन किया होगा और पता लगाया होगा कि इन देशों में न्याय की एक ही प्रणाली है या विभिन्न प्रणालियां हैं।

वहां के लोगों को भी छोड़ो। आज यदि देश के अन्य भागों के लोगों के पास यूरोप महाद्वीप में सम्पत्ति हो जहां जर्मन व्यवहार संहिता अथवा फ्रांसीसी व्यवहार संहिता लागू हो तो उन लोगों पर कई विषयों में उस स्थान का कानून लागू होता है। अतएव यह कहना गलत है कि हम धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रहे हैं। मुस्लिम-कानून के अन्तर्गत विवाह एक व्यवहार संविदा है, जैसा कि हिन्दू कानून में नहीं है। मुस्लिम न्याय शास्त्र के अनुसार विवाह की कल्पना में पवित्रता का आशय नहीं आता, यद्यपि इस संविदा के प्रसंग में कुरान तथा बाद के न्यायशास्त्रियों के कथन लागू होते हैं। अतएव धर्म के जोखिम में होने का कोई प्रश्न नहीं है। निस्संदेह कोई संसद्, कोई विधान-मंडल ऐसा बुद्धिहीन नहीं होगा कि वह ऐसा करने का प्रयत्न करे, लोगों के धार्मिक सिद्धान्तों में हस्तक्षेप करने के सम्बन्ध में विधान-मंडल की अधिकार की बात अलग है। इस देश में समय के अनुसार अपने आप को ढालने के लिये केवल एक ही जाति तैयार दिखाई देती है; और यह बहुसंख्यक जाति है। वे अल्पसंख्यक जाति से शिक्षा लेने और अपने हिन्दू कानूनों का पुनर्निर्माण करने के लिये तैयार हैं। और हिन्दू कानून में भी सुधार करने के लिये वह मुसलमानों की बातें अपनाने के लिये तैयार हैं। अतएव अनुच्छेद 35 पर जो आपत्ति की गई है उसमें कोई बल नहीं है। भावी विधान-मंडल एकविध व्यवहार संहिता बनाने का प्रयास कर सकता है और वह चाहे तो न करे। एकविध व्यवहार संहिता में व्यवहार कानून के सब अंग सम्मिलित है। संविदों, कार्य-प्रणाली तथा सम्पत्ति को समवर्ती सूची में रख कर इन विषयों में एकरूपता लाने का प्रयत्न किया गया है। इन विषयों के सम्बन्ध में अंग्रेजी न्याय-शास्त्र का सब से बड़ा अंशदान यही रहा है कि इन विषयों में एकरूपता स्थापित की गई है। हम अंग्रेजों से, जिन्होंने कि इस देश पर शासन किया है, केवल एक ही कदम आगे बढ़ रहे हैं। हमें विदेशी सरकार से अत्यधिक राष्ट्रीय देशी सरकार का अविश्वास क्यों करना चाहिये? हमारे मुसलमान मित्रों को जनतंत्रात्मक शासन से अधिक विश्वास अंग्रेजी शासन में क्यों होना चाहिये? प्रजातंत्रात्मक शासन सब लोगों के धार्मिक सिद्धान्तों तथा विश्वासों का निस्संदेह आदर करेगा।

अतएव, इन्हीं कारणों से मैं निवेदन करता हूं कि परिषद् इस अनुच्छेद को, जो कि पर्याप्त सोच-विचार के पश्चात् सदस्यों के समक्ष रखा गया है, एकमत से पारित कर दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर जो संशोधन पेश किये गये हैं, मुझे भय है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। इस मामले

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

पर बोलते समय, मेरा विचार इस प्रश्न के विषय में कुछ कहने का नहीं है कि इस देश में एक व्यवहार संहिता होनी चाहिये या नहीं। मेरे विचार में इस विषय पर मेरे मित्र श्री मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस अवसर के योग्य काफी कह दिया है। यह सम्भव है कि जब कुछ मूलाधिकारों पर संशोधन पेश हों, तब मेरे लिये इस विषय पर पूरा वक्तव्य देना सम्भव हो, अतः मैं इस विषय पर इस समय नहीं बोलना चाहता।

मेरे मित्र मि. हुसैन इमाम ने संशोधनों का समर्थन करते समय पूछा था कि क्या इतने वृहद् देश के लिये कानूनों की एकविध संहिता बनाना सम्भव तथा वांछनीय है? मुझे स्वीकार करना होगा कि मुझे उस बात पर बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि हमारे यहां इस देश में मानवीय सम्बन्धों के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में कानूनों की एकविध संहिता है। हमारे यहां दंड-विधान में एकविध तथा सम्पूर्ण आपराधिक कानून निहित है जो सारे देश में लागू हैं और एक आपराधिक विधि संहिता भी है। हमारे यहां सम्पत्ति हस्तांतरण का कानून है जो सम्पत्ति के सम्बन्धों के विषय में है तथा सारे देश में लागू है। इसके अतिरिक्त हुण्डी पुर्जों के कानून (नेगोशियेबल इन्स्ट्रूमेण्ट्स एक्ट) हैं। और मैं असंख्य उदाहरण दे सकता हूं जिनसे यह सिद्ध हो जायेगा कि इस देश में लगभग एक ही व्यवहार संहिता है, जो एकविध है तथा समस्त देश में लागू है। अब तक केवल एक प्रदेश में व्यवहार कानून हस्तक्षेप नहीं कर सका है, वह विवाह तथा उत्तराधिकार का प्रदेश है। यही एक छोटा सा कोना है जिसमें हम अब तक हस्तक्षेप नहीं कर सके हैं और जो लोग अनुच्छेद 35 को विधान का भाग बनाना चाहते हैं उनकी इच्छा यही सुधार करने की है। अतएव यह जो तर्क पेश किया गया है कि हमें ऐसा करना चाहिये या नहीं, वह मुझे अनुपयुक्त दिखाई देता है क्योंकि हमने वास्तव में उन सब विषयों पर कानून बना दिये हैं जो कि इस देश में एकविध व्यवहार संहिता में निहित होते हैं। अतएव अब यह पूछने का समय बीत चुका कि क्या हम ऐसा कर सकते हैं? मेरा कहना है कि हम ऐसा पहले ही कर चुके हैं।

संशोधन के विषय में मैं केवल दो ही बातें कहना चाहता हूं। मुझे पहली बात यह कहनी है कि जिन सदस्यों ने यह संशोधन रखे हैं वे कहते हैं कि मुसलमानों का निजी कानून, जहां तक इस देश का सम्बन्ध है, सारे भारत में अटल तथा एकविध था। मैं इस कथन को चुनौती देना चाहता हूं। मेरे विचार में मेरे अधिकांश मित्र, जो कि इस संशोधन पर बोले हैं, यह सर्वथा भूल गये कि

सन् 1935 तक पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में शरियत कानून लागू नहीं था। उत्तराधिकार तथा अन्य विषयों में वहां हिन्दू कानून का अनुसरण किया जाता था, यहां तक कि 1939 में केन्द्रीय विधान-मंडल को इस विषय में हस्तक्षेप करना पड़ा तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के मुसलमानों पर हिंदू कानून का लागू होना बंद करवा कर वहां शरियत कानून लागू कराना पड़ा। केवल इतना ही नहीं। मेरे माननीय मित्र भूल गये कि 1937 तक पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के अतिरिक्त शेष भारत के भी विभिन्न भागों मे, यथा संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत तथा बम्बई में उत्तराधिकार के विषय में काफी हद तक मुसलमानों पर हिन्दू कानून लागू था। उन्हें दूसरे मुसलमानों के साथ जो कि शरियत पर चलते थे, एक स्तर पर लाने के लिये 1937 में विधान-मंडल को हस्तक्षेप करना पड़ा तथा शेष भारत पर शरियत कानून लागू करने के लिये एक कानून बनाना पड़ा।

मेरे मित्र श्री करुणाकर मैनन ने मुझे बताया है कि उत्तरी मालाबार में मरुमकतायम कानून केवल हिंदुओं पर ही नहीं मुसलमानों पर भी लागू था। स्मरण रखना चाहिये कि मरुमकतायम कानून मातृ-प्रधान कानून है पितृ-प्रधान कानून नहीं।

अतएव उत्तरी मालाबार में मुसलमान अब तक मरुमकतायम कानून का अनुसरण करते थे। अतएव ऐसा कहने से कोई लाभ नहीं है कि मुस्लिम कानून एक अटल कानून है जिसका वे प्राचीन समयों से अनुसरण करते रहे हैं वह कानून उस रूप में कुछ भागों में लागू नहीं था और दस वर्ष पहले लागू किया गया था। अतएव यदि वह आवश्यक जान पड़े कि समस्त नागरिकों पर उनके धर्म का विचार न करते हुए एक ही व्यवहार संहिता लागू करने के लिये अनुच्छेद 35 में निर्देशित नयी व्यवहार संहिता में हिंदू कानून के कुछ अंश रख दिये गये हैं—इसलिये नहीं कि वे हिंदू कानून के अंश हैं किन्तु इसलिए कि वे सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़ते हैं—तो मुझे विश्वास है कि किसी मुसलमान को यह कहने का अधिकार नहीं होगा कि व्यवहार संहिता के बनाने वालों ने मुस्लिम जाति की भावनाओं के प्रति कठोरता बरती है।

मेरी दूसरी बात यह है कि मैं उन्हें आश्वासन देना चाहता हूं। इस विषय पर उनकी भावनाओं को मैं पूर्णत: समझता हूं, किन्तु मेरे विचार में उन्होंने अनुच्छेद 35 का बहुत खींचतान कर आशय निकाला है। इस अनुच्छेद में केवल यही सुझाव है कि राज्य देश के नागरिकों के लिये एक व्यवहार संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा। यह ऐसे नहीं कहता कि संहिता के निर्माण के पश्चात् राज्य उसे सब नागरिकों पर केवल इसी आधार पर लागू कर देगा कि वे नागरिक हैं यह सर्वथा

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संभव है कि भावी संसद् आरंभ करने के निमित्त ऐसा प्रावधान बना दे जिससे कि यहां मेरे मित्रों ने जो आशंका प्रकट की है, वह सर्वथा मिथ्या हो जाये। अतएव मेरा निवेदन है कि इन संशोधनों में कोई सार नहीं है, और इस कारण मैं उनका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है।

"कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित प्रावधान जोड़ दिया जाये:

''पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति का यदि कोई निजी कानून हो तो उसे वह कानून छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।' ''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित प्रावधान जोड़ दिया जाये, अर्थात्:

'पर किसी जाति का निजी कानून, जो कानून द्वारा प्रत्याभूत हो, उस जाति की पूर्व सहमति के बिना परिवर्तित नहीं किया जायेगा और यह सहमति उस प्रणाली द्वारा विदित की जायेगी जो कि संघीय व्यवस्थापक मंडल कानून द्वारा निश्चित करे।' ''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि विधान के मसौदे के भाग चार को निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 35 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 35 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 37

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 37 में 'अनुसूचित जातियां' इन शब्दों के स्थान पर 'किसी भी वर्ग अथवा धर्म की पिछड़ी हुई जातियां' यह शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, विधान के मसौदे के अनुच्छेद 303 (ब) में 'अनुसूचित जातियों' की यह परिभाषा है कि भारत-शासन (अनुसूचित जाति) आदेश, 1936 में उल्लिखित जातियां तथा प्रजातियां अनुसूचित जातियां हैं। उस आदेश में अधिकांश वन जातियां, जातियां तथा उप-जातियां उल्लिखित है और उनमें बावरिया, चमार, चूड़ा, बाल्मीकि औद, सांसी, सिखी बन्द और रामदासी शामिल हैं। यह मानना होगा कि उनके भिन्न-भिन्न मत तथा विश्वास है। उदाहरण के लिये सिख, रामदासी, औद, बाल्मिकी तथा चमार काफी संख्या में हैं। वे उतने ही पिछड़े हुये हैं जितने कि अन्य धर्मों के मानने वाले उनके भाई हैं। किन्तु अब तक यह पिछड़ी हुई सिख जातियां उन लाभों से वंचित रखी गई जो कि अनुसूचित जातियों के लिये रखे गये। इसका परिणाम यह हुआ है कि या तो अधिक संख्या में धर्म परिवर्तन हुए हैं अथवा असंतोष रहा है।

मैं समझता हूं कि जहां तक विधान-मंडल के निर्वाचनों का प्रश्न है इसमें कुछ औचित्य हो सकता है, क्योंकि सिखों के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व है और अनुसूचित जातियों को सामान्य जगहों में से आरक्षण मिल जाता है। सरदार गोपालसिंह खालसा का मामला प्रसिद्ध है। उन्हें एक जगह के लिये खड़ा नहीं होने दिया गया था, जब तक कि वे यह घोषणा न कर देते कि वे सिख नहीं है। ऐसे मामलों से निराशा तथा असंतोष उत्पन्न हुआ था, क्योंकि सामान्यत: यह विश्वास जम गया था कि कुछ वर्गों के विरुद्ध विभेद किया जा रहा है।

मूल आशय यह है कि जाति के पिछड़े हुए वर्गों को उन्नत कराया जाये जिससे कि वे राष्ट्रीय कामों में समान भाग ले सकें। मेरे समक्ष यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि अनुच्छेद के प्रथम भाग में तो 'जनता के दुर्बल वर्गों के शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितों' के प्रोत्साहन की व्यवस्था की गई है। यह सर्वथा उपयुक्त है तथा प्रत्येक वर्ग पर लागू हो सकता है। किंतु क्योंकि 'दुर्बल वर्गों' की कहीं व्याख्या नहीं की गई है, अत: यह आशंका है कि 'अनुसूचित जातियों सम्बन्धी उत्तरार्ध भाग पर ही सारा ध्यान लगा दिया जायेगा, तथा दुर्बल वर्गों का कुछ भी अर्थ नहीं रहेगा। यहां तक कि इस अनुच्छेद में भी उत्तर भाग पर ही सारा बल दिया गया है और 'अनुसूचित जातियों' के साथ 'विशेषतया' शब्द लगा कर उधर ही ध्यान केन्द्रित कर दिया गया है।

इस विषय में मेरी बात का गलत अभिप्राय नहीं समझा जाना चाहिये। मुझे इस बात से कोई स्पर्धा नहीं है कि राज्य 'अनुसूचित जातियों' के प्रति इतना विशेष ध्यान क्यों देता है। इसके प्रतिकूल मैं इस बात का समर्थन करता हूं कि पिछड़ी

[सरदार हुकुम सिंह]

हुई जातियों को और भी रियायतें दी जायें और उनके प्रति और भी अधिक ध्यान दिया जाये। मेरा उद्देश्य केवल यही है कि विभेद नहीं होना चाहिये। अनुच्छेद का भी यह आशय नहीं है। किन्तु जैसे कि मैं कह चुका हूं, अब तक 'अनुसूचित जातियों' का अर्थ जन सामान्य ने यही समझा है कि उनमें उन्हीं जातियों के सिख धर्म के अनुयायी सदस्य सम्मिलित नहीं हैं। हमें विशेषतया यह प्रत्याभूति देनी चाहिये कि विधान को वस्तुत: कार्यान्वित करने वाले लोग गलत आशय न निकाल सकें तथा विभेद न कर सकें। वर्तमान अनुच्छेद के अंतर्गत शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितों को ही प्रोत्साहन दिया जाना है, अतएव यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि यह सर्व पिछड़ी हुई जातियों के लिये किया जाना है और किसी विशेष धर्म या विश्वास के अनुयायियों के ही लिये नहीं किया जाना है मैं यह प्रस्ताव परिषद् की स्वीकृति के लिये सविनय पेश करता हूं।

***श्री ए.वी. ठक्कर** [संयुक्त राज्य काठियावाड़ (सौराष्ट्र)]: श्रीमान्, मैं यह संशोधन (983) पेश करता हूं जिसमें कहा गया है कि हिन्दू तथा मुसलमानों की पिछड़ी हुई जातियों को भी शामिल...

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं जरा कुछ कह दूं? मेरा विश्वास है कि यह दोनों संशोधन, जो पिछड़ी हुई जातियों आदि के सम्बन्ध में हैं, अनुसूची में रखना अधिक उपयुक्त होगा और हम जब अनुसूची पर विचार करें तब इन पर विचार करना अच्छा रहेगा। मैं यह सुझाव रखता हूं कि इन संशोधनों पर विचार स्थगित कर दिया जाये।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** मेरे संशोधन में तो कुछ सिद्धांतों के रख देने का आशय है...

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर इन सब पर अनुसूची में यथा संभव पूर्ण विचार करने के लिये हम तैयार हैं।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** क्या वे सब पिछड़ी हुई जातियों को सम्मिलित करने के लिये तैयार हैं?

***उपाध्यक्ष:** इस समय किसी बात के लिये सहमत होना उनके लिये कठिन है। इस विषय पर बाद में वाद-विवाद हो सकेगा।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** तब मैं इस समय अपना संशोधन पेश नहीं करता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं अपना संशोधन संख्या 985 पेश नहीं कर रहा हूं। इसका आशय केवल यह है कि Scheduled Castes में capital letter (बड़े अक्षर) लिखे जायें। मैं विनयपूर्वक मसौदा-समिति के अध्यक्ष का ध्यान अनुच्छेद 303 (1) के (w) और (x) पदों की ओर आकृष्ट करता हूं। वहां हमने दो परिभाषायें रखी हैं (Scheduled Castes) 'अनुसूचित जातियां' तथा (scheduled tribes) 'अनुसूचित बन जातिया'। प्रत्येक स्थान पर Scheduled Castes में capital letters (बड़े अक्षरों) का प्रयोग हुआ है, किंतु (scheduled tribes) में छोटे अक्षरों का।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम उस पर विचार करेंगे।

***सरदार हुकुम सिंह:** मैं अपना संशोधन वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

प्रस्ताव परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 37 पर परिषद् का मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 37 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 37 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 38

***उपाध्यक्ष:** अब परिषद् अनुच्छेद 38 पर विचार आरंभ करेगी।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, अपने संशोधन सं. 999 के सम्बन्ध में मैंने अपने कतिपय मित्रों से परामर्श करने के पश्चात् एक अन्य संशोधन की सूचना दी है (द्वितीय सूची में सं. 71)। मुझे आशा है कि मि. अज़ीज अहमद खां, जिनका इस अनुच्छेद पर अपना एक संशोधन है, मेरे संशोधन से सहमत होंगे। इस संशोधन को पेश करते हुए मैं कोई वक्तृता देना नहीं चाहता। नशाबन्दी के

[श्री महावीर त्यागी]

मूल्य को सब समझते हैं। अतएव मैं केवल अपना संशोधन, जो द्वितीय सूची में सं. 71 है, पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 38 के अन्त में 'और (राज्य) स्वास्थ्य के लिये हानिकर नशीले पेयों तथा औषधियों के उपभोग के निषेध करने का प्रयत्न करेगा' यह शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, मुझे ज्ञान है कि मेरे इस प्रयत्न के लिये मुझ पर उन लोगों की ओर से गालियां पड़ेगी जिन्हें कि पीना बन्द करना होगा। मुझे यह भी पता है कि इस बुराई के दूर हो जाने से जिन गृहणियों को लाभ होगा वे मुझे आशीर्वाद देंगी। इस संशोधन के स्वीकृत हो जाने पर देश के लिये मुझे केवल शुभकामना करनी चाहिये।

*__एम माननीय सदस्यः__ एक बज चुका है।

*__उपाध्यक्षः__ किसी का दोष अवश्य है। यहां इस घड़ी में अभी एक बजने में एक मिनट है।

परिषद् कल प्रात:काल के 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

तत्पश्चात् परिषद् बुधवार, 24 नवम्बर, 1948 को प्रात:काल के 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VII-12.48
350

अंक 7
संख्या 12

बुधवार
24 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. श्री कन्यालाल मनाना की मृत्यु पर शोक 755

2. विधान का मसौदा–(*जारी*) 755
[अनुच्छेद 38, भारतीय सरकार का 1935 ई. का अधिनियम (संशोधन करने का विधेयक) और अनुच्छेद 38-क और 39 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, ता. 24 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: दस बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।

श्री कन्यालाल मनाना की मृत्यु

***उपाध्यक्षः** (डा. एच.सी. मुकर्जी): मुझे ज्ञात हुआ है कि मध्य भारत से इस विधान-परिषद् के लिये निर्वाचित सदस्य श्री कन्यालाल मनाना की कुछ समय पूर्व मृत्यु हो गई। समाचार पत्रों में ऐसा समाचार निकला था। इस समाचार की सत्यता के बारे में पता चलाया गया और अब यह निश्चित रूप से ज्ञात हो गया है कि यह खबर ठीक है। सदस्यों से मेरा यह निवेदन है कि वे उनकी स्मृति करने के प्रति सम्मान प्रदर्शन करने के लिये एक मिनट के लिये खड़े हो जायें।

(*समस्त सदस्य अपने स्थानों पर खड़े हुये।*)

***उपाध्यक्षः** मेरी इच्छा है कि सभा मुझे उनके कुटुम्बियों को प्रथानुसार शोक-सन्देश भेजने का अधिकार प्रदान करें।

***माननीय सदस्यः** अवश्य, अवश्य।

विधान का मसौदा–(*जारी*)
अनुच्छेद 38–(*जारी*)

***उपाध्यक्षः** आज की कार्रवाई हम विधान के मसौदे के उस विशेष अनुच्छेद से प्रारंभ करेंगे जिससे आज हमारा सम्बन्ध है। विधेयक का पुर:स्थापन कुछ समय के पश्चात् होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं जिस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं वह श्री महावीर त्यागी के संशोधन का संशोधन है। मैं आशा करता हूं कि यह उनको मान्य होगा क्योंकि उन्होंने अपने संशोधन में

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

''भैषजिक प्रयोजनों को छोड़ कर'' शब्द नहीं रखे हैं। मेरे विचार से यदि श्री महावीर त्यागी का संशोधन मेरे संशोधन द्वारा संशोधित रूप में रखा जायेगा तो वह और भी अधिक उपयुक्त हो जायेगा। मैं चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर मेरे संशोधन को जो सूची 4 में सं. 86 पर है स्वीकार करें।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं:

''कि अनुच्छेद 38 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'और स्वास्थ्य के लिये हानिकर नशीले पेय पदार्थों तथा भैषजों का, भैषजिक प्रयोजनों को छोड़कर, सेवन करने के निषेध का प्रयास करेगा।' ''

अर्द्धविरामों के मध्य शब्दों में जो अपवाद है वह मूल संशोधन में नहीं दिया हुआ है, परन्तु मेरे विचार से वह अपवाद महत्त्वपूर्ण है। मेरे विचार से वह एक भूल थी और इसलिये मेरा संशोधन मान लिया जाना चाहिये। श्रीमान्, मैंने उस दिन मि. सैयद करीमुद्दीन के संशोधन पर वाद-विवाद करते हुये यह बताया था कि यह एक ऐसा मौलिक विषय है जिस पर हमारे देश में कोई मत-भेद नहीं है। कदाचित् मनुष्य सामान्यतया मद्य-सेवन द्वारा भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों को नहीं समझते हैं। यह सत्य है कि यदि हम विभिन्न प्रान्तों में मद्य-निषेध द्वारा आगमों में जो क्षति होगी उसका योग लगायें तो वह एक बड़ी भारी रकम होगी। मेरे पास 1940-41 का पूरा हिसााब है और समस्त प्रान्तों से आबकारी के आगमों का योग 12,52,00,000 रुपया होता हैं इसमें एक करोड़ रुपये की प्राप्ति विदेशी शराब से, दो करोड़ रुपये की प्राप्ति अफीम से और केवल 25 लाख रुपये की प्राप्ति भैषजिक तथा नशीली भैषजों की बिक्री द्वारा हुई है। और अब वह गत छः या सात वर्षों में दुगुनी अथवा और अधिक हो गई होगी। अतः त्याग की वास्तविक मात्रा जो कि इस संशोधन के स्वीकार करने में निहित है वह इस बात से स्पष्ट प्रकट होती है कि यदि हम मद्य-निषेध में सफल हो गये तो आगम में से हमें 25 करोड़ रुपयों को स्वेच्छापूर्वक छोड़ना पड़ेगा। यह आगम मद्य के मूल्य का चौथा अथवा पांचवां भाग है; अतः यदि आगम में 25 करोड़ रुपये की क्षति होती है तो लोगों को कम से कम 100 करोड़ की बचत होगी, जो रकम नशीले पदार्थों पर देश में लोगों द्वारा बरबाद की जाती है। इस प्रकार से

यह 100 करोड़ रुपये शराबियों के कुटुम्बों के लिये बचत में आयेंगे, विशेषकर मजदूरों और हरिजनों के कुटुम्बों के लिये जिनमें इस बुराई का अधिकतम प्रचलन है। मैं डा. अम्बेडकर का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि हरिजन और मजदूर लोग अपनी इस गाढ़ी कमाई के अधिकांश भाग को ताड़ी की दुकानों और शराब के ठेके पर खर्च करते हैं जो साधारणतया मिलों और मजदूर तथा हरिजनों के घरों के निकट स्थित होते हैं। मैं आशा करता हूं कि यह निदेशक सिद्धान्त केवल पवित्र भावना के रूप में ही न रह जायेगा, वरन् मद्रास के सदृश समस्त प्रान्त इसको काम में लायेंगे और शीघ्र ही हमारे देश में मद्य-निषेध पूर्णतया लागू हो जायेगा और इस विषय में हम समस्त संसार के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

वर्तमान समय में आबकारी करों को लागू करने में लगभग डेढ़ करोड़ रुपये का खर्च होता है, पर मैं जानता हूं कि यदि हम मद्य-निषेध को लागू करेंगे तो खर्चा बढ़ेगा, अत: हम केवल 25 करोड़ रुपये के आगम का ही त्याग न करेंगे बल्कि मद्य-निषेध को लागू करने के लिये हमें कुछ करोड़ रुपये और खर्च करने पड़ेंगे। यह एक महान त्याग है; पर मेरे विचार से उस महान आदर्श के लिये, जिसको हमारे नेता ने अपनी मृत्यु के पश्चात् हमें सौंपा है, हमें इस त्याग के लिये आनाकानी नहीं करनी चाहिये क्योंकि अन्तत: इसका फल लोगों के लिये बड़ा सुखद और देश के लिये संतोषजनक होगा। वास्तव में हरिजनों, मजदूरों और अन्य शराबी कुटुम्बियों के लिये 100 करोड़ रुपये की बचत के रूप में लाभ के साथ-साथ अति मूल्यवान नैतिक लाभ जो कि इस भौतिक लाभ से बहुत ही अधिक मूल्यवान है और जो कि पूर्ण मद्य-निषेध का अनुवर्त्ती है—ये दोनों लाभ इस पूरे महान् त्याग के मूल्य के बराबर है। अभी उस दिन मेरे प्रान्त के प्रधानमंत्री माननीय गोविन्दबल्लभ पन्त मुझ से कह रहे थे कि कानपुर में मद्य-निषेध बहुत लाभदायक रहा और कानपुर की मजदूर जनता अब बहुत खुशहाल है और उनके कुटुम्ब जो कुछ सरकार ने किया है उसके लिये उसे धन्यवाद देते हैं। मैं आशा करता हूं कि शीघ्र ही समस्त देश में पूर्ण मद्य-निषेध हो जायेगा और तब हम अपने मद्य-निषेध के महान् आदर्श को प्राप्त कर सकेंगे। मैं इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष उपस्थित करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***श्री बी. एच. खार्डेकर** (कोल्हापुर)**:** उपाध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मैं यह कहूंगा कि मैं बहुत ही घबड़ा रहा हूं। केवल इसी परिषद् में नहीं वरन् किसी भी परिषद में यह मेरा प्रथम भाषण है। मैं यह और कह दूं कि अभी तक मैंने किसी पाठशाला अथवा विद्यालय की वाद-विवाद समिति में भी भाग नहीं लिया है। इस कारण मैं आपके अनुग्रह और उदारता को प्राप्त करना चाहूंगा विशेषकर जब कि मैं मद्य-निषेध के विरुद्ध बोलने का साहस कर रहा हूं। मैं आपसे यह तो चाहता ही हूं कि आप ध्यानपूर्वक सुनें।

श्रीमान्, मद्य-निषेध के पक्ष में प्रस्तुत किये गये अनेकों तर्कों को मैं बड़े ध्यान से सुन रहा था। मैं उनका अभी वर्णन करूंगा और चूंकि मैं समझता हूं, कि बहुत ही निराधार हैं, मैं उनके सम्बन्ध में जो कुछ कहना चाहता हूं, कहूंगा। एक तर्क यह उपस्थित किया गया था कि अमरीका के विधान ने ऐसे प्रावधान किये हैं। श्रीमान्, क्या हम दूसरों की त्रुटियों से कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं करेंगे? क्या हमारे सम्बन्ध में यह कहा जाने वाला है कि इतिहास से हमें कुछ भी शिक्षा नहीं मिली? अमरीका वालों ने इसे अपने विधान में रखा था, अमरीका वालों ने अपने विधान-मंडल में इसके लिये व्यवस्था की थी; परन्तु अन्त में अपने अनुभव के आधार पर उनको उसका पूर्ण रूप से परित्याग करना पड़ा।

तत्पश्चात् जो दूसरा तर्क उपस्थित किया गया था वह यह था कि कांग्रेस इसके लिये वचन-बद्ध है। श्रीमान्, यह अनेकों बार स्वीकार किया जा चुका है कि इस सभा में न तो कोई सरकार है और न कोई दल। कांग्रेस अब जन-संगठन के रूप में नहीं है, वह कदाचित् एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनैतिक दल है। यह तो केवल एक पारिभाषिक आपत्ति ही है। मैं इस विषय में और आगे बढ़ूं। कांग्रेस ने स्वाधीनता प्राप्ति के लिये बड़े महान कार्य, अनेकों बलिदान तथा अन्य महान् सेवायें की हैं। कांग्रेस अनेकों भली बातों के लिये वचन-बद्ध है। कांग्रेस के सदस्यों से मेरा निवेदन है कि आपको यह विचारने का प्रयत्न करना चाहिये कि किस वचन का सर्वप्रथम पालन किया जाये। सर्वप्रथम आपको इस बात पर विचारना है कि आप करोड़ों भारतवासियों की आर्थिक और अन्य अनेकों स्थितियों को किस प्रकार उन्नत कर सकते हैं।

तीसरा तर्क जो उपस्थित किया गया है वह मद्रास में मद्य-निषेध की सफलता है। श्रीमान्, मैं जानना चाहता हूं कि इस सफलता को किस प्रकार मापा गया है।

क्या उसको इसी रूप में मापा गया है कि वहां मद्य-निषेध है? आपके यहां ऐसे असंख्य व्यक्ति हैं जो अब भी मद्य-निषेध करते हैं और अनेकों जेलों को भरते चले जा रहे हैं। इसके फलस्वरूप क्या करोड़ों रुपयों की बरबादी का भी आपने अनुमान लगाया है, जिसको रोकने में आप असफल रहे? इस विचार से मद्रास में मद्य-निषेध की सफलता को मापने का क्या आपने प्रयत्न किया है?

इसके पश्चात् यह तर्क उपस्थित किया गया है कि सब सम्प्रदाय इसे चाहते हैं। उस सूची में पारसियों और ईसाइयों को भी रखा है। श्रीमान्, मैं पारसियों और ईसाइयों को थोड़ा-सा जानता हूं और मेरा यह निश्चित मत है कि वे मद्य-निषेध के पक्ष में नहीं हैं।

तत्पश्चात् अन्तिम और मेरे उत्तर देने के लिये कदाचित् सब से कठिन तर्क यह है कि गांधी जी सदैव मद्य-निषेध के पक्ष में रहे। सभा को मैं यह खूब स्पष्ट कर दूं कि गांधी जी की प्रशंसा, आदर तथा सम्मान करने में मैं किसी से भी पीछे नहीं हूं। गांधी जी राष्ट्रपिता हैं; वे हम सबके पिता हैं। पर श्रीमान्, मैं कुछ कहना चाहता हूं। यहां यह कहा गया था, सम्भव है कुछ ओछेपन से यह कहा गया हो कि जहां मद्य है वहां गांधी जी नहीं और जहां गांधी जी है वहां मद्य नहीं। दूसरे शब्दों में गांधी जी पापियों से घृणा करते हैं यदि यह मान लिया जाये कि मद्यपान पाप है। गांधी जी गीता पढ़ते थे, उसका अध्ययन करते थे और मुझे विश्वास है कि वे गीता से प्रेम करते थे और गीता के विद्यार्थी होने के कारण उन्होंने वह दृष्टि प्राप्त कर ली थी जिसे मैं समदृष्टि कहूंगा। वे पापी और सन्त में कोई भेद-विभेद नहीं रखते थे। गांधी जी प्रथम संत थे और तत्पश्चात् राजनीतिज्ञ। श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि आप इस पर विचार करें, मैं साहस करके आपसे यह पूछता हूं कि आपके विचार से गांधीवाद का क्या सार है? गांधीवाद का मुख्य सार प्रेम है, सहिष्णुता है, अहिंसा है, सत्य की खोज है तथा ऐसी ही समस्त महत्त्वपूर्ण बातें हैं। गांधीवाद का बाह्य रूप अथवा उसका बाह्य श्रृंगार खद्दर और मद्य-निषेध हैं। दुर्भाग्यवश गांधी जी के कुछ अनुयायियों ने मुख्य सार की अपेक्षा गांधीवाद के बाह्य श्रृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। गांधी जी की सत्य पर यह धारणा थी कि यद्यपि सत्य एक है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही रीति से सत्य को समझना चाहिये और प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं सत्य की अनुभूति प्राप्त करना आवश्यक है। यही गांधी जी ने कहा और यही गांधीजी

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

चाहते थे। यदि हम उनका अनुसरण आंखें बन्द करके करेंगे तो दयालु पिता होने के नाते यद्यपि वे हमारे बीच में अब नहीं है और सच बात तो यह है कि इस सभा में उनकी विदाई के बाद भी ऐसे लोग भरे पड़े हैं जो तोतले बच्चों के समान हैं और राष्ट्रपिता के गौरव में धब्बे के समान है—उनका मन इस बात से खिन्न होगा कि वे हमको अपनी विवेक-बुद्धि से विचार करना न सिखा सके, तो श्रीमान्, क्या हमारे लिये केवल यह कहना ठीक होगा कि यह हमारे राष्ट्रपिता का कथन है अत: बाबा वाक्य प्रमाणम् के न्याय से हमें यह मान्य होना चाहिये। मैं पूछता हूं कि क्या हमारे जीवन का यही चरम सत्य होगा? हम ऐसे युग में पैदा हुये हैं जिसमें चाहे और कितनी ही कमियां क्यों न हों पर जिसमें इस बीसवीं शताब्दि में एक खूबी अवश्य है। और वह खूबी यह है कि यह युग जिज्ञासा का युग है। आजकल के नवयुवक चुनौती देना चाहते हैं और स्वयं ही सत्य की खोज करना चाहते हैं, जैसा कि फ्लेचर ने कहा: ''यदि ईश्वर भी नारकीय दु:खों में दग्ध करना चाहे तो जब तक वह उत्तर न दे तब तक मैं उससे पूछता रहूंगा कि ऐसा क्यों''। यदि ईश्वर मुझ से किसी कार्य को करने के लिये कहे तो भी मैं आंखें बन्द कर उस कार्य को नहीं करूंगा। हम भेड़-बकरियों की तरह से हांके नहीं जा सकते हैं। हम इस संघर्ष में योद्धा की तरह सम्मिलित होना चाहते हैं। सर जार्ज बर्नार्ड शा ने लगभग ऐसा ही कहा है: ''परीक्षा करिये, जांचिये और फिर मानिये।'' यदि आप संस्कृत साहित्य से रुचि रखते हैं तो कालीदास भी न्यूनाधिक रूप में यही कहते हैं:

''सन्त: परीक्ष्यान्यतरत् भजन्ते, मूढ: परप्रत्ययनेयबुद्धि''

तर्कों का उत्तर देने की अपेक्षा मुझे भाषण के वास्तविक पक्ष पर आना चाहिये। व्यावहारिक पक्ष में मैं यह कहूंगा कि मद्य-निषेध को अभी रोके रखना चाहिये—तथा इस अपने अभागे देश में जिसका भाग्य कल ही तो जागा है इसे बहुत काल के लिये रोके रखना चाहिये। श्रीमान्, व्यावहारिक पक्ष में मैं एक महान् विचारक के भाव उद्धृत कर दूं तो ठीक होगा। वे कहते हैं कि जीवन में दो महत्त्वपूर्ण मोर्चे हैं, पहला युद्ध का मोर्चा है और दूसरा मोर्चा है शिक्षा का। युद्ध कब होगा यह केवल ईश्वर जानता है; किसी समय भी महान् युद्ध छिड़ सकता है और हमें उसके लिये तैयार रहना चाहिये। काश्मीर में कुछ संकट है; हैदराबाद में

संकट था। हमें तैयार होना पड़ा। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि हमारा देश बहुत गरीब है और हमें अपने समस्त साधनों को जुटा लेना चाहिये जिससे कि हम सर्व प्रमुख बात की ओर प्रथम ध्यान दे सकें। जिस देश में प्रजातंत्र को उन्नत करना है, जिस देश में प्रजातंत्र शैशवकाल में है उस देश में शिक्षा का मोर्चा बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है लोगों की भयप्रद परिस्थितियों से तो आप परिचित ही हैं। अनेकों देशों में साठ से सत्तर वर्ष पूर्व निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का पुरःस्थापन किया गया था। स्वतंत्रता के फलस्वरूप यह हमारा प्रथम कार्य होना चाहिये। हमने विधान के मसौदे में इस प्रकार के खंड को रखने की आवश्यकता पर कल ही तो वाद-विवाद किया है। हमारे जैसे देश में अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा भी यथेष्ट नहीं होगी क्योंकि गरीब बच्चा खेत जोतते-जोतते कुछ वर्षो के पश्चात् अपने हस्ताक्षर तक करना भूल जाता है, अतः इस कारण से तो पिछड़े हुये सम्प्रदायों के लिये, मैं तो यह कहूंगा कि गरीबों के लिये माध्यमिक शिक्षा की भी व्यवस्था करनी चाहिये। श्रीमान्, हम प्रजातंत्र के शैशवकाल में हैं और यदि हम सच्चा प्रजातंत्र लाना चाहते हैं तो हमको शिक्षा देनी चाहिये। आप इस प्रसिद्ध कहावत से परिचित हैं कि ''शिक्षा विहीन प्रजातंत्र असीम पाखण्ड है।'' हम ऐसी सरकार नहीं चाहते जिसमें कि थोड़े से व्यक्ति जो ज्ञानवान है वे ही प्रशासन करें और हमारी सरकार फासिस्ट सरकार हो जाये। यदि हम आज मद्य-निषेध पर अधिक जोर देंगे तो हम अपने अनेकों होनहार बच्चों को ठीक-ठीक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रखेंगे और इसका फल यह होगा कि जहां हमारा ध्येय असाम्प्रदायिक प्रजातंत्रात्मक राज्य की स्थापना है वहां हम वास्तव में एक ऐसी सरकार बना डालेंगे जो धार्मिक फासिस्ट सरकार से किसी प्रकार भी कम नहीं। श्रीमान्, मैं आपको यह एक चेतावनी दे रहा हूं।

शिक्षा के सवाल के अतिरिक्त लोक स्वास्थ्य और दवाई दारू के भी सवाल है। आप में से अनेकों बड़े ईमानदार और सच्चे कार्यकर्त्ता हैं और आप गांवों में गये हैं। मैं जब कभी गांवों में गया हूं तो मैंने देखा है कि गरीब ग्रामीण को कोई भी भैषजीय सहायता नहीं मिलती है। हजारों कोढ़ी हैं जिनको भैषजीय सहायता की आवश्यकता है, पर यदि इन सब बड़ी-बड़ी सहायताओं को दिया जाता है तो रुपया कहां से आये? अतः हमको प्रमुख वस्तु को प्रथम लेना चाहिये। हमारा सबसे बड़ा शत्रु गरीबी है और जब तक हम अपने साधनों को नहीं जुटाते और

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

प्रमुख बातों को पहले नहीं लेते और जब तक हमको भले बुरे की पहचान नहीं होती तब तक मेरे विचार से हम गड़बड़ में पड़े रहेंगे।

श्रीमान्, इस बात से आपको सम्भवत: आश्चर्य तो होगा पर फिर भी मैं मद्य-निषेध के नैतिक पक्ष के सम्बन्ध में अथवा उसके विपक्ष में यहां कुछ कहना चाहता हूं। हैरल्ड लेस्की की "आधुनिक राज्य में स्वतंत्रता" नामक पुस्तक के उस उल्लेखनीय अध्याय को पढ़ने की सिफारिश करता हूं जिसमें उन्होंने मद्य-निषेध की व्याख्या की है। मुझे पुस्तक नहीं मिली, इस कारण मैं उसके उदाहरण पढ़कर नहीं सुना सकता परन्तु उनका मुख्य तर्क यह है कि मद्य-निषेध वैयक्तिक स्वतंत्रता की जड़ पर कुठाराघात के समान होता है। हमारा लक्ष्य है कि स्वतंत्र भारत में व्यक्ति का चरम विकास हो, किन्तु अरमानों का गला घोटकर, असंख्य पाबन्दियां लगाकर, मन की चेष्टाओं को छिपा कर या दमन करके तो हम युवाओं के विकास का रास्ता ही बन्द कर देंगे। मेरे इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि हम युवाओं को मद्यपान के लिये प्रोत्साहित करें किन्तु हमको उन्हें अपनी गलती जानने का अवसर तो देना ही चाहिये तभी तो उन्हें स्वतंत्रता से—और स्वतंत्रता से मेरा तात्पर्य उच्छृंखलता नहीं है—उनको पूरा-पूरा लाभ होगा। तत्पश्चात् श्रीमान्, विचारिये—मैं यहां कोई व्यर्थ बात नहीं कह रहा हूं—परन्तु सामाजिक जीवन को जो पक्का लगेगा उसे विचारिये—क्लब जीवन का तो अन्त ही हो जायेगा, और मेरा निवेदन है कि आप दो बातों की तुलना करें, पहली बात है कुछ मित्रों का सायंकाल या रात्रि को मट्ठा भरे ग्लास को पीते हुये पूर्ण गम्भीरता से वाद-विवाद करना और दूसरी शराब या बियरू के ग्लास को पीते हुये निर्दोष परन्तु बौद्धिक वाद-विवाद। यूनानियों में इसका प्रचार था। सच्चे दार्शनिक जानते हैं कि दोनों लोकों का किस प्रकार उपभोग किया जाये और दर्शन तथा विज्ञान की नींव महान् यूनानियों द्वारा ही रखी गई थी। उनमें न तो निषेध थे, न इच्छाओं के दमन का आदर्श था और न शमन का विचार। सच तो यह है कि व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तो उसी रीति से होता है यदि आप बम्बई जैसे नगर के जीवन की मद्य-निषेध के दिनों में और मद्य-सेवन के दिनों में परस्पर तुलना करें तो श्रीमान्, आप शुष्क दिनों में वास्तव में उसे शुष्क तथा नीरस जीवन पायेंगे। मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप इसका अनुभव करें। आप यह सोचते होंगे कि यह सब धनिकों के लिये है। पर यह

याद रखना चाहिये कि क्लब में जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति धनी नहीं है। परन्तु गरीबों के लिये इस बारे में क्या भेद है? मिल के करोड़ों मजदूरों के सम्बन्ध में विचारिये जो सारे दिन घोर श्रम करते हैं सायंकाल को वे एक या दो ग्लास ताड़ी का पीना चाहते हैं जो वास्तव में नीरा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और यदि कुछ पोषक तत्त्वों (विटामिनों) के साथ-साथ उसे कुछ विनोद या आनन्द प्राप्त होता है तो आप उसे इससे क्यों वंचित रखते हैं? श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि आप उस सान्त्वना और थोड़ा आराम जो उसे ऐसा करने से मिलता है उसके बारे में भी सोचें। हम लोगों में से कुछ डा. अम्बेडकर जैसे भी व्यक्ति है जिनको पठन से बहुत शांति मिलती है। ऐसे भी हैं जो उपन्यास पढ़ना पसन्द करते हैं और कुछ एक ग्लास शराब या बीयर लेना पसन्द करते हैं। इस बारे में मैं एक फर्क की ओर आपका ध्यान खींच दूं क्योंकि सम्भव है कि आप में से बहुत से यह नहीं जानते कि आखिरकार कितने लोग मद्य पान करते हैं। मैं अर्थ शास्त्रियों तथा परिगणितज्ञों से निवेदन करूंगा कि वह यह मालूम करे—परन्तु मैं यह साहसपूर्वक कह सकता हूं कि इनकी संख्या दस प्रतिशत से अधिक न होगी और आप में से अनेकों इस महत्त्वपूर्ण तथ्य से अपरिचित हैं और आप नहीं जानते कि पीने वाले और पियक्कड़ों से बहुत अन्तर है। दस प्रतिशत पीने वालों में से 9 प्रतिशत पियक्कड़ नहीं हैं वे केवल मित्रों के साथ एक या दो ग्लास पी लेते हैं—और एक प्रतिशत जो कि पियक्कड़ हैं—वे ऐसे लोग हैं जो बुरी हालतों में पड़कर आशा को विदा कर चुके हैं और गम गलत करना चाहते हैं—और भी अगणित कारण हो सकते हैं—यदि आप कानून द्वारा उन्हें पीने से वंचित रखेंगे तो वे अवैध रूप से शराब बनायेंगे। यदि वे ऐसा नहीं कर सके और आपकी व्यवस्था पूरी सिद्ध हुई—यद्यपि मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि हमारी व्यवस्था उत्कोच तथा भ्रष्टाचार की ओर प्रवृत्त है और उसको ऐसा करने के लिये यह एक और सहारा मिल जायेगा—परन्तु इसके अतिरिक्त भी यदि आप उन्हें शराब से वंचित कर देते हैं तो वे विषैले पदार्थ पीने लग जायेंगे और भी शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होंगे। अत: इस 1 प्रतिशत जनता के लिये क्या आप इतना अधिक धन, टनों के टनों रुपये अरब सागर में फेंकने के लिये उद्यत हैं केवल इस आधार पर कि इसके पीछे एक प्रकार की धार्मिक भावना है? आप यह धार्मिक विचार रख सकते हैं कि मदिरा-पान करना पाप है। यह माना जाता था अथवा माना जाता है कि देवता-सुरा-पान करते थे। मनुष्य मदिरा-पान कर सकते हैं। इसमें क्या हानि

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

है? और फिर मैं यह भी बता दूं कि यदि किसी व्यक्ति पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है तो हम लोगों को क्यों वंचित करें? हम इस बात पर विचार करें कि भारत को वास्तव में किस बात की आवश्यकता है। मद्य-निषेध करना और बहुत पवित्र होना बहुत अच्छा है और ये महान् गुण हैं जिनको सभ्य राष्ट्र भी व्यवहार में नहीं ला सके हैं। श्रीमान्, हममें तो सामान्य शिष्टता तथा ईमानदारी का अभाव है। अति प्रिय तथा अति आदरणीय पंडित जवाहरलाल नेहरू, भारत के प्रधानमंत्री, के जूते खो जाते हैं। यूरोप के देशों में न्यूनातिन्यून सम्मान प्राप्त नेता के भी यदि वह किसी उत्सव में सम्मिलित होता है तो जूते नहीं खो सकते। अन्तर यह है कि ईमानदारी के सदृश मुख्य गुणों, आधारभूत गुणों को हमें सर्वप्रथम ग्रहण करना चाहिये। आप बहुमत के दल के हैं और आप जो कुछ चाहे निश्चय कर सकते हैं। मेरा आशय यह नहीं है कि आप मद्य-निषेध होने ही न दें परन्तु यह है कि आप कुछ समय ठहरें—और मैं टाइम्स आफ इंडिया के सम्पादक के शब्दों को उद्धृत करते हुये कहूं कि मद्य के अतिरिक्त अन्य भी वस्तुयें हैं जो सर पर सवार हो जाती है और उनमें से एक शक्ति है। बहुमत दल इसका शिकार न बने।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं नहीं जानता हूं कि आपके सामने मेरा यह निवेदन नियमानुकूल है या नहीं कि इस संशोधन को तब तक स्थगित किया जाये जब तक कि हम परामर्शदातृ समिति की उन सिफारिशों पर विचार न कर लें, जो उसने विशेषकर वनजाति-क्षेत्रों के सम्बन्ध में की हैं। अभी तक परामर्शदातृ समिति तथा उप-समितियों की सिफारिशों पर इस सभा में पूर्ण वाद-विवाद करने का अवसर नहीं दिया गया है। इसलिये अभी मैं बारीकियों में नहीं जाना चाहता परन्तु इस प्रकार के संकल्प तथा संशोधनों के विरोध करने के लिये मैं कटिबद्ध हूं। प्रजातंत्रात्मक तथा असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना तथा दैवी सत्ता के हमारे आन्तरिक विरोध के बारे में हम लोग पर्याप्त से अधिक लम्बी-चौड़ी बातें सुन चुके हैं। किन्तु इस प्रावधान द्वारा श्रीमान्, इस देश की प्राचीनतम जाति के धार्मिक अधिकारों में हम छिपी रीति से हस्तक्षेप करने में प्रयत्नशील हैं। आप हंस सकते हैं किन्तु किसी भी वस्तु की अति ठीक नहीं होती। यदि आप बहुत चावल खा जायेंगे तो आपके लिए खराबी होगी। ऐसी अनेकों

वस्तुएं हैं जिनका आप अति-सेवन करते हैं। पर यदि आप किसी भी वस्तु का उचित अनुपात में सेवन करें तो वह आपके लिये लाभदायक होगी। मदिरा-पान का अति में प्रयोग होता है जिससे किसी को भी लाभ नहीं होता, परन्तु हमें यह याद रखना चाहिये कि हम शीघ्रता में विधान में कोई ऐसी बात न रख दें जिससे जितनी कटुता वर्तमान है उससे भी अधिक कटुता हो जाये। परामर्शदातृ समिति में हमारे वाद-विवाद के अन्तर्गत मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने मुझ से सीधा प्रश्न किया था और वह यह था: ''क्या यह मज़हबी चीज है?'' उस अवसर पर परामर्शदातृ समिति के प्रधान माननीय सरदार पटेल ने मुझे स्थिति स्पष्ट करने का अवसर दिया था। जहां आदिवासियों का सम्बन्ध है चावल तथा बीयर के बिना उनका कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं हो सकता है। जिन शब्दों का यहां प्रयोग किया गया है वे हैं ''नशीले पेय पदार्थ''। श्रीमान्, यह वस्तु वर्णन का बड़ा अस्पष्ट ढंग है। दूसरे शब्द जो यहां दिये हुये हैं वे हैं: ''स्वास्थ्य के लिये हानिकर''। मेरे मित्र शिब्बनलाल ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मद्य-निषेध से आर्थिक क्षेत्र में कार्य कुशलता की वृद्धि होती हैं वे सोचते हैं कि यदि मद्य-निषेध लागू हो जायेगा तो श्रमिकों की आर्थिक उन्नति होगी। मुझे विश्वास है कि आर्थिक उन्नति होगी। परन्तु मैं उनसे यह कहना चाहता हूं कि केवल उद्योग से सम्बन्धित श्रमिकों पर ही जो कि उनके ध्यान में विशेष रूप से हैं इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं उनको बहुत ही गरीब लोगों—आदिवासियों—की स्थिति को बताना चाहता हूं और आदिवासियों के सम्बन्ध में जो कुछ मैं कहूंगा उसको पश्चिमी बंगाल तथा अन्य स्थानों से आये हुये सदस्य स्वीकार करेंगे। पश्चिमी बंगाल, दक्षिणी बिहार, उड़ीसा तथा अन्य स्थानों में आदिवासियों की बहुत बड़ी संख्या है। उदाहरणस्वरूप यदि संथाल को चावल की बीयर न मिले तो पश्चिमी बंगाल में धान की पौद रखना असम्भव हो जायेगा। इन कुवेशधारी व्यक्तियों को अपने निरे आवश्यक उपकरणों ही पूर्ति के अभाव में भी समस्त दिन मूसलाधार वर्षा और कीचड़ में, घुटने-घुटने पानी में काम करना पड़ता है। चावल की बीयर में ऐसी कौन सी वस्तु है जो उनको जीवित रखती है? मेरी इच्छा है कि इस देश के भैषजीय प्राधिकारीगण अपनी प्रयोगशालाओं में यह मालूम करने के लिये अनुसंधान करें कि वह कौन सी वस्तु चावल की बीयर में है जिसकी आदिवासियों को इतनी आवश्यकता है और जो उनको सर्व प्रकार के रोगों से मुक्त रखती है।

[श्री जयपाल सिंह]

श्रीमान्, मैं इस कारण इस संशोधन का विरोध नहीं कर रहा हूं कि मैं मदिरा-पान को देश में बढ़ाना चाहता हूं। मैं यह देखने के लिये उत्सुक हूं कि आदिवासी इस मदिरा-पान के व्यसन से अपने आपको हानि न पहुंचायें। परन्तु यह धार्मिक आवश्यकता तथा धार्मिक कृत्यों में मद्य के विशेष प्रयोग से सर्वथा परे है; हम उन्हें संयम युक्त जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देंगे। मैं इस सबका समर्थक हूं। परन्तु यह संशोधन हानिकर है। यह मेरे धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रयास करता है। आप इसे चाहे विधान में रखें या नहीं परन्तु मैं अपने धार्मिक विशेषाधिकारों का परित्याग करने के लिये उद्यत नहीं हूं। (वाह, वाह)

***उपाध्यक्षः** शान्ति, शान्ति।

***श्री जयपाल सिंहः** श्रीमान्, यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं इस सब की व्याख्या उस समय करूंगा जब कि हम उन सिफारिशों पर विचार करेंगे जो परामर्शदातृ समिति ने परिगणित वनजातियों तथा अन्य बातों के सम्बन्ध में की हैं। इस समय यह ठीक नहीं है कि मैं बारीक बातों में जाऊं। यहां तो मैं माननीय सदस्यों को केवल यह बताना चाहूंगा कि शीघ्रता न करना ही अच्छा है और मैं आपसे यह निवदेन करूंगा कि इस संशोधन को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जाये जब तक कि हम परामर्शदातृ समिति द्वारा परिगणित वनजातियों तथा अनुसूचित क्षेत्रों के सम्बन्ध में की गई सिफारिशों पर विचार न कर लें; क्योंकि यदि हम अभी इस विषय पर निश्चय कर लेंगे तो हम स्वयं एक त्रुटि करेंगे। हम एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और वर्तमान समय में एक असहाय राजनैतिक अल्पसंख्यक दल के साथ अन्याय करेंगे। यद्यपि वे 3 (तीन) करोड़ हैं परन्तु उनमें ऐसे केवल एक दर्जन ही होंगे जो यहां उनकी ओर से बोल सकते हैं। यह एक ऐसा निर्णय है जिसको कि लोगों की इच्छाओं पर निर्भर रखना चाहिये। हम कठिन समय में से गुजर रहे हैं। हमारे लिये यह ठीक नहीं कि इन कठिनाइयों को हम और बढ़ायें। श्रीमान्, मुझे इससे अधिक और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है कि मैं इस संशोधन का विरोधी हूं और आपसे मेरा यही नम्र निवेदन है कि इस संशोधन पर आगे विचार तभी किया जाये जब कि हम परिगणित वनजातियों तथा अनुसूचित क्षेत्रों के सम्बन्ध में निर्णय कर लें।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे आज यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि इस सर्वोच्च सभा के दो सदस्यों ने यहां आकर यह कहा कि मद्य-निषेध को स्थगित किया जाये। पहले मैं अपने माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह के विचारों को लूं। उनका दावा है कि वे आदिवासियों—पहाड़ी वनजातियों तथा मूल निवासियों—के प्रतिनिधि हैं मुझ जैसा एक विनम्र सदस्य जो आदिवासियों तथा पहाड़ी वनजातियों के क्षेत्र से आया हुआ है, उनको यह बता सकता है कि मूल निवासियों के उत्सवों में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिये शराब, ताड़ी, ब्रान्डी या ऐसी किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता हो। श्रीमान्, मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मेरे मित्र ने कभी टोडा जाति के किसी भी व्यक्ति को देखा है या नहीं। यह चरवाहा जाति है और नीलगिरी पहाड़ियों में रहती है। वे ऐसे प्रदेश में रहते हैं जहां वर्षा का भयानक प्रकोप रहता है। श्रीमान्, जब अंग्रेज आये वे विस्की की बोतल साथ लाये और जब वे यहां के प्रशासन से चले गये हैं तो हमें भी यह समझ लेना चाहिये कि शराब का भी लोप हो गया। जीवन भर उन लोगों का मद्य नाम जैसी वस्तु से परिचय होता ही नहीं है। किन्तु यह बात बड़ी अजीब सी लगी कि आज उन अभागी जातियों के लिये श्री जयपाल सिंह को वकालत करनी पड़ी। कोटहास, इरुलास, पानियास, कुरुमबासी, बडागास तथा अन्य ऐसी अनेकों जातियां हैं जो मद्रास प्रान्त में आदिवासियों की श्रेणी में आती हैं। परन्तु वहां (मद्रास प्रान्त में) इनमें से किसी भी जाति ने कभी भी आगे बढ़ कर अधिकारियों से यह आग्रह नहीं किया कि मद्यपान की उनको फिर से आज्ञा मिल जाये। यह आश्चर्यजनक बात है कि मेरे मित्र, जो मूल निवासियों के प्रति इतनी सहानुभूति रखते हैं, उनके लिये मद्यपान का समर्थन करते हैं। मैं उनसे यह कहूंगा कि वास्तविक व्यवहार में इन सब जातियों को मद्य-निषेध के पुर:स्थापन के पश्चात् मद्रास प्रान्त में बहुत ही लाभ हुआ है। कोल्हापुर के एक और मित्र ने महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता कह कर तथा अन्य सब प्रकार से प्रशंसा की है। परन्तु दुर्भाग्यवश जो कुछ महात्मा गांधी ने हमसे कहा उसका पालन करने में वे अशक्त हैं। चार रचनात्मक कार्यों में महात्मा गांधी ने मद्य-निषेध को सबके ऊपर रखा है। क्यों? क्योंकि उनको यह मालूम हुआ कि देश का सर्वनाश हुआ जा रहा है और गरीब लोग अपनी समस्त आय मद्य-पान पर खर्च कर रहे हैं और अपने बच्चों तथा परिवार को पूर्णतया निर्धन तथा अभावग्रस्त

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

बना रहे हैं। मुझे इस बात का खेद है कि मेरे मित्र ने इस बारे में ऐसा दृष्टिकोण अपनाया है और इस संशोधन का विरोध किया है। जो सार्वजनिक लाभ के लिये इस सर्वोच्च सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। मद्रास प्रान्त ने लगभग सत्रह करोड़ रुपये की हानि उठाई है। परन्तु मद्रास के लोग एकमत होकर उठे और कहा: ''इन सत्रह करोड़ रुपयों की चिन्ता न करें। हम चाहते हैं कि नागरिक तथा गरीब लोग स्वस्थ रहें, शान्तिप्रिय रहें'' श्रीमान्, मद्य-निषेध ने मद्रास प्रान्त को शांति दी है और अनेकों लाभ दिये हैं। मद्य-निषेध से लोगों के स्वास्थ्य में बहुत उन्नति हुई है और उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधर गई है। मैं आपको यह बता दूं कि हरिजनों की ऐसी अभागी कौमें थीं जिनसे उच्च वर्ण के हिन्दू और मीरासदार लोग निम्न कार्य कराते थे और धन के रूप में उनको वेतन नहीं देते थे वरन् शराब बेचने वालों के नाम पर्ची दे देते थे जिससे कि वे वहां जायें और पीयें। परन्तु अब ये बातें वहां से मिट गई हैं और इस पोर्टफोलियो के मंत्री के रूप में मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि मद्य-निषेध ने मेरे प्रान्त को शांति दी है और अनेकों लाभ दिये हैं। अत: मैं प्रो. सक्सेना द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और उन मित्रों का विरोध करता हूं जो मद्य-निषेध को स्थगित करने के लिये कहते हैं।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, यह कदाचित् दुर्भाग्य की बात है कि कोल्हापुर के नवागन्तुक महोदय ने प्रथम बार ही हमारे विधान-निर्माण में बहुत ही प्रमुख निदेशक पर हमला करने का अवसर निकाला। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने यह सुझाव रखा है कि अनुच्छेद 38 के अन्त में निम्न वाक्यखंड बढ़ा दिया जाये:

''राज्य स्वास्थ्य के लिये हानिकर नशीले पेय पदार्थों तथा भैषजों के सेवन के निषेध का प्रयास करेगा।''

***श्री महावीर त्यागी:** इस संशोधन पर मेरा अधिकार है न कि प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का। (*करतल ध्वनि*)

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** मैं माननीय श्री महावीर त्यागी या अन्य किसी सदस्य के जो इसका श्रेय लेना चाहते हैं अधिकारों को हरण करने का

विचार नहीं रखता। मैं उस अधिकार को प्रदान करने के लिये पूर्णतया इच्छुक हूं।

संशोधन में आगे कहा गया है कि "भैषजिक प्रयोजनों को छोड़ कर"। इस बात से कि ये महानुभाव इस संशोधन का विरोध करते हैं यह स्पष्ट है कि वे चाहते है कि राज्य स्वास्थ्य के लिये हानिकर नशीले पेय पदार्थों और भैषजों का सेवन करने दें।

मैं मद्य-निषेध पर अधिक नहीं बोलना चाहता क्योंकि बहुत समझ बुझ कर तथा दीर्घ वाद-विवाद के पश्चात् बहुत सी प्रान्तीय सरकारों ने तथा बहुत से उन लोगों ने जो इस देश की उन्नति में रुचि रखते हैं नशीले पदार्थों और शराब के सेवन से अपने लोग जो अपना सर्वनाश कर लेते हैं उससे उन्हें बचाने की आवश्यकता को स्वीकार कर लिया है। उनका विश्वास है कि मानव जाति की उचित रूप में तब तक उन्नति नहीं होगी जब तक कि बौद्धिक तथा भौतिक उन्नति के साथ-साथ नैतिक उन्नति को यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया जाता और वर्तमान समय में यह तर्क प्रस्तुत करना बहुत पुरानी बात है कि नशीले पदार्थों और शराब के प्रयोग से मनुष्य की नैतिक शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह दीपक जो आपको उचित तथा अनुचित में भेद विभेद करने का प्रकाश देता था बुझ गया है और इस कारण यह वैयक्तिक स्वतंत्रता का विषय नहीं है जिस तर्क का कि कोल्हापुर के माननीय प्रतिनिधि ने प्रयोग किया है। आत्मघात करने के लिये वैयक्तिक स्वतंत्रता नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति के दीर्घ काल तक जीवित रहने में समाज की रुचि है और इस कारण मुझे इतनी अधिक अज्ञानता देखकर आश्चर्य हुआ जो कि आज प्रान्तों में मद्य-निषेध की व्यवस्था के फलस्वरूप यहां प्रकट की गई, सोची गई और अनुभव की गई है। बहुत आबकारी-कर लेकर और उसे शिक्षा पर खर्च करने से तो सर्वोत्तम शिक्षा यही है कि लोगों को मद्य-पान तथा नशीली भैषजों से बचने की शिक्षा दी जाये।

आबकारी-कर के आगम के रूप में राज्य के प्रत्येक रुपये की प्राप्ति से समाज को अपराध वृद्धि, रोग वृद्धि और कौशल-क्षति द्वारा तिगुने धन की हानि होगी। यह अर्थशास्त्रियों द्वारा मान लिया गया है। उन माननीय महोदय ने जिन्होंने आदिवासियों का पक्ष समर्थन किया है हमसे यह कहा कि इस बारे में और रसायनिक अनुसंधान होना चाहिये। बहुत रसायनिक अनुसंधान हो चुके हैं और लोग इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि शराब तथा हानिकर भैषजों का सेवन (इस खंड

[माननीय श्री बी.जी. खेर]

में जिनकी व्याख्या की गई है) वास्तव में स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। एक माननीय सदस्य ने नीरा का उल्लेख किया हैं बम्बई सरकार सैकड़ों नीरा-केन्द्र खोल रही है क्योंकि उफान आने और ताड़ी बनने के पूर्व नीरा-पान करना स्वास्थ्य-वर्द्धक है और इसीलिये हम लोगों को नीरा-पान करने दे रहे हैं। परन्तु इस समय तो हम उन नशीले पेय-पदार्थों और भैषजों पर विचार कर रहे हैं जो स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। क्या उन महानुभावों का यह विचार है कि राज्य स्वास्थ्य के लिये हानिकर नशीले पदार्थों और भैषजों के निषेध का प्रयास न करे? जो कि और भैषजीय अनुसंधान, वैयक्तिक स्वतंत्रता अथवा भैषजीय लाभ जैसे जीर्ण तर्कों का प्रयोग करते हैं। वे अपनी ही अलग दुनिया में निवास करते हैं क्योंकि जिस प्रान्त ने भी (उदाहरणस्वरूप, मद्रास और बम्बई) मद्य-निषेध का पुरस्थापन किया है वह इस परिणाम पर पहुंचा है कि उन लोगों को जो इन मद्य-पदार्थों का सेवन करने के आदी थे आज इतना अधिक लाभ हुआ है कि एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जिस दिन हमारे पास मजदूरों के परिवारों और अन्य लोगों के जो बहुत ही मद्य-पान करते थे कृतज्ञता-सूचक पत्र न आते हों। इस बात पर कि केवल 10 प्रतिशत समाज इसका आदी है और इसलिये समाज को इसके प्रति कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये और अधिक आलोचना करने की आवश्यकता नहीं।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि आदिवासियों के प्रतिनिधान करने वाले एक माननीय सदस्य ने इस संशोधन को दोषपूर्ण बताया। इसी प्रकार से मनुष्यों की बुद्धि में विकार उत्पन्न कर दिया जाता है। मुझे यह देखकर हर्ष हुआ कि इस संशोधन के पुरस्थापन करने के मुख्य लक्ष्य को माननीय डा. अम्बेडकर ने जिनके अधिकार में यह विधेयक है, स्वीकार कर लिया है और इससे और आगे बुराई का होना बन्द हो जायेगा। क्या यह तर्क उपस्थित किया गया है कि नशीले पदार्थों और हानिकर भैषजों के सेवन से सदाचार बढ़ता है? मैं अपने तर्क की पुष्टि में महात्मा गांधी को उद्धृत नहीं कर रहा हूं परन्तु उन्होंने यह कहा था कि वे तब तक किसी भी सामाजिक सुधार को महत्त्व नहीं देंगे जब तक कि राज्य नशीले पदार्थों और भैषजों के सेवन के निषेध के प्रश्न को हाथ में नहीं लेगा। सब से पहला सुधार जिसके लिये उन्होंने समस्त प्रान्तों से आग्रह किया वह इस हानिकर

वस्तु को रोकने का था। इस देश में समाज के लगभग प्रत्येक वर्ग ने चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो और यहां तक कि ईसाइयों ने भी मादक द्रव्यों और भैषजों का प्रयोग एक व्यसन ठहराया है।

*__श्री एल. कृष्णास्वामी भारती__ (मद्रास : जनरल): नहीं—पाप माना है।

__माननीय श्री बी.जी. खेर:__ मेरा आशय पाप से ही है। मद्यपान उन पांच घोर पापों में से एक है जिनका उल्लेख स्मृतियों में हैं और ऐसा हठधर्मी तथा ईर्ष्या के कारण नहीं किया गया है परन्तु महान् अनुभव के परिणामस्वरूप। आज अमरीका जाइये, मुझे ऐसे अनेकों व्यक्ति मिले जिन्होंने सच्चे हृदय से खेद प्रकट किया कि वे मद्य-निषेध में सफल नहीं हो सके। वे इसमें क्यों सफल नहीं हो सके? केवल इसलिये कि वे इस विष का प्रयोग बहुत काल से करते चले आ रहे हैं और इतना समय बीत गया है कि अब वे उसे छोड़ नहीं सकते। परन्तु उन लोगों का एक भाग जिसके हृदय में अपनी जाति तथा देश की भलाई के भाव हैं अब भी चाहता है कि मानव जाति को उस अधोगति से बचाया जाये जो कि मादक द्रव्यों के प्रयोग तथा समाज में इनके प्रयोग को सम्मानपूर्ण बनाने के कारण होगी। अत: यद्यपि दोनों हिन्दुओं तथा मुसलमानों के लिये भी यह पाप है परन्तु अंग्रेजों के आने के पश्चात् मादक द्रव्यों का प्रयोग फैशन, उन्नति और सभ्यता का चिह्न हो गया। यह वास्तव में सच है कि इन तीन बुराइयों का—कुछ चन्द व्यक्तियों द्वारा किसी रूप में भी मद्य-सेवन, जुआ और रंडीबाजी—सदैव के लिये भूमंडल से उन्मूलन करना असम्भव है। परन्तु यदि प्रत्येक शिष्ट सरकार का यह उद्देश्य हो कि समाज, स्वस्थ, सुखी और सदाचारी हो तो उसका यह प्रयास होना चाहिये कि मानव समाज को इन तीन दोषों से रोका जाये।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं।

श्रीमान्, यह केवल इस कारण है कि यूरोप से आये हुये हमारे मित्र मदिरा के प्रति कुछ और ही विचार रखते थे और इसलिये इस देश के लोग भी मदिरा के प्रयोग को सम्मानपूर्ण समझने लगे। इससे पूर्व कि यह बुराई इतनी जड़ पकड़ जाये कि हम भी यूरोप और अमरीका वालों की तरह इस परिणाम पर पहुंचें कि लोगों को मद्य-पान से रोकना असम्भव है यह आवश्यक है कि राज्य इस सुधार को अपना ले और ऐसा करने के लिये यही समय उपयुक्त है। यह बात केवल इसी देश में हित के लिये नहीं है वरन् इसमें संसार तथा मानव जाति का भी सामान्य रूप से हित है।

[माननीय श्री बी.जी. खेर]

आदिवासियों के प्रतिनिधान करने वाले माननीय सदस्य के तर्क से मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। श्री ठक्कर यहां उपस्थित हैं; उन्होंने अपना समस्त जीवन आदिवासियों की सेवा में बिता दिया है और मुझे विश्वास है कि वे इस संशोधन के सिद्धांत से पूर्णतया सहमत हैं। मैं इस बात से सहमत हूं कि ये लोग मदिरा-पान के आदी हैं और उनको धीरे-धीरे शिक्षित करना होगा और यही इस संशोधन से मंशा है, अर्थात् मादक द्रव्यों तथा भैषजों के सेवन का निषेध जो कि स्वास्थ्य के लिये हानिकर हों। मुझे आशा है कि माननीय सदस्य स्वास्थ्य के लिये हानिकर मादक द्रव्यों तथा भैषजों को प्रोत्साहन देना पसन्द न करेंगे।

मैं इस संशोधन का जोरदार समर्थन करता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ क्या माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार करते हैं?

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ जी, हां।

*__उपाध्यक्षः__ मैं एक संशोधन को छोड़ गया हूं। आशा है सभा मुझे इस त्रुटि के लिये क्षमा करेगी। सूची 3 में वह सं. 81 है और सरदार भूपेन्द्रसिंह मान का है। क्या वे उसे पेश करना चाहते हैं?

*__सरदार भूपेन्द्रसिंह मान__ (पूर्वी पंजाब : सिख): साहिबे सदर, मैं यह चाहता हूं कि जहां यह अलफाज़ ड्रिक्स और ड्रग्स हैं उनके दर्मियान लफ्ज टुबैको भी बढ़ा दिया जाये। साहिबे सदर, मैं जानता हूं कि इस तरमीम को पेश करते हुए मैं हाउस के बारसुख मैम्बरान की नाराजगी मोल ले रहा हूं और मैं यह भी महसूस करता हूं कि मैं अक्सीरियत के मिज़ाज़ के खिलाफ जा रहा हूं। जब मैं त्यागी साहब को इस ओमेशन के मुताल्लिक याद दिलाना चाहता हूं तो मैं उनके अपने बताये हुए इम्तिहान पर इस चीज को तोलते हुए पेश करता हूं। उन्होंने दो चीजें पेश की हैं कि वह नशे जो सेहत के लिए खराब हों और खतरनाक हों वह बन्द कर दिए जायें। अगर इसी इम्तिहान को ले लिया जाये कि आया यह नशा है या नहीं और आया यह सेहत के लिए खराब है या नहीं, तो मुझे पूरा यकीन है कि तम्बाकू नशा है और सेहत के लिए शराब से बढ़ कर खराब है। यह

डाक्टरों की समझी बूझी राय है कि तम्बाकू में जो जहर निकोटीन होता है, वह निहायत मुहल्लक किस्म का जहर है। देहातों को ले लीजिये, तो मैं आपको यकीन दिलाना चाहता हूं कि शराब तो उनको कभी-कभी मिलती होगी, लेकिन जहां तक तम्बाकू का ताल्लुक है, वहां के लोग रात-दिन चिलम और हुक्का खींचते हैं और सुस्ती की वजह से जो उनके निहायत जरुरी काम है वह रह जाते हैं। एकोनोमिक हालात का जहां तक ताल्लुक है, मैं यकीन दिलाता हूं कि तम्बाकू की वजह से शराब से कहीं ज्यादा नुकसान होता है। इससे लाखों नहीं करोड़ों रुपया बाहर जाता है। जब यह देखा जाता है कि यह वाकई मुहल्लक है और नशे की चीज है तो मैं कोई वजह नहीं समझता कि क्यों त्यागी साहब ने जहां शराब और दूसरी ड्रग्स का जिकर किया है वहां तम्बाकू को छोड़ दिया। शायद इसलिए कि अक्सीरियत इसे इस्तेमाल करती है लेकिन यह कोई दलील नहीं हो सकती। कहा जाता है कि अगर थोड़ी सिगरेट या बीड़ी इस्तेमाल की जाये तो सेहत को खराब नहीं करती। लेकिन इससे तो ज्यादती और कमी की बहस छिड़ जाती है। अगर कोई अच्छी चीज भी ज्यादती से इस्तेमाल की जाये तो खराबी कर सकती है। मेरी दलील यह है कि जब आप शराब जैसी मासूम चीज के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं तो तम्बाकू जैसी मुहल्लक चीज को क्यों बन्द नहीं किया जाता।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (संयुक्त राज्य काठियावाड़, सौराष्ट्र): श्रीमान्, मेरे मित्र श्री बाल गंगाधर खेर ने इस बारे में जो विचार प्रगट किये हैं उनके पश्चात् मैं नहीं बोलना चाहता था। किन्तु अब मैं दो छोटे, परन्तु महत्त्वपूर्ण बातों के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। श्री जयपाल सिंह ने कहा है कि ''आदिवासियों की प्रादेशिक समितियां अथवा परामर्शदातृ समितियां स्थापित हो जाने दीजिये, उनकी सम्मति लीजिये और उसके पश्चात् इस संशोधन को स्वीकार कीजिये; नहीं तो इसे तब तक के लिये स्थगित किया जाये।'' किसी व्यवस्थापक के लिये ऐसी बात कहना ठीक नहीं प्रतीत होता।

श्री जयपाल सिंह: मैंने तो यह कहा था कि परिगणित वनजातियों और अनुसूचित क्षेत्रों से सम्बन्धित अनुसूची पर यहां वाद-विवाद होने दीजिये; प्रादेशिक समिति से परामर्श करने का प्रश्न ही नहीं था।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** परामर्शदातृ समितियों की तो अभी स्थापना होनी है। हमें नहीं मालूम कि वे मद्य-निषेध को स्वीकार करेंगी अथवा अस्वीकार। क्योंकि श्री जयपाल सिंह इसे अस्वीकार करते हैं, अत: यह नहीं मान लेना चाहिये कि वे भी इसे अस्वीकार ही करेंगी।

एक बात ओर है। समस्त आदिवासी मद्य-पान को ठीक नहीं समझते, वे मद्य-निषेध चाहते हैं। मैं गुजरात के, महाराष्ट्र के पश्चिमी खानदेश के तथा मध्यप्रान्त के भीलों के बाबत जानता हूं। मैं मध्यप्रान्त के गोंडों के बाबत भी जानता हूं। मैंने उनमें से हजारों-लाखों से पूछा है कि वे मद्य-पान चाहते हैं अथवा मद्य-निषेध उन्होंने मुझे यह निश्चित उत्तर दिया, ठक्कर, आप मद्य-निषेध की बातें करते हैं; आप मद्य-पान बन्द करने की बातें करते हैं। आप हमारे मार्ग में ये प्रलोभन डाले हुये हैं और फिर भी आप हमारी सम्मति लेते हैं। ईश्वर के लिये शराब के ठेकों को बन्द करिये और फिर हम से पूछिये। हमें मद्य-पान का प्रलोभन होता है अन्यथा हम न जायें।'' पंचमहल के भीलों का एक ठोस प्रमाण दे दूं तो ठीक होगा। इनमें मैंने 27 वर्ष तक काम किया है तत्कालीन सरकार ने जो दुकानें स्थापित की थीं वे बन्द करनी पड़ी क्योंकि भीलों ने अपने आपको अपनी इच्छा से शराब पीने से अलग रखा। शराब की दुकानें स्वेच्छा से बन्द करनी पड़ी। कोई भी दुकानों की ओर नहीं जाता था क्योंकि भीलों ने न पीने और शराब की दुकानों के शिकार न बनने की प्रतिज्ञा ली थी। दुकानों का नीलाम करना पड़ा और किसी ने भी उन्हें नहीं खरीदा। अत: यह कहना अतिशयोक्ति है कि समस्त आदिवासी इसे चाहते हैं अथवा धार्मिक अधिकार के रूप में भी इसे चाहते हैं। भीलों के लिये धार्मिक कृत्यों में इसके प्रयोग आवश्यक है यह बात भी 20 वर्ष पहले कही जा सकती थी अब नहीं। अब इस सम्बन्ध की बातें उन्होंने बन्द कर दी हैं। अब उनके लिये यह कोई धार्मिक अधिकार नहीं रह गया है।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं सभा से यह आज्ञा प्रदान करने के लिये निवेदन करूं कि इस विषय पर वाद-विवाद स्थगित किया जाये जिससे कि माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल को अपने नाम का विधेयक पेश करने का अवसर मिले?

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

भारतीय सरकार–अधिनियम, 1935 (संशोधन) विधेयक

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, भारतीय सरकार के अधिनियम, 1935 में संशोधन करने के विधेयक के पुर:स्थापन करने के लिये अनुमति प्राप्ति के लिये मैं निवेदन करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''भारतीय सरकार के अधिनियम, 1935 में संशोधन करने के विधेयक को पुर:स्थापन करने के लिये अनुमति प्रदान की जाये।''

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): मैं इसका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** किस आधार पर?

***मौलाना हसरत मोहानी:** यदि आप मुझे कृपया कहने देंगे तो मैं तर्क प्रस्तुत करूंगा। मैं यह कहता हूं कि उनको विधेयक के पुर:स्थापन करने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस विषय पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''भारतीय सरकार के अधिनियम, 1935 में संशोधन करने के विधेयक को पुर:स्थापन करने के लिये अनुमति प्रदान की जाये।'

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं इस पद्धति का घोर विरोध करता हूं। यह तथ्य प्रसिद्ध है कि यह सभा पिट्ठुओं की सभा है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** आपकी अनुमति से अब मैं भारतीय सरकार–अधिनियम, 1935 में संशोधन करने के विधेयक को पुर:स्थापित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** विधेयक पुर:स्थापित किया जा चुका है। क्या मैं सरदार वल्लभभाई पटेल से यह निवेदन करूं कि वे सभा को यह बतायें कि लगभग कितने समय के उपरांत वे विधेयक को विचार–विमर्श के लिये प्रस्तुत करेंगे? इस बात को जानना माननीय सदस्यों की सुविधा के लिये आवश्यक है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** वह एक सप्ताह के पश्चात् होगा।

***उपाध्यक्ष:** धन्यवाद। सभा अब विधान के मसौदे के अनुच्छेद 38 पर वाद–विवाद शुरू करेगी। अब मैं श्री एल.एन. साहू को भाषण देने के लिये निवेदन करता हूं।

अनुच्छेद 38–(*जारी*)

***सेठ गोविन्ददास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं प्रस्ताव रखता हूं कि जहां तक मद्य-निषेध सम्बन्धी खंड का सम्बन्ध है इस पर अब मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** मैं श्री एल.एन. साहू से भाषण देने के लिये निवेदन कर चुका हूं।

श्री लक्ष्मीनारायण साहूः माननीय उपप्रधान जी, आज हम लोग जिस बारे में यहां आलोचना करते हैं, यह बहुत जरुरी बात है। पहले श्री जयपाल सिंह ने जो फरमाया है कि आदिवासियों में यह ड्रिन्क (drink) बहुत चलती है, यह तो ठीक है। लेकिन आदिवासियों ने जैसा ठक्कर बाबा ने खुद कहा है कि दरअसल में वे लोग चाहते हैं कि यह जो ड्रिन्क (drink) उनके सामने रखी गई है उसको निकाल दिया जाये।

सब से पहले मैं एक बात कहूंगा कि इस देश में आदिवासियों ने जो drink करते हैं वह तो दूसरे तरीके की होती है। वह तो हम लोगों के उड़ीसा में एक वृक्ष है जिसका नाम ''सलब ड्रिन्क'' है वह उनको जरा थोड़ा सा धीमा करता है लेकिन उनको पागल नहीं बनाता। जिस दिन से इस हिन्दुस्तान में जैसा माननीय केशवचन्द्र सैन ने कहा कि: the two great gifts of the Britishers to India are on the one hand the Bible and on the other hand the bottle. और इसी वजह से देश का सब नुकसान हो गया। केशवचन्द्र सैन ने कहा, बाईबिल इतना अच्छा ग्रंथ है, जब ब्रिटिश लोग यहां बोटल नहीं लाते तब सारा देश बाईबिल अच्छी तरह से ले सकता था। और यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि हम लोगों के देश में यह दारू इतनी खराबी करती है कि जहां मैं बत्तीस साल से रहता आया हूं वहां पहले एक आदमी भी दारू नहीं पीता था। लेकिन जब गवर्नमेंट ने दारू की दुकान खोल दी तो सब आदमी दारू पी लेते हैं। मेरे जो नाती नातिन है वह सब कहते हैं कि अभी यह सब दारू पीते हैं, तो वह भी शायद दारू पीयेंगे। इसलिये मैं चाहता हूं कि जब नया order of things आया है और हमने स्वराज्य पाया है और गांधी जी की यह मन्शा थी तब तो हर एक public place

में prohibition शब्द लिख देना चाहिये और श्री जयपाल सिंह जैसे, लोग जो religious freedom की बात करते हैं वह ऐसा मत कहें। हमारे देश में सत्ती की religious freedom थी वह आज कहां चली गई? इस तरह की दूसरी religious freedom आज जमाने की रफ्तार के साथ-साथ चली गई। हमारे aboriginals में human sacrifice जायज थी, लेकिन आज वह बुरी प्रथा मिट गई और समय के अनुसार बदल गयी। आज गवर्नमेंट human sacrifice नहीं करने देती। Aboriginal area की बात मैं कहता हूं। अभी तीन चार महीने ठक्कर बाबा के साथ मैंने tour किया उड़ीसा में मैंने अकेले दौरा किया, वहां aboriginal में एक नया भाव पाया। उनके भीतर भी यह बात है कि जो आदमी शिक्षा करते हैं उनको दारू नहीं पीना चाहिये, जो आदमी स्कूल में पढ़ने जाये उनको दारू नहीं पीना चाहिये। पढ़ना और दारू पीना यह दोनों अलग-अलग करना चाहिए। जो आदमी पढ़ता है वह दारू नहीं पीता।

Aboriginals के भीतर ऐसा अच्छा भाव है। इस भाव को प्रकट करने के लिये जितना सुभीता करेंगे, उतना अच्छा है। यह कहना कि दारू पीना हमारा religious right है और हम इसको preserve करने के लिये लड़ेंगे, यह बात ठीक नहीं है, यह बहुत खराब बात है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन को एक और संशोधन के साथ कि and, शब्द के पश्चात् तथा इस संशोधन के आरम्भ के पूर्व ''in particular'' शब्द जोड़ दिये जायें, मैं स्वीकार करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं वास्तव में यह नहीं समझ पाया कि यह संशोधन माननीय डा. अम्बेडकर द्वारा किस प्रकार स्वीकार किया जाता है? विवादान्तर्गत संशोधन तो मेरा है (*हंसी*)।

***माननीय डा. बी. आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में श्री त्यागी के संशोधन को मैं स्वीकार करता हूं। (*हंसी*)

***उपाध्यक्ष:** श्री त्यागी अधिकारों पर बड़े लड़ने वाले हैं।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर: श्रीमान्, यदि मैं ऐसा कह सकूं तो अधिकार तो वास्तव में मेरा है क्योंकि जो संशोधन उन्होंने प्रस्तुत किया है उसका मसौदा मैंने ही तो बनाया था। (*फिर हंसी*)

***उपाध्यक्ष:** इस बात से इस विषय पर नया प्रकाश पड़ता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करने में सभा को कोई कठिनाई होगी। इसके विरोध में दो बातें रखी गई हैं। एक, प्रोफेसर खाण्डेकर द्वारा जो इस परिषद् में कोल्हापुर का प्रतिनिधान करते हैं। मुझे विश्वास है कि श्री खाण्डेकर ने इस बात को यथेष्ट रूप में नहीं समझा कि यह खण्ड उस अनुच्छेद के खंडों में से एक है जो उन सिद्धान्तों की गणना कराता है जो नीति के निदेशक सिद्धान्त कहे जाते हैं। अत: राज्य के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि वह इस सिद्धान्त का पालन करे। इस सिद्धान्त का पालन करना और किस समय पालन करना यह राज्य और जनमत पर छोड़ दिया गया है। इसलिये यदि राज्य यह समझता है कि मद्य-निषेध के लिये अभी समय नहीं है अथवा उसका पुर:स्थापन शनै: शनै: या अंशत: किया जाना चाहिये तो इन निदेशक सिद्धान्तों के अंतर्गत ऐसा करने का उसे पूर्ण अधिकार है। इसलिये मैं नहीं समझता हूं कि इस विषय में हमें कोई खेद या पश्चाताप होना चाहिये।

श्रीमान्, अपने माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह का भाषण सुन कर तो मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि अभी इस विषय पर वाद-विवाद नहीं होना चाहिये वरन् इसे तब तक स्थगित कर देना चाहिये जब तक कि वनजाति-क्षेत्रों की परामर्शदातृ समिति की रिपोर्ट को हम विचारार्थ न ले लें। यदि उन्होंने विधान के मसौदे को पढ़ा होता, विशेषकर छठी अनुसूची की कंडिका 12 को, तो उनको यह विदित हो जाता कि मद्य-निषेध के विषय में वनजाति के लोगों की स्थिति के संरक्षण के लिये पर्याप्त व्यवस्था की गई है। वनजाति-क्षेत्रों के सम्बन्ध में योजना यह है कि राज्य द्वारा निर्मित कानून, चाहे प्रान्त द्वारा हो चाहे केन्द्र द्वारा हो, उस विशेष क्षेत्र में स्वत: ही लागू नहीं हो जायेगा। सर्वप्रथम एक कानून बनाया जायेगा फिर जिला समितियों अथवा प्रादेशिक समितियों को, जिनकी स्थापना इन क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों के प्रशासन करने के लिये हुई है, यह अधिकार दिया गया है कि वे ये बतायें कि केन्द्र या प्रान्त द्वारा निर्मित किसी विशेष कानून को वनजाति के लोगों द्वारा निवासित उस विशेष क्षेत्र में लागू किया जाये या नहीं, तथा मद्य-निषेध सम्बन्धी कानून का विशेष उल्लेख किया गया है। मैं कंडिका 12

की उप-कंडिका (क) को पढ़ कर सुनाता हूं जो विधान के मसौदे में 184 पृष्ठ पर है। उसमें कहा गया है:

''इस विधान में किसी बात के होते हुये भी—

(क) राज्य-विधान-मंडल का कोई अधिनियम, जो ऐसे विषयों से सम्बद्ध है जिनको इस सूची की कंडिका 3 में ऐसे विषय का होना उल्लिखित किया गया है जिन पर जिला-समिति या प्रादेशिक समिति कानून बना सकेगी, और राज्य-विधान-मंडल का कोई अधिनियम, जो अनासुत सौषविक पेय (नोन डिस्टिल्ड एल्कोहोलिक लिकर) के पीने का प्रतिषेध अथवा संकोचन करता है, किसी स्वायत्तशासी जिले या स्वायत्तशासी प्रदेश में तब तक लागू न होगा जब तक कि प्रत्येक दोनों स्थिति में जिला-समिति या ऐसे प्रदेश पर क्षेत्राधिकार रखने वाली जिला-समिति लोक-अधिसूचना द्वारा उसके लिये निदेश न दे, और जिला-समिति किसी अधिनियम के बारे में ऐसा निदेश देने पर यह निदेश भी दे सकेगी कि ऐसे जिले या प्रदेश या उसके किसी भाग पर लागू होने में अधिनियम ऐसे अपवादों या संपरिवर्तनों के साथ प्रभावी होगा जिसे कि वह उचित समझे;''

मैं नही जानता कि मेरे मित्र श्री जयपाल सिंह छठी अनुसूची की कंडिका 12 के प्रावधान से अधिक और क्या चाहते हैं। मुझे भय है कि उन्होंने छठी अनुसूची को पढ़ा नहीं है; यदि उन्होंने पढ़ा होता तो वे समझ जाते कि राज्य चाहे देश के किसी भाग में मद्य-निषेध सम्बन्धी कानून लागू करे, उसे वनजाति-क्षेत्रों में जिला-समितियों अथवा प्रादेशिक समितियों की सहमति बिना लागू करने का कोई अधिकार नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** तीन संशोधन हैं। एक श्री महावीर त्यागी का है। वह सूची दो में संख्या 71 पर है यदि मैंने स्थिति को ठीक समझा है तो उसको तो वापस कर ही लिया है। क्या मैं ठीक हूं, श्री त्यागी?

***श्री महावीर त्यागी:** मैंने अपना संशोधन वापस नहीं लिया है। मैंने केवल उन शब्दों को स्वीकार किया है जिनको प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना मेरे संशोधन में जोड़ना चाहते हैं।

*__उपाध्यक्षः__ मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या आप यह चाहते हैं कि आपके संशोधन पर पृथक् मत लिया जाये।

*__श्री महावीर त्यागीः__ जी हां, अवश्य। जैसा कि मैंने कहा था कि मैं पूर्णतया शराब बन्दी चाहता हूं। वे ये शब्द जोड़ना चाहते हैं, ''भैषजीय प्रयोजनों को छोड़ कर''। अतः मेरा संशोधन ही मूल संशोधन है।

*__उपाध्यक्षः__ मैंने स्थिति समझ ली। प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा परिवर्तित तथा डा. अम्बेडकर द्वारा और भी परिवर्तित श्री महावीर त्यागी के संशोधन पर मैं अब मत लूंगा।

*__श्री महावीर त्यागीः__ एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने एक शब्द Particular (विशेषकर) जोड़ दिया है पर उन्होंने मेरी सहमति नहीं ली है।

*__उपाध्यक्षः__ डा. अम्बेडकर की ओर से मैं आपसे आज्ञा लेता हूं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ मैं उनके संशोधन को भी स्वीकार करता हूं, श्रीमान्।

*__उपाध्यक्षः__ संशोधित रूप में इस विशेष संशोधन पर अब मत लिया जाता है।

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ तत्पश्चात् एक और संशोधन श्री भूपेन्द्रसिंह मान द्वारा पेश किया गया है जो सूची 3 में संख्या 81 पर है। मैं अब उस पर मत लेता हूं।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ अब मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद 38 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 38 संशोधित रूप में विधान में जोड़ दिया गया।

*__उपाध्यक्षः__ अनुच्छेद 38 विधान का भाग बना

अब हम नये अनुच्छेद 38 (क) पर आते हैं—संशोधन संख्या 1002, पंडित ठाकुर दास और सेठ गोविन्द दास के नाम से है।

***सेठ गोविन्द दासः** पं. ठाकुरदास भार्गव के संशोधन पर मेरा संशोधन है जिसे मैं पं. ठाकुरदास भार्गव को अपना संशोधन पेश कर लेने के बाद पेश करूंगा।

पं. ठाकुरदास भार्गवः जनाब प्रेजिडेंट साहब, यह अमेंडमेंट नं. 72 जो एक हजार दो अमेंडमेंट के बजाय मैं मूव करना चाहता हूं उसके अलफाज़ ये हैं:

"That for amendment No. 1002 of the List of Amendments to 38-A, the following be substituted:

'38.A—The State shall endeavour to organise agriculture and animal husbandry on modern and scientific lines and shall in particular take steps for preserving and improving the breeds of cattle and prohibit the slaughter of cow and other useful cattle, specially milch and draught cattle and their young stook.' "

('कि संशोधनों की सूची में 38 क) पर संशोधन 1002 के स्थान में निम्न रखा जाये:

'38 (क)—राज्य कृषि तथा पशु-पोषण की आधुनिक तथा वैज्ञानिक रीति से व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और मवेशी की नस्ल में सुधार करने तथा उसके परिरक्षण करने की विशेषकर कार्यवाही करेगा और गाय तथा अन्य उपयोगी मवेशी विशेषकर दूध देने वाली और न देने वाली मवेशी व उनके बच्चों के वध का निषेध करेगा।' "

मैं शुरू में यह अर्ज करना चाहता हूं कि यह अमेंडमेंट...

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। मेरे माननीय मित्र जो अंग्रेजी में स्वतंत्रतापूर्वक बोल सकते हैं, जानबूझ कर उर्दू या हिन्दुस्तानी में बोल रहे हैं जिसको दक्षिणी भारत के अधिकांश सदस्य नहीं समझ सकते हैं।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य को वे जिस भाषा में बोलना चाहें उसमें बोलने का पूर्ण अधिकार है फिर भी मैं उनसे अंग्रेजी में बोलने के लिये निवेदन करूंगा यद्यपि अंग्रेजी में बोलना उनके लिये अनिवार्य नहीं है।

पं. ठाकुरदास भार्गव: *[मैं हिन्दी में गाय के बारे में बोलना चाहता हूं जो मेरी भाषा है और मैं आपसे निवेदन करूंगा कि अंग्रेजी में बोलने के लिये मुझे आज्ञा न दें। क्योंकि विषय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, मैं अपने आप को उस रूप में व्यक्त करना चाहूंगा जिस रूप में मैं अधिक सुगमता तथा सुविधा से व्यक्त कर सकता हूं। अत: मैं आप से निवेदन करूंगा कि आप कृपा कर मुझे हिन्दी में बोलने दें।]

जनाब वायस प्रेजिडेंट साहब, इस अमेंडमेंट के बारे में मैं हाउस के सामने यह अर्ज करता हूं कि दरअसल यह अमेंडमेंट भी जैसा डा. अम्बेडकर साहब ने दूसरी amendment के बारे में किया है उनकी ही manufacture है। गो substantially मेरी और उनकी अमेंडमेंट में कोई फर्क नहीं है। यह अमेंडमेंट एक तरह से agreed अमेंडमेंट है। इस अमेंडमेंट के move करते वक्त मुझे यह कह देने में ताम्मुल नहीं है कि दरअसल मैं और वो लोग जिनका कि नुक्ता ख्याल डा. अम्बेडकर साहब और दूसरे साहिबान से नहीं मिलता उनके लिये एक तरह से ये अमेंडमेंट sacrifice है। सेठ गोविन्ददास साहब ने Fundamental Rights में एक इस किस्म का अमेंडमेंट भेजा था। दूसरे साहबान ने Fundamental Rights पर दूसरे अमेंडमेंट भेजे थे। मेरे नुक्ते ख्याल से मैं समझता हूं कि यह जायज है कि यह मामला फंडामैंटल राइट्स में आ जाता लेकिन कुछ मेरे असेम्बली के दोस्तों को इख्तिलाफ था और डा. अम्बेडकर साहब की ख्वाहिश है कि यह मामला Directives Principles में रखा जाये, बजाय Justiciable Fundamental के। सच तो यह है कि असेम्बली के मुत्तफिका राय यह है कि इस मामले को सहूलियत के साथ तरीके से सुलझाया जावे कि इसमें कोई Coercion न हो और मतलब पूरा हो जाये। क्योंकि मेरी राय में इस अमेंडमेंट से मतलब हमारा पूरा होता है और यह अमेंडमेंट एक तरह से Fundamental और Directive के बीच-बीच में है इसलिये मैंने जानूबूझ कर यह रवैया इख्तियार किया है। मैं यह नहीं चाहता कि इस अमेंडमेंट को फंडामैंटल राइट्स में शामिल करने से हमारे गैर-हिन्दू भाई शिकायत करें कि हिन्दुओं ने जबरदस्ती इन पर कोई मामला डाल दिया है। जहां तक प्रेक्टिकल क्वेश्चन का सवाल है मेरी राय नाकिस में कहीं पर भी यह अमेंडमेंट रखा जाये तो किसी किस्म का फर्क नहीं पड़ेगा, जब तक इस अमेंडमेंट के स्पिरिट में अमल किया जायेगा। अभी हाउस ने दफ़ा 38 पास की है। लेकिन मैं अर्ज करना चाहता हूं कि दफ़ा 38 बिना रूह के महज जिस्म है। अगर आप 38-ए जो मुज़विजा तरमीम है उसको पास न करेंगे तो दफा 38 भी बेमानी हो

जायेंगे। कैसे आप लोगों की तन्दुरुस्ती, खाने की हालत को दुरुस्त कर सकते हैं जब तक आप पूरा गल्ला और दूध पैदा न करें।

यह तरमीम तीन हिस्सों में मुन्कसिम है। अव्वल जिराअत की सायंटिफिक और जदीद तरीकों पर चलाया जावे। दोयम जानवरों के नस्ल की तरक्की की जावे और तीसरे गाय व दीगर मुफ़ीद जानवरों को जिवाह करने से बचाया जावे। गल्ले की पैदावार का बढ़ाना और जिराअत को तरक्की देना व जानवरों के नस्ल को बढ़ाना एक दूसरे पर मुनहसिर हैं और एक ही सिक्के की दो शक्ल है। आज हमको दुनिया में शर्म से सर झुका लेना पड़ता है जब कि हमारे मुल्क में गल्ला बाहर से आता है और मैं समझता हूं कि बाहर से हमारे मुल्क में 46 मिलियन टन के करीब गल्ला आता है। अगर पिछले बारह साल का याने 1935 से 1947 तक का औसत देखा जाये तो इस मुल्क के अन्दर 45 मिलियन टन गल्ला हर साल पैदा हुआ है। इसलिये हम जरूर सेल्फ सफीशियेंट ही नहीं बल्कि गल्ला एक्सपोर्ट करने के काबिल बन सकते हैं। अगर पानी का ठीक फायदा उठाया जाये, Dam बनाये जायें, दरियाओं को सुधारा जाये, मशीन और ट्रेक्टर इस्तेमाल किये जायें Planning, Cropping से काम लिया जाये तो कोई शुबा नहीं कि पैदावार बहुत बढ़ सकती है। इन मशीनों के अलावा सब से बेहतर साधन पैदावार बढ़ाने का इन्सानी जिस्म की तरक्की और मवेशियों की तरक्की पर है जिसका दूध व खाद व मेहनत गल्ले की पैदावार बढ़ाने के लिये अज़बस जरूरी है।

इस वास्ते इस देश की सारी एग्रीकल्चर और इस देश के फूड का प्राबलम गाय की तरक्की और गाय की नस्ल की तरक्की है। और इस वजह से मैं आपकी खिदमत में थोड़े से फिगर्स देकर बताना चाहता हूं कि आया गाय की तरक्की आज कहां तक होती रही है और आज क्या पोजीशन है। 1940 ई. में हिन्दुस्तान में 11 करोड़ 56 लाख 960 आकस्न थे और 1945 में 11 करोड़ 19 लाख रह गये। यानी इन पांच बरसों में 37 लाख की कमी आकस्न में हुई। इसी तरह बफेलोज में इनकी तादाद 32891300 थी, 1940 में और 1945 में वह 32544400 रह गई। इसके मुताबिक इसमें 4 लाख की कमी हुई इन पांच साल में। इस तरह दोनों में कुल मिलाकर पांच साल में 41 लाख की कमी हुई।

इसके अलावा हम वह तादाद देखें कि हिन्दुस्तान में कितने जानवर जिबाह हुये तो उनकी तादाद इस तरह मिलती है कि आकस्न 1944 में 6091828 जिबाह।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

1945 में 65 लाख जिबाह। यानी 4 लाख ज्यादा। इस तरह बफेलोज 727189 जिबाह हैं। मैं आप का ज्यादा वक्त नहीं लेना चाहता हूं। अगर आप देखना चाहें तो यह लेटेस्ट फिगर्स 1945 तक के मेरे पास मौजूद हैं और आप देख सकते हैं। बम्बई और मद्रास के फिगर्स मेरे पास हैं और इनसे पता चलता है कि इस स्लाटर में किसी तरह कमी नहीं हुई है। बल्कि यह देखने में आता है कि इस स्लाटर में बढ़ोत्तरी ही होती जा रही है। इस वास्ते मैं आप से अर्ज करना चाहता हूं कि यहां पर स्लाटर का बन्द किया जाना निहायत जरूरी है। हमारा मुल्क कृषिप्रधान है और गाय हमारे लिये कामधेनु है। क्योंकि जिराअत और खुराक दोनों के लिहाज से इसका बचाव हमारे लिये जरूरी है। हमारे पुराने ऋषियों ने और बुजुर्गों ने इसकी अहमियत को महसूस किया और इसको मुतबरिक माना है। यहां कृष्ण का जन्म हुआ था जिन्होंने गाय की इतनी सेवा की कि वह अब तक मोहब्बत से माखन चोर के नाम से पुकारे जाते हैं। मैं आपको दलीप की कहानी भी नहीं सुनाना चाहता हूं कि किस तरह इस राजा ने अपनी जान की बाजी अपने गुरू की गाय के वास्ते लगा दी थी। लेकिन मैं यह बतला देना चाहता हूं कि इस मुल्क में मुसलमानों के जमाने में भी, बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर और औरंगजेब के जमाने में भी हिन्दुस्तान में गौ-वध नहीं होता था। यह इस वास्ते नहीं कि मुसलमान गौवध को बुरा मानते थे बल्कि इस वास्ते कि इकानामिक हिसाब से ऐसा करना इनके व देश के फायदे के खिलाफ था।

इस तरह हर एक मुल्क में, चीन में गाय का मारना जुर्म समझा जाता है। गाय का मारना अफगास्तिान में मना है। बर्मा में एक बरस हुआ कानून बनाया गया है। पहले वहां कानून था कि 14 बरस से ज्यादा उमर के जानवर जिबाह हो सकते थे। मगर फिर बर्मा गवर्नमेंट इस नतीजे पर पहुंची कि इस तरह के पारशियल स्लाटर के बन्द करने से काम नहीं चल सकता। लोग यूज़लेस कैटल के बहाने से बहुत से मुफ़ीद जानवर जिबाह कर देते हैं। मैंने अखबार में पढ़ा है कि पाकिस्तान ने भी फैसला किया है कि वह वेस्टर्न पाकिस्तान से जानवर एक्सपोर्ट नहीं करेंगे और उन्होंने भी पारशियल पाबन्दी स्लाटर पर इनफोर्स कर दी है।

हमारे देश की हालत को देखते हुये गाय की जरुरत महज दूध के वास्ते ही नहीं बल्कि इसकी जरुरत draught, transport की भी गाय की नसल ही पूरा

कर रहे हैं यह ताज्जुब की बात नहीं है कि यहां गाय की लोग परस्तिश करते हैं। लेकिन मैं आपसे इस धर्म के नाम पर अपील नहीं करता लेकिन आपसे देश की एकानामिक पोजीशन का ख्याल करने के लिये कहता हूं। इस कनेक्शन में मैं हमारे देश के सब से बड़े नेता फादर आफ दी नेशन की राय आप लोगों के सामने सुनाना चाहता हूं। आप यह तो जानते ही हैं कि इस बारे में महात्माजी के क्या ख्यालात थे कि वह मुसलमानों पर या गैर हिन्दुओं पर कम्पलशन कभी नहीं करना चाहते थे। उन्होंने कहा था:

> ''I hold that the question of cow-slaughter is of great moment—in certain respects of even greater moment—than that of Swaraj. Cow-slaughter and man slaughter are, in my opinion, two sides of the same coin.''

मैं इसको भी छोड़ कर आप को हमारी कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली के प्रेसिडेंट डा. राजेंद्र प्रसाद की स्पीच की तरफ तवज्जह दिलाना चाहता हूं। इस के बाद गवर्नमेंट आफ इंडिया ने एक कमेटी मुकर्रर की। एक रिप्रेजेंटेटिव एक्सपर्ट कमेटी मुकर्रर की। यह देखने के लिये कि हिन्दुस्तान के फायदे के लिये इस देश के अन्दर जानवरों की तादाद कैसे बढ़ाई जा सकती है और आया स्लाटर करना चाहिये या नहीं और इस कमेटी ने मुत्तफिका तौर पर इस बात का फैसला किया है। सेठ गोविन्द दास साहब भी इसके मेम्बर थे। उन्होंने इत्तिफाक राय से यह फैसला किया कि हिन्दुस्तान के अन्दर कैटल का स्लाटर बन्द कर दिया जाये। इस कमेटी में बड़े आली दिमाग लोग शामिल थे। इस सवाल को एकनामिक नुकतेनिगाह से उन्होंने जांचा और अनसर्विसेवल और अनप्रोडक्टिव मवेशियों का मसला भी सोचा। आखिर सब बातों का ख्याल करके उनकी मुत्तफिका राय यह है कि स्लाटर को बन्द कर दिया जाये। इनके रिजोल्यूशन का ताल्लुक महज गाय से नहीं है। भैंस जो कि 50 फीसदी दूध देती है और बकरी जो कि 3 फीसदी दूध देती हैं और जिनसे करोड़ों रुपये का फायदा है उनका मारना भी ऐसा ही पाप है जैसा कि गाय का मारना। हमारे यहां हरियाणा के इलाके में एक बकरी तीन सेर, चार सेर दूध देती है जो दूसरे इलाकों में शायद गाय भी न देती हो। इसलिये मैं अर्ज करना चाहता हूं कि इस पर एकानामिक ख्याल से गौर किया जाये।

मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि जिन मवेशियों को आम तौर पर यूजलैस कैटल कहा जाता है वह बिल्कुल गलत है। एक्सपर्ट्स ने इसका अंदाजा लगाया है और वे इस फैसले पर पहुंचे हैं कि जिन को यूजलैस कैटल कहते हैं वे

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

यूजलैस इस वास्ते नहीं है कि हमारे यहां मैनयुर की बहुत जरुरत है और गाय ख्वा दूध देने वाली हो या न दूध देती हो एक moving manure factory है। वे किसी सूरत में भी यूजलैस नहीं हो सकती। इसलिये गाय की सूरत में यूजफुल होने या न होने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

(*घंटी बजते हुये सुनकर*) क्या मुझे रुकना है?

***उपाध्यक्षः** जी हां, मैं आपसे रुकने के लिये निवेदन करता हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** क्या आप मझे दो मिनट और दे सकते हैं?

***उपाध्यक्षः** आपने 25 मिनट ले ही लिये हैं।

पं. ठाकुरदास भार्गवः चूंकि प्रेसिडेंट साहब का हुक्म है इस वास्ते मैं इस की तफसील में नहीं जाना चाहता। वरना मैं यह फ़िगर्स से साबित कर सकता हूं कि गाय के गोबर व पेशाब की कीमत उसके कायम रखने के खर्च से ज्यादा है और अब एक आखिरी लफ्ज कह कर इस मामले को खत्म करता हूं। वह यह है कि शायद बहुत से लोग यह समझतें हो कि यह गाय के जिवाह से रोकने का मामला इतना जरूरी नहीं है। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि हमारे यहां अभी उमर का औसत 23 साल का है और एक साल से कम की उमर में कितने बच्चे जाया होते हैं। इसका असली सबब दूध की कमी है और खुराक की कमी है। और इसका इलाज गाय के नस्ल की तरक्की और इसके जिबाह करने को रोकना है।

मैं इस अमेंडमेंट को इतना जरूरी समझता हूं कि आपके बाकी सारे 315 दफा एक पलड़े में और दूसरे में यह अमेंडमेंट, तो मैं इस अमेंडमेंट को तरजीह दूंगा। इस अमेंडमेंट के पास करने से देश में बिजली सी दौड़ जायेगी। इसलिये आपसे दरखास्त करता हूं कि आप मुत्तफ़िका तौर से acclamation इस तरमीम को मंजूर फरमायें।

सेठ गोविन्द दासः उप-सभापतिजी, मुझे पं. ठाकुरदास जी भार्गव का सुधार इस डाइरेक्टिव में भी बहुत कमजोर जान पड़ता है। इसलिए मैं उनके सुधार पर अपना सुधार पेश करता हूं। मेरा सुधार यह है:

"That in amendment No. 1002 of the List of Amendments in article 38-A, the words 'and other useful cattle, specially milch

cattle and of child bearing age, young stocks and draught cattle' be deleted and the following be added at the end:

'The words ''cow'' includes bulls, bullocks, young stock of genus cow.' ''

इस सुधार का स्पष्ट अर्थ आपको यह सुधार सुनते ही मालूम हो गया होगा। पंडित जी के सुधार में गायों और दूसरे जो उपयोगी जानवर हैं, उनके वध का निषेध किया गया है जिसका अर्थ यह होता है कि अनुपयोगी गायों को काटा जा सकता है परन्तु मेरे सुधार का अभिप्राय यह है कि जहां तक गायों का सम्बन्ध है, वहां तक चाहे गाय उपयोगी हो या अनुपयोगी हो और गायों के अन्दर सांड, बैल, बछड़े भी आ जाते हैं जो गायों से उत्पन्न होते हैं, सबका वध रोक दिया जाये। पंडित ठाकुरदासजी ने आपको यह बताया कि मैंने तो इस प्रस्ताव को Fundamental Rights—मौलिक अधिकारों में भेजा था, परन्तु मुझे इस बात का दुख है कि वहां पर यह इस समय नहीं रखा जा सकता। उसका कारण यह बताया गया कि Fundamental Rights—मौलिक अधिकार—सिर्फ मनुष्यों से सम्बन्ध रखते हैं, पशुओं से नहीं। मैंने यह कहा था कि जिस प्रकार आप untouchability—अस्पृश्यता—को गुनाह बनाना चाहते हैं, उसी प्रकार गौवध को भी एक गुनाह बना दें। परन्तु यह कहा गया है कि अस्पृश्यता मनुष्यों से सम्बन्ध रखती है और गौवध का प्रश्न पशुओं से सम्बन्ध रखता है। मौलिक अधिकार मनुष्यों के हैं, इसलिए उसमें यह चीज नहीं रखी जा सकती। खैर, मैं चुप रहा और मैंने उसको यहां पर लाना उचित समझा। यहां मैं यह भी कह दूं तो अनुचित न होगा कि गौरक्षा का प्रश्न मैं आज ही नहीं उठा रहा हूं। केन्द्रीय धारा सभाओं में मैं गत पच्चीस वर्षों से हूं और असेम्बली तथा कौंसिल आफ स्टेट में सदा ही मैंने इस सवाल को उठाया है।

गौरक्षा इस देश का बहुत पुराना प्रश्न है। भगवान श्रीकृष्ण के समय से इस प्रश्न को बहुत बड़ा महत्त्व मिला है। मैं तो उस कुल से आता हूं, जहां कि कृष्ण हमारे इष्ट हैं। मैं स्वयं अपने को एक धार्मिक व्यक्ति मानता हूं और इस समय के समाज में जो लोग धर्म को हेय दृष्टि से देखते हैं, और धार्मिक पुरुषों को हेय दृष्टि से, मैं उनको हेय दृष्टि से देखता हूं। मेरा यह विश्वास है कि धर्म का मूलोच्छेदन संसार में न आज तक हुआ है और न कभी हो सकता है। हमारे देश में भी चार्वाक सदृश निरीश्वरवादी रहे हैं, परन्तु चार्वाक के मत का

[सेठ गोविन्द दास]

इस देश में कभी भी प्रचार नहीं हो सका। पश्चिम के साम्यवादी नेता कार्ल मार्क्स, लेनिन और आज स्टैलिन भी धर्म को अफीम का नशा कहते हैं। रूस धर्म और ईश्वर को नहीं मानता था, पर हमने देख लिया कि पिछली लड़ाई में रूसियों ने गिरजाघरों में फिर से भगवान की प्रार्थना की कि उनको लड़ाई में जिताए। तो हमने प्राचीन इतिहास और इस समय जो निरीश्वरवादी रूस है, उसमें भी देख लिया कि धर्म का मूलोच्छेदन नहीं हो सका।

फिर गौवध हमारा धार्मिक प्रश्न ही नहीं है, वह हमारा सांस्कृतिक प्रश्न भी है और आर्थिक प्रश्न भी। संस्कृति पुराना इतिहास बताता है। हिन्दुस्तान एक बहुत प्राचीन देश है और उस पर कोई संस्कृति नहीं लादी जा सकती। जो कोई भी यह प्रयत्न करेगा, उसमें वह विफल होने वाला है, सफल होने वाला नहीं है। हमारी एक संस्कृति है जो हमारे प्राचीन इतिहास के साथ-साथ धीरे-धीरे बनी है। इस देश में हमारी संस्कृति के बिना लोग स्वराज्य का अर्थ नहीं समझ सकते। इस देश के जो बड़े-बड़े सांस्कृतिक प्रश्न इस विधान-परिषद् के सामने हैं, जैसे 'देश का नाम क्या रखा जाये', 'देश की राष्ट भाषा क्या हो', 'देश की राष्ट्रलिपि क्या हो', 'देश का राष्ट्रीय गायन क्या हों', और 'देश में गौवध हो या बन्द कर दिया जाये', जब तक इन प्रश्नों का निबटारा हमारी विधान-परिषद् इस देश की जनता की राय के अनुसार नहीं करेगी, तब तक इस देश की जनता स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं समझ सकती। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि इन प्रश्नों पर referendum— जनमत ले लिया जाये और देखा जाये कि इन प्रश्नों पर हमारे देश की जनता क्या कहती है। फिर गौरक्षा हमारे लिए आर्थिक प्रश्न भी है। पं. ठाकुरदास भार्गव ने आपको कुछ अंकों द्वारा बताया कि इस देश में किस प्रकार गौवंश का ह्रास हो रहा है। यह देश कृषि प्रधान देश है और मैं भी इस सम्बन्ध में कुछ अंक यहां रखना चाहता हूं। सन् 1935 में हमारे यहां ग्यारह करोड़, चौरानबे लाख, इक्यानवे हजार इस प्रकार के पशु थे, उनकी संख्या 1940 में घट कर ग्यारह करोड़, छप्पन लाख, दस हजार हो गई और 1945 में यह और घटी और उनकी संख्या ग्याारह करोड़ उन्नीस लाख रह गई। जहां एक ओर हमारी

मनुष्य संख्या बढ़ रही है, वहां हमारे यहां पशुधन घट रहा है। सरकार प्रयत्न कर रही है उपज बढ़ाने का। इस पर Grow more food campaign हजारों लाखों रुपया खर्च हो रहा है। यह प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक हम गौवध की रक्षा न करेंगे। हमारे यहां कितनी गायें काटी जाती हैं इसके सम्बन्ध में कुछ अंक ठाकुरदास जी ने रखे हैं मैं Government of India की ''Hide and Skin'' रिपोर्ट में से कुछ अंक रखना चाहता हूं। यहां पर बाबन लाख गायों और तेरह लाख भैसों का हर साल वध किया जाता है। कितनी बड़ी संख्या है इस देश में इस वध किये जाने वाले पशुओं की। यहां छत्तीस करोड़ एकड़ जमीन काश्त में है। मैं इस जमीन में पाकिस्तान की जमीन भी शामिल कर रहा हूं क्योंकि पाकिस्तान के अलग होने के बाद हमारे यहां की खेती के लायक जमीन के अंक उपस्थित नहीं हैं। इस जमीन के लिए छह करोड़ बैल हैं। वैज्ञानिक ढंग से हिसाब लगाने से पता चलता है कि इस जमीन को ठीक स्थिति में रखने के लिये डेढ़ करोड़ बैलों की और जरुरत है।

जहां तक दूध का सवाल है मैं आपके सामने यह रखना चाहता हूं कि किस देश के लोगों को कितना दूध मिलता है और हमारे यहां कितना दूध मिलता है:

न्यूजीलैंड में एक व्यक्ति को छप्पन आउन्स दूध मिलता है। डेनमार्क में चालीस, फिनलैंड में तिरसठ, स्वेडेन में इकसठ, आस्ट्रेलिया में पैंतालीस, यू.एस.ए. में पैंतीस, चेकोस्लावाकिया में छत्तीस, बेल्जियम में पैंतीस, आस्ट्रिया में तीस, जर्मनी में पैंतीस, फ्रांस में तीस, पौलैंड में बाइस, ग्रेट ब्रिटेन में उन्तालिस, और हिन्दुस्तान में केवल सात आउन्स। जरा सोचिये और विचार कीजिये, जिस देश में लोगों को सात आउन्स दूध मिलता है, उस देश के लोगों की शारीरिक स्थिति क्या होगी। इस देश में जो बच्चों का इस बड़ी तादाद में निधन हो रहा है, बिचारे कुत्ते और बिल्लियों की मौत मर रहे हैं उनका बचाव बिना दूध के कैसे हो सकता है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से भी यदि हम इस प्रश्न को देखें तो हमको मालूम होता है कि खेती और दूध के लिए भी गौरक्षा कितनी आवश्यक है।

यहां मैं एक बात और कह देना चाहता हूं। अनुभवों से यह सिद्ध हो गया है कि चाहे हम उपयोगी पशुओं के वध रोकने के लिये कितने ही कानून क्यों न बनाये हमको उसमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। हर प्रान्त में इस तरह के

[सेठ गोविन्द दास]

कानून है वहां लोग पशु-वध कर थोड़ा-बहुत जुरमाना दे देते हैं और कभी तो इस से भी बच जाते हैं। इस तरह से बराबर हमारे गौवंश का ह्रास हो रहा है।

बर्मा में पहले इसी तरह का कानून था पर जब उन्होंने देखा कि इस तरह से पशुओं को बचाया नहीं जा सकता तो उन्होंने गौवध कतई बन्द कर दिया।

मैं एक बात अपने मुसलमान भाइयों से भी कहना चाहता हूं। मैं तो इस देश को ऐसा देश देखना चाहता हूं कि जब हम धार्मिक दृष्टि से अलग रहते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से एक हो जाये। जिस तरह से आज एक ही कुटम्ब में एक साथ हिन्दू और सिख रह सकते हैं, एक ही कुटुम्ब में जैन और हिन्दू रह सकते हैं उसी प्रकार एक ही कुटुम्ब में हिन्दू मुसलमान भी रह सकते हैं। मुसलमानों को स्वयं आगे आना चाहिये और कहना चाहिये कि गौवध करना हमारे धर्म में अनिवार्य नहीं बतलाया गया। मैंने सब धर्मों का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है। मैंने पैगम्बर मोहम्मद साहब का जीवन चरित्र पढ़ा है। पैगम्बर साहब ने अपने जीवन में गौ मांस नहीं खाया। यह एक ऐतिहासिक बात है।

अभी ठाकुरदास भार्गव जी ने बतलाया कि अकबर के समय से औरंगजेब के समय तक गौवध बंद रहा। मैं मुगलों के सबसे पहले बादशाह बाबर का वह कथन सुनाना चहता हूं जो उन्होंने हुमायूं को दिया था-''गौकुशी से परहेज करना, ऐसा करने से हिन्दुस्तान के लोगों के दिलों को काबू में कर लोगे।''

अभी ठाकुर दास भार्गवा जी ने उस कमेटी का जिक्र किया जो गवर्नमेंट आफ इंडिया ने इस मामले में बैठाई थी। उसने यह सिफारिश की है कि यहां पर गौवध कतई बन्द कर दिया जाये। मैं इस बात को मानता हूं कि इस काम के लिए सरकार को रुपये की जरुरत पड़ेगी। मैं इस बात का आश्वासन देना चाहता हूं कि इस काम के लिए रुपये की कमी नहीं होगी। पिंजरापोल, गौशालाओं को जो भाग मिलता है, उसे कानूनी तरीके से लिया जाये तो जितने रुपये की जरुरत हो उतने रुपये मिल जायेंगे। अगर सरकार इस काम के लिए नया टैक्स

भी लगाना चाहेगी तो इस देश का प्रत्येक निवासी इस टैक्स को हर्षपूर्वक देगा। इसलिये फाइनैन्शल बोगी जो ब्रिटिश गवर्नमेंट हमेशा हमारे सामने रखती थी यह हमारी सरकार हमारे सामने न रखे। मैंने इस देश में थोड़ा-बहुत भ्रमण किया है और मैं जनता के विचारों से परिचित हूं।

*[श्रीमान, अपने दक्षिणी भाइयों के लिये मैं कुछ शब्द अंग्रेजी मैं कहना चाहता हूं।]

***उपाध्यक्ष:** यदि मैं आपको ऐसी आज्ञा दे दूं तो अन्य वक्ताओं को बोलने के लिये यथेष्ट समय नहीं मिलेगा। आपने दस मिनट चाहे थे और मैंने आपको 19 मिनट दे दिये हैं। यदि आप और अधिक समय लेने के लिये हठ करते हैं तो मैं आपको वह भी दे दूंगा लेकिन आप उनको अंग्रेजी में सम्बोधन कर सकते थे।

श्री शिब्बनलाल सक्सेना-सूची 4 संशोधन संख्या 87!

***श्री आर.वी. धुलेकर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैंने एक छोटा सा निवेदन भेजा था कि मुझे बोलने का अवसर दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** यदि माननीय सदस्य कृपापूर्वक अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लें तो मैं कुछ कह सकूं। हमने एक प्रणाली अंगीकार की है। संशोधन एक-एक करके पेश किये जायेंगे।

श्री शिब्बनलाल सक्सेना!

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी जिसमें मैंने यह चाहा था कि गौवध का पूर्ण निषेध कर दिया जाये। परन्तु पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन से समझौता कर लेने के बाद मैंने अपने संशोधन को पेश करने के अधिकार को छोड़ दिया है।

***एक माननीय सदस्य:** परन्तु, संशोधन क्या है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** वह सूची 4 में संख्या 87 पर है, पर मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** उस दशा में आप बोल नहीं सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** पर और कोई संशोधन नहीं है। मैं अब खंड पर बोल सकता हूं।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं हम कहां पर हैं। क्या माननीय सदस्य अपना संशोधन पेश कर रहे हैं या वे खंड पर सामान्य वाद विवाद में भाग ले रहे हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं सामान्यतया खंड पर बोल रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** उस दशा में आप तब तक ठहरें जब तक श्री रामसहाय भी अपना संशोधन सूची 4, संख्या 88 पेश नहीं कर दें।

***श्री अलगू राय शास्त्री** (संयुक्तप्रांत : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, प्रोफेसर सक्सेना ने पंडित ठाकुरदास के पूरे के पूरे संशोधन को उतार लिया है और केवल एक या दो शब्द जोड़ दिये हैं। ऐसी दशा में केवल उन नये शब्दों को ही उनका संशोधन मानना चाहिये और पूरा संशोधन उनका अपना नहीं होना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** पर उन्होंने तो कह दिया है कि वे केवल सामान्य वाद-विवाद में भाग लेंगे।

अब, श्री रामसहाय!

श्री राम सहाय (संयुक्त राज्य ग्वालियर, इन्दौर): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने एक अमेंडमेंट पार्ट तीन में आर्टिकिल 9 इजाफा करने इस सम्बन्ध में पेश किया है कि The State shall ban the slaughter of cow by Law. लेकिन इन्हीं कारणों से जिन कारणों से मिस्टर भार्गवा जी ने इस फन्डामेंटल राइट्स की तहत में अपना अमेंडमेंट पेश नहीं किया। उसी तरह मैंने भी अपना अमेंडमेंट न पेश करने का निश्चय कर लिया है। इसके बाद पार्ट चार में मैंने अपना अमेंडमेंट रखा है।

मेरा अमेंडमेंट रखने का सिर्फ़ मकसद यह था कि गौवध कतई बन्द कर दी जाये। लेकिन मैं यहां देख रहा हूं कि हाउस में 1 वर्ग इस चीज को पसन्द नहीं करता और मैं भी कोई ऐसी चीज नहीं पेश करना चाहता जो सर्वसम्मति से न हो सके। या जो कम से कम ऐसी न हो कि जिससे प्रान्तों की आज़ादी बनी रहे। डाइरेक्टिव प्रिंसिपल ऑफ स्टेट पालिसी की तहत में प्रान्तों को यह आज़ादी है कि वह कतई तौर पर गौवध बन्द करें यह रैसट्रिक्टेड वे में बन्द करें। गो इस समय बहुत सारे देशों में गौवध पर किसी न किसी रूप में पाबन्दी लगी है, फिर भी मैं इस बात की तरफ नहीं जाना चाहता हूं।

इस प्रस्ताव को जिसे कि मि. भार्गवा साहब ने पेश किया है और मैं समझता हूं कि मि. अम्बेडकर साहब उसे पसन्द करेंगे और उसे जरूर मान लेंगे क्योंकि उनके एस्युरेन्स पर ही यह समझौते की तरमीम आई है। उसी एस्युरेन्स से मैं अपना अमेंडमेंट मूव नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** एक और संशोधन है जिसको मैं छोड़ गया था वह संख्या 1005 है और चौधरी रणबीर सिंह के नाम से है।

***चौधरी रणवीर सिंहः** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं। पर मैं मूल खंड पर बोलना चाहूंगा।

***उपाध्यक्षः** बहुत अच्छा, प्रोफेसर सक्सेना!

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, इस प्रश्न के दो पहलू हैं। एक धार्मिक पहलू हैं और दूसरा आर्थिक। पहले मैं धार्मिक पहलू के बारे में कुछ कहूंगा। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो यह सोचते हैं कि किसी बात को कानून का रूप केवल इसीलिये न दिया जाये क्योंकि इसका धर्म से निकट सम्बन्ध है। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि आर्थिक अथवा अन्य पहलुओं के कारण ही गौरक्षा का आदर्श हिन्दू-धर्म का अंग बन गया है। मेरा विश्वास है कि हिन्दू धर्म अधिकतर उन सिद्धान्तों पर आश्रित है जो अनेकों शताब्दियों के अनुभव द्वारा इस देश के लोगों के लिये उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसलिये यदि हमारी तीस करोड़ जनसंख्या यह विचार करती है कि इस बात को देश के कानून में ले आना चाहिये तो मैं नहीं समझता कि इस परिषद् के रूप में 35 करोड़ का प्रतिनिधान करने वाले हम लोग इसे केवल इस आधार पर छोड़ दें कि इसका पहलू धार्मिक है। मैं सेठ गोविन्ददास से इस बात में सहमत हूं कि हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि चूंकि किसी बात में धार्मिक प्रमुखता है इसलिये वह बुरी है। मैं कहता हूं कि धर्म स्वयं उस बात को शुद्धकर लेता है जिससे आर्थिक कल्याण होता है। मैं यह बताना चाहता हूं कि मवेशी-रक्षा हमारे लिये कितना महत्त्वपूर्ण है। महात्मा गांधी ने वास्तव में अपने अनेकों लेखों में अपने विश्वासों के बारे में लिखा है कि गौरक्षा हमारे देश के लिये बहुत ही आवश्यक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से में यह बताना चाहता हूं कि डाक्टर राइट जो कि इस विषय में विशेषज्ञ है हमारी राष्ट्रीय आय पर अपनी रिपोर्ट में कहते हैं कि 22 करोड़ वार्षिक राष्ट्रीय आय में लगभग 11 करोड़ की प्राप्ति भारत के पशु-धन से होती है जो कि गांवों में रहने वाले हमारे बहुत से लोगों का धन है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

कभी-कभी यह मान लिया जाता है कि हमारे पास बहुत मवेशी हैं और उनमें से बहुत से बेकार हैं और इस कारण उनका वध कर देना चाहिये। यह एक भूल है। यदि आप अंकों की तुलना करें तो आपको विदित होगा कि भारत में जनसंख्या का केवल 50 प्रतिशत मवेशी हैं जब कि डेनमार्क में 74, संयुक्त राज्य-अमरीका में 71, कनाडा में 80, केपकोलोनी में 120 और न्यूजीलैंड में 150 प्रतिशत हैं। अत: न्यूजीलैंड में हमारी अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति के पास तिगुने मवेशी हैं। इस कारण यह कहना कि हमारे यहां बहुत मवेशी हैं सही नहीं हैं। बेकार मवेशी के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का कथन है कि उनका गोबर खाद के रूप में मूल्यवान है और उसका मूल्य ऐसे मवेशियों के रखने में जो खर्च होता है उससे अधिक है।

और यह बात भी है कि हमारी कृषि अधिकतर मवेशियों पर निर्भर है क्योंकि वह अधिकतर छोटे-छोटे खेतों में बंटी हुई है जिनमें कृषक ट्रेक्टर तथा अन्य यंत्रों का उपयोग नहीं कर सकते हैं। वे बैलों पर निर्भर है और यदि आप बैलों की गणना करें तो आपको विदित होगा कि यद्यपि हमारे पास 33 करोड़ 5 लाख एकड़ भूमि कृषि के लिये है पर हमारे पास बैल केवल 6 करोड़ ही हैं जो 100 एकड़ भूमि के लिये 16 होते हैं और यह संख्या बहुत ही अपर्याप्त हैं। यह अनुमान किया गया है कि अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये हमें लगभग 11 करोड़ बैलों की और आवश्यकता है।

दूध तथा अन्य पदार्थों की अपनी आवश्यकता के विषय को लेते हुये यदि हम अपने यहां दूध के सेवन की तुलना अन्य देशों से करें तो हमें विदित होगा कि वह केवल 5 औंस प्रति व्यक्ति है और अन्य देशों के अंकों की तुलना में यह बहुत कम है। इसलिये मैं सोचता हूं कि हमें इस संशोधन को अपने विधान में ले लेना चाहिये।

दूसरी बड़ी बुराइयां हमारे देश में बच्चों की मृत्यु और तपेदिक है और इनका कारण है दूध की खुराक की कमी। इन बुराइयों का निराकरण तभी हो सकता है जब कि हम अपने मवेशियों का परिरक्षण करें और उनकी नस्ल सुधारें। इस संशोधन का यही आशय है। इस कारण मेरा विचार है कि इस संशोधन को स्वीकार किया जाये।

इसके पश्चात् वनस्पति घी का प्रयोग है जो कि आर्थिक अभाव के कारण आवश्यक हो गया है, क्योंकि शुद्ध घी कहीं भी प्राप्त नहीं है। यदि हम इस संशोधन

को प्रभाव में ला सके तो हम मवेशी की नस्ल सुधार सकेंगे और फिर हम वनस्पति के प्रयोग को भी बन्द कर सकेंगे जो कि राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिये बड़ा हानिकारक है।

अपनी जलवायु की आवश्यकता के दृष्टिकोण से भी यह संशोधन बहुत आवश्यक है। मेरे विचार से संशोधन का शब्दविन्यास भी ठीक है। उसमें यह कहा गया है कि ''हम कृषि तथा पशु-पोषण की आधुनिक तथा वैज्ञानिक रीति में व्यवस्था करने का प्रयास करेंगे और मवेशी की उपयोगी नस्ल में सुधार करने, रक्षा करने तथा उसके परिरक्षण करने की विशेष कार्यवाही करेंगे और गाय तथा अन्य उपयोगी मवेशी विशेषकर दूध देने वाली तथा गर्भधारण करने योग्य वयस वाली, उनके बच्चों और दूध न देने वाली मवेशी के वध का निषेध करेंगे।'' मेरे विचार से सेठ गोविन्ददास का संशोधन इसमें आ गया है। मुझे विश्वास है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित लोक-प्रतिनिधि राज्य के कानूनों में ऐसे कानून को अवश्य रखेंगे जो इस संशोधन को प्रभावी कर देगा और तब हमारे देश में गौवध नहीं होगा। मैं इसलिये इस संशोधन का पूरे दिल से समर्थन करता हूं।

***डा. रघुवीर** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं यह अपना बहुत ही अनिवार्य कर्त्तव्य समझता हूं कि सभा में वे विचार प्रकट करूं जो पूरी तरह से किन्हीं शब्दों से भी व्यक्त नहीं किये जा सकते। मैं समझता हूं कि इस भूमि पर एक गौ का भी वध न होना चाहिये। ''गौरघ्न्या भवति। न हिंसितव्या। न हिंसितव्या। यः कश्चिद् गां हिनस्ति महापातकी भवति।'' ये भावनायें जो कि हजारों वर्ष पूर्व प्रकट की गई थीं, आज भी इस भूमि के करोड़ों व्यक्तियों के हृदय में गूंजती है। मेरे मित्रों ने मुझे बताया कि यह आर्थिक प्रश्न है और मुसलमान बादशाहों ने भी गौरक्षा को मान्यता दी थी तथा गौवध का निषेध किया था, यह सब ठीक है। परन्तु जब हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली—हर रूप में, हर प्रकार से अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता—हमारी प्रस्तावना में यह कहा गया है कि ''अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी''—तो क्या यह केवल विचारों की अभिव्यक्ति है अथवा यह हमारे सम्पूर्ण कलेवर की अभिव्यक्ति है? इस देश ने एक सभ्यता का विकास किया और उस सभ्यता में हमने उन बातों को प्रमुख स्थान दिया जिनको हम

[डा. रघुवीर]

अहिंसा अथवा हत्या न करना अथवा कष्ट न देना कहते हैं और वह भी केवल मानव मात्र के लिये ही नहीं वरन् पशु-लोक के लिये भी। समस्त संसार को एक समझा जाता था और उस एकता के जीवन का प्रतीक गौ है—क्या हम इसका निर्वाह नहीं करेंगे? ब्रह्म हत्या ओर गौ हत्या—विद्वान्, वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा ऋषि की हत्या और गौ की हत्या समान हैं। यदि हम इस देश में किसी वैज्ञानिक अथवा किसी ऋषि की हत्या नहीं होने देते हैं तो इस सभा द्वारा यह भी व्यवस्था होनी चाहिये कि किसी गाय का भी वध न हो। मुझे याद है कि मेरे बचपन में जब तक गाय न पी लेती थी तब तक हमको न पीने दिया जाता था और जब तक गाय खा न लेती थी तब तक हमको न खाने दिया जाता था। परिवार के बच्चों से पहले गाय थी क्योंकि वह व्यक्ति की मां है, वह राष्ट्र की मां है। सभा में उपस्थित देवियों और सज्जनों, मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप गम्भीरतापूर्वक अपने अतीत को देखें और अपने हृदय को टटोले। हम अपने करोड़ों देशवासियों के प्रतिनिधि हैं।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य को अध्यक्ष को सम्बोधन करना चाहिये। यह सार्वजनिक मंच नहीं है।

***डा. रघुवीरः** श्रीमान्, आपके जरिये मैं इस सभा के तथा इस देशवासियों की इस भावना का प्रतिपादन करना चाहता हूं कि हमारे देश तथा हमारी संस्कृति के हितार्थ गौ की रक्षा की जाये। इन शब्दों के साथ मैं आप से विदा चाहता हूं।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** श्रीमान्, मैं बचपन से ही सदैव यह विश्वास करता रहा हूं कि भारत का एक धार्मिक उद्देश्य है और चूंकि भारत का एक धार्मिक उद्देश्य था इसी कारण मैंने देश की स्वाधीनता चाही। अनेकों करोड़ों मनुष्य जो इस देश पर बलिदान हो गये उन्होंने मेरे समान ही यह विश्वास किया कि भारत का एक धार्मिक उद्देश्य है। वह उद्देश्य क्या है? वह धार्मिक उद्देश्य यह था कि हम संसार के कोने-कोने में जाएं और शांति, प्रेम, स्वतंत्रता और अभय का संदेश संसार के प्रत्येक व्यक्ति को दें। जब स्वाधीनता मिल गई तो मैं यह सोच कर खुश हुआ कि मैं अब अपने उस उद्देश्य का पालन करूंगा और संसार में यह

संदेश ले जाऊंगा कि भारत को संसार के किसी देश से ईर्ष्या नहीं है, उसका राज्य प्रसार का विचार नहीं है, वरन् वह समस्त संसार की परस्पर युद्ध, खुंरेजी तथा अन्य अनेकों बुराइयों से जिससे मानव जाति पीड़ित है रक्षा करना चाहता है। इसी रूप में और इसी प्रयोजन के लिये मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह इस विषय पर निरावेश होकर वाद-विवाद करे। हमारा संघर्ष रोटी के टुकड़े तथा मछली के लिये नहीं है। रोटी का टुकड़ा और मछली का विचार तो लोगों ने 30 वर्ष पूर्व छोड़ दिया था और कुछ लोगों ने तो 50 वर्ष पूर्व ही छोड़ दिया था। हमने इस स्वतंत्रता को रोटी और मछली के लिये नहीं चाहा था। जो इन वस्तुओं को चाहते हैं उनका भी स्वागत है परन्तु हम जैसे व्यक्ति जिनके पास समस्त संसार के लिये कुछ धार्मिक उद्देश्य तथा संदेश था वे रोटी और मछली को प्रेम नहीं कर सकते हैं। हम राजदूत पद, प्रधानमंत्री पद, मंत्री पद तथा धन नहीं चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि आज भारत यह घोषणा कर दें कि समस्त मानवलोक तथा समस्त पाशुलोक आज से स्वतंत्र हैं और उसकी रक्षा की जायेगी। गाय पशुलोक का प्रतिनिधि है, पीपल वृक्ष वनस्पति-लोक का प्रतिनिधि है, शालिग्राम खनिज-लोक का प्रतिनिधि है। हम इन चारों लोकों की रक्षा करना चाहते हैं और इनको शांति और सुख देना चाहते हैं और इसीलिये भारत के हिन्दुओं ने इन चार वस्तुओं को इस लोक के प्रतिनिधि के रूप में रखा है–मनुष्य, गाय, पीपल और शालिग्राम। इन सबकी पूजा की जाती थी क्योंकि हम समस्त मानव जाति की रक्षा करना चाहते थे हमारे उपनिषदों में कहा गया है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचिज्जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

हम यह सम्पत्ति नहीं चाहते हैं, हम यह भोजन नहीं चाहते हैं, हम यह पोशाक नहीं चाहते हैं—इसलिये नहीं कि हम प्राप्त नहीं कर सकते हों, इसलिये नहीं कि हम कायर हैं; इसलिये नहीं कि हम साम्राज्यशाही का डंका संसार के कोने-कोने में नहीं पीट सकते हैं; वरन् इसलिये कि हम समस्त संसार का अपनी आत्मा के साथ सामंजस्य देखते हैं अतः हमारी मानवता ने, जो हजारों वर्षों से इसी भारतवर्ष में वर्तमान रही है, उन्नति की ओर गाय को मानव समाज के अन्तर्गत ले लिया। कुछ लोगों ने यहां मुझ से बातें की और कहा कि ''आप कहते हैं कि आप

[श्री आर.वी. धुलेकर]

गाय की रक्षा करना चाहते हैं और उसे मौलिक सिद्धान्तों में रखना चाहते हैं। क्या गौ-रक्षा मनुष्य का मौलिक अधिकार है? अथवा क्या यह गाय का मौलिक अधिकार है? मैंने उनको उत्तर दिया और यही मैं कहता हूं कि मान लीजिये आपकी मां की रक्षा करना या बचाने का प्रश्न है तो वह किसका मौलिक अधिकार है? क्या यह मां का मौलिक अधिकार है? नहीं, मेरी मां की रक्षा करना, मेरी स्त्री, मेरे बच्चे और मेरे देश की रक्षा करना मेरा अधिकार है। मौलिक अधिकारों मे आपने कहा है कि आप न्याय, समानता तथा अन्य ऐसी बातें देंगे। क्यों? क्योंकि आप कहते हैं कि ''न्याय प्राप्त करना आपका मौलिक अधिकार है।'' इस न्याय का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि हमारी रक्षा की जायेगी, हमारे परिवार की रक्षा की जायेगी। हमारी हिन्दू समाज ने अथवा हमारी भारतीय समाज ने गाय को अपने अन्तर्गत रखा है। वह हमारी माता के समान है। सच पूछो तो वह हमारी माता से भी अधिक है। मैं यह घोषणा कर सकता हं कि ऐसे हजारों व्यक्ति हैं जो अपनी माता, स्त्री तथा बच्चों के लिए किसी व्यक्ति को मारने नहीं दौड़ेगे पर वे उस आदमी की और झपटेगे जो गाय की या तो रक्षा करना नहीं चाहता या हत्या करना चाहता है।

इन शब्दों के साथ मैं यह कहूंगा कि कि इन दो संशोधनों पर, जिनको कि श्री भार्गव और सेठ गोविन्ददास ने प्रस्तुत किया है, शान्त चित्त से विचार करना चाहिये। मैं आपसे निवेदन करूंगा कि केवल उसी संशोधन को स्वीकार करना चाहिये जो बहुत स्पष्ट हो। यदि श्री भार्गव का संशोधन शंकास्पद है तो सेठ गोविन्ददास के संशोधन को अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मेरी जैसी प्रथा है उसका अनुसरण करते हुय मैं उन लोगों को अवसर दूंगा जो बहुमत के विचारों से भिन्न विचार रखते हैं, इस कारण मैं श्री लारी को भाषण देने के लिये आमंत्रित करता हूं।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन लोगों की भावनाओं की सराहना करता हूं जो गौ रक्षा चाहते हैं—चाहे वह धार्मिक आधार पर हो अथवा चाहे वह इस देश में कृषि के हित में हो। मैं यहां किसी संशोधन का विरोध करने या उसका समर्थन करने के लिये नहीं आया हूं वरन् सभा से

यह प्रार्थना करने के लिए आया हूं कि वह स्थिति को बिल्कुल स्पष्ट कर दे और इस विषय को संदिग्ध दशा अथवा संदेहावस्था में न छोड़े। साथ ही साथ सभा को यह समझ लेना चाहिये कि भारत के मुसलमान इस विचार को मानते चले आ रहे हैं और अब भी मानते हैं कि उन सिद्धान्तों का उल्लंघन किये बिना जिनके द्वारा राज्य पर शासन होता है वे बकरीद के अवसर पर गौ अथवा अन्य पशुओं का वध कर सकते हैं। यह बहुमत के निश्चय करने की बात है कि वह जैसा चाहे निश्चय करे। बहुमत सम्प्रदाय जिस प्रवृत्ति को अंगीकार करता है हम उसमें बाधा डालने के लिये यहां उपस्थित नहीं हुये हैं। परन्तु मुसलमानों में यह भावना न अटकी रहे कि वे कोई ऐसा काम कर सकते हैं जिसके किये जाने की वास्तव में उनसे आशा नहीं है। जैसा कि मैं अपने प्रान्त के सम्बन्ध में जानता हूं फल यह हुआ कि गत बकरीद के अवसर पर अनेकों स्थानों, जिलों और नगरों में धारा 144 के अन्तर्गत बहुत सी आज्ञायें निकाली गई। परिणाम यह हुआ कि बहुत से गिरफ्तार किये गये, उनसे भी अधिकों को कष्ट दिया गया और कुछ को सजा हुई। अतः यदि सभा की यह सम्मति है कि गौ वध बन्द किया जाये तो उसको स्पष्ट, दृढ़ तथा असंदिग्ध शब्दों में किया जाये। मैं यह नहीं चाहता कि यह दिखावा किया जाये कि लोग कुछ काम करने के लिये स्वतंत्र हैं और मन में यह बात रखी जाये कि वे वैसा काम न करें। सभा से मेरा निजी आग्रह यह है कि आगे बढ़ कर मौलिक अधिकारों में एक खंड रखना अधिक उपयुक्त होगा कि भविष्य मे गौवध बन्द किया गया अपेक्षाकृत इसके कि निदेशक सिद्धान्तों में इसे अस्पष्ट रूप में छोड़ दिया जाये, प्रान्तीय सरकारों पर यह छोड़ दिया जाये कि वह जैसा चाहे करे और निश्चित कानून को स्वीकार किये बिना दण्ड कार्य प्रणाली के अन्तर्गत सद्यस्कृत्यस्थिति अधिकारों की शरण लें। देश के कल्याण और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में परस्पर शुभ सम्बन्ध के हित में मैं निवेदन करता हूं कि यही ठीक अवसर है जब कि बहुमत स्पष्ट तथा निश्चित रूप से हमें अपने विचारों को व्यक्त करें।

मैं तो कह सकता हूं कि यह ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में यदि बहुमत किसी निश्चित मार्ग का अनुसरण करना चाहता है तो हमारी प्रवृतियां चाहे जैसी भी हों हम बहुमत के मार्ग में रोड़ा नहीं अटकायेंगे। हम यह अनुभव करते हैं, हम यह जानते हैं कि हमारा धर्म निश्चित रूप से यह नहीं कहता कि हम गौवध करें ही पर वह उसकी भी आज्ञा देता है। प्रश्न तो यह है कि आपकी

[श्री जैड.एच. लारी]

भावनाओं का विचार करते हुये, उस श्रद्धा का विचार करते हुए जो बहुमत के दिलों में कुछ पशु वर्गों के लिये है, क्या वे अल्पसंख्यकों को अधिकार के रूप में नहीं वरन् सुविधा अथवा आज्ञा जो उसे इस समय प्राप्त है देंगे या नहीं? मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकता हूं। मैं उसे अपने धर्म के विरोध में नहीं समझूंगा। परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि मेरी स्वतंत्रता छीन ली जाये और विशेष कर किसी त्यौहार को शान्तिपूर्वक मनाने में धारा 144 के अन्तर्गत आज्ञाओं का प्रवर्त्तन कर बाधा डाली जाये। मैं केवल इसी बात का पक्ष समर्थन करने आया हूं। अत: बहुमत सम्प्रदाय के नेतागण अभी यहां इस बात को स्पष्ट कर दें और पीछे बैठने वालों पर न छोड़े कि वे यहां आयें और पक्ष-विपक्ष में धर्मोपदेश करें। जो देश के भाग्य विधाता हैं उनको भाग्य का निर्माण अथवा नाश करने दीजिये और उनको स्पष्ट करने दीजिये कि ''यह हमारे विचार हैं'' और हम उसे मान लेंगे। मैं केवल यही कहने आया हूं। मैं आशा करता हूं कि जब मैं यह कह रहा हूं आप मुझे गलत न समझेंगे। यह क्रोध, घृणा अथवा आवेश के कारण नहीं है परन्तु यह सम्प्रदायों में परस्पर शुभ सम्बन्ध के प्रति सम्मान के कारण है और इससे भी अधिक यह स्पष्ट विचार रखने की आवश्यकता के कारण है कि मैं यह कहता हूं। भविष्य में मुस्लिम अल्पसंख्यकों को यह जान लेना चाहिये कि उनकी क्या स्थिति है जिससे कि वे उसके अनुकूल कार्य करें और इस विषय पर बहुसंख्यक और मुसलमानों में किसी प्रकार का मिथ्या भ्रम न हो।

मैंने जो कुछ कहा है उसको विचार में रखते हुये मैं किसी भी संशोधन का न तो विरोध करूंगा और न समर्थन, पर मैं उन खंडों की जो प्रस्तुत किये गये हैं अस्पष्ट पदावली के स्थान में एक सुस्पष्ट तथा सुनिश्चित नियम को आमन्त्रित करूंगा। इस खंड में पहले यह कहा गया है कि हम आधुनिक तथा वैज्ञानिक कृषि की व्यवस्था करेंगे। आधुनिक तथा वैज्ञानिक कृषि का आशय यंत्र प्रयोग अथवा अनेकों अन्य बातों से है। आधुनिक तथा वैज्ञानिक कृषि सम्बन्धी खंड का पूर्ववर्त्ती भाग और 'गौवध निषेध का परवर्त्ती भाग परस्पर बेमेल हैं। मैं दूसरे सदस्य की भावनाओं की सराहना करता हूं जिन्होंनें कहा कि ''यह हमारी भावना है और इस भावना के कारण हम इस अनुच्छेद को चाहते हैं। इस अनुच्छेद को वहां रखिये परन्तु ईश्वर के लिये अनुच्छेद पर वाद-विवाद स्थगित करिये और उसे स्पष्ट,

निश्चित तथा असंदिग्ध रूप में लाइये जिससे हम यह जान सकें कि हमारी क्या स्थिति है जिससे कि उसके पश्चात् इस बात के बारे में जिसका धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु देश में प्रचलित प्रथा पर जिसका प्रभाव पड़ता है, दोनों सम्प्रदायों को किसी प्रकार के मिथ्या भ्रम के लिये अवसर न मिले।

सैयद मोहम्मद सादुल्ला (आसाम : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, सभा के समक्ष वाद-विवाद के विषय के दो रूप है एक धार्मिक और दूसरा आर्थिक। कुछ लोग जो हमारे विधान में एक ऐसी धारा चाहते हैं कि गौवध सदैव के लिये बन्द कर दिया जाये। वे इस विषय को धार्मिक रूप देते हैं। उनके विचारों से मुझे पूर्ण सहानुभूति है क्योंकि मैं तुलनात्मक धर्म का विद्यार्थी हूं। मैं जानता हूं कि हिन्दू राष्ट्र का एक बड़ा बहुमत गाय को देवी के रूप में पूजता है अत: वे उसका वध देखने के विचार तक की कल्पना नहीं कर सकता। जैसा कि सबको विदित है मैं मुसलमान हूं। मेरी धार्मिक पुस्तक पवित्र कुरान में मुसलमानों को एक आदेश है जिसमें कहा गया है–

''ला इकराह फिद्दीन''

अथवा धर्म के नाम पर जबरदस्ती नहीं होनी चाहिये। अत: मैं अपने निषेधाधिकार का उस समय प्रयोग करना नहीं चाहता हूं जब कि मेरा हिन्दू भाई धार्मिक दृष्टिकोण से इस विषय को अपने विधान में लाना चाहता है। मैं अपने विधान निर्माताओं का भी मार्ग नहीं रोकना चाहता हूं—मेरा आशय विधान-परिषद् से है यदि वे खुले मैदान में आकर सीधे-सीधे कहें ''यह हमारे धर्म का अंग है। गौ की वध से रक्षा करनी चाहिये इसलिये हम उसका प्रावधान मौलिक अधिकारों में या निदेशक सिद्धान्तों में चाहते हैं।''

लेकिन जो लोग इसे आर्थिक रूप देते हैं, जैसा कि मुझ से पूर्व एक माननीय सदस्य ने कहा था, वे अनेकों हृदयों में यह शंका उत्पन्न करते हैं कि गौ वध के विरोध में हिन्दुओं की कट्टर भावना की पृष्ठ द्वार द्वारा पूर्ति की जा रही है। यदि आप इसको आर्थिक रूप देंगे तो आपके समक्ष कुछ सत्य बातें रखूंगा जिनसे यह प्रकट होगा कि आर्थिक दृष्टि से गौ वध इतना बुरा नहीं है जितना उसे बनाने का प्रयत्न किया गया है। मुझे आसाम प्रान्त का बड़ा और बहुक्षेत्रीय अनुभव है और इसलिये मैं आसाम की संख्याओं को ही उद्धृत करूंगा। 1931वें

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

साल में उस समय वर्तमान केन्द्रीय सरकार की आज्ञानुसार प्रान्त की मवेशी गणना की गई है। हमें विदित हुआ कि 1931 में आसाम में 70 लाख मवेशी थे जब कि जनसंख्या 90 लाख थी। दूसरे भाग से आये हुये मेरे मित्रों को सन्देह होगा जब मैं उनके सामने यह सत्य उपस्थित करूंगा कि आसाम की गाय औसतन प्रति दिन आधा सेर दूध देती है और वह कद में इतनी नाटी होती है कि दूध देने के अतिरिक्त अन्य कृषि कार्य की उसमें क्षमता ही नहीं होती। कृषि योग्य मवेशियों के लिये आसाम बिहार प्रान्त पर निर्भर करता है। गत युद्ध में जब कि मवेशियों को उधर से इधर भेजने में महान् कठिनाइयां थीं, हम बिहार से मवेशी प्राप्त नहीं कर सके और उसका फल यह हुआ कि हमें हल जोतने के लिये अपने नाटे मवेशियों का ही प्रयोग करना पड़ा। इस मवेशी की रक्षा करने के लिये सरकार ने एक कानून पारित किया कि दूध देने वाले मवेशी अथवा उस मवेशी का जो कृषि कार्य में उपयोगी हो सकता हो वध न किया जाये। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि मैंने स्वयं देखा कि मवेशियों के झुंड के झुंड काटने के लिये फौजी डिपों में ले जाए जाते थे और वह भी मुसलमानों द्वारा नहीं वरन् उन हिन्दूओं द्वारा जिनके सिर पर लम्बी-लम्बी चोटियां थीं। अब मैंने अपने दौरे में यह देखा तो मैंने उन लोगों से पूछा कि अपने धर्म के विरुद्ध तथा सरकारी आज्ञा के विरुद्ध मवेशी कटवाने क्यों ले जाते हैं। उन्होंने कहा, ''श्रीमान्, ये सब अनुपयोगी मवेशी हैं। हमारी आर्थिक दशा के लिये ये भारस्वरूप हैं। हम उनके एवज़ में नकद रुपया लेना चाहते हैं।''

मेरे मित्र सेठ गोविन्ददास ने उन मवेशियों की दशा का वर्णन किया है, जो मर जाते हैं। मैंने उनसे निजी रूप में प्रश्न किये। खाल और चमड़े (हाइड्स एण्ड स्किन्स) की रिपोर्ट में संख्यायें खाल के आधार पर हैं। मैं जानता हूं कि हिन्दुओं में एक जाति है जिसको मेरे देश में ''रिशी'' कहा जाता है। उसका जीवन भर एक मात्र उद्यम यह है कि वह मृत मवेशियों की खाल उधेड़े। उनको वध की गई मवेशियों की खाल उधेड़ने में भी किंचित्मात्र आपत्ति नहीं है। सेठ गोविन्ददास द्वारा दिये गये अंकों में दोनों मरी हुई तथा वध की गई मवेशियों की गणना है। इसी प्रकार पंडित भार्गव द्वारा दिये गये अंकों में उन मवेशियों की संख्यायें नहीं हैं जिनका सामान्य काल में वध किया गया था। वह, जैसा कि माननीय सदस्यों

को विदित है, युद्ध काल था और चूंकि जापानियों ने भारत पर आसाम में से आक्रमण किया था, अकेले आसाम को 5 लाख सैनिक और इतने ही केम्प वालों को खपाना पड़ा था। इन दस लाख अमरीका के या अन्य स्थानों के गोरे और कालों को खिलाने के लिये भारत के समस्त भागों से आसान में मवेशी लाये जाते थे। केवल भारत के प्रत्येक भाग के सैनिक ही नहीं वरन् चीनी सैनिक भी आसाम में थे। अत: वह काल विषम था और सन् 1945 और 1946 के अंकों को आप अपने तर्कों का आधार नहीं बना सकते हैं।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ परन्तु उन वर्षों में भारतीय सरकार द्वारा मवेशी वध का निषेध किया गया था। उन्होनें मवेशी वध निषेध की आज्ञा निकाल दी थीं। परन्तु फिर भी वध की संख्यायें इतनी अधिक थीं।

*__सैयद मोहम्मद सादुल्ला:__ मैं इधर उधर की बातों में नहीं जाना चाहता हूं। विषय यह है कि मवेशियों की भरमार है। बंटवारे के पूर्व हम पश्चिमी पंजाब से मवेशी लाने का प्रयत्न कर रहे थे। वहां का मवेशी औसतन आधा मन दूध देता है। आसाम सरकार इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया और पंजाब से मवेशी मंगाकर अपने मवेशी का दूध बढ़ाने का प्रयत्न करती चली आ रही है। अपने सरकारी पशु पोषणालयों द्वारा अभी हमने इस समस्या को केवल छुआ ही है और केवल शिलांग में हम सफल हुए हैं वहां दूध बढ़ गया है पर मैदानों में अभी प्रति दिन एक पाव दूध ही प्राप्त होता है।

पंडित भार्गव का संशोधन यह है कि मनुष्यों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हमें वैज्ञानिक साधनों का अनुभव करना चाहिए। उससे पूर्वाभास मिलता है कि बेकार मवेशी का अन्त किया जाये और अच्छी नस्लों को लाया जाये।

अब मैं आपसे पूछता हूं कि उन सत्तर लाख मवेशियों का क्या किया जाये जो आसाम में हमारे पास हैं? इसलिए, श्रीमान्, यदि आप इसे आर्थिक रूप में देखें तो आपके सामने यह प्रश्न खड़ा हो जायेगा कि हमारे पास उन मवेशियों की जिन पर व्यर्थ का खर्च होता है इतनी बड़ी संख्या है कि इसके पूर्व कि आप अच्छी नस्ल रख सकें उनका अन्त करना होगा। दूसरा प्रश्न यह है...।

*__पंडित ठाकुरदास भार्गव:__ क्या माननीय सदस्य को यह विदित नहीं है कि गौशाला तथा अन्य संस्थाओं द्वारा बहुत से बेकार मवेशियों को अच्छा मवेशी बना

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

लिया गया है और ठीक खुराक और इलाज से कम से कम 90 प्रतिशत को ठीक किया जा सकता है?

*__सैयद मोहम्मद सादुल्लाः__ श्रीमान्, मैं अन्य भागों की गौशालाओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता हूं और मैं पंडित भार्गव को उत्तर नहीं देना चाहता हूं क्योंकि केवल दस मिनट शेष हैं। मैं सभा से यह कह रहा था कि अनेकों के हृदय में ऐसी गुप्त शंका विद्यमान है कि मुसलमान लोग इस गौ-वध के उत्तरदायी हैं यह बिल्कुल गलत है।

*__पंडित ठाकुरदास भार्गवः__ बिल्कुल गलत।

*__सैयद मोहम्मद सादुल्लाः__ मुझे हर्ष है कि इस प्रस्ताव के प्रस्तुतकर्त्ता महोदय यह कहते हैं कि यह बिल्कुल गलत है। ऐसे लाखों मुसलमान हैं जो गौ मांस भक्षण नहीं करते हैं मैं यह आत्मश्लाघा के रूप में नहीं कह रहा हूं कि मैं भी नहीं खाता हूं। बंटवारे के पूर्व मुसलमान सम्पूर्ण जनसंख्या का चौथाई भाग था। वे वध करने के लिए बहुत से मवेशी नहीं पालते थे। यह बहुमत के ही लोग हैं जो मुसलमानों को वध हेतु मवेशी बेच देते थे। अब मुसलमान भारतीय उपनिवेश की जनसंख्या का दशांश है। क्या आप यह समझते हैं कि वध करने के लिए मुसलमान यथेष्ट मवेशी रखेंगे? हमारे हिन्दू भाइयों की अपेक्षा मुसलमान अधिक गरीब हैं। मुसलमान भी उतने ही कृषक हैं जितने कि हिन्दू और उनके मवेशी उनकी परिसम्पत्ति हैं, खेत जोतने की और अन्न पैदा करने की उनकी शक्ति का वे स्वाभाविक साधन हैं जिनसे उनका वर्ष भर का निर्वाह होता है। इसलिए यह कहना गलत है कि अपने हिन्दू भाइयों को सताने अथवा अन्य किसी प्रयोजन के लिए मुसलमान गौ वध करते हैं। सौभाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश मुसलमान मांसाहारी हैं। भेड़ के गोश्त की कीमत इतनी अधिक है कि बहुत से गरीब लोग उसे नहीं खरीद सकते हैं। इसलिए विशेष अवसरों पर उनको गौमांस सेवन करना पड़ता है। मेरा अनुभव यह है कि केवल बांझ गायें ही कसाई को दी जाती हैं। आसाम के बारे में कहते हुए तो यह बात है कि पहाड़ी लोग इस सम्बन्ध में बहुत दोषी हैं। शिलांग नगर में जो लोग गौमांस का व्यापार करते हैं उनमें मुसलमान केवल एक है जबकि पहाड़ी लोग सत्तर हैं। श्रीमान्, इन परिस्थितियों में आर्थिक रूप के आधार पर मैं पंडित भार्गव द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकता हूं। मुझे खेद है कि जो कारण मैंने बताए हैं उनके आधार पर मैं सेठ गोविन्ददास के संशोधन का विरोध करने में विवश हूं।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं एक-एक संशोधन पर मत लूंगा। पंडित ठाकुरदास भार्गव का संशोधन। वह सूची 2 में संख्या 72 पर है।

***सेठ गोविन्ददासः** मेरे संशोधन का क्या हुआ जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन पर संशोधन के रूप में है? पहले उस पर मत लिया जाना चाहिए।

***उपाध्यक्षः** आपने अपना संशोधन, संशोधन संख्या 1002 पर पेश किया था और उसको पेश नहीं किया गया।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैंने संख्या 1002 के स्थान में संख्या 72 कर दिया था।

***सेठ गोविन्ददासः** मेरा संशोधन पंडित ठाकुरदास भार्गव के उस संशोधन पर है जो उन्होंने अभी पेश किया है।

***उपाध्यक्षः** बहुत अच्छा, मैं आपके संशोधन पर मत लेने के लिए राजी हूं। अब सेठ गोविन्ददास के संशोधन संख्या 73 सूची 2, पर मत लिया जाता है।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** अब सूची 2, पं. ठाकुरदास के संशोधन संख्या 72 पर मत लिया जाता है।

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** अनुच्छेद 38 (क) पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का है। सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है किः

"अनुच्छेद 38 (क) सद्योल्लिखित रूप में विधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 38 (क) संशोधित रूप में विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 39

***उपाध्यक्षः** क्या हम अब कार्यक्रम के आगे के पद को लें? सं. 1003 एक पूर्व संशोधन के अंतर्गत आ गया है। सं. 1004 पर विचार समाप्त हो ही

[उपाध्यक्ष]

चुका है। तदनन्तर सं. 1005 है। उसका प्रथम भाग पेश नहीं किया जा सकता है पर दूसरा भाग पेश किया जा सकता है (*नहीं पेश किया गया*)।

तो फिर सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 39 विधान का अंग बने।

(*सं. 1006, 1007 और 1008 पेश नहीं किये गए*)

सं. 1009—डा. अम्बेडकर और उनके साथियों द्वारा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 39 में 'from spoilation' (बिगाड़ने) शब्द के पश्चात् 'disfigurement' (कुरूप करने) शब्द जोड़ दिया जाये।"

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 39 में 'बिगाड़ने' शब्द के पश्चात् 'कुरूप करने' शब्द जोड़ दिया जाये और "रक्षण करने का" तथा "राज्य का कर्त्तव्य" शब्दों के मध्य में आये हुए समस्त शब्दों को निकाल दिया जाये।"

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** आप क्यों भाषण देना चाहते हैं जबकि मैं उसे स्वीकार कर रहा हूं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मुझे हर्ष है कि डा. अम्बेडकर उसे स्वीकार कर रहे हैं। चूंकि यह अनुच्छेद एक निदेशक सिद्धान्त है उसमें (पार्लियामेंट) संसद् के कानूनों का उल्लेख नहीं होना चाहिए इसलिए हम "तथा ऐसे सब आस्मारकों, स्थानों अथवा वस्तुओं के संसद् द्वारा बनाई हुई विध्यनुसार परिरक्षण तथा संधारण करना" शब्द निकाल देने चाहिएं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्षः** श्री राम सहाय के नाम से एक अन्य संशोधन है जिसके शब्द इसी के शब्दों के समान हैं। मैं इस पर मत लूंगा।

श्री रामसहाय (संयुक्त राज्य ग्वालियर, इंदौर): अध्यक्ष महोदय, मेरे दो अमेंडमेंट्स हैं जिनमें से एक उस अमेंडमेंट के अन्तर्गत आ जाता है जिसे अभी प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने मूव किया है, और चूंकि डा. अम्बेडकर ने उसे मंजूर कर लिया है इसलिए मुझे उसको पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं रही है। अब मेरा एक अमेंडमेंट यह है कि आर्टिकल 39 में शब्द ''इट शैल बी दी आबलीगेशन आफ दी स्टेट'' की जगह ''दी स्टेट शैल'' रख दिए जाये। इस तरमीम के पेश करने का मेरा मकसद यह है कि जिस तरह सेक्शन 39 के पहले वाले दो सेक्शन में यह शब्द 'दी स्टेट शैल' आए हैं वही इस सेक्शन में भी इस्तेमाल किए जायें और उसके खिलाफ शब्द 'इट शैल बी दी आबलीगेशन आफ दी स्टेट' न इस्तेमाल किये जायें। इसलिए इस सेक्शन को कनफारमिटी में लाने के लिए मैंने यह तरमीम पेश की है। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर साहब इसे मंजूर फरमा लेंगे और हाउस भी इसे मंजूर कर लेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 39 में 'बिगाड़ने' शब्द के पश्चात् 'कुरूप करने' शब्द जोड़ दिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रो. शिब्बनलाल का संशोधन है।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): क्या मैं जान सकती हूं कि डा. अम्बेडकर ने प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन को स्वीकार किया है या नहीं। यदि नहीं किया है तो मैं उसके दूसरे भाग का विरोध करना चाहती हूं।

***उपाध्यक्ष:** जहां तक मुझे ज्ञात है दूसरा भाग है ही नहीं। यह केवल कुछ शब्दों के निकालने से सम्बन्ध रखता है। पहला भाग तो एक समान ही है।

***बेगम ऐजाज रसूल:** मैं उस प्रस्ताव का विरोध करना चाहती हूं।

उपाध्यक्ष: अब तो इसके लिए विलम्ब हो गया। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 39 में 'बिगाड़ने' शब्द के पश्चात् 'कुरूप करने' शब्द जोड़ दिये जायें और 'रक्षण करने' का तथा 'राज्य के कर्त्तव्य' शब्दों के मध्य में आये हुए समस्त शब्दों को निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

उपाध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 39 में 'it shall be the obligation of the state to' शब्दो के स्थान में 'the state shall' शब्द रखे जायें।

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

श्री रामसहाय: मैं कहना चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर ने मेरा अमेंडमेंट मंजूर कर लिया है। मै। आपसे निवेदन करूंगा कि आप कृपा कर फिर मत लें।

उपाध्यक्ष: मैंने इस विषय को सभा के समक्ष रखा और सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया। चाहे कुछ भी कारण हो इस विषय को पुन: विचार के लिए रखना मेरे अधिकार की बात नहीं है।

अब मैं इस वाक्यखंड को उस रूप में सभा के समक्ष रखूंगा जिस रूप में कि वह अब हो गया है।

श्री रामसहाय: मैं कहना चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर ने मेरा अमेंडमेंट मंजूर कर लिया है। मैं डिवीजन चाहता हूं।

उपाध्यक्ष: अब तो इसके लिये बहुत विलम्ब हो गया। आप ठीक समय पर खड़े क्यों नहीं होते और मत विभाजन की मांग क्यों नहीं रख देते हैं? विषय अब समाप्त कर दिया गया है। प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधित रूप में अनुच्छेद 39 विधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 39, संशोधित रूप में, विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 39-क

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं किः

''अनुच्छेद 39 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जायेः

'39क—राज्य यह प्राप्त करने की कार्यवाही करेगा कि इस विधान के लागू होने से तीन वर्ष की अवधि के अन्तर्गत राज्य की लोक सेवाओं में न्यायाधीश वर्ग का अधिशासी वर्ग से पार्थिक्य हो जाये।' ''

मैं नही समझता कि जो संशोधन मैंने पेश किया है उसके समर्थन के लिये मुझे किसी लम्बे विवरण में जाने की आवश्यकता है। दीर्घकाल से इस देश की यह इच्छा रही है कि न्यायाधीश वर्ग का अधिशासी वर्ग से पार्थिक्य हो जाये और इस मांग को हम ठीक जब से कि कांग्रेस की स्थापना हुई है, तभी से रखते चले आये हैं। दुर्भाग्य से ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के उन संकल्पों पर कोई अमल नहीं किया, जिनके द्वारा वह देश के प्रशासन में इन सिद्धांतों के पुरःस्थापन की मांग रखती आई थी। हम समझते हैं कि अब समय आ गया है, जब कि इस सुधार को किया जाये। यह समझ लिया गया है कि इस सुधार को करने में कुछ कठिनाइयां अवश्य होंगी। परिणामस्वरूप इस संशोधन द्वारा दो विशेष विषयों पर विचार किया गया है, जो कि कठिनाई के विषय समझे जा सकते हैं। एक यह है किः हमने इसे जानबूझ कर मौलिक सिद्धांतों का विषय नहीं बनाया है क्योंकि यदि हम इसे मौलिक सिद्धांतों का विषय बना देते तो विधान के स्वीकृत होते ही हमारे लिये तुरन्त ही यह परमावश्यक हो जाता है कि न्यायाधीश वर्ग और अधिशासी वर्ग को पृथक् करें। इसलिये हमने जानबूझ कर इस विषय को निदेशक सिद्धांतों के अध्याय में रखा है और उसमें भी हमने यह व्यवस्था की है कि इस सुधार को तीन वर्ष में किया जायेगा, इसलिये कि इस बात के लिये कोई गुंजाइश न रहे कि ऐसे विषयों को टाल दिया जाये। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह डा. अम्बेडकर का बाद का विचार है अथवा मैं यह कहूंगा कि मसौदा-समिति का यह बाद का विचार है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि विधान के इस विशेष भाग का मसौदा बनाते समय उन्होंने इसके बारे मैं क्यों नहीं सोचा। कदाचित उन्होंने यह सोचा कि चूंकि इस भाग में, जिसे कि भावनाओं का वास्तविक घूरा कहा

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जा सकता है, अनेकों नये पद आ गये हैं, वे भी इस घूरे में अपने इस विशेष संशोधन के लिये एक कोना ढूंढ लें। मुझे वास्तव में इस संशोधन या अन्य किसी संशोधन के यहां रखे जाने में कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि यह घूरा इतना फैलने वाला है कि इसमें कोई भी व्यक्ति अपनी मन की बात रख सकता है। परन्तु मैं डा. अम्बेडकर की इस व्याख्या को नहीं समझ सका जब कि उन्होंने यह कहा कि वह इसको मौलिक अधिकारों में नहीं रखना चाहते हैं। वे केवल इसे आज्ञा देने वाला बनाना चाहते हैं, पर वे तीन वर्ष की अवधि पर आग्रह करते हैं, जिसके अन्तर्गत यह काम कर लिया जाये। सच बात तो यह है कि जब वे स्वयं यह समझते हैं कि यह आदेशमूलक नहीं है, तो तीन वर्ष की अवधि रखने का क्या उद्देश्य है? विधान निर्माताओं की इस इच्छा की अभिव्यक्ति कि न्यायाधीश-वर्ग का अधिशासी-वर्ग से पार्थक्य हो, ही यथेष्ट है। विभिन्न प्रान्तीय सरकारों द्वारा यथासम्भव शीघ्र ही इसको अमल में लाना चाहिये। इस विशेष विषय में तीन वर्ष की अवधि का कहां औचित्य है? मैं स्वयं पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र के संशोधन सं. 960 का पक्ष-समर्थन करता हूं।

विद्वान डाक्टर ने कहा कि स्थापना काल से ही कांग्रेस की यह आधारभूत मांग रही। मैं मानता हूं कि ऐसा था, मैं इसको अस्वीकार करना नहीं चाहता हूं। मुझे यह भी याद है कि एक प्रसिद्ध कांग्रेसी ने, जो कि इस देश के एक बड़े प्रान्त का प्रधानमंत्री था, एक बार कहा था कि न्यायाधीश वर्ग और अधिशासी वर्ग को पृथक् करने के विचार अब बदल गये हैं और चूंकि अब विदेशी सरकार नहीं है पृथक करने की आवश्यकता नहीं है। यह इतना प्रमुख सिद्धांत प्रतीत नहीं होता है, जितना कि इसे राजनीतिज्ञ उस समय समझते थे जब कि अंग्रेजों का यहां अधिकार था।

विद्वान् डाक्टर को यह मालूम ही होगा कि कुछ प्रान्तों ने न्याय और अधिशासन सम्बन्धी प्रकार्यों को पृथक् करने की कुछ कार्यवाही की है। मेरे विचार से तीन बड़े-बड़े प्रान्तों ने इस विषय को लिया है। वास्तव में उन्होंने कोई अधिक प्रगति नहीं की है, कदाचित इसके लिये कुछ कारण हैं या तो अन्य कार्यों में लगे रहने के कारण या अर्थ सम्बन्धी अथवा अन्य जो कोई भी कारण हो। मैं नहीं समझ पाता कि इस कार्य को तीन वर्ष में ही करने के लिये हम उनसे क्यों कहें, जबकि

वह छः या सात वर्ष में हो सकता है। इस संशोधन के बारे में जो कुछ मेरे वास्तविक अनुभव हैं, वे यह हैं कि डा. अम्बेडकर के यह कह कर कि यह तीन वर्ष में हो जाना चाहिये, प्रान्तीय सरकारों को विवश करने के प्रयास में कोई तुक या तर्क नहीं है यद्यपि वास्तव में वे इस प्रथा से प्रान्तीय सरकार को विवश नहीं कर सकते हैं, क्योंकि प्रान्तीय सरकार इस प्रावधान की उपेक्षा कर सकती है। हम केवल एक पवित्र कामना का प्रतिपादन कर रहे हैं और उसमें एक नियत काल का बन्धन रख रहे हैं, जिसके सम्बन्ध में हम जानते हैं कि वह अमल में नहीं लाया जा सकेगा।

इस सम्बन्ध में मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं। न्यायाधीश वर्ग के सम्बन्ध में अनेकों संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं, जिनको मसौदा-समिति बाद में पेश करेगी और जो कि बाद के विचार के रूप में हैं। एक प्रोफेसर के लिये तो यह ठीक है कि वह न्यायाधीश वर्ग और अधिशासी वर्ग के पूर्ण पार्थक्य के विचार का प्रतिपादन करे। पर वास्तविक प्रयोग में इसका बिल्कुल ही विपरीत प्रभाव पड़ेगा। यह भी हो सकता है कि न्यायाधीश वर्ग को बहुत अधिक अधिकार देने के प्रयत्न में—वह न्यायाधीश वर्ग जिसका किसी रीति से भी किसी विधान मंडल द्वारा नियंत्रण नहीं होता, सिवाय इसके कि उसे पूर्णतया हटा दिया जाये—हम कदाचित् अपने लिये कांटे बो रहे हैं, जिससे कि इस विधान निर्माताओं की आकांक्षाओं का अन्त हो जायेगा। मुझे वे कठिनाइयां याद हैं, जिनका अनुभव एक अन्य देश संयुक्त राज्य अमरीका को हुआ था, जिसका विधान अपरिवर्तनीय था, केवल वहां के अध्यक्ष फ्रेंकलिन रूजवेल्ट के न्यू डील के समय में ही नहीं वरन् अध्यक्ष थियोडोर रूज़वेल्ट के समय में भी जब कि सुधारवादी दल ने यह अनुभव किया कि न्यायाधीश वर्ग अनुचित रूप से प्रशासन के स्वतंत्र रूप से कार्य करने में हस्तक्षेप कर रहा है। मेरे विचार यह हैं कि यद्यपि इस विषय में डा. अम्बेडकर के विचारों के प्रति मुझे बहुत श्रद्धा है पर न्यायाधीश वर्ग को, ऐसे समय में जब कि हम जानते हैं कि उस वर्ग में भरती करने के लिए हमें प्रथम कोटि के मनुष्य नहीं मिलेंगे, अनुचित अधिकार देकर इस देश के विधान को संकुचित तथा संकीर्ण बनाना बुद्धिमत्ता नहीं है। मैंने न्यायिक अफसरों के उदाहरण देखे हैं—हाईकोर्ट के न्यायाधीश अधिशासक बने और फिर न्यायाधीश वर्ग में आये, क्योंकि मैं समझता हूं कि सरकार न्यायाधीश वर्ग के रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये वकीलों में से ठीक व्यक्ति

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

न पा सकी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक प्रान्त में जहां तक न्यायिक अफसरों का सम्बन्ध है, वे व्यक्ति जो इस उच्च पद तक पहुंच जाते हैं, उतने अच्छे नहीं हैं, जितने कि कदाचित् हम प्राप्त करना चाहते हैं। इन परिस्थितियों में यह विचार कि न्यायाधीश वर्ग को असीम अधिकार दे दिये जायें और उसको स्वयं एक नियमित शासन व्यवस्था बना दिया जाये। कदाचित् हमें उससे भी अपेक्षाकृत महान् संकट की ओर ले जायेगा, जिसका कि हम अभी अनुमान कर सकते हैं। मैं नहीं समझता कि इस दशा में मैं प्रस्तावक महोदय से यह निवेदन भी कर सकता हूं कि इस तीन वर्ष की अवधि को हटा दिया जाये, जो व्यर्थ तथा निरर्थक है और जिसको अमल में नहीं लाया जा सकेगा और फिर वह एक ऐसा विषय हो जायेगा, जो प्रान्तीय सरकारों को इस विधान का अपमान करने के लिये प्रेरित करेगा और इस प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति का कारण होगा कि यह भी एक भावना प्रधान अनुच्छेद है, जैसे कि इस भाग के अन्य अनुच्छेद हैं। मैं नहीं समझता कि डा. अम्बेडकर इस बात को मान भी सकेंगे; विशेषकर जबकि कांग्रेस दल ने इस मसौदे को इस विशेष रूप में स्वीकार कर लिया है; पर मैं सोचता हूं कि इस विशेष संशोधन के शब्दों में जो कठिनाइयां स्पष्ट हैं, उनको बताने में कोई हानि नहीं है जो कि अन्य प्रकार से कदाचित् निरपवादनीय है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सभा से निवेदन करता हूं कि डा. अम्बेडकर के इस संशोधन पर विचार-विमर्श को अन्य किसी तिथि के लिये स्थगित किया जाये। कांग्रेस अधिवेशन शीघ्र ही जयपुर में हो रहा है। जब कि पूर्ववर्त्ती ब्रिटिश सरकार द्वारा लोगों को सताया जाता था, हमने सोचा कि ब्रिटिश सरकार से हमें न्याय की आशा नहीं और तब हमने न्यायाधीश वर्ग का अधिशासी वर्ग से पार्थक्य चाहा था। वह स्थिति अब नहीं है। हमें यह परीक्षा करनी है कि आज पार्थक्य आवश्यक है या नहीं।

दुर्भाग्यवश मैं देखता हूं कि भारत में वकीलों की भरमार है। इस सभा में पचास प्रतिशत से अधिक वकील हैं। म्यूनिसिपैलिटियों में आवश्यकता से अधिक वकील हैं। मंत्रिमंडल में वकीलों की बहुत अधिक संख्या है—मैं यहां की अपनी सरकार के सम्बन्ध में कह रहा हूं। यद्यपि इस सभा की यह पवित्र कामना है कि तीन

वर्ष में न्यायाधीश वर्ग की अधिशासी वर्ग से पृथक् कर दिया जाये—पर क्योंकि इसे मौलिक अधिकारों में नहीं रखा गया है, अत: हमें इस बात पर विचार करना है कि यह उचित न होगा कि यह सभा जयपुर कांग्रेस में इस बात पर विचार कर लेने दे कि इतने अधिक खर्चे को जो इसमें होगा देश सहने के लिये तैयार है या नहीं।

भारतीय सरकार और प्रान्तों की वेतन सम्बन्धी समितियां बनी थीं। जिन्होंने अधिशासी और न्यायिक अफसरों के वेतनों को कम करने के सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा। इस सभा ने ग्राम-पंचायत को स्वीकार कर लिया है। डा. अम्बेडकर ने उदारतापूर्वक कांग्रेस के सिद्धांतों का उल्लेख किया। क्या वह आज व्यवहार्य है? मैं अपने मित्र श्री कृष्णमाचारी का समर्थन करता हूं कि तीन वर्ष में यह नहीं हो सकता। इसको अमल में लाने में दस या बीस वर्ष लगेंगे। अन्यथा यदि प्रान्तीय सरकारें उन वेतनों को दें जो कि न्यायिक अफसर पा रहे हैं, तो बहुतों का दिवाला निकल जायेगा। प्रसंगवश मैं एक बात की ओर संकेत करूंगा। मैं देखता हूं कि भारतीय सरकार ने भी अभी हाल ही में संधानीय न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या तीन से पांच कर दी है। हम उदारतापूर्वक उच्च न्यायिक नियुक्तियों की व्यवस्था करते चले जा रहे हैं और अब हम अधिशासी वर्ग से पृथक् न्यायाधीश वर्ग की व्यवस्था करना चाहते हैं और अधिक वकीलों, मुन्सिफों और जिला न्यायाधीशों की व्यवस्था करना चाहते हैं, जिससे कि अभियोग के दोनों पक्षों के प्रति तर्क करने के लिए और अधिक वकील हो जायें। गरीब आदमी की क्या स्थिति होगी? मैं सम्मानपूर्वक सभा से निवेदन करूंगा कि वह इस संशोधन को स्थगित करे और हम यह देखें कि जयपुर कांग्रेस एक वर्ष की स्वतंत्रता के पश्चात् इस विषय पर क्या विचार करती है। याद रखिये कि ब्रिटिश से स्वतंत्रता या तत्कथित स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् कांग्रेस का अधिवेशन नहीं हुआ है। यदि हमने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तो हम इस पर अपने स्वतंत्रता के युग में विचार करने का प्रयत्न करें।

***उपाध्यक्ष:** कल प्रात:काल के दस बजे तक सभा स्थगित की जाती है।

तत्पश्चात् वृहस्पतिवार तारीख 25 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिये सभा स्थगित हुई।

Con. 3. VII.13.48
350

अंक 7
संख्या 13

वृहस्पतिवार
25 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान का मसौदा—(*जारी*) 815
[अनुच्छेद 39-क, 40, 40-क, 7 तथा 8 पर विचार]

भारतीय विधान परिषद्

वृहस्पतिवार, 25 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान परिषद् की बैठक प्रात: 10 बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई; उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

विधान का मसौदा-(*जारी*)

†अनुच्छेद 39-क

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुखर्जी): एक संशोधन की सूचना डा. अम्बेडकर से मिली है। डा. अम्बेडकर, क्या कृपया आप इसे उपस्थित करेंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 39-क में 'secure' से 'separation' तक के शब्द हटा दिये जाये और उनकी जगह शब्द 'separate' रखा जाये।"

ऐसा करने पर अनुच्छेद 39-क का यह रूप होगा:—

"The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the Public Services of the State."

सभा देखेगी कि इस संशोधन का अभिप्राय यही है कि मूल अनुच्छेद 39-क में जो तीन वर्ष की अवधि रखी गयी है वह हटा दी जाये। जिन कारणों से बाध्य हो कर मैंने यह संशोधन रखा, वह ये हैं। सभा में एक वर्ग, ऐसा है जो यह समझता है कि इन निर्देशात्मक सिद्धांतों में हमें समय अथवा कार्यपद्धति से सम्बन्ध रखने वाली विस्तार की बातों का समावेश न करना चाहिए। इन निर्देशात्मक सिद्धांतों

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

†अनुच्छेद 39-क का मूल रूप यह है: "The State shall take steps to secure that within a period of three years from the commencement of this Constitution, there is separation of the judiciary from the executive in the Public Services of the State."

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

में केवल सिद्धांतों की ही बात होनी चाहिये। विस्तार की वह बातें जो इनको कार्यान्वित करने से सम्बन्ध रखती हैं, उनको यहां पर रखना चाहिए। एक कारण तो यह है जिससे मैं ऐसा समझता हूं कि मूल अनुच्छेद 39-क से तीन वर्ष की अवधि की बात हटा देनी चाहिए।

बाध्य होकर इस संशोधन को उपस्थित करने का दूसरा कारण यह है। ''तीन वर्ष'' को लेकर यहां कई सदस्यों में मतभेद हो गया है। कुछ सदस्य ऐसा कहते हैं कि अगर आप तीन वर्ष की अवधि निर्धारित करते हैं, तो तीसरे साल से पहले कोई भी सरकार इस दिशा में कदम नहीं उठायेंगी। इस अनुच्छेद में तीन वर्ष की अवधि का उल्लेख करके वस्तुतः आप प्रान्तीय विधान-मंडलों को यह आज़ादी दे रहे हैं कि तीन वर्षों तक वह इसके लिए कुछ भी न करें। दूसरा मत यह है कि तीन वर्ष की अवधि बहुत ही कम है। हो सकता है कि जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है, जहां शासन-व्यवस्था सुचारू रूप से स्थायी हो चुकी है और इस पार्थक्य के लिए वह परिवर्तित या संशोधित की जा सकती है, यह अवधि पर्याप्त हो। किन्तु निर्देशात्मक सिद्धांतों में हमने ''राज्य (State)'' शब्द प्रयुक्त किया है, जिससे कि न केवल प्रान्तीय सरकारें बल्कि रियासतों की हुकूमतें भी इसके अन्दर आ जाये। इस सम्बन्ध में यह तर्क रखा जाता है कि भारतीय रियासतों में हो सकता है कि शासन-व्यवस्था बहुत दिनों तक ऐसी अवस्था में न आ सके कि वहां हम यह पार्थक्य कर सकें। इसलिए यह तीन वर्ष की अवधि, जहां तक कि भारतीय रियासतों का सम्बन्ध है, बहुत कम है। निश्चय ही इन सभी तर्कों में कुछ बल है जिसकी उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। इसलिए यह सोचा गया है कि इस अनुच्छेद से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा, अगर इसमें एक निर्देशात्मक व्यवस्था हो जिससे प्रान्तीय और रियासती, राज्यों—दोनों को ही—यह आदेश मिलता हो कि यह विधान उन पर यह कर्त्तव्य आरोपित करता है कि वे राज्य की सरकारी सेवाओं में न्यायाधीश वर्ग को अधिशासी वर्ग से पृथक् कर दें। इसके पीछे अभिप्राय यह है कि जहां सम्भव हो वहां तो ऐसा अविलम्ब कर दिया जायेगा और जहां इस सिद्धांत पर तुरंत अमल करना शक्य न हो वहां भी ऐसा करना आदेशात्मक कर्त्तव्य माना जायेगा और इसके सम्बन्ध में टालमटोल करना इस विधान के अन्तर्वर्त्ती सिद्धांतों के प्रतिकूल समझा जायेगा। इसलिए मेरा कथन यह है कि जो संशोधन

मैंने रखा है उससे सभा के सभी दृष्टिकोणों का समाधान हो जाता है। आशा है सभा इस संशोधन पर अपनी सहमति देगी।

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर पहले ही एक संशोधन उपस्थित कर चुके हैं, अर्थात् उन्होंने नया अनुच्छेद 39-क को बढ़ाया है। क्या कोई सदस्य अपने ही संशोधन पर संशोधन उपस्थित कर सकता है?

***उपाध्यक्षः** हां। मैं आप सबसे अनुरोध करूंगा कि आप मूल बात को देखें और नियम की बारीकियों में न जायें।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे प्रसन्नता है कि डा. अम्बेडकर ने यह संशोधन पेश किया और अब इतनी देर के बाद ही सही उनको सुबुद्धि आई। अनुच्छेद 36 में, एक बड़े आवश्यक मसले के सम्बन्ध में अर्थात् प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में इसी प्रकार की एक अवधि रखी गई है। उसका मैंने यह कह कर विरोध किया था कि निर्देशात्मक सिद्धांतों में ऐसी कोई अवधि-सीमा नहीं निर्धारित करनी चाहिए। किन्तु मेरा विरोध केवल अरण्य-रुदन ही रह गया और वह अनुच्छेद पास हो गया। किन्तु मुझे खुशी है कि अब इतनी देर के बाद सद्बुद्धि तो आई और इस अनुच्छेद से अवधि-सीमा हटाने का प्रयास तो किया गया।

कल मेरे मित्र श्री दास ने कहा कि न्यायाधीश वर्ग को अधिशासी वर्ग से पृथक् करने का जो प्रश्न है वह अब आजादी मिल जाने से बिल्कुल बदल गया है। ऐसा तर्क सुनकर मुझे वस्तुतः आश्चर्य हुआ। अगर एक सिद्धांत अंग्रेजी राज्य-काल में बुनियादी तौर पर गलत था तो मैं नहीं समझ पाता कि वही सिद्धांत अब स्वतंत्र भारत में क्यों कर सही हो जायेगा। बुनियादी बात यह है कि न्याय सम्बन्धी तथा शासन सम्बंधी प्रकार्यों को एक जगह सम्बद्ध कर दिया गया है। जिला मैजिस्ट्रेट अपराध आरोपित करता है और वही न्याय भी करता है। मैं पूछता हूं कि इन हालतों में जब कि एक ही व्यक्ति अपराध आरोपित करता है और वही न्यायासन पर भी बैठता है—तो क्या निष्पक्ष न्याय की आशा आप उससे कर सकते हैं?

[श्री आर.के. सिधवा]

जैसा कि कल डा. अम्बेडकर ने कहा जब से यह व्यवस्था चालू हुई है, तभी से कांग्रेस यह कहती आई है कि अगर अपराधी के साथ वस्तुत: निष्पक्ष न्याय करना है तो हमें इन दोनों प्रकार्यों को एक ही जगह न रखना होगा, इनका पार्थक्य करना ही होगा।

कल इस सम्बन्ध में जो तर्क पेश किये गये वह यह थे कि स्वतंत्र भारत में अवस्था बदल गई है। सुतरां अब यह आवश्यक नहीं रह गया है। कि इन दोनों प्रकार्यों को अलग-अलग कर दिया जाये। जहां तक मैं जानता हूं, इसकी तह में जो बात है वह यह है जो लोग इस पार्थक्य का विरोध करते हैं वह चाहते हैं कि उसके अधिकार बने रहें। अगर प्रान्तीय सरकारों के माननीय मंत्रिगण ऐसा समझते हैं कि इन दोनों प्रकार्यों को पृथक नहीं करना चाहिए, तो इसके पीछे कारण यह है कि वह यह समझते हैं कि नियुक्ति विषयक अधिकार जो उनके अभिभावकत्व में हैं, वह उच्च न्यायालय (High Court) के न्यायाधीशों के हाथ में चले जायेंगे। अगर यह सही है तो मुझे इसका दु:ख है। जो भी हो, मुझे खुशी है कि कई प्रान्तों ने इस दिशा में काम आरम्भ कर दिया है। किन्तु अगर कोई प्रान्तीय सरकार ऐसा समझती है कि अब इस परिवर्तित अवस्था में यह परिवर्तन न होना चाहिए, तो मुझे उन पर तरस आता है क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस मूल सिद्धांत में तो कोई अन्तर आया नहीं है, बल्कि इसके प्रतिकूल स्वाधीनता आ जाने के बाद या तब भी जब कि हमें आंशिक स्वाधीनता प्राप्त थी, मैं यही पसन्द करता कि कांग्रेसी हुकूमतें इस मामले में अग्रसर होती। मुझे यह देखकर खुशी है कि कई प्रान्त इस दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। अंग्रेजी राज्य-काल में भी उच्च न्यायालय के न्यायासनों (The High Court Benches) ने बार-बार यही कहा है कि अगर आप वस्तुत: निष्पक्ष न्याय चाहते हैं तो इन दोनों विभागों को अलग-अलग करना ही होगा।

एक निश्चित अवधि की बात तो हटा दी गई, पर अब आशा यह है कि इस विधान में पास होने के बाद बल्कि इसके पास होते ही, दोनों प्रकार्य पृथक् कर दिये जायेंगे। इसलिए आशा है कि अब जब कि इसके लिए कोई अवधि नहीं निर्धारित की जा रही है, तो प्रान्त अपने कर्त्तव्यों को समझेंगे और यह कोशिश करेंगे कि अधिकार तथा निष्पक्ष न्याय के विचार से ये दोनों प्रकार्य पृथक् हो जायें।

इन शब्दों के साथ जो संशोधन रखा गया है उसको स्वीकार करने की मैं सभा से सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह बहुत महत्त्वपूर्ण संशोधन है, श्रीमान्, और आशा है आप इस पर सदस्यों को विचार व्यक्त करने की अनुमति देंगे।

***उपाध्यक्षः** कृपा कर माइक्रोफोन पर आइये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** उपाध्यक्ष महोदय, न्याय सम्बन्धी प्रकार्य शासन सम्बन्धी प्रकार्य से पृथक् करने का प्रस्ताव कल यहां डा. अम्बेडकर ने रखा और मैं समझता हूं कि यह बात प्रस्तावित करने से पहले कि तीन वर्ष के अन्दर ये दोनों प्रकार्य पृथक्-पृथक् हो जाने चाहिएं, उन्होंने इस मसले पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है।

प्रत्येक व्यक्ति इस विषय के महत्त्व को समझता है। यह मांग कि न्याय-प्रकार्य को शासन-प्रकार्य से पृथक् कर दिया जाये, जिससे कि अधिशासी वर्ग का न्याय-शासन से कोई सम्बन्ध न रह जाये, आज प्रायः पचास वर्षों से की जा रही है और कल जब डा. अम्बेडकर ने अपना प्रस्ताव पेश किया तो मैं यह समझा कि भारत सरकार इसके लिए इच्छुक है कि यह सुधार यथासम्भव शीघ्र कर दिया जाये।

मुझे मालूम है, श्रीमान्, कि यह बात निर्देशात्मक सिद्धांतों के अध्याय में आ जाती, पर वहां आने से भारत सरकार या प्रादेशिक राज्यों पर यह लागू न हो सकती थी और मैं यही आश्चर्य कर रहा था कि मसौदा-समिति ने कहीं इसी कारण से तो नहीं, इसे निर्देशात्मक सिद्धान्त में रखना पसन्द किया है। किन्तु जब सारी बात सभा के सामने तय हो गई हैं और डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है, तो मुझे इसका दुःख है, घोर दुःख है कि डा. अम्बेडकर अब उसमें ऐसा संशोधन लाना चाहते हैं कि यह स्थानीय सरकारों के विवेक पर रहे कि जब वह ठीक समझे इस सुधार को, जिसकी आज हम 50 वर्षों से मांग कर रहे हैं, अमल में लायें।

मूल अनुच्छेद में जो अवधि-सीमा रखी गई थी उसे हटाने का पक्ष प्रतिपादन करते हुए डा. अम्बेडकर ने कहा है कि कुछ लोगों का यह मत है कि इसके

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

रहने से यह ख्याल पैदा हो सकता है कि तीन वर्ष तक तो इस सम्बन्ध में कुछ करना ही नहीं है। मुझे आश्चर्य है, श्रीमान्, कि क्या उन्हें भी अपनी व्याख्या से संतोष है? इस सभा में इतना भोला-भाला तो कोई नहीं है जो यह समझे कि अनुच्छेद 39-क में अवधि-सीमा रहने से प्रान्तीय सरकारें यह समझती कि तीन वर्ष तक तो वह इस सम्बन्ध में चुपचाप बैठी रह सकती हैं और अगर कोई कार्रवाई करना वह पसन्द करें तो उसे भी वह अवधि के समाप्त होने के समय कर सकती है।

अगर कल यह अनुच्छेद 39-क सभा में पास न हुआ होता तो कोई बात नहीं थी। मैं तो साफ-साफ कहता हूं कि "निर्देशात्मक सिद्धांतों के अध्याय में जो सिद्धांत रखे गये हैं उनमें से मेरी समझ से किसी का भी कोई महत्त्व नहीं है। विशेषत: इसलिए कि अध्याय के आरम्भ में ही एक अनुच्छेद में यह कह दिया गया है कि इस अध्याय की किसी भी धारा को व्यवहार में लाने के लिए न्यायालय से अपील नहीं की जा सकती है। किन्तु जब यह (39-क) सभा के सामने आ चुका, पास हो गया, तो अब इसमें कोई परिवर्तन लाने की चेष्टा की जाये यह दु:खद है। इससे अब जो धारणा पैदा होगी वह यह होगी कि न्याय और शासन के प्रकार्यों को पृथक् करने के लिए राज्य को वास्तविक चिन्ता नहीं है और वह इस पार्थक्य को व्यवहार में लाने के लिए मनमाना समय लेगा। अगर अनुच्छेद 39-क की बात सभा के सामने न आई होती तो हम यही समझते कि यह प्रकार्य-पार्थक्य, जो न्याय के निष्पक्ष शासन के लिए बहुत ही आवश्यक है, उचित समय के अन्दर कार्यरूप में परिणत हो जायेगा। किन्तु अब अगर तीन वर्ष की निर्धारित अवधि हटा दी जाती है और इसे अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, तो इसका प्रभाव बड़ा ही दु:खद होगा। इससे सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में अनिवार्यत: यह विचार पैदा होगा कि इस सुधार को विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा रहा है, अन्य सुधारों को इस पर आसानी से प्राथमिकता दी जा सकती है तथा यह कि अधिकारियों को केवल ध्यान में रखने के लिए यह कोरा आदर्शमात्र है।

इसलिए मेरा दृढ़ मत तो यह है कि सभा को अब डा. अम्बेडकर का यह संशोधन न स्वीकार करना चाहिए। डा. अम्बेडकर अथवा कोई अन्य सज्जन अब इसमें परिवर्तन लाने की कोशिश क्यों करें? इस प्रयास के पक्ष में मुझे तो कोई

कारण नहीं दिखाई देता। यह बात रखी जायेगी मसौदे के 'निर्देशात्मक सिद्धांतों' में, इसलिए तीन वर्ष की यह अवधि किसी भी अधिकारी के लिए अनिवार्य नहीं होगी। अगर इस बात का डर है कि तीन वर्ष के अन्दर इस सुधार को व्यावहारिक रूप देना शायद किसी प्रान्त के लिए शक्य न हो तो वह प्रान्त इसके लिए कुछ और समय ले सकता है क्योंकि यह व्यवस्था आखिर आदेशात्मक तो होती नहीं। किसी प्रान्त की आर्थिक स्थिति अथवा शासन-स्थिति की उपेक्षा करके इस सुधार को तीन वर्ष के अन्दर ही कार्यान्वित करने के लिए तो यह व्यवस्था उसको बाध्य नहीं करती। इसलिए मुझे तो कोई भी कारण नहीं दिखाई देता कि यह परिवर्तन क्यों किया जाये? यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी, बड़ी अवांछनीय बात होगी बल्कि हम जनता का बहुत बड़ा अहित करेंगे, अगर उनमें तथा अधिकारियों मे हम यह धारणा पैदा करते हैं कि यह महत्त्वपूर्ण सुधार अभी अनिश्चित अवधि के लिए स्थगित रखा जा सकता है। इसलिए इस संशोधन का विरोध करता हूं, जिसे डा. अम्बेडकर ने अभी उपस्थित किया है और आशा है, सभा दृढ़तापर्वूक इसका विरोध करेगी।

*__माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू__ (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अभी-अभी बोलने वाले माननीय सदस्य ने, इस सम्बन्ध में भारत सरकार की चर्चा की है। इस सरकार की ओर से मैं स्थिति को स्पष्ट कर देना चाहता हूं तथा इस बात के लिए खेद प्रकट करना चाहता हूं कि भारत सरकार सम्मिलित रूप से और बहुत कुछ व्यक्तिगत रूप से भी, इस सभा की कार्यवाही से उतना सन्निकट सम्बन्ध नहीं रखती जैसा कि इसे रखना चाहिए।

यह नहीं मान लेना चाहिए कि यहां जो भी बात रखी जाती है वह भारत सरकार की ओर से ही रखी जाती है, यद्यपि भारत सरकार की स्वभावत: इसमें गहरी दिलचस्पी है और वह इस सभा के सामने अपने विचार जब-जब भी सम्भव हो रखना चाहेगी। मैं ससम्मान सभा को बतलाना चाहता हूं कि बहुत सी बातों पर जिन पर कि इसने विचार किया है भारत सरकार भी अपना मत सभा के समक्ष रखना चाहती थी, किन्तु सरकार के सदस्यों का यह दुर्भाग्य है कि परिस्थितियों से बाध्य हो कर तथा इस कारण से कि जब सभा की बैठक हो रही है तभी भारत सरकार के सामने इतने गम्भीर और महत्त्वपूर्ण घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय मसले हैं कि सरकार के अनेक सदस्य शायद इन कार्यभारों से, जिनको साधारण काल

[माननीय पं जवाहरलाल नेहरू]

में भी संभालना कठिन होता, आज इतने बोझिल हैं कि विधान की इन महत्त्वपूर्ण बातों पर वह इतना समय नहीं दे पाते हैं जितना कि उन्हें देना चाहिए। मुझे खेद है कि मैं खुद ही आवश्यक योगदान नहीं दे पाता हूं और मैं समझता हूं कि उससे मेरा ही नुकसान होता है।

अब मैं प्रस्तुत संशोधन की ओर आता हूं। इसके सम्बन्ध में ससम्मान सभा से मैं चन्द बातें कहूंगा और वह यह हैं। मैंने ऐसा अनुभव किया है कि विधान की मर्यादा को पर्याप्त रूप से सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है, अगर हम बहुत सी विस्तार की बातें भी उसमें लिपिबद्ध कर देते हैं। विधान एक ऐसी चीज है जो दीर्घकाल तक स्थायी होनी चाहिए, जो एक बहुत ही दृढ़ आधार पर निर्मित होनी चाहिए और जिसमें समय-समय पर परिवर्तन करना शक्य हो—यह कठोर तो होना ही नहीं चाहिए। फिर भी विधान के सम्बन्ध में हमें ऐसा समझना चाहिए कि यह कुछ ऐसी चीज है जो बहुत दिनों तक टिकाऊ रहेगी, यह क्षणिक नहीं है और न केवल सामयिक प्रबन्ध के लिए ही है, यह ऐसी चीज नहीं है जिसमें हम प्रतिदिन परिवर्तन करें, या ऐसी चीज भी नहीं है जो केवल आगामी दो-चार वर्षों के लिए ही हो। हो सकता है कि इसमें कई अल्पकालिक व्यवस्थाओं का रखना आवश्यक हो। ऐसा करना जरूरी है क्योंकि इन व्यवस्थाओं की आवश्यकता पड़ सकती है। किन्तु जहां तक विधान के मूल स्वरूप का सम्बन्ध है इसमें राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन से, तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाली बुनियादी बातों का होना जरूरी है। पर इसमें वह विस्तार की बातें न आनी चाहियें जिनके सम्बन्ध में विधान-मंडल को कानून बनाने हैं। अगर आप विस्तार की बातों में जाते हैं और बुनियादी बातों को अन्य ऐसी बातों के साथ मिला देते हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण हैं तो आप बुनियादी बातों को भी गौण बातों के स्तर पर ला देंगे। फिर तो विस्तार की बातों का एक जंगल सा हो जायेगा जिसमें बुनियादी बातों को आप खो बैठेंगे। जिन महान् वृक्षों का आप आरोपण करना चाहते हैं, जिनको आप खूब पल्लवित और पुष्पित देखना चाहते हैं वह सब विस्तार के—गौण वृक्षों के—सघन वन में छिप जायेंगे। मैंने ऐसा अनुभव किया है कि हम अपना बहुत सा समय ऐसी बातों पर दे रहे हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण हैं, जिनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल को कानून बनाना है और जिनका विधान से सरोकार नहीं है। विधान के सम्बन्ध में इतना तो मैंने सरसरी तौर पर कहा है।

अब प्रस्तुत विषय की ओर आता हूं। माननीय वक्ता पं. हृदयनाथ कुंजरू, जिन्होंने अभी अपने भाषण में डा. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध किया है, मुझे ऐसा मालूम होता है, उनकी अनुमति से ही मैं ससम्मान कहूंगा, कि वह बिल्कुल बहक गये हैं और इस काम में उन्हें सरकार की कोई दुरभिसंधि दिखाई देती है। कुल मिलाकर सरकार का इस काम से कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह सच है कि सरकार के कई सदस्यों की इसके सम्बन्ध में प्रबल भावना है और वे चाहते हैं कि सभा, उस दृष्टिकोण पर, जिसे कि डा. अम्बेडकर ने उनके सामने आज रखा है, गंभीरतापूर्वक विचार करें। मैं साफ-साफ कह दूं कि जहां तक सरकार का सम्बन्ध है वह पूर्णः इसके पक्ष में है कि न्याय तथा शासन सम्बन्धी प्रकार्यों को पृथक् कर दिया जाये। (*हर्ष ध्वनि*) मैं यह भी बता दूं कि जितना ही जल्द यह हो जाये उतना ही अच्छा है, (*खूब-खूब की आवाज*) और मुझे बताया गया है कि कई प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में कार्य भी शुरू कर दिया है। अगर मुझसे कोई पूछता, मुझे तीन वर्ष की अवधि का या और किसी अवधि का सुझाव देता तो इसके सम्बन्ध में मेरी अपनी तात्कालिक प्रतिक्रिया यही होती कि यह अवधि आवश्यकता से अधिक लम्बी है इसके लिये हम इतनी लम्बी प्रतीक्षा क्यों करें? अगर समूचे हिन्दुस्तान में नहीं तो उसके एक बृहत भाग में तो अवश्य ही, यह पार्थक्य बहुत ही शीघ्र व्यवहार में लाया जा सकता है। पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि भारत आज, विशेषतः इस परिवर्तन काल में, शासन-व्यवस्था की दृष्टि से, न्याय-व्यवस्था की दृष्टि से, अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से तथा अन्य कई प्रकार से एक खिचड़ी सा हो रहा है और इसके सभी प्रदेशों पर जबरदस्ती एक सा नियम लागू करना अहितकर होगा और कई प्रदेशों को तो इससे बड़ी कठिनाई हो जायेगी। ऐसे नियम से कई प्रदेशों में तो उन्नति में बाधा पड़ेगी और कइयों में सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी। इसलिये कुछ हद तक ऐसी व्यवस्था लचीली अवश्य ही होनी चाहिए। आमतौर पर मैं यह कहूंगा कि नीति सम्बन्धी निर्देश-मूलक कोई भी सिद्धांत हो, चाहे उसको अमल में लाने के लिए न्यायालय से अपील न भी की जा सकती हो, किन्तु विधान में अगर वह रख दिया जाता है तो उसका प्रबल प्रभाव पड़ेगा ही। ऐसे किसी निर्देश-मूलक नियम में विस्तार की, निर्धारित अवधि आदि की बातें नहीं रहनी चाहियें। इसमें तो केवल इन बातों का निर्देश होता है कि राज्य क्या चाहता है। इसलिए अगर आप इसमें अवधि की बात रखते हैं तो इससे राजकीय नीति का जो महत्त्व है, जो मर्यादा है, वह

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

जाती रहती है और ये निर्देशात्मक सिद्धांत राजकीय नीति न रहकर केवल विधान-मंडल के कानून निर्माण का विषय बन जाते हैं और इस अभिप्राय से ये निर्देशात्मक सिद्धांत विधान में रखे नहीं जा रहे हैं। किसी प्रकार की अवधि रखना, मैं इसमें नहीं पसन्द करूंगा, किन्तु और व्यावहारिक रूप में बोलते हुए मैं यह कहूंगा, जैसा डा. अम्बेडकर ने अभी बताया है, कि अवधि रखने से देश के एक बृहत भाग में बल्कि देश के अधिकांश भाग में अपेक्षित पार्थक्य लाने में विलम्ब लगेगा और कुछ भागों में जहां इसको व्यवहार में लाना बहुत कठिन है, इससे बड़ी अव्यवस्था पैदा हो जायेगी। इसलिए मैं समझता हूं कि डा. अम्बेडकर के मूल संशोधन से उस परिवर्तन का महत्त्व घटता नहीं है जिसे हम देश में लाना चाहते हैं, बल्कि उससे देश के सामने उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। मैं नहीं समझता कि कोई भी प्रान्तीय या अन्य सरकार कैसे इस निर्देश को भूल जायेगी या इसको अमल में लाने में बहुत देर करेंगी। आखिर भविष्य में जो कुछ भी किया जायेगा वह निर्भर करता है जनता की भावना पर, भावी विधान-मंडलों और संसदों की भावना पर। किन्तु जहां तक इस विधान का सम्बन्ध है वह इस परिवर्तन के पक्ष में ही बोलता है और प्रबल रूप से बोलता है। इसमें जो व्यवस्था रखी गई है उससे हमारे लिए यह सम्भव हो जाता है कि जिन प्रदेशों में यह परिवर्तन लाना शक्य है वहां तो हम इसे ला ही दें, पर अगर किसी प्रदेश विशेष के लिए ऐसा करने में कोई कठिनाई हो तो उसके लिए कोई बंधन नहीं है। इसलिए मैं कहूंगा कि डा. अम्बेडकर का यह संशोधन मंजूर किया जाना चाहिए।

***डा. बख्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल)**:** उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन आज रखा है, उसका हार्दिक समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। शासन-प्रकार्य तथा न्याय-प्रकार्य के पार्थक्य का प्रश्न उतना ही पुराना नहीं है जितना कि हमारा कांग्रेस-संगठन, बल्कि उससे कहीं अधिक पुराना है। सन् 1852 की बात है जब कि बंगाल में जन-मत ने एक सुसंगठित रूप से इसके विरुद्ध आवाज उठानी शुरू की और तभी पहली बार यह विवाद सामने आया। कांग्रेस-जन्म के तीस वर्ष पहले की यह बात है। सिपाही-विद्रोह के बाद यह आन्दोलन जोर पकड़ गया और दशक 1870-80 के प्रारम्भिक दिनों में बंगाल में श्री कृष्णदास पाल तथा रामगोपाल घोष के नेतृत्व में जो कि उन

दिनों जन-मत का नेतृत्व कर रहे थे, उन दोनों प्रकार्यों के पार्थक्य के सम्बन्ध में एक निश्चित योजना उपस्थित की गई। तत्पश्चात् स्वर्गीय मनमोहन घोष ने इस प्रश्न को हाथ में लिया और फिर उन्होंने तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इस प्रश्न को सभी सार्वजनिक सभाओं में सदा ही पेश किया।

जब 1895 में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ तो कार्यक्रम में इस शासन-सुधार को प्रमुख स्थान दिया गया था। उसके बाद तो न सिर्फ सभी विचारों के राजनीतिज्ञ ही बल्कि अवकाश प्राप्त अफसरों ने भी, जिन्होंने कि प्राय: अपना सारा जीवन ही शासन में बिता दिया था, इस प्रश्न को हाथ में ले लिया और इसके लिये अपनी ओर से हर प्रकार से प्रयास किया। मुझे सन् 1899 में लखनऊ में होने वाली कांग्रेस अभी भी खूब याद है, जिसका सभापतित्व स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र दत्त ने किया था, जो उस समय इंडियन सिविल सर्विस से अवकाश ग्रहण कर चुके थे उन्होंने सभापति के नाते जो भाषण दिया था उसमें इसी सुधार की प्रमुख चर्चा थी और इसको लेकर अधिवेशन में बड़ा ही उत्साह रहा। इतना ही नहीं, हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों ने भी तथा सर आर्थर हाब हाउस और सर आर्थर विल्सन जैसे अंग्रेजों ने भी, जो बाद में प्रिवी कौंसिल की न्यायालय सम्बन्धी समिति के सदस्य हुए, इसका पूर्णत: समर्थन किया और अन्य कई प्रमुख भारतीयों के साथ मिलकर उन्होंने भारत मंत्री के पास एक आवेदन किया कि इस सुधार को शीघ्र व्यवहार में लाया जाये।

सन् 1912 में जब कि लोक-सेवायोग की नियुक्ति हुई, श्री अब्दुर्रहीम ने, जो बाद में चलकर मद्रास-हाईकोर्ट के न्यायाधीश हुए और जो केन्द्रीय विधायिनी के कई वर्षों तक प्रधान रहें, अपना मतभेद प्रकट करते हुए एक लम्बा नोट लिखा, जिसमें कई पृष्ठों में उन्होंने इसी सुधार की चर्चा की थी।

इसलिये श्रीमान्, यह प्रश्न आज करीब सौ वर्षो से देश के सामने है और अब समय आ गया है कि शीघ्र ही इसको अमली रूप दिया जाये। एक माननीय सदस्य ने, जिन्होंने कल यहां भाषण दिया, यह कहा कि यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण अवश्य था किन्तु तब, जब यहां विदेशी राज था पर आज तो स्थिति बदल गई है और

[डा. बख्शी टेकचन्द]

हो सकता है कि यह सुधार लाना अब आवश्यक न हो। इसका जोरदार जवाब आज हमारे प्रधानमंत्री ने दे दिया है। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि सरकार की यह नीति है, उसकी यह मंशा है कि शीघ्र यह सुधार अमल में लाया जाये।

इतना ही नहीं, श्रीमान्, एक दूसरी आपत्ति यह भी उठाई गई थी कि आर्थिक कारणों से इन दोनों प्रकार्यों को पृथक् करना शक्य नहीं होगा। इसका भी मुंहतोड़ जवाब बम्बई प्रान्त की ओर से मिल चुका है। सन् 1946 में शासन भार संभालते ही बम्बई सरकार ने इस प्रश्न की छानबीन करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। बम्बई हाईकोर्ट के एक न्यायाधीश इस समिति के सभापति थे और इस में सात और सदस्य थे। इस समिति ने 11 अक्टूबर सन् 1947 को अपनी रिपोर्ट पेश कर दी थी। उस रिपोर्ट की एक प्रति मेरे हाथ में है, पर मैं इसे जरूरी नहीं समझता कि उस रिपोर्ट से कोई लम्बा उद्धरण यहां उपस्थित किया जाये। यह समिति सर्वसम्मति से इसी निर्णय पर पहुंची कि इन दोनों प्रकार्यों को पृथक् करना बिल्कुल व्यावहारिक और शक्य है। जहां तक आर्थिक कठिनाई का सम्बन्ध था, इस समिति ने इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया और उसका यह अनुमान रहा कि इसमें करीब 10 लाख सालाना का और खर्च पड़ेगा। इससे आपको पता चल जायेगा कि यह सुधार आर्थिक दृष्टि से अशक्य नहीं है। यह अमल में लाया जा सकता है। बम्बई के माननीय प्रधानमंत्री ने, जो यहां भी उपस्थित है, मुझे बताया है कि यथाशीघ्र अवसर मिलते ही उनकी सरकार इस योजना को कार्यान्वित करने जा रही है।

*__माननीय श्री बी.जी. खेर__ (बम्बई : जनरल): मैं इसकी पुष्टि करता हूं।

*__डा. बख्शी टेकचंद:__ मुझे खुशी है कि खेर साहब ने इसकी पुष्टि की। यहां इसके सम्बन्ध में दो आपत्तियां उठाई गई हैं। पहली यह कि परिस्थिति अब बदल गई है, अब हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, इसलिए अब यह सुधार आवश्यक नहीं है। दूसरी यह कि सुधार को कार्यान्वित करने में इतना अधिक खर्च पड़ेगा कि उससे प्रान्तीय सरकार की रीढ़ टूट सकती है। इन दोनों ही

आपत्तियों का उत्तर खेर साहब के इस कथन से मिल गया। दोनों ही आपत्तियां निराधार हैं।

इस सम्बन्ध में मुझे एक ही बात और कहनी है और वह यह है कि गणतंत्र और स्वाधीनता के आ जाने के बाद यह सुधार और भी आवश्यक हो गया है। पहले तो केवल जिला मैजिस्ट्रेट तथा नौकरशाही सरकार के अन्य कई व्यक्तियों से ही यह डर था कि वे न्याय में हस्तक्षेप करेंगे किन्तु अब, दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कई प्रान्तों में तो मंत्री लोग तथा राजनैतिक पार्टियों के सदस्य भी न्याय-प्रशासन में हस्तक्षेप करने लगे हैं। आप में से वे लोग जो न्यायालय द्वारा हाल में दिये गये निर्णयों की रिपोर्ट अखबारों में पढ़ते होंगे, उन्हें इस प्रकार के हस्तक्षेप पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ होगा जिसका कि हवाला इन निर्णयों में दिया गया है। एक प्रान्त में तो एक मामला किसी दण्ड-न्यायालय में विचाराधीन था और मिनिस्टर ने कागजात मंगवाकर सुनवाई करने वाले मैजिस्ट्रेट को यह आदेश दिया कि वह उस मामले की कार्रवाई को मुल्तवी रखे। ऐसा पहले तो कभी भी नहीं सुना गया था। अन्ततोगत्वा वह मामला हाईकोर्ट में पहुंचा और विद्वान् प्रधान न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों को बाध्य होकर न्याय-प्रशासन में अधिशासी वर्ग के हस्तक्षेप के विरुद्ध बड़े ही कड़े शब्द लिखने पड़े।

एक दूसरे प्रान्त में विधायिनी सभा के एक सदस्य के विरुद्ध एक मामला चल रहा था और जिला मैजिस्ट्रेट ने सुनवाई करने वाले मैजिस्ट्रेट को आदेश भेजा कि वह उस मामले की कार्रवाई को आगे न बढ़ाये और अभियुक्त को बरी कर दे। सुनवाई करने वाला मैजिस्ट्रेट न्यायिक-सेवा (Judicial Service) का सदस्य था और वह वहां स्थानापन्न रूप से काम कर रहा था। उसमें बल था और उसने उस आदेश का विरोध किया और सभी पत्रों को मुकदमें के कागजात में दाखिल कर दिया। आखिर मामला हाईकोर्ट में पहुंचा और कलकत्ता-हाईकोर्ट-प्रधान न्यायाधीश ने उसके सम्बन्ध में बड़े ही कड़े शब्द कहे।

फिर पंजाब में अभी हाल ही के एक मामले में हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री अच्छरू राम जी ने बन्धुपस्थापन सम्बन्धी अपील की सुनवाई की और 164 पन्नों का फैसला दिया, जिसमें आखिर में यह कहा कि जिला मैजिस्ट्रेट तथा पुलिस सुपरिन्टेंडेंट ने कांग्रेस पार्टी के एक सदस्य के विरुद्ध जो कार्रवाई की वह

[डा. बख्शी टेकचन्द]

शुद्ध नीयत से नही की, बल्कि प्रतिशोध की भावना से की। यह थे जज के शब्द।

ऐसी परिस्थिति में मैं तो कहूंगा कि स्थिति में परिवर्तन आ जाने से स्वाधीनता के आ जाने से और प्रजातंत्र की स्थापना हो जाने से यह और भी आवश्यक हो गया है कि न्याय तथा शासन-प्रकार्यों में यथाशीघ्र पार्थक्य कर दिया जाये।

मेरे माननीय और आदरणीय मित्र पं. कुंजरू यह समझते हैं कि तीन वर्ष की अवधि को हटाने के पीछे कोई दुरभिसंधि छिपी हुई है। शुरू में मैं खुद ही अवधि रखने के पक्ष में था किन्तु माननीय प्रधान मंत्री ने इसके न रखने के कारणों पर पूर्ण प्रकाश डाल दिया है और उसको देखते हुए अवधि का रखना न तो आवश्यक है और न वांछनीय है। इस तरह की अवधि रख देने से तो कहीं-कहीं हमारा जो वास्तविक उद्देश्य है वही समाप्त हो जाता है। मैंने बम्बई का हवाला दिया है जहां वह इस सुधार को अमल में लाने जा रहे हैं। मुझे बताया गया है कि मद्रास सरकार ने भी एक ऐसा ही कमीशन नियुक्त किया था जिसने की उसी आशय की रिपोर्ट दी है जैसा कि बम्बई वाली समिति ने दी थी। इस तरह हमारी दो प्रमुख प्रान्तीय सरकारें इस दिशा में अग्रसर हो रही हैं। पंजाब में भी संयुक्त पंजाब की सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति द्वारा कई वर्ष पूर्व न्याय-प्रकार्य को शासन-प्रकार्य से पृथक् करने के लिए एक योजना तैयार की गयी थी। मुझे इसमें शक नहीं कि पूर्वी पंजाब में भी इस दिशा में कदम उठाया जायेगा। पर साथ ही हमें नव निर्मित शासन-व्यवस्थाओं का और रियासतों का भी ध्यान रखना होगा जो प्रान्तों में मिल रही अथवा अपना संघ बनाती जा रही हैं और इस खंड के प्रयोजन के लिए उनका भी नाम राज्य है। हो सकता है कि इन नव निर्मित शासन-व्यवस्थाओं में कई ऐसी हों जिनको इसमें तीन वर्ष से भी अधिक समय लग जाये। इसलिए कोई निश्चित अवधि का रखना ठीक न होगा।

इन कारणों से मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं जिसे आज डा. अम्बेडकर ने यहां पेश किया है।

*__श्री लोकनाथ मिश्र__ (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस मसले पर हमें जो साफ और खरी राय दी है उसके लिए हम सब उनके कृतज्ञ हैं, क्योंकि जैसा मैं देख रहा हूं और कुछ दिनों से यहां सुन रहा हूं, हर आदमी विधान में कुछ न कुछ परिवर्तन लाने की ही कोशिश कर रहा है मानो यह कोई निर्वाचन सम्बन्धी घोषणा-पत्र हो। एक वकील होने के नाते श्रीमान्, मैं वकीलों की, मुकदमा लड़ने वालों की और अदालतों की परेशानियों को जानता हूं। इस सम्बन्ध में पहली बात तो मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद को निर्देशात्मक सिद्धांतों में हम इसलिए रख रहे हैं कि न्याय सम्बन्धी शासन और उत्तमतापूर्वक चलाया जा सके, किन्तु जो अनुच्छेद हम रखने जा रहे हैं, उससे हमारा यह अभिप्राय सिद्ध नहीं होता है क्योंकि उत्तम न्यायप्रशासन के लिए हमें जरुरत है अच्छे और उचित कानूनों की। किन्तु दुर्भाग्य से अपनी पराधीनता के कारण खराब कानून हमारे पास इतने ज्यादा है कि चाहे जितना भी सही अमल उन पर किया जाये उनसे सही इन्साफ हमें मिल नहीं सकता। इसलिए हमारे पास अच्छे और सही कानून होने ही चाहिये। मुझे विश्वास है कि नई व्यवस्था मैं हम अपने कानून इस प्रकार के बनायेंगे कि उनसे हमें उचित न्याय प्राप्त हो सकेगा। इसके अलावा यहां यह कहा जा रहा है कि न्यायिक वर्ग को अधिशासी वर्ग से पृथक् करना ही होगा। शायद इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि न्याय-प्रकार्य करने वाले शासन-प्रकार्य नहीं करें या शासन-प्रकार्य करने वाले न्याय न करें। मैं तो कहूंगा, और यह मेरा अनुभव है, कि जब अधिशासी-वर्ग न्याय-शासन करता है तो वह उचित रूप से नहीं करता है और जब न्याय-प्रशासी वर्ग न्याय-शासन करता है तो वह उसमें बहुत देर करता है। इसलिए न्याय तथा सम्बन्धी प्रकार्यों में पार्थक्य तो होना ही चाहिए किन्तु साथ ही हमें जनता को यह जता देना होगा तथा अधिशासी वर्ग और न्याय-शासी वर्ग के पदाधिकारियों को भी यह जता देना होगा कि जब कोई अधिशासी-वर्ग का कोई पदाधिकारी मामले की सुनवाई करता हो तो उसे सही-सही न्याय करना होगा और अगर न्याय-शासी वर्ग का कोई पदाधिकार सुनवाई करता हो तो उसे यथासमय निर्णय दे देना होगा। इस सम्बन्ध में मैं आपके सामने एक उदाहरण रखूंगा। अपने उड़ीसा प्रान्त में हम लोगों ने अभी हाल में रैयत सुरक्षा कानून (Tenants Protection Act) नामक एक कानून पास किया। हमने तो इसे अच्छा समझ कर पास

[श्री लोकनाथ मिश्र]

किया और हम जानते हैं कि इससे जनता की भलाई होगी, किन्तु आज उसे पास हुए एक वर्ष होगा पर मैं देखता हूं कि कभी भी अमल में नहीं लाया गया और सिर्फ इस कारण से कि साक्ष्य-कानून तथा जांच-कानून (law of evidence and law of enquiry) बहुत ही खराब है और न्यायाधीश लोगों में इसके लिए कोई लगन नहीं है। कानूनगो कि पास हो चुका है पर इससे कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए केवल इन दोनों प्रकार्यों को पृथक् कर देने से ही हमारा प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। इसके लिए हमें कुछ और भी करना होगा।

न्याय के समुचित प्रशासन के लिए एक और बात जरूरी है। अगर हम यह आशा करते हैं कि इस पार्थक्य से कुछ लाभ होगा तो हमें एक बात निश्चित कर लेनी होगी। कानूनी पेशा एक प्राइवेट व्यापार है और इस कारण वस्तुतः इससे न्याय प्राप्ति में कोई सहायता नहीं मिलती। लम्बी-चौड़ी फीस पर तथा सही बात को तोड़-मरोड़ कर रखने पर ही यह पेशा फूलता-फलता है। वकील भी न्यायधीश की तरह अदालतों का पदाधिकारी ही है किन्तु यदि उसे लम्बी फीस न मिले तो उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। अवश्य ही इसके लिए वकील भी बहुत हद तक दोषी है किन्तु आखिर उन्हें अपनी जीविका भी तो कमानी है। उन्हें अपना मुकदमा जीतना होता है और मुकदमा जीतने के लिए झूठी गवाही बनानी पड़ती है और तरह-तरह के खुराफात करने पड़ते हैं। जब तक वकील दो एक मुकदमा नहीं जीतता, उसको जमने का मौका नहीं मिलता। इसलिए मेरा कहना यह है कि जब तक आप चिकित्सा और वकालती पेशे को राजकीय व्यापार नहीं बना देते तब तक न तो सही-सही न्याय-शासन हो सकता है और न ही सही चिकित्सा हो सकती है कि लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहे। इसका मतलब यह है कि जिस तरह कि सरकारी वकील और अटर्नी नियुक्त किये जाते हैं उसी तरह कानूनी पेशे पर राज्य उस हद तक नियंत्रण रखे और उनको खर्च दे कि वकीलों को सिर्फ न्याय में सहायता पहुंचाने का ही काम रहे और अपना मुकदमा जीतने और मुवक्किलों को खुश करने के लिए उन्हें मिथ्या शपथ और जालसाजी को बढ़ावा न देना पड़े। अब जो स्थिति है उसमें चाहे यह पक्ष जीते या वह पक्ष जीते पर सत्य और न्याय दोनों ही तरफ नहीं रहता।

***उपाध्यक्षः** आप इस संशोधन का समर्थन कर रहे हैं या विरोध?

***श्री लोकनाथ मिश्रः** सैद्धांतिक दृष्टि से मैं इस संशोधन का समर्थन कर रहा हूं। मैं यह कहने जा रहा था कि यह तो केवल खुश करने का एक उपाय है। अगर हम हृदय से यह चाहते हैं कि समुचित न्याय-प्रशासन हो तो केवल इन प्रकार्यों को पृथक् कर देने ही से काम नहीं बनेगा। इसलिए मेरा कहना यह है; श्रीमान्, कि अगर वस्तुतः हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि और अच्छी तरह न्याय-शासन हो तो केवल प्रकार्य-पार्थक्य से ही हमारा अभीष्ट नहीं प्राप्त होगा बल्कि राज्य को यह भी देखना होगा कि कानून बहुत कम हों और सरल हों और साथ ही जनता को बोधगम्य हों कि कानून उनके लिए कोई दूर की और भयावनी वस्तु न रह जाये और समुचित न्याय-शासन एक वास्तविकता हो जाये न कि केवल एक दिखावा ही रहे।

***उपाध्यक्षः** हम इस प्रश्न पर समुचित रूप में पर्याप्त वाद-विवाद कर चुके हैं। अब मैं इस पर मत लेना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): यह मसला जो सभा के सामने अभी पेश है, बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

***उपाध्यक्षः** मुझे डर है कि अभी और भी कई वक्ता हैं। मैं सबको ही समय देना चाहता हूं पर अब यह सम्भव नहीं है। मुझे खेद है, मैं इस संशोधन पर अब मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 39 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जायेः

"39.A. The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the public services of the State."

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 39-क को विधान का भाग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 39-क विधान में जोड़ गया।

(1010 से 1012 तक के संशोधन नहीं पेश किये गये।)

श्री मुहम्मद ताहिर (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 39 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये और शेष अनुच्छेदों को तदनुसार संख्या क्रम दिया जाये:

'40 यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह पूजा स्थानों को जैसे कि गुरुद्वारों, गिरजाघरों, मन्दिरों, मस्जिदों तथा कब्रगाहों और श्मशान स्थानों का रक्षण, परिरक्षण तथा संधारण करे।' "

आज हम अपने महान् देश का विधान बना रहे हैं और इस महान् देश के प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि इस सभा की ओर लगी हुई है कि हम क्या कर रहे हैं। क्या अधिकार उन्हें दे रहे हैं इस महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक काल में मैंने अपना संशोधन–एक सीधा संशोधन—पेश किया है जिसके द्वारा मैं यह चाहता हूं कि भारत के सभी सम्प्रदायों के पूजा-स्थानों की सुरक्षा का और उनको स्थायी रखने की जिम्मेदारी राज्य पर हो। एक समय था कि इस देश का शासन अंग्रेज करते थे, विदेशी लोग करते थे और ऐसे विधान द्वारा जो उन्हीं का बनाया हुआ था। अवश्य ही वह विधान हमारे लिए विदेशी था। उस विधान में यह सच है कि ऐसी बात नहीं रखी गयी थी और न रखने का सीधा-साधा कारण यही था कि भारतीय राष्ट्र के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को लड़ाकर ही राज करना उनकी नीति थी। किन्तु अब देश हमारा है, राज्य हमारा है और निश्चय ही हमें इस बात का अधिकार है कि हम अपने पूजा-स्थानों की सुरक्षा की, उनको स्थायी रखने की मांग करें। दुर्भाग्य से, श्रीमान्, हम लोगों के बीच आज हमारे राष्ट्रपिता नहीं रह गये हैं, पर अगर वह होते तो, मैं बिना प्रतिवाद सम्बन्धी भय के कह सकता हूं कि इस संशोधन पर मुझे उनकी भी पवित्र सहमति अवश्य मिलती। जो भी हो, मैं सभा के प्रत्येक सदस्य से अपील करूंगा और खासकर कांग्रेस के सदस्यों से कि वे इस संशोधन का प्रबल रूप से समर्थन करें। माननीय प्रस्तावकर्त्ता डा. अम्बेडकर से भी मैं अपील करूंगा कि वह इस पर समुचित विचार करें।

श्रीमान्, कल ही की तो बात है कि सभा ने साहसपूर्वक मद्य-निषेध को लागू करने का निश्चय किया है। हमारे देश की गायों को सुरक्षा देने का सभा ने साहस दिखलाया था और आशा है यह सभा और भी साहसिक होकर पूजा-स्थानों को सुरक्षा देगी।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं सभा के प्रत्येक सदस्य से पुनः अपील करता हूं कि वह इस सरल और हल्के संशोधन का पूरा समर्थन करे।

अन्त में मैं यह कहूंगा कि यही संशोधन एकमात्र ऐसा संशोधन है, जिसमें एक ऐसे सर्वोत्तम गुण का समावेश है। असाम्प्रदायिक राज्य के लिए निर्मित इस समूचे विधान में और ऐसा कोई संशोधन नहीं आया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, निश्चय ही यह राज्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरुद्वारों, गिरजाघरों, मन्दिरों और मस्जिदों, पूजास्थानों की तथा कब्रगाहों और श्मशानों को सुरक्षित रखे। देश का जो साधारण कानून-दंड विषयक कानून है उसमें इन सब स्थानों की सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था है। माननीय संशोधनकर्त्ता तीन बातें चाहते हैं। वह चाहते हैं कि राज्य उनका रक्षण, परिरक्षण और संधारण करे। जहां तक कि इनके रक्षण और परिरक्षण का सम्बन्ध है, सभी सार्वजनिक पूजास्थानों की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य है, चाहे वह स्थान किसी सम्प्रदाय का हो या किसी व्यक्ति का हो। खासतौर पर सार्वजनिक पूजा-स्थानों का, आक्रमण और तोड़-फोड़ के विरुद्ध रक्षण और परिरक्षण किया ही जायेगा। यह एक मूलाधिकार है जो पूर्ववर्त्ती भाग—भाग तीन—में रखा गया है। उससे इसे यहां निर्देश के रूप में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु जहां तक सार्वजनिक पूजा स्थानों के संधारण का सम्बन्ध है, इसमें कठिनाई है। उस हालत में हम यह मान लेंगे कि मन्दिर को सम्प्रदाय ने छोड़ दिया है जिसमें अभी तक वह पूजा किया करता था। उस मन्दिर को रक्षित रखना राज्य का कर्त्तव्य होगा, भले ही पहले वह सार्वजनिक पूजा का स्थान रहा हो। अनुच्छेद 39 कहता है कि प्रत्येक कलायुक्त अथवा ऐतिहासिक महत्त्व वाले आस्मारक या स्थान या वस्तु की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। राज्य ऐसे स्थानों को अवश्य कायम रखेगा। अंग्रेजी शब्द 'preserve' में उनका निर्वाह करना तथा उनको उसी हालत में कायम रखना, यह दोनों ही बातें शामिल हैं। अगर हर मन्दिर और गुरुद्वारे का संधारण करना पड़ा जिसे सम्प्रदाय छोड़ दे तो फिर इससे राज्य पर एक अनावश्यक दायित्व

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

आरोपित होता है और कर-दाताओं की रकम ऐसे कार्यों में लगानी पड़ती है जिसके लिए उनसे जायज तौर पर कर लिया नहीं जा सकता। बल्कि यह तो सम्प्रदाय का कर्त्तव्य है कि वह हर गुरुद्वारे और मन्दिर को चालू और कायम रखे। राज्य से तो उतनी ही आशा करनी चाहिए कि वह हमले से और तोड़-फोड़ से उसको बचाए।

इस सम्बन्ध में आप राज्य से इसी बात की आशा कर सकते हैं और इसके लिए मूलाधिकारों में तथा साधारण दण्ड-विधि में भी पर्याप्त व्यवस्था रखी गयी है। जो भी हो, मुझे दु:ख है कि इस संशोधन का विरोध करना पड़ रहा है। मैं स्वयं चाहता हूं कि सभी पूजा-स्थानों की चाहे व किसी भी सम्प्रदाय के हों, पूरी तरह से रक्षा हो पर मैं इस संशोधन का समर्थन करने में असमर्थ हूं। पूजा-स्थानों की रक्षा होनी ही चाहिए; मैं भी उन लोगों के साथ जिनका मत है कि पूजा-स्थानों की, जहां ईश्वर का वास है, रक्षा होनी ही चाहिए। इनके रक्षण के लिए पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। इसलिए इस संशोधन को पास करने की अब कोई जरुरत नहीं है।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं इस संशोधन को नहीं स्वीकार करता हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

*__उपाध्यक्ष:__ सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 40 विधान का अंग समझा जाये।

इसके सम्बन्ध में कई संशोधन आए हैं जिनको मैं एक-एक करके पढ़ कर सुना देता हूं।

(*संशोधन नं. 1016 और 1017 नहीं पेश किए गए।*)

*__उपाध्यक्ष:__ संशोधन नं. 1018, डा. अम्बेडकर!

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं समझता हूं कि श्री कामत शायद एक संशोधन पेश करने जा रहे हैं।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं अपना संशोधन पेश करूंगा, पर डा. अम्बेडकर जब अपना संशोधन पेश कर लेंगे तब।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि:

"वर्तमान अनुच्छेद 40 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'40 The State shall—

(a) promote international peace and security,

(b) seek to maintain just and honourable relations between nations; and

(c) endeavour to sustain respect for international law and treaty obligations in the dealings of organised people with one another.' "

('राज्य–

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और निःशंकता को बढ़ायेगा;

(ख) भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच समुचित एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास करेगा; और

(ग) संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं सन्धि-विबन्धनों के प्रति सम्मान बनाए रखने का प्रयास करेगा।')

यह संशोधन मूल अनुच्छेद 40 को केवल सरल रूप दे देता है और उसमें सन्निहित विचारों को पृथक्-पृथक् करके उन्हें कई भागों में विभक्त कर देता है ताकि इसे जो भी पढ़े, उसे इसका पूर्ण और स्पष्ट आभास मिल जाये कि यह अनुच्छेद 40 किन-किन बातों के लिए रखा गया है। संशोधित अनुच्छेद में जो बातें रखी गयी हैं वह इतनी साफ हैं कि किसी लम्बे भाषण द्वारा उन पर प्रकाश डालने का प्रयास करना अन्याय होगा।

इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस पर कई संशोधन आए हैं और अब मैं संशोधन रखने वालों को बुलाता हूं। नं. 74 श्री सर्वटे।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (संयुक्त राज्य ग्वालियर-इन्दौर-मालवा : मध्य भारत): उपाध्यक्ष महोदय, इस संशोधन पर मैं एक संशोधन पेश करना चाहता हूं। मेरा संशोधन यों है:

[श्री वी.एस. सर्वटे]

''संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1018 में, अनुच्छेद 40 में 'राज्य' शब्द के बाद तथा उपखण्ड (क) के पहले निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये और वर्तमान खण्डों का संख्याक्रम तदनुसार बदल दिया जाये:

'(a) foster truthfulness' justice and sense of duty in the citizens.'''

'(क) नागरिकों में सच्चाई, न्याय तथा कर्त्तव्यज्ञान की भावना भरेगा'

श्रीमान्, सभा यह देखेगी कि इस संशोधन द्वारा विधान में गांधी विचारधारा के विशेष गुणों को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है। महात्मा जी ने इन्हीं गुणों को लेकर स्वातंत्र्य-संग्राम का संचालन किया और उन्हें सफलता मिली। और सभा यह भी देखेगी कि इसमें सबसे पहले 'सच्चाई' शब्द रखा गया है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा जी का मत था कि सत्य ही परमात्मा है और सभा की ही अनुमति से मैं कहूंगा कि मेरी समझ में गांधी सत्य को अहिंसा से अधिक महत्त्व देते थे। अहिंसा के सम्बन्ध में तो अपवाद भी रखा जा सकता है—ऐसा भी हो सकता है कि समय विशेष पर अहिंसा का परित्याग कर दिया जाये—पर सत्य के साथ यह बात नहीं है। परमात्मा में भी न विश्वास रखने वाले लोग सत्य में विश्वास करते हैं। समाज सत्य पर ही कायम है। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्म-जीवनी का नाम रखा ''Experiment on truth'' न कि ''Experiment on non-Violence'' इसलिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे, जिसमें गांधी-विचारधारा के ये गुण सन्निविष्ट हैं।

इसके विरुद्ध जो आपत्तियां उठायी जा सकती हैं, उनका मुझे पहले से ही आभास है। पहली आपत्ति तो यह पेश की जा सकती है कि यह उतना ही अस्पष्ट और व्यापक है कि इसका कोई व्यावहारिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। अगर यही आपत्ति है तो मैं कहूंगा कि मैं सज्जनवृन्द के साथ हूं, क्योंकि विधान के बाकी सभी खंडों के सम्बन्ध में सम्भवत: यही आपत्ति की जा सकती है। इस सम्बन्ध में मैं यह और भी बता दूं कि इस संशोधन को प्रभावी बनाने के लिये अगर कोई ठोस कार्रवाई की जा सकती हो, तो उसका भी सुझाव सभा दे सकती है। पर यह जरूरी नहीं है। मेरा विश्वास है कि इस अध्याय में जो सिद्धांत रखे गये

हैं वह मूलभूत हैं—बुनियादी किस्म के हैं और उनको पूर्णरूप से कार्यान्वित करने का सदा प्रयास होता रहेगा, जब तक कि समाज कायम है। ठीक यही रूप इस संशोधन का भी है। मैं केवल कुछ ही बातें और कहूंगा। मैं कहूंगा कि यह देख कर किसी को भी आश्चर्य और दु:ख होगा कि समूचे विधान में, जिस रूप में कि यह है, ऐसी कोई भी बात नहीं है जिससे कोई भी मार्ग निकलता हो या जिससे गांधी-विचारधारा के मूल सिद्धांतों पर कोई प्रकाश पड़ता हो।

दूसरी आपत्ति जो की जा सकती है, वह सम्भवत: यह है कि इसके रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऐसे नैतिक सिद्धांत विधान में रखे नहीं गये हैं। मैं सादर यह कहूंगा कि आज इस आदर्श के आधार पर विधान बनाये ही नहीं जाते हैं। उदाहरण के लिये सोवियत रूस के विधान में, पहले अध्याय में जहां राजनैतिक बुनियाद और आर्थिक बुनियाद की बात रखी गई है, श्री कार्ल मार्क्स का यह प्रसिद्ध वाक्य उद्धृत किया गया है: ''जरूरतमंदों को उनकी जरुरत के मुताबिक दिया जायेगा; इसके लिये हर व्यक्ति को यथाशक्ति काम करना होगा; हर व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार अवश्य पायेगा।''

विधान के इस मसौदे में उन मूलभूत विचारों को स्थान दिया गया है, जो आपको इसे स्वीकार करने की प्रेरणा देते हैं। और इसीलिये मैं सभा की सद्‌बुद्धि से यह आग्रह करूंगा कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे। मुझे विश्वास है, कि मेरे वह मित्र और साथी, जिन्होंने स्वातंत्र्य-संग्राम में गांधी जी का अनुगमन किया है, इस विधान में कुछ ऐसी बातों को रखना चाहेंगे, जो गांधी जी हमें दे गये हैं और छोड़ गये हैं कि हम उनको सदा याद रखें और उन पर चलें।

*__श्री एच.वी. कामत:__ उपाध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह बता दूं कि मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी वही, तीन संशोधनों में विभक्त होकर हमारे सामने आये हैं और ये हैं संशोधन नं. 82, 83 और 84। छिद्रान्वेशी आलोचक के रूप में यह मैं नहीं कह रहा हूं। किन्तु मैं देखता हूं कि अगर ये तीनों संशोधन एक संशोधन के रूप में आते, जैसा कि मैंने रखा था, तो अधिक अच्छा था। मैं जानता हूं कि हमारे कार्यालय पर अत्यधिक कार्यभार है और मैं यह भी जानता हूं कि जो कठिनाइयां उनके सामने हैं, उनको देखते हुए वह काफी अच्छी तरह

[श्री एच.वी. कामत]

अपना कार्य सम्पादित कर रहे हैं। पर आपकी अनुमति से मैं इसे एक ही संशोधन के रूप में पढ़ूंगा। इसका रूप यह होगा..

***उपाध्यक्षः** मुझे मालूम हुआ है कि यह तीन संशोधनों में इसलिए विभक्त कर दिया गया है कि आप तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में परिवर्तन चाहते हैं न कि एक ही स्थल पर। आपकी व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति का यही व्यवस्था सम्बन्धी उत्तर है।

श्री एच.वी. कामतः अगर ये तीनों संशोधन अलग-अलग लिये जाते हैं और एक साथ नहीं तो इनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। अस्तु यह तो एक छोटी सी आपत्ति है। और मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता। अगर आपकी अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं इसे एक ही संशोधन के रूप में पढ़ूं। मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

> ''संशोधन सूची के संशोधन नं. 1018 में—अनुच्छेद 40 में—'shall' शब्द के बाद 'endeavour to' शब्द रखे जायें और खंड बी से 'seek to' शब्द तथा खंड सी से 'endeavour to' शब्द निकाल दिये जायें।''

अगर सभा यह संशोधन स्वीकार करती है तो मसौदा-समिति के संशोधन का रूप यह होगा:

> +''The State shall endeavour to (a) promote international peace and security; (b) maintain just and honourable relations between nations; (c) sustain respect for international law and treaty obligations in the dealings of organised people with one another.''

इस संशोधन द्वारा केवल यही प्रयास किया गया है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन का केवल रूप मात्र कुछ बदल जाये जिससे अनुच्छेद 40 में सन्निहित सिद्धांत का आदेशात्मक स्वरूप स्पष्ट हो जाये। यह बात स्वीकार कर ली गयी है और भारत का सदा यही प्रयास रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और निःशंकता को बढ़ाया जाये तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि विबन्धनों के प्रति सम्मान की भावना बढ़ाई जाये। मेरा ख्याल है और मुझे विश्वास है कि सभा मेरे इस कथन

+अंग्रेजी में दिया हुआ मूल संशोधन देखिए।

से सहमत होगी कि भारत के पास एक चिर प्राचीन संस्कृति है, उसके पास अध्यात्म रूपी पैतृक धन है, शताब्दियों पुरानी अनाक्रमण की परम्परा है और इन गुणों से सम्पन्न भारतवर्ष ही अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं संधि विबंधनों के प्रति आदर-भाव को बढ़ाने के लिए आज सर्वोत्तम उपयुक्त देश है। इस बात को सभी जानते हैं कि गत तीस वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं सन्धि विबन्धनों के प्रति लोगों का आदरभाव बहुत ही गिर गया है और सन्धियों को लोग केवल कागज का एक रद्दी टुकड़ा ही समझते हैं। मुझे आशा है कि इस नई दुनियां में जिसमें कि आज हम रह रहे हैं और जिसके निर्माण में हम महत्त्वपूर्ण भाग ले रहे हैं और लेने जा रहे हैं, उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में हम एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला सकेंगे, ताकि शीघ्र ही हम एक वास्तविक सार्वभौम-शासन (one world Government) अथवा एक सर्वोच्च राज्य की स्थापना कर सकें जिसे विश्व के सभी राज्य अपनी सत्ता का कुछ अंश स्वेच्छा से समर्पित करेंगे और उसके प्रति स्वेच्छा से निष्ठा रखते हुए उसकी सर्वसत्ता को स्वीकार करेंगे। मैं और कुछ नहीं कहना चाहता, केवल एक ही बात यह कह कर मैं अपना कथन समाप्त कर दूंगा। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बहुत महत्त्वपूर्ण न समझने की एक प्रवृत्ति आज सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है और इसे रोकना ही होगा। हमें अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के प्रति अधिक ध्यान देना होगा जिससे कि दुनियां वस्तुतः एक जगत—स्वतंत्र एक जगत बन सके।

मेरे मित्र श्री सर्वटे का संशोधन उस बात से सम्बन्ध नहीं रखता जो अनुच्छेद 40 में दी हुई है। श्री सर्वटे देखेंगे कि अनुच्छेद 40 में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की बात कही गई है और जो संशोधन उन्होंने रखा है वह सम्बन्ध रखता है भारतीय नागरिकों के गुणों से। मैं नहीं समझता कि यह संशोधन वस्तुतः यहां प्रासंगिक है। मेरी समझ से इसे इस अनुच्छेद में स्थान नहीं मिलना चाहिए। इन शब्दों के साथ, उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर के संशोधन नं. 1018 पर मैं अपने संशोधन नं. 82, 83 और 84 को एक ही संशोधन के रूप में पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना आपका संशोधन भी वैसा ही है जैसा श्री कामत का।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 1019–श्री के.टी. शाह।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 40 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'40. The Federal Republican Secular State in India shall be pledged to maintain international peace and security and shall to that end adopt every means to promote amicable relations among nations. In particular the State in India shall endeavour to secure the fullest respect for international law and agreement between States and to maintain justice, respect for treaty rights and obligations in regard to dealings of organised peoples amonst themselves.' ''

(भारत का संधानीय असाम्प्रदायिक गणतंत्र राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं नि:शंकता को बनाये रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध रहेगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह हर उपायों का अवलम्बन करेगा जिससे राष्ट्रों के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बढ़े। भारतीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा समझौतों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना कायम करने के लिए तथा संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में न्याय और संधि सम्बन्धी अधिकारों एवं विबन्धनों के प्रति सम्मान-भाव बनाये रखने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करेगा।)

श्रीमान्, सभा से इस प्रस्ताव की सिफारिश करने में शुरू में ही मैं यह स्वीकार करूंगा कि जहां तक कि इनके बाह्य आकार से प्रतीत होता है, उसके तथा अनुच्छेद 40 के मूल विचारों में कुछ अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता। जो भी अन्तर दिखाई दे सकता है वह केवल शब्दों के ही सम्बन्ध में होगा। किन्तु मैं कहूंगा कि अगर ऊपर से देखेंगे तो हो सकता है कि यहां अन्तर आपको शब्दों का ही मिले, पर मेरी समझ से तो शब्दों के अन्तर के पीछे दृष्टिकोण का, विचारधारा का अन्तर है और मनोभिप्राय का भी अन्तर है। मैं तो आग्रह करूंगा, श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में संशय की कोई गुंजाइश नहीं रह जानी चाहिए। उदाहरण के लिये मैं बताऊंगा कि मूल अनुच्छेद में यह कहा गया है कि:

''That the State shall promote international peace and security by the prescription of open, just and honourable relations between nations, by the firm establishment of the understandings of international law as the actual rule of conduct among governments

and by the maintenance of justice and respect for treaty obligations in the dealings of organised people with one another.''

(राष्ट्रों के बीच, अगुप्त न्याय तथा सामान्य सम्बन्धों का विनिधान करके अन्तर्राष्ट्रीय विधि की मान्यताओं को राज्य के पारस्परिक आचार के वास्तविक नियम के रूप में दृढ़तापूर्वक स्थापित करके तथा संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में न्यायसंधारण और संधिबन्धनों का पालन करके, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और नि:शंकता को बढ़ायेगा।)

इस सम्बन्ध में मैंने जोर इस बात पर दिया है कि ऐसे अनुच्छेदों को विधान में स्थान देकर हम केवल अस्पष्ट रूप से ही ऐसा वचन नहीं देना चाहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने का हम प्रयास करेंगे या ऐसा करना अपना दायित्व समझेंगे। इस सम्बन्ध में सबसे पहले मैं यह चाहता हूं कि भारतीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो जाये। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा-परिषद् में नि:शस्त्रीकरण के सम्बन्ध में जो हम झगड़ा देख रहे हैं, नि:शस्त्रीकरण की समस्या के सम्बन्ध में गत 20 वर्षों का जो इतिहास है, इनसे किसी भी तटस्थ पर्यवेक्षक को यह भलीभांति स्पष्ट हो जायेगा कि संसार के शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की वस्तुत: नि:शस्त्रीकरण की कोई इच्छा नहीं है। वे सुरक्षा और शान्ति मानवजाति के लिए नहीं चाहते हैं बल्कि वह चाहते हैं केवल अपने मित्रों के लिए, साथियों के लिए और अपने लिये तो अवश्य ही। जब तक आप यह सोचते रहेंगे कि पहले अन्य राष्ट्र नि:शस्त्र हों तब मैं नि:शस्त्रीकरण को अपनाऊंगा, तब तक नि:शस्त्रीकरण के काम में, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की प्राप्ति के लिये पहली मंजिल है, कभी भी आपको सफलता नहीं मिल सकती है। मैं कहूंगा कि इस सम्बन्ध में किसी न किसी को श्रीगणेश करना ही होगा और यह श्रीगणेश तब तक नहीं हो सकता जब तक कि खुल कर कोई राष्ट्र अपनी यह नीति घोषित न कर दे कि हमारा राष्ट्र शांति स्थापना के लिये, अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मैत्री को स्थायी रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। जब तक ऐसी नीति नहीं घोषित की जाती है तब तक नि:शस्त्रीकरण एवं शान्ति-स्थापन के सम्बन्ध में वास्तविक रूप से कार्यारम्भ करना असम्भव है।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं मानता हूं कि आज हमारे चारों ओर अविश्वास और संदेह का वातावरण व्याप्त है। ऐसे वातावरण में किसी देश में भी कोई नागरिक नहीं मिलेगा जो निःशस्त्रीकरण की दिशा में पहले कदम उठाकर अपने राष्ट्रीय सुरक्षा और स्वातंत्र्य को संकट में डालने के लिए तैयार हो। किन्तु अपने देश के सम्बन्ध में, मैं साहसपूर्वक सभा के सामने कह सकता हूं कि हमारे महान नेता की यही शिक्षा रही है, यही आदर्श रहा है और उन्होनें स्पष्ट शब्दों में अहिंसा को ही हमारे आचरण की कसौटी बताया, न केवल व्यक्ति के लिए ही बल्कि समस्त राष्ट्र के लिए। यह अहिंसा, अगर आपकी अनुमति हो तो कहूं, राजनैतिक छल या राजनैतिक औचित्य के विचार से नहीं अपनाई गई थी, जैसा कि मुझे डर है, हम में से कुछ लोग समझते हैं। यह धार्मिक विश्वास की बात थी, और कम से कम उस महापुरुष के लिए तो अवश्य ही, जिसने हमें इसकी शिक्षा दी। अतः हम लोगों के लिए जो कि उसके पद चिह्नों पर चलने का, उसकी शिक्षाओं को मानने का दावा करते हैं, यह उचित है कि कम से कम अपने राज्य को, जिसका कि वह राष्ट्रपिता कहा जाता है, आरम्भ से ही शान्ति-स्थापन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध घोषित कर दें।

क्या इस सम्बन्ध में मैं सभा को उनकी वह घोषणा याद दिलाऊं, जो उन्होंने दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में उपस्थित हो कर स्पष्ट शब्दों में की थी? उन्होंने कहा था कि अगर मुझे स्वराज्य मिला और देश पर कांग्रेस का आधिपत्य रहा तो मैं पहली सलाह उसे यही दूंगा कि वह सेना और पुलिस का तथा अन्य ऐसी हर वस्तु का विघटन कर दे जिससे भारतीय राज्य के अन्दर हिंसा की गन्ध मिलती हो। मैं नहीं जानता कि आप इस समय और इस परिस्थिति में, जिसमें कि आज हम रह रहे हैं, अक्षरशः इस घोषणा का पालन करने के लिए तैयार होंगे। किन्तु इतना मैं जरूर जानता हूं कि जब तक आप इस दिशा में कदम नहीं उठाते और शान्ति-स्थापन की तथा सभी देशों की निःशंकता को सुरक्षित रखने की प्रतिज्ञा नहीं करते तब तक हमारी यह बड़ी-बड़ी घोषणाएं खोखली ही रहेंगी और उनका कोई विश्वास नहीं करेगा। वस्तुतः तब तक हम उसी गिरोह में शामिल समझे जायेंगे

जो शान्ति-स्थापन के लिए बातें तो बड़ी-बड़ी करता है पर सिर से पांव तक अणुबमों का खजाना इकट्ठा करता जाता है और हर संकट के समय, जो कि उसका ही निर्माण है, दूसरों को धमकाता है। इससे तो शान्ति दूरतर होती जायेगी और स्थायी रूप से वह कभी स्थापित नहीं हो सकती, जैसा कि हम चाहते हैं।

और अन्य भी परिस्थितियां हैं, श्रीमान्, जिन से प्रेरित होकर मैं यह स्पष्ट घोषणा सभा के समक्ष रख रहा हूं और चाहता हूं कि विधान में इसे लिपिबद्ध कर लिया जाये। केवल शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रति सम्मान को बढ़ाने की सम्भावना ही शायद हमें राष्ट्रों के उस गुट में शामिल कर दे जो कि आज बन रहे हैं, जिसमें प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध सन्नद्ध दिखाई दे रहे हैं। ये गुट हर साथी को, हर सहायक को अपनी दुरभिसंधि में घसीट लेते हैं जिसके लिए हो सकता है उसको कोई रुचि न हो। अतीतकालीन इतिहास बतलाता है कि हमारी यह प्राय: शिकायत रही है कि हमारी इच्छा के विरुद्ध, बिना हमारी स्वीकृति के हमें ब्रिटेन साम्राज्यवादी आक्रमणात्मक युद्ध में जबरदस्ती घसीटा गया। आज जब हम स्वतंत्र हैं, जब हम अपनी वैदेशिक नीति स्वयं निश्चित कर सकते हैं, जब हम स्वयं यह निश्चय कर सकते हैं कि हमारा अन्य देशों से क्या सम्बन्ध हो, तो क्या यह घोषणा करना ठीक न होगा कि हम तो अभी से शान्ति को प्रश्रय देने की प्रतिज्ञा करते हैं, और शपथ लेते हैं कि अन्य देशों के साथ, अन्य लोगों के साथ जो भी हमारे मत-भेद होंगे उन्हें दूर करने के लिए हम किसी भी कारण से शस्त्र का सहारा न लेंगे? अगर हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं तो कोई कारण नहीं कि हम इस संशोधन को स्वीकार न करें जिसे कि सभा के समक्ष मैं रख रहा हूं।

जिन कारणों का मैंने अभी उल्लेख किया है, श्रीमान्, उससे कम आदर्शमूलक अन्य और कारण भी हैं और वह भी वही सुझाव देते हैं जो कि मैंने प्रस्तावित किया है। अन्य देशों की तुलना में शस्त्रास्त्रों की दृष्टि से हम बहुत कमजोर हैं। हम उन भौतिक साधनों में बहुत पिछड़े हुए हैं जिनसे आधुनिक युद्धों में सफलता मिला करती है। यही नहीं, बल्कि मैं तो सोचता हूं कि हमारे पास आधारभूत वह उद्योग धंधे नहीं हैं—खूब समुन्नत आधुनिक यंत्र सम्बन्धी उद्योग नहीं हैं, रसायन

[प्रो. के.टी. शाह]

सम्बन्धी उद्योग नहीं हैं और न वैज्ञानिक प्रोद्योग ही हैं—जिनके बल पर ही हम अपने साधनों से ये शस्त्रास्त्र प्राप्त कर सकते हैं, जिनसे कि अंततोगत्वा जीत की आशा की जा सकती है और शान्ति-स्थापन में सबल सहयोग देने की आशा की जा सकती है, कम से कम उन लोगों की ओर से जो शस्त्र-समूह द्वारा शान्ति-स्थापन में विश्वास करते हैं।

मैं देख रहा हूं कि हम लोग पुराना सामान ही खरीदते जा रहे हैं। मसलन हमने अभी क्रूजर खरीदा है जो वहां रद्दी टुकड़ों के रूप में फेंका ही जाने वाला था। अथवा हमने जो हवाई जहाज या अन्य हथियार खरीदे हैं वे सब पुराने ही थे। ये शस्त्र और गाड़ियां जो हमने खरीदे हैं, प्राय: उन सबको उसके मालिकों ने रद्दी टुकड़ा ही समझ रखा था और अब उन्हें हमको देकर और भगवान जाने किस कीमत पर, एक तरह उन्होंने हम पर अपनी बला टाल दी है। जो भी हो, मेरा मतलब यह है कि ऐसे सामानों की प्राप्ति के लिए हमें विदेशी निर्माताओं पर बिल्कुल निर्भर रहना पड़ेगा।

दूसरी बुराइयां यहीं नहीं खत्म हो जाती। आधुनिक शस्त्रास्त्र इतने सटीक बने होते हैं, इन अस्त्रों, गाड़ियों और औजारों के पुरजे इस विशेषता से सममाप के बने रहते हैं कि एक बार आपने जिससे भी युद्ध-सामग्री खरीदी, फिर हमेशा आपको उसी से खरीदना पड़ेगा, वरना आपका पहले का खरीदा हुआ सब सामान बेकार हो जायेगा।

ऐसी स्थिति में अगर हम किसी खास गुट से मिले जाते हैं जो हमें अपनी सैन्यवाहिनी को, जहाज़ी और हवाई बेड़े को अन्य किसी देश के जंगी संगठन के अनुरूप बनाने पर बाध्य करता है और शस्त्रास्त्र वृद्धि में हम उसकी होड़ करते हैं, तो मेरी समझ से हम भयानक विपत्ति को आमंत्रित करेंगे और अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता के लिये अपने को सदा के लिए दूसरों पर निर्भर कर देंगे। इससे तो हमें भरसक बचना चाहिए।

इस तरह की कठिनाइयों से बचने का सर्वोत्तम मार्ग जो मुझे दिखाई देता है, वह यह है कि हम यहां और अभी इस बात की प्रतिज्ञा ग्रहण करें कि हमारा

राष्ट्र किसी भी प्रकार का युद्ध न करेगा और हम सदा अपने देश तथा सभी देशों के लिए शान्ति और नि:शंकता बनाए रखने के पक्ष में हैं। उपाध्यक्ष महोदय, केवल मौखिक प्रतिज्ञा करना ही पर्याप्त नहीं है। आशा है कि कोई भी ऐसा नहीं समझेगा कि इसमें किसी मानसिक अपवाद की गुंजाइश है और मैं तो इसे बिल्कुल ही बुरा समझूंगा। विधान में ऐसी अभिव्यक्ति हमें अपने उस आदर्श के ख्याल से रखना चाहिए, जिसके आधार पर अब तक हमने अपने कार्यों और नीतियों को सदा निर्धारित किया है और साथ ही उन महत्त्वपूर्ण कारणों से भी इसे रखना चाहिए, जिसका मैंने सभा के सामने इस प्रस्ताव की सिफारिश करते हुए उल्लेख किया है।

(संशोधन सं. 1020 और 1024 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन सं 1025 अब लिया जाता है, जिसे श्री दामोदर स्वरूप सेठ और श्री मोहनलाल गौतम ने सम्मिलित रूप से भेजा है।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 40 में निम्नलिखित अंश अन्त में जोड़ दिया जाये:

'It shall also promote political and economic emancipation and cultural advancement of the oppressed and backward peoples, and the international regulation of the legal status of workers with a view to ensuring a universal minimum of social rights to the entire working class of the world.'

(राज्य-पीड़ितों और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति और सांस्कृतिक समुत्थान को तथा श्रमिकों की वैधानिक स्थिति के अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन को भी बढ़ावा देगा जिससे कि विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग को सार्वभौम आधार पर एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार निश्चित रूप से प्राप्त हो सकें।)''

उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 40, जहां तक कि यह पहुंच पाता है, समुचित ही प्रतीत होता है, पर दुर्भाग्य से यह काफी दूर तक नहीं जाता। यह तो ठीक है कि इसमें अन्तर्राष्ट्रीय शांन्ति और नि:शंकता को बढ़ाने पर जोर दिया गया है

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

किन्तु उन कतिपय मूलभूत कारणों की उसमें बुरी तरह उपेक्षा की गई है, जिनको लेकर ही प्राय: युद्ध का दावानल भड़का करता है और दुनिया में विनाश और बेकारी आया करती है। पीड़ित और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति के लिए उस अनुच्छेद में कुछ भी नहीं कहा गया है और न इसी बात के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है कि विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग की वैधानिक स्थिति का अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन करके उन्हें एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार अवश्य ही दिलाया जाये।

यह स्पष्ट है श्रीमान्, कि जब तक शांति एवं नि:शंकता को भंग करने वाले मूलभूत कारणों को हम दूर न करेंगे, तब तक केवल राष्ट्रों के बीच-एक आपसी समझौता करके राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाये रखना सम्भव न होगा। पीड़ित और पिछड़े हुए लोगों का अस्तित्व ही प्राय: विश्व-शांति के लिए संकट रहा है। उनके अस्तित्व के कारण ही विश्व समाज शोषक एक रक्त पिपासु वर्ग को उनके शोषण के अधम काम में प्रलोभन और बढ़ावा मिला करता है। इसी के कारण पूंजीवाद को प्रश्रय मिलता है, तथा साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद फूलता-फलता है, जिससे प्रादेशिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध हुआ करते हैं।

जहां तक श्रमिकवर्ग का सम्बन्ध है वे लोग तो अभी अपने सामाजिक अधिकारों में से उन न्यूनतम अधिकारों को प्राप्त नहीं कर पाये हैं जो न्यूनतम अधिकार सब जगह के श्रमिकों को मिले हुए हैं। आज भी श्रमिक ही पृथ्वी के प्राण हैं, यही लोग सम्पत्ति का उत्पादन करते रहते हैं, इन्हीं के परिश्रम के कारण आज जीवन-यापन सम्भव है। फिर भी हम देखते हैं कि इस वर्ग की आज कहीं पूछ नहीं और विश्व में कहीं भी इन बेचारों का जीवन सुखमय नहीं है। हम देखते हैं कि विश्व में सर्वत्र ही लाखों श्रमिक अनाथ और भिखमंगे हुए जा रहे हैं, उनके रहने और खाने का कोई ठिकाना नहीं है। यह एक विचारणीय बात है, जब दुनिया की समस्त सम्पत्ति का उत्पादन करने वाले इस श्रमिकवर्ग की यह दुरवस्था है कि उसका जीवन-धारण करना कठिन है, तो भला कौन जीवित रह सकेगा? मैं विनम्रतापूर्वक पूछता हूं कि जब पृथ्वी पर प्राणी ही न रह जायेंगे तो उत्पादन कौन करेगा? जब श्रमिकवर्ग ही मर जायेगा तो फिर दुनिया में जी ही

कौन सकेगा? अभी कल तक भारत एक पीड़ित राष्ट्र था और मैं समझता हूं कि आज भी उसकी गणना प्रगतिशील समुन्नत राष्ट्रों में नहीं की जा सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि आज जब हम स्वाधीन भारत का विधान निर्माण करने जा रहे हैं तो हम राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही हितों के लिए पीड़ित और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति पर पूरा जोर दें, विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग की वैधानिक स्थिति का अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन करके सर्वमान्य सिद्धान्तों के आधार पर उनके लिए एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार निश्चित कराने पर जोर दें। इसका अभाव ही अब तक विश्व की शान्ति और नि:शकता को भंग करने का कारण रहा है। जब तक उनके अधिकार निश्चित नहीं किये जाते, मुझे डर है, श्रीमान्, कि शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने का हम जो भी प्रयास करेंगे वह सफल नहीं होगा। अत: मुझे यह आशा है कि सीधे-साधे और किसी की क्षति न करने वाले मेरे संशोधन को यह सभा स्वीकार कर लेगी।

श्री बी.एच. खार्डेकर (कोल्हापुर): उपाध्यक्ष महोदय डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किए हुए संशोधन का समर्थन करने के लिए तथा अनुच्छेद 40 के सम्बन्ध में सरसरी तौर पर कुछ शब्द कहने के लिए मैं यहां खड़ा हुआ हूं। मैंने वचन दिया है कि संक्षेप में ही अपनी बात समाप्त करूंगा और यह तो मैं कह सकता हूं कि स्वभाववश कोई असंगत बात मैं कह नहीं सकता।

इस अनुच्छेद का समर्थन करते हुए दो या तीन बातों के बारे में मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं। यह तीन बातें ये हैं। आधुनिक इतिहास को देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय विधि की आज क्या स्थिति है, भिन्न-भिन्न राष्ट्रों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है तथा यह कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर हमारे देश को क्या महत्त्वपूर्ण योगदान देना है।

प्रसिद्ध विधिवेत्ता श्री आस्टिन का कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि नाम की कोई चीज नहीं है। अगर ऐसी कोई चीज है तो वह है केवल आस्तिक नैतिकता। संक्षेप में उन्होंने इसके तीन कारण बताये हैं और वह ये हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि के निर्माण तथा पालन के लिए न तो कोई विधान मंडल है, न न्यायधीश वर्ग

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

है और न कोई अधिशासी वर्ग ही है। श्री आस्टिन का यह कहना कि आस्तिक नैतिकता नामक वस्तु का अस्तित्व हो सकता है, यह भी मेरी समझ से गलत है। अगर राष्ट्रों में नैतिकता होती तो आज जो कुछ हो रहा है वह न होता। अगर आज राष्ट्रों में कोई नैतिकता है तो वह है केवल लूट की नैतिकता। अगर आज राष्ट्रों में कोई कानून है तो वह केवल जंगलियों का क्रूरों का कानून जिसमें ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' के सिद्धान्त की ही मान्यता प्राप्त है। यही कारण है, जो मैं यह समझता हूं कि इस सम्बन्ध में भारतवर्ष ने जो भाग लिया है और लेगा वह सब डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है; जिसमें न केवल शब्द सौष्ठव ही है बल्कि यह अभिप्राय भी सन्निहित है कि अगर आवश्यक हो तो यह देश इस सम्बन्ध में समुचित कार्रवाई भी कर सकता है। भारतवर्ष को इस सम्बन्ध में जो योगदान देना है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आस्तिक नैतिकता की नींव आज विश्व में रखनी ही होगी और यह काम भारत जैसा देश ही कर सकता है जिसको अध्यात्म विरासत के रूप में मिला है।

श्री आस्टिन की इस विचारधारा के समर्थकों में हम श्री ग्रे जैसे विधिवेत्ताओं को पाते हैं। पर साथ ही सर्वश्री हाल, वेस्टलेक, ओपेनहीम तथा अन्य कई अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विधि-विशारद भी हैं, जिनको अन्तर्राष्ट्रीय विधि को मान्यता देने का मूर्त्तिमान स्वरूप देने का प्रबल उत्साह है, जबरदस्त चिन्ता है और बड़े ही जोश से वे इसका पक्ष प्रतिपादन करते हैं। पर अगर संक्षेप में कहा जाये तो गम्भीरता नहीं बल्कि लड़कपन के साथ ये अपना पक्ष प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि का होना नितान्त आवश्यक है और इसलिए हम अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अस्तित्व को मान लेते हैं। यही बात बड़ी मूर्खतापूर्ण लगेगी अगर इसे मै यों कहूं: ''मैं चाहता हूं कि मेरी जेब में 1 हजार पौंड हों। पर अगर कोरी कल्पना के आधार पर ही मैं यह मान लूं कि मेरे पास हजार पौंड हैं तो फिर हम पागल से कम नहीं हैं।'' कल्पना ही उनके इस विचार की जननी है और अगर केवल कल्पना से ही मनोरथ पूर्ण होता हो तो फिर भिखमंगे भी यह सोच सकते हैं कि वह शान से घोड़े पर सवार होकर चल रहे हैं। इसी

प्रकार वह सोचना भी कोरी कल्पना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि हो तो शांति स्थापित हो जायेगी। पर दुर्भाग्य से वस्तुस्थिति यह नहीं है। श्री ब्राडन, जेनिंग्स तथा अन्य कई विधि-विशारद इस सम्बन्ध में मध्यवर्त्ती मार्ग का अवलम्बन करते हैं उनका कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि न तो सर्वरोगहारी कोई महौषधि ही है और न यह एक असंभव कल्पना ही है। यह अभी निर्माण प्रक्रिया में है, बन रही है और शनैः शनैः इसका विकास होता जा रहा है। कुछ हद तक मैं इस विचार को जरूर मानता हूं कि उस सम्बन्ध में अगर राष्ट्रों को और खास कर भारतवर्ष को कोई पथप्रदर्शन करना है, तो बावजूद उन समस्त अव्यवस्थाओं के, जो कि आज चारों ओर दृष्टिगोचर हो रही है, हम किसी न किसी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय विधि प्रवृत्त कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विधि-विशारदों के जो एतद्विषयक सिद्धान्त हैं, उनकों सारभूत बनाने का अब तक जो प्रयास किया गया है उसका उल्लेख, जो मुझे दो-चार मिनट का समय मिला है उसमें मैं करूंगा। दुर्भाग्य से राष्ट्र-संघ (League of Nations) जैसा कि हम सभी जानते हैं, बिल्कुल ही असफल रही; ऐसा क्यों हुआ? यह इसलिए हुआ कि वह लुटेरों का संघ था। मेरी मुलाकात एक मित्र से हुई थी जिन्होंने बताया कि आखिर राष्ट्र-संघ के लज्जास्पद रूप में असफल होने के क्या कारण थे। उनके पिता ने उन्हें ये कारण बताये थे। राष्ट्र संघ का प्रधान कार्यालय स्विट्जरलैंड के जिनेवा शहर में रखा गया था। वहां का स्वास्थ्यवर्धक जलवायु आल्प्स पर्व का शाही दृश्य, अत्युत्तम सुस्वादु भोजन, वासना जगाने वाली रमणियां, विदेशी संगीत तथा भव्य सभा भवन, ये सब ऐसी चीजें थीं जो भोग-विलास की यथेष्ट सामग्री प्रदान करती थीं और इन्हीं के कारण राष्ट्र संघ पञ्चत्व को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उसकी अन्य गति हो ही नहीं सकती थी, क्योंकि उस संस्था का निर्माण ही इसलिए हुआ था कि वारसलीज की सन्धि द्वारा जो अन्याय किया गया था उसे वह स्थायी रूप से बना रहने दें। राष्ट्र-संघ के बाद अब उसका उत्तराधिकारी हुआ है संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisaton)। यह भी बड़ी दुर्बल, दीन और शक्तिहीन संस्था जान पड़ती है। किन्तु इस दुर्बल संस्था को समर्थन और सहयोग देकर हमारे प्रधानमंत्री ने बड़ी ही बुद्धिमता, नीतिज्ञता और नैतिकता का काम और ठोस काम किया है। अच्छे कार्यों को सम्पादित करने के लिए जो भी माध्यम या संस्था स्थापित की जाये, उसको सशक्त बनाना ही चाहिए और मैं समझता हूं कि जो अनुच्छेद

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

निर्देशात्मक सिद्धान्तों के लिए यहां रखा गया है वह उसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए रखा गया है। जैसा कि मैंने अभी कहा है, आध्यात्मिकता भारत को विरासत के रूप में प्राप्त हुई है। शान्ति स्थापना ही भारत का उद्देश्य है। स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द से लेकर विश्व कवि टैगोर और महात्मा गांधी सभी शान्ति-स्थापन के उद्देश्य की पूर्ति के प्रयास में ही लगे रहे हैं। भारत की भूमि में यहां के प्रत्येक निवासी के हृदय में, अहिंसा का बीच संस्कारत: वर्तमान है। यह हमारे लिए कोई नई चीज नहीं है। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में जो कुछ किया, वह यही है कि उन्होंने उसे और भी मजबूत बनाया। हमारा आद्योपान्त इतिहास बतलाता है कि हम सदा ही शान्तिप्रिय रहे हैं, हमने कभी भी आक्रमणात्मक प्रवृत्ति नहीं अपनाई और इसका कारण यह नहीं है कि हम दुर्बल रहे हैं, बल्कि इस कारण कि अहिंसा और शान्ति हमारे रक्त में व्याप्त हैं। इसलिए यह हमारे इतिहास, हमारी परम्परा एवं संस्कृति के अनुरूप ही है कि हम शान्तिप्रिय राष्ट्र हैं और यह प्रयास करने चले हैं कि समस्त विश्व में शान्ति स्थापित हो।

अनुच्छेद के कतिपय अंशों के सम्बन्ध में मुझे कुछ संदेह है, श्रीमान्, कि हम सबके ही दोस्त बने रहे सकेंगे। साधारण बुद्धि तथा अनुभव यही बतलाते हैं कि जो सबके मित्र होते हैं, कभी-कभी उनको कोई भी मित्र नही मिलता है। इसलिए जब हम यह चाहते हैं कि हमारे लक्ष्य और साधन दोनों ही पवित्र हों तो हमें अपनी नीति को कुछ और स्पष्ट कर देना चाहिए। हम रूस को यह कह सकते हैं, बल्कि हमें कह देना चाहिए:

> ''हम आपको स्वीकार करते हैं, आपके लक्ष्यों और आदर्शों की हम प्रशंसा करते है। किन्तु आपके साधन कठोर हैं और कभी-कभी तो वे संदेहास्पद होते है।''

इंग्लैंड और अमेरिका को हम यह जरूर कहें:-''आपके उद्देश्यों और आदर्शों के सम्बन्ध में हमें बड़ा सन्देह है। किन्तु आपके साधन बहुत ही संगत और सभ्य है। हमें अपनी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट आभास अवश्य ही दे देना चाहिए। जब पंडित नेहरू जैसा महापुरुष हमारे विदेशी विभाग का संचालक हैं और जब हमारे राष्ट्रपिता शान्ति और अहिंसा के लिये शक्ति तैयार कर गये

हैं, तो देश के भविष्य के सम्बन्ध में हमें निराश होने के लिये कारण नहीं है। हम तो भविष्य के सम्बन्ध में समस्त विश्व को आशा प्रदान कर सकते हैं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं। इसने देश को एक प्रशस्त मार्ग दिखा दिया है। अनुच्छेद 40 के रूप में जो उनका संशोधन आया है, वह इस बात को पुनः स्पष्ट करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बारे में हमारी नीति और स्थिति क्या होगी। निःसंदेह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समुन्नत करने के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय निःशंकता को बढ़ावा देने के लिए पश्चिम ने तीन बार अपना योगदान दिया है। उसके प्रथम योगदान के फलस्वरूप हेग कांफ्रेंस का जन्म हुआ और द्वितीय योगदान के फलस्वरूप राष्ट्र-संघ की उन्नति हुई और अब उसके तीसरे प्रयास के फलस्वरूप वर्तमान संयुक्त-राष्ट्र संघ की रचना हुई है। किन्तु इस सम्बन्ध में भारत की महती देन है। उसने उस जमाने में भी, जब कि वह पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, इस सम्बन्ध में बहुत बड़ा योगदान दिया है और यह सब किया है शक्ति एवं वैभव का प्रभाव प्रसारित करके नहीं, बल्कि अपने विचारों को अन्तर्राष्ट्रीय विचार-क्षेत्र में प्रसारित करके। टैगोर तथा गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की ही शिक्षा दी; उन्होंने यही शिक्षा दी कि राष्ट्रों में परस्पर मैत्री एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध रहना चाहिए इन महापुरुषों के प्रबल बौद्धिक एवं नैतिक प्रभाव को प्रसारित कर भारत ने इस दिशा में बहुत बड़ा काम किया है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समुन्नत बनाने के लिए भारतवर्ष की यह एक बहुत ही बड़ी देन है और ऐसे जमाने में जब कि सभी राष्ट्र शस्त्र-संग्रह की भयानक होड़ लगाये बैठे हैं और शीघ्र ही आर्थिक-प्रतिद्वंद्विता का प्रबल संघर्ष छिड़ने वाला है। आज जब विश्व की यह स्थिति है तो उसमें भारत के लिए यह निश्चय करना बहुत ही कठिन है कि उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध क्या हों और इस सम्बन्ध में यह क्या योगदान दे। मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव न केवल इतना ही बतलाता है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या करना होगा, बल्कि उन सीमाओं या प्रतिबंधों को भी वह बतला देता है जिनके अन्तर्गत रहते हुए दूसरे देशों के साथ अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के निर्धारण में भारत को अपनी देन देनी है। इस सम्बन्ध में भारत जो भाग लेने जा रहा है वह है ईमानदारी का, सत्य का एवं मैत्री का भाग। अपने महान नेता महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में भारत ने ऐसा करना

[श्री विश्वनाथ दास]

सीख लिया है। हमारे कामों में कोई दुराव और छिपाव की बात नहीं है। हमने जो पथ ग्रहण किया है वह साफ है, उसमें गोपनीय कोई भी बात नहीं है। भारत ने जो रास्ता अपनाया है तथा अन्य देशों ने जो रास्ता अपनाया है उसमें यही अन्तर है।

संयुक्त-राष्ट्र संघ के साथ वर्तमान में या आगे चलकर क्या सम्बन्ध हो, इस पर जब हम विचार करते हैं तो हम यह देखते हैं कि यह संस्था गुटों में बंट गई हैं। हम स्पष्ट शब्दों में कह चुके हैं कि हम किसी भी खास गुट में शमिल नहीं हैं। यद्यपि हमारा राष्ट्र अभी प्रौढ़ नहीं हुआ है, यह सद्य: जात एक नव स्वतंत्र राष्ट्र है, अपरिमित साधनों के होते हुए भी हमारा देश अभी दुर्बल है क्योंकि अभी इन साधनों को हमें विकसित करना है; फिर भी किसी भी गुट में शामिल न होने की हमने साफ शब्दों में घोषणा कर दी है। इन दो बड़े-बड़े गुटों में आज जो संघर्ष चल रहा है उसमें हमारी स्थिति बड़ी ही कठिन एवं दु:खद हो गई है। हमें किसी गुट में शामिल नहीं होना है और अपनी रक्षा और नि:शंकता के लिए हमें अपना बचाव भी करना है। यद्यपि हमारे माननीय नेता पं. जवाहरलाल नेहरू ने हमें बताया है कि हमारे निकटवर्त्ती अथवा मध्यपूर्व के देशों में साम्प्रदायिकता अथवा धर्म के आधार पर राज्य निर्माण की कोई प्रवृत्ति नहीं वर्तमान है। पर अभी हाल में समाचार पत्रों में यह समाचार निकला है कि ''इस्लाम खतरे में है'' का नारा प्राय: सभी मुस्लिम अरब देशों को भारत के विरुद्ध संगठित करता जा रहा है। हमारी एक कठिनाई तो यह है। हमारा पड़ौसी राज्य पाकिस्तान दुर्भाग्य से हमें अपना प्रधान शत्रु समझता है; और बावजूद इस बात के कि पाकिस्तान बनाने पर हम राजी हो गये थे, ताकि हम लोगों में शान्ति और सद्‌भावना स्थापित हो जाये। फिर भी वह हमें शत्रु समझता है और ''इस्लाम खतरे में है'' का नारा लगाता है जिससे मुस्लिम देश हमारे विरुद्ध एक होते जा रहे हैं।

दूसरी बात यह है, श्रीमान्, कि पाकिस्तान और भारत के प्रतिनिधियों ने संयुक्त-राष्ट्र संघ में सम्मिलित रूप से काम कर यह तो अवश्य व्यक्त किया है कि उनके लक्ष्य एक ही है। किन्तु फिर भी यह एक सत्य है कि जब उस संस्था में दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के प्रश्न पर वाद-विवाद हो रहा था, तो मुस्लिम देशों ने भारत का साथ वहां छोड़ दिया। इससे हम लोगों को यही विश्वास होता

है कि इस में ब्रिटेन तथा दक्षिणी अफ्रीका दोनों का ही छिपे तौर पर हाथ है और मुस्लिम देश उनके इशारे पर चल रहे हैं। इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हमारी दशा कितनी कठिन है, कितनी असहाय है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि हमारे नेताओं ने जोरदार शब्दों में यह घोषित कर दिया है कि हमारा देश किसी भी गुट-विशेष के साथ नहीं है। हमें किसी गुट से कोई सहायता नहीं मिलती है, बल्कि कई गुट तो इस बात की भी कोशिश करते हैं कि ऐसा कोई भी कार्य न हो जिससे भारत की समुन्नति में हमें सहायता पहुंच जाये। ऐसी स्थिति में मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि मेरे मित्र सेठ दामोदरस्वरूप ऐसा संशोधन पेश करें जो इस सभा से एक ऐसी स्थिति को स्वीकार करने की बात कहता हो, जो देशहित में कतई ठीक नहीं है। उनका संशोधन हमसे यह कहता है, श्रीमान्, कि हम विश्व के उन लोगों को स्वतंत्र कर दें, जिनका आज राजनैतिक एवं आर्थिक शोषण किया जा रहा है। विश्व की इन शोषित जातियों के स्वतंत्र करने का जो कार्यक्रम इसमें रखा गया है, उसको व्यवहार में लाने के लिए आखिर भारत में आज अपेक्षित सैन्य बल कहां है? हां यह हो सकता है कि कुछ समय बाद भारत उनका पथ-प्रदर्शक बन सके और विश्व के शोषित देशों के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट कर सके। हम यही आशा करते हैं, पर इसके लिए समर्थ होने में हमें कितना समय लगेगा, यह तो परमात्मा ही जाने। यह तो जगन्नियता के ही बस की बात है। इसलिए श्री दामोदर स्वरूप से मैं अपील करूंगा कि वह अपने संशोधन को वापस ले लें, जो समाजवादियों के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। डा. अम्बेडकर के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं, जो स्पष्ट और पूर्ण रूप से भारतीय आकांक्षाओं को व्यक्त करता है। मैं इस संशोधन का पूर्णतः समर्थन करता हूं।

श्री बी.एम. गुप्ते (बम्बई : जनरल): डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये हुए संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं, श्रीमान्! वस्तुतः यह हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि वैदेशिक नीति के सम्बंध में अपना प्रमुख सिद्धांत हमने इस अनुच्छेद में यह रखा है कि शांति एवं अन्तर्राष्ट्रीय शांति और निःशंकता को हम सर्वथा प्रोत्साहन देंगे। निस्सन्देह यह बहुत ही वांछनीय बात है। समस्त विश्व

[श्री बी.एम. गुप्ते]

में मानव हृदय के अन्तरतम प्रदेश में शांति के लिए एक प्रबल तृषा वर्तमान है और महात्मा गांधी इसी तृषा का एक मूर्तिमान रूप थे। दो महायुद्धों की भयानक विभीषिका और बर्बादी के बाद आज पुनः तृतीय महायुद्ध का संकट विश्व के सर पर सवार है और इस विपत्ति से बचने के लिए सारा संसार आज चिन्तित है। व्यक्तिगत रूप से मुझे बड़ी ही खुशी होती, अगर इस अनुच्छेद में बजाय केवल यह कहने के लिए शान्ति को बढ़ावा देना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है, हम शान्ति-स्थापन की कोई प्रणाली निश्चित करते और उस पर जोर देते। मेरी समझ से महात्मा जी ने एक तरीका हमें सुझाया है। श्रमिकों के झगड़ों का निपटारा करने के लिए उन्होंने पंचायत का सिद्धान्त सामने रखा था। जीवन के अन्य क्षेत्रों में तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में भी हम इस सिद्धान्त का सहारा ले सकते हैं। अगर युद्ध से बचना है, तो मेरी समझ से यह अच्छा होता कि पंचायत का ही सहारा लेने की बात हम यहां रखते। मतभेदों का निर्णय युद्ध द्वारा न करके अन्य किसी उपाय से किया जाये और वह उपाय हमें निश्चित कर देना चाहिए। इस प्रयोजन को पूरा करने के लिये पंचायत से अच्छी और कोई संस्था हो नहीं सकती। इसलिए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, अगर हम यहां कह देते कि हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति यह होगी कि आपसी झगड़ों के फैसले के लिए पंचायत-पद्धति को ही हम बढ़ावा देंगे। मैं स्वयं इस आशय का कोई संशोधन तो रखना नहीं चाहता हूं, पर अवश्य ही मुझे खुशी होगी अगर प्रस्तावकर्त्ता महोदय को मेरा यह सुझाव मान्य हो जाये और वह स्वेच्छा से ऐसा संशोधन स्वयं उपस्थित करें। इस सुझाव के साथ मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** उपाध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद 40 यद्यपि इस भाग का अन्तिम अनुच्छेद है, पर मैं इसे महत्त्वपूर्ण समझता हूं। जब चारों ओर एक हलचल मची हो तो हम उससे अलग रहने की जितनी भी कोशिश करें, पर उससे बच नहीं सकते। अगर आप चाहते हैं कि इस देश में शान्ति रहे, यह उन्नति करे तो इसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे आस-पास के देश भी शान्ति बनाये रखें और आर्थिक एवं सामाजिक समुन्नति के पथ पर साथ-साथ चलें। इसलिए हमें इस अनुच्छेद पर जोर देना लाजिमी है, जो इस बात

का आग्रह करता है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का समाधान पंचायत द्वारा तथा अन्य शांतिमय उपायों से करें। मुझे इस तर्क से संतोष नहीं है कि यह अनुच्छेद इस कारण से पर्याप्त है कि उस महान घोषणापत्र में भी, जिसके आधार पर कि संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ है, एक या दो बातों का जिक्र नहीं है। इसी कारण से तो राष्ट्रसंघ (League of Nations) असफल हुआ। दुनिया के राष्ट्र इस समझौते पर अभी नहीं पहुंचे हैं कि सभी जातियों को, चाहे छोटी हों या बड़ी, स्वतंत्र कर देना चाहिए, सभी राष्ट्रों और जातियों को जो किसी भी प्रदेश विशेष में बसी हों स्वतंत्र कर देना चाहिए कि वह अपना प्रबन्ध आप करे। राष्ट्र संघ के अनुच्छेद 10 में इस भावना को स्थान नहीं दिया गया है। और आज इस भावना को संयुक्त-राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में भी स्थान नहीं दिया गया है। जब तक कि इस भावना को हम प्रधान स्थान नहीं देते, तब तक मैं समझता हूं कि विश्व में वास्तविक शान्ति हो नहीं सकती। आज भी अफ्रीका तथा संसार के अन्य भागों की रंगीन जातियों को यह विश्वास नहीं दिया गया है कि वह स्वतंत्र कर दी जायेगी। इन पर जबरदस्ती शासनादेश (mandates) लादा जाता है और इसका कभी अन्त नहीं होता। इन शासनादेशों का केवल हस्तान्तरण मात्र हो जाता है और शासन की बागडोर एक के हाथ से दूसरे के हाथ में चली जाती है, पर इन बेचारों को स्थायी रूप से पराधीनता में ही रहना पड़ता है। विभिन्न देशों के राज्य-क्षेत्रों की अखंडता की रक्षा इनकी सामूहिक जिम्मेदारी से की जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हालैंड को इन्डोनेशिया पर प्रभुत्व बनाये रखने दिया जायेगा तथा फ्रांस को एशिया और अफ्रीका में अधिकृत भूभागों पर कब्जा बनायें रहने दिया जायेगा। इन झगड़ों के फैसले के लिए हम चाहे पंचायत का सहारा लेने का सुझाव दें या अन्य कोई शान्तिमय उपाय बतलावें, पर यह धांधली यों ही चालू रहेगी। गत महायुद्ध प्रारंभ होने का कारण यह था कि ब्रिटेन साम्राज्यवादी राष्ट्र था और छोटा सा देश बेल्जियम भी साम्राज्यवादी था और इस तथ्य ने जर्मनी एवं जापान को इस बात के लिए उत्साहित किया कि वे भी साम्राज्यवादी शक्ति बनने की चेष्टा करें।

मैं तो बहुत चाहता हूं कि इस आशय की एक धारा यहां हो कि भारत सरकार का यह कर्त्तव्य होगा और इसके लिए वह सतत् प्रयास करेगा कि विश्व के सभी लोग पराधीनता के बन्धन से मुक्त हो जायें। सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को, सभी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

छोटी-बड़ी जातियों को इस बात की स्वतंत्रता प्राप्त हो जाये कि जो प्रदेश भगवान ने उन्हें दिया उसके अन्दर सारा प्रबन्ध वह खुद करें। पर आज हम जिस स्थिति में हैं उसमें ऐसा कर नहीं सकते। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला करने के लिए पंचायत ही एकमात्र रास्ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में भी यह बात रखी गई है। उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किए गए इस संशोधन में एक खण्ड (घ) जोड़ना चाहूंगा। अगर सभा को यह मंजूर हो और आप भी इसे स्वीकार करें तो मैं यह खण्ड रखना चाहूंगा:

''and (d) to encourage the settlement of international disputes by arbitration.''

[तथा (घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देगा।]

श्री गुप्ते के संशोधन में यही खण्ड (घ) के रूप में आया है पर उन्होंने अपने संशोधन को पेश ही नहीं किया। डा. अम्बेडकर के संशोधन की अन्य जो बातें हैं उनका भी वस्तुत: तब तक कोई प्रभाव नहीं होगा जब तक कि उनको अमल में लाने का उपाय भी न सुझाया जाये। केवल पंचायत के जरिये ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध शान्तिमय रखे जा सकते हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों पर—चाहे वे व्यापार के सम्बन्ध में हों और किसी बात के—अमल किया जा सकता है। शस्त्रों का सहारा लेकर हम इनका निपटारा नहीं कर सकते। इसलिए श्रीमान्, अगर सभा इसे स्वीकार करे और डा. अम्बेडकर के लिए यदि यह मान लेना साध्य हो तो मैं इस उपखण्ड (घ) के रूप में निम्नलिखित अंश को जोड़ने का सुझाव दूंगा।

''and (d) to encourage the settlement of international disputes by arbitration.''

[तथा (घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देगा।]

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा श्री आयंगर को यह अनुमति देती है कि वह डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित खण्ड में यह वृद्धि करें?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** नियमित रूप में आप इसे अब पेश करें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्त में निम्नलिखित उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

"and (d) to encourage the settlement of international disputes by arbitration."

[तथा (घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देगा।]

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): मैं इसके विरुद्ध हूं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्ष:** श्री आयंगर के संशोधन पर अगर आप विचार करना चाहते हैं, त्यागी जी, तो आपको इस पर मत व्यक्त करने का अधिकार है।

***श्री महावीर त्यागी:** डा. अम्बेडकर का संशोधन कोरी सदिच्छा मात्र ही है। इससे विधान में कोई सारपूर्ण बात नहीं आती है। जहां तक कि हमारे प्रतिनिधियों का विदेश जाने, वहां भिन्न देशों के प्रतिनिधियों से मेलजोल बढ़ाने का सम्बन्ध है, यह संशोधन बहुत ठीक है। किन्तु इसमें जो शब्द रखे गये हैं, इसका जो वाग्विन्यास है, उससे तो यह आश्चर्य होता है कि क्या हम किसी राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध करने की बात तो नहीं सोच रहे हैं क्योंकि मैंने अक्सर यही देखा है कि जब भी कोई राष्ट्र इस लहजे में बोला है तो फौरन ही उसके बाद उसकी तोपें, उसके हवाई जहाज मैदान में उतर आये हैं।

दूसरे देशों ने ऐसे शब्दों का सदा दुरुपयोग ही किया है। मुझे तो सन्देह होता है। हम अपने अभिप्रायों के सम्बन्ध में कोई सवाल भी नहीं कर सकते। आप यह कह रहे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला पंचायत द्वारा हो। पर पंच कहां मिलेंगे? जो लोग यहां पंच बनकर आये हम उनको देख चुके हैं; उन्होंने जिस तरह पंच का काम किया, यह भी हम देख चुके हैं। ईमानदार पंच मिलने ही मुश्किल हैं। ऐसे मामलों में आखिर कोई पंच कैसे फैसला दे सकता है? ऐसे

[श्री महावीर त्यागी]

मामले में तो मैं युद्ध को ही पसन्द करूंगा। युद्ध की विचारधारा भी एक दार्शनिक सिद्धांत है; यह अभिशाप भी है और वरदान भी है। अगर हमारे लक्ष्य यही है; अगर हम शान्ति बनाये रखना चाहते हैं और चाहते हैं कि राष्ट्रों के बीच उचित और सम्मानप्रद सम्बन्ध बना रहे तो मैं कहूंगा कि उसके लिए हमें सबल बनना होगा। अगर आप कमजोर बने रहेंगे, हराभरा चारागाह बने रहेंगे कि पशु आकर आपको स्वतंत्रतापूर्वक चर जायें तो फिर आपकी ये इच्छायें पूरी हो चुकी। इस खण्ड में हमने अपना जो उद्देश्य रखा है उसको पूर्ति के लिए हमें आवश्यकता है शस्त्रों की, इच्छाशक्ति की। इसके लिए नैतिक एवं शारीरिक—दोनों ही—बल अपेक्षित है। इसके लिए हमें यह चेष्टा करनी चाहिए कि हमारा राष्ट्र सैनिक दृष्टि से खूब मजबूत हो; हमारी सैन्य शक्ति, हमारे जहाजी और हवाई बेड़े खूब मजबूत हों। अगर हम अपने "विश्व शान्ति" के स्तुत्य लक्ष्य की पूर्ति करना चाहते हैं तो भारत की भावी सरकार को हमें इस आशय का आदेश देना चाहिए। आज जो स्थिति है उसमें शक्ति की दृष्टि से दुनियां में हमारी क्या हैसियत है? हम बहुत पिछड़े हुए हैं। जब तक हम खूब मजबूत न होंगे हमारी कोई पूछ न होगी। जब तक कि आपके तर्कों को लोग समझेंगे ही नहीं, जब तक कि उनके पीछे बन्दूक की ताकत न हो। आज हम बड़ी ही कमजोर स्थिति में हैं। मैं यह नहीं कहता कि हम अपने पास के पड़ौसी राष्ट्रों के खिलाफ कमजोर पड़ेंगे, पर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अगर आपको अपनी धाक जमानी है तो प्रथम श्रेणी का बलशाली राष्ट्र आपको बनना होगा। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम खूब मजबूत बनें, प्रथम श्रेणी का एक बलशाली राष्ट्र बनें ताकि हमारी आवाज का, हमारे तर्कों का वजन पड़े और लोगों को यह मालूम हो जाये कि उन्हें हमको तंग नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से हमारी उनसे लड़ाई छिड़ जायेगी। इसलिए श्रीमान्, युद्ध प्रिय व्यक्ति के रूप में मैं यह आज़ादी जरूर चाहता हूं कि अगर शान्तिमय उपायों से हम इन लक्ष्यों की पूर्ति में सफल नहीं हुए तो हमें युद्ध द्वारा ही इसकी पूर्ति करने की सहूलियत रहनी चाहिए। इतनी आजादी अपने लिए रखते हुए मैं, जो कुछ आपने कहा है, उसका समर्थन करता हूं क्योंकि आपकी बात केवल कोरी सद्‌दिच्छा की ही बात है।

*__डा. पी. सुब्बारायन__ (मद्रास : जनरल): डा. अम्बेडकर के संशोधन के खण्ड (c) के सम्बन्ध में मैं केवल एक शाब्दिक संशोधन प्रस्तावित करना चाहता हूं।

संशोधन यह है कि उसमें शब्द ''sustain'' की जगह ''foster'' शब्द रखा जाये। डा. अम्बेडकर इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। शायद सभा मुझे यह प्रस्ताव रखने की अनुमति देगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): क्यों?

***डा. पी. सुब्बारायन:** कारण तो स्पष्ट है। मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी भी उसे उतनी ही अच्छी तरह जानते हैं जितना कि मैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** ''sustain'' शब्द की जगह आप ''foster'' शब्द का प्रयोग करना चाहते हैं?

***डा. पी. सुब्बारायन:** हां, क्योंकि ''sustain'' शब्द में शक्ति का भाव सन्निहित है। मैं नहीं समझता कि हम किसी भी हैसियत से न तो वर्तमान भारत सरकार की अथवा न भावी सरकार की हैसियत से शक्ति का उपयोग करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री कामत के तीनों संशोधनों को तथा डा. सुब्बारायन के संशोधन को और माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन को मै स्वीकार करता हूं। और अन्य संशोधनों को मैं नहीं मंजूर करता।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 40 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'40- The Federal Republican Secular State in India shall be pledged to maintain international peace and security and shall to that end adopt every means to promote amicable relations between nations. In particular the State in India shall endeavour to secure the fullest respect for international law and agreement between States and to maintain justice respect for treaty rights and obligations in regard to dealings of organised people amongst themselves.' ''

(भारत का संधानीय असाम्प्रदायिक गणतंत्र राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं नि:शंकता को बनाये रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध रहेगा और इस उद्देश्य की पूर्ति

[उपाध्यक्ष]

के लिए वह हर उपायों का अवलम्बन करेगा जिससे राष्ट्रों के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बढ़े। भारतीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीय-विधि तथा समझौतों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना कायम करने के लिए तथा संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में न्याय और सन्धि सम्बन्धी अधिकारों एवं विबन्धनों के प्रति सम्मान-भाव बनाये रखने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करेगा।)

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''वर्तमान अनुच्छेद 40 के स्थान पर यह रखा जाये:

'40. the State shall endeavour to–

(a) promote international peace and security;

(b) maintain just and honourable relations between nations;

(c) foster respect for international law and treaty obligations in the dealings of organised people with one another; and

(d) encourage settlement of international disputes by arbitration.' ''

(राज्य–

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने का;

(ख) भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच समुचित एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का;

(ग) संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं सन्धि विबन्धनों के प्रति सम्मान बनाये रखने का; तथा

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।)

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 40 में निम्नलिखित शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें:

'It shall also promote political and economic emancipation and cultural advancement of the oppressed and backward peoples, and the international regulation of the legal status of workers with a view to ensuring a universal minimum of social rights to the entire working class of the world' ''

(राज्य पीड़ितों और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति और सांस्कृतिक समुत्थान को तथा श्रमिकों की वैधानिक स्थिति के अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन को भी बढ़ावा देगा जिससे कि विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग को, सार्वभौम आधार पर एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार निश्चित रूप से प्राप्त हो सकें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 40 को संशोधित रूप में स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 40, अपने संशोधित रूप में, विधान में जोड़ा गया।

नवीन अनुच्छेद 40-क

(संशोधन नं. 1026 नहीं पेश किया गया। संशोधन नं. 1027 जो कि श्री अलगूराय शास्त्री के नाम से था उसको स्थगित रखने की अनुमति दी गई।)

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, गत तारीख पर मैंने कई संशोधनों की सूचना दी थी और मैंने ऐसा तब किया जब कि मुझे मालूम हुआ कि इस महती सभा के सदस्यों ने हजारों संशोधन रखे हैं। ये सभी सदस्य यही चाहते थे कि उनकी प्रत्येक भावना को, विचार को विधान में स्थान दिया जाये। फिर मैंने भी इसकी होड़ लगाई। यद्यपि मैं इस मत का था कि विधान पहले से ही बहुत लम्बा हो चुका है। मेरा भी तब यही ख्याल था, विस्तार सम्बन्धी सारी बातें इसमें नहीं आनी चाहिएं और अगर ऐसा हुआ तो विधान उपहासास्पद बन जायेगा। अब मैं देखता हूं कि सदस्यों में सुबुद्धि आ रही है और वे लोग अपने संशोधन नहीं पेश कर रहे हैं। इन चंद बातों के कह देने से ही मेरा अभिप्राय सिद्ध हो गया है। अब मैं इस संशोधन को या अपने अन्य संशोधनों को नहीं पेश कर रहा हूं।

(संशोधन नं. 1029 से 1031 तक पेश नहीं हुए।)

***प्रो. के.टी. शाहः** यह भाग 5 अंश है और इसमें एक बड़ा सैद्धांतिक प्रश्न सन्निहित है, मैं भी यही समझा था कि इस सम्बन्ध में जो बात तय हुई उसके मुताबिक अब हमें पहले के आये हुए संशोधनों पर विचार करना चाहिए। किन्तु उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपके हाथ में हूं। मुझे इस संशोधन को अभी पेश करने में कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** अगर इसे आप पेश करना चाहते हैं तो आपको इसकी आजादी है। और अगर आप इसे अभी नहीं पेश करना चाहते तो आप इसे अन्य स्थल पर भी पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** जब हम भाग 5 पर विचार करेंगे तो उस समय मैं इसे पेश करूंगा।

(संशोधन नं. 1032 और 1033 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्षः** तो भाग 4 अब समाप्त हुआ।

भाग 3

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि अब भाग 3 पर विचार किया जाये।

***उपाध्यक्षः** आज के कार्यक्रम में भी वही है। अब हम भाग 3 को लेते हैं। पहला संशोधन है नं. 238 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं प्रस्ताव करता हूं किः

''भाग 3 में 'मूलाधिकार' शीर्षक की जगह निम्नलिखित शीर्षक रखा जाये।

'Fundamental Rights and Obligations of the State and the Citizen.' ''

(मूलाधिकार तथा राज्य एवं नागरिक के दायित्व)

पहले एक मौके पर एक संशोधन पेश करते हुए मैंने बताया था कि विधान देखने से ऐसा मालूम होता है कि इसमें नागरिकों के दायित्व की बात की बिल्कुल ही उपेक्षा की गई है और इस बात पर जोर दिया गया है...

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं समझता हूं कि प्रो. के.टी. शाह शायद शीर्षक बदलने के लिए संशोधन नं. 238 पेश कर रहे हैं। मैं उनसे अनुरोध करूंगा

कि इस संशोधन को वह उस समय पेश करें, जब इस भाग के सभी अनुच्छेदों पर विचार कर चुकें। शीर्षक में ''Fundamental'' के साथ वह ''Obligatons'' को भी रखना चाहते हैं। इस भाग पर विचार कर लेने के बाद अगर हम यह देखें कि दायित्व का उल्लेख करने वाले अनुच्छेद भी इसमें प्रधान रूप में रखे गए हैं, तो हम इस शीर्षक को बदलने का प्रस्ताव पेश कर सकते हैं। पर अगर इस भाग में दायित्व का उल्लेख करने वाले अनुच्छेदों की प्रधानता नहीं है, तो फिर शीर्षक बदलने का कोई मतलब नहीं। मै। उनसे अनुरोध करूंगा कि शीर्षक सम्बन्धी संशोधन को तब तक के लिए स्थगित रखें, जब तक कि भाग 3 के प्रमुख प्रावधानों पर हम विचार न कर लें।

*__प्रो. के.टी. शाहः__ मैं इस सुझाव को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं कि इस संशोधन को अभी स्थगित रखा जाये। मैं अपने मित्र को केवल यही बता देना चाहता हूं कि किसी खास धारा या धाराओं में ही दायित्व का उल्लेख रहने से शीर्षक का बदलना आवश्यक नहीं है। शीर्षक में परिवर्तन लाकर मैं सभा का ध्यान विधान की एक बहुत ही आवश्यक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसे विधान में रखना हम भूल गए हैं। फिर भी अगर इसे अभी स्थगित रखने की अनुमति मुझे मिलती है, तो आगे किसी मौके पर मैं इसे पेश करूंगा। इस बीच में मैं सुझाव को मान लेता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ यह संशोधन अभी स्थगित रखा जाता है।

(संशोधन नं. 239 नहीं पेश किया गया।)

*__उपाध्यक्षः__ संशोधन नं. 240 स्थगित रखा जाता है।

(संशोधन नं. 241 और 242 नहीं पेश किए गये।)

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त__ (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): संशोधन नं. 243 अब व्यर्थ है। अनुच्छेद 28 तो पास ही हो चुका है। अगर यह न पास हुआ होता तो यह संशोधन जरूरी था। अब इसे मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

अनुच्छेद 7

*__उपाध्यक्ष:__ अब सभा में समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 7 को विधान का हिस्सा समझा जाये। इस सम्बन्ध में आये हुये संशोधनों को अब हम एक-एक करके लेंगे।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ मेरा प्रस्ताव है कि:

''निम्नलिखित शब्द अनुच्छेद 7 के अन्त में जोड़ दिये जायें:

''or under the control of the Government of India.''

यह संशोधन इसलिये जरूरी समझा गया कि उन राज्यक्षेत्रों के अतिरिक्त जो भारत के अंग हैं, अन्य भी ऐसे राज्यक्षेत्र हो सकते हों, जो भारत का अंग न होने पर भी भारतीय सरकार के नियंत्रण में हों। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में बहुधा ऐसे उदाहरण आज मिलते हैं, जहां शासनादेश के अधीन या अमानत के तौर पर राज्य-क्षेत्रों को उनकी शासन-व्यवस्था चलाने के लिए अन्य देशों को सौंप दिया गया है। मेरी समझ से यह वांछनीय है कि मूलाधिकारों के मामले में भारतीय नागरिकों में तथा, अमानत के तौर पर या शासनादेश के अधीन भारतीय नियंत्रण में जो प्रदेश हों, उनके निवासियों में कोई भेदभाव न बरता जाये। इसलिए यह बात वांछनीय है कि यहां ऐसा संशोधन किया जाये, जिससे मूलाधिकारों के पीछे जो सिद्धांत है वह उन क्षेत्रों के निवासियों पर भी लागू हो, जो भारत का अंग न होते हुये शासन-व्यवस्था के सवाल के लिये भारत के नियंत्रण में हों।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मेरा प्रस्ताव है, श्रीमान्, कि:

''संशोधन सूची के संशोधन नं. 246 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 7 के ये शब्द 'and all local and other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India' हटा दिये जाये।''

इसी के साथ मैं अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर देना चाहता हूं कि क्योंकि दोनों का एक ही अनुच्छेद से सम्बन्ध है। मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 7 में 'In this part' शब्द से पहले '(1)' रखा जाये और खंड (1) के पश्चात् निम्नलिखित नया खंड इस रूप में जोड़ा जाये:

'(2) The provision of the this part shall, so far as may be, apply to all local or other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India.' ''

[(2) इस भाग के प्रावधान, जहां तक कि सम्भव है, भारतीय राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत अथवा भारत-शासन के नियंत्रणाधीन रहने वाले सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों पर लागू होंगे।]

जिस समय मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी मैंने ऐसा ख्याल किया था कि समूचा अनुच्छेद 7, जैसा कि मसौदा-समिति ने उसको पुनर्रूप दिया था, एक ही साथ पेश किया जायेगा। पर यहां मूल अनुच्छेद 7 के सम्बन्ध में केवल एक छोटा सा संशोधन ही रखा गया है। मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद से ये शब्द ''all local and other authorities within the territory of India'' हटा दिये जाये और उन्हें अलग एक दूसरे खंड में रखा जाये। अनुच्छेद 7 में ''State (राज्य)'' का यह अर्थ बताया गया है कि उसमें भारत के शासन और संसद् तथा राज्यों में से प्रत्येक के—अर्थात् प्रान्तों के तथा रियासतों के—शासन और विधान-मंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय एवं अन्य प्राधिकारी शामिल हैं।

इससे मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि उस प्रसंग में कुछ अव्यवस्था या नियम-विरोध उत्पन्न होता है। भाग 3 के प्रावधानों को स्थनीय या अन्य प्राधिकारियों पर, अर्थात् जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों आदि पर लागू करने में मुझे वस्तुत: कोई आपत्ति नहीं है। पर मेरी आपत्ति यही है कि जिला बोर्डों तथा म्युनिसिपल बोर्डों और ऐसे अन्य प्राधिकारियों को 'State (राज्य)' न कहा जाये। माननीय सदस्य पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र ने तो यहां एक आपत्ति की है कि 'State' शब्द का प्रयोग प्रान्तों या रिसायतों के लिए भी न किया जाये क्योंकि इनको पूर्ण सत्ता नहीं प्राप्त है किन्तु इस सम्बन्ध में 'State' शब्द के प्रयोग के लिए पूर्णसत्ता का होना जरूरी नहीं है। खैर, पर यहां तो मैं कहूंगा कि जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों को तो 'State' कहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए अपने संशोधन द्वारा मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद के दो खण्ड कर दिए जायें और खण्ड (1) से इन शब्दों को हटाकर खण्ड (2) में रख दिया जाये जिससे 'State' शब्द के सम्बन्ध में अर्थभ्रम न हो और स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों पर इस भाग के प्रावधान लागू भी हो जायें। ऐसा करने से यह अव्यवस्था

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

दूर हो जायेगी कि 'State' शब्द में स्थानीय निकाय न आ सकेंगे और हमारा उद्देश्य भी सिद्ध हो जायेगा।

***श्री सैयद अब्दुर रऊफ** (आसाम : मुस्लिम): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 7 में 'or' शब्द की जगह 'and' शब्द रखा जाये।''

इस अनुच्छेद में हम यह बता रहे हैं कि 'स्टेट्स' शब्द में क्या-क्या शामिल हैं और न केवल उदाहरणों द्वारा ही यह समझायेंगे बल्कि व्यापक रूप में प्रकाश डालकर हमें यह समझाना होगा। इसलिए मेरी राय में 'and' शब्द 'or' शब्द से यहां ज्यादा अच्छा होगा। 'or' शब्द में सम्बन्धवाचक भाव तो अवश्य है पर और अन्य भी कई भाव इसमें व्यक्त होते हैं। साहित्य में तो यह शब्द चल सकता है पर कानूनी बातों में वैधानिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जहां तक हो पूरी तरह भाव व्यक्त करने वाले ही रखने चाहिए। इसलिए इस संशोधन को मंजूर करने की मैं सभा से सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब इस पर वाद-विवाद किया जा सकता है। हां, मुझे यह सूचित कर देना चाहिए था कि संशोधन नं. 249, डा. अम्बेडकर के संशोधन से अवरुद्ध हो जाता है।

***श्री महबूबअली बेग साहब:** (मद्रास : मुस्लिम): मेरी समझ से, श्रीमान्, यह ठीक नहीं है कि कानून बनाने में हम ऐसे शब्द प्रयोग करें जिसका अर्थ उस कानून के भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न हो। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा होगी। इसलिए मैं तो चाहता हूं कि 'State' की परिभाषा इस अनुच्छेद में रखी ही न जाती। और फिर 'State' शब्द में भारत-शासन और भारत की संसद तथा राज्यों के अर्थात् प्रान्तों और रियासतों के शासन और, जैसा कि समझता हूं, उनके विधान-मण्डल एवं स्थानीय निकाय शामिल हैं। यह तो मुझे मालूम है कि स्थानीय प्राधिकारियों (Local authorities) की परिभाषा जनरल क्लाजेज एक्ट (General Clauses Act) में यह दी गई है कि उसमें जिला बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड शामिल हैं। किन्तु ''अन्य प्राधिकारी'' कौन हैं यह मुझे नहीं मालूम है। ''अन्य प्राधिकारी' रखना क्या यहां जरूरी है जबकि इनकी परिभाषा यहां या अन्यत्र कहीं भी नहीं दी हुई है? इसलिए श्रीमान्, जहां तक विधान के इस भाग का सम्बन्ध है 'स्टेट'

शब्द की परिभाषा उतनी व्यापक दी गई है कि उसके अन्दर सभी प्रकार के संस्थान–विधान बनाने वाला निकाय, अधिशासी निकाय अथवा अधिशासी प्राधिकारी, या जिला बोर्ड एवं म्युनिसिपल बोर्ड यहां तक कि सहकारी संस्थान और मेरे हिसाब से तो अन्य प्राधिकारी जैसे के कहीं का सब-मैजिस्ट्रेट भी आ जाते हैं। इसलिए 'स्टेट' शब्द का प्रयोग यहां इस प्रकार किया गया है कि इसमें कहीं का कोई प्राधिकारी भी आ जाता है। 'State' शब्द के लिए यह परिभाषा तो आवश्यकता से अधिक ही व्यापक है। अगर यही परिभाषा हम अन्यत्र कहीं व्यवहृत, उदाहरणार्थ अनुच्छेद 13 में व्यवहृत 'State' (राज्य) शब्द के लिए लेते हैं तो क्या असर पड़ता है। अनुच्छेद 13 के उपखंड 2 को मैं पढ़ कर सुनाता हूं। इसमें कहा गया है कि:

> +'इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखंड (क) की किसी बात से, अपमान लेख, अपमान वचन, मान हानि, राजद्रोह, अथवा शिष्टता या शील पर आघात, या राज्य के प्राधिकार (अथोरिटी) अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रर्वत्तन पर प्रभाव, अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिए अवरोध, न होगा।''

इसका मतलब यह हुआ कि स्थानीय निकाय या किसी प्रान्त का कोई प्राधिकारी ऐसी आज्ञा जारी कर सकता है या स्थानीय निकाय ऐसा उप-नियम या प्रस्ताव पास कर सकता है जिससे अनुच्छेद 13 के उप-खंड (1) (क) में दिये हुए मूलाधिकारों में संशोधन होता हो।

यह कहा जा सकता है कि यहां 'making any law' शब्द रखे गये हैं पर यहां देखना यह है कि 'law' शब्द की परिभाषा दी गई है या नहीं। 'law' शब्द की जो परिभाषा की गई है वह इस समूचे भाग के लिये नहीं है, पर एक अनुच्छेद विशेष—अनुच्छेद 8 के खण्ड (3)—के लिये है। वहां यह कहा गया है कि:

+अनुच्छेद अंग्रेजी में यों है:

''Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law, relating to libel, slander, defamation, sedition or any other matter which offends against decency or morality or undermines the authority or foundation of the State.''

[श्री महबूबअली बेग साहब]

"विधि शब्द में ऐसे सब अध्यादेश (ordinance), आदेश, उपविधि (बाई-ला) नियम, आनियम (रेगुलेशन), अधिसूचना (नोटिफ़िकेशन), रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होगी जिसका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है।"

(Law includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof.)

किन्तु 'लॉ' शब्द की एक व्यापक व्याख्या नहीं की गई है बल्कि अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ ही व्याख्या की गई है जिसमें पास की हुई कोई आज्ञा आ जाये या ऐसा उपनियम आ जाये जो वहां अनुकूल होता हो, क्योंकि हम उन विधियों को रद्द करना चाहते हैं जो मूलाधिकारों से मेल न खाती हों। अगर कोई मैजिस्ट्रेट या म्युनिसिपल बोर्ड ऐसी कोई विधि पास करता है जिससे मूलाधिकारों का अल्पीकरण होता हो तो वह निरर्थक समझा जायेगा। यह तो ठीक ही है। पर क्या भाग 3 के प्रयोजन के लिए 'लॉ' शब्द की व्याख्या की गई है? यहां, अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) के अन्दर 'लॉ' की जो व्याख्या की गई है उसकी मिसाल लेते हुए यह तर्क रखा जा सकता है कि माना कि कोई आज्ञा या उपविधि जो किसी स्थानीय निकाय द्वारा अथवा अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा पास की हुई आज्ञा भी भाग 3 में आये 'लॉ' शब्द में शामिल की जा सकती है। पर "any other authority" शब्द जो रखे गये हैं उनकी तो व्याख्या नहीं की गई है। इसलिये यह कहा जा सकता है और शायद यह कहना बिल्कुल सही भी है, कि तब तो कोई मैजिस्ट्रेट या स्थानीय निकाय अथवा कोई जिलाधीश या मिनिस्टर भी कोई आज्ञा अथवा अधिसूचना जारी कर सकता है। जिससे अनुच्छेद 13 के उपखण्ड (1) (क) में दिये हुए अधिकारों का न्यूनन करता हो। इसलिए मैं यह कहता हूं कि चूंकि 'लॉ' की कोई परिभाषा नहीं दी गई है इसलिए तथा अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) में 'लॉ' की जो परिभाषा दी गई है उसको देखते हुए यहां न केवल अर्थभ्रम ही पैदा हो सकता है बल्कि यह भी हो सकता है कि इससे सारे अधिकारों का अपहरण हो जाये या खण्ड (1) में दिये गये अधिकार निरर्थक

हो जायें या उनका अल्पीकरण हो जाये। मुझे यह मालूम है, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 7 में "unless the context otherwise requires..." शब्द रखे गये हैं। मैं जानता हूं कि जवाब में यह कहा जा सकता है कि इन शब्दों से मेरी आपत्ति का निराकरण हो जाता है। पर मेरा कहना यह है कि केवल विधायी मंडल द्वारा पास की हुई विधि (law) ही विधि नहीं है। विधि यानि लॉ क्या है इसको स्पष्ट कर देना चाहिये। जब तक ऐसा नहीं होता, किसी अधिशासी द्वारा जारी की हुई आज्ञा या अधिसूचना भी इसमें शामिल की जा सकती है। अन्यथा, जहां तक कि इस भाग का सम्बन्ध है किसी भी अधिशासी प्राधिकारी के लिए ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है कि वह कोई कानून बनावे या अन्य कुछ भी करे या कहे। इन सभी स्थलों पर आपने यह कह दिया है कि "इस खण्ड की कोई बात किसी वर्तमान विधि से पैदा हुई असमता, विषमता, असुविधा अथवा विभेद को हटाने के लिए विधि बनाने में बाधक न होगी।" इससे साफ है कि कोई मैजिस्ट्रेट यह आज्ञा जारी कर सकता है जिससे व्यक्ति या व्यक्तियों के शांतिपूर्वक समवेत होने के अधिकार पर रोक लगती हो। इसलिए जब इस शब्दावलि के सम्बन्ध में यह आशंका है कि इसका यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि इससे किसी जिला मैजिस्ट्रेट, अधिशासी निकाय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह यहां दिये हुए अधिकारों का न्यूनन कर दे तो कोई स्थानीय निकाय या अन्य प्राधिकारी इसी जोर से इस अधिकार का दावा कर ही सकता है क्योंकि आपने यहां प्राधिकारी की व्याख्या नहीं की है, इसलिये मैं कहूंगा कि अगर यहां यह मतलब है कि सभी प्राधिकारियों को, जिनका यहां उल्लेख किया गया है, अनुच्छेद 13 क खण्ड (1) के अन्तर्गत दिये हुए मूलाधिकारों के न्यूनन का अधिकार प्राप्त है तो इसका परिणाम बड़ा हास्यास्पद हो सकता है। जैसा कि मैंने अभी बतलाया है कोई मैजिस्ट्रेट या अन्य भी कोई सामान्य प्राधिकारी, इस अनुच्छेद के अधीन यह दावा कर सकता है कि उसे नागरिक अधिकारों को न्यून करने की शक्ति प्राप्त है। इसलिये मेरा कहना यह है कि या तो यह अनुच्छेद अनावश्यक है या अगर वस्तुत: आपका यही अभिप्राय है कि मूलाधिकारों के न्यूनन का अधिकार किसी भी प्राधिकारी को प्राप्त है तो फिर इस खण्ड को यहां रखने की कोई जरूरत नहीं है। इससे भ्रम पैदा होता है।

[श्री महबूबअली बेग साहब]

मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य महोदय जिन पर कि विधान को स्वीकार कराने का कार्यभार है वह इसका स्पष्टीकरण करें और हमारी आपत्तियों का निराकरण करें ताकि हम इस स्थिति में आयें कि इसके पक्ष में अपना मत दे सकें।

***उपाध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर से मैं अनुरोध करूंगा कि मि. अली बेग द्वारा उठाये गये प्रश्नों का वह समाधान करें। इस विषय में हम लोगों की कोई विशेष जानकारी नहीं है और सुतरां हम सब डा. अम्बेडकर का जवाब सुनना चाहते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, इस संशोधन का प्रस्ताव रखने वाले मित्र का भाषण मैंने बड़े ध्यान से सुना है, फिर भी मैं स्वीकार करूंगा कि मैं नहीं समझ पाया कि असल में वह क्या जानना चाहते हैं। अगर वह चाहते हैं कि समूचा अनुच्छेद 7 हटा दिया जाये तो मैं उन्हें आसानी से यह समझा सकता हूं कि विधान में इसका रखना क्यों आवश्यक है।

मूलाधिकारों को रखने के दो प्रयोजन हैं। पहला तो यह है कि प्रत्येक नागरिक इन अधिकारों का दावा कर सके। दूसरा यह है कि यह प्रत्येक ऐसे प्राधिकारी के लिए—प्राधिकारी का क्या मतलब है यह मैं अभी आपको बताता हूं—जिसको कि विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त है यह जिसमें विधि-निर्माण के सम्बन्ध में स्वविवेकमूलक शक्ति सन्निहित है। इन पर अमल करना अनिवार्य हो। इसलिए यह स्पष्ट है कि अगर मूलाधिकारों को सही रूप में रखना है तो इन पर अमल करना न केवल केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों के लिए ही लाज़िमी बनाना चाहिए, न केवल भारतीय रियासतों में स्थापित सरकारों के लिए लाज़िमी बनाना चाहिए बल्कि जिला बोर्डों, म्यूनिसिपल बोर्डों, यहां तक कि ग्राम-पंचायतों और ताल्लुका बोर्डों के लिए भी यह लाज़िमी होना चाहिए। वस्तुत: विधि द्वारा निर्मित प्रत्येक प्राधिकारी जिसे विधि, नियम और उपनियम बनाने का कोई भी अधिकार है, उसके लिए भी इस पर अमल करना लाज़िमी होना चाहिए।

अगर यह योजना स्वीकार कर ली जाती है—और कोई कारण नहीं है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे मूलाधिकारों की चिन्ता है, विधि द्वारा निर्मित प्रत्येक प्राधिकारी

पर इस दायित्व के आरोपित करने में कोई आपत्ति करे—तो अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए हम क्या उपाय काम में ला सकते हैं? इसके दो ही उपाय हैं। एक तो यह है कि आप व्यापक शब्द ''स्टेट'' का प्रयोग करें जैसा कि अनुच्छेद 7 में किया गया है या प्रत्येक स्थल पर इस शब्दावलि को ''केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार, रियासतों की सरकार, म्यूनिसिपैलिटी, जिला बोर्ड, पोर्ट ट्रस्ट या अन्य प्राधिकारी'' दुहराइये। जब भी किसी प्राधिकारी का उल्लेख आये तो हम इस शब्दावलि की आवृत्ति करें यह मेरी समझ से न केवल एक कठिन प्रक्रिया है, बल्कि मूर्खतापूर्ण भी है। सर्वोत्तम मार्ग यह है कि व्यापक शब्द ''स्टेट'' का प्रयोग किया जाये और किसी लम्बी शब्दावलि की अनावश्यक आवृत्ति न की जाये। आशा है अब मेरे मित्र को यह बात समझ में आ गई होगी कि इस अनुच्छेद में ''स्टेट'' शब्द का रखना क्यों जरूरी है और इस अनुच्छेद को इस विधान में स्थान देना क्यों जरूरी है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं। पहले मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन नं. 21 को लेता हूं जो संशोधन नं. 246 के सम्बन्ध में है।

प्रस्ताव यह है किः

''संशोधन-सूची के संशोधन नं. 246 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 7 से शब्द 'and all local or other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India' हटा दिये जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** दूसरा संशोधन है नं. 246 जिसे डा. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है।

प्रस्ताव यह है किः

''निम्नलिखित शब्दों को अनुच्छेद के अन्त में जोड़ दिया जायेः

''or under the control of the Government of India.''

प्रस्ताव मंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन नं. 22 द्वारा संशोधित संशोधन नं. 248 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 7 में शब्द तथा इनवर्टेड कामा 'the State' की जगह 'state' शब्द तथा इनवर्टेड कामा रखे जायें और 'In this part' शब्दों के पहले '(1) अंक तथा कोष्ट रखे जायें तथा खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड इस रूप में जोड़ा जाये:

+["(2) इस भाग के प्रावधान, जहां तक सम्भव है, भारतीय राज्य क्षेत्र के अंतर्गत अथवा भारत-शासन के नियंत्रणाधीन रहने वाले सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों पर लागू होंगे।"

प्रस्ताव नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 7 में 'or' शब्द की जगह 'and' शब्द रखा जाये।

प्रस्ताव नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 7 को इसके संशोधित रूप में विधान का हिस्सा समझा जाये।"

प्रस्ताव पास हुआ।

अनुच्छेद 7 अपने संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 8

***उपाध्यक्ष:** अब हम दूसरे अनुच्छेद को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 8 को विधान का अंग समझा जाये।"

+मूल अंग्रेजी रूप में पहले दिया जा चुका है।

इसके सम्बन्ध में कई संशोधन आये हैं। संशोधन नं. 250 डा. पी.के. सेन का है किन्तु सभा-भवन में वह उपस्थित नहीं हैं। संशोधन नं. 251 श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इसे नहीं पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** इसके बाद संशोधन नं. 252 लिया जाता है जो पं. लक्ष्मीकांत मैत्र के नाम से है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) का परादिक (Proviso) हटा दिया जाये।''

इस संशोधन का अभिप्राय स्वतः स्पष्ट है चूंकि मुझे यह आदेश दिया गया है कि कोई भाषण न दूं, मैं इसे केवल उपस्थित कर देता हूं।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब नं. 253 से 258 तक के संशोधन आते हैं। क्या कोई सदस्य अपना संशोधन पेश कर रहा है?

(ये संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री लोकनाथ मिश्रः** संशोधन नं. 259 को मैं पेश करना चाहता हूं जो मेरे नाम से है। मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) के बाद निम्नलिखित नवीन खण्ड रखा जाये और वर्तमान खण्ड (3) का संख्याक्रम 4 कर दिया जाये:

+'संघ का राज्य ऐसा कोई कानून बनाने का उपक्रम न करेगा या ऐसा कोई कानून न पास करेगा जो किसी सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के लिए विभेद बरतता हो या किसी विशेष सम्प्रदाय या सम्प्रदायों पर ही लागू होता हो अन्य पर नहीं।' ''

+अंग्रेजी रूप यह है: ''The Union or the State shall not undertake any legislation or pass any law discriminatory to some community or communities, or applicable to some particular community or communities and not others.''

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इस अनुच्छेद को प्रस्तावित करने में मेरा उद्देश्य यही है कि अनुच्छेद 85 का अनुकरण हो जाये जिसे कि हमने स्वीकार कर लिया है। अनुच्छेद 85 राज्य को कई बातों को करने का आदेश देता है अर्थात् वह यह आदेश देता है कि वह एकरूपा व्यवहार संहिता का निर्माण करे। मेरा यह अनुच्छेद यह बतलाता है कि राज्य को क्या नहीं करना चाहिए जिससे कि हमारा वह उद्देश्य व्यर्थ न हो जिसके लिए हमने अनुच्छेद 35 का रखा है। जान-बूझ कर हमने यह पसन्द किया है, श्रीमान्, कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक हो और हमने तमाम धार्मिक झगड़ों को दूर करने की कोशिश की है क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि धर्म की उत्पत्ति तो हुई मानव जाति को बन्धुत्व के सूत्र में बांधने के लिए, पर देखा यह गया कि इसने मानव जाति में फूट पैदा कर दी और उनमें तरह-तरह के झगड़े खड़े कर दिये। अत: हमने यह ठीक ही घोषित किया है कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक होगा और इससे हमारा यह अभिप्राय है कि इस देश के प्रत्येक निवासी की, यहां के प्रत्येक नागरिक की मानवोचित आवश्यकताएं जरूर राज्य द्वारा पूरी की जायेंगी और अपने धर्म की, अगर उसका कोई धर्म है, वह स्वयं चिन्ता करेगा।

अगर हम इस उद्देश्य को पसन्द करते हैं और चाहते हैं कि यह समता, न्याय सम्बन्धी अनुभूति प्रदान की जाये तो यहां जब हम अपना भावी विधान बनाने बैठे हैं, हमें मूलाधिकार के रूप में यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि किसी भी विषय के सम्बन्ध में इस प्रकार का कानून न बनायेंगे जो एक सम्प्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय के बीच विभेद बरते। हमारे कानून का आधार इतना विस्तृत होना चाहिए, अन्दर से इतना ठोस होना चाहिए कि वह प्रत्येक मानव पर, इस देश के प्रत्येक नागरिक पर लागू हो। अगर नागरिकों में आप अन्तर करते हैं तो सम्प्रदाय के आधार पर ही आप ऐसा कर सकते हैं और सम्प्रदाय से यहां सही मतलब है धर्म का, जिसे हमने जानबूझकर फेंक दिया है। इसलिए अगर हमें सच्चाई से काम लेना है, साहस से काम लेना है और अपने स्वीकृत सिद्धांतों के प्रति ईमानदार रहना है तो हमें इस बात को अपना लक्ष्य बना लेना होगा कि भविष्य में जब भी हम कोई कानून बनावें तो वह ऐसा हो कि वह इस देश के प्रत्येक निवासी पर लागू हो और कोई भेदभाव न बरतता हो ताकि यहां के निवासी गौरवपूर्वक यह

कहें: ''असमता, अन्याय के प्रतिकारस्वरूप हमारे पास मूलभूत एक संरक्षण है। हमारा यह कानून है; यह समान रूप से सब नागरिकों पर लागू होता है, चाहे वह राजा हो या प्रजा, हिन्दू हो या मुसलमान, पारसी हो या क्रिस्चियन। यह स्वत: एक यथेष्ट संरक्षण है क्योंकि सभी नागरिकों पर यह समान रूप से लागू होगा। अगर कानून बुरा हुआ तो वह सबके लिए बुरा होगा और अगर अच्छा हुआ तो सबके लिए अच्छा होगा। इसलिए मैं कहूंगा कि यही हमारा बुनियादी सिद्धांत होना चाहिए। हमें यह बात यहीं और अभी स्वीकार कर लेनी चाहिए कि कोई भी कानून जो हम आगे बनायेंगे, वह ऐसा होना चाहिए कि सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो। इस प्रयोजन के लिए, इस बात के लिए कि भविष्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह न रह जाये, कोई विषमता न हो, कोई भेदभाव न रहे, नागरिकों में कोई अन्तर न बरता जाये, हमें इसे कानून बना देना होगा; बुनियादी कानून बना देना होगा कि संघ या राज्य ऐसे किसी कानून के बनाने का उपक्रम न रहेगा, ऐसा कोई कानून नहीं बनायेगा जो किसी सम्प्रदाय या सम्प्रदायों में भेद-भाव बरतता हो या किसी विशेष सम्प्रदाय या सम्प्रदायों पर ही लागू होता हो और अन्य पर नहीं। अनुच्छेद 85 में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं उसे इस सभा ने खुल कर, साहस के साथ, ईमानदारी के साथ मंजूर किया है। मैं केवल यही चाहता हूं कि सभा इस अनुच्छेद 85 को पूर्ण एवं स्वावलम्बी बना दे। इस अनुच्छेद से तो केवल निर्देश मिल जाता है, पर हमारा संशोधन इस बात का निश्चित आदेश देता है कि हमें क्या नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा नहीं करके और नागरिकों और सम्प्रदायों के बीच भेद-भाव बरत कर ही हमने देश का विभाजन कर डाला है और अब यह न होना चाहिए कि आगे चलकर देश का और भी दु:खद विभाजन हो। मैं कहूंगा कि अगर हम इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते हैं तो संयुक्त राष्ट्र की, संयुक्त मानव समाज की, जो हमारी कल्पना है, इस देश के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्रदान करने का जो विचार है वह कभी पूरा नहीं होगा। इसलिए सभा से मैं सिफारिश करता हूं कि वह इन नवीन अनुच्छेद को स्वीकार करे।

इसके बाद सभा शुक्रवार, तारीख 26 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।

Con. 3. VII.14.48
350

अंक 7
संख्या 14

शुक्रवार
26 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. आयर-अधिनियम के विषय में वक्तव्य 877-881
2. नियम 38 में उप-नियमों का जोड़ना 881-934
3. विधान का मसौदा-(*जारी*) 934-939
   [अनुच्छेद 8 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 26 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में प्रातः दस बजे समवेत हुई।

आयर अधिनियम विषयक वक्तव्य

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू__ (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, परिषद् को ज्ञात है कि अर्वाचीन काल में आयर में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए हैं, जिनका प्रभाव आयर से (कामनवेल्थ) राष्ट्रमंडलीय देशों के सम्बन्धों पर पड़ता है। नवम्बर की 17 तारीख को डेल में आयर-अधिनियम का, जिसका कि नाम आयरलैंड गणतंत्र अधिनियम है, प्रथम वाचन हुआ। दूसरा वाचन नवम्बर की 24 तारीख को हुआ।

कामनवेल्थ के देशों तथा आयर में जो प्रगाढ़ सम्बन्ध रहे हैं, उन्हें दृष्टिगोचर करते हुए अभीष्ट समझा गया कि इस विधेयक के पारित हो जाने से जो अवस्था उत्पन्न होगी उसे स्पष्ट कर दिया जाये। इस विषय पर भारत सरकार यूनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन) तथा आयर सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करती रही है और दोनों सरकारों ने कृपा करके हमें सूचित किया है कि आयरलैंड गणतंत्र अधिनियम के पारित हो जाने के पश्चात्, उनके विचार के अनुसार, क्या स्थिति उत्पन्न होगी। उन्होंने हमें उन वक्तृताओं के विवरण भेज दिये हैं जो कि इस विषय में उनकी संसदों में दी गई थी।

क्योंकि इस अधिनियम के पारित हो जाने से आयर में भारतीय नागरिकों तथा भारत में आयर के नागरिकों पर प्रभाव पड़ सकता है, अतः भारत सरकार को स्वभावतः इस विषय के स्पष्टीकरण में रुचि है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

24 नवम्बर को डेल में आयरलैंड गणतंत्र विधेयक पर वक्तृता देते हुए आयर के प्रधानमंत्री श्री कास्टैलो ने कहा था:

''नये विधेयक में इसके हेतु प्रावधान किया जायेगा कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में हमारे नागरिकों को जो अधिकार प्रदान किये जायें, हमारे यहां भी राष्ट्रमंडल के नागरिकों को तत्समान अधिकार मिलें। एक बात मैं ब्रिटेन में तथा सामान्य रूप से सारे राष्ट्रमंडल में अपने मित्रों को स्पष्टतया बता देना चाहता हूं; वह यह है कि इस विधेयक के पारित होने के पश्चात्, यदि वे ऐसा चाहेंगे तो, हम नागरिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का आदान-प्रदान जारी रखेंगे। इस समय आयरलैंड उनके नागरिकों को विदेशी या उनके देशों को विदेश नहीं मानता और जब परराष्ट्र सम्बन्ध अधिनियम का विखंडन हो जायेगा, तब भी हमारा ऐसा करने का विचार नहीं है। आदि से अंत तक आयर सरकार की स्थिति यह है कि यद्यपि आयरलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य नहीं है, किन्तु यह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों के साथ एक विशेषतया प्रगाढ़ सम्बन्ध के अस्तित्व को मानता है तथा उसकी पुष्टि करता है। यह सम्बन्ध केवल मित्रता तथा भ्रातृत्व के बन्धनों से ही नहीं, वरन् उन परम्परागत तथा चिरस्थायी आर्थिक, सामाजिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों से उत्पन्न होते हैं जिनका आधार उन देशों के साथ हमारे समान हित हैं। अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का यह आदान-प्रदान, जिसे बनाये रखने तथा सुदृढ़ बनाने का हमारा विचार है। हमारे विचार में एक विशेष सम्बन्ध है जो इस दृष्टिकोण का निराकरण कर देता है कि अन्य देश इन आधारों पर कोई वैध आपत्ति कर सकते हैं कि ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रमंडलीय देशों को आयरलैंड के साथ अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के आदान-प्रदान के प्रयोजनार्थ परराष्ट्र के समान व्यवहार करना चाहिये। यही विचार हम ब्रिटेन तथा राष्ट्रमंडल के देशों के समक्ष उपस्थित करते हैं। हम देखते हैं कि वे भी अपनी ओर से समान रूप से दृढ़ संकल्प हैं कि वे इस विधेयक के पारित होने का अर्थ आयरलैंड को विदेशों की श्रेणी में रखना या हमारे नागरिकों को विदेशियों की श्रेणी में रखना नहीं समझेंगे, प्रत्युत वे नागरिकता तथा व्यापार में प्राथमिकता के अधिकारों के आदान-प्रदान को जारी रखने के लिये

उद्यत हैं तदनुसार अधिकारों का जो वस्तुत: आदान-प्रदान अब तक होता रहा है वह निर्बाध उसी प्रकार होता रहेगा। इस आदान-प्रदान में से हमने विवादास्पद बातें निकाल दी है, इसलिये हम उचित रूपेण आशा कर सकते हैं कि यह वास्तविक सम्बन्ध सद्भावना तथा सहयोग की भावना से प्रेरित होंगे।''

यूनाइटेड किंगडम की ओर से प्रधानमंत्री श्री एटली ने कल, 25 नवम्बर सन् 1948 को, लोक सभा में निम्न वक्तव्य दिया:

''1937 में आयर में एक नवीन विधान पारित हुआ था जिसमें सम्राट का कोई स्थान नहीं रखा गया है। किन्तु 1936 में आयर अधिशासी प्राधिकार (परराष्ट्र संबंध) अधिनियम पारित हुआ था जिसके अनुसार सम्राट को यह अधिकार था कि वे आयर की अधिशासी परिषद् द्वारा मंत्रणा देने पर तथा तदनुसार परराष्ट्र विषयक क्षेत्र के अंतर्गत कुछ विषयों में आयर की ओर से कार्य कर सकते हैं। दिसम्बर 1937 में यूनाइटेड किंगडम की सरकार ने कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड एवं दक्षिणी अफ्रीका की सरकारों से परामर्श करके यह कहा था कि यह सरकार उन सरकारों के समान यह मानने के लिये उद्यत है कि नये विधान से राष्ट्रमंडल के सदस्य के रूप में आयर की स्थिति में कोई मूल-परिवर्तन नहीं होगा।

गत सात सितम्बर को आयर के प्रधानमंत्री श्री कास्टैलो ने यह घोषणा की कि आयर सरकार परराष्ट्र संबंध अधिनियम के विखंडन करने की तैयारी कर रही है। तत्पश्चात् श्री कास्टैलो ने इस विचार की पृष्टि कर दी।''

फिर श्री एटली ने उस विचार-विमर्श की चर्चा की है जो आयर के मंत्रियों के साथ हुआ था। इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि आयर में प्रस्तावित अधिनियम निर्माण से क्या परिणाम होंगे।

''इस विचार-विनिमय के परिणामस्वरूप यूनाइटेड किंगडम सरकार उन संबंधों पर अत्यन्त ध्यान से विचार कर सकी है जो आयरलैंड गणतंत्र विधेयक के लागू हो जाने पर यूनाइटेड किंगडम तथा आयर के बीच स्थापित होंगे। यूनाइटेड किंगडम सरकार यह मानती है कि, जैसे आयर के मंत्रियों ने कहा है, आयर आगे से राष्ट्रमंडल का सदस्य नहीं रहेगा। किन्तु आयर सरकार ने कहा है कि वे आयर तथा राष्ट्रमंडल के देशों के मध्य तक विशेषतया प्रगाढ़ संबंध के अस्तित्व को मानते हैं तथा चाहते हैं कि यह संबंध बना रहे। यह प्रगाढ़ संबंध समान हितों पर आधारित परम्परागत तथा चिरस्थायी आर्थिक एवं व्यापारिक प्रबंधों और बंधुत्व

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

के बंधनों से उत्पन्न होते हैं। यूनाइटेड किंगडम की सरकार श्री मैक-ब्राइड द्वारा व्यक्त विचारों से पूर्णतया सहमत है और आयर सरकार के समान हमारी भी यही इच्छा है कि इन प्रगाढ़ तथा मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाये रखा जाये तथा प्रबल बनाया जाये।

तदनुसार यूनाइटेड किंगडम सरकार आयर द्वारा इस कानून के निर्माण का यह अर्थ नहीं समझेगी कि उसके लिये आयर को विदेश अथवा आयर के नागरिकों को विदेशी समझना अपेक्षित है। हमें पता चला है कि राष्ट्रमंडल की अन्य सरकारें इस विषय में अपनी नीति के बारे में शीघ्र अपने विचार व्यक्त करेंगी।

''जहां तक आयर के नागरिकों का संबंध है, यूनाइटेड किंगडम में उनकी स्थिति का निर्णय ब्रिटिश राष्ट्रीयता अधिनियम 1948 के अनुसार होगा। आयर सरकार ने कहा है कि उनका विचार कामनवेल्थ के देशों के कानूनों के समान ही कानून बनाने का है, जिससे कि कानून द्वारा यह आयोजन कर दिया जाये कि आयर में राष्ट्रमंडलीय देशों के नागरिकों के साथ वैसा ही व्यवहार हो।''

आयर तथा ब्रिटिश संसद में जो यह वक्तव्य दिये गये हैं उनसे भारत सरकार की सहमति मैं व्यक्त करना चाहता हूं और कहना चाहता हूं कि हम पारस्परिकता के आधार पर आयर के साथ नागरिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का आदान-प्रदान जारी रखने के लिये पूर्णरूपेण उद्यत हैं। हमारा राष्ट्रमंडल से क्या संबंध रहेगा, इस विषय पर तो परिषद् को ज्ञात ही है कि ध्यानपूर्वक विचार हो रहा है और मुझे विश्वास है कि बहुत समय व्यतीत होने से पहले ही कोई संतोषजनक उपाय निकल आयेगा। इस समय तो हमारा वास्ता वर्तमान स्थिति से ही है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि आयरलैंड गणतंत्र विधेयक के पारित हो जाने के पश्चात् हम आयर को विदेशों की गिनती में अथवा उसके नागरिकों को विदेशियों की गिनती में नहीं मानेंगे, पर शर्त यह है कि आयरलैंड भी हमारे देश तथा हमारे नागरिकों को वही अधिकार तथा विशेषाधिकार दे।

मैं यह भी कहना चाहता हूं कि आयर तथा भारत के मध्य लम्बे काल से सहानुभूति तथा मैत्रीपूर्ण भावना का गहरा बंधन रहा है। भारत सरकार को विश्वास है कि भूतकाल के समान भविष्य में भी आयर तथा भारत की सरकारों तथा जनता के मध्य गहरे और मैत्रीपूर्ण संबंध बने रहेंगे।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): क्या मैं आपसे निवेदन करूं कि आप यह आदेश देने की कृपा करें कि इस परिषद् के सदस्यों को आयरलैंड गणतंत्र विधेयक और डेल आयरीन में उस पर दिये हुए भाषणों, तथा लोकसभा में श्री एटली के भाषण और उसके साथ-साथ माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्य की प्रतियां दे दी जायें।

*__उपाध्यक्षः__ (डा. एच.सी. मुकर्जी): वे दी जा सकती हैं। उसके लिए हमें सबसे पहले उन प्रलेखों को प्राप्त करना होगा। जब वे उपलब्ध हो जायेंगे, तब वे सब सदस्यों को दे दिये जाएंगें।

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरूः__ मैंने अभी जो वक्तव्य दिया है, उसमें मैंने श्री कास्टैलो तथा श्री एटली की वक्तृताओं में से विस्तृत उद्धरण दिये हैं जो उन्होंने अपनी-अपनी संसदों में दी थीं, अतः माननीय सदस्य की बात कदाचित् इससे ही पूरी हो जायेगी कि मेरे वर्तमान वक्तव्य की प्रतियां, जिनमें कि डेल आयरीन तथा लोक सभा के वक्तव्यों के उद्धरण समाविष्ट हों, वितरित कर दी जायें। यह अवश्य किया जा सकता है। आयरलैंड गणतंत्र विधेयक की प्रतिलिपि के विषय में, मेरा कहना है कि निःसंदेह वह उपलब्ध करायी जा सकती है, किन्तु मुझे पूर्णतया भरोसा नहीं है कि ऐसा करना अतिशीघ्र संभव हो सकेगा। कदाचित् परिषद् का प्रयोजन इससे सिद्ध हो जायेगा कि कुछ प्रतियां मंगा कर मेज पर रख दी जायें।

*__उपाध्यक्षः__ मेरे विचार में इससे काम चल जायेगा। अब मैं श्रीमती दुर्गाबाई से अनुरोध करता हूं कि उनके नाम में जो प्रस्ताव है, वे उसे उपस्थित करें।

नियम 38पी के साथ उपनियम जोड़ने का प्रस्ताव

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं निम्न प्रस्ताव पेश करती हूं जो कि मेरे नाम में है:

"(क) कि वर्तमान नियम 38-पी की संख्या 38-पी नियम का उपनियम (1) कर दी जाये, और उक्त उपनियम के पश्चात् निम्नलिखित उपनियम जोड़ दिये जायें:

'(2) अध्यक्ष को (ऐसे) संशोधनों को, जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण-संबंधी अथवा रूप सम्बन्धी परिवर्तन करना हो, पेश होने से रोक देने का अधिकार होगा।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

(3) अध्यक्ष को यह भी अधिकार होगा कि वह सदृश अभिप्राय के संशोधनों में से परिषद् के विचारार्थ तथा मत लेने के लिये अधिक उचित अथवा व्यापक संशोधन अथवा संशोधनों को चुन ले, और ऐसे किसी संशोधन के विषय में जो इस प्रकार चुना न गया हो, यदि वह वापिस न ले लिया जाये, तो यह समझा जा सकता है कि वह पेश किया जा चुका है तथा बिना वाद-विवाद के उस पर मत लिये जा सकते हैं।' ''

श्रीमान्, आरंभ में ही मैं यह स्पष्ट कर दूं कि परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव लाने का मेरा उद्देश्य मुख्यत: यह है कि अब तक विधान के मसौदे में जिन बहुत से संशोधनों की सूचना आई है, उन्हें शीघ्र समाप्त किया जाये तथा इस प्रकार हमारे सामने जो कार्य है उसे शीघ्रता से किया जाये। मुझे पता है कि विधान के मसौदे पर अब तक ही चार हजार से अधिक संशोधन आ चुके हैं। मेरे विचार में हमारे लिये इतने बहुसंख्य संशोधनों पर समुचित समय में विचार करना अत्यंत कठिन होगा; अत: यह अपेक्षित समझा जाता है कि कार्य को अधिक शीघ्रता से समाप्त एवं सम्पन्न करने के लिये कोई विशेष कार्यप्रणाली निकालनी चाहिये। श्रीमान्, यदि परिषद् उस प्रणाली को स्वीकार कर ले जो कि मैंने इस संशोधन में सुझाई है, तो इससे हमें इस उद्देश्य के प्राप्त करने में ही सहायता नहीं मिलेगी, वरन हम अपने सीमित समय को अधिक उपयुक्त संशोधनों तथा सारभूत संशोधनों पर व्यय भी कर सकेंगे। इस नियम का उद्देश्य यह है कि सभापति को अधिकार दे दिया जाये कि वे सदृश आशय के संशोधनों में से अधिक उपयुक्त अथवा व्यापक संशोधन अथवा संशोधनों को चुन लें। इससे सभापति को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे संशोधनों को पेश होने से रोक सकते हैं, जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा रूप-सम्बन्धी परिवर्तन करना हो। श्रीमान्, इससे पहले कि मैं यह प्रस्ताव परिषद् की स्वीकृति के लिये पेश करूं, मैं सबसे अनुरोध करती हूं कि मेरे संशोधन के क्षेत्र को उसी भावना से समझें, जिससे कि मैंने यह आपके समक्ष पेश किया है। इससे परिषद् के सदस्यों अथवा सदस्यों के किसी वर्ग के मन में कोई ऐसी आशंका अथवा भय उत्पन्न नहीं होना चाहिये कि इसका उद्देश्य उनके विशेषाधिकारों को कम करना है। सभापति को यह अधिकार

देकर हम कोई असाधारण बात नहीं कर रहे हैं और मुझे यह भी विश्वास है कि इस अधिकार का प्रयोग करते समय सभापति किसी को अप्रसन्न नहीं करेंगे, अपितु सबको प्रसन्न करेंगे। हमारे पास ऐसा सोचने के लिये पर्याप्त कारण हैं कि सभापति इस अधिकार का प्रयोग अतीव न्यायपूर्वक करेंगे। इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं अपना प्रस्ताव स्वीकृति के लिये परिषद् में पेश करती हूं।

उपाध्यक्षः अब हम संशोधनों को एक-एक करके लेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): क्या मैं अब इस पर बोल सकता हूं?

उपाध्यक्षः संशोधन पेश हो चुकेंगे, तत्पश्चात् व्यापक वाद-विवाद होगा। आपको अपना दृष्टिकोण परिषद् में पेश करने के लिये पर्याप्त समय दिया जायेगा। पहला संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, अपने संशोधनों को पेश करते हुए मेरे विचार में, मेरा यह कर्त्तव्य है कि मेरे मन में जो सामान्य विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें व्यक्त करूं, किन्तु ऐसा करने से पहले मेरे लिये यह उचित होगा कि मैं पहला संशोधन पेश करूं जो कि मेरे नाम में है। श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) में 'President shall (अध्यक्ष को) इन शब्दों के आगे 'उस सदस्य की बात सुनने के बाद जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

उपाध्यक्षः क्या आप संशोधन सं. 1 पेश नहीं कर रहे हैं?

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः मुझे खेद है, मैं इसे छोड़ गया। मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उपनियम (2) निकाल दिया जाये।''

उपाध्यक्षः मेरा सुझाव है, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, कि आपको जो व्यापक बातें कहनी हों वे भी अब ही कह दें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं आपके निर्णय को सविनय स्वीकार करता हूं

श्रीमान्, मैं सोचता था कि इस समय जो नियम हैं, जिन्हें काफी सोच-विचार के पश्चात् बनाया गया है और जो अन्य नियमावलियों के आधार पर रचे गये हैं, उनके अनुसार वाद-विवाद के आनियमन के विषय में सभापति को पर्याप्त अधिकार मिले हुए हैं। वे नियम इस धारणा पर बनाये गये थे कि सदस्य भी अपनी वक्तृताओं में काफी बुद्धिमत्ता एवं संयम से काम लेंगे। इस प्रस्ताव के पीछे एक प्रकार का ऐसा संशय कार्य कर रहा है कि उस उचित नीति के अनुसार कार्य करने के लिये न तो सदस्यों की इच्छा है और न उनमें उसके लिये अपेक्षित संयम है। साथ ही इससे यह शंका भी व्यक्त होती है कि साधारण नियमों के अधीन पर्यालोचन को नियंत्रित करने में अध्यक्ष भी असमर्थ हैं इस अवस्था में कौन से नियम लागू हो सकते हैं? ऐसे किसी भी संशोधन के नियम-विरुद्ध ठहराने में किंचित मात्र अन्याय न होगा जो असंगत है, अथवा जिसमें केवल और संशोधनों की लम्बी-चौड़ी पुनरावृत्ति है, अथवा जो अपमानास्पद अथवा असंसदात्मक हो, अथवा जिस पर इन बातों के कारण आपत्ति की जा सकती हो। ऐसा क्या कार्य हुआ है, जिसने कि सुन्दर महिला को यह संशोधन पेश करने के लिये प्रेरित किया है? मेरा निवेदन है कि परिषद् की अब तक की कार्यवाही से कुछ संकेत मिलता है। कुछ विगत काल से, मुझे यह देख कर अत्यन्त खेद है कि तथाकथित मसौदा सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी संशोधनों अथवा कुछ व्याकरण सम्बन्धी महत्त्व के संशोधनों को वाद-विवाद में लगभग रोक दिया जा रहा है, ऐसा नहीं है कि श्रीमान्, आप उन्हें रोक देते हैं, किन्तु इन संशोधनों के सम्बन्ध में सदस्यों को किसी हद तक परिषद् के कुछ सदस्य चुप कर देते हैं और प्रायः उत्तर कम दिये जाते हैं, जो अपूर्ण तथा असहायक होते हैं, और कई बार तो उत्तर दिये भी नहीं जाते; अपितु बहुत से प्रत्यारोप लगाये जाते हैं और उनसे मनमाने निष्कर्ष निकाल लिये जाते हैं।

मेरा निवेदन है कि प्रस्तावित नियमों पर विचार करने से पता चलेगा कि इन संशोधनों का मसौदा कितनी असावधानी से तैयार किया गया है और इन संशोधनों की लगभग प्रत्येक पंक्ति में कितनी त्रुटियां है। इन्हीं संशोधनों पर विचार करने से पता चलता है कि मसौदे में सुधार करने की कितनी महान् आवश्यकता है।

श्रीमान्, प्रस्ताव का यह आशय है कि अध्यक्ष को उन संशोधनों के रोक देने की शक्ति होगी जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी परिवर्तन करना हो। मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं कि वे प्रसंग-संगत न होने के कारण अथवा पुनरावृत्ति तथा अन्य प्रख्यात कारणों से सदा रोके जा सकते हैं। किन्तु क्या उन्हें केवल इसी कारण से रोक देना ठीक होगा कि वे शाब्दिक परिवर्तन हैं? क्या ऐसे किसी संशोधन को केवल शाब्दिक कहा जा सकता है जिससे प्रसंग का अर्थ ही बदल जाता हो? तत्पश्चात् व्याकरण-संबंधी संशोधनों का प्रश्न है। मेरे विचार में विधान के मसौदे के माननीय प्रस्तावक ने ऐसी छोटी-छोटी त्रुटियां की हैं, जिनसे बहुत से सदस्य चकित रह गये हैं। मैं अतीव नम्रता से आपसे पूछता हूं, श्रीमान्, क्या आपको कोई संशोधन केवल इसी आधार पर रोक देना चाहिये कि वह व्याकरण सम्बन्धी संशोधन है? क्या इससे यह निष्कर्ष अपेक्षित है कि व्याकरण सम्बन्धी संशोधन तथ्यहीन संशोधन होता है, और उसका उस खण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं होता, जिसके सम्बन्ध में यह रखा गया है। मेरी धारणा है कि व्याकरण सुबोधता एवं अर्थ की स्पष्टता के हेतु सहमति से निश्चित की हुई नियमावलि है। यदि व्याकरण से विचार, अभिव्यक्ति तथा लेख की स्पष्टता नहीं बढ़ती, तो उसका कोई महत्त्व नहीं है। इन परिस्थितियों में मेरा विश्वास है कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उपखण्ड (2) सर्वथा भ्रमात्मक है।

अब रूप सम्बन्धी परिवर्तनों की लीजिये, क्या आप एक रूप सम्बन्धी परिवर्तन को रोक सकते हैं अथवा क्या आप एक शाब्दिक दृष्टिगोचर होने वाले परिवर्तन को रोक देना चाहेंगे? शाब्दिक दिखाई देने वाले परिवर्तन के पीछे, प्रसंग का एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन छिपा हो सका है। इन परिस्थतियों में, मेरा सविनय निवेदन है कि यद्यपि समस्त सदस्यों को आपकी निष्पक्षता तथा अत्यधिक अनुग्रह में पूर्ण विश्वास है, किन्तु इन परिवर्तनों के पीछे एक संदेह है कि उपाध्यक्ष वर्तमान नियमों के अन्तर्गत कार्यवाही का आनियमन कदाचित् नहीं कर सकेंगे। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि सदस्यों ने सदा ही आपके निर्णय तथा सहायक पथ-प्रदर्शन को प्रसन्नता, स्वेच्छा तथा आतुरता से स्वीकार करने की प्रवृत्ति दिखाई है। मेरा निवेदन है कि इस मामले को सदस्यों पर ही छोड़ दिया जाये, इसे सदस्यों की सद्भावना तथा

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

परिषद् की सद्‌भावना पर छोड़ दिया जाये। सदस्यों को बाध्य करने तथा कुछ हद तक श्रीमान्, आपको भी कठिन स्थिति में रखने के स्थान पर, मेरा निवेदन है कि यह नियम नहीं रहने चाहियें। इस समय यही बातें मेरे ध्यान में आती हैं। कुछ समय से मैं सोचता हूं कि रूप सम्बन्धी अथवा मसौदा सम्बन्धी संशोधनों अथवा वैसे दिखाई देने वाले संशोधनों को कुछ विरोध की भावना से देखा जा रहा है। वे बिना किसी वाद-विवाद, बिना किसी तर्क तथा बिना पर्याप्त विचार के ठुकराये जा रहे हैं। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इससे सदस्यों में, जो कि यहां प्रथम कोटि के विधान की रचना में सहायता देने के लिये विनीत रूप में आये हैं, नैराश्य की भावना उत्पन्न होती है। अन्यथा, श्रीमान्, हम आज जो महत्त्वपूर्ण विधान बना रहे हैं वह प्रहसन मात्र हो जायेगा। संसार की अन्य विधान-परिषदें आदर्श समझ कर इसका अनुकरण करेंगी। हम देखते हैं कि वक्तृताओं के सैकड़ों वर्ष पश्चात्, विधान-परिषदों के वाद-विवाद को वैधानिक वकील तथा इतिहासकार अत्यंत रुचि से पढ़ते हैं। श्रीमान्, मैं आपसे तथा परिषद् में अपने माननीय मित्रों से पूछता हूं कि क्या प्रस्तावित परिवर्तनों की आवश्यकता भी है, और क्या इनसे समस्त सदस्यों तथा व्यक्तिगत रूप से कुछ विशेष सदस्यों के विषय में यह संदेह उत्पन्न नहीं होता कि वे कार्य-संचालन के नियमों पर दृढ़ता से चलने के इच्छुक तथा योग्य नहीं हैं?

श्रीमान्, इन नियमों के मसौदे के विषय में तो जितना कम कहा जाये उतना ही अच्छा है। मेरा निवेदन है कि प्रस्तावित खंड (2) नितांत अनावश्यक है। फिर हम खंड (3) को लेते हैं। यह वाक्य-विन्यास का एक आश्चर्यजनक नमूना है और मैं कहता हूं कि यह वाक्य-रचना इतनी असावधानी तथा इतने निराशाजनक तरीके से की गई है कि इसे देखते ही पूर्णतया रद्द कर देना चाहिये। इससे पता चलता है कि इस परिषद् में इन संशोधनों से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण प्रलेख अर्थात् विधान को ध्यान से दोहराने की कितनी आवश्यकता है। श्रीमान्, खंड (3) में प्रथम भाग दूसरे के सर्वथा विपरीत है।

श्रीमान्, प्रथम भाग का आशय कुछ संशोधनों को विचारार्थ चुनने का है। किस प्रयोजन से (ऐसा करना है)? संशोधन में लिखा है: ''इस प्रकार जो संशोधन चुने नहीं जायें उन पर मत लिये जा सकते हैं''। हम इसका क्या अभिप्राय समझें?

आपसे स्पष्टतया एक संशोधन चुनने के लिये प्रार्थना की गई है; वह किसलिये की गई है? अभिप्राय यह है कि एक संशोधन चुना जायेगा और तत्पश्चात् एक अन्य संशोधन पर मत लिये जायेंगे, अर्थात् उस संशोधन पर मत लिये जायेंगे जो चुना नहीं जाये। अतएव मेरा सविनय निवेदन है कि खंड (3) का मसौदा निराशाजनक रूप से, हास्यास्पद रूप से तथा पूर्ण रूप से त्रुटिपूर्ण है। मैं इस परिषद् में कभी भी ऐसे प्रवाह में नहीं बोला, किन्तु परिस्थितियां, मनोभावनायें तथा चारों ओर हम जो कानाफूसी सुनते हैं वह मुझे बाध्य करती है कि मैं इस प्रकार बोलूं। क्या परिषद् खंड (3) को स्वीकार कर सकती है, जिसमें पूर्ववर्त्ती भाग अगले भाग के नितांत विपरीत है? श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि मैंने 'नहीं' शब्द को निकाल देने के लिये एक संशोधन की सूचना भेजी है, और तभी आप इससे कुछ आशय निकाल सकते हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस संशोधन को रद्द कर दें, क्योंकि यह 'शाब्दिक' है और क्योंकि यह शाब्दिक है, अत: मैं आपके निर्णय के सामने नतमस्तक हो जाऊंगा। इससे ऐसा कानून बनेगा जिसका कुछ भी अर्थ न होगा। 'नहीं' शब्द के भयावह गुण का वर्णन करते हुए, मैं इसको निकालने का प्रस्ताव न रखने के लिये आपकी अनुमति चाहूंगा और यह विचार करने का काम परिषद् तथा माननीय सदस्य पर छोड़ दूंगा कि वास्तव में हमने क्या कुछ बनाया है।

फिर, श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि नियम 38-डब्ल्यू रखने के आशय का भाग (ख) भी अपकारी है। यह भी त्रुटिपूर्ण कल्पना तथा त्रुटिपूर्ण वाक्य रचना है। इस नियम का क्या आशय है? इसका आशय एक कमी को दूर करना बताया जाता है, अर्थात् कुछ विशेष नियमों के प्रयोजन के लिये अध्यक्ष के स्थान पर काम करने की उपाध्यक्ष की कल्पित शक्तिहीनता को दूर करना बताया जाता है। श्रीमान्, ध्यानपूर्वक विचार करने पर मैं देखता हूं कि अध्यक्ष के अधिकारों की कहीं भी स्पष्टता से परिभाषा नहीं की गई है, और इतनी देर बाद अब परिस्थिति को संभालने के लिये ऐसा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि क्योंकि हमने एक उपाध्यक्ष की व्यवस्था की है, किन्तु उसके अधिकारों की परिभाषा नहीं की है, यह सुस्पष्ट है कि उपाध्यक्ष को अध्यक्ष अथवा सभापति के अधिकार प्राप्त हैं। तर्क के हेतु यदि यह भी मान लिया जाये कि और भी

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, तो नियम 38-डब्ल्यू परिस्थिति के अनुसार नितांत अपर्याप्त है। मेरा निवेदन है कि इस नियम द्वारा यह यत्न किया गया है कि अपना निर्णय करते समय, परिषद् की व्यवस्था के विषय में निश्चय सुनाते समय यदि आपने कोई अनियमित कार्य किया हो तो उसे नियमित कर दिया जाये। यदि एक पल के लिये हम यह मान सकते हों कि आप अवैध रूप से कार्य करते रहे हैं—जो मुझे आशा तथा विश्वास है कि नहीं हुआ है—यदि हम एक बार यह स्वीकार कर लें कि आप अधिकारयुक्त कार्य नहीं करते रहे हैं, तो प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू द्वारा दी गई शक्ति से अब तक की कार्यवाही वैध नहीं हो जायेगी। वास्तव में यदि यह मान लिया जाता है कि आपको सभापतित्व करने के कार्य के अतिरिक्त कुछ भी करने का अधिकार नहीं है, तो, श्रीमान्, उन कार्यों का क्या होगा जो आपने इस महान् परिषद् के सभापति के रूप में इस नियम के धारण से पहले किये हैं? मैंने कार्यवाही को नियमित करने का प्रयत्न किया है। मेरी धारणा है कि ऐसा संदेह अनावश्यक है; किन्तु यदि इस संदेह का कोई कानूनी आधार है, यदि इस विषय में आपको कोई संशय है, तो आपको कुछ ऐसा करना चाहिये था कि एक नया नियम 14-ए रखते, जैसा कि मैंने अपने संशोधन में सुझाया है, कि उपाध्यक्ष को कुछ अवस्थाओं में अध्यक्ष के सारे अधिकार होंगे और इसके साथ एक महत्त्वपूर्ण व्याख्या रखनी चाहिये थीं कि इस नियम का इस मान्यता से पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा कि यह 4 नवम्बर को पारित हुआ है अथवा उस तारीख से प्रभाव होगा जिस दिन से आपने इस परिषद् में सभापति का आसन ग्रहण करने की कृपा की थी।

नियम के एक संशोधन में, जिसमें कि केवल दो प्रावधान हैं, एक नियम 38-पी पर संशोधन तथा दूसरा एक नया नियम 38-डब्ल्यू है, इतनी तीक्ष्ण त्रुटियां हैं। मेरा निवेदन है कि इससे पता लगेगा...

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई:__ उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैंने प्रस्ताव का वह भाग (ख) अभी तक पेश नहीं किया है।

*__उपाध्यक्ष:__ अभी वह पेश नहीं हुआ है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मैं इस युक्ति को मानता हूं। किन्तु क्या मैं यह समझ लूं कि वह पेश नहीं किया जायेगा?

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई:__ मैंने केवल पहला प्रस्ताव पेश किया है।

***उपाध्यक्ष:** आप 'यदि' ऐसा अनुबंध क्यों नहीं लगा देते?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** 'यदि यह प्रस्ताव बाद में रखा गया तो यह बात प्रकट हो जायेगी कि इसमें उपस्थित प्रश्नों के समुचित ज्ञान का सर्वथा अभाव है। मैं व्यापक दृष्टिकोण से कुछ विचार उपस्थित कर रहा था; क्या वाक्य-विन्यास के संशोधन, अथवा जिन्हें केवल वाक्य-विन्यास के संशोधन कह कर उल्लेख किया जाता है, आशयपूर्ण संशोधनों से भिन्न होते हैं, जैसे कि वाक्य-विन्यास के संशोधन आशयपूर्ण संशोधन नहीं होते? इन अस्थिर विचारों से वे लोग संदेह में पड़ जाते हैं जिन्हें कि इस विषय का कुछ अनुभव है। मेरा निवेदन है कि समस्त परिषद् को इन नियमों के निर्माण पर विरोध प्रदर्शन करना चाहिये। हमें यह कहने का अधिकार है कि मसौदा बनाने वाले अथवा इन कानूनों के प्रस्तावक सदस्य हमारे सामने स्पष्ट विचार, स्पष्ट भाषा तथा आशयपूर्ण शब्द रखें। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इन नियमों में यह सब अपेक्षित गुण अनुपस्थित हैं।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि गुणावगुण के विचार से उपनियम (2) निकाल देना चाहिये। केवल इसी कारण कि एक संशोधन शाब्दिक, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा रूप संबंधी है, आपसे उसे रोक देने के लिये नहीं कहा जा सकता। मेरा निवेदन है कि आपके पास इस समय जो अधिकार हैं हमने अब तक जो महान् परम्परा स्थापित की है, तथा हमारे सामने हाउस आफ कामन्स एवं अन्य संसदों के जो महान् नियम हैं, वही सर्वथा पर्याप्त हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो सदस्यों तथा प्रस्तावकों की सद्भावना है। इस विषय में जहां तक मेरा संबंध है, श्रीमान्, मैं परिषद की ऐसी छोटी से छोटी इच्छा का पालन करने के लिये पूर्णतया उद्यत हूं, जो सार्वजनिक अथवा निजी रूप में, उचित ढंग से व्यक्त की जाये। इसी प्रकार की जो बहुत सी त्रुटियां सब स्थानों पर विधान में पाई जाती हैं उनके विषय में आप क्या करेंगे? यह बात नहीं है कि इन त्रुटियों से विधेयक के विख्यात लेखकों की शक्ति अथवा वाक्य-विन्यास की कमी प्रकट होती है, किन्तु प्रत्येक विधेयक को दोहराने की आवश्यकता होती है। हमारे यहां दूसरी सभा नहीं है। विधेयक विशेष-समिति में नहीं गया है। पहले एक स्थान पर मैंने विशेष-समिति का सुझाव रखा था; वही ऐसा स्थान है जहां वाक्य-रचना के संशोधनों तथा अन्य बातों पर ठंडे दिल से तथा उचित रूप से वाद-विवाद हो सकता है। मेरा सुझाव इस आधार पर रोक दिया गया था कि वह विलम्बकारी है। कुछ संशोधनों को

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

प्रमुख सदस्यों ने केवल विलम्बकारी अथवा मूर्खतापूर्ण (of frivolous nature) बताया है। मेरे विचार में 'मूर्खतापूर्ण' शब्द इस परिषद् के किसी सदस्य के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। यदि कोई वस्तु मूर्खतापूर्ण है, तो उसे रोक देने के लिये नियमों में आपके पास पर्याप्त अधिकार विद्यमान हैं। मेरा निवेदन है कि प्रत्येक संभावित दृष्टिकोण से, सामान्य सुविधा के दृष्टिबिंदु से तथा इन नियमों की सामान्य अच्छाई के दृष्टिकोण से, जो कि अब तक अच्छे सिद्ध हुए हैं, यह नये नियम अस्वीकार हो जाने चाहियें।

श्रीमान्, क्या मुझे सारे संशोधन पेश करने हैं?

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार में अच्छा हो यदि आप उपनियम (2) तथा (3) के विषय में अपने सारे संशोधन पेश कर दें। यदि आप कुछ और भी कहना चाहते हैं तो आप ऐसा करने के लिये स्वतंत्र हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** संशोधन सं. 2 के विषय में, जो कि मैं पेश कर चुका है, मैंने एक नया खंड रखने का सुझाव दिया है कि किसी संशोधन को रद्द करने से पूर्व आप उस सदस्य को, जिसका कि संशोधन रद्द किया जाये, अपने विचार व्यक्त करने तथा अपनी युक्तियां बताने का अवसर देने की कृपा करेंगे। मुझे इसमें संदेह नहीं है कि नियम में उल्लिखित कारण से किसी संशोधन को रद्द करते समय, इस बात को ध्यान रखते हुए कि आपके साथ बल से काम लेने की चेष्टा की जा रही है, मेरे विचार में यह प्रावधान आवश्यक होना चाहिये। किन्तु मैं यह परिषद् की सद्भावना तथा आपकी न्याय एवं समव्यवहार की सहज भावना पर भी छोड़ सकता हूं जो कि आपने अब तक प्रदर्शित की है। तत्पश्चात् मैं संशोधन सं. 6 पर आता हूं।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

'That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, for the word 'amendments', the words 'such amendments' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) में 'संशोधन' शब्द के स्थान पर 'ऐसे संशोधन' ये शब्द रख दिये जायें।)

यह केवल शाब्दिक है

तत्पश्चात् मैं सं. 8 पेश करता हूं:

"That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, the comma after the word 'verbal' and the word 'grammatical' be deleted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) में 'शाब्दिक' शब्द के बाद का अर्धविराम तथा 'व्याकरण-संबंधी' यह शब्द निकाल दिया जाये।)

मेरा निवेदन है कि जो कार्यालय अथवा अधिकारी इस संशोधन विषयक कार्य से संबंधित रहा है, वह अर्धविराम तथा एक शब्द निकाल देने संबंधी इस प्रकार की अभिव्यंजना से प्रकट रूप में अपरिचित प्रतीक होता है। वास्तव में स्पष्टता के अभिप्राय से यह सर्वथा स्वीकार्य है जैसा कि कानूनों की रचना के विषय में समस्त प्रमुख लेखकों ने सिद्ध किया है। मेरा निवेदन है कि यह प्राय: होता है कि यदि मैं 'व्याकरण-संबंधी' इस शब्द को निकाल देने का प्रस्ताव करूं तो परिणाम यह होगा कि अर्धविराम रह जायेगा जो त्रुटिपूर्ण है। वे दोनों साथ-साथ हैं किन्तु कार्यालय ने इन्हें पृथक् संशोधन माना है। तत्पश्चात् श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 9 भी पेश करता हूं:

"That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P the words 'and to remit them to the Drafting Committee' be added at the end."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) के अंत में 'और उन्हें मसौदा-समिति को भेज देने का अधिकार होगा' ये शब्द जोड़ दिये जायें।)

मैं अपनी स्थिति को भली प्रकार नहीं जानता। निजी रूप में मैं सुन रहा हूं कि यह प्रस्तावित नियम मेरे ही कारण बन रहे हैं। मैं ही इनका लक्ष्य हूं। यह एक अपरोक्ष बात है कि मैं ही इनका लक्ष्य हूं—दुखी लक्ष्य नहीं, सुखी लक्ष्य हूं। यदि ऐसा है तो मुझे माननीय महिला सदस्य के प्रति अत्यंत कृतज्ञता प्रकाशित करनी चाहिये, जिन्होंने मुझे यह अद्वितीय सम्मान प्रदान किया है, अर्थात् नितांत अवैधानिक, नितांत अप्रजातंत्रीय नियम का सुझाव रखा है जिसके द्वारा परिषद् के एक सदस्य, विशेष सदस्य में श्रद्धा का अभाव प्रकट किया गया है और परिषद्

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के कार्य-संचालन के विषय में सभापति की योग्यता में भी—जो भी उस समय सभापति हो—कुछ परोक्ष संदेह प्रकट किया गया है। श्रीमान्, इन परिस्थितियों में मैं इसे अपना उच्च सम्मान समझता हूं। मेरा उद्देश्य संशोधन स्वीकार करवाना नहीं है। मेरा उद्देश्य विनीत रूप में सुधारों के सुझाव रखना है। हो सकता है कि अंतिम विश्लेषण से तथा अधिक विचार करने पर मैं गलत सिद्ध हो जाऊं तथा मेरे संशोधन आशयहीन सिद्ध हो जायें। यदि विचार करने के पश्चात् वे रोक दिये जायें तो मुझे प्रसन्नता होगी, किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है। मैं अपने समस्त संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं। विभिन्न समूहों में सदृश संशोधन है और मैंने उनमें से केवल एक संशोधन रखा, और शेष मैंने पेश नहीं किये क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्हीं तर्कों की पुनरावृत्ति होगी। इन परिस्थितियों में मेरा सविनय निवेदन है कि नियम एक अथवा दो सदस्यों के विरुद्ध लक्ष्य करके नहीं बनाने चाहिये। नियम के भाग (3) का लक्ष्य कदाचित् परिषद् के एक अन्य माननीय तथा उत्साही सदस्य प्रोफेसर के.टी. शाह के विरुद्ध है। वास्तव में यही भावना स्वतंत्र रूप में व्यक्त की जा रही है। श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि सदस्यों का मुंह बंद करने के लिए आपको नियम-शक्ति दी जानी चाहिये। यदि यह नियम परिषद् में एकमत से स्वीकृत भी हो जायें तो भी आपको कारण पूछे बिना, संशोधनों का अभिप्राय तथा आशय जाने बिना उन नियमों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मेरा निवेदन है कि संशोधनों को उनका रूप देखकर ही रोका नहीं जा सकता। हो सकता है, और बहुधा ऐसा होता है कि, उनमें मूल्यवान आशय हो। मेरा निवेदन है कि संशोधनों की इस परिषद् में जो गति होती है उससे यह भावना पक्की हो जाती है। जब हम विधान का निर्माण कर रहे हैं, जब हम कुछ मान्य प्रतिबंधों के साथ विचार, अभिव्यक्ति तथा कार्य की स्वतंत्रता की व्यवस्था कर रहे हैं, तब यहां आप वाद-विवाद की स्वतंत्रता को भी रोक रहे हैं, कम कर रहे हैं, एक सदस्य की स्वतंत्रता को कम कर रहे हैं जिसने कि मसौदे में सुधार करने के लिये अत्यंत क्षुद्र रूप में तुच्छ प्रयास करने में, कुछ समय एवं शक्ति का व्यय किया है। किन्तु मैं इससे हतोत्साह नहीं होता कि वे स्वीकृत नहीं होते। दार्शनिकों के अनुसार अच्छा कार्य स्वयमेव अपना पुरस्कार होता है और मुझे प्रसन्नता होगी यदि अंततोगत्वा यह नियम स्वीकृत हो जायें तथा मेरे संशोधन ऐसे ही ठुकरा दिये जायें। यदि मैंने अपना कर्त्तव्य पालन

करने का प्रयत्न किया है तो मुझे प्रसन्नता होगी। यदि मुझे रोक दिया गया तो यह इस में मेरा कोई दोष न होगा। उस अवस्था में उत्तरदायित्व सदस्यों का होगा तथा श्रीमान्, आपका होगा। मेरा निवेदन है कि यह नियम वापस ले लिये जाने चाहियें। वाक्य-विन्यास के दृष्टिकोण से उनकी रचना त्रुटिपूर्ण है तथा वे भ्रमात्मक हैं। उनमें बहुत बुरी दुर्गन्ध आती है। इन नियमों के पीछे कुछ उच्च-सत्ता (हाई कमांड) का सा आभास होता है। मेरा निवेदन है कि इनसे निरंकुशता (totalitarianism) सी प्रकट होती है। यदि आप अल्पमतों के उचित वाद-विवाद को भी सहन नहीं करते तो आप जिस स्वतंत्रता की कल्पना करते हैं वह एक प्रहसन होगी—मैं 'अल्पमत' यह शब्द साम्प्रदायिक आशय से प्रयोग नहीं कर रहा हूं, अपितु संख्या के आशय से कह रहा हूं। यदि विधान-परिषद् हमारे समक्ष ऐसा उदाहरण रखेगी तो सरकार के अनुजीवी, अनेक प्रांतीय प्राधिकारी अल्पमतों को कुचल डालेंगे और यह लोकतंत्र के लिए घातक है। लोकतंत्र की यही अच्छाई है कि यह अल्पसंख्यकों को स्वतंत्रता से अपने विचार-अभिव्यक्त करने का अधिकार देता है केवल प्रसंगानुकूलता तथा अन्य सुविख्यात नियमों का ही प्रतिबंध होता है। शिष्टता के नाते, सुरूपता के नाते तथा परिषद् की कीर्त्ति के नाते इन कृत्रिम नियमों को अस्वीकार कर देना चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इन वाद-विवादों को सारे संसार में पढ़ा जायेगा और मेरा निवेदन है कि हमें चाहिये कि...

***उपाध्यक्षः** मैं आपको बता दूं कि यह बातें अंत में कहनी चाहियें। आपके नाम में बहत से संशोधन हैं, आपको पहले उन्हें पेश करना चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उपनियम (3) निकाल दिया जाये।''

बेहूदे शब्द 'नहीं' के विषय में संशोधन सं. 13 को मैं पेश नहीं करता। मैं इसे संशोधन की प्रस्तावक माननीय सदस्य पर छोड़ देता हूं कि वे इसे रखें तथा कुछ आशय निकालने का यत्न करें।

***उपाध्यक्षः** श्री विश्वनाथ दास, क्या आप सं. 15 पेश कर रहे हैं? यदि कर रहे हों तो श्री नजीरुद्दीन उसे पेश नहीं करेंगे।

***श्री विश्वनाथ दासः** मैं इसे पेश करूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इसके विषय में मेरे जो विचार हैं, मैं उन्हें व्यक्त कर दूं। मेरे माननीय मित्र ने कृपा करके संशोधन सं. 15 को पेश करने की इच्छा प्रकट की है, इस संशोधन के विषय में मैं कह सकता हूं कि बिना वाद-विवाद के आगे बढ़ना उपयुक्त न होगा। यह प्रावधान, कि आप कुछ संशोधनों को बिना पर्यालोचन के ही चुनेंगे, अभिप्राय-हीन तथा आशयहीन है। वाद-विवाद होना चाहिये। आप परिषद् से वाद-विवाद के बिना अपना मत देने के लिये कैसे कह सकते हैं? आखिर लोकतंत्र का अर्थ है वाद-विवाद से, विचारों के स्वतंत्र आदान-प्रदान से शासन चलाना, किन्तु यहां यह प्रयत्न किया जा रहा है कि आपको बिना वाद-विवाद ही संशोधन चुनने का अधिकार दिया जा रहा है।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 17 पेश करता हूं:

कि ''नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (3) के पश्चात्, निम्न प्रावधान जोड़ दिया जायेः

'Provided that before the President so selects any amendment, the member who has given notice of any amendment shall have the right to explain the nature and purport of the amendment.' ''

(पर शर्त यह है कि अध्यक्ष इस प्रकार कोई संशोधन चुने, उससे पूर्व किसी सदस्य को, जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, यह अधिकार होगा कि वह अपने संशोधन का स्वरूप तथा आशय समझा सके।)

मैंने अपना अभिप्राय नितांत स्पष्ट कर दिया है। मेरा निवेदन है कि मैंने जितने आरक्षण सुझाये हैं वे सब आवश्यक है, अथवा हमें विद्यमान नियमों से संतोष करना चाहिये।

श्रीमान्, यदि ऐसी त्रुटियां हों जैसी कि मैंने बताई हैं तो क्या हम विधान को अशुद्ध ही छोड़ दें तथा विधान में इतने दोष एवं कमियों को रहने दें? अथवा क्या हमें मसौदा-समिति से कहना चाहिये कि उन्हें दोहराये तथा जहां आवश्यक हो ठीक कर दे? क्या कार्य प्रणाली होनी चाहिये और किस प्रकार के संशोधनों को मसौदा-समिति पर छोड़ा जाना चाहिये? यदि आप किसी सदस्य को अपने संशोधन का अर्थ तथा आशय समझाने का अवसर नहीं देते तो मसौदा-समिति उन्हें

कैसे समझेगी? क्या उसे मसौदा-समिति के समक्ष खड़े होकर नाचना होगा, अथवा उसका भक्त बनना होगा अथवा वह वादी के समान-मसौदा समिति के समक्ष विनीत भाव से निवेदन करेगा? श्रीमान्, विधान में से दोष निकाल देने के लिये यह प्रबल युक्तियां है। मैं पर्याप्त कह चुका हूं और यदि इससे परिषद् को मेरी बात नहीं जंचती और मेरी बात रद्द कर दी जाती है, तो मैं हर्षपूर्वक परिषद् के निर्णय के सामने नतमस्तक हो जाऊंगा, यह जानते हुए कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। श्रीमान्, धन्यवाद।

***उपाध्यक्ष:** मुझे परिषद् को सूचित करना है कि मेरे हाथ में हमारे अध्यक्ष का एक अधिकार-प्रदान-पत्र है, जिसे मैं पढ़ कर सुनाऊंगा और मेरे विचार में उससे बहुत सा भ्रम निवारण हो जायेगा। पत्र इस प्रकार है:

''मैं इस पत्र द्वारा उपाध्यक्ष डा. एच.सी. मुकर्जी को विधान-परिषद् के नियमों के छठे अध्याय के 38-यू तथा 38-वी नियम को छोड़ कर शेष सब नियमों के अन्तर्गत अपनी सारी शक्तियां तथा कर्त्तव्य प्रदान करता हूं।''

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में वक्ताओं को सीमित समय दिया जायेगा? यदि नहीं, तो मेरा सुझाव है कि आपको अवधि नियत करने का अधिकार होना चाहिये जिससे कि बेकार वक्तृतायें न हो सकें।

***उपाध्यक्ष:** ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर मेरी इच्छा यह नहीं है कि वक्ताओं को दिये जाने वाले समय को मैं सीमित कर दूं। किसी प्रकार का प्रतिबंध तभी लगाया जायेगा, जब कोई वक्ता प्रसंग से अति असंगत बातें करने लगेगा।

अब श्री कामत संशोधन सं. 3 पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मेरी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है, उसका अभिप्राय अध्यक्ष को कुछ असाधारण शक्तियां देना है और इसके परिणामस्वरूप इस परिषद् के सदस्यों के स्वाभाविक अधिकार

[श्री एच.वी. कामत]

समाप्त अथवा सीमित होते हैं, चाहे वे अंतर्वर्त्ती अधिकार हों अथवा अब तक हमारे द्वारा स्वीकृत नियमों के अंतर्गत प्रदत्त हमारे अधिकार हों। मुझे विश्वास है कि यहां मेरे साथियों में से कोई भी, मेरा कोई भी साथी, अपने किसी भी अधिकार को सहज ही अथवा स्वेच्छा से समर्पित करने के लिये उद्यत नहीं होगा, और मुझे समानरूप से यह भी भरोसा है कि अध्यक्ष तथा श्रीमान्, आप भी, इस परिषद् के सदस्यों के अधिकारों के समर्थन के लिये उत्सुक रहेंगे, जैसे कि अब तक भी सदा आप रहे हैं। अतएव मैं यहां अपने साथियों से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस प्रस्ताव पर, जो कि आज हमारे सामने है, अत्यंत ध्यानपूर्वक विचार करें, और श्रीमान्, मैं आप से अनुरोध करता हूं कि आप इस प्रस्ताव पर पूरी तरह से वाद-विवाद होने दें।

अब, श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को लेता हूं। यह केवल एक शाब्दिक संशोधन है जिसका अभिप्राय इस खंड अथवा उप-नियम का अब तक स्वीकृत नियमों के साथ सामंजस्य स्थापित करना है। यदि परिषद् नियम 31 के उप नियम (4) की ओर ध्यान देगी, तो आप देखेंगे कि वहां इस प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है:

"The Chairman may disallow any amendment which he considers to be frivolous or dilatory."

(सभापति किसी ऐसे संशोधन को पेश होने से रोक सकता है जिसे वह हल्का अथवा विलम्बकारी समझे।)

किन्तु यहां ऐसी अभिव्यंजना है कि "The President shall have the power to disallow..." (अध्यक्ष को...रोक देने का अधिकार होगा) यह बहुत कुरूप वाक्य-रचना है। मैंने ऐसी वाक्य-रचना किसी नियम में नहीं देखी जो कि इस पुस्तिका में है जो कि हमारे सबके पास है—कार्यप्रणाली तथा स्थायी व्यवस्था के नियम (Rules of Procedure and Standing Orders)। ऐसा कहना अत्यधिक उपयुक्त होगा कि "अध्यक्ष... संशोधनों को रोक सकते हैं, आदि"। इस प्रस्तावित उपनियम (2) के विषय में मुझे एक बात कहनी है। इसका अभिप्राय अध्यक्ष को संशोधनों को रोक देने का विशेष अधिकार देना है। किन्तु रोक दिये जाने के बाद उन संशोधनों का क्या होगा? क्या उन्हें रद्दी की टोकरी में फेंक दिया

जायेगा, अथवा इससे भी बुरी किसी जगह। नियम 38-आर के अंतर्गत भी विराम-संबंधी तथा हाशिये के शब्दों सम्बन्धी परिवर्तनों को मसौदा-समिति के पास भेजना होता है। यदि ऐसा है तो मेरी समझ में नहीं आता कि शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी तथा रूप सम्बन्धी संशोधनों के विषय में भी हम ऐसा ही क्यों न करें। मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्रों ने अर्थात् श्री पातस्कर तथा श्री गुप्त ने इस आशय के संशोधनों की सूचना दी है और मुझे आशा है कि परिषद् इस उपक्रम को मान लेगी, कि नियम 38-पी (2) के अंतर्गत रोके हुए समस्त संशोधन विचारार्थ तथा आवश्यक कार्यवाही के हेतु मसौदा-समिति को भेज दिये जायेंगे।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 7 पेश नहीं करूंगा क्योंकि यदि मसौदा-समिति को भेजने के सुझाव वाला संशोधन स्वीकार हो जाता है तो इसको पेश करना अपेक्षित नहीं है।

मेरा अगला संशोधन सं. 11 है, जो नियम 38-पी (3) के विषय में है, और इसमें मेरा अभिप्राय ''प्रधान को...चुनने का अधिकार होगा, आदि'' इन शब्दों के स्थान पर ''चुन सकते हैं आदि'' शब्द रखने का है। मैंने अपने पहले संशोधन के विषय में जो तर्क दिये थे वे इस पर भी समान शक्ति से लागू होते हैं।

अब मैं अपने संशोधन सं. 12 को लेता हूं जिसका आशय है कि 'similar (सदृश)' शब्द से पहले 'same or (उसी अथवा)' यह शब्द जोड़ दिये जायें। 'सदृश अभिप्राय के संशोधनों' ऐसा कहने के स्थान पर मेरे विचार में 'उसी अथवा सदृश अभिप्राय के संशोधनों' ऐसे कहना अधिक अर्थ-बोधक है।

मेरा अगला संशोधन सं. 14 है जिसका अभिप्राय यह है कि जहां भी 'shall' शब्द आये वहां उसके स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये। विद्यमान नियमों के अधीन अध्यक्ष को दो प्रकार के अधिकार हैं—विवेकाश्रित तथा आदेशमूलक। हमने कार्यवाही के जो नियम स्वीकार किये हैं उनमें आप देखेंगे कि आदेशमूलक अधिकारों के सम्बन्ध में 'shall' 'गा' शब्द प्रयुक्त हुआ है (यथा करेगा, आदि) और 'विवेकाश्रित' अधिकारों के विषय में 'may' ('सकता है') शब्द प्रयुक्त हुआ है। नियम 33 में उल्लिखित है कि अध्यक्ष को कोई 'स्वविवेक' का अधिकार

[श्री एच.वी. कामत]

नहीं है तथा उसे प्रस्ताव पर मत लेने ही होंगे। यहां ऐसा है कि जब अध्यक्ष विचार करने तथा मत लेने के लिये कोई संशोधन चुन ले, जो कि उनके विवेकानुसार उपयुक्त अथवा व्यापक अर्थ वाले हों, तो अन्य सब संशोधन जो कि इस प्रकार चुने नहीं गये हों उन्हें ऐसा माना जायेगा कि वे पेश हो चुके हैं तथा उन पर मत लिये जायेंगे। प्रधान को इस विषय में स्वविवेकानुसार कार्य करने का अधिकार नहीं दिया गया है और 'may' के स्थान पर 'shall' रख देने से प्रस्तावित उपनियम का अर्थ ठीक हो जायेगा।

मेरे विचार में यहां भी प्रस्तावित उपनियम की वाक्य-रचना अतीव त्रुटिपूर्ण है। यहां यह कहा गया है कि कोई संशोधन, जो इस प्रकार चुना न गया हो, यदि वह वापिस न ले लिया गया हो, तो ऐसा समझा जायेगा कि वह पेश हो चुका है। किन्तु जब तक कोई संशोधन परिषद् में पेश न कर दिया जाये वह वापिस नहीं लिया जा सकता; वह तब केवल परिषद् की अनुमति से वापिस लिया जा सकता है अतएव, मैं नहीं समझता कि प्रस्तावित उप-नियम का अर्थ क्या समझा जाये, अर्थात् कोई संशोधन, यदि वह वापिस न ले लिया जाये, तो ऐसा समझा जायेगा कि वह पेश हो चुका है। वापिस लेने का प्रश्न तो तभी उठता है जब कि वह परिषद् में पेश हो चुका हो; अतएव उपनियम के इस अंश को शुद्ध करके लिखना होगा तथा इसका रूपान्तर करना होगा।

और मैं यह भी समझने में असमर्थ हूं कि किसी प्रस्ताव के लिये यह कैसे समझा जा सकता है कि वह पेश हो चुका है, जब कि वह वास्तव में परिषद् में पेश नहीं किया गया है। यह एक विलक्षण कार्य-प्रणाली है, जो मुझे विश्वास है कि संसार के और किसी विधान-मंडल में मान्य नहीं होगी। जब तक एक संशोधन परिषद् में वास्तव में पेश न हो तब तक अध्यक्ष यह नहीं मान सकता कि वह इस प्रकार पेश हो चुका है। मेरा निवेदन है कि यह एक आधारभूत बात है और मुझे आशा है कि परिषद् इस संशोधन को इसके वर्तमान रूप में स्वीकार नहीं करेगी। यदि कोई सदस्य संशोधन पेश नहीं करना चाहता तो वह ऐसा कह देगा; और यदि वह इसे पेश करना चाहता है तो उसे परिषद् में अपना संशोधन पेश करने का अवसर अवश्य मिलना चाहिये और यदि संशोधन इस प्रकार पेश नहीं किया जाता तो ऐसा मानना चाहिये कि वह सर्वथा पेश नहीं हुआ है।

यदि वह पेश नहीं किया जाये तो उस पर मत लिये ही नहीं जा सकते। अतएव यदि कोई सदस्य संशोधन रखना चाहता है तो वह परिषद् में नियमित रूप से पेश होना चाहिये। प्रस्तावित उपनियम का अभिप्राय एक सदस्य के परिषद् में संशोधन रखने के अधिकार को समाप्त करना है और अप्रत्यक्ष रूप से वह अधिकार अध्यक्ष को देना है। मैं नहीं समझ सकता कि यह कैसे हो सकता है—क्या यह किसी प्रकार के छू-मंतर अथवा जादू से हो सकता है? यदि हम इस कार्यप्रणाली को अपना लें तो इससे परिषद् का अधिक समय खराब हो सकता है और यह उपचार रोग से भी अधिक बुरा होगा। अतएव मैंने एक शर्त लगाने की सूचना दी है, संशोधन संख्या 16, जो इस प्रकार है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P after the words 'without discussion' at the end, the following proviso be added :

'Provided that a member whose amendment has not been selected for consideration shall, if he so desires, be permitted by the President to state why his amendment should be considered.''

[''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में अंतिम शब्दों के पश्चात् निम्न शर्त जोड़ दी जायें:

'पर किसी सदस्य को, जिसका कि संशोधन इस प्रकार विचारार्थ चुना न गया हो, यदि वह (सदस्य) चाहे, तो अध्यक्ष उसे यह बताने की अनुमति देगा कि उसके संशोधन पर क्यों विचार किया जाना चाहिये।' '']

श्रीमान्, इसका अभिप्राय इस परिषद् के सदस्य के स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा करना तथा उनका समर्थन करना है और मुझे विश्वास है, श्रीमान्, कि इस परिषद् के सदस्यों के किसी स्वाभाविक अधिकार को समाप्त अथवा सीमित करना आप तो कदापि नहीं चाहेंगे।

अपनी बात समझाने के लिए मैं केवल यही कहूंगा कि प्रस्तावित उपनियम 3 पर यह संशोधन आशयपूर्ण संशोधनों के विषय में है। अतएव, मुझे आशा है कि यहां कोई भी सदस्य परिषद् में संशोधन रखने का अपना अधिकार अध्यक्ष को समर्पित नहीं करेगा।

[श्री एच.वी. कामत]

यह तर्क दिया जा सकता है कि अध्यक्ष विवेक से ऐसा ही संशोधन चुनेंगे, जिसमें कि वे सारे संशोधन आ जायेंगे, जो उस विषय पर सूचित किए गए हैं, अथवा जिसका सदृश आशय है। कदाचित् यह बात उस अवस्था में स्वीकार्य हो सकती है, जब कि उन सदस्यों को, जिन्होंने कि संशोधन भेजे हैं, अध्यक्ष वाद-विवाद में भाग लेने की प्राथमिकता दें। किन्तु, श्रीमान्, मैं तो उसे भी स्वीकार नहीं करूंगा, और प्रत्येक सदस्य को जो अपना संशोधन पेश करना चाहे, उसे परिषद् में पेश करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

उदाहरण के लिए उन संशोधनों को लीजिये जो कि हमारे विधान की प्रस्तावना पर सुझाये गये हैं। बहुत से संशोधनों में ईशस्तुति है। कदाचित मसौदा-समिति अथवा परामर्शदात्री समिति अथवा उच्च स्थानों पर आसीन किन्ही अन्य व्यक्तियों की मंत्रणा पर अध्यक्ष इनमें से कोई एक संशोधन चुन सकते हैं। किन्तु यदि आप उन पर विचार करें तथा ध्यान दें, तो आप देखेंगे कि प्रत्येक संशोधन में ईशस्तुति के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं, जो दूसरे संशोधनों में नहीं हैं। और यदि एक संशोधन चुन लिया जाये तथा शेष नहीं चुने जायें, तो निस्संदेह जिन सदस्यों ने अन्य संशोधनों की सूचना दी है, उन्हें अपना दृष्टिकोण परिषद् के सामने रखने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।

अतएव मैं परिषद् तथा आपसे अनुरोध करता हूं कि इस प्रस्ताव को उस रूप में पारित नहीं करें जिस रूप में वह परिषद् में पेश हुआ है। इसके शब्दों में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा तथा इसकी काया-पलट करनी होगी, जिससे कि इस परिषद् के माननीय सदस्यों के अधिकारों का हनन न हो। यदि आप मुझे ऐसा कहने के लिये क्षमा करें तो मेरे मन में संदेह नहीं है कि यदि यह प्रस्ताव उसी रूप में स्वीकृत हो जाये, जिस रूप में कि यह यहां पेश किया गया है, तो भारत के अर्वाचीन इतिहास में यह पहला सार्वभौम निकाय संसार की हास्य सामग्री बन जायेगी।

***श्री विश्वनाथ दासः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, the words 'without discussion' be deleted."

("कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में से 'बिना वाद-विवाद के' यह शब्द निकाल दिये जायें।")

मैं नहीं जानता कि मैं स्वयं को धन्यवाद दूं अथवा दुःख मानूं कि मेरा नाम मेरे माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के साथ अनुसूचित किया गया है, यद्यपि सर्वथा पृथक् दृष्टिकोण से ऐसा हुआ है। श्रीमान्, सर्वप्रथम तो मैं यह बात स्पष्ट कर दूं कि मैं अपनी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई का इस संशोधन के विषय में पूर्ण समर्थन करता हूं। यह अत्यन्त आवश्यक तथा लाभदायक है। इसे हमारा पूर्ण समर्थन प्राप्त है। इसका कारण यह है कि हमें यहां तीन सप्ताह हो गये और क्या मुझे यह कहने की आवश्यकता है कि हम इन 21 दिनों की बैठकों में 21 अनुच्छेद भी पूरे नहीं कर सके हैं। बाहर सारा देश आतुरता से हमारे नये विधान की प्रतीक्षा कर रहा है, जिससे कि नयी व्यवस्था कम से कम 26 जनवरी 1949 से तो लागू हो ही जाये। उनको इसकी चिन्ता है और हम भी अपने देशवासियों के समान इस प्रकार ही चिन्तित हैं। अतएव हम इस बात के लिये चिन्तित हैं कि हमारी कार्यविधि का यह उपक्रम यथासंभव शीघ्र ही समाप्त हो जाये। उसी दृष्टिकोण से मैं अपनी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई के प्रस्ताव का स्वागत तथा समर्थन करता हूं।

इतना कहने के पश्चात् मैं यह बताऊंगा कि मैंने इस संशोधन की सूचना क्यों दी। हम अपनी कार्यवाही के सम्बन्ध में जिस क्रम के अनुसार चलते रहे हैं, मैं उसी क्रम से वर्णन करूंगा, अर्थात् सर्वप्रथम हमने उद्देश्य विषयक प्रस्ताव पारित किया और तत्पश्चात् परिषद् के समक्ष समितियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखे गये। प्रत्येक अवसर पर उन पर वाद-विवाद हुआ। समितियां बैठी और विचार हुआ और उन्होंने अपनी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्टों पर इस परिषद् में विस्तृत वाद-विवाद हुआ—शब्दशः तथा खंडशः—और उन पर मत लिये गये। सिद्धान्त निश्चित किये गये तथा वे सब मसौदा-समिति को भेज दिये गये—जो हमारे द्वारा निर्वाचित विशेषज्ञजनों से बनाई गई थी—जिससे कि वे उन सिद्धांतों को उपयुक्त भाषा में रख दें। इन 21 दिनों में यह पता लगा कि मसौदा-समिति के माननीय सदस्यों ने यथासंभव उन देशों के विधानों से शब्द चुने तथा उन्हें अत्यन्त सावधानी एवं ध्यान से प्रयोग किया, जो कि अपने विधानों के अनुसार पीढ़ियों से कार्य कर रहे हैं। यदि अंग्रेजी भाषा में एक अर्धविराम, पूर्ण विराम, मुहावरे अथवा कोई मान्य शब्दावलि पर सन्देह हो, तो मैं कहूंगा कि उन्होंने काफी अच्छे शब्द चुने

[श्री विश्वनाथ दास]

हैं। यहां तथा अन्य स्थानों पर जो पर्यालोचन हुआ है, उससे यह बात पर्याप्त मात्रा में सिद्ध हो चुकी है। मेरा विश्वास है कि ऐसा होने पर, इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि हम संशोधन के रूप में शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी परिवर्तनों पर समय व्यय करें।

यदि प्रत्येक अनुच्छेद पर एक दिन लगाना पड़े तो मुझे भय है कि हमें एक वर्ष से भी अधिक बैठना होगा, क्योंकि 313 अनुच्छेद हैं और आठ अनुसूचियां हैं, जिनमें से प्रत्येक में कई-कई धारायें हैं। मैं तो यह कल्पना करके भी कांप उठता हूं कि यदि हम प्रत्येक संशोधन पर, जिसकी कि सूचना आई हैं, वाद-विवाद करते रहेंगे और इस बात पर ध्यान नहीं देंगे कि संशोधन में केवल एक अर्ध-विराम, सैमीकोलन, व्याकरण सम्बन्धी त्रुटि पर ही वाद-विवाद होना है और मत लेना है, तो कितना समय लगेगा। इन परिस्थितियों में श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है, हमारे 21 दिन के अनुभव के पश्चात् वह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

अध्यक्ष महोदय के विषय में तो मुझे निसंकोच कहना होगा कि, श्रीमान्, आपने हमें अपने विचारों को व्यक्त करने का पूरा अवसर दिया है, चाहे कई ओर से इसका विरोध भी किया गया, किन्तु आपने किसी भी समय किसी माननीय सदस्य को ऐसा अनुभव करने का अवसर नहीं दिया कि उसके दृष्टिकोण को परिषद् में उचितरूपेण व्यक्त करने नहीं दिया गया।

कांग्रेस दल के विषय में बोलते हुए, मैं यह कह दूं कि हम दिन-प्रतिदिन समवेत होते हैं, रविवार भी बीच में नहीं छोड़ते; दो, तीन, चार घंटे निरन्तर इन संशोधनों पर तथा अन्य संभावित एवं आवश्यक संशोधनों पर वाद-विवाद करते रहते हैं। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि कांग्रेस दल ने जो परामर्श-समिति नियुक्त की थी, वह अपना कार्य सुचारू रूप से कर रही है और इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नये संशोधन क्यों परिषद् में रखे गये हैं, उन पर वाद-विवाद हुआ है तथा वे स्वीकृत हुए हैं, यद्यपि किसी माननीय सदस्य ने उनकी सूचना नहीं दी थी।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि इस विषय में पर्याप्त सावधानी से काम लिया जा रहा है तथा हमारी यह उत्कंठा है कि एक समुचित विधान का निर्माण हो।

श्रीमान्, श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है वह अत्यन्त व्यापक हैं इसमें उचित वाद-विवाद के लिए स्थान रखा गया है, और सभापति में पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया है कि वे सदस्यों को प्रत्येक प्रश्न के समस्त अंगों पर वाद-विवाद करने का पर्याप्त अवसर देंगे। इसमें 'व्यापक संशोधन' की चर्चा की गई है। यह सुस्पष्ट है। एक उदाहरण लीजिये। मान लीजिये संशोधन संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 और 8 की सूचना प्राप्त हुई हैं। उपाध्यक्ष संख्या 8 अथवा 7 और 8 को चुन लेते हैं। उन पर पूर्णतया वाद-विवाद होगा और उन पर मत लेने से पूर्व परिषद् के समक्ष सब प्रकार के विचार उपस्थित किये जायेंगे। किन्तु मैं यह नहीं जानता कि श्रीमती दुर्गाबाई प्रस्तावित उपनियम के अंत में यह क्यों कहती है कि 'बिना वाद-विवाद के (उस पर मत लिये जा सकते हैं)'। बिना वाद-विवाद के तो कुछ भी नहीं किया जा रहा है। हम सब बातों पर वाद-विवाद करते हैं। व्यापक संशोधनों पर वाद-विवाद हो जाने के पश्चात् वाद-विवाद के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता है और इसी कारण मैंने 'बिना वाद-विवाद के' इन शब्दों के निकाल देने के लिये अपना संशोधन रखा है। मेरा विचार मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के समान नहीं है कि किसी संशोधन पर बिना वाद-विवाद के मत लिये जाते हैं। यह इस माननीय परिषद् का अपमान है और ऐसा कदापि नहीं होता। संविधान-परिषद् की कार्यप्रणाली विधान-मंडलों की कार्यप्रणाली से भिन्न होती हैं संविधान-परिषद् की अपनी कार्यप्रणाली है जिसके अनुसार संकल्पों और प्रस्तावों पर वाद-विवाद के लिये पर्याप्त क्षेत्र होता है। यदि हमारे मित्र विधान-निर्माण के लिए उतना ही समय लेना चाहते हैं जितना कि अठारहवीं शताब्दी में अमरीका के राज्यों के प्रतिनिधियों ने लिया था, तो हमें इस पर एक-दो वर्ष अथवा और भी अधिक समय लगाना होगा। क्या मेरे मित्र इस कार्य के लिए उतना समय लगाने के लिए उद्यत तथा उत्सुक हैं? मैं कहता हूं कि देश विधान के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है। हम यथासंभव शीघ्र 1935 के इस अधिनियम की जीवित दाह-क्रिया कर देना चाहते हैं। हम उपयोजनायें कब तक करते रहेंगे? अतएव मैं अपने मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि वे परिषद् के समक्ष उपस्थित प्रस्ताव को स्वीकार कर लें; हां, 'बिना वाद-विवाद के' इन शब्दों के बिना ही स्वीकार करें क्योंकि यहां कुछ भी बिना वाद-विवाद के नहीं होता।

[श्री विश्वनाथ दास]

श्रीमान्, इस व्यस्त संसार में रह कर हम विधान पर इतना समय व्यतीत नहीं कर सकतें, जो कि यथासमय परिवर्तित भी किया जा सकता है। इस विधान में परिवर्तन करने के संबंध में जो प्रावधान रखे गये हैं वे अन्य विधानों से अधिक सरल हैं। इन परिस्थितियों में, इस सम्बन्ध में कोई चिंता नहीं होनी चाहिए।

अपनी वक्तृता समाप्त करने से पहले मैं श्रीमद्भागवत की एक कथा उद्धृत करना चाहता हूं। सम्राट खट्वांग को स्वर्ग ले जाया गया, तो पता चला कि अभी पृथ्वी पर उनके जीवन के कुछ निमिष अर्थात् सैकिंड शेष थे। वह स्वर्ग से पृथ्वी की ओर भाग आये क्योंकि उन शेष कुछ सैकिंडों में भी वे अपनी प्रजा की सेवा करना चाहते थे। हमें इससे क्या शिक्षा लेनी चाहिए? आज जब कि देश भर में कष्ट, कठिनाइयां तथा क्लेश हैं, क्या हम यहां लम्बे समय तक विरामों पर वाद-विवाद करते रहेंगे? हम इसे विशेषज्ञों की मसौदा-समिति पर क्यों नहीं छोड़ सकते, जिन्होंने कि इस पर अपना काफी मूल्यवान तथा लाभप्रद समय व्यय किया है? इस कारण मैं अपने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि मेरे सुझाये हुए संशोधन के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब इन संशोधनों पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

श्री दामोदर स्वरूप सेठ (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से और अत्यंत खेद तथा दु:ख के साथ मैं माननीया श्रीमती दुर्गाबाई के रखे हुए प्रस्ताव का विरोध करना चाहता हूं और श्रीमान्, मैं इसका विरोध अपनी सारी शक्ति से करना चाहता हूं। श्रीमान्, मुझे आश्चर्य है कि हम स्वतंत्र-स्वाधीन भारत के विधान के मसौदे पर पूरी गम्भीरतापूर्वक तथा शांतिपूर्वक विचार कर रहे हैं अथवा हम एक मामूली कानून को शीघ्रता से पारित कर रहे हैं जो कि एक विशेष तिथि तक अवश्य स्वीकार हो जाना चाहिए अन्यथा आकाश गिर पड़ेगा तथा पृथ्वी अपने ध्रुव के चारों और परिक्रमा करना बंद कर देगी। अब तक भी बहुत से संशोधनों को बहुमत दल ने रोक दिया है तथा गिरा दिया है और वे भविष्य में भी बहुत से संशोधनों को रोक देंगे। अब यह प्रस्ताव रखा गया है कि नियमों में संशोधन कर दिया जाये तथा माननीय अध्यक्ष को कुछ संशोधनों को रोक देने

की अधिक शक्ति दी जाये। यदि यही उनका दृष्टिकोण है, तो यह संभव है कि बहुमत दल अथवा शक्ति आरूढ़ दल अपनी बात को पूरी कर सकता है, किन्तु श्रीमान् भारतीय जनता को यह धोखा नहीं दिया जा सकेगा कि यह विधान उनके द्वारा तथा उनके हेतु बनाया गया है। हम बाह्य संसार को धोखा दे सकते हैं किन्तु निस्संदेह हम स्वयं को धाोखा नहीं दे सकते। क्योंकि बहुसंख्यक दल के पास लाठी है वे अपनी रुचि की भैंस ले सकते हैं, किन्तु भारतीय जनता का क्या हाल होगा और सच पूछिये तो बहुसंख्यक दल का भी बाद में क्या हाल होगा? जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, बहुत से संशोधन, जो कि बहुसंख्यक दल के सदस्यों द्वारा ही पेश होने चाहिये थे, रोक दिए गए हैं। श्रीमान्, यह तो केवल दल के मुखियाओं का आधिपत्य है। अतएव मैं कहता हूं कि, श्रीमान्, वर्तमान परिस्थितियों में यह प्रस्ताव उपयुक्त नहीं है। मुझे सभापति की प्रतिष्ठा, निष्पक्षता तथा ईमानदारी में पूर्ण निष्ठा है और मुझे पूर्ण आशा है कि सभापति परिषद् के अधिकारों की रक्षा करेंगे। किन्तु, श्रीमान्, इस प्रस्ताव के पारित करने का अर्थ यह होगा कि हमने जनतंत्र को विदा कर दिया है। जनतंत्र में यह अपेक्षित है कि यहां प्रत्येक संशोधन पर, प्रत्येक सूचित संशोधन पर, उसके सारे पहलूओं पर वाद-विवाद होना चाहिए। संशोधनों को पेश न करने के लिए दल की ओर से कोई आदेश नहीं दिया जाना चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, श्रीमान्, हम कोई ऐसा कार्य नहीं कर रहे हैं जिसे साधारण कार्य कहा जा सके। हम स्वतंत्र, स्वाधीन भारत के विधान के मसौदे पर विचार कर रहे हैं; हम अपने भाग्य का निर्माण कर रहे हैं अत: जो भी संशोधन भेजा गया है, उसे रोका नहीं जाना चाहिए। यदि संशोधनों को इस प्रकार रोक दिया गया तो यह जनतंत्रवाद के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण होगा। अतएव, श्रीमान्, मैं बहुसंख्यक दल के सदस्यों से भी अत्यन्त विनीत भाव से अनुरोध करता हूं कि यह उनके अपने हित में है और जनता के भी हित में है कि वे प्रत्येक संशोधन के पेश होने पर बल दें तथा उसके सब पहलुओं पर वाद-विवाद करें। ऐसा करके वे अपना पवित्र कर्त्तव्य पालन करेंगे जो कि भारतीय जनता ने उन पर डाला है। किन्तु यदि वे बहुसंख्या में होने के नशे में अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करते हैं, तो वे इस विधान को जैसे चाहें पारित कर सकते हैं, किन्तु भारतीय जनता उस विधान को कभी नहीं अपनायेगी। जैसा कि मैं पहले भी एक अवसर पर कह चुका हूं, मैं एक बार फिर कहता हूं कि यह विधान वास्तव में भारतीय जनता द्वारा नहीं बनाया गया है और हद से

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

हद ऐसा समझा जायेगा कि इसे देश की जनता के केवल पंद्रह प्रतिशत प्रतिनिधियों ने बनाया तथा पारित किया है और वे प्रतिनिधि भी अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा आए थे और ऐसे निर्वाचन के बारे में प्रोफेसर लास्की का मत है कि यह भ्रष्टाचार को बढ़ाता है। अत: श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि यह परिषद् इस प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार करेगी और इसे ठुकरा देगी, जिससे कि परिषद् को अब तक आये हुए सारे संशोधनों के प्रत्येक पहलू पर विचार तथा वाद-विवाद करने का अवसर प्राप्त हो सके।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं कि आपने मुझे नियमों पर इस संशोधन के विरुद्ध अपनी खेद तथा क्रोध की भावना व्यक्त करने का अवसर दिया है। इस संशोधन का अभिप्राय यह है कि हमें इस परिषद् में जो कुछ थोड़ी सी भाषण की स्वतंत्रता है उसे भी कम कर दिया जाये। श्रीमान्, हम सब शायद माननीय सदस्यों के सामने बुद्धिमत्ता की बीन बजाने के योग्य नहीं हों, किन्तु मुझे विश्वास है कि आप तथा इस विधान के बनाने वाले हम सबको ऐसी भैंसे तो नहीं समझेंगे जिनके समक्ष वे भी अपनी बीन नहीं बजा सकते।

नियमों पर इस नये संशोधन द्वारा उन संशोधनों को रोकने का प्रयत्न किया गया है जिन्हें कि केवल शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी समझा जाता है अथवा मान लिया जाता है। श्रीमान्, शाब्दिक संशोधन प्राय: परिषद् के अन्य सदस्यों द्वारा ही नहीं, अपितु मसौदे के रचनायकों द्वारा भी रखे गये हैं यदि यह नियम केवल उन्हीं के विरुद्ध काम आना है जिन्हें कि मसौदा-समिति के सदस्य होने का सौभाग्य नहीं मिला और उनके विरुद्ध काम नहीं आना है जो कि मसौदा बनाने के पश्चात्, प्रत्येक शब्द-समूह को ध्यान से तोलने के पश्चात्, इस विधान के विभिन्न अनुच्छेदों तथा खंडों पर ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् यह जान पाते हैं कि उन शब्दों से वह आशय व्यक्त नहीं होता जो कि वे चाहते थे और वे शब्दों को बदलने अथवा शाब्दिक संशोधन करने का प्रयत्न करते हैं, तो यह न्याय नहीं होगा; विशेषत: यदि गैर-सरकारी सदस्यों को ऐसा करने की स्वतंत्रता न दी जाये। मेरे विचार में यह इतना अन्याय तथा अपरिषदात्मक होगा कि उसका ऐसे होने के कारण मुझे विश्वास है यह परिषद् इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगी।

श्रीमान्, उस दिन मुझे ऐसा संशोधन पेश करने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ जो कि केवल शाब्दिक संशोधन दिखता था, अर्थात् 'समस्त नागरिकों' के स्थान पर—'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रखने थे। मुझे अतीव आश्चर्य हुआ तथा प्रसन्नता हुई कि विद्वान् डा. अम्बेडकर भी उस सुझाव की उपयुक्तता को समझ सके और उन्होंने आश्वासन दिया कि उस शाब्दिक दिखाई देने वाले परिवर्तन पर विचार करेंगे और अनुकूलता से विचार करेंगे। दूसरी ओर डा. अम्बेडकर ने स्वयं अनुच्छेद 40 पर एक संशोधन किया था जो कि शाब्दिक संशोधन दिखाई देता था, जब तक कि कोई उन युक्तियों पर विचार न करे जो कि उन्होंने कृपा करके इसके समर्थन में दी थी, तो इन दोनों के पीछे आशय तो एक ही था।

इस प्रकार के शाब्दिक परिवर्तन, चाहे उनका रूप कुछ भी हो, केवल वाद-विवाद खड़ा करने अथवा अपना नाम पत्रों में छपवाने के मनोरंजनार्थ ही नहीं रखे जाते। शाब्दिक संशोधनों में प्राय: अभिव्यंजना का अन्तर होता है, जो प्रश्न के सुलझाने की प्रणाली का अन्तर है, हो सकता है पीछे छिपे हुए आदर्श का अन्तर भी हो। और चाहे हम सब अंग्रेजी के शब्द-कोष के पंडित न हों, किन्तु तदपि शायद हम एक शब्द परिवर्तन के द्वारा दृष्टिकोण का कुछ अन्तर और दृष्टिबिंदु का कुछ अन्तर बता सकें, जिसे केवल इसीलिये ठुकरा देना अपेक्षित नहीं है कि हमारे पास कानूनी वाक्य-विन्यास का विशिष्ट चातुर्य्य, विशेष ज्ञान तथा अनुभव नहीं है।

इस दृष्टिकोण के समर्थन में मैं यह भी कहूंगा कि, श्रीमान्, इस समय जिस रूप में नियम विद्यमान है उनके अनुसार भी सभापति को परिषद् के समय को बचाने की काफी शक्ति है, यदि इस परिषद् में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा वाद-विवाद की स्वतंत्रता को कम करने के यत्नों का केवल यही कारण है। मेरा सुझाव है कि आखिर हम एक ऐसा विधान बना रहे हैं, जो हमें आशा है कि कुछ वर्ष तक रहेगा। और कुछ ऊंचे क्षेत्रों में, मैं जो यह धारणा पाता हूं कि इस विधान को दोहराने अथवा बदलने की हममें पूरी शक्ति है, इससे इस मामले पर हमारा दृष्टिकोण प्रभावित नहीं होना चाहिये। यह संभव है कि अब हम जो विधान बना रहे हैं उसे हम बहुत वर्षों तक स्थिर न रख सकें। हमारे लिये ऐसे अवसर आ सकते हैं कि हमें इसमें परिवर्तन करने पड़े—परिस्थितियां हमारी आकांक्षाओं से अधिक बलवती हों—और हम आज जिस विधान का निर्माण कर

[प्रो. के.टी. शाह]

रहे हैं, वह उतने समय तक स्थिर न रहे जितना कि हम चाहते हैं। फिर भी मेरे विचार में किसी सदस्य के मन में यह बात नहीं होगी कि हम आज जो विधान इतनी गम्भीरता से बना रहे हैं वह किसी दूरदर्शिता की कमी, वाद-विवाद के अभाव, अथवा इसके समस्त अंगों पर प्रकाश न पड़ने के कारण कल बदल जाये। अर्थात् हम उपयुक्त समय पर यह न देख सकें कि विधान के शब्दों का क्या आशय है और अकस्मात हमें पता चले कि हमने ऐसी व्यवस्था रख दी है जो हमारी इच्छानुसार नहीं है।

श्रीमान्, वकील बहुत चतुर लोग होते हैं। उन्हें अवश्य ही चतुर होना पड़ता है क्योंकि वे मुख्यतया परान्नभोगी होते हैं; वे मानवता की कलह, दुर्भाग्य तथा दु:खों के आसरे अपना जीवन व्यतीत करते हैं; और इसीलिये वे सदा ऐसा आशय ढूंढ़ने, ऐसा अर्थ निकालने और ऐसा दृष्टिकोण बनाने का मार्ग निकाल लेंगे जो कि शायद विधान के मूल लेखकों की इच्छा के अनुसार कदापि न होगी। हां, इसका तब तक निवारण नहीं हो सकता जब तक कि वकीलों के पेशे की वही स्थिति रहेगी जो कि आज है। किन्तु कम से कम इसका आरक्षण तो हो सकता है और ऐसा तब होगा जब हम उचित वाद-विवाद करेंगे और इस परिषद् के समक्ष सारे विचारों के दृष्टिकोण होंगे और सारे मतों की अभिव्यक्ति हो गई हो तो जिससे कि यह इस विषय में अंतिम निर्णय कर सकेगी और विधान के विषय में इसकी विवेक तथा औचित्य की भावना में जो चीज इसे सर्वोत्तम जंचेगी उसे यह रख सकेंगी।

श्रीमान्, मैं इस युक्ति को समझने में असमर्थ हूं कि हमें इस विधान के विषय में शीघ्रता करनी चाहिये, और ऐसा करने के लिए सदस्यों के लिए वाद-विवाद का अवसर कम कर देना चाहिए, जैसा आशय कि हम नियमों में किये जाने वाले इस संशोधन में पाते हैं। श्रीमान्, यदि आप सचमुच यह चाहते हैं कि इस पर जो समय व्यय हो रहा है वह कम किया जाये, तो मैं पूछता हूं कि हम प्रतिदिन दो बार क्यों न समवेत हो, अथवा अधिक समय क्यों न बैठें, अथवा ग्रीष्म ऋतु में क्यों न बैठें। या क्या हम इतने कोमल हैं, अथवा अपने आराम तथा मनोरंजन के इतने उपासक हैं कि हम अत्यन्त सुन्दर ऋतु में ही, अत्यंत सुखप्रद कमरे में ही तथा अत्यन्त आनन्ददायक अवस्थाओं में ही समवेत होने का विचार कर सकते हैं और अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करते हैं केवल इसी कारण कि ग्रीष्म

ऋतु की गरमी में अथवा सामाजिक व्यस्तता के मध्य में हमें अपना कर्त्तव्य करने में असुविधा होगी।

श्रीमान्, मैं आपसे पूछता हूं कि उदाहरण के तौर पर यदि आप अपराह्न में तीन से 9 बजे तक बैठें, तो आपको इसका अच्छा प्रमाण मिल सकेगा कि कितने सदस्य अपने विचारों को व्यक्त करते हैं श्रीमान्, आपको चाहिये कि हमारी शक्ति का पूरा उपयोग करें। श्रीमान्, आप हमारे उत्साह का पूरा उपयोग करें, इस मार्ग से देश-हितार्थ कार्य करने की हमारी इच्छा का पूरा उपयोग करें; और आप देखेंगे कि केवल वही लोग उपस्थित होंगे जो कि इस कठिनाई को झेल सकते हैं। इस प्रकार कार्य रूप में समय की बचत हो जायेगी और उसकी बरबादी नहीं होगी, यह शंका भी उत्पन्न नहीं होगी कि अल्पसंख्यकों को अथवा उन लोगों को जो कि बहुसंख्यकों के कृपापात्र नहीं हैं, विधान के निर्माण-कार्य में उचित भाग नहीं मिलेगा।

श्रीमान्, मैं आपसे और सारी परिषद् से कह देता हूं कि इस विधान पर विचार करने का केवल एक ही तरीका है कि उचित समय दिया जाये और समय की बचत न की जाये। यही उचित रूपेण, संतोषजनक रूप से तथा ऐसे रूप से विचार करने का तरीका है जिससे कि भावी संतान इसके निर्माण के लिये हमारा धन्यवाद दे। यदि आप शीघ्रता करना चाहते हैं—मैं तो व्यक्तिगत रूप से कोई कारण नहीं समझता कि शीघ्रता की जाये—किन्तु यदि आप शीघ्रता करना चाहते हैं तो आपको अधिक देर तक समवेत होना चाहिये, अधिक बार समवेत होना चाहिये, उस समय भी जब कि विधान-मंडल का अधिवेशन हो रहा हो, वह सभा रात को भी हो सकती है और हमें विधान के उन भागों पर विचार करना चाहिये जिनके लिये सविस्तार ज्ञान की आवश्यकता है, जिस पर पूर्ण वाद-विवाद करने के हेतु मोटे-मोटे सिद्धांतों की तथा शब्दचातुर्य्य की इतनी आावश्यकता नहीं होती, किन्तु जिसके लिये राजस्व जैसे मामलों, न्याय प्रणाली आदि जैसे विषयों के ध्यानपूर्वक अध्ययन तथा विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता होती है।

मैं अनेक धाराओं को गिना कर परिषद् का समय नहीं लेना चाहता। प्रत्येक धारा में शुद्ध अभिव्यंजना के लिये केवल अंग्रेजी के ज्ञान की अथवा केवल विराम

[प्रो. के.टी. शाह]

संबंधी दक्षता अथवा केवल रूप की उपयुक्तता की ही आवश्यकता नहीं है; इसके लिये इस देश के इतिहास तथा आर्थिक अवस्था के सविस्तार ज्ञान की आवश्यकता है और मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि यह आवश्यकता विधान पर इस प्रकार जल्दी-जल्दी विचार करने से पूरी नहीं होगी, जिस प्रकार कि आज बहुसंख्यक चाहते हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसा करके बहुसंख्यक देश के हितों का अनुसेवन कर रहे हैं, यदि वे भाषण की स्वतंत्रता को कम करना चाहते हैं, यदि वे ऐसे नियम बनाना अथवा नियमों का ऐसा संशोधन करना चाहते हैं जिससे कि परिषद् के सामने अपने विचार अथवा दृष्टिकोण रखने के लिये हमें अब से भी कम अवसर मिल सके। श्रीमान्, अनेक बार जब हम अकेले अपने कमरे में बैठे हुए संशोधन तैयार करते हैं, तब हमारा अकेला ही दिमाग होता है। हम जब यहां आते हैं तब हम अपने सहयोगियों के विचारों का पता लगता है। जब यहां आकर हमें दूसरी अभिव्यंजनाओं का, 'दूसरे दृष्टिकोणों का ज्ञान होता है, जो तथ्यों अथवा युक्तियों पर आधारित होते हैं, तो मैं अपनी ओर से तो सर्वथा यह कहने के लिये तैयार हूं कि मुझे अपने विचारों को बदलने तथा दूसरों के अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों को स्वीकार करने में कोई भी हिचकिचाहट, कोई भी शर्म नहीं होती। किन्तु ऐसा उस स्थिति में नहीं हो सकता जब कि दूसरों के विचार हमारे समक्ष बिना युक्तियों के रखे जायें, और उनके सम्बन्ध में तथ्यों के उदाहरण न दिये जायें। यदि आप वह रास्ता रोक देंगे जिससे कि हम अपने विचार रख सकते हैं, श्रीमान्, यदि आप वाद-विवाद के कपाट बन्द कर देंगे, यहां जो संशोधन भेजे जाते हैं, यदि आप उन पर 'बिना वाद-विवाद के' मत लेंगे, तो आप सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अत्यन्त आधारभूत अधिकार भी छीन लेंगे। किन्तु उसका अर्थ यह होगा कि आपको क्रूर बहुमत का समर्थन प्राप्त है और देश के विवेकयुक्त बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त नहीं है।

श्रीमान्, मैं यह बात एक दूसरे दृष्टिकोण से भी रखना चाहता हूं। आपके पास बहुत विद्वान् विशेष-ज्ञान-प्राप्त मसौदा-लेखक हैं। उनसे पूछिये। पता लगाइये, मसौदा-समिति के ही अध्यक्ष से पता लगाइये कि क्या अन्य देशों ने, जिन्हें कि हमसे अधिक अनुभव के साथ विधान बनाना पड़ा था, ऐसे कार्य पर समय नहीं

लगाया है जो कि वर्तमान एवं भावी संतति वे लिये इतना महत्त्वपूर्ण है? श्रीमान्, भारत-शासन-अधिनियम को भी (ब्रिटिश) संसद में स्वीकृत होने में कई वर्ष लग गये थे, यद्यपि उस संसद को ऐसे कानून बनाने में हमसे कहीं अधिक अनुभव है। फ्रांसीसी लोगों ने स्वतंत्र होने के पश्चात् केवल विधान के निर्माण में ही दो वर्ष लगा दिये थे। अमरीकी लोगों ने, जब कि वे स्वतंत्र हुए थे और जब अमरीका में केवल 13 राज्य थे जिनकी जनसंख्या हमसे सौवां भी भाग नहीं थी, उस समय अपना विधान पारित करने में दो वर्ष लगाये थे और उसमें वे उन झगड़ों को नहीं सुलझा सके थे जो कि अन्तिम मसौदा पारित करने से पूर्व समय पर उठे और अंत में संयुक्त राज्य की स्थापना हुई, जिस नाम से कि वह देश आज कल पुकारा जाता है।

श्रीमान्, मैं आपको असंख्य उदाहरण दे सकता हूं, जहां कि समय व्यय किया गया था और ऐसा करना उचित था। देश के मूल-विधान को पारित करने से पहले उस पर गौर किया जाना चाहिये, विचार किया जाना चाहिये और प्रत्येक दृष्टिकोण से उस पर ध्यान दिया जाना चाहिये। और श्रीमान्, मैं फिर कहता हूं कि आपके इस तरह जल्दबाजी करने से यह काम उस प्रकार नहीं होगा। अतएव, यदि मुझे ऐसा प्रस्ताव करने का अधिकार हो तो मैं निस्संदेह यह सुझाव रखूंगा कि यह मामला पुनर्विचारार्थ मसौदा-समिति अथवा परिषद् की स्टीयरिंग-समिति अथवा अन्य किसी उपयुक्त समिति में भेज दिया जाये। मैं शीघ्रता से कार्य करने के विरुद्ध नहीं हूं, विधान को यथासंभव शीघ्र ही पारित करने के विरुद्ध नहीं हूं। मैं इस पर जल्दबाजी से विचार करने के विरुद्ध हूं, इस पर अंट शंट तरीके से विचार करने के विरुद्ध हूं और इसी कारण मैं आपके समक्ष यह सुझाव रखता हूं, हमें ऐसे तरीके ढूंढने चाहियें जैसे कि इस पर अधिक समय लगाया जाये, इसके लिये अधिक वक्त रखा जाये। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हमें प्रायः इस बात के लिये दोष दिया जाता है कि हम बिना परिश्रम किये भत्ते लेते हैं। अतएव, श्रीमान्, मेरा सुझाव है कि परिषद् के लिये यह अभीष्ट होगा यदि इस प्रकार के प्रस्ताव को आज पारित करने के स्थान पर—जिसे कि आप बहुसंख्यकों की सहायता से पारित अवश्य कर सकते हैं—आप सारे मामले पर पुनर्विचार करें तथा

[प्रो. के.टी. शाह]

इसे उचित समय में संशोधनों के साथ पेश करें। और वह भी तब करें जब आप यह देखें कि विघ्न डालने के उद्देश्य से ही बाधा उपस्थित की जाती है। उससे यथासंभव पूर्ण वाद-विवाद होना संभव होगा, उससे किसी के लिये यह सोचने का स्थान नहीं रहेगा कि उनके विचारों को उचित रूप से व्यक्त नहीं करने दिया गया था। साथ ही इससे यह भी लाभ होगा कि विधान पूर्ण, समस्त तथा शुद्ध बनेगा और उससे अधिक अच्छा बन सकेगा जो कि इन कोशिशों से बन सकता है। धन्यवाद, श्रीमान्।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने श्री कामत के संशोधन संख्या 7 पर एक संशोधन की सूचना दी थी; किन्तु उसके लिए अब समय नहीं रहता है, अत: मैं केवल अपने दृष्टिकोण की व्याख्या करूंगा। मैं चाहता था कि श्री कामत के संशोधन सं. 7 के अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें "और खंड (ए) (3) हटा दिया जाये।"

मैंने अपने मित्र श्री दामोदर स्वरूप सेठ और प्रोफेसर के.टी. शाह और अन्य मित्रों की वक्तृतायें ध्यान से सुनी हैं। मेरे विचार में वे भी समान रूप से इस बात के लिए उत्सुक हैं कि यह विधान यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र पारित हो जाये। इस समय हम जिस गति से चल रहे हैं, उससे नौ दिन में बीस अनुच्छेद पारित हुए हैं। अर्थात् दो अनुच्छेद प्रतिदिन के लगभग बैठे। विधान में 315 अनुच्छेद हैं और 8 अनुसूचियां हैं, इसलिए सामान्यत इस गति से विधान को पारित करने में लगभग 200 दिन लगेंगे। मेरे विचार में न्यूनातिन्यून भी इतना समय अपेक्षित होगा, क्योंकि हम जानते हैं कि इन नौ दिनों में कांग्रेस दल के सदस्यों ने अपने अधिकतर संशोधन पेश नहीं किए और उनकी ओर से बहुत ही कम संशोधन पेश हुए। मैं नहीं मानता कि इस समय जिस गति से कार्य हो रहा है उससे अधिक शीघ्र हो सकता है और मैं नहीं मानता कि यदि हम इस विधान के विचारार्थ कम से कम 200 दिन भी न दें, तो इसके शीघ्र पारित होने की संभावना है। इसे शीघ्र पारित करने का केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि हम अधिक देर तक बैठा करें। यदि हम अपने बैठने का समय 3 घंटे से 5 घंटे भी कर दें तो भी बहुत दिन लगेंगे। व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार में तो हम अब भी कोई समय व्यर्थ नहीं खो रहे हैं, क्योंकि जो समय बचता है उसे कांग्रेस दल इस बात में खर्च करता है कि कौन से संशोधन पेश करने के योग्य हैं और कौन से नहीं और इस प्रकार वास्तव में परिषद् का समय बच जाता है। मैं नहीं

समझता कि कोई और ऐसा तरीका है जिससे कि हम अधिक वेग से कार्य कर सकते हैं।

मेरी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है उसमें यह मान लिया गया है कि इस प्रणाली द्वारा कुछ अधिक गति से प्रगति संभव है। व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार में तो इससे प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। सर्वप्रथम तो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद हैं जिन्होंने रूप-सम्बन्धी बहुत से प्रस्तावों की सूचना दी थी, किन्तु वे उनमें से अधिकांश को पेश नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार खंड (3) के दूसरे भाग को भी जिसमें कहा गया है कि सदृश आशय के अथवा मिलते-जुलते संशोधन पेश नहीं किए जायेंगे, मैं बहुत गंभीर बात समझता हूं। एक ही विषय विशेष पर अनेक संशोधन हो सकते हैं और शायद परिषद् एक संशोधन को स्वीकार करना चाहे और सभापति द्वारा चुने हुए संशोधन को स्वीकार न करना चाहे। यद्यपि यह कहा गया है कि उन संशोधनों को पेश किया हुआ समझा जायेगा, व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार में ऐसा समझना उपयुक्त न होगा जब तक कि प्रस्तावक अपने भाषण के साथ उसे पेश ना करे। मेरे विचार में संशोधन के परिषद् में पेश हुए बिना उन्हें पेश हुआ समझ लेना लोकतंत्र के विपरीत होगा। यद्यपि इससे वास्तव में परिषद् का बहुत अधिक समय नहीं बचेगा, किन्तु अनेक सदस्यों की ओर से यह अनुचित शिकायत पैदा हो जायेगी कि इस प्रकार हम उनका मुंह बंद करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं ऐसा नहीं समझता कि उनका मुंह बंद किया जायेगा, क्योंकि आप सदा उन संशोधनों को पेश करने की अनुमति दे देंगे जिनमें कि कुछ तथ्य हों। किन्तु फिर भी कांग्रेस-विरोधी यह शिकायत कर सकते हैं कि उन्हें चुप किया जा रहा है तथा उनका मुंह बंद किया जा रहा है। अतएव मैं सच्चे हृदय से मेरी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई से सविनय कहना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव पर पुनर्विचार करें और देखें कि क्या इस पर बल देना उपयुक्त होगा और क्या इससे वास्तविक प्रयोजन सिद्ध होगा? मेरी बहुत प्रबल भावना है कि विधान एक स्थायी चीज होती है, और इस कारण ऐसी कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए कि हम इस पर समुचित रूप में विचार नहीं कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस प्रस्ताव पर पुनर्विचार किया जायेगा तथा मेरे मित्र मेरे कथन को ध्यान में रखेंगे।

***श्री बी.एन. मुनवली** (बम्बई रियासतें): उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक कि इस प्रस्ताव का आशय है वहां तक तो मैं इससे पूर्णतया सहमत हूं, किन्तु जहां इससे

[श्री बी.एन. मुनवली]

परिषद् के विशेष सदस्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का न्यूनन होता है वहां मुझे इसका विरोध करना होगा।

श्रीमान्, हम यहां समवेत होते रहे हैं तथा अनुच्छेदानुसार वाद-विवाद करते रहे हैं किन्तु हमारा यह वाद-विवाद व्यर्थ नहीं रहा है। केवल महत्त्वपूर्ण बातों, महत्त्वपूर्ण संशोधनों पर ही वाद-विवाद होता रहा है। कई माननीय सदस्यों ने जब यह देखा कि उनके संशोधनों में कोई तथ्य नहीं है तो उन्होंने अपने संशोधनों को वापिस ले लिया, इस प्रकार पर्याप्त बुद्धिमता का परिचय दिया। इन परिस्थितियों में, मेरे विचार में इस प्रस्ताव को पारित करके हम दूसरे विधान-मंडलों के लिए बहुत बुरा उदाहरण रख रहे हैं। अतएव मैं इस प्रस्ताव का बलपूर्वक विरोध करता हूं और परिषद् से अनुरोध करता हूं कि सार्वभौम सत्ता प्राप्त निकाय होने के कारण हम जो कुछ उदाहरण रखेंगे, और यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेंगे तो शायद अन्य विधान-मंडल उनका अवलम्बन करें। यह एक बुरा उदाहरण होगा और माननीय सदस्यों को इसका विरोध करना चाहिए।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम)**:** श्रीमान्, मुझे श्रीमती दुर्गाबाई के रखे हुए प्रस्ताव का बलपूर्वक विरोध करना है। इस प्रस्ताव में जैसी असाधारण शक्तियों का सुझाव दिया गया है, हमारे अध्यक्ष के पास भी ऐसी असाधारण शक्तियां इस समय न होने पर भी, अनुभव से हमें पता चला है, इस परिषद् की कार्यवाही को देख कर साधारण सदस्यों के मन में कुछ भ्रान्त धारणायें उत्पन्न हो गई हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूं वह समझा दूं। मेरे पास कांग्रेस दल की ओर से लागू की गई दो प्रतोद-आज्ञाओं (whips) की प्रतिलिपियां हैं प्रतिदिन इस परिषद् की बैठकें आरम्भ होने से पहले...।

***उपाध्यक्ष:** यहां उनकी चर्चा नहीं होनी चाहिए।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं यह कहना चाहता हूं कि प्रतिदिन...।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप कृपा करके इस स्थान पर उन कांग्रेस के प्रतोदों की चर्चा बंद न करेंगे? वे प्रलेख इसलिए नहीं होते कि उनका यहां प्रयोग किया जाये।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ मैं तो यहां देखता हूं कि ऐसा दिखाई देता है कि वहां जो कुछ निर्णय होता है उस पर यहां शब्दश: आचरण किया जाता है। इससे सामान्य सदस्यों के मन में शंका उत्पन्न होती है, क्योंकि इससे सारा मामला एक-दल का कार्य बन जाता है, बल्कि मेरे विचार में एक व्यक्ति का नाटक बन जाता है। यदि ऐसा है तो, यदि हम अध्यक्ष को असाधारण शक्ति भी दे दें, तो मेरे लिए यह प्रश्न पूछना उचित होगा कि इस विधान-परिषद् के नाट्य रचने की क्या आवश्यकता है, यदि यह एक दल का ही खेल होना है, अर्थात् यह कांग्रेस दल का कार्य ही होना है, अथवा एक व्यक्ति का नाटक होना है।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं श्रीमती दुर्गाबाई का धन्यवाद करता हूं कि उन्होंने एक ऐसा प्रस्ताव रखा है जिससे इस विधान के पास करने में कुछ समय बच सकता है। जिन मित्रों ने इसका विरोध किया है मैं उनसे सहमत नहीं हूं। यह कहना कि जल्दी में यह विधान पास किया जा रहा है, मैं समझता हूं अनुचित है। हम यह देख रहे हैं कि इस विधान-परिषद् को बने हुए काफी समय हुआ और काफी समय इस बात के लिये दिया जा चुका है कि विधान तैयार किया जा सके और एक अच्छी ड्राफ्टिंग कमेटी इस विधान के मसविदे को लिखने में लगी रही है। इसकी मूल धाराओं को हमने यहां पहले ही स्वीकार कर लिया है, इसके मौलिक आधार हम स्वीकार कर चुके हैं। अब इस प्रकार के संशोधन देना कि जिन में भाषा के सुधार और सुझाव पेश किये गए हों जिन में कहीं से 'दी' (the) निकालने के, कहीं पर 'आई' (i) को डाट करने के, कहीं 'टी' (t) को कट करने के 'कहीं ',' लगा दिया जाये, कहीं ';' लगा दिया जाये। इस प्रकार के भाषा सम्बन्धी सुधार की बातें जो इसमें रखी जाती है वह मैं समझता हूं कि आज गरीब जनता के प्रति, जिसके पैसे के ऊपर यह सारा शासन चल रहा है, अन्याय है। हमको एक-एक पाई बचाना चाहिये, एक-एक मिनट बचाना चाहिये।

अभी मैंने अपने मित्र सेठ दामोदर स्वरूप की बात सुनी। वह यहां तो कहते हैं कि इस मामले में किसी तरह की जल्दी नहीं होनी चाहिये, परन्तु बाहर मैंने अपने मित्रों को यह भी कहते सुना है कि 'विधान बनता जा रहा है, देर होती जा रही है, न मालूम कब पूरा होगा, कब नए चुनाव होंगे'। आवश्यकता इस बात की है, जनता चाहती है कि विधान को हम जल्दी-जल्दी बनायें और नए चुनाव

[श्री अलगू राय शास्त्री]

करें, बालिग मताधिकार पर, जिसमें हर वयस्क जिसकी आयु 21 वर्ष से अधिक है अपनी राय दे, और अपना मत देकर अपने सच्चे प्रतिनिधियों को यहां पर भेजे, ताकि शासन की व्यवस्था ऐसे हाथों में आ जाये जो जनता का सच्चा शासन कहा जा सके। आज यह विधान-परिषद् एक indirect चुनाव से आई हुई है। लोग तो यह भी कहते हैं, हमारे वही मित्र, जो सेठ दामोदर स्वरूप की राय के हैं, यह कहते हैं कि मौजूदा विधान-परिषद् बेकार चीज है। यह विधान-परिषद् भंग कर दी जाये और जो मसविदा यह लाई है उसे बालिग मताधिकार से चुने हुए लोगों के सम्मुख उपस्थित किया जाये। एक और सेठ जी और उनके विचार के लोग यह कहते हैं और आज इस विधान पर विचार करने के लिये अधिक से अधिक समय की मांग की जाती है। जो सुझाव, जो प्रस्ताव हमारे सामने है उसमें थोड़ी-बहुत कोई बात इधर-उधर सुधार दी जाये वह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन जो इसकी भावना है, इसके पीछे जो विचार हैं, मैं उनका हृदय से समर्थन करता हूं। इसमें कहा गया है, प्रेसिडेन्ट को अधिकार दिया गया है कि 'कोमा', 'सेमीकोलन' या ऐसी जो चीजें हैं, भाषा के सौष्ठव की, उसमें कोई कमी बताने के लिये कोई संशोधन आए तो वह बेकार है और उसकी आज्ञा न दी जाये, वह डाफ्टिंग कमेटी कर सकती है। नित्य प्रति कन्सल्टेटिव कमेटी बैठती है, तरह-तरह की मशीनरी बनी हुई हैं, उनके हिसाब से भाषा का सुधार किया जाये। और मैं तो प्रारम्भ में ही कह चुका हूं कि अंग्रेजी भाषा हमारी भाषा नहीं है। हमने उस भाषा मे विधान लिखा है, उसकी ग्रामेटिकल मिस्टेक्स के विषय में हम क्या जान सकते हैं, उनके मुहावरों और व्यंग्यों को हम क्या समझ सकते हैं? इसके लिये कोई इंग्लिस्तान से आए तो उसमें जन्म भर संशोधन करता रहे। हम चाहेंगे कि यह अंग्रेजी का विधान रिपील हो जाये, हट जाये और उसकी जगह पर हमारी भाषा का विधान हो। यों वह पूरा नहीं हो रहा है। भाषा को सुधारने के लिये पं. नेहरू की चमकती भाषा का रूप और होगा, डा. अम्बेडकर की चमकती हुई भाषा का और रूप होगा, मुंशी जी की चमकती हुई भाषा का और रूप होगा। तो हम नहीं कह सकते कि कौन सी चमकती हुई भाषा है, कौन से शब्द और मुहावरे ठीक और उपयुक्त हैं, कौन से नहीं। इसमें जो भावना है वह तो आ ही जायेगी, उसमें भाषा सम्बन्धी सुधार बेकार है, उसमें हमारा समय नहीं लगना चाहिये। जो दूसरे संशोधन हैं जिन्हें कई सदस्यों ने उपस्थित किया हो

और जो प्राय: एक से संशोधन हैं, एक ही प्रयोजन और अर्थ के हैं तो उनमें से हम एक को ले सकते हैं। इस विषय में हम प्रेसिडेंट की बुद्धि पर निर्भर करें। वह कह दें कि यह व्यापक संशोधन है और इससे हमारा ड्राफ्ट improve होता है तो वह संशोधन ले लिया जाये और उस पर विचार किया जाये। विचारों को प्रकट करने के लिये पूरा अवसर होना चाहिये। लेकिन व्याख्यानों को आगे बढ़ाते रहें, लामा पूरते रहें, proceedings हम बढ़ाते रहें, दिन के आगे दिन हम बढ़ाते रहें, यह ठीक नहीं।

आप देखिये भारत की जनता हमें क्या कहती है? जरा रेल गाड़ियों के तीसरे क्लास के डिब्बे में बैठ कर चलिये। लोग कहते हैं कि पंखों के नीचे बैठे हैं अच्छी रोशनी है, मजे हैं, हमारे लिये तफरीहें हैं, विधान बन रहा है। श्री के.टी. शाह साहब ने बताया कि दो वर्ष वहां लगे, तीन वहां लगे, विधान बनाने में तो समय इसी तरह लगता ही है। यहां कितने साल आपने लगाए हैं? दो साल तो लग चुके। कैसे कहा जा रहा है कि अभी आपको पूरा समय नहीं मिला। इसलिये मैं आप से कहूंगा कि हम एक दिन में यहां पर तेरह-चौदह हजार रुपये खर्च करते हैं, कदाचित् 24 या 25 हजार प्रतिदिन। वह एक-एक दिन की कीमत है। गरीब जनता के सिर पर हम इसका बोझ नहीं डाल सकते। हमारी जनता सम्पन्न जनता नहीं है। इस गरीब जनता के बल पर हम इस प्रकार बिना वजह खर्च नहीं कर सकते। शब्द जाल पर खर्च नहीं कर सकते। एक्सपर्ट्स पर खर्च किया जाये, लोगों को अवसर दिया जाये, जिन्होंने संशोधन उपस्थित किया है वह आयें, नए-नए विचार प्रकट करें जो 'थौट प्रवोकिंग' बातें हो उनकी जानकारी इसके लिये प्रयुक्त हो। कोई Jagging order नहीं हैं। किसी का गला नहीं घोटा जा रहा है। यह कहना कि गला घोट कर लोगों को बोलने का अवसर नहीं देते हैं, एक पार्टी के स्ट्रेंथ पर सब कुछ पास किया जाता है, यह मेरे ख्याल में 'चार्ज' बेकार है। काफी सुविधा है बोलने की। अगर एक पार्टी का बहुमत हो, इस देश की जनता ने एक दल विशेष, जिसकी कुर्बानियों का एक बड़ा भारी खरीता उसके सामने है, या बहुमत ने उसे चुना है तो इसके लिये आप देश को दोष नहीं दे सकते। आज रूस में कम्युनिस्ट पार्टी का बोलबाला है, वह वहां शासन चलाती है, तो आप उसे blame नहीं कर सकते। blame तब कीजिये जब अन्याय करती हो। अगर यह पार्टी बैठती है, लोग एक राय के होते हैं और जनता की सेवा

[श्री अलगू राय शास्त्री]

करते हैं तो आप इसके लिये इन्हें दोष नहीं दे सकते। यदि आप उन्हें अपने-अपने विचार प्रकट करने देते हैं तो अच्छे विचार हमारे सामने आते हैं और हम आगे बढ़ते हैं, हमारा बिजिनेस चलता है तो मुल्क हमारा धन्यवाद करेगा। यदि हमारी पार्टी बैठकर विचार करती है, उसके स्पोक्समैन अपनी राय प्रकट कर देते हैं। और पार्टी के अन्य सदस्य नहीं बोलते तो समय बचता है। तब आपको क्यों बुरा लगता है। आपको क्यों बुरा लगता है। आपको बुरा लगे, परन्तु जनता इसे पसन्द करेगी। जो लोग delaying tactics इस्तेमाल करना चाहते हैं, जो चाहते हैं, कि 'सेमीकोलन' और 'कोमा' का परिवर्तन करने के लिये उन्हें बोलने की स्वतंत्रता हो तो यह तो amending चीज़ होती है, तब कैसे आप थोड़ी दूर भी बढ़ सकते हैं? यह तो गरीब जनता पर अन्याय होगा। हम इस बात पर चले जायें कि सदस्यों का गला न घोटिये, दफा 144 न लगाइये, यह चलने दीजिये, तो कैसे काम चलेगा? किन विचारों को आप प्रकट कर रहे हैं, कौन सी नई बात आप कहते हैं, देखना यह होगा। विचारों में नवीनता हो, कोई नया सुझाव हो, जिस से ड्राफ्ट की कमी दूर होती हो तो संशोधन कीजिये। विधान में आप improvement कीजिये, उसको प्रेसिडेंट नहीं रोक सकता।

श्रीमती दुर्गाबाई का जो प्रस्ताव है, वह यह कहता है कि अगर संशोधन एक ही किस्म के हों, संशोधन एक ही प्रकार के हों, तो उनमें जो सबसे व्यापक हो, सबसे अच्छा हो, जिसकी वजह से विधान में संशोधन होता हो, उसकी आज्ञा दी जाये। और जिन-जिन व्यक्तियों ने संशोधन दिये हैं वह कोई नई बात कहना चाहते हों, तो उन सबको बोलने का अवसर मिले। हां, किसी बात को दोहराने का समय नहीं मिलना चाहिये। Repetition is not allowed in any Parliament or Legislature anywhere कहीं भी repetition नहीं हो सकता। एक ही बात या एक ही विचार बार-बार दोहराने की आज्ञा किसी देश में किसी धारा-सभा में नहीं है। यह सिद्धांत यहां क्यों न लागू किया जाये। इसलिये मैं हृदय से श्रीमती दुर्गाबाई के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और जिन लोगों ने इसका विरोध किया है, मैं उनका विरोध करता हूं।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, हमारी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है, मैं उसका समर्थन करता हूं। मुझे भय है कि

प्रो. के.टी. शाह तथा अन्य मित्रों ने, जिन्होंने कि संशोधन पेश किये हैं तथा जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोले हैं, बेकार एक आतंक सा उत्पन्न कर दिया है, यद्यपि आशंका का कुछ भी तो कारण नहीं है। मुझे भरोसा है कि वे मेरे साथ तथा प्रस्तावक के साथ इस बात में सहमत होंगे कि केवल शाब्दिक रूप-संबंधी अथवा व्याकरण-सम्बन्धी संशोधनों पर हमें अधिक समय व्यय नहीं करना चाहिये। एक ही आशय को अनन्त प्रकार से भिन्न-भिन्न रूपों तथा विभिन्न शक्लों में रखा जा सकता है। क्या हम उन सब पर समय व्यय करते रहें? हां, मैं प्रोफेसर शाह की इस बात से सहमत हूं कि हमें अपना मुंह बन्द नहीं करना चाहिये। किन्तु महत्त्वपूर्ण विषयों पर, अध्यक्ष को यह शक्ति दी जाती है कि वह ऐसे संशोधनों को चुन ले जिनमें शेष सब अन्य संशोधनों का आशय सन्निहित हो जाये; और यदि एक संशोधन में पूरा आशय न आये तो वे दो-तीन संशोधनों को चुन सकते हैं। इस विषय में हम उनकी शक्ति को किसी प्रकार सीमित नहीं कर रहे हैं। वे वाद-विवाद के प्रयोजनार्थ एक अथवा अनेक संशोधनों को चुन सकते हैं।

इसके अतिरिक्त ऐसा नहीं है कि संशोधनों को सदा के लिये रोक दिया जायेगा। नियम 38-आर के अनुसार वे मसौदा-समिति में पेश होंगे जो कि उन्हें शामिल कर देगी—जहां तक कि वे आशय के विषय में अथवा भाषा के सुधार के विषय में लाभप्रद होंगे—जब कि विधान अंतिम स्वीकृति के लिये हमारे समक्ष पेश होगा। हम जो नया नियम बना रहे हैं उससे नियम-संख्या 38-आर का गुण नष्ट नहीं हो जाता।

इसके अतिरिक्त हम जो कार्यप्रणाली रख रहे हैं वह नई नहीं है। जब आयरिश विधेयक (ब्रिटिश) संसद के समक्ष था, जो कि संसदों की माता है तथा किसी का मुंह बन्द नहीं करना चाहती, तब उन्होंने लोकसभा के लिये यह नियम बनाया था, वह स्थायी नियम-संख्या 28 है और इस समय परिषद् के समक्ष जो प्रस्ताव रखा गया है, वह संसदों की माता के स्थायी नियम-संख्या 28 से शब्दशः नकल किया हुआ है। अतएव ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इससे वाद-विवाद में अवरोध होगा और मुझे आश्चर्य है कि हमारे मित्र इसके विषय में इतने आशंकित हो गये हैं।

और जहां तक आशयपूर्ण सुझावों का प्रश्न है, ऐसे कितने भी प्रस्ताव हमारे समक्ष रखे जा सकते हैं। अध्यक्ष उनकी अनुमति दे सकते हैं तथा शेष के सम्बन्ध में

[श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर]

यह समझा जा सकता है कि वे पेश हो चुके हैं। ऐसा नहीं है कि वे रद्द कर दिये गये हैं। इस नियम के अधीन अध्यक्ष को यह नहीं कहा जा रहा है कि वे महत्त्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद वर्जित कर दें। वास्तव में वे उनकी अनुमति देते रहे हैं। किसी अनुच्छेद-विशेष पर समस्त संशोधनों को पेश करने की अनुमति दी जाती है और उन पर तथा मुख्य अनुच्छेद पर वाद-विवाद होने दिया जाता है। इन परिस्थितियों में आशंका की क्या आवश्यकता है?

जहां तक कांग्रेस दल का सम्बन्ध है वे सारे संशोधनों पर विचार नहीं करते कि कौन से संशोधन परिषद् के समक्ष पेश होने चाहियें। किन्तु अन्य संशोधनों के विषय में हम देख चुके हैं कि कितने पेश किये जाते हैं। हम इन वाद-विवादों पर 50 दिन, अथवा दो मास, अथवा तीन मास व्यय कर सकते हैं किन्तु क्या इन संशोधनों का कोई अंत नहीं होना चाहिये? यह सत्य है कि हमें अपना मुंह बन्द नहीं करना चाहिये, किन्तु कार्य शीघ्रता से होना चाहिये। हम दो वर्ष व्यय कर चुके हैं। हां, इस परिषद् के वाद-विवादों तथा निर्णयों के लिये प्रत्येक सदस्य की सम्मति की पूर्ण आवश्यकता है। किन्तु हम सब समझते हैं कि हम में से कोई भी यहां समय बरबाद करने के लिये नहीं आया है। यह बात सब जानते हैं। किन्तु हम में से प्रत्येक को यह जानना चाहिये कि उसे कार्य की शीघ्रता के हेतु क्या करना चाहिये और साथ ही महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर वाद-विवाद की आवश्यकता को भी ध्यानान्तरित नहीं करना चाहिये। मैं अपने मित्रों से अनुरोध करूंगा कि वे इस नियम के सम्बन्ध में भयभीत न हों, इसका उद्देश्य तो केवल कार्य में शीघ्रता करना है, किन्तु इस शर्त पर कि हमारे वाद-विवाद की लाभप्रदता भी न घटे।

यह भी सुझाया गया है कि हमें प्रातः एवं सायंकाल दोनों समय समवेत होना चाहिये। यदि परिषद् राजी हो तो हम आगामी सोमवार से ही यह व्यवस्था कर सकते हैं। किन्तु इस नियम के बिना, केवल उसी से काम नहीं चलेगा। अतएव मेरा निवेदन है कि परिषद् को यह नियम बिना किसी संशोधन के उसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिस रूप में कि श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा यह पेश किया गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। श्री आयंगर ने (ब्रिटिश) लोक सभा के जिन कार्य-प्रणाली नियमों को चर्चा की है, क्या उन

नियमों अथवा उस नियम-विशेष की प्रतिलिपि आपके पास है? अन्यथा, मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे आपको एक प्रति दें।

***उपाध्यक्षः** हां, मेरे पास है।

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं क्या मैं जान सकता हूं कि लोक सभा की कार्य-प्रणाली-सम्बन्धी जिस नियम का हवाला दिया गया है वह साधारण कार्य से सम्बन्धित है अथवा विधान-निर्माण से? मेरे विचार में जहां तक विधान-निर्माण का प्रश्न है, संसार में कहीं भी वाद-विवाद में ऐसा अवरोध उत्पन्न नहीं किया जाता।

***उपाध्यक्षः** सदस्य कुछ जानना चाहते हैं, अथवा कुछ बताना चाहते हैं?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझती कि परिषद् के कुछ सदस्यों ने मेरे प्रस्ताव पर जो आरोप लगाये हैं, उनका उत्तर देने के लिये मुझे परिषद् का और समय लेना चाहिये। पहले ही, मेरे माननीय मित्र श्री आयंगर ने प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्यों द्वारा उठाई गई कुछ आपत्तियों का उत्तर देने का कष्ट किया है। किन्तु मैं एक बात का उत्तर देना आवश्यक समझती हूं। मैंने कुछ सदस्यों को यह कहते सुना है कि हम यहां जो प्रणाली स्वीकार कर रहे हैं, वह सर्वथा अस्वाभाविक प्रणाली है। किन्तु मेरा निवेदन है कि इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है और अभी-अभी एक सदस्य ने पूछा था कि यहां हम जो कार्यप्रणाली स्वीकार कर रहे हैं, वह साधारण विधेयकों के ही लिये प्रयुक्त होती है अथवा विधान-निर्माण के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होती है। श्री आयंगर पहले ही कह चुके हैं कि लोकसभा के स्थायी नियमों के नियम संख्या 28 के अंतर्गत यही प्रणाली आयरिश स्वशासन विधेयक को पारित करते समय काम में ली गई थी। इतना ही नहीं। भारत-शासन-अधिनियम 1935 पर विचार करने के संबंध में शीघ्रता से कार्य समाप्त करने के उद्देश्य से यही कार्यप्रणाली प्रयोग की गई थी। कार्य को शीघ्र समाप्त करने के लिये बहुत सी कार्य-प्रणालियां हैं और हमारे विचार में हमने जो यह प्रणाली सुझाई है, वह न्यूनतम भयावह है और इस परिषद् के सदस्यों को अधिकाधिक स्वीकार्य है। अतएव मैंने यह प्रस्ताव आपके समक्ष रखने का साहस किया और मुझे आशा थी कि इसे एकमत से स्वीकार कर लिया जायेगा।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

किन्तु सब प्रकार की आपत्तियां खड़ी की गई हैं और मैंने सदस्यों को यह कहते सुना है कि इस नियम से जनतंत्र के सिद्धांत की पराजय होगी तथा सदस्यों के मुंह भी बन्द हो जायेंगे। मेरा निवेदन है कि मेरे प्रस्ताव में ऐसी कोई भी बात नहीं है। मैं पहले ही समझा चुकी हूं कि इस संशोधन के पेश करने में मेरा उद्देश्य सदस्यों के विशेषाधिकारों को कम करना नहीं था, यदि वे मेरे संशोधन पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे, तो वे मुझे दोष नहीं देंगे; क्योंकि केवल उन्हीं संशोधनों के वाद-विवाद पर इसका प्रभाव पड़ेगा, जो कि केवल शाब्दिक अथवा व्याकरण-सम्बन्धी हैं। हमने संशोधनों की वृहद् सूचियों को देखा है यदि हमें पता लगा कि उनमें से बहुत से संशोधन केवल शाब्दिक अथवा व्याकरण सम्बन्धी हैं। केवल इन्हीं संशोधनों को रोका जायेगा। नियम 38-आर तो पहले से ही है, जिसके अनुसार मसौदा-समिति इन संशोधनों पर विचार कर सकती है और यदि अपेक्षित हो तो उन्हें शामिल कर सकती है। अतएव इस संशोधन के विरुद्ध जो कुछ वाद-विवाद हुआ है वह सब अनावश्यक है और मैं परिषद् से अनुरोध करती हूं कि मेरे इस प्रस्ताव को निस्संकोच स्वीकार कर ले। अध्यक्ष ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि वे इस शक्ति के प्रयोग करने में अत्यन्त न्यायपूर्वक काम लेंगे और संशोधनों को चुनने में वे किसी को अप्रसन्न नहीं करेंगे तथा प्रत्येक को प्रसन्न करेंगे।

श्रीमान्, मैं परिषद् से पुन: अनुरोध करती हूं कि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री आयंगर ने लोक-सभा के नियम 28 का उद्धारण देकर परिषद् में भ्रांति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। उस नियम से तो संशोधन संख्या 16 का समर्थन होता है जो कि मैंने पेश किया है।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर:** मेरे मित्र कोई और वक्तृता नहीं दे सकते। यदि वे इसे स्वीकार नहीं करते तो न करें।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से वह नियम 28 पढ़ कर सुनाता हूं:

''किसी ऐसे प्रस्ताव अथवा विधेयक के सम्बन्ध में, जोकि सारी परिषद् की समिति में विचाराधीन हो अथवा पेश हो, अध्यक्ष को, अथवा समिति में 'वेज़ एण्ड मीन्स' के सभापति तथा उप-सभापति को यह अधिकार होगा कि वे प्रस्तावित होने वाले नये खण्डों अथवा संशोधनों को चुन लें और यदि वे उचित समझें तो वे किसी सदस्य से, जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, कह सकते हैं कि वह अपने संशोधन के विषय में ऐसी व्याख्या करे कि जिससे वे उस पर निर्णय कर सकें''

मैं भी केवल यही रखना चाहता हूं कि प्रत्येक सदस्य को, जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो,...।

***उपाध्यक्षः** अब ऐसा नहीं किया जा सकता। किन्तु तीव्र वाद-विवाद को रोकने के उद्देश्य से, मैं अपने कर्त्तव्य-क्षेत्र से आगे निकल कर यह बताने की स्वतंत्रता लूंगा कि इस उप-नियम (3) द्वारा अध्यक्ष के लिये संशोधन भेजने वाले सदस्यों से ऐसी प्रार्थना करने का निषेध नहीं हो जाता हो, यदि आपको उस सीमा तक अध्यक्ष में श्रद्धा हो।

अब मैं संशोधनों पर मत लेना आरम्भ करूंगा।

***एक माननीय सदस्यः** क्या अध्यक्ष के पास पहले से ही ये अधिकार हैं?

***उपाध्यक्षः** यदि होते, तो इस प्रस्ताव को रखने में कोई मतलब ही नहीं होता।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) को निकाल दिया जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि 'President shall (अध्यक्ष को)' इन शब्दों के आगे 'उस सदस्य की बात सुनने के बाद जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, यह शब्द जोड़ दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P for the words 'shall have the power to' the word 'may' be substituted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) में 'अध्यक्ष को...का अधिकार होगा' इन शब्दों के स्थान पर 'अध्यक्ष...सकता है' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, for the words 'amendments' the words 'such amendments' be substituted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) में 'संशोधन' शब्द के स्थान पर 'ऐसे संशोधन' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, the comma after the word 'verbal' and the word 'grammatical' be deleted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) में 'शाब्दिक' के बाद का अर्ध-विराम तथा 'व्याकरण-सम्बन्धी' यह शब्द निकाल दिया जाये।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, the words 'and to remit them to the Drafting Committee' be added at the and."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) के अन्त में यह शब्द जोड़ दिये जायें कि 'और उन्हें मसौदा-समिति को भेज देने का अधिकार होगा'।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उप-नियम (3) निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, for the words 'shall also have the power to' the word 'may, further' be substituted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में 'अध्यक्ष को यह भी अधिकार होगा कि' इन शब्दों के स्थान पर 'अध्यक्ष ऐसा भी कर सकता है कि' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, for the words 'similar' the word 'same or similar' be substituted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में 'सदृश' शब्द के स्थान पर 'उसी अथवा सदृश' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, for the words 'shall' wherever it occurs, the word 'may' be substituted."

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में अंग्रेजी के 'shall' ('गा') शब्द के स्थान पर 'may' ('सकता है') शब्द रख दिया जाये।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

श्री विश्वनाथ दासः श्रीमान्, मैं अपना संशोधन वापिस ले लेने के लिये सविनय परिषद् की अनुमति चाहता हूं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन लौटा दिया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, after the words 'without discussion' at the and, the following provision be added :

'Provided that a member whose amendment has not been so selected for consideration shall, if he so desires, be permitted by the President to state why his amendment should be considered.'

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में अन्तिम शब्दों के पश्चात् निम्न शर्त्त जोड़ दी जाये:

''पर किसी सदस्य को, जिसका कि संशोधन इस प्रकार विचारार्थ चुना न गया हो, यदि वह सदस्य चाहे तो, अध्यक्ष उसे यह बताने की अनुमति देगा कि उसके संशोधन पर क्यों विचार किया जाना चाहिये।'')

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That after the proposed sub-(3) of rule 38-P, the following proviso be added:

'Provided that before the President so selects any amendment, the member who has given notice of any amendment shall have the right to explain the nature and purport of his amendment.' ''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) के पश्चात् निम्न प्रावधान जोड़ दिया जाये:

''पर शर्त यह है कि इससे पूर्व कि अध्यक्ष इस प्रकार कोई संशोधन चुने, किसी सदस्य को जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, यह अधिकार होगा कि वह अपने संशोधन का स्वरूप तथा आशय समझा सके।'')

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"That the existing rule 38-P be renumbered as sub-rule (1) of rule 38-P, and to the said rule as so renumbered the following sub-rules be added :

(2) The President shall have the power to disallow amendments which seek to make verbal, grammatical or formal changes.

(3) The President shall also have the power to select for consideration and voting by the House the more appropriate or comprehensive amendment or amendments out of the amendments of similar import and any such amendment not so selected may, unless withdrawn, be deemed to have been moved and may be put to the vote without discussion."

(क) कि वर्तमान नियम 38-पी की संख्या-पी नियम का उपनियम (1) कर दी जाये और उक्त उप-नियम के पश्चात् निम्नलिखित उप-नियम जोड़ दिये जायें:

(2) अध्यक्ष को (ऐसे) संशोधनों को, जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा रूप-सम्बन्धी परिवर्तन करना हो, पेश होने से रोक देने का अधिकार होगा।

(3) अध्यक्ष को यह भी अधिकार होगा कि वह सदृश अभिप्राय के संशोधनों में से परिषद् के विचारार्थ तथा मत लेने के लिये अधिक उचित अथवा व्यापक संशोधन अथवा संशोधनों को वह चुन ले, और ऐसे किसी संशोधन के विषय में जो इस प्रकार चुना न गया हो, यदि वह वापिस न ले लिया जाये, तो यह समझा जा सकता है कि वह पेश किया जा चुका है तथा बिना वाद-विवाद के उस पर मत लिये जा सकते हैं।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** यदि मैं ऐसा कह सकता हूं तो सदस्यों से यह अनुरोध करूंगा कि वे अपने समय का अधिक अच्छा उपयोग करें।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करती हूं:

"That after rule 38-V, the following new rule be inserted

Defination–38-W. In the Chapter (excepting in rules 38-U and 38-V thereof), the expression 'President' includes any person for the time being presiding over the Assembly.' "

[कि नियम 38-वी के पश्चात्, निम्नलिखित नया नियम जोड़ दिया जाये।

परिभाषा: 38-डब्ल्यू इस अध्याय में (सिवाय इसके नियमों 38-यू तथा 38-वी के) 'अध्यक्ष' शब्द में उस समय परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति भी सम्मिलित समझा जायेगा।"]

इस परिषद के माननीय अध्यक्ष ने अपनी शक्तियां उपाध्यक्ष को प्रदान कर दी हैं कि अध्यक्ष की ओर से उपाध्यक्ष कार्य-प्रणाली के नियमों के अध्याय 6-ए के नियम 38-यू तथा 38-वी के अतिरिक्त सारे नियमों के अन्तर्गत सारे प्रकार्य कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्यों को ज्ञात होगा कि यह दो नियम विधेयकों को प्रमाणित करने के सम्बन्ध में हैं। इन दो नियमों को छोड़ कर अध्यक्ष ने अब अध्याय 6-ए के अधीन अपने सारे अधिकार माननीय उपाध्यक्ष को प्रदान कर दिये हैं जो कि आजकल परिषद् में सभापति के पद पर आसीन हैं और उपाध्यक्ष महोदय अध्यक्ष की ओर से सब प्रकार्य कर सकते हैं।

क्योंकि यह किया ही जा चुका है, अत: यह आवश्यक समझा जाता है कि यह नया नियम बना दिया जाये तथा यह बात इस परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों में सन्निहित कर दी जाये।

संक्षेप में मेरे प्रस्ताव का यही उद्देश्य है। मुझे आशा है कि परिषद् को इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई न होगी।

श्रीमान्, मैं इसे पेश करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हम 18 से 23 तक के संशोधनों पर विचार करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि नये नियम 38-डब्ल्यू सम्बन्धी प्रस्ताव को निकाल दिया जाये।"

वैकल्पिक संशोधन के रूप में, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि नियम 38-डब्ल्यू जोड़ने के प्रस्ताव के स्थान पर निम्न प्रस्ताव रखा जाये:

(b) That after rule 14, the following new rule 1-A be inserted:

Person presiding to have powers of President in cetain cases.	''14-A. The person presiding over the Assembly under rules 13 and 14 shall have all the powers of the President under Chapter V of these rules except under rules 38-U and 38-V.''

[''(ख) कि नियम 14 के पश्चात् निम्न नवीन नियम 14-ए जोड़ दिया जाये:

सभापति को कुछ अवस्थाओं में अध्यक्ष के अधिकार होंगे	''14-ए नियम 13 तथा 14 के अधीन परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति को इन नियमों के अध्याय पांच के अंतर्गत, सिवाय नियमों 38-यू तथा 38-वी के, शेष सब नियमों के अधीन अध्यक्ष के अधिकार होंगे'']

श्रीमान्, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि नये नियम 14-ए के साथ निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:

''*Explanation.*–The rule shall have retrospective effect as if it was made on the 4th day of November 1948.' ''

(व्याख्या : इस नियम का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा जैसे कि यह नियम नवम्बर 1948 की 4 तारीख को बनाया गया हो।)

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''That in the proposed rule 38-W, for the words 'any person for the time being presiding over the Assembly' the words 'the Chairman' be substituted.''

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

(कि प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू में 'उस समय परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति' इन शब्दों के स्थान पर 'सभापति' शब्द रख दिया जाये।)

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू में निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:

व्याख्या.— इस नियम का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा जैसे कि यह नियम नवम्बर, 1948 की 4 तारीख को बनाया गया हो।''

आगे कुछ कहने से पूर्व मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मैं इस संशोधन के सिद्धान्त से पूर्णतः सहमत हूं और उस सिद्धांत का पूर्णतया समर्थन करता हूं। किन्तु मुझे खेद है कि मैं इसको वर्तमान रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। जैसे कि मैं पहले ही संकेत कर चुका हूं यह कुकल्पित है तथा इसकी रचना त्रुटिपूर्ण है। और मैं अभी इसे सिद्ध कर दूंगा।

श्रीमान्, उपाध्यक्ष की शक्तियों का उल्लेख नियम 13 तथा 14 में किया गया है। नियम 13 में कहा गया है कि 'अध्यक्ष की अनुपस्थिति में, उपाध्यक्ष, जिसे कि अध्यक्ष मनोनीत करे, परिषद् का सभापतित्व करेंगे। अतः अध्यक्ष की अनुपस्थिति में आप विशेष मनोनीतकरण अथवा प्रार्थना पर इस परिषद् का सभापतित्व कर रहे हैं।

तत्पश्चात् नियम 14 में लिखा है:

''यदि अध्यक्ष अनुपस्थित हों तथा परिषद् में सभापतित्व करने के लिये कोई उपाध्यक्ष भी न हो, तो परिषद् सभापति के प्रकार्य करने के लिये किसी सदस्य को चुन सकती है।''

मैं देखता हूं कि यहां एक गम्भीर भूल रह गई थी, और माननीय सदस्या श्रीमती दुर्गाबाई ने इसको ढूंढ कर बहुत ठीक किया है, कि उपाध्यक्ष की शक्तियों की कहीं भी परिभाषा नहीं की गई है। यह कहीं भी नहीं कहा गया है कि उपाध्यक्ष को, सभापतित्व करने के अतिरिक्त, नियमानुसार निर्णय करने के कुछ

भी अधिकार होंगे। जैसे कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं, मुझे निवेदन करना चाहिये कि माननीय उपाध्यक्ष को सभापतित्व करने की शक्ति देने के प्रावधान में यह भी सन्निहित है कि उनमें व्यवस्था देने तथा परिषद् के निर्णयों की घोषणा करने की शक्ति होगी। रुग्णावस्था के कारण हमारे माननीय स्थायी अध्यक्ष की अनुपस्थिति में हम ऐसा करते ही रहे हैं। किन्तु, श्रीमान, यदि यह विचार किया जाये कि माननीय उपाध्यक्ष को, सिवाय सभापतित्व करने के, नियमानुसार कोई और शक्ति नहीं है, उन्हें मौन बैठना चाहिये जैसे कि वे इसके मौन दर्शक हों कि परिषद् में क्या हो रहा है और उन्हें वाद-विवाद पर नियंत्रण करने का, अथवा किसी सदस्य को चुप करने का सामर्थ्य न हो, वे परिषद् में सभापति के नाते यह काम कर सकते हैं, वह नहीं कर सकते, तो यह बाल की खाल निकालना ही होगा। किन्तु यदि यह मान लिया जायें कि ऐसा है कि आपको सभापतित्व करने के अतिरिक्त कुछ और प्रकार्य करने का अधिकार नहीं है, अर्थात् परिषद् के निर्णय घोषित करने का तथा औचित्य प्रश्नों पर व्यवस्था देने का अधिकार नहीं है। यदि यह एक भूल थी तो इसका उपचार उसी दिन से किया जाना चाहिये जब से कि आपने सभापतित्व करना आरंभ किया था और केवल आज से ही नहीं। यदि कोई भूल रह गयी है तथा इसको दूर करना है तो उस सुधार का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होना चाहिये।

संक्षेप में मेरे संशोधन का यही आशय है। वास्तव में एक महान् सिद्धांत यह है कि मैं इसका पूर्ववर्त्ती प्रभाव रखना चाहता हूं। मेरे विचार में हम इस संशोधन के सिद्धांत को स्वीकार करना चाहते हैं, उसी समय पूर्ववर्त्ती प्रभाव आवश्यक परिणाम हो जाता है। श्रीमान्, फिर यह प्रश्न उठता है कि आप इसे कहां रखेंगे। नियम 13 तथा 14 में उपाध्यक्ष की शक्तियां उल्लिखित हैं और उनकी उपस्थिति में परिषद् द्वारा उचित-रूपेण निर्वाचित व्यक्ति को शक्तियां दी गई है। मेरे विचार में इस प्रावधान को रखने का वही उचित स्थान है। अतएव मैं सुझाव देता हूं कि प्रस्तावित नये नियम का स्थान नियम 14-ए के रूप में नियम 14 के पश्चात् है।

तत्पश्चात्, तर्क के हेतु यह मान भी लिया जाये—मुझे सर्व सम्भावित बातों का ध्यान रखना है—कि यह नियम 14 के पश्चात् न होकर ठीक उसी स्थान पर होना चाहिये जहां कि श्रीमती दुर्गाबाई इसे रखना चाहती हैं, अर्थात् 38-डब्ल्यू के

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

पास, तो भी संशोधन संख्या 23 के अनुसार यह व्याख्या रख कर कि इस नियम का प्रभाव पूर्ववर्त्ती होगा जैसे कि यह नवम्बर 1948 की 4 तारीख को बना हो, पूर्ववर्त्ती प्रभाव उत्पन्न करना चाहिये। किन्तु 4 तारीख सही नहीं है। मुझे पूर्वाशा में ही एक तारीख रखनी पड़ी है, क्योंकि हमने 4 नवम्बर को बैठना आरंभ किया था, किन्तु आपने सभापतित्व करना कुछ समय पश्चात् आरंभ किया था। किन्तु यदि यह तारीख बदल कर वह भी कर दी जाये जिस दिन से आपने सभापतित्व करना आरंभ किया था तो भी यह संशोधन मान लिया जाना चाहिये। मैंने सब आपत्तियों का निराकरण करने के लिये कुछ पहले की तारीख रख दी है। किन्तु यदि इस तारीख के आधार पर आपत्ति की जाये तो जो भी संशोधन सुझाया जाये मैं उसे मानने के लिये तैयार हूं। मैंने बिल्कुल सही तारीख नही रखी है, उसका कारण केवल मेरा अज्ञान है। मेरा निवेदन है कि पूर्ववर्त्ती प्रभाव होना अपेक्षित है। यदि इस नियम का बनाना ही अपेक्षित न हो, तब तो ठीक है ही। किन्तु यदि यह नियम स्वीकार किया जाता है तो उस आशंकित अवैधता का क्या होगा जो कि आपने, जब से आपने सभापति का आसन ग्रहण किया है, तब से अब तक की है। मेरा निवेदन है कि यह नियम नितांत अनावश्यक है अथवा विकल्प में, इसका पूर्ववर्त्ती प्रभाव बनाना चाहिये; या तो नियम 14-ए में अथवा उसी स्थान पर, जो कि श्रीमती दुर्गाबाई ने सुझाई है, मेरे संशोधन (संख्या 23) की व्याख्या रख कर ऐसा करना चाहिए। यदि परिषद श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार करना चाहती है, तो यह व्याख्या प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू के पश्चात् रखनी चाहिये। कुछ भी हो पर पूर्ववर्त्ती प्रभाव उत्पन्न करने वाली व्याख्या को कहीं न कहीं रखना अपेक्षित है।

उपाध्यक्ष: अब प्रस्ताव तथा संशोधन पर वाद-विवाद हो सकता है।

श्रीमती जी. दुर्गाबाई: श्रीमान्, मुझे खेद है कि मैं अपने माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकती, क्योंकि हमें नियमों के अंतर्गत 'अध्यक्ष' शब्द की परिभाषा रखनी है। उन्होंने तो यह कहा है कि

नियम 13 तथा 14 के पश्चात् हमें 14-ए रख देना चाहिये। यह असंगत है क्योंकि 'सभापति' शब्द की दो स्थानों पर परिभाषा इस प्रकार की गई है: "परिषद् में सभापतित्व करने वाला सभापति होगा"। किन्तु हमारा अभिप्राय वह नहीं है। अध्याय 6-ए के अंतर्गत अध्यक्ष ने उपाध्यक्ष को शक्तियां प्रदान कर दी हैं। अतएव इस शब्द की वहां परिभाषा करना अपेक्षित है और 13-ए के पश्चात् 14-ए रखने का उनका संशोधन ठीक नहीं बैठता। अतएव मुझे खेद है कि मैं उनका संशोधन स्वीकार नहीं कर सकती।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमती दुर्गाबाई ने जैसे स्थिति समझाई है, मैं उसे स्वीकार करने के लिये उद्यत हूं। किन्तु मैंने संशोधन संख्या 23 के समर्थन में जो युक्तियां दी थीं उनका कोई उत्तर नहीं दिया गया है। मान लीजिये कि हम श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं, तो फिर यह व्याख्या उस संशोधन पर संशोधन के रूप में रखी जानी चाहिये जैसे कि मेरे संशोधन संख्या 23 में उल्लिखित है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्रीमान्, मैं नहीं समझती कि संशोधन संख्या 23 आवश्यक है। व्याख्या नितांत अनावश्यक है, क्योंकि अध्यक्ष की शक्तियां तो पहले ही प्रदान की जा चुकी हैं।

***उपाध्यक्ष:** नये नियम 38-डब्ल्यू को निकाल देने सम्बन्धी संशोधन संख्या 18 निराकरणार्थी प्रस्ताव होने के कारण अनियमित है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं अपने संशोधन संख्या 19, 20 तथा 22 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

(*संशोधन संख्या 19, 20 तथा 22 परिषद् की अनुमति से लौटा लिये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 23 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"That in the sub-rule 38-W, the following Explanation be added:

'*Explanation.*–This rule shall have retrospective effect as if it was made on the 4th day of November 1948.' "

[उपाध्यक्ष]

(कि उप-नियम 38-डब्ल्यू में निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:

"*व्याख्या.*–इस नियम का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा जैसे कि यह नियम नवम्बर 1948 की 4 तारीख को बना हो।")

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं नये नियम 38-डब्ल्यू पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"That after rule 38-V, the following new rule be inserted:

'*Definition.*–38-W. In this Chapter (excepting in rules 38-U and 38-V thereof), the expression. the expression 'President' includes any person for the time being presiding over the Assembly.' "

(कि नियम 38-वी के पश्चात् निम्नलिखित नया नियम जोड़ दिया जाये।

'परिभाषा–38-डब्ल्यू. इस अध्याय में (सिवाय इसके नियमों 38-यू तथा 38-वी के) 'अध्यक्ष' शब्द में उस समय परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति भी सम्मिलित समझा जायेगा।')

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

विधान का मसौदा (जारी)

अनुच्छेद 8–जारी

***उपाध्यक्ष:** अभी हमारे पास पाव घंटा बाकी है। हम विधान के मसौदे के अनुच्छेद 8 पर वाद-विवाद पुनरारम्भ कर सकते हैं।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): हम अब उठ सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** हमारा समय मूल्यवान् है। हमें पाव घंटा व्यर्थ नहीं खोना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"That for clause (3) of article 8, the following be substituted:

'(3) In this article—

(a) the expression 'law' includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom, or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof;

(b) the expression 'law in force' includes laws passed or made by a legislature or other competent authority in the territory of India before the commencement of this Constitution and not previously repealed, notwithstanding that any such law or any part thereof may not be then in operation either at all or in particular areas.' "

(कि अनुच्छेद 8 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

(3) इस अनुच्छेद में–

(क) 'कानून' शब्द में ऐसे सब अध्यादेश, आदेश, उप-विधि, नियम, आनियम, अधिसूचना, रूढ़ि, अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में कानून के सदृश प्रभाव हो;

(ख) 'प्रवृत्त कानून' इस अभिव्यक्ति में ऐसे सब कानून समाविष्ट होंगे जो इस संविधान के आरम्भ होने से पूर्व किसी विधान-मंडल अथवा भारत के राज्यक्षेत्र में किसी अन्य क्षम प्राधिकारी द्वारा पारित अथवा निर्मित किये गये हों तथा पहले कभी उनका विखंडन नहीं हुआ हो, चाहे ऐसा कोई कानून अथवा उसका कोई अंश उस समय सर्वथा अथवा किसी क्षेत्र विशेष में प्रवृत्त न हो।')

श्रीमान्, इस संशोधन को लाने का कारण यह है: ध्यान देने से पता चलेगा कि अनुच्छेद 8 में दो अभिव्यक्तियां हैं। अनुच्छेद 8 के उप-खंड (1) में 'प्रवृत्त कानून' ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उधर उप-खंड (2) में 'कोई कानून' ये शब्द हैं। इस परिषद् में जो मूल मसौदा पेश हुआ था, उसके उप-खंड (3) में केवल 'कानून' शब्द की परिभाषा की गई थी। 'प्रवृत्त कानून' की परिभाषा नहीं की गई थी। इस संशोधन द्वारा उस भूल को सुधारने का प्रयत्न किया गया है। हमने उप-खंड (3) के दो भाग कर दिये हैं–(क) और (ख)। (क) में कानून शब्द की वही

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

परिभाषा रखी गई है जो मूल उप-खंड (3) में थी, और (ख) में 'प्रवृत्त कानून' इस अभिव्यक्ति की परिभाषा दी गई है, जो अनुच्छेद 8 के उपखंड (1) में है। मेरे विचार में और अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"That in clause (3) of article 8, for the words 'custom or usage' the words 'custom, usage or anything' be substituted."

(कि अनुच्छेद 8 के खंड (3) में 'रूढ़ि अथवा परिपाटी' इन शब्दों के स्थान पर 'रूढ़ि, परिपाटी अथवा कोई वस्तु' यह शब्द रख दिये जायें।)

मैं कोई लम्बी वक्तृता देना नहीं चाहता। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यदि 'परिपाटी' शब्द के पश्चात् 'कोई वस्तु' ये शब्द जोड़ दिये जायें तो वे अधिक अर्थसूचक होंगे। कानूनी शब्दावली यही है कि 'रूढ़ि, परिपाटी अथवा अन्य वस्तु जिसका कानून सदृश प्रभाव हो।' डा. अम्बेडकर ने एक अन्य संशोधन रखा है। यदि वह संशोधन स्वीकृत होता है तो परिषद् को यह संशोधन भी स्वीकार कर लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं इसे पेश करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, अपना संशोधन पेश करने से पहले मैं सविनय यह बताना चाहता हूं कि माननीय डा. अम्बेडकर ने एक व्यापक संशोधन पेश किया है, अतएव मेरे विचार में वर्तमान संशोधन में समुचित परिवर्तन कर देना चाहिये जिससे कि यह उस संशोधन पर चस्पा हो सके। मैं इसके दूसरे भाग को ही पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सर्वप्रथम यह पता कर लीजिये कि वे इसे स्वीकार करते हैं अथवा नहीं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जब तक मैं इस विषय में युक्तियां उपस्थित नहीं करूंगा, तब तक वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे। श्रीमान्, मेरे विचार में इस संशोधन को तो स्वीकार करना ही होगा।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"That in amendment No. 260 which has been moved by Dr. Ambedkar, the words 'custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof' be deleted."

(कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 260 में 'रूढ़ि अथवा परिपाटी...जिनका भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में कानून के सदृश प्रभाव हो' ये शब्द निकाल दिये जायें।)

***उपाध्यक्ष:** आप सूचना दिये बिना उस संशोधन को बढ़ा कैसे सकते हैं? यह अनियमित है। आप केवल सुझाव दे सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने मूल अनुच्छेद पर एक संशोधन की सूचना पहले दी थी। डा. अम्बेडकर के संशोधन को देखते हुए आवश्यक परिवर्तन होने चाहियें।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मुझे परिषद् का समय बरबाद करने से घृणा है। किन्तु मैं परिषद् से कहना चाहता हूं कि जरा वह यह सोचे कि मैं जिन शब्दों को निकाल देना चाहता हूं उनके कारण कितनी बेहूदगी उत्पन्न हो जायेगी। बेहूदगी यह है कि खंड (3) के प्रथम भाग में हम कहते हैं कि 'कानून' में ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी भी समाविष्ट होगी जिनका भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में कानून के सदृश प्रभाव हो।' प्रसंग से पृथक् विचार करने पर तो यह सर्वथा अनापतिजनक है। कानून में 'ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी को, जिसका कानून सदृश प्रभाव हो' शामिल ही मानना चाहिये, किन्तु हमें इस परिभाषा को प्रसंगानुसार जांचना चाहिये। इसे अनुच्छेद 8 के खंड (2) के साथ पढ़ना चाहिये। खंड (2) में उल्लिखित है कि "राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनायेगा, जिससे इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का अपहरण अथवा न्यूनन होता हो और इस खंड के प्रतिकूल बना, प्रत्येक कानून प्रतिकूलता की मात्रा तक शून्य होगा।" मैं सादर इस परिषद् का ध्यान उप-खंड (2) की प्रथम पंक्ति में 'make' (बनायेगा) तथा तीसरी पंक्ति में 'made' (बना) इन शब्दों की ओर आकृष्ट करता हूं। श्रीमान्, आप कहते हैं कि 'राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनायेगा' और यह भी कहते हैं

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कि 'कानून में ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी भी समाविष्ट होंगी जिनका कानून सदृश प्रभाव हो।' अतएव खंड [3 (क)] की इस व्याख्या को खंड (2) में बैठाने से यह अर्थ निकलता है कि ''राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनायेगा'' अर्थात् कोई ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी नहीं 'बनायेगा' जिसका कानून के सदृश प्रभाव हो।'' तात्पर्य यह है कि ''कानून के सदृश प्रभाव वाली रूढ़ि अथवा परिपाटी' को कोई 'बना' नहीं सकता। वे तो स्वयं बनती हैं। 'आक्सफोर्ड' के शब्द कोष में रूढ़ि की यह परिभाषा है:

> ''कानून में रूढ़ि का अर्थ है ऐसी परिपाटी जिसमें चिरस्थायी होने के कारण अधिकार अथवा कानून का बल सन्निहित हो गया हो, विशेषत: किसी स्थान, व्यापार, समाज आदि की कोई विशेष परिपाटी।''

अतएव राज्य किसी भी अर्थ में कोई रूढ़ि नहीं बनाता है। रूढ़ि प्राय: किसी स्थान, परिवार, वर्ग आदि के लोगों द्वारा स्थापित की जाती है। रूढ़ि एक मार्ग पर निरंतर चलने से बनती है। यहां आपने ये शब्द प्रयोग किये हैं कि ''राज्य कोई कानून नहीं बनायेगा, अर्थात्, कानून सदृश प्रभाव वाली कोई रूढ़ि अथवा परिपाटी नहीं बनायेगा।'' स्वतंत्र भारत में भी राज्य का कानून के सदृश प्रभाव वाली रूढ़ियों अथवा परिपाटियों के बनाने में कोई हाथ नहीं हो सकता। मेरे विचार में इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। यही कठिनाइयां प्रत्येक पग पर मेरे सामने आती है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि ये शब्द इस प्रसंग में उपयुक्त नहीं है तथा निकाल दिये जाने चाहियें।

*__माननीय श्री बी.जी. खेर__ (बंबई : जनरल): श्रीमान्, वहां 'includes' (समाविष्ट) शब्द है, 'means' (इसका यह अर्थ है) यह शब्द नहीं है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ इनके कृपापूर्ण हस्तक्षेप पर मुझे बहुत प्रसन्नता है। इससे मेरी कठिनाई जरा भी दूर नहीं होती। क्या इसका यह अर्थ है कि राज्य कोई 'रूढ़ि अथवा परिपाटी' बनाता है? फिर भी आपके समक्ष यह कठिनाई है कि राज्य को ऐसा कानून बनाना पड़ता है जिसमें कि रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट है।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** हां, इसका अर्थ है, 'जहां भी अपेक्षित हो।' कानून में सदा ऐसा समझ लिया जाता है। मुझे खेद है कि हस्तक्षेप करना पड़ा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** कदाचित् उन्हें अपनी वक्तृता को जारी रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यदि मैं उन्हें यह बात बता दूं कि (3) (क) में 'कानून' शब्द 8(1) के कानून शब्द के प्रसंग से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** डा. अम्बेडकर के कृपापूर्ण हस्तक्षेप के लिये भी मैं आभारी हूं कि रूढ़ि तथा परिपाटी का कानून सदृश प्रभाव होता है आदि। यह व्याख्या खंड (2) पर भी लागू होती है, जिसमें लिखा है कि राज्य कोई कानून नहीं बनायेगा। मेरा अभिप्राय खंड 8(1) से नहीं है वरन् 8(2) से है। कठिनाई जैसी पहले थी वैसे ही है। इस कृपापूर्ण हस्तक्षेप के लिये मुझे हर्ष है किन्तु मुझे इससे कुछ प्रकाश नहीं मिला है।

(संशोधन संख्या 263 और 264 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 8 पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***माननीय सदस्यगण:** हमें अब उठ जाना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** क्योंकि इस विषय पर मतभेद दिखाई देता है, अत: परिषद् कल प्रात: के 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): हम सोमवार को समवेत होंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं सोचता हूं कि हम देश का धन बचाने के लिये अतीव उत्सुक हैं, अत: हम शनिवार को भी समवेत होंगे। परिषद् सोमवार के प्रात: दस बजे तक स्थगित होती है।

तत्पश्चात् परिषद् सोमवार तारीख 29 नवम्बर, 1948 को प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. VII.15.48
350

अंक 7
संख्या 15

सोमवार
29 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 941
भविष्य के कार्यक्रम के संबंध में वक्तव्य 941
विधान का मसौदा–(*जारी*) 941-942
[अनुच्छेद 8 पर विचार]
प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 943
बैठकों के समय के सम्बन्ध में वक्तव्य 943
विधान का मसौदा–(*जारी*) 943-967
[अनुच्छेद 8, 8-क, 9, 10, 11, 11-क तथा 11-ख पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 29 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य महोदय ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

श्री बलवन्त सिंह मेहता (संयुक्त राज्य : राजस्थान)

भविष्य के कार्यक्रम के सम्बन्ध में वक्तव्य

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुखर्जी): अनुच्छेद 8 पर वादानुवाद आरम्भ करने के पूर्व, जिसे कि अभी मतदान के लिये उपस्थित नहीं किया गया है, मैं सभा की अनुमति से उसे यह सूचित करना चाहता हूं कि जिस समय यह निर्णय किया गया था हम कल से सन्ध्या को तीन बजे से आठ बजे तक सत्रस्थ रहें, यद्यपि यह निर्णय रस्मी तौर पर नहीं किया गया था, मुझसे कई सदस्यों ने यह कहा कि यह व्यवस्था कई कारणों से असुविधाजनक होगी, इसलिये कल से हम प्रातः साढ़े नौ बजे समवेत होंगे और डेढ़ बजे तक कार्य करते रहेंगे। इस प्रकार हम प्रतिदिन चार घंटे कार्य कर सकेंगे।

दूसरी बात जो मैं सभा से कहना चाहता हूं यह है कि हम 13 दिसम्बर तक सत्रस्थ रहेंगे और फिर सत्रावसान हो जायेगा। उसके उपरान्त हम फिर 27 दिसम्बर को समवेत होंगे। ठीक समय बाद को विज्ञापित किया जायेगा।

विधान का मसौदा–(जारी)
अनुच्छेद 8–(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** क्या कोई माननीय सदस्य अनुच्छेद 8 पर बोलना चाहते हैं? यदि कोई नहीं बोलना चाहते हैं तो मैं उसे मतदान के लिये उपस्थित करना चाहता हूं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, सभा के लिये आवश्यक संख्या में सदस्य उपस्थित नहीं हैं। मैं कार्यवाही को रोकना नहीं चाहता परन्तु इस प्रकार की सभा में हम नियमानुसार कोई भी कार्य नहीं कर सकते हैं।

(घंटियां बजाईं गईं।)

(सभा के लिये सदस्य आवश्यक संख्या में उपस्थित न थे।)

***उपाध्यक्षः** सभा पौन घंटे के लिये स्थगित की जाती है।

इसके उपरान्त सभा दस बज कर पच्चीस मिनट तक के लिये स्थगित हो गई।

दस बज कर पच्चीस मिनट पर सभा फिर समवेत हुई।
उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

***उपाध्यक्षः** मुझे यह ज्ञात हुआ है कि एक और सदस्य महोदय को रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने हैं और प्रतिज्ञा-ग्रहण करनी है।

निम्नलिखित सदस्य महोदय ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

लेफ्टीनेंट कर्नल दलेल सिंह (संयुक्त राज्य : राजस्थान)

बैठकों के समय के सम्बन्ध में वक्तव्य

***उपाध्यक्षः** उन सदस्यों के लाभार्थ जो सभा में समय पर उपस्थित न थे, मुझे फिर यह घोषित करना है कि कल से हम प्रातः साढ़े नौ बजे समवेत हुआ करेंगे और डेढ़ बजे तक कार्य करते रहेंगे। इसके अतिरिक्त इस सत्र की अन्तिम बैठक तेरह दिसम्बर को होगी और उसके उपरान्त हम फिर 27 दिसम्बर को समवेत होंगे। ठीक समय बाद को घोषित किया जायेगा।

क्या मैं नम्रतापर्वूक यह निवेदन कर सकता हूं कि सदस्यों के लिये यह अनुचित है कि वे सभा में देर से उपस्थित हों। इस कारण आज हमारे बीस मिनट बेकार चले गये और मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोगों को इसकी क्या सफाई देंगे। (धन्य, धन्य)

विधान का मसौदा–(*जारी*)
अनुच्छेद 8–(*जारी*)

***उपाध्यक्षः** क्या हम अनुच्छेद 8 पर वादानुवाद आरम्भ करें? क्या उस पर कोई माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन से कुछ कठिनाई उत्पन्न हो जाती है जिसे दूर करना आवश्यक है। विधान के मसौदे से उनके कथनानुसार जो अनर्गल स्थिति उत्पन्न हो गई है उसे दूर करने के लिये उन्होंने अपना संशोधन उपस्थित किया है। उनके तर्क को यदि मैं ठीक समझ पाया हूं तो उसका अर्थ यह है कि कानून की परिभाषा में हमने रूढ़ि को भी सम्मिलित किया है और उसे

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

सम्मिलित करने पर फिर हम यह कहते हैं कि राज्य को किसी भी कानून को बनाने की शक्ति नहीं है। उनके कथनानुसार इसका अर्थ यह है कि राज्य को रूढ़ि बनाने की भी शक्ति होगी क्योंकि हमारी परिभाषा के अनुसार कानून में रूढ़ि सम्मिलित है। मेरा तो यह विचार है कि इस प्रकार का अर्थ निकालना सम्भव नहीं है और उसका सीधा-सादा कारण यह है कि अनुच्छेद 8 का उपखण्ड (3) पूरे आठवें अनुच्छेद पर लागू होता है और केवल आठवें अनुच्छेद के उपखंड (2) पर लागू नहीं होता। ऐसी स्थिति में केवल यही अर्थ निकालना उचित है और यही सम्भव भी है कि 'कानून' शब्द को प्रसंगानुसार समझा जाये अर्थात् जहां तक अनुच्छेद 8 के उपखण्ड (1) का सम्बन्ध है कानून में रूढ़ि सम्मिलित होगी और जहां तक उपखण्ड (2) का सम्बन्ध है कानून में रूढ़ि सम्मिलित नहीं होगी। मेरी समझ में यही उचित अर्थ है और यदि यह अर्थ लगाया जाये तो जिस अनर्गलता की ओर मेरे मित्र ने संकेत किया है वह उत्पन्न न होगी।

परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि जो लोग कानून की व्याख्या के नियमों से अच्छी प्रकार परिचित नहीं हैं वे उसका वह अर्थ लगा सकते हैं जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद लगाने का प्रयास कर रहे हैं। इसलिये इस कठिनाई को दूर करने के लिये मैं आपकी अनुमति से यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 8 के उपखण्ड (3) के सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें मुझे ''In this article'' (इन अनुच्छेद में) शब्दों के बाद निम्नलिखित शब्द जोड़ने की आज्ञा दी जाये:

''Unless the context otherwise requires''

(यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो)। इससे अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

''In this article, unless the context otherwise requires–

(a) The expression 'law' includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom or usage having the force of law in the territory of India or any part therefor;

(b) the expression...''

(इस अनुच्छेद, यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो–(क) 'कानून' शब्द में ऐसे सब अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, आनियम, अधिसूचना, रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है;

(ख) शब्द...]

मुझे पूरा पढ़ने की आवश्यकता नहीं है

इस प्रकार यदि अनुच्छेद 8 (1) के प्रसंग से यह अर्थ अपेक्षित हो कि 'कानून शब्द में रूढ़ि सम्मिलित है तो यह अर्थ लगाया जा सकेगा। यदि अनुच्छेद 8 के उप-खण्ड (2) के प्रसंग से यह अर्थ अपेक्षित न हो कि कानून शब्द में रूढ़ि सम्मिलित है तो 'कानून' का अर्थ इस प्रकार न लगाया जा सकेगा कि उसमें रूढ़ि भी सम्मिलित हो। मेरे विचार से मेरे मित्र ने अपने संशोधन में जिस कठिनाई की ओर संकेत किया है वह इससे दूर हो जायेगी।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक संशोधन पर मत लूंगा। मैं पुरानी सूची के अनुसार संशोधनों की संख्या बताऊंगा। मैं संशोधन संख्या 252 पर, जो मि. महबूब अली बेग के नाम से है, मत लेता हूं।

"That the proviso to clause (2) of article 8 be deleted'

[अनुच्छेद ख के खण्ड (2) का परादिक निकाल दिया जाये]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 259 को, जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है, उपस्थित करता हूं।

"अनुच्छेद 8 के खण्ड 2 के बाद निम्नलिखित नया खण्ड प्रविष्ट किया जाना चाहिये और वर्तमान खण्ड (3) की संख्या बदल कर उसे खण्ड (4) कर देना चाहिये:

(3) The Union or the State shall not undertake any legislation, or pass any law discriminatory to some community or communities or applicable to some particular community or communities and to other."

(संघ या राज्य कोई ऐसा कानून बनाने का उपक्रम न करेगा या ऐसा कोई कानून स्वीकार न करेगा जो किसी सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के लिये विभेद बरतता हो अथवा किसी विशेष सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के लिये ही लागू होता हो और अन्य के लिये लागू न होता हो।)

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 260 को उपस्थित करता हूं:

"अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'In this article unless the context otherwise requires—

[उपाध्यक्ष]

(a) The expression law includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof;

(b) the expression "laws in force" includes laws passed or made by a legislature or other competent authority in the territory of India before the commencement of this Constitution and not previously repealed, notwithstanding that any such law or any part thereof may not be then in operation either at all or in particular areas.' "

(इस अनुच्छेद में, यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो:–(क) 'कानून' शब्द में ऐसे सब अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, आनियम, अधिसूचना, रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है।

(ख) 'प्रभावी कानून' शब्दों में ऐसे कानून समाविष्ट हैं जिनको विधान के आरंभ के पूर्व भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी विधान-मंडल ने अथवा किसी अधिकृत प्राधिकारी ने स्वीकार किया हो या बनाया हो किन्तु जिनकी पुनरावृत्ति न हुई हो, चाहे ऐसा कोई कानून या उसका कोई भाग उस समय बिल्कुल ही प्रभावी न हो अथवा किन्हीं विशेष क्षेत्रों में प्रभावी न हो।)?

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) में 'custom or usage' (रूढ़ि अथवा परिपाटी) शब्दों के स्थान में 'custom or usage or anything' (रूढ़ि अथवा परिपाटी आदि) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) में 'custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof' (रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है) शब्द निकाल दिये जायें।

संशोधन गिर गया।

***एक माननीय सदस्यः** क्या मैं जान सकता हूं कि आप संशोधनों को पुरानी सूची से पढ़ रहे हैं या नई सूची से?

***उपाध्यक्षः** मैं सुविधा के लिये संशोधनों को पुरानी सूची से पढ़ रहा था। अब हम नई सूची की संख्याओं के अनुसार विचार करेंगे। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि नई सूची माननीय सदस्यों को कल शाम ही दी गई है।

प्रस्ताव यह है किः

''अनुच्छेद 8, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अनुच्छेद 8 के सम्बन्ध में कुछ अन्य संशोधन भी हैं जिनका आशय यह है कि एक नये अनुच्छेद 8(क) को स्थान दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** वे नये अनुच्छेद हैं जिनको अभी उठाया जायेगा।

संशोधन संख्या 266 से 269 तक और 272 भाषा और लिपि के सम्बन्ध में है जिन्हें सभा के निर्णयानुसार स्थगित किया जाना चाहिये। अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 270 को उठाऊंगा।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है किः

''अनुच्छेद 8 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ दिया जायेः

'(8-क) Unless the context otherwise requires, the Rights of Citizens hereinafter in this part of Constitution shall be deemed to be the obligation of the State as representing the community collectively and the obligations of the citizens shall be deemed to be the Rights of the State representing the community collectively.' ''

(यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अभिप्रेत न हो तो विधान के इस भाग में परिभाषित नागरिकों के अधिकार सामूहिक रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के दायित्व समझे जायेंगे और नागरिकों के दायित्व, सामूहिक रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के अधिकार समझे जायेंगे।)

श्रीमान्, मैं इस सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। आपकी अनुमति से मैं यह बताना चाहता हूं कि इस संशोधन का आशय उस संशोधन के आशय के

[प्रो. के.टी. शाह]

समान है जिसे सभा ने निदेशक सिद्धांतों पर विचार करते समय अस्वीकार कर दिया था। मेरे विचार से पुरानी संख्या 848 थी। इसका आशय वही है। मैं यह बता सकता हूं कि इसकी संख्या और सम्भवत: उद्देश्य कुछ भिन्न है परन्तु चूंकि मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता इसलिये मैं इस संशोधन को वापस लेने की आज्ञा चाहता हूं क्योंकि इसका उद्देश्य राज्य के अधिकारों को नागरिकों के दायित्व और नागरिकों के अधिकारों को राज्य के दायित्व करना है।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा माननीय सदस्य को अपना संशोधन वापस लेने की आज्ञा देती है?

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, यदि मुझे अपने विरोध में बोलने दिया जाये तो मुझे यह कहना है कि मेरी समझ में सूची में उल्लिखित संशोधन संख्या 271 थोड़ा-बहुत नियम-विरुद्ध है क्योंकि यह स्पष्टतया एक संशोधन या खण्ड के रूप में नहीं है बल्कि मसौदाकार से एक खण्ड समाविष्ट करने के लिये केवल सिफारिश करता है। मैं इसे उपस्थित नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्ष:** नई सूची में आगे का संशोधन 273वां संशोधन है और यह श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 8 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 8(क) प्रविष्ट किया जाये:

निर्वाचनाधिकार

8 (क) (1) Every citizen who is not less than 21 years of age and is not otherwise disqualified under the Constitution or any law made by the Union Parliament or by the Legislature of his State on any ground, e.g., non-residence, unsoundness of mind, crime or corrupt or illegal practice, shall be entitled to be registered as a voter at such elections.

(2) The elections shall be on the basis of adult suffrage, as described in the next preceding sub-clause but they may be indirect, i.e., the Poura and Grama Panchayats or a group of villages, a township or a part of it having a particular number of voters or being an autonomous unit of local self-government shall be required to elect primary members, who in their turn, shall elect members to the Union Parliament and to the State Assembly.

(3) The Primary Members shall have to recall the member they elected to the Parliament or the Assembly of the State.

(4) A voter shall have the right to election and the cost of election shall be met by the State.

(5) Every candidate must be elected by the people and even if there is no rival, no candidate shall be elected unless he gets at least 1/3 of the total votes.' ''

[(1) प्रत्येक नागरिक, जो 21 वर्ष से कम आयु का न हो और इस विधान के अधीन या संघीय पार्लियामेंट या उसके राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाये हुये किसी कानून के अधीन किसी कारण अर्थात् अनिवास, अस्वस्थ मस्तिष्क, अपराध या भ्रष्ट अथवा अवैध आचार के कारण अपात्र न हो तो वह इन निर्वाचनों के लिये मतदाता के रूप में अपने नाम की रजिस्ट्री कराने का अधिकारी होगा।

(2) जैसा कि दूसरे पूर्ववर्त्ती उपखंड में वर्णित है, निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होंगे किन्तु वे व्यवहृत होंगे अर्थात् पुर और ग्राम-पंचायत या ग्रामों का कोई समूह या कोई नगर अथवा उसका कोई भाग, जिसमें किसी विशेष संख्या में मतदाता बसते हों या जो स्थानीय स्व-शासन का स्वायत्तशासी प्रदेश हो, प्रारम्भिक सदस्यों को निर्वाचित करेगा और वे संघीय पार्लियामेंट के और राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों को निर्वाचित करेंगे।

(3) प्रारम्भिक सदस्यों को यह अधिकार होगा कि वे पार्लियामेंट के लिये अथवा राज्य के विधान-मंडल के लिये अपने निर्वाचित किसी सदस्य को वापस बुला लें।

(4) मतदाता को निर्वाचनाधिकार प्राप्त होगा और निर्वाचन का खर्च राज्य उठायेगा।

(5) प्रत्येक उम्मीदवार लोगों द्वारा निर्वाचित होगा और किसी प्रतिद्वन्द्वी के न होने पर भी यदि किसी उम्मीदवार को कुल वोटों की कम से कम 1/3 वोटें न मिलें तो वह निर्वाचित न होगा।]

श्रीमान्, इस नये अनुच्छेद को मैंने उन निर्वाचनों को ध्यान में रख कर उपस्थित किया है जो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होंगे। गांवों में काम करने वाले और अपने लोगों से परिचित एक व्यक्ति के नाते मेरा यह निवेदन है कि मैंने जो नया अनुच्छेद प्रस्तावित किया है उससे प्रौढ़ मताधिकार और जनतंत्र की प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी और वे सारयुक्त हो जायेंगे। मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि अभी इस सभा में ऐसा स्थान नहीं पाया है कि मेरी बातों का प्रभाव हो किन्तु जनतंत्र, बुद्धिमानों द्वारा संचालित जनतंत्र के नाम पर हमें प्रौढ़ मताधिकार को सार्थक बनाने

[श्री लोकनाथ मिश्र]

के लिये अपने निर्वाचन-सम्बन्धी नियमों को इस प्रकार बनाना चाहिये कि जनतंत्र और प्रौढ़ मताधिकार का उपहास न हो। इस नये अनुच्छेद के पहले पैरा में और दूसरे पैरा के पहले वाक्य में केवल अनुच्छेद 67(6) और 149(2) को फिर से उद्धृत किया गया है। इसलिये मुझे इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

पैरा (2) बहुत महत्त्वपूर्ण है और हम बहुत-कुछ यह निश्चित कर चुके हैं कि आगामी निर्वाचन अथवा भविष्य के निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होंगे। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक जो कानून के अधीन अपात्र न हो और 21 वर्ष या उससे अधिक आयु का हो तो वह मतदाता होने का अधिकारी है और वह संघीय संसद् और राज्यों के विधान-मंडलों के लिये सदस्यों को निर्वाचित कर सकता है। यह लोगों की एक महान् आकांक्षा है। परन्तु हम अपने लोगों से भी परिचित हैं। वे सीधे और नेक हैं परन्तु वे उतने चालाक और बुद्धिमान नहीं हैं जितने कि कूटनीतिज्ञ अथवा विभिन्न सभाओं में उनका प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य होंगे। यदि हम प्रौढ़ मताधिकार देना चाहते हैं तो हमें उसकी रक्षा करनी चाहिये और ऐसा प्रबन्ध करके उसका स्वरूप निश्चित करना चाहिये कि प्रत्येक प्रौढ़ वयस्क जो मतदाता होने का अधिकारी है अपने प्रतिनिधि को बुद्धिमत्ता से तथा सही ढंग पर चुन सकेगा। यही नहीं बल्कि अपने प्रतिनिधि को बुद्धिमता से और सही ढंग पर चुनने के अतिरिक्त वह प्रतिक्षण इसकी जांच कर सकेगा कि केन्द्र की अथवा राज्यों की विभिन्न सभाओं में उसके प्रतिनिधि क्या कर रहे हैं। विधान के मसौदे में आप देखेंगे कि संघीय संसद में 7,50,000 लोगों का एक प्रतिनिधि होगा। मेरा यह निवेदन है कि यह एक बहुत बड़ी संख्या है और यदि हम जो कुछ कह रहे हैं उसे कार्यान्वित नहीं करना चाहते तो एक सदस्य के लिये इन 7,50,000 लोगों को शिक्षित बनाना, उनका हितसाधन करना, उनकी सेवा करना, उनके विचारों से परिचित होना और उनके विचारों से परिचित होकर सभा के सम्मुख उनकी शिकायतों को रखना और उनकी समुन्नति के लिये यथासम्भव प्रयत्न करना एक कठिन कार्य होगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि प्रौढ़-मताधिकार व्यवहृत होना चाहिये। व्यवहृत इस अर्थ में कि निर्वाचन-क्षेत्रों को निश्चित करने के उपरान्त अर्थात् यह निश्चित करके कि प्रत्येक क्षेत्र में 7,50,000 मतदाता होंगे, हम इन निर्वाचन-क्षेत्रों को स्वायत्तशासी प्रदेशों में विभाजित कर दें और ये प्रदेश अपने प्रारम्भिक सदस्यों का निर्वाचन करें। उदाहरणार्थ 7,50,000 लोगों के बीच

यदि प्रत्येक गांव में या स्वायत्तशासी प्रदेश में 1,000 मतदाता हों तो हमारे 750 प्रदेश हो जायेंगे। यदि प्रत्येक प्रदेश में एक पंचायत हो जिसके तीन या पांच सदस्य हों तो हमारे 750 × 5 अर्थात् 3,750 प्रारम्भिक सदस्य हो जायेंगे। ये 3,750 प्रारम्भिक सदस्य संघीय संसद के लिये अथवा राज्य की सभा के लिये अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करेंगे। यदि इस प्रकार की व्यवस्था की गई तो इससे बहुत भलाई होगी क्योंकि 7,50,000 लोग इतने अधिक कि 3,750 प्रारम्भिक सदस्यों को निर्वाचित करेंगे और ये 3,750 सदस्य अपने विवेक से काम लेंगे और जिस व्यक्ति को वे अपना प्रतिनिधि बनायेंगे उससे भली-भांति परिचित होंगे। निर्वाचन की यह समुचित तथा सुव्यवस्थित प्रणाली होगी। यदि इस प्रकार की व्यवस्था न की गई तो निर्वाचनों में जो होता आया है वही आगे भी होगा। हम धूल उड़ायेंगे, चीख-चीख कर पुकारेंगे, नारे उठायेंगे और लोगों पर जादू करेंगे। पांच वर्ष के उपरान्त किसी महीने में एक या दो दिन के लिये हम भाषण देंगे, बोलते रहेंगे, लोगों को उत्तेजित करेंगे और जनता से किसी दल के प्रति निष्ठा रखने के लिये कहेंगे। इसका फल यह होगा कि पांच वर्ष में केवल एक महीने के लिये लोग राजनैतिक संगठनों के अत्यधिक सम्पर्क में आयेंगे। हम उन्हें उम्मीदें दिलायेंगे और वे उम्मीदें निर्वाचन के समाप्त होते ही मिट्टी में मिल जायेंगी। यह कोई उचित व्यवस्था न होगी। यदि हमारा उद्देश्य वास्तव में यह है कि प्रौढ़-मताधिकार लोगों को शिक्षित बनाने के लिये दिया जा रहा है और निर्वाचन शिक्षा के साधन होंगे तो निर्वाचन-क्षेत्रों को स्थानीय स्वायत्त-शासी प्रदेशों में, प्रबन्धकारी प्रदेशों में विभाजित करने के अतिरिक्त हम अन्य किसी प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकते। ये प्रदेश प्रतिनिधियों के निकट सम्पर्क में रहेंगे और प्रतिनिधि अपने प्रदेशों के निकट सम्पर्क में रहेंगे जिसके फलस्वरूप शिक्षा, परामर्श तथा पथप्रदर्शन की समुचित व्यवस्था हो सकेगी। मेरा यह निवेदन है कि यह एक लज्जा की बात है कि जनतंत्र लोगों के नाम पर चलता है परन्तु वास्तव में लोगों का उसमें कोई भी स्थान नहीं रहता। इसका कारण यह है कि लोग क्षुद्र होते हैं और वे अपने सीमित अनुभव से ऊंचे उठकर अधिक क्षमता प्राप्त नहीं कर सकते हैं और अपनी ऐतिहासिक तथा प्राचीन परम्परा के आधार पर निर्माण करने के अतिरिक्त अन्य प्रकार से अपनी क्षमता का विकास नहीं कर सकते हैं। वे बड़े-बड़े मामलों का नियंत्रण सफलतापूर्वक तभी कर सकते हैं जब वे मिलजुल कर कार्य करें तथा छोटे-छोटे मामलों का स्वयं नियंत्रण करें और महत्त्वपूर्ण विषयों का निर्णय करने के लिये अपने अनुभव के आधार पर योग्य व्यक्तियों को चुन लें। इसी प्रकार वे तर्कबुद्धि से काम ले सकते हैं। जनतंत्र तभी व्यवहार में आ सकता है जब प्रत्येक राज्य को छोटे-छोटे

[श्री लोकनाथ मिश्र]

जनतंत्रात्मक प्रदेशों में विभाजित किया जाये क्योंकि उसके प्राण विभिन्न व्यक्ति नहीं है चाहे व कितने ही महान् क्यों न हों, बल्कि वे छोटे-छोटे लोक-समूह हैं जो पास-पड़ौस की तथा सुपरिचित व्यक्तियों की भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं। मुझे इस पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। यह महान् सभा, यह विद्वान सभा, यह उत्तरदायी सभा इससे परिचित है और इसकी कल्पना कर सकती है कि प्रौढ़-मताधिकार प्रदान करने पर कैसी स्थिति उत्पन्न होगी। उसका आकार वृहत् है किन्तु उसके लिये न अभी कोई योजना बनाई गई है और न कोई प्रबन्ध किया गया है। उससे हमारा दल सबल हो सकता है परन्तु उससे हम लोगों को शिक्षित बनाने और उस शक्ति और प्राधिकार को प्रदान करने में समर्थ न होंगे जो वास्तव में उनका है अथवा उनका होना चाहिये।

खण्ड (3) के सम्बन्ध में मैं यह कहता हूं कि इससे प्रारम्भिक सदस्यों को यह अधिकार होगा कि उन्होंने संसद के लिये या राज्य की सभा के लिये जो सदस्य निर्वाचित किया हो उसे वे वापस बुला लें—यह बहुत ही आवश्यकीय मूलाधिकार है। हमें यह ज्ञात है कि जब हम सभाओं के लिये निर्वाचित होते हैं तो हम वहां पांच वर्ष के लिये लोगों का प्रतिनिधित्व करने आते हैं। किन्तु हमें वास्तव में चिन्ता होती है दल के अधिकारियों की, सर्वोच्च अधिकारियों की और यदि वे प्रसन्न रहे आते हैं तो हम भी यह समझते हैं कि हम ठीक रीति से कार्य कर रहे हैं। लोगों की चिन्ता हम नहीं करते हैं। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि यदि हमें लोगों के वास्तविक प्रतिनिधि होना है तो हमें सब से प्रथम लोगों की ही चिन्ता होनी चाहिये। वही हमारे स्वामी होने चाहिये। यदि हम उनकी यथेष्ट सेवा कर सकें तो हमें अपने स्थान पर रहना चाहिये, नहीं तो हमें उसे छोड़ देना चाहिये। परन्तु इस समय ऐसा नहीं होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि यदि लोगों को सदस्यों को निर्वाचित करने का अधिकार हो तो, यदि वे ठीक कार्य न करें तो उन्हें वापस बुलाने का भी अधिकार उन्हें प्राप्त होना चाहिये। जनतंत्रात्मक व्यवस्था में सदस्यों को वापस बुलाने का अधिकार एक मूलाधिकार है। जब तक हमें यह अधिकार प्राप्त नहीं रहता हम समुचित जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकते हैं। इसलिये मेरा आपसे यह निवेदन है कि यदि हम लोगों को अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार दें, जो उनके नाम पर शासन करेंगे, तो यदि वे अपने कर्त्तव्य का पालन न करें तो उन्हें वापस बुलाने का भी अधिकार लोगों को प्रदान करें। वास्तव में स्थिति यह है कि हम लोगों की चिन्ता नहीं करते हैं। वास्तव में उच्च पदारूढ़ कोई व्यक्ति यह तय करता है कि कौन से

व्यक्ति चुने जायें। वह कहता है कि अमुक-अमुक व्यक्ति निर्वाचित होना चाहिये और वह निर्वाचित हो जाता हैं इसलिये निर्वाचित लोग इन ऊपर वालों की कृपा के पात्र बने रहना चाहते हैं और नीचे वालों की जरा भी परवाह नहीं करते। यह जनतंत्र की दुर्गति है और मैं तो यह कहूंगा कि हमें इस प्रकार की व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिये।

खण्ड (4) के सम्बन्ध में मतदाता को निर्वाचनाधिकार प्राप्त होगा और निर्वाचन का खर्च राज्य उठायेगा। मैंने यह इसलिये कहा है कि सभा के लिये निर्वाचित होना कोई पेशा नहीं है और न धन कमाने का कोई व्यवसाय ही है। यदि यह दायित्व राज्य का समझा जाये और यदि जो कोई भी सभा में आये, केवल लोगों की सेवा करने के लिये आये, तो यह आवश्यक है कि उसके निर्वाचन के खर्च को राज्य उठाये। अन्यथा कुछ जमींदार और पूंजीपति एक दल स्थापित करेंगे जो उम्मीदवारों को खड़ा करेगा और वही उम्मीदवार निर्वाचित होंगे। ऐसा कोई आदमी जो गरीब है, अच्छा कार्यकर्त्ता और ईमानदार है, पर जिसके पास न तो धन है और न किसी दल का समर्थन प्राप्त है, वह किसी निर्वाचन के लिये खड़ा नहीं हो सकता। यदि वह खड़ा होता है तो केवल अपना उपहास ही कराता है। यदि आप यह कहते हैं कि निर्वाचन से राज्य का उतना ही हित होता है जितना राष्ट्रपति से अथवा मंत्रियों से अथवा नौकरशाही से तो आपको यह कहना चाहिये कि विधान-मंडल के सदस्यों को भी उसी प्रकार सभा में प्रवेश करना चाहिये जैसे कि वे अस्तित्व में आते हैं अर्थात् राज्य को नियमित रूप से उनके निर्वाचन के खर्च को उठाना चाहिये। इससे अल्पव्ययी और सुसंगठित व्यवस्था स्थापित हो सकेगी। हो सकता है कि कुछ लोग इस सुझाव की हंसी उड़ायें, परन्तु यह व्यवस्था है न्यायपूर्ण। जब तक हम इस प्रकार का कोई प्रावधान न रखेंगे, अगले पन्द्रह या बीस वर्षों तक कोई भी सच्चा, ईमानदार और कर्मठ व्यक्ति निर्वाचित न हो सकेगा। यदि हम इस समय इसे स्थान नहीं देते हैं तो हम केवल क्रांति को आमंत्रित करेंगे। क्रान्ति का अर्थ यह है कि सब कुछ उलट-पुलट जायेगा। यदि हम बुद्धिमत्ता से इसे इस समय स्थान न दे सके तो लोग अग्नि प्रज्जवलित करके इसे स्थान देंगे। इसलिये अपने उद्देश्य तथा न्याय की दृष्टि से निर्वाचन के खर्च को राज्य को ही उठाना चाहिये, क्योंकि वास्तव में निर्वाचन एक राजकीय कार्य है और किसी का अपना निजी कार्य नहीं है। इसके कारण हमें इस समय विचलित न होना चाहिये। हमें ऐसे सदस्यों को न आने देना चाहिये जो लाभ-घाटे का ही हिसाब लगाते हैं और इसका भी हिसाब लगाते रहते हैं कि पांच वर्ष में वे कितना धन-संचय

[श्री लोकनाथ मिश्र]

कर सकेंगे और इसलिये मांग कर, उधार लेकर अथवा चोरी करके उन्हें कितनी पूंजी संसद् के खाते लगानी चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** श्री मिश्र, आपको अब समाप्त कर देना चाहिये क्योंकि आप दो बार बोल चुके हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** अच्छी बात है, श्रीमान्!

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रांत : जनरल): सभापति महोदय, जो संशोधन मेरे मित्र ने उपस्थित किया है, मैं उसका विरोध करता हूं। इसलिये कि एक तो उसका स्थान यहां नहीं है, जहां पर प्रश्न उठाया गया है। चुनाव सम्बन्धी बातें इस विधान में अन्यत्र रखी गयी हैं, जहां पर यह बतलाया गया है कि किस तरह से धारा सभाओं का निर्माण होगा, सदस्य कौन होंगे, उनके अधिकार क्या होंगे, चुनने का तरीका क्या होगा, उन जगहों पर कुछ इस किस्म के संशोधन आ सकते थे। पहली बात तो यह कि इसके मूलाधिकार प्रश्न में इस संशोधन को रखने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, इसलिये मैं उसका विरोध करता हूं। एक बात।

दूसरे इसमें मेरे मित्र ने यह बतलाया है कि जो लोग इलेक्शन के लिये खड़े हों, उनका खर्चा सरकार को देना चाहिये। उन्होंने यह कहा कि सदस्य बनने के लिये खड़े होने में कोई आदमी व्यापारिक काम नहीं करता है, इसलिये बहुत आवश्यक है कि सरकार इस खर्चे को अपने ऊपर बरदाश्त करे। मेरे लायक दोस्त ने यह ख्याल नहीं किया कि अगर सरकार यह उदारता बरतने लग जाये तो जितने आदमियों का इलेक्टोरल रोल में नाम होगा और जो खड़े हो सकते हैं वह सब खड़े हो जायेंगे और कुछ नहीं तों चकल्लस ही सही। खर्चा सारा का सारा सरकार बरदाश्त करेगी। तब तो दुनिया में कोई ऐसी सरकार नहीं हो सकती, जिसका दिवाला पहले चुनाव में निकल न जाये। हारने, जीतने का गम नहीं, खर्चे का कोई गम नहीं। खड़े होने की सबको रियायत है, जो चाहे खड़ा हो जाये और खर्चा सारे का सारा सरकार बरदाश्त कर लेगी। इस प्रकार की एक योजना पेश करना और उसको बिना समझे-बूझे, उसकी सरगर्मी से ताईद करना कि यह संशोधन बहुत महत्त्वपूर्ण है और डिमोक्रेसी की इससे रक्षा होती है और सारा काम अच्छी तरह से चलता है, अनुचित है और इस संशोधन को बिल्कुल रद्द कर देना चाहिये और स्वीकार न करना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 8 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 8 (क) प्रविष्ट किया जाये:

'8 (क) (1) Every citizen who is not less than 21 years of age and is not otherwise disqualified under this Constitution or any law made by the Union Parliament or by the Legislature of his State on any ground, e.g., non-residence, unsoundness of mind, crime or corrupt or illegal practice, shall be entitled to be registered as a voter at such elections.

(2) The elections shall be on the basis of adult suffrage as described in the next preceding sub-clause but they may by indirect, i.e., the Poura and Grama Panchayats or a group of villages, a township or a part of it having a particular number of voters or being an autonomous unit of local self government shall be required to elect primary members, who in their turn, shall elect members to the Union Parliament and to the State Assembly.

(3) The Primary members shall have the right to recall the members they elected to the Parliament or the Assembly of the State.

(4) A voter shall have the rights to election and the cost of election shall be met by the State.

(5) Every candidate must be elected by the people and even if there is no rival, no candidate shall be elected unless he gets at least 1/3 of the total votes.' ''

[(1) प्रत्येक नागरिक, जो 21 वर्ष से कम आयु का न हो और इस विधान के अधीन या संधानीय पार्लियामेंट या उसके राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाये हुये किसी कानून के अधीन किसी कारण अर्थात् अनिवास, अस्वस्थ मस्तिष्क, अपराध या भ्रष्ट अथवा अवैध आचरण के कारण अपात्र न हो तो वह इन निर्वाचनों के लिये मतदाता के रूप में अपने नाम की रजिस्टरी कराने का अधिकारी होगा।

[उपाध्यक्ष]

(2) जैसा कि दूसरे पूर्ववर्त्ती उपखंड में वर्णित है, निर्वाचन प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर होंगे किन्तु वे व्यवहृत होंगे अर्थात् पुर और ग्राम-पंचायत या ग्रामों का कोई समूह या कोई नगर अथवा उसका कोई भाग, जिसमें किसी विशेष संख्या में मतदाता बसते हों या जो स्थानीय स्वशासन का स्वायत्तशासी प्रदेश हो, प्रारम्भिक सदस्यों को निर्वाचित करेगा और वे संघीय पार्लियामेंट के और राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों को निर्वाचित करेंगे।

(3) प्रारम्भिक सदस्यों को यह अधिकार होगा कि वे पार्लियामेंट के लिये अथवा राज्य के विधान-मंडल के लिये अपने निर्वाचित किसी सदस्य को वापस बुला लें।

(4) मतदाता को निर्वाचनाधिकार प्राप्त होगा और निर्वाचन का खर्च राज्य उठायेगा।

(5) प्रत्येक उम्मीदवार लोगों द्वारा निर्वाचित होगा और किसी प्रतिद्वन्द्वी के न होने पर भी यदि किसी उम्मीदवार को कुल वोटों की कम से कम 1/3 वोटें न मिलें तो वह निर्वाचित न होगा।]

प्रस्ताव गिर गया।

अनुच्छेद 9

***उपाध्यक्ष:** सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9 विधान का अंग बना लिया जाये।''

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा को नये खंड (1-क) की संख्या दी जाये और इस प्रकार जो नया खंड बने उसमें से 'in particular' (विशेषतया) शब्द निकाल दिये जायें।''

मैंने यह संशोधन इस कारण उपस्थित किया है कि अनुच्छेद 9 वर्तमान रूप में थोड़ा-बहुत भ्रामक है। 9(1) में कहा गया है: ''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद

नहीं करेगा''। उसमें फिर कहा गया है: ''विशेषतया केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक–

(क) दुकानों, सार्वजनिक उपहारगृहों विश्रान्तिगृहों तथा सार्वजनिक आमोद स्थानों में प्रवेश अथवा...इससे यह प्रतीत होता है कि सामान्य खंड में यह कहकर कि राज्य विभेद नहीं करेगा हम 'in particular' (विशेषतया) शब्दों का प्रयोग करके केवल ऐसे उदाहरण देते हैं जब राज्य विभेद नहीं करेगा। वास्तव में यह बात नहीं है। 'in particular' (विशेषतया) शब्दों के बाद उस खंड में दुकान आदि में प्रवेश का उल्लेख है। इनके संबंध में राज्य को विभेद करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसलिये इसे एक पृथक खंड होना चाहिये। इसी कारण मैंने यह सुझाव रखा है कि 'in particular' (विशेषतया) शब्दों को निकाल दिया जाये और इसे एक पृथकृ खंड 9(क) बना दिया जाये जो इस प्रकार हो जायेगा:

''केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक–''

***उपाध्यक्ष:** जिन सदस्य महोदय ने संशोधन संख्या 276 की सूचना दी है वे अब उसके दूसरे भाग को उपस्थित करें, जिसका आशय यह है कि 'discrimination' और 'and public worship' शब्द क्रमश: 'liability' और 'public resort' शब्दों के बाद रखे जायें।

(*संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्ष:** आगे के दो संशोधन (277 और 278) शाब्दिक संशोधन हैं और इसलिये उनको उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। 'class community' (वर्ग या जाति) शब्द मेरे विचार से अनावश्यक है। 'religion' (धर्म) शब्द से इनका बोध हो जाता है।

संशोधन संख्या 282 जो श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका के नाम से हैं एक विस्तृत संशोधन है और उसे अब उपस्थित किया जा सकता है।

चूंकि सदस्य महोदय अनुपस्थित हैं, इसलिये सय्यद अब्दुर रऊफ संशोधन संख्या 280 उपस्थित करें।

***सय्यद अब्दुर रऊफ** (आसाम : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 9 में जहां कहीं 'sex' (लिंग) शब्द आये उसके बाद 'place of birth' (जन्म-स्थान) शब्द रखे जायें।"

इसे अनुच्छेद का उद्देश्य यह है कि नागरिकों के प्रति विभेद के बर्ताव को निषिद्ध किया गया जाये। हमने 'धर्म, प्रजाति, जाति अथवा लिंग' के आधार पर विभेद को निषिद्ध किया है। परन्तु श्रीमान्, मुझे इसका भय है कि दुष्ट लोग, जो नागरिकों के प्रति विभेद बरतना चाहेंगे वे धर्म, प्रजाति, जाति अथवा लिंग के आधार पर विभेद न करेंगे। 'धर्म' के आधार पर विभेद बरतना बहुत ही प्रत्यक्ष होगा और उसका कोई भी साहस न करेगा। 'जाति' के सम्बन्ध में भी यही तर्क उपस्थित किया जा सकता है। 'लिंग' के सम्बन्ध में, मेरे विचार से बीसवीं शताब्दी के मध्य में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो इसके आधार पर विभेद करेगा। जो प्राचीन काल में सम्भव था वह अब सम्भव नहीं है। अब हमें इसकी परीक्षा करनी चाहिये कि 'प्रजाति' शब्द से परित्राण मिल सकता है या नहीं। प्रजाति शब्द का विस्तृत अर्थ है और वह आर्य प्रजाति, द्राविड़ प्रजाति, मंगोल प्रजाति आदि के सम्बन्ध में व्यवहार में आता है। यदि कोई व्यक्ति इस कारण विभेद करना चाहे कि कोई सज्जन किसी विशेष प्रान्त का है तो 'प्रजाति' शब्द से उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं होती। मेरे विचार से जन्म-स्थान के कारण, स्थानीय देश प्रेम से प्रेरित होकर भी नागरिकों के प्रति विभेद बरतने का प्रयास किया जा सकता है। इस सम्भावना को दूर करने के लिये मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है और मुझे आशा है कि वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 279 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देता परन्तु उस पर मत लिया जायेगा। अब हमारे सामने संशोधन संख्या 281 है। मैं इस संशोधन को केवल शाब्दिक संशोधन समझता हूं और इसलिये इसे नियम-विरुद्ध घोषित करता हूं। अब हमारे सामने संशोधन संख्या 283 और 285 हैं। संशोधन संख्या 283 उपस्थित किया जा सकता है। प्रो. के.टी. शाह।

***प्रो. के.टी. शाह:** यह बहुत-कुछ वैसा ही है जैसा कि हाल में उपस्थित किया हुआ संशोधन था। इसकी अधिक चर्चा करके मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता।

(संशोधन संख्या 285, 284, 288 का अंतिम भाग और 291 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 286 के पहले भाग को उठाते हैं यह केवल शाब्दिक है और इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि विस्तृत अर्थपूर्ण शब्द 'religion' को दृष्टि में रखते हुये 'creed' शब्द अनावश्यक है। अब हम संशोधन संख्या 286 के दूसरे भाग को उठाते हैं। संशोधन संख्या 293 से 301 तक और 304, 305, 306 तथा 308 का आशय एक समान है और इसलिये इन पर एक साथ विचार होना चाहिये। मेरे विचार से संशोधन संख्या 293, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है, सब से अधिक विस्तृत संशोधन है। प्रोफेसर शाह!

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 9 के खंड 1 में उपखंड (क) और (ख) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'any place of public use or resort, maintained wholly or partly out of the revenues of the State, or in any way aided, recognised, encouraged or protected by the State, or place dedicated to the use of general public, like schools, colleges, libraries, temples, hospitals, hotels and restaurants, places of public entertainment, recreation or amusement, like theatres and cinema-houses or concert-halls; public parks, gardens or museums; roads, wells, tanks, or canals; bridges, posts and telegraphs, railways, tramways and bus services; and the like.' "

(लोक-उपयोग अथवा लोक-समागम को कोई स्थान, जिसका अंशतः अथवा पूर्णतः संधारण राज्य के आगम से होता हो अथवा जिसको राज्य किसी प्रकार सहायता, स्वीकृति, प्रोत्साहन अथवा रक्षण प्रदान करता हो, अथवा जनसाधारण के उपयोग के लिये समर्पित कोई स्थान जैसे स्कूल, कॉलेज, पुस्तकालय, मंदिर, अस्पताल, विश्रान्तिगृह और उपहारगृह, सार्वजनिक, आमोद-प्रमोद तथा मनोविनोद के स्थान जैसे नाट्यशाला और छविगृह अथवा वाद्यशाला सार्वजनिक उद्यान, बगीचे अथवा कौतुकालय; सड़कें, कुंएं, तालाब अथवा नहरें; पुल, डाक और तार, रेल, ट्राम और बस आदि।)

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करते हुए मैं केवल लोक-उपयोग अथवा लोक-समागम के अथवा लोक सेवा के लिये समर्पित ऐसे स्थानों की सूची नहीं दे रहा हूं जिन पर पहले विभेद बरता गया है और विशेष सम्प्रदायों अथवा वर्गों के लोगों को वहां केवल उनकी जाति और जन्म के कारण नहीं आने दिया गया। जिस विधान का आधार सभी नागरिकों की जनतंत्रात्मक समता है, मेरे विचार से उसमें इस प्रकार का विभेद अप्रासंगिक ही न होगा किन्तु अनर्गल भी होगा। इसलिये ऐसे सभी स्थानों में जिनका अंशतः अथवा पूर्णतः संधारण सार्वजनिक प्रणीवि से होता हो अथवा उनको किसी प्रकार राज्य से प्रोत्साहन, सहायता अथवा रक्षण प्राप्त हो, मेरे सुझाव के अनुसार सभी नागरिकों का समान रूप से प्रवेश होना चाहिये चाहे उनकी जाति, लिंग, जन्म आदि किसी प्रकार का क्यों न हो।

स्पष्टतः इस अनुच्छेद का उद्देश्य यही है। मैंने केवल उसे उसकी शब्दावली से अधिक स्पष्ट करने तथा विस्तृत बनाने का प्रयास किया है। इस कारण भी इसका उद्देश्य यही है कि आगे के अनुच्छेदों में कुछ ऐसे अपवाद हैं जिनके कारण कुछ विशेष सम्प्रदायों, वर्गों अथवा समुदायों की संस्थाएं फूलेंगी-फलेंगी ही नहीं बल्कि लोगों का अहित करके फूलेंगी-फलेंगी। मेरे विचार से यदि हम इस प्रकार के पार्थक्य के प्रति सहिष्णुता दिखायेंगे तो हम एक बहुत ही दूषित सिद्धांत का अनुसरण करेंगे जिससे सच्चा जनतंत्र कलंकित हो जायेगा। यदि आपका निश्चित रूप से तथा स्पष्टतया यह उद्देश्य है कि किसी प्रकार के वर्गीय अथवा साम्प्रदायिक पार्थक्य को स्थान न मिले, यदि आपका निश्चित रूप से और स्पष्टतया यह उद्देश्य है कि पाठशालाओं, अस्पतालों अथवा आश्रमों ऐसे जनोपयोगी स्थान किसी कारण किसी विशेष वर्ग या सम्प्रदाय के लोगों के लिये ही सुरक्षित न रहे तो मेरे विचार से यह कोई बहुत बड़ी मांग नहीं है कि ये देश के सभी नागरिकों के लिये खोल दिये जायें। विशेषतया इसलिये कि हमारा पिछला अनुभव बड़ा दुःखद रहा है अर्थात् एक विशेष वर्ग के लोगों को कुंओं से पानी नहीं भरने दिया जाता रहा है, नहरों को विशेष अवसरों और विशेष दशाओं में ही उपयोग में लाने दिया जाता रहा है और सब से दुःखद बात तो यह रही है कि यही दशा पाठशालाओं, अस्पतालों और इस प्रकार की अन्य अत्यन्त जनोपयोगी संस्थाओं की भी रही है। मेरे विचार से यदि इस देश के नागरिकों के बीच वास्तविक समता न हुई तो हम इस विधान के आदर्शों के अनुरूप कार्य न करेंगे।

प्राय: यह बहाना किया जाता है कि अमुक विशेष संस्था अमुक विशेष सम्प्रदाय के किसी दानशील सदस्य के दान से संचालित है अथवा आरम्भ में स्थापित की गई और यह कि संस्था को स्थापित करते समय और उसके लिये पूंजी देते समय उन्होंने प्रन्यास के प्रारम्भिक संलेख में यह प्रतिबंध रखा है कि अमुक-अमुक विशेष सम्प्रदाय अथवा जाति अथवा उपजाति के लोगों को ही उस संस्था से लाभ उठाने दिया जाये। मेरे विचार से इस प्रकार की संस्थाओं को कुछ विशेष सम्प्रदायों के लिये अलग रखना अथवा मुख्यत: उन्हीं के लिये रखना नागरिक दायित्व की उपेक्षा ही नहीं बल्कि नागरिक समता का हनन भी है।

पहले जब देश का शासन विदेशियों के हाथ में था और वे अपना अधिकार सुदृढ़ रखने के लिये जान बूझ कर इस देश की सन्तानों को अलग रखते थे और इसी कारण अपने कृपापात्रों के लिये पृथक् क्लब, अस्पताल, पाठशाला आदि खोलते थे। उस समय तो यह समझ में आ सकता था कि जो लोग कई बातों में उनकी नकल करते थे वे स्वभावत: उनका आदर्श सामने रख कर इस प्रकार की भी व्यवस्था करते थे। अब वह सिद्धान्त, जो सभी प्रकार के पार्थक्य का कारण था, इस देश में कहीं भी नहीं दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त हम नागरिकों की समता के सिद्धान्त को प्रत्यक्षत: स्वीकार ही नहीं कर रहे हैं बल्कि उसके आधार पर अपने विधान का भी निर्माण कर रहे हैं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि पार्थक्य को किसी प्रकार भी स्थान देने से या उसके लिये अनुमति देने से, चाहे हम सीधे-सीधे यह कहें या विधान में इस प्रकार का प्रावधान प्रविष्ट करें, पार्थक्य की प्रवृत्ति को ही प्रोत्साहन मिलेगा, परन्तु इसे हमें निन्दनीय ठहराना चाहिये और इसलिये इसकी आज्ञा न देनी चाहिये।

हमारे विधान में यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिये कि चूंकि सभी नागरिक एक समान है इसलिये उनकी सार्वजनिक संस्थायें और सार्वजनिक समागम के स्थान देश के सभी नागरिकों के लिये खुले होने चाहियें। यह सम्भव है कि ऐसा कोई दावा किया जाये कि कोई विशेष वर्ग अथवा सम्प्रदाय उसके संधारण के खर्च को पूर्णत: या अंशत: उठाता है। मैंने इस संशोधन को इतना विस्तृत बनाने का प्रयास किया है कि यदि इस प्रकार की कोई संस्था अथवा सार्वजनिक समागम का कोई स्थान केवल किसी विशेष व्यक्ति के दान से स्थापित हुआ हो अथवा उससे उसका संधारण होता है तो यदि उसे किसी सरकारी प्राधिकारी से किसी प्रकार स्वीकृति, रक्षण, अभिरक्षण अथवा प्रोत्साहन प्राप्त है तो वह इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर आ जायेगा और इसलिये सभी लोग वहां समान रूप से प्रवेश कर सकेंगे।

[प्रो. के.टी. शाह]

मेरे विचार से इस प्रकार के प्रावधान से किन्हीं स्थायी स्वार्थों के प्रति अन्याय न होगा। इस कारण भी अन्याय न होगा कि मेरी दृष्टि में तो इस प्रकार के स्थायी स्वार्थों की स्थापना ही आपत्तिजनक है। इन दानशील संस्थापकों को बिना आसानी से अपने लिये अमरत्व प्राप्त करने के साधन से वंचित हुये इसकी भी स्वतंत्रता होगी कि, यदि प्रन्यास का संलेख उनके मार्ग में बाधक हो, तो वे संलेख के प्रतिबंधों को इतना विस्तृत बना दें कि सभी लोग समान रूप से उनकी संस्था से लाभ उठा सकें।

भारत के प्रत्येक नगर में किसी न किसी वर्ग के लिये पृथक् रूप से स्थापित इस प्रकार की संस्थायें हैं। हाल में बम्बई के एक सार्वजनिक अस्पताल में जिसमें केवल संस्थापक के सम्प्रदाय के लोग जा सकते थे एक दु:खद दृश्य उपस्थित हुआ जिसके कारण कुछ क्षेत्रों में बड़ी उत्तेजना फेल गई। अन्य सम्प्रदाय के व्यक्ति की चिकित्सा अस्पताल में न की गई और खुले आम इसका समर्थन इस तर्क से किया गया कि वह एक विशेष वर्ग के लिये स्थापित है और स्पष्ट रूप से यह व्यक्त है और इसलिये अन्य सम्प्रदायों के लोगों को वहां चिकित्सा की सुविधा प्राप्त नहीं हो सकती है।

मेरे विचार से इस देश के किसी घने बसे हुये स्थान के अनुभव के आधार पर इस प्रकार के असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। मेरे संशोधन को स्वीकार करने के लिये यही तर्क सबसे सबल है कि इस प्रकार की घटनायें होती हैं और इस प्रकार की किसी न किसी घटना का इस सभा के लगभग प्रत्येक सदस्य को अनुभव हुआ है और उनको स्मरण है। इसलिये अब किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय या वर्ग को इस प्रकार अधिकृत करने की सम्भावना न रहनी चाहिये कि वह यह कह सके कि अमुक संस्था हमारे ही लाभ के लिये स्थापित है। यदि राज्य से उसे कुछ भी आर्थिक अथवा अन्य, प्रकार की सहायता अथवा प्रोत्साहन अथवा सुरक्षा प्राप्त है, चाहे वह पाठशाला हो, मन्दिर हो, अस्पताल हो, नाट्यशाला हो अथवा उपहार-गृह हो या चाहे और जो कुछ हो। मुझे आशा है कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा और उसमें सन्निहित सिद्धांत को विधान में स्थान दिया जायेगा।

(सूची 1 का संशोधन संख्या 38 तथा संशोधन संख्या 294, 295, 296, 297, 298, 300, 301, 304, 305, 306, 308 और 287 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 288 में, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है, तीन संशोधन हैं। पहला संशोधन केवल शाब्दिक है और इसलिये उसके लिये आज्ञा नहीं दी जाती। दूसरा और तीसरा संशोधन उसी प्रकार हैं जैसे संशोधन संख्या 278 और 284, इसलिये मैं इनके लिये भी आज्ञा नहीं दे रहा हूं।

(*संशोधन संख्या 292 और 302 उपस्थित नहीं किये गये।*)

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यहां अपने उन माननीय मित्रों का प्रतिद्वन्द्वी होकर नहीं आया हूं जो अप्रासंगिक और बेकार संशोधनों को प्रस्तुत करते हैं, परन्तु मैं यहां...।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या इस सभा में माननीय सदस्य का यह वक्तव्य नियमानुकूल है?

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से अच्छा तो यह होगा कि आप अपना भाषण दें।

***श्री गुप्तनाथ सिंहः** श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद को विस्तृत बनाने के उद्देश्य से इस छोटे से संशोधन को उपस्थित करने के लिये यहां आया हूं। श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मैं उपस्थित करता हूं किः

> ''अनुच्छेद 9 के खण्ड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'wells, tanks' (कुंओं, जलाशयों) शब्दों के बाद 'bathing ghats' (नहान घाट) शब्द रखे जायें।''

मैंने मूल संशोधन से 'kunds' (कुण्ड) शब्द निकाल दिया है और मैं केवल यह चाहता हूं कि यहां 'bathing ghats' (नहान घाट) शब्द रखे जायें।

(*संशोधन संख्या 307 उपस्थित नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 309 और 322 एक समान हैं। संशोधन संख्या 322 अधिक विस्तृत है। मैं इस संशोधन को यथासमय उपस्थित करने की आज्ञा दूंगा।

[उपाध्यक्ष]

इसके अतिरिक्त संशोधन संख्या 310, 312, 320 और 321 का भी आशय एक समान है। मेरे विचार से इनमें से संशोधन संख्या 310 सबसे अधिक विस्तृत है।

(*संशोधन संख्या 310 उपस्थित नहीं किया गया। संशोधन संख्या 312, 320 और 321, जिनकी सूचना दी गई थी, उपस्थित नहीं किये गये।*)

***उपाध्यक्षः** इसलिये अब इन संशोधनों का प्रश्न नहीं है। अब हम संशोधन संख्या 311 को उठाते हैं।

(*संशोधन संख्या 311 उपस्थित नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 313 एक शाब्दिक संशोधन है और इसलिये उसकी आज्ञा नहीं दी जाती। संशोधन संख्या 314, डा. अम्बेडकर।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या यह केवल शाब्दिक संशोधन अथवा अधिक से अधिक एक रस्मी संशोधन नहीं है? इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि 'the revenues of the State (राज्य आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखे जायें।

***उपाध्यक्षः** मैं इसे ध्यान में रखूंगा। डा. अम्बेडकर, कृपा करके इसकी व्याख्या कीजियेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं किः

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'the revenues of the State' (राज्य-आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखे जायें।''

जिस कारण मसौदा-समिति ने 'the revenues of the State' (राज्य आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखना उचित समझा था, वह बहुत

साधारण है। भारत में जो शासन-शब्दावली बहुत काल से प्रयुक्त रही है उसके अनुसार हम प्रान्तीय सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार का आगम (revenue) कहते हैं जब हम स्थानीय बोर्डों अथवा जिला बोर्डों की चर्चा करते हैं तो हम स्थानीय प्रणीवि (funds) कहते हैं और आगम (revenues) नहीं कहते हैं। भारत के सभी प्रान्तों में यही शब्दावली प्रयुक्त रही है। इस सभा के माननीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि इस भाग में 'State' (राज्य) शब्द से केवल केन्द्रीय सरकार अथवा प्रान्तीय सरकार अथवा भारतीय रियासतें ही अभिप्रेत नहीं है परन्तु स्थानीय जिला बोर्ड या स्थानीय तालुका बोर्ड या पत्तन-प्रन्यास-प्राधिकारी (port trust authorities) के समान स्थानीय प्राधिकारी अभिप्रेत हैं। जहां तक उनका सम्बन्ध है उनके लिये प्रणीवि (funds) शब्द ही उपयुक्त होगा। इसलिये इसे दृष्टि में रखते हुये कि हम इन मूलाधिकारों के कर्त्तव्य के लिये केवल केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों को ही उत्तरदायी नहीं बना रहे हैं बल्कि स्थानीय जिला बोर्डों और स्थानीय तालुका बोर्डों को भी उत्तरदायी बना रहे हैं, हमें विस्तृत शब्दावली प्रयुक्त करनी चाहिये, क्योंकि वह केवल केन्द्रीय सरकार के ही सम्बन्ध में प्रयुक्त नहीं होगी बल्कि उन स्थानीय बोर्डों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होगी, जो 'राज्य' शब्द की परिभाषा में सन्निहित है। मुझे आशा है कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत अब यह समझेंगे कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है, वह केवल शाब्दिक नहीं है बल्कि उसमें कुछ सार भी है।

श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 314 पर एक संशोधन है। वह सूची 1 का संशोधन संख्या 40 है और पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। वे यहां उपस्थित नहीं हैं। इसलिये इस विशेष संशोधन के औचित्य पर मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसके आगे सूची एक का संशोधन संख्या 41 है, जो श्री फूल सिंह के नाम से है। वह भी अनुपस्थित हैं। अब हम संशोधन संख्या 315 पर आते हैं, जो मि. मोहम्मद ताहिर और सय्यद जाफर इमाम के नाम से हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं आपके ध्यान में यह लाना चाहता हूं कि मेरे नाम से संशोधन संख्या 286 था। हमने उसके सम्बन्ध में अभी कुछ निर्णय नहीं किया है। निस्सन्देह पहले भाग की आज्ञा नहीं दी गई है परन्तु दूसरा भाग अभी शेष है।

***उपाध्यक्ष:** मैंने यह कहा था कि उस पर मत लिया जायेगा। इस समय मैं आपको उस पर बोलने की आज्ञा नहीं दे सकता। यदि मैं आपके पक्ष में कोई अपवाद करूंगा तो हर कोई सदस्य उसी प्रकार की मांग करने लगेगा।

परन्तु मेरे विचार से मुझे एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिये। इससे माननीय सदस्य, यदि वे सामान्य वादानुवाद के समय बोलने का अवसर पायें तो अपने संशोधन संख्या 286 पर बोलने के अधिकार से वंचित नहीं होते।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्तुत करता हूं कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'State or dedicated to the use of general public' (राज्य-आगम से संधृत अथवा लोक-उपयोग के लिये समर्पित) शब्दों की जगह 'State or any local authority or dedicated to the use of general public and any contravention of this provision shall be an offence punishable in accordance with law.' ''

(राज्य अथवा किसी स्थानीय प्राधिकारी के आगम से संधृत अथवा लोक-उपयोग के लिये समर्पित और इस प्रावधान का उल्लंघन एक अपराध होगा जिसके लिये कानून के अनुसार दंड मिलेगा शब्द रखे जायें।)

श्रीमान्, इस संशोधन के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि जहां तक उसके पहले भाग का अर्थात् 'स्थानीय प्राधिकारी' शब्द जोड़ने का सम्बन्ध है, मैं उस पर जोर नहीं देता हूं क्योंकि 'राज्य' की जो परिभाषा दी गई है उसमें स्थानीय प्राधिकारी भी सम्मिलित हैं। परन्तु जहां तक दंड देने के खंड का सम्बन्ध है, मैं उस पर जोर देता हूं और उसके सम्बन्ध में कुछ शब्द कहूंगा। श्रीमान्, वास्तव में हमारे विधान के इस अनुच्छेद से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें मनुष्यों की समता का अनुभव करना चाहिये और इसलिये यह आवश्यक है कि इस अनुच्छेद में दंड-संबंधी कोई खंड जोड़ा जाये। आपके सूचनार्थ मैं आपके तथा इस सभा के ध्यान में यह लाना चाहता हूं कि हमारे देश में हम जानते हैं कि कुछ सड़कें ऐसी हैं, जिन पर अनुसूचित जातियों और अन्य नीची जातियों के लोगों को नहीं चलने दिया जाता। हमने यह देखा है कि हमारे देश के कुछ भागों में यदि अनुसूचित जातियों का कोई व्यक्ति कुंएं से पानी लेने जाता है, तो उसे

तुरन्त ही अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। हमारे देश के कुछ वर्गों की ऐसी भावनायें हैं और यदि हम सच्चे हृदय से उन लोगों की सहायता करना चाहते हैं, जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं, तो मेरा यह निवेदन है कि दंड-सम्बन्धी इस खंड को इस अनुच्छेद के साथ अवश्य ही जोड़ देना चाहिये। इसको दृष्टि में रखते हुये मुझे आशा है कि यह सारी सभा मुझसे सहमत होगी और यदि वह सच्चाई के साथ जनसाधारण की सहायता करना चाहती है तो इस दंड-सम्बन्धी खंड को इस अनुच्छेद में स्थान देगी और इस आशय के मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी। इन शब्दों के साथ में अपना संशोधन उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 316 से 319 तक उपस्थित नहीं हो रहे हैं। संशोधन संख्या 328। प्रो. के.टी. शाह!

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्तुत करता हूं कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (2) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'or for Scheduled Castes or backward tribes, for their advantage, safeguard or betterment.' ''

(अथवा अनुसूचित जातियों अथवा पिछड़ी हुई जातियों के लिये उनके लाभ, अभिरक्षण अथवा उन्नति के उद्देश्य से।)

यह खंड इस प्रकार है:

''Nothing in this article shall prevent the State from making any special provision for women and children.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष प्रावधान बनाने में बाधा न होगी।)

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में और पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद में अन्तर करना आवश्यक है। इस प्रावधान से मैं यह समझता हूं कि स्त्रियों और बालकों के लाभार्थ विभेद किया गया है और मैंने केवल उनके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़ी हुई जातियों को भी रख दिया है। भूतकाल की दु:खद भेंट के फलस्वरूप हमारे समाज के कुछ वर्ग अयोग्यताओं अथवा कठिनाइयों के भागी रहे हैं और इस विभेद का उद्देश्य उनका हितसाधन ही है। मेरे विचार से उनको विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता हो सकती है और यदि उनको आवश्यकता है, तो कुछ काल

[प्रो. के.टी. शाह]

के लिये उनके लिये विशेष सुविधाओं की आज्ञा दी जानी चाहिये ताकि नागरिकों के बीच वास्तविक समता का प्रादुर्भाव हो सके।

समता के आंदोलन के फलस्वरूप स्त्रियों के लिये समान रूप से नागरिकता के तथा अन्य प्रकार के अधिकारों की व्यवस्था तो की गई है परन्तु साथ ही राष्ट्र के अथवा देश के सुदूर हितों को ध्यान में रखते हुये कुछ अपवाद भी किये गये हैं और ऐसे प्रावधान रखे गये हैं जिनके अनुसार स्त्रियों के लिये संकटापन्न कार्य अथवा व्यवसाय में लगना वर्जित है। इससे मेरे विचार से समाज में नागरिकों के नाते उनका स्थान अथवा उनकी नागरिक समता किसी प्रकार न्यून नहीं होती। उसका उद्देश्य उनका रक्षण, अभिरक्षण अथवा साधारणतया उनका हितसाधन ही है ताकि देश के सुदूर हितों की हानि न हो।

अनुसूचित अथवा पिछड़ी हुई जातियों के सम्बन्ध में यह एक खुली हुई बात है कि भूतकाल में उनकी उपेक्षा हुई है और पीछे रहने के कारण वे समान नागरिकों के नाते अपने जीवनोपभोग के अधिकार से वंचित रहे हैं। इसलिये इस प्रस्ताव द्वारा मैंने उन्हें इस उपखंड की परिधि के अन्दर लाने का प्रयास किया है ताकि उनके लाभार्थ यदि कोई विभेद किया जाये, तो उससे यह न समझा जाये कि इस देश के सभी वर्गों के लोगों के बीच समता के आधारभूत सिद्धांतों का हनन होता है। उनको कम से कम कुछ काल के लिये शिक्षा के सम्बन्ध में, सेवायुक्ति के लिये अवसर के सम्बन्ध में तथा अन्य कई बातों के सम्बन्ध में विशेष सुविधा की आवश्यकता है और वह उन्हें दी जानी चाहिये, क्योंकि इस सम्बन्ध में उनकी वर्तमान असमता तथा उनके पीछे रहने के कारण देश के प्रगतिशील विकास के मार्ग में बाधा पड़ती है।

राष्ट्र का कोई वर्ग यदि पीछे रहता है तो वह अवश्य ही अन्य लोगों की प्रगति में बाधा डालता है और इसलिये औचित्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि राष्ट्र के हित से भी हमें उन्हें समयोचित स्तर पर लाने के लिये सुविधायें देनी चाहियें ताकि सभी देशवासियों की समान रूप से उन्नति हो सके।

निस्संदेह मैंने अपने संशोधन में इस विशेष व्यवहार की कालावधि का उल्लेख नहीं किया है। इसे सामयिक परिस्थिति के अनुसार निश्चित किया जा सकता है। मैं केवल आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि हमारे देशवासियों

के ऐसे वर्ग है जिन्हें अपने किसी दोष के कारण नहीं बल्कि परिस्थितिवश विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता है और यदि हमें समता का केवल नाम लेकर अथवा कागज में उसका उल्लेख करके संतुष्ट नहीं होना है और वास्तविक समता प्रदान करनी है, तो हमें इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहियें। मुझे विश्वास है कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा।

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर सामान्य विचार-विमर्श हो सकता है। मैं मत्स्य संघ के श्री राजबहादुर से बोलने के लिये कहता हूं।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य-मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, आपने आज सभा में यह घोषित किया कि संशोधन संख्या 280, 282 और 279 पर विचार-विमर्श होगा। मैंने उनका दुबारा अध्ययन किया और मुझे एक नया अर्थ प्रतीत हुआ। संशोधन संख्या 280 में, जिसे मेरे मित्र सय्यद अब्दुर रऊफ ने उपस्थित किया है, जन्म-स्थान शब्द प्रयुक्त है, परन्तु जिस संशोधन को श्री प्रभुदयाल उपस्थित करने वाले थे, उसमें 'वंश' शब्द भी प्रयुक्त था। दुर्भाग्यवश श्री प्रभुदयाल अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर सके। अनुच्छेद को पढ़ने से भी हमें यह ज्ञात होता है कि यद्यपि अन्य बातों के आधार पर विभेद को समाप्त करने का प्रयास किया गया है, परन्तु वंश के आधार पर जो विभेद है अथवा परिवार और वंश के कारण जो विशेषाधिकार प्राप्त है, उनके आधार पर जो विभेद है उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। इसलिये संशोधन संख्या 280 पर मैं इस संशोधन का सुझाव करता हूं कि 280वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद में जिन शब्दों को स्थान देने का प्रस्ताव है उनमें से 'place of' (स्थान) शब्द निकाल दिये जाये। यह स्पष्ट है कि 'birth' (वर्थ) शब्द के पहले 'Place of' (प्लेस आफ) शब्द आने से सारे संशोधन का अर्थ केवल 'place of birth' (जन्म-स्थान) तक ही सीमित हो गया है। इसलिये यदि 'place of' (स्थान) शब्दों को निकाल दिया जाये तो हम दो उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेंगे। पहले तो इस उद्देश्य की कि सारे अनुच्छेद के प्रसंग में 'birth' (जन्म) शब्द जहां कहीं आयेगा उससे केवल निवास स्थान का ही बोध नहीं होगा बल्कि 'वंश' का भी बोध होगा और इस प्रकार संशोधन संख्या 282 के प्रस्तावक महोदय के उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

***उपाध्यक्ष:** मैंने यह कहा था कि इस समय सामान्य रूप से विचार-विमर्श होगा परन्तु आप अपने संशोधनों को उपस्थित कर रहे हैं मैं इसके लिये आज्ञा नहीं

[उपाध्यक्ष]

दे सकता। आप पूरे खण्ड पर बोल सकते हैं और उस समय प्रसंगवश अपने संशोधनों की ओर संकेत कर सकते हैं। यदि मैं आपसे अपनी इच्छानुसार अनुच्छेद पर सामान्य रूप से बोलने के लिये कहूं, तो आप मुझे क्षमा करेंगे।

*__श्री राजबहादुरः__ बहुत अच्छा, श्रीमान्! मेरी दृष्टि तो इस ओर जाती है। हमने पहले भी और इस समय भी यह देखा है कि पदों के वितरण के सम्बन्ध में, सरकारी नौकरियों के संबंध में और सम्पत्ति के आधार पर विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में तथा अन्य बातों के संबंध में वंश के कारण अथवा परिवार के स्थान के कारण अथवा इसी प्रकार की अन्य बातों के कारण विभेद किया गया है। मेरा यह नम्र निवेदन है कि इस समय जब कि हम अपना विधान बना रहे हैं हमें केवल धर्म, जाति, लिंग इत्यादि के आधार पर होने वाले विभेद को ही न मिटाना चाहिये बल्कि परिवार और वंश के आधार पर होने वाले विभेद को भी मिटा देना चाहिये। मैं यह स्वीकार करता हूं कि संशोधन संख्या 280 में जो विचार सन्निहित है और उसका जो उद्देश्य है उसकी पूर्ति अवश्य ही होनी चाहियें, परन्तु साथ ही मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद में कुछ ऐसे शब्द जोड़ देने चाहियें, जिनसे जन्म अथवा वंश के आधार पर किसी प्रकार के विभेद अथवा पक्षपात की सम्भावना ही न रह जाये। हम सभी का यह अनुभव है और हमारी यह शिकायत भी है कि पदों के वितरण के सम्बन्ध में और सरकारी नियुक्तियों अथवा सेवाओं के संबंध में जन्म और वंश के आधार पर कुछ विभेद किया जाता है। आकाश-सेना के लिये जो नियुक्तियां होती हैं उनमें तथा थल-सेना के लिये जो नियुक्तियां होती हैं, कुछ सीमा तक उनमें तथा अन्य सरकारी सेवाओं में भी हम इस प्रकार के विभेद को देखते हैं। हमारी यह शिकायत है कि जिन लोगों का समाज में ऊंचा स्थान है और जिनका जन्म सुसम्पन्न घरों में होता है, उनको उन लोगों से अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं, जो देहात में मिट्टी की झोंपड़ियों में जन्म लेते हैं।

विधान में इस आशय का एक प्रावधान रखा जाने वाला है कि राज्यों में और राज्य-संघों में राजप्रमुख होंगे और गवर्नर नहीं होंगे। इस सम्बन्ध में भी हम देखते हैं कि जन्म अथवा वंश के आधार पर अथवा इस आधार पर विभेद होगा कि कोई नरेश है या नहीं अथवा राज-वंश का है या नहीं। इस प्रकार के विभेद को भी मिटा देना चाहिये। वास्तव में सभी प्रकार के विभेदों को मिटा देना चाहिये।

*__श्री एस. नागप्पा__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस सारे खंड से विशेषत: उस वर्ग को स्वाधीनता प्राप्त होती है, जिनकी ओर इस संशोधन का लक्ष्य है। मेरे विचार से आपको यह विदित ही है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में जो कठिन परिश्रम तथा जो संघर्ष किया गया था उसके फलस्वरूप राजनैतिक दृष्टि से देश आज स्वतंत्र हो गया है। परन्तु जनसाधारण का यह विशेष वर्ग दो प्रकार से स्वतंत्र हो गया है। उसे केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही प्राप्त नहीं है बल्कि सामाजिक स्वतंत्रता भी प्राप्त है। मुझे आशा है कि माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू, जो महात्मा गांधी के सच्चे उत्तराधिकारी हैं, ऐसी व्यवस्था करेंगे जिससे इस वर्ग को आर्थिक स्वतंत्रता तथा समुन्नत स्थान प्राप्त हो सके। स्वतंत्रता का अर्थ है राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता। स्वतंत्रता के दो अंग तो इस विशेष संशोधन में सन्निहित हैं और यह गांधी जी के ही प्रयत्नों का फल है जिन्होंने एक सामाजिक क्रांति का सृजन किया था।

यदि यह खंड, जो इस विशेष सम्प्रदाय को सामाजिक अधिकार प्रदान करता है, अधिक विस्तृत और व्याख्यात्मक होता तो मुझे और भी हर्ष होता। उदाहरण के लिये दुकानों में प्रवेश के प्रश्न को ही लीजिये। दुकानों से ऐसे स्थानों का बोध होता है जहां आप मूल्य चुका कर चीजें खरीद सकते हैं। परंतु ऐसे भी स्थान हैं जहां आप मूल्य चुका कर सेवा भी प्राप्त कर सकते हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि 'दुकान' शब्द से इन जगहों का भी बोध होता है या नहीं। यदि मैं नाई की दुकान में या हजामत की दुकान में जाता हूं तो मैं कोई खास चीज नहीं खरीदता किन्तु मैं श्रम खरीदता हूं। इसी प्रकार धोबी की दुकान भी है। वहां मैं धोबी के श्रम को खरीदता हूं। मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से यह जानना चाहता हूं कि क्या 'दुकान' शब्द में धोबी की दुकान और नाई की दुकान जैसे स्थान भी सन्निहित हैं?

मैं अब खंड (ख) पर आता हूं जिसमें राज्य-आगम से पूर्णत: अथवा अंशत: संधृत लोक-समागम के स्थानों का उल्लेख है। परन्तु उन स्थानों का क्या होगा जो पूर्णत: अथवा अंशत: राज्य-आगम से संधृत नहीं हैं? मेरी यह प्रार्थना है कि 'पूर्णत: अथवा अंशत: राज्य-आगम से संधृत' शब्दों को निकाल दिया जाये। इससे खंड का स्वरूप अच्छा हो जायेगा। चाहे कुछ भी हो, मैं चाहता हूं कि प्रस्तावक महोदय इसकी व्याख्या करें कि इस खंड से कौन से स्थान लक्षित हैं। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सन् 1932 से लेकर सन् 1948 तक केवल 16 वर्षों में ही महात्मा गांधी ने एक ऐसी सामाजिक क्रांति कर दी कि युग-युगान्तर की निर्योग्यताएं

[श्री एस. नागप्पा]

तथा उत्पीड़न समाप्त हो गया। मुझे इसका विश्वास है कि अब, विशेषतया इस प्रकार के प्रावधान के होते हुये, इस सुधार-कार्य को आगे बढ़ाने में अधिक समय नहीं लगेगा। मुझे आशा है कि प्रान्तों के प्रधान मंत्री इस विशेष प्रावधान की ओर ध्यान देंगे और इस अधिनियम के स्वीकार होने के पूर्व ही अवशिष्ट निर्योग्यताओं को भी समाप्त कर देंगे।

स्वतंत्रता के तीसरे अंग अर्थात् आर्थिक स्वतंत्रता को अभी हमने प्राप्त करना है और मुझे आशा है कि हमारे प्रधानमंत्री पद दलित वर्गों के आर्थिक उत्थान की समुचित व्यवस्था करेंगे। मैं इस खंड का हृदय से समर्थन करता हूं और साथ ही प्रस्तावक महोदय से इसे स्पष्ट करने की प्रार्थना करता हूं कि दुकान शब्द में वे स्थान भी सन्निहित हैं या नहीं, जिनकी ओर मैंने संकेत किया है और यह कि लोक-समागम के स्थानों में कब्रिस्तान और श्मशान घाट जैसे स्थान भी सन्निहित हैं या नहीं। इनका संधारण लोक-आगम से अथवा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा नहीं होता है बल्कि धार्मिक संस्थाओं द्वारा होता है। मैं यह जानना चाहता हूं कि देश की इन अभागी सन्तानों के लिये क्या पृथक कब्रिस्तान और श्मशान बनेंगे अथवा इस खंड में सभी बातें आ जाती हैं, मैंने इन प्रश्नों को इसलिये उठाया है कि वे इस सभा की कार्यवाही की पुस्तकों में स्थान पा सकें और उपयोगी सिद्ध हो सकें, ताकि कोई वकील किसी न्यायालय में इस खंड की गलत व्याख्या न कर सके। हमारे अधिकांश न्यायालय कानून के आलय हैं और वास्तविक अर्थ में न्यायालय नहीं हैं। हमें इस खंड को इस प्रकार बनाना चाहिये कि कोई त्रुटि रह न जाये। मैं यह जानना चाहता हूं कि माननीय प्रस्तावक महोदय ने प्रश्न के इस अंग पर विचार किया है या नहीं। यदि वे इन शब्दों को स्थान दे सकें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि वे यहां आकर यह भी स्पष्ट कर दें कि इन निर्योग्यताओं का निराकरण हो गया है तो मुझे संतोष हो जायेगा। कम से कम इसका इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदनों में उल्लेख होगा जिससे वे वकील जो गलत व्याख्या करने का प्रयास करेंगे...।

*__श्री के. हनुमन्थय्या__ (मैसूर): श्रीमान्, मुझे माननीय सदस्य के वकीलों के सम्बन्ध में इस कथन पर आपत्ति हैं कि वकीलों को गलत व्याख्या करने की आदत होती है।

*__उपाध्यक्ष:__ मैं श्री नागप्पा से कहता हूं कि वे माननीय सदस्य को उत्तर देने का प्रयास न करें।

***श्री एस. नागप्पा:** मैं वकीलों के प्रति अपशब्द नहीं कह रहा हूं। मैं केवल यह कह रहा हूं कि वे क्या कर रहे हैं...।

***श्री के. हनुमन्थय्या:** यह और भी अनुचित है।

***उपाध्यक्ष:** श्री नागप्पा मेरी प्रार्थना की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

***श्री एस. नागप्पा:** कुंओं और जलाशयों के अतिरिक्त अन्य स्थानों से भी पानी खींचा जा सकता है मैं इस सम्बन्ध में माननीय सदस्य से पूर्णतः स्पष्टीकरण चाहता हूं।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मान (पूर्वी पंजाब : सिख): साहिबे सदर, मैं महसूस करता हूं कि यह बुनियादी हक जो कि दिये जा रहे हैं, वह अधूरे ही रह जाते हैं अगर इसमें जो प्लेसेज आफ वर्शिप ही शामिल न हों। अक्सर हिन्दुस्तानी जिन्दगी में देखा गया है कि ऐसे मंदिरों और पूजा और प्रस्तिश की जगहें जो कि आम जनता के लिये होती हैं लेकिन फिर भी पुजारी बाज आ उनके दरवाजे पब्लिक के बाज हिस्सों के लिये बन्द कर देते हैं। यह एक तारीक पहलू है और ऐसा करने से वह जगहें जो कि मुहब्बत और प्यार का मरकज़ होना चाहिये, नफरत ओर फिरकापरस्ती का अखाड़ा बनकर रह जाती हैं और एक दूसरे के खिलाफ खूब नफरत का प्रचार होता है। देश-पिता का सबसे बड़ा अहम काम यह था कि उन्होंने मन्दिरों के दरवाजे अछूतों पर खोल दिये थे। आज हमें उनकी आशाओं को पूरा करना है। यह दलील दी जा सकती है कि मन्दिर और दूसरी ऐसी जगहों पर ऐसे इन्सानों को अन्दर जाने की इजाजत नहीं दी जा सकती है जिन्हें उनका पूरा उसूल और एहतराम नहीं करना आता हो, तो मैं कहता हूं कि अगर कोई ऐसा इन्सान किसी मंदिर में जाना चाहे तो उसका ख्याल रखा जाये, लेकिन कोई वजह नहीं मालूम होती कि एक इंसान को इसकी इजाजत दी जाये और दूसरे के ऊपर खुदा के दरवाजे बन्द कर दिये जाये। मैं चाहता हूं कि यह नामुकम्मिल पहलू है, इसको पूरा कर दिया जाये और हिन्दुस्तान के माथे पर से यह बदनामी हटा दी जाये और मज़हबियत की जो दीवारें हिन्दुस्तान में एक को दूसरे से जुदा किये हुये हैं, हमको उन्हें उखाड़ना ही होगा। इस ख्याल से मैं यह चाहता हूं कि यह जो उनताई इसमें रखी गई हैं, वह मुकम्मिल कर दी जाये और प्रो. के.टी. शाह का या 296 और 297 अमेंडमेंट है, उसको मंजूर करते हुये इसको पूरा करा दिया जाये।

*__श्री मोहम्मद ताहिरः__ श्रीमान्, यह अनुच्छेद इस प्रकार है:

'The State shall not discriminate against any citizen on grounds only of 'religion' race, caste, sex or any of them.

In particular, no citizen shall, on grounds only of religion race, caste, sex or any of them, be subject to any disability, liability, restriction or condiion with regard to–

(a) access to shops, public restaurants, hotels and places of public entertainment''

[राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

विशेषतया केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमे से किसी के आधार पर कोई नागरिक—

(क) दुकानों, सार्वजनिक उपहारगृहों, विश्रान्तिगृहों तथा सार्वजनिक आमोद-स्थानों में प्रवेश...।

सम्बन्धी किसी भी अयोग्यता, देयता, आयंत्रण अथवा प्रतिबंध के अधीन न होगा।]

इस सम्बन्ध में मेरा इस आशय का संशोधन था कि 'hotels' (विश्रान्तिगृहों) शब्द के बाद ''Dharamshalas, Musafirkhanas'' (धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द रखे जायें। श्रीमान्, हम यह देखते हैं कि देश में इन दो प्रकार की संस्थाओं का बराबर निजी प्रणीवि द्वारा संधारण होता है। यदि कोई यात्री, जिसे विश्रान्ति-स्थान की आवश्यकता हो, अनुसूचित जाति का अथवा किसी ऐसी जाति का हो जिसे धर्मशाला के प्रबंध पसंद न करें तो उसे धर्मशाला में नहीं टिकने दिया जाता। मुसाफिरखानों के संबंध में भी यही बात है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि 'hotels' (विश्रान्तिगृहों) शब्द के बाद 'Dharamshalas, Musafirkhanas' (धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द जोड़ दिये जायें।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद को इस रूप में न रखना चाहिये था। मेरी इच्छानुसार तो इस खंड की प्रथम

तीन पंक्तियां ही मसौदे में रहनी चाहिये थी और अन्य पंक्तियां न रहनी चाहिये थी। ''The State shall not disriminate against any citizen on grounds only of religion, race, caste, sex or any of them,' (राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।) शब्द पर्याप्त हैं। उपखंडों को जोड़ कर वास्तव में हम प्रथम खंड की व्यापकता का नूयनन कर रहे हैं। मेरा अपना यह विचार है कि अनुच्छेद 11 में अस्पृश्ता का अन्त करने के उपरांत इस उपखंड में जलाशयों, कुंओं और सड़कों आदि के संबंध में निर्योग्यताओं का निराकरण अनावश्यक है। जहां तक अस्पृश्यता से उद्भूत निर्योग्यताओं का संबंध है, अब उन्हें कोई व्यक्ति व्यवहार में न ला सकेगा। अनुच्छेद 11 के अधीन कोई व्यक्ति किसी के विरुद्ध अस्पृश्यता के आधार पर विभेद न कर सकेगा क्योंकि इसे कानून के अधीन दंडनीय बना दिया गया है। मेरा अपना यह विचार है कि कुंओं, जलाशयों, सड़कों इत्यादि के संबंध में जो खंड है वह हमारे विधान में स्थान पाने के योग्य नहीं है क्योंकि वर्तमान निर्योग्यतायें अस्थायी हैं और कुछ समय के उपरांत लुप्त हो जायेंगी। परन्तु यदि इसे हमारे विधान में स्थायी रूप से स्थान दिया गया तो अन्य देशों के लोग हमारे यहां पहले इस प्रकार का विभेद रहने के कारण हमें घृणा की दृष्टि से देखेंगे। अनुच्छेद 11 की शब्दावली काफी विस्तृत है। इसलिये यदि अस्पृश्यता के आधार पर कोई विभेद किया गया तो वह निषिद्ध समझा जायेगा। इसलिये मेरे विचार से ये उपखंड अनावश्यक है और यदि हम इस अनुच्छेद में पहली तीन पंक्तियां ही रखते तो ये सब संशोधन उपस्थित नहीं किये जाते। मैं इस अनुच्छेद के क्रांतिपूर्ण आशय की ओर भी संकेत करना चाहता हूं। मुझे यह विदित है कि हिन्दुओं की सैकड़ों ऐसी दुकानें हैं जहां केवल हिन्दुओं को भोजन मिल सकता है। भोजन के संबंध में हिन्दुओं की विशेष प्रकार की आदतें हैं और साधारणतया जहां वे भोजन करते हैं वहां किसी को आने की आज्ञा नहीं होती। मुझे आशा है कि हिन्दू समाज अब वह अनुभव करेगा कि उनको अपनी पुरानी आदतें छोड़नी है क्योंकि अब जिन दुकानों में अथवा भोजनालयों में केवल हिन्दुओं को भोजन मिलता रहा है अब अन्य लोग भी, जो हिन्दू नहीं हैं, आ सकते हैं। मेरे विचार से यह एक बहुत ही गम्भीर विषय है क्योंकि अब प्रत्येक नागरिक को यह मूलाधिकार प्राप्त होगा कि वह हिन्दुओं के किसी भी विश्रान्ति-गृह में प्रवेश कर सकेगा। अब कोई भी व्यक्ति ऐसे स्थान में प्रवेश कर सकता है जहां खाना बिकता हो। इसलिये मेरे विचार से इस व्यापक परिवर्तन को प्रभाव में लाने के लिये हमें लोगों को तैयार करना चाहिये, अन्यथा आये दिन कलह होगा। मेरी तो यह इच्छा है कि

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इस खंड (क) को राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों में समाविष्ट किया जाये और इसे मूलाधिकार का रूप न दिया जाये। इससे हिन्दू समाज की परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुसार तैयार करने का समय मिल जायेगा। इस अनुच्छेद का यह भाग विशेषतया इसलिये अनावश्यक है कि अनुच्छेद 11 में अस्पृश्यता को निषिद्ध कर दिया गया है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस उपखंड को अर्थात् अनुच्छेद 9 के उपखंड (ख) को एक महत्त्वपूर्ण खंड समझता हूं। मेरे विचार से इस खंड के अधीन 'लोक-समागम के स्थानों में आमोद-स्थान आदि सन्निहित हैं और इसलिये नाट्यशाला, छबिगृह आदि सभी प्रकार के स्थानों का उल्लेख करना अनावश्यक है। मेरी समझ से तो 'लोक-समागम के स्थान' शब्द से उद्यान् आदि जैसे सभी प्रकार के स्थानों का बोध हो जाता है। यह भी सुझाव रखा गया है कि इस खंड में 'उपासना के स्थानों' का भी समावेश होना चाहिये। अब तक इस देश में कई धर्म हैं, मेरे विचार से इन शब्दों को इस खंड में स्थान देना उचित न होगा। यह तभी हो सकता है, जब इस देश में हम सभी का एक ही धर्म हो जायें।

परन्तु इस अनुच्छेद के प्रस्तावक महोदय का ध्यान मैं एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। इसमें 'कुओं, जलाशयों, सड़कों तथा लोक-समागम के स्थानों का उपयोग' शब्द प्रयुक्त हैं। साधारणतया हमें 'public' (लोक) शब्द से प्रत्येक व्यक्ति अथवा सभी सम्प्रदायों के लोगों के समूह का बोध होता है चाहे उनका कोई भी वर्ग अथवा धर्म हो। परन्तु भारतीय दंड संहिता में मैंने देखा है कि 'public' (लोक) शब्द सीमित अर्थ में प्रयुक्त है। भारतीय दंड संहिता की धारा 12 में यह कहा गया है कि 'public' (लोक) शब्द में 'लोगों का प्रत्येक वर्ग अथवा सम्प्रदाय' सन्निहित है। 'लोगों के प्रत्येक वर्ग' का अर्थ यह है कि एक सनातनी सम्प्रदाय के एक वर्ग का होगा। 'public' (लोक) शब्द की ऐसी सीमित परिभाषा की गई है कि यदि कोई सनातनी किसी गांव में कोई कुंआ बनाये तो वह उसे अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति अथवा सुधारक को उपयोग में न लाने देगा। मुझे ज्ञात नहीं है कि माननीय प्रस्तावक महोदय का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है या नहीं। मैं केवल एक सम्प्रदाय का एक उदाहरण दे रहा हूं। कोई हिन्दू किसी मुसलमान को कुंए से पानी नहीं लेने देगा और यही मुसलमानों के लिये

भी कहा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि इन बातों का संबंध उन अपराधों से है जो भारतीय दंड संहिता के अधीन आते हैं। परन्तु भारतीय दंड-संहिता अन्य कई प्रकार के अपराधों से भी संबंध रखती है। मुझे ज्ञात नहीं है कि किसी अन्य अधिनियम में 'public' (लोक) शब्द की बिना किसी वर्ग अथवा सम्प्रदाय की ओर संकेत किये हुये समूह को लक्ष्य करके परिभाषा की गई है या नहीं। मैंने एक संशोधन भी प्रस्तुत किया था और मेरी यह इच्छा है कि इस सम्बन्ध में कोई अर्थभ्रम न होने दिया जाये क्योंकि यह एक आधारभूत बात है और इस के आधार पर हम प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा करने जा रहे हैं मूलाधिकारों का किसी प्रकार खंडन होने पर कोई भी व्यक्ति न्यायालय के सम्मुख उपस्थित हो सकता है। हम इसे भ्रमपूर्ण क्यों रहने दें और लोगों को 'public' (लोक) शब्द की परिभाषा के लिये सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख जाने के लिये क्यों बाध्य करें? हम इसे पूर्णतया स्पष्ट करने के लिये इसी स्थान पर यह क्यों न कह दें कि 'public' (लोक) शब्द में प्रत्येक व्यक्ति सन्निहित है चाहे उसका धर्म और जाति कुछ भी हो, विशेषतया जब कि भारतीय दंड संहिता में सीमित परिभाषा दी हुई है? इसलिये कानूनी पंडितों के ज्ञान के प्रति आदर-भाव रखते हुये, मेरा यह निवेदन है कि इस विषय को स्पष्ट कर देना चाहिये। मेरे लिये और प्रत्येक साधारण व्यक्ति के लिये 'public' (लोक) शब्द का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हम यह देखते हैं कि कानून की किताबों में इसका दूसरा अर्थ है। इसलिये भविष्य में किसी प्रकार की पेचीदगी पैदा न होने देने के लिये इसके स्पष्टीकरण की आवाश्यकता है।

(एक-दो सदस्य बोलने के उद्देश्य से उठे।)

***उपाध्यक्षः** यदि मैं सभी माननीय सदस्यों की इच्छा पूरी न कर सकूं तो आप मुझे क्षमा करेंगे। मैं चाहता हूं कि सभा मेरे साथ पूर्ण रूप से सहयोग करे और इस समय मैं इसके लिये विशेष रूप से कहता हूं। डा. अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनके सम्बन्ध में मि. रऊफ द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 280 को स्वीकार करता हूं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): क्या माननीय सदस्य महोदय उन संशोधनों के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त करेंगे जो उपस्थित नहीं किये गये हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे इसका खेद है कि मैं उन संशोधनों के संबंध में अपना मत व्यक्त नहीं कर सकता जो उपस्थित नहीं किये गये हैं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहायः** इसके लिये संबंधित सदस्य दोषी नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इस संबंध में मैं क्या कर सकता हूं। 'जन्म-स्थान' शब्द जोड़ने के संबंध में मि. रऊफ का जो संशोधन है उसे मैं स्वीकार करता हूं। मैं श्री सुब्रह्मण्यम् के संशोधन संख्या 276 (सूची 1 में संख्या 37) को भी स्वीकार करता हूं जिसका आशय यह है कि अनुच्छेद 9 के खंड (1) में से 'in particular' (विशेषतया) शब्द निकाल दिये जायें।

श्री गुप्तनाथ सिंह द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 303 के संबंध में यदि वे उसमें से 'kunds' (कुंड) शब्द निकालने के लिये तैयार हैं, तो मैं उसे स्वीकार कर सकता हूं।

***श्री गुप्तनाथ सिंहः** श्रीमान्, मैं उसे निकाल चुका हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खेद है कि जितने संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन सबको मैं स्वीकार नहीं कर सकता, परन्तु मैं समझता हूं कि उनमें से दो के बारे में मेरे लिये कुछ कहना आवश्यक हैं उन में से एक संशोधन संख्या 315 है जिसे मि. ताहिर ने उपस्थित किया था जिसका उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 9 के प्रावधानों का किसी प्रकार भी उल्लंघन कानून के अधीन दंडनीय बना दिया जाये। इस संशोधन के प्रस्तावक मेरे मित्र मि. ताहिर ने अछूतों की स्थिति की ओर विशेष रूप से संकेत किया और यह कहा कि इन कार्यों के सबंध में जो अछूतों के लिये जनसाधारण के साथ समान रूप से अपने अधिकारों का उपभोग करने में बाधक हैं हम उस समय तक अपने उद्देश्य की पूर्ति न कर सकेंगे जब तक कि हम इन कार्यों को, जिनके फलस्वरूप अछूत लोक-समागम के स्थानों का उपयोग नहीं कर सकते हैं, अपराध न घोषित करें। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस विषय के संबंध में उनके और इस सभा के अन्य सदस्यों के बीच कोई मतभेद नहीं है क्योंकि हम सभी की यह इच्छा है कि इस अभागे वर्ग को अवाध रूप से वही अधिकार प्राप्त हों जो अन्य सम्प्रदायों के लोगों को प्राप्त हैं। परन्तु वे देखेंगे कि अनुच्छेद 11 के प्रावधानों से जिनमें अस्पृश्यता का

विशेष रूप से उल्लेख है, इस उद्देश्य की पूर्णतया पूर्त्ति हो जाती है। बिना संसद अथवा राज्य के ऊपर इसे अपराध घोषित करने का भार डाले हुये अनुच्छेद ही में यह कह दिया गया है कि इस वर्ग के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप अपराध समझा जायेगा और यह कानून के अधीन दंडनीय होगा। यदि उनकी यह धारणा है कि विधान में एक ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिसमें साधारणतया उन कार्यों का उल्लेख हो जिनसे अनुच्छेद 9 के प्रावधानों का खंडन होता हो, तो मैं उनका ध्यान इस विधान के अनुच्छेद 227 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसके अनुसार संसद पर इसका भार है कि वह ऐसे कानून बनाये जो यह घोषित करें कि इस प्रकार का हस्तक्षेप अपराध है जो कानून के अधीन दंडनीय है। संसद को यह शक्ति इस कारण दी गई है क्योंकि यह समझा गया कि मूलाधिकारों के संबंध में जो अपराध हो वह भारत के सारे राज्य-क्षेत्र में समान रूप से दंडनीय हो। परन्तु यदि यह शक्ति विभिन्न राज्यों और प्रान्तों को दे दी जायेगी तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति न होगी क्योंकि वे अपनी इच्छानुसार कानून बनायेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, इसके लिये विधान में पर्याप्त प्रावधान है और वास्तव में और किसी बात की आवश्यकता नहीं है।

प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 323 के संबंध में, जिसका उद्देश्य यह है कि स्त्रियों और बच्चों के साथ 'अनुसूचित जातियां' और 'अनुसूचित वन-जातियां' शब्द जोड़ दिये जायें, मेरे विचार से इसका विपरीत ही प्रभाव होगा। हम सभी का उद्देश्य यह है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित वन जातियों को जनसाधारण से पृथक् न रखा जाये। उदाहरणार्थ हम में से, मेरे विचार से, कोई यह न चाहेगा कि जब गांव में सभी लोगों के लिये एक पाठशाला है, तो अनुसूचित जातियों के लिये एक पृथक् पाठशाला खोली जाये। यदि ये शब्द जोड़ दिये जायेंगे तो सम्भवत: किसी राज्य के लिये यह कहने को हो जायेगा कि वह अनुसूचित जातियों के लिये विशेष रूप से व्यवस्था कर रहा है। मेरे विचार से यदि प्रोफेसर महोदय के संशोधन के अनुसार इस अनुच्छेद में परिवर्तन किया गया, तो वह अवश्य ही यह कह सकेगा। इसलिये मेरे विचार से यह संशोधन हमारे उद्देश्य के अनुकूल नहीं है।

अब मैं अपने मित्र श्री नागप्पा के प्रश्न को उठाता हूं। उन्होंने मुझसे इस अनुच्छेद में आये हुए कुछ शब्दों को स्पष्ट करने को कहा है। उनका पहला प्रश्न यह था कि क्या 'दुकान' शब्द में धोबी की दुकान और नाई की दुकान भी सन्निहित

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है अथवा नहीं। जहां तक मेरा संबंध है मुझे तो इसके बारे में कुछ भी संदेह नहीं है कि 'दुकान' शब्द में धोबी की दुकान और नाई की दुकान सन्निहित है। यदि 'दुकान' शब्द की अधिक से अधिक सामान्य रूप से परिभाषा की जाये तो वह यही हो सकती है कि दुकान एक ऐसी जगह है जिसका स्वामी वहां आये हुये प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करने के लिये तैयार रहे। इसलिये धोबी को एक ऐसा व्यक्ति कहा जा सकता है, जो लोगों की एक विशेष प्रकार की सेवा करने के लिये अपनी दुकान में बैठा रहे अर्थात् उसकी सेवा यही है कि वह अपने ग्राहक के मैले कपड़ों को धोये। इसी प्रकार नाई की दुकान का मालिक अपनी दुकान में इसलिये बैठेगा कि वह वहां आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करे।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** क्या इस शब्द में डाक्टर अथवा वकील के दफ्तर भी सन्निहित हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** निस्संदेह इसमें प्रत्येक ऐसा व्यक्ति सन्निहित है जो सेवा करने के लिये तैयार हो। मैं इस शब्द को उसके सामान्य अर्थ में प्रयोग में ला रहा हूं।

इसलिये मैं यह भी बताना चाहता हूं कि 'दुकान' शब्द यहां केवल इस सीमित अर्थ में प्रयुक्त नहीं है कि यहां प्रवेशमात्र हो सके। यह इस व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है कि यदि सेवा के प्रतिबंधों को स्वीकार किया गया तो सेवा प्राप्त की जा सकती है।

दूसरा प्रश्न जो मुझसे पूछा गया है वह यह है कि क्या 'लोक-समागम के स्थानों' में कब्रिस्तान भी सन्निहित है। मेरा तो यह विचार था कि कब्रिस्तान के संबंध में बहुत कम लोगों की दिलचस्पी होगी क्योंकि कोई भी यह जानने की परवाह न करेगा कि उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका क्या होगा। परन्तु चूंकि मेरे मित्र श्री नागप्पा की इस विषय में दिलचस्पी है, इसलिये मैं यह कहना चाहता हूं कि निस्संदेह 'लोक समागम के स्थान' शब्दों में कब्रिस्तान भी सन्निहित होंगे, परन्तु प्रतिबंध यह है कि उनका पूर्णत: अथवा अंशत: लोक प्रणीवि से संधारण होता हो। जहां कोई ऐसे कब्रिस्तान नहीं है जिनका नगर-समिति से अथवा स्थानीय बोर्ड से अथवा तालुक बोर्ड से अथवा प्रान्तीय सरकार से अथवा ग्राम-पंचायत से संधारण होता है, तो निस्संदेह उसके संबंध में किसी को अधिकार नहीं है क्योंकि वह कोई ऐसा सार्वजनिक स्थान नहीं है जिसके संबंध में कोई व्यक्ति प्रवेश के

अधिकार का दावा कर सकता है। किन्तु यदि राज्य किसी कब्रिस्तान का संधारण करता है तो प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्टतया यह अधिकार है कि वह अपने शरीर को वहां दफनवाये अथवा उसका दाह करवाये।

मेरे मित्र ने मुझसे यह भी पूछा है कि क्या जलाशयों में तालाब भी सन्निहित हैं। अवश्य ही वे सन्निहित हैं। जलाशय एक बड़ा आशय है, जिसमें तालाब अवश्य ही सन्निहित है।

मुझसे दूसरा प्रश्न यह पूछा गया कि क्या नदियां, झरने, नहरें और जलस्रोत अछूतों को उपलब्ध होंगे। निस्संदेह नदियां, झरने और नहरें अनुच्छेद 9 के अधीन नहीं आते हैं, परन्तु वे अवश्य ही अनुच्छेद 11 के अधीन आ जायेंगे, क्योंकि उसमें यह प्रावधान है कि यदि अन्य सम्प्रदायों की तुलना में अछूतों के साथ समान व्यवहार बरतने में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया गया, तो वह एक अपराध समझा जायेगा। इसलिये मैं श्री नागप्पा को यह उत्तर देना चाहता हूं कि नदियों, झरनों, नहरों इत्यादि के उपयोग के संबंध में उन्हें किसी प्रकार का भय न होना चाहिये क्योंकि यदि कहीं इस प्रकार की निर्योग्यता हो, तो पार्लियामेंट उसे दूर करने के लिये अनुच्छेद 11 के अधीन कानून बना सकेगी।

***श्री एस. नागप्पा:** जल-प्रवाह के संबंध में क्या होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इस अवसर पर मैं इस अनुच्छेद में अब और कुछ नहीं जोड़ सकता हूं। परन्तु मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि नदियों और नहरों के संबंध में जो भी कार्यवाही आवश्यक होगी वह अनुच्छेद 11 के अधीन यथेष्ट तथा पर्याप्त रूप से की जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या 'public' (लोक) शब्द के निर्वाचन के संबंध में कुछ न कहियेगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे मित्र श्री सिधवा ने 'public' (लोक) शब्द की कोई परिभाषा भारतीय दंड संहिता से पढ़ी और यह कहा कि 'public' (लोक) शब्द उसमें बहुत ही सीमित अर्थ में प्रयुक्त है अर्थात् उससे केवल एक वर्ग का बोध होता है। मैं उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि 'public' (लोक) शब्द का यहां एक विशेष अर्थ में प्रयोग हुआ है। कोई स्थान तभी लोक-समागम का स्थान कहा जा सकता है जबकि उसका अंशत: अथवा

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

पूर्णत: लोक-प्रणीवि से संधारण होता हो। इसका भारतीय दंड संहिता में दी हुई परिभाषा से कोई संबंध नहीं है।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि उन संशोधनों का क्या होगा जिनको आपने शब्दिक संशोधन घोषित किया है? उनमें से मेरे विचार से कुछ संशोधन ऐसे हैं जिनका उद्देश्य संबंधित अनुच्छेद अथवा खंड के सार में परिवर्तन करना है।

*__उपाध्यक्ष:__ इस संबंध में मैं स्वयं निर्णय कर सकता हूं। आपने मुझे स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति दी है और उसका मैं अपने ढंग से प्रयोग करूंगा।

*__श्री महावीर त्यागी:__ मैं केवल सूचना चाहता हूं। मुझे आपके निर्णय अथवा आपके अधिकार से कोई विरोध नहीं है। मैं केवल यह जानना चाहता हूं कि क्या जिन संशोधनों की आज्ञा नहीं दी गई है उनके सम्बन्ध में सभा की भावना को समझने का प्रयत्न किया जायेगा और क्या मसौदा-समिति या कोई अन्य समिति इन संशोधनों पर विचार करेगी? मेरा यह सुझाव है कि इन शाब्दिक संशोधनों पर विचार करने के लिये और यह देखने के लिये, इनमें से कम से कम कुछ का उद्देश्य यह तो नहीं है कि सम्बन्धित खण्ड के अर्थ में परिवर्तन किया जाये, यदि आप कृपा करके एक छोटी-सी उप-समिति नियुक्त कर देंगे तो इससे इस सभा का हित-साधन होगा। आपने जो कुछ कहा है उसका मैं विरोध नहीं कर रहा हूं। आपने निर्णय कर दिया है इसलिये वे औचित्य-दृष्टि से अमान्य तो हैं ही, परन्तु अर्ध-विरामों और विरामों का भी कुछ महत्त्व होता है। मेरी यही प्रार्थना है कि..

*__उपाध्यक्ष:__ क्या मैं इससे अच्छी एक प्रणाली का सुझाव कर सकता हूं जिसे सम्भवत: आप पसंद करें क्योंकि यह प्रणाली एक उप-समिति नियुक्त करने की प्रणाली से अच्छी है? जिन सदस्यों का यह विश्वास है कि उनके संशोधन सारपूर्ण हैं वे मसौदा-समिति से स्वयं परामर्श कर सकते हैं। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनकी बातों पर यथोचित विचार किया जायेगा।

*__श्री महावीर त्यागी:__ श्रीमान्, मुझे अब संतोष हो गया है।

*__श्री मोहम्मद ताहिर:__ चूंकि संशोधन संख्या 315 के संबंध में माननीय डा. अम्बेडकर ने संतोषजनक रूप से मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दिया है, इसलिये मैं उसे वापस लेने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अन्य संशोधनों पर सभा का मत लूंगा। डा. अम्बेडकर ने पहले संशोधन को स्वीकार कर लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 276 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा को नये खंड (1-क) की संख्या दी जाये और इस प्रकार जो नया खंड बने उसमें से ''in particular'' (विशेषतया) शब्द निकाल दिये जायें।'

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद 279वां संशोधन आता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 में 'race' (प्रजाति) शब्द के बाद 'birth' (जन्म) शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद 280वां संशोधन आता है जो मेरे विचार से डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 में जहां कहीं 'sex' (लिंग) शब्द आये उसके बाद, 'place of birth' (जन्म-स्थान) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 286 के दूसरे भाग पर आते हैं। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'restaurants, hotels' (उपहारगृहों, विश्रान्तिगृहो) शब्दों के बाद 'dharamshalas, musafirkhanas' (धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 293, प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खंड 1 में उपखंड (क) और (ख) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'any place of public use or resort, maintained wholly or partly out of the revenues of the State, or in any way aided, recognised, encouraged or protected by the State, or place dedicated to the use of general public like schools, colleges, libraries, temples, hospitals, hotels and restaurants, places of public entertainment, recreation or amusement, like theatres and cinema-houses or concert-halls; public parks, gardens or museums; roads, wells, tanks or canals; bridges, posts and telegraphs, railways, tramways and bus services; and the like.' "

(लोक-उपयोग अथवा लोक-समागम का कोई स्थान, जिसका अंशत: अथवा पूर्णत: संधारण राज्य के आगम से होता हो अथवा जिसको राज्य किसी प्रकार सहायता, स्वीकृति, प्रोत्साहन अथवा रक्षण प्रदान करता हो, अथवा जनसाधारण के उपयोग के लिये समर्पित कोई स्थान जैसे स्कूल, कालेज, पुस्तकालय, मंदिर, अस्पताल, विश्रान्तिगृह और उपहारगृह, सार्वजनिक आमोद-प्रमोद तथा मनोविनोद के स्थान जैसे नाट्यशाला और छविगृह अथवा वाद्यशाला, सार्वजनिक उद्यान, बगीचे अथवा कौतुकालय; सड़कें, कुंएं, तालाब अथवा नहरें; पुल, डाक और तार, रेल, ट्राम और बस, आदि)

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम 296वें संशोधन पर आते हैं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खण्ड (1) वे उपखंड (क) में 'public entertainment' (सार्वजनिक आमोद-स्थानों) शब्दों के बाद 'or places of worship' (अथवा उपासना के स्थान) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** मुझे स्मरण नहीं है कि संशोधन संख्या 299 का क्या हुआ। इसके सम्बन्ध में निश्चय कर लेने के उद्देश्य से मैं इस पर मतदान लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खण्ड (1) के उपखंड (क) में से 'public' (सार्वजनिक) शब्द निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 301, जो मि. तजम्मुल हुसैन के नाम से है प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'public' (सार्वजनिक) और 'restaurants' (उपहारगृहों) के बीच में 'places of worship, Dharamshalas, Musafirkhanas' (उपासना के स्थानों, धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द रखें जायें।"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 303, दुहराये हुये रूप में। मेरे विचार से डा. अम्बेडकर ने उसे स्वीकार किया है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 क खंड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'wells, tanks' (कुंओं, जलाशयों) शब्दों के बाद 'bathing ghats' (नहान घाट) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब संशोधन संख्या 305 आता है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'roads' (सड़कों) शब्द के बाद एक कोमा और 'hospitals, educational institutions' (अस्पतालों, शिक्षा-संस्थाओं) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 314, प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'the revenues of the State' (राज्य-आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब हम अन्तिम संशोधन पर आते हैं, जो प्रोफेसर शाह के नाम से है। संख्या 323। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 9 के खंड (2) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'or for Scheduled castes or backward tribes, for their advantage, safeguard or betterment.' "

[उपाध्यक्ष]

(अथवा अनुसूचित जातियों अथवा पिछड़ी हुई जातियों के लिये उनके लाभ, अभिरक्षण अथवा उन्नति के उद्देश्य से)

संशोधन गिर गया।

*__उपाध्यक्षः__ अब मैं इस संशोधित अनुच्छेद पर मत लूंगा। सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9, संशोधन रूप में विधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 10

*__उपाध्यक्षः__ क्या अब हम आगे का अनुच्छेद अर्थात् नया अनुच्छेद 9-क उठायें? इसके सम्बन्ध में जो संशोधन प्रस्तावित हैं वे निदेशक सिद्धान्तों के रूप में हैं। मैं उनको उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देता। अब हम अनुच्छेद 10 को उठाते हैं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): मेरी समझ से इसे स्थगित रखने का विचार है।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं आपसे इस अनुच्छेद को स्थगित करने की प्रार्थना करता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ अब हम आगे के अनुच्छेद 10-क को उठाते हैं।

(*369वां संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।*)

अनुच्छेद 11

*__उपाध्यक्षः__ अब हम अनुच्छेद 11 को उठाते हैं। सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 11 विधान का अंग बना लिया जाये। अब हम संशोधनों को एक-एक करके उठायेंगे। संशोधन संख्या 370 नियमानुकूल नहीं है। संशोधन संख्या 371, 372, 373 तथा 375 और 378 भी इसी प्रकार है। मेरा यह सुझाव है कि संशोधन संख्या 375 उपस्थित किया जाये।

(*संशोधन संख्या 375 और 371 उपस्थित नहीं किये गये।*)

*__उपाध्यक्षः__ संख्या 372। मि. नजीरुद्दीन अहमद!

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमद (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 11 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'11 कोई व्यक्ति अपने धर्म अथवा अपनी जाति के आधार पर न अस्पृश्य समझा जायेगा और न उसके साथ अस्पृश्य के समान व्यवहार किया जायेगा और अस्पृश्यता को किसी भी रूप में बरतना कानून के अधीन दंडनीय होगा।' ''

मेरा यह निवेदन है कि मूल अनुच्छेद 11 कुछ अस्पष्ट है। 'untouchability' (अस्पृश्यता) का कोई कानूनी अर्थ नहीं है, यद्यपि राजनीति के प्रसंग में हम सब इसका अर्थ समझते हैं। कानून की दृष्टि से इससे बहुत भ्रम हो सकता है। 'अस्पृश्य' शब्द इतनी प्रकार की चीजों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होता है कि हमें इस शब्द को इसी प्रकार न रहने देना चाहिये। किसी महामारी अथवा छूत की बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को अस्पृश्य कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ खाद्य-पदार्थ हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये अस्पृश्य है। कुछ विचार-धाराओं के अनुसार अन्य परिवारों की महिलायें अस्पृश्य समझी जाती है। पंडित ठाकुरदास भार्गव के मतानुसार 15 वर्ष से कम आयु की पत्नी अपने प्यारे पति के लिये अस्पृश्य होगी क्योंकि उसे स्पर्श करना शिष्टता की दृष्टि से अनुचित व्यवहार होगा। श्रीमान् मेरा यह निवेदन है कि 'अस्पृश्य' शब्द बहुत कुछ भ्रामक है। इसीलिये मैंने उसे उचित रूप से रखने का प्रयास किया है और वह इस प्रकार कि कोई व्यक्ति अपने धर्म अथवा अपनी जाति के आधार पर अस्पृश्य नहीं समझा जायेगा। धर्म अथवा जाति के आधार पर ही अस्पृश्यता वर्जित है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मुझे एक शब्द और कहना है और वह यह है कि इस खंड की तीसरी पंक्ति में वाक्य के बीच में, 'untouchability' शब्द के आरम्भ में बड़ा अक्षर है। यह मसौदा-समिति के देखने की बात है।

(*संशोधन संख्या 373 और 378 उपस्थित नहीं किये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 374, 376, 377, 379, 380 और 381 को शाब्दिक संशोधन समझता हूं और उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देता हूं। केवल 372वां संशोधन उपस्थित किया गया है। अब अनुच्छेद पर सामान्य विचार-विमर्श हो सकता है। मैं श्री मुनिस्वामी पिल्ले से बोलने के लिये आग्रह करता हूं।

*__श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह एक बड़े संतोष की बात है कि हमारे विधान में एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान को स्थान दिया गया है जिससे हमारे महान देश में अस्पृश्यता का अन्त हो जायेगा। श्रीमान्, यद्यपि अनुच्छेद 9 में कई ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था की गई है जो अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये आवश्यक है किन्तु अस्पृश्यता के सम्बन्ध में तथा उसे समाप्त करने के उद्देश्य से जो खंड है, उससे संसार को अच्छी प्रकार यह ज्ञात हो जायेगा कि जो अभागे सम्प्रदाय इस समय अछूत कहे जाते हैं, वे इस विधान के प्रयोग में आने पर अपने बन्धनों से मुक्त हो जायेंगे। इस प्रावधान से भारतीय राष्ट्र के एक विशेष वर्ग का ही हित न होगा किन्तु भारत की जनसंख्या का छठा भाग इस धारा का स्वागत करेगा, जिससे कि इस देश में अस्पृश्यता का मूलोच्छेदन हो जायेगा। श्रीमान्, इस देश में जाति-विभेद के कारण एक विशेष वर्ग अस्पृश्यता के बन्धनों से जकड़ा रहा है और वे युगों से तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं और ऐसे सभी लोगों के हाथों सताये जाते रहे हैं जो अपने को ताल्लुकदार और जमीदार कहते आये हैं और वे उन साधारण सुविधाओं से भी वंचित रहे हैं जो किसी भी मनुष्य के लिये जीवन धारण करने के लिये आवश्यक हैं। अस्पृश्यता का अभिशाप कुछ वर्गों के लिये असह्य हो गया और कई लोगों ने अपना धर्म छोड़ कर उन धर्मों की शरण ली जिनके अनुयायियों ने उनके प्रति सहिष्णुता दिखाई। श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि इस खंड को स्वीकार करने से कई हिन्दू हरिजन जो अनुसूचित जातियों के हैं यह अनुभव करेंगे कि अब उन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त हो गया है। मुझे विश्वास है कि सारा देश विधान में अनुच्छेद 11 के समावेश का स्वागत करेगा।

*__डा. मनमोहन दास__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अस्पृश्यता सम्बन्धी इस खंड में मूलाधिकारों में से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अधिकार सन्निहित है। इस खंड में किसी अल्पसंख्यक समुदाय को किसी प्रकार के विशेषाधिकार अथवा अभिरक्षण प्रदान करने का प्रस्ताव नहीं है किन्तु इसका उद्देश्य भारतीय राष्ट्र के छठे भाग को चिरस्थायी दासत्व, नैराश्य, आत्म-ग्लानि तथा अपमान से मुक्त करना है। अस्पृश्यता की प्रथा से करोड़ो भारतीय अंधकार और निराशा में डूबे रहे तथा लज्जा और अपमान का अनुभव करते रहे और यही नहीं, इसके कारण हमारे राष्ट्र की सजीवता ही नष्ट हो गई। श्रीमान्, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह सभा इस खंड को एकमत से स्वीकार करेगी। इसके लिये भारतीय कांग्रेस तो वचनबद्ध है ही परन्तु साथ ही यदि हमें इस देश के करोड़ों अछूतों के प्रति न्याय करना है और विदेशों में सद्भाव बढ़ाना है और अपनी प्रतिष्ठा ऊंची

करनी है तो हमें इस खंड को, जिसके द्वारा अस्पृश्यता को बरतना एक दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है, स्वतंत्र भारत के विधान में अवश्य ही स्थान देना होगा। श्रीमान्, मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता कि इस आदरणीय सभा में भी कोई ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो इस अनुच्छेद की भावना अथवा इसके सिद्धान्त का विरोध करे। इसलिये, श्रीमान्, मेरे विचार से आज 29 नवम्बर सन् 1948 ई. का दिन हम अछूतों के लिये एक स्मरणीय दिवस है। यह दिवस इतिहास में मुक्ति-दिवस के नाम से अथवा इस विशाल देश के पांच करोड़ भारतीयों के उत्थान के दिवस के नाम से प्रख्यात होगा। इस नवयुग के उषाकाल में मुझे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के संतृप्त हृदय से निकले हुये किन्तु प्रेम तथा सहानुभूति से परिपूर्ण वे शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहे हैं जो उन्होंने हम अछूतों और पददलित लोगों के लिये कहे थे। गांधी जी ने कहा था, ''मैं अपना पुनर्जन्म नहीं चाहता किन्तु यदि मेरा जन्म हुआ तो मैं एक हरिजन, एक अछूत के रूप में जन्म लेना चाहूंगा ताकि मैं अपने जीवन भर निरंतर उस अत्याचार और अनाचार से संघर्ष करता रहूं जो इस वर्ग के लोगों के साथ बराबर किया जाता रहा है।'' यदि भारत की आबादी के पांचवें भाग को सदा दासत्व में रखा गया तो स्वराज का हमारे लिये कुछ भी अर्थ न होगा। महात्मा गांधी हम जीवित लोगों के बीच से उठ गये हैं। यदि वे जीवित होते तो आज उनसे अधिक किसी मनुष्य को हर्ष व संतोष न होता। महात्मा गांधी ही नहीं किन्तु स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा इस प्राचीन देश के अन्य महापुरुष तथा दार्शनिक जिन्होंने इस घृणित प्रथा के विरुद्ध सतत् संघर्ष किया, आज यह देख कर अत्यन्त हर्षित होते कि आखिर स्वतंत्र भारत ने भारतीय समाज से इस कुप्रथा को मिटा दिया है। हिन्दू होने के नाते मैं आत्मा के अमरत्व पर विश्वास करता हूं। इन महापुरुषों के देश प्रेम तथा जीवन-पर्यन्त सेवा से ही भारत को आज सम्मानित पद प्राप्त हुआ है और आज अस्पृश्यता की घृणित प्रथा का अन्त करने में हमारा साहस देख कर उनकी आत्माएं हर्षित हो रही होंगी।

अन्त में, मैं अपने महान् और प्रतिष्ठित कानून-मंत्री तथा मसौदा-समिति के सभापति के सम्बन्ध में दो-चार शब्द कहे बिना नहीं रह सकता। यह विधि की विडम्बना है कि उस व्यक्ति को ही, जिसे एक स्कूल से निकाल कर दूसरे स्कूल में भेजा गया था और जिसे कक्षा के बाहर सबक सीखने के लिये बाध्य किया गया था, आज स्वतंत्र भारत का विधान बनाने का महान् कार्य सौंपा गया है। जिस अस्पृश्यता की प्रथा से वे अपने बाल्यकाल में पीड़ित रहे, उस पर उन्होंने आज ऐसा प्रहार किया है कि उसकी मृत्यु ही हो गई है।

[डा. मनमोहन दास]

श्रीमान्, इस विषय पर अपने विचारों को प्रकट करने के लिये आपने मुझे जो अवसर दिया है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

*__श्री शान्तनुकुमार दास__ (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, आज मुझे क्लाज 11 के मुताल्लिक बोलने का जो मौका दिया गया उसके लिये मैं आपको पहले धन्यवाद देता हूं।

इस क्लाज का मतलब यह है कि सामाजिक वैषम्य, सामाजिक कलंक और सामाजिक बन्धन कैसे दूर हों। सब लोग चाहते हैं कि किसी तरह यह अनटचेबिलिटी उठ जाये, मगर कोई मदद नहीं देते हैं। सब चाहते हैं कि अनटचेबिलिटी समाज में न रहे और इसके लिये क्यों बहुत बहस की जाती है। मैं चाहता हूं कि हम लोग यहां आकर कानून बनायें और आदेश दें कि देहात में जो जनता है, उसका पालन करे। हम यहां आकर कानून बनायें पर आदेश दूसरे लोगों को दें, यह कैसी बात है? यह नामुमकिन सी बात है। सभापति जी, आप इसको सुन कर बड़े ताज्जुब में होंगे कि प्रान्तीय सरकार हरिजनों के लिये सुविधा कर देती है, रिमूवल आफ अनटचेबिलिटी बिल और रिमूवल आफ डिसएबिलिटी बिल और टम्पिल एण्ट्री बिल कर देती है। पर हमारे जो सदस्यगण है वह हमारे प्रान्त में देहात में जाकर फिफ्थ कालम का काम करते हैं और वहां जाकर कहते हैं कि यह कानून लागू नहीं है और दूसरे वह कानून के खिलाफ करते हैं। मैं इस हाउस में जो सदस्यगण हैं, उनसे अनुरोध करूंगा कि वह चेष्टा करें कि यह कानून कार्यकारी कैसे हो और इसके कार्यकारी होने से भारतवर्ष में जो सामाजिक वैषम्य है वह सब दूर हो जायेगा। मैं पूरी तौर से इस क्लाज का समर्थन करता हूं।

*__श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हमें ऐसे विधान की आशा न थी जिसमें अस्पृश्यता-सम्बन्धी कोई खंड न हो क्योंकि मसौदा-समिति के सभापति स्वयं अछूत जाति के हैं। मैं इसका ब्यौरा नहीं देने जा रही हूं कि इतिहास में किन बातों का उल्लेख है और अतीत काल से धार्मिक अध्यक्षों ने कौन से कार्य किये हैं। आपको यह विदित ही है कि सभी धार्मिक उपदेशक अस्पृश्यता की प्रथा का विरोध करते रहे हैं। आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने इसका बीड़ा उठाया और उन्होंने देश के सम्मुख जो रचनात्मक कार्यक्रम रखा उसका एक अंग अस्पृश्यता का अन्त करना भी था। जब मैं कालेज में पढ़ती थी तो मेरा एक सहपाठी मेरे पास आया और उसने मुझसे अस्पृश्यता को समाप्त

करने के कार्य के लिये चन्दा मांगा। मैंने उसे यह उत्तर दिया कि 'आप ही इसके लिये उत्तरदायी हैं और इसलिये आप ही इसके लिये धन-संग्रह कीजिये। यह उचित नहीं है कि इसके लिये आप मुझ से धन देने के लिये कहें।' अपने बाल्यकाल में ही अस्पृश्यता के विचार से मेरे आत्मसम्मान को ठेस पहुंचती थी। पाठशाला में ऐसे सार्वजनिक स्थानों में भी जब कभी चाय आदि के लिये समागम होता था, तो अस्पृश्यता बरती जाती थी। ऐसे अवसरों पर मैं सहयोग ही किया करती थी। केवल महात्मा गांधी के ही प्रयास के कारण आज लोगों के हृदय में परिवर्तन हो गया है। हम आज यह देखते हैं कि अछूतों के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बहुत बदल गया है। हम आज यह देखते हैं कि लोग सवर्ण हिन्दू कहे जाते हैं उनको अस्पृश्यता के विचार से और इस शब्द से ही घृणा है और वे नहीं चाहते कि वे उसके लिये ताड़ित किये जायें क्योंकि उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उसके लिये वे उत्तरदायी हैं और यह प्रतिज्ञा की है कि वे इस देश से उसको मिटा देंगे। यद्यपि तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोण में बहुत सुधार हो गया है परन्तु हम केवल इससे संतुष्ट नहीं हो सकते। हम यह नहीं चाहते कि विधान के प्रभाव में आने पर लोग कानून भंग करने के लिये दंडित किये जायें, परन्तु इसे आवश्यक समझते हैं कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार दोनों यथोचित प्रचार करें। तभी उस प्रकार का सुधार हो सकेगा, जैसा कि हम चाहते हैं। यदि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने इसके पहले कार्यवाही की होती, तो विधान में इस प्रकार के अनुच्छेद की आवश्यकता ही न होती। पिछले वर्ष विधान-परिषद् के सम्मुख मैंने इस आशय का एक प्रस्ताव रखा था कि अस्पृश्यता को गैरकानूनी घोषित कर देना चाहिये। जब मैं पंडित जी से मिली तो उन्होंने मुझसे कहा कि यह कोई कांग्रेस समिति तो है नहीं जिसमें इस प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सके और यह भी कहा कि इस पर यथासमय विचार होगा। मैंने यह कहा कि यदि विधान-परिषद् में इस प्रकार की घोषणा की गई तो इसका बहुत प्रभाव होगा। मैंने यह भी कहा कि हमारी इस प्रथा के कारण दक्षिण अफ्रीका के लोग हमारी आलोचना कर रहे हैं और यदि इस सभा द्वारा इसी समय यह घोषणा कर दी जाये तो इससे लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ेगा और फिर हमारे लिये यह आवश्यक न होगा कि हम इस प्रकार के खंड का अपने विधान में सन्निवेश करें।

***उपाध्यक्ष:** आपने अपने समय से अधिक समय ले लिया है। चूंकि आप महिला हैं, इसीलिये मैं आपको बोलने दे रहा हूं।

***श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन:** विधान का प्रयोग इस पर नहीं निर्भर करेगा कि कानून वास्तव में किस प्रकार प्रयोग में आये, बल्कि इस पर निर्भर करेगा कि

[श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन]

लोग भविष्य में किस प्रकार का व्यवहार करेंगे। इसलिये मेरी यह आशा है कि आगे चलकर ऐसा कोई समुदाय नहीं रह जायेगा जिसे अछूत समुदाय के नाम से कहा जायेगा और विदेश में यदि किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में इस प्रकार के प्रश्न को छेड़ा गया तो हमारे प्रतिनिधियों को लज्जित होकर अपना सिर न झुकाना पड़ेगा।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, सम्भव है कि आगे चल कर मैं जो बातें कहूं उनसे किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो जाये, इसलिये मैं आरम्भ में ही यह कह देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद की भावना से अथवा इसकी शब्दावली से मुझे कोई विरोध नहीं है। किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस शब्दावली की कुछ त्रुटियां दूर की जा सकती है। यदि मैं इस सभा के सम्मुख अथवा मसौदा-समिति के सभापति के सम्मुख जो कुछ रखूं उस पर वे विचार करें, तो मेरा यह विश्वास है कि वे स्वयं इस अनुच्छेद में कुछ संशोधन कर सकेंगे।

पहले मैं यह बताना चाहता हूं कि 'अस्पृश्यता' की कहीं भी परिभाषा नहीं की गई है। विधान में एक पारिभाषिक खंड का अभाव है। इसलिये हमें यह समझने में बहुत कठिनाई होती है कि किसी खंड-विशेष का क्या अर्थ है और यह किस प्रकार प्रभाव में लाया जायेगा। यह कह कर कि अस्पृश्यता का किसी भी रूप में आचरण अपराध समझा जायेगा और कानून के अधीन दंडनीय होगा, आप केवल 'अस्पृश्यता को समाप्त करने के सामान्य सिद्धांत का अनुसरण कर रहे हैं। मैं सभा के सम्मुख स्वीकृत अथवा अनुमति-प्राप्त अस्पृश्यता के आचरण के कुछ दृष्टान्त रखना चाहता हूं, जिनमें कुछ विशेष समुदायों अथवा व्यक्तियों पर कुछ समय के लिये ऐसी अयोग्यता लागू की जाती है जो बहुत कुछ अस्पृश्यताजन्य ही होती है। हम सभी को विदित है कि कुछ कालों के लिये औरतें अस्पृश्य समझी जाती हैं। क्या यह इस अनुच्छेद के अधीन दंडनीय समझा जायेगा? यदि मैं भूल नहीं रहा हूं और मुझे ठीक याद है तो कुरान की एक सूरा में इसका विशेष रूप से और निश्चित रूप से उल्लेख है। क्या रसूल के अनुयायियों द्वारा अपने धर्म के आचरण को आप एक अपराध घोषित कर देंगे? इसके अतिरिक्त अत्येष्टि-क्रिया और क्रिया-कर्म के सम्बन्ध में कई प्रथायें ऐसी हैं कि जो लोग उनमें भाग लेते हैं वे कुछ काल के लिये अस्पृश्य समझे जाते हैं। मैं शरीर-विज्ञान अथवा तत्सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में भाषण देकर इस सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता, परन्तु मैं अवश्य ही उसके ध्यान में यह लाना चाहता हूं कि 'अस्पृश्यता' की परिभाषा न होने के कारण वकील अथवा कुचक्री लोग इस प्रकार के खंड

का मनमाना अर्थ लगाऐंगे। मेरा यह विश्वास है कि मसौदा-समिति का यह उद्देश्य नहीं है।

श्रीमान्, मैं एक उदाहरण और दूंगा जो शुद्धता अथवा सफाई के सम्बन्ध में है और जिसकी मसौदा बनाने वालों ने नितान्त उपेक्षा की है। संक्राम्य रोगों का और उनमें पीड़ित रोगियों का क्या होगा क्योंकि जब तक वे इन रोगों से ग्रस्त रहें, उन्हें अलग रखना और अस्पृश्य बनाना आवश्यक है? श्रीमान्, मुझे एक ऐसी घटना स्मरण है जो एक ख्यातनामा व्यक्ति पर बीती क्योंकि वे कोढ़ से पीड़ित थे। उन्हें एक सार्वजनिक-यान-प्रमंडल ने एक जगह से दूसरी जगह ले जाना अस्वीकार कर दिया। सभी सरकारी अधिकारियों से इस आशय का एक अधिकार-पत्र प्राप्त करने के लिये कहा—सुना गया कि उन्हें वायुयान में इस प्रकार ले जाया जाये कि अन्य यात्रियों को कोई हानि न हो। मुझे ज्ञात नहीं है कि वे इस विपत्ति से अपने धन द्वारा मुक्त हुये, अथवा दान द्वारा। मुझे विश्वास है कि इस उदाहरण से मसौदा-समिति को चेतावनी मिलेगी। इसके अतिरिक्त यदि उदाहरणार्थ कोई नगर-समिति निरोध सम्बंधी कोई ऐसा अस्थायी नियम बनाये जिसके अनुसार संक्राम्य अथवा छूत के रोगों से पीड़ित लोगों को उस समय तक अलग रखना और अस्पृश्य समझना आवश्यक हो जब तक वे अच्छे न हो जायें, तो क्या आप उस नगर-समिति की इस कार्यवाही को 'अवैधानिक' अथवा कानून के अधीन दंडनीय कहेंगे? मेरा यह विश्वास है कि मसौदा-समिति के सभापति मेरे सुझाव में कुछ सार देखेंगे और उस पर सामान्य रूप से विचार करके उसे अस्वीकार कर देंगे।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ डा. अम्बेडकर, क्या आप श्री शाह के सुझाव का उत्तर देना चाहते हैं?

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ जी नहीं।

*__उपाध्यक्षः__ अब मैं संशोधन संख्या 372 पर मत लेता हूं।

संशोधन गिर गया।

*__उपाध्यक्षः__ अब मैं अनुच्छेद 11 को आपके सम्मुख रखता हूं।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 11 विधान का अंग बना दिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय सदस्य:** ''महात्मा गांधी की जय।''

अनुच्छेद 11 क तथा ख

***उपाध्यक्ष:** हमारे पास अभी पांच मिनट और हैं और मैं उनका उपयोग करना चाहता हूं। मि. लारी के नाम से दो नये अनुच्छेद 1-क और ख है। संशोधन संख्या 382।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 11 के पश्चात् निम्नलिखित नये अनुच्छेद प्रविष्ट किये जाये:

'11 क Imprisonment for debt is abolished'

(ऋण के लिए कारावास-दंड का अन्त किया जाता है)

11-ख Capital punishment except for sedition involving use of violence is abolished.' ''

(हिंसात्मक राजद्रोह के अतिरिक्त अन्य अपराधों के लिये मृत्यु-दंड का अन्त किया जाता है।)

श्रीमान्, इन दो खंडों में अंतर है और इसलिये उन पर विचार होते समय और उन्हें स्वीकार करते समय सभा के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उन्हें एक साथ ही स्वीकार करे अथवा अस्वीकार कर दे। सभा इनमें से एक को स्वीकार कर सकती है और दूसरे को अस्वीकार कर सकती है अथवा दोनों को स्वीकार कर सकती है।

***उपाध्यक्ष:** उन्हें आप अलग-अलग क्यों नहीं उपस्थित करते हैं?

***श्री जैड.एच. लारी:** तब में 11-ख को पहले उपस्थित करता हूं। सभा को स्मरण होगा कि अब पिछले अधिवेशन में वह कानून बनाने वाली सभा के रूप में समवेत हुई थी, तो उस समय इसके सम्मुख इस आशय का एक विधेयक था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 53 में संशोधन किया जाये। वह विधेयक

गृह-विभाग की स्थायी परामर्श-समिति के पास भेजा गया था जो 10 मार्च सन् 1948 ई. को सम्मिलित हुई थी। वहां उसने यह विचार किया और इस निर्णय पर पहुंची कि मृत्यु-दंड के इस विषय पर यही सभा विचार करे। इसी पर विधेयक पर विचार-विमर्श स्थगित हो गया। अब मैं उसे इस सभा के सम्मुख उस रूप में रख रहा हूं जिसे स्थायी समिति ने निश्चित किया था।

जहां तक मृत्यु-दंड को समाप्त करने के प्रश्न का सम्बन्ध है, मुझे यह कहना है कि अन्य विभिन्न देशों में उसे समाप्त कर दिया गया है। कम से कम तीन देशों में, जिनमें न्यूजीलैंड का अधिराज्य, रूस, हालैंड, बेल्यिजम और स्विट्जरलैंड सम्मिलित हैं, मृत्यु-दंड को समाप्त कर दिया गया हैं कुछ ही दिन हुये यह प्रश्न कामन्स सभा में उठाया गया था और इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया था। इसमें सन्देह नहीं कि लार्ड्स सभा ने इसका विरोध किया जिसका फल यह हुआ कि कामन्स सभा के सम्मुख मृत्यु-दंड समाप्त करने के लिये जो विधेयक पेश किया गया था उसे अस्वीकार करना पड़ा। परन्तु जहां तक कामन्स सभा का सम्बंध है उसने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है।

मैं सभा के सम्मुख केवल तीन तर्क उपस्थित करूंगा। पहला तो यह है कि किसी भी मनुष्य का निर्णय दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक न्यायाधीश, प्रत्येक न्यायाधिकरण त्रुटि कर सकता है। परन्तु मृत्यु-दंड का निराकरण नहीं हो सकता है। यदि आप यह दंड देने का निश्चय कर लेते हैं तो संबंधित मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यह हो सकता है कि न्यायाधिकरण ने कोई त्रुटि की हो मैं ऐसे मामलों को जानता हूं जिनमें बाद को यह ज्ञात हुआ कि जिस व्यक्ति को दंड दिया गया था वह वास्तव में अपराधी नहीं था। परन्तु फिर यह किसी मनुष्य की शक्ति में नहीं रह गया था कि वह उस त्रुटि को ठीक कर दे। यह एक विचारणीय बात है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि मानव-जीवन की पवित्रता को सभी ने स्वीकार किया है। यदि अन्य मनुष्यों के जीवन की रक्षा करने का कोई अन्य उपाय न हो तो किसी व्यक्ति को मृत्यु-दंड दिया जा सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या मृत्यु-दंड ऐसे अपराधों को रोकने के लिये आवश्यक है जिनके कारण मनुष्यों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि कम से कम तीस देशों ने यह निर्णय किया है कि मृत्यु-दंड की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है और पिछले दस-बीस वर्षों से उनके यहां यह दंड नहीं

[श्री जैड.एच. लारी]

दिया जाता रहा है परन्तु इससे अपराधों में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। इसलिये इन सभी देशों का अनुभव इस ओर संकेत करता है कि बिना इस दंड का आश्रय लिये भी आप देश का शासन चला सकते हैं। सभा के लिये यह दूसरी विचारणीय बात है।

तीसरी विचारणीय बात यह है कि यह दंड वास्तव में हृदय विदारक और पाशविक है और वर्तमान युग की भावनाओं के अनुरूप नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि यदि हमने इस मृत्यु-दंड को समाप्त कर दिया तो इससे देश का और देशवासियों का हित ही होगा। कई दशाब्दी पहले डिकेन्स ने यह कहा था कि वास्तव में इस दंड से लोगों के उस वर्ग को प्रोत्साहन मिलता है, जो हत्या करने पर तुला रहता है क्योंकि इससे वह एक प्रकार के बलिदान का अनुभव करता है। इसका सम्बन्ध अपराधियों के केवल उस वर्ग से है जो जानबूझ कर किसी उद्देश्य से हत्या करते हैं। जो लोग किसी अवसर-विशेष पर उत्तेजनावश होकर हत्या कर डालते हैं, मेरा यह निवेदन है कि उन्हें आजन्म कारावास का दंड देकर इससे अच्छी प्रकार दंडित किया जा सकता है क्योंकि वे कई वर्षों तक जीवित रहेंगे और अपने कार्यों के लिये पश्चाताप करेंगे। सम्भव है इससे वे सुधर जायें।

अन्त में मेरा यह निवेदन है कि किसी दंड का सुधार का अंग ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसी की ओर मुख्यत: ध्यान देना चाहिये।

इन्हीं सब विचारों को अर्थात् मनुष्य के निर्णय में त्रुटि की सम्भावना, मनुष्य-जीवन की पवित्रता और दंड के उद्देश्य को ध्यान में रख कर हमें मृत्यु-दंड को समाप्त करने के पक्ष में अपना मत देना चाहिये।

मैंने एक अपवाद रखा है जो उस स्थिति से संबंध रखता है जिससे राज्य संकट में पड़ जाये, स्वभावत: जब राज्य का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाये और अनेक लोगों के प्राणघात की आशंका हो तो यह कहा जा सकता है कि हमें कोई बात उठा न रखनी चाहिये और लोगों को संकट में न डालना चाहिये। मेरा तो यह कहना है कि ऐसा समय आयेगा जब इस अपवाद की भी आवश्यकता न रह जायेगी। परन्तु इस अनुच्छेद को विधान में स्थान देते हुये हमें इस अपवाद को भी स्वीकार कर लेना चाहिये, क्योंकि इस देश की संसद को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह दो-तीन वर्षों में आगे कदम बढ़ाये और मृत्यु-दंड को पूर्णतया समाप्त कर दे।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ तब क्या आप 11-क को कल उपस्थित करेंगे?

*__श्री जैड.एच. लारीः__ जी नहीं, मैं उसे उपस्थित नहीं करूंगा।

*__उपाध्यक्षः__ सभा कल प्रातः साढ़े नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् विधान-परिषद् मंगलवार, ता. 30 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः साढ़े नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VII.16.48
350

अंक 7
संख्या 16

मंगलवार
30 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर.. 999
2. विधान का मसौदा-(*जारी*) 999-1082
[नया अनुच्छेद 11-बी तथा अनुच्छेद 10 और 12 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 30 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी): की अध्यक्षता में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

माननीय श्री कृष्ण बल्लभ सहाय (बिहार : जनरल)

विधान का मसौदा–(*जारी*)
नवीन अनुच्छेद 11-बी

उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी): अब हम संशोधन नं. 382 पुर पुनः विचार प्रारंभ करते हैं। श्री अमिय कुमार घोष अब इस पर अपना मत व्यक्त करेंगे।

श्री अमिय कुमार घोष (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जो मसला हमारे सामने पेश है उस पर मैं कोई लम्बी वक्तृता नहीं देना चाहता और न उस सिद्धान्त का ही विरोध करना चाहता हूं जो मेरे मित्र श्री लारी के संशोधन में सन्निहित है जिसे कि कल उन्होंने यहां पेश किया है। किन्तु इसे विधान में रखने का मैं अवश्य विरोध करता हूं, श्रीमान्। विधान में ऐसे खंड को स्थान देकर हम सदा के लिए राज्य के हाथ पांव बांध देंगे और आवश्यकता होने पर भी वह ऐसा दंड नहीं दे सकेगा।

यह सच है, श्रीमान्, कि यह दंड बड़ा ही अमानुषिक है, यह भी सच है कि न्यायाधीश इस सम्बन्ध में गलती कर सकते हैं जिससे हो सकता है कि निर्दोष व्यक्ति भी फांसी पर लटका दिये जायें। पर साथ ही हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि समाज में केवल अच्छे ही लोग नहीं है। उसमें बुरे लोग भी हैं और इस प्रयोजन के लिए कि ये दुष्ट, समाज के अधिकारों को कुचलें नहीं, समाज को त्रास न दें, राज्य के लिये यह आवश्यक हो जा सकता है समाज को त्रस्त करने वाले ऐसे दुष्टों को ऐसा दंड दे।

मेरा यह ख्याल जरूर है कि जब लोगों में चेतना आ जाये, जब समाज विकसित हो जाये तब राज्य ऐसे दंडों के सम्बन्ध में अपनी नीति पर पुनर्विचार करे। किन्तु

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अमिय कुमार घोष]

विधान में इन बातों का समावेश न होना चाहिए। उसके लिए तो हमें भारतीय दंड विधि-संहिता में सुधार करना होगा जिसमें भिन्न-भिन्न अपराधों के सम्बन्ध में ऐसे दंडों की व्यवस्था दी गई है। अभी हम एक परिवर्तन के काल से गुजर रहे हैं। हमारे सामने अनेक गम्भीर समस्यायें हैं हमारे सामने रोज भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियां उत्पन्न होती हैं इसलिए कभी-कभी राज्य के लिए यह आवश्यक हो जा सकता है कि ऐसे अपराधों के लिए, जिनसे कि राज्य और समाज खतरे में पड़ जाये, उसे गम्भीर दंड देने पड़े। इसलिए सैद्धांतिक दृष्टि से तो मैं अवश्य इस बात से सहमत हूं, श्रीमान्, कि मृत्यृ-दंड उठा दिया जाना चाहिये, पर विधान में इस आशय की व्यवस्था रखना और इस तरह सदा के लिये राज्य को बांध देना ठीक नहीं है। इसके लिए हमें भारतीय दंड विधि-संहिता में संशोधन करना चाहिए या उन कानूनों में सुधार करना चाहिए, जिनमें ऐसे दंड की व्यवस्था हैं जैसा कि मैं बता चुका हूं, हो सकता है कि राज्य के लिए परिस्थितिवश ऐसा दंड लगाना आवश्यक हो जाये। पर अगर आप विधान में इस तरह का खंड रख देते हैं तो विधान में संशोधन किये बिना राज्य ऐसा दंड दे ही नहीं सकता और विधान में संशोधन करना जरा कठिन काम है।

ऐसी हालतों में श्री लारी द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं विरोध करता हूं।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, श्री लारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसे उन्होंने दयाभाव के आधार पर तथा प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर उपस्थित किया है। मृत्यु-दंड को उठा देने का प्रश्न विवादास्पद है और मेरा यहां श्री लारी से मतभेद है। उस समस्या पर हमें दो दृष्टियों से विचार करना होगा। एक तो अपराधी के दृष्टिकोण से इस पर हमें विचार करना होगा और दूसरे राज्य के दृष्टिकोण से मैं ऐसा समझता था कि अपराधी मृत्यु-दंड के बजाय आजीवन कारावास को ही पसन्द करेगा पर अभी कुछ दिन पूर्व मुझे बर्नार्ड शा का एक नाटक पढ़ने का संयोग मिला। नाटक बहुत ही अच्छा था जिसमें फ्रांस की एक प्रसिद्ध वीरांगना का चरित्र-चित्रण किया गया था। वह वीरांगना आजीवन कारावास के बजाय यह चाहती थी कि अग्नि की आहुति देकर उसका

शरीरांत किया जाये। लेखक ने उसके इस विचार का बड़ी खूबी से चित्रण किया है और इस नाटक के पढ़ लेने पर मुझे अपनी यह धारणा बदल देनी पड़ी कि अपराधी मृत्यु के बजाय यही पसंद करेगा कि उसे आजीवन कारावास की शून्य चहारदीवारी में एकाकी रहने दिया जाये, जहां उसे समाज-संपर्क की कोई गुंजाइश न हो। जीवन भर जेल में एकाकी मृतवत् पड़े रहने के बदले अपराधी यही चाहेगा कि वह दुनिया से ही कूच कर जाये तो अच्छा है।

राज्य का दृष्टिकोण यह है कि जिस व्यक्ति को और मनुष्यों के जीवन के प्रति कोई ममता नहीं, कोई दयाभाव नहीं है, उसके जीवन के प्रति राज्य को भी कोई दयाभाव न होना चाहिए। समाज केवल सुधार के बल पर ही नहीं टिका है बल्कि इस कारण भी कि लोगों में भय की स्वाभाविक प्रवृत्ति वर्तमान है। केवल अपराधियों के सुधार का ख्याल रखा जाये और अन्य बातों का नहीं, यह चल नहीं सकता और कभी चला नहीं है। अगर हर मानव-हत्यारे को इस बात का निश्चय हो जाये कि उसकी जान पर कोई आंच न आयेगी और उसे केवल कुछ वर्षों के लिए कारावास में बन्द ही रहना पड़ेगा, तो चाहे कितना भी हतोत्साहित करने वाला कारावास-दंड क्यों न हो उसका असर जाता रहेगा। आज जेलों में आमतौर पर यही होता है कि आजीवन कारावास का दंड पाया हुआ अपराधी सात, साढ़े सात साल के अन्दर रिहा हो जाता है क्योंकि उसे जब तब छूट मिला करती है जिससे उसकी कैद की मियाद बहुत कम हो जाती है। इसलिए एक हत्यारे को अगर इस बात का निश्चय हो जाये कि सात, साढ़े सात साल के अन्दर, जैसी भी दशा हो, उसके छूट जाने की आशा है तो प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिशोध के लिये अपना उपाय काम में लाने का उसका उपाय चाहे जो भी हो बढ़ावा मिलेगा। उदाहरण के लिए आप गोडसे की ही घटना लीजिए।

***उपाध्यक्ष:** इस विशेष व्यक्ति का यहां कोई उल्लेख नहीं होना चाहिये।

***श्री के. हनुमन्थय्या:** अगर कोई आदमी एक महत्त्वपूर्ण या महान् व्यक्ति की हत्या का सहारा लेता है और इस बात का उसे निश्चय हो जाता है कि सात या आठ साल के अन्दर वह छूट जायेगा तो उस कुकृत्य की पुनरावृत्ति करने में वह जरा भी द्विधा बोध न करेगा। और आज जो हालत हैं, उसमें मृत्यु-दंड को उठाना, राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से तथा समाज की स्थिरता की दृष्टि से बहुत ही बुद्धिहीनता का काम होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): इस संशोधन को मैं नहीं स्वीकार करता हूं।

उपाध्यक्ष: अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 11 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

'11-B. Capital punishment except for sedition involving use of violence is abolished.' "

(सिवाय राजद्रोह के जिसमें हिंसा प्रयुक्त होती हो और अपराधों के लिए मृत्यु-दंड का अन्त किया जाता है।)

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 10

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 10 को ले सकते हैं सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 10 को विधान का अंग समझा जाये।"

अब मैं संशोधनों को देखता हूं। उसके बाद हम विचार कर सकते हैं।

संशोधन नं. 326 केवल शाब्दिक है और इसकी अनुमति मैं नहीं देता हूं।

संशोधन नं. 327 श्री ताहिर का है और इस पर कुछ सदस्यों ने यह आपत्ति की है कि यह बोधगम्य नहीं है। शायद श्री ताहिर इसका समाधान करेंगे।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 10 के खंड (1) में 'of employment' की जगह 'acquisition' शब्द रखा जाये।'+

+नोट: मूल अनुच्छेद 10 (1) अंग्रेजी में यों है:

"There shall be equality of opportunity for all citizens in matters of employment under the State."

इस सम्बन्ध में मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देना चाहता हूं। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यहां दो पहलू हैं। एक तो नियुक्ति का और दूसरा अवाप्ति का। नियुक्ति का उल्लेख पहले ही हो चुका है। इसलिए मैं चाहता हूं कि यहां अवाप्ति को जोड़ दिया जाये। मेरा कहना इतना ही है।

(संशोधन नं. 328 और 329 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 330 और 331 दोनों ही शाब्दिक हैं, इसलिए उनको पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

(संशोधन नं. 332 नहीं पेश किया गया।)

संशोधन नं. 333, 335 तथा 337 (इसका पहला अंश) एक ही है। संशोधन नं. 337 के प्रथम भाग को पेश करने की मैं अनुमति दे सकता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान, कि:

+''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'on grounds only' की जगह 'on grounds' शब्द रखे जाये।''

असल में यह प्रस्ताव केवल ''only'' शब्द को हटाने के लिए रखा गया है जो अनावश्यक है और कुछ कठिनाई पैदा करता है। कई और सदस्यों ने भी इसी कठिनाई का अनुभव किया है जैसा कि इसी आशय के अन्य कई आये हुए संशोधनों से स्पष्ट है।

***उपाध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है नं. 334 का।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2), (3) और (4) हटा दिये जायें।''

+नोट: मूल अनुच्छेद 10 (2) का मूल रूप यह है:

''No Citizen shall, on grounds only of religion, race, caste sex, descent, place of birth or any of them, be ineligible for any office under the State.''

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इसको लेकर मुझे कोई लम्बा भाषण देने की जरुरत नहीं है। मेरी समझ से खंड (1) में सभी बातें आ जाती हैं और खंड (2) तो निश्चित रूप से खंड (1) के अंतर्गत आ जाता है। और खंड (3), जिसमें पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों के सम्बन्ध में आरक्षण (reservation) का उल्लेख किया गया है, वस्तुत: अनावश्यक है क्योंकि इससे मन्दता तथा अक्षमता के लिए (backwardness and inefficiency) विशेषाधिकार देकर एक प्रकार से आप इन दुर्गुणों को प्रश्रय देते हैं काम-धाम, खाना, कपड़ा, वासस्थान आदि चीजों को पाने का सबको अधिकार है पर किसी भी नागरिक को मूलाधिकार के रूप में यह अधिकार नहीं प्राप्त है कि राजकीय नौकरियों का कुछ एक भाग विशेष उसे मिले ही। राज्य की नौकरियों में तो नियुक्तियां केवल योग्यता के आधार पर ही होनी चाहिए। यह मूलाधिकार कभी नहीं माना जा सकता। अगर हम ऐसे अधिकार को स्वीकार कर लेते हैं तो यह उदारता कही जा सकती है, पर ऐसी उदारता से तो उन्हीं लोगों का अहित होगा जिनके पक्ष में यह बरती जायेगी। खंड (4) को मैं इसलिए अनावश्यक समझता हूं कि जब हमारा राज्य असाम्प्रदायिक राज्य बनने जा रहा है तो धार्मिक संस्थानों से इसे कोई सम्पर्क ही नहीं रखना चाहिए और राज्य को किसी भी धार्मिक संस्था के प्रबंध की चिन्ता ही न करनी चाहिए। इसलिए उन धार्मिक संस्थाओं के सम्बन्ध में, जो कि राज्य की देख-भाल के बाहर हैं, समिति की नियुक्ति में आरक्षण की बात ही हमें न सोचनी चाहिए। इन कारणों से खंड (2), (3) तथा (4) को मैं अनावश्यक समझता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 336 और 341 एक ही आशय के हैं। 336 को पेश करने को अनुमति मैं दे सकता हूं।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: मैं प्रस्ताव करता हूं कि

"अनुच्छेद 10 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(2) Every citizen shall be eligible for office under the State irrespective of his religion, caste, sex, descent or place of birth.' "

(धर्म, जाति, लिंग, वंश अथवा जन्मस्थान सम्बन्धी किसी भेद-भाव के बिना, राज्याधीन पद के लिए प्रत्येक नागरिक पात्र होगा।)

''the State'' शब्द को सभा रखना चाहती है इसलिए अपने संशोधन में मैंने थोड़ा परिवर्तन कर दिया है।

इस संशोधन को प्रस्तावित करने का एकमात्र कारण यही है कि इसका वाक्-विन्यास अधिक स्पष्ट है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): संशोधन नं. 341 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** श्री ताहिर अब अपने संशोधन नं. 338 का दूसरा हिस्सा पेश कर सकते हैं। पहला हिस्सा पेश करने की अनुमति इसलिए नहीं दे रहा हूं कि वह केवल शाब्दिक है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'for any office' शब्दों के बाद 'or employment' शब्द रखे जायें।''

खंड का संशोधित रूप यह होगा।

''(2) No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, descent, place of birth or any of them be ineligible for any office or employment under the State.''

(कोई नागरिक केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर, राज्याधीन किसी पद या नियुक्ति के लिए अपात्र न होगा।)

यह तो सीधी और साफ बात है कि जहां तक 'पद' का सम्बन्ध है, यह खंड बिल्कुल सही है किन्तु नियुक्तियों के सम्बन्ध में, जिसके अन्दर, मेरी समझ से अन्यत्र की नियुक्तियां भी आ जाती है, यहां कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए, मैं समझता हूं कि 'office' शब्द के बाद 'or employment' का रखना बहुत जरूरी है। आशा है प्रस्तावक महोदय इसे स्वीकार करेंगे।

*__उपाध्यक्षः__ श्री अनन्तशयनम् आयंगर अब अपना संशोधन नं. 342 पेश कर सकते हैं।

(संशोधन नं. 342 नहीं पेश किया गया)

*__उपाध्यक्षः__ अब प्रो. के.टी. शाह संशोधन नं. 339 पेश कर सकते हैं।

*__प्रो. के.टी. शाह__ (बिहार : जनरल): मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'place of birth' शब्दों के बाद 'in India' शब्द जोड़े जायें।

खंड का संशोधित रूप यह होगा:

''No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, descent, place of birth in India, or any of them be ineligible for any office under the State.''

(कोई नागरिक केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, भारतीय जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर, राज्याधीन पद के लिये अपात्र न होगा।)

इस संशोधन को मैं यह बताने के लिये पेश कर रहा हूं कि यह देश इतना विशाल है कि यहां की ही आबादी से हमें उन सभी गुणों से सम्पन्न पर्याप्त लोग मिल जायेंगे जो किसी भी दायित्व और विश्वास के पद को सुचारू रूप से निभाने के लिये आवश्यक हैं अन्य उपनिवेशों और देशों ने अपने देशों में, नियुक्तियों के सम्बन्ध में आरक्षण की अलिखित व्यवस्था कर रखी है। कहने का अभिप्राय यह है कि पहले वह अपने ही नागरिकों को पद देते हैं, उनकी नियुक्ति करते हैं। इस सम्बन्ध में कई देशों और उपनिवेशों का उदाहरण हमारे सामने है और ऐसी व्यवस्था करके हम कोई नई बात नहीं कर रहे हैं। इस खंड में अगर आप ''in India'' शब्द रखते हैं तो इससे यह आवश्यक नहीं है कि जो भारत में न उत्पन्न हुए हों उनके विरुद्ध भेदभाव बरता जायेगा। केवल इतना ही व्यक्त करने के लिये ये शब्द रखे जा रहे हैं कि भारत में किसी का जन्मस्थान कहीं भी हो, उसके आधार पर उसकी नियुक्ति में कोई भेदभाव न बरता जायेगा। मैं इसे न केवल एक तर्क-संगत सुझाव ही समझता हूं बल्कि इसे मैं बहुत आवश्यक

मानता हूं। थोड़े अरसे के अन्दर हमने जो अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है और इससे एक प्रभाव जो पड़ा है वह हमें कामनवेल्थ में शामिल होने और उन देशों के साथ बंधने पर जोर दे रहा है और पता नहीं हम कैसे और कहां पहुंचेंगे। व्यक्तिगत रूप से मेरा मत यह है कि इस प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था केवल इसी अभिप्राय से नहीं की जा रही है कि दुर्भावना पैदा करने वाले ऐसे भेदभाव के सम्बन्ध में न्याय बरता जाये, बल्कि यह व्यवस्था इस कारण से भी की जा रही है कि हमारी रक्षा, विकास एवं समुन्नति के लिये जो कुछ आवश्यक है उसकी प्राप्ति हमारे ही बच्चे, इस देश के ही नर-नारी कर सकते हैं। इसलिये इस देश में जो भी पद खाली हो या जो भी नियुक्ति करनी हो उसके लिये इस देशवासी का ही पहले हक है।

यह बताना आवश्यक है, श्रीमान्, कि कामनवेल्थ के कई भागों में, जैसे कि दक्षिणी अफ्रीका में ही, हमारे नागरिकों के, राष्ट्रजनों के विरुद्ध बड़ा ही भेदभाव बरता गया है और बड़े ही निन्दनीय एवं लज्जास्पद ढंग से। कामनवेल्थ में, जो कि वहां के लोग ऐसा कहते नहीं हैं और न कोई खास कानून बनाकर ही इसे व्यक्त करते हैं, पर वहां हर जगह ''ह्वाइट आस्ट्रेलिया'' या ''ह्वाइट कनाडा'' की नीति बरतते हैं जिसके द्वारा वह यही व्यक्त करते हैं कि अश्वेत लोगों की वहां जरूरत नहीं है और अगर वे वहां जायेंगे तो उन्हें कई अयोग्यताओं का शिकार होना पड़ेगा जिससे उनको सदा के लिये दिक्कत होगी। जब आज भी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर भी हमें यही दुःखद अनुभव मिल रहा है तो मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम विधान में क्यों न यह व्यवस्था रख दें कि विश्वास और दायित्व के जो भी पद खाली होंगे उन पर पहले इस देश के नागरिकों को ही नियुक्त किया जायेगा।

जैसा कि मैंने शुरू में कहा है, इसका यह मतलब नहीं है कि अन्य देशीय नागरिकों के विरुद्ध हम खुले तौर पर भेदभाव बरतेंगे, यद्यपि विश्व के प्रमुख, देशों के प्रचलित विधानों में इस तरह के अनेक उदाहरण वर्तमान हैं। अगर हम ऐसा करते भी हैं तो यह कोई नई बात नहीं होगी। अपने इतिहास को देखते हुए, उन तकलीफों को देखते हुए जो हमने झेली हैं और इस बात को देखते हुए कि

[प्रो. के.टी. शाह]

सरकारी नौकरियों की सभी शाखाओं से विदेशियों ने हमारा निकासन दिया—उन विदेशियों ने जो इन सभी महकमों का शासन करते थे, जो हमारी समुन्नति सम्बन्धी आवश्यकताओं को गलत रूप में सदा हमारे सामने रखते थे। यह न केवल अनाश्चर्यप्रद ही होगा बल्कि अनुचित भी होगा और कम से कम मेरे लिये तो अवश्य ही, अगर विधान में इस आशय की एक स्पष्ट और खुली व्यवस्था रख दी जाये कि जिस जाति के लोगों ने यहां अपने पदों का दुरुपयोग किया, उससे अनुचित रूप से लाभ उठाया, उसके नागरिकों को यहां किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जायेगा।

किन्तु इस सम्बन्ध में हमें विश्वस्त अधिकारियों ने समझाया है कि ''बीती ताहि बिसारि दे'' का हम अनुगमन करें और अपने इस दु:खद अतीत को भूल जायें। इन दु:खद स्मृतियों को पुनर्जागृत करने के लिये मैं दायी नहीं होना चाहता, अगर आप इन्हें भूल सकें तो भूल जाये। इसीलिये तो मैं यह स्पष्ट आदेश यहां रखवाना चाहता हूं कि केवल भारत में जन्मे व्यक्ति और इस देश के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्ति ही यहां दायित्व और विश्वास के पदों पर नियुक्त किये जा सकेंगे। मैं इसे प्रकारान्तर से निषेधात्मक रूप में नहीं रखना चाहता हूं, अर्थात् यह नहीं कहूंगा कि भारत के बाहर जन्मा कोई व्यक्ति यहां कोई विश्वास, दायित्व या लाभ अथवा अधिकार का पद न धारण कर सकेगा चाहे किसी को अतीत के अनुभव के आधार पर यह कितना ही उचित क्यों न प्रतीत हो। अपने अतीतकालीन दु:खद अनुभव के बावजूद भी हम यह उदारता दिखा सकते हैं, किन्तु मैं यह जरूर सोचता हूं कि जिस आरक्षण का मैं सुझाव दे रहा हूं वह भी बहुत जरूरी है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस आशय की व्यवस्था विधान में जरूरी है कि विश्वास एवं दायित्व के जो भी पद होंगे वह केवल हमारे नागरिकों के लिए ही संरक्षित रखे जायेंगे। ऐसे लोगों के विरुद्ध जिन्होंने अपने अधिकार क्षेत्र में हमारे राष्ट्र जनों के विरुद्ध भेदभाव बरता है, बाध्य होकर हमें अभी हाल में इसी अधिकार का प्रयोग करना पड़ा है। अगर विधान में यही व्यवस्था रखी जाती है और ऐसा भेदभाव बरतने का अधिकार हमें नहीं रहता है जिसका कि मैं सुझाव दे रहा हूं, तो इसके अनुसार आगे ऐसा करने में हमें बड़ी

कठिनाई होगी। इसलिये मेरा यह मत है कि यह सुझाव अनुचित या नियम विरुद्ध नहीं है कि इस देश की नौकरियां इस देश के नागरिकों के लिये ही संरक्षित रखी जायें। आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** जब इस पर विचार-विमर्श होने लगे तो आप अपनी बात कह सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** सूची नं. 2 के संशोधन नं. 77 पर जब आपने पुकार की उस समय मैं सुन न सका यह भी अनुच्छेद 10 के ही सम्बन्ध में है। आपकी अनुमति से मैं इसे उपस्थित करता हूं। मेरा प्रस्ताव है किः

''संशोधन सूची के संशोधन नं. 338 के सम्बन्ध में...''

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। क्या इस समय संशोधन पर विचार किया जा रहा है अथवा अनुच्छेद और संशोधनों पर?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं एक संशोधन पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** बात यह है कि जब मैंने श्री आयंगर का नाम पुकारा कि वह अपना संशोधन पेश करें, उस समय उनका ध्यान कहीं और था और यहां क्या हो रहा है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं था। अब वह अपना संशोधन पेश करना चाहते हैं। क्यों यह ठीक है न?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** हां, महोदय, यही बात है।

***उपाध्यक्षः** आप को खासतौर पर रियायत दी जाती है और आप इसे पेश कर सकते हैं। आशा है सभा को मेरी यह बात स्वीकार है।

***माननीय सदस्यगणः** अवश्य।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** आपकी अनुमति से, श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"That with reference to amendment No. 338 of the List of Amendments–

(i) in clause (1) of article 10, for the words 'in matters of employment' the words 'in matters relating to employment or appointment to office' be substituted; and

(ii) in clause (2) of article 10, after the words 'ineligible for any' the words 'employment or' be inserted."

[संशोधन सूची के संशोधन नं. 338 के सम्बन्ध में:

(क) अनुच्छेद 10 के खंड (1) में "नियुक्ति के विषय में" शब्दों की जगह "सेवायुक्ति अथवा पद पर नियुक्ति के विषय में" शब्द रखे जाये।

(ख) अनुच्छेद 10 के खंड (2) में "किसी पद के लिए" शब्दों के बाद "किसी पद या नियुक्ति के लिये" शब्द रखे जाये।

यह केवल इसी अभिप्राय से रखा जा रहा है कि बात स्पष्ट हो जाये और शब्द 'पद' भी इसमें आ जाये जिससे कि यह खंड और भी व्यापक अर्थ व्यक्त कर सके। इसके सम्बन्ध में और कुछ कहने की जरुरत नहीं है। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'birth' शब्द के बाद 'or residence' शब्द रखे जायें।"

ऐसा होने पर खंड का यह रूप होगा:

"No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, descent, place of birth or residence, or any of them, be ineligible for any office under the State."

(कोई नागरिक केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, जन्म-स्थान अथवा वासस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर, राज्याधीन किसी पद के लिये अपात्र न होगा।)

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि देश के प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह जहां भी रहता हो, राज्याधीन नियुक्तियों के लिए समान अवसर मिलना चाहिये। प्रत्येक नागरिक को, चाहे उसका वासस्थान कहीं भी हो, देश में कहीं जो भी राज्याधीन सेवायुक्ति हो, उसके लिए चुने जाने की पात्रता प्राप्त होनी चाहिए। जब समस्त देश के लिए एक नागरिकता है तो देश के किसी भाग में, किसी कोने में जो भी सरकारी नौकरी हो उसके लिए रखे जाने का हर नागरिक को विशेषाधिकार, अनियन्त्रित अधिकार होना चाहिए। यदि संयुक्तप्रान्त में कोई सरकारी नौकरी हो तो बंगाल, मद्रास, बम्बई या मध्यप्रान्त के वासी को भी उस पर नौकर होने का अधिकार होना चाहिये और इसी प्रकार संयुक्तप्रान्त के निवासी को भी देश के अन्य प्रान्त में जो सरकारी नौकरी हो उसके लिए रखे जाने का अधिकार होना चाहिए अगर उस पद के लिए अपेक्षित अन्य योग्यताएं वह रखता है। हर नागरिक के मन में यह भाव उत्पन्न करना चाहिए कि वह समस्त भारत का नागरिक है न कि किसी प्रान्त विशेष का जहां कि वह वास करता है। उसको यह अनुभूति होनी चाहिए कि देश में जहां भी वह जाये उसे सरकारी नौकरी पर नियुक्ति होने के सम्बन्ध में वही अधिकार प्राप्त हैं जो उसे प्रान्त विशेष में प्राप्त हैं। दुर्भाग्यवश कुछ दिनों से हम यह देख रहे हैं कि देश में प्रान्तीयता की भावना बढ़ती जा रही है। "बंगाल बंगालियों के लिये है", "मद्रास मद्रासियों के लिये है" तथा अन्य ऐसे ही और नारे हमें रह-रह कर सुनाई देते हैं। ये आवाजें देश की एकता और अखंडता के लिये हानिकर हैं। हम देखते हैं कि कई प्रान्तीय सरकारों ने यह नियम बना रखा है कि प्रान्त की नौकरियों में वही लोग रखे जायेंगे जो उस प्रान्त में कई वर्षों से रहते आ रहे हैं। हमें यह बताया गया है कि हमारे एक

[श्री जसपतराय कपूर]

प्रान्त में तो ऐसा नियम बना दिया है कि वहां सरकारी नौकरी में वही रखे जायेंगे जो 52 वर्ष तक वहां रह चुके हों। मैं नहीं जानता कि यह कहां तक सच है। यह समाचार जो मुझे दिया गया है सम्भवतः उसमें कुछ अतिशयोक्ति है, पर यह सच बात है कि प्रान्त के लोग अपनी सरकारों को ऐसे नियम बनाने के लिये बाध्य कर रहे हैं, ताकि दूसरे प्रान्त के निवासियों को वहां की सरकारी नौकरियों में घुसने से रोका जा सके। अगर कोई प्रान्तीय सरकार ऐसा नियम बनाये कि वहां की सरकारी नौकरियों में नियुक्त किये जाने का वही पात्र होगा जिसे वहां की भाषा का पर्याप्त ज्ञान हो तो यह बात तो आसानी से समझ में आ सकती है। अगर यह नियम बनाया जाता है कि प्रान्त की सरकारी नौकरियों में वही रखे जायेंगे जिन्हें वहां की दशा का पर्याप्त ज्ञान है तो यह बात भी मैं समझ सकता हूं।

***उपाध्यक्षः** जो सदस्य बोलने के लिये खड़े हैं उनसे ज्यादा तो बैठे हुए सदस्यगण ही आपस में बोल रहे हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं यह कह रहा था, श्रीमान्, कि अगर इस ख्याल से कि सरकारी काम सुचारू रूप से चल सके। प्रान्तीय सरकारें, यह नियम बना लें कि प्रान्त की सरकारी नौकरियों में वही नियुक्त किये जा सकें, जिन्हें प्रान्त की भाषा का पर्याप्त ज्ञान है तो यह बात समझ में आ सकती है। इसके लिए स्थानीय दशा का ज्ञान भी अगर आवश्यक ठहरा दिया जाये तो इसे समझ सकता हूं। ये सारी शर्तें तो समझ में आ सकती है। क्योंकि सरकारी काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए ये जरूरी है। किन्तु यह नियम रखना कि प्रान्त की सरकारी नौकरियों में नियुक्त किये जाने का वही पात्र होगा जो वहां 52 वर्ष रह चुका है, बिल्कुल बुद्धि-शून्य है। 52 वर्ष का आदमी अगर नियुक्त हो तो वह केवल 3 साल ही और तो काम कर सकेगा क्योंकि इतने में उसकी मियाद पूरी हो जायेगी। मेरा कहना यह है, श्रीमान्, इस प्रवृत्ति का हमें कठोरता से शमन करना होगा। इसलिए मैं कहूंगा कि सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ऐसा प्रतिबंध नहीं रखना चाहिए जब तक कि सुचारू रूप से काम करने के लिए ही यह आवश्यक न हो। देश को एक रखना ही होगा चाहे इसके लिए हमें जो कीमत चुकानी पड़े। देश की अखंडता की रक्षा हमें हर मूल्य देकर करनी ही

होगी। राष्ट्र की एकता को स्थायी रखने के लिए हम जो भी कर सकते हैं, हमें करना चाहिए और मैंने जो संशोधन रखा है वह उसी उद्देश्य से रखा है और इस दिशा में यह संशोधन हमारा एक कदम है। मैं सभा से सिफारिश करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 340 पर दो संशोधन आये हैं पहला है नं. 81 जो सूची 3 में है।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) के सम्बन्ध में संशोधन सूची में जो 340 नं. का संशोधन है उसमें 'or residence' शब्दों की जगह, जिन्हें रखने का वहां प्रस्ताव है, 'residence' शब्द रखा जाये।"

यह संशोधन केवल शाब्दिक है क्योंकि आगे चल कर 340 नं. के संशोधन में ''or any of them'' शब्द आते हैं। खंड की सम्पूर्ण भाषा की एकरूपता के लिए यह आवश्यक है; इसलिए मैं इसे पेश करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या शाब्दिक संशोधनों पर अब रोक नहीं है?

***श्री के.एम. मुंशी:** यह निर्णय देना कि प्रस्तुत संशोधन उस श्रेणी में आता है या नहीं, अध्यक्ष का काम है।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने जो सुझाव दिया है उसके लिए मैं अनुग्रहीत हूं और उस पर विचार किया जायेगा। श्री मुंशी, आप अपनी बात कहिए।

***श्री के.एम. मुंशी:** बस मुझे इतना ही कहना है। खंड में ''residence'' शब्द के पहले जो ''or'' शब्द है उसे हटाने के लिए ही यह रख रहा हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल) : मैं जो संशोधन पेश करने जा रहा हूं वह यों है:

''संशोधन नं. 340 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 10 के खंड (2) के पश्चात् निम्नलिखित नया खंड जोड़ा जाये:

''(2 a) Nothing in this article shall prevent Parliament from making any law prescribing in regard to a class or classes of employment

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

or appointment to an officer unde any State for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory, any requirement as to residence within that State prior to such employment or appointment.''

[(2 क) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को ऐसा कानून बनाने में कोई रुकावट न होगी जो सेवायुक्तियों के किसी वर्ग या वर्गों के सम्बन्ध में अथवा चालू समय के लिए प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवायुक्ति या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो।]

संशोधन में जो बातें रखी गई हैं, उसमें जो शब्द रखे गये हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका उद्देश्य क्या है। अनुच्छेद के प्रथम भाग में उस आशय का एक आम नियम रखा गया है कि राज्याधीन नियुक्तियों या नौकरियों के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त रहेगा और इस व्यवस्था द्वारा यह बात बुनियादी तौर पर स्वीकार की गई है कि समस्त भारतवर्ष में एक भारतीय नागरिकता ही रहेगी। अनुच्छेद 10 के दूसरे पैराग्राफ में यही बात उलट कर निषेधात्मक रूप में कही गई है, अर्थात् यह कि कोई नागरिक धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, वंश या जन्म स्थान आदि के आधार पर राज्याधीन किसी पद के लिए अपात्र न होगा। उसमें बाद के जो दो खंड हैं वे, अनुच्छेद के पहले भाग में जो बुनियादी सिद्धान्त और सामान्य नियम रखे गये हैं, उनके अपवादों को व्यक्त करते हैं। अब प्रस्तुत संशोधन यह कहता है कि राज्याधीन नियुक्तियों के सम्बन्ध में, विशेष कारणों से इस आशय की व्यवस्था का रखना आवश्यक हो सकता है कि राज्य द्वारा राज्य के अन्दर नियुक्त किये जाने के लिए वहां का निवास अपेक्षित है। यही इस संशोधन का अभिप्राय है और बजाय ऐसा करने के कि निवास के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से राज्य जो चाहें नियम निर्धारित करें, ज्यादा अच्छा यह समझा गया कि संसद् (पार्लियामेंट) ही एक व्यापक नियम बना दे जो सभी राज्यों पर समान रूप से लागू हों, खास कर यह देखते हुए कि मूलाधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी मसले के लिए केवल संसद को ही कानून बनाने का अधिकार

है, भिन्न-भिन्न इकाइयों को नहीं ऐसी स्थिति में सभा के विचारार्थ मैं यह संशोधन उसके समक्ष उपस्थित करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान्। माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी से मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां ''any State for the time being specified in the First Schedule'' (इस समय के लिए प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य) शब्द रखे गये हैं, ये क्या प्रथम अनुसूची के चारों भागों के लिये लागू हैं? प्रथम अनुसूची में चार भाग हैं। तीन भागों में तो ''States'' (राज्यों) का उल्लेख है और अन्तिम भाग में अंडमान और निकोबार द्वीपसमूहों के सम्बन्ध में हैं। अनुच्छेद 1 को पहले ही पास कर चुके हैं जिसके खंड (2) में कहा गया है कि ''राज्यों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य अभिप्रेत होंगे।'' मैं उनसे यह जानना चाहता हूं कि ''any State for the time being specified in the First Schedule'' शब्दों में क्या वे सभी राज्य और राज्यक्षेत्र आ जाते हैं जो प्रथम अनुसूची के चारों भागों में वर्णित हैं? अगर ऐसा है तो इस संशोधन की भाषा में कुछ सुधार और परिवर्तन करना होगा। तब इसे यों रखना होगाः ''under any State or territory in the first four Parts I, II, III and IV of the First Schedule'' (प्रथम अनुसूची के प्रथम चार 1, 2, 3 तथा 4 भागों में उल्लिखित किसी राज्य या राज्यक्षेत्र के अधीन) और अगर आप केवल ''State'' शब्द को रखना चाहते हैं तो यह इस प्रकार का होगाः ''under any State specified in Parts I, II, III and IV of the First Schedule.''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह तो स्पष्ट है कि हमने भागों का उल्लेख नहीं किया है। हमने केवल ''First Schedule'' कहा है और इसमें वह सभी राज्य आ जाते हैं जिनका प्रथम अनुसूची में उल्लेख है।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 1 में कहा गया है किः ''राज्यों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2, 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य अभिप्रेत होंगे।'' भाग 4 में जिन प्रदेशों का उल्लेख है वह हमारे विधान के अनुसार राज्य नहीं हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें अन्तर दर्शाने का कोई प्रयास न होना चाहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** अगर मेरी बात का कोई जवाब नहीं है तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** अगर आप प्रथम अनुसूची को ही देखें तो आपको मालूम हो जायेगा कि भाग 1 में उन राज्य-क्षेत्रों का उल्लेख है जो इस विधान के आरम्भ होने वे सद्य-पूर्व गवर्नर के प्रान्तों के नाम से ज्ञात हों। भाग 2 में उन प्रदेशों का उल्लेख है जो इस विधान के आरम्भ होने के सद्य पूर्व चीफ कमिश्नर के प्रान्तों के नाम से ज्ञात हों; जैसे कि दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा आदि प्रान्त। भाग 3 में देशी राज्यों की चर्चा है। ये तीनों प्रकार के प्रदेश अनुच्छेद 1 में 'राज्य' के नाम से उल्लिखित और वर्णित हैं। प्रथम अनुसूची के भाग 4 में अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह हैं। ये राज्य नहीं हैं बल्कि केवल राज्यक्षेत्र हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह राज्य नहीं हैं, यह आप कैसे मान सकते हैं? मेरी समझ में नहीं आता कि आप इस कठिनाई को कैसे दूर कर सकते हैं?

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** अंडमान आदि द्वीपसमूह तो केन्द्र के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत रहेंगे और वे केन्द्रीय अधिकार-क्षेत्र के अन्दर आने वाले भागों में हैं। अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह पर तो यह आवास सम्बन्धी सिद्धान्त लागू नहीं होता। इनके सम्बन्ध में मूल अभिप्राय यह है कि जहां तक इन द्वीपसमूहों का सम्बन्ध है केन्द्र को इनके बारे में पूरा अधिकार होना चाहिए। भाग 1, 2, तथा 3 में उल्लिखित राज्यों का जहां तक सम्बन्ध है उनको यह अधिकार होना ही चाहिए कि अपने यहां की सरकारी नौकरियों पर नियुक्ति के लिये वह यह नियम रख सकें कि वहां का आवास अपेक्षित होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरी समझ से तो यह कहना ठीक होगाः

''under any State or territory comprised in Parts I, II, III and IV of the First Schedule'' या यों कि ''any State specified in Parts I, II and III of the First Schedule''। अन्यथा कठिनाई बनी ही रहेगी।

***उपाध्यक्ष:** मेरा सुझाव है कि हम लोग दूसरे संशोधनों को लें और इस बीच में माननीय सदस्य श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर से मिल कर यह कोशिश करें कि श्री अय्यर उनका मत मान लें। मेरी समझ से हमारी कठिनाई का यही व्यावहारिक समाधान है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरा सुझाव है कि चूंकि यह केवल शाब्दिक संशोधन है, इसे हम मसौदा-समिति पर छोड़ दें।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब दूसरा संशोधन लेता हूं। इस पर अभी हम राय लेने नहीं जा रहे हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'ineligible' शब्द के बाद 'or discriminatory against' शब्द रखे जायें।"

ऐसा तो है नहीं कि केवल नियुक्ति के प्रारम्भ में ही भेद-भाव बरता जा सके, बल्कि नियुक्ति के बाद भी यह भेदभाव बरता जा सकता है कि उसे हमेशा के लिये उसी पद पर रहने दिया जाये, जहां वह शुरू में नियुक्त किया गया था। कहने का मतलब यह है कि तरक्की आदि के सम्बन्ध में भी भेदभाव बरता जा सकता है। नियुक्ति सम्बन्धी अपात्रता में यह सभी बातें नहीं आ सकती है। इसलिये इसे स्पष्ट करने के लिये तथा इसके उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिये 'or discriminatory against'' शब्द रखने आवश्यक है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

(संशोधन नं. 343 नहीं पेश किया गया।)

***श्री दामोदरस्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मेरा यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 10 का खंड (2) हटा दिया जाये।"

इसका कारण यह है कि वह खंड यों देखने में तो बहुत ठीक और तर्कसंगत है पर सैद्धांतिक दृष्टि से यह गलत है। नौकरियों में नियुक्ति या पद के सम्बन्ध में पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में आरक्षण की व्यवस्था रखने का मतलब ही यह है कि न अच्छी हुकूमत रह जायेगी और न शासन-सम्बन्धी कार्य ही दक्षतापूर्वक

[श्री दामोदरस्वरूप सेठ]

चल सकेगा। और फिर ''पिछड़े हुए वर्ग'' की व्याख्या करना भी आसान नहीं है। किसी पिछड़े हुए सम्प्रदाय या वर्ग को परखने की क्या कसौटी होगी, यह भी तय करना कठिन है। अगर यह नया खंड रखा जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि आलोचनाएं होंगी और पक्षपात बढ़ेगा और इन बातों का असाम्प्रदायिक राज्य में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। मेरा यह मतलब नहीं है कि पिछड़े हुए वर्ग को शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता बढ़ाने के लिए तथा जीवन-स्तर ऊंचा करने के लिए जरूरी सुविधाएं और रियायतें न दी जायें मेरा मतलब यही है कि पदों पर उम्मीदवारों को नियुक्त करने का काम पब्लिक सर्विस कमीशन के ही विवेक पर हमें छोड़ देना चाहिए और किसी भी वर्ग को इस आधार पर हमें कोई भी रियायत नहीं देनी चाहिए कि वह दलित वर्ग का व्यक्ति है।

***उपाध्यक्ष:** अब हम 345 से 349 नं. के संशोधनों को लेते हैं। ये सब एक ही आशय के हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): 345 नं. का संशोधन मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** 346 से 349 के संशोधनों में संशोधन नं. 348 को चुनता हूं जो पं. हृदयनाथ कुंजरू के नाम में है।

पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (3) में 'shall prevent the State from making any provision for the reservations' (राज्य को पिछड़े हुए किसी जानपद वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों के आरक्षण के लिए प्रावधान करने में कोई बाधा नहीं होगी) शब्दों की जगह ये शब्द रखे जाये: 'shall, during a period of ten years after the commencement of this Constitution, prevent the State from making any reservation.' ''

इसके स्वीकृत होने पर खंड (3) का रूप यह होगा:

''Nothing in this article shall during a period of ten years after

the commencement of this Constitution, prevent the State from making any reservation of appointments of posts in favour of any backward class of citizens who...etc.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को इस संविधान के प्रारम्भ होने के पश्चात् दस वर्ष की अवधि के अन्दर, पिछड़े हुए जानपद वर्ग के पक्ष में जिनका...नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण (Reservation) के लिए प्रावधान करने में कोई अनुरोध न होगा)

सिद्धान्ततः मैं इसके विरुद्ध नहीं हूं कि उन वर्गों के हितों की रक्षा की जाये जो उस समय बिना मदद के अपनी देख-भाल खुद नहीं कर सकते। किन्तु इस अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उससे कई कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती है। पहली बात तो यह है कि ''पिछड़े हुए'' (backward) शब्द की व्याख्या विधान में कहीं भी नहीं दी गई है। विधान में 301 नं. का एक और अनुच्छेद है जिसमें पिछड़े हुए वर्गों की दशा की जांच करने के लिये एक कमीशन नियुक्त करने की बात कही गई है। किन्तु वहां यह कहा गया है कि जांच केवल उन्हीं वर्गों के सम्बन्ध में की जायेगी जो शिक्षा सम्बन्धी तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। वहां भी उन वर्गों की कोई नामावली नहीं दी गई है जिनके सम्बन्ध में कमीशन जांच करेगा। यह अनुच्छेद तो और भी अनिश्चित रूप रखता है। अमुक वर्ग पिछड़ा हुआ है या नहीं इसके निर्णय का भार न्यायालयों पर नहीं छोड़ना चाहिए। इसलिए यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम 'पिछड़े हुए' की व्याख्या कर दें ताकि भविष्य में इसके अर्थ को लेकर कोई विवाद न खड़ा हों।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात मैं यह कहता हूं। जो सम्प्रदाय जीवन की दौड़ में पीछे हैं उनके आरक्षण की व्यवस्था तो रखी जाये, पर ऐसा करने में क्या यह वांछनीय होगा कि इसके लिए जो विशेष प्रावधान रखे जायें वह अनिश्चितकाल तक लागू रहें? या राज्य तथा पिछड़े हुए वर्ग दोनों के हित में आप यह वांछनीय समझते हैं कि इन वर्गों के आरक्षण के लिये जो विशेष प्रावधान रखे जाये वह एक-एक निश्चित अवधि के लिए ही रखे जाये? अगर यह अनुच्छेद इसी रूप में रखा

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

जाता है और पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण की व्यवस्था रखी जाती है तो हो सकता है कि राज्य यह समझने लग जाये कि उसने यह व्यवस्था करके पिछड़े हुओं के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया है। मैं समझता हूं और मेरा विश्वास है कि यह सभा, अगर इसे अपनी मर्जी पर काम करने दिया जाये तो इस बात से सहमत होगी कि वांछनीय यही है कि ऐसे प्रावधान के प्रवर्त्तन की समय-समय पर जांच करनी चाहिए ताकि हमें यह मालूम हो सके कि राज्य ने इन वर्गों को इनकी वर्तमान दशा से ऊपर उठाने के लिए तथा उन्हें इस योग्य बनाने के लिए कि वह अन्य वर्गों के साथ बराबरी के दर्जे पर मुकाबला कर सकें, यथोचित कार्रवाई की है या नहीं।

इस सम्बन्ध में मेरा तीसरा तर्क यह है, श्रीमान्, कि अल्पसंख्यकों के लिए, जिसमें दलित वर्ग और अनुसूचित जातियां भी अवश्य शामिल होनी चाहिये, विधान-मंडल के स्थानों के सम्बन्ध में जो प्रावधान रखा गया है, वह इस विधान के अनुसार एक सीमित अवधि के लिये है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि इस समय इन वर्गों के लिये इस आशय का प्रावधान बहुत ही आवश्यक है और हर आदमी को यह बात साफ समझ में आती होगी कि विधायी-मंडलों में इनको प्रतिनिधान देना नौकरियों के प्रतिनिधान से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर किसी सम्प्रदाय को विधायी-मंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त है तो समय-समय पर इसके प्रतिनिधि अपनी मांग के सम्बन्ध में वहां आवाज बुलन्द कर सकते हैं और इस बात की कोशिश कर सकते हैं कि नियुक्ति के सम्बन्ध में या अन्य मामलों में जो भी अन्याय उसके साथ हुआ हो उसका सुधार हो जाये। पर अगर विधायी-मंडल में इनका प्रतिनिधान समाप्त कर दिया जाता है तो अन्य मामलों में आप चाहे जो संरक्षण इन्हें दें इनकी अवस्था बड़ी ही असहाय रहेगी। अन्य जो सहायता आप इन्हें देते हैं उसके बन्द कर देने से इनका उतना अहित नहीं होगा जितना कि व्यवस्थापिकाओं में इनके प्रतिनिधान के समाप्त करने से होगा। अब विधान में यह प्रावधान रखा गया है कि अल्पसंख्यकों के लिये, जिसमें दलित और अनुसूचित जातियां भी शामिल हैं और जिसमें कि किसी भी परिभाषा के अनुसार हमें पिछड़े हुए वर्ग को शामिल करना चाहिए। स्थान सम्बन्धी जो संरक्षण

दिया गया है वह दस वर्षों के लिये ही सीमित है। अनुच्छेद 305 यह कहता है कि अल्पसंख्यकों के लिये, उनकी संख्या के आधार पर स्थान सम्बन्धी प्रतिनिधान के लिये जो प्रावधान है वह केवल दस वर्ष तक ही, अधिक नहीं, बिना किसी परिवर्तन के चालू रहेगा। विधान की प्रारम्भिक तिथि से दस वर्ष की अवधि बीतने पर यह प्रावधान समाप्त हो जायेगा, जब तक कि विधान में संशोधन करके इसके प्रवर्त्तन की अवधि को बढ़ाया न जाये। इस हालत में क्या यह वांछनीय न होगा कि इसी प्रकार का एक प्रतिबंध अनुच्छेद 10 के खंड (3) में भी रख दिया जाये? सच तो यह है कि ऐसा प्रतिबंध अनुच्छेद 10 में कहीं अधिक आवश्यक है बमुकाबले उस अनुच्छेद के जिसमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन में नियुक्ति विषयक आरक्षण अल्पंसख्यकों को दिया गया है। दलित-वर्गों की हित-रक्षा की जो योजना है, अगर उसके अनुरूप अनुच्छेद 10(3) को रखना है तो मैं कहूंगा कि यह संशोधन, जो मैंने प्रस्तावित किया है, न केवल वांछनीय है बल्कि बहुत ही आवश्यक है और इसको स्वीकार करना चाहिए।

अब आखिर में मैं यह जानना चाहता हूं, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 10(3) में तथा अनुच्छेद 296 में क्या परस्पर सम्बन्ध है। अनुच्छेद 296 कहता है कि 'संघ के अथवा प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं या पदों के लिए नियुक्तियों में, प्रशासन दक्षता को बनाये रखने का ध्यान रखते हुए सब अल्पसंख्यक समुदायों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा।' अनुच्छेद 10 का खंड (3) उन सभी राज्यों के लिए लागू होता है जो प्रथम अनुसूची में उल्लिखित हैं। अब अनुच्छेद 10(3) में तथा 296 में, जो केवल उन्हीं राज्यों के लिये लागू हैं जो प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित हैं; क्या अन्तर है यह स्पष्ट है। इन दोनों में अन्तर क्या है यह तो स्पष्ट है, पर उन दोनों में सम्बन्ध क्या है यह बिल्कुल ही अस्पष्ट है। अनुच्छेद 296 अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में है। नौकरियों में नियुक्ति को लेकर अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के जो दावे होंगे उनका ध्यान रखा जाये, केवल इस आधार पर कि वे पिछड़े हुए लोग हैं। यद्यपि अनुच्छेद 296 में ''minority'' शब्द का प्रयोग किया गया है और अनुच्छेद 10(3) में ''backward'' शब्द का प्रयोग किया गया है, पर मुझे यही प्रतीत होता है कि देश के साथ इन्साफ करने के लिए संरक्षण

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

हर वर्ग को दिया जा सकता है चाहे उसे आप पिछड़ा हुआ वर्ग कहें या अल्पसंख्यक सम्प्रदाय कहें और वह संरक्षण केवल इस आधार पर दिया जा सकता है कि वह वर्ग पिछड़ा हुआ है और अगर उसकी देखभाल खुद उसी पर छोड़ दी जाती है तो वह अपने हितों की रक्षा न कर पायेगा। इससे प्रकट है कि इन दोनों अनुच्छेदों में परस्पर क्या सम्बन्ध है, इसे स्पष्ट करना जरूरी है, जैसा कि मैंने अभी कहा है। इसके अतिरिक्त मैं यह जानना चाहता हूं अगर अनुच्छेद 10 (3) पास हो जाता है तो क्या भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के वर्गों के लिए पदों या नियुक्तियों के सम्बन्ध में विशेष आरक्षण की मांग करना सम्भव होगा? अनुच्छेद 10(3) के पास हो जाने से हो सकता है कि राज्य के लिए यह सम्भव न हो कि वह अल्पसंख्यकों के लिये नौकरियों में कोई आरक्षण दे सके। पर इससे इन वर्गों को या अन्य सम्प्रदाय के लोगों को क्या यह प्रलोभन न मिलेगा कि वे भी पिछड़ा हुआ होने का दावा करें ताकि अनुच्छेद 10(3) की सुविधा उन्हें भी प्राप्त हो सके। मेरा कथन यह है, श्रीमान्, कि हमें ऐसी पद्धति रखनी चाहिए जिससे विघटनशील प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन न मिले और जिसके अधीन किसी भी वर्ग के लिए यह हितकर न हो कि वह पिछड़ा हुआ होने का दावा करे। इसलिए यह वांछनीय है कि हम संरक्षण सम्बन्धी जो भी प्रावधान रखें, उसके प्रवर्त्तन को सीमित रखने के लिए उसकी एक सीमित अवधि निर्धारित कर दें ताकि विधान-मंडल को समय-समय पर यह मालूम होता जाये कि प्रावधान ने कैसा काम किया है और राज्य ने संरक्षित वर्गों के प्रति किस तरह अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता है, मैं तो यही समझता हूं कि अनुच्छेद 10 व्यर्थ है और इस विधान का जो यह उद्देश्य है कि उन सभी दुखस्थाओं को दूर कर दिया जाये जिनके कारण विशेष संरक्षण देना जरूरी है, उसके अनुरूप यह अनुच्छेद 10 बन नहीं सकता। हम सभी को मालूम है कि अल्पसंख्यक समिति की रिपोर्ट पर जब सभा ने विचार किया था उस समय समूची सभा इस बात के लिए चिन्तित थी कि हर प्रकार के आरक्षणों को यथाशीघ्र समाप्त कर देना चाहिए। यह तो स्वीकार किया गया था कि अभी कुछ समय के लिये यह जरूरी है पर इस बात पर जोर दिया गया था कि अब जो भी आरक्षण देना जरूरी समझा जाये उसकी अल्पकालिक व्यवस्था ही की जाये ताकि देश की समस्त आबादी मिलजुल कर पूर्णत: एक हो जाये और किसी सम्प्रदाय या वर्ग को यह प्रलोभन न हो कि अपने लिए वह विशेष सुविधाओं की मांग करे। इन कारणों के आधार

पर मैं अपना संशोधन पेश करता हूं जोकि मुझे इसमें रंचमात्र सन्देह नहीं है कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर को यह हर्गिज पसन्द नहीं आयेगा।

***उपाध्यक्ष:** अन्य संशोधन जो इसी श्रेणी में आते हैं वे हैं नं. 346, 347 और 349 के। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या लोग यह चाहते हैं कि इन पर मैं मत लूं।

(*संशोधन न. 346, 347, 349, 350, 351 तथा 352 नहीं पेश किये गए।*)

संशोधन नं. 353 तथा 360 एक ही आशय के हैं और मैं चाहता हूं कि उन पर साथ ही विचार हो।

(*संशोधन नं. 353 तथा 360 नहीं पेश किये गये।*)

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): मैं अपना 353 नं. का संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं, पर एक वक्तव्य देना चाहता हूं।

उपाध्यक्ष: वाद-विवाद के समय आप ऐसा कर सकते हैं।

अब हम संशोधन नं. 354 तथा 357 को लेते हैं।

(*संशोधन नं. 354 और 355 नहीं पेश किये गये।*)

श्री अज़ीज़ अहमद खां (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): जनाब सदर, मेरी तज़वीज़ यह है कि आर्टिकिल 10 के पैरा 3 से लफ्ज़ backward खारिज कर दिया जाये।

जनाबवाला, मुझे यह अर्ज़ करना है कि जिस वक्त माइनोरिटी रिपोर्ट यहां पेश हुई थी, उस वक्त यह लफ्ज़ backward उसमें नहीं था और इस मज़मून पर हम लोगों की राय मुस्तकिल तौर पर यह कायम हुई थी कि लफ्ज़ backward रखने की कोई खास जरुरत नहीं है। सोज़ यह कि अगर दस्तूर के पूरे मसौदे को देखा जाये तो मालूम होगा कि कई दफात इस किस्म की है कि जो अगर यह तरमीम मंजूर नहीं हुई तो दफ़ा 10 के खिलाफ हो जाती है। मसलन दफ़ा 266 और 267।

अभी मुझसे पहले जो तकरीर कुंजरू साहब ने की है, उसको मैंने गौर से सुना है। उनकी मंशा यह थी जो नये हालात हिन्दुस्तान के अन्दर पैदा हो गये हैं उनमें अगर कोई तहफ्फुज किया जा सकता है तो वह महज इस बुनियाद पर

[श्री अज़ीज़ अहमद खां]

किया जा सकता है कि कोई खास किस्म के ऐसे लोग हैं कि जो तालीमी ऐतबार से या तमद्दनी ऐतवार से नीचे दरजा के हैं। ऐसे लोगों के लिए हिफाजत की जरूरत है न कि अक्लियतों के लिए। उनकी राय में इन नये हालात में किसी क्लास और जमाअत को तहफ्फुज की जरूरत नहीं हैं। मेरी अपनी राय यह है कि असल में तहफ्फूज़ की जरूरत उन लोगों को है, जिनके दिल में यह अंदेशा हो सकता है कि अगर तहफ्फूज़ नहीं किया गया तो उनकी हिफ़ाजत नहीं होगी। मैं समझता हूं कि हुकूमत के मुलाजिमों में किसी एक खास क्लास की मोनोपोली हो जाने से दूसरों के दिल में यह ख्याल हो सकता है कि उनकी अहमियत को नज़रअन्दाज कर दिया गया, तो यह खुद मुल्क के अन्दर एक नागवार हालत को पैदा करने का बायस बन जायेगा। इस वास्ते मेरा ख्याल यह है कि तरमीम निहायत जरूरी हैं। हम समझते हैं कि हमको जो नया नक्शा मुल्क का बनाना है, उस में इख्तलाफ़ात नहीं पैदा करना चाहिए और न इख्तलाफ़ात को बढ़ाना चाहिए। लेकिन बावजूद इसके यह एक ऐसा मामला है कि हम मुल्क में जो नई तब्दीली कर रहे हैं तो उस तब्दीली में बहुत सी माइनोरिटीज ऐसी हैं कि जिनको तहफ्फुज़ की जरूरत है। उनके लिए तहफ्फुज़ करना चाहिए और आसानी से किया जा सकता है। दफा 263 में, जनाबवाला, इस तरह का तहफ्फुज़ खासतौर पर किया गया है और दफा 266 में भी इस तरह के तहफ्फुज़ के अल्फाज़ हैं।

मैं अर्ज करूंगा कि दरअसल हमें ऐसा मुल्क बनाना है कि जिसके अन्दर कोई तफरका न रहे, तो इसके लिए यह जरूरी है कि इस तरह की रोक न हो कि जो शख्स तालीमी काबिलियत रखता हो या जो कौमी अहमियत रखता हो, उसको यह महसूस हो कि उसको नज़रअंदाज किया जा रहा है। इसलिए अगर यह कानून तरमीम नहीं किया गया तो जो माइनोरिटीज़ हैं, उनके दिल में यह शुबा पैदा होगा कि हमारी अहमियत को मुल्क में नज़रअंदाज किया जा रहा है। मैं यह नहीं कहता कि हमको अपने मुल्क में जो मुलाजिम हों, उनमें 100 में से 20 सिख जरूर लेना है या 15 ईसाई जरूर लेना है या यह कि हमको 15 मुसलमान जरूर ले लेना है। मगर मैं यह चाहता हूं कि अगर सिख और मुसलमान और ईसाई और दूसरी जमातें इस मुल्क के अन्दर आबाद हैं अगर उनमें तालीमी काबिलियत है, अगर उनमें वह सेफ़ात हैं कि जिनकी उम्मीदवारों को जरूरत है, तो यह नहीं होना चाहिए कि उसको कतई नज़रअन्दाज कर दिया जाये। तो मैं

समझता हूं कि अगर हम इस लफ्ज को अपने कानून में से हटा देंगे तो फिर हमारे खिलाफ यह इल्जाम नहीं रहेगा कि किसी खास क्लास को नज़रअंदाज करने का कानून बना रहे हैं। मेरे ख्याल में अगर लफ्ज़ 'backward' को हटा दिया जायेगा तो गवर्नमेंट के हाथ ऐसे मजबूत हो जायेंगे कि वह वक्तन फब्क्तन ऐसे इंतजामात कर सकती है कि अगर किसी खास जात के आदमियों को मुलाजमत में नज़रअंदाज किया जाये तो उसको रोक सकें। मैं समझता हूं कि यह दफा गवर्नमेंट के हाथों को इस मजबूती से बांध देगी कि वह इस तरह की खराबियों का इंतजाम न कर सकेगी और मुल्क में जो तफरका है, वह बना रहेगा। तो इस बुनियाद पर मैं यह उम्मीद करता हूं कि हाउस इस तजबीज़ को जो कि यकीनन वह तज़बीज़ है, जो कि माइनोरिटी कमेटी की रिपोर्ट के माफिक है, मंजूर फरमायेगा।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है जो सूची 1 में नं. 49 का है। मैं देखता हूं कि यह पेश नहीं किया जा रहा है। अब आता है संशोधन नं. 357, जो श्री शंकर राव देव और आचार्य जुगल किशोर के नाम में है। ये दोनों सज्जन सभा भवन में उपस्थित नहीं हैं। दूसरा संशोधन है नं. 358 का जो केवल शाब्दिक है। संशोधन नं. 359, 361 तथा 362 को पेश करने की अनुमति मैं दे सकता हूं। नं. 359 श्री रणवीर सिंह के नाम में हैं और वह यहां हैं नहीं। इसके बाद आता है नं. 361, जो लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** इसे मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 362 डा. पट्टाभि और अन्य सदस्यों के नाम में हैं। वे भी इसे नहीं पेश कर रहे हैं। नं. 362 प्रो. शाह के नाम में हैं इस संशोधन का दूसरा हिस्सा तथा संशोधन नं. 366 एक ही हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् कि:

> "अनुच्छेद 10 के खंड (4) में 'in connection with' शब्दों के बाद 'managing' शब्द जोड़ा जाये और 'or denominational' तथा 'or belonging to a particular denomination' शब्द हटा दिये जाये।"

मेरा संशोधन स्वीकार हो जाने पर इस अनुच्छेद का रूप यह होगा:

"Nothing in this article shall affect the operation of any law which

provides that the incumbent of an office in connection with managing the affairs of any religious institution or any member of the Governing Body thereof shall be a person professing a particular religion.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात का किसी ऐसी विधि के प्रवर्त्तन पर कोई प्रभाव न होगा जो प्रावधान करती हो कि किसी धार्मिक संस्था के कार्य-प्रबंध से सम्बद्ध कोई पदधारी अथवा उसके शासी मंडल का कोई सदस्य किसी विशेष धर्म का अनुयायी व्यक्ति ही होगा।)

इससे मूल अनुच्छेद के अन्य शब्द हट जायेंगे।

जहां तक कि मैं इस अनुच्छेद के उद्देश्य को समझ पा रहा हूं, वह यही है कि ऐसी संस्था जो कि केवल धार्मिक हो और जिसका कि किसी विशेष सम्प्रदाय या मत से ही खास तौर पर सम्बन्ध हो, उसका संचालन उसी धर्म, सम्प्रदाय या मत के अनुयायी व्यक्तियों द्वारा ही होना चाहिये और जो इनके अनुयायी न हों उन्हें उस संस्था के प्रबंध से सम्बद्ध न होने देना चाहिए। मगर आप ''in connection with''—अर्थात् ''any person holding any office in connection with'' इन व्यापक शब्दों को रखते हैं तो मेरी समझ से इसके अन्दर ऐसे अवैतनिक या आदरमूलक पद भी आ जाते हैं जो चन्दा या विशेष सहायता अथवा किसी सेवा के स्वीकृति-स्वरूप सम्मानार्थ दिये जाते हैं। कोई अन्य धर्म या मत मानने के कारण ही किसी की सेवा या चन्दा अथवा विशेष सहायता को बिल्कुल अमान्य करना उचित और न्यायसंगत नहीं जंचता है, खास करके उस हालत में जब उन संस्थाओं में धर्म या सम्प्रदाय सम्बन्धी कार्यों के अलावा अन्य कार्य भी होते हों।

उदाहरण के लिए शिक्षा-संस्थाओं को लीजिए जैसे कि विश्वविद्यालय, अस्पताल या ऐसी ही अन्य संस्थाओं को लीजिए जो किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित हों और अपने धार्मिक कार्य में श्रद्धा से लगी हों। उनकी संचालन-व्यवस्था में ऐसे प्रावधान से व्यर्थ की अड़चनें आ सकती है, अगर उसमें यह संशोधन नहीं रखा गया जिसको कि मैंने प्रस्तावित किया है। ऐसी संस्थाओं में अवैतनिक पद-धारण

करने, या सभासद बनने पर अथवा अवैतनिक रूप से अध्यापन का कार्य करने पर कोई रोक न होनी चाहिए। मुझे इस बात का निश्चय है कि मसौदा बनाने वालों का कदापि यह अभिप्राय नहीं रहा होगा कि ऐसे अवैतनिक सम्बन्ध भी न रखे जा सकें। किन्तु मैं ऐसा समझता हूं कि मूल खंड में जो शब्द रखे गये हैं, उनसे गलत मतलब लगाया जा सकता है और कम से कम साधारण आदमियों की बुद्धि में तो गलत मतलब आ ही सकता है। इन शब्दों के कारण अति चतुर वकीलों को कभी-कभी यह मौका भी मिल सकता है कि वे इन प्रावधान से एक नया फायदा उठा लें।

इसलिए व्यक्तिगत रूप से मैं तो यह नहीं चाहूंगा कि यहां कोई ऐसी गुंजाइश रह जाये कि सम्प्रदाय को क्षति पहुंचा कर या उन आदर्शों को क्षति पहुंचा कर, जिनको कि हम यहां स्वीकार कर रहे हैं, कोई व्यक्ति अपने बुद्धिकौशल का ऐसा योग कर सके। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस आशय का प्रावधान बनाते समय विधान-निर्माताओं के मन में दो परस्पर विरोधी आदर्शों का संघर्ष चल रहा था। उनके दिमाग में एक तो यह आदर्श काम कर रहा था कि विधान जो बने वह एक पूर्णतः असाम्प्रदायिक राज्य के अनुकूल हो जिसमें धर्म को राज्य की ओर से कोई मान्यता न प्राप्त हो। और इसी आदर्श की प्रेरणा से यह कोशिश की गई कि जहां तक कि समाज के नागरिक जीवन का सम्बन्ध है, किसी धर्म, पन्थ या सम्प्रदाय के पक्ष या सम्बन्ध में भेद बरतने वाला कोई प्रावधान विधान में न रखा जाये।

दूसरी तरफ ऐसा प्रतीत होता है कि उन विशेष धर्मों या सम्प्रदायों के प्रति ममता भी सक्षम चेतना की दशा में उनको आन्दोलित कर रही थी। जिनकी संस्थाओं को, नीवियों (endowments) को तथा भित्तियों को बचाने की कोशिश की जा रही है और विधान में अपवाद रखकर जिन्हें इस खंड के प्रभाव से अलग रखा जा रहा है। आखिर मूल अनुच्छेद में जो सिद्धान्त सन्निहित है उसके लिए एक अपवाद के रूप में ही तो यह खंड 4 रखा गया है। और अपवादमूलक होने के कारण विशेष सम्प्रदायों की संस्थाओं को उनके प्रबन्ध के सम्बन्ध में इससे एक छूट

[प्रो. के.टी. शाह]

मिल जाती है। मसौदा बनाने वालों ने यह व्यवस्था सूक्ष्म चेतना की अवस्था में शायद यहां रखी है। कहने का मतलब यह है कि असाम्प्रदायिक राज्य के आधारभूत सिद्धान्त को अस्वीकार न करते हुए भी प्रकारान्तर से परोक्ष रूप से उन्होंने नये संशोधन या अपवाद रख दिये हैं जो मेरी निगाह में इस अनुच्छेद के समस्त प्रावधान के पीछे जो मूलभूत तत्त्व है उसको ही समाप्त कर देते हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि अगर मेरे सुझाये शब्दों को यहां जोड़ दिया जाये यानी यह जोड़ दिया जाये कि किसी भी धार्मिक संस्था के प्रबन्ध में ऐसा कोई व्यक्ति सम्मिलित न हो सकेगा जो उस विशेष धर्म को न मानता हो तो इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है और हमारे प्रयोजन के लिए यह काफी है। ऐसा करने से हमारे मूल सिद्धान्त का प्रयोजन भी सिद्ध हो जायेगा। अगर यह प्रयोजन सिद्ध करना आपको अभिप्रेत है और साथ ही राज्य की ओर से जो कि किसी धर्म विशेष के साथ पक्षपात न करेगा, सभी सुरक्षा का तथा अहस्तक्षेप का आपको पक्का भरोसा हो जायेगा। मुझे तो इस संशोधन में कोई भी आपत्ति की बात नहीं दिखाई देती है। फिर भी मसौदा बनाने वाले सदस्यों की या उनके समर्थकों का इस सम्बन्ध में जो भी विरोध या आपत्ति होगी उसे मैं ध्यान से सुनूंगा। जब कि वे इस सम्बन्ध में अपनी आपत्ति नहीं बताते या मुझे अन्यथा नहीं समझा देते, मैं इन शब्दों के साथ इस संशोधन को स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करूंगा।

(*संशोधन नं. 364 नहीं पेश किया गया।*)

उपाध्यक्ष: नं. 365 शाब्दिक है और उसे पेश करने की अनुमति नहीं मिल सकती है।

(*संशोधन नं. 367 और 368 नहीं पेश किये गए।*)

***उपाध्यक्ष:** सूची 2 के संशोधन नं. 82 के सम्बन्ध में श्री कामत ने कुछ आपत्ति उठाई है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री मुंशी की व्याख्या से उन्हें संतोष हो गया है।

***श्री एच.वी. कामत:** नहीं, श्रीमान्, उनकी व्याख्या से मेरी कठिनाई दूर नहीं हुई है। मुझे जो सन्देह है वह भी दूर नहीं हुआ है। अगर वह समझा सकते हैं तो इस सम्बन्ध में उन्हें फिर समझाने दीजिए। मैं अपनी बात पर जोर दूंगा।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्री कामत ने जो सवाल उठाया है वह सचमुच परेशान करने वाला है और इस पर विचार करना जरूरी है। इसके बारे में तो कोई शक हो ही नहीं सकता। खैर, संशोधन इस प्रकार हैं:

> ''Nothing in this article shall prevent Parliament from making any law prescribing in regard to a class or classes of employment or appointment to an office *under the State* for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory any requirement as to the *residence within that State* prior to such employment or appointment.''

> (इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को ऐसा कानून बनाने में कोई रुकावट नहीं होगी, जो सेवायुक्तियों के किसी एक वर्ग या वर्गों के सम्बन्ध में, अथवा चालू समय के लिये प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवायुक्ति या नियुक्ति के पूर्व, उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो।)

'स्टेट' शब्द मसौदे में दो स्थलों पर आया है। एक तो अनुच्छेद 1 में और दूसरा अनुच्छेद 7 में। अनुच्छेद 1 में तो इस शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है और राज्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में व्यवहृत हुआ है और अनुच्छेद 7 में प्राधिकारियों के सम्बन्ध में व्यवहृत हुआ है। मैं अनुच्छेद 7 को पढ़ कर सुना देता हूं। उसमें कहा गया है:

[माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त]

"Unless the context otherwise requires, the State includes the Government and the Parliament of India and the Government and the Legislature of each of the States and of local or other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India."

(यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में "राज्य" शब्द में भारत के शासन और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक के शासन और विधान-मंडल तथा भारत के राज्य-क्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है।)

इस तरह हम देखते हैं कि अनुच्छेद 7 'राज्य' शब्द की परिभाषा देता है पर राज्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में नहीं, किन्तु उसके प्राधिकारी के सम्बन्ध में। अनुच्छेद 1 राज्य के क्षेत्र को व्यक्त करता है। इस संशोधन में राज्य-क्षेत्र तथा प्राधिकारी—दोनों का—ही उल्लेख किया गया है। जब हम यह कहते हैं—"राज्याधीन किसी पद पर नियुक्ति अथवा राज्याधीन कोई सेवायुक्ति"—तो इससे अर्थ ही यह होता है कि राज्य के प्राधिकारी के अधीनस्थ कोई पद या सेवायुक्ति। इसमें कुछ गलत नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 7 से मतलब है, प्रथम अनुसूची के राज्यों के सभी राज्य-क्षेत्रों से। ज्योंही हम यह कहते हैं कि: "यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में 'राज्य' शब्द में..." तो, जहां तक इस अनुच्छेद 7 का सम्बन्ध है, इसमें समूची प्रथम अनुसूची आ जाती है और इस सम्बन्ध में किसी सन्देह की गुंजाइश ही नहीं है। और फिर अनुच्छेद 10 में कहा गया है कि राज्याधीन किसी पद पर नियुक्ति। इसमें कुछ भी गलत नहीं है क्योंकि यहां "राज्याधीन" का मतलब ही यह हुआ कि जैसा कि अनुच्छेद 7 में बताया गया है। और अनुच्छेद 7 में 'राज्य' की जो परिभाषा दी गई है उसके अन्दर प्रथम अनुसूची के सभी राज्य तथा राज्य-क्षेत्र आ जाते हैं, इसलिए यह बिल्कुल ठीक है। किन्तु जब हम इस संशोधन के दूसरे हिस्से पर आते हैं जहां राज्य में आवास का उल्लेख है तो वहां आकर कठिनाई पैदा होती है। आवास तो प्राधिकारी में हो नहीं सकता, वह तो किसी राज्यक्षेत्र में ही किया जा सकता

है और इसलिए अनुच्छेद 7 का हम सहारा नहीं ले सकते हैं, इसके लिए अनुच्छेद 1 का सहारा लेंगे और जब अनुच्छेद 1 को लेते हैं तो उसमें प्रथम अनुसूची का भाग 4 शामिल नहीं है। मेरा मन्तव्य इतना ही है।

*__उपाध्यक्षः__ इस प्रश्न पर वादानुवाद प्रारम्भ करने से पहले मैं एक विशेष बात सभा के सदस्यों के सामने रखना चाहता हूं। जिस खंड पर अब तक वादानुवाद हो रहा है वह हमारी आबादी के वर्ग विशेष पर खासतौर पर असर डालता है, अर्थात् उस वर्ग पर जिसके साथ अतीत में बड़ी निर्दयता के साथ व्यवहार किया गया है। आज हम अपने पूर्वजों के कुकृत्यों के लिए यद्यपि प्रायश्चित करने को तैयार हैं फिर भी यत्रतत्र अभी भी वही पुरानी कहानी चल रही है और विदेशों में इसका खूब बढ़ा-चढ़ा कर उल्लेख किया जाता है। जब भी हम किसी समस्या पर मानव-दृष्टि से, अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर ऊंचे स्तर पर उठ कर विचार करना चाहते हैं तो हमें यह ताना देकर चुप किया जाता है कि आप इस ऊंचे स्तर पर क्या विचार करेंगे? आप तो खुद अपने देशवासियों के एक वर्ग के प्रति भयानक अन्याय का बर्ताव करते हैं। इसलिए मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, अगर इस विशेष प्रश्न पर वादानुवाद के सम्बन्ध में सभा मुझे यह स्वतंत्रता दे दे कि मैं पिछड़े हुए बन्धुओं को पूर्णतः विचार व्यक्त करने की सुविधा दे सकूं। क्या यह अनुमति आप मुझे देते हैं?

*__माननीय सदस्यगणः__ अवश्य।

*__उपाध्यक्षः__ पहले मैं श्री गुरुंग को बोलने के लिए आमंत्रित करूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** इस अनुच्छेद पर वादानुवाद प्रारंभ करने से पहले क्या आप श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के संशोधन के सम्बन्ध में किसी अन्तिम निर्णय पर न पहुंच जायेंगे? जिस कठिनाई का मैंने उल्लेख किया है उसके सम्बन्ध में संतोषजनक उत्तर अभी भी नहीं मिल सका है।

*__उपाध्यक्षः__ उसको बाद में लिया जायेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मुझे एक जरूरी बात कहनी है जिस पर पहले विचार होना चाहिए। इससे वह चन्द कई खंड, जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं, कट जाते हैं। इस संशोधन नं. 62 की तीसरी लाइन में "any State" शब्द आते हैं और हम इसके पहले "the State" स्वीकार कर चुके हैं।

***उपाध्यक्ष:** आपको और बोलने की इजाजत मैं नहीं दे सकता। हां, श्री गुरुंग, आप बोल सकते हैं।

***श्री अरिबहादुर गुरुंग** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे आपने जो बोलने का अवसर दिया, उसके लिए मैं कृतज्ञता प्रकाश करता हूं। इस अनुच्छेद के खंड (3) के प्रावधान को पढ़कर मुझे विशेषरूप से प्रसन्नता प्राप्त हुई है।

यह खंड कहता है:

"Nothing in this article shall prevent the State from making any provision for the reservation of appointments or posts in favour of any backward class of citizens who, in the opinion of the State, are not adequately represented in the services under the State."

(इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधान राज्य की सम्मति में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण (reservation) के लिए प्रावधान करने में कोई अवरोध न होगा।)

यहां मैं यह मानता हूं, श्रीमान्, कि 'पिछड़े हुए वर्ग' के अन्दर तीन श्रेणियों के लोग आते हैं—एक तो परिगणित जातियां, दूसरे कबायली लोग और तीसरे वह विशेष वर्ग जिन्हें अब तक पिछड़े हुओं में शामिल नहीं माना गया है पर जो शिक्षा और अर्थ की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। यदि अनुमति हो तो, मैं तो यह कहूंगा कि यदि अधिक नहीं तो कम से कम भारत के 90 प्रतिशत लोग शिक्षा एवं अर्थ की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। मेरी समझ से 'पिछड़ा हुआ' (backward) शब्द का मतलब साफ नहीं है। मैं ऐसा समझता हूं कि भारतीय समुदाय के इस विशेष वर्ग के प्रति अर्थात् गुरखा-समाज के प्रति जो मेरा कर्त्तव्य है उससे मैं च्युत होऊंगा, अगर मैं उनके विचारों को यहां इस समय प्रतिध्वनित नहीं करता।

मैं सभा को बताऊंगा कि भारत में बसे हुए गुरखों की संख्या, अगर ज्यादा नहीं तो आज 30 लाख है। आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से वह पिछड़े हुए हैं। मैं ऐसा समझता हूं कि भारत में बसे गुरखों को वही सुविधायें मिलनी चाहिये जो यहां के अन्य पिछड़े हुए वर्गों को प्राप्त हैं। इस बात को सभी लोग जानते हैं, श्रीमान्, कि भारतीय स्वतंत्रता को बनाये रखने में गुरखों ने बहुत बड़ा काम किया है और हैदराबाद का युद्ध समाप्त कर आज यह काश्मीर के युद्ध में संलग्न हैं। भारतीय स्वतंत्रता की रक्षा में उनकी जो जिम्मेदारी थी उसका उन्होंने पालन किया है। मैं सभा को विश्वास दिलाता हूं कि भारत में बसा हुआ गुरखा समाज भारतीय सरकार के प्रति पूर्ण निष्ठा रखता है। बहुतों के मन में इस बात का गहरा सन्देह बना हुआ है कि यहां गुरखा समाज नेपाल सरकार के प्रति ही राजनिष्ठा रखता है। आज इस सभा-भवन में मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूं कि भारत में बसा हुआ गुरखा-समाज भारतीय सरकार के प्रति ही राज-निष्ठा रखता है न कि नेपाल सरकार के प्रति। अपनी प्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हम अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक बहाने में कभी न हिचकेंगे।

सन् 1947 की 15 अगस्त से गुरखा-समाज के प्रति यथेष्ट सद्भावना दिखाई गई है। अंग्रेजी राज में गुरखों को सेना में केवल वाइसराय कमीशन का ही दर्जा दिया जाता था, किन्तु अब 1948 से कई गुरखों को इमरजेंसी कमीशन का पद दिया गया है। और मुझे मालूम हुआ है कि कइयों को कर्नल का ओहदा भी दिया गया है। उनकी सेवाओं के स्वीकृतिस्वरूप ये जो ओहदे उन्हें दिये हैं यह हमारी सरकार की सद्भावना का द्योतक है।

राज्य की सम्मति में, राज्याधीन सेवाओं में जिन पिछड़े हुए जानपद वर्गों का प्रतिनिधान पर्याप्त नहीं है, उनके लिए अनुच्छेद 10 का यह खंड एक अनुकूल प्रावधान देता है। मैं समझता हूं कि अब इस व्यवस्था से शिक्षित गुरखे, जिन्हें कि अब तक सेना में ही काम करने का अवसर मिलता था, शासन-सम्बन्धी कामों में भी लिये जा सकेंगे। मुझे आशा है कि गुरखा-समाज जिसने कि सेना में रहकर अब तक अपने शौर्य का प्रदर्शन किया है अब शासन-सम्बन्धी नागरिक कार्यों में भी उसी प्रकार बुद्धि और चरित्रबल का प्रदर्शन करेगा।

इन शब्दों के साथ अपनी बात समाप्त करते हुए मैं पुन: आपको धन्यवाद देता हूं, श्रीमान्।

***श्री आर.एम. नलवदे** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 का जिस पर कि अभी विचार हो रहा है, पिछड़े हुए वर्ग की ओर से मैं समर्थन करता हूं और इसकी मुझे बड़ी खुशी है। इस अनुच्छेद में, और खासकर इसके खंड (3) में पिछड़े हुए वर्गों के लिए राज्याधीन सेवाओं में आरक्षण देने की व्यवस्था रखी गई है, किन्तु 'backward classes' (पिछड़े हुए वर्ग) जो शब्द यहां रखे गये हैं, उसका अर्थ बड़ा अस्पष्ट है और इनका ऐसा भाष्य भी किया जा सकता है कि इसके अन्दर ऐसे भी कई वर्ग आ जायें जो शैक्षिक दृष्टि से भी यथेष्ट समुन्नत हैं। पिछड़े हुए वर्ग की जो सूची है उसमें ऐसों का भी उल्लेख है। यहां इनके बदले अगर 'परिगणित जातियां' शब्द रखे गये होते तो दलित वर्ग के लिए राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधान पाना और आसान होता। प्रांतों में भी इस आरक्षण (रिज़र्वेशन) की व्यवस्था वर्तमान है पर वहां इस सम्बन्ध में हमारा बड़ा ही कटु अनुभव है। शिक्षित और हर प्रकार से पात्र होने पर भी प्रान्तीय सरकार के अधीन नौकरियों में दलित वर्ग को मौका नहीं दिया जाता है। अब जब कि स्वयं विधान में ही यह व्यवस्था लिपिबद्ध की जा रही है, तो अनुसूचित जातियों को कोई डर नहीं है। इस खंड के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों ही सेवाओं में हमें पर्याप्त प्रतिनिधान मिल सकेगा। इसलिए पिछड़े हुए वर्गों की ओर से मैं इस खंड का समर्थन करता हूं।

डा. धर्म प्रकाश (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस समय इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बैकवर्ड क्लास की आज तक कोई भी परिभाषा नहीं हुई है और नहीं निकट भविष्य में इसकी कोई सम्भावना है। यों तो कोई भी समुदाय ऐसा नहीं है जिसमें कुछ न कुछ बैकवर्ड नहीं हैं। चाहे वह माली हालत में हों, चाहे तालीमी हालत में हों और चाहे सामाजिक हालत में हों, बैकवर्ड सब में हैं। परन्तु मेरा अपना विचार यह है कि यदि बैकवर्ड क्लास के लोगों के लिए सर्विसेज़ में कोई भी रिज़र्वेशन रखा जाता है तो यह देखना बहुत ही आवश्यक है कि जो समुदाय सदियों से पिछड़ा हुआ है, चाहे वह धार्मिक दृष्टिकोण से हो, चाहे आर्थिक दृष्टिकोण से और चाहे सामाजिक दृष्टिकोण से हो, उसकी वास्तव में वर्त्तमान परिस्थिति क्या है और भविष्य में उसका क्या बनने जा रहा है, यह देखना आवश्यक है। इस क्लाज में जो सबसे पहली आपत्ति उपस्थित होती है वह इस समय की अवस्था को ध्यान में रखकर भी एक बहुत बड़ा संकट उपस्थित

करने वाली नज़र आती है। आप सब महानुभाव यह जानते हैं कि आज हमारी इस राष्ट्रीय सरकार को विरासत में जो मशिनरी मिली है वह ऐसी है जिसकी मनोवृत्ति साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता और धार्मिक दृष्टिकोण से बहुत ही संकीर्ण रही है और आज भी इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि जब कभी सर्विसेज में कहीं कोई रिज़र्वेशन का प्रश्न आता है तो जहां जिस प्रान्त का बहुमत होता है और जो अधिकारी उस स्थान पर होता है वह सदा यही देखता है कि इससे मेरा सम्बन्ध क्या है। यदि उम्मीदवार उसके प्रान्त का है तो प्रान्त की दृष्टि से पक्षपात करता है और यदि वह उसकी जाति और उपजाति तथा श्रेणियों में विभक्त है तो उस दृष्टिकोण से पक्षपात करता है। उसे इस बात का ख्याल नहीं होता कि वह उसकी योग्यता पर ध्यान दे, बल्कि इस बात का विचार करता है कि इससे मेरा कोई स्वार्थ साधन होता है या नहीं, और इसलिए वह सर्विसेज़ में ऐसे ही लोगों को प्रोत्साहन देता है। तो जो मशिनरी आज पिछले सांचे में ढली हुई है और बहुत बड़ा प्रयत्न करने पर भी इस रफ्तार से चल रही है उससे यह सम्भावना नहीं है कि वह निष्पक्ष होकर किसी को सर्विसेज़ में स्थान दे। यह बहुत बड़ा खतरा है और इसको दूर करने के विचार से मैं यह समझता हूं कि यदि परिभाषा करके यह निष्पक्ष रूप से साफ कर दिया जाये कि कौन पिछड़े हुए हैं तो शायद यह आपत्ति हट जाये। आज देश का वातावरण ऐसा है कि सर्विसेज़ तो क्या हमें लेजिस्लेचर तक के लिये लाचार होकर रिज़र्वेशन की मांग हरिजनों के लिए करनी पड़ती है। अन्यथा मैं तो इस बात के पक्ष में हूं कि ऐसे देश में जो स्वतंत्र हो चुका है और जिसका विधान स्वतंत्र रूप से बनाया जा रहा है, वास्तव में रिज़र्वेशन की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन सबसे बड़ी आपत्ति जो देखने में आती है और जिसके कारण लाचार होकर रिज़र्वेशन मांगा जाता है वह यह है कि आज भी दुर्भाग्य से यह देखने में आता है कि वह उदारता व निष्पक्षता का भाव जो समाज में होना चाहिए वह अभी नहीं है और मैं नहीं समझता कि वह बहुत शीघ्र आने वाला भी है। इसलिए मैं आपके सामने यह सुझाव रखता हूं कि आप बैकवर्ड शब्द न रखकर, जैसा कि संशोधन है, उसके अनुसार डिप्रेस्ड क्लास या शिड्यूल्ड क्लास रखें, जो ज्यादा उपयुक्त हो सकता है क्योंकि उसकी परिभाषा हो चुकी है। इसमें बहुत सी वह श्रेणियां सम्मिलित की जा चुकी हैं कि जिन्हें वास्तव में सभी लोगों ने यह मान लिया है कि वह बहुत पिछड़ी हुई हैं।

[डा. धर्म प्रकाश]

इसलिए मैं इस संशोधन का उस रूप में समर्थन करता हूं कि 'बैकवर्ड' शब्द हटा कर 'शेड्यूल्ड कास्ट' शब्द रहे। मैं समझता हूं कि उनके लिए सर्विसेज में भी कुछ समय के लिए यह रिज़र्वेशन आवश्यक है वरना मैं तो इसके पक्ष में भी नहीं हूं कि लेजिस्लेचर में भी कोई रिज़र्वेशन रखा जाये। और आगे चल कर यह रिज़र्वेशन बन्द कर दिया जाये। मेरा तो अपना मत यह है कि आज इस स्वतंत्र देश में हिन्दुओं के नाम पर, मुसलमानों के नाम पर, ईसाइयों और सिक्खों के नाम पर रिज़र्वेशन करना और यह जाहिर करना कि यह बहुत ही अल्पसंख्यक हैं, यह तो कुछ उचित सी बात नहीं मालूम पड़ती। लेकिन हिन्दुओं के उस समुदाय को, जो हरिजन कहलाता है और जो कि वास्तव में पिछड़ा हुआ है, कुछ समय के लिए रिज़र्वेशन देना उपयुक्त मालूम पड़ता है। वह भी कुछ समय के ही लिए होना चाहिए और जब वह समानता प्राप्त कर लें तो मैं सबसे पहला शख्स होऊंगा जो इस बात का विरोध करेगा कि उनके लिए किसी प्रकार का रिज़र्वेशन नहीं होना चाहिए। लेकिन जब तक यह परिस्थिति नहीं आती मैं इसके हक में हूं। इसलिए मैं कहता हूं कि कुछ ऐसा शब्द जोड़कर अभी सर्विसेज़ में रिज़र्वेशन करना उपयोगी होगा न कि हानिकारक।

श्री चन्द्रिका राम (बिहार : जनरल): जनाब सदर साहब, मैं इसलिये यहां आया हूं कि आर्टिकिल 10 का समर्थन करूं। बहुत से अमेंडमेंट हम लोगों के सामने आये हैं जिनमें यह कहा गया है कि "बैकवर्ड क्लासेज़" के स्थान पर 'शिड्यूल्ड कास्ट' जोड़ दिया जाये। मैं इसके पक्ष में हूं। आप सदस्यों को मालूम होगा कि एडवाइज़री कमेटी में जब यह सवाल आया था कि डिप्रेस्ड क्लासेज़ और शिड्यूल्ड कास्ट्स के लिए रिज़र्वेशन हो, तो उस समय केवल एक वोट से हार गया, नहीं तो आज कानूनी तौर से हरिजनों के लिए यह बात रहती कि उनके लिए सर्विसेज़ में रिज़र्वेशन हो। खैर, अब यहां पर बहुत सी बातें हो रही हैं कि 'बैकवर्ड क्लास' क्यों रखा गया है और 'बैकवर्ड क्लास' डिफाइन नहीं किया गया है। जिन भाइयों ने या जिन सदस्यों ने सेन्सस रिपोर्ट, खासकर सन् 21 और 31 की देखी होगी, उनको मालूम होगा कि वहां बैकवर्ड क्लास का डैफीनीशन एक तरह से दिया गया है। मेरे जानते, समाज आज तीन भागों में

विभाजित है जैसा कि इन रिपोर्टो से पता चलता है। पहले भाग में हिन्दू समाज के वह लोग है जिनको हम सवर्ण कहते हैं, आखिरी में वह लोग हैं, जिनको डिप्रेस्ड क्लासेज, अनटचेबिल्स, शेड्यूल्ड कास्ट या हरिजन कहते हैं। लेकिन इस देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा वह है जो इन दोनों के बीच में है जिसको बैकवर्ड क्लास कहा गया है। मुझे अफसोस है कि उस बैकवर्ड क्लास को जिसके लिये हमारे माननीय पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने कहा है, लेजिस्लेचर में, असेम्बली में और कौंसिल में रिज़र्वेशन नहीं किया गया है। मैं आपको केवल नमूने के लिये बिहार की बात बतला दूं कि वहां इस 'बैकवर्ड क्लास' में जिसको कि सेन्सस में कहा गया है कि बिहार की सबसे बड़ी पापूलेशन है, उनके अगर, असेम्बली और कौंसिलों के representation को देखें, उनके प्रतिनिधित्व को देखें, तो आपको पता चलेगा कि वह वहां पर नहीं है, सिवाय एक community को छोड़कर जिसको कि हम Ahir community कहते हैं। अगर देखा जाये तो आज उनकी संख्या 50 लाख के करीब है और असेम्बली और कौंसिल के उनके representation को अगर देखा जाये तो उनकी संख्या उसमें दो के बराबर है, जहां 152 आदमी असेम्बली में और 30 आदमी कौंसिल में हैं। इस तरह यह बात नहीं है कि समाज में, उनके बीच में या और लोगों के बीच में अछूत नहीं हैं। सिर्फ यही बात नहीं है कि शिक्षा में और आर्थिक हालतों में और लोगों से वह बहुत आगे हैं। लेकिन किसी समाज को उन्नत बनाने के लिये, किसी समाज को तरक्की में लाने के लिये यह जरूरी है कि उसके पोलिटिकल राइट्स रहें। अगर किसी समाज में चाहे कितने भी थोड़े आदमी हों, चाहे उनकी हालत कितनी ही अच्छी हो, अगर उनके पोलिटिकल राइट्स नहीं हैं, अगर राजनैतिक तरीके से असेम्बली और कौंसिलों में इनका हक नहीं है, तो मैं नहीं समझता कि वह कभी भी स्टेट में और लोगों के बराबर आ सकते हैं। इसलिये मैं तो समझता था कि जहां पर हरिजनों को आपने रिज़र्वेशन दिया है सर्विसेज में, असेम्बली और कौंसिलों में वहां पर यह जरूरी था कि बैकवर्ड क्लास के लोगों को आप असेम्बली में रिज़र्वेशन देते जिसका थोड़ा दर्द अभी पहले अपने आरग्यूमेंट में माननीय हृदयनाथ कुंजरू ने जाहिर किया है। बैकवर्ड क्लास हरिजन चूंकि बैकवर्ड क्लास हैं इसलिये हम उनको इतनी सुविधाएं देते हैं तो क्यों न वह आरग्यूमेंट उन पर लागू किया जाये और उन लोगों को वही सुविधायें, रिज़र्वेशन, लेजिस्लेचर में क्यों न दी जायें? यह जरूरी बात थी। हम इस देश का विधान बना रहे हैं, जिसमें हम समझते हैं और शुरू-शुरू में हमने यह कहा है कि हमको सबके लिये जस्टिस करनी है और वह जस्टिस सोशल, इकनामिक और पोलिटिकल है, तो मैं समझता हूं कि देश का एक बहुत

[श्री चन्द्रिका राम]

बड़ा तबका जिसकी संख्या मैं समझता हूं सबसे अधिक है, उनको हम पोलिटिकल राइट्स ही दे रहे हैं। इसलिये यह जहां पर हम बातें करते हैं equal opportunity देते हैं, लेकिन असल में हम उनको अलग कर रहे हैं। इसलिये अगर यह ख्याल था कि यहां पर आर्टिकल दस में सिर्फ सर्विसेज़ में ही नहीं बल्कि उनको लेजिस्लेचर में भी रिज़र्वेशन होना चाहिये। अब रहा बहुत से सदस्यों का यह objection कि backward class का word नहीं रहना चाहिये और उसको हटा देना चाहिये। खासकर हमारे सोशलिस्ट भाई श्री दामोदरस्वरूप सेठजी और श्री लोकनाथ मिश्र जी का यह amendment है कि उस backward class के word को हटा देना चाहिये। इसके बाबत पहली बात तो यह कहनी है कि सेठजी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर हैं और मैं उम्मीद करता हूं और सब इस बात को जानते हैं कि सोशलिस्ट पार्टी तो सबसे आगे रहेगी, इस देश के हर एक लोगों का प्रतिनिधित्व करने में। तो मैं नहीं समझता कि यह क्यों objection उनका हो रहा है जबकि समाज में उन लोगों के लिये एक क्लाज रखा गया है। जो लोग ऐसा समझते हैं कि इस देश में कोई backward नहीं है, उनके लिये मैं इतना ही कहूंगा कि वे देश के इतिहास को, समाज की प्रगति को और आज की हालतों को आंख मूंद कर देख रहे हैं, आंख खोल कर नहीं देख रहे हैं। इसलिये भी जो यत्न Drafting Committee ने किया है, वह अच्छा किया है और जैसे यह amendment मेरे सामने है, मैं उसकी ताईद करता हूं।

*__श्री पी. कक्कन__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 का समर्थन करते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। अब तक गरीब हरिजन भाइयों को सरकारी नौकरियों में उचित संख्या में नियुक्तियां नहीं मिला करती थी। उच्च पदस्थ अधिकारी केवल अपने ही आदमियों को रखते थे, हरिजनों को नहीं। तरक्की के सम्बन्ध में भी हमारे साथ न्याय नहीं किया जाता था। आवश्यक पात्रता तथा व्यक्तित्व की आशा तो हरिजनों से सरकार कर सकती है पर योग्यता की आशा उनसे अभी आप नहीं कर सकते। अगर केवल योग्यता को ही ध्यान में रखते हुए नियुक्तियां की जायेंगी तो हरिजन अभी नहीं आ सकेंगे। मैं इस सभा के समक्ष यह कहना चाहता हूं कि अभी कुछ वर्षों तक हरिजनों को नियुक्ति-विषयक आरक्षण देने के लिए सरकार को खासतौर पर कार्रवाई करनी होगी। सरकार से मैं यह आशा करता

हूं कि पुलिस और सेना में भी हरिजनों को और अधिक स्थान देने के लिए वह आवश्यक कार्रवाई करेगी। उदाहरण के लिए मैं कहूंगा कि कश्मीर में हरिजन आज बड़े जोश से युद्ध कर रहे हैं। मैं इस सभा में यह जरूर कहूंगा कि शासन मे हरिजनों को और अधिक काम मिलने चाहिए और सरकार द्वारा उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 के प्रथम दो खंडों में यह स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया गया है कि नौकरियों के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को आम अधिकार प्राप्त रहेंगे। किन्तु जब हम खंड (3) पर आते हैं तो हमें एक कठिनाई होती है जैसा कि एक बन्धु ने अभी यहां बताया है। वह कठिनाई यह है 'backward' शब्द यहां रखा गया है पर इसकी समुचित व्याख्या कहीं नहीं दी गई है। अत: इससे मुझे यह भ्रम पैदा होता है कि जिन सम्प्रदायों को शासन-सम्बन्धी कार्यों से शुरू से ही अलग रखा गया उन्हें इससे उनका समुचित भाग मिल सकेगा। अब जब देश में इतना बड़ा उथल-पुथल हो रहा है और उसका विधान बन रहा है तो मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि उन सम्प्रदायों को, जिनको कि सरकारी नौकरियों के हलुए मांड़े से सदा वंचित रखा गया, अब इससे वंचित न रखना चाहिए। इसी अभिप्राय से मैंने एक संशोधन की सूचना दी है और 50 सदस्यों के हस्ताक्षर से एक और संशोधन भी आया है, पर मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर सका जिसका कारण आप अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब तक कि इस आशय का आश्वासन नहीं मिलता कि इन सम्प्रदायों को—मेरा मतलब खास तौर से परिगणित जातियों से है—इस खंड द्वारा सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान मिलेगा। जब तक यह आश्वासन नहीं मिलता कि इन सम्प्रदायों का सभी मौकों पर पूरा ख्याल किया जायेगा और इनको सरकारी नियुक्तियों में काफी अवसर दिया जायेगा, तब तक इनका उत्थान यों ही रुका रह जायेगा। अभी उस दिन माननीय उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल ने यह साफ-साफ कहा है कि हरिजनों के प्रति न केवल न्याय ही किया जायेगा बल्कि उनके सम्बन्ध में उदारता भी बरती जायेगी। मैं अनुरोध करूंगा कि उसी दृष्टिकोण और भावना से अनुप्राणित होकर सभा को यहां इस बात का स्पष्ट आभास दे देना चाहिए कि परिगणित जातियों के हितों की सदा रक्षा की जायेगी। कई सदस्यों का यह ख्याल है कि आरक्षण सम्बन्धी व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं समझता हूं कि यह गलत ख्याल है क्योंकि

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

जब तक हमारे राजनैतिक समुदाय में साम्प्रदायिकता का विष वर्तमान है ऐसे सम्प्रदाय जरूर रहेंगे जो आरक्षण की मांग करेंगे। किन्तु इस सम्बन्ध में हरिजनों की वकालत साम्प्रदायिकता के आधार पर नहीं की जा रही है बल्कि इस कारण से कि कई वर्षों तक, कई दशाब्दियों तक सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी समुन्नति के अभाव में इन्हें नौकरियों से बाहर रखा गया और अब इन्हें वहां स्थान देना जरूरी है। मैं यह भी अनुभव करता हूं कि यहां सभा में हरिजनों के पक्ष का दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन होना चाहिए जिससे कि सदा उनको न्याय मिल सके। साथ ही मैं सभा को यह भी बता दूं कि हरिजन समाज के किसी भी नेता का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि इस देश में साम्प्रदायिकता का भूत सदा के लिए बना रहे; किन्तु जब तक नौकरियों में प्रवेश पाना उनके लिये कठिन है, उनको कुछ न कुछ संरक्षण मिलना नितान्त आवश्यक है। नौकरियों में इनका अपर्याप्त-प्रतिनिधान देखकर सरकार ने पहले इसके लिए प्रावधान कर दिया था। हमारे ही प्रान्त में मद्रास सरकार ने इसके सम्बन्ध में सरकारी आज्ञा भी जारी की है और उसके जरिये हरिजनों को मौके दिये हैं। इसके अलावा हरिजनों में से जो लोग नौकरियों के लिए चुने गये थे उन्होंने अपनी सार्थकता भी सिद्ध की है। अगर आपकी अनुमति हो तो, श्रीमान्, मैं कहूंगा कि सेना में भी इन्होंने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है और अभी कश्मीर युद्ध में दक्षतापूर्वक अपना कार्य सम्पन्न किया है। मसौदा-समिति के प्रधान भी हरिजन है और इसी से हरिजन सम्प्रदाय की योग्यता का पता चल जाता है।

***श्री टी. चान्निया** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय अनुच्छेद 10(3) में 'backward' शब्द रखने से मद्रास से आये हुए सदस्यों के मन में कुछ संदेह उत्पन्न हो गया है। अवश्य ही यह सच है कि मसौदे में कहीं भी 'backward' शब्द की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी गई है। उत्तरी भारत से आये हुए हमारे माननीय बन्धुओं को यह देखकर बड़ी हैरत हो रही है कि दक्षिण भारत के सदस्यों का 'backward' शब्द के सम्बन्ध में इतना आग्रह है। उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमानों में एक स्पष्ट भेद है और इसे उत्तरी भारत के सदस्य अच्छी तरह जानते हैं। उन्हें यह भी मालूम है कि हिन्दुओं में कई वर्ग हैं जो खेती का काम करते हैं और कई वर्ग हैं जो कारीगरी के काम करते हैं ये सभी पिछड़े हुए (backward) वर्ग में आते हैं। दक्षिणी भारत में "पिछड़े हुए वर्ग" का एक खास अर्थ है। दक्षिण भारत

में, जैसा कि मैं जानता हूं, 'पिछड़े हुए' वही समझे जाते हैं जो सामाजिक दृष्टि से या शिक्षा की दृष्टि से अनुन्नत हैं। एक मात्र वर्ग जो अनुच्छेद 10(3) के अन्दर वहां नहीं शामिल किया जा सकता है, वह है उन लोगों का वर्ग जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है।

वे ऐसा समझते हैं कि 'backward' शब्द के यहां रहने से उनके हित में बाधा पड़ेगी यानी सरकारी नौकरियों में वे न लिये जा सकेंगे। दक्षिण भारत में 'backward' शब्द से वही लोग समझे जाते हैं जो शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और उन्हीं लोगों को नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान देना जरूरी है। एक दूसरा वर्ग भी जो सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है और उसे भी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान मिलना चाहिए। जो लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं उनको खंड 10(3) में जो 'backward' शब्द रखा गया है उससे कोई दिलचस्पी नहीं है।

इसका स्पष्ट चित्र सामने रखने के लिये मैं यह बताता हूं कि मैसूर में इस सम्बन्ध में क्या होता है। वहां नौकरियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है ए क्लास और बी क्लास। ए क्लास की जगहों के लिए ब्राह्मण तथा अब्राह्मण दोनों ही आवेदन करने के अधिकारी हैं पर बी क्लास की जगहों के लिए केवल पिछड़े हुए वर्ग को आवेदन करने का हक है। पिछड़े हुए वर्गों के लोग दो प्रकार की अयोग्यताओं के शिकार हैं। सामाजिक अयोग्यतायें एवं शिक्षा सम्बन्धी अयोग्यतायें दोनों ही उनमें वर्तमान हैं। इन दोनों अयोग्यताओं को ध्यान में रख कर ही रियासत की सरकार ने बी श्रेणी की जगहों के लिए पिछड़े हुए वर्ग को रखने की विशेषतौर पर व्यवस्था की हैं इसलिए यह उचित है, श्रीमान्, कि 'backward' शब्द जो अनुच्छेद 10(3) में आया है वह रखा जाये। जैसा कि माननीय डा. अम्बेडकर ने बताया है, 'backward' शब्द इस कारण रखना भी आवश्यक है कि अगर अनुच्छेद 10 के खंड (3) में यह रखा जाता है तो अनुच्छेद 10 के खंड (1) और (2) दोनों ही व्यर्थ हो जायेंगे।

***उपाध्यक्षः** खेद के साथ कहना पड़ता है कि और भी सदस्य बोलने वाले हैं।

***श्री टी. चान्नियाः** वस्तुतः मुझे खेद है कि माननीय पं. कुंजरू यह समझते हैं कि पिछड़े हुए वर्ग को केवल 10 वर्षों के लिए यह आरक्षण मिलना चाहिए।

[श्री टी चान्निया]

मैं तो कहूंगा श्रीमान्, कि 150 वर्षो के लिए आरक्षण मिलना चाहिए, क्योंकि उतने ही काल तक पिछड़े हुए वर्गों को इस अधिकार से वंचित रखा गया है।

*__उपाध्यक्षः__ श्री चान्निया, क्या कृपा कर अब आप अपनी जगह लेंगे?

श्री सान्तनु कुमार दास (उड़ीसा : जनरल)**:** सभापति महोदय, बैकवर्ड क्लास पर जो बहस हो रही है, इसके बारे मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं। हमारे देश में विदेशी हुकूमत से बुरा असर पड़ा है। इसलिये हम साहस नहीं कर सकते हैं कि यह रिज़र्वेशन कांस्टीट्यूशन में से अभी दूर कर दें। और जब तक यह परिस्थिति रहेगी, तब तक हम हरिजनों में या शिड्यूल्ड कास्ट जो बैकवर्ड क्लास में आ जाते हैं रिज़र्वेशन एम्प्लायमेंट में डिमांड करते रहेंगे। हम देखते रहेंगे कि उसमें कितने हरिजन कितने मुसलमान, क्रिश्चियन हैं। आज कल माइनारिटी लोगों में यह डर रहता है कि रिज़र्वेशन के रहने पर एलेक्शन में और सर्विसेज़ में यह स्थान नहीं पायेंगे। आप देखते हैं कि रेलवे डिपार्टमेंट में कितनी वैकैंसी हैं। इसके लिए आप ऐडवाइस करते हैं हम लोग एक-एक परचा पा जाते हैं हमारे कैन्डिडेट्स कितनी दूर-दूर से अपने एक्सपेंस पर इन्टरव्यू के लिए जाते हैं, मगर कोई उनको नहीं पूछता है। और जो आगे से करते हैं, वह इसमें घुस जाते हैं। क्योंकि डिपार्टमेंटों में उनकी स्ट्रांग बैकिंग होती हैं। आपके एडवर्टिज़मेंट से हम क्या फायदा पाते हैं? लेकिन समय आने पर हमको कोई नहीं पूछता है। फिर आखिर आप एडवर्टाइज़ क्यों करते हैं? क्या सिर्फ पंडित जी और सरदार जी को संतुष्ट करने के लिए?

*__उपाध्यक्षः__ आप तो मूल बात से बहक गये।

श्री सान्तनु कुमार दासः इसमें शेड्यूल्ड कास्ट्स और माइनारिटी वाले गजेटेड आफिसर भी मुसीबत में पड़ते हैं। अभी पब्लिक सर्विस कमीशन के बारे में दामोदरस्वरूप सेठ जी ने कहा कि पब्लिक सर्विस कमीशन है तो रिज़र्वेशन की कुछ जरूरत नहीं है। मैं बतलाऊंगा कि पब्लिक सर्विस कमीशन है, कैन्डिडेट्स आते हैं, इम्तिहान देते हैं, जो फर्स्ट होकर रह जाते हैं, उनका नाम भी लिस्ट में आ जाता है। मगर जब काम में जाने का वक्त आता है, तब जो इम्तिहान नहीं देते हैं, वह लोग आकर काम में घुस जाते हैं। यह कैसे होता है? स्ट्रौंग बैकिंग रहती है यह काम खत्म कर देते हैं। मुझे डर है कि पब्लिक सर्विस

कमीशन रहने से कुछ फायदा नहीं होगा। अब रिज़र्वेशन एलेक्शन में होता है। इसलिए हम यहां आकर हमारे सवाल पर बहस कर सकते हैं। जब रिज़र्वेशन एलेक्शन में नहीं रहता तो हम यहां नहीं आ सकते क्योंकि जनरल एलेक्शन में हम नहीं मिल सकते हैं। अभी तो हम यहां आकर माइनोरिटी के सवाल पर बहस नहीं देखा करते थे। मैं इसलिए कहता हूं कि रिज़र्वेशन इन सर्विसेज़ एण्ड एलेक्शन्स रहना चाहिए।

और एक बात है। रिज़र्वेशन दस वर्ष के लिए रहता है। दस वर्ष क्यों? जब दो वर्ष में हम समान अधिकार पा जाते हैं तो दो वर्ष में सब एक हो सकता है। फिर रिज़र्वेशन की जरुरत नहीं होगी।

मैं इतना कह कर इसका समर्थन करता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं आपसे यह निवेदन करूंगा श्रीमान्, कि हम में से बहुत से सदस्य यह नहीं पसन्द करते कि मार्शल वक्ता के पास जाकर उसे बैठने के लिये कहें।

***उपाध्यक्ष:** मार्शल ने जो कुछ किया है उसके लिये मुझे खेद है पर उन्होंने मेरे आदेश पर ऐसा नहीं किया है। वह खुद ही आवश्यकता है अधिक उत्साही हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): आपने समय की पाबन्दी का जो उल्लेख किया है उसके सम्बन्ध में एक निवेदन करना चाहता हूं। वक्ताओं में अधिकतर हरिजन बन्धु ही हैं और स्थिति पर प्रकाश डालने में उन्हें कुछ समय जरूर लगेगा। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि समय कुछ बढ़ा दें ताकि वे अनुच्छेद पर रोशनी डाल सकें और उसका अच्छी तरह समर्थन कर सकें।

***उपाध्यक्ष:** हां।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 10 का समर्थन करने के लिये यहां खड़ा हुआ हूं जिस पर सभा में अभी विचार किया जा रहा है। इसका समर्थन करने से पहले मैं मसौदा-समिति के उस मित्र को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अनुच्छेद 10(3) में 'backward' शब्द को रखा। अगर यह शब्द यहां न होता तो परिगणित जातियों का प्रयोजन उतना सिद्ध न होता जितना कि होना चाहिए। इनकी अवस्था का ज्ञान यहां मेरे कई मित्रों ने कराया है जिन्होंने यहां

[श्री एच.जे. खांडेकर]

वक्तृतायें दी हैं। उनकी अवस्था बड़ी ही दयनीय है। इनके उम्मीदवार जब किसी सरकारी नौकरी के लिए दरख्वास्त देते हैं तो वह चुने ही नहीं जाते क्योंकि उम्मीदवारों को जो लोग चुनते हैं वह हरिजन सम्प्रदाय के नहीं होते। इस सम्बन्ध में मैं बहुत से उदाहरण पेश कर सकता हूं क्योंकि देश के प्राय: सभी प्रान्तों का मुझे अनुभव है। समुचित योग्यता होने पर भी हरिजन उम्मीदवार को नौकरियों में मौका नहीं दिया जाता और उनके साथ न्याय का बर्ताव भी नहीं किया जाता है। अच्छा होता कि यहां 'Scheduled Castes'' शब्द यहां रखा जाता जैसा कि मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने संशोधन रखा था। 'Backward' शब्द बड़ा ही अस्पष्ट है और फिर इसकी कहीं परिभाषा भी नहीं दी गई है। मैं अपने मित्र श्री चन्द्रिका राम के इस कथन से सहमत नहीं हूं कि जनगणना सम्बन्धी रिपोर्ट में इस शब्द की परिभाषा दी गई है। वहां 'Scheduled Castes' की परिभाषा दी गई है और इसमें आने वाली जातियों की एक तालिका शामिल कर दी गई है। किन्तु मैं समझता हूं कि ''backward'' शब्द रखने वाले मित्र का अभिप्राय है उस सम्प्रदाय से जो परिगणित जाति के नाम से ज्ञात है। विधान के पास हो जाने पर जब यह खंड अमल में आयेगा, आशा है उस समय अधिशासी वर्ग, जो इस खंड को अथवा इस विधान को कार्यान्वित करेगा, वह भी इस backward शब्द से परिगणित जातियों को ही लेगा। हमारे श्रद्धेय नेता श्री ठक्करबापा यहां सभा में उपस्थित हैं। हरिजन सेवक संघ के प्रधानमंत्री के रूप में वह आज प्राय: 16 वर्षो से इस समाज के लिए कार्य करते आ रहे हैं। वह जानते हैं कि इस समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी क्या-क्या कठिनाइयां हैं। इन सभी बातों को अलग रखकर अगर आप केवल राजनैतिक दृष्टि से ही देखें तो पता चलेगा कि अगर स्थान सम्बन्धी आरक्षण न हो तो उस समाज को कहीं भी कोई प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त होता है।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा हो अगर इस अनुच्छेद तक ही अपनी बातें सीमित रखें। इसमें राजनीति की चर्चा कैसे आ सकती है?

***श्री एच.जे. खांडेकर:** इस सम्प्रदाय की राजनैतिक अवस्थिति की चर्चा न भी करें और केवल इसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं धार्मिक स्थिति को ही लें तो इन सभी बातों में भी इस समाज की अवस्था देश के अन्य किसी भी वर्ग से अधिक सोचनीय है। मैं तो कहूंगा, श्रीमान्, कि परिगणित जाति का

उम्मीदवार जब भारत सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों की किसी जगह के लिए आवेदन करता हैं तो साधारणतया उसके आवेदन की उपेक्षा ही की जाती है। उम्मीदवारों की भरती के लिए कई कमीशन हैं। इसके लिए फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन है और प्रान्तीय कमीशन भी हैं। आप तो जानते ही हैं, श्रीमान्, कि शिक्षा में हम पिछड़े हुए हैं और अन्य सम्प्रदायों के मुकाबले में हम आ नहीं सकते। अगर भरती करने में हरिजन उम्मीदवारों को योग्यता के सम्बन्ध में कुछ छूट नहीं दी जाती है, वह ब्राह्मण समाज या सवर्ण हिन्दू समाज के उम्मीदवारों के मुकाबले में आ नहीं सकते। अब अगर हमारे उम्मीदवार फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन या प्रान्तीय कमीशनों के सामने जाते हैं तो उन्हें कभी सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि इन कमीशनों में हमारे प्रतिनिधि हैं ही नहीं। इसलिये मैं समझता हूं कि फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन या प्रान्तीय कमीशनों को यह आदेश मिलना चाहिए कि इस अनुच्छेद पर अमल करने में वह हरिजन उम्मीदवारों या परिगणित जाति के उम्मीदवारों के सम्बन्ध में योग्यता की कुछ छूट दें और साथ ही इन कमीशनों में हमारे भी प्रतिनिधि रहने चाहियें। इसके अतिरिक्त मैं जानता हूं और यह सभा भी जानती है और आप भी जानते हैं कि भारत सरकार ने—मेरा मतलब है वर्तमान भारत सरकार से—नौकरियों के सम्बन्ध में परिगणित जातियों की बाबत एक सरकुलर भी जारी किया है। उसमें उन्होंने कहा है कि ऊंची नौकरियों में 12।। प्रतिशत जगहें हरिजनों के लिए सुरक्षित हैं और नीचे की नौकरियों में उसके लिये 16।। प्रतिशत जगहें सुरक्षित हैं।

किंतु अगर आप यह देखें श्रीमान्, कि इनकी भरती वस्तुत: कैसे हो रही है आपको पता चलेगा कि ऊंची नौकरियों में हमारे एक प्रतिशत भी उम्मीदवार नहीं रखे जाते और यही बात निम्न श्रेणी की नौकरियों में भी है। हमारी प्रान्तीय सरकारों को ही देखिए, जिनका संचालन आज हमारी जनता द्वारा चुने हुए मंत्री कर रहे हैं। इन प्रान्तों में भी हरिजनों को नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान प्राप्त नहीं है। इसलिए मुझे बड़ी खुशी होती अगर 'backward' शब्द के बाद ''शेड्यूल्ड कास्ट्स'' शब्द भी यहां रख दिए जाते क्योंकि 'backward' शब्द बड़ा अस्पष्ट है और जगहों की भरती में साम्प्रदायिकता की भावना जरूर आयेगी और कमीशन वहां कुछ न कर सकेगा। जैसा कि कई मित्रों ने यहां बताया है, साम्प्रदायिकता की भावना तथा प्रांतीयता का भाव सर्वत्र जोरों पर है और इसी प्रकार की अन्य कई अबोधनीय

[श्री एच.के. खांडेकर]

बातें हो रही हैं और अगर यह सब बातें यों ही चलती रही तो मुझे डर है कि इस खंड के अमल में आने पर भी परिगणित जातियों को नौकरियों में कभी मौका नहीं मिलेगा क्योंकि 'backward' शब्द का इस प्रकार भाष्य किया जायेगा कि हमें नौकरी पाने की कोई गुंजाइश न रहेगी और दूसरी जातियों के लोग अपने को पिछड़ा हुआ बता कर उन जगहों को ले लेंगे जो हमारे लिए सुरक्षित रखी गई हैं। इसलिए अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि जो भी निकाय इस अनुच्छेद को अमल में लाये, वह इतना शुद्ध हृदय हो कि परिगणित जातियों में तथा पिछड़े हुए लोगों की श्रेणी में आने वाले लोगों में कोई भेद-भाव न बरते। इन शब्दों के साथ मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 के खंड (3) में जिस प्रसंग में 'backward' शब्द रखा गया है उसमें उसका मतलब मैं नहीं समझ पाता हूं। मगर बिना इस शब्द के खंड को पढ़ा जाये तो उसका अर्थ साफ-साफ समझ में आ जाता है। किन्तु यह शब्द रख देने से अर्थ में बड़ी अस्पष्टता आ जाती है। विधान में कहीं भी 'backward' की परिभाषा नहीं दी गई है। किन्तु मैं आपको बताऊं कि कई जगहों में इसकी परिभाषा की गई है। मद्रास में इसका एक खास अर्थ है। वहां कई ऐसी जातियां और उपजातियां हैं जो 'backward' सम्प्रदाय में गणना की जाती है। मद्रास की सरकार ने 150 से अधिक जातियों को वहां 'backward' लोगों में रखा है और उस प्रान्त में 'backward' शब्द से वही 150 जातियों के लोग लिए जाते हैं और अन्य कोई भी सम्प्रदाय नहीं लिया जाता जो आमतौर पर पिछड़ा हुआ है। और मैं यह भी कह दूं कि यह जो 150 या इससे कुछ अधिक जातियां हैं उन्हीं की वहां की आबादी में अधिक संख्या है और वहां के बहुसंख्यक हिन्दू सम्प्रदाय के ही, यह जातियां अंग हैं। 'Backward' लोगों की सूची में वहां परिगणित जातियां नहीं रखी गई हैं और अगर इन्हें भी उसमें शामिल कर दिया जाये तो उन सबको मिला कर प्रान्त की आबादी में वही बहुसंख्यक होंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां 'backward' शब्द से उन्हीं पिछड़ी हुई जातियों को लेते हैं जिनको मद्रास सरकार ने अपने यहां 'backward' माना है। मैं यहां इस शब्द का अर्थ जानना चाहता हूं। मेरा कहना है कि इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि मुसलमान और ईसाई

जैसे अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का पिछड़ा हुआ वर्ग तथा परिगणित जातियां इस खंड के दायरे के बाहर हैं। सच तो यह है कि अल्पसंख्यकों में भी पिछड़े हुए लोग वर्तमान हैं। ईसाई भी पिछड़े हुए हैं। प्रान्तीय नौकरियों में उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिला है। यही बात मुसलमानों और परिगणित जातियों के साथ है। अगर पिछड़े लोगों के पक्ष में कोई प्रावधान करना है, तो वह इन लोगों के लिए भी लागू होना चाहिए जो वस्तुतः पिछड़े हुए हैं। मैं यहां यह बता दूं कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सिलसिले में अनुच्छेद 296 के अधीन ऐसा प्रावधान किया गया है। किन्तु वहां अनुच्छेद में इन लोगों के लिए नौकरियों में आरक्षण की बात नहीं कही गई है जैसा कि इस खंड (3) में कहा गया है। इसलिए मूलाधिकारों में तथा इस स्थल पर ही मुसलमान, ईसाई तथा परिगणित जाति जैसे अल्पसंख्यकों के लिए ऐसा प्रावधान करना जरूरी है।

और फिर पं. कुंजरू ने जो संशोधन रखा है उसके मैं विरुद्ध हूं, श्रीमान्। वह कहते हैं कि सरकार को यह अधिकार होगा या उसकी इच्छा पर यह निर्भर करेगा कि दस वर्षों के लिए वह आरक्षण की व्यवस्था रखे। ऐसे कामों के लिए हमें समय के आधार पर कोई मापदंड नहीं नियत करना चाहिए। इन लोगों की अनुन्नति एवं मन्दता तो उन अवस्थाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है जो आज कई शताब्दियों से बल्कि युगों से चली आ रही है और आसानी से इनका अन्त नहीं किया जा सकता। इसलिए इस सम्बन्ध में हमारा वास्तविक मापदंड यह होना चाहिए कि इन दुखस्थाओं के विनाश के लिए हम किन उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं और उनके फलस्वरूप इन लोगों में कितनी उन्नति हुई है। इसलिए जब ये लोग उन्नत हो जायेंगे और देश के अन्य वर्गों के समकक्ष आ जायेंगे तो ये आरक्षण स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। मेरा ऐसा ख्याल है कि इसके लिए कोई अवधि नियत करना आवश्यक नहीं है। हो सकता है कि 10 वर्ष से भी कम में यह सम्प्रदाय उन्नत हो जाये या हो सकता है 10 वर्ष से भी इसमें ज्यादा लग जाये। जैसा कि मैंने कहा है इस सम्बन्ध में मापदंड यही होना चाहिए कि अनुन्नति उत्पन्न करने वाली अवस्थाओं के विनाश के लिए जो उपाय काम में लाये जा रहे हैं उनका कितना प्रभाव पड़ा है और कितनी सफलता मिलती है। अब मैं प्रस्तावक महोदय से अनुरोध करूंगा कि 'backward' शब्द को यहां से

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

हटा दें और यहां सभा में इसे स्पष्ट कर दें कि इस खंड में आरक्षण की जो बात कही गई है वह उन सभी अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिए लागू है जिन्हें ऐसे आरक्षणों की आवश्यकता है।

अब सिर्फ एक बात और है जिसका मैं उल्लेख करूंगा। श्रीमान्, जब भी हम आरक्षणों की, अधिकार एवं विशेषाधिकारों की चर्चा करते हैं तो साम्प्रदायिकता का हौवा खड़ा किया जाता है। अगर लोग अपने अधिकारों की मांग करते हैं तो इसमें साम्प्रदायिकता की कोई बात नहीं है। जब लोग यह देखते हैं कि उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं प्राप्त है तो ठीक ही उनको यह ख्याल होता है कि उनको समुचित प्रतिनिधान मिलना चाहिए और ऐसी हालत में ऐसी मांग सामने आती है। यह मांग इसलिए वह करते हैं कि नौकरियों में उनको प्रतिनिधान प्राप्त नहीं है जिससे उनको असंतोष है। यह असंतोष दूर होने पर लोगों के दिल एक हो जायेंगे। दिलों की एकता से ही देश की और देशवासियों की भलाई होगी और ऊपरी एकता का हम जो भी प्रयास करेंगे वह व्यर्थ है। अन्तर तो रहेगा ही फिर भी जहां तक हो अनुरूपता रहनी चाहिए और हम सब यही चाहते हैं कि देश में अनुरूपता हो। यह अनुरूपता हम देशवासियों में संतोष-भावना लाकर ही प्राप्त कर सकते हैं। लोगों में संतोष-भावना लाने के लिए नौकरियों में आरक्षण देना भी एक उपाय है जिसे हम बरत सकते हैं। तब आप लोगों से कह सकते हैं ''देखिये आप लोगों को नौकरियों में समुचित जगहें मिल गई हैं और अब आपको कोई शिकायत न होनी चाहिए।'' जब ये लोग यह देखेंगे कि इन्हें भी औरों के समान ही अवसर मिल रहे हैं तो इनमें एकता आ जायेगी और फिर इस तथाकथित साम्प्रदायिकता का कोई प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। ऐसे बहुत से देशों की मिसाल हमारे सामने मौजूद है जिन्होंने इस पद्धति को अपनाकर, जिसकी कि हम यहां प्रशंसा कर रहे हैं, सफलता प्राप्त की है और साम्प्रदायिकता-सम्बन्धी समस्या का अन्त कर दिया है। इसलिए मेरा यह कहना है कि अनेकता दूर करने और एकता लाने का यह भी एक उपाय है कि सरकारी नौकरियों में लोगों के प्रतिनिधान की व्यवस्था की जाये और उनके मन में यह भाव उत्पन्न किया जाये कि देश के शासन में उनका वास्तविक रूप में हाथ है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, जिस बात पर मैं सभा के सामने जोर देना चाहता हूं उसकी एक या दो सदस्यों ने चर्चा कर दी है। माननीय पं. कुंजरू ने कहा है कि वह यह जानना चाहते हैं कि अनुच्छेद 10 और 296 में क्या सम्बन्ध है। अनुच्छेद 10 में यह कहा गया है कि ''सब नागरिकों (जानपदों) को राज्याधीन नियुक्ति के विषय में अवसर-समता होगी।'' इसका यही अर्थ हुआ कि जब जगहों पर नियुक्तियां होंगी तो खुली प्रतियोगिता के आधार पर लोग रखे जायेंगे और चोटी के लोग ही लिए जायेंगे। यह तो ठीक ही है और यही पद्धति बरती जानी चाहिए।

किन्तु जब हम अनुच्छेद 296 तथा 297 को लेते हैं तो यह देखते हैं कि इन दोनों में यह कहा गया है कि अल्पसंख्यकों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा। अनुच्छेद 296 कहता है:

> ''Subject to the provisions of the next succeeding article the claims of all minority communities shall be taken into consideration, consistently with the maintenance of efficiency of administration, in the making of appointments...''
>
> (अगले अनुगामी अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन रहते हुए... नियुक्तियों में प्रशासन दक्षता के संधारण का ध्यान रखते हुए सब अल्पसंख्यक समुदायों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा।)

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों अनुच्छेदों में कुछ परस्पर विरोध है। अगर खुली प्रतियोगिता और योग्यता के आधार पर ही उन जगहों को भरना है तो अवश्य ही अल्पसंख्यकों के दावों को हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। उस हालत में तो सर्वोत्तम व्यक्ति ही लिए जायेंगे और अगर अल्पसंख्यकों के कुछ लोग आ जाते हैं तो यह इस कारण से नहीं कि अल्पसंख्यक समझ कर उनके दावों का ध्यान रखा गया है बल्कि इस कारण कि अनुच्छेद 10 के अधीन भारतीय नागरिक की हैसियत से उन्हें अवसर-समता प्राप्त थी। मगर खुली हुई प्रतियोगिता में ये सफल होते हैं और इन्हें जगहें मिलती हैं तब तो ठीक ही है, किन्तु मगर इस प्रणाली से उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिल पाता है तो उस हालत के लिए अनुच्छेद 296 यह कहता है कि उनका विशेष रूप से ध्यान रखा जायेगा और ऐसा किया जायेगा कि उनको पर्याप्त प्रतिनिधान प्राप्त हो जाये।

मेरा कहना यह है, श्रीमान्, कि दो ही बातें हो सकती हैं। या तो सबको समान अवसर दिया जायेगा या किसी के लिए खासतौर पर ख्याल किया जायेगा।

[सरदार हुकुम सिंह]

अनुच्छेद 10 का कहना है कि सबको अवसर-समता होगी और इसके बाद ही एक निषेधात्मक खंड द्वारा इस बात पर जोर दिया जाता है कि धर्म या जाति के आधार पर किसी नागरिक के विरुद्ध कोई भेदभाव न बरता जायेगा। यह तो बिल्कुल दुरुस्त है; किन्तु जब यह नहीं बताया गया है कि अनुच्छेद 296 का यह अनुच्छेद अतिक्रमण या 296 स्वतंत्र रहेगा तो जरूर ही हम यह नहीं समझ पाते हैं कि इन दोनों का सम्बन्ध क्या होगा। उस हालत में अल्पसंख्यकों की क्या गति होगी? अनुच्छेद 10 के खंड (3) में यह नई शब्दावलि 'backward class of citizens'' (पिछड़े हुए जानपद वर्ग) रखी गई हैं 'दलित वर्ग' या 'परिगणित जातियां' यह सब नाम तो हमने सुने हैं पर जहां तक हमारे प्रदेश या प्रान्त का सम्बन्ध है, हमने 'backward class of citizens' को कभी किसी कानून में प्रयुक्त होते नहीं देखा। अभी-अभी हमें यह बताया गया है कि 'backward classes' की परिभाषा मद्रास प्रान्त में दी गई है। वहां यह बात हो सकती है पर मुझे इसकी जानकारी नहीं है। एक तरफ तो इस नये शब्द से परिगणित जातियों के सदस्य आशंकित हो गये हैं और यहां इस बात पर जोर दे रहे हैं कि यह बात स्पष्ट बता देनी चाहिए कि यह शब्द केवल उनके लिए ही लागू है और यह उनके फायदे के लिए रखा जा रहा है या नहीं। दूसरी तरफ इससे अल्पसंख्यक वर्गों को यह आशंका हो रही है कि उनको 'backward' तो नहीं गिना जा रहा है और जैसा कि पं. कुंजरू ने कहा 'backward classes' में अल्पसंख्यकों के लोग भी शामिल किये जायेंगे या नहीं और अगर उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिला है तो उनके साथ कोई रियायत की जायेगी या नहीं और अगर 'backward class' में उनको शामिल नहीं किया जाता है तो अनुच्छेद 296 के अधीन उनकी क्या गति होगी। जब तक इन अनुच्छेदों में—10 तथा 296—समन्वय नहीं कर दिया जाता तब तक अनुच्छेद 296 द्वारा प्रावहित संरक्षण भ्रमात्मक ही रहेंगे और हम लोगों के मन में यह आशंका बनी रहेगी कि इस अनुच्छेद से हमें कुछ लाभ भी होगा या नहीं।

*श्री के.एम. मुंशी: उपाध्यक्ष महोदय, यहां सभा में जो आलोचना हुई है वह मुख्यत: दो ही बातों को लेकर हुई है। एक तो संशोधन नं. 82 के दायरे के सम्बन्ध में और दूसरे 'backward' शब्द को लेकर मैं पहली बात के सम्बन्ध में,

और खास करके माननीय मित्र श्री गुप्त जी ने जो कुछ कहा है तथा माननीय मित्र श्री कामत ने जो टिप्पणी की है उसके सम्बन्ध में पहले बोलना चाहता हूं।

मैं चाहता हूं कि सभा यह समझे कि इस अनुच्छेद का दायरा क्या है? अनुच्छेद 10 के खंड (2) में सभा ने और बातों के साथ 'residence' को भी जोड़ दिया है।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): यह जोड़ा तो नहीं गया है। इसका अभी केवल सुझाव आया है।

*__श्री के.एम. मुंशी:__ यह प्रस्ताव रखा गया है कि यह शब्द जोड़ दिया जाये। खैर, मेरी गलती सुधार दी गई है। हमने इस आशय का एक संशोधन रखा है जिसका मतलब यह है कि हम इसका समर्थन करने जा रहे हैं और आशा है हमें सभा का भी समर्थन मिलेगा। प्रस्तुत संशोधन अनुच्छेद 10(2) में 'residence' शब्द रखना चाहता है और उस शब्द के आ जाने का अर्थ यह होगा कि कोई भी राज्य यहां तक कि म्युनिसिपल बोर्ड और स्थानीय बोर्ड जैसा कोई स्थानीय प्राधिकारी भी इस आशय का नियम नहीं बना सकता है कि किसी पदधारी या नियुक्त कर्मचारी के लिए उस स्थान विशेष का निवासी होना आवश्यक होगा। इससे बड़ी ही असुविधा खड़ी हो जायेगी। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊं कि 'office' और 'employment' शब्द को अलग-अलग रखने के लिए एक संशोधन आया है। उसमें वह भी पद (office) आ जायें जो अवैतनिक हैं। किसी जिला-बोर्ड के चेयरमैन को ही उदाहरण के लिए ले लीजिए। हो सकता है कि प्रान्तीय विधान-मंडल के लिए निवास-सम्बन्धी प्रतिबन्ध रखना जरूरी हो जाये। किन्तु प्रान्तीय विधान-मंडल को ऐसा करने का अधिकार नहीं हो सकता है जब तक कि सभा माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी के संशोधन को स्वीकार न कर ले। इस संशोधन का कुल उद्देश्य यही है कि निवास विषयक खंड के अनुसार अगर निवास के बारे में कोई प्रतिबंध रखना आवश्यक ही हो तो इसे केवल संसद यानी केन्द्रीय विधान-मंडल ही करे। इस परिवर्तन का कारण यह है कि योग्यता या पात्रता के सम्बन्ध में जो भी नियम हो वह समूचे देश में एक तरह का हो और ऐसा न हो कि कोई विधान-मंडल इस प्रावधान का दुरुपयोग करके निवास के सम्बन्ध में कोई असम्भव शर्त रख दे।

[श्री के.एम. मुंशी]

दूसरी कठिनाई जो कतिपय सदस्यों के दिमाग में आ रही है वह है 'स्टेट' शब्द को लेकर। विधान में 'स्टेट' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है और मैं सभा का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट करूंगा। संशोधन में कहा गया है कि: "Any State for the time being specified in Schedule I." (कोई राज्य जो उस समय के लिए अनुसूची 1 में उल्लिखित हो)। इसलिए हमें 'स्टेट' शब्द का अर्थ जानना होगा। अब मैं अनुच्छेद 1 का उल्लेख करूंगा जिससे कहा गया है: "भारत राज्यों का संघ होगा। राज्यों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य अभिप्रेत होंगे।"

अब अगर प्रथम अनुसूची को देखें तो उसका शीर्षक यों है: "भारत के राज्य और राज्यक्षेत्र"। जहां तक प्रथम अनुसूची का सम्बन्ध है भाग 1, 2 और 3 में ऐसे राज्यों का उल्लेख है जो स्वायत्त-शासन प्राप्त इकाइयों के रूप में हैं। पर भाग 4 में जिन राज्यक्षेत्रों का उल्लेख है वह है अंडमान और निकोबार के द्वीप-समूह। इस 'Any State for the time being specified in the First Schedule" के अन्दर वही राज्य आयेंगे जिनका उल्लेख भाग 1, 2 और 3 में किया गया है, पर अंडमान और निकोबार के द्वीप-समूह इसमें नहीं आ सकेंगे।

एक या दो मित्रों को "स्टेट" शब्द की परिभाषा को लेकर कुछ कठिनाई दिखाई दे रही है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं अपने विद्वान् मित्र श्री मुंशी का ध्यान प्रथम अनुसूची में प्रयुक्त भाषा की ओर आकृष्ट करूंगा। भाग 1 में 'territories' (राज्यक्षेत्र) का भी उल्लेख है। वहां कहा गया है कि: "इस संविधान के प्रारम्भ होने से सद्य पूर्व शासक के प्रान्तों के नाम से निम्न प्रकार ज्ञात राज्यक्षेत्र।" यहां जो 'territory' (राज्यक्षेत्र) शब्द का प्रयोग हुआ है और वह केवल अंडमान और निकोबार द्वीप-समूहों के सम्बन्ध में ही नहीं प्रयुक्त हुआ है। भाग 1, 2 और 4 में 'territory' (राज्यक्षेत्र) शब्द रखा गया है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा अगर मेरे मित्र करें तो मुझे निश्चय है कि वह यह समझ जायेंगे, पर हां, अगर वह न समझने पर ही उतारू हो गये हों तो बात दूसरी है।

श्री एच.वी. कामतः यह बात तो माननीय वक्ता पर ही लागू होती है श्रीमान्।

***श्री के.एम. मुंशीः** मैं यह कह रहा हूं कि आप अनुच्छेद 1 के शब्दों को देखिये। वहां कहा गया है ''The State shall mean the State, etc.'' (राज्यों से अभिप्रेरित होंगे वे राज्य...) इसके अन्तर्गत संघ का केन्द्रीय शासन नहीं आता। इसका मतलब है स्वायत्त-शासन प्राप्त राज्यों से जिनका उल्लेख भाग 1, 2 और 3 में किया गया है। भाग 4 में सम्बन्ध में अनुच्छेद 1(3) (ख) में यहां कहा गया है ''कि प्रथम अनुसूची में भाग 4 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य-क्षेत्र''।

इसलिए निकोबार द्वीप-समूह, अनुच्छेद 1 के अर्थ में राज्य नहीं माने जा सकते हैं। वे केवल राज्य-क्षेत्र हैं। इन राज्य क्षेत्रों का शासन उनके अपने किसी विधान-मंडल द्वारा नहीं होता और न वे स्वायत्त-शासन प्राप्त राज्य ही हैं। उन पर तो सीधे केन्द्र का ही नियंत्रण है और केन्द्र अपनी ही नौकरियों के सम्बन्ध में यह भेद नहीं बरत सकता कि उम्मीदवार इस प्रान्त का है या उस प्रान्त का है। केन्द्र तो अपने हर नागरिक को समदृष्टि से ही देखेगा। इस रोशनी में देखने से पता चलेगा कि इस संशोधन का मतलब यही है कि भाग 1, 2 और 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में तथा इन राज्यों के अधीन पदों के सम्बन्ध में विधान-मंडल निवास सम्बन्धी प्रतिबंध आरोपित कर सकता है।

दूसरी कठिनाई उपस्थित की गई थी अनुच्छेद 7 के सम्बन्ध में। इस अनुच्छेद में ''The State'' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस शब्द का एक खास अर्थ हो गया है और यह केवल उन्हीं ''the State'' शब्दों के लिए लागू है जो विधान के भाग 3 में प्रयुक्त हुए हैं अर्थात् जो मूलाधिकारों के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अनुच्छेद 1 में अथवा अनुसूची ने प्रयुक्त 'स्टेट्स' (राज्य) के लिए यह लागू नहीं होते। इसलिए जब इस विचाराधीन संशोधन में जहां ''any State'' आया है तो इसका अर्थ अनुच्छेद 7 में व्यक्त ''the State'' से नहीं है। मैं कहूंगा कि इस संशोधन से यह बिल्कुल साफ है कि प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उल्लिखित राज्यों के अधीन जो नौकरियां हैं उन्हीं के प्रयोजन के लिये ही केन्द्रीय विधान-मंडल कानून बना सकता है और न कि राज्यक्षेत्र के किसी ऐसे भाग के लिए जिस पर सीधे केन्द्रीय शासन का ही नियंत्रण है। मेरा कहना है कि अगर अपने एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के नागरिकों में भेद बरतता

[श्री के.एम. मुंशी]

है तो यह सिद्धान्ततः गलत है। इसलिए यह जो संशोधन है वह बिल्कुल सही है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ उपाध्यक्ष महोदय, अगर मैंने मित्र की बातों को ठीक-ठीक सुना है तो उन्होंने अभी-अभी यह कहा है कि ''any State'' शब्द प्रथम अनुसूची के केवल भाग 1, 2 तथा 3 के सम्बन्ध में ही आये हैं। अगर यही बात है तो आप साफ-साफ इस संशोधन में यही क्यों नहीं रखते कि ''any State for the time being specified in Part I, II, and III of the First Schedule'' ताकि यह विवाद ही समाप्त हो जाये?

*__श्री के.एम. मुंशीः__ विनम्रतापूर्वक मैं अपने मित्र को यह बताऊं कि प्रथम अनुसूची का शीर्षक अनुच्छेद 1 और 4 के प्रयोजन के लिये यों है: ''The States and territories of India'' (भारत के राज्य तथा राज्य-क्षेत्र) और निकोबार द्वीप-समूह राज्यक्षेत्र हैं, राज्य नहीं। इसलिए जो भी व्यक्ति इन दोनों अनुच्छेदों की तुलना करेगा उसकी समझ में यह बात साफ आ जायेगी। मुझे इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ यदि मसौदा-समिति के बुद्धि-सम्पन्न सदस्य ऐसा ही समझते हैं तो मैं इस बात पर जोर नहीं देना चाहता क्योंकि अन्ततोगत्वा इस संशोधन के सम्बन्ध में उनकी ही बात रहेगी।

__श्री के.एम. मुंशीः__ मेरा ख्याल है कि मैंने सभा को यह बात साफ-साफ समझा दी है और अब उसे इसका अर्थ स्पष्ट हो गया होगा। मेरी ओर से इस सम्बन्ध में और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरी बात जो यहां उठाई गई है वह है 'backward' शब्द के सम्बन्ध में और अवश्य ही मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर आम बहस का जवाब देते समय इसकी व्यापक व्याख्या करेंगे। किन्तु इस सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण है जिसे मैं सभा के समक्ष उपस्थित करूंगा। मैं परिगणित जातियों का सदस्य नहीं हूं और जो दृष्टिकोण मैं यहां रख रहा हूं उसे शायद मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर और विशद् रूप में रख सकते हैं। 'backward' शब्द के प्रयोग से कहीं उनके अधिकारों, विशेष सुविधाओं और अवसरों में कमी न आ जाये, ऐसी आशंका परिगणित जाति के कई सदस्यों ने यहां व्यक्त की है। मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर

पाता हूं कि विधान-परिषद् के एक या डेढ़ वर्ष के अनुभव के बाद भी कोई हरिजन सदस्य आखिर कैसे यह सोच सकता है कि वे लोग पिछड़े हुए न माने जायेंगे। जब तक वह पिछड़े हुए हैं, जरूर ही उनकी शुमार 'backward' में की जायेगी। मैं तो उस समय की भी कल्पना नहीं कर पाता हूं जब भारतवर्ष में कोई पिछड़ा हुआ वर्ग होगा, जिस में हरिजन न शामिल किये जायेंगे। किन्तु जिस बात की ओर मैं सदस्यों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं वह यह है। आज डेढ़ साल से यहां सभा में क्या होता आ रहा है इसको जरा सोचिये। अनुच्छेद 11 को लीजिए। जब से विधान का मसौदा अल्पसंख्यक-समिति एवं मूलाधिकार-समिति की उपसमिति के समक्ष रखा गया है, एक भी गैर हरिजन सदस्य ने कभी कोई आपत्ति इसके सम्बन्ध में नहीं उठाई। बल्कि इसके विपरीत हम सदस्य, जो हरिजन सम्प्रदाय के नहीं हैं, इस सम्बन्ध में सदा सबके आगे रहे हैं और इस अनुच्छेद को स्वीकृत देखने के लिये प्रयत्नशील रहेंगे ताकि हमारे देश पर जो कलंक-कालिमा लगी है वह मिट जाये। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि अनुच्छेद 296 को तथा इस विशेष प्रावधान को भी अन्य सम्प्रदाय के सदस्यों ने ही यहां उपस्थित किया है और इनका पूर्णत: समर्थन किया है और सम्पूर्ण सभा का उन्हें समर्थन प्राप्त हुआ है। इसलिये यह आशंका तो होनी ही नहीं चाहिए कि यह सभा अभी या आगे चलकर कभी हरिजन बन्धुओं के विरुद्ध कोई भेदभाव बरतेगी। मेरी समझ से ऐसी आशंका बिल्कुल निराधार है। इस खंड द्वारा हम दो अभिप्राय सिद्ध करना चाहते हैं। एक तो यह है कि मूलाधिकार के अधीन राज्याधीन नौकरियों में हमें चरम सीमा की कार्य-कुशलता उपलब्ध हो सके—ऐसी कार्य-कुशलता जिससे राज्याधीन नौकरियों का सारा काम बड़ी शीघ्रता से और प्रभावकारी रूप में ठीक-ठीक चलता रहे। और साथ ही, देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में आज जो अवस्था वर्तमान है उसको देखते हुए, हम यह भी चाहते हैं कि पिछड़े हुए वर्ग को—उन वर्गों को जो वस्तुत: पिछड़े हुए हैं—सरकारी नौकरियों में जगह मिले क्योंकि यह देखा गया है कि सरकारी नौकरियों के पाने से व्यक्ति का दर्जा ऊंचा हो जाता है और उसे देश की सेवा करने का अवसर मिलता है। हम चाहते हैं कि यह अवसर हर सम्प्रदाय को दिया जाये, यहां तक कि पिछड़े हुए लोगों को भी दिया जाये। ऐसी स्थिति में हमें एक ऐसा शब्द ढूंढ़ना ही होगा जो व्यापक हो और उसके लिए 'backward' क्लासेज़' शब्द यथासम्भव सर्वोत्तम है। आप इसे अनुच्छेद 301 के साथ मिलाकर पढ़िये तो यह साफ हो जायेगा कि 'backward' उस जन-समुदाय के लिए प्रयुक्त हुआ है—चाहे आप उसको स्पृश्य कहिए या अस्पृश्य, चाहे वह

[श्री के.एम. मुंशी]

किसी भी सम्प्रदाय का हो—जो इतना पिछड़ा हुआ है कि उसके लिए सरकारी नौकरियों में विशेष रूप से आरक्षण देना जरूरी हो। 'backward' शब्द के सम्बन्ध में किसी भी सदस्य को कोई आशंका हो, इसका कोई कारण मैं नहीं देख पाता।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** यह तो अपने पक्ष को स्वयं सिद्ध मान लेना है और बार-बार एक ही घेरे में चक्कर काटना है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरे माननीय मित्र के प्रयास के बावजूद भी मैं तो घेरे को नहीं देख पाता हूं।

***एक माननीय सदस्य:** 'backward' क्लासेज का जो उल्लेख किया गया है, आखिर वे कौन लोग हैं?

***श्री के.एम. मुंशी:** अनुच्छेद 301 में यह साफ-साफ कहा गया है कि कौन-कौन लोग पिछड़े हुए 'backward' हैं, इसकी जांच के लिये एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा। यहां इस सम्बन्ध में मद्रास की चर्चा की गई है। मैं आपको बताऊं कि बम्बई प्रान्त में आज कई वर्षों से बैकवर्ड की एक परिभाषा चालू है और उसके अनुसार 'backward' में न केवल हरिजन और सूचीबद्ध कबायली जातियां ही आती हैं, बल्कि वह सभी पिछड़ी हुई जातियां ली जाती हैं जो सामाजिक दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि हम 'backward' शब्द के दायरे को किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित रखें। जो भी पिछड़ा हुआ होगा उस पर यह लागू होगा और मेरे ख्याल से माननीय सदस्य की आशंका बिल्कुल निराधार है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे डर है कि मेरी बात का यथेष्ट प्रभाव न पड़ सकेगा, क्योंकि अभी मुझ से पहले श्री मुंशी बोल चुके हैं, जिन्हें सभा एक बहुत ही दक्ष वकील के रूप में जानती है और मैं देख रहा हूं कि अपने पक्ष-प्रतिपादन में मूल कौशल वह यही अपना रहे हैं कि न्यायाधीश को ही विभ्रम में डाल दिया जाये और, अगर मैंने उनकी बातों को ठीक-ठीक सुना है, तो उन्होंने यहां उन सदस्यों के मन में जरूर भ्रम पैदा कर दिया होगा

जिन्हें अनुच्छेद 10 के प्रावधानों के सम्बन्ध में कुछ संदेह था। अभी हाल में, श्रीमान्, एक समाचार-पत्र में अपने विधान के सम्बन्ध में सिलोन विश्वविद्यालय के कुलपति प्रसिद्ध विधान-पंडित प्रो. आइवर जेनिंग्स की टिप्पणी मैं पढ़ रहा था। मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय की आलोचना करते हुए आपने इसे वकीलों का कल्पवृक्ष बतलाया। इनकी रचना ऐसी है कि इनके अर्थों में काफी खींचातानी की जा सकती है और इस दृष्टि से अनुच्छेद 10 सर्वोपरि है। मेरा अपना मत यही है कि अगर मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय में इस अनुच्छेद को न रखा गया होता तो अच्छा था।

अब मैं इसके खंड (1) को ही लेता हूं। इसके अनुसार राज्याधीन सभी नौकरियों में सभी नागरिकों को अवसर-समता प्राप्त रहेगी। मैं पूछता हूं किस श्रेणी के नागरिकों को? शिक्षितों को? आशिक्षितों को? आखिर किसको? क्या एक अशिक्षित नागरिक सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इस आशय का अभियोग उपस्थित कर सकता है कि उसको अवसर-साम्य नहीं दिया गया है? ये बातें मैं अपनी ओर से नहीं कह रहा हूं। प्रोफेसर जेनिंग्स की टिप्पणी में यही विचारधारा व्यक्त थी और उसे मैं आपके सामने रख रहा हूं।

अब मैं इस अनुच्छेद के खंड (2) पर आता हूं। मेरा ख्याल यही है कि महज माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर को राजी करने की कोशिश में 'birth' शब्द के बाद ''residence'' शब्द रख कर सभा को अकथ कठिनाइयों में डाला गया है। सारी कठिनाइयों का मूल कारण यही है। इसी को लेकर श्री मुंशी ने एक संशोधन रखा है और एक दूसरा संशोधन रखा है श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने। क्या 'residence' शब्द को रखने की कोई जरूरत है? मैं सभा से कहता हूं कि इसकी जरूरत नहीं है क्योंकि अगर निवास के आधार पर कोई भेदभाव बरता जायेगा, जिसकी कि संभावना हो सकती है, तो इसे यहां रखकर और 2(क) से निकाल कर आप इस मसले को नहीं हल कर सकते हैं।

***एक सदस्यः** उस हालत में 2(क) को निकाल ही दीजिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह तो सभा के करने की बात है। किन्तु मैं सभा को यह सुझाव दे रहा हूं कि हम लोग इस मसले पर तटस्थ रह सकते

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हैं। हम श्री जसपतराय कपूर को 'residence' शब्द रखने का अधिकार न देंगे और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को भी यह मौका न देंगे कि वह कोई व्याख्यात्मक उपखंड रखें, जिससे हमारी सभी प्राप्त सुविधायें व्यर्थ हो जाती हों।

अब आप श्री अल्लादी कृष्णास्वामी के उस विशिष्ट संशोधन के शब्दों को देखिये जिस पर माननीय मित्र श्री मुंशी ने इतनी लम्बी वक्तृता दी है। उपाध्यक्ष महोदय, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, इस सम्बन्ध में राय देने का अधिकारी मैं अपने को नहीं समझता। हमें यह देखना चाहिये कि आखिर पार्लियामेंट क्या करेगी? क्या यह ऐसा कोई व्यापक कानून बनायेगी जिससे सभी राज्यों की, सभी स्थानीय निकायों की, सभी ग्राम-पंचायतों की, (जो भी अनुच्छेद 7 के अनुसार राज्य ही समझे जायेंगे) तथा सभी विश्वविद्यालयों की सारी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हों? अथवा हर मौके पर, जब भी कोई विशेष स्थानीय निकाय या विश्वविद्यालय या ग्राम-पंचायत कोई खास छूट मांगेंगी तो पार्लियामेंट एक नया कानून बनायेगी? आखिर क्या बात सोची गई है, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस प्रयोजन के लिए क्या पद्धति बरती जायेगी, इसका भी हमें कुछ ज्ञान नहीं है। इस खूबी से सभी बातें इसमें गोल-मटोल रखी गई हैं कि हम यह भी नहीं जानते कि ऐसा व्यापक कानून बनाने के लिये पार्लियामेंट में प्रस्ताव रखा भी जा सकेगा या नहीं। और आखिर इसका प्रस्ताव पार्लियामेंट में आया भी तो वह किस प्रकार का कानून बनायेगी?

मेरे मित्र श्री जसपतराय का संशोधन निरर्थक हो जायेगा, अगर पार्लियामेंट यह निर्णय कर देती हैं कि किसी प्रदेश के किसी पद की पात्रता पाने के लिये अभ्यर्थी का वहां दस वर्ष का निवास होना चाहिये। अथवा क्या पार्लियामेंट एक साल के निवास का प्रतिबन्ध रखेगी या आप यह समझते हैं कि शरणार्थियों की सुविधा के लिए वह 6 माह का प्रतिबंध रखेगी या निवास सम्बन्धी कोई प्रतिबंध रखेगी ही नहीं? मेरे मित्र श्री कामत ने जिन संदेहों का उल्लेख किया है वह सही हैं और मेरा मत तो यह है, खंड (2) (क) जैसे गोलमटोल खंड न रख कर हम पार्लियामेंट की सद्‌बुद्धि पर निश्चित होकर भरोसा कर सकते हैं। जिस रूप में विधान हमारे सामने आया है उसके अनुसार तो हम सभी बातों को पार्लियामेंट पर,

विधान-मंडल पर, सर्वोच्च न्यायालय पर तथा उन वकीलों पर छोड़ रहे हैं जो इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे। आखिर कोई न कोई प्रदेश तो ऐसा होना चाहिए जिसके निवासियों के सद्विवेक पर हम इसे छोड़ सकें। हम इसी बात की तो यहां कोशिश कर रहे हैं कि लोग अपने सद्विवेक से उन विचारों को व्यर्थ न होने दें जिन्हें आज हम अपनी मान्यता दे रहे हैं।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का संशोधन यह कहता है, श्रीमान्, कि: ''...under any State for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory, any requirement as to residence within that State prior to such employment or appointment'' (...चालू समय के लिये प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवा युक्ति या नियुक्ति से पूर्व उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो) इस संशोधन के समर्थन में श्री मुंशी ने बड़ी योग्यता और पाण्डित्य से अपने पक्ष का प्रतिपादन किया है। किन्तु उनकी सभी बातों को ध्यानपूर्वक सुनने के बाद भी मैं यह समझ नहीं पाता कि आखिर किसी राज्य का यहां क्या सम्बन्ध है। मेरा तो सुझाव है कि इन दोनों ही संशोधनों को न रखा जाये। अगर कोई खास राज्य हमारे मत की उपेक्षा करता है और निवास सम्बन्धी प्रतिबन्ध पर जोर देता है तो इससे कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अब मैं खंड (3) की ओर आता हूं। इस खंड में 'backward' शब्द के रखने पर कई मित्रों ने आपत्ति की है। इसमें शक नहीं कि उनमें से कइयों ने यह कहा है कि पहले इस प्रश्न के सम्बन्ध में सभा ने जो निर्णय किया था, उसके अनुसार मूल खंड में 'backward' शब्द नहीं रखा गया था। यह तो बाद की सोची हुई बात है और मसौदा-समिति के सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता के फलस्वरूप यह उपाय निकाला गया है ताकि जरूरत पड़ने पर इस खंड की व्यवस्था को ज्यादा लोगों पर लागू किया जा सके।

क्या मैं आपसे यह पूछ सकता हूं कि आखिर पिछड़ा हुआ नागरिक-वर्ग कौन है? यह किसी पिछड़ी हुई जाति पर लागू नहीं होता। यह किसी परिगणित जाति

[श्री टी.टी. कृष्णामाचारी]

या किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये लागू नहीं होता। मैं कहता हूं कि भविष्य में उन्नत एवं अनुन्नत का निर्णय आप शिक्षा के ही आधार पर कर सकते हैं और अगर शिक्षा के आधार पर इसका निर्णय करते हैं तो हमारे 80 प्रतिशत देशवासी पिछड़े हुये नागरिक माने जायेंगे। आखिर इस बारे में अन्तिम निर्णय कौन देगा? शायद सर्वोच्च न्यायालय देगा। न्यायालय को इस बात का पता लगाना होगा कि पिछड़े हुये वर्ग में किसे शामिल किया जाये, इसके बारे में विधान-निर्माताओं का क्या अभिप्राय था। यहां 'जाति' शब्द नहीं रखा गया है बल्कि रखा गया है 'क्लास' (वर्ग) शब्द। वर्ग पिछड़ा हुआ है या नहीं, इसका निर्णय आप किस आधार पर करेंगे? आर्थिक अवस्थिति के आधार पर या शिक्षा के आधार पर या जन्म के आधार पर, आखिर किस आधार पर आप यह निर्णय करेंगे?

मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ऐसा समझते हैं कि यह शब्द मानो आसमान से टपक पड़ा है और मसौदा-समिति ने बुद्धिमत्तावश इसे उठा लिया है। मैं कहता हूं इससे वकीलों की बन आयेगी, यह खंड उनके लिये कल्पवृक्ष बन जायेगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं मसौदा-समिति के वकील सदस्यों ने अपने भाई-बन्धुओं के व्यापार को चमकाने के लिये और अपने सम्प्रदाय या वर्ग को अवसर देने की चेष्टा में तो कहीं ऐसा विधान नहीं रचा है जो छिद्रों से परिपूर्ण है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरे माननीय मित्र भी वकील बनने की कोशिश कर सकते हैं।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: मुझे डर है कि यही कोशिश मुझे करनी पड़ेगी, जब श्री मुंशी जैसे लोग इस पेशे को छोड़कर दूसरे ज्यादा आमदनी वाले पेशों को अपना रहे हैं। अगर मेरे मित्र यही चाहते हैं कि मैं धृष्टता की बात सुना दूं तो मैं कह सकता हूं कि मैं वकील बनने की कोशिश कर सकता था और उस पेशे के साथ न्याय भी कर सकता था।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं जानता हूं, आप कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, श्री मुंशी से सम्भाषण करने के लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूं, यद्यपि तथ्य यह है कि उन्होंने ही इसके लिए उत्तेजना

प्रदान की। जो भी हो, यह ऐसा मसला नहीं है जिस पर वाग्युद्ध किया जाये।

अब पुनः खंड (3) की खूबियों की ओर आता हूं। मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान, कि इस अनुच्छेद की रचना ही ऐसी है कि इसके अर्थ के सम्बन्ध में काफी खींचातानी की जा सकती है। कुछ मित्रों को यह भय है कि 'backward' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जा सकते हैं, यद्यपि मेरा मत यही है कि ऐसे भय की कोई गुंजायश नहीं है क्योंकि इसमें मुझे रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि अन्ततोगत्वा इसका अर्थ सर्वोच्च न्यायालय ही स्थिर करेगा चाहे वह जाति के आधार पर इसके सम्बन्ध में निर्णय करे या सम्प्रदाय के आधार पर या धर्म के आधार पर या शिक्षा के आधार पर अथवा आर्थिक अवस्थिति के आधार पर। अतः इस शब्द विशेष को रखने पर मैं मसौदा-समिति की तारीफ नहीं कर सकता। उनके दिमाग में, इस शब्द के सम्बन्ध में, जो भी ख्याल रहा हो, पर मैं तो यही समझता हूं कि इस खंड से बड़ी ही मुकद्दमेबाजी होगी।

अपना स्थान ग्रहण करने से पहले मैं सभा को यह सुझाव दूंगा, श्रीमान्, कि श्री जसपतराय कपूर के संशोधन पर विचार करने की अनुमति देकर तथा इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न श्री अल्लादी कृष्णास्वामी के संशोधन पर विचार करने की अनुमति देकर वह इस मसले को और जटिल न बना दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, बहस मुबाहिसे के सिलसिले में जो कई खास-खास सवाल उठाये गये हैं उनका जवाब देने से पहले अभी शुरू में ही मैं यह बता देता हूं कि श्री मिश्र द्वारा रखे गये संशोधन नं. 334 को नहीं स्वीकार कर सकता। मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के दो संशोधनों को भी—नं. 336 और 337वें—नहीं मंजूर कर सकता। हां, श्री इमाम के संशोधन नं. 338 को, श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन नं. 77 द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं। श्री जसपतराय कपूर के संशोधन नं. 340 को भी, श्री मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के नं. 81 तथा 82 के संशोधनों द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर सकता हूं।

मैं नही समझता कि संशोधन नं. 334, 336 तथा 337 के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने की जरुरत है। इसलिए अपने भाषण के सिलसिले में जो बातें मैं

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कहूंगा वह दो ही बातों तक सीमित रहेंगी। एक तो निवास सम्बन्धी बात है जिस पर यहां इतना वादानुवाद हुआ है और दूसरी बात है 'backward' शब्द का अनुच्छेद 10(3) में प्रयोग। मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने मसौदा-समिति पर यह व्यंग कसा है कि बजाय एक विधान-निर्माण करने के, उसने सम्भवत: अपने कतिपय सदस्यों की हितपूर्ति के लिए एक ऐसी चीज तैयार कर दी है जो वकीलों के लिये एक कल्पवृक्ष है। मैं यह कहने के लिए तो नहीं तैयार हूं कि इस विधान से ऐसे सवाल खड़े ही न होंगे जिन पर विधि सम्बन्धी निर्वाचन की या न्यायालय द्वारा निर्णय की आवश्यकता न हो। मैं श्री कृष्णमाचारी से यह पूछता हूं कि क्या वह विश्व का एक भी ऐसा विधान दिखा सकते हैं जो वकीलों के लिए कल्पवृक्ष न हो। मैं उनसे खासतौर पर यह कहूंगा कि यह कानून सम्बन्धी उन रिपोर्टों के ढेर को देखें जो अमेरिका, कनाडा और अन्य देशों के विधानों के सम्बन्ध में तैयार हुये हैं। इसलिए, अगर इस विधान को भाष्यार्थ संघ न्यायालय के समक्ष ले जाना पड़े तो इसके लिए मैं रंचमात्र भी लज्जित नहीं हूं। हर विधान और मसौदा-समिति के साथ यही बात होती है। इसलिए इस बात के बारे में मैं ज्यादा कुछ नहीं कहूंगा।

अब मैं निवास सम्बन्धी प्रश्न को लेता हूं। यह तो एक बहुत ही सीधी बात है और मेरी समझ में नहीं आता कि मित्र श्री कृष्णमाचारी जैसा सबोध और चतुर व्यक्ति इस संशोधन के मूल उद्देश्य को क्यों न समझ सका।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उसी कारण से जिससे कि मेरे मित्र मूल अनुच्छेद में इस शब्द को रखना भूल गये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझ नहीं सका। अस्तु, इस संशोधन के उद्देश्य को मैं स्पष्ट किए देता हूं। यहां कई सदस्यों की यह भावना है कि जब हमने सम्पूर्ण देश के लिए एक सी नागरिकता स्थापित की है और इसमें प्रान्तों या रियासतों के अधिकार-क्षेत्र को लेकर कोई भेदभाव नहीं बरता है तो इसके साथ यह भी होना चाहिए कि भारतीय संघ के किसी भी राज्य में कोई पद धारण करने के लिए निवास सम्बन्धी कोई प्रतिबंध न लागू किया जाये; क्योंकि जिस मात्रा तक आप निवास सम्बन्धी प्रतिबंध लागू करेंगे, उसी मात्रा तक अपनी एक रूपी नागरिकता का महत्त्व कम हो जायेगा, जिसे विधान द्वारा हमने समस्त देश के लिए स्थापित किया है, यह करना चाहते हैं। इसलिए मेरी राय में यह

तर्क कि राज्याधीन नौकरियों में नियुक्ति के लिए निवास-सम्बन्धी कोई प्रतिबंध न लागू करना चाहिए, बिल्कुल सही है और ठोस तर्क है। किन्तु साथ ही हमें यह भी समझना चाहिए कि ऐसे लोग जो एक प्रान्त में दूसरे प्रान्त में एक राज्य से दूसरे राज्य में उड़ती चिड़िया की तरह सदा चक्कर काटा करते हैं, जिनका न उस प्रान्त से कोई खास सम्बन्ध है न वहां कोई जरिया है, उनको हम यह अनुमति नहीं दे सकते कि वह वहां आवें, पद के लिए आवेदन करें और फिर अपना काम बना वहां से चलते बने। इसलिए निवास-सम्बन्धी कुछ न कुछ प्रतिबंध तो रखना ही होगा। जब इस प्रश्न पर छानबीन की गई तो पता चला कि अभी भी कई प्रान्तों में वहां सरकारों ने ऐसे नियम बना दिए हैं जिनके द्वारा प्रान्त में किसी भी पद पर नियुक्त किए जाने के लिए वहां का एक निश्चित काल का वासी होना आवश्यक है, इसलिए संशोधन की मूलभूत योजना यह है कि आमतौर पर किसी पद के लिए निवास सम्बन्धी प्रतिबंध न होना चाहिए, किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ अपवाद तो बरता ही जा सकता है और यह असंगत नहीं है। हम तो केवल उसी प्रथा पर चल रहे हैं जो कि भिन्न प्रान्तों में अरसे से चलती आ रही है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमने यह देखा कि भिन्न-भिन्न प्रांतों में एक अवधि तो निश्चित कर दी गई है। जितने दिनों का वहां निवासी होना अभ्यर्थी के लिए आवश्यक है पर सब जगह एक सी अवधि नहीं रखी गई है। कुछ प्रान्तों में ऐसा नियम है कि अभ्यर्थी के लिये यह जरूरी है कि वह उस प्रान्त में बस गया हो। इसका क्या मतलब है यह समझ में नहीं आता। दूसरों ने 10 वर्ष का बाशिन्दा होना जरूरी ठहराया है और कइयों ने सात वर्ष की ही अवधि रखी है। इसलिए ऐसा अनुभव किया गया कि निवास-सम्बन्धी पात्रता तो वांछनीय है पर निवास-सम्बन्धी जो भी प्रतिबंध हों वह सर्वदा समस्त भारतवर्ष में एक समान होना चाहिए। सुतरां यदि आपका उद्देश्य यह है कि सर्वत्र निवास-सम्बन्धी अवधि एक सी हो तो इसकी प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि इसको नियत करने का अधिकार आप संसद को दें न कि किसी इकाई को चाहे वह प्रान्त हो या रियासत। इस संशोधन में निवास सम्बन्धी जो शर्त रखी गई है उसके पीछे मूल अभिप्राय यही है।

मेरे मित्र श्री कामत ने जो प्रश्न उठाया है उसके सम्बन्ध में मैं नहीं बोलना चाहता, क्योंकि श्री मुंशी तथा एक अन्य मित्र भी उस पर काफी प्रकाश डाल

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

चुके हैं। इन लोगों ने श्री कामत को यह बता दिया है कि संशोधन की भाषा किस तरह विधान के अन्य प्रावधानों के अनुरूप है। अब मैं उस प्रश्न की ओर आता हूं जिसको लेकर यहां सदस्यों में बहुत हलचल है अर्थात् अनुच्छेद 10(3) में प्रयुक्त 'backward' शब्द को लेता हूं। शुरू में ही मैं कुछ आम बातें कह देना चाहता हूं ताकि सदस्य यह समझ जायें कि 'backward' शब्द का ठीक-ठीक क्या प्रयोजन है, क्या महत्त्व है और इसे इस खास खंड में रखने की क्या जरूरत थी। यदि सदस्य इस विषय पर आपस में मतों का आदान-प्रदान करें और इसे समझने की चेष्टा करें तो उन्हें पता चलेगा कि इस सम्बन्ध में तीन दृष्टिकोण वर्तमान है और इन तीनों को ही सन्तुष्ट करना होगा, अगर हमें कोई व्यवहार में आने योग्य योजना तय करनी है जो सभी को मान्य हो। इनमें पहला दृष्टिकोण यह है कि सभी नागरिकों को अवसर समता प्राप्त होनी चाहिए। इस सभा के अनेक सदस्यों की यह इच्छा है कि प्रत्येक व्यक्ति को, जो किसी विशेष पद के लिए योग्य हो, इस बात की आजादी होनी चाहिए कि वह उसके लिए आवेदन कर सके, परीक्षा में बैठ सके और यह निश्चित करने के लिए कि वह पद के योग्य है या नहीं, उसकी योग्यता की जांच होनी चाहिए और इस सम्बन्ध में अवसर-साम्य के सिद्धांत को अमल में लाने पर कोई प्रतिबंध कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। दूसरा दृष्टिकोण जो ज्यादा करके सभा के एक वर्ग का है वह यह है कि किसी वर्ग या सम्प्रदाय के पक्ष में किसी प्रकार भी आरक्षण (resevation) की व्यवस्था न होनी चाहिए और सभी नागरिकों को अगर वह योग्य हैं तो जहां तक सरकारी नौकरियों का सम्बन्ध है, समान रूप से अवसर मिलना चाहिए। अगर हमें यह सिद्धांत बरतना है तो उनकी राय है कि हमें इसे पूर्ण मात्रा में बरतना चाहिए। फिर एक तीसरा दृष्टिकोण हमारे समक्ष है और इसके पीछे एक बड़ा जनमत है। यह पक्ष इस बात पर जोर देता है कि सैद्धांतिक दृष्टि से अवसर-समता का सिद्धांत बहुत ही अच्छा है, किन्तु फिर भी नियुक्तियों में उन कतिपय सम्प्रदायों को स्थान देने के लिए हमें एक न एक व्यवस्था करनी ही चाहिए जिन्हें अब तक शासन-कार्य से सदा अलग ही रखा गया है। जैसा कि मैं बता चुका हूं, मसौदा-समिति को एक ऐसा नुस्खा तैयार करना था जो इन तीनों दृष्टिकोणों को संतुष्ट कर सकता हो। अगर माननीय सदस्यगण इस तथ्य पर ध्यान दें कि हमें इन तीनों विभिन्न दृष्टिकोणों को संतुष्ट

करना था तो यह देखेंगे कि अनुच्छेद 10(3) में जो नुस्खा रखा गया है उससे और अच्छा कोई रास्ता निकाला ही नहीं जा सकता था। वह देखेंगे कि अनुच्छेद 10 के खंड (1) में उन लोगों के विचार को स्थान दिया गया है जिसका अवसर-समता के सिद्धान्त में प्रबल विश्वास है। इस सिद्धान्त को व्यापक मान्यता दी गई हैं किन्तु इसके साथ ही, जैसा कि मैं बता चुका हूं, इस नुस्खे को कतिपय सम्प्रदायों की इस मांग के साथ भी हमें बैठाना था कि शासन का नियंत्रण अब तक ऐतिहासिक कारणों से एक सम्प्रदाय या चन्द सम्प्रदाय ही के लोग करते आ रहे थे और अब इस स्थिति का अन्त होना चाहिए और दूसरों को भी सरकारी नौकरियों में स्थान-प्रवेश पाने का अवसर मिलना चाहिए। अब जरा उदाहरण के लिए यह मान लीजिए, हम उन लोगों की मांग को पूर्णत: मान लेते हैं जिन्हें अब तक सरकारी नौकरियों में पूरी-पूरी जगह नहीं दी जाती थी। इसका परिणाम यह होगा कि हम उस पृथक् सिद्धांत का अर्थात् अवसर-समता के सिद्धांत का, पूर्णत: हनन कर देंगे जिस पर हम सभी एकमत हैं। मैं आपको उदाहरण देकर समझाऊंगा। मान लीजिए कि एक सम्प्रदाय या कई सम्प्रदायों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई जिसके अनुसार 70 प्रतिशत जगह उनके लिए सुरक्षित रख दी गई। अब बच जाती है 30 प्रतिशत जगहें, जो शेष लोगों के लिए होंगी। क्या कोई भी व्यक्ति यह मंजूर करेगा कि 30 प्रतिशत जगहें खुली प्रतियोगिता के लिए रखना अवसर-समता के सिद्धांत को अमली रूप देने के ख्याल से ठीक है? मेरी राय में तो यह ठीक नहीं होगा। इसलिए अगर आपको जगहें आरक्षित रखनी हैं और इस व्यवस्था को अनुच्छेद 10(1) के अनुरूप रखना है तो इसे कम जगहों तक ही सीमित रखिए। ऐसा होने पर ही अवसर-समता के सिद्धांत को विधान में वास्तविक स्थान मिल सकेगा और वह व्यवहार में आ सकेगा। हमें दो बातों का ख्याल है, एक तो अवसर-समता के सिद्धांत को भी जगह देना है और साथ ही उन अन्य सम्प्रदायों की मांगों को भी संतुष्ट करना है जिन्हें राज्य की नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान अब तक नहीं मिलता रहा है। यदि माननीय सदस्यवृन्द इस स्थिति को समझते हैं तो मुझे पूरा विश्वास कि है वह इससे सहमत होंगे कि 'backward'' जैसा कोई प्रतिबंध मूलक शब्द अगर न रखा गया तो हमने आरक्षण के पक्ष में जो अपवाद रखा है वह इस नियम को व्यर्थ कर देगा। यही कारण है कि मसौदा-समिति ने अपनी जिम्मेदारी पर यह ''backward'' शब्द रखा है जो, मैं मानता हूं, इस सभा द्वारा स्वीकृत मूलाधिकारों में पहले नहीं रखा गया था।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मसौदा-समिति का अनेक कारणों के आधार पर कभी यह कहकर उपहास किया गया है कि इसने जो मसौदा बनाया है उसकी बन्दिश इतनी ढीली-ढाली है कि अर्थ में काफी खींचातानी की जा सकती है। कभी यह कह कर उपहास किया गया है कि यह मसौदा उपयुक्त नहीं, ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है। और मेरा ख्याल है कि माननीय सदस्यगण जरूर यह जानते होंगे कि अगर मसौदा-समिति यह शब्द न रखती तो इस बिना पर उसकी और भी आलोचना की जाती कि इसने जो मसौदा बनाया है उसमें अपवाद इतने है कि मूल नियम को प्रभावी बनने के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है। ‘‘Backward’’ क्यों रखा गया है, इसके औचित्य प्रदर्शन के लिए, मेरी समझ से, यह काफी है।

अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 296 में विशेष उल्लेख किया गया है, जहां यह कहा गया है कि उनके लिए कोई न कोई व्यवस्था जरूर की जायेगी। अवश्य ही इसके लिए हमने कोई अनुपात नहीं निश्चित किया। यह तो उस धारा से साफ जाहिर है पर ऐसी बात नहीं है कि अल्पसंख्यकों का हमने बिल्कुल ख्याल ही न किया हो। किसी सज्जन ने मुझसे यह पूछा कि आखिर ‘‘backward’’ सम्प्रदाय कौन है? मेरा ख्याल है कि जो कोई भी मसौदे की भाषा को पढ़ेगा उसे यह मालूम हो जायेगा कि हमने इसके निर्णय का भार प्रत्येक स्थानीय शासन पर छोड़ दिया है। जो सम्प्रदाय हुकूमत की दृष्टि में पिछड़ा हुआ है वह ‘‘backward’’ सम्प्रदाय माना जायेगा। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यह पूछा है कि क्या इस नियम को अमल में लाने के लिए न्यायालय में अपील की जा सकती है, इस सम्बन्ध में अधिकृत रूप से कोई उत्तर देना जरा कठिन है। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि इसको अमल में लाने के लिए न्यायालय में अपील की जा सकती है। अगर किसी स्थानीय सरकार ने इस आरक्षण की श्रेणी में बहुसंख्यक जगहों को शामिल कर लिया है तो मैं समझता हूं कि कोई भी व्यक्ति संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में जाकर यह कह सकता है कि इतनी अधिक आरक्षित जगहें रख दी गई हैं कि उससे अवसर-समता के नियम का ही हनन कर दिया गया है और तब न्यायालय यह निर्णय करेगा कि स्थानीय शासन या राज्य-शासन ने समुचित रूप से विवेक से कार्य किया है या नहीं। श्री कृष्णमाचारी ने यह कहा है कि कौन समुचित पुरुष हैं और कौन विवेकी पुरुष हैं? यह तो मुकद्दमेबाजी की बातें हुईं। अवश्य ही इन बातों को लेकर मुकद्दमे

चलते हैं, किन्तु मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी को मालूम होगा कि ''समुचित और विवेकी पुरुष'' का प्रयोग अनेक कानूनों में हुआ है और अगर वह सम्पत्ति हस्तान्तरण सम्बन्धी अधिनियम (Transfer of Property Act) रखें तो उन्हें पता चलेगा कि कई बातों के सम्बन्ध में ''समुचित और विवेकी पुरुष'' की इतनी विषद परिभाषा की गई है कि न्यायालय को इसकी परिभाषा देने में कोई कठिनाई न होगी। इसलिए आशा करता हूं कि जिन संशोधनों को मैंने स्वीकार किया है उन्हें सभा स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्षः** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लेता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** संशोधन नं. 342 को मैं मंजूर करता हूं। मुझे खेद है कि यह बताना मैं भूल गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'on grounds only' शब्दों की जगह 'on grounds' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है किः

''अनुच्छेद 10 के खंड (1), (2) और (3) हटा दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) की जगह निम्नलिखित खंड रखा जायेः

'(2) Every citizen shall be eligible for office under any State irrespective of his religion, caste, sex, descent or place of birth.' ''

(धर्म, जाति, लिंग, वंश अथवा जन्मस्थान सम्बन्धी किसी भेदभाव के बिना राज्याधीन पद के लिए प्रत्येक नागरिक पात्र होगा।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सूची 1 के 77 नं. संशोधन द्वारा संशोधित संशोधन नं. 338 पर मत लेता हूं। इसे संशोधित रूप में मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

''(1) अनुच्छेद 10 के खंड (1) में 'नियुक्ति के विषय में' शब्दों की जगह 'सेवायुक्ति अथवा पद पर नियुक्ति के विषय में' शब्द रखे जायें।

(2) अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'किसी पद के लिए' शब्दों के बाद 'किसी पद या नियुक्ति के लिए' शब्द रखे जायें।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'place of birth' शब्द के बाद 'in India' शब्द जोड़े जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब सूची 3 के संशोधन नं. 81 द्वारा संशोधित संशोधन नं. 340 पर मत लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं कहूंगा कि संशोधन नं. 81 और 82 पर पहले मत लेना चाहिए, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 81 के सम्बन्ध में तो कोई मत-भेद है नहीं। फिर भी अगर आप जोर देंगे तो इन दोनों पर मैं अलग-अलग मत ले लूंगा। मैं चाहूंगा कि सभा मेरा साथ दे, जब तक कि नियमानुकूल कार्य चल रहा है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा ख्याल है कि यही अच्छा होगा, पर मैं इसके लिए जोर नहीं दूंगा।

***उपाध्यक्षः** आप जोर नहीं देते हैं। अस्तु, जब मैं अपनी ही मर्जी के मुताबिक पढ़ता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'birth' शब्द के बाद 'residence' शब्द रखा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 10 के खंड (2) के बाद निम्नलिखित नया खंड जोड़ा जाये:

'(2a) Nothing in this article shall prevent Parliament from making any laws prescribing in regard to a class or classes of employment or appointment to an office under any State for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory, any requirement as to residence within that State prior to such employment or appointment.' "

(इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को ऐसा कानून बनाने में कोई रुकावट न होगी जो सेवायुक्तियों के किसी वर्ग या वर्गों के सम्बन्ध में अथवा चालू समय के लिए प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवायुक्ति या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो।')

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब सभा के समक्ष प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'ineligible' शब्द के बाद 'or discriminatory against' शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

'अनुच्छेद 10 का खंड (3) निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (3) में 'shall, prevent the State from making any provision for the reservation' शब्दों की जगह ये शब्द रखे जाये: 'shall, during a period of ten years after the commencement of this Constitution, prevent the State from making any reservation.' ''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब सामने प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (3) से 'backward' शब्द हटा दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (4) में 'in connection with' शब्दों के बाद 'managing' शब्द जोड़ा जाये, और 'or denomination' शब्द हटा दिये जायें।

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस समूचे अनुच्छेद पर, जैसा कि इसमें संशोधन नं. 338 (संशोधन नं. 77 द्वारा संशोधित) द्वारा तथा संशोधन नं. 340 (तीसरी सूची के संशोधन नं. 81 और 82 द्वारा संशोधित) द्वारा और पुनः संशोधन नं. 342 द्वारा संशोधन किये गये हैं, मत लेता हूं।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 10 अपने संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 12

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 12 को लेते हैं।

***एक माननीय सदस्यः** अनुच्छेद 10 (क) का क्या हुआ, श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** कार्यवाही का जो विवरण अपने पास उपलब्ध है उसके अनुसार तो यह निपटा दिया जा चुका है। वह उपस्थित ही नहीं किया गया। सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 को विधान का अंग समझा जाये।"

इसके सम्बन्ध में पहला संशोधन है नं. 383 का, जो पं. लक्ष्मीकांत मैत्र और अन्य सदस्यों के नाम से है।

(*संशोधन नं. 383 नहीं पेश किया गया।*)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 384 नियमानुकूल नहीं है।

(*संशोधन नं. 385 पेश नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 386 और 392 पर एक साथ विचार किया जा सकता है। नं. 386 को पेश करने की अनुमति मैं दे सकता हूं। यह है श्री कमलेश्वरी प्रसाद यादव के नाम में।

(*संशोधन नं. 386 और 392 नहीं पेश किये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 387 और 394 एक ही आशय के हैं। नं. 387 को उपस्थित करने की मैं अनुमति दूंगा। एक बात और कहनी है। आपके भाषण प्रारम्भ करने के पहले मैं यह जानना चाहता हूं कि श्री ए.के. मेनन, जिनके नाम में संशोधन नं. 394 है, क्या अपने संशोधन पर जोर दे रहे हैं?

***श्री ए.के. मेनन** (मद्रास : जनरल): नहीं, श्रीमान्।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 12 के खंड (1) में 'title' शब्द के बाद 'not being a military or academic distinction' शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 12 के (1) का संशोधित रूप यह होगा, श्रीमान्:

"No title not being a military or academic distinction shall be conferred by the State."

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

(राज्य कोई उपाधि, जो सैनिक या विद्या-सम्बन्धी सम्मान के लिए न हो, न प्रदान करेगा।)

इस विशेष अनुच्छेद का इतिहास सभा के सभी सदस्यों को अच्छी तरह मालूम है। साधारणत: जनमत किसी भी उपाधि को देने के विरुद्ध रहा है। सभा को यह भी मालूम है कि स्वाधीनता प्राप्ति के फलस्वरूप हमारे कई नागरिकों ने, जिन्होंने पहले ब्रिटिश शासकों से उपाधियां स्वीकार की थीं, अपनी उपाधियों का परित्याग कर दिया है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने अभी इन उपाधियों को रख छोड़ा है। एक समय इस आशय का प्रस्ताव आया था कि मसौदा-समिति के सदस्यों की राय है कि ऐसी उपाधियां जो केवल पैतृक परम्परा के आधार पर या आभिजात्य गौरव के लिए दी जाती हैं वह बन्द कर दी जाये पर डा. अम्बेडकर ने उसे यहां रखना पसन्द नहीं किया। अगर यह प्रस्ताव यहां पेश हुआ होता तो इससे उन लोगों की स्थिति बड़ी जटिल हो जाती जिनके पास कोई पैतृक उपाधि तो थी नहीं और जिन्होंने स्वाधीनता प्राप्त होते ही अपनी दूसरी उपाधियों का परित्याग कर दिया। तब तो यह होता कि सरकार 'दीवान बहादुर' या 'सर' के आशय की अन्य कोई उपाधि प्रदान करती। इससे वे लोग, जिन्होंने स्वाधीनता पाते ही अपनी उपाधियां छोड़ दी थी, बड़ी ईर्ष्याजनक स्थिति में पड़ जाते।

अभी भी मेरी राय में यह अनुच्छेद पूर्ण नहीं है क्योंकि जो उपाधियां अंग्रेज शासकों द्वारा दी जा चुकी हैं, उनको जब तक अमान्यता नहीं दी जाती, तो उन लोगों को कोई लाभ नहीं होगा जिन लोगों ने सौजन्यपूर्वक अपनी उपाधियों का परित्याग कर दिया है। कुछ लोगों ने इसलिए उपाधियां छोड़ दी कि कोई काम मिल जायेगा और उन्होंने काम पा भी लिया। अन्य कई लोगों ने उपाधियां छोड़ी पर उन्हें इससे कुछ फायदा नहीं हुआ। कुछ लोगों ने अभी तक अपनी उपाधियां रख छोड़ी हैं और वर्तमान शासन उनको स्वीकार करता है। इससे उन लोगों की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है जिन्होंने उपाधियों का परित्याग कर दिया है। हो सकता है कि आगे चल कर सरकार इन उपाधियों को मान्यता देने से इंकार कर दे। एक समाचार-पत्र को मैं जानता हूं जो सरकार के बड़े नजदीक है, वह इन उपाधियों को मान्यता देने से इंकार करता है। व्यक्तिगत रूप से अगर सभा मुझे

अपनी यह व्यक्तिगत बात कहने की अनुमति दे, मेरा अपना तो यह ख्याल है कि इन उपाधियों को रखना फायदेमंद है। यहां सभा में एक माननीय सदस्य वर्तमान है जिसका भी वही नाम है जो मेरा है। मेरे साथ वह विलायत भी गये थे। इनको उपाधि मिली है और मुझे नहीं। पर इससे लाभ यह है कि हम दोनों के नामों को लेकर कोई भ्रम नहीं उत्पन्न हो सकता। मुझे खुशी है कि इन्होंने अभी अपनी उपाधि रख छोड़ी है। अस्तु, इतना तो प्रसंगात् मैंने कह दिया। इस संशोधन से मेरा वास्तविक अभिप्राय यह है कि कुछ ऐसी किस्म की उपाधियां है जिनकी अनुमति हमें देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, सदस्यों को मालूम है कि सरकार ने भविष्य में तीन प्रकार की सैनिक सम्मान की उपाधियां देने का निश्चय किया है। एक का नाम है महावीर-चक्र, दूसरी का परमवीर-चक्र, तीसरी का वीर-चक्र। कहीं आपको यह धोखा न हो कि इस सभा के ख्यातनामा सदस्य मित्र श्री महावीर त्यागी को यही उपाधि मिली है। नहीं, त्यागीजी को तो महावीर की उपाधि उनके माता-पिता ने ही नामकरण के सिलसिले में दी है। कालक्रम से यही वीर-चक्र आगे चलकर वीर-चक्र बन जायेगा। इस प्रकार की सैनिक उपाधियों का प्रावधान करने के उद्देश्य से ही यह संशोधन मैंने पेश किया है।

विद्या-सम्बन्धी उपाधियों के सम्बन्ध में आप यह कह सकते हैं कि राज्य उनको नहीं प्रदान करता। कुछ दिनों बाद ऐसा हो सकता है कि राज्य महामहोपाध्याय जैसी उपाधि की परम्परा फिर चला दे और इस उपाधि का सम्बन्ध विद्या से ही है।

और फिर अनुच्छेद 7 में 'स्टेट' शब्द की जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार विश्वविद्यालय भी स्टेट है और कोई भी सदस्य यहां यह नहीं कह सकता कि विश्वविद्यालय का स्टेट से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिए विश्वविद्यालय या शिक्षा-संस्थाएं जो उपाधियां देती हैं उनका प्रावधान करना ही होगा क्योंकि वर्तमान अनुच्छेद 12(1) के दायरे से इन उपाधियों को अलग नहीं किया जा सकता। यहां यह सवाल किया जा सकता है कि विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठ कर हम लोगों ने जो उपाधियां प्राप्त की हैं, वह चाहे मेरी उपाधि जैसी कोई लघु उपाधि हो या अम्बेडकर की उपाधि की तरह कोई महती उपाधि हो, वह अनुच्छेद 12 के अंतर्गत आती हैं या नहीं, क्योंकि इनको पाने के लिए आखिर हम लोगों को परीक्षा में बैठना तो पड़ा ही है। यह उपाधियां अनुच्छेद 12 में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

तो नहीं आयेंगी पर अन्य कई उपाधियां हैं जो केवल सम्मानार्थ दी जाती हैं और वह इस अनुच्छेद के अन्दर आयेंगी। उदाहरण के लिए, सभा जानती है कि हमारे प्रधानमंत्री, उपप्रधान मंत्री एवं गवर्नर-जनरल जहां कहीं भी जाते हैं और जहां कहीं भी बरसाती मेंढक की तरह कोई विश्वविद्यालय निकट पड़ा है, उन पर 'डाक्टर' की उपाधियां बरसाई जाती हैं। इस तरह की विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए तथा इसलिए भी, अगर कभी दूसरे सदस्य मंत्री बन जाये तो उन्हें भी यह उपाधियां प्राप्त हो सकें, इस संशोधन द्वारा हम यह प्रावधान करना चाहते हैं कि इस उपखंड के अन्दर ज्ञान सम्बन्धी ऐसी उपाधियां न शामिल की जायें। आशा है सभा इस संशोधन के अभिप्राय को पूर्णतः समझ गई होगी। मेरी समझ से इस संशोधन द्वारा आगे आने वाली अवस्थाओं का ध्यान रखा गया है और उनके लिए व्यवस्था की गई है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 388, 389, 390 का प्रथम अंश 391, 395, 396 और 397 एक ही आशय के हैं। उनमें से 389 पेश किया जा सकता है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** मैं प्रस्ताव रखता हूं किः

''अनुच्छेद 12 के खंड (1) में be conferred' शब्दों के बाद 'or recognised' शब्द रखे जायें।''

यह एक छोटा सा संशोधन है, श्रीमान्। मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर हम सभी उपाधियों को उठा देना चाहते हैं तो इसके लिए यह भी उचित है कि उन सभी उपाधियों को, जिन्हें हम सभी ने गलत या सही पा लिया है, मान्यता न दी जाये। हम लोग जानते हैं कि लोग कोशिश करके अपने नाम के साथ उपाधियां जुड़वाते हैं। नाम के आगे उपाधि जुड़ने पर व्यक्ति कुछ और ही दिखाई देने लगता है, उसका महत्त्व बढ़ जाता है। हमारे सामने ऐसे भी उदाहरण हैं कि ऐसे लोगों को उपाधियां मिल गई हैं जो उनके योग्य नहीं हैं और ऐसे सज्जन इन उपाधियों के महत्त्व को नष्ट कर देते हैं। इसलिए मैं कहूंगा कि हमें न केवल उपाधियों को उठा देना चाहिए बल्कि ऐसी किसी उपाधि को मान्यता भी न देनी चाहिये जो किसी को दी गई हो पर जिसे हम में से कोई भी मानता न हो।

***उपाध्यक्ष:** मैं यह जानना चाहूंगा कि संशोधन नं. 388 के प्रस्तावकर्त्ता सदस्य क्या यह चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री एच.वी. कामत:** हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** मैं यह जानना चाहूंगा कि संशोधन नं. 390 के प्रथम अंश पर क्या मत लेना आवश्यक है?

***प्रो. के.टी. शाह:** हां।

***उपाध्यक्ष:** नं. 391 भी वैसा ही है। नं. 393, 396 और 397 नहीं पेश किये गये। नं. 390 (दूसरा हिस्सा) केवल शाब्दिक है और इसलिए इसको रखने की अनुमति मैं नहीं देता। 398, 399 तथा 400 को मैं पेश करने की अनुमति दे सकता हूं।

(नं. 398 और 399 नहीं पेश किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 12 के खंड (2) की जगह निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(2) No title conferred by any foreign State on any citizen of India shall be recognised by the State.' "

(किसी विदेशी राज्य द्वारा, भारत के किसी नागरिक को प्रदत्त किसी उपाधि को राज्य स्वीकार न करेगा।)

यहां 'State' शब्द के पहले 'the' शब्द रखना आवश्यक था। जिस खंड के स्थान पर यह उपरोक्त खंड रखने की बात कही गई है वह यों है:

"No citizen of India shall accept any title from any foreign State."

(भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि न स्वीकार करेगा।)

मूल-खंड में जिस बात पर रोक लगाई गई है वह यह है, कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि न स्वीकार करेगा। मैं पूछता हूं कि अगर कोई नागरिक विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को स्वीकार कर लेता है तो उसके लिए दंड

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

की क्या व्यवस्था रखी गई है? इसके लिए तो कोई दंड नहीं प्राविहत है। इस खंड को अमल में लाने का राज्य के पास कोई साधन नहीं है। अगर कोई नागरिक विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को स्वीकार कर लेता है तो आप क्या करेंगे? क्या उसे 6 माह का सश्रम कारावास देंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** राज्य उस उपाधि को स्वीकार नहीं करेगा।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः आपके इस हस्ताक्षेप के लिये मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं। मेरा संशोधन ठीक यही कहता है कि किसी विदेशी राज्य द्वारा किसी भारतीय नागरिक को प्रदत्त कोई उपाधि राज्य द्वारा न स्वीकार की जायेगी। माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने भी कृपया यह व्यक्त कर दिया है कि राज्य ऐसी उपाधि को स्वीकार न करेगा। इसी स्पष्टता के साथ तो ऐसी बातों को व्यक्त करना चाहिए। अब मान लीजिए कि किसी माननीय सदस्य को एक विदेशी राज्य कोई उपाधि देता है और वह उसे स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी सूरत में इस खंड (2) को अमल में लाने का कोई साधन नहीं है। आप ज्यादा से ज्यादा यही कर सकते हैं, जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है, कि राज्य उसे स्वीकार न करेगा। यही आशय मेरे संशोधन का भी है। मैं नहीं समझता कि इसके लिए और कुछ कहना भी आवश्यक है जबकि माननीय डा. अम्बेडकर जैसे अधिकारी व्यक्ति ने इसका समर्थन करते हुए मेरे भाषण में हस्ताक्षेप किया है।

(संशोधन नं. 401, 402 और 403 नहीं पेश किये गये।)

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं इस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि इसी तरह का संशोधन अभी श्री कृष्णमाचारी जी ने पेश किया था और मैं उनके साथ सहमत हूं। मैं अपना संशोधन पेश नहीं करता।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 404 नहीं पेश किया गया है। नं. 405, 406, 407, 410 और 411 एक ही तरह के हैं। संशोधन नं. 405 पेश किया जा सकता है।

(संशोधन नं. 405, 406, 407, 410 और 411 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 408 और 409 केवल शाब्दिक हैं इसलिए उनको पेश करने की मैं इजाजत नहीं देता हूं। अब इस पर आम बहस शुरू होगी। श्री कामत, आप आइये।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से इस संशोधन के समर्थन में मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस समूचे खंड पर तो बहस करने की अनुमति मैं आपको दे सकता हूं पर आपको यह इजाजत नहीं दे सकता कि आप अपने संशोधन पर बोलें।

***श्री एच.वी. कामत:** आपकी अनुमति से मैं किसी अन्य सदस्य के संशोधन के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। माननीय मित्र श्री लोकनाथ मिश्र के संशोधन के समर्थन में मुझे कुछ कहना है। किन्तु उस संशोधन पर बोलने के पूर्व मैं दो-चार शब्द उस सन्देह एवं कठिनाई के सम्बन्ध में कहूंगा जिसकी चर्चा श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने संशोधन नं. 400 का प्रस्ताव रखते हुए यहां की है। आपने यह प्रश्न किया कि अगर सभा का कोई सदस्य अथवा भारत को कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को लेता है तो क्या किया जायेगा? क्या उसे हम सश्रम कारावास का दंड देंगे? मैं कहता हूं कि इसका इलाज तो बहुत आसान है। हम यह सूचित कर सकते हैं कि जो कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को स्वीकार करेगा वह भारतीय नागरिकता से वंचित कर दिया जायेगा। इस अनुच्छेद के प्रावधान के अनुसार हम ऐसा कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** किन्तु इस आशय का तो कोई प्रावधान है नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह मानता हूं कि स्वत: वर्तमान व्यवस्था से ही यह परिणाम निकलेगा। अब मैं श्री मिश्र के संशोधन की ओर आता हूं, जिसका मैं समर्थन करने जा रहा हूं। संशोधन में कहा गया है कि राज्य न तो कोई उपाधि देगा और न किसी उपाधि को मान्यता देगा। देश की नवीन व्यवस्था में, मेरा ख्याल

[श्री एच.वी. कामत]

है कि यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रावधान है। यह कहना कि राज्य कोई उपाधि न देगा, एक बात है और यह कहना कि राज्य किसी उपाधि को मान्यता न देगा बिल्कुल दूसरी बात है। अंग्रेज लोग भारत छोड़ कर चले गये हैं कि दुर्भाग्य से, श्रीमान, आज हमारे देश में वह खिलौने हमारे साथ हैं जिन्हें वह यहां छोड़ गये हैं। अवश्य ही हम अपने देश-भाइयों को अपने साथी नागरिकों को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकते कि वह उन उपाधियों को छोड़ दें जिनको उन्होंने अपने परम कृपालु मालिकों से पाया हैं इसके लिए किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता। किन्तु यह तो अवश्य ही हम कर सकते हैं कि हमारी सरकार उन उपाधियों को मान्यता न दे। मैं अपनी बात को उदाहरण देकर समझाऊंगा। अधिकांश सरकारी कागजों में और कुछ में तो अवश्य ही तथा सरकार द्वारा समय-समय पर निकाली जाने वाली विज्ञप्तियों और प्रेस नोटों में सरकारी प्राधिकारियों का, जिसमें विदेश स्थित राजदूत भी शामिल हैं, उल्लेख उनकी उपाधियों के साथ किया जाता है। अगर मुझे ठीक-ठीक याद है तो पैरिस में हमारा जो चार्ज-डी-अफ्फेयर्स है और अमेरिका में जो राजदूत है, उनके नामों का जब भी सरकारी विज्ञप्तियों या प्रेस नोटों में उल्लेख किया जाता है तो साथ में उनकी उपाधियों का भी उल्लेख रहता है। कम से कम मैं तो यह नहीं समझ पाता हूं कि क्यों सरकार अपनी विज्ञप्तियों और प्रेस नोटों में इन उपाधियों को मान्यता देती है। मुझे अच्छी तरह याद है कि रूसी क्रांति के बाद और टर्की की क्रांति के पश्चात्, जो आज करीब 25 वर्ष की बात है, वह सारी उपाधियां उठा दी गई जिनको पूर्ववर्त्ती शासन-व्यवस्थाओं ने प्रदान कर रखा था और जिन लोगों ने इन उपाधियों का परित्याग नहीं किया उनको वहां कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। वहां राज्य नामों के साथ उन उपाधियों का कभी उल्लेख नहीं करते थे।

हां, श्री मिश्र के संशोधन के विरुद्ध यह तर्क जरूर उपस्थित किया जा सकता है कि इस अधिकार को न्याय अधिकार बनाना सम्भव नहीं है। किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि अगर अनुच्छेद 12 का खंड (1) को न्याय अधिकार माना जा सकता है तो यह क्यों नहीं न्याय अधिकार हो सकता? मुझे इस सम्बन्ध में गम्भीर संदेह है कि अनुच्छेद 12(1) को न्याय अधिकार का रूप दिया जा

सकता है। राज्य कोई उपाधि न प्रदान करेगा। किन्तु यदि राज्य किसी को असावधानी से अथवा अन्यमनस्क होकर या अन्य किसी कारण से कहीं कोई उपाधि प्रदान ही कर दे तो राज्य के विरुद्ध क्या कार्रवाई की जा सकती है? जो कुछ भी हो आखिर स्वयं राज्य ने ही तो उपाधि प्रदान की है। उस हालत में क्या आप राज्य के विरुद्ध कोई कार्रवाई करेंगे? अगर उस सूरत में आप राज्य के विरुद्ध अदालती कार्रवाई कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि आप राज्य के विरुद्ध उस सूरत में अदालती कार्रवाई न करें जब कि राज्य किसी भी रूप में ऐसी उपाधि को स्वीकार करता है जिसे अंग्रेज मालिक प्रदान कर गये हैं। इसलिए मैं श्री मिश्र के संशोधन का समर्थन करता हूं। जहां तक इन उपाधियों का सम्बन्ध है जो दुर्भाग्य से आज भी हमारे पास हैं अथवा जहां तक कि इन उपाधियों के धारण करने वालों का सम्बन्ध है, भारत सरकार को इन्हें किसी भी रूप में—अपने कागजों में या प्राधिकारी व्यक्तियों के नामों के साथ उल्लेख करके—न स्वीकार करना चाहिए। यदि इसे न्याय अधिकार के रूप में रखने में कोई कानूनी कठिनाई है तो मुझे खुशी होगी, अगर मेरे विद्वान् मित्र डा. अम्बेडकर यही व्यक्त करें कि यह सिद्धांत उन्हें मान्य है। वह यह बतायें कि विधान में यह कहीं रखा जा सकता है या नहीं और एक विशेष विधेयक के रूप में संसद में यह बात रखी जा सकती है या नहीं कि उपाधियों को राज्य स्वीकार न करेगा। माननीय मित्र डा. अम्बेडकर से यह बातें जान कर मुझे प्रसन्नता होगी और उस हालत में, आशा है, मिश्र जी भी अपने संशोधन के लिए जोर न देंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अंग्रेजी राज में उपाधियों को प्रदान कुछ ऐसा कलंकपूर्ण कार्य था कि देशवासी उपाधियों से बड़ी ही घृणा करते थे। मुझे खुशी है कि इस सभा में और इस से बाहर आज भी लोग उपाधियों को पूर्ववत् घृणा से ही देखते हैं और विधान में यह ठीक ही प्रावधान किया गया है कि राज्य किसी नागरिक को भी कोई उपाधि न प्रदान करेगा।

अगर आप इसी अनुच्छेद के खंड (3) को देखें तो आपको पता चलेगा कि विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त उपाधि को स्वीकार करने के सम्बन्ध में इस खंड से

[श्री आर.के. सिधवा]

यह छूट मिलती है। अगर अपना ही राज्य किसी नागरिक को उपाधि देना नहीं स्वीकार करता है, तो मैं नहीं समझता कि हम किसी विदेशी राज्य को ही क्यों यह अनुमति दें कि वह हमारे नागरिक को कोई उपाधि प्रदान करे। मेरी राय है कि इस खंड से 'title' शब्द निकाल देना चाहिए। इस खंड [12(3)] में कहा गया है कि:

> ''No person holding any office of profit or trust under the State shall, without the consent of the President, accept any present, emolument, title or office of any kind from or under any foreign State.''

> (राज्य के अधीन लाभ-पद अथवा विश्वास-पद पर आरूढ़ कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से अथवा उसके अधीन, कोई भेंट, परिलाभ (emolument), उपाधि अथवा पद, प्रधान की सहमति के बिना स्वीकार न करेगा।)

यहां भेंट और परिलाभ का उल्लेख किया गया है, वह तो समझ में आता है किन्तु उपाधि को क्यों रखा गया है? इस समस्त अनुच्छेद का अभिप्राय ही यह है कि उपाधियां न दी जायें। उस हालत में इस खंड (3) में 'title' शब्द ही क्यों रखा जाये? इस शब्द को यहां रख देने से इस अनुच्छेद का सौन्दर्य ही समाप्त हो जाता है। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं, पर मेरी समझ से अच्छा होता, अगर विदेशी राज्यों को यह अनुमति न दी जाती कि वह हमारे नागरिकों को कोई उपाधि प्रदान करे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं जिसे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यहां उपस्थित किया है।

श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन यह है कि ''accepted'' शब्द की जगह ''recognised'' शब्द रखा जाये। इसके पक्ष में आपने यह तर्क उपस्थित किया है कि मान लीजिए कोई नागरिक किसी उपाधि को स्वीकार ही कर लेता है, तो उसके इस कार्य को व्यर्थ और अनियमित ठहराने के लिए विधान में क्या दंडमूलक व्यवस्था रखी गई है? मेरी ओर से इसका सीधा-सादा जवाब यह है

कि प्रस्तुत विधान के अनुसार संसद अपने अवशिष्ट अधिकारों के अन्दर ऐसा कानून बना सकती है जिसमें यह विनिधान किया गया हो कि इस अनुच्छेद के प्रावधानों के विरुद्ध अगर कोई नागरिक कुछ करता है तो उसके खिलाफ क्या कार्रवाई की जाये। मेरा ख्याल है कि जिस स्थिति का उन्होंने उल्लेख किया है उसके निवारण के लिए यह व्यवस्था पर्याप्त है।

श्री कामत ने एक और सवाल भी उठाया है और अगर मैंने उनकी बात को ठीक-ठीक समझा है तो उनका प्रश्न यही है कि यह अधिकार न्याय है या नहीं। अपनी नागरिकता को बनाये रखने के लिए उपाधियों को न स्वीकार करना एक जरूरी शर्त है। यह अधिकार नहीं है बल्कि व्यक्ति पर यह कर्त्तव्य आरोपित किया जाता है कि अगर उसे राज्य का सतत रूप से नागरिक बना रहना है तो इसके लिए उसे कई शर्तों को पूरा करना होगा। उन शर्तों में एक यह भी है कि वह किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि न स्वीकार करे, क्योंकि संसद कानून बना कर यह व्यवस्था निश्चित कर सकती है कि अगर कोई नागरिक अनुच्छेद 12 के खंड (1) या (3) के विरुद्ध कोई उपाधि स्वीकार करेगा, तो उसके विरुद्ध क्या कार्रवाई की जायेगी और हो सकता है कि इस अनुच्छेद के प्रतिकूल जाने पर उसे दंड का भागी होना पड़े। हो सकता है कि दंड के फलस्वरूप उसे अपनी नागरिकता के अधिकारों से हाथ धोना पड़े। इसलिए इस प्रावधान को समझने में वस्तुतः कोई कठिनाई ही नहीं है क्योंकि नागरिकता के लिए यह एक प्रतिबंध सा है। स्वतः यह कोई न्याय अधिकार नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा सवाल तो है कि वर्तमान उपाधियों को राज्य स्वीकार करेगा या नहीं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसा कि मैंने माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद को अभी जवाब में बताया है, संसद को अधिकार है कि इस पर जो चाहे कार्रवाई करे। वह यह भी कह सकती है कि इन उपाधियों को राज्य न स्वीकार करेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं डा. अम्बेडकर से यह चाहता हूं कि वह इस सिद्धांत को स्वीकार कर लें। आगे चल कर संसद जो भी करना चाहे कर सकती है।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ अवश्य ही यह तो सहज बुद्धि की बात है कि अगर विधान में यह कहा गया है कि कोई नागरिक उपाधि न स्वीकार करेगा तो संसद का यह देखना कर्त्तव्य होगा कि कोई नागरिक इस प्रावधान का उल्लंघन न करे।

इसके बाद सभा बुधवार ता. 1 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: साढ़े 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।